पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

मनस्विता, प्रखरता और तेजस्विता

ब्रह्मवर्चस

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके.मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे, किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मज़ात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

दल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंतःस्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुःखी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति को प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयी एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुला ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष-रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बन हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नव १९९४ में कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उ द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं स हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेव परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साका चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

भूमिका

चमत्कारों को, जो हम दैनन्दिन जीवन में भौतिक-आध्यात्मिक जगत में होते देखते हैं, असंभव-सा मान बैठते हैं एवं कार्य-कारण से उसकी संगति नहीं बिठा पाते, वस्तुतः संकल्पशक्ति रूपी कल्पवृक्ष की परिणति ही मानना चाहिए। कल्पनाएँ तो रंगीन स्वप्न हैं-मनोरंजन मात्र पूरा कर पाती हैं। ऊँची उड़ानें उड़ने और रंग-बिरंगे सपने देखने वालों की कोई कमी नहीं है। मनोरथ पूरा न होने पर ऐसे व्यक्ति खिन्न व निराश देखे जाते हैं। महत्त्वपूर्ण सफलताएँ सदैव दृढ़ संकल्प-शक्ति के आधार पर ही मिलती हैं, भले ही उन्हें उस व्यक्ति की जीवट के आधार पर मिली उपलब्धि माना जाय अथवा एक चमत्कार।

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्री राम शर्मा जी आचार्य ने सदैव विधेयात्मक चिंतन-सुदृढ़ मनोबल बढ़ाने की दिशा में प्रेरणा देने वाला साहित्य सृजन किया एवं लिखा कि आदमी की प्रखरता व तेजस्विता जो बहिरंग में दृष्टिगोचर होती है, इसी मनस्विता की-दृढ़ संकल्पशक्ति की ही एक फलश्रुति है। वे लिखते हैं कि जैसे किसान बीजों को रोपता है एवं अंकुर उगने से लेकर फसल की उत्पत्ति तक एक सुनियोजित क्रमबद्ध प्रयास करता है, उसी प्रकार संकल्प भी एक प्रकार का बीजारोपण है। किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक सुनिश्चित निर्धारण का नाम ही संकल्प है। अभीष्ट तत्परता बरती जाने पर यही संकल्प जब पूरा होता है तो उसकी चमत्कारी परिणति सामने दिखायी पड़ती है। उज्ज्वल भविष्य के प्रवक्ता परमपूज्य गुरुदेव नवयुग के उपासक के रूप में संकल्पशक्ति के अभिवर्द्धन से तेजस्वी-प्रतिभाशाली समुदाय के उभरने की चर्चा वाङ्मय के इस खण्ड में करते हैं।

संकल्पशीलता को व्रतशीलता भी कहा गया है। व्रतधारी ही तपस्वी और मनस्वी कहलाते हैं। मनःसंस्थान का नूतन नवनिर्माण कर पाना संकल्प का ही काम है। संकल्पवानों के, प्राणवानों के संकल्प कभी अधूरे नहीं रहते। सृजनात्मक संकल्प ही व्यवहार में सक्रियता एवं प्रवृत्तियों में प्रखरता का समावेश कर पाते हैं। परमपूज्य गुरुदेव बार-बार संकल्पशीलता के इस पक्ष को अधिक महत्ता के साथ प्रतिपादित करते हुए एक ही तथ्य लिखते हैं कि आज यदि नवयुग की आधारशिला हमें रखनी है तो वह संकल्पशीलों के प्रखर पुरुषार्थ से उनकी तेजस्विता एवं मनस्विता के आधार पर ही संभव हो सकेगी। ऐसे व्यक्ति जितनी अधिक संख्या में समाज में बढ़ेंगे, परिवर्तन का चक्र उतना ही द्रुतगति से चल सकेगा।

यह एक निर्धारित एवं सुविख्यात तथ्य है कि जिन विचारों से मनोभूमि पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और जिनसे अन्तःकरण पर अमिट छाप पड़ती है, वे पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव का एक अंग बन जाते हैं। विधेयात्मक चिन्तन की बारम्बार पुनरावृत्ति करने व उन विचारों को क्रमबद्ध रीति से सजाने की कला जिन्हें आती है, वे अपना भाग्य, दृष्टिकोण और वातावरण परिवर्तित कर सकते हैं और इसी प्रक्रिया की फलश्रुति, जीवन में अपरिमित सफलताओं के रूप में मिलती है। जीवन वस्तुतः संकल्प बीज की एक लहराती हुई हरी-भरी फसल के समान है। सफल जीवन जीने की आकांक्षा यदि साकार करनी हो, तो पहले अपने मनःक्षेत्र में सकारात्मक बीजों का आरोपण करना चाहिए। संकल्पशक्ति की साधना और आत्मनिरीक्षण से व्यक्तित्व को इच्छित ऊँचाई तक पहुँचाया जा सकता है, इसमें जरा भी संशय किसी को नहीं होना चाहिए।

विधेयात्मक इच्छाशक्ति एवं निषेधात्मक चिन्तन की परिणतियों के अनेकानेक दैनन्दिन जीवन के उदाहरणों के साथ पूज्यवर ने प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि विचारों की शक्ति से ही मानवी क्रियाकलापों का सारा बहिरंग स्वरूप निखर कर आता है। सिकन्दर, गैरीसन, डार्विन, चाणक्य, महाराणा प्रताप, विंस्टन चर्चिल से लेकर परमहंस योगानन्द तक के उदाहरणों द्वारा उनने संकल्पशक्ति की महत्ता प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।

जीवट या जीवनी-शक्ति का बाहुल्य ही मनुष्य को प्राणवान, स्फूर्तिवान, ओजस्वी, प्रतिभाशाली बनाता है। साहस, पराक्रम, उत्साह और स्फूर्ति का समन्वय ही जीवट के रूप में जाना जाता है। यदि यह हो तो सामान्य काया भी कम समय में ऊँचे स्तर के कार्य सम्पन्न कर सकती है। शरीरगत तत्परता एवं मनोगत तत्परता का जहाँ योग होता है, वहाँ व्यक्तित्व में एक चमत्कारी जादुई जीवट उभर कर आ जाती है एवं यही बाह्य जीवन की सारी सफलताओं की मूल धुरी कहलाती है। इसी जीवट के अभाव में एक बलिष्ठ-सा दीखने वाला व्यक्ति भी भद्दा मोटा अजगर बनकर ज्यों-त्यों कर जीवन गुजारता हुआ समय काटकर धरती से चला जाता है। ओजस्विता के बीजांकुर वस्तुतः हर किसी के अंतराल में हैं, आवश्यकता उन्हें जगाने भर की है।

सावित्री . जगदीश प्रसाद

मनोबल, संकल्प-शक्ति, इच्छाशक्ति, साहस, पराक्रम-पुरुषार्थ सभी जिस एक गंगोत्री से निकलते एवं किसी व्यक्ति के प्रभावशाली, आकर्षक तेजोवलय या आभामण्डल के रूप में दीखते हैं, वह उसके अंदर ही विचारों की विधेयात्मक सामर्थ्य के रूप में विद्यमान है। इन्हीं सब पक्षों पर इस खण्ड में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसी खण्ड में व्यवस्था बुद्धि की गरिमा एवं आकृति से मनुष्य की पहचान विषय को भी समाविष्ट किया गया है।

वस्तुतः जीवन जीने की कला का पारखी मनुष्य यदि 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः' का मूल भाव समझ ले तो उसे किसी प्रकार की कठिनाई जीवन व्यापार में नहीं होगी। मनुष्य जैसा चिन्तन व दृढ़ निश्चय करता है, वह वैसा ही बनता चला जाता है, यह आज तक का इतिहास बताता है। हम सदा ही प्रखर इच्छाशक्ति का संपादन कर स्वयं को मनस्वी, तेजस्वी एवं प्रखर बनाए रखें तो लौकिक एवं पारलौकिक सभी सफलताएँ हमारे कदमों पर होंगी, मनोविज्ञान का यह मूल मर्म जो व्यावहारिक भी है, इस खण्ड में विस्तार से पढ़ा जा सकता है।

—ब्रह्मवर्चस

विषय-सूची

तुच्छ से महान बनाने वाला बल—मनोबल

मनुष्य और उसकी महान शक्ति

परमाणु शक्ति के सम्बन्ध मे आधुनिक वैज्ञानिको का कथन है कि जब उसकी सम्पूर्ण जानकारी मनुष्य को हो जायेगी तो सारे ग्रह, नक्षत्रो की दूरी ऐसी हो जायेगी जैसे पृथ्वी पर एक गाँव से दूसरा गाँव, किन्तु इसकी जानकारी का भी अधिष्ठाता मनुष्य है, अतः उसकी शक्ति का अनुमान लगाना भी असम्भव है। मनुष्य मे वह सारी शक्तियाँ विद्यमान है जिनसे इस संसार का विनाश भी हो सकता है और निर्माण तो इतना अधिक हो सकता है कि उसका एक छोटा-सा रूप इस सुरम्य धरती को ही देख सकते है।

मनुष्य विधाता की रचना का सर्वश्रेष्ठ चमत्कारिक प्राणी है। अव्यवस्थित धरती को सुव्यवस्थित रूप देने का श्रेय उसे ही प्राप्त है। ज्ञान, विज्ञान, भाषा, लिपि, स्वर आदि की जो विशेषताएँ उसे प्राप्त है, उनसे निःसन्देह उसकी महत्ता ही प्रतिपादित होती है। मनुष्य इस संसार का समग्र सम्पन्न प्राणी है। महर्षि व्यास ने इस सम्बन्ध मे अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—

गुह्य ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।।

"मै बड़े भेद की बात तुम्हे बताता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर इस संसार मे और कुछ भी नहीं है।" वह सर्वशक्ति-सम्पन्न है। जहाँ चाहे उलट-फेर कर दे, जहाँ चाहे युद्ध-मारकाट मचा दे। जी मे आये तो शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर दे। कोई भी कार्य ऐसा नहीं जो मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर हो। धन, पद, यश आदि कोई वैभव ऐसा नही जिसे वह प्राप्त न कर सकता हो।

भगवान राम और कृष्ण भी मनुष्य ही थे, किन्तु उन्होंने अपनी शक्तियो का उत्कर्ष किया और नर से नारायण बनकर विश्व मे पूजे जाने लगे। मनुष्य अपने पौरुष से—विद्या, बुद्धि और बल से—वैभव प्राप्त कर सकता है। देवत्व की उच्च कक्षा मे प्रतिष्ठित हो सकता है, वह भगवान बन सकता है। उसकी शक्ति से परे इस संसार मे कुछ भी तो नही है। शास्त्रकार का कथन है **''यद्ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे''** अर्थात् जो कुछ भी इस संसार में दिखाई देता है वह सभी बीज रूप से मनुष्य के शरीर मे, पिण्ड मे विद्यमान है।

मनुष्य दीन, हीन और पददलित तभी तक है, जब तक वह अपने आपको पहचानता नही। तुलसीदास जी जब तक निकृष्ट जीवन व्यतीत करते रहे तब तक वे शोक-संताप मे डूबे रहे, किसी ने उन्हे जाना तक नही; बेचारे मारे-मारे इधर से उधर घूमते रहे। किन्तु जैसे ही उनकी आन्तरिक शक्तियाँ प्रकाशित हुई, तुलसीदास जी अमृत पुत्र हो गये, जन-जन की वाणी मे समा गये, सन्त बन गये, महात्मा हो गये। वाल्मीकि, अंगुलिमाल आदि की कथाएँ सर्वविदित हैं। बिल्वमंगल सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए, इसके मूल मे मानवीय अन्तःकरण का विकास ही सन्निहित है। वे शक्तियाँ, वह सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य मे है। अन्तर केवल इतना है कि लौकिक कामनाओ से घिरा हुआ इन्सान पारलौकिक सम्भावनाओ का विचार तक नही करता, इसी कारण वह छोटा है, तुच्छ है, निकृष्ट है।

अपने प्रभाव से मनुष्य चेतनाविहीन प्राणियो को भी नवजीवन देने की शक्ति रखता है। उसने देश, समाज और राष्ट्र तक बदल डाले है। मनुष्य सामाजिक जीवन का निर्माता है, उससे राष्ट्र को बल मिलता है। मानवीय शक्ति की एक चिनगारी से युग परिवर्तित हुए है, हो रहे है और यह क्रम आगे भी युग-युगान्तरो तक चलता रहेगा। वह जिधर चलता है, दिशाएँ चलने लगती है; रुकता है तो सारा संसार निष्प्राण हो जाता है। मनुष्य ही संसार की गति, जीवन और प्राण है। वह न होता तो सारा संसार ऊबड़-खाबड़, अस्त-व्यस्त और जड़वत् पड़ा होता। धरती पर यही प्राण बिखराता और विभिन्न प्रकार के खेल रचाया करता है।

वैज्ञानिक आविष्कारो और औद्योगिक संस्थाओ की ओर दृष्टि घुमाने से उसकी महत्ता की बात और भी पुष्ट होती है। लगता है चाहे जब अणु-आयुधो का प्रयोग करके वह सारी धरती को तहस-नहस कर डाले। यह भी सम्भव है कि वह इस शक्ति का उपयोग रचनात्मक कार्यों मे करने लगे। तब तो स्वर्ग के सभी बहुमूल्य पदार्थ यही प्राप्त करने मे कोई मुश्किल शेष न रहेगी। मनुष्य के अन्दर भगवान का तेज, सृष्टि का सत्व, सिद्धियो के स्रोत देखकर उसे प्रभु का प्यारा कहने को मन करता है। लगता है, इन्ही विशेषताओ के कारण

संसार के दूसरे प्राणी शारीरिक शक्तियो मे प्रबल होते हुये भी उसे शीश झुकाते है।

इतना होते हुए भी मनुष्य की यह दलित और गलित अवस्था देखकर एकाएक उसकी शक्तियो पर विश्वास नही होता। इसका एक ही कारण है कि लोग सुख-प्राप्ति के साधनो मे भटक जाते है और अपनी शक्तियो से वंचित बने रहते है। सुख और शक्ति का मूल है। मनुष्य की आत्मा। जब तक वह आत्म-साक्षात्कार नही कर लेता तब तक उसकी शक्ति ऐसी ही है जैसे घर मे अपार सोना गढ़ा है, पर वह किस स्थान पर, कितनी गहराई पर गड़ा है, इस ज्ञान के अभाव मे 'उस सोने की कोई महत्ता नही।'' आत्मा ही सिद्धियो की जननी है। ब्रह्म तादात्म्य का कारण और माध्यम भी वही है। उसे पहचाने बिना मनुष्य शक्तिवान् नहीं हो सकता। इसके लिये मनुष्य को साधना, स्वाध्याय, संयम - एवं पारमार्थिक जीवन का अभ्यास करना पड़ता है, तब उस शक्ति का अभ्युदय होना संभव हो सकता है।

आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये कुल, देश और काल का कोई बंधन नही है। अपनी श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास, लगन और तत्परता के बल पर हीन कुल मे उत्पन्न व्यक्ति भी आत्मोद्धार कर सकता है। अजामिल, गुह, रैदास और कबीर आदि सन्तो के जीवन से यह प्रमाणित होता है कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये वर्ण-व्यवस्था बाधक नही। जीवन-शोधन के द्वारा नीच कुल मे उत्पन्न व्यक्ति भी सवर्णो जैसी ही आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार सतयुग, द्वापर, कलियुग की सीमाएँ भी इस मार्ग मे रुकावट नही डालती है। हमारे पूर्व पुरुष अनन्त शक्तियो के स्वामी थे। यह उत्तराधिकार किसी न किसी रूप मे हमे भी प्राप्त है और आगे भी यह क्रम सदैव इसी भाँति चलता रहेगा। संस्कृति, शिक्षा और सदाचार के अनुरूप कुल और काल मे—आत्मज्ञानी पुरुषो मे न्यूनाधिक्य तो हो सकता है किन्तु यह परिस्थितियाँ इनसे प्रतिबन्धित नही है।

आत्म-परिष्कार निःसंदेह एक प्रकार का तप है। इससे कई व्यक्ति अपनी असमर्थता प्रकट करने लगते है। बचाव के लिये लोग यह कहा करते है "हमारी तो अब अवस्था नही रही। या हम अब बुड्ढे हो गये, अब तो मन भी नही लगता। या हम तो अभी नवयुवक है, अभी हमारे हँसने-खेलने के दिन है। धर्म-कर्म की बाते तो वृद्धावस्था में चलती है'' आदि-आदि। पर इसलिये वस्तुस्थिति बदलती नही। आत्मा जन्म-मरण रहित है। उसे न बुढ़ापा आता है, न मृत्यु होती है। प्रत्येक परिस्थिति मे वह एक-सा होता है। ऐसा न होता तो ध्रुव पाँच वर्ष की अवस्था मे पूर्णता प्राप्त न करते। जगद्गुरु शंकराचार्य ने इकत्तीस वर्ष की अवस्था मे ही वह कार्य पूरा कर दिखाया था जो कोई सौ वर्ष का भी व्यक्ति नही कर सकता था। सन्त ज्ञानेश्वर ने १५ वर्ष की अवस्था मे गीता की सुप्रसिद्ध ज्ञानेश्वरी टीका लिखी थी। अमरीका के प्रख्यात आविष्कारक एडिसन १३५ वर्ष के बाद तक सृष्टि के महत्वपूर्ण रहस्य खोजने मे लगे रहे और सफलता पाई। आत्मोन्नति के मार्ग मे आयु का कम या ज्यादा होना बाधक नहीं है, आवश्यकता केवल अपने संस्कारो के जागरण की होती है।

उन्नतिशील होना पूर्णतया भाग्य पर भी निर्भर नहीं है। विचारपूर्वक देखने से यह पता चलता है कि परमात्मा से जो साधन मनुष्यो को मिले है, वे प्रायः समान है, हर किसी को दो हाथ, दो पाँव, नाक, आँख, मुख आदि एक जैसे मिले है। विचार, विद्या आदि के साधन भी प्रत्येक मनुष्य अपनी लगन के अनुसार प्राप्त कर सकता है। भाग्यवादी सिद्धान्त कायरो और कापुरुषो का है। पुरुषार्थ एक भाव है और उसका कर्ता पुरुष है अर्थात् मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण अपने पौरुष से करता है। अपनी पूर्व असमृद्धि से किसी को अपनी क्षुद्रता स्वीकार नही कर लेनी चाहिये। बलवान आत्माएँ प्रतिकूल दिशा मे भी उन्नति करती है। मनुष्य के व्यक्तित्व का सच्चा परिष्कार तो कठिनाइयो मे ही होता है।

बाह्य साधनो के अभाव का रोना भी अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है। आपके पास फाउन्टेनपेन नही है तो क्या इससे लिखने का काम रोक देना चाहिये ? आप होल्डर से भी काम चला सकते है, कलम या पेन्सिल ही इस्तेमाल करले तो क्या हर्ज है ? मनुष्य साधनो का दास नही है, वह साधन स्वयं बनाता है। धन स्वतः पैदा नही होता; किया जाता है। इसलिये निर्धनता पर आँसू बहाना हम अकर्मण्यता मानते है। उद्योगी पुरुष तो हजार हाथ कुआँ खोदकर भी पानी निकाल लेते है। आत्म-शोधन भी किसी साधन के अभाव मे रुकता नही। यदि अपना मनोबल कमजोर न हो तो गई-गुजरी अवस्था मे भी आत्म-कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

अपनी इच्छाशक्ति दृढ़ हो तो स्थान, संगठन आदि के अत्यन्त छोटे अभाव भी आत्मोत्थान मे बाधा पहुँचा नही सकते। संसार के अधिकांश महापुरुषो ने तो आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपनी सुख-सुविधाओं का त्याग भी कर दिया था। एक दृष्टि से भौतिक सम्पन्नता आध्यात्मिक विकास मे बाधक मानी गई है क्योंकि इससे मनुष्य की चेष्टाएँ अन्तर्मुखी नही हो पाती। मनुष्य सांसारिक विषय-वासनाओ मे ही फँसा रहता है। हमारे ऋषियो ने इसीलिये यज्ञीय जीवन की परम्परा को जन्म दिया है। वे स्वयं त्यागमय जीवन जीते थे, ऐसा ही आदेश वे हमे भी दे गये है। उनके ऐसा करने का एक ही उद्देश्य था कि मनुष्य अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाकर आत्म-कल्याण के मार्ग से कही विचलित न हो जाय।

योग-वाशिष्ठ मे कहा गया है कि मनुष्य अपनी आत्मा के दर्शन अपनी ही शक्तियो को प्रयुक्त करके

करे, कोई बाह्य शक्ति आपकी सहायता नहीं कर सकती—

यद्यदासाध्यते किञ्चित्केनचित्क्वचिदेव हि।

स्वशक्तिसंप्रवृत्या यल्लभ्यते नान्यतः क्वचित्।

अर्थात् मनुष्य यदि कुछ प्राप्त करता है तो अपनी ही शक्तियों के द्वारा। बाहरी साधन सीमित सहायता मात्र दे सकते हैं। इसी प्रकार सन्त इमर्सन का कथन है "मनुष्य अपनी सहायता आप ही कर सकता है।"

जिन सद्गुणों के आधार पर मनुष्य उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है, उनमें से प्रमुख है—आत्म-विश्वास। अँग्रेजी के प्रमुख कवि टेनिसन ने लिखा है "जीवन शक्ति-सम्पन्न हो सकता है, यदि हममें आत्म-विश्वास, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम हो।" मनुष्य व्यर्थ ही लौकिक कामनाओं में डूबा रहता है। इससे उसका कोई भी प्रयोजन पूरा नहीं होता। मनुष्य का ध्येय इससे शरीर सुख तक ही सीमित हो जाता है। किन्तु जब वह यह विचार करने लगता है कि शरीर जड़ और चेतन शक्तियों का सम्मिश्रण है, तो उसकी आध्यात्मिक आस्था जाग्रत होती है। इसी का नाम आत्म-विश्वास है। इसी से आत्म-क्षुद्रता का निवारण होता है।

संकल्प कर लेने मात्र से ही सफलता नहीं मिल सकती। इसके लिये क्रियाशील होना पड़ता है और संयमित जीवन द्वारा शारीरिक शक्तियों को गतिशील रखना पड़ता है। सौन्दर्य लहरी में जगद्गुरु शंकराचार्य ने लिखा है—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।

न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥

अर्थात् संकल्प सिद्धि के लिये कर्म करना पड़ता है कर्म का आधार शक्ति है, तभी सामर्थ्य बनती है। शक्ति न हो तो क्रियाशीलता भी न रहेगी।

इस प्रकार मनुष्य जब धीरे-धीरे अपने दोष-दुर्गुणों को हटाकर श्रेष्ठ संस्कारों को धारण करने लगता है तो उसके जीवन में, दृष्टिकोण में स्वभावतया परिवर्तन होने लगता है। भोग-विलास की लालसा मिट जाती है और आत्मज्ञान की इच्छा बलवान होती जाती है। वैसे ही साधन भी मिलते जाते हैं और जीवन-क्रम सरलतापूर्वक लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। यह साधन बाह्य नहीं होते, वरन् आन्तरिक विशेषताएँ ही होती हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सेवा, आशा, उत्साह, धैर्य, स्वाध्याय, संयम, सदाचार आदि के द्वारा उसका परिष्कार होकर शुद्ध, निर्मल तथा पवित्र आत्मा के दर्शन होने लगते हैं।

यही वह स्थिति होती है जहाँ सम्पूर्ण शक्तियाँ आकर केन्द्रीभूत हो जाती हैं और "अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्माब्रह्म" की शक्तिशाली भूमिका पर मनुष्य पदार्पण कर जाता है। मनुष्य जिस उद्देश्य को लेकर इस धरती पर आता है उसकी पूर्ति हो जाती है और वह अनन्त सिद्धियों का स्वामी बनकर सुखोपभोग करता है। जिन्हें सुख की कामना हो उन सबके लिये भी यही रास्ता है कि अपना पौरुष जाग्रत करें, शक्तिशाली बनें। तभी सच्चा सुख मिल सकता है।'

प्रतिभा और संकल्प शक्ति का केन्द्र—मानवी मन

मनोमय कोश मस्तिष्क के मन और बुद्धि संस्थानों से सम्बन्धित है। उसकी साधना हमारी बुद्धि, कल्पना, स्मरण शक्ति आदि के क्षेत्रों को सुविकसित करती है। कालिदास, वरदराज जैसे मन्दमति प्रयत्न-पुरुषार्थ से विद्वान, बुद्धिमान बने थे। यह अनगढ़ को सुगढ़ बनाने की प्रक्रिया है। इसे प्रशिक्षण द्वारा विकसित करने का उपाय सर्वविदित है। अध्यात्म प्रयत्नों द्वारा इस प्रयोजन को किस प्रकार पूरा किया जाय, उसी के प्रयोग में मनोमय कोश की साधना सहायता करती है।

इस साधना का दूसरा क्षेत्र है—साहसिकता का संकल्प-शक्ति का अभिवर्धन। चिन्तन में उत्कृष्टता और क्रियाकलाप में आदर्शवादिता का समावेश करने वाली वे सद्विचारणाएँ भी इसी क्षेत्र में विकसित होती हैं जो चरित्रनिष्ठा विकसित करने के लिए उत्तरदायी हैं।

शिक्षा के आधार पर ज्ञान सम्पदा, बौद्धिक तीक्ष्णता एवं क्रिया कुशलता बढ़ाने के प्रयत्न होते हैं। इसके साथ संकल्प-शक्ति का महत्त्व भी समझा जाना चाहिए, वे उपाय भी अपनाये जाने चाहिए, जिनके आधार पर व्यक्ति संकल्पवान बनता है और प्रगति के पथ पर अग्रसर होने में सफल होता है। मनोमय कोश को जाग्रत करने के उपाय जो भी हों पर संकल्प-शक्ति का उदय उसी क्षेत्र से होता है।

प्रगति-पथ पर अग्रसर होने के लिए—अभावों और असुविधाओं से लड़ने के लिए, प्रतिकूलताओं को अनुकूलता में बदलने के लिए, न केवल साधन सामग्री की अभिवृद्धि आवश्यक है, वरन् यह और भी अधिक अभीष्ट है कि मानवी संकल्प-शक्ति को बढ़ाया जाय। मात्र साधनों की बहुलता से तो मनुष्य विलासी और आलसी भी बनता चला जायेगा। इससे उसकी अकर्मण्यता, अशक्तता और अदक्षता ही बढ़ेगी। प्रगति के इतिहास में साधनों एवं परिस्थितियों का उतना योगदान नहीं है जितना कि विचारणा और आकांक्षा का। संकल्प इन्हीं के समन्वय को कहते हैं। संकल्प की प्रखरता ही प्रगति का पथ प्रशस्त करती है। जहाँ इसकी कमी होगी, वहाँ प्रगति का रथचक्र उतना ही अवरुद्ध एवं दलदल में फँसा दिखाई पड़ेगा।

विकासवाद के अनुसार, सृष्टि के आरम्भ मे एककोशीय एवं बहुकोशीय जन्तुओ की शरीर रचना बहुत ही सरल थी। प्राचीनतम प्राणी 'प्रोटोजोन्स' वर्ग के थे। वे एक कोशीय थे। अमीबा, यूग्लीना, पैरामीशियम, वर्टीमिला का आरम्भ इसी रूप मे हुआ। पीछे उनमे संकल्प-शक्ति जगी, वे सुरक्षा और सुविधा की आवश्यकता अनुभव करने लगे। इसके लिए उन्हे पारस्परिक सहयोग का उपाय सूझा और उसके लिए सम्मिलित प्रयास करने मे जुट गये। 'बालकाक्स' वर्ग के जीव छोटे परिवार बनाकर रहने लगे। उनने मिल-जुलकर काम करने की व्यवस्था बनाई। कर्तव्य और उत्तरदायित्व बाँटे। इनमे से कुछ आहार जुटाने मे, कुछ सुरक्षा सम्भालने मे, कुछ वंशवृद्धि करने मे, कुछ सुविधा सम्पादन मे, कुछ व्यवस्था संचालन मे लग गये। आदिम काल की वर्ण-व्यवस्था यही से आरम्भ हुई। सहयोग के आधार पर न केवल सुविधा बँटी, वरन् उनका निज का स्वरूप एवं अस्तित्व भी विकसित होता चला गया। एककोशीय जन्तुओ ने अपना काय-कलेवर बहुकोशीय 'मल्टी सेल्यूलर' वर्ग के जन्तुओ मे विकसित कर लिया। वे सरल से जटिल होते गये। इसी चेतनात्मक स्फुरणा को प्रकृति की मौलिक क्रिया माना गया है। विकास के मूल मे यही तत्व काम कर रहा है। इसी को संकल्प शक्ति का चमत्कार भी कह सकते है।

एककोशीय जीवो की तुलना मे बहुकोशीय जीवो की काया काफी समुन्नत, बनावट की दृष्टि से जटिल बनती गई। स्पंज, हाइड्रा, जेलीफिश, कोरल, एनीमोन आदि बहुकोशीय जीवो की स्थिति तक पहुँचने पर भी उनके शरीरो मे भोजन और मल विसर्जन के लिए एक ही छिद्र था। इन दो प्रयोजनो के लिए दो द्वार तो आगे चलकर बने। विकास का रथ इसी मार्ग पर बढ़ता चला गया है। हड्डियाँ विकसित हुईं, मेरुदण्ड बने, बिना खोपड़ी वाले जीवो के शरीर मे मस्तिष्कीय चेतना की उपयोगिता देखते हुए खोपड़ी के मजबूत किले बनकर खड़े हो गये। जलचरो ने थल मे रहना सीखा। उनमे से कुछ तो हवा मे उड़ने की हिम्मत करने लगे। यही विकास क्रम उद्भिज, स्वेदज, अडज, जरायुज प्राणियो मे अग्रसर हुआ है। प्राणियो की अनेक क्षमताएँ उनके काय विकास के साथ-साथ बढ़ती चली आई है। इन्द्रियो की क्षमता और अवयवो की संरचना का क्रम गाड़ी के दो पहियो की तरह साथ-साथ बढ़ा है। इसी मार्ग पर चलते हुए आदिमकालीन एककोशीय जीवन वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। दोनों परिस्थितियो मे जमीन-आसमान जैसा अन्तर देखा जा सकता है।

विकास की इस प्रक्रिया के आधारभूत कारण खोजने मे वैज्ञानिको ने अपने-अपने ढंग से प्रयत्न किये है और अपने-अपने दृष्टिकोण-निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। **लेमार्क** और **ह्यूगोडिवीज** ने इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ खोजा और बताया है। अपनी शताब्दी मे **चार्ल्स डार्विन** ने बहुत ख्याति प्राप्त की है। प्रायः सभी प्रगतिशील देशो मे इस सन्दर्भ में काफी खोजें हुई है। इन प्रतिपादनो में जीवतत्व को मात्र रासायनिक पदार्थ मानकर विज्ञानवेत्ता एक विचित्र उलझन मे फँस गये है। 'प्रोटोप्लाज्मा' मे काय-कलेवर को बनाने और चलाने की क्षमता तो है, पर क्रमिक विकास की ओर बढ़ सकने जैसी क्षमता उसमें किसी भी प्रकार सिद्ध नही होती। फिर विकास क्रम किस प्रकार निरन्तर अग्रसर होता चला आया ?

नये वैज्ञानिक प्रतिपादनो के अनुसार प्रोटोप्लाज्मा के समतुल्य ही एक-दूसरे जीवतत्व की सत्ता स्वीकार की गई है। वह है—'ईडोप्लाज्मा'। वश परम्परा मे अब इन दोनो का समान योगदान माना जाने लगा है। वंशानुक्रम की मात्र रासायनिक पदार्थो के आधार पर व्याख्या अधूरी और असमाधानकारक ही रही है। अभिरुचियाँ, आस्थाएँ, मान्यताएँ रसायनों के माध्यम से बनी रहने और परिष्कृत होते चलने का कोई तुक नही बैठता। 'ईडोप्लाज्मा' के संयोग से वह बात बनती है। यह दोनो तत्व एक नहीं हैं। उनकी सत्ता स्वतन्त्र है। वे एक-दूसरे के पूरक भर है। यहाँ प्रोटोप्लाज्मा को पदार्थ सत्ता का और ईडोप्लाज्मा को—चेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए पाया जाता है। गतिशीलता, समर्थता, आकांक्षा स्थिति के अनुरूप परिवर्तन, प्रजनन उत्साह, सुरक्षा के लिए संघर्ष, खाद्य पदार्थों को ऊर्जा के रूप मे बदल लेना आदि कितने ही कार्य ऐसे है जिन्हे प्रोटोप्लाज्मा के हाथ से छीन लिया गया है और उनका श्रेय ईडोप्लाज्मा को दिया गया है। परमाणु निर्धारित हलचले करते रह सकते है, पर वे उत्साह एव परिवर्तन की स्फुरणा अपने भीतर से प्रकट नही कर सकते। जीवाणु की यही मौलिक विशेषताएँ है, जिनसे उसे पदार्थ वर्ग मे रासायनिक संगठनो मे गिन लेने मात्र से समाधान नही हो सकता।

जीवन तत्व की रासायनिक व्याख्याएँ कभी बड़े उत्साह के साथ की जाती थी, पर अब वह जोश ठण्डा पड़ गया है और जीवन सत्ता के सम्बन्ध मे स्वतन्त्र रूप से सोचने और खोजने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। मूर्धन्य जीव विज्ञानी **ई. के. लेन कास्टर** का कथन है—"भौतिक जगत मे चल रही हलचलो के साथ जीवन सत्ता का तालमेल नही बैठता। उस निरूपण के पक्ष मे प्रस्तुत किये गये प्रतिपादन ओछे पड़ते है। जीवन का एक स्वतन्त्र विज्ञान होना चाहिए। पदार्थ विद्या के बटखरो से उसकी नाप-तौल ठीक प्रकार हो सकना सम्भव नही दीखता।"

पदार्थ मे केवल अस्तित्व है। उसमे न तो जीवन है और न हलचल। वनस्पति मे अस्तित्व के साथ-साथ जीवन भी है। प्राणियो मे अस्तित्व, जीवन और अनुभूति तीनो है। किन्तु विवेचना बुद्धि और स्वतन्त्र इच्छा की न्यूनता है। जीवन-निर्वाह के परम्परागत अनुभवो और आवश्यकताओ के अनुरूप ही उनके चिन्तन की गाड़ी एक बनी-बनाई पटरी पर लुढ़कती जाती है। मनुष्य की

चेतना सुविकसित स्तर पर पहुँची हुई इसीलिए मानी जाती है कि उसकी सकल्प शक्ति, विवेचनात्मक क्षमता ने काफी प्रगति करली है जबकि अन्य जीवधारी शारीरिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक बलिष्ठ होते हुए भी चेतना के क्षेत्र मे पिछड़े हुए है। जड़ और चेतन की आणविक हलचलो मे समानता हो सकती है। पर यह सम्भव नही दीखता कि पदार्थ कभी चेतन के समतुल्य प्रगति कर सकने मे समर्थ हो सकेगा। क्या धातुएँ कभी पक्षियो की तरह आकाश मे उड़ने, चहचहाने तथा अण्डे देने मे समर्थ हो सकेगी ? जीवन को रासायनिक सिद्ध करने के प्रयत्नो से काम चलता न देखकर कोल्बिन, हैमरीच, किचनर, अरहेनिस आदि वैज्ञानिको ने अपने-अपने शब्दो मे यह कहा है—'जीवन किसी अन्य लोक से भूलता, भटकता पृथ्वी पर आ पहुँचा है, पर वह है पदार्थ से भिन्न। यो उसकी सत्ता पदार्थ के समन्वय से ही चिन्तनात्मक प्रयोजन पूरे कर सकती है।'

इससे एक कदम आगे बढ़कर **पास्टयूर** और **टैण्डाल** ने कहा है—"जीवन पदार्थ से नही जीवन से ही उत्पन्न होता है, हो सकता है।" विकास इतिहास की पृष्ठभूमि का पर्यवेक्षण करते हुए वे कहते है—आदिम काल मे 'सैल' किसी दबाव से नही स्वेच्छा से वंश वृद्धि करते थे। पीछे वे नर और मादा के रूप मे बँट गये। संयोग का आनन्द लेना और उत्तरदायित्व सम्भालना शुरू किया। ऐसी-ऐसी अनेक उलट-पुलट करते-करते जीवधारी वर्तमान स्थिति तक बढ़ते चले आये है। यह स्फुरणा का ही चमत्कार है। यही वह मौलिक अन्तर है जो जड़ और चेतन के बीच भिन्नता की दीवार खड़ी करता है।

आइन्स्टीन कहते थे—'अणुसत्ता पर किसी अविज्ञात चेतना का अधिकार और नियन्त्रण है। पदार्थ मौलिक नही है उसका उद्‌भव चेतना की प्रतिक्रिया से ही सम्भव हुआ है। आज यह तथ्य प्रयोगशाला मे सिद्ध नही होते तो भी मेरा विश्वास है कि आज न सही कल यह सब सिद्ध होकर ही रहेगा।

जीवन का मूल स्वरूप उसकी चिन्तन स्फुरणा के साथ जुड़ा हुआ है। विचारणा और आकांक्षा के समन्वय से जो 'सकल्प' उठता है, उसी मे प्रगति की समस्त सम्भावनाएँ सन्निहित है। विकासवादी प्रगति पर दृष्टिपात करने पर हमे इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। वे एक जैसी परिस्थितियो मे रहने पर भी एक की प्रगति, दूसरे की यथास्थिति और तीसरे की अवगति का अन्तर देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि यह संकल्प शक्ति की न्यूनाधिकता का ही प्रभाव है। साधनो के अभाव मे भी लोग आगे बढ़ते है। सहयोग के बिना भी प्रगति करते है। इसके पीछे उनकी प्रखर संकल्प-शक्ति ही काम करती है। आगे बढ़ने वालो के पीछे साधन भी बनता है और सहयोग भी जुटता है। मोटर दौड़ती है तो उसके पीछे धूलिकण और पत्ते भी उड़ते चले आते है। संकल्प ही मानव जीवन की सर्वोपरि शक्ति है। उसके सहारे सामान्य स्थिति से आगे बढ़कर असामान्य स्तर तक पहुँचा जा सकता है। अन्धकार मे प्रकाश उत्पन्न करने की, निराशा मे आशाजनक सम्भावनाएँ प्रस्तुत करने की क्षमता उसी मे है। ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए साधन जुटाने और सहयोग बनाने की आवश्यकता सभी मानते है, पर यह भुला नही दिया जाना चाहिए कि ये उपलब्धियाँ प्रचण्ड संकल्प-शक्ति उभारे बिना मिल नही सकती। किसी प्रकार संयोगवश मिल भी जायँ तो स्थिर नहीं रह सकतीं। प्रगति का मूल-मन्त्र 'संकल्प' को मानकर चला जाय और सर्वप्रथम उसी के उपार्जन, अभिवर्धन का प्रयत्न किया जाय तो यह निश्चित रूप से व्यावहारिक एवं बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयास माना जायेगा।

मनःसंस्थान ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का ही नही, प्रतिभा का भी क्षेत्र है। उत्कृष्टता के प्रति आस्था के बीज भी इसी भूमि मे जमते हैं। संकल्प शक्ति का उद्‌गम केन्द्र यही है। मनोमय कोश की साधना द्वारा यदि इन विभूतियो को जाग्रत एवं उपलब्ध किया जा सके तो उस दिशा मे किया गया प्रयत्न सामान्य कार्यो की दौड़-धूप से कम नही, अधिक ही लाभदायक और बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्ध होगा।

इच्छाशक्ति की साधना से अदृश्य दर्शन

किसी वस्तु की इच्छा करना एक बात है और इच्छा के साथ शक्ति का संयोजन करना इससे सर्वथा भिन्न बात है। इच्छा तो प्रायः सभी व्यक्ति किया करते है कि हम धनवान हो जाये, विश्वभर मे हमारी कीर्ति फैल जाय और जो भी हम चाहे वह तुरन्त प्राप्त हो जाय। लेकिन कितने व्यक्तियो की इच्छाएँ पूरी होती है ? वस्तुतः इच्छा के साथ शक्ति का संयोग ही उनकी पूर्ति के आधार खड़ा करता है। इस शक्ति के कारण ही संकल्प मात्र से परमात्मा ने सृष्टि कर डाली। माण्डूक्यकारिका मे कहा गया है—**इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः** (यह सृष्टि प्रभु की इच्छा मात्र है) क्योंकि प्रभु की इच्छाशक्तिसम्पन्न और समर्थ है।

इस तथ्य को सोदाहरण समझाते हुए काशी के प्रसिद्ध सन्त और सिद्धयोगी स्वामी विशुद्धानन्द ने अपने एक शिष्य से कहा, शिष्य के साथ दो अन्य व्यक्ति भी थे, उन्होने तीनो शिष्यो की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा—देखो ! इच्छाशक्ति के विषय मे, मै तुम्हे एक प्रयोग बताता हूँ। तुम तीनो अपने हाथ की मुट्ठी बाँध लो और उसमे रखने लायक किसी भी वस्तु की इच्छा करो।" तीनो शिष्य मुट्ठी बाँधकर स्वामीजी के निर्देशानुसार मनचाही वस्तु की इच्छा करने लगे। कुछ देर बाद स्वामीजी ने कहा—'मुट्ठी खोलकर देखो ! तुम्हारी वस्तु मुट्ठी मे आ गयी है या नही। तीनों शिष्यो ने मुट्ठी खोल कर देखा तो वह पहले जैसी ही खाली

मिली।' बाबा ने फिर कहा—एक बार और मुट्ठी बाँधो तथा पुनः अपनी इच्छित वस्तु का चिन्तन करो। तुम लोगो ने यह तो देख लिया कि मात्र इच्छा से कुछ नही होता। अब मै तुम्हारी इच्छा मे शक्ति का संचार करता हूँ। तीनो शिष्यो ने फिर मुट्ठियाँ बन्द कर ली। बाबा के कहने पर जब उन्होने मुट्ठियाँ खोली तो पाया कि तीनो की मुट्ठियो मे इच्छित वस्तुएँ है।

इस घटना की व्याख्या मे सिद्धयोगी ने अपने शिष्यो को बताया—तुम्हारी इच्छा और मेरी शक्ति दोनो मिलकर ही इच्छाशक्ति के रूप मे परिणत हो गयी। जब तुम स्वयं अपनी शक्ति का विकास कर लोगे तो तुम्हे इस शक्ति-संचार की आवश्यकता नही पड़ेगी।

जहाँ कही भी कभी चमत्कारी घटनाओ के विवरण मिलते है, इच्छाशक्ति ही उनके मूल मे विद्यमान रहती है। अमेरिका के 'मिशिगन पैरासाइकिक रिसर्च सेण्टर' ने इस प्रकार की कितनी ही घटनाओ के विवरण संकलित किये और उनकी वास्तविकता की जाँच की। रिसर्च सेण्टर द्वारा खोज के लिए चुनी गई घटनाओ मे से कई निराधार और झूठ थी परन्तु ऐसी भी कितनी ही घटनाएँ निकली, जिनसे इच्छाशक्ति के चमत्कारो तथा उसके विकास सम्बन्धी नियमो के बारे मे नयी जानकारियाँ मिली।

न केवल अमेरिका वरन् रूस मे भी जहाँ स्थूल से परे किसी वस्तु या शक्ति का अस्तित्व पहली ही प्रतिक्रिया मे झूठ, मिथ्या और फ्रॉड समझा जाता है, ऐसे कई व्यक्ति है जो अपनी इच्छाशक्ति की अद्भुत सामर्थ्य का वैज्ञानिक परीक्षण करवाने मे भी निस्संकोच आगे आये। रूस की महिला श्रीमती मिखाइलोवा अपनी अतीन्द्रिय सामर्थ्य के लिए विख्यात है। एक रात्रि भोज मे, जिसमे प्रसिद्ध रूसी पत्रकार वादिम मारिन भी उपस्थित थे, लोगो के आग्रह पर मिखाइलोवा ने कुछ चमत्कार प्रस्तुत कर उपस्थित लोगो को हैरत मे डाल दिया। वादिम मारिन ने अपने पत्र को ताजे अक मे उस प्रदर्शन के बारे मे लिखा—'यहाँ मेज पर कुछ दूर एक डबलरोटी रखी थी। उन्होंने उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखना आरम्भ किया। कुछ ही क्षणो के पश्चात् डबलरोटी उनकी ओर सरकने लगी, जैसे ही डबलरोटी उनके निकट आयी, वैसे ही श्रीमती मिखाइलोवा ने झुककर थोड़ा मुँह खोला और वह डबलरोटी उनके खुले मुँह मे पहुँच गयी।

रूस के ही एक, दूसरे मनोचिकित्सक डॉ. बैन्शनोई अपनी अलौकिक शक्ति के लिए विख्यात है। वे किसी भी वस्तु पर केवल दृष्टि केन्द्रित कर उसे अपने स्थान से हटा सकते है और किसी खाली पात्र को दूध या किसी अन्य वस्तु से परिपूर्णतः कर सकते है। इन बातो पर रूस मे अभी तक बहुत कम विश्वास किया जाता है। इसलिए कुछ वैज्ञानिको ने बैन्शनोई की परीक्षा लेने का कार्यक्रम बनाया। वैज्ञानिको ने हर तरह से डा. बैन्शनोई के प्रत्येक कार्यक्रम की परीक्षा ली और उनको बारीकी से जाँचा परन्तु कही कोई धोखा-धड़ी या हाथ की सफाई नही दिखाई दी।

डॉ. नन्डोर फोडोर ने एक पुस्तक लिखी है 'बिटवीन टू वर्ल्डस्' इस पुस्तक मे उन्होंने कितनी ही ऐसी घटनाओ का उल्लेख किया है, जिनके मूल मे स्थूल मानवीय सामर्थ्य से परे कोई शक्ति काम करती थी। एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता सिगमण्ड फ्रायड को परामानसिक शक्तियो पर विश्वास नही था। डा. फोडोर ने लिखा है कि एक बार उनके पास जुंग नामक व्यक्ति आया, जुंग को फ्रायड ने चुनौती दी तो उसने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन किया। जुंग अपने ही स्थान पर खड़ा रहा पर कमरे की वस्तुएँ इस तरह काँपने लगी जैसे कमरे मे भारी भूकम्प आ गया हो। कमरे की सारी पुस्तके उड़-उड़कर फर्श पर इस तरह जमा हो गयी जैसे किसी समझदार व्यक्ति ने इन्हे उठाकर करीने से रखा हो।

अमेरिका के यूरी गैलर ने इच्छाशक्ति के माध्यम से लोहे के सरियो को मोड़ने, छुरी और चम्मचो को तोड़ने के कई सफल प्रयोग किये है और उनके परीक्षणों को कई चोटी के पत्रकारो, वैज्ञानिको तथा बुद्धिजीवियो ने देखा है। अन्य प्रदर्शनकर्ताओ की भाँति यूरी गैलर को भी सन्देह की दृष्टि से देखा गया, परन्तु ऐसा कोई छिद्र अब तक दिखाई नही दिया है जिसके आधार पर यूरी गैलर को फ्रॉड या धोखा कहा जा सके।

भारतीय महर्षियो ने इन शक्तियो को इच्छा-शक्ति के साधारण चमत्कार कहा है। महर्षि पतंजलि ने मन को शुद्ध और अन्तःकरण को पवित्र बनाकर चित्त की एकाग्रता साधने मात्र से अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने की बात कही है। अध्यात्म को विज्ञान की दृष्टि से देखने, समझने और विश्लेषण करने वाले व्यक्तियो ने ही इन चमत्कारो को साधारण इच्छाशक्ति की सफलता बताया है। वस्तुतः मनुष्य की प्रवृत्ति उसी ओर होती है जिसकी उसे इच्छा, आकांक्षा रहती है। परन्तु इच्छाओ मे बल तथा शक्ति इसलिए नही आ पाती कि वे बिखरी हुई रहती है। सूर्य की बिखरी हुई रश्मियो को एक स्थान पर केन्द्रित कर दिया जाय तो उससे बड़े-बड़े कार्य किये जा सकते है। धूप देखने मे सामान्य लगती है, परन्तु उसे केन्द्रित कर सौर ऊर्जा के माध्यम से फैक्ट्रियाँ चलाने की बात सोची जा जा रही है और ऊर्जा के उत्पादन का कार्य सूर्य की किरणो के केन्द्रियकरण द्वारा ही सम्भव बनाया जायेगा।

बिखरी हुई इच्छाओ को यदि केन्द्रित किया जाय और दृढ़ संकल्प-शक्ति को जगाया जा सके तो शारीरिक असमर्थता या अगहीनता भी मनुष्य के कार्य व्यापार मे कोई बाधा नही पहुँचा सकती है। रूस की एक नेत्रहीन युवती जो अंधी है, केवल इच्छाशक्ति के बल पर ही

कागज पर लिखे अक्षरो को पढ़ने मे समर्थ हो सकी है। वह पुस्तक पर छपे हुए अक्षरो को छूती हुई जाती है और बताती चलती है कि यहाँ यह लिखा है। ठीक आँख वाले व्यक्तियो की तरह रोजा कुलेशोवा अंधी होते हुए भी पन्ने पलटकर पुस्तक पढ देती है। आरम्भ मे लोगो ने समझा कि रोजा अंधी नहीं है वरन् उन्हे बेवकूफ बना रही है। पर ऐसी कोई बात नहीं थी। उसकी इस शक्ति का परीक्षण करने के लिए सितम्बर १९६२ मे मनोविशेषज्ञो की एक बैठक बुलाई गयी; उनके सामने रोजा की आँखो पर पट्टी बाँधकर उससे एक छपा हुआ कागज पढ़ने को कहा गया। रोजा ने कागज हाथ मे लिया और शब्दशः इस प्रकार पढकर सुना दिया जैसे वह आँखे खोलकर पढ रही हो। वैज्ञानिको ने समझा शायद काली स्याही से छपे अक्षरो और सफेद कागज के बीच ऊष्मा का जो अन्तर है उसके आधार पर अँगुलियाँ भेद कर लेती हो। परन्तु जब ऊष्मा वहन करने वाला तत्त्व निकाल दिया गया तो भी रोजा को पढ़ने मे कोई कठिनाई नही हुई।

रोजा ने यह क्षमता अकस्मात अर्जित नही कर ली। उसने बताया कि बचपन मे जब वह स्कूल जाने योग्य हुई थी तभी उसकी दृष्टि जाती रही थी। अपनी हम-उम्र बालिकाओ को स्कूल की बाते करते हुए सुनकर उसे बड़ा दु.ख होता और वह सोचती—काश ! मै भी स्कूल जा सकी होती। वह जब अपनी सहेलियो को पढ़ते हुए सुनती तो उसे लगता कि नेत्रो के अभाव मे वह संसार के अमूल्य ज्ञान-भण्डार से वंचित रह गयी है, क्योकि वह उस राशि के संचित कोष से तो कोई लाभ नही उठा पा रही है।

यह आकांक्षा उसके अन्तःकरण मे इतने प्रबल रूप मे उठने लगी कि वह छपी हुई पुस्तको के पन्नो को पलटकर, उन पर हाथ फेरकर ही मन को समझाने का प्रयत्न करती। परन्तु इससे असतोष और बढ़ता ही जाता था। एक दिन यकायक ही बैठे-बैठे जब वह एक पुस्तक के पन्ने उलट रही थी तो उसे लगने लगा कि वह अक्षरो को देखने लगी और उसकी दृष्टि अँगुलियो मे आकर केन्द्रित हो गयी है।

इसके बाद वह जब भी पन्ने पलटने लगती तो उसे एक-एक अक्षर अपनी अँगुलियो से दिखाई देने लगता। कल्पनाओ और विचारो के चित्र खीचने मे सफलता प्राप्त करने वाले टैड सीरियस ने भी इस सिद्धि को प्राप्त करने मे इच्छाशक्ति का ही उपयोग किया। अमेरिका के टैड सीरियस को कल्पनाओं के फोटोग्राफ उतरवाने में मिली सफलता के कारण विश्वास की जो ख्याति मिली है, वह ससार मे शायद ही किसी व्यक्ति को सफलता प्राप्त करने के कारण प्राप्त हुई हो। टैड सीरियस ने इस प्रकार के अनेक प्रदर्शन किये। वह प्राय. किसी व्यक्ति को किसी वस्तु या दृश्य पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के लिए कहता है और उस व्यक्ति की ओर ध्यान से देखकर कैमरे का बटन दबा देता है।

टैड सीरियस ने एक बार दौड़ती हुई कार की कल्पना का चित्र खीचा। हूबहू चित्र वैसा ही आया। चित्र मे दौड़ती हुई दो कारे दिखाई दे रही थी। एक कार सामने थी और दूसरी उसके पीछे। पिछली कार का पहिया तथा विण्ड स्क्रीन सहित अगला हिस्सा दिखाई दे रहा था। आगे वाली कार के चित्र मे एक विशेषता यह थी कि उस पर वह आँख भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी जिसमें से होकर कार का चित्र फोटो प्लेट पर पहुँचा था।

डेनवर के मनोवैज्ञानिक डॉ. जूले आइसेन वैड ने 'दि वर्ल्ड ऑफ टैड सीरियस' नामक एक पुस्तक लिखी है जो टैड सीरियस पर कई परीक्षण करने के बाद लिखी है। इस पुस्तक मे उन्होने एक स्थान पर लिखा है—मैने सब प्रकार की चालाकी या धूर्तता को विफल करने के लिए टैड को एकदम निर्वस्त्र करके उसके विचार चित्र से कैमरे द्वारा फोटो लिए। उसे धातु के बन्द कमरे मे खड़ा करके फोटो खीचे, परन्तु फोटो सदा साफ आये। यह सिद्ध हो गया कि टैड किसी प्रकार की कोई चालाकी नहीं करता।

इस सिद्धि का रहस्य पूछने पर टैड ने बताया कि वे अपनी कल्पनाओ का चित्र उतारने के लिए कैमरे के सामने जा बैठते और संकल्प करते कि वे अपनी कल्पना को कैमरे पर प्रक्षिप्त कर रहे हो। महीनो तक इसमे असफलता मिली, सैकड़ो रीले बिगड़ी। पर तब भी हताश हुए बिना वे अपनी साधना मे लगे रहे और अन्ततः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए।

उपनिषदो ने कहा है—'संकल्पमयोयं पुरुषः' यह पुरुष संकल्पमय है। मनुष्य अपनी इच्छानुसार जन्म चुनता है, इच्छानुकूल मृत्यु को प्राप्त करता है और इच्छा हो तो परम ब्रह्म को भी प्राप्त कर लेता है। फिर क्या कारण है कि साधारण-सी इच्छाओ को भी पूरा न किया जा सके। इच्छाओ के साथ शक्ति का सयोजन कर मनचाही वस्तुएँ, सफलताएँ प्राप्त करने का विज्ञान अलग है। लेकिन इस सिद्धि को तत्त्वदर्शियो ने आत्मकल्याण के मर्म में बाधक ही माना है। उनकी दृष्टि मे यह बहिर्मुखी साधना है, जबकि आत्मकल्याण के इच्छुको को अपनी ही ओर 'अंतर्मुखी होना चाहिए तथा समस्त इच्छाओ, वासनाओ को परम चेतना मे विलीन कर परम प्राप्तव्य को प्राप्त करना चाहिए।

जो कुछ चाहें, वह सब पायें

अध्यात्म मान्यताओ के अनुसार सभी प्राणियो मे एक ही चेतना का अस्तित्व विद्यमान है। शरीर की दृष्टि से वे भले ही अलग-अलग हो पर वस्तुत. आत्मिक दृष्टि से सभी एक है। इस सन्दर्भ मे परामनोविज्ञान की मान्यता है विश्व-मानस एक अथाह और असीम जलराशि की

तरह है। व्यक्तिगत चेतना उसी विचार महासागर (यूनिवर्सल माइण्ड) की एक नगण्य-सी तरग है, इसी के माध्यम से व्यक्ति अनेक विधि चेतनाएँ उपलब्ध करता है और अपनी विशेषताएँ सम्मिलित करके फिर उसे वापस उसी समुद्र को समर्पित कर देता है।

अब तक इस तरह की अध्यात्म मान्यताओ को कल्पित और मनगढ़न्त समझा जाता था। पर जबसे मनुष्य की अतीन्द्रिय क्षमता के वैज्ञानिक प्रमाण मिलने लगे है, तब से परामनोविज्ञान भी इस दिशा मे सक्रिय हुआ और जो निष्कर्ष प्राप्त हुए उनसे उपरोक्त अध्यात्म मान्यताओ की ही पुष्टि होती है। विदेशो मे इस विषय पर काफी खोजबीन हुई है तथा अनेको प्रयोग-परीक्षण और अतीन्द्रिय क्षमताओ के प्रदर्शन किये गये है। कुछ वर्ष पूर्व ही मैक्सिको (अमेरिका) मे डॉ. राल्फ एलेक्जेंडर ने इच्छा शक्ति की प्रचण्ड क्षमता का सार्वजनिक प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन मे प्राय. सभी प्रतिष्ठित पत्रो के प्रतिनिधि और अन्यान्य वैज्ञानिक, तार्किक, बुद्धिजीवी तथा सम्भ्रान्त नागरिक आमन्त्रित किये गये थे। प्रदर्शन यह था कि आकाश मे छाये बादलो को किसी भी स्थान से किसी भी दिशा मे हटाया जा सकता है और उसे कैसी भी शक्ल दी जा सकती है। इतना ही नही, बादलो को बुलाया और भगाया जा सकता है।

नियत समय पर प्रदर्शन आरम्भ हुआ। उस समय आकाश मे एक भी बादल नही था। पर डॉ. राल्फ ने देखते-देखते घटाएँ बुलादी तथा दर्शको की माँग के अनुसार पूर्व घोषणा सहित बादलो के टुकड़े अभीष्ट दिशाओ मे बिखेर देने तथा उनकी चित्र-विचित्र शक्ले बना देने का सफल प्रदर्शन किया। इस अद्भुत प्रदर्शन की चर्चा उन दिनो अमरीका के प्राय: सभी अखबारो मे मोटे हैडिंग देकर छपी थीं। उपरोक्त प्रदर्शन पर टिप्पणी करते हुए एक प्रसिद्ध विज्ञानी ऐलेन 'एग्रागेट ने 'साइकोलोजी' पत्रिका मे एक विस्तृत लेख छापकर यह बताया कि मनुष्य की इच्छाशक्ति अपने ढंग की एक सामर्थ्यवान विद्युतधारा है और उसके आधार पर प्रकृति की हलचलो को प्रभावित कर सकना पूर्णतया सम्भव है। इसे जादू नही समझना चाहिए।

इच्छाशक्ति द्वारा वस्तुओं को प्रभावित करना अब एक स्वतन्त्र विज्ञान बन गया है, जिसे 'साइकोकिनसिस' कहते है। इस विज्ञान पक्ष का प्रतिपादन है कि ठोस दीखने वाले पदार्थो के भीतर भी विद्युत अणुओ की तीव्रगामी हलचले जारी रहती है। इन अणुओ के अन्तर्गत जो चेतना तत्व विद्यमान है उन्हे मनोबल की शक्ति-तरगो द्वारा प्रभावित, नियन्त्रित और परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार भौतिक जगत पर मन:शक्ति के नियन्त्रण को एक तथ्य माना जा सकता है।

अमेरिका के ही ओपीलिया शहर मे डा. एलेग्जेंडर ने एक शोध संस्थान खोल रखा है, जहाँ वस्तुओं पर मन:शक्ति के प्रभावो का वैज्ञानिक अध्ययन विधिवत् किया जा रहा है। कई शोधकर्त्ता और विद्यार्थी इस संस्थान मे शोध निरत है। एक व्यक्ति के विचार दूरवर्ती दूसरे व्यक्ति तक भी पहुँच सकते हैं और वस्तुओ को ही नही, व्यक्तियो को भी प्रभावित कर सकते है। यह तथ्य अब असन्दिग्ध हो चला है। अनायास घटने वाली घटनाएँ ही इसकी साक्षी नही है, वरन् प्रयोग करके भी यह सम्भव बनाया जा सकता है कि यदि इच्छाशक्ति आवश्यक परिमाण मे विद्यमान हो या दो व्यक्तियो के बीच पर्याप्त घनिष्ठता हो तो विचारो के वायरलेस द्वारा एक-दूसरे से सम्पर्क सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है और अपने मन की बात कही-सुनी जा सकती है।

इच्छा और संकल्प-शक्ति के आधार पर असम्भव लगने वाले दुष्कर कार्य भी किये जा सकते है। सन् १९०२ में बंगाल के एक हठयोगी साधु ने प्रतिज्ञा की कि वह १० वर्षों तक अपना बायाँ हाथ उठाये ही रहेगा, कभी नीचे नही गिरायेगा और सचमुच ही वह लगातार १० वर्षों तक बिना हिलाये अपना बायाँ हाथ ऊँचा किये रहा। हठयोगी साधु का नाम था अगस्तिया। साधु अगस्तिया के हाथ मे इस बीच एक चिड़िया ने घोसला भी बना लिया और उसमे अण्डे भी दिये। हाथ इतना स्थिर रखा जाता था कि चिड़िया को भी सम्भवत यह भ्रम हो गया कि वह किसी पेड़ पर रहती है। सो उसने बड़े मजे के साथ योगी के उठाये हुए हाथ की हथेली पर घोसला बना लिया। योगी अगस्तिया के हाथ की हड्डियाँ सीधी और मजबूत हो गईं। इतने समय तक हाथ उठाये रहने के कारण हड्डियाँ इतनी सख्त हो गईं कि उनका मुड़ना बन्द हो गया और इस तरह एक प्रकार से हाथ बेकार ही हो गया। पर योगी का कहना था कि इस प्रतिज्ञा के पालन मे उसे अब भी कष्ट नहीं हुआ। योग की ऐसी साधनाओ के पीछे कोई विशेष सिद्धान्त नही है। है भी तो इतना मात्र ही कि तितिक्षा के अभ्यास द्वारा अपनी इच्छाशक्ति को प्रखर बनाया जाय।

शरीर मे यदि एक नन्ही सी सुई भी चुभ जाती है तो बड़ा कष्ट होता है, किन्तु सिंगापुर के एक भारतीय योगी ने अपने शरीर मे ५० भाले आर-पार घुसेड़ लिये तथा इस स्थिति मे भी वह लोगो से हँस-हँसकर बात-चीत करता रहा। लोगो ने कहा—यदि आपको कष्ट नही हो रहा है, तो आप थोड़ा चलकर दिखाइये। इस पर योगी ने तीन मील चलकर भी दिखा दिया। उन्होंने बताया कि कष्ट दरअसल शरीर को होता है, आत्मा को नही। इस योगी का उल्लेख—"एवण्डर बुक ऑफ स्ट्रेंज फैक्ट्स" नामक प्रसिद्ध पुस्तक मे भी किया गया है, साथ ही योगी का यह अभिवचन भी कि यदि अनुभव अपने आप को आत्मा मे स्थित कर ले तो जिन्हें सामान्य लोग यातनाएँ कहते है, वह कष्ट भी साधारण खेल जैसे लगने लगते है।

विन्ध्याचल के एक योगी गणेश गिरि ने अपने होठो के आगे ठोड़ी वाले हिस्से में थोड़ी गीली मिट्टी

रखकर उसमे सरसो के बीज बो दिये। जब तक सरसो के पौधे उगकर बड़े नही हो गये और उनकी जड़ो ने खाल चीरकर अपना स्थान मजबूत नही कर लिया तब तक वे धूप मे चित्त लेटे रहे। साहिब उत्लाह शाह नामक लाहौर का एक मुसलमान फकीर ६०० पौड से भी अधिक वजन की मोटी साँकले पहने रहता था। वृद्ध हो जाने पर भी इतना वजन अभ्यास के कारण भार नही बना। पंजाब मे आज भी यह फकीर साँकल वाला और जिगलिंग के नाम से याद किया जाता है। उसकी मृत्यु के बाद साँकलो की तौल की गई तो वह ६७० पौड निकली।

अन्य देशो मे भी अभ्यास द्वारा इच्छाशक्ति बढ़ाने और उसे प्रखर बना लेने के रूप मे ऐसी कई विचित्रताएँ देखने को मिल जाती है, जो इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य कुछ विशेष परिस्थितियो मे ही शान्त, सन्तुलित, सुखी और सन्तुष्ट भले ही रहता हो परन्तु इच्छाशक्ति को बढ़ाया जाय तथा अभ्यास किया जाय तो वह अपने को चाहे जिस रूप मे बदल सकता है। इंका जाति के राजा अहाहुल्लाया ने अपने कानो मे वजनदार छल्ले डालकर उन्हे १५ इंच तक बढ़ा लिया था। उसका सारा शरीर मनुष्यो जैसा होते हुए भी कान हाथी के समान लगते थे। राजा रणजीत सिंह के दरबार मे प्रसिद्ध भारतीय योगी संत हरदास ने जनरल वेटुरा के सम्मुख अपनी जीभ को निकालकर माथे का वह हिस्सा जीभ से छूकर दिखा दिया था जो दोनो भौहो के बीच होता है। सन्त हरिदास बता रहे थे कि जीभ को मोड़कर गरदन के भीतर जहाँ चिड़िया होता है, उस छेद को बन्द कर लिया जाय तो योगी मस्तिष्क मे अमृत का पान करता है, ऐसा योगी अपनी मृत्यु को भी जीत लेता है। अंग्रेज जनरल का कहना था कि जीभ इतनी लम्बी हो ही नही सकती। इस पर सन्त हरदास ने अपनी जीभ को आगे निकालकर दिखा दिया। उन्होने बताया कि कुछ विशेष औषधियो द्वारा जीभ को सूँतकर इस योग्य बना लिया जाता है।

भारतीय योगी चाँगदेव की योग गाथाएँ भारत-भर मे प्रसिद्ध है। एक-एक बार करके उन्होने १४ बार अपनी मृत्यु को वापस लौटाया था। उनकी आयु १४०० वर्ष थी, ऐसा कहा जाता है। ईसामसीह के समय से लेकर बारहवी शताब्दी मे सन्त ज्ञानेश्वर के समय तक उनकी गाथाओ के उल्लेख मिलते है। वह शेर की सवारी किया करते थे और शेर को हाँकने के लिए जहरीले साँप का चाबुक लिए रहते थे। एक बार उन्हे हवा मे स्थिर रहने की चुनौती दी गई। तब उन्होंने हजारो लोगो के सामने प्रवचन करने का प्रस्ताव किया। एक-एक कर चौबीस चौकियाँ रखी गईं और सबसे ऊपरी चौकी पर बैठकर उन्होंने प्रवचन देना आरम्भ किया। पीछे उनके पूर्व आदेशानुसार शिष्यो ने एक-एक करके चौकी नीचे से हटाना आरम्भ किया और इस प्रकार सभी चौकियाँ हटाली गयी। पर चाँगदेव वैसे ही २४वी चौकी जितनी ऊँचाई पर बैठकर प्रवचन देते रहे। लोगो ने उनकी जय-जयकार की तो बोले, भाइयो ! इसमे मेरा कुछ भी बड़प्पन नही। योग क्रियाओ के अभ्यास द्वारा मनुष्य चाहे तो पक्षियो की तरह हवा मे उड़ सकता है और सितारो की तरह हवा मे अधर लटककर संसार का दृश्य देखता रह सकता है।

अब तक इस प्रकार की घटनाओ को कपोल-कल्पित समझा जाता था, पर ऐसे कई प्रामाणिक तथ्य मिले है, जिनके आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि मनुष्य अपनी बढ़ी हुई इच्छाशक्ति को बढ़ाकर इस संसार के सिरजनहार की तरह समर्थ और शक्तिमान बन सकता है। क्योकि अलग-थलग एकाकी इकाई दिखाई पड़ने पर भी वह है तो उसी का अंश।

इच्छाशक्ति की महिमा

इच्छाएँ अनन्त है—यह सत्य है, पर यह भी मिथ्या नही है कि यदि इच्छाएँ नही होतीं, तो मनुष्य आज भी पाषाणकालीन आदिम युग मे ही पड़ा रहता। आज जो उसकी स्थिति है, वह उसकी इच्छा के कारण ही है और आने वाले समय मे जो उसकी दिव्यता प्रकट होने वाली है, वह भी उसी की इच्छा के कारण होगी। मनुष्य चाहे तो अपनी इच्छा से पतन-पराभव के गर्त मे गिर सकता है और चाहे तो दिव्य व महान बन सकता है। सब कुछ उसकी अपनी इच्छाओ का ही खेल है।

यह सारा संसार भी इच्छाओ का ही मूर्त रूप है—एकमात्र ईश्वर की इच्छा का ही स्फुरण है। आनन्द के केन्द्र परमात्मा के हृदय मे एक भावना उठी—"**एकोहं बहुस्यामि**" और इसी का मूर्तिमान रूप यह मंगलमय संसार बनकर तैयार हो गया। अपनी इच्छाशक्ति से उसने मनुष्य सहित सम्पूर्ण चराचर की सृष्टि कर दी और मनुष्य को विविध शक्तियो से सम्पन्न कर उसके कर्तव्य का खेल देखने के लिए स्वयं उसके हृदय गुहा मे अवस्थित हो गया, साथ ही उसे क्रियाशील बनाने के लिए इच्छाओ के साथ सुख-दुःख का द्वन्द्व देकर संचालित कर दिया। इस तरह मनुष्य जो भी कुछ करता-धरता है, उसके मूल मे इच्छाशक्ति ही प्रधान रहती है।

प्रख्यात जर्मन दार्शनिक **आर्थर शॉपेनहावर** ने अपने प्रमुख ग्रन्थ—"द वर्ल्ड ऐज विल एण्ड आइडिया" अर्थात् 'संकल्प और भावरूप मे जगत' उक्त तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि ससार एवं उसकी समस्त जड़-चेतन वस्तुओ-प्राणियो मे इच्छाशक्ति की प्रबलता ही देखी जाती है। इच्छा, प्रयत्न, भावना, अभिलाषा, आकांक्षा सबके सब इसी के रूपान्तरण है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व से इसी शक्ति से मिलता-आकर्षित होता है। उनके अनुसार मानवी काया के निर्माण से पूर्व भी यह इच्छा शक्ति विद्यमान थी और उसी से प्रेरित होकर शरीर का निर्माण हुआ है। आत्मा की जैसी इच्छा होती है, वैसे ही शरीर मे परिवर्तन होते आये है। काया के निर्माण मे

समग्र रूप मे इसी शक्ति को सक्रिय देखा जाता है। उन्होने मनुष्य को "आध्यात्मिक प्राणी" कहा है और स्पष्ट किया है कि आत्मिकी का आश्रय लेकर चाहे तो वह अपनी इच्छाशक्ति को परिष्कृत करके देवमानव, महामानव स्तर तक विकसित हो सकता है, किन्तु अन्य प्राणियो के साथ अध्यात्म विद्या का कोई सम्बन्ध न होने के कारण वह वैसा नही कर पाते। मनुष्य की विवेक-बुद्धि साथ दे, तो वह इच्छाशक्ति के आधार पर मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। कारण इच्छा, आकांक्षा का नियन्त्रण विवेक द्वारा ही होता है।

मनुष्य इच्छाएँ करे, यह उचित ही नही आवश्यक भी है। इसके बिना प्राणि जगत निश्चेष्ट एवं जड़वत् लगने लगेगा, किन्तु इसका एक विषाक्त पहलू भी है और वह है इनकी अति और उनका अनुचित स्तर की होना। मनुष्य जीवन को क्लेशकारी, कष्टदायक परिणामो की ओर ले जाने मे अति और अनुचित इच्छाओ का ही प्रमुख हाथ है। स्वामी रामतीर्थ का कथन है कि "मनुष्य के भय और चिन्ताओ का कारण उसकी अपनी इच्छाएँ है। इच्छाओ की प्यास कभी पूर्णरूप से सन्तुष्ट नही हो पाती।" उत्तराध्ययन ९/४८ एवं आचारांग सूत्र १/२/५ मे भी यही कहा गया है कि इच्छाएँ आकाश के समान है। उन पर विजय पाना मुश्किल है। बात भी ऐसी ही है। आज जो हम सोचते है, उसके पूर्ण हो जाने पर अन्य अनेको कामनाएँ उठ खड़ी होती है। यह वह आग है जो तृप्ति की आहुति से और प्रखर हो उठती है। एक पर एक अनियन्त्रित इच्छाएँ यदि मन मे उठती रहे तो मानव जीवन नारकीय यन्त्रणाओ से भर जाता है।

मनुष्य इस धरती पर एक महान लक्ष्य लेकर अवतरित हुआ है और उसी के अनुरूप उसे सदिच्छाओ को बलवती बनाना है। सुखी रहने और समुन्नत बनने का यही राजमार्ग है। वेदव्यास महाभारत, शांतिपर्व १७७/४८ मे कहते है कि मनुष्य जिन-जिन इच्छाओं को छोड़ देता है उस-उस ओर से सुखी हो जाता है। यदि इच्छा अभिलाषा की दिशा को भोग से मोक्ष की ओर, स्व से पर की ओर अथवा पीड़ा, पतन निवारण की ओर मोड़ा जा सके, तो स्वर्गीय आनन्द का अहर्निशि रसास्वादन किया जा सकता है। संभवत· इसलिए दक्षिण के महान सन्त तिरुवल्लुवर ने अपनी कृति 'तिरुक्कुरल' मे लिखा है कि योगी वही है, जो सासारिक इच्छाओ को वशवर्ती कर, औरो की हित-कामना मे रत हो जाय। परमार्थ ही जिनकी वृत्ति है, उन महामानवो मे सदैव दुःखो से-पीड़ा से सन्तप्त प्राणियो के कष्ट निवारण की भाव भरी सदिच्छा ही कार्यरत देखी जाती है। इसीलिए तो वे अभिनन्दनीय, अभिवन्दनीय होकर इतिहास-पुरुष बन जाते है।

इच्छाशक्ति की प्रचण्ड क्षमता

जीवन की सफलता-असफलता, उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति, उत्थान-पतन; सब मनुष्य की इच्छाशक्ति की सफलता और निर्बलता के ही परिणाम है। सबल, दृढ इच्छाशक्ति-सम्पन्न लोगो को अभद्र विचार, कुकल्पनाएँ, भयानक परिस्थितियाँ, उलझनें भी विचलित नहीं कर सकतीं। वे अपने निश्चय पर दृढ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते है। उन्हे बार-बार नहीं बदलते। प्रबल इच्छाशक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हे अस्थिर नही कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थितियो में अपना रास्ता निकालकर आगे बढ़ते रहते है। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नही होते।

दृढ इच्छाशक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है जिसमे किसी भी बाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारो का प्रभाव नही हो सकता। दृढ इच्छाशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति जीवन के भयंकर झंझावातो मे भी अजेय चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शान्त रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रसन्नता, शान्ति उसके साथ रहते है।

पितामह भीष्म अपनी दृढ इच्छाशक्ति के बल पर सारे शरीर के बाणो से छिदे रहने पर भी छः माह तक शरशैय्या पर पड़े रहे और चेतन बने रहे। दूसरे इस तरह के व्यक्ति भी होते है जो अपने तनिक से घाव-चोट में चिल्लाने लगते है, बेहोश हो जाते है, कई तो भय के कारण मर तक जाते है। सत्यव्रती हरिश्चन्द्र अपने जीवन की कठिन परिस्थितियो को परीक्षा की घड़ी में अपनी दृढ इच्छाशक्ति के कारण निभा सके थे। दूसरी ओर कई लोग जीवन की सामान्य-सी परिस्थितियो मे रो देते है। हार बैठते है। जीवन की सम्भावनाओ का अन्त कर डालते है।

महाराणा प्रताप जिन्होंने वर्षों जंगलो की खोहो मे जीवन बिताया, बच्चो सहित नगे-भूखे-प्यासे भटकते रहे, किन्तु इसके बावजूद भी दृढ इच्छाशक्ति के सहारे वह अजेय वीर शक्तिशाली मुगल सल्तनत को चुनौती देता रहा और झुका नही। थोड़ी ही संख्या मे दुबले-पतले क्रान्तिकारियो ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को जो तूल दिया और विश्वव्यापी ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी। वह उन वीरो की दृढ इच्छाशक्ति का ही परिणाम था। फाँसी की सजा सुनने पर भी जिनका वजन बढ़ा, फाँसी के तख्ते पर पहुँचकर जिन्होने अपनी मुस्कराहट से मौत के भययुक्त स्वाँग का गर्व चूर कर दिया, यह सब उनकी दृढ इच्छाशक्ति की ही करामात थी।

संसार मे जितने भी महान कार्य हुए, वे मनुष्य की प्रबल इच्छाशक्ति का संयोग पाकर ही हुए। दृढ इच्छाशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ही महान कार्यो का संचालन करता है। वही नवसृजन, नवनिर्माण, नवचेतना का

शुभारम्भ करता है तथा अपने और दूसरों के कल्याण, विकास एवं उत्थान का मार्ग खोजता है।

निर्बल इच्छाशक्ति वाले मनुष्य अपने या दूसरो के लिए कोई उपयोगी कार्य नही कर सकते। ऐसे लोगो के मन मे अनेको सन्देह, कुकल्पनाएँ, कुविचार पैदा होने लगते है। उनके निश्चय बार-बार बदलते है। एक काम को अधूरा छोड़कर, दूसरे को हाथ में लेते हैं फिर दूसरे को छोड़कर तीसरे को करने लगते है। छोटी-छोटी कठिनाइयो मे उलझकर ही परेशान होने लगते है। निर्बल इच्छाशक्ति से अपने और दूसरो के अकल्याण की भावनाएँ निर्बाध गति से आने-जाने लगती है। परीक्षा मे बैठने पर असफलता का भय सताने लगता है। व्यापार करने पर घाटे के भय से चिन्तित एवं परेशान होने लगते है। अँधेरे मे चलने पर भूत, चोर, गुण्डे का डर खाने लगता है। घर मे कोई बीमार पड़ जाय तो सोचा जाता है कहीं मर नही जाय। इस तरह दुर्बल इच्छाशक्ति के कारण मनुष्य तरह-तरह की आशंका-शंका कल्पित भय, चिन्ता, परेशानियो से परेशान, दुःखी, उद्विग्न एवं अशान्त रहता है। हीन भावनाओ से ग्रस्त हो निराशा, अवसाद, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष से युक्त हो जाता है।

इच्छाशक्ति की दुर्बलता से कई लोग अपने आपको कल्पित रोगो से ग्रस्त समझकर परेशान होने लगते हैं और हर उपचार मे कोई न कोई मीनमेख निकालते है। रोग घट रहा हो तो भी उन्हें कहीं फिर न बढ़ जाय, यह डर लगा रहता है। यदि परीक्षण किया जाय तो वास्तविक रोगियो की संख्या कम मिलेगी और इस तरह के कल्पित रोगो से ग्रस्त लोग अधिक मिलेगे। इसमे कोई सन्देह नही कि इच्छाशक्ति की दुर्बलता से आजकल प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को किसी न किसी रोग से ग्रस्त ही समझता है। कई तो इतने परेशान रहते है कि मानो वे किसी भयंकर रोग से पीड़ित हैं और वस्तुतः बात ऐसी नही होती। दृढ इच्छाशक्ति के सहारे बड़े-बड़े रोगो के आक्रमण से भी बचा जा सकता है और अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

मनुष्य के सभी विचार, भाव, क्रिया स्वयं उसी तक सीमित नही रहते। इनका प्रभाव समस्त वातावरण पर भी पड़ता है। रेडियो-स्टेशन के ट्रान्समीटर से छोड़ी हुई ध्वनि तरंगे सर्वत्र फैल जाती है। ठीक इसी तरह व्यक्ति के क्रिया-कलाप, हाव-भावो का भी प्रसार होकर वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। ये सक्रामक होते है और दृश्य या अदृश्य रूप मे एक व्यक्ति से चलकर दूसरो तक फैल जाते है। दृढ इच्छाशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति जिस समाज मे होगे, वह समाज भी शक्तिशाली, दृढ और महत्त्वपूर्ण होगा। कायर, डरपोक, दुर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति समाज मे अपनी दुर्बलताओ का संचार करते है।

नेपोलियन बोनापार्ट के सिपाही अपने आपको नेपोलियन समझकर लड़ते थे। प्रत्येक सिपाही मे नेपोलियन की इच्छाशक्ति काम करती थी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे आजाद हिन्द फौज के तनिक से सैनिको ने हथेली पर जान रखकर अँग्रेजी शासन से लड़ाई की। लोकमान्य तिलक ने भारतवर्ष को स्वराज्य मन्त्र की दीक्षा दी—"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेगे।" और यही नारा प्रत्येक भारतीय का प्रेरक मन्त्र बन गया। एक दिन इसी मन्त्र ने हमे स्वतन्त्रता रूपी सिद्धि प्रदान की। यह मन्त्र कोई शाब्दिक व्याख्या मात्र नही था वरन् इसमे तिलक की दृढ इच्छाशक्ति का अपार चैतन्य सन्निहित था। मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रभाव चेतन जगत पर ही नहीं, वरन् अचेतन पदार्थों पर भी पड़ता है। अपनी इच्छाशक्ति के बल पर ही मनुष्य पत्थर, धातु आदि की मूर्ति मे भगवान का साक्षात्कार करता है। प्रबल इच्छाशक्ति के द्वारा मनुष्य जड़, चेतन, प्रकृति को भी प्रभावित कर सकता है।

निर्बल इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति समाज मे भीरुता, कायरता, सन्देह, कुकल्पनाओ का संचार करते हैं। जिस देश मे कर्णधार नेताओ की इच्छाशक्ति दुर्बल होगी तो वह वहाँ की प्रशासनिक मशीनरी और फिर जनता तक मे फैल जायेगी। जैसे अपने बारे मे अहितकर बाते सोचने पर दुष्परिणाम पैदा होते हैं, उसी तरह जिसके लिए बुरी बात सोची जायेगी, वह भी बुराई से प्रभावित हुए बिना नही रहेगा। यदि उसकी इच्छाशक्ति दुर्बल होगी तो वह सहज ही दूसरे द्वारा कुकल्पित दुर्भावनाओ का शिकार हो जायेगा। भूतो के भय से डरने वाले अपने सक्रामक विचारो से दूसरो मे भी भूत के भय की भावना पैदा कर देते है। घृणा करने वाले दूसरो में भी घृणित विचारो का प्रसार कर देते है। लड़ाई के मैदान से भाग जाने वाला एक सिपाही कई सिपाहियो मे मैदान छोड़ने की भावना पैदा कर देता है। इच्छाशक्ति की दुर्बलता भी उतनी ही संक्रामक है जितनी सबलता। जहाँ सबल इच्छाशक्ति के व्यक्तियो का बाहुल्य होगा, वह समाज उन्नति, प्रगति की ओर सहज ही उठ जायेगा। जहाँ दुर्बल इच्छाशक्ति के लोग होगे, वह समाज पतन की ओर अग्रसर हो जायेगा।

हमे अपनी इच्छाशक्ति बढाने का प्रयत्न करना चाहिए। साहस और धैर्य का अभ्यास करने से बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ भी सहज हो जाती है और पराक्रमी व्यक्ति आसानी से उन पर विजय प्राप्त कर लेते है। भीरु पुरुष तो कठिनाइयो मे जितने त्रस्त होते है, उससे अधिक उनकी आन्तरिक दुर्बलता ही कष्ट देती रहती है। मानव जीवन मे दृढ इच्छाशक्ति एक अत्यन्त मूल्यवान सम्पत्ति है और इसे हम अधिकाधिक मात्रा मे सम्पादित करे, यही उचित है।

इच्छा-शक्ति के चमत्कार

मनुष्य की आन्तरिक शक्तियो मे इच्छाशक्ति का बड़ा महत्त्व है। यही वह शक्ति है जो मनुष्य मे

नव-जीवन और नवीन स्फूर्ति का संचार करती है। जीवन की समग्र क्रियात्मकता इसी शक्ति पर निर्भर है। इच्छाशक्ति की प्रेरणा से ही मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य मे जुटा रहता है। इच्छा का लगाव जिस विषय से हो जाता है, मनुष्य की सारी शक्तियाँ उसी ओर को झुक जाती है। इच्छा की तीव्रता, विपरीतता मे भी अपना मार्ग निकाल लेती है।

जिस समय मनुष्य की इच्छाएँ मर चुकी है, समझना चाहिए कि वह मनुष्य मर चुका है। श्वांस लेते हुए एक शव के समान ही वह सारे कार्य किया करता है। नष्ट मनुष्य की जिन्दगी मे कोई आकर्षण शेष नही रहता, कोई रुचि नही रहती। अरुचिपूर्ण जीवन का अभिशाप नरक से भी अधिक कष्टदायक होता है। इच्छाएँ ही जीवन को गति देती है, संघर्ष की शक्ति और परिश्रम की प्रेरणा प्रदान करती है।

किसी वस्तु की प्राप्ति की लालसा को इच्छा कहते है। इस लालसा की तीव्रता को इच्छाशक्ति कहते है। किसी वस्तु के अभाव मे जो एक वेदनापूर्ण अनुभूति होती है, वही इच्छा की तीव्रता है, जिसकी न्यूनाधिकता के अनुपात से ही इच्छा मे शक्ति का सम्पादन होता है।

मनुष्यो की इच्छा अनेको प्रकार की हो सकती है। वे अच्छी और बुरी दोनो प्रकार की हो सकती है। मनुष्य की इच्छाएँ उसकी आन्तरिक अवस्था की द्योतक है। जिस मनुष्य की इच्छाएँ स्वार्थपूर्ण है, वह अच्छा आदमी नही। उसकी इच्छाओं मे सात्विक शक्ति नही होती, जिसके बल पर बड़ी-से-बड़ी उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है।

अन्याय एवं अनीतिपूर्ण इच्छाएँ रखने वाला भले ही किसी सयोग, युक्ति अथवा परिस्थितियो का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर ले, तब भी यह न मानना चाहिए कि इसने इच्छाशक्ति के बल पर अपनी वाछा को पूर्ण कर लिया है या यो कहना चाहिए कि यह उसकी इच्छाशक्ति की तीव्रता है, जिससे यह अपने लक्ष्य मे सफल हो चुका है। सफल होने के लिए अनीतिपूर्ण योजनाएँ भी सफल होती रहती है। इतिहास मे तो ऐसे अनेको अत्याचारियो, अन्यायियो एवं बर्बरो के उदाहरण पाये जाते है, जिन्होने अपनी अन्यायपूर्ण इच्छाओ को पूरा कर लिया है, साम्राज्य स्थापित किये है, विजय प्राप्त की है।

कहा जा सकता है कि यह उन अत्याचारियो की इच्छाशक्ति का परिणाम है कि वे ऐसी-ऐसी विकट विजयो को प्राप्त कर सके है। किन्तु यदि वास्तव मे तात्विक दृष्टि से देखा जाए तो पता चलेगा कि वे विजय अत्याचारियों की तीव्र इच्छाशक्ति का फल नही था, बल्कि विजितो की निर्बल इच्छाशक्ति का परिणाम था। जब किसी एक वर्ग की विजयेच्छा नष्ट हो जाती है तभी आक्रमण की, अनीतिपूर्ण होने पर भी विजय-वाछा पूर्ण हो जाती है।

अन्यायी की इच्छाओं मे स्वयं अपनी कोई इच्छा नहीं होती, वे वास्तव मे अहंकार द्वारा ही प्रेरित है। यदि अन्यायी के अहंकार का हरण कर लिया जाये, उसे ध्वस्त कर दिया जाये तो वह विश्व का सबसे निर्बल और निरीह प्राणी हो जाता है। यही कारण है कि अहंकार का उन्माद-उतरते ही उसकी सारी शक्तियाँ ठीक उसी प्रकार समाप्त हो जाती है, जिस प्रकार नशे की उत्तेजना उतरते ही कोई मद्यप मुर्दे की तरह निर्जीव हो जाता है। उसका सारा जोश-खरोश, वेग-आवेग आदि आन्दोलनपूर्ण क्रियाएँ खत्म हो जाती है और वह एक साधारण-से साधारण व्यक्ति के हाथ कुत्ते की मौत मारा जाता है।

अनीतिपूर्ण इच्छाओ मे कोई स्थायित्व नही होता। वे बरसाती नदी की भाँति उफनती है और शीघ्र ही ठण्डी पड़ जाती है। अन्यायी इच्छाओ से अभिभूत होता है। उनसे उत्तेजित होता है, उसे पूरी करने के लिए व्याकुल रहता है और उनके वेग मे एक शक्ति का भी अनुभव करता है। किन्तु फिर भी अहंकार का लाख आवरण डालने पर भी वह इस विचार से मुक्त नही हो पाता कि उसकी इच्छाएँ अनुचित है। वह स्वयं अपनी दृष्टि मे अपराधी बना रहता है और बाहर अन्यों मे भी भयभीत रहता है। यही कारण है कि उसकी इच्छाओ मे न तो कोई शक्ति रहती है और न वे जीवन-लक्ष्य बनकर स्थायित्व प्राप्त कर पाती है। प्रतिकूल परिस्थिति आने पर वह इच्छाओ को छोड़ देता है, उनमे परिवर्तन कर लेता है और कभी-कभी तो उनकी भयंकरता से वह जीवन के रणक्षेत्र से ही भाग खड़ा होता है। अत्याचारी अथवा अन्यायी की सफलता वस्तुतः उसकी इच्छाओ की पूर्ति नही होती बल्कि उसके उस अहंकार की ही परितुष्टि होती है, जिसके आवेग से वह ग्रस्त, दुःखी एव विकल रहता है।

सदिच्छुक का कर्तव्य बुद्धि के तर्क-विवेक की भर्त्सना एव आत्मा के धिक्कार से प्रभावित नही होता बल्कि उनका सहयोग पाकर उसकी इच्छाएँ और भी अधिक बलवती एव सुनिश्चित हो जाती है। इसके अतिरिक्त आत्म-कल्याण और परोपकार की भावना के कारण वह दिनोदिन सदाचारी, सच्चरित्र एवं सत्यमूर्ति बनकर दूसरो की सद्भावना, सहयोग तथा सहायता प्राप्त करता हुआ अधिकाधिक शक्ति-सम्पन्न होता जाता है। सदिच्छाएँ स्वय शक्तिमती होने के साथ-साथ दूसरो से भी शक्ति संचय करती रहती है।

विरोध करना लोगो का आज स्वभाव बन गया है। यहाँ पर क्या अच्छे कार्य और क्या बुरे, विरोध सबका ही किया जाता है, बल्कि वास्तव मे यदि देखा जाय तो पता चलेगा कि बुराई से अधिक भलाई को विरोध का सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह नही है कि भलाई भी बुराई की तरह ही विरोध की पात्र है, बल्कि

समाज की दुष्प्रवृत्तियाँ अपने अस्तित्व के प्रति खतरा देखकर भड़क उठती है और विरोध के रूप मे सामने आ जाती है। चूँकि सत्प्रवृत्तियाँ विरोध-भाव से शून्य होती है इसलिए वे बुराई का विरोध करने से पूर्व सुधार का प्रयत्न करती हैं। ध्वंसात्मक न होने के कारण वे बुराई के विरोध को भयंकरता के रूप मे उपस्थित नही करती, जिससे ऐसा नही दीखता कि बुराई का विरोध हो रहा है। दुष्प्रवृत्तियो के उफान को, किसी ध्वंसात्मक संघर्ष को बचाने के लिये सत्प्रवृत्तियाँ किसी सीमा तक उसकी उपेक्षा करती हुई यह प्रतीक्षा किया करती है, कदाचित् यह स्वयं सुधर जाये। किन्तु जब ऐसा नही होता तो सत्प्रवृत्तियाँ अपने ढंग से आगे बढ़ती हैं और बुराई को दूर करने का प्रयत्न करती है। ध्वंसात्मक होने के कारण दुष्प्रवृत्तियाँ सत्प्रवृत्तियो के विरोध मे एक संघर्ष खड़ा कर देती है, जिससे सत्प्रवृत्तियो को अधिक विरोध दृष्टिगोचर होता है। इसके विपरीत सत्प्रवृत्तियो के द्वारा संघर्ष के स्थान पर सुधार का प्रयत्न करने के कारण बुराई का विरोध होते नही दीखता, जबकि सत्प्रवृत्तियो का विरोध अधिक फलदायक तथा स्थायी होता है।

जहाँ तक इच्छाओ का सम्बन्ध है, सदिच्छाएँ ही इच्छाओ की सीमा मे आती हैं इसके विपरीत जो असद् इच्छाएँ है वे वास्तव मे इच्छाएँ न होकर दुष्प्रवृत्तियो का आवेग ही है। सदिच्छाओ की शक्ति अपरिमित है। कोई अच्छा कार्य करने अथवा उदात्त लक्ष्य प्राप्त करने की कामना रखने वाला लाख विरोधो एवं असुविधाओ के होने पर भी अपने ध्येय पर पहुँच ही जाता है।

सदाशयो मे एक स्थायी लगन होती है, जिससे वह अपने ध्येय के प्रति निष्ठावान् होकर अपनी समग्र शक्तियो को लगाकर प्रयत्न मे लगा रहता है। इच्छा एवं प्रयत्न की एकता उसमे एक अलौकिक सहायता-स्रोत का उद्घाटन कर देती है, जिससे उसके प्रयत्नो मे निरन्तरता, तीव्रता और अमोघता बढ़ती जाती है और वह क्षण-क्षण ध्येय की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होता जाता है।

सदिच्छावान् व्यक्ति मे आशा, उत्साह, साहस और सक्रियता की कमी नही रहती और जिसमे इन सफलतावाहक गुणों का समावेश होगा, असफलता उसके पास आ ही नही सकती। असद् इच्छाये जहाँ अपने विषैले प्रभाव से मनुष्य की शक्ति का नाश करती हैं, वहाँ सदिच्छाएँ उनमे नवीन स्फूर्ति, नया उत्साह और अभिनव आशा का सचार किया करती है।

एक इच्छा, एक निष्ठा और शक्तियो की एकता मनुष्य को उसके अभीष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा देती है। इसमे किसी प्रकार के सन्देह की गुन्जाइश नही।

इच्छाशक्ति द्वारा असम्भव को सम्भव बनाया जा सकता है

व्यक्ति किसी कार्य-विशेष मे सफलता पाने के लिए कृत संकल्प हो जाय और अभ्यास-प्रयास उस दिशा मे निरन्तर जारी रखे तो कोई कारण नही कि वह सफल न हो सके। शरीर क्रिया क्षेत्र मे आये दिन योगाभ्यासियो द्वारा ऐसे ही क्रिया-कौतुक प्रदर्शित किये जाते रहे है, जिन्हें देखने से सहज विश्वास तो नही होता, पर वैज्ञानिक निरीक्षण-परीक्षणो के दौरान वे बिल्कुल सही पाये गये और उनकी इस क्रिया-कुशलता को सर्वसम्मति से स्वीकारा गया।

ऐसा ही एक प्रयोग-परीक्षण "हारवर्ड इंस्टीट्यूट फॉर साइकिक एंड कल्चरल रिसर्च" की ओर से डॉ. थेरेस ब्रोसे नामक एक फ्रांसीसी शरीर विज्ञानी के संरक्षण में आयोजित किया गया। इसके लिए वे अपने मित्र डॉ. माइलोवेनोविच के साथ योग की विलक्षणताओ की शोध करने के लिए भारत आए। अपने प्रयोगो के दौरान उनने अपने सन्देहो के निवारणार्थ कई प्रकार की जाँच-पड़ताल के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले, उसमे दिल की धड़कन बिल्कुल बन्द कर लेने का दावा भी उनने सही पाया। ऐसे योगी तो काफी संख्या मे मिले जो सामान्यतया ७२ बार प्रति मिनट की धड़कन को ३० तक घटा लेते है। ३ दिन से २८ दिन तक बिना साँस लिए, बिना अन्न-जल ग्रहण किए, बिना मल-मूत्र विसर्जन किए समाधिस्थ रहने वाले योगियो मे से अधिकांश के दावे सही पाए गए। उनके संज्ञाशून्य होने की बात उनका हाथ बर्फ मे दबाए रहने और आग का स्पर्श कराने पर भी परीक्षाएँ खरी उतरीं। एक योगी संकल्प-बल से जिस भी अंग से कहा जाता उसी से पसीना निकाल सकते थे। इससे उनने पूर्वार्त्त अध्यात्म के मर्म को समझा व पाश्चात्य जगत मे भारत के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया। यही नही, एक बार लन्दन में एक भारतीय योगी ने सन् १९२८ मे ऐसा ही सार्वजनिक प्रदर्शन किया था। उसने नाड़ी की गति को न्यूनतम २० और अधिकतम १२० करके डॉक्टरो को आश्चर्यचकित कर दिया। वह अपनी माँस-पेशियो और त्वचा को इतनी कड़ी कर लेता था कि सामान्य हथियारो का उस पर कोई प्रभाव नही पड़ता था।

साम्राज्ञी मेरी लुईस के बारे मे कहा जाता है कि वे अपनी इच्छानुसार अपने कानों को बिना हाथ से छुए किसी भी दिशा मे मोड़ सकती थी और आगे-पीछे हिला सकती थीं। इसी प्रकार एक फ्रांसीसी अभिनेता इस बात के लिए प्रसिद्ध था कि वह अपनी इच्छानुसार अपने बालो को नचा सकता था। बालो को गिराने-उठाने, इधर-उधर घुमाने व घुँघराले बनाने की क्रिया मे उसे महारत हासिल थी। अक्सर वह अपनी इस अद्भुत क्षमता

का प्रदर्शन करके धन कमाया करता था। एक बाल को घुँघराला और ठीक उसके बगल के दूसरे बाल को चपटा कर देना, उसके लिए सामान्य बात थी। विभिन्न प्रकार के परीक्षण कर डॉ. आगस्ट क्रैवेनीज ने बताया कि उसने सिर की त्वचा को माँस-पेशियो तथा तन्तुओ को अपनी इच्छाशक्ति के आधार पर असाधारण रूप से विकसित और संवेदनशील कर लिया है।

इस प्रकार के अगणित प्रयोग आये दिन देखने को मिलते ही रहते है। यह तो स्थूल अंगो के नियमन, नियन्त्रण सम्बन्धी सामान्य प्रयोग मात्र हैं। आम मान्यता मनुष्य को यही तक सीमित स्वीकारती है वह इसे हाड़-माँस का बना काय-कलेवर भर मानती है, पर वस्तुत ऐसी बात नही है। जो दृश्यमान है उसके अतिरिक्त भी उसमे बहुत कुछ छिपा पड़ा है। वह चेतना का विशाल भाण्डागार है। यदि उस चेतना को सुनियोजित-नियन्त्रित कर किसी दिशा विशेष मे लगाया जा सके, तो व्यक्ति पहले से भी असामान्य और विलक्षण करतब दिखा सकता है। भगवान ने यह ऊर्जा भण्डार इसी हेतु हमे प्रदान किया है कि हम उसका सदुपयोग कर लाभान्वित हो सके।

संकल्प के अभाव में शक्ति निरर्थक है

संकल्प को सफलता की जननी कहा गया है। यह इच्छाशक्ति का ही सघन रूप है। इच्छा-आकांक्षा ही घनीभूत होकर व्यक्ति को कर्ममार्ग पर अग्रसर करती है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। किसी भाप से चलने वाली रेलगाड़ी को पटरी पर दौड़ाने के लिए भाप आवश्यक है। यद्यपि उसके साथ चालक की इच्छा-आकांक्षा और नियन्त्रण दक्षता भी आवश्यक है। चालक की कुशलता और दक्षता को इच्छाशक्ति का प्रतिरूप कहे तो अकेले रेलगाड़ी और चालक का होना ही पर्याप्त नही है। उसके लिए वाष्प से उत्पन्न की गई शक्ति जिसके कारण कि रेल के पहियो मे गति आती है, का होना भी अति आवश्यक है।

यह सच है कि सकल्प के अभाव मे शक्ति का कोई महत्व और मूल्य नही है, उसी प्रकार यह भी सच है कि शक्ति के अभाव मे सकल्प भी पूरे नही होते। केवल संकल्प करते रहने वाला निरुद्यमी व्यक्ति उस आलसी व्यक्ति की तरह कहा जायेगा जो अपने पास गिरे हुए आम को उठाकर मुँह मे भी रखने की कोशिश नहीं करता और इच्छा मात्र से आम का स्वाद ले लेने की आकाक्षा करता है।

सकल्प के साथ शक्ति को सयुक्त करना एक कला है और इसमें बहुत थोड़े लोग ही पारगत हो पाते है। इसका कारण है—परिश्रम और प्रयोगो के प्रति निरपेक्ष बने रहना। बहुत से लोग मानस शास्त्र के सिद्धान्त पढ़-पढ़कर यह विश्वास करने लगते है कि हम जो कुछ भी चाहते है वह हार्दिक आकांक्षा होने पर हमे स्वतः ही प्राप्त हो जायेगा, जबकि सचाई यह है कि केवल वे ही इच्छाएँ पूरी होती है, जिनके साथ सशक्त प्रयास भी जुड़े हो। यहाँ शक्ति का अर्थ उद्देश्य के प्रति दृढ निष्ठा, उसे पूरा करने के लिए आवश्यक प्रयास, मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो और बाधाओ से संघर्ष का मनोबल और साहस है। इनके बिना संकल्प कभी भी शक्ति नही बन पाते। उनके अनुसार मन के लड्डू भले ही फोड़े जाते रहे।

शक्ति—जो सकल्प को परिणामदायक बनाती है उसे अर्जित करना एक साधना है। अपनी आकांक्षाओ को पूरा करने के लिए आवश्यक उत्साह ही उस साधना का नाप है। कभी न ठण्डा पड़ने वाला उत्साह ही हमे लक्ष्य तक पहुँचाता है। पानी को भाप बनाने के लिए २१२ डिग्री फारनेहाइट तक गर्म करना आवश्यक है। इससे पहले पानी कभी वाष्पीभूत नही होता। २०० डिग्री तक गर्म किया जायेगा। २११.९ डिग्री तक पानी भाप नहीं बनेगा। उसका एक निर्धारित क्वथनांक है और उस क्वथनाक पर पहुँचकर ही पानी भाप बनता है। उसी प्रकार उत्साह का भी एक उच्चतम आवश्यक स्तर है और उस स्तर तक पहुँचने के पूर्व असफल होने की ही सम्भावना रहती है, सफल होने की नही।

उत्साह मे, उस स्तर की अभिवृद्धि के लिए क्या किया जाना चाहिए ? और इस स्तर की अभिवृद्धि का क्या मापदण्ड है ? लक्ष्य के प्रति ईमानदारी, भविष्य के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण और मार्ग मे आने वाली सभी कठिनाइयो से जूझने का साहस। संक्षेप मे उद्यम, आशा और साहस—ये तीन ही वे प्राथमिक कसौटियाँ है, जिनके आधार पर अपने उत्साह को परखा जा सकता है और संकल्प के साथ शक्ति को संयुक्त किया जा सकता है।

निष्कर्षत. सफलता की प्राप्ति के लिए दृढ संकल्प के साथ उद्यम, आशा और साहस का होना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है। अन्यथा खयाली पुलाव के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त नही होगा।

चमत्कारों की जननी—संकल्प शक्ति

फ्रांस के सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता पियरी मिसी मे जहाँ अभिनय सम्बन्धी अनेक विशेषताएँ थी, वहाँ उसमे कई अभूतपूर्व चमत्कारिक विशेषताएँ भी थी। वह अपनी इच्छानुसार ही शरीर के किसी भी हिस्से का कोई भी बाल हिला सकता था। बाल की नोक को खड़ा कर सकता था, उन्हे पानी और आँधी के कारण गिरी हुई फसल की तरह लिटा सकता था। इतना ही नहीं, कोमल सपाट बालो को वह जब चाहे अपनी इच्छाशक्ति द्वारा ही घुँघराले बना सकता था।

उसकी इन विशेषताओं ने अनेक विद्वान, विचारको, वैज्ञानिकों को कौतूहल मे डाला और सोचने को विवश किया, ऐसी कौन-सी शक्ति है जो इस तरह की नियन्त्रण मे न आ सकने वाली शक्ति को भी नियन्त्रित कर सकती है ? अनेक लोगो ने परीक्षण किये पर कोई निष्कर्ष नही निकल पाया। इसी बीच डॉ. आगस्ट कैबेनीज को पियरी मिसी की इन विशेषताओ का पता चला तो उन्होने भी जाकर परीक्षण किये। उन्होने अपने जीवन-सस्मरण मे उक्त घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—इस तरह की विशेषता का कारण मिसी की कोई शारीरिक विलक्षणता नहीं अपितु उसका मानसिक सकल्प मात्र है। उसने अपनी सुदृढ इच्छाशक्ति द्वारा बाल की पेशियो को इतना असाधारण रूप से विकसित कर लिया है कि उनसे कोई भी मनमाना काम ले सकता है। यह घटना इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति द्वारा संकल्प द्वारा इससे भी अद्भुत कार्य कर सकता है, उदाहरण के लिए सूक्ष्म दृश्य संस्थानो को विकसित कर दूरदर्शन, कर्णेन्द्रिय को विकसित कर दूरश्रवण, घ्राणेन्द्रिय को विकसित कर इच्छानुसार घ्राण का सुख ले सकता है।

उपनिषद्कार मन की अपार शक्ति से परिचित थे तभी उन्होने लिखा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

—शिव संकल्पोपनिषद्।१।

अर्थात्—जो मन जागता हुआ तथा सोता हुआ भी बहुत दूर तक जाया करता है तथा जो सभी इन्द्रियो मे इस प्रकार चमकता है जैसे आकाश मे स्थित तारों के मध्य चन्द्र। हमारा वह मन, हे परमेश्वर ! शुभ संकल्प वाला हो।

ऊपर दिये गये उदाहरण की तरह ही मन की सुदृढ इच्छाशक्ति-संकल्प शक्ति का दूसरा प्रमाण थी—अब्बेविले (फ्रास) की एक १२ वर्षीय लड़की एन्नेट फ्रेलान। इस अद्भुत लड़की ने भारतीय योगियो जैसी अद्भुत पराशक्ति प्राप्त की थी। उसने अधिकांश मौन रहने का नियम बनाया था, कभी बोलती भी तो अत्यन्त सारगर्भित, सक्षिप्त और आवश्यकता से अधिक नही। वह कहा करती थी कि मनुष्य के बोलने का जितना प्रभाव होता है, उससे अधिक प्रभाव उसके गहरे विचारो का होता है। वह इस कथ्य को प्रत्यक्ष प्रमाणित भी करती थी।

कभी कोई व्यक्ति प्रश्न पूछता तो वह एकाग्रचित्त हो जाती, फिर जो पूछा जाता उसका उत्तर उभरे लाल बड़े-बड़े अक्षरो मे उसकी बाहो मे तथा कन्धो मे लिख जाता। इच्छाशक्ति से उत्पन्न यह लेखन कुछ देर दृष्टव्य रहके धीरे-धीरे बिना कोई छाप छोड़े ही गायब हो जाते।

मानसिक संकल्प की ऐसी अद्भुत क्षमताओ का ज्ञान था, तभी सृष्टिकार ने लिखा है—**"मनोह्यात्मा मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति"**

—छान्दोग्य।

अर्थात्—यह मन ही आत्मा है, मन ही लोक और मन ही ब्रह्म है। इसलिये तुम मन की ही उपासना करो।

संकल्प-शक्ति के साक्षी पिरामिड

साधनो की स्वल्पता, परिस्थितियो की प्रतिकूलता तथा प्रवीणता की न्यूनता रहते हुए भी प्रचण्ड सकल्प शक्ति और अदम्य साहसिकता के बल पर मनुष्य क्या कर सकता है ? इसके जीते-जागते प्रमाण मिस्र के महान पिरामिड है, जिनकी विशालता देखने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

यह आश्चर्य तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब उस क्षेत्र मे वे साधन कही भी दीख नही पड़ते जिनके माध्यम से इस निर्माण कार्य को सम्पन्न किया गया है। इतना ही नहीं, यह भी देखने की बात है कि उस जमाने की आवश्यकता, वास्तुकला तथा यान्त्रिक साधनो का प्रचलन न होने पर भी यह सब किस प्रकार बन पड़ा होगा।

विश्व का सर्वोत्तम आश्चर्य मिस्र के पिरामिड, मानव कौशल के कीर्ति स्तम्भ है। मिस्र के निवासी इस चेओप्स के गुम्बज को "खूफू का हौरीजन" के नाम से पुकारते है। वर्तमान मे इसी को महान पिरामिड के नाम से जाना जाता है। गत पचास शताब्दियों मे—लगभग २७०० ई. पू. चेओप्स ने पूर्ण कीर्ति-स्तम्भ के निर्माण की योजना बनाई।

इस दीर्घकाय गुम्बज के निर्माण हेतु केरियो के कोलाहलपूर्ण शहर मे ५ मील दक्षिण पूर्व गीजा के पठार पर सहस्रो राजगीर, पत्थर खोदने वाले एवं असंख्यो श्रमिको ने ३० साल तक घोर श्रम किया।

इसमें संलग्न पत्थरो मे से कितनो का ही वजन ढाई से पन्द्रह टन तक है। महान पिरामिडो मे २५ लाख अवरोध हैं। फिर भी मनुष्य ने इसके पत्थरो को काटा और निर्माण कार्य हेतु आगे बढ़ते गये। लीवर, रौलर एवं रेथे के सिवाय उनको कोई अतिरिक्त मदद नही प्राप्त हुई। उन शिल्पकारो के पास कोई मापक यन्त्र नही थे। फिर भी पिरामिडो के कोने अपने मे पूर्ण है, सीधे कोणो की दिशाओ मे बने हुए है। आश्चर्यजनक यथार्थ के साथ परिधि के चार चिन्ह (कुतुबनुमा) निर्मित है। दो अन्य पिरामिड चेओप्स के उत्तराधिकारियो के गीजा समूह मे हैं तथा ८० पिरामिड नील नदी के पश्चिमी किनारे तक फैले हुए है।

आधुनिक अनेक खण्डो की ऊँची इमारतों के निर्माण के समान पिरामिडो की संरचना में बड़ी संगठित समरूपता परिलक्षित होती है। नदी की ओर से पत्थर के

एक विशाल रास्ते का निर्माण हुआ, जो पठार के किनारे से आधा मील झुका हुआ है। इसके पृथक् निर्माण में पूरे १० वर्ष लग गये। श्रमिको के एक समूह द्वारा इसी ढाल की सहायता से विशालकाय प्रतिमाओ को बिना पहिये की गाड़ी मे रखकर नाव के द्वारा नील नदी पर लाया गया। पत्थरो की एक लम्बी एवं मुश्क बैत की असामान्य मोटाई की रस्सी के द्वारा सुरक्षित रखा गया।

समाधि स्थल एवं चित्रशाला के अन्तः भाग को रेखाएँ तथा अस्वान की चट्टाने मिस्र मे नील नदी के प्रथम झरने पर निर्मित की गयी थीं। इन्हे माल ढोने वाली नावों की मदद से ६०० मील की दूरी तक पहुँचाया गया। कलाकारो ने उसकी चमक के लिए मूसल आदि का भी उपयोग किया होगा ऐसा प्रतीत होता है।

प्रवीण चित्रकार, कलाकार, मूर्तिकार, राजगीर एवं चित्रकला सम्बन्धी व्यक्ति जीवन-पर्यन्त रहे। लेकिन अकुशल श्रमिको ने वर्ष में केवल तीन माह ही कार्य किया। जब पतझड़ ऋतु मे नील नदी बाढ़ग्रस्त होती तभी यह एक लाख से करीब कृषक श्रमिक अपनी फसलो के बोने के पश्चात् कार्य का इन्तजार करते थे।

पिरामिड के हृदय मे १४० फीट ऊँचा रेगिस्तान है। चोटी के नीचे राजा का कक्ष बना हुआ है। एक तहखाने मे ३४ फीट लम्बी, १७ फीट चौड़ी और १९ फीट ऊँची स्वच्छ चमकदार पत्थर रेखाएँ खिंची हुई है। हजारो टन राजगीरी सहायता, ऊपर उपस्थित होते हुए भी इनमे उत्पीड़क एवं व्याकुल कर देने वाली चीखो का आभास होता है। कमरे के आखिरी तल पर पत्थर की कब्र बनी है, जो चेओप्स के स्वय का विश्रामगृह माना जाता है।

इस निर्माण मे सबसे बड़े आश्चर्य की बात वे अविज्ञात ध्वनियाँ है जो पिरामिडो मे थोड़ा भीतर प्रवेश करते ही सुनाई देने लगती है। खोजने पर कहीं से वे सूत्र नही मिलते जो बता सके कि यह विचित्र आवाजे आखिर आती कहाँ से है।

कभी-कभी वहाँ शहद की मक्खियो के उड़ने की तरह जोर-जोर की भिनभिनाहट होती है। कई बार वे टिड्डी दल के उड़ने जैसी प्रतीत होती है। कई बार वहाँ ऐसा लगता है मानो पत्थर की चट्टानो को किसी बड़े जोर से चीरा जा रहा हो। कभी हाँफने, कभी कराहने, कभी चिल्लाने और कभी गीत गाने जैसी स्वर लहरियाँ वहाँ गूँजती हुई प्रतीत होती है कि कदाचित् निर्माण कार्य अभी भी चल रहा है और श्रमिक तरह-तरह से कोलाहल कर रहे है। मसाला पीसने, टाँकी से पत्थर तोड़ने तथा छोटे हथौड़े और बड़े घन चलाने की आवाजे भी सुनाई पड़ती है।

इस प्रकार के ध्वनि प्रवाह सम्भवतः उसी समय के है जब यह निर्माण कार्य चलता रहा होगा। इमारतों की रहस्यमयी संरचना ने उस समय की आवाज को सोख लिया होगा और ये ग्रामोफोन रिकार्डों की तरह समय-समय पर अपनी प्रतिध्वनि प्रकट करते होगे।

पिरामिडो को बने हजारों वर्ष बीतने को आते है, पर उनके पीछे छिपी अदम्य संकल्प-शक्ति का चमत्कार अभी भी अपनी कहानी आप कहते देखा जा सकता है।

मनस्विता की प्रचण्ड शक्ति

पार्सल का पैकिट ही दृष्टिगोचर होता है। इसके भीतर क्या है ? यह पता लगाने के लिए उसके भीतर के भाग को खोलना और देखना होता है। शरीर एक प्रकार से पार्सल का पैकिंग है। उसकी चमड़ी के रंग और नख-शिख की बनावट मात्र का परिचय बाहरी देखभाल से मिल सकता है। इसके भीतर क्या है ? इसका पता ऊपरी देखभाल से नहीं लग सकता। हो सकता है उसके भीतर बहुमूल्य रत्न बन्द हो और यह भी हो सकता है कि चमकीले लिफाफे के भीतर किसी मसखरे ने उसमे ऐसे ही कुछ कूड़ा-कबाड़ भर दिया हो।

मनुष्य का वास्तविक मूल्यांकन उसके मन-मस्तिष्क की जाँच-पड़ताल कर लेने मे होता है। हो सकता है कि कोई विषकन्या नख-शिख से सुसज्जित होकर प्राण-हरण के लिए बैठी हो। यह भी हो सकता है कि अष्टावक्र जैसे किसी अपंग के कलेवर मे ज्ञान का भण्डार भरा पड़ा हो। चाणक्य काले कुरूप थे तो भी उनकी मेधा शक्ति ने छिन्न-भिन्न भारत को चक्रवर्ती विशाल भारत में बदल दिया था। कीमत अन्तराल की होती है। बाहरी कलेवर तो दिखावा मात्र होता है, कई बार तो छलावा भी।

चेतन की कई परते है। उनमे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का प्रमुख रूप से प्राधान्य होता है। मनोविज्ञान की भाषा मे इनका विवेचन चेतन, अचेतन, अवचेतन, सुपरचेतन आदि के रूप मे किया जाता है। वस्तुतः यही वह खजाना है जिसमे एक से एक बहुमूल्य रत्नो का भण्डार भरा-पूरा रहता है। उसमे देवत्व के दर्शन होते है। पर कभी-कभी ऐसा भी होता देखा गया कि इस देव सिंहासन पर कोई दुर्दान्त दस्यु अपना कुचक्र डाले और इस प्रकार अपनी शक्ति का प्रदर्शन करे मानो विनाश के देवता के रूप मे उसका अवतार हुआ हो। रावण, कुंभकरण, दुर्योधन, जरासध, वृत्रासुर, महिषासुर, भस्मासुर आदि के रूप मे ऐसो की ही रोमांचकारी चर्चा होती रहती है। यह विकृति का विवेचन है। वस्तुतः अन्तराल देवलोक है। स्वर्ग-मुक्ति से लेकर ऋद्धि-सिद्धियो के खजाने इसी मे भरे रहते है। आत्मा के रूप मे परमात्मा का निवास भी इसी मानस-मन्दिर मे निरन्तर विराजमान रहता है। ऋषि, मनीषी, तपस्वी, सन्त, सुधारक, शहीद जैसे महामानव इसी क्षेत्र की उत्पत्ति हैं।

मोटे शब्दों मे इस चेतना केन्द्र को मनस या मानस कहते है। यही वह निकटतम लोक है जिसमें स्वर्ग

और नरक थोड़े से फासले पर ही विद्यमान रहते है। यह सत्ता जब तक शरीर मे विद्यमान है, तभी तक वह जीवित है, अन्यथा प्राण के निकलते ही अच्छा-खासा शरीर कुछ ही क्षणो मे सड़-गलकर अपनी सत्ता समेटने की तैयारी कर लेता है।

काम करता तो शरीर दिखाई पड़ता है पर वस्तुतः वह जड़ होने के कारण निष्क्रिय होता है। साइकिल को सवार की इच्छानुसार अपनी गति और दिशा निर्धारित करनी पड़ती है। उसी प्रकार दृश्यमान कायिक हलचले मन के सकेतो का अनुसरण करती है। दोषारोपण या गुणगान शरीर के रूप मे गाये जाने वाले का होता है पर वास्तविकता दूसरी है। कठपुतली की समस्त हरकते परदे के पीछे छिपे बैठे बाजीगर की होती है। उसी प्रकार मन का सूत्र संचालक दृश्यमान अनेको बुरी-भली हरकते करता रहता है।

यह व्यक्ति का मन ही है, जिसमे विचारो का उद्‌गम उमड़ता रहता है और वह ऐसा विचित्र रूप धारण करता है कि आश्चर्य से चकित रह जाना पड़ता है। इसकी विचित्रताएँ देखते ही बनती है। यदि पतन की दिशा मे मुड़ चले तो उसकी स्थिति पशु, पामर और पिशाच से भी बदतर हो जाती है। यदि वह ऊँची उठ चले तो इसी हाड़-माँस के पुतले की ऐसी उच्चस्तरीय स्थिति बन जाती है कि उस पर देव समुदाय को भी निछावर किया जा सके। विचार-संस्थान काम न दे तो व्यक्ति मूर्ख, सनकी, विक्षिप्त, बेतुका, गया-गुजरा जैसा बनकर रह जाता है, भले ही उसके अंग-अवयव अपनी जगह पर सही और सुशोभित ही क्यो न हो।

मस्तिष्क सही रहने पर कितने ही विद्वानो ने रोगशैय्या पर पड़े-पड़े असाध्य कष्ट सहते-सहते महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की संरचना की है। उनके नेतृत्व मे जितने महत्त्वपूर्ण काम चलते रहे है, उन्हे कितने ही विद्वान एक साथ मिलकर नही चला सकते थे। संसार मे ऐसे अगणित प्रतिभा के धनी हुए है, जिनने घोर अभावो के बीच किसी प्रकार दिन गुजारते हुए भी प्रगतिपथ पर अनवरत गति से कदम बढ़ाये और ऐसे काम कर दिखाये, जो सुसम्पन्नो की कल्पना मे भी नही आ सकते थे। प्रगति और अवगति की दोनो दिशाएँ मानसिक स्तर की उत्कृष्टता पर निर्भर रहती है।

रेल की पटरियो के मोड़ इंजन और डिब्बो को किसी भी दिशा मे घसीट ले जाते है। इंजन तो मात्र दौड़ता भर है, डिब्बे तो मात्र अनुगमन भर करते है वस्तुतः दिशा निर्धारण उस माध्यम से होता है जहाँ से कि पटरियो को जोड़ने और खोलने का उपक्रम सम्पन्न किया जाता है। इसी अन्तर के कारण एक रेल पूर्व को तो दूसरी दक्षिण को चल पड़ती है और उन दोनो के बीच कुछ ही समय मे असाधारण दूरी का अन्तर बन जाता है। पहाड़ की चोटी पर होने वाली वर्षा का पानी, जिस ओर को ढलानो पर बह चलता है, उसकी धारा भी उसी दिशा वाले समुद्र मे जा मिलती है। आरम्भ एक जगह से होने पर उसका अन्त उस प्रकार का होता है, जिसे असाधारण ही कहा जा सकता है। यह मार्ग-परिवर्तन कहाँ से होता है ? इसका उत्तर एक ही हो सकता है—मन के रुझान से।

समझा यह जाता है कि वातावरण से, संगति से, शिक्षा से मनुष्य का मन बदल जाता है और वह सुसंस्कृत बनने की ओर अग्रसर होने लगता है। पर यह बात आंशिक रूप से तभी सच निकलती है, जब मन ढीला-पोला हो और गीली मिट्टी की तरह किसी भी ढाँचे मे ढलते समय आना-कानी न करे। पर जब निजी उत्कण्ठा प्रबल होती है तो वह सारे आवरणो को तोड़-मरोड़कर रख देती है और वही करा लेती है, जिसके लिए प्रबल उत्कण्ठा जड़ जमाये बैठी होती है। रावण पुलस्त्य ऋषि का नाती था। उसकी वंश-परम्परा मे सभी सज्जन होते आये थे। पर रावण की अपनी इच्छाशक्ति इतनी प्रबल निकली कि उसने वंश-परम्परा की, वातावरण की, शिक्षा-दीक्षा की कुछ भी परवाह न की और उस दिशा में चल पड़ा जिसके सम्बन्ध में कोई आशा-अपेक्षा नही की जा सकती थी। यहाँ मनोबल की प्रबलता सर्वोपरि सिद्ध होती है। इसके विपरीत कितने ही ऐसे व्यक्ति भी हुए है जिनके न पूर्वजो का कोई इतिहास था और न वे स्वयं किसी समुन्नत वातावरण मे पले, फिर भी मन की एक उमंग ने उन्हे कुछ से कुछ बना दिया। आम्बपालि,, अंगुलिमाल की जिन्दगी हेय स्तर की बीती जब उनने करवट बदली तो कायाकल्प जैसा परिवर्तन उपस्थित हो गया। वे सन्त ही नही बने, वरन् ऐसी स्थिति मे पहुँच गये जहाँ से वे अनेको को सन्मार्ग की ओर घसीटकर ले जाने मे सफल होते रहे। कबीर, रैदास आदि की परिस्थितियाँ ऐसी नही थी, जिसके कारण उन्हे उच्चकोटि के सन्त और समाज-सुधारक बनने का अवसर मिलता। उनकी निजी मानसिक प्रचण्डता अपने आप मे एक ऐसी शक्ति है जो अपने अनुकूल वातावरण बना लेती और सहयोग जुटा लेती है तथा प्रतिकूलताओं से जूझकर उन्हे अनुकूलता मे बदल लेती है।

विभूतियों की गंगोत्री : संकल्प शक्ति

मनुष्य की सामर्थ्य एवं उपलब्धियाँ अन्यान्य भौतिक साधनो की तुलना मे अधिक मूल्यवान है। अध्यात्मवादियो से लेकर आधुनिक मनोविज्ञानियों तक सभी ने माना है कि मनुष्य के संकल्प, इच्छा एवं आकांक्षा शक्ति के जीवन्त स्रोत हैं तथा बाह्य भौतिक साधनो की तुलना मे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुरूप ही व्यक्ति का स्तर बनता है। इच्छाशक्ति यदि सकल्प का रूप धारण कर ले तो मनुष्य ऐसे अनेको चमत्कृत करने वाले परिणाम प्रस्तुत

कर सकता है, जिस पर सहसा लोगों को विश्वास करना कठिन पड़ सकता है। किसी व्यक्ति का स्वस्थ होना, किसी का जीवनभर रोगी बने रहना, किसी का प्रखर बुद्धि वाला होना, किसी का मन्दबुद्धि होना, किसी का सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच जाना और दूसरे का जीवनभर परमुखापेक्षी बने रहना, उस संकल्प बल की क्षीण या प्रबल इच्छाशक्ति के प्रतिफल है, जो मनुष्य को कुछ से कुछ बना देती है।

प्रख्यात जर्मन दार्शनिक आर्थर शोपेनहावर ने अपनी कृति "द वर्ल्ड ऐज विल एण्ड आइडिया" में कहा है कि इच्छाशक्ति वह सार्वभौम एवं सृजनात्मक शक्ति है जो सृष्टि के कण-कण मे विद्यमान सृष्टा का सक्रिय पक्ष है। समस्त क्रियाओ का मूल यही है। सत्रहवी शताब्दी के प्रसिद्ध योरोपीय अध्यात्मवेत्ता जोसेफ ग्लानविक कहा करते थे कि सृष्टि के समस्त क्रिया व्यापार मे ईश्वरीय संकल्प शक्ति के ही दर्शन होते है। उनके अनुसार इच्छाशक्ति की चमत्कारी सामर्थ्य को उसकी ओजस्विता-तेजस्विता को जानना और उसका अभिवर्धन कर सदुपयोग करना विरलो को ही आता है। संकल्प शक्ति की विस्तृत चर्चा करते हुए ब्रिटिश मनोविज्ञानी एवलिंग एफ. ने अपनी पुस्तक "डायरेक्टिंग मेण्टल एनर्जी" मे कहा है कि यह वह क्षमता है जो शरीर और मन की गतिविधियो का निर्धारण और नियमन करती है। साथ ही उस प्रेरक शक्ति को जन्म देती है जो मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापो का दिशा-निर्देशन करती है। संकल्प बल के आधार पर ही मनुष्य अपनी सामर्थ्य को कई गुना बढ़ा पाता है।

विश्व मे ऐसे अनेको उदाहरण विद्यमान है, जिनसे मनुष्य की प्रचण्ड इच्छाशक्ति, संकल्पशक्ति और उनके द्वारा विकसित अभ्यासो की उपलब्धियाँ प्रमाणित होती है। कितने ही लोग संकल्प शक्ति के आधार पर अपने अंगो को मनमाने ढंग से मोड़ने-मरोड़ने मे पारंगत होते है, तो कितने ही जड़-चेतन दोनो मे हलचल उत्पन्न करने और इच्छानुरूप उन्हे परिचालित करने मे समर्थ होते है।

पिछले दिनो क्यूबा मे रहने वाला "एवेलिनो पेरेज" नामक एक व्यक्ति व्यक्तियो और वैज्ञानिको के आकर्षण और शोध का बहुचर्चित विषय बन गया था। पेरेज की विशेषता यह थी कि वह इच्छानुसार अपनी एक आँख या एक साथ दोनो आँखो को पुतलियो से दो इन्च बाहर निकाल लेता था और उन्हे वापस बैठा लेता था। इससे उसकी देखने की शक्ति मे किसी भी तरह का दबाव नही पड़ता था। हुआ यह था कि बचपन से ही उसकी आँखे बड़ी कमजोर थी। उसने अपने ही आप आँखो को इधर-उधर घुमाकर व्यायाम प्रारम्भ किया और माँस-पेशियाँ जो आँखो के गोलो को चलाती है, को लचीला बनाने की क्षमता विकसित कर ली। इसी तरह इटली निवासी वेनदेतो सुनियो नामक एक नवयुवक अपनी आँखो से आग की लपटो का काम लेने के लिए ख्याति प्राप्त कर चुका है। संकल्पपूर्वक यह जहाँ भी दृष्टि जमाता है वही अग्नि की चिनगारियाँ प्रकट हो जाती है और वस्तुएँ जलने लगती है। उसकी इस विशेषता का पर्यवेक्षण कितनी ही प्रयोगशालाओं मे मूर्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा हो चुका है। वोल्वर हैम्पटन के समीपस्थ शहर मैजले का रहने वाला आर. फिलिप्स नामक एक व्यक्ति कान से धुआँ निकालने की कला का प्रदर्शन करने के लिए प्रसिद्ध है। है तो यह सब प्रकृति के विरुद्ध किन्तु ऐसा होता कैसे है ? व क्यों, यह विज्ञान की समझ से परे है। पिछले दिनों कितने ही पत्र-पत्रिकाओं ने उसकी इच्छाशक्ति के प्रदर्शन का सचित्र विवरण प्रकाशित किया था।

ग्रीस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लेखक डॉ. लायल वाटसन ने अपनी पुस्तक "सुपरनेचर" मे कहा है कि इच्छा शक्ति द्वारा मनुष्य जड़ पदार्थों में भी हलचल उत्पन्न कर सकता है। उनने नेल्या मिखाइलोवा नामक एक रूसी महिला का वर्णन किया है जो अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति के प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध थी। १९२७ मे जन्मी मिखाइलोवा १४ वर्ष की उम्र मे रूस की रेड आर्मी में भर्ती हो गई थी। उसमे सहसा असामान्य इच्छाशक्ति उस समय विकसित हो गई जब वह युद्ध के दिनो मे सैनिक रूप मे मोर्चे पर लड़ते हुए शत्रु के गोले से गंभीर रूप से आहत होकर अस्पताल मे आरोग्य लाभ कर रही थी। इसका विस्तृत वर्णन वैज्ञानिक लेखक द्वय एस. ओस्ट्रैण्डर एवं एल. स्नोडर ने अपनी कृति "साइकिक डिस्कवरीज बिहाइण्ड दी आयरन कर्टेन" मे किया है। उनके अनुसार नेल्या अस्पताल मे एक दिन काफी परेशान एवं असंतुलित थी और कमरे मे चहलकदमी कर रही थी तभी अचानक उसके मस्तिष्क मे अपने अंतस्थ शक्तिपुंज का एक चित्र कौंधा। इसके पश्चात् उसे पाने के लिए वह अपनी संकल्प शक्ति को प्रखर बनाने मे जुट गयी। इच्छा शक्ति की प्रबलता के कारण जहाँ उसकी शारीरिक, मानसिक स्थिति सुधरती गई, वही उसके चारो ओर अनेको परिवर्तन घटित होने लगे। जिस किसी वस्तु पर वह ध्यान एकाग्र करती, उसी मे हलचल उत्पन्न हो जाती।

नेल्या की प्रबल इच्छा शक्ति का परीक्षण वैज्ञा- स्तर पर भी किया गया। मास्को स्टेट यूनिवर्सिटी सुप्रसिद्ध जीव विज्ञानी एडवर्ड नौमोव ने इस परीक्षण-विश्लेषण करने के लिए नेल्या को अप प्रयोगशाला मे आमन्त्रित किया और एक मेज पर माचि की कई डिब्बियाँ बेतरतीब तरीके से बिखेर दी। नेल मिखाइलोवा ने उनके ऊपर चक्राकार हाथ घुमाया अ देखते ही देखते सभी माचिसे रेल के डिब्बों की त एक के पीछे दूसरी, दूसरे के पीछे तीसरी आदि क्रम चक्कर काटने लगी और फिर एक-एक करके मेज किनारे से नीचे फर्श पर गिरती गई। सन्देह निवारण लिए प्रयोग को दुहराया गया। इस बार इन्हे एक पारदर्

जाली से ढक दिया गया। नेल्या ने अपने संकल्प बल से माचिसो को दुबारा उसी क्रम से घुमाया और फर्श पर गिरा दिया। एक दूसरे प्रयोग मे वैज्ञानिक नौमोव ने एक जार मे ५ सिगरेट रखे और उनमे से एक निश्चित सिगरेट को अलग करने तथा उसे गोलाई मे घुमाने के लिए नेल्या को कहा। उसने ऐसा ही कर दिखाया।

"साइकिक पावर बिहाइण्ड आयरन कर्टेन" पुस्तक मे ही यह वर्णन भी है कि एक बार सोवियत लेखक बदिम मारीन के साथ भोजन करते समय नेल्या ने मेज पर थोड़ी दूर पड़े रोटी के टुकड़े पर अपना ध्यान एकाग्र किया तो वह टुकड़ा खिंचकर उसके पास आ गया। फिर उसने झुककर मुँह खोला तो वह टुकड़ा उछलकर उसके मुँह मे समा गया। दो सोवियत लेखको ने भी उसकी विलक्षण इच्छाशक्ति का परीक्षण किया था और इसका विस्तृत विवरण मास्को से प्रकाशित होने वाले प्रमुख समाचार-पत्र 'प्रावदा' के १७ मार्च, १९६८ के अंक मे "ह्वेन एपिल्स फाल" नामक शीर्षक से प्रकाशित किया था। उनके अनुसार नेल्या ने अपनी इच्छाशक्ति से टेबल पर रखी वस्तुओ को एक सिरे से दूसरे सिरे पर पहुँचा दिया था।

सम्मोहन शक्ति आदि के प्रयोगो की आशंका को निर्मूल करने के लिए उपरोक्त सभी परीक्षण बहुत सावधानीपूर्वक नियन्त्रित परिस्थितियो मे किये गये थे। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. बी. राइन ने अपनी पुस्तक "एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन" मे लिखा है कि लेनिनग्राड स्थित यूटोमस्की इन्स्टीट्यूट के विख्यात न्यूरोफिजियोलाजिस्ट डॉ. गेनेडी सर्जेव ने भी मिखाइलोवा को अपनी प्रयोगशाला मे जाँचा-परखा था। उनका ई. ई. जी., ई. एम. जी. एवं मैग्नेटोएनसेफेलोग्राम (एम. ई. जी.) लिया गया और पाया गया था कि उनका शरीर चारो ओर से चुम्बकीय क्षेत्र से घिरा था, उससे प्राण ऊर्जा की सशक्त किरणे निकल रही थी। सर्जेव के अनुसार मिखाइलोवा जहाँ अपनी दृष्टि केन्द्रित करती थी, वहाँ एक प्रकार के चुम्बकीय तरंगो का घेरा बन जाता था। इसी के माध्यम से वह उन वस्तुओ को आकर्षित या विकर्षित कर लेती थी। इस तथ्य की पुष्टि 'लेनिनग्राड इन्स्टीट्यूट ऑफ न्यूरोलॉजी' के वैज्ञानिको ने भी अपने विभिन्न परीक्षणो के आधार पर की थी कि नेल्या ने अपने सकल्प बल से अपने आपको एक जीता-जागता शक्तिशाली चुम्बक बना लिया था। उसकी मस्तिष्कीय तरंगें असमान्य रूप से ५० गुनी अधिक शक्तिशाली थी। यह तरगे सामने की अपेक्षा मस्तिष्क के पिछले भाग (पैराइटो ऑक्सीपीटल कार्टेक्स) से अधिक मात्रा मे निकलती थी।

इच्छाशक्ति सचमुच एक महान दैत्य है। अच्छे हो या बुरे परिणाम, सकल्प शक्ति को जुटाकर मनुष्य अतिमानव बन सकता है। विश्वविख्यात गुह्य विज्ञानी यूरीगेल अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। वे अपनी नेत्र दृष्टि से कठोर से कठोर मजबूत लौह शलाकाओ को मोड देते थे। पिछले कई वर्षों से वह इस तरह के आश्चर्यजनक करिश्मो का प्रदर्शन कर रहे है। विभिन्न वैज्ञानिको ने उनकी क्षमता को जाँचा-परखा और सही पाया है। यद्यपि कुछ वैज्ञानिको ने उनकी उपलब्धियो को विवादास्पद भी माना है। इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध पत्रिका 'सण्डेपीपुल' मे प्रकाशित घटना के अनुसार यूरीगेलर ने एक प्रदर्शन में एक बार इजराइल मे दौड़ते हुए घोड़े को रोक दिया था।

निश्चय ही मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त दिव्य अनुदानो मे इच्छाशक्ति का स्थान सर्वोपरि है। भौतिक एव आध्यात्मिक जीवन मे सफलताओ का मूल बीज दृढ इच्छाशक्ति को ही माना गया है। समस्त शक्तियो का उद्भव प्रबल संकल्प बल के द्वारा ही होता है। "द इमोशन्स एण्ड विल" नामक अपनी पुस्तक मे ब्रिटिश मनोविज्ञानी बेन अलेक्जेण्डर ने कहा है कि संकल्प बल की प्रचण्डता मानवी व्यक्तित्व को उच्च सोपानो पर पहुँचा देती है। उनके अनुसार मनुष्य मे अनेको कमजोरियाँ होती है, जिनसे पिण्ड छुड़ाने के लिए मनोबल को ऊँचा रखना एव इच्छाशक्ति को प्रखर बनाना पड़ता है। सफलता वही मिलती है, जहाँ इच्छाशक्ति की प्रचण्डता होती एव तदनुरूप प्रयास किये जाते है। प्रबल इच्छाशक्ति मस्तिष्क को अपने ढाँचे मे ढाल लेती है और उसी के अनुरूप शारीरिक मानसिक गतिविधियाँ परिचालित होने लगती है।

"ह्वाट मेक्स ए लाइफ सिग्नीफिकेण्ट" नामक पुस्तक मे सुप्रसिद्ध मनःशास्त्री **विलियम मोक्स** ने कहा है कि मनुष्य के भीतर अति-मानवी सामर्थ्य विद्यमान है, जिन्हे करतलगत कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है। इसका आरम्भिक क्रियात्मक चरण है, ढर्रे की गतिविधियो को उलटने तथा दूरदर्शितायुक्त महानता के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए अपने संकल्पो को परिपुष्ट तथा दृढ करना, इच्छाशक्ति को प्रखर बनाना। संकल्प की दृढता पशुवत् अभ्यस्त स्वभावो से छुटकारा पाने तथा आत्म-विजय प्राप्त करने का प्रमुख आधार है। इसका सम्पादन तथा अभिवर्धन निरन्तर के अभ्यास से सम्भव है। जो जितना अधिक संकल्पवान है, वह उतना ही अधिक समर्थ है। आकाक्षा-संकल्प, दृढता जब सत्प्रवृत्तियो का पक्षधर बन जाती है तो अतिमानवी सामर्थ्य हस्तगत करने का मार्ग क्रमशः प्रशस्त होने लगता है।

यह समझा जाना चाहिए कि संकल्प बल को बाजीगरी या कौतुक भरे स्वाँग में नियोजित करने से लोगो को आश्चर्य भले ही लगे, मनोरंजन भले ही होता हो, परन्तु आध्यात्मिक प्रगति का लक्ष्य नही सधता। जब अंतः शक्ति-सामर्थ्य को एक लक्ष्य पर नियोजित कर कुछ श्रेष्ठ कर पाने, कर दिखाने का सत्साहस किया जाता है तो ऋद्धि-सिद्धियाँ अपना सारा वैभव भण्डार उस पर बरसा देती हैं, उसे निहाल कर देती है। यही मानव का लक्ष्य भी होना चाहिए।

मानवी काया की दैत्योपम क्षमताएँ

भारतीय पुराणो मे भीम और दुर्योधन, कुम्भकरण और कंस, रावण और बाली, हनुमान और मेघनाद के सुदृढ शरीर और वज्र की काया के अनेको प्रसंग भरे पड़े है। किन्तु उन्हे पढ़कर ऐसा लगता है कि ये मात्र अतिशयोक्ति और कोरी गप्प है। हाथियो द्वारा रौंदा जाना, विष बुझे बाणो का असर न होना, क्या रहस्य था। इसके विषय मे कोई विज्ञान-सम्मत तर्क नही मिलता, किन्तु इसी शताब्दी के आरम्भ मे अमेरिका के एक व्यक्ति रिचर्ड ने यह सिद्ध कर दिया है व वैज्ञानिको को यह मानने पर विवश कर दिया है कि पहले ऐसी सुदृढ देह वाले बलशाली योद्धा अवश्य रहे होगे।

रिचर्ड नामक एक व्यक्ति ने अपनी काया की क्षमता को इतना विकसित कर लिया था कि बड़े से बड़े हथौड़े, भारी वजनी लकड़ी के लट्ठे, हाथी और तोप के गोले, उसका कुछ नही बिगाड़ पाते थे। न्यूयार्क टाइम्स के सुर्खी भरे समाचारो मे रिचर्ड के प्रदर्शन का विवरण प्रकाशित हुआ था। उसमे बताया गया कि ६४ वर्षीय रिचर्ड, जो अच्छा-खासा लम्बा-चौड़ा मजबूत था, का पन्द्रह फुट लम्बी और १ फीट मोटी लकड़ी पेट पर दे मारने पर भी कुछ नही बिगाड़ सकी। सेन फ्रासिस्को के ६ भारी भरकम पहलवान घूँसे मारते थक गये, किन्तु रिचर्ड ऐसे बैठा रहा, जैसे उसकी मालिश की जा रही हो अथवा सहलाया जा रहा हो। १९६४ मे १०० पौण्ड वजन तक के गोले को उठाने का उसे अभ्यास था। १९६६ मे उसने एक प्रदर्शन मे तोप के मुँहाने के सामने खड़े होकर १५० पौण्ड वजन का गोला दगवाया। रिचर्ड अविचलित खड़ा रहा और टेबिलटेनिस की गेद की तरह गोला टकराया और छिटककर अलग जा गिरा। इस प्रकार रिचर्ड को "इस्पात" का आदमी कहा जाने लगा। रिचर्ड को यह विद्या कहाँ से हाथ लगी ? इसके उत्तर मे उसने कहा कि वह बचपन मे सन् १९२४-२५ मे हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग और वाराणसी गया, जहाँ भारतीय योगियो ने उसे योग साधना बताई जिसके अभ्यास से यह चमत्कारी परिणाम वे सब देख सके है।

पोर्टलैण्ड (ओरगन) की ८ वर्षीय लड़की सड़क पर खेल रही थी, खेल मे वह इतनी मस्त थी कि उसे पता भी न चला कि उधर से सड़क पीटने वाला इन्जन दौड़ा आ रहा है। वह गिर पड़ी। ३ टन वजन का रोलर पहिया उसके पैरो पर से निकल गया। इन्जन आगे बढ़कर रुक गया। ड्राइवर यह देखकर भौचक्का रह गया कि वह लड़की उठकर खड़ी हो गई है और जिस लड़के के साथ खेल रही थी, उसे पकड़कर खिलखिलाकर हँस रही है, जैसे कुछ हुआ ही न हो।

शून्य डिग्री से. ग्रे. तापमान पर कोई व्यक्ति १० मिनट से अधिक नही ठहर सकता किन्तु मेजर डोनेल्ड एक घण्टे तक नंगे बदन, बर्फ के शिलाखण्डो पर लेटे रहे और बाद मे कपड़े पहनकर चलते बने।

शरीर मे इतना लचीलापन है कि वह किसी भी दबाव को सहन कर सकता है। किसी भी ढाँचे मे ढल सकता है। किसी भी प्रतिकूलता के लिए अभ्यस्त बनाया जा सकता है। गर्भाशय मूलतः बहुत छोटा होता है, पर परिपक्व भ्रूण को धारण करते समय वह अपने मूल आकार की तुलना मे पचास गुना बढ़ चुका होता है। पेट मे उतना ही स्थान है, जितने मे कि स्थापित अवयव अपनी-अपनी गतिविधियाँ चला सके और सिकुड़-बदुरकर यथाक्रम बैठे रह सके। किन्तु जब गर्भ बढ़ता है तो आँते आमाशय आदि कम स्थान मे गुजारा करते है और भ्रूण के लिए पर्याप्त जगह देकर भी अपनी गतिविधियो मे कमी नही आने देते। समूचे शरीर के सम्बन्ध मे यही बात लागू होती है। उसका कोई भी अवयव अभ्यास से अपनी सामान्य क्षमता से कई गुने पराक्रम को बिना किसी कठिनाई के देखा जा सकता है।

मैसूर क्षेत्र के दक्षिण कनारा जिले का निवासी चालीस वर्षीय वेनारी बेकट रामन कुछ समय पूर्व तक विचित्र प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था। उसने अपनी दाढ़ी मे मधुमक्खियो का छत्ता जमा रखा था। उसमे मक्खियाँ भली प्रकार जीवन-निर्वाह करती थी।

सरसर्जिग—अफ्रीका के हब्शियो मे अपने ओठ बढ़ाने की प्रथा है। इसके लिए वे लकड़ी की तश्तरियाँ बनाकर उनसे ओठो को बाँध-देते है। ओठ जितना बढ़ते जाते है, बड़ी तश्तरियाँ बाँध दी जाती है और इस प्रकार कई स्त्रियाँ तो अपने ओठ १४-१५ इन्च अर्थात् सवा फुट व्यास की ढक्कनदार तश्तरी की तरह बढ़ा लेती है।

साधारणतया आग अपने सम्पर्क मे आने वाले हर पदार्थ को गरम करती और जलाती है। किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि शरीर बड़े तापमान मे बिना जले अपनी स्थिति बनाये रह सके। इसी प्रकार जम जाने वाले शीत मे भी उसका अस्तित्व लम्बे समय तक बना रहे ऐसी अवरोधक शक्ति का विकास हो सकता है।

दक्षिण जापान के कई बौद्ध मन्दिरो मे ऐसे धर्मानुष्ठान होते है, जिनमे छः फुट लम्बी दहकती हुई कोयलो से सजाई हुई बेदी पर नगे पैरो चलकर उसे पार करना पड़ता है। पुरोहित आगे चलता है और अनुयायी पीछे। जो लोग इस रास्ते को हँसते हुए पार कर लेते है वे सच्चे जैन विश्वासी माने जाते है।

ऐसी अग्नि-परीक्षा मलेशिया के कई क्षेत्रो मे धर्मानुष्ठानो के रूप मे प्रचलित है। होली के अवसर पर भारत के कई स्थानो मे पुरोहित लोग जलती हुई ऊँची लपटो मे होकर नंगे पाँवो और नंगे शरीर पार निकलने का प्रदर्शन करते है।

बाली द्वीप मे एक धर्मानुष्ठान होता है—संघ यंग। इसमे पुरोहित धधकते अंगारो पर नंगे पैरो झूम-झूमकर नाचते हुए निकलते है। साथ मे उसी तरह, कुछ प्रशिक्षित बच्चो की मण्डली भी निकलती है।

२४ फरवरी १९७८ को उदयपुर (राजस्थान) मे भारतीय लोक कला मण्डल का समारोह था। उसमे एक हठयोगी ने जलती आग मे प्रवेश किया और घण्टो नृत्य करता रहा। पेट्रोल छिड़क-छिड़ककर कितनी ही बार आग भड़काई जाती रही योगी का नृत्य चलता ही रहा। इस प्रदर्शन से पूर्व योगी के शरीर पर किसी विशेष रासायनिक पदार्थ आदि न होने की आशंका का भली प्रकार निराकरण कर लिया गया था।

कभी-कभी ऐसे प्रदर्शन भी देखे गये है, जिससे मनुष्य को एक अच्छा-खासा दैत्य कहा जा सके। जादू के हाथ की सफाई—नजरबन्दी के खेलो की चर्चा को बाल-विनोद कहा जा सकता है किन्तु असख्य कुशल परीक्षको को जाँच की चुनौती देते हुए खुलेआम किये जाने वाले परीक्षण जहाँ हो चुके और दृश्य को किसी प्रकार की जालसाजी न होने की बात जब घोषित की गई तो उन्हे शरीर की विस्मयकारी विलक्षणता ही कहा जायेगा।

सन् १९६८ मे फूजी टेलीविजन कम्पनी जापान के डाइरेक्टर्स भारत आये। दिल्ली मे उन्हे पता चला कि भारत मे एक ऐसा व्यक्ति है जो काँच, लोहा, ताँबा, पिन, कंकड़, पत्थर चाहे जो कुछ खा सकता है तो भी उसकी शारीरिक क्रियाओ मे रत्ती भर भी फर्क नही पड़ता।' उन्होने उस व्यक्ति को दिल्ली बुलवाया। स्वागत मे जहाँ अन्य अतिथि स्वादयुक्त भोजन पाते है, चाय नाश्ता करते है, वहाँ इस बेचारे को कीलें, पिनें, टूटे प्लास्क और काँच के गिलास खाने को दिये गये। उसने वही बड़े प्रेम से खाये और जापानियो को दंग करके रख दिया। जापानी उन्हे साढ़े तीन माह के लिए जापान ले गये। उस पर तरह-तरह के प्रयोग किये, पर कोई रहस्य न जान सके। आखिर इस मनुष्य दैत्य के पेट मे क्या है ? जो वह मोटर-ठेले खा जाने तक की क्षमता रखता है।

क्वीवलैण्ड (यू. एस. ए.) के वैज्ञानिक जॉर्ज क्रौयल ने इस सम्बन्ध मे अपना एक शोध प्रबन्ध सन् १९३३ मे मैन फिश के मूर्धन्य चिकित्सक परिषद के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उसमे उनने कहा था कि आवश्यक नही कि आहार मात्र मुँह से ही ग्रहण किया और गले से उतारकर पाचन तन्त्र मे पचाया ही जाय। यह साँस द्वारा आकाश मे फैली हुई वायुभूत खाद्य सामग्री से भी उपलब्ध किया जा सकता है। जीवन धारण करने के लिए जिस प्रोटोप्लाज्मा की जरूरत है, उसे उपलब्ध करने के लिए शरीर मे अन्य भी ऐसे छिद्र या चुम्बक केन्द्र है, जो आहार की पूर्ति प्रचलित चबाने और पचाने की प्रक्रिया को पूर्ति अन्य उपायो से कर सके।

सन् १९७२ मे सम्वाददाता निकोलाई स्वितेको के अनुसार खार्कोव की श्रीमती ओल्गा ब्लिज नोवा की ९ वर्षीया पुत्री मे विलक्षण सामर्थ्य पाई गई। 'सोवियत विज्ञान एकादमी' के समक्ष उसके परीक्षण के प्रयोग किए गए। आँखो पर पट्टी बँधी हुई अवस्था मे उसने बिछी हुई शतरंज की काली एवं सफेद गोटो को अलग-अलग छाँटकर रख दिया। रंग-बिरंगे कागजो की कतरनो को रंगो के अनुसार बारी-बारी से छाँटकर अलग कर दिया। परिचित लोगो के फोटो भी पहचान लिए। साथ ही बच्चो की रंग-बिरंगी पुस्तकों को हाथ से छूकर पढ़कर भी सुनाया। इतना ही नही, ५ सेंटीमीटर दूर रखी चीजो को उसने उँगली के पोरवों की सहायता से पढ़ लिया। कुछ चीजो का सही परिचय तो उसने पैर की उँगलियो से छूकर ही बता दिया।

रूस के वैज्ञानिको का ध्यान तब से इस दिशा मे अधिक गया है और उन्होने उस सम्बन्ध मे लगातार शोध कार्य किया है। मनोविज्ञान शाखा के वरिष्ठ शोधकर्ता प्रो. कोन्स्टांटिन प्लातोनोव ने कहा है—'मानवीय चेतना विद्युत की व्यापकता को देखते हुए इस प्रकार की अनुभूति अप्रत्याशित नही है। नेत्रो में जो शक्ति काम कर रही है, वही अन्यत्र ज्ञान-तन्तुओ मे विद्यमान है, उसे विकसित करने पर मस्तिष्क को वैसी ही जानकारी मिल सकती है, जैसी आँखो से मिलती है।' प्रो. एलेक्जेंदर स्मिर्नोव ने कहा है—'यह कोई अलौकिक बात नही है, वरन् सामान्य विज्ञान-सम्मत सिद्धान्तो का ही एक दिलचस्प प्रतिपादन है। एक अंग की चेतना दूसरे अंगो मे भी काम कर सकती है।'

ऐसे पराक्रमी न केवल श्रम-शक्ति के क्षेत्र मे चमत्कार दिखाते है, वरन् उतना पुरुषार्थ उपलब्ध करने के लिए आहार भी बड़ी मात्रा मे खाते-पचाते देखे गये है। इसमे उनकी बलिष्ठता का पता चलता है। बड़ी मात्रा मे भोजन करना ही नही, उसे पचा लेना भी उदरदरी की भीतरी समर्थता है। वही जब बाहरी कामो मे आती है तो सिद्ध करती है कि न केवल खाने मे वरन् करने में भी उसका उतना ही बढ़ा-चढ़ा चमत्कार है। अधिक खाने-पचाने को भी यदि एक पुरुषार्थ माना जा सके तो ऐसे उदाहरण भी समय-समय पर दृष्टिगोचर होते रहे है हो सकते है।

ग्रीस का क्रोटोना कामिलो नामक पेटू अधिक खा जाने और पचा जाने के लिये प्रसिद्ध था। वह १५० पौण्ड माँस एक दिन मे खा जाता था। डेट्रायट निवासी एडिको नामक एक रेलवे मजदूर उसका भी ताऊ निकला। उसने ६० सुअरो के माँस से बनी हुई टिकियाँ एक दिन मे खाकर पचाई। इसके बाद भी उसने कुछ जामुन की कचौड़ियाँ खाकर और दिखाई। उसकी सामान्य खुराक इतनी थी, जितनी पाँच व्यक्तियो के सामान्य परिवार के लिये एक हफ्ते के लिये पर्याप्त होती। उसने शादी इसलिए नही की कि जो कमाता था, वह अपने पेट के

लिए ही कम पड़ता। घर वालो को क्या खिलाता। वेतन से एडिको का काम न चलता तो उसके मित्र सहायता करते थे ताकि वह भूखा न मरे।

दक्षिण अफ्रीका के केपेटाइन नगर मे एक प्रीतिभोज था। भोजन सामग्री तैयार थी। आगन्तुको को कौतुक सूझा। प्रसिद्ध पेटू मेलायन लकड़हारे को बुलाया गया और तय हुआ कि पहले उसे भोजन कराया जाय बाद मे जो बचे और मेहमान लोग बाँट खाये। मेलायन आया। उसे भरपेट खा लेने की छूट दी गई। सोलह आदमियो के लिए बनाई गई पूरी सामग्री उसने चट कर ली और तब उठा जब रसोईघर मे कुछ शेष नही बचा। अतिथियो को दुबारा बनी चाय पीकर भूखे ही वापस लौटाना पड़ा।

आहार प्रतिद्वन्द्वता मे उन दिनो फैगोन ने बाजी मारी। रोम के राजा आकेलियान ने इस सम्बन्ध मे एक प्रतियोगिता नियोजित की कि देखे कौन अधिक खा और पचा सकता है ? कितने ही प्रतिद्वन्द्वी सम्मिलित हुए, पर बाजी फैगोन ने ही जीती। जो शास्त्र का ही एक बड़ा अधिकारी था। उसने भरे दरबार मे एक पूरा सूअर—एक भेड़, १०० डबलरोटियाँ तथा एक पीपा शराब गले उतार ली। देखभाल रखे जाने पर पाया कि उसने उतना खाया ही नही वरन् पचा भी लिया।

शरीर का प्रचलित क्रम एक चिर अभ्यस्त ढर्रे के अनुसार चलता है। आदिम काल से लेकर उसमे अनेक प्रकार के हेर-फेर हुए है। फलत मनुष्य की प्रकृति और जीवनचर्या पद्धति मे भारी परिवर्तन होते रहे है। कभी कच्चे माँस पर एव सूखे बीजो पर गुजारा करने वाला मनुष्य अब इस परिपाटी का अभ्यस्त नही रहा, अब उसका पेट पकाये आहार का अभ्यस्त है। भविष्य मे यदि प्रवाह बदले तो यह अभ्यास किसी ऐसी पद्धति को भी अपना सकता है, जो इन दिनो असम्भव जैसी प्रतीत होती है।

शरीर की सभी प्रत्यक्ष गतिविधियाँ मन के इशारे पर चलती है। रक्ताभिसरण, श्वाँस-प्रश्वाँस, आकुचन-प्रकुचन, निमेष-उन्मेष आदि स्वसंचालित समझी जाने वाली गतिविधियाँ भी अचेतन मन की प्रेरणा पर निर्भर है। मन और शरीर का वर्तमान तालमेल एक परम्परा के अनुरूप चल रहा है। यह बदली भी जा सकती है। मन का अंकुश यदि अवयवो, जीवकोशो को दूसरे ढाँचे मे ढलने के लिए बाधित करे तो वे उस निर्देश को पालने से इन्कार नही कर सकते। शारीरगत परमाणुओं के सम्बन्ध मे वैज्ञानिको का कहना है कि निर्जीव पदार्थों मे पाये जाने वाले अणु परमाणुओ की तरह हठीले नही है, वरन् मन के निर्देशन पर चलने वाले लचीले स्वभाव के है। यदि कोई अपने शरीर को वर्तमान प्रचलन से भिन्न प्रकार की प्रक्रिया-ढालने के लिए दबाव डाले तो वह उस अनुशासन से सर्वथा इन्कार न करेगा। थोड़ी-सी ननुनय के बाद भी उसे स्वीकार कर लेगा।

जीव-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान रिची काल्डर ने इस तथ्य का प्रतिपादन इस तरह किया है—इलेक्ट्रॉन हमारा दास है, क्योकि वे मानवीय प्रतिक्रियाओं मे अधिक तेजी से चलते है, ये मानवीय नेत्र से भी अधिक देख सकते है, मानवीय स्पर्श से अधिक हर्ष अनुभव कर सकते है, मानवीय कान से अधिक तेज सुन सकते है, मस्तिष्क की अपेक्षा शीघ्र और ठीक गिनती कर सकते है। हमारे सामने दूर आस्वादन (टेलीगेस्टेशन), दूर श्रवण (टेलीआडीशन) दूर घ्राण ग्रहण (टेलीआल्फेक्शन) सुगन्धित पदार्थ जैसी सामर्थ्ये भी है। वह इन्ही दास इलेक्ट्रॉनो की लीला है। नियन्त्रण मोटरे (सर्वोमोटर) के द्वारा इलेक्ट्रॉन किसी रौलिंग मिल के हजारो टन इस्पात को पाव भर वजन की तरह उठा देता है, जबकि वह पदार्थगत मन है। इसके सहारे यदि मानव के जीवकोशो मे अवस्थित मन (चेतना कणो) की शक्ति का अनुमान लगाएँ तो वहाँ तक सम्भवतः हमारी बुद्धि न पहुँचे। इस तथ्य से कोई इन्कार नही कर सकता कि ऐसी कोई विधा हो सकती है, जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अपनी विशेष शक्ति का उपयोग कर अपने आप को अप्रचलित ढाँचे मे ढाल सके और अपने प्रभाव-क्षेत्र मे भारी उथल-पुथल उत्पन्न — सके।

ऐसे होते हैं—दैत्य

मनुष्य की जीवनी-शक्ति का पारावार नही। यदि वह शारीरिक दृढ़ता बढ़ाने मे ही अपने को लगा दे तो ऐसा दैत्य बन सकता है, जिसे देखकर लोग आश्चर्य से चकित रह जायँ।

बगाल प्रान्त के व्यूर गाँव मे जन्मी एक बालिका चार-पाँच आदमियो के बराबर भोजन करती थी। बड़ी होने पर शादी की गई तो ससुराल वालो ने बुरा-भला कहा, जिससे खिन्न होकर उसने बिना कुछ खाये रहने का निश्चय किया। यह नियम ७० वर्ष जीवित रहने तक सध गया। उसने १४ वर्ष की आयु से आहार त्याग दिया था। यह उसकी संकल्प शक्ति की बदौलत ही सम्भव हो सका।

वस्तुओ को तेजी से दूरी तक फेकने वालो मे मैक्लेन वर्ग जर्मनी का एडोल्फ प्रख्यात था। एक प्रदर्शन मे उसने चाँदी के सिक्के बीस फीट दूर खड़े होकर बेतूल के पेड़ मे खीचकर मारे। सिक्के इतनी गहराई तक जा घुसे कि उन्हे खोदकर निकालना पड़ा।

शून्य डिग्री से. ग्रे. तापमान पर कोई भी १० मिनट से अधिक नही ठहर पाता। किन्तु मेजर डोन मोल्ड एक घण्टे तक नगे बदन बर्फ की शिला पर लेटे रहे और फिर सहज रूप से कपड़े पहनकर चलते बने।

स्विटजरलैण्ड और लोशेन स्टैज के मध्य २३५ वर्ष तक सीमा विवाद चला और झंझट चलता रहा। अन्ततः एक बूढ़े सूझ-बूझ वाले लकड़हारे जौनकास्टवुड ने इस विवाद को सुलझाया। लकड़हारा बहुत बलिष्ठ व्यक्ति था; उसने कहा १०४० पौण्ड भारी इस पत्थर को पीठ पर लादकर जहाँ तक वह चला जायेगा, वहीं पर विभाजन रेखा मान ली जानी चाहिए, इस पर दोनो पक्ष सहमत हो गये। भारी चट्टान को लादकर बूढ़ा १ मील ४५०० फीट दूरी तक गया और आगे भार न वहन करने से थककर चूर होकर गिर पड़ा, जहाँ वह पत्थर गिरा, उसी स्थान को विभाजन चिन्ह माना गया।

बर्फीली पहाड़ियो पर रहने वाले "लैप" जाति के लोग बर्फीली खाइयाँ पार करने के लिए छलाँग लगाने का अभ्यास करते है। उनमे युवा लोग १२५ फीट तक लम्बी छलाँग लगाते देखे गये है।

की वैस्ट "अफ्रीका" निवासी पीटर जेकाक्स के हाथ इतने मजबूत थे कि वह अपने हाथो की दोनों हथेलियो पर दो जवान आदमी बिठाकर सड़कों पर लिये-लिये फिरता था।

कोरिया का नाटे कद का "मॉस" नामक पहलवान मात्र ४ फीट १ इंच का बौना था किन्तु सामर्थ्यों से भरा-पूरा। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पहलवानो को चुटकी बजाते पछाड़ देता, कठोर से कठोर ईंटो को हथेली मे दबाकर चूर्ण बना डालता। पहलवान कुश्ती लड़ने से कतराने लगे। हारे हुए पहलवानो ने मॉस को एक सॉड से कुश्ती लड़ने की चुनौती दी। पहले तो मॉस ने इन्कार कर दिया। किन्तु बार-बार चिढ़ाये जाने पर वह तैयार हो गया। १३ मन का सॉड दंगल मे शराब पिलाकर उतारा गया। किन्तु आत्म-विश्वासी मॉस ने पहली बार मे ही जमकर ऐसा घूँसा मारा कि सॉड चारो खाने चित्त आ गिर और उठकर ऐसा भागा कि यदि रेफयाम के लिए बाड़ न लगाई गई होती तो दर्शकों को ही कुचल देता।

गुन्नार हैमण्डसन् आइसलैण्ड द्वीप समूह के क्षेत्र मे समुद्री डाकुओ का सरदार था। लड़ते समय उन दिनो लोह के रक्षा कवच पहनने का रिवाज था। वह भी उस भारी परिधान को समय-समय पर धारण करता। इस वजन से लदा होने पर भी वह खड़े आदमी को छलाँग लगाकर पार जा सकता था। इतना ही नही, वह उल्टी छलाँग भी इतनी ही ऊँची पीठ की दिशा मे लगा सकता था। पीठ पीछे खड़े हुए आदमी को भी उल्टी छलाँग लगाकर पार करने मे उसे कोई कठिनाई नही होती थी।

बैल्जियम का राजा रोमन्सन पंचम युद्ध के समय लोहे का कवच पहनता था। जो प्रायः चालीस पौण्ड भारी था। वह कवच पहने जमीन से उछलकर ऊँचे कद के घोड़े पर सवार होता था। सहारा लेकर जीन पर वह कभी चढ़ा ही नहीं।

जर्मनी का भीमकाय मैक्ससिक वजन उठाने की कला मे अपने समय का दैत्य माना जाता था। यह स्वय तो १४७ पौण्ड भारी था। पर २०० पौण्ड भारी वजन को आसानी से उठाकर दिखा देता था। एक प्रदर्शन में २०० पौण्ड भारी मनुष्य को अपने सिर से ऊँचा उठाकर दिखाया। यह प्रदर्शन एक बार नही पूरे सोलह बार उसने एक हाथ से किया। दूसरे हाथ मे उसने पानी से लबालब भरा गिलास थामा और दिखाया कि एक हाथ से वजन उठाने मे उसे कुछ भी असाधारण कठिनाई नही उठानी पड़ती है। यदि ऐसा होता तो दूसरे हाथ के लबालब भरे गिलास का कुछ बूँद पानी तो फैलता।

इंग्लैण्ड मे भी एक ऐसी महिला जन्मी थी, जिसके शरीर पर ज्वलनशील पदार्थो का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। 'नाइट्रिक एसिड' को कुछ देर मुँह मे रखकर जब उसने एक लोहे पर थूका तो उसमे लपटे निकलने लगीं। उबलते तेल को मुँह मे रखे रहना, पिघले मोम को पानी की तरह मुँह मे रखकर ऊपर से सील करवा देना, उबलते जस्ते को मुँह मे डालकर उसे सिक्के के रूप मे बदल देना, उसके लिए नितान्त आसान था। उसके विविध ऐसे प्रदर्शनो से यह सिद्ध हो गया था कि उसका शरीर एकदम ज्वलनशील नहीं है, न ही ज्वलनशीलता का उस पर किंचित प्रभाव पड़ता है।

प्रस्तुत उदाहरण मनुष्य मे प्रसुप्त दैत्योपम क्षमताओं की झाँकी दिखाते है। अपनी कमजोरी पर निरन्तर रोने-कलपने वाले मनुष्य को ये प्रेरणा देते है व प्रमाणित करते है कि अभ्यास से सामान्य सी काया मे अप्रतिम सामर्थ्य का जखीरा एकत्र किया जा सकता है।

दृढ़ संकल्प की सुनिश्चित परिणति

मनुष्य को बुद्धिबल एवं साधनों के अतिरिक्त संकल्प बल का इतना बड़ा अनुदान मिला है जिसके द्वारा वह असम्भव को भी सम्भव करके दिखा सकता है। ब्रह्म की इच्छा 'एकोऽहम् बहुस्यामि' की हुई। उभरे उस प्रचण्ड संकल्प की परिणति चराचर सृष्टि बनकर सामने आयी। मनुष्य उस सत्ता का अंश ही तो है। संकल्प शक्ति इस प्रकार उसे विरासत मे मिली है। लेकिन प्रायः अधिकांश व्यक्ति उसका उपयोग नही कर पाते, न ही उसकी सामर्थ्य से परिचित ही होते है।

संकल्प बल ही है, जिसके आधार पर महान लक्ष्य को लेकर साहसिक यात्राएँ सम्पन्न की गयी हैं। नेपोलियन ने इसी के सहारे अजेय आल्पस पर्वत को सेना सहित पैदल पार कर संसार मे अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया। शेरपा तेनसिंह और हिलेरी ने संसार के सर्वोच्च पर्वत शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) पर जा पहुँचने का दुस्साहस किया था और वहाँ अपनी विजय-पताका फहराते हुए यह उद्घोष किया था कि इस संसार में कुछ भी ऐसा दुष्कर कार्य नहीं है, जिसे संकल्प बल से निरस्त न किया जा सके।

आत्मिक क्षेत्र मे उच्चस्तरीय लक्ष्य तक जा पहुँचने वालो मे ध्रुव और सप्तऋषियो की गणना होती है, जो अभी भी आकाश मे ज्योतिपुञ्ज बनकर चमकते है। दिशासूचक ध्रुव और आत्मबल की सर्वोच्च सिद्धि करने वाले ऋषि-मण्डल अभी भी अपनी गरिमा की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करते है और कहते है कि सामान्य स्थिति मे जन्मे और पले मनुष्य को हमारी तरह अजस्र श्रेय साधने मे निश्चित रूप से सफलता मिल सकती है पर आवश्यकता मात्र एक ही वस्तु की है और वह है—साहसिक सत्संकल्प की।

पूर्व अभ्यासो, आदतो एव कुसंस्कारो को बदलना कठिन तो है पर इतना नही जिसे प्रचण्ड संकल्प-शक्ति के सहारे निरस्त न किया जा सके। तुलसीदास, सूरदास युवाकाल तक कामुकता तथा नैतिकता मर्यादाओ की दृष्टि से हेय जीवन जीते रहे किन्तु जब उनने अपने को बदल डालने का दृढ निश्चय कर लिया तो पुरानी आदतो तथा मान्यताओ को बदलते देर न लगी। आन्तरिक परिवर्तन प्रस्तुत करने मे दृढ सकल्प के अतिरिक्त और कोई शक्ति काम नही करती। सामान्य लोग असमंजस मे पड़े रहते तथा आत्म-नियन्त्रण मे सफलता न मिलने का रोना-रोते रहते है पर दृढ सकल्प का आश्रय लेने वाले मनस्वी के लिए कुछ भी असम्भव नही है। ऐसे उदाहरणो की कमी नही है। वाल्मीकि तथा अगुलिमाल से डाकू सन्त बने है। किसी समय का महान क्रूर जैसे शासक अशोक जब बदला तो उसने धर्म चक्र प्रवर्तन की मूर्धन्य भूमिका निभायी। वासना के दलदल मे पड़ी आम्रपाली बदली तो बौद्ध धर्म के महान प्रचारिका बन गयी। आन्तरिक परिवर्तन से वह परम साध्वी कहलायी तथा ऋषियो से श्रद्धा के साथ सराही गयी। अजामिल सदन जैसे अगणित व्यक्तियो के समय-समय पर ऐसे ही आन्तरिक परिवर्तन उनकी संकल्प शक्ति के माध्यम से ही सम्भव हो सके है।

असफलताएँ सिर्फ यह सिद्ध करती है कि सफलता के लिए जो तत्परता बरती जानी चाहिए, उसमे कही कोई कमी रह गयी है। मनस्वी हारते नही। वे हर असफलता के बाद दूने साहस चौगुने उत्साह के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते है। अब्राहिमलिंकन १७ बार पराजित होने के उपरान्त चुनाव जीत पाये थे। कठिनाइयो के साथ पग-पग पर सघर्ष करते हुए आगे ही बढ़ते चले गये। जॉर्ज वाशिंगटन अमरीका के श्रद्धा पात्र राष्ट्रपति बने। जन्म से ही उन्हे घोर गरीबी का सामना करना पड़ा पर अपने ही पुरुषार्थ के सहारे आगे बढ़ते गये।

व्रतशील अपने संकल्पो के प्रति दृढ रहते तथा हर हालत मे उन्हे पूरा करते है। भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया और उसे पूरा कर दिखाया। गिरता शरीर नही मन है। मनोबल ऊँचा रहने पर मानसिक दुर्बलताओ की दाल नही गलती। पशु प्रवृत्तियाँ भी सिर पर चढ़ बैठने का साहस नही करती है। भागीरथ को गंगावतरण अभीष्ट था। वे प्रचण्ड तपश्चर्या मे संलग्न होकर उसे पूरा करने मे सफल हुए। जगतगुरु शंकराचार्य की आरम्भिक परिस्थितियाँ ऐसी नही थीं जिनमे उनके द्वारा किसी बड़े उपक्रम की आशा की जा सके, वि उन्होने अपनी प्रचण्ड प्रतिभा का उपयोग किसी मह प्रयोजन मे करने का निश्चय किया और उसमे सफ रहे।

कोलम्बस अपनी नाव लेकर भारत की खोज मे निकला। समुद्र यात्रा की प्राणघातक चुनौतियो का सामना करते हुए नयी दुनिया अमेरिका को खोज निकालने मे सफल हो सका। यह उसके प्रचण्ड संकल्प की ही परिणति थी। अन्धी, गूँगी, बहरी हेलन-केलर का विद्या का मूर्ति भाण्डागार बन सकना, सत्रह विश्वविद्यालयो से डाक्टर का सम्मान दिला सकना, उसकी संकल्प शक्ति का ही चमत्कार है। इसके विपरीत साधन-सम्पन्न छात्र भी अपनी असफलता का रोना-रोते रहते है। इसमे अन्य कारण कम और मनोबल की दुर्बलता ही प्रमुख अवरोध उत्पन्न कर रही होती है।

प्रख्यात् अंग्रेजी साहित्यकार एच. जी. वेल्स की माता घरो मे बर्तन माँजने की मजूरी करके अपना और अपने बच्चे का पेट पालती थी। ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी वे बड़े उत्साह से शिक्षा अर्जन के हर अवसर ढूँढते रहे और उस प्रयास से उच्चकोटि के साहित्यकार बने। वैज्ञानिक एडीसन की जीवनगाथा भी वेल्स से मिलती-जुलती है। ढूँढने पर ऐसे अन्य भी प्रमाण देश-विदेश मे मिल सकते है जिसमे विषम परिस्थितियो से जूझते हुए मनस्वी लोगो ने इतनी बड़ी-बड़ी सफलताएँ पायी है जिन्हे चमत्कार कहा जा सकता है। वस्तुत सकल्प शक्ति ऐसा दैवी अनुदान है, जिसकी अनुकम्पा से लाभान्वित हो सकना हर किसी के लिए सम्भव है।

नर हो या नारी—बालक हो या वृद्ध—स्वस्थ हो या रुग्ण—धनी हो या निर्धन, परिस्थितियो से कुछ बनता-बिगड़ता नही, महत्व शक्ति का है। मनस्वी अपने लिए परिस्थितियाँ स्वयं बनाते तथा सफल होते है। समय और श्रम कितना लगा, उसमे अन्तर हो सकता है, पर आत्म निर्माण के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अपनी आकाक्षा को प्रयत्नो के अनुरूप देर-सवेर पूरा कर लेते है। नर की तुलना मे नारी की परिस्थितियाँ कई दृष्टियो से न्यून मानी जाती है पर यह मान्यता वही तक सही है जहाँ तक कि उनका मनोबल गया-गुजरा बना हुआ है। अपनी गरिमा को समझकर यदि वे सकल्प-शक्ति को जगा ले तो कोई कारण नही है कि वे पुरुष से किसी क्षेत्र मे पीछे रहे।

विद्वान कैयट व्याकरण-शास्त्र की संरचना मे लगे थे। उनकी पत्नी भामती मूँज की रस्सी बँटकर उससे गुजारे का प्रबन्ध करती थी। साम्यवाद के जनक कार्ल-मार्क्स भी कुछ कमा नही पाते थे। यह कार्य उनकी

पत्नी 'जैनी' करती थी। पुराने कपड़े खरीदकर उनमे से छोटे बच्चो के कपड़े बनाती तथा फेरी लगाकर बेचती थी। आदर्शों के लिए पतियो को इस प्रकार कष्ट उठाकर भी प्रोत्साहित करने एवं सहयोग देने मे उनका उच्चस्तरीय संकल्प बल ही कार्य करता था। बंगाल के निर्धन विद्वान प्रतापचन्द्र राय ने अपनी सारी शक्ति और सम्पत्ति को लगाकर महाभारत का अनुवाद कार्य हाथ मे लिया, पर बीच में ही चल बसे। उनकी पत्नी ने अवशेष कार्य को अपना संस्कृत ज्ञान बढ़ाकर पूरा किया।

संकल्प-शक्ति के रूप मे मनुष्य को मिला वरदान, इतना सामर्थ्यवान है कि भौतिक अथवा आत्मिक, किसी भी क्षेत्र मे प्रगति-मार्ग मे सम्पन्न होने वाली प्रत्येक बाधा को पैरो तले रौदकर आगे बढ़ाता तथा सफलताओ को मनुष्य के कदमो मे बिछाता देखा जा सकता है।

जिनसे मौत भी डर गई

मनुष्य के जीवन मे भली-बुरी दोनो ही प्रकार की परिस्थितियाँ आती है। सामान्य व्यक्ति उनसे प्रभावित होता, अनुकूल मे प्रसन्न एवं प्रतिकूल में खिन्न होता दिखायी देता है। असामान्य व्यक्ति दोनो मे ही एकरस रहते और उन्हें सहर्ष स्वीकार करते है। प्रतिकूलताओं मे वे घबड़ाते नही, वरन् अपना सन्तुलन बनाये रखते है। कितने ही व्यक्ति छोटे-छोटे आघातो को भी सहन नही कर पाते। साहस एव सन्तुलन के अभाव मे सामने आये संकट का सामना नही कर पाते। थोड़े प्रयत्न, पुरुषार्थ से प्रस्तुत सकटो को टाला जा सकता था। उनसे भी जूझ पाने मे असमर्थ होते है। जबकि कितने ही साहसी, जीवट सम्पन्न व्यक्ति जीवन-मरण के तुल्य संकटो मे भी धैर्य नहीं खोते, साहस एवं सन्तुलन बनाये रखते है तथा भविष्य के प्रति आशान्वित रहते है।

ऐसे ही जीवट वाले व्यक्ति मौत को भी चुनौती देते, उन्हे खेल-खिलवाड़ समझकर जूझते है। उनके प्रचण्ड पुरुषार्थ, साहस एव जीवन के प्रति अदम्य प्रेम को देखकर थोड़े समय के लिए मृत्यु को भी सिर झुकाना और अपने इरादे मे परिवर्तन करना पड़ता है। परिस्थितियों को उनके समक्ष नतमस्तक होना होता है। मृत्यु के निकट पहुँचकर वे भी अपना अस्तित्व बनाये रखने मे सफल होते है।

सच तो यह है कि परिस्थितियाँ मनुष्य को उतना प्रभावित नही कर सकती जितना कि उसकी स्वय की मन स्थिति। अन्तर का जीवट, साहस बना रहे तो हर स्थिति का सामना किया जा सकता तथा सामने आये अवरोधो को टाला जा सकता है। यह न हो तो साहस के बलबूते अपना सन्तुलन बनाये रखा जा सकता है। अनेको ऐसे व्यक्तियो के उदाहरण समय-समय पर मिलते है, जिन्होने विषम परिस्थितियो मे भी असामान्य सूझ-बूझ एव साहस का प्रदर्शन किया और मृत्यु को भी टाल सकने मे सफल हुए।

जर्मनी के लेफ्टीनेन्ट कुर्त एंजील की घटना उल्लेखनीय है। जुलाई, १९५७ मे एक दिन उनके जहाज ने उड़ान भरी। कुर्त एजील पैराट्रूपद-विंग के कमाण्डर थे। जर्मनी के आवेरहठान के निकट उनके विमान मे आग लग गई। १५०० फीट की ऊँचाई से उन्हे छलाँग लगाने के अतिरिक्त कोई चारा नही था। पैराशूट की रस्सियाँ ढीली-ढाली होने के कारण उससे भी विशेष सहयोग न मिल सका। असन्तुलित अवस्था मे ९० किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से नीचे की ओर चले। गति अधिक होने के कारण पृथ्वी पर अपने ही भार से दो फीट नीचे धँस गये। कुछ समय बाद होश आने पर उन्होने शरीर में असह्य पीड़ा का अनुभव किया। लगा कि पीठ का खून जम गया हो। एंजील की सीने की पसलियाँ टूट गईं। एक फेफड़ा फट गया तथा रीढ़ की हड्डी भी टूट गई। खोजी दल उनके क्षतिग्रस्त शरीर को एम्बुलेन्स पर लादकर निकटवर्ती हॉस्पिटल मे ले आया। डाक्टरो के परीक्षण के उपरान्त घोषणा की कि लेफ्टीनेन्ट एंजील के बचने की सम्भावना नही है। उसके गुर्दे खराब हो चुके है। शरीर मे पीठ एवं रीढ़ की हड्डियाँ बुरी तरह टूट गई है। फेफड़ा फट गया है। डाक्टरो की इस घोषणा एवं शरीर की असह्य पीड़ा मे भी एंजील ने हिम्मत नही हारी। डाक्टरों से उसने बड़े साहस एवं विश्वास के साथ कहा, "मै मर नही सकता। अभी मुझे बहुत काम करने है। आप सभी अपना कर्तव्य पूरा करे।" डाक्टरो को उनके इस साहस, अटूट विश्वास पर आश्चर्य हुआ और प्रेरणा भी मिली। निरन्तर दो माह तक मृत्यु से जूझते हुए वह अपने को साहस एव संकल्प के सहारे बचा सकने मे सफल हुए। चिकित्सको ने एंजील का मृत्यु की गोद से लौट आना एक असामान्य घटना माना। उसकी जिजीविषा एव साहस की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

आशा ही जीवन और निराशा ही मौत है। प्रस्तुत संकटो के समक्ष हिम्मत हारकर घुटने टेक देना कायरता का प्रतीक है। कई बार तो लोग भावी आशंकाओं से अथवा संकट का नाम सुनकर भी इतना घबड़ा जाते है कि उन्हे अधिक क्षति उठानी पड़ती है। कथा प्रचलित है कि एक बार यमराज ने एक दूत को दस हजार व्यक्तियो को मारकर लाने का आदेश दिया। दूत वापिस लौटा तो उसके साथ बीस हजार व्यक्ति थे। यमराज द्वारा पूछे जाने पर दूत ने बताया कि उसने मारा तो दस हजार व्यक्तियो को ही था। पर अतिरिक्त दस हजार भयभीत होकर अपने आप बेमौत मर गये। अनेको व्यक्ति प्रतिकूलताओ मे अपना साहस एवं सन्तुलन गँवा बैठते तथा असमय मृत्यु की गोद मे जा पहुँचते हैं। जबकि जीवन को हँसकर पार करने वाले भीषण संकटो मे भी अपना मनोबल बनाये रखते और अदम्य साहस का परिचय देते है।

८ जुलाई, १९७५ को जर्मनी निवासी २४ वर्षीय नवयुवक भूरे घास की गठरी बनाने वाली अपनी नई

खरीदी हुई मशीन का परीक्षण कर रहा था। घर से तीन किलोमीटर दूर खेत मे वह कार्य कर रहा था। अन्धेरा होने को आया, उसने मशीन को ठीक करने के लिए हाथ बढ़ाने पर उसका दाहिना हाथ पट्टे मे फँस गया। उसने बायाँ हाथ बढ़ाया, पर दुर्भाग्यवश वह भी फँस गया। खीचने के प्रयास मे हाथ की हड्डियाँ टूट गईं। कन्धो तक दोनो हाथ की हड्डियाँ पिस गईं। भूरे की पत्नी इधर घर पर उसके आने का इन्तजार कर रही थी। अधिक देर होने पर खोज-खबर लेने वह खेत पर पहुँची। दूर से ही उसे भूरे की चीख सुनायी पड़ी। दौड़ते हुए उसने खेत पर जाकर जो हृदय-विदारक दृश्य देखा, उसको देखकर उसके रोगटे खड़े हो गये। भूरे जीवन-मरण के मध्य मशीन से चिपटा जूझ रहा था। पर इतने पर भी उसका सन्तुलन यथावत् बना था। पत्नी को मशीन बन्द करने का निर्देश दिया। पर दुर्भाग्य ने यहाँ भी पीछा नही छोड़ा। कुछ तकनीकी गड़बड़ी होने से मशीन बन्द न हो सकी। दौड़ती हुई वह निकट के फार्म पर किसी को सहयोग के लिए बुलाने गई। कुछ व्यक्ति सहयोग के लिए पहुँचे। अथक प्रयत्न के बाद भी भूरे को मशीन से छुड़ाया न जा सका। इतने मे सूचना दिये जाने पर डाक्टर एवं ऐम्बुलेन्स भी पहुँच गई। भूरे को मशीन से अलग करने के लिए हाथ काटने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नही था। डाक्टर भी इस हृदय-विदारक स्थिति को देखकर दहल गये। पर भूरे ने साहस नही खोया।' सन्तुलित स्वर मे उसने कहा, 'डाक्टर ! मेरे दोनो हाथ काटकर अलग करो। डाक्टर हिचकिचाये, पर भूरे की जान इससे कम मे नही बच सकती थी। उसने पुनः डाक्टरो को हाथ काटने का निर्देश दिया। पूरे चार घण्टे तक वह मशीन से जूझता रहा। हाथ कटने के बाद डेढ़ माह तक उसे अस्पताल मे रहना पड़ा। चिकित्सको से उसने कृत्रिम हाथ लगाने का अनुरोध किया, जिससे वह कृषि कार्य को पूर्ववत् कर सके। निरन्तर अभ्यास से उसने कृत्रिम हाथो के सहारे इतना कुछ सीख लिया जिससे खेती के तथा स्वय से जुड़े आवश्यक कार्यों को कर सके। मनोबल, साहस एवं सन्तुलन न होता तो मशीन मे चार घण्टे मृत्यु से जूझने के बाद वह नही बच पाता। पर उस विषम स्थिति मे भी उसने जिस जीवट का परिचय दिया, वह प्रेरणास्पद है।

संकट तथा प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन मे आते है और प्रभावित भी करते है, पर वे मानवी सामर्थ्य से सशक्त नही हो सकते। जीवन के प्रति आशा एवं उत्साह बना रहे, साहस एव पुरुषार्थ का क्रम जुड़ा रहे तो सकट भी टल जाते हैं और परिस्थितियाँ भी ऐसे जीवट-सम्पन्न व्यक्ति के समक्ष नत-मस्तक होती है।

संकल्पशक्ति कुंजी है, प्रगति पुरुषार्थ की

१४ अगस्त, १९६४ का दिन था। अमरीका के साहित्य जगत की एक उभरती प्रतिभा नारमन कजिन्स को अनायास ही एक ऐसी व्याधि ने अपने पाश मे जकड़ लिया, जिसका कोई उपचार न उन दिनों चिकित्सक के पास था, न आज है। वह थी हड्डियो के बीच के कार्टिलेज की डिजेनरेटीव व्याधि, जिसने उन्हे २४ घण्टो मे बिस्तर पर लेटने को विवश कर दिया। एक सप्ताह मे सभी जोड़ संधियाँ ऐसे जकड़ गए कि वे पीड़ा मे कराहने लगे, निद्रा कोसों दूर भाग गई एवं जोड़ लगभग बँध से गए।

चिकित्सको के समझाने के बावजूद कि इसका कोई उपचार नही है, वे पीड़ानाशक व मांस-पेशियों के तनाव को कम करने वाली औषधियाँ लेते रहे, यदि कष्ट अधिक न हो तो मालिश करने दे। वे यह मानने को राजी नही हुए कि उनकी व्याधि असाध्य है। अब वे बिस्तर से उतर नही सकेंगे व जीवनभर जो अधिक लम्बा नही है, ऐसी ही स्थिति रहेगी। उन्होंने अपने चिकित्सकों से दृढ़ मनोबल के साथ कहा कि—"मै जल्दी हार मानने वाला नही हूँ। मै जानता हूँ कि यह बीमारी एड्रीनल ग्रन्थि के रसस्राव क्षीण हो जाने से हुई है। यदि तनाव व शारीरिक दबाव ऐसा कर सकता है तो क्यो पुन: विधेयात्मक भाव तरंगो द्वारा एड्रीनल को प्रभावित कर इन्ही हारमोन्स को उत्सर्जित करना सम्भव नहीं हो सकता ?" उनके तर्क मे दम तो था, पर ऐसा कभी कोई कर पाया हो, ऐसा कोई केस चिकित्सको के पास नहीं था। उन्होंने कहा—यदि आपकी इच्छाशक्ति इतनी ही प्रबल है तो कोशिश कर देखे।

कजिन्स की मान्यता थी कि पॉजिटीव इमोशन्स, प्रसन्नता की-प्रफुल्लता की भावना, हल्का-फुल्का मस्ती भरा जीवन जीने की आकांक्षा द्वारा पॉजिटिव विद्युतधाराओ को शरीर मे दौड़ा सकना सम्भव है। यदि भावनात्मक स्थिति को पलटा जा सकता है तो एड्रीनल ग्रन्थि की कार्य-पद्धति को उलटना क्यो सम्भव नही है, जो कि तनाव, अवसाद के लिये उत्तरदायी मानसिक हारमोन्स का रसस्राव करती है। उन्होंने सोचा कि हँसी, उन्मुक्त हँसी, खुले दिल से हँसी ही दूसरी श्रेष्ठ चिकित्सा है। कैण्डिड कैमरा नामक एक हास्य धारावाहिक उन्होंने उसी दिन अपने टी. वी. पर देखना आरम्भ किया एवं हँसी मे साथ देने के लिए अपने मस्त मित्रो को भी आमन्त्रित किया। इस प्रयोग के बाद १० मिनट की हँसी ने उन्हे दो घण्टे की पीड़ा मुक्त नींद मे सुला दिया। अब वे अस्पताल से घर पहुँच गए, जहाँ वे स्वतन्त्रता से कॉमिक, मूवीज, टेलीविजन प्रोग्राम देख सकते थे तथा हास्य प्रधान चुटकुलो की पुस्तके पढ़-पढ़कर खुद ही हँसते रह सकते थे। इस प्रयोग के ८ दिन बाद उनके एक अँगूठे, घुटने से दर्द गायब हो गया व बिना दवा के वे ५ से ६ घण्टे सोने लगे। तीन सप्ताह बाद चिकित्सको ने उन्हे प्यूर्टोरिको के समुद्री बीच पर व्यायाम करते पाया। उनके एक्सरे किये गए, पता चला कि ऊतक नये सिरे से बनने लगे है। ४ माह बाद वे

साइकिल चलाते हुए स्वस्थ स्थिति मे कार्यालय आये। उनने बाद मे अपने संस्करणों मे लिखा कि "मेरी जिजीविषा, जीने की अदम्य आकांक्षा ने मुझे हँसने व विधेयात्मक चिन्तन के लिए प्रेरित किया व इसी ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया। इच्छाशक्ति से मैने शरीर की रसायन प्रक्रिया को बदल डाला। वस्तुतः जीवन जीने का नाम है व जीने के लिये जरूरी है संकल्प शक्ति, जो किसी भी अवरोध से जूझ सकती है।"

यह एक उदाहरण है एक ऐसे व्यक्ति का जिसने अपनी स्वयं की इच्छाशक्ति का सुनियोजन कर अपनी असाध्य व्याधि से मोर्चा लिया एवं एक कुशल सैनिक की भाँति जीतकर दिखाया। वस्तुतः इच्छा-शक्ति के साथ प्राणि समुदाय की स्थिति का इतिहास जुड़ा है। एककोषीय अमीबा के रूप मे पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति हुई मानी जाती है। एक से बहुत होने की परब्रह्म की आकांक्षा को वह जीव अपने व्यवहार में उतारता गया। वह न केवल अपने को खण्डित करते-करते एक से बहुत हुआ वरन् उसने अपनी आकृति, प्रकृति मे भी बढ़ोत्तरी आरम्भ कर दी। अनेक जल-चरो की सृष्टि इसी क्रम मे हुई। इतने पर भी प्रगति-क्रम रुका नही। वे जलचर ही क्रमशः थलचर और नभचर की स्थिति मे विकसित, परिवर्तित होते गये। यह क्रम मनुष्य की सर्वांगपूर्ण सत्ता तक जा पहुँचने तक चलता चला आया। इतने पर भी उस उपक्रम का अन्त नही हुआ। मनुष्य, वनस्पति और प्राणिजगत का भाग्य विधाता कहा जाता है। अब उसने प्रकृति का अधिष्ठाता बनने की बात भी ठानी है। वैज्ञानिक शोधो की प्रक्रिया इसी कारण तीव्र से तीव्र होती चली जा रही है। यह सकल्प-शक्ति का ही चमत्कार है।

जिनकी मनोदशा चेतना क्षेत्र की ओर मुड़ी उनने धर्म का, दर्शन का, अध्यात्म का, परलोक का, देवी-देवताओ तक का सृजन कर डाला। अतीन्द्रिय क्षमताओ से सम्पन्न होकर सिद्ध पुरुष बने और ऋद्धि-सिद्धियो के रूप मे अपनी विभूतियो का परिचय देने लगे। जन सामान्य के मार्गदर्शन के लिए अपनी सूझ-बूझ को समग्र उतारने लगे। आदिम मनुष्य और आज के विकसित व्यक्ति की तुलना की जाय तो जमीन-आसमान जैसा अन्तर प्रतीत होगा। इस प्रगति के मूल मे सदा से एक ही तत्त्व काम करता रहा है और वह है, उत्कण्ठा से, जिज्ञासा से, भरा-पूरा सकल्प बल। उसके अभाव मे प्राणि-जगत की प्रगति का कोई आधार ही न बन सका होता। सभी नर-वानरो की तरह किसी प्रकार शरीर रक्षा के साधन जुटाने भर तक सीमित होकर रह गये होते। अभी भी वन्य प्रदेशो मे पाए जाने वाले कबीलो की स्थिति ऐसी ही है। उनके सामने कोई ऐसा उद्देश्य या कार्यक्रम नही होता, जिसे अपनाकर अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति तक पहुँचा जा सके। यही कारण है कि वे आदिम युग के वन मनुष्य की तुलना मे बहुत थोड़ी ही प्रगति कर सके है। उत्तरी ध्रुव पर बसे एस्कीमो लोगो के रहन-सहन को देखकर इस तथ्य को भली प्रकार समझा जा सकता है कि इच्छाशक्ति का अभाव कितनी कठिन परिस्थितियो मे भी यथावत् बने रहने के लिए बाधित किये रहता है।

मनुष्य ने भाषा और लिपि के अभिनव आधार खड़े करके परस्पर विचार-विनमय का द्वार खोला। यह उपलब्धियाँ अनायास ही हस्तगत नही हो गईं। वरन् इसके लिए पीढ़ियो तक समझदार लोग भरपूर प्रयत्न करते रहे। यदि उस सम्बन्ध मे उत्सुकता न उमड़ी होती तो मनुष्य भी अन्य वानर जातियो की तरह किसी प्रकार थोड़े सकेतो और शब्दो के सहारे पारस्परिक सम्बन्धो को मात्र चला सका होता। आग का आविष्कार, पहियो का विज्ञान, वस्त्र निर्माण, आच्छादन, पशुपालन अपने युग की जिज्ञासाओ से उभरे पुरुषार्थ भरे कृत्य थे, जिनने आज की प्रगति का पथ प्रशस्त किया।

निषेध, अनुपयुक्त कल्पनाओ, जल्पनाओ और महत्त्वाकाक्षाओ का ही किया गया है क्योकि उन्ही के कारण मनुष्य का बहुमूल्य समय, श्रम, कौशल बर्बाद होता रहता है। वे ही कुमार्ग पर भटकाती और अनेक संकटो को खीचकर बुलाती है। श्रेष्ठ इच्छाएँ, आकांक्षाएँ तो न केवल आवश्यक है, वरन् श्रेयस्कर भी है। वेदान्त दर्शन के प्रथम सूत्र मे जिज्ञासा को सद्ज्ञान सचय का प्रथम और प्रमुख उपाय माना गया है। जिस प्रकार ज्ञान संचय मे जिज्ञासा की प्रमुख भूमिका होती है, उसी प्रकार इच्छा-आकांक्षाओ को अभीष्ट प्रसंगो की दिशा मे बढ़-चलने का प्रमुख आधार माना गया है। संकल्प का भारतीय संस्कृति के कर्मकाण्डो मे प्रथम और प्रमुख स्थान है। किसी भी धर्मकृत्य मे सर्वप्रथम संकल्प पढ़ा जाता है। यदि यही संकल्प जीवन्त रूप मे जीवन मे उतर आए तो असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाला पुरुषार्थ परिणति रूप मे दृष्टिगोचर होता है। आत्म-क्षेत्र मे लागू किया जाने पर यह न केवल गहरी घुसी दुष्प्रवृत्ति को निकाल बाहर करता है, वरन् असाध्य मानी जाने वाली किसी व्याधि से भी मुक्त करने योग्य आत्मबल भी जुटा सकता है। परमाणु नाभिक की तरह अपने अन्दर असीम सामर्थ्य सँजोये हुए है, आवश्यकता मात्र संकल्प-शक्ति को जगाने भर की है।

संकल्प बल और स्वस्थता

सभी रोग भावना से सम्बन्धित नही होते। कुछ ऐसे शारीरिक कष्ट होते है, जिन्हे मनोवैज्ञानिक रूप से दूर किये बिना भी उनसे उत्पन्न तकलीफो से छुटकारा पाया जा सकता है।

एक फ्रासीसी प्रौढ़ जो कि काफी हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ था, चालीस की अवस्था मे 'आर्थ्राइटीस' रोग से आक्रान्त हो गया। कुछ दिनो तक इसके ग्रस्त रहने के उपरान्त असीम पीड़ा शुरू हुई, लेकिन कुछ ही दिनो मे

वह दौर समाप्त हो गया और वह विक्रेता के रूप मे यात्रा पर निकल पड़ा।

अन्त मे उसे घड़ी का सहारा लेना पड़ा। पैर और उँगलियो के जोड़ो मे भयंकर गाँठे पड़ गईं। एक यात्रा मे उसकी पत्नी भी उसके साथ थी। उसकी हालत बहुत ही दयनीय थी। आज वह गलियो मे लड़खड़ाता हुआ चल रहा था तथा चलने मे अपनी असमर्थता जाहिर कर रहा था।

तभी अचानक एक नवयुवक उनके सामने से गुजरा। वह काफी प्रसन्न था तथा सीटी बजाते हुए जा रहा था। उसके हाथ नही थे। उनकी जगह उसने हुक लगा रखा था। महिला ने अपने पति का उस ओर ध्यान आकर्षित किया। उसे देखकर उनके दिमाग मे एक ऐसे युवक का चित्र उभरा जिसके समक्ष अपना सारा का सारा जीवन अभी भी पड़ा हुआ हो, जिनके हाथो को काट दिया गया हो और उनकी जगह हुक लगे हो। फिर भी वह खुश हो।

युवक को अति प्रसन्न देखकर उस व्यक्ति ने भी दृढ़ सकल्प लिया कि मै भी अब किसी से कोई शिकायत नही करूँगा। इसके बाद उसे अनेक प्रकार की बीमारियाँ हुईं। उसका यकृत बढ़ गया। उसने अपनी नेत्र ज्योति खो डाली, उँगलियाँ इतनी मुड़ गईं कि बटन लगाना भी दूभर हो गया। फिर भी उसके मुँह से आह तक नही निकली।

अब वह काफी खुश था। उसका मनोबल दृढ़ था। हालांकि उसकी शारीरिक समस्याओ का निदान नही हो पाया था। उसकी मुड़ी उँगलियाँ पूर्ववत् थी। यकृत अभी भी बढ़ा हुआ था, लेकिन उसने उन सभी समस्याओ का हल ढूँढ निकाला था।

जिन्हे ईश्वर पर विश्वास होता है, वे समस्याओ के रहते हुए भी उनकी तकलीफो पर विजय प्राप्त कर लेते है।

इस रोगी ने ऋणात्मक विचारणाओ को अपने से बिलकुल निकाल दिया। अतः आर्थ्राइटीस रोग यद्यपि रहा अवश्य, पर उसके लिए वैसा कष्टसाध्य नही रहा।

दृढ़-सकल्प और विधेयात्मक कथन भी स्वास्थ्य पर चमत्कारिक असर डालते है। यदि प्रतिदिन स्वास्थ्य के प्रति दृढ़तापूर्वक विधेयात्मक कथन यथा—"मै निरोग हूँ, स्वस्थ हूँ। कभी भी रोगी नही बनूँगा।" आदि-आदि कहा जाय तो बहिरगो एव अन्तरगो पर उसका अनुकूल प्रभाव पड़ता है और सचमुच व्यक्ति आजीवन स्वस्थ बना रहता है। इसके विपरीत यदि निषेधात्मक कथन कहा जाय तो स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ग्रन्थियाँ एव अन्य अन्तरंग स्वाभाविक रूप से अपना काम नही कर पाते। फलतः शारीरिक विकार उत्पन्न होने लगता है।

"सायकोसोमैटिक मेडीसिन अकादमी" के भूतपूर्व अध्यक्ष एवं फिजीशियन अल्फ्रेड जे. केन्टर ने यहाँ तक सचेत किया है कि हमें स्वास्थ्य के प्रति अर्ध-धनात्मक कथन भी नही कहना चाहिए। यथा—"मैं आज बीमार नही पड़ूँगा।" इसके बदले हमें पूर्ण धनात्मक कथन का प्रयोग करना चाहिए, जैसे मै आज अच्छा हो जाऊँगा।"

डॉ. केन्टर का कहना है कि ये सभी वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित है। यदि ऐसे दृढ़-संकल्प को अपनाकर अपने दैनिक जीवन में उसे व्यवहार मे लाया जाय तो सेहत अच्छी हो जायेगी, जीवन-अवधि बढ़ जायेगी, स्फूर्ति और ताजगी का आभास होगा, खुशहाली बढ़ जायेगी एव मानव जीवन का सबसे बड़ा उपहार—'शान्ति' मिलेगी।

एक व्यक्ति की एक दुर्घटना मे मृत्यु हो गई। जब उसका शव परीक्षण किया गया तो उसमे बहुत तरह की शिकायतें पायी गईं। उसके दिल और वृक्क खराब थे। टी. बी. और अल्सर से भी वह ग्रस्त था। इतना सब होने के बावजूद भी वह ८४ वर्ष की आयु मे पहुँच चुका था। उसके बारे मे डाक्टरो का कहना था कि इसे ३० वर्ष पहले मर जाना चाहिए था। उसकी उत्तरजीविता के राज के बारे मे जब उसकी पत्नी से पूछताछ की गई तो उसने बताया कि वे हमेशा इस बात पर दृढ़ रहते थे कि "हमारा आने वाला कल बहुत अच्छा होगा।"

इस प्रकार संकल्प-शक्ति के द्वारा रोगो पर नियन्त्रण रखा जा सकता है एवं दीर्घायु बना जा सकता है। अच्छी भावना-संकल्प एवं व्यवहार को अपने दैनिक जीवन मे अपनाकर कोई भी आजीवन स्वस्थ रह सकता है।

आशावादी चिन्तन के निम्न सिद्धान्तो को जो कि तथ्यपरक है, अपनाकर स्वास्थ्य-लाभ किया जा सकता है—

१. दृढ़तापूर्वक यह स्वीकारना चाहिए कि मैं स्वस्थ हूँ।

२. अपने मन-मस्तिष्क मे अपना चित्र एक अच्छे व्यक्ति के रूप मे बनाये रखना चाहिए।

३. अद्भुत जीवनी शक्ति प्रदान करने के कारण भगवान का प्रतिदिन बार-बार धन्यवाद करना चाहिए।

४. मन को बेकार की चिन्ताओ एव परेशानियो से मुक्त रखने का हर सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। बैर-भाव, शत्रुता, पश्चाताप, हीनता, नैराश्य आदि को मन से निकालकर उनकी जगह अच्छे स्वास्थ्यकर विचार लाने चाहिए।

५ वैसी कोई भी चीज हमे अपने अन्दर नहीं लानी चाहिए जो शरीर के विभिन्न तन्त्रो को कमजोर कर दे।

६. अपना शारीरिक वजन उतना ही रखना चाहिए जितना डाक्टर के अनुसार होना चाहिए।

७. नियमित व्यायाम अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। इसके चयन मे इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि कौन-सा व्यायाम हमारे लिए रुचिकर है। किसी ऐसे व्यायाम का चयन नहीं करना चाहिए जो अपने लिए उबाऊ हो, जिससे हम उसमें अनियमित बन जायँ।

८. अपनी शारीरिक जाँच नियमित रूप से करवाते रहना चाहिए।

९. "आत्मा अथवा मन को आरोग्य किये बिना शरीर को आरोग्य करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।" यह प्लेटो का प्रसिद्ध कथन है। सचमुच मन को अस्वास्थ्यकर विचारों से मुक्त कर ही हम अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है।

स्वास्थ्य का ठीक रहना नित्य के जीवन व्यापार के लिये अनिवार्य है। स्वस्थ शरीर ही सही चिन्तन कर पाता है एवं सही चिन्तन ही स्वस्थ काया के लिये उत्तरदायी है। यह एक प्रतिष्ठित प्रामाणित तथ्य है। बहिरंग उपचार पर तो अधिकांश पद्धतियाँ, मन एवं विशेषज्ञ जोर देते चले आये है। पर अन्तरंग जिसे स्थूल का पोषण करने वाला मूल केन्द्र कहा जा सकता है, पर कारगर होने वाली पद्धति के लिये समुचित प्रयास चिकित्सा जगत मे नहीं किये गये।

अन्तरग के दो पक्ष है—एक मन अर्थात् संकल्प शक्ति तथा दूसरा अन्तःकरण, आस्थाओ का मूल उद्गम केन्द्र। मन की इन्द्रिपरक (ग्यारहवीं इन्द्रिय) एवं अतीन्द्रिय सामर्थ्य को अब वैज्ञानिक भी मानने लगे है। परन्तु इसका सूक्ष्म पक्ष और भी बलवान एवं सामर्थ्यों से भरपूर है। यह जीवनी शक्ति का मानसिक पक्ष है जिसके बल पर प्रतिकूलताओ में भी शरीर न केवल जीवित बना रहता है वरन् स्वास्थ्य को कदापि प्रभावित नहीं होने देता। जीवनेच्छा, जिजीविषा के नाम से जानी जाने वाली यह शक्ति प्रत्येक के भीतर विद्यमान है। जो इसे पहचानकर इसका उपयोग कर लेता है, वह ऐसे असम्भव काम कर बैठता है, जिन्हें नादान लोग चमत्कार कह बैठते है। वस्तुतः वह मन-शक्ति का ही एक स्वरूप है।

प्रसिद्ध विचारक नारमन वीसेन्ट पील कहते हैं, स्वस्थ रहने के लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति अपनी जीवनी शक्ति की असीम सामर्थ्य को दृढ़ता से स्वीकार करे। इसे जीवन की रचनात्मक शक्ति भी कहा जा सकता है। विचारों की विधेयात्मक सामर्थ्य का उपयोग कर कई असाध्य रोगी मृत्यु के मुख से निकलते देखे गये है। विडम्बना यह है कि अधिकाधिक व्यक्ति ठीक इसके विपरीत, निषेधात्मक चिन्तन मे निरत दिखाई देते है। उनका एक ही रोना रहता है कि वे मजबूर है, अक्षम है, परिस्थितियों के कारण कार्य कर पाने में असमर्थ है एवं ये परिस्थितियाँ ही उनकी समस्त विपत्तियो का, यहाँ तक कि कुस्वास्थ्य का भी प्रधान कारण है। पश्चिम मे भौतिक सुख-सुविधाओ के बावजूद सर्जनात्मकता का अभाव कुस्वास्थ्य का कारण बनता चला जा रहा है। सर पील के अनुसार "जो कुछ भी मनुष्य कहता है, वह उसके विचारो मे होता है एवं जो कुछ भी विचारो मे होता है, वह निश्चय ही जीवन में क्रियान्वित होता है। जो व्यक्ति वय की दृष्टि से वृद्ध होते हुए भी यह कहता है कि अभी तो मैं स्वस्थ हूँ, युवा हूँ, निश्चित मानिये, उसे 'जरा' स्पर्श भी नही कर सकती।" पर होता उल्टा ही है। तीस वर्ष पार करते-करते ही आज का नवयुवक दैनिक जीवन के तनावो का सामना करने में स्वयं को असमर्थ मान 'प्रिमेच्योर एजीग' बुढ़ापे से ग्रस्त होता चला जाता है। यही कारण है कि प्राचीनकाल मे वृद्धावस्था मे पाये जाने वाले सारे रोग अब ३०-३५ वर्ष के आस-पास ही दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

ईसाई धर्मगुरुओं का कहना कि भगवान ने स्वयं मनुष्य के जीवन मे श्वाँस फूँके है। हमारा यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि हम अपने प्रत्येक दिन का शुभारम्भ इस घोषणा से करे कि "मै ईश्वर का ही एक अंश हूँ।" जब ईश्वर प्रदत्त जीवन मेरे अन्दर स्पन्दित हो रहा है, मै ईश्वर के गुणो से अभिपूरित हूँ तो फिर निराशाग्रस्त होकर उसकी अवमानना क्यों करूँ ? जब तक उस आनन्द-प्रदायक सृष्टा की इच्छा होगी, मेरा आयुष्य काल चलता रहेगा। क्यो न मै इस अवधि को पूरी क्षमता से जीकर पूरा करूँ ?

मनुष्य हर परिस्थिति में ढल सकता है

मनुष्य के बराबर न कोई कोमल है, न कठोर। अभ्यास से वह कष्टसाध्य जीवन जी सकता है और उन्हीं परिस्थितियो मे प्रसन्न भी रह सकता है। भगवान ने मानवी शरीर की सरचना इस प्रकार की है कि उसे जिस भी ढाँचे मे ढाला जाय, उसी मे ढल जाता है। विलासी को अनेकानेक प्रकार की सुविधाएँ चाहिए। उनमे कमी पड़ने पर तिलमिलाते देखे गये है, पर ऐसे लोगों की कमी नही जो कठिनाइयो मे रहने का अभ्यास कर लेने पर उसी मे प्रसन्नतापूर्वक जीवन बिता देते है।

शून्य से नीचे रहने वाली ठण्डक के क्षेत्र मे ऐस्किमो जाति के लोगो की पीढ़ियाँ बीत गईं। उनने अपने आप को उन्ही परिस्थितियो मे ऐसा 'फिट' कर लिया है कि छोड़ने का आग्रह भी स्वीकार नहीं करते। अपने को औरो से कम सुखी भी नही मानते।

एस्किमो संसार के असामान्य आदिवासी जीवन जीने वाले अपने सांस्कृतिक, भाषाई एवं जातीय एकता के लिए प्रख्यात हैं। एस्किमो का अर्थ होता है—कच्चा माँस खाने वाला। एस्किमो अपने को सारी धरती का 'प्रमुख एव वास्तविक' मनुष्य मानते है। इनकी विभिन्न जातियाँ साइबेरिया, नोम, अलास्का, कनाडा, ग्रीनलैण्ड तथा आर्कटिक एरिया के अधिकाश भाग मे बेरिंग स्ट्रेट से ग्रीनलैण्ड—समुद्र से लगे टुण्ड्रा प्रान्त तक फैली हुई है।

घने जगलो मे बसे एस्किमो मानवी सभ्यता मे जीवन संघर्ष मे सबसे अग्रणी माने जाते है। संघर्ष ही इनकी जीवनगाथा है। इनूपिक और यूपिक इनकी दो भाषाएँ है।

आर्कटिक क्षेत्र मे जहाँ बर्फ का साम्राज्य है, शून्य से भी कम तापमान रहता है। ऐसे विषम वातावरण मे भी एस्किमो हँसते-खेलते जीवन व्यतीत कर लेते है। मानवी काया के अनुकूलन का यह सबसे अनौखा उदाहरण है। ऊँचे आर्कटिक क्षेत्रो मे जहाँ ग्रीष्म ऋतु नाममात्र की होती है, वर्ष का अधिकांश भाग हिमानी तूफानो से भरा होता है। भारी-भरकम फर के कोट पहने एस्किमो बर्फ के मकानो मे रहते और बर्फ मे धँसी सील, वालरस और ध्रुवीय भालुओ का शिकार करके अपना जीवनयापन करते है। प्रशान्त महासागर तथा बेरिंग के किनारे बसे एस्किमो सील, साल्मन के अतिरिक्त ह्वेल का भी शिकार करते है। विशिष्ट आकार के हारपून, मत्स्य भाला तथा स्प्रिंग बेत की सहायता से एस्किमो अपने शिकार को मारते है। बसन्त या ग्रीष्म ऋतु मे यात्रा के समय रेनडियर—कुत्तो की सहायता से झुण्ड वाले जानवरो—कैरिबो का शिकार करते है। इन जानवरो के चमड़े कपड़े का और माँस भोजन का काम देते है। कैरिबो उन जानवरो का समूह होता है जो बसन्त ऋतु मे नदियो, झीलो को पार कर उत्तर की ओर माइग्रेट करते है।

एस्किमो अपने निवास के लिए बर्फ की चट्टानो को काटकर गुफानुमा मकान बनाते है। बर्फ काटने का काम ३ फीट लम्बे, २ फीट ऊँचे और ८ इंच मोटे हाथी दाँत से बने तलवार की आकार के 'बर्फ चाकू' से करते है। स्थायी निवास के लिए १५ फीट चौड़े और १२ फीट ऊँचे 'स्नो हाउस' का निर्माण करते है। अस्थायी यात्रा पर रहने वाले लोग ७ फीट व्यास वाले तथा ५ फीट ऊँचे स्नो हाउस बनाकर कड़ाके की ठण्ड से अपनी जीवन-रक्षा करते है।

गर्मियो मे यात्रा के लिए एस्किमो कायाक एवं डमिआक नामक नावो का प्रयोग करते है। कायाक मे केवल एक ही व्यक्ति बैठकर शिकार को जाता है। डमिआक नाव पर पूरा परिवार बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान को यात्रा करता एवं शिकार करता है। ठण्ड के दिनो मे जमी हुई बर्फ पर यात्रा करने का मुख्य साधन स्लेज गाड़ियाँ होती है, जिन्हे कुत्ते खींचते है।

एस्किमो परिवार मे घर का बड़ा-बूढ़ा व्यक्ति ही उस परिवार का मुखिया होता है। उसका निर्णय सबको मान्य होता है। आवश्यकता पड़ने पर मुखिया दैनिक जीवन की समस्याओ पर परिवार के अन्य सदस्यो, महिलाओ और बड़े बच्चो से सलाह-मशविरा भी करता है। पुरुष एव बच्चे शिकार को जाते और महिलाएँ घर-गृहस्थी का कार्य सम्भालती हैं। वृद्ध महिलाओ को बच्चो की रखवाली का काम सौपा जाता है। शादी-विवाह, खून के रिश्ते मे ही किये जाते है। पारिवारिकता की स्नेह-सौजन्यता-उदारता उस समय देखने को मिलती है, जब खाद्य संकट अथवा अकाल का सामना करना पड़ता है। खाद्य संकट की विषम परिस्थितियो मे सभी शिकारी अपने मारे हुए शिकार को आपस मे मिल-बाँटकर खाते है। उस समय किसी की उपेक्षा नही की जाती।

एस्किमो दम्पत्ति अपने बच्चों के प्रति सदैव जागरूक रहते है। यदाकदा ही बच्चो को दण्ड देते है। आठ वर्ष की उम्र तक बच्चे यह भली प्रकार जान जाते है कि उनका जीवन कितना संघर्षमय है और तद्नुरूप अपने से बड़ो का अनुसरण करने लगते है तथा उनके कामो मे हाथ बँटाने लगते है। ये लोग यौवन आरम्भ होते ही लड़कियो की शादी कर देते है परन्तु बीस वर्ष की आयु से पहले लड़को का विवाह नहीं करते।

एस्किमो लोगो की मृत्यु दुर्घटनाओ के कारण अधिक होती है। ये मृत्यु को दार्शनिक रूप से भी स्वीकार करते है। कुछ क्षेत्रो मे बीमार या वृद्ध व्यक्तियों को बिना किसी पश्चाताप के मार दिया जाता है। मृतक व्यक्ति को घर से बाहर निकालकर ऐसे स्थान पर रख दिया जाता है, जिससे मृतात्मा रास्ता भटक जाय और फिर से मकान के अन्दर प्रवेश करके किसी को नुकसान न पहुँचा सके। किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर एस्किमो संक्षिप्त शोक ही मनाते है, व्यर्थ का कुहराम नही मचाते।

एस्किमो आत्मा की अमरता और पुनर्जीवन पर विश्वास करते है। उनकी मान्यता है कि पशु अथवा मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा शान्त हो जाती है और कुछ समय बाद फिर से उसी जाति मे नया जन्म धारण करती है। प्रत्येक जाति की एक "गार्जियन स्प्रिट" होती है। ईश्वर, देवता, दैत्य, दानव पर भी एस्किमो विश्वास करते है। उनका विश्वास है कि देवता आधे मनुष्य तथा आधे जानवर तत्त्व से बने होते है। अपनी आध्यात्मिक रक्षा करने के लिए एस्किमो तन्त्र-मन्त्र, ताबीज आदि का उपयोग करते तथा किसी अतीन्द्रिय क्षमता-सम्पन्न शैमन का आश्रय लेते है। शैमन बीमारियाँ दूर करने तथा भविष्य बताने का कार्य करते है।

सर्वथा विपरीत परिस्थितियो मे रहकर भी कैसे प्रफुल्लता, उल्लास से भरा जीवन जिया जा सकता है ? एस्किमो प्रजाति उसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। बहुसंख्यक व्यक्ति अपना सारा जीवन इसी दारोमदार मे लगा देते है। किन्तु इनके बिना भी प्रतिकूलताओ के बीच भी शारीरिक अनुकूलन एवं मानसिक समस्वरता बनाए रखकर जीना सम्भव है। सम्भव है आर्य जब मध्य एशिया से भारतवर्ष मे आये, तब ऐसे ही प्रतिकूल वातावरण मे रहे हो। हिमालय की वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी ही है जिनमे योगीजन निवास करते है। वास्तविकता यही है कि मनुष्य

र हालात मे स्वयं को ढाल सकता है, बशर्ते वह मनोबल का धनी हो।

संकल्प शक्ति सर्वोपरि

मनुष्य शरीर मे सबसे अधिक संवेदनशील अवयव मस्तिष्क है। वह मात्र सोचने-विचारने के ही काम नही आता, वरन् उसमे उत्पन्न होने वाली विद्युत सम्पूर्ण शरीर का क्रिया सचालन करती है। अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्धित असंख्यो तार शरीर के प्रत्येक घटक तक पहुँचते है। उनकी सुव्यवस्था रखते है, आवश्यक आदेश देते है तथा समस्याओ का समाधान करते है।

यह शरीर चर्चा की बात हुई, इसके अतिरिक्त सचेतन भाग द्वारा विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मन और बुद्धि द्वारा निर्णय किये जाते है और उनकी पूर्ति के लिए योजना बनाने और उन्हे कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व उठाया जाता है। इसके प्रखर होने पर ही मनुष्य प्रतिभावान बनता है और अनेक सफलताएँ, अर्जित करता है। बाह्य मस्तिष्क का स्तर मन्द होने पर मनुष्य मूर्ख कहलाता है और उसका चिन्तन अटपटा रहता है।

जीवन के हर क्षेत्र को मस्तिष्क प्रभावित करता है। उसके स्तर के अनुरूप शारीरिक स्वास्थ्य मे उतार-चढ़ाव आते रहते है। मनोविकार स्वास्थ्य को गिराने और व्यक्तित्व को अटपटा बनाने के प्रधान कारण होते है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की, गुण, कर्म स्वभाव की दिशाधारा इसी आधार पर बनती है कि मस्तिष्क को किस प्रकार प्रशिक्षित एवं अभ्यस्त किया गया।

यो कोई व्यक्ति आकांक्षाओ के अनुरूप अपने मनोबल को विकसित कर सकता है और तद्नुरूप साधन जुटा सकता है और उस दिशा मे सहायक सिद्ध होने वाले व्यक्तियों के साथ सम्पर्क बना सकता है। पर यह अपवाद रूप ही होता है। आम बात यह है कि सम्पर्क और वातावरण से मनुष्य प्रभावित होता है और साथी, सहयोगी, कुटुम्बी जिस मार्ग पर चलते है, उसी का अनुकरण होने लगता है। सत्संग की ही तुलना मे स्वाध्याय भी प्रभावशाली होता है। यदि उन्नतिशील बनाने वाले तथ्यो से भरा-पूरा साहित्य मिलता रहे और उसमे प्रस्तुत किये गये विवेकपूर्ण तथ्यो को विवेकपूर्वक अपनाया जाता रहे तो भी सम्वेदनशील मस्तिष्क उसी प्रकार ढाँचे मे ढलने लगते है जैसे कि वातावरण प्रभावित करता है।

प्रकृति भी ऋतुओ के—वय के अनुरूप मनुष्य मे कई परिवर्तन करती रहती है। कामवासना, मनोरंजन के लिए उमग यो हारमोनों से सम्बन्धित है किन्तु संचित सस्कार भी भले-बुरे कामो के लिए उत्साह प्रदान करते है। मस्तिष्क माता के गुण-कर्मों से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसलिए कहा जाता है कि सुसन्तति प्राप्त करने की आकांक्षा की पूर्ति के लिए जननी का स्तर ऊँचा उठाया जाना चाहिए। उसके स्वास्थ्य, शिक्षण के अतिरिक्त ऐसा वातावरण दिया जाना चाहिए जिसमे प्रसन्नता के साथ-साथ नैतिकता की प्रेरणा भी मिलती रहे। सुयोग्य सन्तान के लिए जननी का स्तर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूध पीने की तरह वह स्वभाव की विशेषताएँ भी बहुत कुछ माता से ही प्राप्त करता है।

यह मानसिक विकास का प्रथम अध्याय है। दूसरे अध्याय मे स्कूली प्रशिक्षण को महत्त्व दिया जाता है। पाठ्यक्रम के सहारे विविध-विधि जानकारियो की आवश्यकता है। किन्तु अध्यापको और साथियो के स्वभाव से बनने वाला वातावरण भी मानसिक विकास मे कम सहायक नही होता। इसलिए जिन्हे बुद्धिमान बनना है, उन्हे ऐसे वातावरण मे पढ़ाया जाना चाहिए जहाँ मूर्खतापूर्ण बाते न होती हो।

मानव मन की भिन्नताओ और विशेषताओ मे प्रकृतिगत सूक्ष्म प्रवाहो का भी प्रभाव पड़ता है। हर मस्तिष्क की संरचना देखने पर एक जैसी लगते हुए भी उसके न्यूरोन घटको के आकार-प्रकार मे बहुत अन्तर होता है। जिस प्रकार हथेली की लकीरे और पोरवो पर रहने वाले अंकनो मे प्रत्येक मनुष्य की स्थिति भिन्न होती है, उसी प्रकार मस्तिष्कीय न्यूरोन, जीवकोष तथा विद्युत कम्पनो मे भिन्नता रहती है। मस्तिष्क मे दो प्रधान ग्रन्थियाँ है। एक पिट्यूटरी, दूसरी पीनियल। इनसे हारमोन स्तर के स्रावो का प्रवाह बहता रहता है। उसकी न्यूनाधिकता और दिशाधारा के अनुरूप मनुष्य की अभिरुचि तथा प्रतिभा प्रवाहित होती है। वंशानुक्रम से पीढ़ियो के मिले उत्तराधिकार भी इसी क्षेत्र मे विद्यमान रहते है। ग्रह-नक्षत्रो के विकिरण मस्तिष्क पर एक प्रकार का प्रभाव डालते है तो दूसरे पर दूसरे प्रकार का। ऐसे ही अनेक कारणो से हर मस्तिष्क दूसरो से भिन्न स्तर का होता है। इन सब कारणो को देखते हुए लगता है कि मस्तिष्क एक प्रकृतिगत देन है और उसी आधार पर मनुष्य मूर्ख या बुद्धिमान होता है। स्वभाव और चिन्तन की दृष्टि से भी वह इन्ही कारणो से प्रभावित रहता है। यह तथ्य बताते है कि सौन्दर्य और कुरूपता की तरह मस्तिष्कीय विलक्षणताएँ भी प्राकृतिक कारणो एवं जन्मजात सस्कारो से प्रभावित होती है। इतने पर भी वातावरण एवं सकल्प का अपना महत्त्व है। वह इन सब प्राकृतिक कारणो को बदल सकने मे समर्थ है। कालिदास, वरदराज आदि के उदाहरण ऐसे है जिनमे उनकी आरम्भिक स्थिति देखते हुए अनुमान होता था कि ये सदा मूर्ख रहेगे। विद्याध्ययन मे भी इन्हे सफलता न मिलेगी। पर जब उनने संकल्पपूर्वक विद्वान बनने का निश्चय किया तो प्राकृतिक संरचना को उलटकर उनने तीक्ष्णता अर्जित करली और सामान्यजनो की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर के विद्वान् बन गये। इससे प्रतीत होता है कि संरचना और वातावरण का प्रभाव कैसा ही क्यो न

हो, मनुष्य उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकता है। सुधारना ही नहीं बिगाड़ना भी सम्भव है।

जिस प्रकार औषधियो का शरीर के विभिन्न अवयवो पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार सकल्प भी शरीर के ढाँचे को स्वास्थ्य को ही नही, मानसिक क्षमता को भी प्रभावित करता है और स्वभाव तक मे आश्चर्यजनक परिवर्तन लाता है। जिस प्रकार आहार का शरीर-क्रम के साथ भारी सम्बन्ध है, उसी प्रकार आकांक्षा, चिन्तन-प्रक्रिया और सकल्प-शक्ति मन-सस्थान को प्रभावित करती है। उसकी सरचना का कितना ही महत्त्व क्यों न हो, वातावरण से, प्रकृति प्रवाहो से वह कितना ही प्रभावित क्यो न रहता हो, पर इस सबमे इतनी शक्ति नही है कि वह निश्चयपूर्ण सकल्पो के दबाव से अस्वीकार कर सके। शरीर के अन्यान्य अवयवो को हम इच्छानुसार मोड़ने-मरोड़ने में एक सीमा तक ही सफल हो सकते है पर मस्तिष्क के सम्बन्ध मे बात दूसरी है उसे सुधारा, बदला भी नही, उलटा तक जा सकता है। इस दृष्टि से वह जितना सशक्त और महत्वपूर्ण है, उतना ही कोमल भी है। वह शरीर मे सबसे ऊँचे स्थान पर अवस्थित है। इतने पर भी वह सकल्प-शक्ति से ऊपर नही है। ससार मे ऐसे अगणित व्यक्ति हुए है, जिनका आरम्भिक जीवन साधारण ही नही हेय स्तर का भी था, किन्तु जब उनने अपने आपे को उच्चस्तरीय बनाने का निश्चय कर लिया तो अभ्यस्त आदते जो परिवर्तन स्वीकारने मे आना-कानी करती थी, संकल्प शक्ति के दबाव से आमूल-चूल परिवर्तित हो गई। सामान्य व्यक्ति असामान्य बन गये। इसीलिए मानव जीवन मे इच्छाशक्ति का महत्त्व मस्तिष्कीय संरचना से भी अधिक माना गया है।

बाधाओं से टकराये जो, उसे इंसान कहते हैं

सफलता सर्वप्रिय है। इसकी प्राप्ति सुगमता से नही होती है। प्रत्येक कार्य करके उन पर विजय प्राप्त करो। बिना विघ्न के हुआ कार्य जीवन को आनन्द से पूर्ण नही कर सकता है। हमे आनन्द की प्राप्ति कार्य के प्रारम्भ करने से ही होने लगती है तथा मार्ग मे विघ्न होने पर और आनन्द आयेगा। बिना कष्ट उठाये मिली हुई सफलता ऐसी लगती है जैसे हमने कोई वस्तु मुफ्त मे प्राप्त की हो। ऐसी वस्तु आनन्ददायक नही होती। सोने का महत्त्व इसलिए अधिक है क्योंकि वह आसानी से प्राप्त नही होता। लोहा अधिक उपयोगी होने पर भी पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। लोहा सोने से सस्ता है।

कठिनाई से प्राप्त वस्तु हमे अधिक आनन्द देती है। उसका हमारे मन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। दुर्लभ वस्तु आनन्द और सुख प्रदान करने वाली होती है। वह कठिनाइयो से टकराने का इतिहास लिए रहती है। वह इस बात की कसौटी का परिणाम है कि हममें ऐसा कार्य करने की क्षमता है। कठिनाई मानव के गुणो की परख का साधन है। दुर्लभता से प्राप्त वस्तुएँ ही सफलता की द्योतक है। ऐसी वस्तुओं के विषय मे ही पुस्तकों में लिखा जा सकता है, प्रवचन दिये जा सकते हैं, जो वस्तुएँ सरलता से प्राप्त हो जाये, उनके विषय मे लिखना अपने समय को व्यर्थ करना है। कोई वस्तु महत्वपूर्ण इसीलिए है कि उसकी प्राप्ति मे बाधाएँ आयीं, जिन्हे दूर करना पड़ा था। इन्हीं की प्राप्ति के आनन्द से यह संसार रसमय बना है तथा मनुष्य इसे छोड़ने को तैयार नही होता।

कठिनाइयाँ संसार मे गतिशीलता बनाये हुए है। इन्हीं के कारण मनुष्य को समय-समय पर अपनी कार्य-कुशलता का परिचय देने का अवसर प्राप्त होता है। मनुष्य की सजगता और सावधानी का कारण भी कार्य के मार्ग मे आने वाली बाधाएँ ही है। जीवन मे बार-बार ठोकरे खाकर ही मनुष्य अनुभवी होता है। बार-बार प्रयत्न करने से त्रुटियो मे सुधार होकर योग्यता मे वृद्धि हो जाती है। कष्टों से मनुष्य दृढ़ तथा साहसी बनता है। हथियार पत्थर पर रगड़ने से पैने होते है। हीरे मे चमक आ जाती है। कठिनाइयो की आवृत्ति से मनुष्य मे चेतनता आ जाती है। मनुष्य मे जो शक्तियाँ छिपी रहती है, प्रयोग मे न आने के कारण जिन शक्तियो की अभिव्यक्ति नही होती, वे प्रत्यक्ष मे आकर कार्य मे सहायक हो जाती है।

जीवन मे कार्य करने की जागरूकता तथा उससे प्राप्त आनन्द तभी स्थायी रहता है, जबकि कार्य मे कष्टों का समावेश हो। इतिहास मे प्रसिद्ध व्यक्तियो ने कष्ट सहे तो उनके सामान्य कार्य भी उनको अमर कर गये, वरना वे सामान्य रह जाते। जैसे—प्रताप, शिवाजी, गाँधी, जवाहर आदि कष्ट सहने के कारण महान बने। वे इनके बिना सामान्य मनुष्य होते। जागरूकता और परिश्रम से किये गये कार्य बिना कष्ट उठाये नही पूरे हुए। कष्ट के द्वारा प्रभु मनुष्य की परीक्षा लेते है। जो मनुष्य इस परीक्षा मे सफल होते है, उन्हे आनन्द मिलेगा। परीक्षा से डरने वाले उन्नति नही कर सकते, उनकी इच्छाएँ पूरी नही होती।

सफलता की पूर्ति धीरे-धीरे कार्य करने से होती है। इस बीच मे उन्हे कष्टो से बार-बार टकराना पड़ता है। ये विघ्न कई प्रकार से मनुष्य के सामने आते है। दैवी प्रकोप अकस्मात् कठिनाई के रूप मे सामने आते है। हम भूलो से भी कठिनाइयाँ अनुभव करते रहते है। आकस्मिक कठिनाइयाँ हमारे कार्य-पथ को सुगम नही रहने देती और प्रायः हम कार्य छोड़ने तक को प्रस्तुत हो जाते है। कठिनाई वास्तव मे वह नही होती जो हम समझते है बल्कि वह हमारे अविवेक का प्रतीक होती है। अविवेकी मनुष्य उसको इस रूप मे देखता है। वास्तव मे

परिस्थितियाँ ही कठिनाई का परिवर्तित रूप होती है। हम अपनी बुराई के अनुसार कुछ का कुछ समझ जाते है। छोटी-सी बात हमे वृहद रूप मे दिखलाई देने लगती है। हमारा पुराना अभ्यास हमे बार-बार ऐसा सोचने पर विवश कर देता है।

स्वभाव परिवर्तन से हम कठिनाई पर विजय प्राप्त कर सकते है। स्वभाव शीघ्र बदलना सरल नही होता। स्वभाव बनने मे भी पर्याप्त समय लगता है, इसी प्रकार स्वभाव को बदलने मे भी समय लगेगा। अतः हमे धैर्य, साहस और दृढ़ता का प्रयोग करना चाहिए। भूल होने पर सावधानी से कार्य करना चाहिए। पत्थर और रस्सी जाते-जाते वहाँ पर निशान बना देती है। धैर्य के साथ परिस्थितियो के अनुसार अपने को ढालने का प्रयत्न करे तो आसानी हो जायेगी, हम सफल हो जायेगे। आकस्मिक परिस्थितियो को आने से रोकना हमारे वश की बात नही है। परन्तु उसे सहन करने के लिए अनुभव और अभ्यास की आवश्यकता है।

आकस्मिक कठिनाई उपस्थित होने पर हम उसे नही रोक सकते परन्तु उसके रूप को समझ सकते है। तेज धूप घास को जला डालती है। परन्तु हमेशा के लिए घास समाप्त नहीं होती, वर्षा होने पर वह फिर हरी-भरी हो जायेगी। ईश्वर ने जिसे जीवन दिया है वह जीयेगा, उसे कोई मार नही सकता। प्रकृति का रहस्य बड़ा विचित्र है। वह विपत्ति की विरोधी सुविधा भी अपने आप प्रदान करती है। बीमारी के बाद आरोग्य प्रदान करने के लिए भूख दी है जो जल्दी ही क्षति-पूर्ति कर देती है। ग्रीष्म के बाद वर्षा, ठण्ड के बाद गर्मी, रात्रि के बाद दिन तथा अन्धकार के बाद प्रकाश का दर्शन होता है। रोग, शोक आदि स्थायी नही है उन्हे तो आने की गति से ही जाना है और फिर क्षति-पूर्ति भी होती है।

आपत्ति का आना दुःखदायी है। परन्तु मन पर उसकी प्रतिक्रिया का विशेष महत्व है। विपत्ति के बाद घबराहट होना विशेष रूप से भयावह है जो हमारी जीवन-शक्ति को खीच लेती है। इससे भविष्य मे शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक संतुलन बिगड़ जाता है। आकस्मिक विपत्तियाँ बड़े-बड़े महान पुरुषो पर भी छाई रही। सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या है ? इस संसार मे विरोधी भावो का आवागमन तो चलता ही रहता है। ये तो मनुष्य के कर्मो का फल देने, मनुष्य को जाग्रत करने, उसके कार्यों में साहस और बल भरने के लिए आती है। समय पर इनके कारण कार्य का क्रम बदलना पड़ जाय तो कोई हानि नही। हमे अपने को स्थिति के अनुकूल बदल लेना चाहिए।

पहले संपन्न थे, अब अभावग्रस्त है तो हमे समाज द्वारा किये गये उपहास से दुःखी नही होना चाहिए क्योंकि उपहासकर्त्ता विवेकशील प्राणी नही होते। उन्हे इस कार्य को करने की फुरसत नही है। मूर्ख आदमी के उपहास को हम रोक नहीं सकते और उसके उपहास का कोई मूल्य भी नही है। इन विपत्तियो द्वारा होने वाली क्षति से हम चाहे तो बच सकते है। वास्तविक क्षति विपत्तियो से नही उसके पश्चात् होने वाली विपत्ति से होती है। कठिनाई से वीरतापूर्वक लड़ना इसका एक उपाय है। वीर ही विपत्ति को हँसते-हँसते झेलते है। वीर अपने भविष्य को उज्ज्वल देखता है। इसलिए वह धड़ काटने वाली तलवार का मुकाबला करता है। मरूँगा तथा स्वर्ग को प्राप्त करूँगा अथवा पृथ्वी को भोग करूँगा, इस भावना से उसके सामने हमेशा उत्साह तथा आशा का संचार होता रहता है। धैर्य, साहस और प्रयत्न उसके बुरे समय के साथी होते है। उसका इनके रहते कुछ नही बिगड़ सकता।

बुरे समय मे मानसिक संतुलन बनाये रखने वाले व्यक्ति दृढ़ रहते है और कठिनाइयो को हँसते-हँसते झेलते रहते हैं। मानसिक संतुलन से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है। मित्र और शत्रु सीमा मे रहते है। उसको अपनी भूलो रूपी दुर्घटनाएँ नही सता सकती। विवेकशील व्यक्ति दुर्भाग्य का दुखड़ा नही रोता।

हमे लज्जा बुरे काम से करनी चाहिए, सद्गुण प्रेरित कर्मों पर गर्व करना चाहिए। संसार मे महापुरुषो ने संकटो को हँसते-हँसते झेला। मुसीबतो के थपेड़े उन्हे अपने स्थान से डिगा न सके और अन्त मे वे सफल हुए। निर्भय, निसंकोच तथा ग्लानिरहित होकर कार्य मे लगे रहना चाहिए। घबराना नही चाहिए, तभी हम कठिनाइयो पर विजय पायेगे। विघ्नो का आना तो आवश्यक है। उनका साहस से मुकाबला करते हुए अपने मनोबल को ऊँचा रखना चाहिए। जिससे एक वीर का जीवन जी सके।

प्रतिकूलताओं की भट्ठी में तपकर निखरता है व्यक्तित्व

प्रगति-पथ पर आगे बढ़ने के लिए मार्ग मे आये विघ्न-बाधाओ का साहस एवं पुरुषार्थ द्वारा मुकाबला करना पड़ता है। मुसीबतो, कठिनाइयो से जो घबरा जाते है, उनका सफलता की मंजिल तक पहुँच पाना सन्देहास्पद ही बना रहता है। पर जो प्रतिकूलताओ से जूझते हुए अपनी योग्यता-प्रखरता बढ़ाते है, उन्हे श्रेय, सम्मान एव सफलता मिलने मे कोई सन्देह नही रह जाता। संसार मे वैज्ञानिको-अनुसंधानकर्ताओ से लेकर महापुरुषो तक मे से अधिकाश को अपने जीवनकाल मे विपन्न परिस्थितियो से जूझना पड़ा है।

विश्वविख्यात ज्योतिर्विद् और खगोल शास्त्री एरिग्मे बड़े ही दुर्दिन भरी परिस्थितियो मे पले और बड़े हुए थे। बचपन मे उन्हे दो समय की रोटी कड़ी मेहनत- मजूरी करने के उपरान्त ही मिल पाती थी। पूरे परिवार का भार उन्हीं पर था। ऐसी स्थिति मे स्कूल जाने का अवसर भी

बहुत कम मिल पाता था। आगे बढ़ने तथा महानता अर्जित करने की इच्छा सदैव झकझोरती रहती थी, पर विपन्नता ऐसी थी जो उन्हे रोजी-रोटी कमाने मे ही व्यस्त रखती थी। किशोरावस्था इसी उधेड़-बुन मे व्यतीत हो रही थी कि अपनी योग्यता किस प्रकार बढ़ाई जाय ? किसी तरह एक पुस्तक विक्रेता के यहाँ टूटी-फूटी किताबो पर जिल्द चढ़ाने का काम मिल गया। एक दिन वे किसी पुरानी किताब पर जिल्द चढ़ाने का काम कर रहे थे कि पास मे रखी रद्दी कागज की ढेरी पर हाथ से लिखा हुआ एक कागज का टुकड़ा दिखाई दिया। उसे उठाकर वे पढ़ने लगे। वह कागज एक पत्र की नकल था जो डी. एलम्बर्ट नामक व्यक्ति ने अपने किसी मित्र को लिखा था । उस पर लिखा हुआ था—"आगे बढ़ो श्रीमान ! आगे बढ़ो ! जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे, तुम्हारी कठिनाइयाँ अपने आप दूर होती चली जायेगी और तुम देखोगे कि उन कष्ट-कठिनाइयो के बीच मे ही प्रकाश उदित हुआ है और जिसने उत्तरोत्तर तुम्हारा मार्ग आलोकित किया है।"

एरिग्मे के लिए यह पक्तियाँ मार्गदर्शक बन गईं। उन्हे जीवन मे नया प्रकाश मिला। अब तो दुकान पर मरम्मत के लिए जितनी भी पुस्तके आतीं, वह उन्हे पढ़ डालते। इसका परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर वे विश्वविख्यात स्तर के ज्योतिर्विद्, खगोलवेत्ता एवं विविध विषयो के विद्वान बन गये।

वस्तुतः प्रतिकूलताएँ एवं विपत्तियाँ जीवन की कसौटी है, जिनमे मनुष्य के व्यक्तित्व का रूप निखरता है। इनसे खुलकर निबटने से इच्छाशक्ति प्रबल होती है और बड़े काम करने की क्षमता प्राप्त होती है। मुसीबतो मे मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ एकत्रित और संगठित होकर काम करती है। सज्जन की कोई भी साधना कठिनाइयो मे होकर निकलने पर ही पूर्ण होती है।

अतः ऐसी परिस्थितियो की परवाह न करके जो व्यक्ति इस निश्चय से कार्य मे जुटे रहते है कि उन्हे अपना उद्देश्य पूरा करना ही है, इसके लिए कितना ही उद्योग एवं परिश्रम क्यो न करना पड़े, वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते है। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री निवास रामानुजम् का उदाहरण सर्वविदित है। मद्रास के एक बहुत ही गरीब घराने मे उनका जन्म हुआ था। पढ़ने-लिखने मे कमजोर थे। अंग्रेजी विषय मे अच्छे नम्बर न आने के कारण अगली कक्षा मे प्रवेश नही मिला। १५ वर्ष की आयु मे ही पढ़ाई बन्द हो गई। निराशा और हताशा की इन्ही घड़ियो मे उनके हाथ कही से गणित की कोई पुस्तक लग गई। उस पुस्तक के सहारे ही उनने गणित का अभ्यास बढ़ाया और इस विषय मे इतनी पारगतता प्राप्त कर ली कि कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने उन्हे अपने यहाँ अध्ययन के लिए आमन्त्रित किया। इसके बाद प्रयत्न और पुरुषार्थ के बल पर उनकी जीवन पुस्तक मे सफलता के अध्याय जुड़ते गये। आज जब भी विश्वभर मे किसी स्थान पर गणित के विकास में योगदान की चर्चा चलती है तो रामानुजम् का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। जिनने अल्पायु मे ही अपनी विलक्षण प्रतिभा से सारे विश्व को प्रभावित किया था।

सच तो यह है कि विघ्न-बाधाएँ मानवी पुरुषार्थ की परीक्षा लेने आती है। व्यक्तित्व भी अधिक प्रखर, परिपक्व विपरीत परिस्थितियो में ही बनता है। लायोन्स नगर मे एक भोज आयोजित था। नगर के सभी प्रमुख विद्वान्, साहित्यकार एवं कलाकार आमन्त्रित थे। प्राचीन ग्रीस की पौराणिक कथाओ के चित्रो से सम्बन्धित एक विवाद की गुत्थी किसी से भी नही सुलझ रही थी। तभी गृहस्वामी ने अपने एक नौकर को बुलाया और सम्बन्धित विवाद को निपटाने के लिए कहा। सभी को आश्चर्य हुआ कि भला नौकर क्या समाधान देगा ? किन्तु नौकर ने सम्बन्धित विषय पर जो तर्क, तथ्य प्रस्तुत किये, उससे न केवल विवाद समाप्त हुआ, वरन् सभी विद्वान उसकी तार्किक विवेचना को सुनकर हतप्रभ रह गये। उनमे से एक विद्वान ने नौकर से पूछा—"महाशय आपने किस विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की है ? नौकर ने बड़ी ही विनम्रता से उत्तर दिया—"श्रीमान् कई स्कूलो से शिक्षा प्राप्त की है, किन्तु मेरा सबसे अधिक प्रभावशाली शिक्षण 'विपत्ति' रूपी पाठशाला मे हुआ है। विपत्तियो से जूझने वाला यही बालक आगे चलकर जीन जेक रूसो के नाम से प्रख्यात हुआ, जिसकी क्रान्तिकारी विचारधारा ने प्रजातन्त्र को जन्म दिया।

सुप्रसिद्ध विद्वान् विलियम काबेट ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि "प्रतिकूलताएँ" मनुष्य के विकास मे सबसे बड़ी सहचरी है। आज मै जो कुछ भी बन पाया हूँ, विपन्न परिस्थितियो के कारण ही सम्भव हो सका है। जीवन की अनुकूलताएँ सहज ही उपलब्ध होतीं तो मेरा विकास न हो पाता। काबेट के आरम्भिक दिन कितनी विपत्ति एवं गरीबी मे बीते, यह उनके जीवन-चरित्र को पढ़कर जाना जा सकता है।

अभाव, अवरोध, मुसीबते वस्तुतः अभिशाप उनके लिए है जो परिस्थितियो को ही सफलता, असफलता का कारण मानते है। अन्यथा आत्मविश्वास एवं लगन के धनी ध्येय के प्रति दृढ़ व्यक्तियो के लिए तो वे वरदान सिद्ध होती है। भट्टी मे तपने के बाद सोने मे निखार आता है। प्रतिकूलताओ से जूझने से व्यक्तित्व निखरता और परिपक्व बनता है। गिने-चुने अपवादो को छोड़कर विश्व के अधिकांश महापुरुषो का जीवन-चरित्र पढ़ने पर यह पता चलता है कि वे अभावग्रस्त परिस्थितियों में पैदा हुए, पले। पर उन्होने जीवन की विपन्नताओं को वरदान माना। संघर्षो को जीवन बनाने तथा पुरुषार्थ को जगाने का एक सशक्त माध्यम समझा। फलतः वे बाधाओं को चीरते हुए सफलता के शिखर पर चढ़े। उन्होने यह सिद्ध कर

दिया कि परिस्थितियाँ मानवी विकास में बाधक नहीं बन सकती, अवरोध प्रचण्ड पुरुषार्थ के समक्ष टिक नहीं सकते।

संसार मे ईसा, सुकरात, कार्लमार्क्स आदि ऐसे ही महापुरुष हुए हैं, जिनको जीवन भर असफलताओ, संकटो तथा विरोधों का सामना करना पड़ा। किन्तु वे एक क्षण को न तो ध्येय से विचलित हुए और न निराश। वे निरन्तर पुरुषार्थरत एवं प्रयत्नशील रहे। फलतः उन्हे लोगो ने अपने जीवन का आदर्श बनाया।

दार्शनिक सुकरात का जन्म एक निर्धन मूर्तिकार के घर हुआ था। पिता की छत्र-छाया उठ जाने के बाद माँ के साथ गरीबी में दिन व्यतीत करते हुए भी वह अध्ययन मे लगे रहे। मेहनत-मजदूरी करते हुए वह अपने अध्यवसाय मे निरत रहे। घर का खर्च चलाने का भी अतिरिक्त दायित्व बाल्यावस्था में ही उनके ऊपर आ गया, पर गरीबी उनके विकास मे बाधक नही बन सकी। अपने पुरुषार्थ एवं मनोयोग से एक दिन वे दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् बने।

इसी तरह कार्लमार्क्स का जन्म भी गरीबी में हुआ। मरते दम तक विपन्नताओ ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। इस निपट निर्धनता मे भी वे वैचारिक साधना करते रहे और एक दिन समाज की नई व्यवस्था "साम्यवाद" के प्रणेता बने। जीवनभर संघर्षरत रहते हुए भी उन्होंने "कैपिटल" जैसे विश्वविख्यात ग्रन्थ की रचना की। इस कार्य में उनकी पत्नी मेरी ने उनकी पूरी मदद की।

अनुकूलताएँ एवं साधन-सुविधा न होते हुए भी कितने ही निर्धन बच्चे विद्वान, ज्ञानी एवं महामानव बने, इससे भारतीय इतिहास के पन्ने भरे पड़े है। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, कालिदास, सूरदास, तुलसीदास से लेकर विद्यासागर, प्रेमचन्द, महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला आदि का जीवन उठाकर देखा जाय तो वह कठिनाइयो और विपन्नताओ का एक जीता-जागता इतिहास मिलेगा। ये संकटो की तनिक भी परवाह किये बिना अपने पथ पर अविचल और अबाध गति से बढ़ते रहे। फलत· सफल हुए और अभिनन्दनीय बने।

आपदाएँ, मुसीबते मानव जीवन के लिए खराद का काम करती है। उनसे लड़ने और विजय प्राप्त करने से मनुष्य के जीवन मे जिस आत्मबल का विकास होता है, वह एक अमूल्य सम्पत्ति होती है। जिसको पाकर अपार सन्तोष होता है। अवरोधो से सघर्ष पाकर जीवन मे एक ऐसी तेजी उत्पन्न होती है जो मार्ग मे आये समस्त झाड़-झंखाड़ो को काटकर दूर कर देती है।

स्वामी विवेकानन्द की जीवन-गाथा इसका प्रमाण है। अपने पिता की मृत्यु के बाद नरेन्द्र को भारी विपत्तियो का सामना करना पड़ा। कई-कई दिनो तक भूखा सोना पड़ा। रोजगार की तलाश मे दर-दर भटकने पर भी कहीं सफलता नही मिली। संन्यास लेने के बाद कठिनाइयो का अवरोध और बढ़ता गया। अमेरिका के शिकागो शहर मे होने वाले सर्वधर्म सम्मेलन मे भाग लेने गये तो पहला दिन बहुत ही कष्टमय बीता। बोस्टन शहर के जिस होटल मे रात्रि काटने के लिए गये, वहाँ सीढ़ी पर पैर रखते ही दरबान ने काले भारतीय कहकर भगा दिया। सड़क की ओर बढे तो बर्फ गिरने लगी। जाये तो जाये कहाँ ? भूखे प्यासे तो थे ही। आँखो के सामने अँधेरा छा गया। पैर भी जवाब दे रहे थे। पर करते क्या ? आगे बढ़ना ही जिनके जीवन का लक्ष्य ठहरा। वे आगे बढ़ते गये और एक रेलवे गोदाम के पास जा पहुँचे। गोदाम बन्द था। अतः बाहर पड़े लकड़ी के एक बड़े पैकिंग बाक्स मे घुसकर जैसे-तैसे रात काटी। सुबह बाहर निकले तो ठंडक के मारे शरीर सुन्न पड़ गया था। एक महिला ने उन्हें अपने घर ले जाकर भोजन एवं गर्म कपड़े की पूरी व्यवस्था की। दूसरे दिन उन्हे गन्तव्य स्थल पर पहुँचाया, जहाँ ११ सितम्बर, १८९३ को हजारो श्रोता उनके भाषण से मन्त्र-मुग्ध हो उठे थे। नगर मे स्थान-स्थान पर उनके चित्र लगाये गये, जिसके नीचे मोटे-मोटे अक्षरो मे लिखा था—स्वामी विवेकानन्द। ऐसा नही कि संसार मे सारे महापुरुष असुविधापूर्ण परिस्थितियो मे ही जन्मे और पले हों। ऐसे अनेक महामानव हुए है जिनका जन्म बहुत ही सम्पन्न परिस्थिति मे हुआ। वे चाहते तो जीवनभर सम्पन्नतापूर्ण परिस्थिति में रहते और कठिनाइयो से बचते हुए बहुत से काम कर सकते थे। किन्तु उन्होने वैसा नही किया, वरन् असुविधापूर्ण परिस्थितियो को स्वेच्छापूर्वक वरण किया। बुद्ध, महावीर, अरविन्द, गाँधी आदि महापुरुष ऐसे ही थे जिन्होंने जान-बूझकर कंटकाकीर्ण मार्ग चुना। संकट पर संकट आते गये, पर वे अविचल भाव से उनका सामना करते हुए अपने गन्तव्य पथ की ओर बढ़ते ही गये और अततः अपने उद्देश्य मे सफल हुए।

ऐसे अनेक उदाहरण है जो यह बताते है कि प्रगति प्रतिकूलताओ के बीच जीते हुए प्राप्त की जाती है। ऐसे अपवाद ही होते है, जिन्हे सब कुछ बिना परिश्रम के प्राप्त हो जाता है। सुख, समृद्धि, प्रतिभा, कीर्ति, यश प्रखर पुरुषार्थ के ही चमत्कार है, इसे हमेशा याद रखा जाना चाहिए।

असम्भव को सम्भव बनाने वाला पुरुषार्थ

मनुष्य शरीर की सामर्थ्य एवं इच्छाशक्ति की प्रबलता को कई पुरुषार्थियो ने कसौटी पर कसा है एवं इस क्षमता से, जिजीविषा से, अपने साहस-पराक्रम—'एडवेंचर' के माध्यम से अनेकानेको को प्रेरणा भी दी है। हाड़-माँस का यह पिण्ड क्या कुछ नही कर दिखा सकता, इसके उदाहरण विगत इतिहास मे भी एवं पिछले कुछ दशकों मे भी देखने को मिले है। वस्तुत· यह दैवी अनुदान सबको सहज रूप से मिला है। आत्मविस्मृति के कारण इसे प्रयोजन रूप मे अधिसंख्यक

नहीं ला पाते तथा किसी तरह जीवन शकट खींचते, अपनी यात्रा पूरी करते रहते हैं।

सर फ्रांसिस विचेस्टर को कौन नहीं जानता ? जिन्होंने सारे विश्व की परिक्रमा ढलती आयु मे मात्र एक शरकण्डे की नाव से की। यह तो बहुचर्चित साहसी की बात हुई। पर कुछ ऐसे भी हैं जिनके दुस्साहसी विवरण कहीं छपे नहीं, किसी ने उन्हे जाना नहीं। एलेन गेरवा नामक एक फ्रांसीसी युवक ने किसी उपन्यास मे स्लोकम नामक नाविक की छोटी-सी हाथ की बनी नाव द्वारा विश्वयात्रा के विषय मे पढ़ा था। इसी से वह प्रेरित, उत्साहित हुआ। उसने सोचा—जब पहले हाथ से बनी एक कमजोर नाव से स्लोकम ने यात्रा कर ली तो वह एक मजबूत नाव के सहारे क्या एक छोटी यात्रा अकेले नहीं कर सकता है ? उसने सोचा कि वह अपनी नाव से जिब्राल्टर से न्यूयार्क तक की ४२०० मील की यात्रा अकेले ही पूरी करेगा।

जिब्राल्टर भूमध्य सागर व अटलांटिक महासागर के मिलन बिन्दु पर स्थित है एवं एक ब्रिटानी उपनिवेश है। यहाँ से न्यूयार्क तक का मार्ग अटलांटिक पार कर बड़े जलयानो के लिए तो ३००० मील का है, पर इस महासागर मे जो तूफानी हवाएँ चलती है, उनसे बचने के लिये छोटी नावो को १२०० मील का अतिरिक्त चक्कर काटकर जाना पड़ता है। इसीलिये मार्ग इतना लम्बा हो जाता है। बड़े जलयान उन दिनो तीन माह मे इस मार्ग को पार कर जाते थे। पर गेरवा ने लगातार चलने के लिए चार माह लायक खाद्य सामग्री एकत्र कर ली और एकाकी यात्रा का ही सरजाम जुटाया। उसके इस निश्चय पर अधिकांश ने उसे निरुत्साहित ही किया तथा इस खतरे मे न पड़ने की सलाह दी। दृढ़ संकल्प के धनी इस युवक ने किसी की न सुनी और अपनी यात्रा आरम्भ कर ही दी।

वह एक सिविल इन्जीनियर तो था ही। उसने अपनी नौकरी से लम्बी छुट्टी ली एवं ६ जून, १९२२ को अपनी लम्बी यात्रा पर निकल पड़ा।

यात्रा कुछ ही आगे बढ़ी होगी कि तूफानो ने नाव की पाल के चिथड़े उड़ा दिये। हिलोरें इतनी तेज थीं कि उसे अपनी खाद्य सामग्री तक बचाने मे सारा श्रम नियोजित करना पड़ा। अपना स्टोव वह तीन दिनो तक जला ही नही पाया, खाना कैसे पकाता ? तूफान थमा, २ दिन और शांति से बीते कि वर्षा ने जोर मारना आरम्भ कर दिया। वर्षा के पानी ने सोने-जागने की, आहार-सफाई की व्यवस्थाएँ पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर दीं। कई बार ऐसे अवसर भी आये कि नाव उलटने का खतरा पैदा हो जाता था। उसने एक बार नाव की पाल पर—बल्ली पर चढ़कर अपनी जान बचाई। जिन्दगी और मौत के बीच घमासान लड़ाई होती रही, पर यात्रा जारी रही। समुद्री रोगो का आक्रमण हुआ, कई बार लगा—कहीं वह रास्ता भटक कर टेढ़ी दिशा में तो नहीं चल पड़ा है, पर सारी प्रतिकूलताओं से जूझता हुआ वह अपने लक्ष्य की ओर अनवरत गति से बढ़ता ही गया।

उसकी नाव १०१ दिन बाद जब न्यूयार्क के लॉंग आयलैण्ड बन्दरगाह पर पहुँची तो उपस्थित भीड़ ने हर्षोल्लास मे उसका स्वागत किया। वह पहला व्यक्ति था, जिसने इतने कम समय मे मात्र कुछ साधनों के सहारे अटलांटिक पार करने का दुस्साहस कर दिखाया था। अभिनन्दन किये जाने पर प्रसन्नता से अभिभूत रुंधे गले से वह मात्र इतना ही कह पाया—"मनुष्य के लिए असम्भव को सम्भव कर दिखा पाना कुछ कठिन नहीं है। मैं उत्साह और साहस के समन्वय से मानवी क्षमता और जिजीविषा की अजेय सामर्थ्य के प्रति मानव-समाज का ध्यान आकर्षित करना चाहता था। मुझे प्रसन्नता है कि मुझ जैसे छोटे अकिंचन प्राणी ने यह कर दिखाया। यह कोई बहुत बड़ा चमत्कार नही है, पिण्ड की सामान्य सामर्थ्य का सदुपयोग भर है।"

दस हजार मील की समुद्र-यात्रा

१९ नवम्बर, १९६६ को ९३ वर्षीया श्रीमती एमिली करेल अपने ६१ वर्षीय बेटे, उसकी पत्नी और दो बेटियो के साथ एक ४० फुट लम्बी डोंगी मे बैठकर १० हजार मील की यात्रा करके केन्या से सकुशल आकलैण्ड पहुँची। इस साहसिक यात्रा के साथ मनुष्य के अदम्य उत्साह का जहाँ इतिहास जुड़ा हुआ है, वहाँ कठिन परिस्थितियो और संघर्षों मे भी धैर्य न छोड़ने का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत है।

श्रीमती एमिली केन्या मे रहती थी। वहाँ उनका घर और निजी जायदाद थी। किसी प्रकार का कोई अभाव न था। मनुष्य जीवन के साथ आखिर उतार-चढ़ाव तो लगे ही हैं। उनसे अब तक किसे छुटकारा मिल पाया है ? एमिली के जीवन मे आकस्मिक तूफान आया। केन्या की सरकार बदलने के साथ-साथ उनका भाग्य-सितारा भी डूब गया। उनकी सारी धन-सम्पत्ति छीन ली गई और बेटे का फार्म भी सरकार ने ले लिया।

परिस्थितियो से घबड़ा जाने वाले लोग उल्टा-सीधा कर डालते है। पर साहसी लोगो की पहचान ते कठिनाइयो मे ही होती है। जो लोग बुरी से बु परिस्थिति मे भी अपना मानसिक सन्तुलन नही बिगाड़ और धैर्य से काम लेते है, वे अन्ततः न केवल बाध पार कर लेते है वरन् पहले जैसी स्थिति प्राप्त करने भी सफल होते है।

९३ वर्षीय वृद्धा और उनका ६१ वर्षीय बेटा दोनो लगभग पूरे वृद्ध। घर के और सब लोग बुरी तरह हताश ऐसे समय वृद्धा ने अपनी जिन्दादिली नहीं छोड़ी। एमिल अपनी परिस्थितियो पर गम्भीरता से विचार किया और देख यहाँ रहना उनके हित मे नहीं है और बाहर जाने का भी

साधन न.था। समस्या के निदान के लिए उन्होने मुसीबतो के अन्तिम दौर मे साहस को साथी बनाया और अपनी ४०० फुट लम्बी डोगी पर सवार होकर आकलैण्ड के लिये चल पड़े।

१० हजार मील की समुद्री यात्रा सो भी डोगी से, बड़ा ही खतरनाक काम था। समुद्र मे जोर के तूफान आते है, जिनमे बड़े-बड़े जहाज तक डूब जाते है। बड़ी-बड़ी मछलियो के आघात भी कम नही होते। डोगी के डुबा देने के लिये तो यही काफी होते है। पर निस्सहाय मरने अथवा प्रताड़ित होने की अपेक्षा साहसपूर्वक प्रयत्न करना ही उन्होने उचित समझा और विश्वासपूर्वक अपनी डोगी समुद्र मे तैरा दी।

जहाँ जोखिम उठाने की हिम्मत होती है, सफलता की सम्भावनाएँ भी वही निवास करती है। ऐसे अवसर देखे गये है जब लोगो की सारी धन-सम्पत्ति नष्ट हो गई पर वे घबराये नही फिर हिम्मत से बढ़े और पहले से भी अच्छी स्थिति पाई। मृत्यु शैय्या पर पड़े भीषण रोग के रोगियो ने विश्वास, आशा और उत्साह के बल पर जीवन पाया। जिन्हे रामायण की चौपाई भी वेद की ऋचा लगती थी उन्होने उपनिषद् और स्मृतियाँ कठस्थ की। बात सिर्फ इतनी है कि मनुष्य मे हिम्मत, आत्मविश्वास, सफलता की भावना बनी रहनी चाहिये।

आत्मविश्वास के सहारे छोड़ी गई नाव तूफानो और बवंडरो से टकराती हुई आगे बढ़ती रही और कई दिन तथा रातो की यात्रा करते हुए आखिर वे अपने गन्तव्य स्थल पर जा पहुँचे। परिस्थितियो से घबड़ा गये होते तो बेचारो का पता नही क्या हाल होता ? हिम्मत न छोड़ी तो किनारे जा लगे। आकलैण्डवासियो ने उत्साहपूर्वक इन पुरुषार्थियो का स्वागत किया और अब वे अच्छी स्थिति मे भी बताये जाते है।

सफलता का श्रेय संकल्पवानों को

मनुष्य की सम्भावनाएँ असीम है। उसके अन्तर्गत छिपी हुई क्षमता का पूरी तरह मूल्यांकन किया जा सकना कठिन है। महामानवो के अगणित इतिहास इस बात के साक्षी है कि साधनहीन परिवारो मे उत्पन्न होना तथा विपरीत परिस्थितियो का घेरा मनुष्य की प्रगति मे देर तक बाधक नही रह सकता, यदि उसमे आगे बढ़ने की अदम्य आकांक्षा विद्यमान हो।

देखा जाता है कि लोग ऐसी ही दीन-हीन परिस्थितियो मे पड़े हुए हेय और गया-गुजरा, असफल-जीवन जीते रहते है। किसी तरह मौत के दिन पूरे करते है, न कोई आशा न उमंग, न कोई योजना न दिशा। मानो वे पेट पालने और बच्चे पैदा करने भर के लिए जन्मे हो। उसी जंजाल के समेटने के लिये कुछ करते रहने के लिए विवशता मे फँसे पड़े हो।

क्षमता रहते हुए भी इस प्रकार का नीरस जीने का कारण है—आकांक्षाओ का अवसाद, प्रगति के लिये उत्साह का अभाव और आशाजनक भविष्य चिन्तन की उपेक्षा। कुछ योजना ही सामने न हो तो प्रयत्न किस प्रकार सम्भव होगे और प्रयत्नो के बिना सफलता का आनन्द कैसे मिलेगा ? योजना बनने के लिए कुछ बनने और कुछ करने की इच्छा होनी चाहिए। यह इच्छा भी मात्र कल्पना-जल्पना बनकर रह जाय तो निरर्थक है। इच्छा जब उत्कट होती है तब उसे आकांक्षा कहते है और आकांक्षा की पूर्ति के लिये अपने सारे मनोयोग और पुरुषार्थ को नियोजित करने का नाम है—संकल्प। जब प्रगति के पथ पर संकल्पपूर्वक बढ़ा जाता है तो प्रतिकूलता अनुकूलता मे बदलती है और अँधेरे मे प्रकाश उत्पन्न होता है।, आरम्भ मे जो बात बहुत कठिन लगती थी, वह उतनी ही सरल होती चली जाती है।

श्रुति कहती है—'संकल्पमयोऽयंपुरुषो' अर्थात व्यक्ति संकल्पो की प्रतिमूर्ति है। उसके पुरुषार्थ की सार्थकता सकल्प की उत्कृष्टता पर निर्भर है। जब अभीष्ट प्रयोजन के लिये साहसपूर्वक कमर बाँध ली जाती है और निश्चय कर लिया जाता है कि कठिनाइयो का धैर्य और साहसपूर्वक सामना करते हुए उनके निराकरण के लिये तत्पर रहा जायेगा तो फिर वह निष्ठा भरी मनुष्य की सामर्थ्य देखते ही बनती है। मनुष्य की संकल्प शक्ति संसार का सबसे बड़ा चमत्कार है। उसके आधार पर छोटे स्तर पर खड़ा हुआ व्यक्ति ऊँचे से ऊँचे स्थान तक पहुँच सकता है।

असफलताओ के पीछे एक ही प्रधान कारण रहता है कि जितनी तत्परता और जितने मनोयोगपूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए था, उतना नही हुआ। असफलता यही उपदेश देने आती है कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अधिक हिम्मत, अधिक बहादुरी और अधिक निष्ठा की जरूरत थी जो पिछली बार पूरी नही की जा सकी। अगली बार अधिक सतर्कता और मेहनत के साथ तत्पर होना चाहिए ताकि सम्भावना संदिग्ध रहने का कोई कारण शेष न रह जाये।

अँग्रेजी कहावत है कि 'परमात्मा उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते है।' संस्कृत में एक उक्ति है—'उद्योगी पुरुषो को ही लक्ष्मी मिलती है।' निस्संदेह प्रबल पुरुषार्थ पहाड़ो को काटकर अपना रास्ता बना लेता है। प्रयत्न की प्रबलता को देखकर अनेक सहयोगी खड़े हो जाते है और साधनो के अभाव की आवश्यकता पूरी करते है। यह प्रबल प्रयत्न उन्हीं के द्वारा सम्भव है जिनकी संकल्प शक्ति उत्कट हो। 'जहाँ चाह वहाँ राह' एक तथ्य है जो मनस्वियो द्वारा अनेक बार आजमाया जा चुका है। रामायण का यह प्रतिपादन अक्षरशः सही है—जिहि कर जिहि पर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु संदेहू। सच्चा स्नेह अर्थात् तीव्र आकांक्षा। तीव्र आकांक्षा अर्थात् दृढ़तापूर्वक अभीष्ट पथ पर तब तक

चलते रहने का अडिग संकल्प, जब तक कि मंजिल तक पहुँच न जाया जाय।

अगणित संभावनाओं का पुञ्ज मनुष्य इसीलिए पिछड़ा पड़ा रहता है कि उसकी संकल्प-शक्ति क्षीण होती है। जैसी-तैसी परिस्थिति मे पड़े रहने मे ही जिसे संतोष हो, जो उच्च स्थिति प्राप्त करने और आगे बढ़ने के लिये आतुर नही है, उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर करने वाली परिस्थितियाँ अनायास नही मिल सकतीं। थाली मे परोसी रोटी भी जब-तक ग्रास तोड़ने और चबाने का पुरुषार्थ न किया जाय, पेट मे अपने आप नही पहुँचती। पुरुषार्थ के प्रतिफल ही समृद्धि और सफलता के रूप मे सामने आते रहते है। पर यह पुरुषार्थ अनायास ही नहीं हो जाता। परिश्रम करने मे जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसे सहन करने के लिए शरीर और मन सहज ही तैयार नही हो जाते है, इसके लिये संकल्प का चाबुक चाहिए। इसके बिना आलस्य और प्रमाद का किसी प्रकार दिन गुजारने वाला ढर्रा ही अभ्यस्त बना रहता है। उसे बदलने के लिये जिस उथल-पुथल की आवश्यकता पड़ती है, उसे सुदृढ़ संकल्प ही पूरा कर सकता है।

ऐसी घटनाओ से इतिहास के अगणित पृष्ठ भरे पड़े है जिनमे योग्यता, साधन एवं परिस्थिति के अनुकूल न होने पर भी हिम्मत के धनी लोगो ने अपनी इच्छाशक्ति का सहारा लेकर किसी बड़े प्रयोजन के लिये कदम बढ़ाया और उपहासो और अवरोधो के बावजूद जब वे अभीष्ट मार्ग पर चलते ही रहे तो आरम्भ मे कठिन ही नही, असम्भव लगने वाला लक्ष्य सरल होता चला गया।

जो अवरोधो की आशंका को बढ़ा-चढ़ाकर देखते है और केवल कठिनाइयो का ही लेखा-जोखा लेते रहते है, उनकी सारी शक्ति उस उधेड़बुन मे ही नष्ट हो जाती है। निराशात्मक चित्र खींचने मे ही उनकी सारी कल्पना निरस्त हो जाती है। इतने कम साधनो मे इतनी प्रगति कैसे हो सकती है ? इन परिस्थितियो मे आगे बढ़ सकना कैसे सम्भव है ? ऐसे लेखा-जोखा बताते रहने वालों को ये विदित ही नही है कि मनुष्य के अदम्य साहस और उत्कट संकल्प मे कितना बल है। ऐसे लोग यदि महामानवो के जीवन-क्रम पढ़े तो उन्हे पता चलेगा कि मात्र अवरोध ही सब कुछ नही, उनके कारण ही प्रगति अवरुद्ध नही पड़ी रहती। मनुष्य की इच्छाशक्ति की कमी ही वह प्रमुख कठिनाई है, जिसके कारण प्रसुप्त क्षमताएँ, अद्भुत सम्भावनाएँ उभरकर आगे नहीं आने पातीं। यदि अदम्य साहस का परिचय दिया जाय तो उन साधनो का इकट्ठा होना आरम्भ हो जाता है, जिनकी सफलता के लिये आवश्यकता थी। असफलताओं के इतिहास में संकल्प-शक्ति का सबसे बड़ा योगदान है। सकल्प-शक्ति असमर्थों को समर्थ बना सकती है और असफलता की आशंका को सफलता की सम्भावना में परिवर्तित कर सकती है।

अपने दोष-दुर्गुणो से निवटने मे संकल्प ही प्रधान रूप से सहायक होता है। यह क्षमता जिसने उत्पन्न कर ली, वह अपने उन दोषो पर विजय प्राप्त कर सकता है, जो आगे बढ़ने वालों के मार्ग को सबसे अधिक रोकते है। यह विचार सही नही है कि साधन अथवा सहयोग के अभाव मे काम रुका पड़ा रहता है। वास्तव मे साधन और सहयोग अनायास ही नही टपकते, उन्हें उपलब्ध करने के लिये आकर्षक व्यक्तित्व चाहिए। आकर्षक व्यक्तित्व मे यह विशेषता होती है कि वह साथी-समर्थक और सहायकों को कहीं से भी खींचकर अपने पास इकट्ठे कर लेता है। यह आकर्षक व्यक्तित्व उत्पन्न करने के लिये अपने आलस्य, प्रमाद, अनुत्साह, कटु व्यवहार, निराशा, भय, अधीरता आदि दुर्गुणों को दूर करना पड़ता है। इसके बिना न व्यक्तित्व मे चमक आती है और न प्रामाणिकता प्रकट होती है।

मनुष्य की सबसे बड़ी क्षमता उसकी संकल्प-शक्ति है। कल्पना और इच्छा मात्र से काम नहीं चलेगा। शेखचिल्ली की तरह दिवास्वप्न देखते रहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नही होता। हमे संकल्पवान् होना चाहिए। सोच-समझकर लक्ष्य निर्धारित करना और फिर मनोयोग एवं पुरुषार्थ से एकत्रित इस प्रयोजन मे लगा देना, यही संकल्प की प्रखरता का चिह्न है। सफलता उन्हे वरण करती है जो धैर्यवान् हैं, देर तक अभीष्ट की पूर्ति का इन्तजार कर सकते है और तब-तक निर्धारित पथ पर चलते रहने की हिम्मत रखते है, जब तक कि मंजिल तक पहुँच न जाया जाय। विजयश्री ऐसे ही धैर्यवान, पुरुषार्थी लोगो को नसीब होती है।

पुरुषार्थ ने भाग्य पलट दिया

अमेरिका के प्रसिद्ध सामयिक पत्र 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' का संचालक एक गरीब किसान का लड़का था। घर पर पिता के न रहने के बाद जब पेट पालने की भी दिक्कत हो गई तो वह १९-२० साल की आयु मे अपने पुराने कपड़ों की गठरी सिर पर रखकर पैदल रोटी की तलाश मे न्यूयार्क की तरफ चल पड़ा। उसका साहस देखकर उसके पास-पड़ौसियो ने समझाते हुए कहा—"होरेस ! कहाँ दुनिया मे भटकने के लिये जा रहा है। घर रहकर मेहनत-मजदूरी कर और गरीबी मे अपनी गुजर-बसर कर। परदेश में कही खो जायेगा।" होरेस अपनी धुन का पक्का था। वह क्यो रुकने लगा ? वह पड़ौसियो की सहानुभूति को धन्यवाद देकर और यह कहकर कि—"मुझे तो अब यह देखना है कि गरीबी और पुरुषार्थ मे कौन ज्यादा शक्तिशाली है ? जब परमात्मा ने हाथ-पैर दिये है और उनमे ताकत भी, तो यह बात किसी तरह भी समझ मे आने वाली नहीं है कि इतना दुःखी और

अभावग्रस्त जीवन बिताया जाय। रास्ते मे पड़े रोड़े को लोग हटाते है। घर मे रुके पानी का अवरोध दूर करते हैं, तब जीवन के विकास-पथ पर अड़ी इस गरीबी को क्यो न दूर किया जाए ? यह प्रश्न अपना कोई उत्तर नही रखता। अलविदा, मेरे शुभचिन्तको ! कभी-कभी मुझे याद कर लेना।"

होरेस चला गया और लोग उसे देखते रहे। उसके इस उत्साह तथा दृढ़ निश्चय को देखकर और उसके मुख पर इससे प्रकट आभा की चमक को देख लोगो को ऐसा आभास हुआ जैसे होरेस किसी गरीब किसान का साधारण लड़का नही बल्कि जीवन-सफर का एक वीर योद्धा है, जो विजय-वरण के लिये जा रहा है।

सोचना होगा, उन लोगो को—जो गरीबी और साधनहीनता का रोना लिए बैठे रहते हैं। वे जीवन मे कुछ कर दिखाने के लिए उठ खड़े होगे कि जब गरीब और अत्यन्त गरीब किसान का एक ग्रामीण बालक यह हिम्मत बाँध सकता है, विश्वास और उत्साह रख सकता है, तब वह खुद क्यो नही कुछ करे ? वही हाथ, वही पैर और वही शक्ति जब परमात्मा ने उनको भी दी है तब यही कहना होगा कि गरीबी को भाग्य अथवा भगवान समझने वाले और कुछ नही, निराशा तथा निष्क्रियता के रोगी है और दरिद्रतापूर्ण जीवन जीने के इतने अभ्यस्त हो चुके है कि दूसरी तरफ सोच सकने की उनकी शक्ति लुंज हो गई है।

होरेस न्यूयार्क आया। बड़ा भारी शहर, बड़ी व्यस्तता, बड़ा कोलाहल और बड़ी भाग-दौड़। कोई भी कम हिम्मत, निर्बल मन और निरुद्देश्य व्यक्ति होता तो वह उस विशाल नगर मे पहुँचकर घबरा जाता और यही सोचने लगता कि यहाँ आकर बड़ी गलती की। यहाँ पर कोई भी अपना परिचित और कोई भी तो ऐसा स्थान नही है। किसके पास जाऊँ या कहाँ पर ठहरूँ ? अवश्य ही यह अनजानी व्यस्तता उसे अपने मे डुबोकर अस्तित्वहीन बनाकर ही छोड़ेगी।

किन्तु होरेस के सोचने का ढंग भिन्न था—"अहह: कितना काम है, कितने अवसर हैं, कितने मनुष्य और उनके बीच बहने वाला कितना पैसा है ? इतनी भरी भीड़ मे किसी एक से परिचय कर लेना, इतनी व्यस्तता एवं आवश्यकता मे कोई छोटा-मोटा काम पा लेना कोई बड़ी बात नही है। मै ठीक स्थान पर आया हूँ, अपने ध्येय मे अवश्य सफल हो जाऊँगा।"

होरेस एक से मिला, दो से मिला, दो-चार-छः से मिला—किन्तु इन्कार-ही-इन्कार। यही था कि उसका विश्वास हिल जाता, आशा धूमिल हो जाती। किन्तु वह निराश अथवा हतोत्साहित होने तो नही आया था। वह तो आया था—जीवन मे क्रांतिकारी परिवर्तन लाने, उज्ज्वल भविष्य के द्वार खोलने और जान-बूझकर संघर्ष लेने,

ऐसी लोकप्रियता प्राप्त होती है जो हजारो-लाखों मे एक बना देती है।

इन्कार क्यो होता है ? यह सोचकर उसने अपनी ओर देखा कि उसके कपड़े गन्दे और अस्त-व्यस्त थे। दोपहर भर न कुछ खाया और न कुछ काम किया। एक बड़े नल के नीचे अपनी और अपने कपड़ो की खूब सफाई की और शाम को एक नए उत्साह, नई ताजगी और नई आशा से काम की तलाश मे निकला। उसने तरक्की की ओर जाने मिलने का पहला कदम 'आत्म-व्यवस्था' को ठीक कर लिया। पहले ही स्थान पर उसे अखबार बेचने (हाकर) वाले का काम मिला।

होरेस ने अपना काम शुरू किया और इस आकर्षक ढंग से समाचारों की आवाज लगा-लगाकर सुबह-शाम अखबार बेचना शुरू किया कि न चाहते हुए भी लोग अखबार खरीद लेते थे। कुछ ही समय मे वह इतना लोकप्रिय हो गया कि अखबार की एजेन्सी चलाने की स्थिति मे आ गया। उसने २० वर्ष की आयु मे एजेन्सी का काम किया और जब २५ साल की आयु में इस विचार से काम छोड़ा कि स्वयं अपना एक अखबार निकालेगा। तब उसके पास कुछ पैसे ही नही, इतनी योग्यता भी थी जिससे कि बखूबी काम चलाया जा सकता था।

कोई काम करने के लिये उसकी जानकारी जरूरी है। होरेस को अखबार निकालना था। प्रेस और पत्रकारिता का ज्ञान सीखना था। निदान उसने उस दिशा में एक छोटे से कम्पोजीटर के पद से काम सीखना शुरू किया। अपनी तन्मयता, तत्परता तथा जिज्ञासा के आधार पर उसने शीघ्र ही कम्पोजीटरी मे दक्षता और पत्रकारिता के अन्य गुणो को प्राप्त कर लिया। प्रेस तथा पत्र का पूरा काम सीख जाने पर उसे एक प्रेस मालिक के साथ साझा मिल गया और अखबार का काम शुरू हो गया। उसका 'लौग केबिन' अखबार निकला और सैकड़ो से बढ़ता-बढ़ता ९० हजार प्रतियो तक निकलने लगा और वह एक सफल पत्रकार बन गया। अखबार की इस उन्नति से होरेस के साझीदार की नीयत खराब हो गई और उसने उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने को कहा। होरेस ने जरा भी बुरा न माना और खुशी से तैयार हो गया। उसे अपनी योग्यता एवं परिश्रम पर पूरा विश्वास था। अनेक मित्रो ने राय दी कि वह साझीदार के विरुद्ध मुकदमा दायर करे। किन्तु उसने यह कहकर अपना दूसरा काम जमा लेने का उपक्रम शुरू कर दिया कि जितना समय और पैसा वह मुकदमे मे खराब करेगा उतने मे दूसरा अखबार चला लेगा, हुआ भी ऐसा ही।

होरेस ने शीघ्र ही 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' की स्थापना की और परिश्रम करने लगा। अखबार तेजी से चल निकला। शीघ्र ही उसकी बिक्री इतनी बढ़ गई कि उसे

वह न्यूयार्क ही नही, पूरे अमेरिका का माना हुआ सफल तथा धनवान पत्रकार बन गया।

यह है एक गरीब किसान के बिना पढ़े-लड़के की संक्षिप्त कहानी, जिसे पढ़कर ऐसा कौन हो सकता है जो अब भी यह कह सके कि गरीबी अनुन्नत जीवन जीने के लिये एक ऐसी मजबूरी है, जिसको दूर नही किया जा सकता। होरेस की इस संक्षिप्त उन्नति-कथा को देखने से तो ऐसा पता चलता है कि जैसे उसके हाथ मे पारस का गुण आ गया था, जिससे कि उसकी छुई मिट्टी सोना बनती चली जाती थी। बीच मे न तो उसे कोई अवरोध आया और न निराशा की परिस्थितियाँ। किन्तु नीचे से ऊपर उठने मे कितना खून-पसीना एक करना पड़ता है, इसे वे पुरुषार्थी तथा पराक्रमी व्यक्ति ही जानते है, जिनमे उन्नति करने का हौसला होता है और उसको पूरा करने के लिए जीवन-सग्राम मे उतर पड़ते है। इस उन्नति, इस विकास और इस सफलता के लिये जीवन-संघर्ष मे कितना सुख, कितनी शाति और कितना सन्तोष होता है ? यह तो सदुद्देश्य लेकर उतरने वाले योद्धा ही जान सकते है।

ऐसे न जाने कितने पुरुषार्थी पुरुष इस संसार मे हो गये है और होते रहेंगे, जो गरीबी को ईश्वर का अभिशाप नही, बल्कि अपनी निज की कमी मानते है और उसे ललकार कर जीवन-क्षेत्र से भगाकर निराशा के रोगी और अकर्मण्यता के दास आलसियो के लिए उदाहरण बनते रहते है और अनेक उनके जीवन से शिक्षा एव प्रेरणा लेकर आगे बढ़ते, चढ़ते और निर्धन से धनवान, निम्न से उच्च बनते रहते है।

अपना संकल्प जगाइये, आप में बड़ी शक्ति है

शारीरिक अग-प्रत्यंग और इन्द्रियाँ संसार मे सबको समान रूप से मिली है। किन्तु फिर भी मनुष्य के जीवन-क्रम और गतिविधियो मे भारी अन्तर पाया जाता है। जय-पराजय, सफलता-असफलता, जीवन और मृत्यु के द्वन्द्व निरन्तर चलते रहते है, जो व्यक्ति अपने आन्तरिक क्षेत्र में फैली हुई सकल्प-शक्ति का प्रयोग नही करते, उन्हे पराजय, असफलता और मृत्यु प्राप्त होती है। पर जिनके सस्कारो मे दृढता, तीव मनोबल और सुदृढ संकल्प-शक्ति विद्यमान है; जय, जीवन और सफलता सदैव उनकी दासी बनकर काम करती है। सकल्पवान पुरुष ही जीवन-संग्राम मे विजय करते हैं, कमजोर इच्छाशक्ति वालो का साथ प्रकृति भी नहीं देती है।

उपरोक्त पंक्तियो मे हमारा अभिप्राय गरीबी या अमीरी के साथ उन्नति या जीवन की असफलता का सम्बन्ध जोड़ने का नहीं है। हमारा अभिप्राय केवल यह बताने का है कि जहाँ जिस वातावरण मे संकल्प की कमी रहेगी, वहाँ विभूतियाँ न हो सकेगी। जहाँ दृढ़इच्छा शक्ति होगी, तीव्र आकांक्षा या अभिरुचि होगी वहाँ पैसे का, साधन और सहयोग का अभाव भले ही हो, पर धीरे-धीरे अनुकूल वातावरण एकत्रित हो जायेगा और मनोवांछित सिद्धि मिलकर रहेगी।

पुराणो मे ऐसा वर्णन आता है कि स्वर्ग में एक कल्पवृक्ष है, जिसके पास जाने मे कोई भी कामना अपूर्ण नहीं रहती है। ऐसा एक कल्पवृक्ष इस पृथ्वी मे भी है वह है—संकल्प का कल्पवृक्ष। जब किसी लक्ष्य की, ध्येय की, कामना की पूर्ति का हम संकल्प लेते है तो सजातीय विचारो, सुझावो की एक शृंखला दौड़ी हुई चली आती है और अपने लिए उपयुक्त रास्ता बनाना सुगम हो जाता है। बरसात का पानी उधर ही दौड़ता है जिधर गड्ढे होते है। सफलता के लिए अपेक्षित परिस्थितियाँ ढूँढ लाने की शक्ति संकल्प मे है।

संध्या, उपासना, दान, अनुष्ठान, यज्ञ, पुरश्चरण आदि मे आचार्य यजमान को सकल्प ग्रहण कराते हैं। उससे उनके उद्देश्य मे कोई नवीनता भले ही न आती हो पर सारी मानसिक चेष्टाएँ एक ही लक्ष्य की ओर लग जाती है। फलस्वरूप आने वाली बाधा, कठिनाई का विचार पहले ही आ जाता है, जिससे प्रतिकूल परिणाम से बच जाते है। मानसिक शक्तियो का विकेन्द्रीकरण इतना महत्वपूर्ण होता है कि उसे जिस कार्य मे लगा दिया जाय, उधर ही आशाजनक सफलता मिलने लगती है।

सकल्प क्रिया-शक्ति मे तन्मय की प्रतिष्ठा का नाम है। "यह मेरा सकल्प है" का अर्थ है, अब मैं इस कार्य मे प्राण, मन और समग्र शक्ति के साथ संलग्न हो रहा हूँ। इस प्रकार की विचारणा, दृढ़ता ही सफलता की जननी है। सकल्प तप का, क्रिया-शक्ति का विधायक है इसी से उसमे अनेको सिद्धियाँ और वरदान समाहित हैं।

जिन विचारो से मनोभूमि मे स्थायी प्रभाव पड़ता है और जिनसे अन्त.करण मे अमिट छाप पड़ती है, वे पुनरावृत्ति के कारण स्वभाव के एक अंग बन जाते है। ऐसे विचारो का अपन एक विशेष महत्त्व होता है। इन विचारो को क्रमबद्ध रीति सजाने की क्रिया जिन्हे ज्ञात होती है, वे अपना भाग्य, दृष्टिको और वातावरण परिवर्तित कर सकते है और इस परिवर्तन फलस्वरूप जीवन मे कोई विशेष दृश्य या स्थिति उत्पन्न सकते है।

आवश्यकता को आविष्कार की जननी कहा है। जब किसी बात की तीव्र इच्छा होती है तो उसे करने के लिए साधनो की तलाश आरम्भ होती है। कोई न कोई उपाय भी निकल ही आता है। वह यदि प्रेरक है, उसे पूरा करने की भूख यदि भी उठी है और उसके पीछे पर्याप्त प्राण और जीवन हुआ है कि "मै इस वस्तु को प्राप्त करके रहूँगा कितनी ही बाधाएँ क्यों न आये, प्रयत्न निरन्

खूँगा चाहे कितने ही निराश करने वाले अवसर क्यो न आये।" इस प्रकार के संकल्प की यदि मन मे गहरी और सुदृढ स्थापना हो जाय तो लक्ष्य तक पहुँचना बहुत सरल हो जाता है। दूसरे के लिये कठिन जान पड़ने वाला कार्य भी उस संकल्पवान के लिये सामान्य क्रिया से अधिक नहीं रह जाता।

बराबर आगे बढ़ते रहने के लिये, बराबर नई शक्ति प्राप्त करते रहना भी आवश्यक है। उन्नति का क्रम टूटना नही चाहिये, आगे बढ़ने से रुकना या हिचकिचाना नहीं चाहिये। पर यह तभी सम्भव है जब हमारा संकल्प, हमारा उद्देश्य अटूट साहस, श्रद्धा एव शक्ति से ओत-प्रोत हो। आधे मन से, उदासीन होकर काम करने वाला फूहड़ कहा जाता है। उसे कोई विशेष सफलता मिल भी नहीं पाती।

"अगर मुझे अमुक सुविधाऐं मिलतीं तो मै ऐसा करता।" इस प्रकार की कोरी कल्पनाऐं गढ़ने वाले आत्म-प्रवंचना किया करते है। भाग्य दूसरों के सहारे विकसित नही होता। आपका भार ढोने के लिए इस संसार मे कोई दूसरा तैयार न होगा। हम यह यात्रा अपने पैरो से ही पूरी कर सकते है। दूसरे का अवलम्बन लेगे तो हमारा जीवन कठिन हो जायेगा। हमारे भीतर जो एक महान चेतना कार्य कर रही है उसकी शक्ति अनन्त है, उसी का आश्रय ग्रहण करे तो प्रत्यक्ष आत्म-विश्वास जाग जायेगा। तब तुम दूसरो के भरोसे भी नहीं होगे। संकल्प का ही दूसरा रूप है आत्म-विश्वास। वह जाग्रत हो जाय तो अपना विकास तेजी से, अपने आप पूरा कर सकेगे। आज हम जैसे कुछ है, अपने जीवन को जिस स्थिति मे रखे हुये है अपने निजी विचारो के परिणाम है। जैसे विचार होगे, भविष्य का निर्माण भी उसी तरह ही होगा।

संकल्प का सम्बन्ध सत्य और धर्म से होता है। उसका प्रयोग अधर्म और अत्याचार के लिये नही हो सकता। अधर्म पतन की ओर ले जाता है पर यह संकल्प का स्वभाव नहीं है। अधर्म से धर्म की ओर, अन्याय से न्याय की ओर, असत्य से सत्य की ओर, कायरता से साहस की ओर, कामुकता से सयम की ओर, मृत्यु से जीवन की ओर अग्रसर होने मे संकल्प की सार्थकता है। आचार्यों ने उसे इसी रूप मे लिया है। भारतीय धर्म मे अनुशासन की इस उदात्त परम्परा का ध्यान रखते हुए ही गुरुजन "सत्यं वद", "धर्मं चर" का सकल्प अपने शिष्यो से कराते रहे है। आध्यात्मिक तत्त्वों की अभिवृद्धि की तरह ही भौतिक उन्नति की नैतिक आकांक्षा को बढ़ाना भी संकल्प के अन्तर्गत हीं आता है। अपने स्वार्थों के लिये अधर्माचरण शुरू कर दिया जाता है, वहाँ सकल्प का लोप हो जाता है और वह कृत्य अमानुषिक, आसुरी, हीन और निकृष्ट बन जाता है। सकल्प के साथ जीवन-शुद्धता की अनिवार्यता भी जुड़ी हुई है। संकल्प की इस परम्परा मे अपनी उज्ज्वल गाथाओ को ही जोड़ा जा सकता है। निकृष्टता से, पाप से, स्वार्थ की संकीर्णता और अत्याचार द्वारा संकल्प-जयी नही बना जा सकता।

अनमनस्कता, उदासीनता और मुर्दादिली को छोड़कर ऊँचे उठने की कल्पना मनःक्षेत्र को सतेज करती है। इससे साहस, शौर्य, कर्मठता, उत्पादन शक्ति, निपुणता आदि गुणो का आविर्भाव होता है। इन गुणो मे शक्तियों का वह स्रोत छुपा हुआ है, जिससे सन्तोष, सुख और आनन्द का प्रतिक्षण रसास्वादन किया जा सकता है। निकृष्टता मनुष्यो मे दुर्गुण पैदा करती है, जिससे चारो ओर से कष्ट और क्लेश के परिणाम ही दिखाई दे सकते हैं। संकल्प को इसीलिये जीवन की उत्कृष्टता का मन्त्र समझना चाहिये। उसका प्रयोग मनुष्य जीवन के गुण विकास के लिये होना चाहिये।

अपने को असमर्थ, अशक्त एवं असहाय मत समझिये। "साधनो के अभाव में हम किस प्रकार आगे बढ़ सकेगे ?" ऐसे कमजोर विचारो का परित्याग कर दीजिये। स्मरण रखिये ! शक्ति का स्रोत साधनो मे नहीं संकल्प मे है। यदि उन्नति करने की, आगे बढ़ने की इच्छाएँ तीव्र हो रही होगी तो आप को जिन साधनो का आज अभाव दिखलाई पड़ता है, कल वे निश्चय ही दूर हुये दिखाई देगे। संकल्प मे सूर्य-रश्मियो का तेज है, वह जाग्रत चेतना का शृंगार है, विजय का हेतु और सफलता का जनक है। संकल्प से प्राप्त मन के बल द्वारा स्वल्प साधनो मे भी मनुष्य अधिकतम विकास कर सकता है और मस्ती का जीवन बिता सकता है।

उन्नति की आकाक्षा रखना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। उसे आगे बढ़ना भी चाहिये। पर यह तभी सम्भव है जब मनुष्य का संकल्प बल जाग्रत हो। जो लोग अपने को दीन, हीन, असफल और पराभूत समझते हो, संकल्प उनके लिये अमोघ अस्त्र है। संकल्प के द्वारा प्रत्येक मनुष्य जय, जीवन और सफलता प्राप्त कर सकता है।

वह जो शरीर सहन नहीं कर सकता

प्रेम व प्रसन्नता का अभाव। शरीर मे जितने भी रोग होते है, हम यह तो नहीं कह सकते कि उनका सम्बन्ध कितने प्राचीन समय और पिछले जन्मो से होता है पर यह निश्चित है कि शरीर मे रोग और विजातीय द्रव्य, जिससे बीमारी और दुर्बलता का विकास होता है, अधिकांश मनोविकारो की देन होते है। चिन्ता, द्वेष, क्षोभ, दम्भ, पाखण्ड, अभिमान, असत्य भाषण, चुगली, निराशा, तृष्णा, कुत्सा का सदैव मस्तिष्क मे छाये रहना, यही वह कारण है, जिनसे रोग पैदा होते है। शरीर और सब कुछ सह सकता है पर यही वह दूषित तत्त्व है, जो स्वास्थ्य और आरोग्य को नष्ट कर डालते है।

यदि मनुष्य अपने मस्तिष्क मे रचनात्मक और प्रसन्नतादायक विचार रखकर जीवन-यापन कर सके तो यह सम्पूर्ण आयु स्वस्थ और नीरोग जीवन जी सकता है। औषधि की आवश्यकता को भी वह निरस्त कर सकता है।

नैपोलियन सेंट हेलेना मे था, तब उसके पेट में दर्द रहा करता था। डॉक्टरो ने निरीक्षण करके बताया पेट का कैंसर या गैस्टिक अल्सर है। औषधि प्रारम्भ हुई। बहुत दिन तक दवा लेते रहने के बाद भी पेट ठीक न हुआ। एक दिन उसे ऐसा लगा कि दवा पेट ठीक नहीं कर सकती। लेकिन क्यो ? उसने यह जानने का निश्चय किया। डाक्टर दवा लेकर आया तो उसने कहा—"महोदय ! यह दवा आज आप भी ले तो मैं अच्छा हो जाऊँ।" डाक्टर हैरान था कि बोनापार्ट कह क्या रहे हैं। पर वीरवर नैपोलियन की बात न मानने की हिम्मत उसमे नही थी। बेचारे ने दवा पी, थोड़ी देर मे उसकी तबियत खराब हो गई। नैपोलियन ने कहा—"जो दवा डाक्टर को अच्छा नहीं कर सकती, वह मुझे तीन जन्म मे भी अच्छा नही कर सकती। उसे उन दिनो सैनिको के विद्रोह का भीतरी भय बना रहता था, उस भय को उसने निकाल दिया और मृत्यु को निश्चित समझकर पुनः प्रसन्न रहने लगा। डाक्टरो ने उसकी दुबारा परीक्षा की तो वे हैरान थे कि उसके रोग का पता ही न था। कहावत हो गई—"नैपोलियन से रोग भी भय खाते है" पर सही बात यह थी कि उसके मनोबल ने उन अवांछनीय तत्वो को मार दिया, जो पेट की बीमारी के रूप मे उछल रहे थे।

अमेरिका मे एक सर्वेक्षण में पाया गया कि पेट के बीमारो मे से अधिकांश मानसिक दुश्चिन्ताओ से ग्रस्त होते हैं। आर्थिक कारणो को लेकर जो लोग चिन्तित रहते है, उन्हे पेट के विकार प्रायः हमेशा बने रहते है। वैवाहिक जीवन सुखमय न हो, परिवार मे कलह रहती हो, ऐसे लोगो को पेट की बीमारियाँ घेरे रहती है। १६ प्रतिशत पेट के रोगी वह होते है, जो सांसारिक संघर्षो के प्रति अपना मनोबल खो चुके होते है।

द्वितीय महायुद्ध के समय एक बार जर्मन सैनिको ने मित्र राष्ट्रो की सेनाओ पर तीव्र हमले प्रारम्भ किये। उससे सैनिको का मनोबल टूट गया और उनमे से अधिकांश पेट के रोगी होकर बिस्तरो मे पड़ गये। डाक्टरो ने रिपोर्ट दी कि सिपाहियो का हौसला टूट जाने से उन्हे हर समय दुश्चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। उससे वे कभी अधिक खा जाते है, कभी उन्हे ध्यान ही नही रहता कि खाया या नहीं ? जब तक ध्यान आता है, तब तक स्वाभाविक भूख मिट चुकी होती है। पेटो मे कोई व्रण नहीं और कोई कीटाणु नहीं, पानी भी औंव करके ही दिया जाता था, केवल हिम्मत हारने का ही परिणाम था कि सैकड़ों सैनिक पेट के बीमार हो गये।

भगवान ने मनुष्य शरीर ऐसा बनाया है कि यदि उसे खराब न किया जाये, उसमें मानसिक चिन्ताओं, कामनाओं, काम-वासना आदि दूषित विचारों का रोपण न किया जाये तो बड़े से बड़े प्राकृतिक परिवर्तन मौसम के झटके और भूल से ग्रहण किये हुये विषैले खाद्य भी शंकर और मीरा के द्वारा विषपान के समान पचाये जा सकते हैं। मन खराब न हो तो तन कभी बिगड़ेगा नहीं, मौसम और परिस्थितियों में चाहे कितने ही जबर्दस्त परिवर्तन क्यों न होते रहें।

एक बार अमेरिका में १० अमेरिकी उड़ाकों ने उड़ान भरी। उन्हे किसी प्रकार के तूफान की आशंका नहीं थी, इसलिये उन्होंने 'आइस कैप' भी नहीं बाँधी थी दुर्भाग्य से ग्रीनलैण्ड में वे एक बर्फीले तूफान में फँस गये। ८८ दिन तक वे इसी अवस्था में पड़े रहे। शीत से बचने के लिये उनके पास पर्याप्त वस्त्र भी नहीं थे। तापमान शून्य से भी ४० डिग्री कम था। १० दिन बाद जब खोजी विमानो ने आकाश से झाँक कर देखा तो वे सभी सैनिक खेलने और आमोद-प्रमोद मे मस्त थे। जहाज उतर नहीं सकते थे, इसलिए १०वे दिन उन्हे आहार गिराना प्रारम्भ किया था। ८८ दिन तक वे ऐसे ही रहे और जब तूफान शांत हुआ, वे बाहर निकाले गये तो स्वास्थ्य परीक्षण से यह पाया गया कि इतनी भयंकर सर्दी के बाद भी उनके शरीर मे स्वास्थ्य की खराबी के कोई लक्षण नही थे।

फिलफीडिया (अमेरिका) की एक नर्स हेमेना का विवाह हुए कुछ ही दिन हुए थे कि वह एकाएक बीमार पड़ गई। उस समय भी वह सदैव प्रसन्न और हँसमुख रहती थी। उसका पति जब भी उसे मिलने जाता। उदास होकर जाता पर वहाँ से लौटता तो एक अजीब गुदगुदी लेकर आता। पत्नी उसे छेड़े और मजाक किए बिना न रहती। डाक्टर भी उसकी बेढब मस्ती से प्रभावित हुए बिना न रहे। किसी ने उसे अप्रसन्न नही देखा।

एक दिन अचानक उसका ज्वर बढ़ना प्रारम्भ हुआ। १०७ डिग्री तक पहुँचते-पहुँचते डाक्टरो ने घोषणा कर दी कि इसके मस्तिष्क को क्षति पहुँचेगी। यदि मृत्यु से बच भी गई तो निश्चित रूप से पागल हो जायेगी, पर ज्वर इतने पर भी नही थमा। ११० डिग्री तक पहुँचकर उसने साँस ली। फिर बुखार उतरना प्रारम्भ हुआ। तापमान सामान्य हो जाने पर डाक्टरो ने परीक्षण किया तो वे हैरान थे कि उसके शरीर पर इतने बुखार का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

डा. पाल एच नेमविट ने ऐसी अनेक घटनाओ का सकलन कर लिखा है कि "मनुष्य शरीर से बढ़कर सहनशील और टिकाऊ यन्त्र" अभी तक बना नही। यदि उसे हमेशा प्रसन्नता और आमोद-प्रमोद से चिकनाया जाता रहे तो न कभी जग लगे, न ज्वर आये। आये भी तो उसका बाल भी बाँका न कर पाये।

मनुष्य भूलो का पुतला है। अब तक सम्भव है, भूले बहुत हुई हो, उनके जो दण्ड प्रकृति द्वारा हमे मिल रहे है, या मिलने वाले हैं, उन्हे तो हम साहसपूर्वक सहन करके काट दे पर आगे के लिए यह उचित है कि मन मे दुश्चिन्ताओ का, मनोविकारो का बोझ न पड़ने दे। कहते है मनुष्य खाना नहीं शक्ति और सौन्दर्य खाता है। जब वह भोजन शान्ति, सन्तोष और प्रसन्नता मे करता है। शरीर पोषण के लिये शक्ति पेट मे बनती है। शक्ति और ओजस् के कण जो सारे शरीर मे बिखरे घूमते हैं, वह भी पेट के कारखाने में ही बनते और विकीर्ण होते है, यदि मानसिक दुश्चिन्ताओ का प्रकोप हो तो शक्ति का स्रोत अस्तव्यस्त हो जाता है, पाचन और शक्ति चूसने की क्रिया पर दूषित प्रभाव पड़ता है। जाँच करने पर आमाशय मे कोई खराबी नही मिलेगी तो भी शरीर अस्वस्थ रहेगा। ऐसे व्यक्तियो के लिये भावनाओ का प्रतिदान ही रामबाण औषधि है। उन्हे हर घड़ी प्रसन्न रहने, औरो के साथ मीठा-मधुर व्यवहार करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि बदले मे यही उसे भी मिले। मानसिक प्रसन्नता ही जीवन है जबकि मनोविकार बोझ। जिसे शरीर कभी भी स्वीकार नही करता।

फिनलैण्ड की एक युवती बहुत बीमार थी। डाक्टरो ने जाँच करके बताया, उसे कैन्सर है। वह अविवाहित थी और गर्भाशय में रोग था, जिसे डाक्टरो ने असाध्य कह दिया था। युवती का जीवन अन्धकार मे भटक रहा था। गौनर मैटन नामक एक कवि उसके पड़ौस मे रहता था। उसे इस लड़की से सहानुभूति थी। प्राय. उसे देखने आया करता था। लड़की को उसका आना अच्छा लगता। वह उससे प्रेम भी करती थी। पर उसे यह विश्वास नही था कि मुझ रोगी से वह कभी विवाह करेगा। युवक की करुणा भी धीरे-धीरे प्रेम मे बदल गई। उसने अपनी ओर से विवाह का प्रस्ताव रखा। स्वीकृति मिल गई और विवाह भी हो गया।

असाध्य लड़की जो सदैव बिस्तर पर लेटी रहती थी, चलने-फिरने लगी। यही नही, यह कुछ ही दिन मे गर्भवती भी हो गई। जून १९६७ की बात है कि उसके पुत्र पैदा हुआ। उन्ही डाक्टरो ने, जिन्होने उसे असाध्य घोषित कर दिया था, फिर उसकी जाँच की, लड़के की भी मेडिकल जाँच की तो वे यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि युवती और नवजात शिशु मे से किसी को भी रोग का धब्बा तक नही था। फिनलैण्ड मे कुछ दिन इस घटना की बड़ी चर्चा हुई। लोगो ने अनुभव किया मनुष्य की उच्च-भावनाओ मे जबर्दस्त जीवन-शक्ति है। शरीर की सम्पूर्ण सहनशीलता इन भावनाओ का ही परिणाम है।

बच्चा बीमार पड़ जाये तो उसकी माँ रात-रात भर जागती रहती है और बिना कुछ खाये-पिये उसकी सेवा सुश्रुषा करती रहती है। उस अवस्था मे अकारण किसी और को रखा जाये तो वह एक रात के जगने मे ही ढीला पड़ जाये पर माँ कई-कई रात जगकर भी स्वस्थ और क्रियाशील बनी रहती है।

'साउथ ऑफ सहारा' पुस्तक मे लेखक कमाण्डर अटिलियो गट्टी ने प्रसिद्ध नीग्रो जाति वाटुसी का जिक्र छेड़ते हुए लिखा है कि यह लोग संसार के सबसे अधिक लम्बे, स्वस्थ और क्रियाशील लोग होते है। यह लोग माँस नही खाते, शाकाहारी होने पर भी उनके गजब के स्वास्थ्य पर लेखक को आश्चर्य हुआ तो वह कुछ दिन इनके बीच रहा। वाटुसी लोगो के जीवन-क्रम का अध्ययन करके लेखक ने लिखा है कि वाटुसी जब बच्चे होते है, तभी से उन्हे उछलने, कूदने, खेलने, नाचने और सदैव प्रसन्न रहने का अभ्यास कराया जाता है। खिलाड़ी होना इस जाति के लिए आवश्यक है। इसके लिये परिवारो मे ही एक ६ वर्षीय शिक्षण चलता है, जो ८ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक चलता है। परिणाम यह होता है कि हँसी-खुशी उनकी जिन्दगी मे ढल जाती है। यह निश्चिन्तता ही उन्हे आजीवन नीरोग रखती है और शक्ति इतनी होती है कि २० मील जाकर शाम को फिर घर वापिस आ जाये, पर थकावट का कही नामो-निशान भी न हो। इतनी जबर्दस्त सहनशक्ति और निरोगिता का रहस्य और कुछ नहीं, भावनाओ की मस्ती है। यदि यही न हो तो लाखो की सम्पत्ति होकर भी मनुष्य सुखी नही रह सकता। प्रेम, प्यार, आशा, उत्साह और प्रसन्नता के अभाव को शरीर सहन नहीं कर सकता। इनके न होने पर रोग और बीमारी ही सम्भव है। दुश्चिन्ताओ से घिरे लोगो को भाग्य मे मिलता भी यही है।

सुदृढ़ संकल्प बल के सहारे आरोग्य प्राप्ति

कभी माना जाता था कि कष्टसाध्य और चिरस्थायी बीमारियाँ भी छुटपुट रोगो की तरह शरीरगत खराबियो के कारण उत्पन्न होती है, पर अब यह माना जाने लगा है कि मन का शरीर पर पूरा नियन्त्रण है और स्वस्थता, रुग्णता के लिए भी वही उत्तरदायी है। अन्तर्द्वन्द्व, रुग्ण मानसिकता, अशुद्ध चिन्तन ही मस्तिष्क को असंतुलित करता और शरीर को ऐसे चित्र-विचित्र रोगो से व्यथित करता है, जो चिकित्सा करते-कराते भी काबू मे नही आते।

अशुद्ध चिन्तन, अस्वस्थ भावनाएँ विभिन्न शारीरिक रोगो का कारण बनती है। देखा गया है कि कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रियाशक्ति मे स्पष्टतः अस्तव्यस्तता दीखने लगती है। भय, चिन्ता, शोक, निराशा जैसे प्रसंगो पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है। क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति

मे किस प्रकार अंग-प्रत्यंगो मे उत्तेजना दीख जाती है, इसे किसी आवेशग्रस्त पर छाये हुए भावोन्माद को देखकर सहज ही देखा-समझा जा सकता है। प्रसन्न और निश्चिन्त रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं। इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल होते जाते है और अकाल मृत्यु से असमय मरते है। यह तथ्य स्पष्ट करते है कि शरीर संस्थान पर आहार-विहार का, जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कही अधिक भाव सस्थान का प्रभाव पड़ता है। विचारणा, भावना की शुद्धता, उत्कृष्टता ही समग्र स्वास्थ्य का मूलाधार है।

इस सन्दर्भ मे चिकित्सा मनोविज्ञानियो ने गहन खोजे की है और पाया है कि प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकारी विचारणाओ से ओत-प्रोत व्यक्ति स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी होते है। इसके विपरीत विकृत चिन्तन एव भावना क्षोभ से ग्रस्त मनुष्य अनेकानेक रोगो से घिरा रहता है। "इन्फ्लुएन्स ऑफ द माइण्ड अपॉन द बॉडी" नामक अपनी कृति मे सुप्रसिद्ध चिकित्सा मनोविज्ञानी डॉ. **अलबर्ट ड्यूक** का मत है कि विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगो का निकम्मा हो जाना, पाण्डु रोग, केश-पतन, घबराहट, मूत्राशय के रोग, चर्मरोग, फोड़े-फुन्सी, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मानसिक विकारो एवं भावनात्मक उद्वेलनो के परिणाम मात्र है। मानसिक क्षोभ, भावनात्मक उद्वेलन, निषेधात्मक चिन्तन; यह सभी सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ है, जिनका स्थूल शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वस्थ उदात्त चिन्तन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म शरीर को तेजस्वी प्रखर बनाती है और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

"ऐन आयरन विल" नामक पुस्तक के लेखक एव अमेरिका के प्रख्यात अध्यात्मवेत्ता **डॉ. मॉरडन** का यह कथन अक्षरश: सत्य है और भारतीय अध्यात्मोपचार की पुष्टि करता है कि "मनुष्य अपने विचार उच्चस्तरीय बना ले, नये कर ले, चरित्र को ऊँचा उठा ले तो अपने शरीर का कायाकल्प कर सकता है।" जब मन-मस्तिष्क की धुलाई, सफाई वैज्ञानिक उपकरणो से हो सकती है और प्राणियो एवं मनुष्यो को वशवर्ती बनाया और मनचाही दिशा मे मोड़ा-मरोड़ा जा सकता है तो कोई कारण नही कि अध्यात्म साधना के उपचार प्रयोगो से मनोमयकोष को अधिक परिष्कृत और सबल-सपन्न न बनाया जा सके।

मन सस्थान अर्थात् मनोमयकोष ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का ही नही, प्रतिभा का भी क्षेत्र है। उत्कृष्टता के प्रति आस्था के बीज इसी भूमि मे उगते है। संकल्प शक्ति का उद्गम केन्द्र यही है। समूचे काय-कलेवर को अपने अंचल मे यही समेटे हुए है। इस क्षेत्र के अस्त-व्यस्त और विकृत स्थिति मे बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। मन:क्षेत्र का शोधन व सशक्त किये जाने की साधना उसकी धुलाई-सफाई कर समग्र स्वास्थ्य का आधार ही नहीं खड़ी करती, वरन् उसे समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने एवं प्रतिभा-प्रखरता से सुसज्जित करने का काम भी बहुत हद तक पूरा करती है।

संकल्प ही सफलता में परिणत होते हैं

आत्म-विश्वास को जीवन की पतवार समझा जा सकता है। इसी के सहारे जीवन रूपी नाव कठिनाइयो के मझधार से निकल पाने मे सक्षम होती है। अगणित उलझन, समस्याओ एवं प्रतिकूलताओ मे भी विश्वास की अमोघ शक्ति मनुष्य को प्रेरणा देती और बल का संचार करती है। आत्म-विश्वासी ही हर क्षेत्र मे सफल होते हैं। संसार मे जितने भी महान कार्य हुए है, उनमें परिस्थितियो की अनुकूलता का भय, आत्म-विश्वास का सबसे बड़ा योगदान रहा है। आत्म-विश्वासी के मार्ग मे आयी कठिनाइयाँ और उलझने उसे ध्येय पथ से विचलित नहीं कर पातीं।

जो अपने आप मे अटूट विश्वास लिये चल रहा है। जीवन मे प्रकाश देने वाले सभी दीपक बुझ जायें किन्तु मनुष्य के अन्तर मे विश्वास की ज्योति जलती रहे तो वह घोर अन्धकार मे भी अपना पथ स्वयं ढूँढ लेगा। आत्म-विश्वास की ज्योति के समक्ष संसार से सभी अन्धकार तिरोहित हो जाते है।

ससार मे जितने भी महान कार्य हुए, वे सब विश्वास की ही कृति है। महात्मा गाँधी के प्रबल विश्वास ने ही देश की आजादी का स्वप्न साकार किया। तिलक ने कहा था "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे।" उनका यह दृढ़ विश्वास कालान्तर मे मूर्त हुआ लिंकन ने अपनी डायरी के पन्नो पर लिखा, साथ ही लोगो से कहा—"मैने अपने भगवान को वचन दिया है कि दासो की मुक्ति के कार्य को मैं अवश्य पूरा करूँगा।" अनेको विरोधो के बावजूद भी लिंकन ने वह महान कार्य सम्पन्न किया। कोलम्बस को विशाल सागर के पार किसी किनारे का विश्वास था। उसने अपनी साहसिक यात्रा करके अन्ततः अमेरिका की खोज कर ही ली।

विश्वास सफल जीवन का मूलतन्त्र है। टालस्टाय ने लिखा है, "विश्वास जीवन की शक्ति है।" शेक्सपीयर ने कहा था "विश्वास क्या नहीं कर सकता? विश्वास हमे अथाह सागर मे भी मार्ग ढूँढ निकालता है। वह हमें गगनचुम्बी पहाड़ो को लाँघने की शक्ति और प्रेरणा देता है। विश्वास जीवन के समस्त वरदानो का आधार है। स्वेट मार्टेन ने लिखा है—"विश्वास ही जीवन के उ मार्ग की खोज करता है , जो हमे मंजिल तक पहुँ

सके।" महात्मा गाँधी ने कहा है—"विश्वास हमारी जीवन नैया को तूफानी सागर में भी खेता है। विश्वास पर्वतों को डिगा देता है। विशाल सागर को लाँघ सकता है। विश्वास कोई कोमल पुष्प नही, जो साधारण वायु के झोके से ही गिर जाय। यह हिमालय की तरह अडिग रहता है।" सीता की खोज मे गये वानर-भालू समुद्र तट पर हारकर बैठ गये। कौन इसके पार जाकर सीता का पता लगावे ? स्वयं हनुमान भी इसी चिन्ता मे थे। किन्तु जामवन्त ने उनके विश्वास को जाग्रत करते हुए कहा—"हनुमान ! तुम इस समुद्र को लाँघ सकते हो।" और आत्म-विश्वास के जाग्रत होते ही हनुमान उस विशाल सागर को खेल की तरह पार कर गये। संसार के समरांगण मे, जीवन के संघर्ष मे वही व्यक्ति स्थिर रह सकता है, जिसमे अदम्य विश्वास है।

जहाँ विश्वास है, वहाँ जीवन के समस्त अभाव, अभिशाप, दीनता, दारिद्र्य, गरीबी आदि निष्प्रभाव हो जाते हैं। ये जीवन के विकास-क्रम में बाधक नहीं बनते। संसार के अधिकांश महापुरुषो का जीवन इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। जिन्हें बढ़ने के लिए तनिक भी सहारा नही था, उन्होने अपने आत्मबल के सहारे जीवन की महान सफलताएँ अर्जित कीं। अनेको व्यक्ति अपने विश्वास के आधार पर असाधारण बन गये।

किसी भी क्षेत्र मे सफलता अर्जित करने के लिए, आगे बढ़ने के लिए विश्वास का होना आवश्यक है। किसी भी ध्येय की पूर्ति के पीछे विश्वास की सत्ता नहीं होगी तो वह अपने आरम्भ काल मे ही अस्त हो जायेगा। विश्वास के अभाव मे मनुष्य जीवन शुष्क, नीरस, निर्जीव-सा बन जाता है। जड़ता अपने जाल में जकड़ लेती है। विश्वास के अभाव में राज-पथ पर भी मनुष्य एक कदम आगे नही बढ़ सकता।

विश्वास कहीं अन्यत्र ढूँढ़ी जाने वाली वस्तु या किसी की कृपा का वरदान नहीं। यह हमारे अन्तर मे ही विराजमान सनातन सत्य है। आत्म-चेतना अजर-अमर, सर्वशक्ति सम्पन्न, दिव्य स्वरूप ही हमारे विश्वास का आधार हो सकता है। इस तरह आत्म-देव का परिचय प्राप्त कर उन्ही के हाथो जीवन की पतवार सौंप देना, अपनी शक्ति और सामर्थ्य पर भरोसा रखकर निर्द्वन्द्व हो जीवन-रण मे अपना कर्त्तव्यपालन करते रहना ही विश्वास का अवलम्बन लेना है। मनुष्य अपने आप मे अक्षय शक्ति और निधियो का स्वामी है। मनुष्य के अन्तर में शक्ति समृद्धि का अजय स्रोत होता है। इसका परिचय होने पर दृढ़ विश्वास का अभ्युदय होता है।

चेतना के प्रतिबिम्ब मे अपने अन्तर की शक्ति एव दिव्य गुणो का परिचय प्राप्त कर उन पर दृढ़ आस्था रखने पर विश्वास का जन्म होता है। ऐसे आत्म-निर्माण जीवन-शोधन अपने मे दिव्य गुणो के अभ्यास से ही सम्भव है। यह निश्चित है कि हमारे विश्वास का आधार आत्म-देव का, अपने अन्तर मे स्थित सनातन सत्य का परिचय प्राप्त करना ही है।

सामान्य तौर पर अहंकार भी विश्वास जैसा लगता है। किन्तु अहंकार का आधार भौतिक पदार्थ, स्थूल सामग्री और मनोविकार होते है। स्वामी रामतीर्थ ने इसी तथ्य को प्रकट करते हुए बताया है—"विश्वास राम भी है और रावण भी। आत्म-निष्ठा केन्द्रित विश्वास राम है तो अहंकार पर आधारित विश्वास रावण।" महर्षि वशिष्ठ ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए बताया है, "विश्वास कुल रानी तो अहंकार बाजारू वेश्या। मूल रूप मे एक सी सेवा करती हुई, परमार्थ जीवन व्यतीत करती है तो दूसरी खुद डूबती है और साथ दूसरो को भी डुबाती है।" अहंकार प्रेरित विश्वास, विनाश, शोषण, पीड़ा, निर्दयता का कारण बनता है। हिटलर, मुसोलिनी, सिकन्दर, नैपोलियन आदि में भी विश्वास कम नही था किन्तु वह अहंकार पर आधारित था और यह विश्वास उनके और जन-समाज के लिये अहित ही सिद्ध हुआ। अहंकार पर आधारित विश्वास क्लेश, अशान्ति, विनाश दुर्गति उत्पात का ही कारण बनता है जबकि आत्मनिष्ठा पर आधारित विश्वास कठिन से कठिन परिस्थितियो में भी मनुष्य को सन्तोष, प्रसन्नता, सुख-शान्ति, निर्मलता प्रदान करता है। हममे अटूट विश्वास तो हो, किन्तु उसका पोषण अन्तर-चेतना, आत्मा के दिव्य गुण, शक्ति, सामर्थ्य आदि के द्वारा हो, न कि हमारे अहंकार से। आत्मनिष्ठा पर आधारित विश्वास ही अपनी शर्तें पूरी कर जीवन को उत्कृष्ट बनाता है।

विश्वास मनुष्य के सभी गुण और शक्तियो को केन्द्रित करता है। उन पर अपना नियन्त्रण रखता है। केन्द्रित और नियन्त्रित शक्तियाँ जब किसी ध्येय की पूर्ति में जुट जाती हैं तो असम्भव ही सम्भव हो जाता है। मनुष्य सामान्य से असामान्य बन जाता है। संसार मे जो भी महान कार्य हुए है, उनकी नीव विश्वास और संगठित शक्तियों की सक्रियता पर आधारित थी।

विश्वास मनुष्य को सभी प्रकार के भय, सन्देह, शंकाओ से मुक्त कर देता है। वस्तुतः भय, शंका, सन्देह आशंका वहीं होती है जहाँ अशक्ति, कमजोरी, अभाव आदि होते है। आत्म-विश्वास मनुष्य मे अदम्य शक्ति, साहस भर देता है और मनुष्य की ये मानसिक कमजोरियाँ तिरोहित हो जाती है। विश्वास की ज्योति जलते ही मनोभूमि पर छाई हुई अन्धकार की काली घटाएँ छिन्न-भिन्न हो जाती है। आत्मविश्वासी को मौत का भी डर नही रहता और उसे कोई आशका, सन्देह आदि उद्वेलित नहीं करते है।

हमे जीवन को महान, उत्कृष्ट, उपयोगी बनाने के लिये, जीवन-संग्राम मे विजयी होने के लिये, संसार मे अमर कृति छोड़ने के लिये आत्म-विश्वास की ज्योति अपने हृदय मन्दिर में जलानी होगी। अपने अन्तर के

दिव्य गुणो और शक्ति का परिचय प्राप्त करना होगा। क्षण-क्षण आत्मदेव की अनुभूति जगानी पड़ेगी। विश्वास के सहारे ही हम संसार के दुर्द्धर्ष पथ पर जीवन-रथ को आगे बढ़ा सकेगे और लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेगे। "विश्वास ? विश्वास ! अपने आप मे विश्वास, ईश्वर मे विश्वास, अपने आत्म-देव की अपार शक्तियो मे विश्वास—यही जीवन की सफलता और महानता का रहस्य है।" स्वामी विवेकानन्द के इन उद्गारो को जीवन मे चरितार्थ करना होगा, तभी हम महानता की चोटी पर पहुँच सकेगे।

"मनुष्य अमृतपुत्र है, परमात्मा युवराज है। पर धरती पर अपने पिता की फुलवारी मे वह खुशियाँ मनाने, सैर करने आया है, आनन्द मनाने आया है। मानव महान है, क्योकि उसमे महानता के अधिपति आत्म-देव का निवास है।" हमे मानव जीवन की इस बुनियाद, महान गौरव पर विश्वास करना होगा। हम देखेगे तब कोई भी रुकावट हमारा रास्ता नही रोक सकेगी। तथाकथित गरीबी, दुर्भाग्य हमे परास्त नही कर सकेगे। कठिनाइयाँ, उलझने, समस्याएँ उसी तरह भाग खड़ी होगी, जैसे प्रकाश के सम्मुख अन्धकार।

वेद भगवान ने कहा है—'हे मनुष्य ! यह जीवन अमृत की लड़ी है। तेरे प्राण, तेरा जीवन नित्य नई आभा लिये आ रहा है। हे मनुष्य ! तू प्रेरणा का केन्द्र है, तू प्रकाश का धारण करने वाला है। तू प्रकाश है ! तू प्रकाश !! तू प्रकाश !!! तू अमर ज्योति है ! तू दिव्य ज्योति है ! यदि हमे जीवन के महान लाभो से सम्पन्न होना है तो आत्म-विश्वास का सम्बल लेना ही पड़ेगा। इसके सिवा कोई चारा नही। आत्म-विश्वास के अभाव मे तो मनुष्य का शरीर, मन ही साथ नही देता और न दुनिया वाले ही सहायता करते है।

शक्ति, वृद्धि के लिये आदमी को आत्म-विश्वासी होना पड़ता है। आत्म-विश्वास मे वह शक्ति भरी होती है जो मनुष्य को सफलता के उच्च शिखर तक पहुँचा देती है। ऐसा मनुष्य न तो किसी के उपहास की परवाह करता है और न विघ्न-बाधाओ से डरता, घबड़ाता है। आत्म-विश्वास मानव जीवन का बल है, जो संसार मे बड़ा कार्य कम साधनो के द्वारा भी सरलतापूर्वक सम्पन्न करा देता है।

इमर्सन ने कहा है—"अपने ऊपर विश्वास करो—आपका हृदय शक्ति से भर जायेगा।" हजारो-लाखो वर्षों से लोग बाह्य उपकरणो का भरोसा करते रहे है, आज भी करते है। किन्तु जिन्होने अपनी आत्मिक शक्तियो को पहचाना, उन्होने कुछ ऐसी विभूतियाँ प्राप्त कीं कि लोग उन्हे जननायक, विजयी और महान मानने के लिये विवश हुए। ऐसे मनुष्यो ने सदैव अपनी नैसर्गिक सरलता और मौलिक गरिमा का आह्वान किया, जिससे उनमे वह तेजी आई, वह स्फूर्ति, वह शक्ति पैदा हुई—कि बड़े-बड़े पहाड़ उनके आगे झुक गये सफलताओ ने स्वयं आगे बढ़कर उन्हें विजयमाला पहनाई। मुगल सम्राट् बाबर, विश्व-विजेता नैपोलियन, जर्मन के प्रधानमन्त्री बिस्मार्क आदि ऐसे ही महापुरुषो मे थे, जिन्होने आत्म-विश्वास के बल पर आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त की।

यह कभी भी मत सोचिये कि आप अकेले है, आपकी शक्ति और सामर्थ्य बिल्कुल छोटी है, आपका ज्ञान, शारीरिक क्षमता सब कुछ स्वल्प है। इससे आपमें दीनता और हीनता की मारक भावनाएँ पैदा होगी जो आपको भविष्य को अन्धकारमय बना देगी। सोचिये आपके पास क्या नहीं ? आप साहसी है, कर्मशील हैं, पौरुष दिखाने की क्षमता है। आपका शरीर मोटा या तगड़ा न सही, स्वस्थ तो है, नीरोग तो है। महात्मा गाँधी का वजन तो कुल ९६ पौण्ड था। फिर आप यह क्यों मान रहे है कि आपकी शक्ति सीमित है। इन शक्तियो का थोड़ा उपयोग तो कीजिये तब आपको पता चलेगा कि आप कितने बलशील है। आप भी जार्ज हर्बर्ट के इस मन्त्र को अपने जीवन मे धारण करके तो देखे—"बेखटके अकेले रहो। अपना आदर आप करो और देखो कि तुम्हारी आत्मा की क्या दशा है ? जिसके हृदय मे यह ज्ञान प्रकाशित है, वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को एक ही केन्द्रबिन्दु पर जुटाकर आश्चर्यजनक लाभ तो प्राप्त कर ही सकता है।

आत्म-विश्वास का अर्थ है अपनी परिस्थितियो और समस्याओ का हल अपने आप मे ढूँढना। आप क्यो दूसरे लोगो से सहायता की याचना करते है। उनके पास भी तो वही उपकरण हैं, जो परमात्मा ने आपको भी दिये है तो क्यो नही अपने हाथ-पाँव चलाते। अपनी बुद्धि का उपयोग क्यो नही करते ? बाहरी मनुष्य आपको सहायता देकर ऊँचा उठा नही सकता। इसके लिए आपको अपनी ही शक्तियो का सहारा पकड़ना पड़ेगा। प्रत्येक दिशा में आत्म-विश्वास जाग्रत करना पड़ेगा।

इसका अभिप्राय यह नही कि आप सहयोग और संगठन की वृत्ति से अलग होने का प्रयास करने लगो या आप औरो से सीख और उचित परामर्श भी लेने का परित्याग कर दे। सामाजिक जीवन मे यह किसी प्रकार भी सम्भव नही है। इसे तो मानसिक दुराग्रह या आत्मिक दुर्बलता ही कहा जायेगा। आत्म-विश्वास का अर्थ यह है कि हम अपने स्वाभिमान को दुर्बल न होने दे। आत्महीनता की निराशापूर्ण भावनाएँ मनुष्य को भाग्यवाद की ओर प्रेरित करती है, जिससे लोगो में अकर्मण्यता का संचार होने लगता है। आत्म-विश्वास का उपदेश करने का यह उद्देश्य नही कि मनुष्य दैववाद के भ्रामक सिद्धान्त का प्रतिपादन करने लगे। अपितु परमात्मा की दी हुई शक्तियो को सदैव क्रियाशील रखने का नाम ही आत्म-विश्वास है।

आध्यात्मिक आस्थाओ से संसार में पग-पग पर सुरक्षा, निर्माण और सुख की परिस्थितियाँ दिखाई देती है। आत्मा स्वयं पूर्ण है, वह अनन्त शक्तियो का भण्डार है। इनके आश्रय मे जाने वाला व्यक्ति ही इन शक्तियो का अधिकार प्राप्त करता है। जो इसका सदुपयोग करता है, उसी का जीवन व्यवस्थित रहता है। दृढ इच्छाशक्ति, अटूट परिश्रम, अनन्त धैर्य किसी भी बाह्य उपकरण से कम महत्वपूर्ण नही है। आप जीवन के व्यवहार मे इन्हें प्रयुक्त करिये। आपका भविष्य अवश्य उज्ज्वल बनेगा।

आत्म-विश्वास मनुष्य की सम्पूर्ण शक्तियो को एक स्थान पर सगठित करता है। संगठित शक्तियो को जीवन के जिस क्षेत्र मे उतार देते है, वही भारी उथल-पुथल मच जाती है। दूसरे लोग भी हमारा भरोसा करने लग जाते है। इसका श्रेय शक्तियो के संगठन को होता है। चित्त की एकाग्रता के प्रबल होने से मस्तिष्क की सम्पूर्ण कार्य-कारणी शक्तियाँ विकसित होती है और उसी क्षेत्र मे काम करने लग पड़ती है। आत्म-विश्वास ही हमारी गुप्त शक्तियो के जागरण का मूल मन्त्र है।

आत्म-विश्वास और दृढ प्रतिज्ञा के बिना मनुष्य परिस्थितियो का दास बना रहता है। हर घड़ी किसी न किसी सुयोग की चिन्ता मे डूबा रहता है। कही से जमीन मे गढ़ा धन मिल जाय, कोई ऐसा आशीर्वाद दे दिया कि परीक्षा मे उत्तीर्ण हो जाये, शादी-विवाह, रोजी-रोजगार आदि के लिये जो किसी घटना या संयोग की ताक मे बैठे रहते है, उनकी आत्मिक शक्तियो मे ऐसा जंग लग जाता है, जो जीवनभर छुटाये नही छूटता। अन्ततोगत्वा बुरे परिणाम, दुःखद परिस्थितियाँ और असफलता के प्रेत-पिशाच उन्हे आ घेरते है। तब पछतावा ही हाथ लगता है। पुरुषार्थ और प्रयत्न के क्षण तो तब तक समाप्त हो जाते है।

"किसी महापुरुष ने कहा है कि अपना महत्त्व समझो और विश्वास रखो कि तुम दुनिया के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।" इस कथन मे आत्म-शक्ति की महिमा का ही प्रतिपादन किया गया है। जो प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर मे सुषुप्तावस्था मे विद्यमान है। आवश्यकता इतनी भर है कि हम उसे समझे और जाग्रत करने का प्रयास करे। उसका अभ्यास हर छोटे कार्य से हो सकता है। जो भी काम हाथ मे ले, पूरे विश्वास के साथ उसमें जुट जायँ। मनोयोग एवं पुरुषार्थ के सम्मिलित योगदान से कार्यो मे अभीष्ट सफलता मिलती है और अपनी सामर्थ्य भी बढ़ती है। अपने ऊपर विश्वास दृढ होता है। आत्म-विश्वास की जागृति ऐसी उपलब्धि है, जिसके सहारे बड़े से बड़े और कठिन से कठिन कार्यो का भी सम्पादन सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

संकटों से विचलित न हों

इस संसार मे अवांछनीयताओ व उत्कृष्टताओ दोनों का समावेश है। यहाँ पाप व अनीति अधिक और पुण्य नीति स्वल्प रहे होते तो अब तक दुनिया का नामोनिशां न रहता। आग दुनिया मे है तो सही, पर पानी से अधिक नही। इतने पर भी देखने मे यह आता है, अध्यात्म तन्त्र से जुड़े धर्मपरायण व्यक्ति ही अधिक संकट पाते हैं। दुष्टता का प्रत्याक्रमण बढ़ता जाता है, घटता नही। प्राणो का संकट एकाएक आ चढ़ बैठता है। कभी-कभी यह अपने निजी सम्बन्धियो से लेकर आत्मीयो का अहित कर बैठता है। असुरता अजेय बनती दीख पड़ती है एव देवत्व मोटी दृष्टि से पराजित होता दिखाई देता है। साधारण बुद्धि वाले मनुष्य इसमे कार्य-कारण की कुछ संगति बिठा नही पाते व नाना प्रकार की शंकाएँ उनके मन मे उठती रहती है। इसका समाधान पाने हेतु कुछ प्रसंगो को पहले समझना होगा।

देवासुर संग्राम मे ऐसे कई घटनाक्रम घटित हुए है, जब असुरता देवत्व पर हावी हुई है। अच्छे काम में अड़चन डालने वाले असुर सदैव देव समुदाय को अपने मार्ग का रोड़ा मानकर उन पर आक्रमण करते आए है। देव शक्तियाँ चाहे वे अवतार के रूप मे हो अथवा महामानव के रूप मे, धर्म के पथ पर जागरूक हो प्रतिशोध करती रही है। किसी को अपनी जान गँवाकर, किसी को कष्ट सहन करके, किसी को प्रिय का वियोग-बिछोह सहकर तथा किसी को प्रखर संघर्ष द्वारा व्यापक विध्वस करके यह माहौल बनाना पड़ा है कि देवत्व सदैव जाग्रत रहेगा।

ईसा जीवनभर कष्ट सहते रहे। आज तीन चौथाई आबादी विश्वभर मे उन्हे मानती है। अन्तिम समय मे मात्र आठ शिष्य उनके साथ थे, उनमे से भी एक ने धोखा दिया व अन्ततः वे सूली पर चढ़ा दिये गये। उनके मरने के बाद भी क्रिश्चियन धर्म नही मरा।

गृहकलह से लेकर शत्रुओ की दुरभि सधियाँ प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात को जीवनभर त्रास देती रही। हमेशा प्रसन्नता से जीने वाले इस महामानव ने जहर का प्याला पीकर मौत स्वीकार कर ली किन्तु सिद्धान्तो से समझौता नही किया।

क्या महात्मा गाँधी ने किसी का कुछ बिगाड़ा था जो उन्हे स्वतन्त्रता की लक्ष्य-सिद्धि के बाद भी गोली खानी पड़ी। लाला लाजपतराय लाठियाँ खाकर व सैकड़ो निर्दोष व्यक्ति गोलियो द्वारा जलियाँवाला काण्ड के समय मारे गए। दीनदयाल उपाध्याय जैसे सन्त हृदय व्यक्ति की किसी से क्या दुश्मनी हो सकती थी कि वे एक आक्रमण का शिकार बनते। स्वामी दयानन्द ने किसी का क्या बिगाड़ा था कि कोई व्यक्ति उनका विश्वस्त बनकर उनकी जान ले बैठा। वस्तुतः इन सभी प्रकरणो मे प्रत्यक्ष को नही, परोक्ष को कारण समझा जाना चाहिए एवं

यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि सत्य व धर्म की रक्षा के लिए आदर्श, कर्त्तव्यपालन के अतिरिक्त धर्मपरायणो, आस्तिको, समाज के लिए समर्पित जीवन जीने वालो को अपनी जान की कीमत पर वह काम करना पड़ा है, जो शायद वैसे सम्भव न हो पाता। इसका कारण यह नही कि असुरता इसमे जीतती व देवत्व की हार होती रही है। दैवी चेतना का कुछ विधान है यह कि कुछ कारण न होते हुए भी महामानवो को अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ा है व अपनी आहुति देनी पड़ी है।

सत्य व धर्म का अवलम्बन लेने वाले समाज समर्पित व्यक्तियो के जीवन मे एक ऐसी समानता देखने मे आती है, जो त्रासदी से भरी है। वह है उन पर जीवनभर कष्टो का आना। न केवल कटुवचनो के हमलों के रूप में, रोगो के प्रत्याक्रमण के रूप मे, वरन् आक्रमणो के रूप मे भी। एक सामान्य व्यक्ति यह सोच सकता है कि धर्म एवं न्याय के पक्षधर कभी किसी का बुरा न चाहने वालो के साथ ऐसा क्यो कर होता है ? क्या विधाता के यहाँ ऐसी कोई भी व्यवस्था नही कि आसुरी शक्तियाँ ऐसे भले मानसो को कोई कष्ट नही पहुँचाएँ।

इस असमंजस का एक ही समाधान है कि दैवी व्यवस्था बड़ी विलक्षण है। बड़े काम बड़ो द्वारा खतरे उठाकर ही सम्पन्न किये जाते है। वे आत्मबल सपन्न होते है व बड़ी से बड़ी क्षति पर भी साहस नही खोते। ऐसे लोग होते तो गिने-चुने ही है, पर दैवी कृपा, लोक सम्मान जनशक्ति के सहयोग व अनुग्रह के रूप मे उन पर हमेशा बरसती है। प्रकृति का नियम अटल है। परोक्ष जगत मे क्या हो रहा है—हम नही जानते पर उस महासत्ता पर विश्वास कर अपनी आस्तिकता को तो सतत् पोषण देते रह सकते है।

निहत्थे व्यक्ति ने शेर को मार गिराया

शिवालिक पहाड़ियो के बीच बसे हुए धुयना गाँव के श्री पृथ्वीसिंह जब घायल दशा मे अस्पताल पहुँचे तो एक तमाशा बन गये। झुण्ड के झुण्ड लोग उन्हे देखने के लिये आने लगे। आकर्षण श्री पृथ्वीसिंह अथवा उनके जख्मो मे नही था। पृथ्वीसिंह को आकर्षण का केन्द्र बना दिया था उनके साहस भरी इस घटना ने, जिसके कारण वे घायल हुए थे।

जहाँ-जहाँ लोगो ने यह सुना कि अस्पताल मे एक ऐसा जख्मी व्यक्ति आया है, जिसने दो घण्टे तक अकेले और निहत्थे एक भयंकर शेर से युद्ध किया और आखिर उसे मार गिराया—वही से लोग चल-चलकर आने और श्री पृथ्वीसिंह को घेरने लगे। लोगो ने इच्छा प्रकट की कि पृथ्वीसिंह अपने उस अपूर्व साहस की घटना लोगो को सुनायें। डाक्टर ने उस समय लोगो को ह्य दिया और कहा कि इस समय उन्हे आराम और मरहम-पट्टी की जरूरत है। आप लोग परसो आकर घटना सुन सकते है, तब तक ये काफी स्वस्थ हो जायेगे। घटना सुनने की हमको भी उत्सुकता है।

परसो आया और उत्सुक लोग भी आ गये। श्री पृथ्वीसिंह ने कहना शुरू किया—मुझे सदा से अपनी तन्दुरुस्ती का बहुत ख्याल रहा है। इसके लिये मै जो व्यायाम करता हूँ वह तो करता हूँ, लेकिन सवेरे पास की पहाड़ियो पर हवाखोरी के लिये जरूर जाता हूँ। उधर, जिधर मै घूमने जाया करता था, किसी जानवर की कभी शंका नहीं थी। इसलिये हाथ में कुछ लेकर जाने की जरूरत ही नही थी। उस दिन भी नित्य की तरह मैं सूर्योदय से पहले घूमने गया। मै निश्चिन्त चला जा रहा था कि इतने मे दाहिनी तरफ से चट्टान की आड़ से गुरगुराहट की आवाज आई। मै जरा ठिठका और ध्यान से देखने लगा लेकिन कुछ दिखलाई न दिया। मै फिर बढ़ने लगा। चार-पाँच कदम ही चला हूँगा कि वही आवाज फिर सुनाई दी। पीछे मुड़कर देखा, तो देखा कि एक भयकर शेर हमले की तैयारी मे खड़ा है।

विकट परिस्थिति थी। नि.सन्देह मौत का सामना था। शेर के हथियार तो उसके मुँह और पंजो मे होते ही है लेकिन मै बिल्कुल निहत्था था। पहले तो मै किसी तरफ बच भागने की सोची लेकिन तुरन्त ही ख्याल आया कि यह विचार मिथ्या है। शिकार पर खड़े शेर से बचकर भागा भी कैसे जा सकता है ? शेर ने दो बार दुम को लहराया और धीरे-धीरे मेरी तरफ बढ़ा। आपत्ति को सिर आया देखकर मैने अपना साहस सँभाला और भगवान का नाम लेकर लाँग चढ़ाते हुए कहा—"आ भाई ! अब तू आ ही गया तो हम भी जूझने को तैयार है। मुझे तैयार होते ही शेर ने मुझ पर छलाँग लगा दी। मै तो पटैती खेला हुआ था। परन्तु पैतरा काटकर उसकी उछाल बचा दी। अब तक मै सारा माया-मोह भूलकर शत्रु के साथ केन्द्रित हो चुका था। शेर फिर उछला और अबकी बार मेरे ऊपर आ गया और हम दोनो गुत्थम-गुत्था हो गये। मैने बाँहो की ओट देकर उसका जबड़ा अपने दोनो हाथो से पकड़ लिया और उसे चीर देने के लिये भरपूर जोर लगाया। निश्चय ही उसके किनारे कुछ फट गये थे। वह फिर जोर से गुर्राया और अपना जबड़ा छुड़ाने की कोशिश करने लगा। मै समझ गया कि यही पर इसकी कमजोरी है। निदान मै बार-बार उसका जबड़ा फाड़ डालने के लिये भरपूर जोर लगाने लगा। थोड़ी देर तक थोड़ा सघर्ष होता रहा और बाद मे उसने जोर का झटका देकर अपना जबड़ा छुड़ा लिया। उसका झटका खाकर मैं दूर जा पड़ा। संयोग से उस जगह मुझे एक बड़ा-सा पत्थर मिल गया। उसे उठाकर तुरन्त उठ खड़ा हुआ। शेर ने फिर हमला किया और मैने एक ओर बचकर वह बड़ा-सा पत्थर उसकी नाक पर मारा। शेर तिलमिला गया।

जब तक वह दुबारा हमला करने के योग्य हो, तब तक मैंने सम्पूर्ण बल के साथ उसकी नाक पर पत्थर के ३ वार और किये। उसकी नाक फट गई और उससे बेतहाशा खून बहने लगा। वह अपना खून जोश से चाटता हुआ फिर मुँह फैलाकर मुझ पर आया कि मैंने एक भरपूर वार उसकी थूथली पर किया, पत्थर उसके कई दाँत तोड़कर उसके मुँह में अटक गया। बस ! फिर क्या था ? मैंने उसको पकड़कर जमीन पर गिरा दिया और गला दबाकर अन्त कर दिया। संघर्ष से निपटने के बाद मुझे पता चला कि जहाँ शेर मुझे मुँह से तो घायल न कर सका, वहाँ उसने पंजों से काफी जख्मी कर दिया है। यह तो आप सब देख ही रहे हैं। लोगों ने श्री पृथ्वीसिंह की साहसिक घटना सुनी और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। एक सप्ताह में ठीक होकर वे अस्पताल से घर आ गये।

संकल्प और पुरुषार्थ का समन्वय असम्भव को सम्भव बनाता है

मनुष्य की संकल्प शक्ति और कर्मठता का यदि समन्वय हो सके तो वह सम्मिलित चेतना शक्ति इतनी समर्थ होती है कि कुछ भी कर सके, असम्भव को भी सम्भव बना सके।

ध्रुव प्रदेशों को अगम्य माना जाता रहा है। अत्यधिक शीत से भरा हुआ यह हिमाच्छादित क्षेत्र अन्न, जल, निवास सभी दृष्टि से भारी जटिल है। ऋतुओं की विलक्षणता, आकाश में चमकने वाले प्रकाश की अद्भुतता, चुम्बकीय प्रवाहों के कारण दिशा-भूल होने की सम्भावना आदि जटिलताओं को सुलझाते हुए वहाँ पैर जमा सकना लगभग इतना ही कठिन है जिसे लगभग असम्भव के इर्द-गिर्द समझा जा सके।

इतने पर भी दुस्साहसी लोग वहाँ जा ही पहुँचे और वहीं रहकर इस धरती की गतिविधियों सम्बन्धी अनेकों महत्वपूर्ण जानकारियाँ ढूँढकर ला सकने में सफल हो गये।

ध्रुव अभियान कितने कठिन है ? इसकी कल्पना करने मात्र से रोमांच हो उठता है पर मानवी दुस्साहस तो अजेय शक्ति है, वह असम्भव को सम्भव बनाती रही है। उसने ध्रुवीय क्षेत्र में पहुँचने, रहने और काम करने की कठिनाइयों को भी सरल बना दिया है और वैज्ञानिक लोग वहाँ डेरे डालकर रह रहे हैं।

उत्तरी ध्रुव पर इटली का शोधकर्ता गाइडो मोजीनो विशेष तैयारी के साथ पहुँचा था और उसने कितनी ही नई-नई जानकारियाँ उस क्षेत्र की संग्रहीत की थीं। इससे ६२ वर्ष पहले राबर्ट पियरी उस क्षेत्र में प्रथम पदार्पण कर चुका था।

ग्रीनलैण्ड की खाड़ी पार करके एक अमेरिकी जलयान पैनहट्टन उस ध्रुव की विशद् खोज करने के लिए सन् ६९ में गया था। उस पर ९५ नाविक, वैज्ञानिक और पत्रकार सवार थे। दो बर्फ तोड़ने वाले छोटे जहाज और मार्गदर्शन के लिए कई हैलिकोप्टर साथ थे। उसने १६००० किलोमीटर क्षेत्र का पर्यवेक्षण करके कितनी ही उपयोगी जानकारियाँ इकट्ठी कीं।

दक्षिणी ध्रुव के विशेष शोधकर्ता एमण्डसन और स्काट के नाम पर उस क्षेत्र में दो मंजिली तीन इमारतें बनाई जा रही हैं। ये एक विशिष्ठ एलम्यूनियम की चादरों से इस प्रकार बनाई जा रही है कि शून्य से ४३ अंश नीचे की विकट सर्दी और तूफानी अन्धड़ों के बीच भी वहाँ रह सकना सम्भव हो सके। ऊपर एक सुरक्षात्मक गुम्बद होगा, नीचे प्रयोगशालाएँ तथा निवास-सुविधा के कमरे तथा आवश्यक उपकरण रहेंगे। सर्दी में १६ और गर्मी में ५० शोधकर्त्ता रह सकेंगे।

दक्षिणी ध्रुव पर उस क्षेत्र की शोध करने के लिए मैक्मुकड़ो शिविर बहुत समय तक लगातार काम करता रहा है। वैज्ञानिकों का एक दल वहाँ इसी कार्य के लिए बनाई गई प्रयोगशाला में विविध प्रकार के अनुसन्धान करता रहा है।

इस क्षेत्र में सबसे पहला शोधकर्ता नार्वे का नागरिक रोआल्ड एमंडसन अपने चार साथियों सहित सन् १९१७ में पहुँचा था। इसके बाद एक अँग्रेज रोबर स्कॉट ने भी यहाँ पहुँचने की हिम्मत दिखाई। ८१६०००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैली, दस हजार फुट मोटी बर्फ की चादर से ढका, यह सुविस्तृत प्रदेश कितना ठण्डा, कितना नीरव, कितना स्तब्ध है, यह देखकर पहुँचने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बर्फ के पहाड़ में कन्दरा बनाकर वहीं कोई झोपड़ी खड़ी की जा सकती है और शोधकर्त्ता ऐसे ही आश्रय स्थल में अपना गुजारा कर सकता है।

इस क्षेत्र में किये गये प्रयोगों में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि जीव-जन्तुओं में समय को पहचानने की जो अतीन्द्रिय चेतना है, उस पर देश-काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दक्षिणी ध्रुव की प्रयोगशालाओं में हैमस्टर्स चूहे तथा कुछ किस्म के पौधे पहुँचाये गये और देखा गया है कि उनकी समय सम्बन्धी आदतों पर वहाँ की परिस्थितिभिन्नता का कुछ असर पड़ता है या नहीं। पाया गया कि वे प्राणी और पौधे अपनी आदतों के अनुसार ही काम करते रहे। पौधे ठीक उतने ही समय में फूले-फले, जितने में कि वे पहले फूलते-फलते थे। चूहे, छछूँदर, बिलवट्टे जो सामान्यतया रात्रि में सक्रिय रहते हैं और दिन में सोते हैं। ध्रुवीय क्षेत्र की विचित्र परिस्थितियों में—घुप्प अँधेरे में रखे गये, पर वे यह भली प्रकार जानते रहे कि कब दिन है और कब रात ? उन्होंने अपनी पुरानी आदतें रात्रि के बिल्कुल सही समय पर ही आरम्भ कीं।

कुछ भी नहीं हुआ। शरीर एवं चेहरे पर दुर्घटना के दाग स्थायी रूप से बन गये थे।

एगलवर्ट का कहना है कि अमरीका के अनेकों पत्र-पत्रिकाओं ने मैक को अणु-मानव कहकर सम्बोधित किया। यह भी एक विचित्र विडम्बना है कि मैक के निकटवर्ती अधिकांश साथी उससे मिलने से कतराते है। इस डर से कि कहीं उसके शरीर मे मौजूद रेडियोएक्टिव तत्वों के विकिरण का दुष्प्रभाव न पड़ जाय। कुछ मित्र हाथ मिलाने से कतराते है। यह पूछे जाने पर कि इतनी अधिक मात्रा विकिरण की पहुँचने के बाद भी कैसे जीवित बच गया ? मैक ने उत्तर दिया कि मुझे यह पूरा विश्वास था कि मै मरूँगा नहीं। मेरी इच्छा सदा सशक्त बनी रही। उसी से मुझ मे सदा आशा, प्रेरणा और बल का संचार होता रहा।

प्रायः अधिकांश व्यक्ति अपनी आन्तरिक शक्ति को नहीं पहचानते, न ही उसे उभारने का प्रयास करते है। उस अन्तः शक्ति का सम्बल लिया जा सके तो सचमुच ही बड़े से बड़े संकटों का सामना किया जा सकता है।

संकल्प शक्ति मृत्यु को भी टाल सकती है

प्रायः देखने-सुनने मे आता है कि अमुक व्यक्ति के प्राण अपने प्रिय पुत्र, पुत्री अथवा ऐसे ही किसी अन्य घनिष्ट सम्बन्धी के न आने तक तब तक रुके रहे, जब तक मृत्यु शैय्या पर पड़े व्यक्ति ने उसके अन्तिम दर्शन न कर लिये और दर्शन के उपरान्त शान्तिपूर्वक वह मृत्यु की गोद मे चिरनिद्रा मे सो गया। तो क्या इस प्रकार मृत्यु को कुछ समय तक टाला जा सकता है ? मनोवैज्ञानिको के अनुसार उत्तर होगा हाँ, ऐसा सम्भव है। यदा-कदा मरणासन्न व्यक्तियो के मामले मे यही बात देखने को मिलती है।

ऐसा क्यो व कैसे होता है ? इस सम्बन्ध मे डीलावेयर के मनोवैज्ञानिको का कहना है कि मरणासन्न व्यक्ति का जब किसी सगे-सम्बन्धी से घनिष्ट लगाव हो जाता है, तो उसे देखने की अन्तिम इच्छा एक प्रकार का संकल्प का रूप धारण कर लेती है और यह सर्वविदित तथ्य है कि जब एक बार दृढ़ संकल्प उभर पड़ता है, तो न सिर्फ परिस्थितियाँ वरन् शरीर, मन, प्राण भी उसके अनुरूप बनने, ढलने लगते हैं।

गीता मे इसी बात को दूसरे रूप मे समझाया गया है कि व्यक्ति जैसा सोचता है वैसा ही बनता चला जाता है। यहाँ भी आशय यही है कि व्यक्ति का सतत एक दिशा मे किया गया चिन्तन इतना प्रबल व शक्तिशाली बन जाता है कि वह उसके अवचेतन मन की गहराइयो तक उतर जाता है और अपना काम करने लगता है एवं व्यक्ति को उसी चिन्तन-चेतना के ढाँचे मे ढालना आरम्भ कर देता है, जैसा उसका निज का होता है। प्रकारान्तर से यह भी मनोवैज्ञानिकों की उसी अवधारणा को परिपुष्ट करता है कि संकल्प के अनुसार मन, प्राण, शरीर भी प्रभावित होते है। संकल्प जैसा हुआ, प्रभाव भी वैसा ही उत्पन्न करता है। रामकृष्ण परमहंस के बारे मे कहा जाता है कि जब वह दक्षिणेश्वर मे रहकर हनुमान की साधना कर रहे थे, तो उस दौरान उनके हाव-भाव और आचरण बन्दरो की भाँति ही हो गये थे। वैसे ही उछलकर पेड़ों पर चढ़ जाते जैसे कोई बन्दर। बाद मे जब वे राधा भाव मे रहने लगे, तो उनके विचार-व्यवहार तो प्रत्यक्षतः महिलाओं जैसे हो ही गये थे, शारीरिक संरचना मे भी अनेक स्त्रैण लक्षण उभर आये थे।

इस प्रकार जब यह प्रमाणित हो चुका है कि विचारो का मनुष्य पर बड़ा असर पड़ता है और इसे प्रभावित किये बिना नहीं रहता, तो मनोवैज्ञानिक इस दिशा मे शोधरत हुए कि ऐसे संकल्पो द्वारा मृत्यु को भी कुछ समय तक टाला जा सकता है क्या ? अनुसन्धान के दौरान उत्तर सर्वथा सकारात्मक प्राप्त हुआ। शोधकर्मी दल का इस सम्बन्ध में कहना है कि व्यक्ति यदि किसी कार्य के प्रति अत्यन्त गम्भीर, उत्साही और उसे पूरा कर डालने के प्रति प्रबल आकांक्षा रखता हो, तो आसन्न मृत्यु को भी तब तक टाला जा सकता है, जब तक कार्य पूरा न हो जाय, पर दूसरी ओर वे यह भी कहते है कि यह सब आडम्बर स्तर का नहीं होना चाहिए, वरन् मरने वाले की यही तीव्र अभीप्सा होनी चाहिए, तभी वह क्रियान्वित हो सकेगी, अन्यथा उक्त भाव अपना परिणाम प्रस्तुत किये बिना ही रह जायेगा।

अध्ययन के दौरान इस बात की पुष्टि भी हो गई। कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी (सैन डियेगो) के समाजशास्त्रियों ने सन् १९६० से लेकर १९८७ तक प्रत्येक वर्ष वहाँ के चीनी, अमेरिकनो पर इस आशय के अध्ययन और प्रति वर्ष उनकी मृत्यु-दर का विशेष अवलोकन किया। उन्होंने पाया कि चीनियो के एक प्रमुख पर्व के ठीक बाद बूढ़ी चीनी महिलाओं की मृत्यु आश्चर्यजनक ढग से बहुत बड़े पैमाने पर होती है। उल्लेखनीय है कि चीनी समुदाय का यह एकमात्र ऐसा पर्व है, जिसमे परिवार के सभी सदस्य उसे साथ-साथ मनाने के लिए उक्त अवसर पर अवश्य इकट्ठे होते है। इस पर्व मे परिवार की बूढ़ी महिलाओं पर भोजन एवं व्यंजन-निर्माण का विशेष दायित्व होता है। वे इससे भावनात्मक स्तर पर इतनी गहराई से जुड़ी होती है कि महीनो पूर्व इसकी तैयारियाँ शुरू कर देती है और पर्व के दिन अत्यन्त खुश नजर आती है, पर इसके उपरान्त एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर ऐसी वृद्ध महिलाओं को बड़े स्तर पर शरीरान्त होते देखा जाता है। इस सम्बन्ध में अध्ययन दल का कहना है कि इस दौरान परिवार के सभी सदस्यो के देखने की इच्छा और सौंपा गया विशेष दायित्व वृद्धाओं के अवचेतन मन मे इतना गहरा उतर जाता है कि वह एक तीव्र स्व-संकेत का

दान करता है और यहाँ तक उनके प्राणो को भी शरीर त्यागने से रोके रखता है । पर्व के उपरान्त जब उनकी यह इच्छाएँ पूरी हो जाती है एवं और कोई आकांक्षा शेष रह नही जाती तो फिर मृत्यु उन्हे अपनी गोद मे सुला लेती है। ज्ञातव्य है कि उत्सव के पश्चात् प्रति वर्ष बड़े पैमाने पर मृत्यु सिर्फ वृद्ध चीनी महिलाओं की ही होती देखी जाती है। वृद्ध चीनी पुरुष अथवा गैर चीनी महिलाओ के साथ ऐसी अप्रत्याशित बात अध्ययन के दौरान नही देखी गई अथवा देखी गई, तो छिट-पुट सामान्य घटना के रूप मे। इस बारे मे अनुसन्धानकर्ताओ का कहना है कि चूँकि चीनी पुरुषों एवं गैर चीनी महिलाओ का उत्सव से भावनात्मक सम्बन्ध नही होता, इसलिए उनकी मृत्यु भी उसके लिए रुकी नही रहती और पूरे वर्ष स्वाभाविक ढंग से समय-समय पर होती रहती है।

इस प्रकार इस अध्ययन से उसे पहेली का भी उत्तर मिल गया कि क्यो किसी सम्बन्धी के लिए मरणासन्न व्यक्ति के प्राण अटके पड़े रहते है। इससे यह भी सुनिश्चित हो गया कि जीवन मे यदि कोई महत्वपूर्ण व आवश्यक कार्य शेष रह गया हो और कर्ता का उसके प्रति सूक्ष्म स्तर का गहन तादात्म्य हो तो उसे पूरा होने तक मृत्यु को टाला भी जा सकता है।

कई अवसरो पर ऐसे समय मे दैवी सहयोग भी प्राप्त होता है। इसके प्रमाण भी उपलब्ध है। मैडम ब्लैवटस्की जब अपना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "सीक्रेट डॉक्ट्रीन्स" लिख रही थी तो वह जीवन के अन्तिम पड़ाव पर थीं। दुर्भाग्यवश अभी वह आधा ही ग्रन्थ लिख पायी थीं कि मृत्यु शैय्या पर आ पड़ी। साथ रहने वाली देवात्माओ ने संदेश दिया कि मृत्यु सुनिश्चित है, किन्तु साथ मे आश्वासन यह भी था कि घबरायें नही, आप सत्साहित्य सृजन जैसे पुण्य कार्य मे संलग्न है, अतः हम आपका पूरा सहयोग करेंगे। ऐसा ही हुआ। ग्रन्थ जब तक पूरा नही हो गया तब तक वह जीवित रही और उसके पूरा होते ही दिवंगत हो गईं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि कार्य यदि लोकमगल के निमित्त किया जा रहा हो और दुर्भाग्यवश अधूरा रह जाय एवं लेखक का असामयिक बुलावा आ जाय तो देवसत्ताएँ उस बुलावे को भी कार्य के पूरा होने तक टालने में समर्थ सहयोग करती है।

"इच्छा मृत्यु" भीष्म को मिली थी। हर किसी को यह वरदान अपनी इच्छाशक्ति के आधार पर मिल सकता है। यदि हम मरने का चिन्तन करें तो मौत जल्दी आ धमकेगी। यदि सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा रखे तो मौत दूर ही रहेगी। मनुष्य सदैव ऊँचा सोचे व श्रेष्ठ चिन्तन करे तो वह जीवन मृत्यु का नियन्त्रण भी अपने हाथ में ले सकता है। आखिर है भी तो वह सृष्टा का ज्येष्ठ पुत्र।

अपने को तुच्छ एवं नगण्य न समझें

आत्महीनता का भाव मनुष्य की उन्नति मे बहुत बाधक होता है। जो भी व्यक्ति दीन-हीन और प्रगतिहीन स्थिति मे पड़े दिखलाई देते हैं, वे सब किसी न किसी प्रकार की आत्महीनता से ग्रसित होते हैं। कोई अपने को निर्बल समझ रहा होगा, कोई विद्या-बुद्धि से रहित, कोई साधन हीनता का रोना रो रहा होगा तो कोई परिस्थितियो और भाग्य को कोस रहा होगा। इस प्रकार की सारी निराशा आत्महीनता का ही लक्षण होता है।

आत्महीनो के विचार बड़े प्रतिगामी होते है। वे अपने अन्त:करण में नाना प्रकार के भ्रम, न्यूनताएँ, निर्बलताएँ, कुकल्पनाएँ, आशंकाएँ और भीतियाँ पाले रहते हैं। उन्हे ससार का हर आदमी अपने से अधिक सक्षम और योग्य मालूम होता है। हर काम अपनी शक्ति से बाहर का विदित होता है। उनके विचार सदैव विपरीत दिशा मे ही दौड़ते है। उनके सोचने का ढग इस प्रकार का होता है कि मानो परमात्मा ने उन्हे इस योग्य ही नही बनाया कि वे ससार मे आगे बढ़कर संघर्ष कर सके और अपने लिये सम्मानपूर्ण स्थान अर्जित कर सकें। उनको यदि उन्नति और प्रगति के लिए उत्साहित किया जाता है तब भी वे भयभीत हो उठते है। सोचते है यदि हमने अमुक साहसपूर्ण कोई काम हाथ मे लिया तो हो सकता है कि कोई नई आपत्ति खड़ी हो जाये और हम किसी संकट मे पड़ जाये। अमुक काम हमारे बलबूते का नही, भला हम उसे किस प्रकार कर सकते है ? आत्महीन व्यक्ति किसी साहसपूर्ण प्रगति पथ पर चलने से बुरी तरह डरता रहता है। ऐसा कायर और शंकालु व्यक्ति निश्चय ही कोई उन्नति नही कर सकता। उसे गई बीती स्थिति मे ही जीवन काटने को विवश होना पड़ता है।

आशा, आकाक्षा, आत्म-विश्वास और आत्मबल जिनको उन्नति और प्रगति का आधार माना गया है, आत्महीन व्यक्ति मे इनका सर्वथा अभाव रहता है। उन्नति की आशा और आकांक्षा करने का अधिकार तो उसी को हो सकता है जो अपने को किसी भी कार्य को करने और कोई भी सकट उठा सकने के योग्य समझता है। जिसे यह विश्वास होता है कि वह जिस काम में हाथ डालेगा उसे पूरा करके रहेगा। उसमें आ पड़ने वाले किसी भी संकट को उठा लेने के योग्य साहस, धैर्य और क्षमता है। इस विश्वास के अतिरिक्त जो कार्य करने में रुचि रखता है, साहस और उत्साह रखता है, अपनी कमियाँ दूर करने और योग्यताएँ बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उन्नति और प्रगति की आशा, आकांक्षा करने का वही अधिकारी होता है। जिसने योग्यताओ, अनुभवों तथा शिक्षाओ से आत्म-विश्वास और

सदाचरण द्वारा आत्मबल संचित नही किया है, वह उन्नति और प्रगति की आशा, आकांक्षा करने का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है ? आत्महीन व्यक्ति मे इन सारे गुणो का अभाव होता है अस्तु उसका उन्नति और प्रगति की आशा, आकाक्षा से वंचित रहना स्वाभाविक ही है।

आशा और आकांक्षा उन्नति का मूल आधार है। जिसमे यह आकाक्षा ही न होगी कि मुझे भी आगे बढ़ना चाहिए, उन्नति और प्रगति करनी चाहिए, उसे न तो उसकी प्रेरणा होगी और न वह उस दिशा मे सक्रिय होगा। उन्नति और प्रगति भी ससार मे कोई आवश्यक बात है—यह उसे याद ही न आयेगा। आकाक्षा ही मनुष्य की क्रियाशीलता को प्रेरित तथा उत्साहित करती है। तथापि यदि उन्नति और प्रगति की आकांक्षा तो हो किन्तु उसे प्राप्त कर सकने की आशा न हो तब भी मनुष्य की क्रियाशीलता गतिमान नही होने पाती। वह सोचता है जब वाछित स्थिति पा सकने की आशा नही है, कोई सम्भावना नही है तो उसके लिए प्रयत्न करना ही बेकार है। बात भी ठीक है कि जिसे यह आशा न हो कि वह परीक्षा मे पास हो जावेगा—वह उसमे बैठेगा ही क्यो ? आशा का आधार पाकर ही मनुष्य सारे काम करता है। आशा से रहित अकेली आकाक्षा मनुष्य को उन्नति तथा प्रगति के लिए प्रेरित तथा सक्रिय नही बना सकती, आत्महीन व्यक्ति मे न तो आकांक्षा का ही उदय होता है और न उसे सफलता मे आशा होती है। निदान उन्नति और प्रगति के सहनीय शब्द उसके नाम के साथ जुड़ना सम्भव नही हो सकता।

आत्महीनता कोई प्रकृति-प्रदत्त दोष नही होता। यह वास्तव मे एक मानसिक रोग होता है, जो मनुष्य की अनेक असावधानियो से पैदा हो जाता है। उनमे से एक असावधानी तो अयोग्यता होती है। यह अयोग्यता कार्य कुशलता, कार्य क्षमता, विद्या, बुद्धि, आचार-विचार, आहार-विहार अथवा व्यवहार-बर्ताव की ही क्यो न हो आत्म-हीनता का भाव पैदा कर देती है। जिस आदमी ने अभ्यास और लगनपूर्वक अपने कार्य मे कुशलता, दक्षता और योग्यता प्राप्त करने की सावधानी नही वरती है, उसे उस विषय मे न तो आत्मविश्वास प्राप्त होगा और न वह दक्ष और कुशल व्यक्तियो के साथ समकक्षता अनुभव कर सकता है। उसका उस दिशा मे आत्महीनता अनुभव करना स्वाभाविक ही है। वह कितने ही दम्भ अथवा अहकार का सहारा क्यो न ले, आत्महीनता के भाव से बच नही सकता।

जिसमे विद्या, बुद्धि की कमी है। किसी बात को सोच सकने, समझ सकने और ठीक से व्यक्त कर सकने की योग्यता नही है, वह जहाँ भी जायेगा उचित स्थान तथा आदर न पा सकेगा। लोग स्वभावतः उसे निम्न दृष्टि से देखेगे, जिसकी प्रतिक्रिया उस पर आत्महीनता के भाव के रूप मे ही होगी। जिसके विचार दूषित होगे, आचरण निम्नकोटि का होगा वह दूसरो की दृष्टि से ही नही स्वयं अपनी दृष्टि मे गिरा रहेगा। वह सभ्य और शालीन समाज मे आता-जाता भी यही अनुभव करता रहेगा कि वह इसमे आने-जाने योग्य नहीं है। उसके अन्दर का चोर निश्चय ही उसे आत्महीन बना देगा।

आहार-विहार का भी मनुष्य की आत्मा पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। यदि एक बार दूसरे लोग किसी के आहार-विहार पर दृष्टि न भी डाले तो भी उसकी अपनी दृष्टि से तो वह बच ही नही सकता। वह किस प्रकार रहता है, क्या खाता-पीता और पहनता है। इस विषय मे उसका स्तर क्या है ? आदि बाते भी मनुष्य मे आत्म-गौरव, आत्महीनता का भाव पैदा कर देती है। जिसका रहन-सहन निकृष्ट और अपने अनुरूप न होगा उसमे आत्महीनता का भाव रहता ही है। आलस्य के कारण जो गन्दगी से रहता है, अपने स्तर से ऊँचा-नीचा खाता-पहनता है, तो उसे निम्न स्तर मे लज्जा और ऊँचे स्तर पर दम्भ की आत्महीनता पैदा हो जायेगी। अयोग्य आहार-विहार और अयोग्य रहन-सहन की असावधानी आत्महीनता का बहुत बड़ा कारण है।

मनुष्य के आत्म-गौरव और आत्महीनता के सम्बन्ध मे व्यवहार, बर्ताव का बहुत हाथ रहता है। जो अशिष्ट, असभ्य और अशालीन व्यवहार का अभ्यस्त है। व्यवहार करने मे यथायोग्य की सावधानी नही बर्तता तो निश्चय ही उसे अपमानित, लाछित तथा तिरस्कृत होना पड़ता है। तिरस्कार अथवा अपमान का सगा सम्बन्ध है। जो समाज अथवा परिवार आदि मे तिरस्कृत अथवा अनादृत होता रहता है, उसे आत्महीनता का शिकार बनने से कोई नही बचा सकता, निश्चय ही उसकी आत्मा मलीन हो जायेगी, उसका आत्म-तेज नष्ट हो जायेगा और वह आत्महीनता का रोगी बन जायेगा। व्यवहार-बर्ताव की असावधानी आत्महीनता का बड़ा कारण है।

आत्महीनता उत्पन्न होने का एक कारण होता है दूसरो से अपनी तुलना करना। बहुत से लोगो का स्वभाव होता है कि वे दूसरे लोगो के धन-वैभव, कारबार, मान-सम्मान और पद-प्रतिष्ठा पर बहुत दृष्टि रखते है और अनजान मे ही प्रभावित होकर उन्हे बड़ा आदमी मान लेते है। यहाँ तक तो गनीमत होती है किन्तु जब इससे आगे बढ़कर उनकी स्थिति से अपनी तुलना करके उहापोह मे पड़ जाते है तभी उनमे आत्महीनता के अंकुर उगने लगते है। उनके इस प्रकार सोचने का ढग कि देखो अमुक आदमी के पास कितनी धन-दौलत है, उसका कारबार, पद-प्रतिष्ठा कितनी जोर से चल रहा है। समाज मे उसे कितनी पद-प्रतिष्ठा मिली है। कैसे शान-शौकत से रह रहा है। संसार के सारे सुख उसके पास है। भगवान की कृपा है। बड़ा भाग्यवान आदमी है और एक मैं हूँ न धन, न दौलत, न मान, न सम्मान, न कार, न

रोजगार। थोड़ी सी आदमनी है। पेट भर रोटी खा लो और सन्तोष करो। अपने-अपने भाग्य की बात है। हमारे भाग्य मे जब गरीबी लिखी हो तो हो भी क्या सकता है ? उसमे स्वभावतः आत्महीनता की भावना पैदा कर देता है। किसी की उच्च स्थिति से अपनी साधारण स्थिति की स्पृहा के साथ तुलना करने का अर्थ है कि अपने लिए आत्महीनता की भूमिका बनाना।

यदि किसी से तुलना न करके भी केवल अपने अभावो, कमियो और कष्टो का भी चिन्तन किया जाता रहे, तब भी आत्महीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। मै गरीब हूँ, मेरे घर का खर्च ही पूरा नही पड़ता है। मै ज्यादा कमा ही नहीं पाता, अपने पर कोई न कोई आपत्ति और उलझन आती ही रहती है—आदि विचार मनुष्य को आत्महीन बना देते है। मनुष्य अपने प्रति जितने हीन और ओछे विचार रखेगा, वह उतना ही आत्महीन बन जायेगा। विचारो का स्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि कोई मनुष्य यथार्थ रूप से गरीब न हो अच्छा-खासा खाता-पीता हो किन्तु लोभ, लालच अथवा भय-दुराव आदि के कारण अपने को निरन्तर गरीब समझता अथवा कहता रहे तो निश्चय ही एक दिन परिस्थितियाँ इस प्रकार से घूम जायेगी कि वह गरीब हो जायेगा। यदि परिस्थितियाँ न भी घूमे तो भी पैसा होते हुए भी अपने को गरीब और दीन-हीन मानने व कहने वाला यो ही दीन ही होता है। जो अपनी स्थिति और वैभव का अनुभव न कर सके और दूसरो को उसको समझने से वंचित रखे, वह दीन-हीन ही तो होता है। ऐसे निम्न और निकृष्टवृत्ति वाले अवश्य ही आत्महीनता के रोगी बन जाते है।

यह और इस प्रकार की अनेक न्यूनताओ और असावधानियो के कारण लोगो मे आत्महीनता का भाव आ जाता है। यदि उसे तत्परतापूर्वक जल्दी ही दूर न कर दिया जाये तो वह प्रौढ़ होकर एक मानसिक रोग मे बदल जाता है। आत्महीनता का भाव नैसर्गिक न होकर मनुष्य का अपना पैदा किया हुआ होता है। यह भाव उन्नति और प्रगति मे बहुत बाधक होता है। अस्तु इसे अपने पास न तो आने देना और न रखना चाहिए।

आत्महीनता से बचकर रहना कोई कठिन बात नही है। थोड़ी-सी सावधानी बरतने से इससे आसानी से बचा जा सकता है। उसमे से एक तो यह है कि अपने कार्य और क्षेत्र मे दक्षता तथा कुशलता प्राप्त कर ली जाये। सबके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाए। इसके अतिरिक्त दो विशेष बाते यह है कि न तो कभी किसी की उच्च स्थिति से अपनी सामान्य स्थिति की तुलना की जाये और न अपना, न अपने कार्यों तथा भाग्य की अवमानना करने के साथ अपनी क्षमताओ मे अविश्वास और अपनी स्थिति का अवमूल्यन ही किया जाये। अपने को महत्वहीन और अभागा समझने वाले लोग अवश्य ही आत्महीनता के शिकार बन जाते है। इन दुष्प्रवृत्तियो से सावधान रहकर जीवन मे विश्वास और आदर भाव से अपना कर्त्तव्य किया और अपनी स्थिति मे प्रसन्न रहकर चला जाए तो आत्महीनता का कोई प्रश्न ही न रह जाये।

बलिष्ठता और समर्थता की साकार विभूतियाँ

औसत आदमी की श्रमशक्ति गधे, घोड़े से कम है। सफर करने, बोझ उठाने, काम मे जुटने की दृष्टि से गधे, घोड़े, बैल आदि की तुलना में मनुष्य कही पीछे है। बन्दर की औलाद कहने वाले उसके शरीर की क्षमता का मूल्यांकन उस रूप में करते रह सकते है, किन्तु यदि सामान्य को असामान्य वाले कौशल हस्तगत हो सके तो फिर उस नगण्य-सी क्षमता मे असंख्य गुना अभिवृद्धि हो सकती है। बीज के अन्तराल मे विद्यमान शक्ति आमतौर से प्रसुप्त स्तर की ही रहती है। किन्तु उसे जगा दिया जाय तो अंकुर फूटने, पौधा बनने, वृक्ष रूप लेने तथा फल-फूलो से लद जाने की परिणति भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो सकती है।

पौराणिक और ऐतिहासिक काल मे ऐसे अगणित व्यक्ति हुए है, जिनकी शारीरिक क्षमता असाधारण मानी जाती है। हनुमान का पहाड़ उखाड़ना, समुद्र छलाँगना, भीम का हाथियो के झुण्ड गेंद की तरह आकाश मे उछालना, यदि किसी की समझ मे न आता हो तो पृथ्वीराज चौहान के शब्दवेधी बाण का स्मरण किया जा सकता है। प्रो. राममूर्ति किसी जमाने मे अपने सीने पर हाथी खड़ा करते थे और मोटी चट्टान हथौड़ो से तुड़वाते थे। उन दिनो उन्हे भी बजरंगी कहा जाता था। ऐसे उदाहरण संसार के कोने-कोने मे समय-समय पर देखे जाते रहे है।

अरब का खलीफा इब्ने अबीतालिब अपने समय का सर्वाधिक बलिष्ठ शासक था। उसका जीवनकाल सन् ६०२ से ६६१ तक था। खैबर की लड़ाई मे उसकी ढाल टूट गई। बचाव के लिए उसने किले के एक छोटे फाटक को एक ही घूँसे मे उखाड़ लिया और उसी का ढाल की तरह प्रयोग किया। यह छोटा फाटक भी ८५० पौण्ड भारी था। लड़ाई जीतने के बाद उस फाटक को उठाने का अन्य बलवान साथियो ने भी प्रयत्न किया, पर सात सरदारों मे से कोई भी उसे उठाने मे सफल न हो सका।

भुजाओ की मजबूती का वैसा उदाहरण अभी तक दूसरा सुनने को नही मिला, जैसा कि लाक्सन फ्रांस के मडटेव रिहार्ड ने प्रस्तुत किया। वह ठगो के एक गिरोह का सरदार था। एक बार दो साथियो में माल के बँटवारे को लेकर मुठभेड़ हो गई। दोनो एक बड़ी मेज पर चढ़कर चाकुओ से परस्पर आक्रमण

करने लगे। रिहार्द को और तो कुछ न सूझा, उसने उस पत्थर से बनी भारी मेज को सिर पर उठा लिया, जिस पर खड़े होकर वे दोनो लड़ रहे थे। मेज समेत वह दोनो का बोझ लादकर कमरे से आँगन तक गया और मेज पटककर दोनो को गिरा दिया। इस चमत्कार को देखकर लड़ने वाले हतप्रभ रह गये और उस दैत्य से बचने के लिए भाग खड़े हुए।

विगोरीज, फ्रांस के एक शिकारी वैरन क्रिस्टोफ टर्सन के घोड़े की टाँग आखेट की उछल-कूद से टूट गई। घोड़े को उस दयनीय स्थिति मे छोड़ना टर्सन ने उचित न समझा। उसने उस ४२० पौण्ड भारी घोड़े को कन्धे पर उठाया और डेढ मील दूरी तक उतना भार वहन करते हुए पशु चिकित्सक के पास पहुँचाया।

गुनार हैमण्डरसन आइसलैण्ड द्वीपसमूह के क्षेत्र मे समुद्री डाकुओ के सरदार थे। लड़ते समय उन दिनो लोहे का रक्षा कवच पहनने का रिवाज था। वह भी उस भारी परिधान को समय-समय पर धारण करता। इस वजन से लदा होने पर भी वह खड़े आदमी को छलाँगकर पार जा सकता था। इतना ही नही वह उल्टी छलाँग पीठ की दिशा मे भी इतनी ही ऊँची लगा सकता था। पीठ पीछे खड़े हुए आदमी को भी उल्टी छलाँग लगाकर पार करने मे उसे कोई कठिनाई नही होती थी।

वाइजैन्टिव का राजा रोमैनस पचम युद्ध के समय लोहे का तकब पहनता था, जो प्रायः चालीस पौण्ड भारी था। वह तकब पहने जमीन पर से उछलकर ऊँचे कद के घोड़े पर सवार होता था। सहारा लेकर जीन पर वह कभी चढ़ा ही नही।

बर्फीली पहाड़ियो पर रहने वाले 'लैप' जाति के लोग बर्फीली खाइयाँ पार करने के लिए छलाँग लगाने का अभ्यास करते है। उनमे से युवा लोग १२.५ फुट तक की लम्बी छलाँग लगाते देखे गये है।

अपने सैनिको का साहस बढाने के लिए मिश्र के एक बादशाह मैवर्स ने एक अजीब उपाय सोचा और अजीब रवैया अपनाया। वह ३८ पौण्ड भारी लोहे का कवच पहनकर रोज नील नदी की तेज धार को पार करता और उसी भार से लदकर वापस आता। यह रवैया उसने पूरे १७ वर्षों तक जारी रखा।

अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन तथा जेरियाट्रिक्स सोसायटी के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. एडवर्ड बोर्ड के अनुसार मनुष्य इन सात भूलो से बचकर विश्वासपूर्वक शतायु बन सकता है—

(१) आहार सम्बन्धी मर्यादाओ का उल्लंघन (२) अत्यधिक या अत्यन्त परिश्रम (३) अस्त-व्यस्त दिनचर्या (४) नशेबाजी (५) कामवासना सम्बन्धी असयम (६) अधिक मानसिक तनाव (७) स्वच्छता-शुचिता की उपेक्षा।

डॉ. केनिथ रोसले ने अधिक सूक्ष्म प्रयोगो के बाद प्रतिपादन यह किया कि यदि मनुष्य शरीर के कोशो में कोई गड़बड़ी न आये, तो गुर्दे २०० वर्ष और हृदय ३०० तक जीवित रखे जा सकते हैं। इसके बाद उन्हें बदला भी जा सकता है। हृदय प्रतिरोपण के प्रयोग तो बहुत ही सफल हुए है। इसके अतिरिक्त चमड़ी, फेफड़े और हड्डियों को तो क्रमशः १००० वर्ष और ४००० वर्षों तक भी जीवित रखा जा सकता है।

भारतीय धर्म-ग्रन्थों में 'जीवेम् शरदः शतम्', 'हम सौ वर्ष के आयुष्य का उपभोग करें,' की कामना की गई है। वह उस समय के संयमित और प्राकृतिक दिनचर्या को देखते हुए अत्युक्ति नहीं थी। सूत्रस्थान अध्याय २७ में आचार्य चरक ने मनुष्य की आयु ३६००० रात्रियाँ होने का उल्लेख किया है। यदि मनुष्य हँसी-खुशी, परिश्रम और सादगी का आचरण करे तो इतनी आयु का होना कठिन बात नहीं है।

ऐसे सैकड़ो उदाहरण है, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है। सन् १७५० में हेगरी का बोविन १७२ वर्ष की आयु मे मरा तब उसकी विधवा पत्नी १६४ वर्ष की थी और सबसे बड़े बेटे की उम्र ११५ वर्ष की थी। वियना के सोलियन सावा १३२ वर्ष की आयु के होकर मरे थे; उन्होने ९८ वर्ष की आयु मे सातवीं शादी की थी।

'नॉर्थ चाइना हैरल्ड' मे उत्तर चीन के शाग चूआन ग्राम के निवासी वानशियन जिच नामक वृद्ध की आयु के सम्बन्ध मे अनेको विश्वस्त प्रमाणो का संग्रह प्रकाशित करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि वह २५५ वर्ष तक जिया। उसका भोजन पूर्ण शाकाहारी था और दिन मे दो बार ही जो कुछ खाना होता, खाता था।

लन्दन के सद् लियोवार्ड चर्च मे रखे जन्म-मृत्यु तिथि रजिस्टर मे एक ऐसे व्यक्ति का नाम भी अंकित है, जिसका जन्म १५८८ मे हुआ था और मृत्यु १७९५ मे २०७ वर्ष की आयु मे। जब उसकी मृत्यु हुई उसके पूर्व उसके दीर्घ जीवन का रहस्य जानने के लिए लोग बड़ी संख्या मे बराबर उससे सम्पर्क करते रहते थे।

आगस्तामाइने निवासी जॉन मिल्ले वृद्धावस्था मे भी जवान रहे और मरते समय तक यौवन का आनन्द लूटते रहे। उनने ८० वर्ष की आयु मे एक १८ वर्षीया युवती से विवाह किया। उससे उसे दस बच्चे हुए और ४४ वर्ष तक सधवा रही। मिल्ले १२४ वर्ष की उम्र मे मरे। तब तक उनके सफेद बाल फिर से लौटकर काले हो गये थे।

इन उदाहरणो से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मनुष्य की प्रस्तुत क्षमताएँ असाधारण हैं। इन्हे प्रयत्नपूर्वक पराक्रम द्वारा या संयोगवश जगने का अवसर मिले तो यही नगण्य सा शरीर ऐसे अद्भुत पराक्रम प्रस्तुत कर

सकता है, जिसे देखते हुए सामान्यजनो को भी आश्चर्यचकित रह जाना पड़े।

मानवी पराक्रम सम्भावनाएँ उलटने में समर्थ

सम्भावित कठिनाई की जानकारी प्राप्त होना आवश्यक है। इसी अनुमान के आधार पर मनुष्य बचाव का प्रबन्ध करते और उसमे बहुत हद तक सफल होते है। जो अनजान रहते है तथा प्रमाद बरतते है, उन्हे योग्यतम की सुरक्षा वाला नियम तोड़-मरोड़कर रख देता है। शीत प्रकोप से अपरिचित और बचाव के उपाय करने मे असमर्थ मक्खी, मच्छर जैसे कृमि-कीटको मे से असंख्यो को हर वर्ष प्राणदण्ड सहना पड़ता है। इसके विपरीत जो जागरूक है, वे प्रकृति प्रवाह की अवांछनीयता से अपने आपको बचाते और सुखपूर्वक जीवित रहते है।

ठण्डे देशो की चिड़ियाँ उन दिनो लम्बी यात्रा करके भारत जैसे उष्ण देशो मे चली आती है और मौसम बदलते ही अपने देशो को लौट जाती है। हिम प्रदेशो के भालू, अजगर, कन्दराओ मे लम्बी तानकर सोते रहते है और गर्मी आते ही जग पड़ते है। ऐसे ही प्रयास अन्य प्राणियो द्वारा भी किये जाते रहते है। यह विपत्ति के पूर्वाभास से अवगत होकर तद्नुरूप उपाय बरतने का उपक्रम है। इसे आत्म-रक्षा और बुद्धिमत्ता का संयुक्त उपाय कहना चाहिए, जिसे जीवन का महत्त्व समझने वाले सभी प्राणी अपनाते है।

मनुष्य शरीर सरचना की दृष्टि से अन्य प्राणियो की तुलना में दुर्बल पड़ता है। उसकी आवश्यकताएँ और महत्वाकांक्षाएँ भी अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी-चढ़ी है। इसलिए प्रकृति प्रवाह के साथ तालमेल बिठाने को उसे और भी अधिक प्रयास करने होते है। इसके लिए खतरो की सम्भावना के प्रति उसे अधिक अनुमान लगाने पड़ते है। यह प्रवृत्ति न रही होती तो संकट सिर पर आ खड़ा होने के उपरान्त कुछ करते-धरते न बन पड़ता। मकड़ी, दीमक, चींटी जैसे छोटे कीड़े-मकोड़े तक खतरो की पूर्व जानकारी अपनी अन्त.क्षमता के आधार पर प्राप्त करते है और विपत्ति आने से पूर्व ही प्रयत्नो मे तत्परतापूर्वक जुटते है। भूकम्प जैसे दुर्घटनाओ से पूर्व कुत्ते, बिल्ली जैसे प्राणी जिस प्रकार सुरक्षा प्रयास करते है, वह देखने ही योग्य है।

मनुष्य के सम्मुख खतरे कम नही है। उन्हे जानने के कारण ही वह अनेको कठिनाइयो से बचने के प्रयास करता है और बहुत कुछ सफल भी होता है। रात्रि मे उसे कम दीखता है। अस्तु उसे ठोकर लगने से लेकर निशाचरो तक से उस अवधि मे अनेक खतरो की आशंका रहती है। अस्तु बचाव का ध्यान रखते हुए प्रकाश जलाने, मकान बनाने, चौकसी करने जैसे उपाय अपनाये जाते है। शीत ऋतु की चपेट से प्राण बचाने के लिए भी आवश्यक वस्त्रो से लेकर आग जलाने तक के संरजाम जुटाये जाते है। मूसलाधार वर्षा से सिर छिपाने का प्रबन्ध न हो तो शरीर से लेकर संचित साधनो मे से कुछ भी बच सकना सम्भव न होगा।

ऋतु प्रभाव, आक्रमणो का भय, अभावजन्य संकट, प्रकृति प्रकोप जैसे संकटो का अनुभवजन्य ज्ञान रहने से लोग उनसे बचने और समय रहते सुरक्षा प्रबन्ध करने में सफल रहते है। आकस्मिक विपत्तियो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। युद्ध, महामारी, बाढ़, भूकम्प, तूफान, दुर्भिक्ष जैसे संकट न जाने कब, किस रूप मे, कहाँ आ धमके ? इसकी पूर्व जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध मे विज्ञजनो द्वारा निरन्तर माथा-पच्ची की जाती रहती है। बदलते मौसम की जानकारी देने वाली वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ इस सन्दर्भ मे बहुमूल्य उपकरणो का प्रयोग करती है। उन संग्रहीत पूर्व सूचनाओं के आधार पर सुरक्षा के प्रयत्न चल पड़ते है, उस आधार पर संकटो से निपटने मे बहुत कुछ उपाय भी बन पड़ता है। युद्धकाल मे राडार प्रभृति उपकरणो से शत्रु के आक्रामक वायुयानो का पता चलता है और उस आधार पर तत्काल रोकथाम का प्रबन्ध होता है। यह पूर्वाभास विज्ञान के विकसित स्वरूप का ही प्रतिफल है।

अदृश्य जगत के अन्तर्ग्रही प्रभावो और मानवी गतिविधियो से प्रभावित अदृश्य वातावरण से सम्बन्धित ज्योतिर्विज्ञान की तरह ही प्रत्यक्ष जगत की परिस्थितियो पर अवलम्बित सम्भावना विज्ञान भी है। इसी आधार पर विकास की योजना बनती है और रोकथाम के कार्यक्रम बनते है। यदि अनुमानों मे कोई तथ्य न रहा होता तो भविष्य निर्धारण की दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठ ही नही सकता था। अनिश्चितता की स्थिति में दाव लगाना तो मात्र जुआरी, सट्टेबाजो का ही काम है। बुद्धिमत्ता की यह विशेषता है कि वह भूत से शिक्षा ग्रहण करती—वर्तमान का विवेचन, विश्लेषण करती और भविष्य का ऐसा अनुमान लगाती है जो सत्य और तथ्य के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटता है। भविष्य की योजनाओ का सारा ढाँचा इसी आधार पर खड़ा किया जाता है। संसार के राजनेता, अर्थशास्त्री, समाज संचालक, विज्ञानवेत्ता, बुद्धिजीवी प्रायः इन्ही पूर्वानुमानो का महत्त्व स्वीकारते हुए भी भावी प्रयासो की रूपरेखा विनिर्मित करते हैं। इसी वर्ग मे मौसम विज्ञानियो एवं अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों को भी गिना जा सकता है।

भविष्यचिन्तक एवं भविष्य वक्ता वर्ग मे, खगोलवेत्ता ज्योतिषी—अदृश्य जगत के पर्यवेक्षक अध्यात्म तत्त्वदर्शी तथा तथ्यो के सूक्ष्म विवेचक, बुद्धिजीवी, दूरदर्शी यह तीन वर्ग प्रमुख है। इनकी निर्धारणाओ एवं घोषणाओ पर बहुत कुछ विश्वास भी किया जाता है। लोग तद्नुरूप अपनी भावी योजनाएँ बनाने मे भी संलग्न होते हैं। इतने

करने लगे। रिहार्द को और तो कुछ न सूझा, उसने उस पत्थर से बनी भारी मेज को सिर पर उठा लिया, जिस पर खड़े होकर वे दोनो लड़ रहे थे। मेज समेत वह दोनो का बोझ लादकर कमरे से आँगन तक गया और मेज पटककर दोनों को गिरा दिया। इस चमत्कार को देखकर लड़ने वाले हतप्रभ रह गये और उस दैत्य से बचने के लिए भाग खड़े हुए।

विगोरीज़, फ्रांस के एक शिकारी वैरन क्रिस्टोफ टर्सन के घोड़े की टाँग आखेट की उछल-कूद से टूट गई। घोड़े को उस दयनीय स्थिति मे छोड़ना टर्सन ने उचित न समझा। उसने उस ४२० पौण्ड भारी घोड़े को कन्धे पर उठाया और डेढ़ मील दूरी तक उतना भार वहन करते हुए पशु चिकित्सक के पास पहुँचाया।

गुन्नार हैमण्डरसन आइसलैण्ड द्वीपसमूह के क्षेत्र मे समुद्री डाकुओं के सरदार थे। लड़ते समय उन दिनो लोहे का रक्षा कवच पहनने का रिवाज था। वह भी उस भारी परिधान को समय-समय पर धारण करता। इस वजन से लदा होने पर भी वह खड़े आदमी को छलाँगकर पार जा सकता था। इतना ही नही वह उल्टी छलाँग पीठ की दिशा मे भी इतनी ही ऊँची लगा सकता था। पीठ पीछे खड़े हुए आदमी को भी उल्टी छलाँग लगाकर पार करने मे उसे कोई कठिनाई नही होती थी।

वाइजैन्टिव का राजा रोमैनस पंचम युद्ध के समय लोहे का तकब पहनता था, जो प्रायः चालीस पौण्ड भारी था। वह तकब पहने जमीन पर से उछलकर ऊँचे कद के घोड़े पर सवार होता था। सहारा लेकर जीन पर वह कभी चढ़ा ही नही।

बर्फीली पहाड़ियो पर रहने वाले 'लैप' जाति के लोग बर्फीली खाइयाँ पार करने के लिए छलाँग लगाने का अभ्यास करते है। उनमे से युवा लोग १२५ फुट तक की लम्बी छलाँग लगाते देखे गये है।

अपने सैनिको का साहस बढ़ाने के लिए मिश्र के एक बादशाह वैवर्स ने एक अजीब उपाय सोचा और अजीब रवैया अपनाया। वह ३८ पौण्ड भारी लोहे का कवच पहनकर रोज नील नदी की तेज धार को पार करता और उसी भार से लदकर वापस आता। यह रवैया उसने पूरे १७ वर्षों तक जारी रखा।

अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन तथा जेरियाट्रिक्स सोसायटी के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. एडवर्ड बोर्ड के अनुसार मनुष्य इन सात भूलो से बचकर विश्वासपूर्वक शतायु बन सकता है—

(१) आहार सम्बन्धी मर्यादाओ का उल्लंघन (२) अत्यधिक या अत्यन्त परिश्रम (३) अस्त-व्यस्त दिनचर्या (४) नशेबाजी (५) कामवासना सम्बन्धी असंयम (६) अधिक मानसिक तनाव (७) स्वच्छता-शुचिता की उपेक्षा।

डॉ. वेनिय रोसले ने अधिक सूक्ष्म प्रयोगो के बाद प्रतिपादन यह किया कि यदि मनुष्य शरीर के कोशों में कोई गड़बड़ी न आये, तो गुर्दे २०० वर्ष और हृदय ३०० तक जीवित रखे जा सकते हैं। इसके बाद उन्हे बदला भी जा सकता है। हृदय प्रतिरोपण के प्रयोग तो बहुत ही सफल हुए है। इसके अतिरिक्त चमड़ी, फेफड़े और हड्डियों को तो क्रमशः १००० वर्ष और ४००० वर्षों तक भी जीवित रखा जा सकता है।

भारतीय धर्म-ग्रन्थों में 'जीवेम् शरदः शतम्', 'हम सौ वर्ष के आयुष्य का उपभोग करें,' की कामना की गई है। वह उस समय के संयमित और प्राकृतिक दिनचर्या को देखते हुए अत्युक्ति नहीं थी। सुश्रुत अध्याय २७ मे आचार्य चरक ने मनुष्य की आयु ३६००० रात्रियाँ होने का उल्लेख किया है। यदि मनुष्य हँसी-खुशी, परिश्रम और सादगी का आचरण करें तो इतनी आयु का होना कठिन बात नही है।

ऐसे सैकड़ो उदाहरण है, जिनसे इस कथन की पुष्टि होती है। सन् १७५० मे हेनरी का बोविन १७२ वर्ष की आयु मे मरा तब उसकी विधवा पत्नी १६४ वर्ष की थी और सबसे बड़े बेटे की उम्र ११५ वर्ष की थी। वियना के सोलियन साबा १३२ वर्ष की आयु के होकर मरे थे; उन्होंने ९८ वर्ष की आयु मे सातवीं शादी की थी।

'नॉर्थ चाइना हैरल्ड' मे उत्तर चीन के शांग चुआन ग्राम के निवासी वानशियन जिच नामक वृद्ध की आयु के सम्बन्ध मे अनेको विश्वस्त प्रमाणो का संग्रह प्रकाशित करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि वह २५५ वर्ष तक जिया। उसका भोजन पूर्ण शाकाहारी था और दिन में दो बार ही जो कुछ खाना होता, खाता था।

लन्दन के सद्द लियोवार्ड चर्च मे रखे जन्म-मृत्यु तिथि रजिस्टर मे एक ऐसे व्यक्ति का नाम भी अंकित है, जिसका जन्म १५८८ मे हुआ था और मृत्यु १७९५ मे २०७ वर्ष की आयु मे। जब उसकी मृत्यु हुई उसके पूर्व उसके दीर्घ जीवन का रहस्य जानने के लिए लोग बड़ी संख्या मे बराबर उससे सम्पर्क करते रहते थे।

आगस्तामाइने निवासी जॉन मिल्ले वृद्धावस्था में भी जवान रहे और मरते समय तक यौवन का आनन्द लूटते रहे। उनने ८० वर्ष की आयु मे एक १८ वर्षीया युवती से विवाह किया। उससे उसे दस बच्चे हुए और ४४ वर्ष तक सधवा रही। मिल्ले १२४ वर्ष की उम्र मे मरे। तब तक उनके सफेद बाल फिर से लौटकर काले हो गये थे।

इन उदाहरणो से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि मनुष्य की प्रस्तुत क्षमताएँ असाधारण हैं। इन्हे प्रयत्नपूर्वक पराक्रम द्वारा या संयोगवश जगने का अवसर मिले तो यही नगण्य सा शरीर ऐसे अद्भुत पराक्रम प्रस्तुत कर

सकता है, जिसे देखते हुए सामान्यजनो को भी आश्चर्यचकित रह जाना पड़े।

मानवी पराक्रम सम्भावनाएँ उलटने में समर्थ

सम्भावित कठिनाई की जानकारी प्राप्त होना आवश्यक है। इसी अनुमान के आधार पर मनुष्य बचाव का प्रबन्ध करते और उसमें बहुत हद तक सफल होते हैं। जो अनजान रहते हैं तथा प्रमाद बरतते है, उन्हे योग्यतम की सुरक्षा वाला नियम तोड़-मरोड़कर रख देता है। शीत प्रकोप से अपरिचित और बचाव के उपाय करने मे असमर्थ मक्खी, मच्छर जैसे कृमि-कीटकों में से असंख्यो को हर वर्ष प्राणदण्ड सहना पड़ता है। इसके विपरीत जो जागरूक है, वे प्रकृति प्रवाह की अवांछनीयता से अपने आपको बचाते और सुखपूर्वक जीवित रहते है।

ठण्डे देशो की चिड़ियाँ उन दिनो लम्बी यात्रा करके भारत जैसे उष्ण देशों मे चली आती है और मौसम बदलते ही अपने देशों को लौट जाती है। हिम प्रदेशो के भालू, अजगर, कन्दराओ मे लम्बी तानकर सोते रहते है और गर्मी आते ही जग पड़ते हैं। ऐसे ही प्रयास अन्य प्राणियो द्वारा भी किये जाते रहते हैं। यह विपत्ति के पूर्वाभास से अवगत होकर तद्नुरूप उपाय बरतने का उपक्रम है। इसे आत्म-रक्षा और बुद्धिमत्ता का संयुक्त उपाय कहना चाहिए, जिसे जीवन का महत्त्व समझने वाले सभी प्राणी अपनाते हैं।

मनुष्य शरीर संरचना की दृष्टि से अन्य प्राणियो की तुलना में दुर्बल पड़ता है। उसकी आवश्यकताएँ और महत्वाकाक्षाएँ भी अपेक्षाकृत अधिक बढ़ी-चढ़ी हैं। इसलिए प्रकृति प्रवाह के साथ तालमेल बिठाने को उसे और भी अधिक प्रयास करने होते है। इसके लिए खतरो की सम्भावना के प्रति उसे अधिक अनुमान लगाने पड़ते है। यह प्रवृत्ति न रही होती तो संकट सिर पर आ खड़ा होने के उपरान्त कुछ करते-धरते न बन पड़ता। मकड़ी, दीमक, चींटी जैसे छोटे कीड़े-मकोड़े तक खतरो की पूर्व जानकारी अपनी अन्तःक्षमता के आधार पर प्राप्त करते है और विपत्ति आने से पूर्व ही प्रयत्नो मे तत्परतापूर्वक जुटते हैं। भूकम्प जैसे दुर्घटनाओ से पूर्व कुत्ते, बिल्ली जैसे प्राणी जिस प्रकार सुरक्षा प्रयास करते है, वह देखने ही योग्य है।

मनुष्य के सम्मुख खतरे कम नही है। उन्हे जानने के कारण ही वह अनेको कठिनाइयो से बचने के प्रयास करता है और बहुत कुछ सफल भी होता है। रात्रि मे उसे कम दीखता है। अस्तु उसे ठोकर लगने से लेकर निशाचरो तक से उस अवधि मे अनेक खतरो की आशका रहती है। अस्तु बचाव का ध्यान रखते हुए प्रकाश जलाने, मकान बनाने, चौकसी करने जैसे उपाय अपनाये जाते है। शीत ऋतु की चपेट से प्राण बचाने के लिए भी आवश्यक वस्त्रो से लेकर आग जलाने तक के सरंजाम जुटाये जाते है। मूसलाधार वर्षा से सिर छिपाने का प्रबन्ध न हो तो शरीर से लेकर सचित साधनो मे से कुछ भी बच सकना सम्भव न होगा।

ऋतु प्रभाव, आक्रमणो का भय, अभावजन्य संकट, प्रकृति प्रकोप जैसे संकटो का अनुभवजन्य ज्ञान रहने से लोग उनसे बचने और समय रहते सुरक्षा प्रबन्ध करने में सफल रहते हैं। आकस्मिक विपत्तियो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। युद्ध, महामारी, बाढ़, भूकम्प, तूफान, दुर्भिक्ष जैसे संकट न जाने कब, किस रूप मे, कहाँ आ धमके ? इसकी पूर्व जानकारी प्राप्त करने के सम्बन्ध मे विज्ञजनों द्वारा निरन्तर माथा-पच्ची की जाती रहती है। बदलते मौसम की जानकारी देने वाली वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ इस सन्दर्भ मे बहुमूल्य उपकरणो का प्रयोग करती हैं। उन संग्रहीत पूर्व सूचनाओं के आधार पर सुरक्षा के प्रयत्न चल पड़ते हैं, उस आधार पर संकटों से निपटने मे बहुत कुछ उपाय भी बन पड़ता है। युद्धकाल मे राडार प्रभृति उपकरणो से शत्रु के आक्रामक वायुयानो का पता चलता है और उस आधार पर तत्काल रोकथाम का प्रबन्ध होता है। यह पूर्वाभास विज्ञान के विकसित स्वरूप का ही प्रतिफल है।

अदृश्य जगत के अन्तर्ग्रही प्रभावो और मानवी गतिविधियो से प्रभावित अदृश्य वातावरण से सम्बन्धित ज्योतिर्विज्ञान की तरह ही प्रत्यक्ष जगत की परिस्थितियो पर अवलम्बित सम्भावना विज्ञान भी है। इसी आधार पर विकास की योजना बनती है और रोकथाम के कार्यक्रम बनते है। यदि अनुमानो मे कोई तथ्य न रहा होता तो भविष्य निर्धारण की दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण कदम उठ ही नही सकता था। अनिश्चितता की स्थिति मे दाव लगाना तो मात्र जुआरी, सट्टेबाजो का ही काम है। बुद्धिमत्ता की यह विशेषता है कि वह भूत से शिक्षा ग्रहण करती—वर्तमान का विवेचन, विश्लेषण करती और भविष्य का ऐसा अनुमान लगाती है जो सत्य और तथ्य के इर्द-गिर्द ही चक्कर काटता है। भविष्य की योजनाओ का सारा ढाँचा इसी आधार पर खड़ा किया जाता है। संसार के राजनेता, अर्थशास्त्री, समाज संचालक, विज्ञानवेत्ता, बुद्धिजीवी प्रायः इन्ही पूर्वानुमानो का महत्त्व स्वीकारते हुए भी भावी प्रयासो की रूपरेखा विनिर्मित करते हैं। इसी वर्ग मे मौसम विज्ञानियो एवं अन्तरिक्ष वैज्ञानिकों को भी गिना जा सकता है।

भविष्यचिन्तक एवं भविष्य वक्ता वर्ग मे, खगोलवेत्ता ज्योतिषी—अदृश्य जगत के पर्यवेक्षक अध्यात्म तत्त्वदर्शी तथा तथ्यो के सूक्ष्म विवेचक, बुद्धिजीवी, दूरदर्शी यह तीन वर्ग प्रमुख है। इनकी निर्धारणाओ एवं घोषणाओ पर बहुत कुछ विश्वास भी किया जाता है। लोग तद्नुरूप अपनी भावी योजनाएँ बनाने में भी संलग्न होते है। इतने

पर भी इस मूलभूत मान्यता पर विश्वास किया जाता है कि सम्भावनाओ का अनुमान अटल या अकाट्य नहीं है। उनमे परिस्थितिवश भी हेर-फेर हो सकता है और मानवी पुरुषार्थ से उसमे असाधारण उलट-पुलट होने की सम्भावना हो सकती है। भूलते-भटकते वे लोग है, जो भविष्य अनुमान को, कथन को अकाट्य मान बैठते है। इस भ्रम-जंजाल के कारण ही लोग निराश होते पाये जाते है अथवा किसी अप्रत्याशित लाभ की कल्पना करते हुए आकाश से सोना बरसने जैसी कल्पना करते रहते हैं। शेखचिल्ली को ऐसा ही चिन्तन अपनाने पर उपहासास्पद बनना पड़ा था। उत्तम भविष्य की सम्भावना का फलित होना भी बरते गये पराक्रम पर निर्भर है। इसी प्रकार अनिष्ट का निराकरण भी प्रयत्न-परायणता पर बहुत कुछ निर्भर है। सम्भावनाओ का अनुमान कितना ही सही क्यो न हो उनका निर्धारण किन्ही के द्वारा भी क्यो न किया गया हो। समझा जाना चाहिए कि उनके साथ मानवी पराक्रम की शर्त अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है। पत्थर की लकीर यहाँ कुछ भी नही है।

विशेषज्ञ विलक्षणो के कितने ही निर्धारणो मे पिछले दिनो भारी परिवर्तन सम्भव हो सके। अनिष्ट टल गये और सुयोग के अकल्पनीय अवसर उपलब्ध हुए। इस प्रकार पूर्व निर्धारणो के बदल जाने मे उन भविष्य वक्ताओ को दोषी नही ठहराया जा सकता। उन दिनो परिस्थितियाँ ठीक वैसी ही थी जैसी कि बताई गई। किन्तु समय रहते लोग चेते—अभीष्ट हेर-फेर मे प्राणपण से जुटे और सम्भावना के साथ जूझते हुए अन्ततः उसे बदलकर ही रहे। इस प्रकार वे भविष्यवाणियाँ यथावत् घटित न होने पर भी पूर्व सूचना देने के रूप मे अतीव उपयोगी ही सिद्ध हुई। यदि वह कथन सामने न होता तो बेखबर लोग गफलत में ही पड़े रहते और उसी विपत्ति मे पिस मरते जो दूरदर्शियो ने सम्भावनाओ के रूप मे व्यक्त की थी। इस प्रकार वे भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध होने पर भी वस्तुतः सही सिद्ध होने की अपेक्षा कही अधिक महत्त्वपूर्ण समझी गई।

अंकशास्त्रियो ने धरती की उर्वरता, बढ़ती हुई जनसंख्या और वर्षा असन्तुलन का विवेचन करते हुए इन दिनो भयकर खाद्य संकट उत्पन्न होने की भविष्यवाणियाँ की थी। पर वैसा कुछ हुआ नहीं। क्योंकि उस चेतावनी को गम्भीरतापूर्वक लिया गया और उत्पादन के लिए भूमि बढ़ाने से लेकर खाद-पानी के नये आधार ढूँढ निकालने के अप्रत्याशित प्रयत्न किये। फलतः खाद्य संकट टल गया और स्थिति ऐसी न बनी जिसके कारण दुर्भिक्ष पड़ने-भूखो मरने का त्रास सहना पड़ता।

विश्व के मूर्धन्य तथ्यान्वेषी विचारको मे से प्रमुख लैस्टर ब्राउन, एर्लिच एवं हार्डिन ने एक स्वर से उन १६ वर्षो मे निर्वाह साधनो की कमी की दृष्टि से अत्यधिक भयकर घोषित किये थे जो इस वर्ष समाप्त हो गये। ऐसी दशा मे मोटी दृष्टि से उन कथनों का उपहास उड़ाया और असत्य ठहराया जा सकता है। इतने पर भी सचाई अपनी जगह पर अडिग है। यदि रोकथाम के असाधारण प्रयत्न न चले होते तो विलक्षणों के अनुसार वह विपत्ति निश्चित रूप मे उतरती, जिसे चेतावनी के रूप मे प्रकट किया गया था।

सन् १६०० मे इंग्लैण्ड के अंकशास्त्रियों ने जलाऊ लकड़ी का भयंकर अभाव होने की घोषणा की थी और इस कारण उस देश की जनता तथा सरकार बुरी तरह भयभीत हो उठी। पर समय आने पर वह संकट टल गया क्योकि कोयलो का नया विकल्प खोज लिया गया। अतएव न घरेलू ऊर्जा की कमी पड़ी और न ईंधन के अभाव मे कारखाने बन्द हो जाने की विपत्ति टूटी। अठारहवी सदी मे भी इंग्लैण्ड के प्रख्यात अर्थशास्त्री और उच्च पदासीन तथ्यान्वेषी विलियम स्टैनली जोवेन्स ने ऊर्जा संकट की नये सिरे से घोषणा की थी और देश मे उद्योग-अवरोध आने की आशंका व्यक्त की थी। उस चेतावनी की गम्भीरता को देखते हुए इंग्लैण्ड ने महत्वपूर्ण क्षेत्रो पर पैर पसारे और वहाँ से खनिज तेलो के दोहन का नया आधार हस्तगत कर लिया। अब आशंका के विपरीत इंग्लैण्ड न केवल अपनी ईंधन आवश्यकता पूरी करता है वरन् तेल और कोयले का निर्यात भी करता है। जोवेन्स का कथन असत्य सिद्ध होने पर भी उन्हे किसी ने झूठा नही ठहराया वरन् संकट की सामयिक चेतावनी देने और साथ ही उससे उबरने का उपाय बताने के लिए उनकी भूरि-भूरि प्रशसा ही की गई।

सन् १८८० मे जनसख्या वृद्धि और सस्ते मछली तेल की कमी से तेल संकट इंग्लैण्ड के सामने आया वह तेल महँगा हो जाने से घरो मे अन्धेरा रहने की आशंका व्यक्त की गई। विशेषज्ञो की उस चेतावनी से कोई घबराया नही वरन् दूसरे तेलो के उत्पादन का एक नया माहौल बना। फलतः अलसी, अरंडी, सरसो, तिल आदि का उत्पादन तो अत्यधिक मात्रा मे किया ही गया इसके अतिरिक्त देवदारू, चीड़ जैसे पेड़ो से भी तेल निकाला जाने लगा। यहाँ तक कि ऐसे चट्टान खोज निकाले गये। जिनसे केरोसिन ऑयल निकला। आज मिट्टी के तेल का सर्वत्र प्रचलन है। इस खोज का श्रेय ह्वेल मछली का तेल न मिलने की संकट चेतावनी के साथ जोड़ा जा सकता है।

सन् १९७३ मे विशेषज्ञो ने यह तथ्य उजागर किया था कि खनिज तेल की समाप्ति सन्निकट है। पैट्रोल पम्प सूखे पड़े होगे। पैट्रोल अत्यधिक महँगा होने पर भी सीमित मात्रा मे ही मिलेगा। इस घोषणा से अन्य सभी तो चिन्तित थे, पर बड़े व्यापारियो ने पैट्रोल महँगा होने की सम्भावना को ध्यान मे रखते हुए तेल कुँओ के साथ लम्बे अनुबन्ध कर लिये। बाद मे जब समुद्रो और रेगिस्तानो से तेल निकाला जाने लगा तो संकट टल

गया। पैट्रोल की कमी न पड़ी और अनुबन्ध करने वाले व्यापारी दिवालिया हो गये।

अमेरिका में यह चर्चा बहुत दिनो तक व्यवसायी वर्ग में होती रही है कि अगले दिनो खाद्यान्न की कमी पड़ेगी और उस विश्व संकट से वह देश अनेक प्रकार के लाभ उठा सकेगा, पर समय की कसौटी पर वह बात खरी नहीं उतरी। सर्वत्र खाद्यान्न अधिक उत्पादन की सतर्कता बढ़ी फलतः अनाज और भी अधिक सस्ते हो गये। इस सन्दर्भ मे सन् १९६७ मे प्रकाशित पाल पैड काक की पुस्तक 'फैमाइन १९७५' बहुचर्चित रही, जिसमे इस अवधि से संसार भर मे भयंकर अकाल पड़ने और करोड़ो-अरबो के भूख से मरने की सम्भावना व्यक्त की गई थी। ऐसी ही एक पुस्तक १९६८ में प्रकाशित पाल एर्लिच की 'पाप्युलेशन बाम्ब' है, जिसमे दो दशको के अन्तर्गत जनसंख्या इतनी बढ़ जाने की बात कही गई थी कि मानवी निर्वाह साधनो मे भयंकर संकट उत्पन्न होगा और लोग मक्खियो की मौत मरेगे। किन्तु समय की कसौटी पर वह आशंका भी सही सिद्ध नही हुई। जनसंख्या की बढ़ोत्तरी पर मनुष्य द्वारा तथा प्रकृति द्वारा कितने ही अंकुश लगे और जितनी बढ़ोत्तरी हुई, वह परिस्थिति मे खप गई। सन् १९७१ से १९८० के बीच खाद्यान्न की भारी कमी रहने की घोषणाएँ विश्व के मूर्धन्य विशेषज्ञो ने की थी वे सभी गलत सिद्ध हुईं।

इस अवधि मे उत्पादन पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा मे हुआ। इस प्रकार लेस्टर ब्राउन की "सस्टेनेबल सोसायटी" घोषणा एक प्रकार से असत्य ही सिद्ध हुई। बाद मे इन्हीं लेखक महोदय ने "सीड्स ऑफ चेलैंज" ग्रन्थ मे यह बताया कि पूर्व घोषित भविष्य कथन क्यो असत्य सिद्ध हुआ।

पाल एर्लिच ने कुछ भयंकर कथन, अगणित तथ्यो की साक्षी देते हुए घोषित किये थे। उनमे उनने निकट भविष्य मे अकाल, महामारी, युद्ध के अतिरिक्त समुद्र सूखने, मछलियो की कमी पड़ने और ५० मिलियन मनुष्यों के भूखो मरने की सम्भावना व्यक्त की थी। घोषित समय निकल गया। सन् १९८० तक इन संकटो मे से एक भी भयावह स्तर का नही उभरा। इस प्रकार दावे के साथ किये गये—सप्रमाण भविष्य कथन असत्य सिद्ध होते रहे है।

युग सन्धि के इन बीस वर्षों के सम्बन्ध मे कितने ही दिव्यदर्शियो, महामनीषियो द्वारा ऐसी भविष्यवाणियाँ की जाती रही है। धर्मशास्त्रो, आप्त पुरुषो, दिव्यदर्शियो, महामनीषियो ने एक स्वर से इस अवधि मे अनेकानेक संकटो की सम्भावनाएँ व्यक्त की है। कारण गिनाते और प्रतिफलो की सगति बिठाने पर वे कथन हर दृष्टि से तथ्यपूर्ण भी दीखते है। इतने पर भी यह नहीं मान बैठना चाहिए कि जो कहा गया वह पत्थर की लकीर है और उसे टाला या बदला नहीं जा सकता। मानवी पराक्रम इस संसार मे सर्वोपरि है। वह किन्ही भी भली-बुरी सम्भावनाओं को बदलने मे समर्थ है। वह राम को सिंहासनारूढ होने के स्थान पर वनवास भी भिजवा सकता है। कैकयी और मन्थरा की दुरभिसन्धि ने वातावरण उलट दिया। इसी प्रकार हनुमान ने वह कर दिखाया जिसे असम्भव के स्थान पर सम्भव की स्थापना कहा जा सकता है।

भूतकाल मे अवतारी महामानवो ने यह कर दिखाया, जिसे सामान्य दृष्टि से अप्रत्याशित और असम्भव ही समझा जाता था। इस बार भी ऐसा हो सकता है, युग सन्धि की बेला मे जहाँ एक ओर विनाश-विभीषिकाएँ सामने है वहाँ दूसरी ओर सतयुग की वापसी वाले युग परिवर्तन की उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना भी विद्यमान है। निराशा की कोई आवश्यकता नही। संसार की कोई भली-बुरी सम्भावना या परिस्थिति ऐसी नही है, जिसे मानवी पराक्रम सुधारकर बदल न सके।

विनाश के आसुरी तत्व जहाँ इन दिनो अपना मरण देखकर विभीषिकाएँ उत्पन्न करने मे कमी नही रहने दे रहे है। वह देवत्व की तत्परता शान्ति और प्रगति की स्थापना के लिए भी कम नहीं है। हमे निराशा के अन्धकार मे भी प्रगति की स्वर्णिम किरणो का सपना संजोना चाहिए और उसे फलित होने के लिए सृजनात्मक पराक्रम का पूरा-पूरा उपयोग करना चाहिए।

काश हम दिशा बदल सकें

क्या मनुष्य ने नीचता और नृशंसता ही सीखी है ? क्या उसका पराक्रम स्वार्थपरता और विनाश-विग्रह के लिए ही है ? यह बाते तभी सच मालूम पड़ती हैं जब भूतकाल में हुए इस प्रकार के उदाहरणों की खोज करते है। खोजने से क्या नहीं मिल जाता ? यहाँ जमीन मे साँप, बिच्छू, कातर और कानखजूरे ही भरे पड़े हैं ? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक ही नही नकारात्मक भी मिलता है, यदि ऐसे ही घिनौने जन्तुओ से धरती भरी पड़ी होती तो यहाँ कृषि-उद्यान किस प्रकार उगा पाते ? और बहुमूल्य खनिजो की सम्पदा कहाँ से उपलब्ध होती ? यदि दुष्ट-दुराचारी ही इस संसार मे भरे होते तो ऋषि, तपस्वियों और वीर-बलिदानियो की कथा-गाथाएँ हमें सुनने को कहाँ से मिलती। यह सही है कि कभी कंस, रावण, जरासन्ध जैसे भी यहाँ उत्पन्न हुए और अनाचारो की भरमार करते रहे हैं। पर जनक, हरिश्चन्द्र, अश्वपति, भागीरथ जैसे राजवंशी भी इसी वसुधा को गौरवान्वित करते रहे है।

भविष्य को अन्धकारमय देखने के लिए विज्ञान के सिर पर अनेक दोष मढ़े जा सकते है पर शल्य चिकित्सा जैसे-अनुसन्धानों मे मृत प्रायो को जीवन भी उसी आधार पर मिला है। संचार और परिवहन के—सिंचाई और मुद्रण की अनेक उपयोगी धाराएँ भी

उसी के माध्यम से हस्तगत हुई है। भविष्य को अन्धकारमय देखने के लिए अनेको कारण और प्रमाण दृष्टिगोचर होते है किन्तु सृजन और सहयोग के सभी आधार नष्ट हो गये हो सो बात भी नहीं है।

मनुष्य जाति ज्वार भाटो की अभ्यस्त है। उसे ढेरो समय अन्धकार मे गँवाना पड़ता है, पर सदा रात्रि ही नही होती। सूरज, चन्द्रमा का प्रकाश हमारी कार्य पद्धति को समुन्नत बनाने के लिए कारगर भी होता है। इतिहास मे विनाश के दुर्दिनो की ही भरमार नहीं दीखती, वरन् ऐसा भी होता रहा है कि उपयोगी कठिन कार्य भी मनुष्य ने ही कर दिखाये है। स्वर्ग से धरती पर गंगा उतारने, समुद्र छलाँगने, गोवर्धन उठाने जैसे मिशन दूसरी घटनाओ के रूप मे इस प्रकार भी प्रस्तुत हुए है कि मनुष्य की अपार सामर्थ्य और सूझ-बूझ का परिचय भी प्राप्त किया जा सकता है।

स्वेज और पनामा की नहरे मनुष्य की अनोखी पुरुषार्थ-परायणता है। थल मे जल भर देने के इन प्रयासो मे कितनी जनशक्ति, कितनी धनशक्ति एवं कितनी कार्य-कुशलता का नियोजन हुआ है और उनके कारण संसार को कितनी सुविधाओ का लाभ मिला है, इसे हम सहज ही देख सकते है। चीन की दीवार और मिश्र के पिरामिड, मनुष्य की बुद्धिमत्ता और असाधारण सूझ-बूझ को कार्यान्वित कर दिखाने के प्रमाण है। मनुष्य जब सृजन की दिशा मे सोचता है, तो उसे इतना अद्भुत सोचने और विकट पराक्रम प्रदर्शित करते हुए देखा जाता है, जिसके कारण कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़े। जलचरो की तरह समुद्र मे किलोल करने और पक्षियो की तरह आकाश मे स्वच्छन्द बिचरते मनुष्य को देखते है तो यह विश्वास करते नही बनता कि उसे मात्र विनाश ही विनाश आता है। वह इस धरित्री को नरक बनाने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। उसने हत्या की कला मे प्रवीणता प्राप्त करने के लिए युद्ध-कौशल भर सीखा है। वह अनादि काल से सृजन भी सोचता रहा है और विश्वास करना चाहिए कि उसकी इस सृजन क्षमता का सर्वथा समापन ही नही होने जा रहा है। उसने श्रम और सहयोग की विशिष्टता को सर्वथा भुला दिया है।

बहुत लम्बा समय नही हुआ। नीदरलैण्ड ने समुद्र को पीछे धकेलते-धकेलते उससे २,०५०,००० हैक्टर जमीन हथिया ली और अपने देश का क्षेत्रफल ८ प्रतिशत बढ़ा लिया। इस भूमि पर प्रायः ढाई लाख लोग न केवल रहते वरन् खेती-बाड़ी, व्यवसाय, उद्यान, निवास आदि के साधन खड़े कर लिये है।

यह कार्य अनायास ही नही हो गया। उसके लिए उन्हें समुद्र से लड़ना पड़ा। जिसने १९१६ मे प्रलयकर बाढ़ बनकर एमस्टरडम का सारा उत्तरी इलाका उदरस्थ कर लिया था और खारा पानी भरकर उस भूमि को बेकार बना दिया था। इस प्रकार मात खाते रहने की अपेक्षा उस देश के निवासियो ने निश्चय किया कि समुद्र को मजा चखाना चाहिए। तब कोई अगस्त मुनि तीन चुल्लू में सागर सोखने नहीं आये और न किसी लक्ष्मण ने धनुष-बाण उठाकर उसे क्षमा माँगने के लिए बाधित किया। वरन् मनुष्य का कौशल ही आगे आया जिसका कर्तृत्व देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। जूडर की खाड़ी में १५ से ५० किलोमीटर की चौड़ाई में प्रायः १३० किलोमीटर धँसकर असाधारण बाँध बाँधा गया। यह समुद्र तल से ६ मीटर ऊँचा है। इसकी नींव १८० मीटर चौड़ी है। बाँध बनाते समय सन् १९१६ से १९२० तक समुद्र के साथ आँख-मिचौनी खेलनी पड़ी, जैसे ही भाटा पीछे हटता बजरी, सीमेण्ट आदि का इतनी मुस्तैदी से वजन डाला जाता कि जब तक ज्वार वापस लौटे, तब तक डाला हुआ मसाला पत्थर जैसी मजबूती पकड़ ले। मिलिक, इन्जीनियर, नायिक एक मुस्तैद सेना की तरह छापा मारते और समुद्री उछालो की कमर तोड़ देते। यह प्रयास बिना नागा पूरे ४ वर्ष तक चला और वह प्रयोजन सिद्ध हो गया, जिसकी योजना बनाने वालो को स्वप्नदर्शी कहा जाता था। इस टकराव मे प्रायः आधा श्रम, आधा मसाला समुद्र ने बर्बाद कर दिया तो भी अन्ततः उसे हार ही माननी पड़ी। सन् १९२० मे बाँध बनकर तैयार हो गया। उसका सिरा इतना चौड़ा और इतना मजबूत है कि उस पर ट्रको, बसो और कारो की निरन्तर धमा-चौकड़ी मची रहती है।

इस निर्माण कार्य मे जो साधन, उपकरण एवं धन-जन का भारी प्रबन्ध करना पड़ा, उसे उस छोटे से देश के निवासियो ने किस प्रकार जुटाया होगा और बीच-बीच मे आने वाली निराशाजनक कठिनाइयो का किस प्रकार सामना किया होगा। इसका सुविस्तृत विवरण पढ़ने पर पता चलता है कि मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति भी कितनी प्रचण्ड है ? आवश्यकता उसे नियोजित करने भर की है।

ससार मे अभावो की शिकायत बहुत की जाती है। जनसंख्या की तुलना मे जमीन कम पड़ने की बात भी कही जाती है। पर कभी सृजन के क्षेत्रो पर दृष्टि नही जाती। अफ्रीका का इतना बड़ा क्षेत्र वीरान पड़ा है, जिसे सहयोगपूर्वक समुन्नत किया जाय तो न केवल उस देश के निवासियो को भारत जैसे एक समूचे देश का उसमे अभिनव निर्वाह हो सकता है। ब्रह्मपुत्र के प्रभाव से बने हुए दलदलो को यदि पर्वतीय चूरे से पाटा जा सके तो एक नया वर्मा बस सकने जितनी भूमि हस्तगत हो सकती है।

पारस्परिक भय और अविश्वास यदि बड़े देश अपने मन से निकाल सके और मिल-जुलकर प्रस्तुत शक्तियो को विकास कार्यों मे लगा सके तो पिछड़ी हुई और दरिद्र, दुर्बल दुनिया उतनी ही समृद्ध दृष्टिगोचर हो

सकती है जैसी कि आज जापान, जर्मनी आदि दृष्टिगोचर होते है।

अन्तरिक्षीय कार्यक्रम का उद्देश्य अगले दिनो आकाश को कुरुक्षेत्र बनाना और प्रतिद्वन्द्वियों को भूनकर खाक बना देना है। यदि यह इरादे बदले जा सके और युद्ध-आयुधो मे लगने वाली राशि एवं कुशलता को जन-साधारण की कठिनाइयो से उबारने मे लगाया जा सके तो एक पंचवर्षीय हो जाने मे न केवल आर्थिक समस्याओ का समाधान हो सकता है वरन् प्रगति के लिए जिन साधनो की आवश्यकता है, उन्हे जुटा सकना नितान्त सरल हो सकता है।

बात दिशा बदलने भर की है। विश्व विजय की महत्त्वाकांक्षाओ को विश्व निर्माण के लिए नियोजित किया जा सके तो सर्वत्र खुशहाली उत्पन्न हो सकती है, जिसके आधार पर सभी बिना किसी टकराव के जीवनोपयोगी समस्त साधन प्राप्त कर सके और उन्हे मिल-बाँटकर खाते हुए हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सके। इस दिशा परिवर्तन में उतना जोखिम नही है, जितना कि विनाश पर उतारू मन:स्थिति मे अपनी प्रतिपक्षी में तथा अगणित निर्दोषो की न पूरी हो सकने वाली क्षति की सम्भावना है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता मानवी चिन्तन की दिशा बदलने की है। विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता की कहीं कमी नही। सफलता के एक से एक बड़े कीर्तिमान प्रस्तुत करने वालो की सामर्थ्य और प्रतिभा भी कम नही आँकी जा सकती। वैभव भी कम नही। जितना धन सरकारो के, सम्पन्नो के पास है, वह इसके लिए पर्याप्त है कि संसार के दो-तिहाई वन-मानुषो और पिछड़ो को उनकी स्थिति से उबारकर देवोपम न बन पड़े तो भी बुद्धिमान मनुष्यो की तरह सुविधा-सम्पन्न जीवन तो जी ही सकते है।

जिस परिवर्तन को लाने की आज महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है, उसे उपलब्ध करने का राजमार्ग एक ही है कि मनुष्य आपा-धापी और छीन-झपट का विचार छोड़कर मिल-जुलकर रहने और सहयोगपूर्वक आगे बढ़ने का मन बनाये और उसी के लिए योजनाबद्ध कदम उठाये।

मनुष्य के पास न साधनों की कमी है, न सूझ-बूझ की। उसका सहयोगपूर्ण पराक्रम यदि सृजन की दिशा मे नियोजित हो सके, तो कोई कारण नही कि सर्वत्र संव्याप्त चिन्ता, आशंका, उद्विग्नता से छुटकारा न मिल सके। स्नेह-सहयोग की प्रवृत्ति अपनाई जा सके और जो अभाव इन दिनो खलते है उन्हे पूरा करने के लिए नीदरलैण्ड निवासियो जैसा संकल्प किया जा सके तो हर क्षेत्र में, हर स्तर की चमत्कारी प्रगति का आश्चर्य देखा जा सकता है।

संकल्प शक्ति का कल्पवृक्ष

हमारे दूरदृष्टा ऋषि-मुनियो ने विचारो की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। वृहदारण्यकोपनिषद मे कहा गया है कि इच्छा प्रधान व्यक्ति जैसा संकल्प करता है, वैसा ही कर्म करता है। जैसा कर्म करता है, वैसा ही बन जाता है। वस्तुतः जैसे हमारे विचार होते है, वैसा ही हमारा स्वभाव, हमारा आचार भी ढल जाता है। हमारा चेहरा, हमारा शरीर, हमारा स्वास्थ्य, हमारी सफलता-असफलताएँ सभी कुछ हमारे विचारो की प्रतिच्छायाएँ है। अँग्रेजी मे एक कहावत है—"तुम वह नही हो, जो तुम अपने विषय मे सोचते हो कि तुम यह हो, अपितु तुम जैसे विचार करते हो, वास्तव मे तुम वही हो।" यदि हम अपने विचारो को उन्नत बना सके, विचार शक्ति पर नियन्त्रण रख सके तो हमारे जीवन की अनगिनत समस्याओ, कष्टो और असफलताओ का स्वतः ही निदान हो जाये।

विचारो के नियन्त्रण से वे बड़ी से बड़ी शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती है, जो सहज ही लोगो को चमत्कृत कर दे। विचारो का संयमन और ध्यान की एकाग्रता यह दो इतने बड़े जादू है कि समस्त पृथ्वी का कायाकल्प करने की शक्ति स्वयं मे रखते है। संसार मे जितने भी महापुरुष हुए है, उन सबकी सफलता का मूलमन्त्र उन्नत विचार शक्ति और दृढ़ संकल्प बल ही है। उनके जीवन मे अगणित कष्ट, कठिनाइयाँ आयी परन्तु इन दो शक्तियो के बल पर उन्होने उन सब पर विजय प्राप्त की। ईश्वरीय प्रतिभा लेकर तो विरले ही व्यक्ति आते है। संकल्प और साहस के अभाव मे वह प्रतिभा भी धूमिल पड़ जाती है। कष्ट, कठिनाइयाँ किसके जीवन मे नही आती ? जो मन को निग्रहीत कर कठिनाइयो मे जीना सीख लेता है, ससार में वही महान और अनुकरणीय बनता है। यदि हम महापुरुषो के जीवन चरित्र का अध्ययन करे तो पायेगे कि उन्होने कठिनाइयो को सहकर ही विजयश्री का वरण किया है। ईसा, सुकरात, गाँधी और दयानन्द ने अपने सिद्धान्तो के प्रचार और प्रसार के लिये क्या नही सहा ? आज मरकर भी वे यश-काया से अजर-अमर है क्योकि उन्होने विचारशक्ति और सकल्पबल के द्वारा तूफानो-झंझावातो को हँसते-हँसते सहकर विश्व को नूतन प्रकाश दिखलाया। इसी प्रकार अन्य लोगो के उदाहरण भी हमारे सम्मुख है। कार्ल-मार्क्स जब अपने विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ "कैपीटल" की रचना में पूरी तरह से डूबे थे, तब उनके घर मे खाना खाने को एक पैसा तक नही था। गोर्गी सारे दिन साहित्य सृजन मे लगे रहते और जब क्षुधा बहुत व्याकुल करती तो कूड़े के ढेर में डबलरोटी के टुकड़े ढूँढ़ते थे। ग्राहमबेल ने जब टेलीफोन का आविष्कार किया था, तब अन्तिम राशि तक उसमे लगा दी थी और भूख की भी परवाह न कर वे अपने अन्वेषण मे जुटे रहे थे। वज्रमूर्ख कालिदास सकल्प शक्ति

के बल से ही विश्ववन्द्य महाकवि बने थे। वस्तुतः हममे से कोई भी कार्ल मार्क्स, गोर्गी, कालिदास आदि से कम नही है। जो हाथ-पैर और प्रतिभाएँ, क्षमताएँ भगवान ने उन्हे दी थी, वही हमे भी दी है। अन्तर इतना ही है कि उन्होने अपने दृढ निश्चय को, आगे बढ़ने के भाव को निरन्तर बनाये रखा, कभी निराशा और कायरता को प्रश्रय नही दिया परन्तु हम छोटी-छोटी बाधाओ मे भी हार मानकर, थककर और निराशा से चूर होकर बैठ जाते है। अपने विचारो को ऊँचा उठाइये। अपनी संकल्प शक्ति को जगाइये। कायरता और निराशा, कुण्ठाओ के विचारो को पास न फटकने दीजिए। कौन ऐसा कार्य है जो आपके लिए असम्भव है ? अपने पौरुष और कर्मठता पर विश्वास रखिये—पूरी शक्ति से लक्ष्य की ओर बढ जाइये। अन्धकार से प्रकाश की ओर जाइये। तभी आप मनुष्य कहलाने के अधिकारी है। इसी मे मनुष्य की गरिमा भी है।

वे तीन—जो दुर्भाग्य से लड़े और जीते

मनुष्य को स्वयं अपनी क्षमताओ की सही जानकारी नही होती। कभी-कभी विशेष परिस्थितियो मे यदि मनुष्य धैर्य एवं साहस न खो दे—तो उनका परिचय मिलता है। जिस घटना विशेष के कारण मनुष्य की अपराजेय शक्तियो का परिचय मिलता है। वह भले ही प्रत्यक्ष के रूप मे उपयोगी न हो किन्तु मनुष्य की शक्ति की कसौटी के रूप मे ही उनकी महत्ता बढ जाती है। जो घटना साहसिकता एवं धैर्य के विहीन व्यक्तियो के लिए दुर्घटना बन सकती है, वही मनोबल सम्पन्न मनुष्य के गौरव की दुंदुभी बन जाती है।

फिजी मे रहने वाले तीन भारतीय नागरिको ने ऐसी ही एक परीक्षा मे सफल होकर मानवता की गरिमा बढ़ाई। दो सप्ताह तक भयंकर जीवो से भरे समुद्र मे एक छोटी नौका पर धैर्यपूर्वक बिना आहार के वे बने रहे।

जहाँ मछली सामान्य आहार के रूप मे प्रयुक्त होती है, वहाँ बहुत लोगो की आजीविका समुद्र मे मछली पकड़ने से ही चलती है। बहुधा यन्त्र एवं पाल से नियन्त्रित छोटी नाव (लाँच) पर १-२ दिन का आहार रखकर लोग गहरे समुद्र मे मछली पकड़ने निकल जाते है। दूर तक जाकर लौटने मे आने-जाने मे ही बहुत समय लग जाता है, अस्तु, एक दिन मे लौटे तो मछली पकड़ने को कम समय मिल पाता है। इसी कारण २-३ दिन की व्यवस्था बनाकर ही निकलना उपयुक्त होता है।

६ नवम्बर को तीन भारतीय युवक सर्वश्री सुरेन्द्र प्रसाद, नरअली एव चन्द्रिका प्रसाद २३ फुट लम्बी नाव पर 'लतामा' बन्दरगाह से मछली शिकार के लिये निकले। उनके पास १० पौण्ड चावल तथा लगभग ८ गैलन पीने के पानी की व्यवस्था थी। उन्होने लगभग ३६ घण्टो मे ५०० पौण्ड के करीब मछलियाँ पकड़ी। ८ तारीख को जब उनने लौटने का उपक्रम किया तो अपने आपको प्रकृति के पंजो मे असहाय फँसा हुआ पाया। उनके पाल की डोरी मछली पकड़ अभियान मे टूट चुकी थी तथा इन्जन के भी कुछ पुर्जे बेकार हो गये थे। उन्होने लंगर डालकर लहरो मे नाव को अधिक न भटकने देने का प्रयास किया, तो ज्ञात हुआ कि वह इतने गहरे समुद्र मे पुहँच चुके है कि लंगर कार्य नहीं कर सकते है।

भयंकर परिस्थिति थी। शार्क मछलियों से भरा तूफानी समुद्र, लहर के थपेड़ो से हवा मे उड़ते पत्ते की तरह डोलती नाव और उसमे असहाय तीन मनुष्य। उन्होने किसी प्रकार नौका का संतुलन बनाये रखा। पर लहर के थपेड़े उन्हे कहाँ से कहाँ पहुँचा दे रहे है, यह उन्हे ज्ञान न था। चारो ओर पानी के अतिरिक्त कुछ दिखता ही तो अनुमान भी लगे। किन्तु उन तीनो साहस के धनी नौजवानो ने सन्तुलन बनाये रखा। क्या होगा, कैसे होगा ? की कल्पना मे शक्ति व्यय करने की अपेक्षा अपनी सीमा के अन्दर पूरा प्रयास करना उन्होने श्रेयस्कर समझा।

लहरो में भटकती नाव मे ९ तारीख को उनकी खाद्य सामग्री समाप्त हो गई। पकड़ी हुई मछलियो पर भी कब तक गुजारा करते ? ११ तारीख तक सड़ जाने के कारण उन्हे समुद्र मे फेंक देना पड़ा। रहे-सहे साधन भी समाप्त हो गये थे। अब प्रकृति की निष्ठुरता तथा मनुष्य के धैर्य के बीच सीधा संघर्ष था। ऐसे मे यदि निराशा उन पर हावी हो जाती तो उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता। किन्तु उन बहादुरो ने प्रकृति की चुनौती का डटकर मुकाबला किया। उनका संकल्प था कि दो-दो चुल्लू समुद्री पानी से गला तर रखकर भी जब तक सम्भव है, खिलाड़ियो की तरह इस स्पर्धा का मजा लेगे और अन्त मे उनका साहस विजयी हुआ। दो सप्ताह हो जाने पर उनके शरीर बहुत कुछ क्षीण हो गये थे। कही से कोई सहायता की आशा नहीं थी। किन्तु दैवयोग से एक खोजी जहाज द्वारा उनका उद्धार हो गया।

किनारे पर उनका स्वागत हुआ। पत्रकारो ने विशेष भेंट की तथा अपनी साहसिकता प्रमाणित करके मनुष्य का गौरव बढाने वाले चारों वीरो का यशगान किया गया। संभावित दुर्घटना कीर्ति पताका बन गई।

तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु

"१९ वर्षीय एक फ्रांसीसी युवती ने एक युवक से विवाह सम्बन्ध निश्चित किया। युवक भी उसे प्यार करता था अतएव विवाह की स्वीकृति तो उसने दे दी किन्तु साथ ही यह वचन भी ले लिया कि वह अभी कुछ दिन धन कमायेगा तब विवाह करेगा। युवती जानती थी कि

गृहस्थ संचालन की सुविधाएँ धन से ही प्राप्त होती है अतएव उसने सहर्ष अनुमति दे दी। युवक अमेरिका चला गया और रोजगार शुरू कर दिया।"

३ वर्ष मे उसने पर्याप्त धन कमा लिया किन्तु इस बीच एक मुकदमा लग गया और उसे मुकदमे में उलझना पड़ गया। युवक ने पत्र द्वारा प्रेयसी को सूचना भेज दी कि वह कम से कम १० वर्ष नही लौट पायेगा, युवती ने उत्तर मे लिखा—तुम जब भी लौटेंगे तभी विवाह करूँगी, मृत्युपर्यन्त तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी, युवक ठीक १५ वर्ष बाद लौटा और यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि जिस युवती को १५ वर्ष मे ३४ वर्ष की अधेड़ हो जाना चाहिये उसके नाक-नक्शे, शरीर-स्वास्थ्य मे बिल्कुल अन्तर नही, पहले जैसी ताजगी, मानो उसे अमेरिका गये कुछ सप्ताह से अधिक न बीते हो। विवाह सम्पन्न हुआ। दोनो सुख से रहने लगे पर युवक का विस्मय अभी तक भी दूर नही हुआ था, सो उसने एक दिन युवती से पूछ ही तो लिया रहस्य ?

उक्त घटना का चित्रण करते हुए अमरीकी वैज्ञानिक और लेखक डॉ. बैनेट अपनी पुस्तक "वृद्धावस्था-कारण और निवारण (ओल्ड एजः इट्स काज एण्ड प्रिवेन्शन") मे लिखते है कि मनुष्य शरीर समुद्री लहर की तरह है, जिसमे से कूड़ा-कचरा हर घड़ी फेका जाता रहता है और जल को शुद्ध रखा जाता रहता है। ८० दिन पीछे शरीर का एक भी कोश (सेल) पुराना नही रह जाता। जिस तरह जीर्ण और पुराना हो जाने पर मकान को बदल दिया जाता है और अधिक पक्की ईंटो से बनाकर नया कर देते है, उसी प्रकार परमात्मा ने शरीर की व्यवस्था की है। हर पुराना कोश बदल जाता है और प्रकृति उसके स्थान पर स्वस्थ कोश स्थापित करती रहती है फिर मनुष्य बूढ़ा क्यो हो जाता है ? बैनेट ने वर्षो इस बात पर विचार किया, मनन-चिन्तन और अन्य परीक्षण किये तब कहीं उसका उत्तर उसकी समझ मे आया। वह उत्तर उन्होंने इस घटना के माध्यम से देते हुए आगे लिखा है कि एक दिन युवक ने पूछ ही लिया अपनी नव विवाहिता से—तुम्हारे शरीर मे अन्तर क्यो नही पड़ा ?

युवती अपने पति को एक ६ फुट आदमकद शीशे के पास ले गई और उसके सामने खड़ी होकर बोली—यह है रहस्य मेरे स्वास्थ्य का। जिस दिन आप मेरे पास से विदा हुए, मैने संकल्प लिया कि आप जब लौटेंगे आपको इसी अवस्था मे मिलूँगी। मै प्रतिदिन प्रातःकाल सोकर उठती तो पहले इस शीशे के पास आती। इसी तरह इसके सामने खड़ी होकर अपने चेहरे को देखकर प्रसन्न होती और मस्तिष्क मे एक विचार उठाती कि कल जैसी थी ठीक वैसी ही अब भी हूँ, मुझ में कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। फिर मै काम पर लग जाती। दिन भर काम करती, हँसती-खेलती पर मन मे अपने सवेरे वाले स्वस्थ चेहरे की ही कल्पना करती रहती और उससे हर क्षण एक नई स्फूर्ति अनुभव करती रहती। मैने मन मे सदैव अपने आपको १९ वर्ष का बनाकर रखा, उसी का प्रतिफल है कि १५ वर्ष बीत जाने पर भी मै ज्यो की त्यो स्वस्थ हूँ।

इस घटना द्वारा डॉ. बैनेट ने एक नये विज्ञान और अभूतपूर्व भारतीय मान्यता को नई स्थापना दी है और लिखा है, मनुष्य का मन जैसा होगा वैसा ही वह बनेगा। मनुष्य का मन बड़ा समर्थ है। वह मिट्टी को सोना और सोने को हीरे मे बदल सकने की सामर्थ्य से परिपूर्ण है।

जिस तरह मनुष्य ने शरीर को भोग की वस्तु समझकर उसने अपने आपको महान आध्यात्मिक सुख-सम्पदाओ से विमुख कर लिया, यह दुर्भाग्य ही है कि वह मन जैसी अत्यन्त प्रचण्ड शक्ति का उपयोग केवल लौकिक स्वार्थो और इन्द्रिय भोगो तक सीमित रखकर उसे नष्ट करता रहता है। मन भौतिक शरीर की चेतन शक्ति है—आइन्सटीन के शक्ति-सिद्धान्त के अनुसार न कुछ भार वाले एक परमाणु मे ही प्रकाश की गति × प्रकाश की गति अर्थात्—186000 × 186000 कैलोरी शक्ति उत्पन्न होगी। १ पौण्ड पदार्थ की शक्ति १४ लाख टन कोयला जलाने से जितनी शक्ति मिलेगी। इतनी होगी। यद्यपि पदार्थ को पूरी तरह शक्ति मे बदलना सम्भव नही हुआ तथापि यदि इस शक्ति को पूरी तरह शक्ति मे बदलना सम्भव होता तो एक पौण्ड कोयले मे जितना द्रव्य होता है, उसे शक्ति मे बदल देने से सम्पूर्ण अमेरिका के लिये १ माह तक के लिये बिजली तैयार हो जाती है। मन शरीर के द्रव्य की विद्युत शक्ति है। मन की एकाग्रता जितनी बढ़ेगी, शक्ति उतनी ही तीव्र होगी। यदि सम्पूर्ण शरीर को इस शक्ति मे बदला जा सके तो १२० पौण्ड भार वाले शरीर की विद्युत-शक्ति अर्थात् मन की सामर्थ्य इतनी अधिक होगी कि वह पूरे अमरीका को लगाकर १० वर्ष तक विद्युत देता रह सके। इस प्रचण्ड क्षमता से ही भारतीय योगी, ऋषि, महर्षि शून्य आकाश मे स्फोट किया करते थे और वे किसी को एक अक्षर का उपदेश दिये बिना, अपनी इच्छानुसार अपने संकल्पबल से समस्त भूमण्डल की मानवीय समस्याओ का संचालन और नियन्त्रण किया करते थे। शेर और गाय को एक ही घाट पर पानी पिला देने की प्रचण्ड क्षमता इसी शक्ति की थी। मन को ही वेद मे "ज्योतिषां ज्योति" अर्थात् प्रकाश का भी महाप्रकाश कहा है। डॉ. बैनेट ने उसे एक महान-विद्युत शक्ति (माइण्ड इज ए ग्रेट इलेक्ट्रिकल फोर्स) से सम्बोधित किया है।

खेद है कि मनुष्य इतनी अतुल शक्ति-सम्पत्ति का स्वामी होकर भी परमुखापेक्षी और दीन-हीन जीवन जीता है। मन एक शक्ति है, यदि उसे विकृत और घृणित रखा जाता है तो सिवाय इसके कि दूषित परिणाम सामने आये और क्या हो सकता है ? अमेरिका के रोगियो का

मनो-विश्लेषण करने से पाया गया है कि यों तो अधिकांश सभी रोगी मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ थे किन्तु पेट के अधिकांश शत-प्रतिशत मरीज दूषित विचारों वाले व्यक्ति थे। डॉ. कैनन ने अध्ययन करके लिखा है कि "आमाशय" का सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क के "आटोनोमिक" केन्द्र से होता है। आटोनोमिक केन्द्र के दो भाग होते है—(१) सिम्पैथेटिक (२) पैरा सिम्पैथेटिक यह दोनों अंग पेट की क्रियाएँ संचालित करते है। पाचन रस उत्पन्न करते है। यदि रोगी मानसिक चिन्ताओ और आवेगो से पीड़ित होगा तो निश्चित ही उसकी पेट की क्रियाओ मे विपरीत प्रभाव पड़ेगा और उसका पेट हमेशा खराब रहेगा। इसलिये सामान्य स्वास्थ्य के लिये ही—मनुष्य का अच्छे और विधायक विचारो वाला होना अत्यावश्यक है।

सन् १९२३ में किये गये डॉ. फ्रेन्स डेलमार और डॉक्टर राओ की शोधे शरीर और मन के सम्बन्धो पर विस्तृत प्रकाश डालती है। उनका कहना है कि शरीर मे कोई रोग उत्पन्न नहीं हो सकता, जब तक कि मनुष्य का मन स्वस्थ है। जाँच के दौरान जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष हाथ लगे वह बताते है कि "स्नायुशूल" उन्हे होता है, जो आवश्यकता से अधिक खुदगर्ज तथा हिंसक होते है। "गठिया" का मूल कारण ईर्ष्या है। निराश और हमेशा दूसरो से दोष देखने वाले लोग ही कैसर के शिकार होते है। सर्दी उन्हे अधिक लगती है जो दूसरो को तंग किया करते हैं। हिस्टीरिया और गुल्म चोर, ठग और निराश व्यक्तियो को होता है। अजीर्ण झगड़ालू लोगों को होता है। तात्पर्य यह कि हर बीमारी मनुष्य की मानसिक विकृति का परिणाम होती है। आज जो संसार मे रोग-शोक की भयानक बाढ़ उपज पड़ी है, उसका कारण न तो कोई विषाणु है और न ही बाहरी वातावरण, उसका कारण तो विकृति और बुरे विचारों के रूप मे हर व्यक्ति के मन के अन्दर बैठा हुआ होता है। यदि मनुष्य अपने मन को ऊर्ध्वगामी बना ले, उसकी महान शक्ति को पहचान ले तो वह कुछ से कुछ बन सकता है। उत्तम-स्वास्थ्य तो उसका अत्यन्त स्थूल लाभ है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयो" अर्थात् बंधन और मुक्ति का कारण भी यह मन ही है।

डॉ. बैनेट ने स्वयं अपना उदाहरण इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। उन्होने पुस्तक में अपनी दो फोटो छापी हैं। एक ५० वर्ष की उम्र की, दूसरी ७० वर्ष की आयु की, ७० वर्ष की आयु वाले फोटो मे कोई झुर्री नही, कोई सिकुड़न और बुढ़ापे के लक्षण नही जबकि ५० वर्ष की आयु वाले फोटो को देखने से लगता है कि यह व्यक्ति बूढ़ा ही नही, रोगी भी होगा, धँसी आँखे पिचके गाल, सूखा चेहरा ?

यह अन्तर कहाँ से आ गया ? उसका उत्तर देते हुये श्री बैनेट स्वीकार करते है कि उन्होने मन के महत्व को ५० वर्ष की आयु मे तब जाना जब शरीर बिल्कुल कृश हो गया था। मैंने ५० वर्ष का जीवन बुरी मनःस्थिति से दूषित कर्मों का जिया। स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि एक क्षण की जिन्दगी भी १० मन पत्थर से दबी जान पड़ने लगी, तभी मैंने डॉ. मारडन, जोकि अमरीका के एक महान अध्यात्म-परायण व्यक्ति हैं, के विचार पढ़े-उन्होंने अपनी पुस्तक "लौह इच्छाशक्ति" (इन आइरन विल) में लिखा है—"मनुष्य अपने विचार नये कर ले। अपने विचार और चरित्र बदल ले तो वह अपने शरीर को नया कर सकता है।" इस स्वाध्याय ने मुझे औषधि का वरदान दिया। मैंने अपने आपको स्वस्थ अनुभव करने, सदैव प्रसन्न रहने, सेवा, सहयोग, प्रेम, मैत्री, दया, करुणा और परोपकार का जीवन जीने का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया और उसका जो सुफल मिला वह मेरी ७० वर्ष वाली फोटो में पाठक स्पष्ट देख सकते हैं।

डॉ. बैनेट की बात को सबसे पहले भारतीय तत्वदर्शियों ने जाना। उन्होंने पहले ही लिख दिया है—"संकल्प मातरं देवी चतुर्वर्गप्रदायकम्" अर्थात् मन के संकल्प मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाली सभी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। उसकी शुद्धता और उसकी विधेयक शक्ति की जानकारी होने पर ही वे प्रातःकाल प्रार्थना किया करते थे—

यस्मान्न ऋत किंचन कर्म क्रियते।
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु॥ (यजुर्वेद)

अर्थात् जिसके बिना संसार का कोई भी कर्म नहीं हो सकता, वह मेरा मन शिव संकल्प वाला हो।

आज के रोग-शोक, आज की सामाजिक विकृतियों का कारण कोई बाह्य नहीं, लोगो के मनो का दूषित हो जाना है। इसलिये आज की प्रमुख समस्या बेरोजगारी, आबादी, खाद्यान्न आदि नही मन की विकृति है, जब तक उसे न सुधारा जायेगा, संसार से संकट कम करने की बात सोचना व्यर्थ और निरर्थक होगा।

मानवी काया काँच की नहीं, अष्टधातु से बनी है

पोर्टलैण्ड मे एक आठ वर्षीय बालक सड़क कूटने वाले तीन टन भारी इंजन के नीचे आ गया। उसकी कमर से नीचे का भाग बुरी तरह पिस गया। किसी को उसके बचने की आशा न थी, पर जीवन शक्ति ने काम किया और एक वर्ष तक अस्पताल मे रहकर वह अच्छा हो गया। पैर चलने लायक तो न हो सके पर जीवन रखा तो हो ही गई।

न्यूयार्क की पन्द्रह मंजिल ऊँची इमारत से एक दो वर्ष का नन्हा टामी पेइवा गिरा। उसकी हड्डियाँ टूट गई फिर भी वह मरा नही।

केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के भौतिक प्राध्यापक डाक्टर क्रेग टेलर-ने स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि संसार के सबसे अधिक गरम क्षेत्र मे

रहकर भी औसत स्वास्थ्य वाला आदमी १०० दिन तक जी सकता है। यदि स्नायु संस्थान अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो तो २०० दिन तक जिया जा सकता है। आमतौर से अत्यधिक गर्मी वाले स्थान के बारे मे अब तक यह मान्यता प्रचलित है कि वहाँ कोई २४ घण्टे से अधिक नहीं जी सकता। डाक्टर टेलर ने २२० डिग्री तक की गर्मी देर तक सहन करके दिखाई और वे २५० डिग्री तापमान को भी १४ मिनट तक सहन करने में सफल रहे।

कितना शीत मनुष्य शरीर सह सकता है ? इसका परीक्षण मेजर डोनमल्ड ने बर्फीले पानी की शीत एक घण्टे तक सहकर दिखाया। वे कहते है, यदि शीतरक्षक सूट पहन रखा हो तो, शीत से मृत्यु नहीं हो सकती।

इंग्लैण्ड का एक विमान चालक टेड ग्रीनवे को, द्वितीय महायुद्ध के दौरान विपत्ति में फँस गया। उसके दो और साथी भी थे। भयंकर शीत प्रदेश के बर्फीले प्रदेश मे उसे भूखे-प्यासे १० दिन गुजारने पड़े। कपड़े भी गरम न थे। इतनी विपत्ति का सामना करते हुए उस प्रदेश को पार करते हुए ये लोग बच सकने की स्थिति मे पहुँचे।

अमेरिका के युद्ध रोमांच इतिहास मे यह घटना जुड़ी हुई है कि उसकी एक सैनिक टुकड़ी ग्रीनलैण्ड के बर्फ से ढके क्षेत्र में फँस गई और नितान्त सादे कपड़े पहने, ८८ दिन बिताकर बाहर आ सकने में सफल हुई। १० दिन तो उस टुकड़ी को बिना भोजन के रहना पड़ा।

मनुष्य के शरीर का तापमान ९८.६ डिग्री होता है। यदि यह १९ डिग्री घट जाय अर्थात् ७९ के करीब रह जाय तो जीवन संकट उत्पन्न हो जायेगा। इसी तरह ९ डिग्री बढ़ जाय अर्थात् तापमान १०७ पर आ पहुँचे तो भी मृत्यु हो जायेगी। बुखार मे तापमान अधिक न बढ़ने पाये, इससे इसके लिए डाक्टर सिर पर बर्फ रखते है। इस प्रतिपादन को झुठलाने वाली एक नर्स है, जिसने ११० डिग्री बुखार से कई दिनो तक लड़ाई लड़ी और आखिर वह अच्छी हो गई। डाक्टर कह चुके थे कि इसका बचना सम्भव नही। यदि बच भी गई तो इतनी गर्मी उसके दिमाग को विक्षिप्त अवश्य कर देगी। पर नर्स ने न मौत को अपने पास फटकने दिया, न पागल मन को। अमेरिका के ब्रुकलिस पुशाबक नामक अस्पताल की इस नर्स ने मानवी जीवन शक्ति को मृत्युञ्जयी सिद्ध करते हुए नया प्रतिपादन प्रस्तुत किया कि मृत्यु से जीवन अधिक सामर्थ्यवान है।

आयरिश स्वाधीनता यज्ञ के उद्गाता टेरेन्स मेकस्विनी ने जेल मे अनशन किया और तिहत्तर दिन तक निराहार रहकर मौत से जूझते रहे। भारतीय स्वाधीनता के सेनानी यतीन्द्रनाथ दास बिना आहार किये ६८ दिन की लम्बी अवधि तक मौत से लड़ते रहे।

आपरेशनो के दर्म्यान कितने ही लोगो को एक फेफड़ा, एक गुर्दा, जिगर का एक भाग, आँतो का बड़ा भाग आदि काटकर अलग कर दिये जाते है पर जो शेष बचा रहता है, उतने से ही शरीर अपना क्रम चलाता रहता है और जीवित रहता है।

सामान्य मनुष्य शरीर का तापमान ३६.६ अंश शतांश होता है। खून मे शक्कर की मात्रा ०.१ होती है। रक्तचाप साधारण स्थिति मे १००-१४० मिली मीटर मर्क्युरी कॉलम रहता है।

यह ३६.६ तापमान भीतर के अवयवो का ही होता है। ठण्ड के दिनो मे हाथ-पैरो का ताप तो ३३ से भी कम रहता है। फिर भी सारा कार्य यथावत् चलता रहता है। पर इससे अधिक भीतरी गर्मी नही गिरनी चाहिए और वह ४५ से आगे भी नही बढ़नी चाहिए अन्यथा जीवन संकट उत्पन्न हो जायेगा।

परिस्थितिवश यदि ताप घटता-बढ़ता है तो उसका नियन्त्रण करने के लिए शरीर के भीतर ही हीटर एवं कूलर जैसी व्यवस्था मौजूद है। अपना सचेतन नाड़ी संस्थान तापमान को सन्तुलित रखने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। माँसपेशियाँ ऊष्मा उत्पन्न करने का काम करती है। उन्ही मे ऊष्मा बनती, पकती और बढ़ती है। इनके अतिरिक्त हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, यकृत, आँते आदि अंग भी एक प्रकार से भट्टी की तरह जलते और गर्मी पैदा करते है।

शरीर दिन-रात मे १६० से लेकर १८० लाख कैलोरी ऊष्मा नित्य बाहर फेकने का क्रम चलाता है। बिजली के घरेलू हीटर भी प्रायः इतना ही ताप उत्पन्न करते है, जब गर्मी कम पड़ती है, तो ठण्ड लगने लगती है। दाँत किट-किटाते है, अंग काँपते है यह अतिरिक्त क्रिया-कलाप प्रकृति द्वारा अतिरिक्त गर्मी उत्पन्न करने के लिए घर्षणात्मक हलचल पैदा करने के लिए आरम्भ किया जाता है।

हमारा रक्त एक अच्छा ऊष्मा वाहक है। ताप को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के लिए रक्त संचार पद्धति की द्रुतगामिता ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा करती है। यह रक्त दौड़ता न हो तो गर्मी जहाँ बनती है वही बनी रहती। ताप उत्पन्न करने वाले अवयव जलने लगते और शेष को शीत निवारण कठिन पड़ जाता। रक्त दौड़ने का ही काम ही नही करता, वह स्वयं गर्मी भी पैदा करता है और गरम भी रहता है। उसकी यह विशेषता हीटर और कूलर के दोनो प्रयोजन पूरे करती है। जब देह को गर्मी लगती है, तो रक्त की दौड़ शरीर से गर्मी बाहर फेकने लग जाती है और जब ठण्ड प्रतीत होती है तो यह गर्मी भीतर संचित रहकर अंगो को गरम करती है। गर्मी मे पसीना निकलना शीतलता उत्पन्न करता है। शीत मे ताप संचय का क्रम चलता है और अपना रक्त ही आवश्यक गर्मी की व्यवस्था बना देता है।

शरीर का ऊष्मा संचालन केन्द्र मस्तिष्क नहीं वरन् रीढ की हड्डी के ऊपर मस्तिष्क के नीचे स्थित है। यह स्व संचालित है। रक्त निरन्तर इसके चारों ओर बहता रहता है। रक्त प्रवाह का नियन्त्रण भी यहीं से होता है। किस अंग को कितना रक्त आवश्यक है, उसका लेखा-जोखा और वितरण प्रबन्ध करना इसी केन्द्र का काम है। बाहरी सर्दी-गर्मी बढ़ने पर यह ताप नियन्त्रण केन्द्र विशेष रूप से सक्रिय होता है और परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढालकर सारे शरीर की स्थिति ऐसी बना देता है, जिसके आधार पर शीत-ताप की घट-बढ का सामना किया जा सके। सारे शरीर में फैले हुए—त्वचा के साथ गुँथे हुए, पतले रेशों जैसे सचेतन ज्ञान तन्तु— इस केन्द्र को शीत-ताप की स्थिति की जानकारी निरन्तर पहुँचाते रहते हैं। वह निर्णय करता है कि परिस्थिति का सामना करने के लिए किस अवयव को क्या करना चाहिए। इसका निर्देश सेना संचालक की तरह होता है, जिसे अवयव तत्काल शिरोधार्य करते हैं। सचेतन मस्तिष्क को अन्तरंग की इस महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का पता भी नहीं चलता पर अचेतन निरन्तर वह व्यवस्था जुटाता रहता है जिससे जीवन संचार की सारी गतिविधियाँ भली प्रकार सम्पन्न होती रहें।

यह ऊष्मा संचालक नाड़ी संस्थान इतना संवेदनशील है कि डाक्टर लोग आपरेशन के समय रीढ की हड्डी में सुई लगाकर इसे किंचित अचेत कर देते हैं। बस बात की बात में देह सुन्न हो जाती है। प्रयोगशालाओं में इस केन्द्र की छेड़-छाड़ से कैसी जादू जैसी प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं यह दिखाया जाता है। किसी पशु का यह केन्द्र विद्युत संचार करके तनिक-सा उत्तेजित कर दिया जाय तो वह घोर शीत की स्थिति में भी गर्मी से व्याकुल हो उठेगा। इसके विपरीत यदि प्रचण्ड गर्मी की स्थिति में उस केन्द्र को शिथिल कर दिया जाय तो प्राणी ठण्ड से काँपने लगेगा।

मनुष्य शरीर सामर्थ्यों का पुंज है। उसमें प्रगति की समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। यदि उन शक्ति स्रोतों को समझ लिया जाय और प्रयत्नपूर्वक आत्मोन्नति के लिए कटिबद्ध हुआ जाय, तो प्रतीत होगा कि प्रगति के लिए आवश्यक वे सभी विशेषताएँ अपने भीतर विद्यमान हैं, जिनका पहले अभाव प्रतीत होता था।

विचारशील लोग प्रगति के साधन बाहर नहीं ढूँढते वरन् भीतर खोजते हैं। उनके दोष-दुर्गुण सुधारते हैं और अस्त-व्यस्त स्वभाव एवं समयक्रम को इस प्रकार क्रमबद्ध करते हैं कि अभीष्ट दिशा में बढ चलने का सहज ही पथ-प्रशस्त होता चला जाता। भाग्योदय की समस्त सम्भावना मनुष्य के परिष्कृत व्यक्तित्व में सन्निहित रहती है। जिसने इस तथ्य की वास्तविकता समझ ली उसे सबसे पहले अपने को सम्भालने, सुधारने पर ध्यान करना पड़ता है।

जहाँ प्रगति की अगणित सम्भावनाएँ अपने भीतर विद्यमान हैं, वहाँ यह भी एक भारी रहस्य है कि अवरोधों को, प्रतिकूलताओं को सहन करने की भी अपने में अनन्त सामर्थ्य मौजूद है। शरीर और मन की बनावट कुछ ऐसी विचित्र है कि उसे साधारण आघात-अवरोध झुका नहीं सकते। हिम्मत के धनी और धैर्यवान व्यक्ति मानसिक सन्तुलन बनाये रहते हैं और आगत संकटों से दिल्लगी-मजाक करते हुए आगे का रास्ता बनाते रहते हैं। मनस्वी व्यक्ति को कोई विपत्ति झुका नहीं सकती। संकट सभी पर आते हैं। वे सदा जमे ही नहीं रहते, वरन् उड़ते हुए बादलों की तरह टलते-बदलते रहते हैं। आज जो विपत्ति आई है, कल उसका हल भी सामने आयेगा जिनका यह विश्वास है, उन्हें देर तक प्रतिकूलताओं से खिन्न नहीं रहना पड़ता। एक रास्ता बन्द होने पर वे दूसरी राह खोज निकालते हैं।

मन की तरह शरीर की रचना भी ऐसी भी है कि साधारण बीमारियाँ या दुर्घटनाएँ कुछ बहुत अनर्थ नहीं कर सकतीं। तितीक्षा शक्ति अपनी काया में इतनी अधिक सँजोई हुई है कि मृत्यु जैसा संकट उत्पन्न होने पर भी जीवन रक्षा की आशा की जा सकती है। विधाता ने यह काया काँच की नहीं बनाई, जो जरा-सा आघात लगने पर टूट-फूट जाय। सच तो यह है कि यह अष्टधातु की बनी है और इस अन्दाज से विनिर्मित हुई है कि बड़े से बड़े आघात सह सके। हमें विपत्तियाँ नहीं मारतीं, मारती है बुजदिली और पस्तहिम्मती। जो डरते हैं, वे मरते हैं। घबराहट का प्रभाव पेट में छुरा घोंपे जाने से अधिक बुरा होता है। छुरेबाजी के शिकार दर्जनों घावों को सहन करके अस्पताल से हँसते-कूदते बाहर निकलते हैं जबकि घबराने वाले को एक फुन्सी ही भय और आतंक का कारण बन जाती है और प्राण लेकर हटती है।

तितीक्षा शक्ति बढ़ाने पर भारतीय धर्म में बहुत जोर दिया गया है। तप साधनाओं में अधिकतर का उद्देश्य तितीक्षा ही है। कष्ट की स्थिति आने पर भी म[illegible] को असन्तुलित न होने देने का अभ्यास ही तप साध[illegible] का मूलभूत प्रयोजन है। व्रत, उपवास, माघ स्नान, [illegible] तपना, मौन, कठोर आसन, रात्रि जागरण आदि के [illegible] इस अभ्यास की परिपक्वता ही प्रयोजन है, जिसके [illegible] कठिन समय आने पर हिम्मत न हारने का मनो[illegible] यथा-स्थान बना रहे।

दुर्बलता शरीर में नहीं मन में है। यदि म[illegible] [illegible] शरीर के बारे [illegible] सँभाले-सँजोये रह[illegible] सहज ही [illegible] [illegible] कहा जा स[illegible] परिस्थिति [illegible] की [illegible]

भगवान ने हमे इतना समर्थ और सहन शक्ति सम्पन्न शरीर दिया है। यह अपना काम है कि उसकी सुदृढ़ता को अनुपयुक्त आहार-विहार से नष्ट करने पर उतारू न हो। यह अपना काम है कि अवरोधो से लड़ने की क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए तितीक्षापरक तप साधनाये करते रहे। यह अपना काम है कि मनोबल ऊँचा रखे, हिम्मत न हारे, निराशा को पास न फटकने दे और एक रास्ता बन्द होने पर दूसरा रास्ता खोजे, खोले और यदि मानसिक दुर्बलता से बचा रहा जाय तो शरीर हारी-बीमारियो से लड़ते-झगड़ते लम्बी जिन्दगी जी सकता है और अवरोधो से दिल्लगी-मजाक करते हुए सफल और समर्थ जीवन की दिशा मे बढ़ता रह सकता है।

संकल्प शक्ति के अद्भुत चमत्कार

दक्षिणी अटलांटिक महासागर के कुछ नाविक अपनी नौकाये जलतरण कराने वाले थे, तभी उन्होंने देखा एक मादा कछुआ, जिसकी लम्बाई लगभग पाँच फुट और वजन कोई ९०० पौण्ड था, एसंशन द्वीप की ओर जा रही है। 'एसंशन' कुल पाँच मील क्षेत्रफल का छोटा-सा द्वीप है। नाविक कछुये के पीछे चलते चले गए। मादा टापू पर पहुँची। एक छोटा-सा गड्ढा खोदा उसमे १०० अण्डे दिए और उन्हे रेत से ढँक दिया। अण्डो को सुरक्षित जानकर वह वहाँ से फिर लौट पड़ी। अब वह हजार मील की यात्रा कर ब्राजीलियन समुद्र तट पर पहुँच गई। इधर अण्डे अपने आप पकते रहे।

ढाई-तीन वर्ष बाद वही मादा फिर गर्भवती हुई और फिर उसी 'एसंशन' द्वीप की ओर चल पड़ी। ठीक उसी दिशा मे चलती हुई वह मादा कछुआ उसी गड्ढे के पास पहुँची, फिर वही अण्डे दिए। बिना किसी यन्त्र के इतनी दूर के स्थान तक पहुँचना आश्चर्य का विषय था। जब वैज्ञानिको ने उसकी खोज की तो उन्होंने और भी आश्चर्यजनक रहस्यो का पता लगाया।

उन्होंने देखा कि कछुआ अण्डे रखने के इस स्थान को एक विशेष प्रकार की गंध और विद्युत चुम्बकीय तरंगो से पहचानती है, यह तरंगे उसके मस्तिष्क से निकलती थी और उसे न केवल उस स्थान तक पहुँचा देती थीं, वरन् उसकी विद्युत चुम्बकीय शक्ति के द्वारा वह अपने इन अण्डों को हजार मील की दूरी होने पर भी पकाती रहती थी। यदि यह मादा मर जाय तो फिर उसका दिया हुआ एक भी अण्डा न पकेगा। मानसिक शक्ति का यह चमत्कार पहली बार वैज्ञानिकों की समझ मे आया।

शरीर मे स्थित आत्मा के व्यवहार के लिए यद्यपि पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है। पर वह स्थूल होने से केवल भौतिक प्रयोजन ही पूरा करती है। इनकी क्षमता सीमित है। ग्यारहवी इन्द्रिय शक्ति या मन है। जिसके द्वारा आत्मा अपनी इच्छाये और संकल्प व्यक्त करती है। यह मन इतनी जबर्दस्त शक्ति है कि आत्मा को भी इच्छाओ के जाल मे बाँधकर लोक-लोकान्तरो मे बाँधे फिरती है। मन की इस चचलता को वश मे करना संकल्प के ही बूते की बात है। सकल्प आत्मा की जय शक्ति है। आत्मज्ञ पुरुष इसीलिये संकल्पवान भी होते है या यो कहे कि सकल्पशील अर्थात् प्रत्येक सत्य का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले ही आत्मा को जानते है, "संशयात्मा विनश्यति" अर्थात् जिनके संकल्प डाँवाडोल होते है, वे तो अपना ही विनाश करते है।

भारतवर्ष में ऐसी अनेक कथाएँ प्रचलित है, जिनमे किन्ही महापुरुषो द्वारा वर्षा रोक देना, बहते हुए जल-प्रवाह को खण्डित कर देना, पत्थर खण्ड को उठा देना आदि का व्याख्यान होता है। सर आडियार ने एक दक्षिणी साधु गोविन्द स्वामी का वर्णन करते हुए लिखा है कि—जल से भरे हुए घड़े को जब स्वामी जी आदेश देते तो वह पृथ्वी से डेढ़ फुट तक ऊँचा उठ जाता था। महर्षि गालब ने प्यासे आश्रमवासियो को मरते देखा तो पर्वत को फाड़कर जल देने का आदेश दिया। कहते हैं उन्होने जैसे ही अपना संकल्प व्यक्त किया, पहाड़ के भीतर से जलधारा फूट निकली।

यह स्थान जयपुर मे आज भी 'गलता जी' के नाम से बना हुआ है। पहाड़ की अदृश्य खोहो से वर्ष भर जल निःसृत होता रहता है। पहाड़ के ऊपरी सिरे से कहाँ से जल निकलता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है पर यह है सत्य कि वहाँ वर्ष भर पानी निकलता रहता है। हजारो भक्त दर्शनार्थी प्रति दिन वहाँ जाते और स्नान करते है।

इन गाथाओ को जब तक भारतीय योगियो तक ही सीमित माना गया, तब तक वैज्ञानिक और दूसरे पढ़े-लिखे तर्कशील लोग उसे कपोल-कल्पना कहते रहे पर पिछले दिनो जब रूस की एक महिला ने भी अपनी इच्छाशक्ति का प्रदर्शन किया और केवल अपनी दृढ़ इच्छा से घड़ी की सुइयो को आगे-पीछे कर दिया, तब वैज्ञानिको का ध्यान तेजी से आकृष्ट हुआ और उन्होने खोज करके यह पाया कि जिस समय एकाग्र भाव से किसी क्रिया का चिन्तन किया जाता है, तो मन से विद्युत चुम्बकीय तरगे फूट पड़ती है। ठीक विद्युतधारा के समान इसमे भी धन और ऋण (पॉजिटिव एण्ड निगेटिव) आयन होते है। इन तरंगो मे इच्छाशक्ति के अनुरूप लम्बाई कुछ फीट से हजारों मील दूर तक की हो सकती है, जितनी तीव्र इच्छाशक्ति होगी, वह उतनी ही दूरवर्ती पदार्थ को भी प्रभावित कर रही होगी। इन प्रारम्भिक जानकारियो को लेकर आज पश्चिमी देशो मे व्यापक खोज आरम्भ कर दी गई है, जबकि हमारे देशवासी ध्यान की एकाग्रता जैसी महत्त्वपूर्ण योग प्रणाली को भूलते जा रहे है।

संकल्प आत्मा की शक्ति है, जिसका व्यवहार मन द्वारा स्फुट कार्यों मे होता रहता है और उसके लाभ भी वैसे ही फुटकर मिलकर रह जाते है। साधारण लोगों को किसी भी उद्यम-उद्योग मे इसीलिए कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल पाती, क्योंकि उनका ध्यान विशृंखलित और अधूरा होता है पर वही काम जब दत्तचित्त पूरे मन से किया जाता है, तो मानसिक विद्युत तेजी से प्रकीर्ण होने लगती है और उस कार्य से सम्बन्धित अनेको ऐसी सूक्ष्म बाते सूझने लगती हैं, जिनसे सफलता की सम्भावना भी बहुत अधिक बढ़ जाती है।

आत्मा यदि यह गुण छोड़ दे तो शरीर जीवित न रहे, इसलिए विचार प्रणाली अत्यावश्यक है। मस्तिष्क सम्बन्धी आपरेशनो की सबसे बड़ी बाधा यही है कि उससे लगातार उत्पन्न होने वाली विद्युत तरंगें रुक जाती है। इन तरंगो को रुकना नही चाहिए और न ही उसमे गड़बड़ी आनी चाहिये। आशंकित मस्तिष्क में विद्युत प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है अर्थात् सोचने, समझने की शक्ति का ह्रास हो जाता है पर यदि मन को इतना वशवर्ती बना लिया गया हो कि यह विद्युत धारा अपनी ही दिशा मे बहती रहे, चोट या घाव की ओर वह न मुड़े, तो उसे कष्ट और पीड़ा का भान ही न हो। न्यूकैसिल के योगी ने कुछ दिन पूर्व सलीब पर जीवित चढ़कर यह दिखा दिया कि कष्ट विचार प्रणाली की अस्त-व्यस्तता मात्र है, यदि अपना संकल्प दृढ़ हो तो उसे किसी भी प्रिय वस्तु पर आरोपित करके अप्रिय कल्पना को ही ठुकराया जा सकता है।

लोकमान्य तिलक के अँगूठे का आरेपशन होना था। डॉक्टर क्लोरोफार्म लेकर पहुँचे। "इसे सुँघाकर बेहोश करेंगे, ताकि आपरेशन मे आपको कष्ट न हो।" डॉक्टरो के यह कहने पर तिलक हँसे और बोले—"उसकी आवश्यकता नहीं, तुम मुझे गीता की एक प्रति ला दो।" डॉक्टरो ने उन्हे गीता दे दी। कुछ ही क्षणों मे गीता पढ़ने मे वे इस तरह तल्लीन हो गये कि उन्हे कब आपरेशन हो गया, इसका पता ही न चला।

अपना संकल्प इतना दृढ़ हो कि हम कोई और वस्तु सोचे ही नही, तो अनेक निराधार भय और कल्पनाओ को दूर किया जा सकता है। एक ही दिशा का सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान भी प्राप्त किया जा सकता है।

अब इस बात को डाक्टर और वैज्ञानिक भी जानने लगे है। उनकी जानकारी तो यहाँ तक पहुँच चुकी है कि यदि किसी व्यक्ति का अपना मनोबल काम न दे तो उसे कछुये की तरह का कोई अधिक संकल्पशील व्यक्ति सम्मोहित (हिप्नोटाइज) करके भी काम निकाल सकता है। इण्डियानापोलिस (अमेरिका) के एक अस्पताल मे एक ऐसा व्यक्ति आया जिसके सिर में गोली लगी थी। व्यक्ति बहुत घबराया हुआ था, इसलिए सीधे मस्तिष्क का आपरेशन नहीं हो सकता था। फलस्वरूप उस व्यक्ति को सम्मोहित करके गहरी निद्रा में लाया गया। निद्रा की अवस्था में ज्ञान-शून्य विचार शृंखला चलती रहती है, इसलिये मृत्यु का भय नहीं रहता। आपरेशन अच्छी तरह सम्पन्न हुआ। अन्त में डाक्टरों ने लिखा कि ऐसी सुविधा उन्हें और किसी भी आपरेशन में नहीं हुई।

यह संकल्प शक्ति अत्यन्त स्थूल लाभ है। ध्यान और जप के माध्यम से, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि योग साधनाओं के माध्यम से सिद्ध होने वाला संकल्प तो इतना सूक्ष्म और शक्तिशाली है कि आत्मा उससे अपनी घोर से घोर शत्रुओं से रक्षा, प्रहार, दूर-दर्शन, दूर श्रवण आदि अलौकिक प्रयोजन सम्पन्न कर सकती है। यह आत्मा अपना वैभव संकल्प शक्ति द्वारा ही प्रकट करता है। इस अनुभव के आधार पर ही वेद में कहा गया है—

यो वः शुष्मो हृदयेष्वन्तराकूतिर्या वो मनसि प्रविष्टा।

तान्सीवयामि हविषा घृतेन मयिसजाता रमतिर्वो अस्तु॥

—अथर्ववेद, ६/७३/२.

अर्थात्—हृदय का बल और मन का संकल्प एक कार्य मे लगते हैं तो प्रत्येक कार्य उत्तम रीति से पूर्ण हो सकता है। हृदय और मन का एक भाव होकर सबके मन में स्नेहपूर्ण भाव जगने लगे तो लोगो मे जो जातीयता होती है, वह विलक्षण संघ बल उत्पन्न करती है। अर्थात् संकल्प-शक्ति से ही राष्ट्र, जाति और संस्कृति अजेय बनते है।

सफलता की कुंजी है : संकल्प शक्ति

सृष्टा ने मनुष्य को अपनी ही अनुकृति का बनाया है और वे समस्त विभूतियाँ उसके भीतर कूट-कूटकर भर दी है जिन्हे जगाने और सदुपयोग कर सकने की क्षमता वाले पूरी तरह लाभान्वित होते और महामानवों जैसा अनुकरणीय जीवन जीते है, वे जैसा भी चाहते है, वैसी ही परिस्थितियाँ अपने लिए गढ लेते है। बहुधा लोग समझते है कि भली-बुरी परिस्थितियो के लिए विधाता, ग्रह-नक्षत्र आदि कोई और उत्तरदायी है, पर तथ्य दूसरा ही है। मनुष्य के भीतर शुभ-अशुभ सब कुछ भरा पड़ा है। उसमें से इच्छानुसार कुछ भी चुना, अपनाया और बढ़ाया जा सकता है। यह अपनी उसी इच्छा-आकांक्षा पर निर्भर है जो कल्पना, कामना से ऊँचे स्तर का ही नहीं, साहस, विवेक और कर्मनिष्ठा से भी भरी-पूरी हो। इसी मनःस्थिति को 'संकल्प' कहते है। महानता का उच्च पद प्रदान कर सकने मे सदुद्देश्यों के लिए 'संकल्प' करने से बढ़कर और कोई क्षमता इस संसार मे है नही। कठिनाई तभी तक रहती है, जब तक अपना निश्चय दुर्बल है। यदि महानता की दिशा मे चल पड़ने के लिए

संकल्पपूर्वक निर्णय ले लिया जाय और तद्नुरूप अपनी गतिविधियो को भी बलपूर्वक आदर्श के साथ जोड़ दिया जाय तो दिशा मिल जाती है। धारा बहने लगती है और उस क्रमिक गमन के फलस्वरूप श्रेष्ठता-महानता के उच्च पद तक जा पहुँचना सरल हो जाता है।

योगवाशिष्ठ ३/७०/३० में उल्लेख है कि सब कुछ अपने संकल्प द्वारा ही साधित होता है। छोटा या महान बन सकना उसी पर निर्भर है। संकल्प ही व्यक्ति के समूचे ढाँचे को विनिर्मित करते हैं। इसी आत्मनिर्माण के आधार पर परिस्थितियो का निर्माण होता चला जाता है। शास्त्र कहते है कि ब्रह्म ने संकल्प किया कि अकेलापन उन्हे अखरता है, वे अपने को अनेक बनाकर अपने आपके साथ क्रीड़ा-कल्लोल किया करेगे। **'एकोऽहंबहुस्याम'** की श्रुति इसी रूप से इस नियति की उत्पत्ति का वर्णन करती है। जीवविज्ञानी अपने समस्त अन्वेषण के आधार पर चेतना के विकास का एक ही आधार बताते हैं कि प्राणी के भीतर आकांक्षा उत्पन्न हुई और अनुकूल कल-पुर्जे उनके शरीर तथा मन मे उगते चले आये। आकांक्षा मे असाधारण चुबकत्व होता है। उनकी आकर्षण शक्ति अपने क्षेत्र मे ग्रह-तारको को परस्पर बाँधे रहने वाली चुम्बकीय शृंखला से कम सामर्थ्यवान् नही है। प्राणियो मे जब-जब जितने परिमाण मे आकांक्षाएँ, जितनी अधिक आकुलता के साथ उत्पन्न हुई हैं, तब-तब उतनी ही मात्रा में अनुकूल क्षमता भीतर से विकसित हुई है, पुरुषार्थ जागा है और उसी अनुपात से बाह्य जगत से साधन-सामग्री क्रमशः खिंचती-घिसटती चली आयी है। प्राणि जगत का यह संक्षिप्त तथ्य इतिहास है। विकास के गर्भ मे उफनते इसी आधार को हम हर क्षेत्र की प्रगति मे सँजोया-समाया देखते है।

जीवशास्त्रियो के अन्वेषण इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि इस धरती पर जब जीवन आरम्भ हुआ तब वह एककोशीय अमीबा जैसी सूक्ष्म प्राणियो की स्थिति में था। उनमे से जिनमें प्रगति की जितनी आकांक्षा भड़की, संकल्प उभरा उसी अनुपात से उनकी शारीरिक बनावट और मानसिक क्षमता विकसित होने लगी और वे अपनी मूल स्थिति की अपेक्षा तेजी से अधिक साधन सम्पन्न बनने लगे। अपने पुरुषार्थ से उन्होने सुविधा-सामग्री खोजी और अनुकूल परिस्थितियो का सृजन किया। जिन प्राणियो मे यह आकांक्षा-संकल्प क्षमता जितनी तीव्र थी, उन्हे उसी अनुपात से आगे बढ़ने और साधन सम्पन्न बनने का अवसर मिलता चला गया। जिनमें उत्साह और साहस कम था, उनकी प्रगति उतनी ही मंद बनी रही। साधनो की न सृष्टि आदि मे कमी थी, न अब है। प्रश्न पुरुषार्थ का था, संकल्प का था। नियति ने आरम्भ से ही प्राणियो को सुविधा प्रदान करने में उदार नीति अपनायी है और वह अन्त तक अपने उदार उपक्रम को अपनाये रहेगी। जीवाणु समष्टिगत चेतना का प्रतिनिधि होने के कारण जन्मजात रूप से अधिपति और अधिकारी है। प्रकृति का परमाणु सदा से उसका इच्छानुवर्ती, अनुचर रहा है और सदा तक अपनी निष्ठावान स्वामिभक्ति का परिचय देता रहेगा। जीवन की सत्ता इस सृष्टि मे सर्वोपरि है, उसकी माँग यदि गहरी हो तो उसकी पूर्ति मे प्रकृति बाधक नही बनती। नियति रोड़े नही अटकाती। मात्र साहस की जाँच-पड़ताल करने के लिए अड़चनो के चौकीदार कुछ-कुछ पूछताछ और रोक-टोक करते रहते है। परिस्थितियो ने कभी किसी मनस्वी के मार्ग मे इतनी कठिनाई उत्पन्न नही की, जिसके कारण उसे अपना संकल्प बदलने और साहस छोड़ने को विवश होना पड़े।

यह जीव-जगत की प्रगति का विकासवादी शोधकर्ताओ द्वारा किया गया पर्यवेक्षण और निकाला हुआ निष्कर्ष है। प्रगति का कारण परिस्थितियो को समझा भले ही जाता हो, पर तथ्य तक पहुँचने वाले जानते है कि चमत्कार उत्पन्न करने की परिपूर्ण क्षमता मनःस्थिति मे ही भरी पड़ी है। जड़-जगत की मूल सत्ता "एनर्जी" है। जीव-जगत मे यही कार्य संकल्प शक्ति करती है। प्राणियो का भूतकाल तत्त्वतः उनकी तत्कालीन मनःस्थिति का ही लेखा-जोखा है। आज भी जो जिस स्थिति मे रह रहा है, वह अपने ही संकल्पो का दण्ड-पुरस्कार भोगता है। भविष्य में भी जिसका जो बनेगा, उसमे उथली मान्यताओं, साधनों और परिस्थितियो को श्रेय या दोष देते रह सकते हैं। पर वस्तुतः जो कुछ होने जा रहा है, उसमे मनुष्यो की भले-बुरे संकल्प-आकांक्षाएँ ही विकास या विनाश के आधार खड़े करेगी। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। इस सत्य के पीछे एक ही तथ्य काम करता है कि संकल्प शक्ति की प्रचण्ड ऊर्जा से वह सुसंपन्न है। यह ऊर्जा इतनी प्रखर है कि सामान्य दीखने वाला व्यक्ति उसके सहारे महामानवो की ऐतिहासिक भूमिका निभाने मे सहज ही समर्थ बन जाता है।

इसका एक निकटतम और हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष प्रमाण अपना युग निर्माण अभियान है। उसका शुभारम्भ कैसे हुआ ? इसका आदिम इतिहास बहुत कम लोगो को मालूम है। एक तप-पूत व्यक्ति के अंतःकरण में युग परिवर्तन की, नव निर्माण की, मनुष्य में देवत्व और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की स्फुरणा अवतरित हुई। अवतरित इस अर्थ मे कि उसके साथ प्रचण्ड उत्साह, साहस और दृढ़ निश्चय की समन्वित शक्ति भी जुड़ी हुई थी। यह स्फुरणा देर तक अपनी अवतरण भूमि पर निःचेष्ट नहीं बैठी रही, वरन् उसने अग्रगमन की, गतिशील होने की ऐसी हलचल उत्पन्न कर दी जिसे दूसरे शब्दों में आकुलता कह सकते है। यह आकुलता न तो अन्धी थी और न अनिश्चित। उसने अपना एक स्वरूप और कार्यक्रम बनाया। दिशाधारा का निश्चय किया। उसी की परिपक्वता का प्रमाण यह युग निर्माण अभियान है। इस क्रान्तिकारी तूफान का प्रथम दर्शन अपने सर्वविदित बहुचर्चित "युग निर्माण के सत्संकल्प" मे हुआ। सर्वप्रथम यही है, अपने मिशन अभियान का

अरुणोदय प्रभात दर्शन। इसके बाद का सारा घटनाक्रम लगभग वैसा ही है जैसा कि मत्स्यावतार की विशाल विस्तार प्रक्रिया, जिसे परिजन प्रत्यक्ष देख ही रहे है। विचारपूर्ण दृढ निश्चय जब कर्मनिष्ठा के साथ जुड़ते है तो उनकी अग्रगामी गतिशीलता आँधी-तूफान जैसी होती है। वह अभावो और अवरोधो को उखाड़ती-पछाड़ती आगे बढ़ती है। उसका रास्ता रोक सके, ऐसा कोई दुर्गम और दुस्तर अवरोध इस संसार मे है नहीं। ईश्वर के ज्येष्ठ पुत्र का ही नाम मनुष्य है। उसमे अपने पिता की सारी क्षमताएँ बीज रूप मे विद्यमान है। जब परमात्मा के सकल्प से सृष्टि का सृजन हो सकता है तो जीवात्मा के प्रखर परिवेश मे काम करने वाले देवताओ का संकल्प क्यो अधूरा होगा ?

प्रगति की दिशा मे आगे बढ़ने तथा सफलता पाने के लिए छोटे-बड़े सभी कामो मे संकल्पो की आवश्यकता पड़ती है। महान कार्यों मे तो इस उपक्रम को और भी अधिक दृढ़तापूर्वक अपनाना पड़ता है। बीजारोपण की उपमा संकल्प से दी जा सकती है। संकल्प का तात्पर्य कल्पना की रंगीन उड़ानो से ऊँचा उठकर किसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सुनिश्चित निर्धारण करना है। इसके उपरान्त उसे पूरा करने के लिए जो लम्बी मंजिल पार करनी है, जो साधन जुटाने है, उनका स्वरूप सामने आता है। पर प्रायः लोग अनेक मनोरथो के लिए मन चलाते. रहते है, जिन्हे मनोकामना कहा जाता है। उसमे कल्पना भर होती है, सुखद प्रतिफल का लालच भर मनः क्षेत्र मे छाया रहता है। रंगीन कल्पनाओ की उड़ाने उड़ते रहने वाले ललचाते तो रहते है, पर अभीष्ट को प्राप्त करने का कोई आधार नही पाते और इच्छा पूर्ण न होने का रोना रोते रहते है। इसका कारण एक ही है कि इच्छा मात्र निष्प्राण-निर्जीव इच्छा बनकर रह गयी। वह सकल्प के रूप मे विकसित न हो सकी, अबकि सकल्प के साथ मानसिक साहस और साहसिक पुरुषार्थ जुड़ जाने पर साधन जुटने और सहयोग मिलने का सिलसिला इस प्रकार चलने लगता है मानो प्रगति पहले से ही सुनिश्चित बनी हुई हो। लोग इसी को दैवी वरदान, परिस्थितियो का अनुदान, विधि-विधान आदि न जाने क्या-क्या नाम देते है, पर असल मे वे और कुछ नही मात्र प्रचण्ड सकल्प के फलितार्थ भर होते है। संकल्पवान हर परिस्थिति का सामना करने के लिए साहस उभारते हैं। आन्तरिक और परिस्थितिजन्य अवरोधो से जूझने का पराक्रम करते है। फलतः असमंजस हटता है और पुरुषार्थ की गतिशीलता प्रखर होती चली जाती है। लक्ष्य तक पहुँचने का यही राजमार्ग है। सुप्रसिद्ध मनीषी विक्टर ह्यूगो के शब्दो मे 'मनुष्यो मे शक्ति की कमी नही होती, होती है तो केवल संकल्प की कमी। अगर वह सकल्प कर ले तो क्या कुछ नहीं कर सकता ? नैपोलियन के अनुसार इस प्राणवान संकल्प शक्ति के सामने सचमुच ही असम्भव नाम का शब्द उसके अपने शब्द कोष मे है ही नहीं।

संकल्प का अपना विज्ञान है। उसे कर्म का बीजारोपण कह सकते है। मनुस्मृति, २/३ मे कहा गया है—

संकल्पः मूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

अर्थात् इच्छा का मूल संकल्प है। यज्ञ संकल्प से होते है। सब व्रत, यम, धर्म आदि संकल्प से ही होते हैं। यही कारण है कि धर्म परम्परा मे संकल्प को प्रमुखता दी गयी है। संध्यावंदन से लेकर ब्रह्मभोज तक के धर्मकृत्यो के आरम्भ मे पुरोहित अपने यजमानो से संकल्प कराते हैं। हाथ मे जल, अक्षत, पुष्प लेकर अमुक धर्मकृत्य संपन्न करने की घोषणा को संस्कृत भाषा की शब्दावली में जोर-जोर से उच्चारित किया जाता है। इससे वह कृत्य प्रतिष्ठा का प्रश्न बन जाता है। पूर्वजो का उल्लेख करके उस संकल्प के साथ उनकी प्रतिष्ठा भी जोड़ ली जाती है। संकल्प विस्मरण न होने लगे, इसलिए पुरोहित उस उद्घोष के साथ वंश परम्परा, गोत्र, वर्तमान तिथि, मास का भी हवाला देते है। इतना कर लेने पर एक मनोविज्ञान सम्मत सुदृढ़ मन स्थिति उत्पन्न होती है। सकल्प कृत्य न करने पर धर्मानुष्ठान अधूरे माने जाते है। श्रावणी पर्व पर जो उपक्रम किया जाता है, उसमे हेमाद्रि संकल्प ही प्रधान है। अपने गायत्री महायज्ञो मे भी संकल्प घोषणा की परम्परा को यथावत् मान्यता दी गयी है। श्रेष्ठता की दिशा मे बढ़ते और किसी महान प्रयास को सफलता के लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए संकल्प कृत्य नितांत आवश्यक है।

श्रेष्ठता की साधना 'संकल्प' से ही सम्भव होती है। संकल्प को ही व्रत कहते है। व्रतधारी ही तपस्वी और मनस्वी कहलाते है। लक्ष्य की ओर शब्दबेधी बाण की तरह सनसनाते हुए चल पड़ने की क्षमता उन्ही मे होती है। आगरूक पुरुषार्थ का प्रथम चरण सकल्प ही है। अतएव हममे से प्रत्येक को प्रस्तुत विषम घड़ी मे कुछ न कुछ सृजनात्मक संकल्प अवश्य करना चाहिए। 'संकल्प' ही ऐसा मोड़ है, जिसमे श्रद्धा को कर्मठता मे परिणत हुआ देखा जा सकता है। कल्पना, मान्यता, विचारणा, श्रद्धा आदि की परिधि मस्तिष्क के छोटे से क्षेत्र मे ही उमड़ती-घूमती रहती है, किन्तु संकल्प को बिजली की तरह कड़कते और बादल की तरह बरसते देखा जाता है। बीच-बीच मे सकल्प की परिपक्वता की परीक्षा तो छुट-पुट कठिनाइयो के माध्यम से होती रहती है और सोने की तरह तपाये जाने की विपत्ति भी झेलनी पड़ती है, पर इससे हमारा मनोबल टूटना नहीं, वरन् और अधिक प्रखर होना चाहिए और अपने गौरव की रक्षा के लिए स्वाभिमानी, शूर सैनिक की तरह बड़े से बड़ा दाँव लगाने मे कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

विशेष दैवी अनुग्रह ऐसे ही लोगो को मिलते है। महाकाल की युगांतरीय चेतना जिन्हे नवसृजन के लिए अनुदान प्रस्तुत करने की प्रकाश प्रेरणा दे रही है, उन्हे समय निरर्थक नही गँवाना चाहिए और अपनी सजीवता का परिचय देना चाहिए। इसका एक ही उपाय है, एक ही प्रमाण है—देव संस्कृति के पुनर्जीवन के सृजन प्रयोजनो के प्रस्तुत कार्यक्रमो को पूरा करने का सकल्प करना चाहिए और उसे पूरा करने के लिए तत्परतापूर्वक जुट जाना चाहिए।

यदि दृढ़ हो संकल्प बल तो

व्यक्ति और समाज मे यदि दृढ इच्छाशक्ति हो, तो कई बार वे उन हानियो को टालने मे सफल होते है, जो न सिर्फ उनके लिए, वरन् पर्यावरण के लिए भी घातक बन सकते थे।

ऐसा ही एक उदाहरण कर्नाटक के हुन्सूर गाँव के निवासियो ने प्रस्तुत किया। ज्ञातव्य है कि उक्त राज्य के शिमोगा जिले का सागरजोग क्षेत्र कभी बहुत हरा-भरा था। वहाँ एक बड़े भाग मे जंगल स्थित था, जो अप्राप्य जड़ी-बूटियो एवं जीव-जन्तुओ से समृद्ध था। अपनी अद्भुत वन सम्पदा के कारण कभी उसकी बड़ी ख्याति थी, किन्तु समय के साथ-साथ जंगल घटता-मिटता गया। यह देखकर स्थानीय लोगो को बड़ी चिन्ता हुई। वे उसे बचाने के लिए तत्पर हुए। इसी का परिणाम आश्चर्यजनक सफलता के रूप मे हुन्सूरवासियो को मिला है और अब भी वहाँ एक छोटा; किन्तु सघन और हरा-भरा जगल सुरक्षित बचा हुआ है। इसे देखने के लिए देश-विदेश के पर्यावरण प्रेमी आते और उनके प्रयासो को सराहते नहीं अघाते है।

हुन्सूर ग्राम लगभग १५० परिवार का एक छोटा गाँव है। यहाँ के निवासी अधिकाशतः छोटे किसान और मजदूर है। वन्य रक्षा के लिए ग्रामवासियो की अपनी निजी व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत हर परिवार को बारी-बारी से निर्धारित अवधि तक उसकी सुरक्षा-व्यवस्था सँभालनी पड़ती है। इसमे चूक होने या मुस्तैदी मे कमी पड़ने पर जुर्माने का भी प्रावधान है। यह जुर्माना जगल की देख-रेख करने वाली समिति को प्राप्त होता है, जो समय-समय पर वन्य-विस्तार योजना पर खर्च होता रहता है।

समिति मे नौ सदस्य तथा एक अध्यक्ष होता है। गाँव के सभी वर्गो के प्रतिनिधि इसमे शामिल किये जाते है। किसी भी विवाद अथवा विषय मे समिति का निर्णय अन्तिम एव मान्य होता है। हर दो वर्ष पर समिति का नये सिरे से चुनाव एवं गठन होता है। इस चुनाव मे प्रत्येक बार नये भागीदारो की नियुक्ति की जाती है।

वन्य रक्षा सम्बन्धी समिति के अपने नियम है, जो हर ग्रामवासी पर समान रूप से लागू होते है। इस नियम के अनुसार हर परिवार वर्ष मे एक बार जंगल से ईंधन प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति को आवास निर्माण हेतु लकड़ी चाहिए, तो इसके लिए समिति से मंजूरी प्राप्त करनी पड़ती है। समिति इसकी जाँचकर यह पता लगाती है कि माँग कितनी सही और अनिवार्य है। माँग की वैधता साबित होने के बाद जगल का सर्वेक्षण किया जाता है और देखा जाता है कि बेकार लकड़ी कितनी है। इसमे से आवश्यकता भर प्रार्थी को दे दी जाती है। जंगल के उत्पाद जैसे-फल-फूल, जड़ी-बूटियाँ, शहद आदि के उपयोग के लिए हर ग्रामीण स्वतन्त्र होता है। इसके लिए किसी प्रकार की अनुमति की आवश्यकता नही पड़ती।

लगभग ५० हेक्टेयर मे फैले इस सघन वन का नाम 'हुन्सूर कानू' है। सन् १९६५ से पूर्व यह जगल हुन्सूर गाँव की सम्पदा थी। बाद मे सरकार ने उसे अपने कब्जे मे ले लिया। तत्पश्चात् अर्थलाभ की दृष्टि से उसका दोहन आरम्भ हुआ। उससे बहुमूल्य लकड़ियाँ काटी जाने लगी और विभिन्न प्रयोजनो के निमित्त उसका उपयोग होने लगा। लकड़ियाँ काटने के लिए निविदाएँ निकलने लगी और हर वर्ष उसे ठेकेदारो के अधीन कर सरकार पैसा कमाने लगी। अनेक वर्षों तक ऐसा होते रहने के कारण पेड़-पौधे घटने लगे। जंगल उजड़ने से ग्रामवासियो को गहरा आघात लगा। उनने सरकारी तन्त्र से लोहा लेने और बर्बादी से वन की रक्षा करने का संकल्प लिया। इसी के अन्तर्गत उनने ठेकेदारो का वन मे प्रवेश निषिद्ध घोषित कर दिया। इसके लिए सरकार और ग्रामीणो के बीच काफी सघर्ष हुआ, पर ग्रामवासियो की दृढता के आगे सरकार को झुकना पड़ा। परमिट बाद में रद्द कर दिया गया।

आगे भी समय-समय पर इस प्रकार के दृश्य उभरते रहे, पर हर मौके पर गाँव वालो के प्रबल प्रतिरोध के कारण वन की रक्षा होती रही। अन्ततः हारकर वन से छेड़-छाड़ करने की अपनी नीति को सरकार ने त्याग दिया और वन की सुरक्षा ग्राम समिति के सुपुर्द कर दी।

तब से लेकर अब तक यह जंगल हुन्सूर गाँव के अधीन फलता-फूलता रहा है। समय-समय पर प्रकृति प्रेमी और पर्यावरणविद वहाँ की यात्रा करते रहे है और उसकी सुषमा एवं ग्रामीणो के समर्पण की प्रशंसा मुक्त कठ से करते रहे है।

संकल्प यदि सबल हो और परिस्थितियो से हम हार न मान बैठे हो, जुझारूपन जीवित हो और जीवट अक्षुण्ण, तो प्रतिकूलता को अनुकूलता मे बदल लेना सम्भव ही नही, सरल भी बन जाता है।

संकल्प सिद्धि हेतु एक विज्ञान सम्मत प्रक्रिया

मन्त्र-जप को, व्रत-सकल्प को प्रबल-प्रखर बनाने का एक सशक्त माध्यम माना गया है। अतः भौतिक जीवन में उसकी आवश्यकता महसूस की जाती है। यो तो जपयोग कहने का तात्पर्य सामान्यता अध्यात्म साधना और ईश्वर-उपासना से लिया जाता है, पर जानने योग्य तथ्य यह है कि अध्यात्म क्षेत्र मे जितनी इसकी महत्ता, उपयोगिता है, उससे कोई कम भौतिक क्षेत्र नहीं है।

भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने मे भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है, कारण कि किसी व्यक्ति की सफलता, विफलता का मुख्य हेतु अस्थिर और अव्यवस्थित चित्त वृत्तियाँ होती है। जो इन्हे संयमित कर लेता अथवा शुभ-अशुभ, भाव-संकल्पो के आधार पर अच्छो को सुरक्षित रख बुरो को निकाल बाहर करता है, जीवन मे वही सफल हो पाता है। सामान्य जीवन मे जपयोग यही कार्य सम्पन्न करता है। वह अनावश्यक संकल्पो को शमित और शुभ संकल्पो को पोषण देकर सुदृढ बनाता और अन्तत· उसकी सिद्धि मे सहयोग करता है।

वस्तुतः मानवी चित्त भाव-संकल्पो का विशाल भाण्डागार है। उसमे अनेकानेक प्रकार के शुभ-अशुभ सकल्प भरे पड़े होते है, पर अधिकांश लोगो मे इसकी स्थिति अव्यवस्थित स्टोर रूम जैसी होती है। वे जिन सकल्पो को पोषण देकर उगाना-बढाना चाहते है, प्रायः वे अधिक समय टिक नही पाते और जिन्हे बार-बार हटाने-मिटाने की कोशिश करते है, वे स्थायी बने रहते है। इसी प्रकार जो बाते स्मृति मे लगातार बनी रहनी आवश्यक होती है, वह विस्मृत हो जाती है और अनावश्यक, अनुपयोगी बाते बरबस याद आती रहती हैं। ऐसे लोग किसी एक संकल्प पर अपने चित्त को स्थिर नही रख पाते। प्रयास तो करते है, पर अगले ही पल मे कई अन्य विचार उमड़ने-उमड़ने लगते है, जिससे आरम्भिक संकल्प गौण हो जाता है एवं क्षुद्र, लौकिक विचार प्रमुख वन जाते है।

ऐसे अस्थिर चित्त को एकाग्र करने का एक कारगर उपाय जप है। इसके माध्यम से अंत· के समस्त संकल्प-विकल्पो को निकाल बाहर कर मन को एक निश्चित वृत्ति मे लगाकर उसे उस उद्दण्ड भूत की तरह साधा जा सकता है, जो काम नही मिलने पर साधने वाले को ही मार डालने की बात करता है। कुछ लोगो का विश्वास है कि एक अन्य उपाय द्वारा भी मन को सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। उनका कहना है कि यदि अतस् की वृत्तियो पर कड़ी नजर रखकर सूक्ष्म दृष्टि से उसके शुभाशुभ का निर्धारण कर लिया जाय, तो इतने भर से चित्त व्यवस्थित हो जायेगा, किन्तु इस विचार में कोई प्राण नजर नहीं आता। इससे इतना तो सम्भव ... सकता है कि भली-बुरी वृत्तियो की जानकारी मिल जाय, पर इससे अस्त-व्यस्तता समाप्त हो जायेगी—ऐसा नहीं कहा जा सकता।

शास्त्रो मे नाम, स्मरण का अमोघ उपचार सुझाया गया है। आप्त वचनो के अनुसार इसमे इतनी विलक्षण शक्ति है कि वह चित्त को सदा निर्धारित संकल्प पर स्थिर रखता है। आर्षग्रन्थो मे इसकी महिमा का बखान किया गया है, जिसके पीछे अनुभवगम्य, आध्यात्मिक और तर्कसिद्ध, बौद्धिक दोनों आधार हैं। अनुभवगम्य इसलिए कि आत्मा की गति सदा सत् संकल्पो की ओर होती है। इस कार्य मे भगवान की ओर से भी सहायता मिलती है। यदि इच्छाशक्ति दृढ रही तो उस संकल्प को जीवन में उतरते देखा जा सकता है। दूसरे शब्दो में प्रबल संकल्प सदा सिद्ध होकर रहते है। उनकी सिद्धि प्रत्यक्ष गतिविधियो पर जितनी निर्भर है, उससे कहीं अधिक महत् सत्ता की परोक्ष इन्द्रियातीत शक्ति पर अवलम्बित है। यह सत्ता मात्र संकल्प के अनुरूप बुद्धि विकसित ही नहीं करती, वरन् किसी अगोचर विधि द्वारा स्थिति के अनुरूप परिस्थिति भी निर्मित करती है। जप द्वारा इसी का सफल क्रियान्वयन सहज संभव हो पाता है।

वन-उपवन के वृक्ष-वनस्पतियो को यह नहीं विदित होता कि वे बादलो को अपनी ओर आकर्षित कर उन्हें बरसने के लिए किस प्रकार बाधित करते है। पर उन्हें इतना अवश्य पता होता है कि इससे पूर्व उनने इसकी आवश्यकता महसूस की थी।

ठीक यही बात मनुष्य के सम्बन्ध मे भी है। उसे यह नही ज्ञात होता है कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति अनुकूल कैसे बनेगी ? और उसकी इच्छा-पूर्ति कैसे सम्भव हो सकेगी ? यदा-कदा परिस्थितियाँ इतनी विकट होती है कि उन्हे देखकर व्यक्ति को नैराश्य घेरने लगता है, पर मन यदि दृढव्रती हो, तो न केवल उसके स्वयं के प्रयत्न-पुरुषार्थ से, वरन् अन्य अनेक माध्यमो से भी उसे ऐसी सहायता प्राप्त होने लगती है कि प्रतिकूलता धीरे-धीरे अनुकूलता मे बदलने लगती है। जिस किसी के जीवन मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई हो, आत्म-निरीक्षण करने पर उसे इसकी सत्यता का आभास अवश्य होने लगता है। सम्भव है, वह इस प्रक्रिया की वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ हो और इसे पूर्णतः भगवद् कृपा, अपना सौभाग्य अथवा देव-अनुकपा मान बैठा हो, पर वास्तविकता यह है कि यह उसके दृढ सकल्प, तीव्र अभीप्सा और परमसत्ता के अनवरत स्मरण का ही परिणाम है।

वस्तुतः जब किसी व्रत का, उच्चस्तरीय उद्देश्य का बारंबार स्मरण किया जाने लगता है, तो वह व्यक्ति के मन-मस्तिष्क मे इस तरह छा जाता है कि तब उ... क्रिया-प्रयास बन पड़ते हैं, उनमे न्यूनाधिक मात्रा मे उसक... अभिव्यक्ति अवश्य होती है। इस प्रकार ध्यान उस अ...

लगा रहने और लगातार प्रयत्न बन पड़ने से उसकी संसिद्धि सम्भव हो जाती है। छोटे शब्दो अथवा वाक्यो से अभिव्यक्त होने वाले व्रत-संकल्पो का स्मरण तो इस विधि द्वारा संभव है, पर लम्बे-चौड़े संकल्पो का निरन्तर स्मरण कैसे बन पड़े ? इसके लिए शार्टहैण्ड मे जिस प्रकार कई-कई वाक्यों को कुछ ही शब्द-संकेतों द्वारा व्यक्त कर देने की व्यवस्था है, वही प्रक्रिया अपनाने का निर्देश विशेषज्ञ यहाँ देते है। इस प्रकार सुविधानुसार अपने संकल्प का कोई छोटा प्रतीक-प्रतिनिधि शब्द गढ़ा जा सकता है और उसका लगातार स्मरण करते रहकर उस व्रत को परिपुष्ट किया जाता रह सकता है। इसी को मन्त्र-जप कहा गया है। अध्यात्म जगत मे इसके लिए ॐ, हरि ॐ, हरि ॐ तत्सत्, सोऽहम् जैसे शब्दो का प्रयोग किया जाता है। यही शब्द भौतिक जगत मे संकल्प परिपुष्टि के लिए प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यही इसका वैज्ञानिक तरीका है। यह कहना उपयुक्त न होगा कि जो कोई खुदा, अल्लाह, राम आदि का नाम जप रहा है, वह 'ईश्वर' का ही स्मरण कर रहा है वरन् उसकी इस प्रक्रिया का वैज्ञानिक अर्थ मात्र इतना है कि उससे वह मन के किसी संकल्प की सिद्धि प्राप्त कर रहा है। यदि कोई निर्धन जीभ से मात्र राम-नाम जपता है, तो यह समझा जा सकता है कि इसमे उसकी धन की कामना निहित है या दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि वह "ऐश्वर्य" की कामना हेतु जप कर रहा है। इसी प्रकार यदि कोई व्यापारी नाम-जप करता है, तो इसमे उसकी व्यापार-सफलता का उद्देश्य छिपा हो सकता है या यों कहा जाय कि वह 'सफलता' का जप करता है। दोनो के प्रयत्न-पुरुषार्थ भी किसी लौकिक संकल्प की पूर्ति के लिए नियोजित होते है।

यहाँ जानने योग्य यह है कि अध्यात्म मार्ग का जपयोग प्रस्तुत जपयोग प्रक्रिया से नितांत भिन्न है। अध्यात्म पथ के पथिको को इसके लिए कोई शान्त-एकान्त तलाशकर भगवद् सत्ता का स्मरण और उसमें अपना विलय-विसर्जन करना पड़ता है। इस स्थिति मे जपयोग आत्मोन्नति की विशेष साधना बन जाता है, किन्तु सामान्य व भौतिक जपयोग मे यह सब कुछ करने की आवश्यकता नही पड़ती। यहाँ इसके द्वारा मात्र उस संकल्प को प्रबल बनाये रखना पड़ता है, जिसकी संसिद्धि हम चाहते है। आजकल इसी जप का एक स्वरूप 'नारे' या 'जयघोषों' के रूप मे देखा जा सकता है। यह इसका आधुनिक संस्करण है। सार्वजनिक आन्दोलनो में अपने लक्ष्य पर जनता का ध्यान एकाग्र करने के लिए एक 'नारा' बना लिया जाता है, ताकि अन्त तक जनता उस ध्येय प्राप्ति के लिए अपना संघर्ष जारी रख सके। यह वस्तुतः जपयोग का ही एक प्रकार है। इसकी तुलना निस्संदेह उस 'राम-धुन' के साथ की जा सकती है, जो भक्त-मंडलियो मे गाई, गुनगुनाई जाती है। चूँकि वहाँ इसका उद्देश्य मात्र भक्ति-भावना का उत्पादन करना होता है, अतः इससे अधिक कोई परिणाम वहाँ प्राप्त भी नही हो पाता, मगर नारों में निश्चित प्रयोजन, लक्ष्य व संकल्प का प्रमाण-परिचय स्थूल रूप मे परिणति प्रस्तुत कर ही देते है।

इस प्रकार जपयोग अथवा नामस्मरण की प्रक्रिया स्थिर चित्त वृत्ति और संकल्प सिद्धि का एक वैज्ञानिक आधार है। यह सभी के लिए समान रूप से उपयोगी और लाभकारी हो सकता है। जिस संकल्प संकेत के साथ यह क्रिया आरम्भ होती है, उसकी सिद्धि सुनिश्चित हो जाती है। विभिन्न व्यक्ति एक ही नाम का जपकर भिन्न-भिन्न प्रकार के संकल्पो की सिद्धि को प्राप्त होते है, यही इस जपयोग की सबसे बड़ी विशेषता है।

मानवी जिजीविषा में छिपी अपरिमित शक्ति

व्यक्ति मे यदि साहस और सूझबूझ हो, तो वह असम्भव को भी सम्भव कर सकता है और कई बार सरल-सम्भव लगने वाला कार्य सिर्फ इसलिए कठिन प्रतीत होने लगता है, क्योंकि परिस्थिति के अनुरूप साहस और सूझबूझ नही सँजोये जा सके।

घटना ७ जुलाई, १९७७ की है। फ्लोरिडा की "क्रस्डस्टोन कम्पनी" मे स्क्रिवेस नामक एक बुलडोजर आपरेटर पिछले २५ वर्षों से सेवारत था। वह एक साहसी और परोपकारी व्यक्ति था। किसी को संकट मे पड़ा देख उसकी ओर झपट पड़ता और स्वयं को जोखिम में डालकर उसकी हर सम्भव सहायता, अपनी प्रत्युत्पन्नमति से करने की कोशिश करता। अपने कार्यकाल के दौरान वह इस प्रकार के अनेक कारनामे दिखा चुका था एवं करीब एक दर्जन लोगो को मौत के मुँह में जाने से रोका था। इनमें से लगभग आधी दर्जन घटनाओं मे उसकी अपनी भी जान के लाले पड़ गये थे, किन्तु "सत्साहसियों की भगवान सहायता करते है।" इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए वह हर बार बचता और दूसरो को बचाता रहा। इससे सभी उसका सम्मान करते थे।

उक्त दिन वह अपने नियमित कार्य मे लगा था। उसके साथ २५ वर्षीय शैली तथा बोझ उठाने वाली मशीन के आपरेटर जान ब्रांच व रोजर भी अपने-अपने कार्य मे संलग्न थे। सभी आधा इंची रोड़ी के २० मीटर ऊँचे टीले को निपटाने मे जुटे थे। जमीन के अन्दर कन्वेयर बेल्ट चल रही थी। बेल्ट गिट्टी को मालगाड़ी के डिब्बों तक पहुँचा रही थी। शैली का काम इस बात की देखरेख करना था कि इन गिट्टियों के साथ कोई मिट्टी का ढेला न चला जाय। यदि ऐसा होता, तो तुरन्त वह उस ढेले को उठाकर बाहर फेक देता।

उस रोज भी अपने इसी काम मे निमग्न था। शाम के पाँच बज चुके थे। बजरी के ढेर पर चढ़ा, उसने

देखा कि गिट्टियों के साथ मिट्टी का एक बड़ा ढेला चला जा रहा है। वह उस ओर लपका। नीचे खड्ड में गिट्टी काटने वाला शंकु यन्त्र चल रहा था। एक सप्ताह पूर्व ही शंकु उपकरण सम्बन्धी एक सुरक्षा गोष्ठी हुई थी, जिसमें शैली और उसके साथियों को चेतावनी दी गई थी कि उक्त मशीन से लगभग एक मीटर दूर रहा जाय, पास न आया जाय। नजदीक आना मौत को दावत देने के समान हो सकता है, क्योंकि टीले से बजरी गिरते समय कोई आदमी उस खड्ड में गिर पड़े, तो उसका जीवित बच पाना मुश्किल ही था। यद्यपि अब तक कोई ऐसी दुर्घटना हुई नहीं थी, फिर भी अधिकारियों ने इस बात की जानकारी कराना जरूरी समझा था।

शैली रोड़ी के ढेर पर चढ़ा जब निगरानी कार्य कर रहा था, तो उस वक्त उसके दिमाग में यह बात भलीभाँति थी कि सुरक्षा-दृष्टि से स्वयं को शंकु यन्त्र से दूर रखना है, किन्तु मिट्टी के ढेले को पकड़ने के फेर में उस दिन उसके पैर कुछ ज्यादा ही बढ़ गये और एक टाँग शंकु के ऊपर की गिट्टी पर जा पड़ी। भार के कारण उपकरण का मुँह फैल गया। बजरी तेजी से धमक पड़ी, इसके साथ वह स्वयं भी उसमें अदर धँसता चला गया।

शैली से कुछ ही फासले पर क्रिवेस बुलडोजर चलाकर फैली हुई गिट्टी इकट्ठी कर पास ला रहा था। अचानक संकट में पड़ जाने के कारण शैली की चीखें निकल गईं। क्रिवेस ने स्थिति की गम्भीरता को समझा और तत्काल बुलडोजर से कूद पड़ा। चीखते हुए उसने आन ब्राय से कन्वेयर बन्द करवाने को कहा एवं स्वयं विपद्ग्रस्त की ओर दौड़ चला। अब तक शैली कमर से ऊपर तक धँस चुका था। जब तक क्रिवेस गिट्टी के विशाल ढेर तक पहुँचता और कुछ सहायता करता, तब तक उसके साथी के कंधे पूरी तरह ढेर के अन्दर जा चुके थे। क्रिवेस निकट पहुँचकर अपने मित्र को और अधिक भीतर जाने से रोकने का पुरजोर प्रयास करने लगा, पर सारी कोशिश निरर्थक प्रतीत हो रही थी। शैली पल-पल मिट्टी में डूबता ही चला जा रहा था और इसके साथ क्रिवेस खुद भी धँसा जा रहा था। बजरी ओले के समान दोनों के ऊपर गिर रही थी और वे शनै-शनै भूमिगत होते जा रहे थे। अब रोड़े शैली के सिर को ढँक चुके थे और क्रिवेस की गर्दन से ऊपर ठुड्डी को स्पर्श करने का प्रयास कर रहे थे। क्रिवेस बार-बार अपनी गर्दन हिला और ठुड्डी चलाकर उन्हें वहाँ टीला खड़ा करने से रोकने का असफल प्रयत्न कर रहा था। इसी बीच सौभाग्यवश कन्वेयर बेल्ट रुक गई, किन्तु [illegible] की बौछार अब भी जारी थी और क्रिवेस की गर्दन की [illegible] थी। जीवन और मृत्यु के मध्य [illegible] संघर्ष चल रहा था, उसमें जीवन विजयी हुआ।

अंततः सैलाब थमा, तो क्रिवेस का उत्साह द्विगुणित हो उठा। शैली का स्पर्श उसे सतत् हो रहा था। वह बाहर आ जाने का अपने प्रकार का भरपूर प्रयास कर रहा है—इसका भी उसे स्पष्ट आभास मिल रहा था, पर वह तो एक प्रकार से गिट्टियों के ढेर में मानो चिन गया था, फिर उसका एकाकी पुरुषार्थ भला पर्याप्त कैसे हो सकता था ? इस बात को क्रिवेस अच्छी तरह अनुभव कर रहा था, अतः कोई बाहरी सहायता मिलने तक वह अपने मित्र को किसी प्रकार जिन्दा रखना चाहता था, अतएव अनथक रूप से वह अपने दोनों हाथों को चलाये जा रहा था और शैली के नथुनों के आगे से रोड़ियों को हटा रहा था, ताकि साँस के लिए उसे पर्याप्त हवा मिल सके। इसमें वह काफी हद तक सफल भी रहा, पर आखिर ऐसा क्रिवेस कब तक कर सकता था ? धीरे-धीरे उसके हाथ थकने और रुकने लगे, तभी उस टीले पर लोगों के चढ़ने की आहटें सुनायी दीं, वह आश्वस्त हुआ। कुछ लोग शंकु के कगार के करीब आकर झाँकने लगे। इससे भार के कारण बजरी और गिरने लगी। क्रिवेस घिघियाया-किनारे से दूर हटो, अन्यथा हम जल्द ही मर जायेंगे।

सुपरवाइजर एलविन राइमर ने चिल्लाया "हम बजरी हटा रहे हैं क्रिवेस ! घबराना मत। जल्द ही तुम दोनों को बाहर निकाल लेंगे।" इसके साथ ही २५ मीटर के फासले से गिट्टी हटाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। ३० आदमी मिलकर तेजी से फावड़ों के सहारे टीले को खोदने लगे। लगभग साढ़े तीन घण्टे के भगीरथ श्रम से उन दोनों को उस मौत की कब्र से निकाला जा सका। इस बीच करीब ३०० टन गिट्टी हटायी गई।

दोनों को तुरन्त अस्पताल ले जाया गया। शैली अब भी जिन्दा था और अर्धचेतन अवस्था में न जाने क्या-क्या बड़बड़ाये जा रहा था, जबकि क्रिवेस पूर्णतः चैतन्य था। दोनों की टाँगें बुरी तरह सूजी हुई थीं।

दो सप्ताह के उपचार के बाद शैली एकदम स्वस्थ हो गया, जबकि क्रिवेस को तीसरे दिन ही अस्पताल से छुट्टी दे दी गई। वह बिल्कुल स्वस्थ नजर आ रहा था और इस बात से प्रसन्न था कि शैली की जीवन रक्षा हो गई। कुछ सप्ताह के विश्राम के बाद दोनों फिर से काम पर वापस आ गये। क्रिवेस को उसके साहसिक कार्य के लिए "कार्नेगी हीरो फंड कमीशन" का सर्वोच्च पुरस्कार प्रदान किया गया, जबकि जोसेफ ए. [illegible] मस्टी एसोसिएशन ने उसे "मेडल ऑफ ऑनर" से सम्मानित किया।

ऐसे घटनाक्रम अनेकों घटते रहते हैं, जब व्यक्ति [illegible] में गिरकर अपना मनोबल खो बैठता है। वह अपनी [illegible] भी नहीं कर पाता। [illegible] के भय से [illegible] एक [illegible] मनुष्य का [illegible]

ऐसा सद्गुण है, जो उसे प्रतिकूलताओ मे भी अपरिमित शक्ति व साहस प्रदान करते हुए उसे ऐसा कुछ करा लेता है कि जिसे नितांत असम्भव कहा जा सके। यदि व्यक्ति अपने अन्दर की इस विभूति को जगा सके, आत्मबल सम्पन्न बन सके तो कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी वह सकटो से जूझता हुआ-प्रतिकूलताओ को चुनौती देता हुआ अपने मनःसंतुलन को बनाये रख सकता है व स्वस्थ-प्रसन्न जीवन जी सकता है। यही सफल जीवन की रीति-नीति है। हममे से हर किसी पर कभी भी किसी तरह की विपत्ति आ सकती है। कोई अप्रत्याशित घटना भी हो सकती है व कोई सम्भावित परिस्थितिजन्य। पर तनिक भी मानसिक समस्वरता को गँवाए, सन्तुलन खोए बिना यदि व्यक्ति निश्चित जीवन जीता चले तो वह दुर्द्धर्ष से दुर्द्धर्ष परिस्थिति पर भी मोर्चा जमा सकता है। इतनी शक्ति मनुष्य के मन मे है और हम है कि मन की ताकत को न जाने क्यों पहचान पाते नही है।

जिजीविषा की चमत्कारी सामर्थ्य

अरे ! यह किसने किया ? कम से कम यह मनुष्य द्वारा तो सम्भव नही। सामान्य आदमी ऐसे आश्चर्यजनक वाक्य कहते सुने जाते है। किन्तु मनोबल के धनी इन आश्चर्यचकित कहने वाले कामो को करते देखे जा सकते है। ये उद्गार पश्चिम जर्मनी के एक युवक कुर्त एजील पर पूरी तरह सही उतरते है, जिसका सारा जीवन ही ऐसे कारनामों से भरा पड़ा है।

एजील का बचपन से शौक था, दुस्साहस भरे काम करना। दुस्साहस ऐसा नही कि किसी को पीड़ा पहुँचाए या किसी को डरा-धमकाकर अपना वर्चस्व बनाए। बल्कि ऐसा दुस्साहस जिसकी सामान्य स्थिति में मनुष्य कल्पना भी न कर सके। ऐसे रोमांचक कारनामो मे उसे उड़ते वायुयानों से पैराशूट बाँधकर छलाँग लगाना सर्वाधिक प्रिय था और एक बार पैराट्रूपिंग पुरस्कार भी जीत चुका था। तेज गति से उड़ते विमानो पर से छलाँग लगाकर उसने कई बार लोगो को रोमाचित किया।

घटना उस समय की है, जब कुर्त एंजील ने पहली बार रोमांचक प्रदर्शन किया था। इससे पहले वह अभ्यास ही करता रहा था। उसकी अभ्यास पारंगता तथा प्रत्युत्पन्नमति को देखकर अधिकारियो ने एंजील को छाताधारी दल के नेतृत्व का अवसर प्रदान किया।

जिस वायुयान मे वह व उसके दल के अन्य सदस्य सवार थे, उस वायुयान ने पहले ओवहैजन के इर्द-गिर्द वाले क्षेत्र मे उड़ान भरी। फिर एकदम ऊँचाई पकड़ना आरम्भ किया। करीब १५०० फीट की ऊँचाई पर विमान पहुँच गया। इतनी ऊँचाई पर पहुँचे विमान के पिछले हिस्से से कितने ही पैराशूटधारी कूद पड़े।

वह कूद तो गया पर पैराशूट नही खुल सका। उसमे कही कोई गड़बड़ी आ गई थी और बजाए खुलने के पैराशूट रस्सियो सहित उसके घुटने तथा बदन के इर्द-गिर्द लिपट गया था। कुर्त ने लुढ़कते हुए उन रस्सियो को काट डाला। प्राणो पर प्रत्यक्ष संकट था।

लेकिन जैसे-जैसे वह रस्सियाँ काटता जा रहा था, वैसे-वैसे रस्सियाँ उसके शरीर पर लिपटती जा रही थी। वह नब्बे किलोमीटर प्रति घण्टे की गति से जमीन पर गिरता जा रहा था, पर इतने पर भी उसने होशोहवास नही खोए थे। पैराशूट से बुरी तरह लिपटे हुए वह जमीन पर गिरा। इस बुरी तरह गिरा कि वह अपने ही भार से पीठ के बल लगभग दो फुट की गहराई मे जमीन मे धँस गया था। फिर भी उसके होशोहवास कायम थे। एक तीखी जलन शरीर में महसूस होती जा रही थी और उसे बेसुध किए दे रही थी जैसे शरीर का सारा खून निचुड़कर पीठ मे इकट्ठा होता जा रहा था। उसने हिलना चाहा पर हिल न सका। आँखो मे बचपन से अब तक की कितनी ही स्मृतियाँ तैर गईं। कुर्त के मन मे संकल्प उठा। अभी मुझे अपने देश के लिए, परिवार के लिए जिन्दा रहना है। मै जीवित रहूँगा और ठीक होने पर इससे भी अधिक ऊँचाई से छलाँग लगाऊँगा।

इन संकल्पो के साथ ही उस पर न जाने कब बेहोशी आ गई। होश आया तो वह अस्पताल मे था। कही दूर से आती डॉक्टर की आवाज उसके कानो मे पड़ी, "एक फेफड़ा फट गया है, पसलियाँ टूट गई है, रीढ़ की हड्डी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई है, दाहिना गुर्दा पिस चुका है। अब इसे किसी भी तरह बचाया नही जा सकता।

लेकिन आश्चर्य कि इस घटना के नौ सप्ताह बाद ही कुर्त एंजील उस अस्पताल से स्वस्थ होकर निकला। उसका जवाब था, 'मुझे पूर्ण विश्वास था कि मै बचूँगा।' भला मै अपना काम पूरा किए बिना मर कैसे सकता हूँ ? स्वस्थ होने के बाद उसने छलाँग लगाई और सिद्ध कर दिया कि मनोबल से मौत भी डरती है।

जिजीविषा की अजेय सामर्थ्य

प्राणी यो प्रकृति की विपरीत चपेट मे आकर अक्सर अस्तित्व गँवा बैठता है। नियति के उग्र परिवर्तनों का सामना नही कर पाता और विपरीत परिस्थिति के सामने अपने को निरीह, असमर्थ अनुभव करता है। पर ऐसा तभी होता है जब वह उस आपत्ति का सामना करने के लिए पहले से ही तैयार न हो।

यदि प्राणी को विपरीत, अनभ्यस्त परिस्थिति मे रहने को विवश होना पड़े तो वह अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए क्रमशः ऐसे परिवर्तन उत्पन्न कर लेता है—ऐसी विशेषता का उत्पादन कर लेता है, जिसके आधार पर वह प्राणघातक समझी जाने वाली परिस्थितियो

से भी तालमेल बिठा ले और अपना अस्तित्व कायम रख सके, सुविधापूर्वक निर्वाह कर सके।

जीवाणुओ की असह्य तापमान पर मृत्यु हो जाती है। वे अधिक उष्णता एवं शीतलता सहन नही कर सकते, यह मान्यता अब पुरानी पड़ चली है। पानी खौलने से अधिक गर्मी और २७० आ. से. नीचे शीत पर जीवाणुओ की मृत्यु हो जाने की बात ही अब तक समझी जाती रही है। इसका कारण यह था कि शरीर में पाया जाने वाला ग्लिसरोद रसायन असह्य तापमान पर नष्ट हो जाता है और जीवाणु दम तोड़ देते है। अब वे उपाय ढूँढ निकाले गये है कि इस रसायन को ताप की न्यूनाधिकता होने पर भी बचाया जा सके और जीवन को अक्षुण्ण रखा जा सके।

अत्यधिक और असह्य शीतल जल मे भी कई प्रकार के जीवित प्राणी निर्वाह करते पाये गये हैं। इनमे से प्रोटोजोआ, निमैटोड, क्रस्टेशिया, मोलस्का आदि प्रमुख है।

येलोस्टोन की प्रयोगशाला में लुईवाक और टामस नामक दो सूक्ष्म जीव-विज्ञानी-माइक्रोवायोलाजिस्ट यह पता लगाने में निरत है कि जीव सत्ता के कितने न्यून और कितने अधिक तापमान पर सुरक्षित रह सकने की सम्भावना है। वे यह सोचते है कि जब पृथ्वी अत्यधिक उष्ण थी, तब भी उस पर जीवन सत्ता मौजूद थी। क्रमशः ठण्डक बढ़ते जाने से उस सत्ता ने क्रमिक विकास-विस्तार किया है, पर इससे क्या—अति प्राचीनकाल मे जब जीवन सत्ता थी ही तो वह विकसित अथवा अविकसित स्थिति में अपनी हलचले चला ही रही होगी, भले ही वह अब की स्थिति की तुलना में भिन्न प्रकार की अथवा पिछड़े स्तर की ही क्यो न रही हो। विकसित प्राणी के लिए जो तापमान असह्य है वह अविकसित समझी जाने वाली स्थिति मे कामचलाऊ भी हो सकता है।

यदि यही तथ्य हो तो फिर जीवन की मूल मात्रा को शीत, ताप के बन्धनो से मुक्त माना जा सकता है और गीताकार के शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि आत्मा को न आग जला सकती है, न पवन सुखा सकता है, न जल डुबा सकता है। पञ्चभूतो की प्रत्येक चुनौती का सामना करते हुए वह अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकने मे पूर्णतया समर्थ है।

समुद्र तट के सभी पर्वतीय क्षेत्रो मे पाई जाने वाली धूसर रंग की मक्खी 'एफिड्रिल' को ४५° से ५१° से. के बीच तापमान वाले गर्म जल में प्रवेश करते देखा गया है। यह प्राणियों के जीवित रहने को असम्भव बनाने वाली गर्मी है। सामान्यतया धरती की सतह पर १२° से. तापमान रहता है। प्राणियों को उतना ही सहन करने का अभ्यास होता है। अधिक उष्ण या अधिक ताप के वातावरण में रहने वाले जन्तुओ को विशिष्ट स्थिति के अभ्यस्त ही कह सकते हैं।

एफिड्रिड मक्खी के अतिरिक्त कुछ जाति के बैक्टीरिया भी ऐसे पाये गये हैं, जो खौलते पानी के ९२° सेन्टीग्रेड तापमान में भी मजे से जीवित रहते हैं। अमेरिका के येलोस्टोन नेशनल पार्क मे स्थित गर्म जल के झरने प्रायः इसी तापमान के है और उनमें जीवित बैक्टीरिया पाये गये हैं। इन गर्म झरनो अथवा कुण्डो में एक प्रकार की काई की मोटी परत जमी रहती है, जिसे हिन्दी मे शैवाल कहा जाता है। अँग्रेजी में इसका नाम एल्गी है। इसमे जीवन रहता है। आमतौर से वह ७५° से. तक गर्म जल मे मजे का निर्वाह करती है। बैक्टीरिया उसी के सहारे पलते हैं। एफिड्रिड मक्खी का प्रमुख भोजन यह एल्गी ही है। उसे प्राप्त करने के लिए वह उस असह्य तापमान के जल में डुबकी लगाती है और बिना जले, झुलसे अपना आहार उपलब्ध करती है।

यह तो हुई छोटे जीवो की बात, अब अधिक कोमल समझे जाने वाले मनुष्यो की बात आती है, वह भी प्रकृति की असह्य कही जाने वाली स्थिति मे निर्वाह करने के लिए अपने को ढाल सकता है। उत्तरी ध्रुव प्रदेश मे रहने वाले एस्किमो लोग अत्यधिक शीत भरे तापमान मे रहते है। भालू, हिरन और कुत्ते भी उस क्षेत्र मे निवास करते हैं। वनस्पतियाँ और वृक्ष न होने पर पेट भरने के लिए माँस प्राप्त कर लेते हैं। इसके लिए उनने बर्फ की मोटी परते तोड़कर नीचे बहने वाले समुद्र मे से मछली पकड़ने की अद्भुत कला सीख ली है। आयुध साधन रहित होते हुए भी हिरन, भालू और कुत्तो का भी वे शिकार करना सीख गये है और लाखो वर्ष से उस क्षेत्र मे निर्वाह कर रहे है।

दूसरे जीवो की तुलना मे मनुष्य को अनेक अनुदान ऐसे उपलब्ध है, जिन्हे असाधारण ही कह सकते है। बुद्धि की विशेषता, इच्छाशक्ति, भाव संवेदना, लक्ष्य निर्धारण, स्मृति जैसी मस्तिष्कीय विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अन्य प्राणियो को बहुत ही स्वल्प मात्रा में मिली हैं। उसके देखने तथा सुनने की शक्ति अत्यधिक संवेदनशील है। घ्राण व्यक्ति तो अन्य प्राणियो मे अधिक है पर वे मनुष्य जैसी उच्चस्तरीय दृष्टि एवं श्रवण शक्ति का वरदान नही ही पा सके है। मनुष्य की मस्तिष्कीय संरचना की अन्य किसी प्राणी से तुलना नही की जा सकती। उसकी बनावट अपने आप में विलक्षण है।

अन्य प्राणी प्रकृति के आक्रमण को एक सीमा तक ही सहन कर सकते है और अधिक दबाव पड़ने पर दम तोड़ देते है पर मानवी काया का निर्माण इतना लोचदार है कि वह विपन्न परिस्थितियों मे भी निर्वाह कर सकता है और अपने आपको इस प्रकार ढाल सकता है, जिससे प्रकृति का दबाव उसे चुनौती न दे सके।

'न्यूरोफिजियोलाजिकल्स बेसिस ऑफ माइण्ड' ग्रन्थ में उदाहरणों और प्रमाणों मे यह बताया गया है कि मनुष्य का सामान्य निर्वाह १.५° मे होता है पर वह १० हजार फुट से अधिक ऊँचाई पर जहाँ टेम्प्रेचर—१५° सेन्टीग्रेड होता है तथा ऑक्सीजन की कमी से असुविधा पड़ती है वहाँ भी कुछ ही दिनो के अभ्यास से सरलतापूर्वक निर्वाह करने लगता है। यहाँ तक कि २० हजार फुट पर जहाँ २५° सेन्टीग्रेड तापमान रहता है, वहाँ भी जिन्दा रह सकता है और २५ हजार से अधिक ऊँचाई पर जहाँ ४५° सेन्टीग्रेड शीत होता है, सामान्य-बुद्धि के हिसाब से मनुष्य का जीवित रह सकना सम्भव नहीं, पर उसकी लोच ऐसी है, जो वहाँ भी जिन्दा बनाये रह सकती है।

हिमालय पर रहने वाले हिम-मानव की जीवनचर्या भी कम रहस्यमय नहीं है। यह प्राणी मनुष्य जैसी आकृति, प्रकृति का है। उसे रीछ और मनुष्य का सम्मिश्रण कह सकते हैं। अत्यन्त शीत भरे हिमाच्छादित प्रदेश में उतनी ऊँचाई पर वह रहता है, जहाँ साँस लेने के लिए ऑक्सीजन के सिलेण्डर पीठ पर बाँधकर पर्वतारोही जाया करते है और खुली हवा मे साँस लेना मृत्यु को निमन्त्रण देना मानते है। लम्बे समय से वह एकाकी जीवन जीता चला आ रहा है। युगीय सभ्यता से दूर रहते हुए भी उसने अपने रहस्यमय जीवन-क्रम को किसी प्रकार अक्षुण्ण बनाये ही रखा है।

हिमालय के उत्तुङ्ग शिखरो पर रहने वाला हिम-मानव अपने अस्तित्व के समय-समय पर अगणित परिचय देता रहा है। पर अभी तक उसे पकड़ने के प्रयास सफल नहीं हो सके। इस अद्भुत प्राणी के सम्बन्ध मे अधिक जानने के लिए उसे निकट से देखना, समझना आवश्यक है। यह तभी हो सकता है जब वह पकड़ मे आवे। किन्तु अति बुद्धिमान समझे जाने वाले मनुष्य को भी यह हिम-मानव अभी तक चकमा ही देता आया है, उसके पकड़ने के प्रयत्नों को निष्फल ही बनाता रहता है। इतने पर भी हिम-मानव का अस्तित्व प्रायः असंदिग्ध ही समझा जाता है।

सन् १९७० की २५ मार्च को अन्नपूर्णा शिखर पर चढ़ाई करने और उस क्षेत्र की सबसे ऊँची चोटी पर विजयपताका फहराने के उद्देश्य से ब्रिटिश पर्वतारोहियो का एक दल अपनी दुस्साहस भरी यात्रा कर रहा था। दल के लोग केम्प मे विश्राम कर रहे थे। चन्द्रमा की चाँदनी सारे हिमाच्छादित प्रदेश को आलोकित कर रही थी। अभी वे लोग सोने भी न पाये थे कि हाथी जैसी भयानक आकृति अपनी लम्बी परछाई सहित उधर घूमती हुई दिखाई दी। खतरे की आशंका से वे लोग बाहर निकल आये और राइफले तान लीं। गौर से देखने पर पाया गया कि यह प्राणी ठीक वैसा ही है जैसा कि हिम-मानव का वर्णन करते हुए समय-समय पर कहा या सुना जाता रहा है। आधा घण्टे तक उसकी हरकते दल ने शान्तिपूर्वक देखीं। उनका उद्देश्य मारना नहीं जानना था। सो उन्होने आँखे भरकर देखा। थोड़ी देर मे वह उछल-कूद करता हुआ पर्वत शृंखलाओं की ओट मे गायब हो गया।

रात को पहरा देने की पद्धति अपनाकर बारी-बारी से दल के लोग सोये तो सही, पर आक्रमण का आतंक रात भर छाया रहा। प्रातःकाल वे लोग तलाश करने गये कि कुछ वास्तविकता भी थी या कोई भ्रम ही था। उन लोगो ने मनुष्य जैसे किन्तु बहुत बड़े साइज के पद चिन्ह देखे, जिनके उन लोगो ने फोटो लिये। वे फोटो तत्कालीन कई प्रमुख पत्रो मे उस देखे हुए विवरण के साथ प्रकाशित भी हुए।

इससे पूर्व सन् १९५८ मे एक अमेरिकी पर्वतारोही दल विशेषतया हिम-मानव को जीवित अथवा मृतक किसी भी स्थिति मे पकड़ने का उद्देश्य लेकर ही आया था। इस दल के एक सदस्य प्रो. टेम्बा अपने साथ कुछ शेरपा लेकर एक क्षेत्र खोज रहे थे। उनने आश्चर्य के साथ उसे एक झरने के किनारे बैठे देखा, वह पानी मे से मेढक और मछलियाँ बीन-बीनकर बिना चबाये निगल रहा था। प्रो. टेम्बा ने उस रात में फ्लेश लाइट जलाई तो क्रुद्ध हिम-मानव उनकी ओर दौड़ा। शेरपा समेत वे बड़ी कठिनाई से अपनी जान बचाकर वापिस लौटने मे सफल हुए।

सन् १९५८ मे इटली के प्रख्यात पत्रकार गाडविन हिम-मानव की खोज मे अपने दल समेत हिमाच्छादित चोटियो पर घूमे। एक जगह उनकी मुठभेड़ हो ही गई। राइफल का घोड़ा दबाने की अपेक्षा उनने कैमरे का बटन दबाना अधिक उपयुक्त समझा। कुछ ही मिनट सामने रहकर वह विशालकाय प्राणी भाग खड़ा हुआ। उसे पकड़ा या मारा तो न जा सका, पर फोटो बहुत साफ आये। उसके पैरो के निशानो के भी फोटो उनने लिये और अपने देश जाकर उन चित्रो को छापते हुए हिम-मानव के अस्तित्व की पुष्टि की।

तिब्बत और चीन की सीमा पर किसी प्रयोजन के लिए गये एक चीनी कप्तान ने भी हिम-मानव से सामना होने का विवरण अपने फौजी कार्यालय मे नोट कराया था।

स्विटजरलैण्ड का एक पर्वतारोही दल एवरेस्ट पर चढ़ाई करने के लिए आया था। उनके साथ पन्द्रह पहाड़ी कुली थे। दल का एक कुली थोड़ा पीछे रह गया। उस पर हिम-मानव ने आक्रमण कर दिया। चीख-पुकार सुनकर अन्य कुली उसे बचाने दौड़े और घायल स्थिति मे उसे बचाया।

सन् १८८७ मे कर्नल वेडैल के नेतृत्व मे एक ब्रिटिश पर्वतारोही दल भारत आया था। उसने सिक्किम क्षेत्र मे यात्रा की थी। १६ हजार फुट ऊँचाई पर उनने

बर्फीली चोटियो पर पाये गये हिम-मानव के ताजे पद चिन्हो के फोटो उतारे थे।

वनस्पति विज्ञानी प्रो. हेनरी ल्यूस जिन दिनो वनस्पति शोध के सन्दर्भ मे हिमाच्छादित प्रदेशो मे भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होने मनुष्याकृति के विशालकाय प्राणी को आँखो से देखा था। वह तेजी से एक ओर से आया और दूसरी ओर के पहाड़ी गड्ढो मे कही गायब हो गया। ठीक इसी से मिलती-जुलती घटना सन् १९२१ मे एवरेस्ट चढ़ाई पर निकले, कर्नल हावर्ड ब्यूरी की है, उनके सामने से भी वैसा ही वन-मानुष से मिलता-जुलता प्राणी निकला था। उस क्षेत्र मे आने-जाने वाले बताते है कि वह अकेले-दुकेले आदमियो और जानवरो को अक्सर मारकर खा जाता है।

भारतीय हिम-यात्री ए. एन. तोम्बाजी ने सिक्किम क्षेत्र मे हिम-मानव देखने का विवरण बताया था। स्विटजरलैण्ड के डायरन फर्थ ने भी सन् १९२५ मे उसे आँखो से देखा था। नार्वे के दो वैज्ञानिक थोरवर्ग और फ्रसिर्स्ट किसी अनुसन्धान के सम्बन्ध मे सिक्किम क्षेत्र मे गये थे। उन पर हिम-मानव ने हमला कर दिया और कन्धे नोच डाले। गोलियो से उसका मुकाबला करने पर ही वे लोग बच सके। गोली उसे लगी नही किन्तु डरकर वह भाग तो गया ही। सन् १९५१ मे एक ब्रिटिश यात्री एरिक शिपटन ने भी हिम-मानव के पैरो के निशानो के बर्फीले क्षेत्र से फोटो खीचे थे। ऐसे ही फोटो प्राप्त करने वालो मे डॉ. एडमण्ड हिलेरी का भी नाम है। सन् १९५४ मे कंचनजंघा चोटियो पर सर जानहट के दल ने २० हजार फुट ऊँचाई पर हिम-मानव के पद चिन्हो के प्रमाण एकत्रित किये थे। वे निशान प्रायः १८ इञ्च लम्बे थे। न्यूजीलैण्ड के पर्वतारोही जॉर्जलोव ने उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर हिम-मानव के अस्तित्व को असंदिग्ध बताया था।

सन् १९५५ मे इंगलैण्ड के दैनिक पत्र 'डेलीमेल' ने अपना एक खोजी दल मात्र हिम-मानव सम्बन्धी अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भेजा था। दल ने बहुत समय तक हिमाच्छादित प्रदेशो मे दौरे किये। इस बीच उन्होने हिम-मानव देखा या पकड़ा तो नही, पर ऐसे अनेक प्रमाण, अवशेष एवं चित्र संग्रह करके उस पत्र मे छपाये, जिनसे हिम-मानव सम्बन्धी सब श्रुतियाँ सारगर्भित सिद्ध होती है।

असह्य माने जाने वाले शीत और ताप मे प्राणियो का विशेषतया मनुष्य जैसे कोमल प्रकृति जीवधारी का निर्वाह होते रहने के उपरोक्त प्रमाण यह सिद्ध करते है कि प्रतिकूलताएँ कितनी ही बड़ी क्यो न हो, जीव उन सबसे लड़ सकने मे समर्थ है ? उसका संकल्प बल ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर सकता है, जिसमे असह्य को सह्य और असम्भव को सम्भव बनाया जा सके। न केवल प्रकृति से जूझने मे, वरन् पग-पग पर आती रहने वाली कठिनाइयो को निरस्त करने मे भी सकल्प बल की प्रखरता का तथ्य सदा ही सामने आता रहता है।

सम्पत्ति की खोज में जल-थल और नभ का मानवी मंथन

धरती की खोज भी अभी जारी है और यह तलाशा जा रहा है कि भू-गर्भ की सम्पत्ति को कहाँ तक और किस हद तक मनुष्य की सुख-सुविधा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है ? धरती की ऊपरी सतह वनस्पतियाँ उगाने एवं मिट्टी, पत्थरो के अनुदानो तक सीमित है। मूल्यवान धातुएँ, रसायने, तेल, गैस, कोयला आदि गहराई मे उतरने पर निकलते हैं। इसलिए भूतल की मोटी जानकारियाँ प्राप्त कर लेने के उपरान्त अधिक ध्यान इस ओर दिया जा रहा है कि भू-गर्भ मे दबी सम्पदा को उखाड़कर ऊपर लाया जाय और उससे मानवी समृद्धि का भण्डार बढ़ाया जाय।

मनुष्य की क्षुधा बहुत अधिक है। धरती की सम्पत्ति उसकी तुलना मे कम पड़ती है। इसलिए समुद्र की खोज गहराई तक की जा रही है। समुद्र मंथन द्वारा १४ रत्न प्राप्त करने के लिए विज्ञान अब फिर तुल गया है। अनुमान है कि जो कुछ धरती पर है, उससे बहुत अधिक समुद्र मे है। कुछ समय पहले तक नौकानयन और मत्स्यचयन के दो ही काम समुद्र से लिये जाते थे, अब खाद्य, धातुएँ, रसायन, निवास आदि अनेक प्रयोजनों के लिए समुद्र को टटोलने, खोजने, खखोलने का निश्चय किया गया है। यह कार्य पिछले दिनो जिस उत्साह और संकल्प के साथ आरम्भ किया गया था अब उसमे और भी अधिक वृद्धि कर दी गई है।

१५ अगस्त, १९३४ का दिन समुद्री शोध के इतिहास मे एक अविस्मरणीय दिन माना जायेगा। उस दिन वरमूधा द्वीप के नांसच बन्दरगाह के समीप खड़े एक जलयान से दो वैज्ञानिक समुद्र-तल मे उतरे और महत्वपूर्ण दृश्य प्रत्यक्ष देखकर आये। यह वैज्ञानिक थे, डाक्टर वीब और डाक्टर वार्टन। उनका वाहन एक दस फुट ऊँचा और प्रायः उतना ही लम्बा-चौड़ा फौलाद का बना सन्दूक था, जिसमे पारदर्शी खिड़कियाँ लगी थीं। इसके भीतर ऑक्सीजन की तुम्बियाँ, कैमरा, टेलीफोन, बिजली के उपकरण थे। यह सन्दूक जहाज पर लोहे की रस्सी से बँधा था और मशीनो द्वारा नीचे उतारा जा रहा था। वे लोग ३०२८ फुट गहराई तक नीचे उतरे और जो कुछ उन्होंने समुद्र के गर्भ मे देखा, उसे टेलीफोन से सुनाया। इस टेलीफोन सम्वाद को लाउडस्पीकरो द्वारा उत्सुक जनता को सुनाया जाता रहा।

यह आँखो देखा हाल प्रायः उसी ज्ञान की पुष्टि करता था, जो इससे पहले ही जाना जा चुका था। अन्तर इतना ही था कि पिछले ज्ञान को अन्यान्य शोध उपकरणो से जाना गया था और यह सब कुछ आँखो देखे हाल-समाचार की तरह मुँह से बोलकर सुनाया जा रहा था।

इस डुबकी मे अद्भुत बात एक ही थी, समुद्री जीवो 'में से अनेको ऐसे थे। जिनके शरीर से बड़ी चमकदार प्रकाश किरणे निकलती थीं और उस घने अन्धकार मे जलते हुए बिजली के बल्वो की तरह भ्रमण करती थीं। कुछ मछलियाँ तो कई प्रकार के रंगों की आभा फैलाती थीं। आग उगलने वाली, बिजली के झटके देने वाली, रोशनी फैलाने वाली और तरह-तरह की रंग-बिरंगी आभा बिखेरने वाली इन मछलियों को देखकर ऐसा लगता था, मानो सघन अन्धकार में आकाश के नक्षत्रों की तरह कुछ जल-जन्तु प्रकाश की आवश्यकता पूर्ण करते हुए विचरण कर रहे हैं।

समुद्र द्वारा अपने उदर मे निगल लिये गये टिटहरी के अण्डों की कथा सर्वविदित है। टिटहरी ने समुद्र से लड़ाई मोल ली थी, अपनी चोंच मे भरकर समुद्र मे मिट्टी डालना और उसे सुखाकर अपने अण्डे वापिस लाने का दृढ़ संकल्प आखिर सफल ही हुआ था। अगस्त मुनि ने उसके न्यायोचित संकल्प को पूरा करने मे सहायता की थी, यह पुराण गाथा सर्वविदित है।

उसी प्रयत्न की पुनरावृत्ति हमारे दुस्साहसी समुद्र शोधक कर रहे है। उन्होंने निश्चय किया है कि समुद्र ने जो कुछ धरती की सम्पदा उदरस्थ की है, उसे वे उगलवाकर रहेगे। इस सन्दर्भ मे फिलहाल दो कार्यक्रम हाथ मे लिये गये है—एक यह कि समुद्र के गर्भ मे किसी समय के जो सुन्दर नगर, द्वीप और भूखण्ड डूबे पड़े है, उनकी सांस्कृतिक सम्पदा को—धन सम्पत्ति को तलाश करके बाहर लाया जाय ताकि उन परिस्थितियों का पता लगाया जा सके, जिनके कारण इन भूखण्डो को समुद्र ने निगला। इसके अतिरिक्त पुरातन इतिहास की एक कड़ी भी इस खोज मे जुड़ सकती है। साथ ही जो सम्पदा वहाँ दबी पड़ी है, उसे भी मनुष्य के उपभोग के लिए प्रस्तुत किया जा सकेगा।

दूसरा चरण समुद्र के गर्भ मे डूबे हुए जहाजो को खोज निकालना था। पुराने जहाज निर्माण वस्तुकला—डूबने से समुद्र की दुर्दान्त हलचले और उनका सामना न कर सकने की इन यानो की दुर्बलता भी इस प्रयास मे खोजी जा सकेगी। जहाज अवश्य ही कुछ न कुछ सम्पत्ति लेकर डूबे होगे और उसमे से कम से कम बहुमूल्य धातुएँ तो अभी भी उपयोग के लायक होगी। इन सब उपलब्धियो के लिए समुद्र तल को मँझाया जा रहा है। इसके लिए सुव्यवस्थित अभियान देर से चल रहा है। पुरातत्वेत्ता राबर्ट एफ मार्क्स ने इस मिशन के लिए अपना पूरा जीवन ही लगा दिया। यह दुस्साहसी गोताखोर अपनी छोटी पनडुब्बी यू. एस. एस मार्नटर मे निर्वाह तथा खोज के लिए आवश्यक सामग्री लेकर संसार के प्रमुख समुद्रो की खोज प्राण हथेली पर रखकर करता रहा। उसकी खोज बेकार नही गई, वरन् बहुत कुछ ऐसा उसने खोज निकाला, जिसके लिए संसार भर मे उसकी प्रशंसा हुई। सन् १९५७ अखबारो मे सर्वत्र उसकी साहसपूर्ण खोजो के सम्बन्ध में लम्बे विवरण प्रकाशित हुए थे।

मार्क्स ने "पोर्ट रायल" नामक अत्यन्त सुरम्य ब्रिटिश द्वीप को खोज निकाला। इसकी कला और सम्पत्ति किसी समय इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अँग्रेज उस पर गर्व करते थे। ७ जून, १९७२ मे एक भयंकर भूकम्प और तूफान आया, जिसके कारण धरती धँसकी और द्वीप समुद्र के गर्त मे चला गया। तब से उसकी गहराई मे प्रवेश करने की न किसी ने हिम्मत की और न आवश्यकता समझी। मार्क्स ने गोताखोरी के साधन जुटाकर वह सामग्री प्रस्तुत की है, जिससे उस समय के कला-कौशल, सभ्यता स्तर का पता चलता है और उन परिस्थितियो पर प्रकाश पड़ता है, जो उसे डुबो देने का कारण थी।

इसी प्रकार मार्क्स ने डूबे हुए दो स्पेनिश जहाज के कङ्कालों को समुद्री कब्रिस्तान मे से उखाड़कर उनकी पूरी तरह खानातलाशी लेली है। इनमे से एक जहाज 'अवर लेडी ऑफ दि मीराकल' सन् १९४१ मे मैक्सिको की खाड़ी मे डूबा था। दूसरा यूकाटन की खाड़ी मे। इनका सामान ऊपर लाने मे पूरे तीन वर्ष तक लगातार प्रयत्न किया गया। इस दुस्साहस पर टिप्पणी करते हुए वाशिंगटन की एक शोध संस्था स्मिथ सोनियल इन्स्टीट्यूट ने कहा था—"अब तक के समुद्रीय पुरातत्व अन्वेषण में मार्क्स के प्रयत्न अद्भुत है।"

यह श्रेय धुन के धनी मार्क्स ने सहज ही प्राप्त नही कर लिया, वरन् हर घड़ी उसे भयानक खतरो से जूझना पड़ा है। उसने अपने कुछ संस्करणो मे दिल दहलाने वाली घटनाओ का उल्लेख किया है।

"पोर्ट रायल के निकटवर्ती समुद्र का पानी बहुत गन्दला है। दो-तीन इन्च से आगे की कोई चीज उसमे नही देखी जा सकती। झुण्ड बनाकर घूमने वाली भयंकर जेली मछलियो का पता तब चलता है, जब वे मात्र दो-तीन इन्च दूर रह जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य जल-पिशाच भी बड़ी मात्रा में और चित्र-विचित्र आकृतियो मे घूमते रहते है। जिनकी पकड़ मे आने के बाद फिर किसी का बच निकलना कदाचित ही सम्भव हो सकता है। शार्क मछली हमला कर बैठे तो फिर समझना चाहिए कि गोताखोर का ढेर हो गया। ऐसे खतरनाक समुद्रो मे देर तक साँस लेने के लिए ऑक्सीजन के बड़े-बड़े थैले ले जाने पड़ते थे। वह तरीका काफी सिर-दर्दी का था। इसलिए नया 'एक्वानाट' यन्त्र बनाया गया। जिसमे ऑक्सीजन के थैले समुद्र की सतह पर तैरते रहने और नली द्वारा गोताखोर तक हवा पहुँचाने की सुविधा बन सकी। अन्य यन्त्र भी ऊपर तैरते है, इससे हल्का-फुल्का गोताखोर अधिक तेजी और चुस्ती-फुर्ती के साथ अपना काम करते रहने में समर्थ हो सके। ऐसे-ऐसे कई अनोखे आविष्कार मार्क्स करता रहा और अत्यन्त कष्टसाध्य एवं खतरे से भरी जिन्दगी जीकर वह मनुष्य जाति की ज्ञान

शृंखला मे एक नई कड़ी जोड़ने के लिए अनवरत प्रयत्न करता रहा।

संसार के सभी समुद्रो मे सबसे गहरी खाइयाँ पाँच गिनी गई है। इनकी गहराई ६००० मीटर तक है। गहराई मे पानी का दबाव बहुत बढ़ जाता है। एक वर्ग सेंटीमीटर पर यह दबाव लगभग एक टन होता है। इतना दबाव सामान्य प्राणी सहन नहीं कर सकते। इतने पर भी इन गहरी खाइयो मे लगभग १५० जातियो के जल-जीव निवास करते है और आसानी से निर्वाह करते हुए अपना वंश वृद्धि क्रम चलाते हैं। इन जीवो की रीढ की हड्डी नहीं होती। घोर अन्धेरे मे रहने के कारण उनकी आँखे भी नही होतीं। दबाव को सहन करने योग्य उनके शरीर है। सामान्य जल-जीवो की तुलना मे वे पाँच गुने बड़े है।

पृथ्वी पर वायुमण्डल का दबाव घटने-बढ़ने से जीवधारियो के शरीर बड़े या छोटे होते है। इस तथ्य की नई जानकारी समुद्र तल से मिली है और सोचा जा रहा है कि यदि प्राणियो की नस्ले छोटी या बड़ी बनानी हो तो इसके लिए वायु का कृत्रिम दबाव उत्पन्न करके वैसा किया जा सकता है। धरती पर रहने वाले पशुओ की तरह जलचरो से न केवल माँस का वरन् और भी कई प्रकार के सहयोग लेने का रास्ता ढूँढ लिया गया है। समुद्र की तली खोदकर बहुमूल्य खदाने निकाली जानी है और पानी को उबाल, छानकर जल सम्पत्ति का बहुत बड़ा भण्डार किस प्रकार उपलब्ध किया जाय। यह तैयारी बहुत हद तक पूरी कर ली गई है।

भविष्य मे जो युद्ध लड़े जायेगे, उनका प्रधान क्षेत्र थल नही जल होगा। जल मे छिपी हुई पनडुब्बियाँ उतनी आसानी से देखी-जानी नही जा सकती, जितनी कि थल पर की सेनाएँ अथवा फैक्टरियाँ। आणविक मिसाइले २५०० मील तक की मार करने वाली बनाई गई है। वे अब वायुयानो पर नही पनडुब्बियो पर ही लाद दी गई है।

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा यह है कि किसी देश का निकटवर्ती १२ मील का क्षेत्र उस देश के अधिकार मे माना जाता है। इसके आगे का क्षेत्र प्रत्येक देश के लिए समान रूप से खुला है। इसके अतिरिक्त यह भी अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा है कि २०० मीटर से अधिक गहराई पर पाई जाने वाली खनिज सामग्रियो को कोई भी साधन-सम्पन्न देश निकाल सकता है। इन्हीं सुविधाओ का लाभ उठाकर रूसी और जापानी मच्छीमार जहाज जहाँ भी 'माल' देखते है, वहीं उसे समेटने के लिए जा पहुँचते है। अब अगले दिनो धरती की तरह ही सारे समुद्र का भी बँटवारा किया जाना है, जिस पर अमुक देश अपना अधिकार जमा सके और उसका अपनी पृथ्वी की तरह ही दोहन कर सके।

धरती माता का दोहन मनुष्य हजारो-लाखो वर्षों से करता चला आ रहा है। समुद्र पिता को अब खटखटाया जा रहा है। अन्तरिक्ष गुरु की भी झोली, झोपड़ी टटोलने के लिए राकेटो, उपग्रहो के जासूस कमर कसकर जुट गये हैं। थल, जल और नभ में जो कुछ भी सम्पदाएँ छिपी पड़ी है, उन सबको उदरस्थ-करतलगत करने के लिए मनुष्य की तृष्णा आकुल-व्याकुल हो रही है। अतृप्ति को तृप्त करने के लिए ब्रह्माण्ड का कोना-कोना मँझार लेने की तैयारी पूरे जोश-खरोश के साथ चल रही है।

यों मनुष्य तुच्छ-सा प्राणी है—उसकी आवश्यकताएँ भी नगण्य और स्वल्प प्रयास से सहज पूरी हो सकने जितनी हैं। किन्तु तृष्णा की सुरसा का फैलता हुआ मुख प्रयत्न-पुरुषार्थ के हनुमान से बड़ा ही रहेगा। अतृप्ति को तृप्त किया जा सकेगा इसमें पूरा सन्देह है। पौराणिक रावण, हिरण्यक्ष और ऐतिहासिक सिकन्दर, नैपोलियन अपने को दरिद्र, कङ्गाल अनुभव करते हुए चले गये तो आज का लिप्साग्रस्त विज्ञानी मानव सन्तोष की कोई झाँकी प्राप्त कर सकेगा, इसमे पूरा सन्देह है।

तृप्ति दे सकने लायक विभूतियों की खदान मनुष्य के अन्तरंग मे है। अन्तर्मुखी होकर यदि वहाँ कुछ ढूँढा, खोजा गया होता तो इतना अधिक मिल सकता था जितना धरती, समुद्र और आकाश तीनो मे मिलाकर नहीं है। यदि यह प्रयास अन्त:करण को खोजने में लगे होते तो इतनी विभूतियाँ मिल सकती थीं, जिन्हे पाकर हमने से हर मनुष्य इन्द्र-कुबेर से बढ़कर अपने को सुसम्पन्न अनुभव करता।

सफलता का प्रवेश द्वार—पुरुषार्थ

सफलता के लिए नाना क्षेत्र और प्रवेश द्वार हैं। यह नही कि पिछले युग के महापुरुष जैसे ईसा, बुद्ध, मुहम्मद या गुरुनानक ही सफल पुरुषार्थी कहे जा सके। आज के सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रो मे भी सफलता और उन्नति की प्रचुर सम्भावनाएँ भरी पड़ी है। क्रान्ति उत्पन्न कर प्रगति के लिए बहुत गुंजाइश है। केवल आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य समय रहते अवसर पहचान ले और अपनी शक्तियाँ विकसित कर द्रुतगति से उन्नति का प्रयत्न करे। अपने लिए क्षेत्र ढूँढना मनुष्य की व्यक्तिगत कुशलता और बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता है। श्री सन्तरामजी ने अपनी पुस्तक "सफलता के सिपाही" में कुछ सफल व्यक्तियो की जीवन-झाँकियाँ और उनकी सफलता के रहस्यो पर प्रकाश डाला है। संक्षेप मे उन पुरुषार्थी आत्माओ के जीवन-मन्थन का नवनीत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। ये व्यक्ति हम और आपकी तरह की हाड़-माँस के शरीर वाले आदमी थे। हमारे समाज की विषमताओ और विरोधो में पले, पनपे थे, ईश्वर या देवता नहीं थे। जो कार्य उन्होने किया, वह हम सब दृढ प्रयत्न और उद्योग से पूर्ण कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मे अनेक विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हुईं, स्वयं उनके शरीर मे त्रुटियाँ थीं, जिन्

सतत उद्योग और अध्यवसाय से उन्हे दूर करना पड़ा। हर्ष, दुःख, आशा-निराशा के थपेड़े खाते हुए अन्ततः वे सफलता की चरम सीमा पर आसीन हो गए।

पहला व्यक्ति एक आदर्श स्वावलम्बी मनुष्य का उदाहरण है। नाम है श्री सुबोधचन्द्रराय। उन्होने एम. ए., बी. एल. की परीक्षाएँ पास की थीं, पर दुर्भाग्य से वे अन्धे हो गए थे। अन्धापन उनकी उन्नति में बाधक न बन सका। दृढ़ संकल्प और परिश्रम से वे अपनी उन्नति मे लग गये। ये प्रायः सोचा करते थे कि अन्धो की स्थिति का कैसे सुधार किया जा सकता है ? उन्होंने अमेरिका जाकर अन्धो की स्थिति तथा उच्च शिक्षा की व्यवस्था का अध्ययन करने का संकल्प किया। उन्हें छात्रवृत्ति मिली और वे विदेश में उस अन्धेपन की अवस्था मे ही अध्ययन करके स्वदेश लौटे। उन्होंने जीविका उपार्जन की और एक अमेरिकन सुन्दरी से विवाह किया। सुखी जीवन व्यतीत करते रहे। उनसे प्रायः पूछा जाता है—

"अन्धे होते हुए भी आपने इतनी शिक्षा कैसे प्राप्त कर ली ?"

इसके उत्तर में राय महोदय कहते हैं, "मैं नही समझता इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ? आवश्यक साधन-सामग्री मिल जाए, तब अन्धे क्या नहीं कर सकते ? परन्तु अन्धो के प्रति देखने का बहुत-से लोगो का दृष्टिकोण गलत है। वे अन्धो को दया तथा सहानुभूति की दृष्टि से देखते है। जब तक इस दृष्टिकोण को बदला न जायेगा, तब तक अन्धे समाज के उपयोगी अंग न बन सकेंगे। अन्धो के शिक्षण की कोई भी व्यवस्था बिना योग्य कार्यक्रम के सम्भव नहीं है।"

इस पुरुषार्थी व्यक्ति का जीवन इस बात को स्पष्ट करता है कि मनुष्य स्वयं ही अपना सबसे बड़ा शिक्षक है। विशाल संसार के कडुवे-मीठे अनुभव और टक्करे एक सजीव पाठशाला है। इसमें टक्कर खाकर हम पूर्णता प्राप्त करते है। दूसरो के कहने से नही, बल्कि स्वयं ही ससार की प्रत्येक वस्तु का तत्त्व ग्रहण करने का प्रयत्न करो और अपनी योग्यता की सीमाएँ भी निर्धारित करो। उसमे दूसरो के कुछ भी कहने-सुनने की आवश्यकता नही होनी चाहिए। जब अपनी शिक्षा अपने आप ही प्राप्त कर लोगे, जब संसार का अनुभव तुम्हारा ही होगा, दूसरो का जूठन न होगा, तब तुम्हारी शिक्षा पूर्ण होगी। तब तुम विद्वान और ज्ञानवान कहलाने के अधिकारी बन सकोगे।"

दूसरा पुरुषार्थी व्यापार क्षेत्र का व्यक्ति है। नाम अब्दुल भाई। उन्होने एक छोटे पैमाने पर अचार, चटनी, मुरब्बा का व्यापार आरम्भ किया और अपने कारखाने को सफल करके दिखलाया। साधारण दुकानदारी, कपूर, शर्बत, आदि के धन्धे से बढ़ाकर ये सिरके का व्यापार करने लगे। नीबू, आम के अचार, गाजर का अचार, आम की चटनी, फलों के शर्बत, गुलाब जल, केवड़ा इत्यादि पदार्थ वे अपने कारखाने मे बनाने लगे।

वे प्रायः कहा करते हैं कि व्यापार मे ईमानदारी और सरल व्यवहार, उदार मन और मीठा बोलना आदि नैतिक गुणो को उन्होने अपने व्यापार का मूल आधार बनाया। कभी किसी से उनका झगड़ा नही हुआ। जिस बात का उन्हे ज्ञान नहीं होता, वे सदा उसे सीखने को तैयार रहते हैं। उनका कहना है कि मनुष्य को अवसर पहचानने के लिए और उसका अधिक से अधिक उपयोग करने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। यदि हमारे अन्दर उपयुक्त अवसर पहचानने और उसका सदुपयोग करने का गुण हुआ, तो हम बहुत शीघ्र उन्नति कर सकते हैं।

तीसरे सज्जन धौर के सुप्रसिद्ध ठेकेदार श्रीयुत नाना साहब थोपटे है, जो निर्धनता से श्रीमन्त बने हैं। उन्हे निर्धनता से घोर युद्ध करना पड़ा। पाठशाला छोड़कर चुंगी की चौकी पर तीन रुपये मासिक पर नौकरी करनी पड़ी। इस दरिद्रता को जड़ से उखाड़ने का उन्होने पक्का निश्चय किया। चौकी पर अपना दैनिक कार्य समाप्त कर वे वहाँ होकर जाने वाले माल के छकड़ों की खरीद और बिक्री का पता लगाते थे। वे कितने मे नीलाम होते है, ठेका कितने मे खरीदने से उन्हे घाटा नही उठाना पड़ेगा—आदि बातो पर वे बड़ी बारीकी से विचार करते थे। उनकी वाणी मीठी थी। वे किसी को झिड़कते या तिरस्कारपूर्वक नहीं बोलते थे। जिस कार्य को कर सकने का उनको पूरा निश्चय होता था, उसी का वचन देते थे। इस नियम का पालन करने से उनके वचन का बड़ा मूल्य हो गया था। उन्होंने ठेकेदारी शुरू की। उसमे उन्हे नुकसान भी उठाने पड़े। आरम्भ मे ही उन्हें ऐसी ठोकर लगी कि कोई साधारण सकल्प का व्यक्ति होता तो बुझकर बैठ जाता, पर नाना साहब थोपटे ने दूसरा ठेका कर पहली हानि को पूरा किया। इस ठेके मे सफल होने का सारा श्रेय वे अपनी बहिन द्रौपदी बाई चौहान को देते थे। ठेकेदारी उनकी महत्त्वाकाक्षा के लिए उपयुक्त क्षेत्र मिल गया। पैसा कम होने से पहले उन्होने छोटे-छोटे ठेके लिए, फिर क्रमशः बड़े ठेके लिए। इस प्रकार ईमानदारी से उन्नति करते चले गए। सच्चाई से काम करने की सद्प्रवृत्ति से वे अपने अधिकारियो के प्रियपात्र बन गये। दुर्दम्य महत्त्वाकाक्षा, नवीन दृष्टि, अवसर के आते ही उससे लाभ उठाने की तत्परता—ये तीन सूत्र भी थोपटे के उत्कर्ष के रहस्य है।

बुरे स्वास्थ्य के विरुद्ध विद्रोह कर स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन पाने वाले पुरुषार्थियो मे इटली के कार्नेरो उल्लेखनीय है। शरीर से अत्यन्त निर्बल होते हुए भी उन्होंने प्रबल इच्छाशक्ति के योग से आरोग्य प्राप्त किया। इच्छाशक्ति की मदद से हमें दीर्घ-जीवन मिल सकता है, इस बात का उनका जीवन एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

उनका जन्म एक अमीर घर मे हुआ था। खाने-पीने का कोई नियम न रहने, निद्रा और जागरण मे अव्यवस्था, जीभ का स्वाद आदि के दुष्परिणामो से उनका शरीर जर्जर हो गया था। एक दिन एक प्राकृतिक चिकित्सक ने उन्हे सलाह दी—

"तुम्हारे शरीर की जो दुर्दशा हो रही है, वह तुम जानते ही हो। हमारे सब प्रयत्न शिथिल हो गए है। अब आशा का केवल एक ही तन्तु शेष रह गया है, वह है तुम्हारी इच्छाशक्ति। अब तक तो तुम अविचारपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे हो, उसे बिल्कुल बदल दो और अत्यन्त व्यवस्थित रूप और मिताचार से रहो। तभी तुम्हारे जीवित रहने की आशा हो सकती है।"

कार्नेरी के मन मे नई आशा और उल्लास का भाव पैदा हुआ और उन्होंने सुव्यवस्थित प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। व्यायाम किया, उपवास रखे। फल यह हुआ कि उन्हे शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्राप्त हुआ, जिसके बल पर वे सौ वर्ष तक जीवित रहे। वे जीवन भर मिताहार और मिताचार का महत्त्व तरुणो को समझाते रहे। कार्नेरी से उसकी दीर्घायु का मर्म पूछा गया तो उसने बताया, "प्रकृति के नियमो का पालन कीजिए और उसी के नियमो पर चलिये। जितनी आवश्यकता हो, उतना ही खाओ और पिओ। खाने-पीने मे और प्रत्येक आचार मे आपको परमित होना चाहिए अर्थात् कम से कम खाना चाहिए। जीभ को वश मे रखना चाहिए। आवश्यकता से अधिक खाना पाप है। इसी से सब रोग उत्पन्न होते है और हमारी शारीरिक और मानसिक अवनति होती है।"

ऊपर के उदाहरण हताश व्यक्तियो के लिए प्रेरक है। विशुद्ध स्वावलम्बन के उदाहरण है। उद्योग और पुरुषार्थ के बल पर आदमी कितनी उन्नति कर सकता है, कैसे आगे बढ़ सकता है ? इसका रहस्य वह स्वय ही मालूम कर लेता है।

जिन व्यक्तियो ने स्वावलम्बन का सहारा लिया है, उन्होने सदैव उन्नति की है। जो अपने पाँवो पर चलेगा, उसके पाँव अवश्य मजबूत होगे। जो मन उन्नति की अग्नि प्रज्ज्वलित रखेगा, उसे आगे बढ़ने की सतत प्रेरणा ही रहेगी।

मनोबल ही जीवन शक्ति है

इटली के एक प्रमुख शहर गिएरूपे में बारूद के एक कारखाने मे फिनोज पी. वेग नामक फोरमैन काम करता था। इस कारखाने में बारूद के मिश्रण की धातुओं की छोटी परतों मे छेद करने का काम होता था। फिनोज पी. वेग के साथ एक विचित्र दुर्घटना घटी। हुआ यह कि वह सुराख करने के एक बरमे के पास काम कर रहा था। बरमा करीब पौने चार फीट लम्बा और तेरह पौन्ड वजन का था। काम चल ही रहा था कि अचानक न जाने क्या गड़बड़ी आई, जो मशीन से एक भारी धमाके के साथ बरमा निकलकर उचटा और वेग के मस्तिष्क को बेधता हुए बाहर निकल गया। बरमा चेहरे के बायीं ओर वाले भाग से घुसा था और भीतरी हड्डियो को तोड़ता हुआ आँख के निचले भाग को छेदता हुए बाहर निकल गया। आस-पास काम कर रहे कर्मचारियो को लगा कि वेग के परखचे उड़ गये है।

वह झटके के साथ नीचे गिरा और ऐंठ गया। फिर भी आश्चर्य था कि उसमे जान बाकी थी। उसे कारखाने से करीब एक मील दूर स्थित अस्पताल मे पहुँचाया गया। अस्पताल के प्रमुख चिकित्सको ने उसका परीक्षण किया और मुख्य चिकित्साधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि घायल के साथ कितना ही परिश्रम क्यो न किया जाये, उसे बचाया नही जा सकता। फिर भी चिकित्सकों ने अपना कर्त्तव्य निभाया और साधारण मरहम-पट्टी कर दी। आश्चर्य तो उस समय हुआ जब उसी दिन वेग की बेहोशी टूटी। डाक्टर बेहोशी टूटने की आशा करना तो अलग रहा, इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे के वेग की साँसे कितनी देर तक साथ देती है ?

उसका खून बहना बन्द नही हुआ था, फिर भी उसने दर्द को सहा और रात के दस बजे वहाँ उपस्थित लोगो से बाते करने लगा। इसके बाद तो डाक्टरो मे भी वेग के जीवित बच जाने की आशा जगी। वह तेजी से अच्छा होने लगा और लगभग तीन माह तक अस्पताल मे रहने के बाद पूरी तरह स्वस्थ होकर अस्पताल से घर आ गया। अस्पताल के अधिकारियो ने जो अन्तिम रिपोर्ट तैयार की, वह विश्व के मूर्धन्य चिकित्सको के लिए आज भी अध्ययन और आश्चर्य की वस्तु बनी हुई है। वेग की नेत्र ज्योति तो चली गई थी, पर उसका बाकी मस्तिष्क पूरी तरह ठीक हो गया और वह अपना सामान्य जीवनक्रम ठीक तरह चलाने लगा। इतने भयानक मस्तिष्कीय आघात के बाद भी कोई व्यक्ति जीवित बच सकता है और न केवल जीवित बच सकता है, वरन् स्वस्थ, सामान्य जीवन व्यतीत कर सकता है, इस पर शरीरविज्ञानियो को सहसा विश्वास नही हो सकता। परन्तु वेग की टूटी हुई खोपड़ी के अस्थि खण्ड तथा उससे सम्बन्धित पदार्थ और कागजात हार्वर्ड मेडिकल कॉलेज बुकलिन के संग्रहालय मे सुरक्षित रखे है, साथ ही वह बरमा भी रखा हुआ है, जो वेग की खोपड़ी को चीरता हुआ बाहर निकला था।

यह घटना इस बात की साक्षी है कि जीवन-मृत्यु से अधिक बलवान है। यहाँ जीवन का अर्थ जन्म और मृत्यु के बीच की [illegible] से नही है, अपितु उस जीवटता [illegible] है, जो [illegible] में भी मनुष्य को [illegible] हाड़-माँस से बना दि[illegible] ज[illegible]

है तो कहना पड़ेगा कि उसकी संरचना अष्ट धातुओं से भी मजबूत तत्वो द्वारा मिलकर बनी हुई है। छोटी-मोटी, टूट-फूट, हारी-बीमारी तो रक्त के श्वेतकण तथा दूसरे संरक्षणकर्ता, शामक तत्त्व अनायास ही दूर करते रहते है, परन्तु भारी संकट आ उपस्थित होने पर भी यदि साहस न खोया जाये, तो उत्कृष्ट इच्छाशक्ति के सहारे उनका सामना सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

निश्चित ही मृत्यु की विभीषिका और अनिवार्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता, न ही विपत्ति का संकट हल्का करके आँका जा सकता है, परन्तु इतना होते हुए भी जिजीविषा की—जीवन आकांक्षा की सामर्थ्य सबसे बड़ी है और उसके सहारे संकटो को पार किया जा सकता है।

जीवन के लिए संकट प्रस्तुत करने वाले क्षण बहुत लोगो के सामने आते है। उनमे से आधे लोग तो भयभीत होकर हिम्मत हार बैठते है और उस कातर मन:स्थिति मे ही बेमौत मारे जाते है। पेड़ के नीचे चीते को खड़ा देखकर बन्दर हक्का-बक्का हो जाता है और हड़बड़ी, घबड़ाहट मे नीचे आ गिरता है। चीता उसे चुपचाप मुँह मे दबाकर चल देता है। विपत्ति की घड़ी सामने आने पर अक्सर लोग ऐसी ही भयभीत स्थिति मे फँस जाते है और बेमौत मरते है। इसके विपरीत यदि उस कठिन समय मे उनने अपने मनोबल को स्थिर रखा होता तो बहुत सम्भव है कि वह विपत्ति बच जाती। इच्छाशक्ति की प्रचण्डता अंग-प्रत्यंग मे ऐसी अद्भुत सुरक्षा-व्यवस्था उत्पन्न कर देती है, जिसके सहारे माटी का पुतला कही जाने वाली अपनी यही देह मृत्युञ्जय बन जाती है। मनस्वी और मनोबल सम्पन्न लोगो के ऐसे अगणित उदाहरण अपने चतुर्दिक बिखरे देखे जा सकते है।

शरीर की शक्ति, सामर्थ्य सीमित है यह ठीक है, पर शरीर से भी अधिक शक्तिशाली और सामर्थ्यवान है—मनोबल। यह मनोबल दुर्बल से दुर्बल काया को भी मृत्युञ्जयी बना देता है, बड़े से बड़े सकटो से पार करा देता है और इसका अभाव साधारण संकटों मे भी परास्त कर देता है। स्वामी विवेकानन्द ने मनोबल की महत्ता बताते हुए कहा है, "मनोबल ही सुख सर्वस्व है। यही जीवन है और यही अमरता है तथा मनोदौर्बल्य ही रोग है, दु:ख है और मृत्यु है।" मनोबल के द्वारा शरीर को अजेय वज्र के समान बनाया जा सकता है। यदि इस शक्ति का भली-भाँति विकास किया जाये तो साधारण से दीखने वाले मानवीय व्यक्तित्व मे ही ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न की जा सकती है, जो साधारणतया असम्भव मालूम पड़ती है। परन्तु जो लोग शरीर पर मन के नियन्त्रण का तथ्य जानते है, उन्हे यह समझना कठिन नहीं होना चाहिए कि इस शक्ति के बल पर देह के अवयव अपनी प्रकृति बदल सकते है और मन की इच्छानुसार ऐसी हलचले भी कर सकते है, जो सामान्य प्रयत्नो के द्वारा असम्भव ही प्रतीत हो। साम्राज्ञी मेरी-लुइस के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि वह अपनी इच्छानुसार अपने कानो को बिना हाथ से छुए किसी भी दिशा मे मोड़ सकती थी और आगे-पीछे हिला सकती थी।

कहा जाता है कि नींद न आने पर आदमी पागल हो जाता है और अकाल मृत्यु हो जाती है किन्तु ऐसे भी उदाहरण है, जिनमे बिल्कुल न सोने वाले लोग सामान्य जीवन जीते रहे और अपना काम ठीक प्रकार चलाते रहे। पेरिस का प्रख्यात वकील जैक्विसल हरवेट ७२ वर्ष तक जीवित रहा। इस अवधि मे वह ६८ वर्ष तक एक क्षण के लिए भी नही सोया। चार वर्ष की आयु में ही उसकी नींद खो गई थी। हुआ यह था कि फ्रांस के सम्राट सोलहवे लुई को जब सन् १७९३ मे फाँसी दी गई, तो जैक्विसल भी अपनी माँ के साथ वह दृश्य देखने गया। शूली पर चढ़ाये जाने का दृश्य देखकर जेक्विसल के मन मे ऐसी दहशत बैठी कि वह बुरी तरह डर गया और मूर्छित अवस्था मे उसे अस्पताल पहुँचाया गया। वहाँ वह ठीक तो हो गया, पर उसकी नींद बिल्कुल गायब हो गई। वह इसके बाद एक क्षण के लिए भी नही सोया। परन्तु इसका उसके स्वास्थ्य पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

कहा गया है कि मन की शक्ति का कोई वारापार नही है। कई बार तो ये शक्तियाँ अनायास ही जाग्रत हो जाती है, परन्तु ऐसा होता अपवाद रूप से ही है। उन्हें जाग्रत करने के अलग अभ्यास है, जिन्हे योगसाधना भी कहा जा सकता है।

यदि मनोबल का महत्त्व समझ लिया जाये और उसे अर्जित किया जा सके, संचित किया जा सके तो न केवल बड़े-बड़े विचलित कर देने वाले सकटो को आसानी से पार किया जा सकता है, वरन् चमत्कार कही जाने वाली सफलताएँ भी अर्जित की जा सकती है।

मनोबल : एक विभूति, एक प्रत्यक्ष वरदान

यह एक विडम्बना है कि अपना महत्त्व न समझ पाने से मनुष्य परावलम्बी, पराधीन बन जाता है और यथार्थता से वंचित रहकर भ्रम-जंजालो मे भटकता देखा जाता है।

संसार मे अनेको परस्पर विरोधी प्रचलनों की भरमार है। उनमे से जिस किसी को हम स्वीकारते है, उसमे उन प्रतिपादनो की नही, हमारी चयन बुद्धि, वातावरण एवं पूर्वाग्रह के आधार पर बनी हुई अभिरुचि को ही श्रेय जाता है। अस्तु, प्रधानता प्रतिपादन की नहीं, अपनी अभिरुचि या विचार क्षमता की ही रही। यदि उस वातावरण से अपना सम्बन्ध उतना घनिष्ट न होता तो

वातावरण का प्रभाव हमारे मानस की दूसरी स्थिति भी बना सकता था। तब कदाचित् हम उस भिन्न प्रचलन के अनुयायी रहे होते, किन्तु देखा गया है कि हमारी मान्यताओ और अनुभूतियो मे अन्तर आ जाने पर फिर वैसी स्थिति नही रहती और मित्रता घटकर उपेक्षा मे और कभी-कभी शत्रुता मे भी परिणत हो जाती है।

यह ठीक है कि साधारण स्तर के लोगों को वातावरण बनाता और ढालता है, पर यह कथन उन्ही के लिए सही बैठता है, जिनकी मानसिक स्थिति दुर्बल होती है। मनस्वी लोग वातावरण से प्रभावित नही होते। उलटे वे अपने मनोबल से वातावरण को उलट देने मे समर्थ होते है। कुसंग, सत्संग हर किसी को अपनी विशेषता से प्रभावित नही कर सकता। कई बार उत्कृष्ट प्रतिभाओ के सम्पर्क मे आकर कुकर्मी भी सुधर जाते है और सज्जन बन जाते है। यह दो मनोबलो की लड़ाई है। जो प्रबल पड़ता है, वह दूसरे पक्ष को परास्त ही नही कर देता, अपने अनुकूल-अनुरूप भी बना लेता है। यहाँ भी व्यक्तित्व की वरिष्ठता ही स्वीकार करनी पड़ती है।

योग साधनाओ मे हल्के-फुल्के प्रयोग है। न उनमे पहलवानो जैसी कड़ी कसरत करनी पड़ती है और न सरकस मे काम करने वाले नटो जैसा कठिन अभ्यास करना पड़ता है। प्राणायाम मे साँस लेने का स्वाभाविक क्रम यत्किंचित ही बदलना पड़ता है। त्राटक मे दृष्टि को उतना केन्द्रित करना पड़ता है, जितना अस्त्रो का निशाना लगाने वाले लोगों को करना पड़ता है। आसनो मे हाथ-पैरो को यत्किंचित मोड़ना-मरोड़ना ही पड़ता है। यह क्रियाएँ अपने आप मे-शारीरिक दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नही रखती, पर जब उनके साथ मनोयोग जुड़ जाता है और प्रतिफल के माहात्म्य को श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लिया जाता है, तब उन योगाभ्यासो का जादुई प्रतिफल दृष्टिगोचर होता है। इसमें क्रिया का जितना महत्व है, उसकी तुलना मे बीसियो गुना महत्व मनोयोग का है। यदि वह न लगे और मात्र शरीर के अवयवो को हिलाते-डुलाते रहा जाय तो उसका वैसा प्रतिफल नही हो सकता जैसा कि होना चाहिए। किसान, मजदूर, लुहार, बढ़ई, शिल्पी, कारीगर दिन भर कठोर परिश्रम करते है और उनके हर अंग का सचालन होता है। श्वाँस भी गहरी लेते हैं, इस पर भी उनमें योगियो जैसी कोई विशेषता प्रकट नही होती।

देवताओं की कृपा से कई प्रकार के लाभ, वरदान मिलने की बात सोची जाती है और यह भी अनुमान लगाया जाता है कि उनके कुपित होने पर कोई हानि हो सकती है, किन्तु जो लोग उस प्रकार के देवताओ को नहीं मानते, अन्य धर्मावलम्बी या नास्तिक हैं, उनको लगता है कि अविश्वास की मन-स्थिति मे कोई देवता लाभ या हानि नहीं पहुँचा सकते। यह मान्यता की ही महत्ता है, श्रद्धा का ही चमत्कार है। यह तथ्य संदेहास्पद ही है कि अमुक देवता ने कोई बनाव या बिगाड़ किया।

इष्टदेव की या गुरु की शरण मे आने से उद्धार होने की बात कही जाती है, पर ऐसा होता तभी है जब मान्यता और भावना गहरी हो। उसमे कमी रहने पर वैसा कुछ लाभ मिल नहीं पाता, जैसी की कल्पना की गई थी। रबर की गेंद जितने जोर से जिस दिशा मे फेंकी जाय वह अगली वस्तु से टकराकर उसी दिशा में उसी वेग से लौट आती है। यदि फेंकने की शक्ति दुर्बल हो या गेंद ठोस हो तो वैसा बन पड़ना सम्भव नहीं। श्रद्धा का महत्व ठीक ऐसा ही है। उसे जितने वेग से जिस दिशा मे फेंका जाय, उसकी प्रतिक्रिया भी तद्नुरूप ही होती है।

उत्कर्ष के लिए, त्राण के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की बात मे सबसे बड़ी हानि यह है कि व्यक्ति अपनी क्षमता और गरिमा को भूलता जाता है। अतएव वस्तुस्थिति की जानकारी से वह अनभिज्ञ ही बना रहता है। विज्ञजनो को यथार्थता से अवगत होना चाहिए। इस आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए गीताकार ने कहा है—"आत्मा का अपनी ही आत्मा से उद्धार करो। अपने आपको गिराओ मत। अपना आपा ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु।" यह कथन जितना धर्मोपदेश की दृष्टि से सही है, उतना ही मनोविज्ञान की दृष्टि से भी।

परिस्थितियाँ एक सीमा तक ही मनुष्य के उत्थान-पतन में सहायक होती है। यदि वह उनके आगे सिर झुकाले और अपनी विवशता स्वीकार कर ले तो फिर हवा के झोंके के साथ उसे सूखे पत्ते की तरह जिधर-तिधर उड़ते रहना पड़ेगा। यदि वह परिस्थितियो के दबाव को अस्वीकार कर दे, तो उसे झुकाने या विवश करने वाला कोई भी नही हो सकता। इतिहास के पृष्ठो पर अंकित ऐसी अनेको घटनाएँ विद्यमान है, जिसमें मनस्वी लोगो ने प्रतिकूलताओ को चुनौती देते हुए अपना रास्ता आप बनाया है और गई-बीती परिस्थितियो को तोड़ते-मरोड़ते हुए कही से कही पहुँचे है, जबकि उनके अन्यमनस्क साथी जहाँ के तहाँ उसी स्थिति मे बने रहे।

कहा जाता है कि चिकित्सा से व्यक्ति रोगमुक्त होते है, पर यह बात उसी हालत मे सत्य है जबकि रोगी का विश्वास चिकित्सक एवं चिकित्सा पद्धति पर बना रहे। यदि वह डगमगाने लगे तो उपचार का प्रभाव आधा रह जाता है। इसके विपरीत ऐसा भी देखा गया है कि साधुओ के अभिमंत्रित जल या भस्म को खाने, लगाने भर से लोग कठिन, असाध्य समझे जाने वाले रोगो से मुक्ति पा लेते है। चिकित्सा की सफलता में उन्हीं को श्रेय मिलता है, जो अपने रोगी पर अपने ज्ञान, अनुभव एवं औषधि के प्रभाव की धाक जमा लेते हैं। इसलिए चिकित्सा विज्ञान में आया योगदान मनोविज्ञान का

रहने की बात कही गई है। जो मनोविज्ञान से परिचित नही है, वह कदाचित ही सफल चिकित्सक हो सकता है।

साधना क्षेत्र मे भी यही बात है। योगाभ्यास से सम्बन्धित क्रिया-कलापो के, विधि-विधानो के बहुत महत्त्व बताये गये है। उनकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि साधक के मन ने उस महत्त्व को कितनी गहराई से अपनाया। यदि वह उन्हे मखौल मानता रहे और गरिमा स्वीकार न करे, तो कितनी ही देर तक किसी क्रिया-कलाप को करते रहा जाय, कोई असाधारण बात दीख न पड़ेगी। योगाभ्यासो मे गुरु की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया गया है। इसका मात्र यही कारण नही है कि वह विधि-विधान ठीक से बताता रहे, वरन् यह भी है कि शंका-समाधान करता रहे। यदि कहीं अश्रद्धा के बीजांकुर उगे तो उन्हे अपने व्यक्तिगत प्रभाव से सन्तुलित करता रहे।

आध्यात्मिक या भौतिक जीवन में अनेकानेक प्रसंग, अवसर ऐसे आते है, जिसमे प्रतिकूलता भी रहती है और अनुकूलता भी जुड़ी रहती है। यह मनुष्य के स्तर पर निर्भर है कि वह प्रतिकूलताओ से अपनी साहसिकता और सूझ-बूझ के सहारे जूझे और उन्हे सरल बनाने मे सफलता प्राप्त करे। इसी प्रकार अनुकूल परिस्थितियो से लाभ उठाना और समय पर उपयुक्त कदम उठाना व्यक्ति के अपने कौशल पर निर्भर है। इसलिए मनोबल को प्रत्यक्ष वरदान माना गया है, जो उसे अर्जित कर लेते है, प्रगति उनके चरण चूमती है।

मनोबल की सामर्थ्य

साधनो के आधार पर सफलताएँ मिलती है। साधनो को ही बल भी कहते है। प्रत्यक्ष बलो में धनबल, बाहुबल, शस्त्रबल, बुद्धिबल आदि प्रमुख है। इन सबसे बढ़कर है—मनोबल। मनोबल का तात्पर्य शिक्षा की कल्पना, बहुज्ञता, अनुभवशीलता से नही वरन् दृढ निश्चय से है। जब यदि आदर्शो के निमित्त प्रयोग किया जाता है तो उसी को संकल्प बल भी कहते है। जिसकी संकल्प शक्ति जितनी बलवान है, उसे उतने ही स्तर का बलवान कहना चाहिए।

बहुत साधन होते हुए भी लोग साधारण से काम भी नही कर पाते। इनके विचार डगमगाते रहते है। जो काम हाथ मे लिया है, वह उचित भी है या नही। अपने से बन पड़ेगा या नहीं। ऐसे विकल्प मन मे उठते रहते है। कच्चा मन मे एक को छोड़ दूसरा काम हाथ मे लेते है। कुछ दिन बाद दूसरा भी हाथ से छूट जाता है और तीसरे को अपनाते है। इस तरह अनिश्चय की दशा मे शक्ति का अपव्यय होता रहता है। दिशा निश्चित न होने पर कुछ दूर पूर्व को, कुछ दूर उत्तर-पश्चिम को चलने वाले दिन-भर घोर परिश्रम करते रहने पर भी थकान सिर पर ओढ़ते है। अच्छा यही है कि पहले ऊँच-नीच के हर पहलू पर विचार कर लिया जाय। बुद्धिपूर्वक जो निश्चय निकले उसे दृढ़तापूर्वक अपनाया जाय।

काम देखने को शरीर से किया जाता प्रतीत होता है, पर वास्तविकता यह है कि वह मन मे होता है। मनोयोग लगा देने से योजना के सब पक्ष सामने आते है। अन्यथा बाल-कल्पनाएँ मन मे उठती रहती और पानी के बबूले की तरह अस्त-व्यस्त होती रहती है। बच्चे सारे दिन उछल-कूद करते रहते है। इनमे से हर एक क्रिया के पीछे कुछ उद्देश्य होता है, पर ये उद्देश्य ठहरने नहीं पाते। एक के बाद दूसरी इच्छा सामने आ जाती है और पिछली को छोड़कर अगली मे हाथ डालते है। इस प्रकार दिन भर मे ढेरो मनोरथ सामने आते हैं और वे सभी आधे-अधूरे रहकर अस्त-व्यस्त हो जाते है। इसी को बाल-बुद्धि कहते है। इसी प्रकार की रीति-नीति कितने ही बड़ी आयु के व्यक्ति भी अपनाते देखे जाते है। फलतः उनमे से एक भी पूरा नहीं हो पाता।

काम को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि योजना सर्वांगपूर्ण बने। उसके लाभ-हानि पर सांगोपांग विचार किया जाय। साधन जुटाने के लिए जो करना पड़ेगा, उसका मानचित्र मस्तिष्क में रहना चाहिए। जो कार्य वर्तमान साधनो के सहारे किया सकना सम्भव है, उसमे हाथ डाला जाय। भविष्य मे जितने साधन बढ़ते जायँ उतने काम बढ़ाते चला जाय। साधन कम पड़ें तो काम की रूप-रेखा मे काँट-छाँटकर ली जाय। यह सब तभी बन पड़ता है जब प्रस्तुत योजना पर समग्र मनोयोग एकत्रित किया जाय। अधूरे चिन्तन से न पूरी रूप-रेखा समझ मे आती है और न उसका क्रम बनाने का तारतम्य ठीक से बनता है। दिलचस्पी जितनी जिस काम मे रहेगी, वह कार्य ठीक तरह बन पड़ेगा। साधनो का नियोजन भी तभी होता है, जब पूरा मन उसमे लग पा रहा है अन्यथा उपयुक्त साधन होते हुए भी उनका उपयोग ठीक तरह नही हो पाता। आधे-अधूरे मन से किये हुए काम सदा अधूरे रहे है।

मनोबल का एक अर्थ हिम्मत है। जिसमे दिलचस्पी भी शामिल है। किसी काम को रुचिपूर्वक किया जाय तो उसका प्रतिफल दूसरा होगा और बेगार भुगतने की तरह निबटाया जाय तो उसकी उपलब्धि बिल्कुल दूसरी होगी। रुचिपूर्वक बया घोसला बनाती है तो उसकी सुन्दरता और मजबूती देखते ही बनती है। मंदबुद्धि कबूतर आड़ी-तिरछी लकड़ियाँ डाल देता है, उसका परिणाम ऐसे घोसले के रूप में सामने आता है, जो जरा-सा हवा का झोका भी बरदास्त नही कर सकता। नौकरो द्वारा कराये गये काम में और मालिक के द्वारा, अपने हाथो किये गये काम मे जमीन-आसमान जैसा अन्तर होता है। यही कारण है कि मजूरो द्वारा कराई गई लम्बी-चौड़ी काश्त मे भी कुछ लाभ नही होता वरन् उल्टा घाटा जाता है। इसके विपरीत जिस खेती को घर मालिक मिल-जुलकर करते हैं। वह

सोना उगलती है। सेना का इतिहास इसी तथ्य से भरा पड़ा है जिसके सैनिक भले ही थोड़े रहे हैं पर जो हार-जीत को निजी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर लड़ते है, वे कमाल दिखाते है। सफलता उनके चरण चूमती है, किन्तु जो नौकर की तरह जान बचाते हुए लड़ते है, उनकी संख्या बहुत होते हुए भी, साधन बढ़िया होते हुए भी हारते है। मनोबल ऊँचा बना रहे तो पीछे हटती हुई सेना भी पुनः आक्रमण करके अपने खोये हुए इलाके पुनः प्राप्त कर लेती है। इसके अभाव मे बेखबरी से ग्रसित सेनापति अपने जीते हुए इलाके भी हाथ से गँवा बैठते है।

संसार मे महापुरुषो का अपना विशेष इतिहास है। कोलम्बस, नैपोलियन आदि के पराक्रम ऐसे है कि जिन्हे पढ़-सुनकर दाँतो तले उँगली दबानी पड़ती है। इनकी शारीरिक, मानसिक बनावट मे कोई खास विशेषता नही थी। वे दूसरे लोगो जैसे ही थे पर बढ़े-चढ़े मनोबल के सहारे बड़ी योजनाएँ बनाने और उसे सफल बनाने मे जो पराक्रम दिखाया, उसके पीछे उनका बढ़ा हुआ मनोबल ही जादू-चमत्कार दिखाता रहा है।

कितने ही महान आन्दोलन संसार मे चले और व्यापक बने है। इनके मूल मे एक दो व्यक्तियो का ही पराक्रम काम करता रहा है। जो अपनी उड़ाई आँधी के साथ अनेको को आसमान तक उठा ले गये, वे न तो महाबली योद्धा थे और न साधन सम्पन्न करोड़पति। गाँधी ने जो आँधी चलाई उसके साथ लाखो पत्ते और तिनके जैसे हस्ती वाले गगनचुम्बी भूमिकाएँ निभाने लगे। ऐसे आन्दोलन समय-समय पर अपने देश और विदेशो मे उठते रहे और व्यापक बनते रहे है। इनके मूल मे एक दो मनस्वी लोगो के संकल्प और प्रयत्न ही काम करते रहे है। इसीलिए संसार के मनुष्यो मे सबसे बड़ा बल मनोबल ही माना गया है। संकल्प और निश्चय तो कितने ही व्यक्ति करते है, पर उन पर टिके रहना और अन्त तक निर्वाह करना हर किसी का काम नही। विरोध, अवरोध सामने आने पर कितने हिम्मत हार बैठते है और किसी बहाने पीछे लौट पड़ते है. पर जो हर परिस्थिति से लोहा लेते हुए अपने पैरो अपना रास्ता बनाने और अपने हाथो अपनी नाव खेकर उस पार तक पहुँचाते है, ऐसे मनस्वी विरले ही होते है। मनोबल ऐसे साहस का नाम है, जो समझ-सोचकर कदम उठाते और उसे प्राणपण से पूरा करते है।

चाहे व्यक्तिगत जीवन हो, चाहे सामाजिक, सफलता के लिए मनुष्य का मनस्वी होना स्वाभाविक है। पैसा से पैसा कमाने की विद्या तो वणिकबुद्धि को भी आती है। अपराधियो जैसी हिम्मत तो चोर-उचक्को मे भी होती है। आवेश मे आकर लड़-झगड़ बैठना तो क्षुद्र स्तर के व्यक्ति भी कर सकते है किन्तु जिसमे अपना कोई व्यक्तिगत लगाव न होता हो, मात्र सिद्धान्तो का परिपोषण अथवा सार्वजनिक हित साधन ही बन पड़ता हो ऐसे कामो मे हाथ डालना-उनके मार्ग मे आने वाले अवरोधो से टकराना, बिगड़ती हुई परिस्थितियो मे धैर्य न खोने और साथियो का उत्साह ढीला न पड़ने देना हर किसी का काम नही है। ऐसे लोगो मे एक ही विशेषता पाई जाती है, उसका नाम है—मनोबल।

मनोबल किसी-किसी में जन्मजात भी होता है। पर यह आवश्यक नही। उसे अभ्यास से बढ़ाया जा सकता है। छोटे कामो मे हाथ डालना और उन्हें पूरा करके ही चैन लेना, यह मनोबल बढ़ाने का तरीका है। एक के बाद दूसरा काम हाथ मे लेने और उनकी कठिनाइयो से निपटना, यही है वह मार्ग, जिस पर चलते हुए मनोबल अर्जित किया जा सकता है। यह विभूति जिसके हाथ लग गई समझना चाहिए कि महामानव बनने का सूत्र उसके हाथ लग गया।

मनोबल द्वारा आतंक का शमन

सत्साहस जिसे आत्मबल कहते है, सामने की कठिन परिस्थितियो को सरल कर सकता है, कठोरो को नरम बना सकता है और आक्रमण की क्षमता को कुंठित कर सकता है।

प्राचीनकाल की ऐसी कितनी ही घटनाएँ है। बुद्ध ने दुर्दान्त अंगुलिमाल को पानी-पानी कर दिया था शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, नारद आदि के चरित्रो मे ऐसी घटनाओ का वर्णन है, जिनमे उनके प्राणघातक शत्रु भी उनके समक्ष नतमस्तक हो गये थे और विरोध छोड़कर सहयोगी, आज्ञाकारी के रूप मे परिवर्तित हुए थे।

चेतना क्षेत्र की इस महती शक्ति का कभी भी कोई भी प्रयोग कर सकता है और उसके चमत्कारी प्रतिफल हाथो-हाथ देख सकता है।

सर्प का एक नाम विषधर है। विषैले जन्तुओ मे वे ही सबसे अग्रणी होते है। यो बिच्छू भी कम जहरीला नही, उसके दंश की जलन एवं पीड़ा असह्य होती है जबकि साँप के काटने पर अफीम पीने जैसा नशा ही आता है और पीड़ा नही होती। फिर भी सर्प के काटने से जितने मरते है, उनकी तुलना मे बिच्छू दंश से कम ही मरते है। इसके बाद ही अन्यान्य विषैले जन्तुओ की गणना होती है।

यो सभी सर्प तो विषैले नहीं होते। उनमे से बहुत से मात्र आकृति की दृष्टि से ही डरावने होते है। जहर उनमे नाम मात्र का होता है। फलत. काटने पर मरने का खतरा नही रहता। विषैले सर्पो की कुछ जातियाँ प्रसिद्ध है। इनमे से कुछ तो ऐसी हैं कि काटना तो दूर उनकी फुँसकार भर प्राण हरण कर सकती है। विषधर जातियों में भारत मे प्रायः १७१ जातियाँ प्रख्यात है। इनमें कोबेरा,

बाइपर करैल, रसैल, घोड़ा पछाड़, धामन, तक्षक आदि बहुत प्रसिद्ध है।

आमतौर से सर्पों से सभी डरते है और उन्हे काल रज्जु मानते है, पर अब प्रयोग-परीक्षण मे यह सिद्ध हुआ है कि उन पर भी भावना का प्रभाव पड़ता है और यदि उन्हे डराया, छेड़ा जाय और स्वयं भयभीत न हुआ जाय, तो विषैले सर्प भी नरम पड़ जाते है और बिना हानि पहुँचाये मनुष्य के साथ रहने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस अविश्वस्त तथ्य को विश्वस्त सिद्ध करने के लिए दक्षिण भारत में पिछले दिनों ऐसे कई प्रदर्शन हुए है, जिनमे कुछ साहसी लोगो ने लम्बे समय तक विषधर जाति के सर्पों के साथ निरन्तर रहने का कीर्तिमान स्थापित किया है। इनके निवास ग्रह पारदर्शीकॉंच के बनाये गये है। भीतर हवा, रोशनी पहुँच सके और रहने वाले को शौच, स्नान, भोजन, शयन आदि की सुविधा रह सके, ऐसे कक्ष बनाये गये। ताकि बाहर के लोग भीतर की गतिविधियों को भली प्रकार देख सकें।

ऐसे प्रदर्शनो का कीर्तिमान स्थापित करने वालो को सर्पों के विषधर होने की बात सिद्ध करनी पड़ती है, साथ ही यदि मृत्यु हो जाय तो उसकी लिखित जिम्मेदारी भी अपनी घोषित करनी पड़ती है।

ऐसे सर्प-सान्निध्य प्रदर्शन की एक घटना 'गिनीज बुक ऑफ रिकार्ड्स' मे भी अंकित है। सन् १९७९ मे एक अठारह वर्षीय अफ्रीकी लड़की लेइयवान हेनवर्ग ने ६५ विषैले सर्पों के साथ ६५ दिन रहने का कीर्तिमान स्थापित किया था। जिसे पिछले दिनो एक दक्षिण भारत के युवक ने तोड़ा व अपना नाम १९८२ की रिकार्ड बुक मे शामिल करवाया।

इस प्रकार के प्रदर्शन गत दो वर्षों मे भारत मे बहुत हुए है। पूना मे नीलम कुमार खरे, ७० सॉंपों के साथ ७० घण्टे तक रहे। इसके बाद इन प्रदर्शनो की होड़ लग गई। केरल के एक बिजली कर्मचारी टी. वेलायुधन ने ७५ दिन तक ७५ सर्पों के साथ समय बिताया। यह आयोजन बड़ा था। इसे देखने बहुत लोग आये। ख्याति मिली और दर्शकों पर एक रुपया टिकट लगा देने से आजीविका भी अच्छी हुई। तमिलनायडू शिवाकाशी की वेत्रिवन्दन ने १६७ सॉंपो के साथ रहकर दिखाया। भेलापुरम की एक महिला फातिमा बीबी भी इस प्रदर्शन मे अपना स्थान बना गई। वे गाड़ी मे एक बच्चा भी साथ लेकर कॉंच के कमरे मे सॉंपो के साथ रहीं।

मदुराई के टी. पी. हारि ने अपने कक्ष मे १०१ सॉंप रखे। जिनमे ६७ कोबरा, १५ बाइपर, १३ करैत और ६ रसैल बिरादरी के थे। एक सॉंप के काट लेने पर उन्हे अस्पताल भर्ती होना पड़ा और प्रदर्शन बीच मे ही छूट गया। वे बच गए पर अभी भी बड़ा संकल्प लेने को कटिबद्ध है। कोयम्बटूर मे एन. पार्थ सारथी अपना प्रदर्शन १०० दिन तक करने वाले थे। उनके साथ १५० सॉंप थे। उनने सर्पों के अतिरिक्त काले बिच्छुओं का एक झुण्ड रखा। पर यह प्रदर्शन ३४ दिन मे ही बन्द करना पड़ा।

अन्तिम सफल प्रदर्शन कोच्चि का सत्ताईस वर्षीय डाक्टर टायलाम्बी का था। उनने १२७ दिन १५२ सॉंपो के साथ बिताये। १२ अक्टूबर, १९८० से लेकर १५ फरवरी, १९८१ तक यह प्रदर्शन चला। इससे आगे की चुनौती और किसी ने नहीं दी तो उसे विश्व रिकार्ड की गिनीज बुक मे अंकित करा दिया गया है।

डाक्टर नाम्बी का कथन है कि सॉंप जहरीला तो अवश्य होता है, पर उसे निर्भयता, निश्चिन्तता और स्नेह-सौजन्य की अनुभूति कराई जा सके तो यह सर्प हानिरहित जन्तु है। यह अकारण हमला नहीं करता। डराने और छेड़ने पर ही उसका क्रोध उमड़ता है। यदि उसे दुलार-सहकार की अनुभूति कराई जा सके, तो वह मनुष्यो से दूर नही भागता वरन् उनके साथ रहना पसन्द करता है।

विषैले सर्पों के साथ रहकर खतरे भरा जीवन जीकर दिखाने के पीछे प्रदर्शन वृत्ति काम करती है, यह कहना ठीक नही। यह तो अन्तः की एक प्रसुप्त सामर्थ्य की नगण्य-सी अभिव्यक्ति भर है। आत्मबल हर किसी की अमूल्य सम्पदा है। शरीर समर्थ हो, भुजाएँ बलशाली हो पर यदि अन्दर से उसका सुनियोजन करने वाली सामर्थ्य न उभर पाये, तो वह जीवन व्यर्थ है। ऐसा शरीर तो मात्र अपना भार ढोता रहता है। शरीर भले ही बलवान न हो, मन में यदि अनीति से जूझने की, खतरो से खेलने की, आत्म-रक्षा हेतु लड़-भिड़ने की सामर्थ्य है, तो ऐसा व्यक्ति कई गुने अधिक शक्तिशाली व्यक्तियो को भी प्रचण्ड आत्म-बल के सहारे परास्त कर देता है।

आत्मबल सम्पन्न मनुष्य किसी से भी नहीं डरता। सर्प से भी नहीं, सिंह से भी नहीं। शिवाजी सिंहनी का दूध दुहकर लाए थे और बालक भरत सिंह-शावकों के साथ खेलता था। निर्भयतायुक्त आत्मबल के ऐसे चमत्कार कहीं भी देखे जा सकते हैं।

मनोबल से पदार्थों का स्थानान्तरण

महाभारत युद्ध का बारहवाँ दिन था। कौरव सेना के सेनाध्यक्ष द्रोणाचार्य ने उस दिन चक्रव्यूह की रचना करके यह निश्चय किया था कि इसके द्वारा वे पाण्डवो का संहार कर डालेंगे क्योंकि उनमे से कोई अर्जुन के अतिरिक्त चक्रव्यूह को तोड़ने की विधि नहीं जानता और अर्जुन को हम चालाकी से युद्ध क्षेत्र से दूर हटा देंगे। यह चाल किसी हद तक सफल हो गई और जब राजा युधिष्ठिर को इसका रहस्य मालूम हुआ तो वे घबरा गये। इस परिस्थिति मे अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु आगे बढ़ा और कहने लगा कि घबराने का कोई काम नही, मै निश्चय ही चक्रव्यूह को भंग कर दूँगा—

द्रोणस्य दृढमत्युग्रमनीकप्रवरं युधि।
पितृणां जयमाकांक्षन्नवगाहेऽविलम्बितम्॥
नाहं पार्थे न जातः स्यां न च जातः सुभद्रया।
यदि मे संयुगे कश्चिज्जीवितो नाद्यमुच्यते॥

अर्थात्—"हे महाराज ! मै अपने पितृवर्ग की विजय अभिलाषा से युद्ध-स्थल मे द्रोणाचार्य की अत्यन्त भयंकर, सुदृढ एवं श्रेष्ठ सेना मे शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ। यदि आज मेरे साथ युद्ध करके कोई भी वीर बच जाय, तो मै अर्जुन का पुत्र नहीं और सुभद्रा की कोख से मेरा जन्म नहीं।"

इसके पश्चात् अभिमन्यु ने शत्रु सेना में घुसकर जो वीरता दिखाई और अकेले ही बड़े-बड़े महारथियो को भगा दिया, उसकी कथा बहुत विख्यात है और उस वीर बालक के अद्भुत शौर्य की प्रशंसा में सैकड़ों पुस्तके लिखी जा चुकी है। पर चक्रव्यूह वेधन करके फिर लौटने की विधि की जानकारी न होने से अन्त मे उस अकेले को कई महारथियो ने मिलकर घेर लिया और अन्यायपूर्वक आक्रमण करके मार डाला। जब यह संशप्तकों को हराकर लौटने पर अर्जुन को ज्ञात हुआ, तो उसने इस घटना के मुख्य जिम्मेदार जयद्रथ को दूसरे ही दिन संध्याकाल तक मार डालने की शपथ खाई और प्रण किया कि "अगर मै उसे कल सूर्यास्त से पूर्व न मार डालूँ, तो स्वय जलकर मर जाऊँगा।"

दूसरे दिन युद्ध मे अर्जुन ने भयंकर अस्त्र-शस्त्रो से युद्ध किया, उसकी कथा यहाँ वर्णन नहीं की जा सकती। पर फिर भी कौरवो ने अपनी पूरी शक्ति केन्द्रित करके जयद्रथ की रक्षा का प्रयत्न किया। जिससे अति भयकर युद्ध होते-होते सूर्यास्त का समय निकट आ पहुँचा। यह देखकर भगवान कृष्ण को चिन्ता हुई और उन्होने सोचा कि इस तरह लड़कर जयद्रथ नही मारा जा सकेगा। उन्होने इस सम्बन्ध मे कहा—

एतान्निर्जित्य रणे षड् पुरुषर्षभ।
न शक्या सैन्धवो हन्तुं यतो निर्व्याजमर्जुन॥

"हे नर-श्रेष्ठ अर्जुन ! रणभूमि मे इन छः महारथियो को परास्त किये बिना सिन्धुराज को केवल माया द्वारा ही मारा जा सकता है।"

योगमन्त्र विधास्याम सूर्यस्यावरणं प्रति।
अस्तंगत इति व्यक्तं द्रक्ष्यत्येकः स सिन्धुराज॥

"अतः मै सूर्यदेव को ढकने के लिये कोई योगिक क्रिया करता हूँ, जिससे अकेला सिन्धुराज (जयद्रथ) ही उसे अस्त होता हुआ देख सके।"

हर्षेण जीविताकांक्षी विनाशं तव प्रभो।
न गोप्स्यति दुराचारः स आत्मानं कथंचन॥

"तब यह दुरात्मा अपने जीवित रहने और तुम्हारे विनाश की आशा से प्रसन्न होकर अवश्य ही तुम्हारे सामने निकल आयेगा।"

तत्र छिद्रे प्रहर्तव्यं त्वयास्य कुरुसत्तम।
व्यपेक्षा नैव कर्तव्या गतोऽस्तमिति भास्करः॥

"हे कुरुश्रेष्ठ ! ऐसा अवसर आने पर तुम तुरन्त उसके ऊपर प्रहार करना। इस बात का भ्रम मत करना कि सूर्य वास्तव में अस्त हो गया है।"

अन्त में ऐसा ही हुआ और अन्यायाचरण करने वाला जयद्रथ अर्जुन के बाणो से नष्ट होकर भूमिशायी हो गया। इस कथा मे भगवान कृष्ण द्वारा समय से पूर्व सूर्य को अस्त दिखला देने और उसे फिर प्रकट कर देने की जो घटना वर्णन की गई है, आधुनिक युग के अनेक शिक्षित व्यक्ति उस पर अविश्वास करते है। उनका कहना है कि ऐसा कार्य वास्तविक जगत में हो सकना सम्भव नही, यह कवि की कल्पना मात्र है। यद्यपि काव्य-ग्रन्थो में कल्पनाप्रसूत घटनाओ का मेल कोई असम्भव बात नहीं है और पौराणिक कथाओ के लिये पूरे ऐतिहासिक अथवा वैज्ञानिक प्रमाण देना भी आवश्यक नहीं, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य सामान्य जनता को धर्मोपदेश, धर्माचरण की प्रेरणा देनी होती है।

अब अमरीका के एक मनोविज्ञान-शास्त्री डॉ. राल्फ एलेग्जेण्डर ने इच्छा-शक्ति को जाग्रत करके बादलो को इच्छानुसार हटाने और पैदा कर देने का प्रयोग किया है। वे बहुत वर्षों से मन को एकाग्र कर उसकी शक्ति से बादलों को प्रभावित करने का प्रयोग कर रहे थे। सन् १९५१ मे उन्होंने मैक्सिको सिटी मे १२ मिनिट के भीतर आकाश मे कुछ बरसाती बादल जमाकर दिये। उस अवसर पर कई स्थानो के वैज्ञानिक और अन्य विद्वान वहाँ इकट्ठे थे। पर डा. एलेग्जेण्डर की शक्ति के सम्बन्ध मे उनमे मतभेद बना रहा। तो भी सबने यह स्वीकार किया कि जब आकाश मे एक भी बादल न था, तब दस-बारह मिनिट मे बादल पैदा हो जाना और थोड़ी बूँदा-बाँदी भी हो जाना आश्चर्य की बात अवश्य है।

इसलिये डा. एलेग्जेण्डर ने फिर ऐसा प्रयोग करने का निश्चय किया, जिसमे किसी प्रकार का सन्देह न रहे। उन्होने कहा कि "वे आकाश मे मौजूद बादलो मे से जिसको दर्शक कहेगे, उसी को अपनी इच्छा-शक्ति से हटाकर दिखा देगे।" इसके लिए ओण्टैरियो ओरीलिया नामक स्थान मे १२ दिसम्बर, १९५४ को एक प्रदर्शन किया गया। उसमे लगभग ५० वैज्ञानिक, पत्रकार तथा नगर के बड़े अधिकारी इस चमत्कार को देखने के लिए इकट्ठे हुये। नगर का मेयर (नगर-पालिकाध्यक्ष) भी विशेष रूप से बुलाया गया, जिससे इस प्रयोग की सफलता मे किसी को सन्देह न हो। यह भी व्यवस्था की गई कि जब बादलो को गायब किया जाय, तो कई बहुत तेज कैमरे उनका चित्र उतारते रहे। इसकी आवश्यकता इसलिये

पड़ी कि कुछ लोगो का ख्याल था कि डा. एलैग्जैण्डर दर्शको पर 'सामूहिक हिप्नोटिज्म' का प्रयोग करके ऐसा दृश्य दिखा देते है, वास्तव मे बादल हटता नही। इससे मनुष्य का मन भ्रम मे पड़ सकता है, पर तब आटोमेटिक कैमरा उस दृश्य का चित्र उतार लेगा, तो सन्देह की गुंजाइश ही नहीं रहेगी। कैमरे के चित्र मे भी वही बात आयेगी, जो उसके सामने होगी। आगे की घटना के विषय मे एक स्थानीय समाचार-पत्र 'दी डेली पैकेट एण्ड टाइम्स' ने जो विवरण प्रकाशित किया वह इस प्रकार है—

"जब सब लोग इकट्ठे हो गये, तो डा. एलैग्जैण्डर ने उनसे कहा कि वे स्वयं एक बादल चुन ले, जिसको गायब कराना चाहते हो। क्षितिज के पास बहुत से बादल थे। उनके बीच-बीच मे आसमान भी झलक रहा था। उनमे बादलो की एक पतली-सी पट्टी काफी घनी और अपनी जगह पर स्थिर थी। उसी को प्रयोग का लक्ष्य बनाया गया। कैमरे ने उसकी कई तस्वीरे उतार ली।

"डॉ. एलैग्जैण्डर ने थोड़ी देर प्राणायाम किया, भौहें सिकोड़ी (त्राटक की क्रिया की) और टकटकी लगा कर बादलो की उसी पट्टी की ओर देखने लगे। अकस्मात् उन बादलो मे एक विचित्र परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। बादलो की वह पट्टी चौड़ी होने लगी और फिर धीरे-धीरे पतली होने लगी। कैमरे चालू थे और हर सैकण्ड मे एक तस्वीर उतारे जा रहे थे। मिनट पर मिनट बीतते गये, पट्टी और पतली पड़ने लगी, उसका घनत्व भी कम होने लगा। धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा मानो कोई रूई को धुन-धुनकर अलग कर रहा है। आठ मिनट के भीतर सब लोगो ने आश्चर्य से देखा कि वह पट्टी आसमान से बिल्कुल गायब हो गई, जबकि आस-पास के बादल जहाँ के तहाँ स्थिर रहे।"

"लोगो की आँखे आश्चर्य से फटी जा रही थी। पर डॉ. एलैग्जैण्डर स्वयं अभी संतुष्ट नही थे। हो सकता है, कुछ लोग यह समझे कि यह सिर्फ दैवयोग की बात है। बादल तो बनते-बिगड़ते ही रहते है। उन्होने लोगो से फिर किसी दूसरे बादल का चुनाव करने को कहा और फिर कैमरे उस नये बादल पर केन्द्रित कर दिये गये। उस दिन तीन बार यही प्रयोग हुआ और तीनो बार डाक्टर एलैग्जैण्डर ने सफलतापूर्वक बादलो को गायब कर दिया। जब कैमरे की फिल्मे साफ की गई और फोटो निकाले गये, तो देखा कि हर बार बादलो का गायब होना उनमे पूरी तरह उतर आया है। तब वहाँ के प्रमुख अखबार ने इस समाचार को 'क्लाउज डेस्ट्रायड बाई डाक्टर' (बादल डाक्टर द्वारा नष्ट किये गये) को बहुत बड़ा हैडिंग देकर प्रकाशित किया।

अमरीका मे इस विद्या को 'साइकोकिनासिस' अथवा पी. के. कहते है और इसका अभ्यास करने वालो का दावा है कि कुछ समय पश्चात् वे इसके द्वारा बादलो को ही नहीं अन्य अनेक पदार्थों को भी इधर-उधर कर सकेंगे।

जिस विद्या को अमरीका वाले अब सीखना आरम्भ कर रहे है, वह पूर्वी देशो मे हजारो वर्षों से उपयोग मे लाई जा रही है। आजकल भी मलाया के ध्यान-योगी 'बमोह' इसी प्रकार बादलो को हटाकर मेह बरसना रोक सकते हैं। उनकी यह शक्ति इतनी सुनिश्चित मानी जाती है कि आधुनिक विचारो के व्यक्ति भी आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता लेते हैं। अभी एक क्रिकेट मैच के समय 'बमोह' द्वारा प्रयोग करने के फलस्वरूप मैच कई दिन तक निर्विघ्न चलता रहा, जबकि उसके आस-पास सर्वत्र मूसलाधार वर्षा होती रही।

वास्तव मे ये क्रियाएँ योग की साधारण शक्तियो से सम्बन्धित है। 'योग-दर्शन' मे कहा गया है—

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद्भूतजयः।

अर्थात्—"पाँचो भूतो के स्थूल-स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय, अर्थतत्व मे संयम करने से भूतों पर जय प्राप्त होती है। अर्थात् उस अवस्था मे सभी भूततत्व योगी की इच्छानुसार चलते हैं।"

बादलो का हटाना तो प्राणायाम को पूरी तरह सिद्ध कर लेने पर ही सम्भव हो जाता है। ऐसी स्थिति मे यदि महायोगी भगवान कृष्ण ने अवसर आने पर दस-पाँच मिनट के लिये सूर्य के सम्मुख कृत्रिम (मायामय) बादल उत्पन्न करके उसके अस्त हो जाने का भ्रम उत्पन्न कर दिया हो, तो इसमे कोई असम्भव बात नहीं। पर भारतीय प्रणाली की मुख्य विशेषता यही है कि उसका लक्ष्य आध्यात्मिक रहा है। ऐसी चमत्कारी शक्तियो की प्राप्ति होने पर भी साधको के लिए यह स्पष्ट आदेश दे दिया जाता है कि उनका उपयोग स्वार्थ के लिये न करके परमार्थ सम्बन्धी कार्यों के लिये ही किया जाय।

मनोबल अनेकानेक सफलताओं की कुंजी

शरीरबल को बढ़ाने के लिए आहार, व्यायाम एवं विशेष उपचारो का सहारा लिया जाता है। मनोबल की इससे भी अधिक आवश्यकता समझी जानी चाहिए। मन का शरीर पर पूरी तरह नियन्त्रण है। विज्ञान की नवीनतम शोधो ने उन ऋषि-निर्धारणों की पुष्टि की है। संकल्पबल से स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरो का उत्कर्ष होता है। यदि मनोबल गिरे या विकृत दिशा मे चले, तो उसका परिणाम पतन और पराभव के रूप मे सामने आयेगा। दुर्बलता और रुग्णता चढ़ दौड़ेगी। हारा हुआ मन जीवन मे निराशा भर देता है और तरह-तरह के भय, उद्वेग, संदेह की स्थिति बनाकर मनुष्य को चिन्ताओं और आशंकाओं से ग्रसित बना देता है। यह कथन आंशिक रूप से सही है कि शरीर बीमार होने पर मनोबल भी

गिरता है, किन्तु यह निष्कर्ष शत-प्रतिशत सही है कि मनोबल गिरेगा, तो शरीर-विचित्र रोगो से घिरने लगेगा। प्रत्यक्षतः कोई रोग चिकित्सको की समझ मे न आये, तो भी स्थिति ऐसी ही बनी रहेगी, मानो रुग्णता ने काया को जराजीर्ण-जर्जर बना दिया है और उसकी क्रिया शक्ति को बुरी तरह खीच लिया है।

इसके विपरीत यदि मनोबल दृढ हो, तो गाँधी और विनोबा जैसे दुर्बल दीखने वाले भी अपने संकल्पबल के सहारे बड़े-बड़े संकल्प करते और अपनी मानसिक समर्थता के सहारे उन्हे पूर्ण करके दिखाते है। जिनका मनोबल गिर गया, वे साधारण कामो को भी पर्वत के समान भारी मानते है। कुछ करने के लिए न हाथ आगे बढ़ते हैं, न पैर चलते है। वह उत्साह और साहस ही है, जिसके सहारे सामान्य लोग बड़े काम कर दिखाते हैं। नैपोलियन भी शारीरिक दृष्टि से सामान्य मनुष्यो जैसा ही था, पर जिस भी काम को हाथ मे लेता, उसे हर कीमत पर पूरा करके दिखाता था। इतिहास ऐसे ही महामानवो की गरिमा से भरा पड़ा है। जिसके पास बलिष्ठता, शिक्षा, सम्पन्नता और अनुकूलता जैसा कुछ न था, पर वे आत्मविश्वास के सहारे आगे बढ़े और दृढ़ता अपनाकर कठिन दीखने वाले लक्ष्य की पूर्ति तक जा पहुँचे।

शरीर, रक्त-माँस के सहारे ही सब कुछ नही कर लेता, उसके भीतर असली शक्ति मनोबल की रहती है, जो मस्तिष्क मे उत्पन्न होकर नस-नाड़ियो के सहारे समूची काया मे बिजली की तरह दौड़ती रहती है। बिजली ही बल्बो को चमकाती, पखो को घुमाती, रैफ्रीजरेटर को ठण्डा रखती, हीटर को गरमाती और टेलीफोन को वार्त्तालाप कराने की क्षमता से भरा-पूरा रखती है। यदि इन यन्त्र-उपकरणो मे बिजली न पहुँचे, तो वे टूट-फूट न होते हुए भी निकम्मे पड़े रहते है। यही बात शरीर के सम्बन्ध मे भी है, वह सामान्य स्थिति मे रहते हुए भी अपने को अशक्त अनुभव करता रहता है और समर्थ होते हुए भी असमर्थो से गई-बीती स्थिति अनुभव करता है। मनोबल साथ दे, तो बात ही दूसरी है। भीष्म का सारा शरीर बाणो से बिंध रहा था, फिर भी वे उत्तरायण सूर्य आने तक, छः महीने उसी शरीर मे प्राण धारण किये रहे। राणा सांगा को साठ गहरे घाव लगे थे, तो भी वे लड़ाई के मैदान मे पूर्ववत् अपना जौहर दिखाते रहे। आद्य शंकराचार्य भगंदर के फोड़े की व्यथा १६ वर्ष तक लगातार सहते हुए भी ग्रन्थ लेखन और देशव्यापी भ्रमण करते रहे। विनोबा ने अल्सर के फोड़े की व्यथा सहते हुए भी, बीस वर्ष उसी स्थिति मे भू-दान के निमित्त हजारो मील का परिभ्रमण जारी रखा। उसके विपरीत मनोबल के अभाव मे पहलवानो जैसी काया वाले भी कुछ कर नही पाते। पेड़ के नीचे बैठे चीते से आँखे मिलते ही पेड़ पर बैठा बन्दर भयभीत होकर नीचे गिर पड़ता है और देखते-देखते चीते का शिकार बन जाता है। अजगर को नीचे देखकर भयभीत पक्षी भी इसी प्रकार पेड़ पर से नीचे टपक पड़ते हैं और सहज ही उसके शिकार बन जाते हैं। रस्सी को साँप और झाड़ी को भूत समझकर डरपोक मन वाले, उसी भ्रम-जंजाल मे अपने को बुरी स्थिति मे डाल लेते हैं और डर के कारण अकारण ही मर जाते है।

एक बार यमराज ने किसी क्षेत्र में एक हजार व्यक्ति मार लाने के लिए मृत्यु को भेजा। जब वह मारकर लौटी, तो गिनने पर वे दो हजार निकले। अधिक मारने का कारण पूछने पर मौत ने उत्तर दिया कि उसने तो ठीक नियत सख्या मे ही मारे, शेष तो डर के मारे अपने आप मर गये और भीड़ के साथ अपने आप चल दिये। अधिकांश मामलो मे ऐसा ही होता है। डरपोको के जरा सा खटका देखते ही हाथ-पैर फूल जाते हैं और प्रतिकार के लिए जो कर सकते थे, वह भी नहीं कर पाते है। जबकि टिटहरी जैसे छोटे पक्षी का समुद्र को सुखाकर अण्डे वापिस लेने जैसा असम्भव दीखने वाले संकल्प भी पूरे होते देखे गये हैं।

हमें अपना शरीरबल ही नहीं, मनोबल भी बढ़ाना चाहिए। छोटे-मोटे काम हाथ मे लेकर उन्हे हर हालत में पूरा करने का निश्चय किया जाय, तो कार्य मे कई तरह की अड़चने आने पर भी वे पूरे हो जाते है। इस प्रकार धीरे-धीरे बड़े और कड़े कामो को कर गुजरने की प्रतिज्ञा लेकर, उसे करने मे जुट जाने वाले लोग, अपना मनोबल क्रमशः बढ़ाते रहते है और आन्तरिक और बाहरी कठिनाइयो को पैरो तले कुचलते हुए, सफलता की ऊँची और लम्बी मंजिले पूरी करते है।

शरीरशास्त्रियो ने देखा है कि मनोबल का प्रयोग करने वाले रोगी अपने जीवनेच्छा को प्रखर करके शरीर मे प्रवेश कर चुके घातक विषाणुओ को भी मार भगाते है, घावो को जल्दी ही अच्छा कर लेते है, जबकि ऐसी छोटी-मोटी व्यथाओ को देखकर सकपका जाने वाले लम्बे समय तक उन्ही व्यथाओ मे जकड़े रहते है। कई बार तो नगण्य-सी कठिनाइयाँ ही भयभीत लोगो के लिए प्राण-घातक बन जाती है।

कालिदास, वरदराज आदि के ऐसे ही उदाहरण हैं, जिनमे वे जब तक उपेक्षा भाव अपनाये रहे, तब तक विद्या प्राप्ति मे असफल ही बने रहे, पर जब उनका साहस और उत्साह जगा, तो उसी ठस्स कहे जाने वाले मस्तिष्क ने इतनी प्रगति की कि उपरोक्त दोनो ही देश के मूर्धन्य विद्वान बन गये। बालक ध्रुव, प्रह्लाद ने मनोबल के सहारे ही अनेक संकटो का सामना करते हुए भगवान को प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त की, जबकि आधे-अधूरे मन से पूजा-पत्री की चिह्न-पूजा जीवन भर करते रहने वाले पुजारी लोग सर्वथा छूँछ ही बने रहते है। मीरा और रामकृष्ण परमहस ने अपने इष्ट देवो को सामने आ उपस्थित होने के लिए विवश कर दिया था। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा से इतनी

शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जितना कि कौरव-पाण्डव निरन्तर उनके साथ रहने पर भी प्राप्त नहीं कर सके थे।

मनुष्यों का मन-मस्तिष्क शक्तियों का भाण्डागार है। सामान्यतः लोग उसके सात प्रतिशत का ही उपयोग कर पाते है। शेष ९३ प्रतिशत प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है। इस प्रसुप्ति का कारण एक ही है, उस भाग से काम लेने की तत्परता न दिखाना। जो इसके कुछ भाग का उपयोग करने लगते है, वे कितने ही अतीन्द्रिय क्षमताएँ जगा लेते है और ऐसे काम कर दिखाते है, जिन्हे ऋद्धि-सिद्धियो की गणना मे गिना जा सके, दर्शकों को आश्चर्यचकित रहना पड़े। मैस्मरिज्म-हिप्नोटिज्म आदि के सहारे चमत्कार दिखाने से लेकर, अनेकानेक रोगो को दूर करने की क्षमता का उद्‌गम-स्रोत, इच्छाशक्ति को विकसित करना और प्रखर बना लेना ही है। योगीजन, योगाभ्यास एवं तपश्चर्याओ की साधनाओ के माध्यम से अपने मनोबल की ही अभिवृद्धि करते है। उसी विकसित क्षमता के सहारे वे अपने दोष-दुर्गुणो को उखाड़ फेंकते है। अनेको सत्प्रवृत्तियाँ अपने गुण, कर्म, स्वभाव मे सम्मिलित करते है। इस सफलता का श्रेय, बढ़े हुए मनोबल को ही है, जिसके माध्यम से वे न केवल अपना व्यक्तित्व प्रखर-परिष्कृत करते है, वरन् अन्यान्य-अनेको को भी सहारा देकर ऊँचा उठाते, आगे बढ़ाते है। वह मनोबल ही है, जिसके सहारे साधारण-सी नावो के सहारे कोलम्बस जैसे लोग लम्बी अविज्ञात समुद्र यात्रा सम्पन्न करते है और अमेरिका जैसे महाद्वीपो को ढूँढ निकालते है। संसार मे बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ अस्त्र-शस्त्रो की बहुलता से नही, सेनापति और सैनिको के बढ़े हुए साहस के बल-बूते जीती गयी है।

आत्म-निर्माण की साधना मे अपने अभ्यस्त दोष-दुर्गुणो को छोड़ना पड़ता है। सद्‌गुण स्वल्प मात्रा मे हो, तो उन्हे बढ़ाना पड़ता है। इन आधारो को विकसित मनोबल के सहारे सहज ही सम्पन्न किया जा सकता है, किन्तु आरम्भ मे ही हिम्मत हार बैठने वाले, नशेबाजी छोड़ने जैसे छोटे काम भी पूरे नही कर पाते। जिस विकसित व्यक्तित्व की सर्वत्र प्रशंसा की जाती है, जिसे सामर्थ्य का पुंज माना जाता है, जिसके सहारे लोग अद्‌भुत काम करते है और महामानव बनते है—यह कोई जादू नही है, विकसित मनोबल का ही चमत्कार है। जिस प्रकार दुर्बल काया वाले व्यक्ति भी प्रयत्नपूर्वक पहलवान बन जाते है, उसी प्रकार कोई यदि सच्चे मन से चाहे और उसके लिए कठोर परिश्रम करे, तो अपने मनोबल को जमीन से उठाकर आसमान तक ले जा सकता है।

कुछ अपवादो को छोड़कर भगवान ने शरीर और मन के अनुदान सभी को समान रूप से दिये है। साथ ही यह अवसर और अधिकार भी दिया है कि कोई चाहे, तो उन्हे परिपुष्ट करे या नीचे गिरा दे। सैण्डो और चदगीराम जैसे आरम्भ मे अति दुर्बल स्तर के व्यक्ति स्वास्थ्य सुधार पर अपना ध्यान केन्द्रित करने के उपरान्त संसार के माने हुए पहलवान बन गये। विद्या, सम्पन्नता, कुशलता आदि के सम्बन्ध मे भी यही बात है। संसार के माने हुए वैज्ञानिक आइन्सटीन के बुद्धूपन से अध्यापक भी खिन्न थे और उनके बाप ने तो यहाँ तक कह दिया था कि "तेरी अपेक्षा एक पिल्ला पाल लेता, तो अच्छा रहता"—उस स्थिति को किसी अन्य ने सहारा देकर नहीं, वरन् अपने संकल्प से ही सुधारा और विश्व के अनुपम वैज्ञानिको मे उनकी गणना हुई।

अंगद और हनुमान जैसे बन्दर, नल-नील जैसे रीछ यदि अपनी रीति-नीति और दिशा-धारा बदलकर अद्‌भुत पराक्रमी और असाधारण आदर्शवादी के रूप मे विश्वविख्यात हुए, तो कोई कारण नही कि मनुष्य अपनी प्रभुप्रदत्त विभूतियो को सही तरीके से प्रयुक्त करने के उपरान्त, उन्हे प्रखर एवं समुन्नत न बना सके। यहाँ एक बात विशेष रूप से स्मरणीय है कि किसी भी क्षेत्र की सफलता अर्जित करने के लिए मनुष्य को सर्वप्रथम मनोबल को परिष्कृत एवं विकसित करना होता है। कुमार्ग पर चलने वाले उस आदर्शवादी मनोबल को गवाँ बैठते है, जो प्रगति के प्रयासो मे परिपूर्ण सहायता देता है। मनोबल की अभिवृद्धि, चिन्तन मे उत्कृष्टता, चरित्र मे आदर्शवादिता और व्यवहार मे शालीनता का समावेश करने से होती है। इसलिए व्यक्तित्व को प्रतिभा सम्पन्न बनाने एव मनोबल को समुन्नत करने के लिए मनुष्य को अपने आप को पवित्र एवं प्रखर बनाने का लक्ष्य सामने रखना चाहिए। यो हत्यारे, डाकू, कुकर्मी और अपराधी भी मनोबल सम्पन्न दिखाई देते है। पर वह वस्तुतः उन्माद जैसा होता है, विघातक भूमिका ही निभा सकता है, आदर्शवादी प्रगति मे उससे तनिक भी सहायता नहीं मिलती। ऐसा प्रसंग आने पर, वह रेत की दीवार जैसा देखते-देखते बिखर जाता है और कागज की नाव जैसा गलता-डूबता दिखाई पड़ता है। जिस मनोबल मे उच्चस्तरीय सामर्थ्य होती है, वह तभी विकसित और हस्तगत होता है, जब उसके साथ आदर्शों का भी समावेश हो और वैसे ही अभ्यास करते-करते उसे बढ़ाया जाय। दुष्ट-दुरात्माओ की ऐंठ-अकड़ तो आदर्शों के प्रसंग मे एक भी चोट करने पर, अपनी उद्दण्डता को थोथी पाते है, संकल्प बल के साथ आदर्शवादिता जुड़ी हुई हो, तो ही उसे अन्तरात्मा का आशीर्वाद और सहयोग मिलता है। तभी वह किन्ही महत्त्वपूर्ण कार्यो को करने मे समर्थ होता है। यो उचक्के भी दुस्साहस करते और कुकर्मो मे अपनी दादागीरी दिखाते रहते है, पर अन्तरात्मा का अभिशाप और वास्तविकता का छद्म दोनो मिलकर मनोदशा ऐसी बना देते है, जो किन्हीं उच्चस्तरीय काम को पूरा करने मे कुछ भी काम न आ सके। उसके सहारे आरोग्य सुधारने, बौद्धिक चमत्कार दिखाने, जन सम्मान-समर्थन प्राप्त करने जैसा कोई प्रयोजन नहीं सधता।

अनेक क्षेत्रो मे प्रगति का एकमात्र रास्ता है—मनोबल की अभिवृद्धि, उस उपार्जित शक्ति को आरोग्य के मार्ग मे उत्पन्न करने वाली बाधाओं को हटाया जा सकता है। सयमशील बनकर दीर्घजीवन प्राप्त किया जा सकता है। रोग कीटाणुओ से भिड़ने वाले रक्त घटको को सशक्त बनाकर, उनके द्वारा जीवनी शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। चेहरे पर प्रसन्नता और ओजस्विता के कारण अभिनव सौन्दर्य उभरते देखा जा सकता है। मानसिक सन्तुलन बनाने के लिए जिन मनोविकारो, कुत्साओ और कुंठाओ को निरस्त करना आवश्यक है, वे मनोबल बढ़ने पर ही बिस्तर गोल करती है। चिन्ता, आशंका, भय, उद्विग्नता जैसे असमंजसो को इसी आधार पर निरस्त किया जा सकता है। उत्साह और साहस बढ़ाकर प्रगति, प्रसन्नता और सफलता के मार्ग पर चल पड़ना मात्र मनोबल सम्पन्न के लिए ही सम्भव होता है। ऐसे लोग ही दूसरो पर अपनी छाप छोड़ते और रास्ता चलतो को मित्र बनाते है। शत्रुता तो वे किसी के भी साथ नही टिकने देते। अपव्यय, दुर्व्यसन एव अव्यवस्था जैसे दुर्गुण केवल मनोबल से रहित लोगो मे ही पनपते है। वे ही आलसी-प्रमादी होते हैं, जिनकी मानसिक क्षमता बढ़ी-चढ़ी है, वे सर्वप्रथम अपने गुण, कर्म, स्वभाव की अस्त-व्यस्तता पर काबू पाते है और उन विशिष्टताओ को बढ़ाते है, जिनके सहारे कठिन कामो को भी सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। जो मनस्वी है, वही ओजस्वी, तेजस्वी और यशस्वी बनता है। प्रतिकूलताओ से जूझकर अनुकूलताओ मे बदल लेना ऐसे ही लोगो के बाये हाथ का खेल होता है। वे ही व्यवसायो मे सफल होते है, ग्राहको का मन मोहते और बड़ी संख्या मे सहयोगी उत्पन्न करके उनके द्वारा बिना माँगी अप्रत्याशित सहायता प्राप्त करते है। मनोबल बढ़ाना हर दूरदर्शी के लिए आवश्यक है, जिसको इस प्रयास मे सफलता मिल गई, तो समझना चाहिए कि वह अन्य किसी काम मे असफल न होगा।

मनोबल की प्रचण्ड शक्ति एवं उसकी परिणति

घटना सन् १९८१ की है। इग्लैण्ड की एक पैट्रिकमेरी नामक महिला के सीने मे कैन्सर हुआ। पता तब चला जब डाक्टरो ने जाँच-पड़ताल के उपरान्त यह बताया कि उसका कैन्सर सीने से बढ़कर सारे धड़ मे फैल चुका है। इलाज तो चिन्ह पूजा है पर वह जीवित अधिक से अधिक छ- महीने और रह सकेगी। महिला चिन्तित हुई। उसने पूछा "क्या इसका उपचार नही हो सकता ? डाक्टरो ने सीधा-सा उत्तर दिया कि "आपकी जाँच-पड़ताल कुछ महीने पहले हो सकी होती और समय रहते वस्तुस्थिति का पता चल गया होता तो यह सम्भव था कि समय रहते इलाज हुआ होता और आपके प्राण बच सके होते" पहले जाँच-पड़ताल क्यो नही हो सकी ? इसका कारण एक ही था। इग्लैण्ड मे उस समय ऐसी परीक्षा मशीन जिसे "कैटस्कैनर" नाम से जाना जाता है मात्र एक ही थी, जिस पर जाँच कराने के लिए अपनी पारी के लिए मरीजो को लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। तब तक बात बढ़कर कहीं से कहीं जा पहुँचती थी। पैट्रिकमेरी भी इसी प्रतीक्षा में असाध्य स्तर तक जा पहुँची।

महिला ने विचार किया कि जब मात्र छः महीने ही जीना है, तो इस समय का श्रेष्ठतम उपयोग क्यो न कर लिया जाय। सोचते-सोचते वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि मेरी हैसियत तो ऐसी नहीं है कि ऐसी अनेकों मशीनें देश मे लगा सकूँ पर इतना तो हो ही सकता है कि यदि पूरी शक्ति इसी कार्य मे झोक दी जाय तो एक के स्थान पर दो तो हो ही जायँ और आधे रोगियो के तो प्राण बच ही जायँ। उन दिनो ऐसी एक मशीन प्रायः ढाई करोड़ रुपयो मे बनती थी।

पैट्रिक ने एक सांगोपांग योजना बनाई। उस देश के टेलीविजन पर अपनी स्थिति, दुर्दशा और सम्भावना प्रसारित की और साथ ही यह भी कहा कि यदि पाँच करोड़ का प्रबन्ध हो जाय तो दूसरी मशीन कुछ ही दिनो मे लग सकती है और मेरे जैसे आधी से अधिक संख्या के रोगियो के प्राण बच सकते हैं। उस प्रसारण को सुनकर बहुत से उदारचेता प्रभावित हुए और उनने अपनी श्रद्धानुसार राशि भेजना शुरू कर दी। महिला का हौसला बढ़ा और उसने और भी उपकरणो का सरंजाम जुटाने मे अपना सारा समय और मनोयोग लगा दिया। नियत अवधि मे दूसरी मशीन बनने, चालू होने के लिए स्थान की, जाँचकर्त्ताओ की सारी व्यवस्था जुट गई। कार्य आरम्भ हो गया। इस बीच उसकी तत्परता और तन्मयता ऐसी रही जिसमे उसे अपनी बीमारी और चिकित्सा की चिन्ता ही न रही और अपने लिए जो सोचना-करना था, उसे भुलाये ही रही।

संकल्पित कामो से निबटने के बाद साथियो के याद दिलाये जाने पर वह फिर डाक्टरो के पास अपनी जाँच-पड़ताल कराने गई कि अब उसकी छः महीने की शेष वाली जिन्दगी किस स्थिति मे है ? समय तो दो वर्ष से अधिक बीत चुका था। डाक्टरो ने उसके सारे शरीर की जाँच कर डाली, पर उसमे कही कैसर का कोई नामो-निशान न था। हर दृष्टि से भली-चंगी थी। इस आश्चर्यजनक कायाकल्प का कारण खोजने के लिए विभिन्न स्तर के विशेषज्ञो की समिति बनाई-बिठाई गई। उसने लम्बे अन्वेषण के बाद एक ही प्रतिवेदन प्रस्तुत किया कि यदि मनुष्य का मनोबल मौत, बुढ़ापा, बीमारी आदि को भुलाकर उसके स्थान पर किसी उच्चस्तरीय परमार्थ मे लगा दे तो ऐसी अद्भुत शक्ति भीतर से ही उपज सकती है, जो भयकर रोगो से भी निबट सके और उसके स्थान पर स्वस्थता सम्पन्न करने वाली सामर्थ्यो को उभार सके।

यह घटना एक उदाहरण है। उसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रोग निरोधक शक्ति

जितनी औषधियों मे, शल्य-क्रियाओ और चिकित्सको के कौशल मे समाहित है, उससे अनेक गुनी सामर्थ्य व्यक्ति के अपने मनोबल में सन्निहित है, बशर्ते कि उसे उभारा जा सके।

ऐसी घटनाएँ एक नहीं अनेक हैं। फ्लोरेन्स की एक महिला उन दिनो नवयुवती थी। उसकी मँगनी हो चुकी थी। विवाह होने ही वाला था कि पति परदेश चला गया और उसे लौटने मे बीस वर्ष लग गये। फिर भी वह निराश न हुई और सोचती यही रही कि जब विवाह हो तो उसका शरीर नवयुवती जैसा ही दृष्टिगोचर होना चाहिए। वह दिन मे कई-कई बार अपना मुँह दर्पण मे देखती और विश्वास करती कि उसका यौवन घट नहीं रहा वरन् दिन-दिन अधिक निखर रहा है। बलवती आशा ने उसे सजधज का भृंगार करते रहने के लिए और भी अधिक उकसाया। बीस वर्ष बीत गये। तब वह चालीस वर्ष की हो चुकी थी, जबकि उसका मंगेतर बीस वर्ष बाद लौटा। उसे मिलने पर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि उसकी प्रेमिका का रूप-लावण्य जाते समय जैसा था, उससे बढ़ा ही है, घटा नही। विवाह हो गया और वे सुखपूर्वक जिये। इस घटना में संकल्प-शक्ति का ही चमत्कार है।

पुराणों मे ऐसी घटनाओं का विस्तारपूर्वक बढ़ी-चढ़ी संख्या मे वर्णन है। हनुमान सुग्रीव के एक साधारण कर्मचारी थे। उनके सामने सीता की वापसी वाले सन्दर्भ मे समुद्र पार करने का प्रश्न आया। वे अपनी सीमित शक्ति को देखते हुए वैसा कर सकने मे अपने को असमर्थ पा रहे थे, पर जामवन्त ने जब उन्हें प्रोत्साहित किया और प्रसुप्त शक्तियो के जाग्रत होने पर कुछ भी कर सकने का स्मरण दिलाया तो वे असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिए तत्पर हो गये और इसके उपरान्त वे जीवन भर क्या-क्या करते रहे, इसके सुविस्तृत वर्णन से प्रायः सभी अवगत हैं।

भारत का अध्यात्म तत्वदर्शन और योगसाधना विश्व भर मे विख्यात है और उसे मनुष्य मे देवत्व उदय करने में सर्वथा समर्थ माना जाता है। वैसे अगणित प्रमाण उदाहरण भी है। शाप-वरदान देने की शक्तियाँ, ऋद्धि-सिद्धियो का परिचय देने का प्रसंग अगणित उदाहरण समेत इतिहास प्रसिद्ध है। पिछली शताब्दियो मे भौतिक विज्ञान के आविष्कारो ने ससार भर को चमत्कृत एव लाभान्वित किया है। भारत की अपनी विशेषता चिर अतीत से विख्यात रही है। उसके आधार पर ऋषि-मुनियो और महामानवो का इतना बड़ा परिकर उभरता रहा है, जिसने न केवल अपने देश को वरन् सम्पर्क मे आने वाले सुविस्तृत परिकर को इतना समुन्नत बनाया, जिसे धरती पर स्वर्ग के अवतरण की सज्ञा दी जा सके। प्रगतिशीलता का इतिहास भारत के महामनीषियो की मनस्विता के आधार पर बन पड़े महान सृजनात्मक पुरुषार्थों के साथ जुड़ा हुआ है। उन्हीं का पराक्रम था, जो धरती पर स्वर्ग के अवतरण वाला सतयुग चिरकाल से संसार के अधिकांश भू-भाग में अपनी गरिमा का परिचय देता रहा।

मनस्वी कौडिन्य ने मध्यपूर्व के सुविस्तृत क्षेत्र मे ऐसा प्रचलन, प्रवाह उत्पन्न किया कि वह समूचा विशालकाय क्षेत्र न केवल हर दृष्टि से समुन्नत हुआ, वरन् भारत का एक प्रकार से सांस्कृतिक उपनिवेश ही बन गया। कुमार जीव की कथा-गाथा हर किसी के लिए अभी भी प्रकाश स्तम्भ का काम करती है। बिहार प्रान्त के एक निर्धन परिवार में वह जन्मा और पैदल चलकर काश्मीर के उत्तरी छोर पर बसे तक्षशिला के विश्वविद्यालय में पढ़ा। इस बीच उसकी दृष्टि चीन के विशालकाय क्षेत्र पर गई और उसने चीन को हिन्दू धर्म की बौद्ध शाखा का अनुयायी बनाने की ठानी। साधनों का अभाव रहते हुए भी वह गोबी के दलदल, तिब्बत एवं खोखान के सुविस्तृत हिम रेगिस्तान को पार करते हुए प्राणो की बाजी लगाकर चीन जा पहुँचा। भाषा और संस्कृति के अपरिचय की कठिनाई को पार किया और वहाँ ऐसा मूर्धन्य प्रचारक बना कि न केवल चीन, वरन् उसके समीपवर्ती साइबेरिया, कोरिया, जापान आदि को भी अपनी महान संस्कृति का अनुयायी बनाने मे सफलता प्राप्त कर ली।

चाणक्य एक साधारण ब्राह्मण मात्र था पर उसने अपने अपमान के प्रतिशोध में नन्द वंश की ईंट से ईंट बजा दी। एक मोर्चा पूरा हुआ तो भी वह चैन से न बैठा और निश्चय किया कि भारत पर आये दिन होते रहने वाले आक्रमण को वहाँ से उखाड़ फेंकना है, जहाँ से उनकी जड़े बार-बार हरी होतीं और अपने चमत्कार दिखाती हैं। उसने अपनी दिव्य-दृष्टि से प्रतिभा के पुंज चन्द्रगुप्त को चुना और इस बात के लिए तैयार किया कि वह निरन्तर युद्धरत रहकर आक्रान्ताओ के आतकवाद को जड़-मूल से उखाड़ फेंके। चन्द्रगुप्त अचकचा रहा था और इस प्रयास मे आने वाली असंख्यों कठिनाइयो को विस्तारपूर्वक सुना और गिना रहा था। सुनने वाले चाणक्य ने व्यंग्योक्ति के साथ हँसते हुए भवे तानकर कहा—"तुम दासी पुत्र हो। अपनी सहज भीरुता और दीनता की अभिव्यक्ति कर रहे हो। तुम्हे समझना चाहिए कि चाणक्य जो सोचता है, वही क्रियान्वित भी होता है और इतना ही नहीं वह फलित होकर भी रहता है। तुम बकवास मत करो। जो कहा जा रहा है, उसे करो और गाँठ बाँध लो कि चाणक्य निरर्थक योजनाएँ नही बनाता और न उनके कभी असफल रहने की आशंका आड़े आती है।" चन्द्रगुप्त नत मस्तक हो गया। उसने अक्षरश: अनुशासन पाला और वह कर दिखाया जिसे उसके पूर्ववर्ती असंभव मानकर चुप बैठे रहे थे और मन ही मन कुड़कुड़ाते रहते थे।

मनोबल क्या नहीं कर सकता ? इसका रहस्य जिनने भी समझा, वे व्यवधानों को चीरते हुए पर्वतो के ऊँचे शिखरों पर चढ़ दौड़ने में सफल हुए हैं। भारत का पुरातन विज्ञान "चेतना विज्ञान" है, जिसे तपश्चर्या-योग साधना आदि के नाम से जाना जाता है। उसके

फलस्वरूप उपलब्ध हो सकने वाली ऋद्धि-सिद्धियों से पुराण-गाथाओ का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है। यह योगाभ्यास आखिर है क्या ? इसकी गहराई तक उतरने वाले बताते है कि यह तितिक्षाओ के साथ जुड़ी हुई कर्मकाण्डो की प्रत्यक्ष फलश्रुति प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः मनोबल को उभारने और प्रसुप्त प्राणाग्नि को प्रज्वलित करने की प्रक्रिया मात्र है। देव शक्तियो का केन्द्र-बिन्दु यही है। वृक्ष पर फल-फूल आकाश से टपककर चिपकते रहने की बात सोचने वाले वस्तुतः गलती पर होते है। जड़ो के द्वारा सींचा गया धरती पर रस ही तने को मजबूत करता है। पल्लवो को हरियाता और वृक्षो को सुविस्तृत छायादार बनाकर उन्हे फल-फूलो से लाद देता है। उसी जड़ के आधार पर वे आँधी-तूफानो से लड़ते है। वे अपनी जगह अकड़कर चिरकाल तक खड़े रहते है। सिद्ध पुरुष अभीष्ट प्रगति के उच्च शिखर पर पहुँचते है। महापुरुषो की सफलताएँ कापुरुषो को धिक्कारती और विजय श्री वरण कर सकने की शिक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण बनकर देती है। उनसे उत्साहित होकर कभी-कभी तो अर्ध-मृत और अर्ध-मूर्छित भी देवदानवो जैसे पुरुषार्थ करके दिखाने लगते है।

शरीर इन सभी आराध्य देवो द्वारा बना हुआ है किन्तु उसे बलिष्ठ और सुन्दर बनाने मे मनुष्य की तीन चौथाई क्षमता का नियोजन होता रहता है। इतने पर भी सज्जा, उपकरण, बहुमूल्य आहार, औषधियो के पिटारे काछ काम नही आते। अमीर, गरीबो की अपेक्षा अधिक दुर्बल, बीमार और अल्पजीवी पाये जाते है। चिकित्सा के व्यवसायी अपने परिवार समेत स्वयं तक बीमारियो के शिकार बने रहते हुए तथाकथित आहार विज्ञान से लेकर औषधि विडम्बना को प्रत्यक्ष न सही, मन-मन तो कोसते ही रहते है।

मनोबल इससे सर्वथा भिन्न प्रकार की राह दिखाता है। अफ्रीका के मसाई मात्र भाले के सहारे बबर शेरो से भिड़ते और उन्हे मारकर अपनी शादी के लिए निश्चित शर्त को पीढ़ी दर पीढ़ी पूरी करते रहते है। विश्वविख्यात सेण्डो पहलवान जवानी की दहलीज तक पहुँचने तक हड्डियो का ढाँचा, जुकाम के जाल मे पूरी तरह जकड़ा हुआ, मरण की प्रतीक्षा मे दिन गिनते रहने वाला मरीज था, पर जब उसके मार्गदर्शक ने जीवन की नई विधा सुझाई तो वह दिन-दिन स्वस्थ-बलिष्ठ होता गया और एक दिन वह संसार का माना हुआ पहलवान बन गया। भारत का हिन्द केशरी उपाधि वाला चन्दगीराम, अध्यापक की नौकरी करने वाला कई दिनो का तपेदिक का मरीज था और उसकी छूत न लग जाने के भय से हर कोई दूर रहता था। पर जब उसने अपना मानसिक कायाकल्प साहसपूर्वक कर डाला। आदतो को पूरी तरह उलट दिया तो प्रकृति देवी ने उस पर अजस्र वरदान बरसाया और हिन्दुस्तान का जाना-माना पहलवान बना दिया।

प्राचीनकाल मे कायाकल्पो की कथागाथाएँ च्यवन ऋषि से लेकर ययाति के बूढ़े से जवान हो जाने के रूप मे प्रसिद्ध है। हनुमान बचपन से ही पवनपुत्र—प्राणपुंज कहलाने लगे थे और उनके पाहन पर गिरने से विशालकाय शिला चूर-चूर हो गई थी। पार्वती की युगो तक तप करने से क्षीण हुई काया शिव को वरण करते ही त्रैलोक्य मोहिनी बन गई थी। अर्जुन के बाणो ने पाताल से जल धारा उभारकर मरणासन्न भीष्म-पितामह को ताजा जल पिलाया था। टिटहरी का समुद्र को सुखाकर अण्डे वापस लेने का संकल्प भले ही ऋषि अगस्त्य के माध्यम से पूरा हुआ हो पर वह अधूरा तो नहीं ही रहा।

जमदग्नि के पुत्र परशुराम जब पिता के साथ हुए अनाचार का बदला लेने के लिए उतारू हो गए, तो उनने महाबली सहस्रबाहु की हजारो भुजाएँ हलके से फरसे से मूली की तरह काटकर रख दीं और मचले तो उनके सहयोगियो तक का सफाया करके रख दिया। हारी-हारी बाते करने वाले अर्जुन को महाभारत का विजेता बनाने का श्रेय कृष्ण के उस उद्बोधन को था, जिसने उसे भर्त्सना की लताड़ और प्रोत्साहन भरी पुचकार देकर उसे वह बना दिया जिसका वह अधिकारी था।

इन दिनो मनुष्य को वैभव, स्वास्थ्य और यश के अतिरिक्त और किसी की कामना दीख नहीं पड़ती। इसके लिए जो कुछ भी उचित-अनुचित बन पड़ता है उसे कमाने मे औसत आदमी दिन-रात जुटा रहता है। कुछ मिलता भी है पर वह कम दीखता है और असंतोष पहले की अपेक्षा अधिक भड़का देता है। इस घोर असमंजस की वेला मे हर किसी को यह समझना और समझाना चाहिए कि अगणित वैभवो का उद्गम प्राणाग्नि केन्द्र है, जिसको उभारना परम पुरुषार्थ और ईश्वर का एकमात्र अनुग्रह कहा जा रहा है। आज इसी की आवश्यकता है कि वैभव स्थिर रहे और दिन-दिन बढ़ता रहे और अन्ततः उस श्रेष्ठतम् सदुपयोग मे काम आ सके जो नन्हे से बीज से बढ़कर अन्तत· विशालकाय वटवृक्ष के रूप मे परिणत होता है।

वैभव किसका है ? पराक्रम किसका है ? विभूतियाँ किसकी है ? इस सबका उत्तर देते समय नाम भगवान का ही लिया जा सकता है। पर भगवान का निकटतम और सुनिश्चितम् स्थान एक ही है—अन्तराल मे विद्यमान प्राणाग्नि। उसी को जानने-उभारने से वह सब कुछ मिल सकता है, जिसे धारण कर सकने की पात्रता मनुष्य अर्जित करते है। मेघ माला समय पर जलधारा बरसाती रहती है, पर वह जल राशि उन्ही जलाशयो मे एकत्र होती है, जो उस संचय के लिए समुचित गहराई और पात्रता अर्जित कर सकने मे समर्थ हो सके। आकांक्षा ऋद्धि-सिद्धियो की हो या स्वर्ग-मुक्ति की, इन्हे प्राप्त करने के लिए उस प्राणाग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाना अनिवार्य है, जो दैवी शक्तियो का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करती है।

●

अंतरंग की समर्थता ही सफलता की कुंजी है

पराक्रम भीतर से उफनता है

अवसर और साधन की कितनी ही महिमा गाई-सुनाई जाय, यह तथ्य अपने स्थान पर चट्टान की तरह अटल रहेगा कि मनुष्य सामर्थ्य का धनी है। उसका स्तर एवं संकल्प जब प्रखरता से सम्पन्न होता है तो उसकी चमत्कारी परिणति देखते ही बनती है। एकाग्रता, एक दिशा, लगन एवं तत्परता का जिस भी केन्द्र पर नियोजन किया जाता है उसी मे ऐसे चमत्कारी परिणाम उत्पन्न होने लगते है जैसे कि सामान्य जनो को हस्तगत नहीं होते। चमत्कार की परिभाषा इतनी ही है कि "जिसे सर्वसाधारण के सामान्य जीवन मे घटित होते न देखा जाता हो।" कभी रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन की चर्चा ऋद्धि-सिद्धियों के रूप मे होती रहती होगी, पर अब वे उपकरण सर्वसाधारण के दैनिक प्रयोग में आने के कारण सुई, माचिस की तरह सामान्य हो गये है।

महामानवो के महान व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के पीछे इतना ही चमत्कार काम करता रहा है कि उनने अपने चिन्तन को शेखचिल्ली जैसा हवाई नही बनाया। वरन् यो सोचा उसे आदर्शवादियों की ही नहीं व्यावहारिकता और क्षमता की कसौटी पर बार-बार कसने के बाद ही अपनाया। दूरदर्शी विवेकशीलता के आधार पर जो उचित एव आवश्यक प्रतीत हुआ, उसे कार्यान्वित करने का सुनिश्चित संकल्प किया। संकल्प भी ऐसा जिसमे उत्साह, साहस और परिश्रम का परिपूर्ण समावेश रहे। ऐसे लोगो के पास निराशा नहीं फटकती। अड़चने आती है तो उनसे निपटने के लिए दूसरा, तीसरा रास्ता खोजते है। "खोजने वाले को मिलता है। खटखटाने वाले के लिए खुलता है" की बाइबिल की उक्ति यथार्थता की कसौटी पर असंख्यों पर कसी गई और खरी उतरी है। हो सकता है अनुकूलता उत्पन्न होने मे देर लगे। सफलता के लिए अधिक श्रम करना पड़े और अवरोधों से अधिक जूझना पड़े। पर ऐसी अग्नि-परीक्षा के लिए खरा सोना सिद्ध होने से पहले हरेक को कमर कसकर तैयार होना पड़ता है। हर परिणाम के लिए मन्निद्ध रहना पड़ता है। उथले और मनचले ही गगनचुम्बी महत्त्वाकांक्षाएँ सँजोते, आतुर होकर बबूले की तरह उचकते-मचकते है और तनिक सी कठिनाई सामने आते ही अपना अस्तित्व खो बैठते है। ऐसे ही लोग आमतौर से भाग्य को, समय को, जिस-तिस को दोष देकर मन हल्का करते रहते है। प्रतापी को आरम्भ से ही विदित होता है कि साहस और पराक्रम ही नही, कठिनाई से निपटने और अभीष्ट प्रतिफल का समय आने की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा भी करनी पड़ती है। ऐसे ही लोग पराक्रम प्रकट करते और अन्त समय पर उचित सफलता प्राप्त करते है। महामानवो की यही सुनिश्चित राह है। जो इस राजमार्ग पर चला है, उसे न भाग्य का रोना रोना पड़ा और न परिस्थितियो को दोष देकर जी हल्का करना पड़ा। मनस्वी सदा ही यशस्वी होते रहे है।

सामान्य परिस्थितियो मे उत्पन्न हुए, जन्मजात प्रतिभा की दृष्टि से सामान्य स्तर के, साधनो की कमी वाले अभावग्रस्त वातावरण से घिरे हुए लोगो मे से अनेको ने असाधारण सफलताएँ प्राप्त की है। अपने-अपने निर्धारित उद्देश्यो मे आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त करके रहे है। ऐसे लोगो ने किस आधार पर प्रगति की, किसका सहारा पाया ? इसकी गम्भीरतापूर्वक जाँच-पड़ताल करने पर एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि वे अपने सद्गुणो मे निरन्तर विकास करते रहे। योग्यता बढ़ाने मे निरन्तर तत्पर रहे। उत्साह, साहस और धैर्य का उच्चस्तरीय अनुपात बनाये रहे और सफलता-असफलता की, अनुकूलता-प्रतिकूलता की परवाह किये बिना सन्तुलित मन से अपने प्रयास मे जुटे रहे और अन्तत. सफल होकर रहे।

योरोप तब छोटा-सा महाद्वीप भर था। अपने सीमित क्षेत्र मे सीमित साधनो से गोरे लोग भी अन्याय भूखण्डो मे रहने वाले किसी प्रकार निर्वाह के साधन जुटाने वालो की तरह दिन गुजारते थे। अनायास ही एक महत्त्वाकांक्षी युवक न जाने कितनी आशाएँ सँजोये समुद्र पार के द्वीपो और महाद्वीपो की खोज का सकल्प लिए निकल पड़ा। आरम्भ मे वह एक छोटा नाविक था। अपने बलबूते ही सोचता और लम्बी यात्राओ की योजनाएँ बनाता। उसकी आरम्भिक सफलताएँ सीमित थी, पर महत्त्वाकांक्षाएँ असीम। तद्नुसार सूझ-बूझ और साहस भी उसने जुटाया। चर्चा आगे बढ़ी तो सलाहकारो, सहयोगियो की ही नही, साथियो की भी कमी न रही। उसे एक जहाजी बेड़े का कप्तान बनने का अवसर मिला। समुद्री

यात्राओ की योजनाएँ बनी। कितने ही उपजाऊ और हरे-भरे और खनिज सम्पदा से भरे-पूरे द्वीप उसके हाथ लगे, जहाँ वह गोरो को उतारता और कब्जा जमाता रहा। अन्त मे उसने उस अमेरिका को खोज निकाला जिसका वैभव और वर्चस्व आज संसार मे सर्वोपरि गिना जाता है।

जन आकांक्षाएँ तो सदा महत्वपूर्ण सोचती और चाहती है, पर उनका प्रतिनिधित्व करने वाले अग्रगामी, साहसी कुछ ही होते है, वे आत्मविश्वास के बलबूते जब खतरो से खिलवाड़ करते हुए आगे बढ़ते है तो ऐसा कुछ कर गुजरते है, जिनका असंख्यो के भाग्य पर असाधारण प्रभाव पड़े। ऐसे लोग अपने को धन्य बनाते और पीछे वालो के लिए अनुकरणीय उदाहरण छोड़ जाते है। ''कोलम्बस ऐसे ही लोगो मे से एक था।''

हेनरी फोर्ड आरम्भ मे ठठेरे का काम करते थे। आरम्भ से ही वे मशीनरी कार्यों मे अधिक रुचि लेते थे। एक दिन जब वे मात्र १३ वर्ष के थे, उन्होने एक वाष्प इन्जिन को स्वय अपनी शक्ति से सड़क पर सनसनाते व फुफकारते देखा। तभी उन्होने यन्त्र संचालक से इसका कारण पूछा तथा उससे ईंधन डालकर यन्त्र को संचालित करने की प्रक्रिया समझ ली।

१६ वर्ष की आयु मे हेनरी मशीन रिपेयर की एक दुकान मे कार्य करने लगे। मात्र तेईस वर्ष की आयु मे फोर्ड ने एक गैस ऊर्जा से संचालित बग्घी का निर्माण किया। इससे चार हार्स पावर की शक्ति उत्पन्न होती थी तथा इसकी गति २५ मील प्रति घण्टा थी। यही से फोर्ड के जीवन मे नये इतिहास का आरम्भ हुआ। १९०८ ई. मे उन्होने मोडेल-टी नामक कार की रचना करके सारे विश्व मे एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। वे संसार के मूर्धन्य धनकुबेरो मे गिने गये। उन्होने फोर्ड फाउण्डेशन भी स्थापित किया, जिससे करोड़ो की लागत के सृजनात्मक कार्य आरम्भ हुए और आविष्कारो को एक सुदृढ़ आर्थिक आधार मिला।

अलबर्ट आइन्स्टीन ने १९वी सदी के उत्तरार्ध मे पहली बार जेम्स क्लार्क मैक्सवेल द्वारा प्रतिपादित इलेक्ट्रो-डायनेमिक्स के सिद्धान्त को पढ़ा, हृदयंगम किया और उनकी 'जीनियस' जाग उठी। इसी मूलभूत थ्योरी को आधार बनाकर सन् १९०५ मे इस मनीषी ने ''सापेक्षवाद का सिद्धान्त'' पहली बार विज्ञान जगत के समक्ष रखा, जिसने भौतिकी के क्षेत्र मे तहलका मचाकर रख दिया। उनके इस प्रतिपादन ने कि पदार्थ व ऊर्जा भिन्न-भिन्न नही, एक ही वस्तु के कई पहलू है, सृष्टि विज्ञान सम्बन्धी अनेको रहस्य खोले व चतुर्थ आयाम की नयी जानकारी विश्व को मिली। इस महामनीषी का पुरुषार्थ ही था कि समस्त पदार्थो के मूल प्रेरक बल की खोज हेतु अनेको प्रयास चल पड़े जिन्होने आधुनिको भौतिकी की, भौतिकी के दर्शन की, चेतना विज्ञान के भौतिकीय आधार की नीव मजबूत कर दी।

दो शताब्दी पूर्व किये गये एक बलिदान का प्रतीक ''नर-कंकाल'' के रूप मे काँच की मंजूषा मे सजा-सँवार कर रखा गया है—इटली के पोम्पाई नगर मे। यह उस वीर की याद मे है जिसने अपने प्राणो को होमकर विस्यूवियस पर्वत के ज्वालामुखी मे से बहते लावा को शहर मे प्रवेश नहीं होने दिया और फाटक बन्द करते-करते स्वयं भी गरम धहकते लावे मे फँस गया। लावा ठण्डा होने पर प्रहरी की बन्दूक और जला-भुना कंकाल इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करते थे कि यदि वीर प्रहरी ने शहर का मुख्य द्वार न बन्द किया होता तो कीट-पतंगो की तरह न जाने कितने अबोध नर-नारी, बाल-वृद्ध भुन गये होते। धन्य है ऐसे बलिदानी को, जिसने स्वेच्छावरण कर अमरत्व प्राप्त किया। जिसने कर्तव्य के पालने मे ही अपना जीवन होम दिया।

सत्रहवी शताब्दी मे धार्मिक सहिष्णुता के सबसे बड़े समर्थक, सामाजिक नेता, तत्वचिन्तक एवं एक जागीर के मालिक के रूप मे विलियम पेन का नाम इतिहास प्रसिद्ध है। उन्होने अमरीका मे पेन्सिलवेनिया राज्य की स्थापना की थी। यही पर उनने अपने धार्मिक एवं राजनीतिक सिद्धान्तो को स्थापित करने का प्रयास किया था। इनके पिता इंग्लैण्ड मे एक बड़े एडमिरल थे। उन्होने बचपन से ही अवांछनीयता से समझौता न करने वाले एक पुरुषार्थी की भूमिका निभाई। चर्च की परम्परागत शिक्षा उन्हे न रुची। जबरन भेजे जाने पर उन्होने ऐसी विद्या पढ़ने से ही मना कर दिया। उनके पिता ने उन्हे दण्डित कर फ्रांस भेज दिया, जहाँ उन्हे खुलकर अपने सुधारवादी विचारो को व्यक्त करने, लेख आदि लिखने का मौका मिला। इसके लिए उन्हे चार बार जेल भी जाना पड़ा। मात्र चौबीस वर्ष की आयु मे वे एक क्रान्तिकारी पत्रकार के रूप मे विख्यात हो गए। सात वर्षों के भीतर उन्होने बयालीस पुस्तके तथा अनेको पत्रक, लेख आदि लिख डाले। उनकी सर्वाधिक चर्चित पुस्तक ''नो क्रॉस नो क्राउन'' १६६९ मे 'टॉवर ऑफ लन्दन' की कैद मे लिखी गयी थी। हालाकि उनके पिता महत्वपूर्ण राजनयिक पद पर थे और विलियम पेन उनके प्रभाव का सहारा लेकर आसानी से जेल से छूट सकते थे, तथापि उनने कठोर कारावास मे रहना ही अंगीकार किया। फलत. लोगो की उन पर आस्था और भी दृढ़ हो गई।

उनने अपने मुकदमे की पैरवी के लिए (१६७० मे) कोई वकील नही रखा अपितु 'ए विण्डिकेशन ऑफ दि इण्डिपेण्डेन्स ऑफ दि ज्यूरी' शीर्षक से एक पत्रक प्रकाशित किया, जो इंग्लैण्ड की लीगल हिस्ट्री मे एक लैण्डमार्क की तरह याद किया जाता है।

जेल मे रिहा होने के उपरान्त उनने साहित्यकार न रहकर आन्दोलनकारी के रूप मे अपने को बदल लिया। अपने प्रभाव क्षेत्र पेन्सिलवेनिया मे ऐसे सुधार प्रस्तुत किए उनने उस समूचे क्षेत्र को प्रभावित किया और कितने ही

ऐसे परिवर्तन होते गये जैसा करने के लिए उनने अपनी युवावस्था मे लोक-शिक्षण किया था। एक श्रीमन्त वर्ग के प्रतिनिधि- विलियम पेन ने जो कुछ भी किया, वह तत्कालीन परम्पराओ के प्रतिकूल था लेकिन उनके पुरुषार्थ भरे कदम कभी डगमगाए नहीं।

ऐसी प्राणवान प्रतिभाएँ यदि ढले, उपजे और बढ़ें, साथ ही समय की विपन्नता को उलटने के लिए कटिबद्ध हो, तो कोई कारण नहीं कि प्रस्तुत संकटों को पीछे धकेलना और सुखद सम्भावनाओ को खीच बुलाने की सामयिक आवश्यकता को पूरा न किया जा सके। यही वह राजमार्ग है, जिस पर अगणित महामानव चले हैं और आत्मिक प्रगति का पथप्रशस्त कर सकने मे सफल हुए है।

आध्यात्मिक साधना की सफलता के लिए सबसे पहला एवं अनिवार्य कदम "इन्द्रिय निग्रह" है। यो ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच मानी जाती हैं, पर उनमे से दो ही प्रधान हैं—पहली स्वादेन्द्रिय और दूसरी कामेन्द्रिय। इनमे से स्वादेन्द्रिय प्रधान है। उसके वश मे आने से कामेन्द्रिय भी वश में आ जाती है। रसना को जिसने जीता, वह विषय-वासना पर भी अंकुश रख सकेगा। चटोरा आदमी ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकता, उसे सभी इन्द्रियाँ परेशान करती है, विशेष रूप से काम वासना तो काबू मे आती ही नहीं। इसलिए इन्द्रिय-निग्रह की तपश्चर्या, सयम-साधना स्वाद को, जिव्हा को वश मे करने से आरम्भ की जाती है। चटोरेपन की वेदी पर न केवल आरोग्य और दीर्घ जीवन बलि चढ़ जाता है, वरन् आत्मसंयम की साधना भी मात्र मखौल बनकर रह जाती है।

आरोग्य ही नहीं, मन को वासनासक्त होने से रोकने के लिए भी यह आवश्यक है कि रसनेन्द्रिय पर अकुश लगाया जाय। इस दृष्टि से नमक या मीठा दोनो मे से एक को छोड़ने के रूप मे आरम्भिक कदम उठाया जा सकता है। यह एक निराधार भय है कि इन्हे छोड़ देने से स्वास्थ्य खराब हो जायगा। सच तो यह है कि इस संयम से पाचन क्रिया ठीक होती है, रक्त शुद्ध होता है, इन्द्रियाँ सशक्त रहती हैं, तेज बढ़ता है और जीवनकाल बढ़ जाता है। इससे भी बड़ा लाभ यह है कि मन काबू मे आता है।

नशेबाजी, अभक्ष्य भक्षण एवं चटोरेपन को रोक देने से वासना पर जो नियत्रण होता है, वह धीरे-धीरे सभी इन्द्रियो को वश में करने वाला सिद्ध होता है। जिस प्रकार पाँचो ज्ञानेन्द्रियो मे जिव्हा और जननेन्द्रिय प्रबल है, उसी प्रकार स्वाद के षट्रसो में नमक और मीठा प्रधान है। चटपटा, खट्टा, कसैला आदि तो उनके सहायक रस मात्र है। इन दो प्रधान रसो पर नियंत्रण कर लेना षट्रसो को त्यागने के बराबर है। जिसने स्वाद और काम प्रवृत्ति को जीता, उसकी इन्द्रियाँ वश मे हो गईं, ऐसा ही समझना चाहिए। मन को वश मे करने के लिए यह सयम-साधना हर साधक को किसी न किसी रूप मे करनी ही होती है।

अन्तर्जगत का प्रबलतम पुरुषार्थ

संयमी और सदाचारी ही प्राणवान, शक्तिवान, स्वस्थ एवं संस्कारी बनते तथा भौतिक और आध्यात्मिक आनन्द की उपलब्धि कर सकते है। ओजस्वी, तेजस्वी एव मनस्वी होने का अर्थ है—मन, वचन तथा कर्म से सभी इन्द्रियो पर नियंत्रण रखना। ब्रह्मचर्य इसे ही कहा जाता है। इसका पालन न तो कठिन है और न ही असंभव। आवश्यकता मात्र ऊर्ध्वरेता बनने और ऊँचा उठने की आकांक्षा की है। इस सम्बन्ध मे महात्मा गाँधी का कहना है कि आत्म-संयम की साधना करने वाले को सर्वप्रथम अपनी रसना को वश मे रखना अनिवार्य है। इसके लिए स्वाद नियत्रण परमावश्यक है। उनके अनुसार जो रसना अर्थात् जीभ के स्वाद पर विजय नही प्राप्त कर सकता, वह विषय-वासनाओ पर भी विजय नहीं प्राप्त कर सकेगा। इसलिए ब्रह्मचर्य पर जिनकी आस्था है, उन्हे अस्वादव्रत लेना चाहिए और सात्विक आहार भूख से कम खाना चाहिए।

आहारशास्त्रियो एवं मनोचिकित्सा विज्ञानियो का कहना है कि उत्तेजना पैदा करने और वासना को भड़काने वाले कारणो मे आहार एक प्रमुख कारण है। इस सम्बन्ध मे जर्मनी के मूर्धन्य मनोविज्ञानी डॉ. कैलाग ने गहन अनुसंधान किया है और निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए अपनी कृति—"प्लेन फैक्ट्स" मे लिखा है कि प्राय: यह आम मान्यता है कि आहार एक साधारण सी वस्तु है, किन्तु यह सबसे बड़ी भ्रान्ति है। वस्तुतः मनुष्य जैसा भी, जो कुछ भी, भक्ष्य-अभक्ष्य स्वादवश या पोषण हेतु खाता है, उसका सीधा असर उसके मन पर पड़ता है। मन का पोषण खाद्य वस्तुओ के सूक्ष्म प्राण का अवशोषण करने पर होता है। उनकी दूषणता या सात्विकता के अनुरूप ही मन की चंचलता या स्थिरता निर्भर करती है। शरीरक्रिया विज्ञानियो ने भी अब इस तथ्य की पुष्टि कर दी है कि हमारे विचार खाद्य वस्तुओ के अनुरूप ही बनते-बिगड़ते रहते है। जो व्यक्ति सुरापान करते, माँस-मछली भक्षण करते अथवा धूम्रपान करते है, उनके लिए अपने विचारो को पवित्र रख सकना तथा इन्द्रिय निग्रह कर सकना आसमान मे बिना पंख के विचरण करने की आशा करने के समान है। यदि वह पवित्र जीवन व्यतीत कर सके तो एक चमत्कार होगा, किन्तु मानसिक पवित्रता रख सकना तो उनके लिए सर्वथा असंभव ही होगा।

इसी तरह का शोधपूर्ण निष्कर्ष डॉ. आर्थर कोवेन का है। अपनी पुस्तक—"साइन्स ऑफ न्यू लाइफ" मे उनने लिखा है कि "काम वासना को उत्पन्न करने के कारणो मे दूषित आहार मुख्य है। यह कल्पना करना कि खान-पान मे माँस, मदिरा, अण्डा, बीड़ी-सिगरेट, मिर्च-मसाला, अचार, खटाई, मिठाई और चाय-कॉफी आदि का स्वाद जिव्हा चखती रहे और व्यक्ति कामुकता से बचा रहे, एक असंभव कल्पना है।" यदि इस तरह का

आहार आसमान के फरिश्ते को भी दिया जायगा, तो उसे खाने से उसमे भी वासना-विकृति उत्पन्न हुए बिना न रहेगी, फिर सामान्य मनुष्य का तो कहना ही क्या, जिसमे हजारों कुसंस्कार पहले से ही विद्यमान हो। ऐसे मे न तो इन्द्रिय संयम सध सकता है, न मानसिक नियंत्रण मे दृढ़ता आ सकती है। कामुकता से जीवन रस तथा स्नायुशक्ति दोनों का ह्रास होता है और अनेकानेक शारीरिक-मानसिक उपद्रव उठ खड़े होते है।

अपनी वासनाओ पर काबू रखना, उन्हें कुमार्ग पर न जाने देना मनुष्य के शौर्य, पराक्रम एवं पुरुषार्थ का प्रधान चिन्ह है। मनःक्षेत्र मे कुहराम मचाने वाली उत्तेजनाएँ, आवेश, असंतुलन एवं विकार इन्द्रियो के असंयम के ही परिणाम होते है। जब तक स्वाद या चटोरेपन के वशीभूत होकर स्वादेन्द्रिय पेट पर अत्याचार करती रहेगी, तब तक इन विकारो से छुटकारा पाना संभव नही।

वस्तुत: आहार का, खान-पान का उद्देश्य शरीर रूपी इंजन को सुचारू रूप से गतिशील रखने के लिए पर्याप्त ईंधन प्रदान करना है, न कि स्वादेन्द्रिय की कभी न पूरी हो सकने वाली इच्छापूर्ति, जैसा कि वर्तमान मे प्रचलन है। भोजन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना तथा स्वादपूर्ण आहार का सेवन करने को बिनोवा ने एक प्रकार की हिंसा कहा है। उनका यह कथन सर्वथा उचित भी है, क्योंकि खाद्य पदार्थों मे कृत्रिम रस पैदा करना अंततः शरीर व मन को उत्तेजित करना है। ये विकार ही हिंसा को उत्पन्न करते या वासना को भड़काते हैं। स्वाद-नियन्त्रण की उपलब्धियो के बारे मे विवेकानद का कहना है "मैने अपने सोने और खाने पर इच्छित नियन्त्रण रखा है। इसी आधार पर मै अपना मनोबल, पराक्रम और धैर्य विकसित कर सका। इन्द्रिय संयम अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन के लाभो मे यह लाभ भी सम्मिलित है।

मन को वश मे करने तथा कामेन्द्रियो सहित अन्यान्य इन्द्रियो को *नियंत्रित* रखने—निग्रहीत करने के लिए स्वादेन्द्रिय की संयम साधना हर साधक को किसी न किसी रूप मे करनी ही चाहिए, इस दिशा मे एक कदम उठना ही चाहिए, भले ही वह आरंभ मे अस्वाद व्रत के रूप मे ही क्यो न हो। वस्तुत: अस्वाद व्रत अपने आप मे एक महाव्रत है। महात्मा गाँधी ने ... भूरि-भूरि प्रशंसा की है और अपने सप्तमहाव्रतो में ... प्रमुख स्थान दिया है। यह एक ऐसा महाव्रत है, ... उन्होने स्वयं एवं बिनोवा जैसे अनेको महामानवो ... अपनाया और उस आधार पर अपने आहार-विहार ... आगे बढ़े ... उत्तरोत्तर शुद्ध-सात्विक बनाते हुए ... और अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने ... मे एक दिन भी इसे पालन वि... संयम शक्ति और दृढ़ता बढ़ती है

मनुष्य मे उन गुणो का भी विकास कर देती है, जो महापुरुषो-महामानवो मे होने ही चाहिए।

शक्ति का स्रोत हमारे अन्दर है

आज जैसी भी कुछ हमारी स्थिति है, वह सब हमारी मानसिक स्थिति का परिणाम है। मन कर्ता है। संसार की सम्पूर्ण बाह्य रचना की शक्ति और आधार मन है। हमारा आहार, रहन-सहन, चाल-चलन, व्यवहार-विचार, शिक्षा-समुन्नति यह सारी बाते हमारी मानसिक दशा के अनुरूप ही होती है। जैसा कुछ चिन्तन करते है, विचार करते है, वैसे ही क्रिया-कलाप भी होते है और तद्नुसार वैसे ही अच्छे-बुरे कर्म भी बन पड़ते है। सुख और दुःख, बन्धन और मुक्ति चूँकि इन्ही कर्मो का परिणाम है, इसलिये हमारे उद्धार और पतन का कारण भी हमारा मन ही है।

कोई भी बड़ा कार्य, श्रेष्ठ सत्कर्म या उन्नति करनी हो तो उसके अनुरूप मानसिक शक्ति की ही आराधना करनी पड़ेगी। मन की शक्तियो को यत्नपूर्वक उस दिशा मे प्रवृत्त करना पड़ेगा। जो लोग यह कहते रहते है कि "क्या करे हमारा तो मन ही नही मानता" उन्हे यह जानना चाहिये कि मानसिक शक्तियाँ सर्वथा स्वच्छन्द नही है। मन इच्छाशक्ति के अधीन है। इच्छाओ के आकार-प्रकार पर उनकी क्रिया शक्ति सम्भावित है। एक व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेता है दूसरा निम्न कक्षाओ से ही अध्ययन छोड़ बैठता है, एक धनी है दूसरा निर्धन, एक डाक्टर है दूसरा वकील, जिसकी जो स्थिति है वह उसकी इच्छा के फलस्वरूप ही है। यदि किसी को अनिच्छापूर्वक किसी स्थिति मे रहना पड़ रहा है तो इससे एक ही अर्थ निकाला जायेगा कि उस व्यक्ति ने इच्छाओ के अनुरूप कार्य शक्ति मे मन को प्रयुक्त नही किया। जिसकी मानसिक शक्तियाँ विशृंखलित रहेगी वह न तो कोई सफलता ही प्राप्त कर सकेगा और न ही उसकी कोई इच्छा पूर्ण होगी।

असफलता या दुर्भाग्य केवल मनोबल की कमी का ही परिणाम है। यत्न करते हुये थोड़ी सी परेशानी ही प्रयत्न से विचलित कर देने के लिये काफी होती है। थोड़ा-सा शारीरिक दबाव, धन हानि, व्यापार मे घाटा, शिक्षा मे ... जैसी निराशाजनक घटनाएँ आई कि ... घटिया मनोबल का लक्षण है कि ... परिणाम प्राप्त ... चाहे।

तो यह नही समझना चाहिये कि अपना श्रम, धन और समय व्यर्थ चला गया। परीक्षा मे उत्तीर्ण होने का प्रमाण-पत्र नहीं मिला, यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। मन के महत्व का प्रश्न है। महत्व इस बात का है कि उस शिक्षा से बौद्धिक बल बढ़ा, विचार शक्ति आई और अनेक उलझनो को सुलझाने की महत्वपूर्ण सामर्थ्य प्राप्त हुई या नही ? प्रमाणपत्र इन्ही बातों की गारन्टी का ही नाम तो है जो यदि न भी मिले तो यह नहीं समझना चाहिये कि हमारा प्रयत्न निष्फल चला गया।

परिस्थितियाँ यदि प्रतिकूल हैं तो भी साधनो का उपयोग करते रहना चाहिये। थोड़ी-सी पूँजी से बढ़कर उच्च-स्तर के व्यापार तक पहुँचा जा सकता है, किन्तु मानसिक शक्ति अपने साथ बनी रहनी चाहिये। कार्य करते समय ऊबो नही और उत्तेजित भी न हो। यह समझ ले कि हमे तो लक्ष्य तक पहुँचना है। जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो। एक बार गिरने मे उसका कारण मालूम पड़ जायेगा तो दुबारा उधर से सावधान हो जाओगे। यह स्थिति निरन्तर चलती रहे तो अनेक बाधाओ के रहते हुए भी अपने लिये उन्नति का मार्ग निकाला जा सकता है। हार मन के हारने से होती है। मन यदि बलवान है तो इच्छा-पूर्ति भी अधिक सुनिश्चित समझनी चाहिये।

आज यदि स्थिति ठीक नहीं है तो भविष्य मे भी वह ऐसी ही बनी रहेगी, ऐसा कमजोर बनाने वाला विचार अपने मस्तिष्क से निकाल दें। श्रेष्ठता अन्दर सुप्तावस्था मे पड़ी हुई है। इसमे संशय नही कि हम हर आवश्यकता अपने आप पूरी कर सकते है। पर इसके लिये सतत अभ्यास की आवश्यकता है। अपना उद्योग बन्द न करें। अकर्मण्यता और आलस्य का, अधीरता और प्रयत्नहीनता का साथ छोड़कर "यत्न देवो भव" की उपासना आरम्भ कर दोगे तो पुरुषार्थ का देवता ही अपने लिये अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर देगा। काम करने मे शिथिलता न व्यक्त करें, ढिलाई न करें, चिन्तित न हो। आत्म-विश्वास न खोओ। धैर्य के साथ 'यत्न' देव का आश्रय पकड़े रहे तो यह निश्चय है कि आज की यह दीन-हीन अवस्था कल श्री-सम्पन्न अवस्था मे बदलकर रहेगी।

ऊँची से ऊँची इमारत की नीव भी नीचे ही रखी होती है। ऊँचे उठने का शुभारम्भ निचली पृष्ठभूमि से किया जाता है। निर्धन धनकुबेर होते हैं। पहलवान कोई माँ के पेट से बनकर नही आता। उसके लिये तो विधिवत उपासना करनी पड़ती है।

यह ठीक है कि आज अपनी दशा अच्छी नही, कोई विशेष गुण भी दिखाई नहीं देता फिर भी निराशा का कोई कारण नही। एक शक्ति अभी भी अपने पास है और वह अन्त तक पास रहेगी। वह है—मन। मन की शक्ति को सम्पादन करने का तरीका जानने का प्रयत्न

एक दिन मनोबल इतना बढ़ जायेगा जब ऊँचे से भी ऊँचा कार्य करने मे भी हिचक नहीं होगी और उत्साहपूर्वक, दृढ़तापूर्वक सफलता की मंजिले पार करते हुये आगे बढ़ सकेंगे। श्रेष्ठताये अन्दर छिपी पड़ी है, उनका समर्थन और अभिवर्धन करें, दूसरो की ओर देखे वे किस तरह आगे बढ़े है। दूसरो से उदाहरण लें कि उन्होने कैसे सफलताये पाई हैं। बिना हाथ-पाँव डुलाये किसी के भाग्यदेवता ने साथ नही दिया। चुपचाप बैठे रहेंगे तो उन्नति का अवसर पास से गुजरकर चला जायेगा, आपको केवल हाथ मसलकर रह जाना पड़ेगा।

आत्म-संयम करें, इससे बिखरा हुआ मानसिक संस्थान जगेगा। निश्चेष्ट मनुष्य इसलिये होता है कि उस की शक्तियाँ इधर-उधर बिखरी हुई होती है। मामूली सी शक्ति से कोई काम भी नहीं बनता। बिखरी हुई सूर्य की किरणे सारे शरीर पर असंख्य मात्रा मे गिरती है तो भी उससे कुछ विशेष हलचल उत्पन्न नही होती पर यदि एक-डेढ़ इंच जगह की किरणो को आतिशी शीशे से एक जगह पर एकत्रित कर दिया जाय तो इससे दावानल का रूप धारण कर एकता की क्षमता से सम्पन्न आग पैदा हो जायेगी। हम अपनी शक्तियो को इधर-उधर के, बेकार के कार्यों मे खर्च करते रहते है जिससे जीवन मे कोई विशेषता नही बन पाती। आत्म-संयम से बिखरी हुई शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर अभीष्ट परिणाम के लिये उपयुक्त वातावरण तैयार करती है। मन की सूक्ष्म शक्तियो का जागरण आत्म-संयम से होता है।

किसी समय भारतवर्ष ने मन का, शक्तियो का सम्पादन करके अनेकों आश्चर्यजनक शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। एकाग्रता के अभ्यास द्वारा यह सम्भावनाये अब भी जाग्रत की जा सकती हैं। इसके लिये अपने आपको गति देने की आवश्यकता है, जी-तोड़ परिश्रम करने की आवश्यकता है, प्रयत्न पर प्रयत्न करने की जरूरत है। हमारे भीतर जो सिद्धियाँ बिखरी हुई पड़ी है, उन्हें कार्य क्षेत्र मे लगाने भर की देर है, बस हमारी यह विषम परिस्थितियाँ अधिक दिनों तक ठहरने वाली नही हैं।

उन्नति के लिये चाहे कितने ही व्यक्ति सहानुभूति व्यक्त क्यो न करें पर यह निर्विवाद है कि हमारा इससे कुछ काम न चलेगा। हमे अपनी स्थिति स्वयं सुधारनी होगी, स्वयं कठिनाइयो से लड़कर नया निर्माण करना पड़ेगा, विशृंखलित शक्तियों को जुटाकर आगे बढ़ने का कार्यक्रम बनाना पड़ेगा। यह बात यदि समझ मे आ जाय तो सफलता की आधी मंजिल तय कर ली, ऐसा समझना चाहिये। शेष आधे के लिये मनोबल जुटाकर यत्नपूर्वक आगे बढ़िये, आपका सौभाग्य आपके मंगल-मिलन के

शक्ति का स्रोत संघर्ष ही तो है

प्रगति के लिए शक्ति की आवश्यकता है। शक्ति ही वह तत्त्व है जिसके आधार पर सुख-सुविधा और साधन-सामग्री उत्पन्न होती है। अशक्त वस्तु या व्यक्ति को कूड़ा समझा जाता है और प्रकृति की व्यवस्था उसे जल्दी ही नष्ट करने की तैयारी करती है। शरीर जब तक सशक्त है तब तक उसे प्रतिष्ठा, प्रशंसा, प्यार और सहयोग प्राप्त होता है। बीमारी या कमजोरी की स्थिति मे आन्तरिक कष्ट और बाहरी दुर्व्यवहार भुगतना पड़ता है। यह शरीर यदि और भी अधिक अशक्त होकर मृतक बन जाय तो परिजन उसे जल्दी ही जलाने, गाढ़ने, बहाने आदि की तैयारी करते है। यदि वे देर करे तो उस मृत शरीर मे स्वयं ही सड़न पैदा हो जाती है और कीड़े उत्पन्न होकर उसे समाप्त कर देते है। जंगलो मे पड़े हुए मृत शरीर गिद्ध, कौए , सियार, कुत्तो के आहार बन जाते है।

जिस सबल शरीर के द्वारा सिंह का शिकार किया जाता था, खेल प्रतियोगिता मे पुरुस्कार मिलता था, रूप और यौवन मे भारी आकर्षण रहता था, उपार्जन के सभी द्वार खुले रहते थे, वही शरीर अशक्त होने पर अपनी इन सब विशेषताओ को खो बैठता है और देखने वालो की दृष्टि मे कुरूप, दीन, दयनीय बन जाता है, लोग उससे बचने और पीछा छुड़ाने की बात सोचने लगते है। जो वस्तुएँ पुरानी हो जाती है, सड़-गल जाती है, निकम्मी और शक्तिहीन हो जाती है वे कूड़े-कबाड़ मे फेकी जाती है और उन्हे नष्ट करके उनसे कुछ नया बनाने का विचार किया जाता है। वृद्धावस्था होने पर मौत भी इसी उद्देश्य से आती है।

जीवन और उपयोगिता बनाये रहने के लिए हमे शक्ति का संचय करना और बढ़ाना आवश्यक है। जो जितना शक्तिशाली है, वह उतना ही लाभान्वित रहेगा। जो कुछ हम चाहते है उस आकांक्षा की पूर्ति की समस्या सामने आते ही सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या उसके लिए आवश्यक शक्ति हमारे पास है ? यदि अशक्तता छाई हुई हो तो उन्नति की बात तो दूर, सुरक्षा भी संदिग्ध हो जाती है।

अशक्त व्यक्तियो से उनकी कमाई या उचित अधिकार की वस्तु को भी चोर-लुच्चे हथिया लेते है। अपने अस्तित्व को बनाये रहना भी दुर्बलो के लिए कठिन होता है। लोमड़ी, खरगोश, मुर्गी, कबूतर, मछली जैसे स्वल्प सामर्थ्य वाले जीव दूसरे हिंसको द्वारा आये दिन संत्रस्त किये जाते है। प्रचड अग्नि के लिए तेज चलती हुई हवा सहायक होती है, उसकी प्रचंडता को बढ़ाती है। वही हवा बेचारे कमजोर दीपक की लौ बुझा देने की हरकत करने में नही चूकती। इस ससार का ऐसा ही विचित्र विधान बना हुआ है।

परमात्मा भी उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते है। प्राचीन इतिहास-पुराणो में अगणित सिद्ध योगियो और ईश्वर भक्तो के आत्म-बल की कथाएँ हम पढ़ते है तो परमात्मा की महानता और करुणा पर बड़ी प्रसन्नता होती है। पर जब यह सोचते है कि किसी-किसी को ही विशेष कृपा पात्र परमात्मा ने क्यों बनाया और उन्हें ही विशेष अनुग्रह एवं वरदान प्रदान करने का पक्षपात क्यों किया ? तो उसका उत्तर भी सहज ही मिल जाता है। तपस्वियों ने अपने तप, पुरुषार्थ से आत्म-बल एकत्रित करके परमात्मा को यह कृपा प्रदान करने के लिए विवश ही किया है, उसमें ईश्वर की करुणा की जितनी प्रशंसा है, उतनी ही भक्त के पुरुषार्थ की भी है। पुरुषार्थ को आधार और वरदान को उसका प्रतिफल माना गया है। न्याय और निष्पक्षता का तकाजा भी यही है। ईश्वर अपने आपको अन्यायी और पक्षपाती कहलाने वाले काम नहीं कर सकता, उसकी प्रत्येक क्रिया सिद्धान्त और मर्यादाओ के अनुरूप ही होती है।

प्रकृति इस संसार मे सब कुछ स्वस्थ, सुन्दर, समर्थ और समुन्नत देखना चाहती है। उसमे जहाँ भी कमी आती है वहीं वह असुन्दर चीज को मिटाकर नई सुन्दर चीज फिर बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर देती है। कुम्हार कई तरह के बर्तन और खिलौने बनाता रहता है। उसमे से कुछ कुरूप और दोषयुक्त भी बन जाते हैं। कुम्हार उन्हे तोड़ डालता है और उसी मिट्टी से दूसरी अच्छी चीज बनाता है। प्रकृति भी यही करती रहती है। अशक्तता अपनाकर जिन्होने अपना जीवन कुरूप बना डाला है, उनके नष्ट होने मे ही उसे अच्छाई दीखती है। "दैव को दुर्बल का घातक" बताकर शास्त्रकारो ने एक कटु सत्य का ही उद्घाटन किया है।

ईश्वरीय सहायता हर किसी को मिलती है, मिल सकती है पर उसका नियम वही है जो विद्यालयो मे छात्रवृत्ति पाने वाले छात्रो पर लागू होता है। जो अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते है, अपने प्रबल पुरुषार्थ का परिचय देते है, उन्हे आगे बढ़ाने के लिए छात्र-वृत्तियाँ मिलती है। सरकार भी और दानी व्यक्ति भी इसी आधार पर अपनी सहायता का हाथ बढ़ाते है। जो छात्र अपनी श्रमशीलता का परिचय नही दे पाते, फेल होते या फिसड्डी रहते हैं, उन्हे छात्र-वृत्ति देने मे क्या अधिकारी, क्या दानी सभी अपनी सहायता का दुरुपयोग होता हुआ सोचते है और उस प्रकार के छात्रो को निराश रहना पड़ता है। इस कटु सत्य को हम अपने चारो ओर फैला हुआ देख सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक पदार्थ इस बात का साक्षी है कि शक्ति जब तक मौजूद है तब तक उसके लिए यह दुनिया स्वर्ग के समान सुखदायक है, पर जैसे ही उसमे न्यूनता आने लगती है वैसे ही स्थिति बदलने लगती है, सुख के उपकरण ही दुखदायक बन जाते है। यहाँ तक कि जिस शरीर को इतने प्यार, मनोयोग से पाला था, वह भी पीड़ा और परेशानी उत्पन्न करने लगता है।

शक्ति की उत्पत्ति अवरोध से होती है। नदी में जल का प्रबल प्रवाह बहता रहता है, वह अपने क्रम से चलता रहता है और समुद्र मे अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है पर उस प्रवाह को कही रोका जाय तो अवरुद्ध स्थान पर शक्ति का उद्भव होने लगता है। गंगोत्री और उत्तरकाशी के बीच गंगा की मध्य-धारा मे पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टाने पड़ी हैं। इन चट्टानो से जहाँ जल-प्रवाह टकराता है वहाँ पानी भयानक रीति से उफनता है, भारी शब्द करता है और तीस-तीस फुट ऊँचे छींटे उछालता है, उस दृश्य को देखने मात्र से डर लगने लगता है। यदि वे चट्टाने हटा दी जायें तो प्रवाह साधारण रीति से बहने लगेगा और उस भयानक शक्ति-उद्भव का दृश्य सहज ही समाप्त हो जायेगा।

धनुष की डोरी जब तनती है, तब उसमे तीर को दूर फेकने की शक्ति आती है। यदि वह डोरी ढीली पड़ी रहे तो उससे तीर फेकने का काम जरा भी न हो सकेगा। मन के अस्त-व्यस्त प्रवाह को एकाग्रतापूर्वक रोककर एक दिशा मे लगाने वाले साधक उसकी महान शक्ति से महत्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध करते है। वैज्ञानिको से लेकर योगियो तक ने अब तक अगणित सिद्धियाँ प्राप्त की है। उन सबका श्रेय मन को रोककर एक दिशा मे लगाये रहने की सफलता मे ही सन्निहित है। काम-वासना का दमन करके ब्रह्मचर्य से रहने वाले लोग शरीर, मन और आत्मा की तेजस्विता प्राप्त करते है। लोभ और मोह को ठुकराकर आदर्शवाद का मार्ग अपनाने वाले महापुरुषो का ही नाम अमर होता है। लालसा और वासना के सामान्य क्रम मे बढ़ते रहने वाले लोग किसी प्रकार जिन्दगी काट तो लेते है, पर उन्हे उसका वास्तविक लाभ नही मिल पाता।

प्राचीनकाल मे बालको को गुरुकुलो मे रहकर कष्टसाध्य जीवन का अभ्यास करते हुए शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था रहती थी। कठोरता से टकराकर विकसित होने वाले बालको का शौर्य और साहस निखरता था। अमीरी के वातावरण मे पलने वाले लड़के तो विलासी और लुंज-पुज ही बन सकते है। जीवन-संघर्ष मे लड़ने की जब बारी आती है तो उनकी सुकोमलता उन्हे असफलता, निराशा और पराजय ही प्रस्तुत करती है।

चट्टानो पर उगने वाले देवदारु के विशाल वृक्ष बहुत ऊँचे बढ़ते हैं और ऋतु प्रतिकूलता की परवाह न करते हुए हिम-प्रदेशो मे दीर्घकाल तक जीवित रहते है, पर बगीचो मे पलने वाली सुकुमार फुलवारी जरा सी सर्दी-गर्मी मे अपना अस्तित्व खो बैठती है। पहलवानी का श्रेय उसे मिलता है, जो सदा अखाड़े की मिट्टी से अपने बदन को घिसता रहता है। पत्थर पर रगड़ खाये बिना हथियारो की धार तेज कहाँ होती है ?

शक्ति संचय मे जीवन की प्रखरता इसीलिए है कि उसमे अवरोध की प्रतिक्रिया द्वारा उत्पन्न हुई तेजस्विता भरी रहती है। बिजली की उत्पत्ति रगड़ से ही तो होती है। संघर्ष का ही नाम जीवन है। जहाँ सक्रियता समाप्त हुई कि जीवन का भी अन्त हो जाता है। आलसी और अकर्मण्य मनुष्यो की गणना अर्ध मृतको मे होती है। पूर्ण मृतक तो उन्हे इसलिए नहीं कह सकते कि खाते, पीते, बोलते-चालते, चलते-फिरते आदमी को श्मशान या कब्रिस्तान नही ले जाया सकता। पर साथ ही उन्हे जीवित कहना भी कठिन है। क्योंकि जीवन का अर्थ है—संघर्ष-पुरुषार्थ। जिसने पुरुषार्थ करने से इन्कार कर दिया, वह जीवन के प्रति आस्था ही खो बैठा। ऐसे लोगो को भी यदि जीवित कहा जाय तो यह जीवनतत्व का उपहास ही माना जायेगा।

जीवन को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता हमें भली प्रकार समझ लेनी चाहिए और यह भी जान लेना चाहिए कि शक्ति का स्रोत-संघर्ष ही है। ढर्रे पर लुढ़कने वाला, चैन की जिन्दगी काटने का कार्यक्रम मौत के दिन पूरे करते रहने मे तो सहायक हो सकता है पर इस मार्ग मे हर दृष्टि से मनुष्य को खाली हाथ ही रहना पड़ता है। श्रम किये बिना सम्पत्ति कहाँ ? पढ़े बिना विद्या कैसी ? संयम बिना स्वास्थ्य कैसा ? तप किये बिना वरदान कैसे ? तत्परता से ही तो प्रसुप्त शक्तियो का जागरण होता है और जाग्रत शक्तियाँ ही तो विभूतियो के रूप मे, ऋद्धि-सिद्धियो के रूप मे सामने आती है।

आत्मविश्वास की शक्ति

जीवन के सभी क्षेत्रो मे सफल होने के लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। अच्छे से अच्छा तैराक भी आत्मविश्वास के अभाव मे किसी नदी को पार नही कर सकता। वह बीच मे ही फँस जायेगा, नदी के प्रवाह मे बह जायेगा अथवा हाथ-पैर पटककर वापिस लौट आयेगा। यही बात भव-सागर पार करने मे भी लागू होती है। जीवन मे अनेको कठिनाइयाँ, उलझने, अप्रिय परिस्थितियाँ आती रहती है। इन झंझावातो मे कठोर चट्टान की तरह अपनी राह पर अडिग रहने के लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है।

लक्ष्य जितना बड़ा होगा, मार्ग भी उतना ही लम्बा होगा और अवरोध भी उतने ही अधिक आयेगे, इसलिए उतने ही प्रबल आत्मविश्वास की आवश्यकता होगी। संसार भी आत्मविश्वासी का समर्थन करता है। आत्म-विश्वास चेहरे पर वह आकर्षण बनकर फूट पड़ता है जिससे पराये भी अपने बन जाते है। अनजान भी हमराही की तरह साथ देते हैं। विपरीत परिस्थितियाँ भी आत्मविश्वासी के लिए अनुकूल परिणाम प्रदान करती हैं।

आत्मविश्वास का मूल स्वरूप है—आत्म-सत्ता पर विश्वास करना। जिसे अपनी आत्मा की अजेय शक्ति, महानता पर विश्वास है, जो अपने जीवन की सार्थकता, महत्ता, महानता स्वीकार करता है उसी मे आत्मविश्वास

का स्रोत उमड़ पड़ता है और वही जीवन-पथ के अवरोधों, कठिनाइयों को चीरता हुआ, राह के रोड़ों को धकेलता हुआ, अपना मार्ग स्वयं निकाल लेता है। प्रकृति आत्मविश्वासी पुरुष का साथ देती है, अपने नियमों का व्यतिरेक करके भी।

अपने आपको तुच्छ, अनावश्यक समझने वाले संसार सागर मे तिनके की तरह कभी इधर, कभी उधर थपेड़े खाते है। जिन्हे अपनी आत्म-सत्ता, अपने महान अस्तित्व का बोध नहीं, उन्हे जीवन के समरांगण मे हारना पड़े तो कोई आश्चर्य की बात नही है। जो अपने आपको तुच्छ और अनावश्यक समझते है, उन्हे दूसरे कैसे आवश्यक और महत्वपूर्ण समझ सकते है ? आत्मविश्वास के अभाव मे सन्देह, भय, चिन्ता आदि मनोविकार पनप उठते है और तब दूसरो का विश्वास, आत्मीयता, सहानुभूति भी प्राप्त नही होती।

मनुष्य जैसा अपने आपको समझेगा, उसका व्यक्तित्व, आत्मिक स्तर भी वैसा ही बनेगा। अच्छी शिक्षा, साधन, सम्पत्ति पाकर भी मनुष्य आत्मविश्वास के अभाव मे तुच्छता एवं हीनता का अनुभव करते है और जीवन मे कोई विशेष सफलता अर्जित नही कर पाते। वे जीवन की घिसी-पिटी राह पर , परिस्थितियो के थपेड़े खाते, रोते-झीकते अपने दिन गुजार देते है। साधन-सुविधा एवं सम्पन्नता पाकर भी वे कष्टकारक जीवन बिताते है, किन्तु आत्म विश्वासी सामान्य परिस्थितियो मे ही खड़ा होकर जीवन मे उत्कर्ष प्राप्त करता है।

नेपोलियन की सेना आगे बढ़ रही थी। मार्ग मे आल्पस पर्वत पड़ा। सिपाही रुक गये। सेनापति ने नेपोलियन को सूचना दी, इस पर नेपोलियन ने मुस्कराते हुए कहा "सेनापति ! कोई बात नही, आल्पस हमारा रास्ता रोकता है, तो आल्पस नही रहेगा।" और उस दुर्गम पर्वत को काट-छाँटकर सेना के लिए रास्ता बना लिया गया। यह आत्मविश्वास का चमत्कार है। दुनियाँ मे जो कुछ महत्वपूर्ण बाते दिखाई पड़ती है, उनकी नीव मनुष्य के प्रबल आत्मविश्वास पर रखी गई थी। नेपोलियन की विजय मे प्रमुख हाथ था, उसके आत्म-विश्वास का। वह बड़े ही विश्वास के साथ कहता था "वह गोली अभी नही बनी है जो नेपोलियन को मारेगी।" और एक-एक युद्ध मे उसे विजय भी मिलती गई। इसका इतिहास साक्षी है। आत्मविश्वास की धरती मे से ही पुरुषार्थ का अंकुर फूट निकलता है और पुरुषार्थी ही **"वीर भोग्या वसुन्धरा"** पर स्वर्गीय जीवन का सृजन करता है। अपने आपको दीन, हीन, मलिन, पतित समझने वाले धरती पर बोझ ही बढ़ा सकते है, वे ही इस "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती को नरकतुल्य बना देते है।

आत्मविश्वास की ज्योति को जलाने, उसे प्रज्ज्वलित रखने के लिए आन्तरिक स्वाधीनता की आवश्यकता है। जो मनुष्य अपने मानसिक विकार, चिन्ता, भय, क्रोध, सन्देह आदि से ग्रस्त है, वह स्वाधीन नहीं कहला सकता। वह तो परतन्त्र है। उसे ये विकार अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ भटकाते है। ऐसी परतन्त्रता में आत्मविश्वास का निवास नही होता। जो अपने आन्तरिक और बाह्य जीवन पर स्वयं शासन करता है, वही आत्मविश्वास की शक्ति को प्राप्त कर सकता है और इसी से मनुष्य की साधारण शक्तियाँ भी असाधारण बन जाती है। लोहे, ताँबे के सामान्य तारो का कोई महत्त्व नहीं होता किन्तु जब उनमें विद्युत प्रवाह बह उठता है तो वे बड़े महत्वपूर्ण हो जाते है। विद्या, धन, शक्ति, साधन, सम्पत्ति यह कोई महत्व नहीं रखते, यदि उनसे चेतना केन्द्र-आत्मविश्वास जाग्रत नहीं होता।

आत्मविश्वास की वृद्धि के लिए उत्तरदायित्वों एवं जिम्मेदारियों का स्वागत कर उन्हें स्वीकार करने की आवश्यकता है। प्रत्येक जिम्मेदारी के लिए पूर्ण लगन और श्रम से कार्य करके उसे सफल बनाने का प्रयत्न करते रहना आवश्यक है। छोटी-छोटी जिम्मेदारियो को पूरा करते ही मनुष्य मे आत्मविश्वास की नीव मजबूत होने लगती है। जिस उत्तरदायित्व को ग्रहण करने का अवसर आये, उसे सहर्ष ग्रहण किया जाय। उससे बचने की, घबराने की वृत्ति आत्मविश्वास को नष्ट करती है। विभिन्न जिम्मेदारियो को पूरा करते हुए ही मनुष्य महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पादन करने की क्षमता और आत्मविश्वास प्राप्त करता है।

जीवन मे जो आदर्श निश्चित किए जायें, जो आकांक्षाये बनाये, उन्हे जी-जान से, तत्परता से पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाय। छोटी-छोटी सफलताओं से ही मनुष्य का आत्मविश्वास बढ़ता है। किसी भी क्षेत्र मे दृढ़ निश्चय और प्रयत्न से सफलता किसी न किसी मात्रा में अवश्य मिलेगी, जिससे आत्मविश्वास जगेगा। खासकर जिन बातो मे मनुष्य को डर, सन्देह, घबराहट महसूस हो, उनमे तो प्रयत्नपूर्वक हाथ डालना आवश्यक है। क्योकि आत्मविश्वास के ये प्रबल शत्रु है। अन्धेरे से डरने वाले यदि प्रयत्नपूर्वक अन्धेरे मे जावे तो उनका अन्धेरे का डर दूर हो जाय। जिस काम मे हाथ डालने से दुर्बलता के कारण हिचकिचाहट हो, उस काम को अवश्य किया जाय।

जीवन मे थोड़ी बहुत गल्तियाँ एवं असफलता होना भी स्वाभाविक है। उनको सदा के लिए भुला देना ही श्रेयस्कर होगा। उनके बारे मे अधिक सोच-विचार न किया जाय। पिछली भूलो की उपयोगिता तो इसी मे है कि उनसे अनुभव प्राप्त कर भविष्य मे वैसा न किया जाय। असफलताओ, पिछली भूलो का चिन्तन करते रहने पर दिनो-दिन आत्मविश्वास ही नष्ट होता है।

आत्मविश्वास की वृद्धि के लिए ईश्वर पर श्रद्धा और निष्ठा रखना एक सरल मार्ग है। ईश्वर पर आस्था

रखने से उसकी अनन्तता, व्यापकता पर विश्वास रहता है। साथ ही इससे मानसिक विकारो का समाधान होता है और मन को शान्ति मिलती है, जो आत्मविश्वास को जाग्रत करने के लिए आवश्यक तत्व है।

संसार के बड़े-बड़े कार्य आत्मविश्वास से ही सम्पन्न हुए है। प्रबल आत्मविश्वास-सम्पन्न लोगो ने ही संसार का नेतृत्व किया है। नया प्रकाश, नया मार्ग दिखाने वाले प्रबल आत्मविश्वासी ही रहे है। हमे आत्मविश्वास का महत्व समझना चाहिए और उसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए।

मल्लाह का साहस

आकाश मे काली घटाये और पृथ्वी पर जल। इन दो वस्तुओ के अतिरिक्त लगता था धरती-आकाश मे कुछ बचा ही नहीं। प्रलय काल का दृश्य प्रस्तुत था।

दमोह जिले का इटावा गाँव ब्यारमा नदी के जल से बुरी तरह घिरा हुआ था। बाढ़ बढ़ती ही जा रही थी। पानी उतरने का नाम भी नही ले रहा था। जबलपुर और नर्मदा घाटी मे अब भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी फलस्वरूप बाढ़ का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा था।

छोटे गाँव वैसे भी शहर से दूर होते है, उनकी खोज-खबर अधिकारियो को कहाँ होती है, अपनी लाभ-हानि के जिम्मेदार वे स्वयं होते है। जो अपनी व्यवस्था आप नही कर लेते, वे आये दिन इटावा गाँव की तरह संकट मे ही फँसते रहते है।

बाढ़ के कारण सड़क से भी सम्बन्ध विच्छेद हो गया। गाँव एक समुद्री टापू बन गया। शाम होते-होते तक पानी घरो मे घुसने लगा। लोगो ने अपने डेरे छतो मे डाले तो भी बाढ़ थमी नही। घरो के बैठ जाने का खतरा पैदा हो गया।

दुनियाँ मे ऐसे लोग थोड़े होते है जो संकट आ जाने पर अपनी कम दूसरो के हित की चिन्ता अधिक करते है। ऐसे जो भी लोग होते है, वंश और धन-सम्पत्ति की दृष्टि से वे चाहे कितने ही छोटे क्यो न होते हो, महान होते है। एक दिन समाज उनके समक्ष नतमस्तक होता है। न भी हो तो भी कर्तव्य-पालन का सुख सैकड़ो सुखो से भी बढ़कर होता है।

'जब सब लोगो को अपना-अपना सामान, अपने-अपने बच्चे बचाने की सूझ रही थी, तब गाँव का एक साधारण मल्लाह हरिया अपनी छोटी-सी डोंगी लेकर निकला और उसने लोगो को गाँव से बाहर सुरक्षित स्थानो पर पहुँचाना शुरू कर दिया। सारी रात उसने बोझा ढो-ढोकर लोगो को बाढ़ से घिरी बस्ती से बाहर निकाला।

पौ फट रही थी। अभी भी ५० के लगभग स्त्री पुरुष और बच्चे गाँव मे फँसे हुये थे। हरिया थक गया था। डोंगी मे छोटा-सा छेद हो गया था। उससे बार-बार पानी भर जाता था। उसे निकालने का परिश्रम नाव चलाने के परिश्रम से अधिक था।

इधर घर गिरने लगे। जो लोग बच रहे थे उनके लिये व्याकुलता बढ़ती जा रही थी और हरिया निष्काम भाव से अपने हाथ-पाँव चलाता उन्हे निकालने मे लगा था। नाव ज्यादा बोझ भरने के कारण फट चुकी थी। पानी तेजी से भर रहा था। पर आखिरी खेप तो उसे लानी ही थी। मानवता के प्रति प्यार का सुख प्राप्त करने वाले संकटो मे फँसना, मरना और जीना क्या जाने ? उन्हें तो सेवा मे आनन्द आता है।

हरिया फिर गाँव की ओर बढ़ा। जितने लोग शेष बचे थे, सबको नाव मे बैठाकर वह चल पड़ा।

घर वालों ने, छोटे-छोटे बच्चो ने पकड़ लिया, बोले—हरिया दद्दा ! अब तुम बहुत थक गये हो, नाव भी अब बोझा भरने योग्य नही रही। कही ऐसा न हो कि इससे पहले कि बच्चे और कुछ कहे, हरिया ने उनका मुँह बन्द कर दिया। उसने सोचा एक व्यक्ति यदि १० की जान बचा सकता है तो उसे बलिदान से भय नही खाना चाहिये। मनुष्य परोपकार से अमर बनता है। हरिया पीछे मत हट, आहतो की आवाज सुन, मोह-ममता का परित्याग कर। सारा संसार अपना ही तो है।

हरिया कूद पड़ा। नाव बढ़ चली। पानी भरता गया। बचे हुये लोगो को सुरक्षित बैठा कर हरिया लौट रहा था तभी नाव पानी मे धँस गई और फिर कभी वापस नही निकली। हरिया ने एक-एक को किनारे पहुँचाया पर स्वयं किनारे नही आ पाया। सारा गाँव हरिया के लिये रो रहा था। लोग कह रहे थे—सैकड़ो के प्राण बचाने वाला हरिया डूब गया। पर डूबा कहाँ ? उसने अपने को अमर कर दिया।

प्रतिकूलताओं की चुनौती स्वीकार कीजिये

संसार मे ऐसे व्यक्तियो की भी कमी नही है जो अपनी हीनावस्था का कारण अपने दुर्भाग्य को बतलाया करते है। उनसे बात कीजिये और पूछिये कि भाई, आप जो इस प्रकार विपन्नता मे जीवन काट रहे है, इसमे आपको संतोष किस प्रकार हो रहा है और इस दशा को बदलने के बजाय हाथ पर हाथ धरे क्यो बैठे हुए है ?

इस सहानुभूति के उत्तर मे उनका कथन होगा कि—"क्या करे ? हमारा भाग्य ही खराब है। परमात्मा ने हमारे भाग्य मे दुःख-दर्द ही लिखे है, सो भोग रहे है। यदि हमारे भाग्य मे सुख-सुविधा होती तो क्या अन्य लोगो की तरह हमारा जन्म भी अमीर अथवा साधन-सम्पन्न घर मे नही होता ? हम जानते है कि

हमारा भाग्य खराब है इसलिये कोई उद्योग करना भी बेकार है।''

लोगों का ऐसा निराशापूर्ण उत्तर सुनकर तरस आये बिना नही रहता। यह भाग्य एव भविष्य के "जानपांडे" उपाय एव उद्योग की अपेक्षा विपन्नावस्था मे अधिक विश्वास करते है। उनका गरीब होना वास्तव मे उतना दुर्भाग्यपूर्ण नही है जितना कि उनका यह निराशापूर्ण अन्धविश्वास।

कितने आश्चर्य की बात है कि भाग्य के अन्धविश्वासी अपनी दशा बदलने का उपाय किये बिना ही बड़ी आसानी से यह मान लेते है कि गरीबी तो उनका प्रारब्ध भोग है। वह किसी उपाय अथवा उद्योग से नही बदली जा सकती। इसलिये इसके विरोध मे डटकर मोर्चा लेना बेकार है। इस प्रकार के भाग्य-ज्ञाताओ को जरा सोचना चाहिये कि जब तक उन्होंने परिश्रम एवं पुरुषार्थ नही किया, तब तक उन्हे यह किस प्रकार पता चल गया कि कोई भी उद्योग सफल न होगा।

हो यह भी सकता है कि उन्होने उद्योग किया हो और वे असफल रहे हो। किन्तु एक बार की असफलता से घबराकर बैठ रहना और यह मान लेना कि "उनका भाग्य ही खोटा है, सफलता उन्हे नही मिल सकती", कोई अर्थ नही रखता। उद्योग का अर्थ है, बार-बार उपाय करना, निरन्तर एवं नितान्त परिश्रम करना, अपने काम मे तब तक जुटे रहना जब तक उद्देश्य पूरा न हो जाये। मैदान मे उतरे और जरा-सी कठिनाई देखते ही भाग खड़े हुए और मान लिया कि सफलता उनके भाग्य मे ही नही है। परिश्रम एवं पुरुषार्थ करना निरर्थक है, मनुष्यता नही कही जा सकती। उपाय एवं उद्योग एक बार मे ही सफल नही होता, उसके लिए बार-बार प्रयत्न करना होता है।

यदि निराश व्यक्ति बार-बार प्रयत्न करने की बात कहता है तो या तो उसका कथन विश्वास के योग्य नही है अथवा उसके प्रयत्न के समानान्तर यह अविश्वास अवश्य चलता रहा होगा कि 'उसका भाग्य खोटा है,। उसका प्रयत्न सफल नही होता।' निश्चय ही उसकी बार-बार की असफलता मे उसकी यह भावना हेतु रही है। अन्यथा कोई कारण नही कि जो व्यक्ति अपने पूरे तन, मन एव साहस के साथ निरन्तर प्रयत्न करे वह सफल न हो। ऐसा कभी नही हो सकता।

अविश्वास के साथ किया हुआ कोई भी कार्य सफल नही होता। अपने प्रयत्नो मे विश्वास न रखने वाले व्यक्ति की शक्तियाँ अपमानित जैसा अनुभव करती रहती है और कभी भी पूरी तरह से काम नही करती। अपने प्रयत्न को दुर्भाग्य का अभिशाप देने वाले नासमझ लोग शुभ संकल्पों का महत्त्व नही जानते, इसीलिए आत्म अभिशापित उनके प्रयत्न निष्फल चले जाते है। अपने को किसी दूसरे का शाप लगे या न लगे किन्तु अपना शाप अवश्य लग जाता है।

अपनी समुन्नति मे प्रतिकूल सम्योगो अथवा भाग्यहीनता को हेतु मानना, अपने को भ्रम मे रखना और आत्मविश्वास को धोखा देना है। अपने साथ इस प्रकार का विश्वासघात करने वाले निश्चय ही जीवन मे सफलता का सौभाग्य नहीं ले पाते। अपने से विश्वासघात करने की निकृष्ट भावना को छोड़कर उन्हे आँख फैलाकर चारों ओर देखना चाहिये और समझने की कोशिश करनी चाहिए कि आज जो उनके सामने ही उन्नति के शिखर पर चढ गये और दिन-दिन अग्रसर होते जा रहे है वे सब क्या जन्म-जात सुविधाओं के अधिकारी रहे हैं ? इतिहास साक्षी है कि संसार के प्रसिद्धिवादी व्यक्तियो मे से अधिकाश ऐसी कठिन परिस्थितियो मे जन्मे, ऐसी वज्र-विषरताओं मे पले और ऐसे विकट-विकट विरोधो मे आगे बढ़े हैं कि ऐसी प्रतिकूलताओं की छाया-मात्र भी उन जैसे निराशावादियों पर पड़ जाती तो कदाचित् उन्होंने रो-रोकर जान ही दे दी होती।

हिम्मत हारकर बैठे व्यक्तियो को सोचना चाहिए कि उनके आस-पास उन्ही जैसी परिस्थितियो में जो लोग रह रहे है, उनमे से आगे चलकर न जाने कितने लोग धनवान् विद्वान , कलाकार तथा जन-नेता आदि बनकर जीवन को सफल बनायंगे, तब क्या कारण है कि वे वैसा नही बन सकते ? कारण केवल यही है कि वे उद्योगशील, आशावादी उन जैसे दुर्भाग्यवादी नही है। वे बलपूर्वक भाग्य बदलने मे विश्वास रखते है। यदि जन्म-जात सुविधाये ही उन्नति एवं महानता का कारण होती तो निश्चय ही संसार के सारे साधन सम्पन्न व्यक्तियों को चाँद-सूरज की तरह चमकना चाहिये था। किन्तु ऐसा देखा कही नही जाता। कठिन परिस्थितियाँ अथवा प्रतिकूल संयोग ही किसी की उन्नति एवं विकास मे विजयी रहे होते तो न तो आज तक कोई गरीब से अमीर बन पाया होता और न निम्न से महान। और न आगे ही कोई ऐसा परिवर्तन प्राप्त कर सकने की सम्भावना ही रख सकता है। लोग प्रतिकूलताओं को जीतकर आगे बढ़े है, बढ़ रहे है और भविष्य मे भी बढ़ते जायेगे किन्तु आत्मविश्वास एवं पुरुषार्थ के बल पर।

अपनी दयनीयता का दोष परमात्मा को देने से कही अच्छा है कि अपने अपरिश्रमी स्वभाव को दिया जाय। वह समदर्शी परमपिता परमात्मा कभी किसी के साथ अन्याय नही करता। उसके पास देने के लिये जो दया का कोष है, उसका भाग वह सबको पात्रता के अनुसार न्यायपूर्वक ही देता है। जगत मे आकर जो पुरुषार्थी एव आत्मविश्वासी व्यक्ति अपनी पात्रता की वृद्धि कर लेते है, निश्चय ही वे उसकी कृपा का अधिक अंश पा लेते है। परमात्मा मनुष्य के प्रयत्न पात्र को अपनी

कृपा से लबालब भरे रहता है। अब जो अपने प्रयत्न को छोटा कर लेता है, कृपा का अंश उसमें से कम हो जाता है और जो उसको जितना विशाल बना लेता है उसकी कृपा का उतना ही अंश उसमे बढ़ जाता है। अपनी प्रयत्नहीनता को दोष न देकर परमात्मा को दोष देना उसकी न्यायशीलता मे एक अक्षम्य अशिष्टता तथा धृष्टता है। यह उनकी इस दुष्ट भावना का भी फल होता है कि आशा की ओर से अन्धे होकर निराशा का हाथ पकड़े हुए जीवन का मार्ग टटोलकर ठोकरे खाते फिरते है। यह उनकी इस धृष्टता का ही परिणाम है कि उनका विश्वास सौभाग्य के प्रति होने के स्थान पर दुर्भाग्य के प्रति दृढ़ रहता है। अपना कल्याण चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का पावन कर्त्तव्य है कि वह परमात्मा को दोष देने के बजाय, उसकी कृपा मे न्यूनता खोजने के बजाय अपने निष्क्रिय स्वभाव, उपयोगी प्रवृति एवं निराशापूर्ण विश्वासो को दोष दे और अपनी कमियो, त्रुटियो एव न्यूनताओ की खोज करे और उन्हे दूर करने का प्रयत्न करे। मनुष्य जब तक भी अपनी विवशताओ की खोज अपने मे न करके उनका दोष दूसरों को देता रहेगा, वो ही दयनीय एवं दुर्भाग्यपूर्ण जीवन बिताता रहेगा।

लोग गरीबी को दोष देते-देते सारी जिन्दगी गुजार देते है और कभी कुछ नहीं कर पाते। जिसकी बुद्धि, जिसका मन और जिसकी शक्तियाँ गरीबी के अपरिवर्तनीय विश्वास चंगुल मे फँसी हुई, उसी को कोसने मे लगी रहती है, उसके पास कुछ और करने के लिये अवकाश कहाँ रह जाता है। अकर्मण्यता एक छोटा-सा बहाना पाकर ही सामने पथ-रोधक पहाड़ खड़े कर देती है तब गरीबी तो नर-वरो के लिए एक चुनौती जैसी होती है। जिस गरीबी को लोग जीवन को डसने वाली नागिन बतलाकर कोसा करते है, उसे ही अनुभवी विद्वान लोग कुछ कर दिखाने का एक अवसर बताया करते है। उनका कहना है कि—"गरीबी का अनुभव यद्यपि कटु होता है तब भी वह मनुष्य के लिए बड़ी हितकर सिद्ध होती है। यह औषधि की तरह मनुष्य के स्वभावगत न जाने कितने दोष-दुर्गुणो को दूर कर देती है। आविष्कार की जननी आवश्यकता के अनुसार गरीबी भी मनुष्य मे ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण गुणो को उत्पन्न कर देती है जो सम्पन्ता की दिशा मे सहज सम्भाव्य नही होते, गरीबी को चुनौती मानकर उसका मुकाबला करने के लिये कटिबद्ध होने वाले साहसियो मे दूरदर्शिता सहनशीलता, कर्मठता, सलग्नता एवं व्युत्पन्न बुद्धि की हितकारी विशेषताये आ जाया करती है। मनुष्य का बिगड़ा हुआ जीवन सुधर जाया करता है।

नि.सन्देह विद्वानो का यह कथन केवल विश्वसनीय ही नही श्रद्धेय भी है। उनके इस कथन मे आस्था रखकर चलने वाले व्यक्तियो के लिये गरीबी एक स्वर्णावसर, एक हितकारी परिस्थिति एवं एक वरदान सिद्ध होती है। किन्तु कब, जब कोई अपनी इस आस्था के साथ प्रयत्न एवं उद्योग की कारिकाये जोड़ देता है। अन्यथा अकर्मण्यता के लिये गरीबी निश्चय ही एक विषैली नागिन है, जो उसे डसकर नष्ट ही कर देगी।

गरीबी के साथ यदि एक बार इस प्रकार की उच्च भावनाये अथवा आस्थाये तभी जोड़ी जाये और उसे एक विरोधी परिस्थिति ही मान लिया जाये तो क्या विरोधी के हाथ नष्ट हो जाना किसी प्रकार शोभा देता है ? अपने जीवन को केवल इसलिए रो-रोकर नष्ट कर देना कि परमात्मा ने उसे सुख-सम्पत्ति के बीच जन्म न देकर प्रतिकूल परिस्थितियों में पैदा किया है। कहाँ तक उचित है ? गरीबी के प्रति असन्तोषपूर्ण किसी का रोना इस बात की गवाही है कि वह उससे अच्छी परिस्थितियो को पाने के लिए व्यग्र एवं लालायित है। किन्तु क्या यह लालसा केवल लालायित होने और व्यग्र बने रहने मात्र से पूरी हो सकती है ? केवल कामना करते रहने से न तो कोई काम आज तक पूर्ण हुआ और न आगे ही होगा। इसके लिये प्रयत्न एवं पुरुषार्थ, सो भी अवधि एवं अविश्रान्त पुरुषार्थ करने के सिवाय कोई विकल्प नही है।

गरीबी को कोसते, कठिनाइयो पर बड़बड़ाते और प्रतिकूलताओ के प्रति क्रोध दिखलाते रहने से कोई काम न चलेगा। यदि वास्तव मे आप सच्चे मन से अपनी परिस्थिति बदलना चाहते है और जीवन मे सफलता का श्रेय लेना चाहते है तो आपको कमर कसकर इस संकल्प के साथ उठना ही होगा कि मै मनोवांछित श्रेय पाने के लिए अपने जीवन की सारी शक्तियो को मैदान मे उतारूँगा और हजार असफलताओ के बाद भी सफलता प्राप्त करके रहूँगा। ऐसा सकल्प करके उठते ही आपकी सारी शक्तियाँ, सारी क्षमताएँ एवं सारी विशेषताएँ दूने उत्साह के साथ आपका सहयोग करेगी और आप अवश्य ही अपने मन्तव्य मे सफल होंगे।

अपंग लंगड्या की आत्मिक सामर्थ्य

नागपुर स्टेशन पर एक अपंग युवक पालिश की पेटी लटकाये बहुधा दिखाई देता था। पैरो से लाचार, हाथो के सहारे घिसटता हुआ वह युवक कभी किसी से कुछ माँगते हुए नही देखा गया। वह जूतो पर पालिश किया करता था, वह भी उचित मूल्य पर और अच्छे स्तर की। उससे पालिश कराने वाले उसके शिष्ट व्यवहार तथा कार्य से बहुत सन्तुष्ट हुआ करते थे। उसके अपंग होते हुए भी स्वावलम्बन से प्रभावित होकर निर्धारित परिश्रम से अधिक भी कुछ सज्जन उसे देने का प्रयास किया करते थे। किन्तु वह निर्धारित पैसो से अधिक लेता नही था। बड़े ही नम्र शब्दो मे वह इन्कार कर दिया करता था। वह कहा करता था "श्रीमान्, निर्धारित राशि ही दें। जितने का मैंने कार्य किया है, उससे अधिक लेना अनैतिकता होगी।" कोई कहता कि 'रख लो काम आयेगे' तो उत्तर देता "काम तो मेरा मेहनत के पैसो से

ही चल जाता है। बाबू साहब !- आपकी कृपा बनी रहे, यही बहुत है।''

युवक का नाम क्या था किसी को पता नहीं। उसे लोग 'लगड्या' ही कहा करते थे। लूले-लँगड़े व्यक्ति किसी न किसी पर भार बनकर ही रहते हैं। अपने दुर्भाग्य का रोना रोकर ही किसी की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयास करते है। इस प्रकार हीन तथा उपेक्षित जीवन जीते है किन्तु युवक लगड्या और ही तरह का व्यक्ति था। उसने कभी किसी से दया की भीख नहीं माँगी। अपना सम्मान खोकर सद्भावना पाने के स्थान पर सम्मान सहित सद्भावना पाई जा सकती है, यह उसने अपने छोटे जीवन मे सिद्ध कर दिया। उसने पालिश का काम अपने पुरुषार्थ केवल घसिट-घसिटकर लोगो के पास जा-जाकर प्रारम्भ किया था। किन्तु शीघ्र ही उसके प्रति लोगो की सद्भावना जाग गयी और अधिकांश समय उसे एक स्थान पर बैठे-बैठे भी काम मिलने लगा। फिर भी उसने सद्भावना का दुरुपयोग न करते हुये अपना सम्मान बनाये रखा। स्वय तो उसने कभी मेहनत के मूल्य के अतिरिक्त किसी से कुछ माँगा ही नही किन्तु यदि कोई उसके पैरो की दुहाई देकर उसे कुछ पैसे देना चाहता था तो वह साभार अस्वीकार कर देता था। वह कहता था "महोदय जी ! मेरे पैर ही तो असमर्थ है । और सारा शरीर तो ठीक है। मेरे हाथ शरीर की आवश्यकता पूरी करने मे समर्थ है। यह सहायता किसी असमर्थ को देकर उपकृत करें।''

ऐसा स्वाभिमानी अपग सैकड़ो की संख्या मे हष्ट-पुष्ट बेकार घूमने वालो से श्रेष्ठ कहा जावेगा। सम्मानपूर्वक जीवन चलाते हुए उसे देखकर लोग प्रसन्न एवं प्रभावित हुआ करते थे। किन्तु उसकी महानता का पता उसकी एक दुर्घटना मे मृत्यु हो जाने पर लगा। जब उसके नाम से ४०० रुपये एक स्थानीय अंध-विद्यालय को दान किये गये।

लंगड्या अपने पुरुषार्थ से कमाता था। संयमित जीवन व्यतीत करते हुये उसमे से थोड़ा-थोड़ा धन बचाता भी चलता था। उसे अपनी अपंगता के प्रति खीझ नही—अन्य असमर्थों के प्रति करुणा थी। करुणा तथा पर दु:खानुभूति मनुष्य के श्रेष्ठ गुण है। यदि अन्त:करण मे मानवीय दृष्टिकोण है, तो शरीर के क्षीण या अपंग होने न होने का कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता। युवक लंगड्या ने यह चरितार्थ करके दिखा दिया। अच्छे खाते-पीते व्यक्ति भी किसी पारमार्थिक कार्य मे खर्च करते हाथ सिकोड़ा करते है। उसका कारण आर्थिक अभाव नही, भावना की कगाली ही होता है। उस अपंग युवक मे भावना थी। अत: उसने अपने श्रम का एक भाग नियमित रूप से अशक्तो के हित मे लगाने का निश्चय किया था। वह बचाये हुए पैसे स्टेशन कैंटीन के दो कर्मचारियो के पास जमा करता रहा। उसने कह रखा था कि कभी उसकी आकस्मिक मृत्यु हो जाने पर जमा किया हुआ धन किसी अन्धविद्यालय को सहायतार्थ दे दिया जावे। वही पैसे-पैसे की बचत मिलकर ४०० रुपये हो गई थी जो उसकी ओर से जमा कर दी गई।

लंगड्या अपंग था, असमर्थ था। किन्तु उसकी मानवोचित आत्म-सम्मान तथा दया व करुणा की भावना ने उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी। उस भावनाजनित पुरुषार्थ तथा श्रेष्ठता के आगे उसकी असमर्थता तथा दीनता क्षीण हो गई। मनुष्य यदि ईश्वर की दी हुई विभूतियों की उपेक्षा न करे तो इसी प्रकार हीन से हीन भौतिक परिस्थितियो में भी महानता का आनन्द ले सकता है।

सत्साहस की सामर्थ्य

शरीरबल, शस्त्रबल, धनबल, विद्याबल आदि की तरह मनोबल भी एक शक्ति है—सामान्य नहीं असामान्य। वह सत्साहस के रूप मे उभरती है और साधन एव सहयोग के अभाव मे भी बहुत कुछ कर गुजरती है।

अनीति की दिशा अपना लेने पर साहस को दुस्साहस कहते है। दस्युओ, तस्करो, आतंकवादियो का भी मनोबल सामान्य लोगो की तुलना मे अधिक उभरा हुआ होता है। वे जोखिम उठाकर भी नृशस कृत्य कर गुजरते है। इतने पर भी उनकी अंतरात्मा उन्हे धिक्कारती रहती है। समाज मे भर्त्सना होती है और राजदण्ड मिलता है। ऐसे प्रयासो के साथ जुड़े हुए मनोबल को क्रूरता, दुष्टता आदि नामो से पुकारा जाता है। इससे लोग भयभीत-आतकित तो होते है, पर उनका कोई सम्मान, समर्थन नही करता। लोभ या दबाव से जो उनका साथ देने लगते है, वे भी पकड़ ढीली होने पर बिदककर अलग खड़े हो जाते है। यहाँ तक कि बन पड़े तो सचित घृणा को प्रतिशोध के रूप मे प्रकट करके रहते है।

सत्साहस वह है, जिसके साथ आदर्श जुड़े होते हैं। कितने ही पुण्यात्मा उच्च सिद्धान्तो के लिए प्रसन्नतापूर्वक त्याग-बलिदान करते है। यदि उनका आत्मबल बढ़ा हुआ न होता तो प्रतिपक्षियो का आक्रमण और स्वजन-सबंधियों का झझट से दूर रहने का सिखावन उनका मार्ग रोक लेता, पर जिन्हे मानवी गौरव-गरिमा के प्रति आस्था है उन्हे किसी का भी भय नही लगता। न वे डरते है और न रुकते है।

भारत बँटवारे के दिनो नोवाखाली बगाल मे भारी रक्तपात हो रहा था। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय का रक्त-पिपासु बन रहा था। इस पागलपन को रोकने के लिए गाँधी जी ने उस क्षेत्र मे स्वय जाना उचित समझा। वे चल पड़े। प्रश्न सुरक्षा का था। हत्यारे गाँधीजी की भी जान ले सकते थे। इसलिए उनके साथी, शुभचिन्तको ने सोचा कि सुरक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध रखा जाय। उन्हे

अकेले न जाने दिया जाय। साथ मे अन्य लोग भी चले ताकि जिन पर पागलपन सवार है, वे गाँधीजी पर हाथ न डाले।

प्रसंग गाँधीजी ने सुना तो वे इस पर सहमत न हुए। सभी साथियो को लौटा दिया और वे अकेले ही चल पड़े। उनने कहा—"सच्चाई और भलमनसाहत की संयुक्त शक्ति इतनी बड़ी है कि अकेला सत्याग्रही भी बड़े से बड़े खतरे के बीच जा सकता है। उसे किसी से भी डरने की जरूरत नही। मौत से भी नहीं।" गाँधीजी उस रक्तरंजित क्षेत्र मे देर तक अकेले ही रहे और आवेशग्रस्तों का उन्माद उतारते रहे। पीड़ितो को सान्त्वना और हिम्मत देकर उनके घावो पर मरहम लगाते रहे। अनीति अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। वह रुकनी तो थी, रुक भी गई। गाँधीजी निर्भयतापूर्वक बिना किसी प्रकार का आक्रोश व्यक्त किये अपना काम सफलतापूर्वक करते रहे।

आदर्शों के लिए गहरी निष्ठा रखने वाले व्यक्ति अपने कर्त्तव्य से इसलिए नही रुकते कि उनके मार्ग में खतरा है। खतरे को कमजोर और कायर नहीं उठा सकते, वे घाटा भी नही उठा सकते, किन्तु जिन्हे कर्त्तव्य का बोध है, वे समय पर अपनी जिम्मेदारी पूरी करने मे चूकते नही। मनोबल का सत्साहस उनका समर्थ साथी होता है।

साहसी को साधन अपने आप मिलते हैं

साधन बड़ा या साहस ? इसका निर्णय ढूँढने के लिए नारवे के एक उत्साही युवक थोर हेयर डेहले ने एक उदाहरण लोगो के सामने प्रस्तुत किया। उपदेश करने की अपेक्षा यह तरीका उसे अच्छा लगा कि उदाहरण प्रस्तुत करके लोगो को अपनी स्वतन्त्र चेतना द्वारा किसी निर्णय पर पहुँचने का अवसर दिया जाय। यह उत्साही युवक साहस को प्रधान मानता और कहता कि साहसी या तो साधन प्राप्त कर लेता है अथवा न्यूनतम साधनो से भी आगे बढ़ने और सफलता पाने का रास्ता निकाल लेता है।

थोर का प्रयोग यह था कि 'सरकंडे' की नाव के सहारे भी कठिन दीखने वाली लम्बी समुद्र यात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है। इस लोहे के विशालकाय यन्त्र सज्जित जहाजों के जमाने मे सरकंडे जैसे दुर्बल साधनो से बनी नाव की क्या तुलना हो सकती है ? पर उसके उपयोग से यह तो साबित किया ही जा सकता है कि मनुष्य का पुरुषार्थ और मनोयोग इतना प्रबल है कि साधन न होने पर भी उसके द्वारा साधन-सम्पन्नो जैसा कर्त्तव्य दिखाया जा सके।

नारवे के उपरोक्त युवक ने इथोपिया की कैड झील मे काम करने वाले मछियारो की सहायता से पहली सरकंडो से बनी नाव बनाई। यह उतनी अच्छी नहीं बनी और अपना लक्ष्य पूरा न कर सकी। वह ४३५२ मील चलकर अटलांटिक सागर मे अपना दम तोड़ गई। पर इससे थोर निराश नहीं हुआ। आरम्भिक असफलताओ से उसका मन जरा भी छोटा नहीं हुआ। हिम्मत हारने की तो इसमे बात ही क्या थी। असफलता एक बार के ही प्रयत्न से मिल जाया करे तो फिर उसे कोई भी प्राप्त कर लिया करे। साहस की परीक्षा तो असफलता की कसौटी पर ही होती है।

हेयर डेहल ने दूसरी नाव लैटिन अमेरिका के बोलीविया क्षेत्र में स्थित नितचाचा झील मे काम करने वाले मछियारो की सहायता से बनाई। यह भी सरकंडो की ही थी। इस नाव मे विभिन्न देशो के सात अन्य यात्री भी अपने सामान सहित सवार हुए। १७ मई, १९७० को मारक्को (अफ्रीका) के साफी बन्दरगाह से यह नाव रवाना हुई और १२ जुलाई, ७० को दक्षिणी अमेरिका के बारण्डोस क्षेत्र के 'ब्रिज' टाउन बन्दरगाह पर पहुँची।

ब्रिज टाउन पहुँचने पर इस सरकण्डे की नाव पर उतना लम्बा और इतना दुस्साहसपूर्ण सफर करने वाले दल की अगवानी बीस लकड़ी की नावो ने पंक्तिबद्ध होकर बड़े भावपूर्ण वातावरण मे की। बन्दरगाह दर्शकों की भीड़ से खचाखच भरा हुआ था। स्वागत की आवश्यक सजधज लोगो ने पूरे उत्साह के साथ की थी। दर्शकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचने मे सहायता ही मिली कि अदम्य साहस स्वल्प साधनो से भी बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है, जबकि मनोबल और पुरुषार्थ के अभाव मे विपुल साधन रहते हुए भी असफलताएँ ही हाथ लगती है।

इस यात्रा मे भी थोर दल को कई बार समुद्री तूफानो और विशालकाय जल-जन्तुओ से टकराना पड़ा। कठिन दिनचर्या को अपनाये बिना तो यह यात्रा हो ही नही सकती थी। थोर कितने ही स्थानो से समुद्र जल के नमूने भरकर लाये और उन्होने संयुक्त राष्ट्र संघ को यह नमूने प्रस्तुत करते हुए कहा कि समुद्री जहाज जिस कदर समुद्र के तल पर विषाक्त चिकनाई छोड़ रहे है उसके फलस्वरूप कुछ ही दिन मे समुद्री जल-जीवो पर संकट उत्पन्न हो जायेगा और बादलो मे यह विषाक्त अंश मिलकर सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होगा।

सरकण्डे की नाव ने अपनी यात्रा का उद्देश्य पूरा कर लिया। अब उसे ओसलो (नारवे) के कोनटिकी संग्रहालय में इसलिए सुरक्षित रखा गया है कि दर्शक साधनो के अभाव मे भी साहस की प्रबलता का महत्त्व समझ सके।

ऐसी सबलाएँ ही भारत-भूमि की शोभा हैं

भारतीय नारी पुरुष की सच्ची सहधर्मिणी रही है। उस नाते उसमे पौरुष तथा शौर्य के गुण भी रहे हैं। हमारे दुर्भाग्य से बीच मे ऐसी स्थिति पैदा हो गई, जब स्त्रियो को खिलौना समझा जाने लगा। उनके बारे मे यह मान्यता हो गई कि किसी संघर्ष मे भाग लेना तो दूर, उसकी हवा मात्र ही नारियो की सिट्टी-पिट्टी गुम करने के लिये पर्याप्त है। भारतीय इतिहास में भगवती दुर्गा से लेकर रानी लक्ष्मीबाई तक दुष्टो को अकेले तथा पति अथवा सहयोगियो के साथ दण्डित करने वाली वीर रमणियो के अनेक उदाहरण मिल सकते है। अभी भी वह तत्त्व भारतीय नारी मे विद्यमान है तथा समय पाकर प्रत्यक्ष दिख जाते है। भारतीय नारी के इस गौरवमय पक्ष पर प्रकाश डालने वाली एक घटना पिछले दिनो थाना बधूना क्षेत्र के अन्तर्गत ग्राम असजना मे सामने आई।

घटना दिवाली के दिन की है। रात्रि को देर तक आमोद-प्रमोद चलता रहना स्वाभाविक है। महिलाये भी गाँवो मे देर तक लोकगीत गाती रहती है। मध्य रात्रि के लगभग उक्त गाँव मे सन्नाटा हो गया। सब लोग दिनभर के थके खा-पीकर सो गये। बदमाश ऐसे ही समय मे सक्रिय होते है। दिवाली के दिन विशेष रूप से हारे जुआरी कही न कही घात लगाते है। अपने पास पैसा न होने पर कही से लूट-खसोटकर लाना चाहते है। शुभ पर्व, शुभ कार्यों के मुहूर्त माने जाते है। किन्तु दिवाली पर बहुत-से बदमाश भी अपना वर्षभर का मुहूर्त मनाते है। कुरीतियो तथा विकृत सामाजिक मान्यताओ के कारण पुण्य वेला मे भी अशुभ कार्य उन्हे अनुचित नही लगता। ऐसी ही एक बदमाशो की टोली एक घर मे घुस गई। सोते हुए व्यक्ति को उन्होने पकड़ लिया तथा धन प्राप्ति के उद्देश्य से उसे मारने-पीटने लगे।

आवाज सुनकर उस व्यक्ति की युवा पत्नी जाग गई। थोड़े ही समय पहले गीत गा-गाकर वह मीठी नींद सोई थी। जागते ही उसने वह दृश्य देखा तो सारे शरीर मे बिजली सी कौंध गई। उसने समझ लिया कि दुष्टो से पाला पड़ा है और इनके ऊपर किसी प्रकार समझाने-बुझाने अथवा अनुनय-विनय का कोई प्रभाव नही पड़ेगा। पलक मारते उसने अपने कर्तव्य का निर्धारण किया। उसने अस्त्र के रूप मे 'काँटा' (एक औजार) उठाया तथा बदमाशो पर आक्रमण कर दिया।

समय नाजुक था। यदि युवती चूक जाती तो पति के साथ-साथ उसकी आबरू पर भी बन आती। बदमाश पति पर काबू करने के बाद धन के साथ उसकी भी इज्जत लूट सकते थे। वह संख्या मे भी काफी थे। सामान्य रूप से कोई पुरुष भी उन पर आक्रमण करने का साहस न करता। किन्तु उक्त युवती का सकल्प बल उस समय गजब का काम कर गया। पति की एवं अपने सतीत्व की रक्षा का ध्यान करके वह सिंहनी की तरह उन गुण्डो पर टूट पड़ी।

बदमाश इस अप्रत्याशित आक्रमण के लिए बिलकुल तैयार नहीं थे। उनकी समझ मे कुछ आये, तब तक उनके दो साथी धराशायी हो चुके थे। कुछ चोट से घबराकर भागे और कुछ ने एक महिला समझकर आक्रमण का प्रत्युतर देने का प्रयास किया। किन्तु वहाँ मानो साक्षात् चण्डी प्रगट हो गई थी। उनका यह संघर्ष का प्रयास उन्हें महँगा पड़ा। उस वीर युवती ने देखते-देखते दो आततायियो को और भूमि पर सुला दिया। अब किसी का रुकने का साहस न हुआ, अपनी-अपनी जान बचाकर सब भाग गये।

बाद मे गाँव वाले एकत्र हुए। पुलिस को खबर दी गई। शवो को पुलिस ने पोस्टमार्टम के लिये भेज दिया तथा मामले की रिपोर्ट नोट कर ली। सारी तहसील मे जहाँ-जहाँ तक खबर मिली, सबने उस युवती की सराहना की। उक्त युवती को अपने कार्य पर प्रसन्नता तो है किन्तु किसी प्रकार का अहंकार नहीं है। उसका कहना है कि समय के अनुसार अपनी तथा पति की रक्षा का अन्य उपाय न देख ऐसा करना आवश्यक हो गया था। अब वह पुनः सामान्य गृहणी है, जो मनोयोगपूर्वक अपने कार्य करती है।

युवक का साहस

अमरनाथ जी के दर्शनो के लिए विशाल भीड़ जा रही थी। सब मिलाकर लगभग ५००० यात्री उस दल मे होगे। पहाड़ी तीर्थयात्रियो मे लोग टोलियाँ बनाकर चलते है। एक ही अवसर पर एक ही दिशा को जाने वाली अनेक टोलियो के दल स्वतः ही बन जाते है। दिन मे निर्धारित दूरी तय करके सब लोग निश्चित ठिकानो पर रात्रि विश्राम करते हुए आगे बढ़ते जाते है। ऐसा ही एक विशाल दल यह भी था। काश्मीर के बीहड़ पथ पर दोनो ओर गहरे खड्डो के बीच लोग रुकते, विश्राम करते बढ़ते जा रहे थे।

अचानक एक स्थान पर चीख-चिल्लाहट प्रारम्भ हो गई। एक बच्ची गहरे खड्ड मे फिसल गई थी। लोगो की भीड़ एकत्र हो गई। कोई माता-पिता को सान्त्वना दे रहा था, कोई असावधानी की आलोचना कर रहा था। बच्ची की माता रो-रोकर कह रही थी "दूर तक बच्ची के फिसलते हुए चीखने की आवाज सुनाई दी है। कोई उतरकर प्रयास करे तो बच्ची मिल सकती है।" एक सज्जन बोले, "भला कौन इस खड्ड मे उतर सकता है ?" जाने बच्ची मरी या बची, ऐसे मे कौन अपने प्राण संकट मे डाले ? जितने मुँह उतनी बातें किन्तु किसी से कुछ करते नही बन पड़ रहा था।

तभी लोगो ने देखा एक युवक उस गहरे खड्ड मे उतरने का उपक्रम कर रहा है। देखते-देखते वह खड्ड के उतार-चढ़ावों तथा वनो-झाड़ियों के बीच अदृश्य हो गया। अब लोगों की चर्चा का विषय बदल गया। युवक के साहस तथा सहायता की प्रशंसा करने वालो की बीच सन्देहास्पद आलोचना करने वाले भी बहुत थे। खड्ड गहरा तथा दुर्गम था। सीधे उतरना-चढ़ना सम्भव नही था अतः चक्करदार रास्ता अपनाना स्वाभाविक था। लोगो ने युवक को घटनास्थल से आजू-बाजू होकर उतरने का प्रयास करते हुये देखा था। जैसे-जैसे समय बीतने लगा—लोगो को शंकाये होने लगीं। कोई कहता पता नहीं कहाँ तक पहुँच सका होगा। कोई टिप्पणी करता। न जाने उतरा भी है अथवा बगल के किसी रास्ते से आगे बढ़ गया, उधर युवक धैर्यपूर्वक एक-एक कदम सम्हालता हुआ उतरता जा रहा था। एक चूक, एक असन्तुलित कदम उसे भी सकट मे डालने के लिए पर्याप्त होते किन्तु अदम्य आत्म-बल के सहारे युवक बढ़ता ही रहा।

अन्त मे उसका प्रयास सफल हुआ। एक वृक्ष के तने के सहारे बच्ची बेहोश अवस्था मे मिल गई। युवक की आँखे चमक उठी। उसको उठाकर प्राथमिक परिचर्या करके उसे लेकर चढ़ने लगा। अब कठिनाई अधिक थी। जहाँ अकेले चढ़ना कठिन था वहाँ बच्ची को लेकर चढ़ना और भी दुरूह था। किन्तु प्राथमिक सफलता से मनोबल बढ़ गया था। मनोबल सारी बाधाओं एवं कठिनाइयों को पार करने मे समर्थ होता है। युवक अपने साहसिक अभियान में सफल हुआ। सकुशल खड्ड के बाहर बच्ची सहित वह पहुँच गया। किन्तु अन्तिम चरण मे उसके धैर्य की एक और परीक्षा होनी थी। माता-पिता आने-जाने वाले लोगों के निराशापूर्ण वचनो से प्रभावित होकर आगे निकल गये थे। ऐसी अवस्था मे खीझ तथा झुँझलाहट स्वाभाविक थी, किन्तु युवक ने अपनी स्थिरता बनाये रखकर माता-पिता तक बच्ची को पहुँचाकर ही दम लिया।

युवक का नाम राजकुमार था और वह नागपुर का रहने वाला था। उसके साहस तथा सहृदयता ने ५००० तीर्थयात्रियों के बीच उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी। अमरनाथ के दर्शन करके उस भीड़ ने अथवा युवक ने क्या पुण्य कमाया और क्या लाभ उठाया, यह शंकास्पद हो सकता है। किन्तु युवक के अन्तःकरण मे स्थित श्रेष्ठ भावनाओ के रूप में जिस अमरनाथ की झलक मिली, वह लोक-परलोक दोनो को सम्हालने मे समर्थ है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है।

नरभक्षी पर साहस ने विजय पायी

अधिकतर व्यक्ति शेर को देखकर अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भागते है पर अकलतरा के पास ग्राम बलौदा मे एक ऐसी घटना प्रकाश मे आई है कि व्यक्ति को देखकर शेर भाग खड़ा हुआ। बलौदा के प्राथमिक विद्यालय मे मानसिंह चौहान प्रधान अध्यापक के पद पर कार्य करते हैं। वह एक निकटवर्ती गाँव से दिन मे बलौदा वापस आ रहे थे। रास्ते मे एक शेर से उनकी भेट हो गई। शेर को देखकर श्री चौहान वही स्तब्ध खड़े हो गये और थोड़ी देर तक दोनो एक-दूसरे को घूरते रहे। श्री चौहान के निश्चल खड़े रहने के कारण शेर जंगल की ओर चला गया।

यह शेर अभी तक सात व्यक्तियो को अपना शिकार बना चुका है, पर श्री चौहान को अपना शिकार बनाने का साहस वह शेर भी न कर सका। इनके पास इतना शारीरिक बल भी नही था, जो आवश्यकता पड़ने पर नरभक्षी शेर से भिड़ जाते। वैसे यह स्वस्थ शरीर के व्यक्ति थे। पर यहाँ उनके जीवन की रक्षा शारीरिक बल ने नही, वरन् मानसिक बल ने की थी। शेर की शक्ति तथा शारीरिक बल की तुलना मनुष्य शरीर से की भी कैसे की जा सकती है। उसकी हिंसक वृत्ति के सामने अच्छे-अच्छे व्यक्तियो को भागते ही बनता है।

जंगल मे अनेक पशु, हाथी, सूअर, गैंडे आदि शेर से शारीरिक बल मे बढ़े-चढ़े रहते हैं, पर मनोबल की कमी से सभी पशु उसका आतंक मानते है इसीलिए तो वह जंगल का राजा बना, स्वतन्त्र रूप से इधर-उधर विचरता रहता है। शरीर से शक्तिशाली होने पर भी मन से दुर्बल होने वाले व्यक्ति आपत्तियो के सम्मुख आत्म-समर्पण ही करते देखे जाते है। सचमुच शारीरिक बल ही अपने आप मे सब कुछ नही है। मनोबल के अभाव में शारीरिक बल तो निकम्मा हो जाता है। हीन मनोबल के व्यक्तियो को बात-बात मे शंका और भय का अनुभव होने लगता है, भले ही उन कार्यों मे तनिक भी भय करने की आवश्यकता न हो।

भय अथवा कायरता का सम्बन्ध व्यक्ति के मन से है। जो ऐसे कार्यों मे परिस्थितियो को दोष देते है वह अपनी गलती दूसरे पर मढ़ने का प्रयास मात्र है। यदि भय और कायरता का सम्बन्ध व्यक्ति के मन से न होकर परिस्थितियो से होता तो एक सी घटनाओ के परिणाम समान होते। पर ऐसा होता कहाँ है ? किसी भयानक परिस्थिति को देखकर जब एक व्यक्ति घबराता है और भागकर जान बचाने की कोशिश करता है, वहीं दूसरा व्यक्ति उन परिस्थितियो से टक्कर लेकर सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है।

वह नरभक्षी शेर सात व्यक्तियो का शिकार कर चुका था। पर आठवे व्यक्ति चौहान अपने मनोबल के सहारे ही उसे चकमा देकर सकुशल घर चले आये। यदि उन्होने भी शेर को सामने आते देखकर रोना, चिल्लाना, गिड़गिड़ाना और भागना शुरू किया होता तो वह शेर उन पर भी झपटकर अपना शिकार बना लेता। कमजोर मन वाले कठिनाइयो के समय साहस कहाँ दिखा पाते है।

भय के भूत और शंकाओं के शेर उन पर हर समय हावी रहते है। हर परिस्थिति मे उन्हे अमंगल ही दिखाई देता रहता है। कितनी ही बार युद्ध करते समय शारीरिक बल होने पर भी मानसिक बल की कमी से अनेक सैनिक परास्त हो जाते है।

मनुष्य की समस्त शारीरिक क्रियाएँ मन द्वारा सचालित होती है। यदि मनोबल बढ़ा-चढ़ा हो तो हर परिस्थिति मे निर्भयता से कार्य किया जा सकता है। यह आवश्यक नही कि शेर के सम्मुख जाकर ही हमारे मनोबल की परीक्षा होती है। ऐसे व्यक्तियों मे आत्म-विश्वास की भावना साधारण व्यक्तियो से अधिक होती है। अत: यदि हम शारीरिक बल के साथ-साथ मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे तो स्वत: ही साहस, अदम्य कार्यक्षमता और संकटकालीन घड़ियो से जूझने की शक्ति आ जाती है।

साहस के रहते अपंगता बाधक नहीं

शरीर मे कोई अग कम हो या अपंग हो तो उस स्थिति मे स्वभावत: साधारण जीवनक्रम बिताना कठिन होता है। ऐसे बाधित व्यक्ति आमतौर से दूसरो की कृपा पर निर्भर परावलम्बी जीवन जीते अथवा भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करते देखे गये है।

इस प्रकार के लोगो को शारीरिक कमी के कारण जितनी कठिनाई उठानी पड़ती है, उससे कही ज्यादा मानसिक दुर्बलता से उठानी पड़ती है। हर कोई उन्हे दया का पात्र, बेचारा, अभागा, दैवी कोप का भाजक, प्रारब्ध भोगी आदि कहते बताते रहते है। हर किसी के मुँह से जब वह अपने बारे मे यही सुनता रहता है तो उसे विश्वास जम जाता है कि वस्तुत. वह दुर्भाग्यग्रस्त ही जन्मा है। अब वह कुछ कर न सकेगा, उसकी प्रगति के मार्ग बन्द है। उसे दूसरो के आश्रित होकर जीने की बात ही सोचनी चाहिए। यदि भाग्य मे स्वावलम्वी जीवन होता तो फिर विपत्ति ही क्यो आती ? आदि विचार जब निरन्तर मन मे घूमते रहते है तो फिर उसका साहस टूट जाता है, मन भर जाता है और प्रगति की बात तो दूर, अपने पैरो आप खड़े हो जाने का मनोबल भी जाग्रत नही होता।

शरीर की कमी वस्तुत: इतनी बड़ी कमी नही है जिसे मनोबल द्वारा पूरा न किया जा सके। महत्त्वपूर्ण काम तो मस्तिष्क करता है, दूसरे अंग तो उसकी आज्ञाओ का पालन भर करते है। यदि एक अंग बिगड़ गया है तो उसकी आवश्यकता दूसरा अग पूरी कर सकता है। यदि उत्कृष्ट इच्छाशक्ति काम करे तो वह अस्त-व्यस्त अग भी कुछ काम दे सकता है। इस प्रकार शरीर के अन्य अंगो को अधिक सक्षम बनाकर उस विकृत या अपंग अवयव की आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

संसार मे ऐसे अनेको मनुष्य हुए है, जिनका शरीर किसी दुर्घटना के कारण अथवा जन्मजात रूप से अपंग हो गया। किन्तु उनका मनोबल बना रहा, हिम्मत नहीं हारी और साहस समेटकर प्रबल इच्छाशक्ति के सहारे उन्ही टूटे-फूटे अंगों से काम लेना शुरू किया, विकारग्रस्त अंग की आवश्यकता दूसरे अंग से पूरी की और इस प्रकार जोड़-तोड़ मिलाकर अपनी गाड़ी धकेलनी आरम्भ कर दी।

सामान्य लोग इच्छाशक्ति दुर्बल होने के कारण सभी अंग सही होने पर भी कुछ महत्वपूर्ण काम कर नहीं पाते, ऐसे ही आलस्य मे पड़े असफल जीवन बिताते रहते है। इसके विपरीत इच्छाशक्ति के धनी मनस्वी व्यक्ति अंगहीन अथवा साधनहीन होने पर भी इतनी प्रगति कर लेते है कि जिसे देखकर सर्वांग गठित किन्तु आलसी व्यक्तियो को ही अभागा मानना पड़ता है।

वस्तुत: साहस की प्रखरता सबसे बड़ा अवलम्बन है। इच्छाशक्ति जिसकी तीव्र है, उसे कोई कठिनाई या कमी तिरस्कृत जीवन जीने के लिये बाध्य नहीं कर सकती। वह स्वावलम्बी और प्रगतिशील होकर ही रहता है। पुरुषार्थ और मनोबल मे वह शक्ति मौजूद है जिसके आधार पर दुर्भाग्य को सौभाग्य मे बदला जा सके।

चार्ल्स फेलू सन् १८३० मे बेलजियम के एक छोटे देहात मे पैदा हुए और ७० वर्ष की आयु भोगकर सन् १९०० मे मरे। वे बिना हाथो के पैदा हुए थे पर १९ वी सदी के महान चित्रकारो मे से एक थे। उन्होंने हाथो के अभाव की पूर्ति पैरो से की और अत्युत्तम चित्र बनाने लगे। इनके हर चित्र के नीचे लिखा रहता था, 'केवल पैरो की सहायता से चित्रित। उनकी कला से प्रभावित होकर बेलजियम और रूस के शासक ने उनकी सहायता भी की। बेलजियम के राजा लियोपोल्ड द्वितीय ने उनसे हाथ मिलाने की रस्म पूरी करने के लिए उनका पैर छुआ और उसे हिलाया। राजा कहा करते थे, हाथ मिलाने की ऐसी सुखद अनुभूति मुझे जीवन मे अन्यत्र कभी नही मिली।

उत्तरी अमेरिका के बाल्टीमोर नगर का निवासी जानी नामक व्यक्ति २७ अगस्त, १९१० को पैदा हुआ। उस विचित्र बालक के शरीर मे कमर से नीचे का कोई भाग उसके शरीर मे था ही नही। पैरो का निशान भी जिसके न हो ऐसा गोल गेंद सा बच्चा देखने के लिए भीड़ बहुत जमा हुई पर किसी को भी उसके कुछ घण्टे से अधिक जीवित रहने की आशा नही थी, परन्तु वह मरा नहीं—जीवित बच गया। जीवित ही नही रहा, वरन् अपने बुद्धि-बल और अध्यवसाय से एक अनौखा कीर्तिमान स्थापित किया कि यदि साहस और लगन का अभाव न हो तो शारीरिक अपूर्णताओ के रहते हुए भी बहुत कुछ किया जा सकता है।

ज्ञानी ने शिक्षा प्राप्त की। एक कुशल टाइपिस्ट बना, नकशा-नवीस और लेखक बना। इतना ही नहीं, उसने हँसने-हँसाने और जादूगरी तथा नट विद्या मे भी प्रवीणता प्राप्त की। वह एक विलक्षण नर्तक था, उसका नृत्य देखने के लिए दर्शको की अपार भीड़ जमा होती थी।

बचपन मे उसने हाथों के बल चलना सीखा और पढ़ने की आयु में बराबर स्कूल जाता रहा। १४ वर्ष की आयु मे उसने हाईस्कूल उत्तीर्ण किया। खेलो मे भी उसकी रुचि थी। बिना पैर का होते हुए भी केवल हाथो के सहारे उसने बैसवाल, टैना, आँखमिचौनी, तैराकी, गोता-खोरी मे प्रवीणता प्राप्त की। वह जीवनभर हँसता और हँसाता रहा। कभी किसी ने पैर न होने की चर्चा चलाई तो उसने यही कहा—मनोबल के रहते किसी अवयव का अभाव मनुष्य की प्रगति और सुख-शान्ति मे बाधक नहीं हो सकता।

येने (न्यूजीलैण्ड) की डच बस्ती मे फ्रान्सिस ए. वरडेट नामक अन्धे व्यक्ति ने अपने पुरुषार्थ से लगातार १३ वर्ष के परिश्रम से एक विशालकाय मकान बनाया। जिसमे तीन तल्ले, सात कमरे और स्नानघर आदि सभी व्यवस्थायें मौजूद है। सब कुछ करीने से बना हुआ है और वस्तुयें इस तरह व्यवस्थापूर्वक कलात्मक ढग से लगी हुई है मानो किसी कुशल इन्जीनियर ने उसे बनाया है।

इस अन्धे व्यक्ति ने मकान की पूरी योजना स्वयं ही बनाई। छोटे से बड़े काम तक बढ़ई, राज, मिस्त्री, लुहार आदि के बहुत से काम उसने स्वयं किये और जहाँ अनिवार्य हो गया, वही दूसरो की सहायता ली। तिरेसठ वर्ष की आयु में एक अन्धे व्यक्ति द्वारा आरम्भ कराया गया यह कार्य एक विलक्षण सूझ-बूझ और लगन का ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसे देखकर दंग रह जाना पड़ता है। जबकि बुढ़ापे से थके होने और आराम करने की बात दूसरे वृद्धो के मस्तिष्क मे रहती है तब वरडेट जैसे उद्योगी की यह पुरुषार्थ-परायणता एक नया ही उदाहरण प्रस्तुत करती है। न्यूजीलैण्ड सरकार ने उस मकान को अपराजेय इच्छाशक्ति, उत्साह, धैर्य और सूझ-बूझ की मूर्तिमान प्रदर्शनी के रूप मे खुला रखा है ताकि दूसरे लोग भी उससे प्रेरणा प्राप्त करते रह सकें।

सोलहवीं सदी का प्रसिद्ध नृत्यशास्त्री सीवस्टीन स्पिनोला-फ्रेन्च नृत्य एव संगीत का पिता माना जाता है। उसकी प्रगति गाथा बड़ी प्रेरक है। ११ वर्ष का जब वह बालक ही था तभी उसके दोनो पैर एक दुर्घटना मे घुटनो से नीचे के कट गये। देखने वालों की दृष्टि मे वह अपग और दया का पात्र था। पर उसने अपने को स्वयं वैसा नही माना और जब अपनी चर्चा होती तो यही कहता—पैर तो शरीर का सबसे निचला और कम उपयोगी अश है। जब तक मेरा मस्तिष्क और हृदय मौजूद है, तब तक न मुझे अपंग कहा जाय और न दयनीय माना जाय।" वह कटे हुए पाँवो को ही प्रशिक्षित बनाता रहा और नृत्यविद्या मे इतना पारंगत हो गया कि उसकी कला देखकर दर्शक मन्त्रमुग्ध ही नही हो जाते थे वरन् उस विषय मे रुचि रखने वाले उससे शिक्षा भी प्राप्त करते थे। नृत्य ही नही; उसने गायन मे भी पारगतता प्राप्त की। इतना ही नही उसने फ्रान्सीसी गायन को महत्वपूर्ण दिशाये भी दी।

ऐसा ही एक और भी उदाहरण है, जिसमे किसी अंग से काम न लिये जाने पर उसमे अतिरिक्त क्षमता उत्पन्न हो जाने का प्रमाण भी मिलता है। बाधित लोग यदि प्रयत्न करके देखे तो उनके अपंग समझे जाने वाले अवयव भी कुछ विशेष काम कर सकने योग्य किसी अद्भुत शक्ति से सम्पन्न भी दिखाई पड़ सकते है। कास्पर हासर गेड उसी राज्य का राजकुमार था। गद्दी के लालचियो ने उसका अपहरण बचपन मे ही कर लिया और अपना राज्य को हथियाने का रास्ता साफ कर लिया। अपहरणकर्ताओ ने इतनी तो दया दिखाई कि उसे मारा नही, वरन् ऐसे स्थान पर कैद कर दिया जहाँ प्रकाश और हवा की बहुत कमी थी। उनने सोचा कुछ दिन मे वह ऐसे ही बीमार होकर मर जायेगा।

कास्पर १८ साल तक ऐसे ही अन्धकार भरे वातावरण मे कैद रहा। एक बार उसे अवसर मिला तो उस काल कोठरी से निकल भागा और अन्सपच, वाइवेरिया के जंगलो मे भटकते-भटकते अपनी जन्मभूमि जा पहुँचा। तब तक लोग उसे पूरी तरह भूल गये थे।

पर उसमें दो अतिरिक्त विशेषताये पाई गईं जो वैज्ञानिको और मनोवैज्ञानिको के लिए खोज का विषय बनी. और उसकी शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का अध्ययन करके नये निष्कर्ष निकालने मे उनसे बहुत सहायता ली।

कास्पर दिन मे तारे देख सकता था। यह बात असत्य नही थी। ग्रह-गणितज्ञो ने जब भी उससे पूछा उसने विदित नक्षत्रो के स्थान सही बताये। उसके कथन मे रत्तीभर भी अन्तर नही पाया गया। इससे निष्कर्ष निकला कि यदि नेत्र-ज्योति को किसी विशेष परिस्थिति मे रखकर विशिष्ट विशेषताओ से सम्पन्न किया जा सके तो वह इतनी तीव्र भी हो सकती है कि सूर्य का प्रकाश रहते हुए भी तारे देख सकने जैसे अद्भुत कार्य कर सके। दूसरी विशेषता यह थी कि बहुत छोटी उम्र मे उसका अपहरण किया और उसे एकाकी रखा गया था। ऐसी स्थिति मे उसका मानसिक विकास आयु वृद्धि के साथ नितान्त स्वल्प ही हो सका। काम-वासना से वह अपरिचित था और लोक व्यवहार मे भी उसकी गति छोटे बालको से अधिक नही थी।

शरीर के किसी अंग का टूट-फूट जाना उतना बड़ा दुर्भाग्य नही है, जितना मनोबल खो देना। यदि अपंग

कहे जाने वाले लोगो का मनोबल ऊँचा उठाया जा सके, उनमे साहस और उत्साह पैदा किया जा सके तो वे न केवल स्वावलम्बी, वरन् प्रगतिशील भी बन सकते है। इच्छाशक्ति की सामर्थ्य शरीर के किसी भी अग से अधिक मूल्यवान है। यदि यह तथ्य लोग समझ सके तो फिर इस संसार मे एक भी दुर्भाग्यग्रस्त दिखाई न पड़े।

विकलांगता प्रगति में बाधक न बन सकी

प्रकृति ने जन्मजात अपंग पैदा करके उस बालक के साथ एक निर्मम अत्याचार किया था। पर वह उन अपंगो से भिन्न था जो अपनी दयनीय स्थिति से सदा के लिए निराश होकर आशाजनक उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करना तक छोड़ देते है। छः-सात वर्ष की अवस्था मे वह बच्चो को पढ़ने के लिए घर से होकर गुजरने वाली सड़क से आते-जाते देखता तो उसका मासूम हृदय बिलख-बिलखकर रोने लगता। वह भी अन्य बालको की तरह पढ़ना चाहता था। पर अपनी बेबसी पर मन-मसोसकर रह जाता। अपंगता की हालत मे स्कूल कैसे जायेगा, उसे कौन पढ़ायेगा, यह सोचकर उसकी आन्तरिक इच्छा दबकर रह जाती।

निकटवर्ती विद्यालय के एक अध्यापक नित्य ही पढ़ाने के लिए उसी मार्ग से आते-जाते थे। बालक उन्हे जानता था। एक दिन जैसे ही अध्यापक महोदय उधर से गुजरे, छोटे बच्चे ने उनका अभिवादन किया। सड़क के किनारे बैठा देखकर उनने पूछा—कहो बेटे ! चुपचाप यहाँ क्यो बैठे हो ? सहानुभूति का सम्बल मिल जाने से उसके उद्गार फूट पड़े—"श्रीमान् ! मेरा मन पढ़ने को बहुत करता है। पर मुझे कौन पढ़ायेगा ?

उस मासूम की बातो से अध्यापक महोदय का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होने आश्वासन दिया कि अगले दिन से वह तैयार रहे, वे स्वयं उसे पढ़ायेगे। दूसरे दिन से शिक्षक महोदय बालक को कन्धे पर बिठाकर विद्यालय ले आते। वह दूसरे लड़को के साथ पढ़ता तथा शाम को पुनः उनके सहयोग से घर आ जाता। अध्यापक एवं शिक्षक के भावभरे सहयोग से बालक का आरम्भिक शिक्षण पूरा हुआ।

संसार मे दुष्टो की कमी नही है पर सज्जनो एवं सहृदयता के धनी व्यक्तियो का भी सर्वथा लोप नही हुआ है। उनके कारण ही मनुष्यता जीवित है। समय-समय पर ऐसे सहृदय व्यक्तियो का सहयोग भी मिलता है। कुछ ऐसा सहृदय व्यक्तियो का सहयोग भी मिलता है। कुछ ऐमा ही सुयोग उस अपंग बालक के साथ बिठा। दिल्ली के इर्विन अस्पताल के एक डाक्टर दम्पति नैनीताल के भीमताल मे छुट्टियाँ बिताने आये। नौकुचिया ताल के निकट उनकी दृष्टि इस अपंग बालक पर पड़ी। जाने कौन-सी प्रेरणा उठी कि उस बालक के परीक्षण करने में डाक्टर अपने को नही रोक सके। निरीक्षण मे उन्होने पाया कि शल्य चिकित्सा के द्वारा बच्चे को चलने योग्य बनाया जा सकता है। उन्होने बालक एवं उसके अभिभावक से बातचीत की। स्वयं सब खर्च वहन करके डा. कोहली ने इर्विन अस्पताल मे रखकर बालक का उपचार आरम्भ किया। दर्जनो आपरेशन हुए, जिसके फलस्वरूप बालक लाठियो के सहारे चलने-फिरने योग्य हो गया।

आकस्मिक इस सहयोग को परमात्मा की कृपा मानकर वह किशोर पुनः पढ़ाई मे जुट गया। गाँव के निकटवर्ती इन्टर कालेज मे दाखिला लेकर उसने आगे की पढ़ाई आरम्भ कर दी। इण्टर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् नैनीताल के एक कालेज मे प्रवेश लिया। पढ़ने के लिए वह नित्य डेढ किलोमीटर पहाड़ी, ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार करके आता और जाता। बी.ए. करने के बाद अर्थशास्त्र मे उसने मास्टर डिग्री प्राप्त की। अब वह नैनीताल के प्रशासकीय प्रशिक्षण संस्थान मे एक कर्मचारी के रूप मे कार्यरत है।

परिस्थितियो तथा अभावो का रोना रोते रहने वाले लोगो को इस युवक से प्रेरणा लेनी चाहिए तथा बारम्बार यह विचार करना चाहिए कि क्या उनकी स्थिति सचमुच ही इतनी दयनीय गयी-गुजरी है कि वे आगे बढ़ने के लिए कुछ नही कर सकते ? शरीर एवं बुद्धि से सक्षम होने पर भी जो ऐसा सोचते अथवा कहते है, स्वाभाविक रूप से उनकी नियत पर शक होता है। आन्तरिक आकांक्षा हो तो आगे बढ़ने तथा ऊँचे उठने के लिए हजार रास्ते निकल सकते है। पर जिनने हार मान ली, उनके लिए सचमुच ही प्रगति के रास्ते बन्द है। उनकी दयनीय स्थिति से कोई देवता भी नहीं उबार सकता।

शारीरिक बाधा पर साहस की विजय

इसमे कोई सन्देह नही कि बधिरता और गूँगाप बहुत बड़ी शारीरिक बाधा है, क्योकि इसके कारण मनुष् अभिव्यक्ति के एक प्रबल माध्यम (आवाज) से वंचित र जाता है पर यह कोई ऐसी बाधा नही है कि जिस जीवन मे प्रगति के सभी द्वार बन्द हो जाये। आज हमारे देश मे ऐसे बहुत से मानव-रत्न है, जिन्होने शारीरिक बाधा से पीड़ित रहने के बावजूद जीवन सफलता प्राप्त की है। श्री चन्द्रमोहन प्रधान एक ऐसे युवक-रत्न है।

चन्द्रमोहन का जन्म १० जनवरी, १९३८ को बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर नामक नगर मे एक वैश्य परिवार में हुआ। बुद्धि बचपन से ही बड़ी तीव्र थी। मेधावी तो वे इतने कक्षा मे सदैव आते थे।

इनका जीवन एक सुखमय बगिया के समान था, जिसमे आशा और उमंग के फूल खिले थे। पर अचानक १९४७ मे इन्हे भीषण टायफाइड हो गया और मस्तिष्क पर पक्षाघात का आक्रमण भी। काफी कष्टसाध्य एवं लम्बे उपचार के बाद वे मौत के पंजे से तो बच गये पर पूर्ण रूप से बहरे हो गये। आँखो की ज्योति भी बहुत क्षीण हो गई और आंशिक रूप से गूँगे भी हो गये।

अब तो जीवन का सारा क्रम ही बदल गया। स्कूल की पढ़ाई बन्द कर देनी पड़ी। आशाओं और उमगो पर जैसे तुषारापात हो गया। पर बालक चन्द्रमोहन ने धैर्य और आत्म-विश्वास का सम्बल नहीं छोड़ा। पिता ने भी साहस बढ़ाया और घर पर ही इनके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था कर दी गई। साथ ही साथ यथासाध्य उपचार भी चलता रहा, जिसके फलस्वरूप इनकी वाक्-शक्ति तो कुछ लौट आई है पर बहरापन रह ही गया।

सन् १९५२ तक मोहन का पठन-पाठन घर पर ही चलता रहा। १९५३ मे शिक्षकों की सलाह से इनका नाम तिरहुत अकादमी के आठवे दर्जे मे लिखा दिया गया। किन्तु अभी भी असली पढ़ाई-लिखाई घर पर ही होती रही। बधिरता और आवाज की अस्पष्टता के कारण इन्हे पढ़ने-लिखने मे कठिनाई तो बहुत होती थी पर इन्होंने साहस नही छोड़ा और अपने सुयोग्य शिक्षकों के निर्देशन एवं संरक्षण मे १९५५ में बड़े अच्छे अंको से मैट्रिक की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो गये।

बचपन से ही चित्रकला के प्रति इनकी अभिरुचि देखकर इनके पिता ने इनका नाम पटना के राजकीय आर्ट स्कूल मे दर्ज करा दिया। वहाँ जाते ही इनकी प्रतिभा चमक उठी और इन्होंने प्रथम श्रेणी मे आर्ट्स डिप्लोमा कोर्स ससम्मान पास किया।

इसी समय इनकी जीवन-यात्रा मे पुनः एक मोड़ आया। अपने पिता की सलाह से इन्हे व्यापार के क्षेत्र मे प्रवेश करना पड़ा। इनकी परिश्रमशीलता, लगन और सूझ-बूझ का ही परिणाम है कि आज इनके प्रेस की गणना शहर के प्रतिष्ठित प्रेसो मे की जाती है। प्रेस के कार्य मे व्यस्त रहने के साथ-साथ इनकी चित्र-कला एवं साहित्य साधना भी सतत चलती रहती है और इनके लेख, कहानी एवं कविता आदि अच्छी-अच्छी साहित्यिक पत्रिकाओं मे छपते रहते है। इनके चित्र एवं कार्टून 'धर्मयुग' जैसी अग्रगण्य पत्रिका मे भी छप चुके हैं तथा मुजफ्फरपुर मे १९६५ की कला-प्रदर्शिनी मे इन्हे अपने चित्रों पर प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

प्रेस के अलावा ये 'ज्ञान-कला-केन्द्र' नामक एक 'किंडर-गार्टन स्कूल' भी चला रहे है, जहाँ बाल-शिक्षा के साथ-साथ बच्चो के चारित्रिक एवं भावनात्मक विकास पर भी यथेष्ठ ध्यान दिया जाता है। निराश्रित और उपेक्षित बच्चों के कल्याणार्थ एक 'बाल-भवन' बनाने का भी इनका विचार है। इतना ही नही, मुजफ्फरपुर मे एक कला-विद्यालय स्थापित करने की भी इनकी योजना है, जहाँ बालकों तथा वयस्को को मूर्ति-कला, चित्रकला, शिल्प-कला आदि ललित कलाओं की सम्यक शिक्षा दी जा सके। दूसरो को भी उससे अजस्र-प्रेरणा ही मिलेगी।

अपंग जिसने समर्थों को पीछे छोड़ दिया

मार्क्स हिल्स १२ वर्ष की आयु मे पेड़ पर शौक-शौक मे चढ़ा। पैर फिसला तो धड़ाम से गिरा और उसकी हड्डी-पसली चकनाचूर हो गईं। माँस के लोथड़े की तरह उसे अस्पताल मे भर्ती किया गया। बचने की उम्मीद न थी तो भी वह बच गया। हड्डियाँ ज्यो-त्यो करके जोड़ी गईं और उसे दस महीने तक इस प्रकार उलटा-पुलटा अस्पताल के पलंग से कसकर रखा जाता रहा ताकि हड्डियाँ जुड़ सके। वे औंधी-सीधी जुड़ तो गईं पर बेचारा हो गया सर्वथा अपाहिज, कुरूप, दिखने मे भौडा, चलने फिरने मे असमर्थ। हाथ भी थोड़ा सहारा भर देते थे। कुछ करने योग्य नही बन सके। गर्दन भी इतनी अकड़ गई कि वह थोड़ी सी इधर-उधर मुड़ सकती थी। पहियेदार कुर्सी पर बैठकर ही उसे छोटे बच्चो की तरह इधर-उधर ले जाया जा सकता था।

इस प्रकार दिन काटने उसे भारी पड़ गये। उन दिनो वह कैलीफोर्निया मे मैन हैटन तट पर अपने परिवार के साथ रहता था। पिता अध्यापक की नौकरी करते थे। पूरे परिवार का गुजारा उसी से चलता था। इस गरीबी मे भी उनने बच्चो की उपेक्षा नही की। यहाँ तक कि मार्क्स हिल्स के अपंग होने पर भी उसकी ओर से निराश नही हुए और यही समझाते रहे कि आँखे और दिमाग सही-सलामत होने पर हाथ-पैरो की अपंगता प्रगतिपथ पर बढ़ने मे बाधक नही हो सकती कुछ सोचो और कुछ करो। हम सहायता करेंगे।

मार्क्स जब गिरा था, उससे पूर्व उसे ड्राइंग का शौक था। वह उसे पूरा करना चाहता था, पर हाथ जरा भी सहायता नही करते थे। इसी दशा मे उसने मुँह से पेन्सिल पकड़कर चित्र बनाने शुरू किये। पेन्सिल छोटी तथ कड़ी होने से आँखें मोड़नी पड़ती थी तथा दाँतो की जड़े छिलती थीं। इस कठिनाई का हल उसने पाँव से निकाला। ऐलमुनियम और रबड़ को मिलाकर एक ऐसी नली बनाई, जिसमे पेन्सिल या ब्रुश लगाकर दूर तक ले जाया जा सके। इससे आँखो और दाँतो पर दबाव पड़ना बन्द हो गया और उसे चित्र बनाने मे सुविधा होने लगी। पेन्सिल का अभ्यास आगे बढ़ा तो उसने ब्रुश पकड़ा और बढ़िया चित्र बनाने लगा।

आगे पढ़ने के लिए उसने लास एंजेल्स स्थित 'यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया' मे प्रवेश पाने का आवेदन किया। इन्टरव्यू के लिए जब वह उपस्थित हुआ तो

परीक्षक अवाक् रह गये कि कैसे वह मुँह से लम्बी नली लगाकर बढ़िया चित्र बना लेता है। उसे प्रवेश मिल गया। अब उसके उत्साह का ठिकाना न था। दूने-चौगुने साहस के साथ प्रयत्न करने लगा। खुश भी बहुत रहता था। मित्रो से कभी-कभी मजाक मे कहता—"यदि मेरे जबड़े की तरह शरीर की अन्य माँस-पेशियाँ भी मजबूत होतीं तो मै इस मकान को कन्धे पर उठाये-उठाये फिरता।"

उसने न केवल चित्रकला सीखी, वरन् अध्ययन भी जारी रखा और आर्ट कालेज के मेधावी छात्रो मे गिना जाने लगा। सफल चित्रकारो मे उसकी गणना होने लगी।

साथी छात्रगण उसकी लगन और साहसिकता पर मुग्ध थे। उनके विश्वविद्यालय के डीन से प्रार्थना की गयी कि अपंगता को चुनौती देने वाली इस प्रतिभा की एक फिल्म बनानी चाहिए जो पिछड़ो मे उत्साह जगाने का काम कर सके। छात्रो की समिति के इस प्रस्ताव को डीन ने तत्काल स्वीकार कर लिया। साथ ही ६००० डालर का अनुदान भी मंजूर कर दिया। रंगीन बोलती फिल्म बनी। पैसे की कमी पड़ी तो अन्यत्र से उसकी पूर्ति हुई। अन्तत: उसे अमेरिका के छात्रो मे, विशेषतया बाधितो में उसे दिखाया गया। इससे कितनो ने ही नये सिरे से सोचना और प्रयास करना आरम्भ कर दिया।

'गोल्डन ग्रेट' पुरस्कार प्राप्त इस फिल्म का नाम था—'ग्रेविटी इज माई ऐनिमी' अर्थात् गुरुत्वाकर्षण मेरा दुश्मन। इस फिल्म मे गिराने वाली परिस्थितियो की तुलना पृथ्वी की ग्रेविटी से की गई है और सिद्ध किया गया कि साहस के आधार पर किसी भी प्रकार की गिरावट के माहौल से जूझा जा सकता है, जीवन को नयी दिशा दी जा सकती है।

अवगति का कारण अभाव नहीं अनुत्साह

संसार मे अनेको आश्चर्यजनक वस्तुएँ पाई जाती है और घटनाएँ देखी जाती है। इनमे सबसे विलक्षण है—मानवी संरचना और उसमे सन्निहित सम्भावना। लगता है सृष्टा ने अपनी विभूतियो और कुशलताओ को मनुष्य के छोटे से कलेवर मे गागर मे सागर की तरह भर दिया है। असमंजस इसी बात का है कि वे विशिष्टताएँ प्रसुप्त स्थिति मे पड़ी रहती है। सामान्यतया इस रहस्यमय भण्डार मे से उतना ही प्रकट और विकसित होता है जितनी कि आवश्यकता पड़ती और उभारने की चेष्टा की जाती है। शेष सब कुछ अविकसित एवं अविज्ञात स्थिति में ही पड़ा रहता है।

माना यह जाता है कि कठिन परिस्थितियो और साधनो के अभावो से ही मनुष्य गई-गुजरी स्थिति मे पड़ा रहता है और दु:ख सहता है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। स्वल्प साधनो से भी वर्चस्व बनाये रखा जा सकता है और वैभव बढ़ाया जा सकता है। यही बात कठिनाइयों के सम्बन्ध मे भी है। वे बाधक तो अवश्य होती हैं और प्रगति-क्रम मे विलम्ब भी लगाती हैं। इतने पर भी यह तत्परता और साहसिकता बनी रहे तो अभीष्ट की दिशा में अग्रसर होने मे गतिरोध देर तक नहीं रह सकता है। इच्छाशक्ति की सामर्थ्य प्रचंड है। साहस भरे प्रयास ऐसी उपलब्धियाँ अर्जित कर लेते है जिन्हें देखने पर चमत्कार जैसा लगता है। देवताओं द्वारा मिलने वाले वरदानो की चर्चा समय-समय पर होती रहती है। देवताओ के अस्तित्व और उनके अनुग्रह के पक्ष-विपक्ष मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। पर यह तथ्य निर्विवाद है कि मनुष्य का संकल्प, साहस और प्रयास यदि उच्चस्तरीय बना रहे तो उसका प्रतिफल दैवी वरदानो से किसी प्रकार कम नहीं होता। कठिन परिस्थितियाँ अपने स्थान पर बनी रहती है और मनुष्य अपनी प्रयत्नशीलता के आधार पर वहाँ जा पहुँचता है, जिसके लिए सर्व-समर्थ भी तरसते पाये जाते है।

इतिहास मे ऐसी घटनाओ की कमी नहीं जिनमें अभावो के ऊपर साहस ने विजय पाई है। विकट परिस्थितियो में जन्मे, पले और घिरे व्यक्ति आमतौर से पिछड़ेपन से ग्रसित रहकर ही दिन बिताते है, पर यह अभिशाप हर किसी पर नहीं लदता। असंख्यो ऐसे भी होते है जो परिस्थितियो को चुनौती देते, कठिनाइयो से अठखेलियाँ करते अभीष्ट की दिशा मे दन-दनाते और सन-सनाते चले आते है। चेतना के अन्तराल मे सन्निहित विशेषताएँ उभारने का प्रयत्न करने वालो को किसी के आगे हाथ नही पसारना पड़ता है। प्रतिभा जब उभरती है तो बाहरी सहयोग को अपनी आकर्षण शक्ति के सहारे आस-पास ही खीच लेती है। महामानवो की जीवन-गाथा के साथ जुड़े घटनाक्रमो का विश्लेषण करने पर उनकी सफलताओ मे इसी तथ्य का पग-पग पर प्रमाण परिचय मिलता है। ऐसे उदाहरणो से इतिहास के पन्ने तो भरे हुए है। दृष्टि पसारने पर इस स्तर के प्रमाण अपने इर्द-गिर्द ही पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो सकते है।

सन् १८८३ मे अमेरिका की कोलोरेडो खान मे एक १७ वर्षीय मेकफर्सन नामक युवक काम करता था। एक दिन चट्टान दुर्घटना मे वह अपनी दोनो आँखे तथा हाथ गँवा बैठा। सामान्य व्यक्ति अपना धीरज खो बैठता तथा जीवन मे निराश हो जाता। किन्तु इस भयंकर दुर्घटना के बाद भी मेकफर्सन का लगाव जीवन मे बना रहा। उसने अपनी जीभ की नोक को धातु के टाइप अक्षरो पर फिराकर पढ़ने का अभ्यास आरम्भ किया। सामान्यत: अंधे व्यक्ति ब्रेल पुस्तको के उभरे अक्षरो को अंगुलियो से टटोलकर पढ़ते हैं किन्तु जीभ द्वारा पढ़ने का प्रयास करना एक आश्चर्यजनक घटना है। सतत् प्रयास तथा अटूट मनोयोग का अनुकूल परिणाम निकला। कुछ ही दिनों मे मेकफर्सन पढ़ने लगा।

ग़ाजियाबाद (उ. प्र.) के युवक श्री सुरेशानन्द जिन्होने पैर से रेडियो बजाना, माचिस जलाने से लेकर लिखने-पढ़ने मे कुशलता प्राप्त की है, अभी तक दो विषयो मे एम. ए. करके स्वस्थ व सबल कहे जाने वाले प्रतिभाशाली छात्रो के लिए एक आदर्श बन गये।

श्री सुरेशानन्द जिनके दोनो हाथ व दोनो पाँव जन्मजात लुंज है, बचपन मे जब अपने बड़े भाई को पढ़ते-लिखते देखते तो उनके भी दिल मे पढ़ने का उत्साह उमड़ता, किन्तु हाथ से असमर्थ कलम पकड़ने तक की भी सुविधा जिसे ईश्वर ने न दी हो, वह रोने के सिवाय और कर ही क्या सकता है। माता-पिता सुरेशानन्द की उत्कण्ठा को समझते किन्तु वह भी तो असमर्थ थे। विवश सुरेशानन्द नित्य अपने भाई का पढ़ना-लिखना देख कर अपनी तृप्ति करते। एक दिन अपने भाई की कलम पैर के अँगूठे और उँगली की सहायता से पकड़ कर एक कागज मे सुरेशानन्द ने अ, आ लिख दिया। सुरेशानन्द के यह प्रथम बार के लिखे अक्षर इतने सुन्दर थे कि कोई भी सामान्य बुद्धि का बालक वैसे अक्षर न बना पाता। सुरेशानन्द के भाई ने उनके इन सुन्दर अक्षरो को माता-पिता को दिखाया। माता-पिता को सुरेशानन्द की प्रतिभा व अक्षर लिखने की कुशलता का पता चला तो उन्होने उसके लिए लिखने पढ़ने की सभी साधन- सामग्री जोड़ दी।

शिक्षा जारी रही। न उत्साह घटा न प्रयत्न फीका पड़ा। फलत: अच्छे डिवीजन मे एक के बाद दूसरी परीक्षा उत्तीर्ण करते हुए अँग्रेजी और राजनीति से एम. ए. पास कर ली। यह युवक कवि भी है और लेखक भी। रचनाएँ कई पत्रिकाओ मे छपती रही है। प्रतिभा के धनी इस लगनशील को राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने सम्मानित भी किया था।

अपनी इसी पृथ्वी पर एक ऐसा भी क्षेत्र है जहाँ के सभी प्राणधारी अन्धे ही होते है। यह स्थान मैक्सिको के समुद्री क्षेत्र मे स्थित टुलप्पिक नामक स्थान है। यहाँ पर जन्म लेते समय बच्चा तो आँख वाला पैदा होता है किन्तु कुछ ही दिनो मे वह अन्धा हो जाता है। यहाँ पर रहने वाले पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े सभी अन्धे ही होते है।

टुलप्पिक मे मात्र एक ही सड़क है जिसके दोनो किनारो पर यहाँ के अन्धे निवासियो की बिना दरवाजो और खिड़की वाली झौपड़ियाँ बनी है। यहाँ के लोग पक्षियो के कलकल को सुनकर प्रातःकाल का अनुमान करते और उसी के साथ उठकर पुरुष अपने-अपने खेतो मे तथा स्त्रियाँ घर के काम मे लग जाती है। प्रकृति की यह विलक्षण लीला है कि कोई भी अन्धा न तो एक दूसरे के खेत मे धोखे से पहुँचता है और न ही दूसरों की झौपड़ी मे प्रवेश करता है। अन्धा होते हुए भी प्रकृति ने यहाँ के प्रत्येक प्राणी को इतनी प्रज्ञाचक्षु प्रदान की है कि वह अपना जीवन निर्वाह का क्रम बनाये रह सकता है।

अनेको ऐसे होते है जिन्हे सुविधा-साधनो की कोई कमी नही होती। सहायक भी बहुत होते है। अभिभावको का लाड़-प्यार और वैभव भी कम नही होता। इतने पर भी वे कोई कहने लायक प्रगति नही कर पाते। समय की कमी, साधनो का अभाव बताकर कई व्यक्ति अपने पिछड़ेपन का दोष हल्का करते भी है। उनकी बात एक सीमा तक स्वीकार भी की जाती है किन्तु जिनके पास किसी प्रकार की कमी नही है, उन सम्पन्न परिवारो मे जन्मे लोगो को क्या कहा जाय जो पर्याप्त अवसर होते हुए भी किसी दिशा मे प्रगति नही कर पाते। बैठे-ठाले समय गुजारने वाले और दुर्व्यसनो से ग्रसित होकर उपलब्धियो को नष्ट-भ्रष्ट करते रहने वालो का प्रधान दोष एक ही होता है, अपनी विशेषता को न समझ पाना और उन्हे उभारने के लिए उत्साह न जुटा पाना।

सफलताओ मे अवरोध उत्पन्न करने वाले अन्य कारण भी हो सकते है, पर सबसे बड़ा कारण है अपनी सामर्थ्य से अनजान रहना, योग्यता को न बढ़ाना और प्रगति के लिए पुरुषार्थ न करना। यदि इन दोषो को हटाया जा सके तो हर व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की संरचना अपने ही हाथो कर सकता है। भले ही उसके इर्द-गिर्द कठिनाइयाँ घिरी पड़ी हो।

जिन्दगी मौत से ज्यादा मजबूत है

फौजी डाक्टर ई. फ्रैन्सिस ने अपने युद्धकालीन चिकित्सा अनुभवो का विवरण प्रकाशित करते हुए व्यक्ति किया है कि—मात्र चिकित्सा के बलबूते खतरनाक घायलो को अच्छा नही किया जा सकता, इसके लिए घायल मे दिलेरी और जीवनेच्छा की प्रखरता नितान्त आवश्यक है। जिनका मनोबल कमजोर होता है, जिनके मस्तिष्क पर मौत छा जाती है और उसकी आशंका से भयभीत मन:स्थिति मे फँस जाते है। उनके लिए अच्छी चिकित्सा भी कारगर नही होती।

डाक्टर ने शेरोथियरी मोर्चे पर घायल हुए एक आयरिश सिपाही आयोवा का उल्लेख किया है। एक गोली उसकी दाहिनी ओर पसली मे कन्धे की हँसली वाली हड्डी को तोड़ती हुई जा घुसी थी। छर्रों ने फेफड़े, डायफ्रम, पित्त कोष, जिगर और आँतो को छलनी बना दिया था। कुल मिलाकर १३ जगह बड़े-बड़े छेद थे जिनमे होकर खून बहता था।

अस्पताल मे वह आपरेशन की मेज पर लाया गया। तब भी उसके चेहरे पर विश्वास और आँखों में चमक थी। बेहोशी की दवा दी गई और उसके मर्मस्थलो मे घुसे हुए गोली तथा छर्रों को निकाला। घावों को बन्द किया और मरहम पट्टी बाँधी। होश आने पर ऐसे आपरेशन वाले रोगी अक्सर बुरी तरह कराहते हैं और

उन्हे चैन देने के लिए तन्द्रा लाने वाली दवाएँ देनी पड़ती है। पर आयोवा ने एक अनोखा ही अपवाद प्रस्तुत किया। होश मे आते ही उसने फिर लगभग वही शब्द दुहराये। डाक्टर मैं अब बहुत अच्छा हूँ, जरूर अच्छा हो जाऊँगा। तन्द्रा की एक दो हलकी सी खुराके देने से ही वह कष्टदायक वेदना के क्षणो को पार कर गया।

आयोवा वाले वार्ड मे ही लगभग एक दर्जन घायल और लाये गये। उन्हे भी घाव तो कितने ही लगे थे पर इतने गम्भीर नही थे। फिर भी वे डरे हुए थे और सिसकियाँ भर रहे थे। आयोवा ने लेटे-लेटे ही आवाज तेज की और कहा—मुझ तेरह घाव वाले को देखो। कितनी तेजी से अच्छा हो रहा हूँ। अगले ही महीने मोर्चे पर फिर पहुँचने की आशा करता हूँ। फिर तुम्हे हैरान होने की क्या आवश्यकता है। कुछ ही हफ्तो मे तुम भी अच्छे होकर अस्पताल छोड सकोगे।" इन शब्दो मे न जाने कैसा जादू था कि सभी घायलो की आँखो मे आशा का प्रकाश चमक उठा और सचमुच उनके आपरेशन तथा चिकित्सा-परिणाम बहुत ही उत्साह-वर्धक सिद्ध हुए।

आयोवा आपरेशन के बाद एक सप्ताह तक बहुत बुरी अवस्था मे रहा। कई दिन तापमान बहुत ऊँचा रहा, दिल की चाल ने, रक्त-चाप ने तथा नाड़ियो मे विष संचय ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी मानो वह अब शान्त ही होने वाला है। ऐसी दशा मे भी उसे जब थोड़ा होश आया तब यह शब्द मुँह से निकले—मै जरूर अच्छा हो जाऊँगा।

आयोवा जब तक चलने-फिरने लायक न हो गया तब तक नर्सों के हाथो वार्ड के दूसरे घायलो तक अपना यही सन्देश भेजता रहा—"आपरेशन के बाद फिर कोई विरला ही मरता है। दोस्तो ! जीवन पर विश्वास रखो, मौत खुद ही मोर्चा छोड़कर चली जायेगी।

जब वह थोड़ा चलने लायक हो गया तो उठकर दूसरे घायलो के पास जाता और कहता "जिन्दगी मौत से ज्यादा मजबूत है।" घायलो को जल्दी अच्छा करने मे इस साहसी सिपाही के मनोबल ने कितनी अधिक सहायता की, इसके परिणामो को देखते हुए हम सभी डाक्टर आश्चर्यचकित थे।

जो मौत से लड़े और अन्ततः विजयी हुए

जीने की अदम्य आकांक्षा मानव की अमूल्य संपदा है। इसके महत्त्व एव गरिमा को समझने वाले आस्थावान भयंकर परिस्थितियो मे भी जीवन से निराश नहीं होते। आये हुए संकट को चीरते हुए अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने मे सफल होते है। परिस्थितियाँ ऐसे जीवट-सम्पन्न व्यक्तियो के समक्ष नत-मस्तक होती हैं।

घटना ग्यारह वर्ष पूर्व की है। कनाडा का एक पायलट राबर्ट गाउची अपनी नियमित उड़ान उत्तर ध्रुव से फोर्ट स्मिथ को भर रहा था। अब तक वह अपने जीवन काल में ६००० घण्टे की उड़ान भर चुका था। उत्तरी ध्रुव के शून्य से ६० नीचे वाले तापमान क्षेत्र मे उड़ान भरने का अभ्यस्त यह अनुभवी पायलट अन्य दिनो की तरह २ फरवरी, १९६७ को कैम्ब्रीज नामक ग्राम में कुछ अधिकारियो को उतारकर अकेला वापसी यात्रा पर रवाना हुआ। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर उसे बर्फीले तूफान का सामना करना पड़ा। लाचार होकर उसे विमान बर्फ की सतह पर ही उतारना पड़ा। प्रतिकूल मौसम के कारण एकमात्र सहायक कम्पास खो जाने पर ढूँढने मे मदद करने वाले यत्र ने भी काम करना बन्द कर दिया। बर्फीले तूफान मे किसी अन्य के सहयोग की आशा नहीं थी क्योंकि जिस मार्ग मे वह उड़ रहा था, वह आम हवाई मार्ग नहीं था। उसके पास राशन की मात्रा मात्र इतनी थी कि किसी प्रकार २० दिन जीवित रहा जा सके।

दो दिन स्लीपिंग बैग मे सोते रहने के उपरान्त तीसरे दिन तूफान कम पड़ने पर उसने बर्फ मे से सहायता के लिए १५० फीट ऊँचे अक्षर अंकित किए, जिससे ऊपर उड़ने वाला कोई विमान उन्हे देख सके परन्तु तीव्र हवा के कारण बनाये गये निशान मिट गये। भीषण ठंड मे मौत के बीच झूलते हुए भी 'गाउची' ने जीवन के प्रति आशा नही छोड़ी।

इसी बीच उसे ढूँढने वायुसेना का खोजी दस्ता ३ फरवरी से १७ फरवरी तक लगातार पेट्रोलिंग करता फिरा किन्तु उसको ढूँढ नही पाया। अन्ततः निराश होकर वायु सेना ने उम्मीद छोड़ दी तथा अपने शोक-संदेश गाउची की पत्नी तक पहुँचा दिये।

राबर्ट २८ दिन तक थोड़ा-थोड़ा राशन खाकर मृत्यु से संघर्ष करता रहा। एक दिन उसने एक विमान के गुजरने की आवाज सुनी। रोमाचित होकर वह बाहर आया तथा हवा मे रायफल से एक फायर किया, जिससे विमान चालक उसकी स्थिति जान सके। दुर्भाग्य ने उसका साथ यहाँ भी नही छोड़ा, विमान सीधे निकल गया। ऐसा ही ४०वे व ४५वे दिन भी हुआ।

बर्फीले पहाड़ मे ५५ दिन उसे रहते व्यतीत हो चुके थे। फिर भी साहसी पायलट अपना मनोबल यथावत् बनाये रहा ५६ वें दिन एक लाल विमान उसके २००० फीट ऊपर से गुजरा। यह सौभाग्य ही था कि डूबते सूरज की किरणो [illegible] से राबर्ट की चमक ऊपर जा [illegible] दिखाई दे गयी। वे वापस लौ[illegible] की [illegible] हुए

किसी भी व्यक्ति के लिए उस बर्फीले पहाड़ पर मृत्यु को चुनौती देते हुए इतने दिन तक जीवित रहना तथा वापस लौट आना एक आश्चर्य ही है। किन्तु जीवन की गरिमा एवं सर्वोपरिता स्वीकार करने वाले के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

जीने की उत्कृष्ट इच्छा मनुष्य को कठिनाइयो मे भी शक्ति एवं प्रेरणा का संचार करती है, ऐसे व्यक्ति संकटकाल मे भी रास्ता ढूँढ निकालते है। चीनी नाविक 'पुनलिम' का भीषण समुद्री तूफान मे १३३ दिन जीवित रहना तथा सकुशल वापस चले आना जिजीविषा का ही परिचायक है। घटना इस प्रकार है—'पुनलिम' एक छोटे जहाज 'तारपिडो' को लेकर जा रहा था। आकस्मिक समुद्री तूफान के कारण तारपिडो का सन्तुलन कायम नही रह सका तथा उलट गया। नाविक लिम ने तारपिडो से टूटे एक लकड़ी के तख्ते को पकड़ लिया। समुद्री लहरो के थपेड़ो के साथ वह तख्ते पर बहता रहा। मानवी संरचना इतनी दुर्बल नही है कि छोटे-मोटे संकटो के सामने घुटने टेक दे। उनसे संघर्ष करने की पर्याप्त शक्ति उसमे भरी है। जिजीविषा को दुर्बल न पड़ने दिया जाय तो मौत सदृश दिखायी देने वाली विपत्तियो को पार कर सकना कुछ अधिक कठिन नही दिखता। अन्दर की शक्ति ने 'पुनलिम' का पथ प्रशस्त किया।

जीवित रहने के लिए 'लिम' ने समुद्री मछलियो को लकड़ी के तख्ते पर से ही पकड़ना आरम्भ किया। वर्षा के पानी एवं मछलियो से पेट की ज्वाला शान्त रखकर वह मृत्यु से निरन्तर संघर्ष करता रहा। इस प्रकार लहरो के बीच बहता हुआ वह ब्राजील पहुँचा ब्राजील वासियो की ओर से इस साहसी नाविक का स्वागत करते हुए पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी 'नोबेल वेकर' ने इस एक आश्चर्यजनक घटना पर 'पुनलिम' को उसके प्रचण्ड साहस के लिए पारितोषिक प्रदान किया।

अपनी गरिमा का अनादर करने वाले भाग्य के भरोसे बैठे रहते तथा परिस्थितियो का रोना रोते रहते है। अपनी वर्तमान निकृष्ट परिस्थितियो का कारण समाज एवं ईश्वर को बताते है जबकि जीवन की सर्वोपरिता को स्वीकार करने वाले अपनी असामान्य क्षमता को पहचानते है तथा ईश्वर प्रदत्त जीवन उपहार का सदुपयोग करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते जाते है। ऐसे व्यक्तियो के समक्ष परिस्थितियाँ बाधक नही होती। सामान्य घटनाक्रमो एवं अभावो के कारण अपना मानसिक सन्तुलन नष्ट करते रहने वालो के लिए 'बेल्जियम' निवासी 'चार्ल्स फेलू' का जीवन वृतान्त अधिक प्रेरणास्पद होगा। 'चार्ल्स फेलू' सन् १८३० मे बिना हाथो के पैदा हुआ तथा ७० वर्ष तक जीवित रहा। हाथो के अभाव मे भी उसने पैर द्वारा पेंटिंग चित्रकारी कला सीखना आरम्भ किया तथा निरन्तर अभ्यास एवं लगन से प्रसिद्ध चित्रकार बना। सदा प्रसन्नचित्त रहने वाले इस चित्रकार की प्रशंसा तत्कालीन राजा, महाराजा सभी करते थे। 'फेलू' के अन्दर से प्रवाहित उत्साह, प्रेरणा एवं प्राण शक्ति से निराश व्यक्ति प्रेरणा लेते। राजाओ द्वारा हाथ मिलाये जाने पर वह अपने पैरो को आगे बढ़ा देता था।

शारीरिक अक्षमता मनुष्य के विकास मे बाधक नहीं हो सकती। अन्तरात्मा की शक्ति का मूल्यांकन करने वाले शरीर से अपाहिज होते हुए भी 'जानी' के समान प्रेरणा के स्रोत बनते है। २७ अगस्त, १९१० को 'बाल्टीमोर' सिटी मे एक दम्पति के जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए। उनमे एक बच्चा सामान्य था किन्तु दूसरे के कमर के नीचे का हिस्सा नहीं था। जीवन के प्रति अदम्य उत्साह एवं प्रेम के कारण यह बच्चा न केवल जीवित रहा अपितु विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न बना। १४ वर्ष की आयु मे उसने हाई-स्कूल पास किया। असामान्य विद्वता के कारण 'जानी' का नामांकन सीधे ग्रेजुएट कक्षा मे हो गया। कालेज का अध्ययन समाप्त करने के उपरान्त भी उसमे सीखने की प्रवृत्ति सदा बनी रही। परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार की कलाओ में वह निपुण बन गया। जानी अब एक एक्सपर्ट ड्राईवर, ड्राफ्टमैन, संगीत मास्टर, के रूप मे पूरे बाल्टीमोर शहर मे विख्यात है। असम्भव समझी जाने वाली कला जिसे पैरों द्वारा ही सीखा जा सकता है, मे तैराकी, डान्सिंग, रस्सी पर चलना, वेसवाल टैग खेल मे विशेषता प्राप्त कर जन सामान्य को आश्चर्यचकित कर दिया। अपने जीवनकाल मे 'जानी' कभी भयंकर रोग से ग्रसित नही हुआ। सदा स्वस्थ, प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहने वाला यह विलक्षण व्यक्ति सदा दूसरो के आकर्षण का केन्द्र बना रहा। उसके सम्पर्क मे आने वाले सहज ही प्रेरणा प्राप्त करते। प्रकृति एवं परिस्थितियो को चैलेंज करते हुए इस व्यक्ति ने विश्व के समक्ष अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया तथा यह सिद्ध कर दिया कि जीवन से असीम प्रेम करने वालो के समक्ष शारीरिक एवं परिस्थितिजन्य अवरोध बाधक नहीं हो सकते।

मनुष्य जीवन ईश्वर का दिया हुआ सर्वश्रेष्ठ उपहार है। इसकी गरिमा को समझने तथा उसका सदुपयोग करने वाले ही अपने लक्ष्य को प्राप्त करते है और दूसरो की प्रेरणा के केन्द्र बनते है।

प्रतिकूलताओं के रहते हुए भी प्रगति सम्भव है

यह आवश्यक नहीं कि किसी को उन्नतिशील बनने के लिए उसके पास समुचित साधन चाहिए अथवा उसके अभिभावको द्वारा उसके लिए शिक्षा तथा सुविधा जुटाने का प्रबन्ध किया ही जाय। यह हो तो अच्छी बात है किन्तु इनका अभाव रहने पर भी मनुष्य अपनी इच्छाशक्ति एवं तत्परता के बल पर प्रतिकूलताओ को भी अनुकूलताओं मे बदल सकता है और साधारण स्थिति की

रुकावटो को अपने मनोबल के आधार पर दूर करते हुए उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँच सकता है।

डिजराइली का कथन है कि "सफलता का रहस्य उस कार्य मे दृढ़ता और मनोयोगपूर्वक जुटे रहना है" कुछ लोगो का कहना है कि भौतिक सफलता अर्थहीन और बकवास है। सफलता के प्रतीक के रूप मे धन का अपना महत्त्व है। लेखक, संगीतज्ञ, चित्रकार, मूर्तिकार, कृषक अथवा मजदूर; पेटभर भोजन तो सबको चाहिए किन्तु रचनात्मक प्रवृत्तियो का लक्ष्य मात्र धनोपार्जन नही होना चाहिए। विश्व के अनेक मेधावी ऐसे है जो अभावो मे जन्मे, असुविधाओ मे पले और संघर्षो मे जीकर भी सफलता के चरम लक्ष्य तक जा पहुँचे।

सफलताओ के लिए सुविधाएँ ही आवश्यक हो ऐसी बात नही है। जिन्हे जीवनभर सुविधाएँ नही मिलीं और गरीबी व अभाव मे जीकर भी उन्होंने ऐसे कार्य किये जो सुख-सुविधाओ मे रहकर नही कर सके। सफलता के लिए सफलता की कामना और दृढ इच्छा ही मुख्य है।

अंध कवि होमर यूनान का विख्यात भिखारी था। किन्तु अपनी कृति से आज भी अमर है। इसी प्रकार रोम का महाकवि वर्जिल साधारण बावर्ची का पुत्र था। अपने ढंग की बेजोड़ कथाओ का रचनाकार ईसप एक कुरूप, काला गुलाम था। डिमास्थेनस सिकलीगर परिवार मे जन्मा था। उसका पिता छुरी, चाकू बनाकर आजीविका चलाता था, किन्तु डिमास्थेनस के भाषणो को आज भी याद किया जाता है।

सुविख्यात पुस्तक "डान क्विक्सोट" का लेखक सर वैंटेस सेना का साधारण सिपाही था। अँग्रेजी का महा कवि कीट्स एक साधारण सईस का लड़का था। उसने अपने जीवन की शुरूआत दवा विक्रेता के यहाँ नौकरी करके आरम्भ की। होमर की कृतियो का अनुवादक एलेक्जेण्डर पोप एक व्यवसायी का पुत्र था। कवि एके साइड के पिता का व्यवसाय कसाई का था। स्काटलैण्ड के राष्ट्र कवि रावर्ट बर्नस ने अपना जीवन हलवाहे से आरम्भ किया। पैराडाइज लॉस्ट के लेखक मिल्टन एक स्कूल मे अध्यापक थे। विख्यात कोषकार जानसन के पिता साधारण पुस्तक विक्रेता थे। 'पामेला' और कैरिसा जैसे रोमांटिक उपन्यासो के विख्यात लेखक सैमुएल रिचार्डसन के पिता साधारण बढ़ई थे।

अमेरिका की खोज करने वाला कोलम्बस जुलाहा था। बेंजामिन फ्रेंकलिन जो बाद मे अमेरिका के राष्ट्रपति बने, छपाई का काम करते थे। पोप सिक्सटस पंचम कभी सूअर पालने का काम करता था। कलाकार होगराथ बर्तनो पर पच्चीकारी का काम भी करते तथा उन्होंने रेशमी वस्त्र विक्रेता के यहाँ नौकरी भी की। अभी प्रचलित पुच्छल तारे के आविष्कारक 'एडमण्ड हैली' जिसके नाम से यह प्रसिद्ध है, के यहाँ साबुन बनाने का धन्धा होता था। उसमे से निकलकर वह एक एस्ट्रानॉमर बन गया। हरशल एक गरीब संगीतकार था। रिचार्ड आर्क राइट बहुत दिनो तक हज्जाम का कार्य करते रहे। विख्यात वकील ब्लैक स्टोना बुनकर का पुत्र था।

इतिहास के पन्ने ऐसे प्रतिभाशालियो की पुरुषार्थ गाथाओं से भरे पड़े है, जिनने अपने को पुरुषार्थ के बल पर ऊँचा उठाया और स्वय को कुछ से कुछ बनाकर दिखाया।

कठिनाइयों से डरिये मत

कठिनाइयो के दो स्वरूप होते है—एक बाह्य परिस्थितियो के रूप मे आने वाली कठिनाई, दूसरी आन्तरिक स्वरूप मे उपस्थित होने वाली। साधारणतया लोग बाह्य कठिनाइयो की ही जानकारी रखते है। आन्तरिक कठिनाइयों को कोई बिरला ही समझ पाता है। वस्तुतः अन्ततः-बाह्य दोनो के मूल मे आन्तरिक कठिनाइयाँ ही प्रमुख होती हैं। बाह्य कठिनाइयाँ आन्तरिक कठिनाइयो की छाया मात्र ही होती हैं।

अनुकूल परिस्थितियाँ, साधन-सुविधा मनुष्य के पतन का कारण बनती देखी गई है जबकि विपरीत परिस्थितियो मे, कठिनाइयो मे भी लोगो ने आगे बढ़कर जीवन मे उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त की है। कठिनाइयो से भी लाभ उठाकर आगे बढ़ने, जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिये मनुष्य के दृष्टिकोण एवं उसके जीवनक्रम की बुनियाद मे सुधार होना आवश्यक है।

अपने कर्तव्य, धर्म की जानकारी और उसके प्रति अनन्य निष्ठा पैदा होना सफलता की प्राथमिक शर्त है। कर्तव्य की जानकारी और उसके प्रति निष्ठा से मनुष्य कृतसंकल्प होता है और इससे उसमे असाधारण शक्ति का स्रोत फूट पड़ता है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य भारी कठिनाई को भी सहर्ष सहन करता है। कर्तव्य के लिए सर्वस्व लुटा देने को तैयार हो जाता है। हरिश्चन्द्र, पाण्डव, नल, कर्ण, प्रताप, शिवाजी, ईसा, गाँधी आदि ने अपने कर्तव्य, धर्म की रक्षा के लिए कितने कष्ट सहे, यह सभी जानते है। कर्तव्य का ध्यान रखने पर व्यक्ति को आन्तरिक शक्ति मिल जाती है, जिससे वह मार्ग मे आई हुई कठिनाइयो को सहज ही सहन कर लेता है, जिससे उसकी शक्ति, साहस, कार्यक्षमता मे दिनो-दिन विकास होता जाता है। कर्तव्य मे लगा हुआ व्यक्ति बाह्य कठिनाइयो पर क्रमशः विजय प्राप्त करता जाता है तो उसके साथ ही उसकी आन्तरिक कठिनाइयाँ भी स्वतः ही हल होती चली जाती है।

कर्तव्य दृष्टि प्राप्त होने के पहले एवं बाद मे भी सबसे बड़ी आवश्यकता है सक्रियता की। कर्तव्य को जानकर भी मनुष्य निष्क्रिय रह सकता है। अतः इसके साथ ही आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य सक्रिय बना रहे। अकर्मण्यता की स्थिति मे अनेकों उल-जलूल विचार आते-जाते रहते है और इससे मानसिक शक्तियो

का विघटन होने लगता है। शक्तियो का बँटवारा हो जाता है। खाली मन शैतान का घर होता है। मानसिक दुर्बलता से शक्तियों के विघटित हो जाने पर कठिनाइयो से लड़ना और भी कठिन हो जाता है।

कठिनाइयो से भागने की मनोवृत्ति कायरता है। इससे कठिनाई घटती नही निरन्तर बढ़ती ही जाती है। भागने वाले मनुष्य को चारो ओर से कठिनाइयाँ घेर लेती है। वह कही भी भागकर जाय, उनसे छुटकारा नही मिलता। कठिनाइयो से भागने वाले की आत्मिक शक्तियाँ कुंठित हो जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि कठिनाइयो का डटकर मुकाबला किया जाय। उन्हे जीवन मे सहर्ष स्वीकार किया जाय, वरण किया जाय। जो कठिनाई का सामना करने का निश्चय कर लेते है, उनको कठिनाई का भान नहीं होता, कब आई और कब चली गई; इसका ध्यान तक नही रहता उन्हें। कठिनाइयो का सामना करने से ही आत्म-शक्तियाँ जाग्रत होती है, उनका विकास होता है। यही कारण है कि साधन-सुविधा-सम्पन्न घरानो मे अधिकाश बच्चो का पर्याप्त विकास नही होता क्योकि उनकी आवश्यकताये सरलता से पूरी हो जाती है। उनकी शक्तियो को संघर्ष का स्पर्श नही मिलता। दूसरी ओर संसार के अधिकांश महापुरुषो का प्रादुर्भाव कठिनाइयो के बीहड़ वनो मे ही हुआ है।

कठिनाइयो को उनसे दूर भागकर, घबराकर दूर नही किया जा सकता। उनका खुलकर सामना करना ही बचने का सरल रास्ता है। प्रसन्नता के साथ कठिनाइयो का वरण करना, उनसे उत्पन्न घबराहट का सर्वोत्तम उपाय है। आन्तरिक, मानसिक शक्तियो के विकसित होने का राजमार्ग है। ससार के अधिकाश महापुरुषो ने कठिनाइयो का स्वागत करके ही जीवन मे महानता प्राप्त की है।

कठिनाइयो को देखकर मनुष्य जितना रूठता है कठिनाइयाँ भी उतनी ही रूठ जाती है। कहावत है "रूठे को मनाना और टूटे को बनाना बुद्धिमानी है।" रूठा हुआ दु:ख समझौता कर लेने पर दूर हो जाता है। एक व्यक्ति को देहाती जीवन छोड़कर शहर मे रहना पड़ा। शहर की गन्दगी, धिचपिच, मकानो की असुविधा आदि से वह परेशान हो गया। वह बड़ा दु.खी था किन्तु करता क्या ? आखिर जब उसने इन परिस्थितियो से समझौता कर लिया तो वे शिकायते फिर न रही। प्रसन्नतापूर्वक जीवन बिताने लगा। जो कठिनाइयाँ दुःख और परेशानी का कारण बन जाती है, वे ही समझौता कर लेने पर सरल बन जाती है। जटिल से जटिल समस्याओ के हल करने का सरल उपाय है, उनसे समझौता कर लेना। समझौते का अर्थ यह भी नही है कि कठिनाइयो के कारण अपने उद्देश्य, आदर्श लक्ष्य को ही छोड़ दिया जाय, वरन् यह है कि उन्हे भी जीवन-यात्रा का एक साथी मानकर अपनी यात्रा जारी रखते हुए साथ रहने दिया जाय। जीवन मे आने वाली सभी विषम परिस्थितियो मे सहज भाव रखते हुए उन्हे अपने जीवन का अंग मानना घबराहट दूर करने का सरल उपाय है। सुखद और दु:खद घटनाओ मे समभाव रखना, मानसिक दृढ़ता प्राप्त करने का एक सुसज्जित मार्ग है।

समझौते को, कठिनाइयो को जीवन मे स्वीकार करने का तरीका यह है कि अपने आपकी तुलना स्वयं से निम्न परिस्थितियो मे रहने वाले लोगो से करे। आज हमे चार रोटी मिलकर भी बैचेनी है, किन्तु दो रोटी मिलने वाले से अपनी तुलना करने पर इस. बेचैनी का निवारण हो जायेगा। आज हमे जीवन निर्वाह की पर्याप्त सुविधाये प्राप्त नही है, किन्तु अधिकतर अभावग्रस्त लोगो को तथा असुविधामय जीवन मे उत्कर्ष प्राप्त करने वालो को देखे तो हमारी यह शिकायत दूर हो सकती है। इसी तरह अपने से गिरी हुई परिस्थिति के लोगो से स्वय की तुलना करने पर कठिनाइयाँ, परिस्थितियाँ, सुविधाओ का अभाव सब दूर हो जाते है।

कठिनाई, दुःख, कष्टो के निवारण के लिए अथवा इनसे होने वाली क्षति से बचने के लिए अपने अहंकार को कम करना आवश्यक है। जो वृक्ष नम्र होना जानते है, वे बड़े-बड़े झंझावातो मे भी अपनी जड़ सहित जमे रहते है। पानी की प्रबल धारा बेत का कुछ नहीं बिगाड़ती। किन्तु बड़े-बड़े पेड़ जो कठोर होते है, अकड़ कर खड़े रहते है वे एक झोके मे ही धराशायी हो जाते है। जो मनुष्य नम्रता, निरहंकारता के सद्‌गुणो से सम्पन्न होते है, जो कष्ट-सहिष्णु होते है उनका बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ, कष्ट-मुसीबते भी कुछ नही बिगाड़ती। सबसे प्रेम करने वाले, शिकायत न करने वालो को अनेक सहयोगी मिल जाते है। कठिनाइयाँ भी उनके साथ सहयोग करती है, जो समझौता करना जानते है। उनकी जटिल समस्याये भी सहज ही हल हो जाती है।

अजीब लोग और उनके विचित्र संकल्प

शारीरिक, बौद्धिक एवं आर्थिक क्षेत्रो मे सफलता अर्जित करने एवं उन्नति की ओर बढ़ने के प्रयास अनेको व्यक्तियो द्वारा किये जाते है, तद्नुरूप सफलता प्राप्त करते देखे भी जाते है। कभी-कभी यह प्रयास विभिन्न व्यक्तियो मे, विचित्र रुचियो के रूप मे उभरकर आते है जिनकी पूर्ति के लिए वे दुस्साहस भरे कदम उठाने मे भी नही हिचकते।

शीत ऋतु की भयंकर ठंड मे गर्म कपड़ो एवं बिस्तरो मे लोग दुबके रहते है तथा ठंड से बचाव करते है। "म्युनिख नगर" के एक एकाउन्टेन्ट श्री 'पीटरशीत' को अपने साहस एवं क्षमता के प्रदर्शन की सनक सवार हुई। उसने निरन्तर सात रात एवं सात दिन ठंडे फव्वारे

के नीचे भीगते हुए व्यतीत किये तथा एक अनोखा कीर्तिमान प्रस्तुत किया।

इंग्लैण्ड के दो नवयुवक **'फ्रैंकलिन जेम'** एवं **'जेमसन'** जिनकी आयु थी २० वर्ष एवं १९ वर्ष। ये दोनो नौकरी की खोज मे भटक रहे थे। एक दिन फ्रैंकलिन को जाने क्या सूझा, वह 'जेमसन' से कहने लगा कि "क्यो नही हम अपने खाली समय का उपयोग कुछ नवीन अनौखे कार्यों के करने मे करे ?" अपने मन मे आये विचार को मित्र के समक्ष प्रस्तुत करते हुए उसने कहा—"हम लोग ताली बजाने का नया रिकार्ड प्रस्तुत करेगे।" सहमति मिलते ही दोनो ने १४ घण्टे ६ मिनट तक निरन्तर ताली बजायी। अमेरिका के दो किशोर छात्र जिनकी आयु १४ एवं १५ वर्ष थी तथा नाम था **'केरोमिन'** एवं **'विलियम स्कार्ट'** ने उनको ताली बजाने मे स्थापित कीर्तिमान को चुनौती दी। एक स्थान पर निरन्तर खड़े होकर १८ घण्टा ताली बजाकर उन दोनो किशोरो ने "फ्रैंकलिन" एव उसके सहयोगी द्वारा स्थापित रिकार्ड को तोड़ दिया।

मनुष्य की संकल्प शक्ति एवं पुरुषार्थ मे वे सारी विशेषताएँ है, जिनके सहारे असम्भव कार्य भी सम्भव किये जा सकते है। इस शक्ति का उपयोग चाहे रचनात्मक दिशा मे किया जाय अथवा निरुद्देश्य कौतूहलजनक कार्यों मे। यह मनुष्य के स्वय के विवेक के ऊपर निर्भर करता है।

जापान के पतगबाज **गोरोकू कुडो** को यह जानकारी मिली कि अमेरिका के एक व्यक्ति ने एक ही डोर मे १७८ पतंगे बाँधकर उड़ायी है। पतंगबाजी कला मे वह स्वय भी निपुण था। इस अमेरिकी रिकार्ड को तोड़ने का अभ्यास 'कुडो' नित्य करने लगा। उसने ३५६ पतंगे अच्छी प्रकार तैयार करायी। आठ-आठ फुट की दूरी पर एक-एक पतग को बाँधकर वह उड़ाने लगा। अभी २५० पतगे ही उड़ा सका था कि पतंग डोरी पर बोझ अधिक पड़ने एवं हवा के तेज दबाव के कारण डोरी टूट गई। ३५० पतंगे तो नही उड़ा सका किन्तु अमेरिकी पतंगबाजी के कीर्तिमान को 'गोरोकू' ने तोड़ दिया।

कभी-कभी तो नवीन कीर्तिमान स्थापित करने की सनक मे कुछ व्यक्ति जीवन के साथ दुस्साहपूर्ण कार्य करते देखे जाते है। रोगी को नवजीवन देने एवं रक्त आपूर्ति करने के लिए रक्तदान एक महान त्याग एवं सेवा है। कितने ही व्यक्ति रक्तदान द्वारा पुण्य कार्य करते देखे जाते है। किन्तु मात्र नवीन एव आश्चर्यजनक कीर्तिमान स्थापित करने के निमित्त रक्तदान करते कम ही व्यक्ति देखे गये है। 'हैम्वर्ग' के २८ वर्षीय नवयुवक **'रौकपीटर'** ने अपनी इस आयु तक १७७० बार रक्तदान कर अपने दुस्साहस का परिचय दिया है। रक्तदान में 'पीटर' के शरीर से अब तक ६६० लीटर रक्त निकल चुका है। सारे विश्व मे यह एक आश्चर्यजनक घटना है।

नार्वे निवासी **'हैन्सलैंगसेथ'** को दाढ़ी बढ़ाने का भूत सवार हुआ। इस इच्छा से अभिप्रेरित होकर उसने अपनी दाढ़ी ५० मी. ३३ से मी. बढ़ाकर लोगो को आश्चर्यचकित कर दिया।

कहते है कि मनुष्य के सिर के बाल गिने नही जा सकते। यह असम्भव तो नही, पर इसे बेकार काम समझ कर कौन अपनी शक्ति एवं समय को नष्ट करेगा। किन्तु **'हेलसिलासी यूनिवर्सिटी'** के एक कर्मचारी **'वाकावाया'** को यह सनक सवार हुई और उसने अपने सिर का मुण्डन कराकर प्रतिदिन बाल गिनना आरम्भ किया। लगभग चार वर्षो मे उसने अपने सिर के सारे बालो को गिन डाला, जिनकी कुल संख्या १ लाख १२ हजार ५०३ थी।

मनुष्य की संकल्प शक्ति अद्भुत है और पुरुषार्थ असीम। कितने लोग मात्र कौतूहल खड़ा करने एव निरुद्देश्य उसका उपयोग करते देखे जाते है। श्रेष्ठ कार्मो के लिए इस शक्ति को नियोजित किया जा सके तो कठिन कार्य भी सम्भव बन जाते है। सकल्प शक्ति की महत्ता एवं उपयोगिता भी इसी मे है। रचनात्मक दिशा मे उसका सदुपयोग किया जाना चाहिए।

साहस सबसे बड़ा साधन

रक्त-माँस की दृष्टि से सभी मनुष्यो की शरीर संरचना एक जैसी है। मस्तिष्कीय कल-पुर्जो की बनावट मे भी कोई अन्तर नही। सबके अंग-अवयव सृष्टा की निर्धारित विधि-व्यवस्था के अनुरूप काम करते हैं। इतने पर भी कई साहस के धनी होते है और पराक्रम-पुरुषार्थ मे गर्व गौरव समझने के कारण, धैर्य सन्तुलन बनाये रहने के कारण महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त करते है। असंख्यो के सम्मुख अपने शौर्य-साहस का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते है।

इसके विपरीत ऐसे लोगो की भी कमी नही, जिन पर भीरुता, कायरता, कृपणता की गहरी परते चढ़ी होती है। कठिनाई आने से पूर्व ही उनकी बढ़ी-चढ़ी कल्पना करते है और उस स्वनिर्मित भय-भूत से डरकर थर-थर काँपने लगते है। विपत्ति का सामना करने का अवसर तो तब आये जब वह सामने प्रकट हो। इससे पूर्व ही जिनकी कुकल्पनाएँ अनिष्ट, अहित और संकट के कल्पना चित्र ही इतने दुष्कर प्रतीत होते हैं, जिनसे निपटना बैतरणी पार करने की तरह कठिन हो जाता है।

ऐसे लोगो के सामने यदि कही सचमुच ही विपत्ति आ खड़ी हो तो समझना चाहिए कि मरण की पूर्ववर्ती 'रिहर्सल' हो गयी। सामना करने, उपाय सोचने वाले सारे तन्त्र ही अस्त-व्यस्त हो जाते है। ऐसी दशा मे उनकी अपनी हड़बड़ी ही एक साथ अनेको विपत्तियाँ न्यौत

बुलाती है। विपत्ति का आक्रमण जितना अनिष्ट करता, उससे कहीं अधिक अपना भयभीत, उद्विग्न, विक्षुब्ध मन ही अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने और सर्वनाश रचने का काम पूरा कर चुका होता है।

जहाँ ऐसे डरपोक, कायरों की संसार मे भरमार है वहाँ ऐसे साहसी, शूरवीरों की भी कमी नहीं जो वास्तविक संकट सामने रहने पर भी मनोबल टूटने नहीं देते। उपाय खोजते है, रास्ता बनाते है और सन्तुलित सूझ-बूझ के आधार पर विपत्ति को पार कर लेते हैं। पार करना सम्भव न हो तो भी मुसीबत से कटकट जूझते हैं। आघात शरीर पर की क्षति कर सकते है। साधनों को छीन सकते है, परिस्थितियाँ प्रतिकूल कर सकते हैं। इतने पर भी यदि मनोबल बना रहे-साहस न टूटे और अन्तिम समय तक जूझने की हिम्मत बनी रहे, तो सामान्य शरीर वाले व्यक्ति भी ऐसे पराक्रम कर दिखाते है, जिनकी गौरव-गाथा सुनने वालों के भी हौसले बुलन्द होते है।

प्रशंसा ऐसे लोगों की है, जिनने अपने साहस और पराक्रम का परिचय दिया। जिनने संकट की घड़ी में धैर्य रखा और मरने के स्थान पर जूझने का निश्चय किया। ऐसे लोगों के उदाहरण, संस्मरण भर से पढ़ने-सुनने वालों मे उत्साह भरता है और शूर-साहसियों की पंक्ति मे खड़ा होने को मन करता है।

फ्रान्स के न्यूर्ल प्रदेश का कप्तान मैलर मुस्टैमे जीवनभर युद्धों का अग्रिम मोर्चा सँभालता रहा। उसने १२२ युद्धों मे भाग लिया और प्रत्येक मे कई-कई घाव लगे। सभी का वह सामना करता रहा और अच्छा होता रहा। उसकी मृत्यु १३४९ ई. मे हुई। रात को सोते-सोते ही बिस्तर पर मर गया। किसी को उसकी कराह या बीमारी का पता भी न चला।

फ्रान्सीसी जनरल वैपटिस्टे मान्टमरिन की जीवट अपने ढंग की अनोखी है। उनने २० वर्ष की आयु से सेना मे प्रवेश लिया। ७५ वर्ष की आयु होने पर सन् १७७९ मे मरे। इस बीच वे पूरे ५५ वर्ष सेना में विभिन्न पदों पर काम करते रहे। वे युद्ध मोर्चा पर पाँच बार भयंकर रूप से घायल हुए और मृतक घोषित किये जाते रहे। हर बार वे कब्रिस्तान पहुँचने से पूर्व जी उठे। उनका सारा शरीर अनेको आपरेशनों से बेतरह कटा-फँसा था। उनने मरने तक हिम्मत कभी भी नहीं हारी।

आस्ट्रिया के एक जनरल काउन्ट एन्टम स्टार ने अपने देश की सेना मे ४७ वर्ष तक काम किया। इस बीच उनने ८९ लड़ाइयाँ लड़ी। इनमें उन्हे ८४ भयंकर और सैकड़ों छोटे घाव लगे। उनकी मृत्यु युद्ध मोर्चे पर ही हुई। मरते समय उनके चेहरे पर कोई विषाद नहीं था।

समुद्र के आर्कटिक क्षेत्र मे एक जहाज पालिरस बर्फ मे फँसा और एक चट्टान से टकराकर डूब गया। जीवित बचे १९ नाविकों ने एक बहते हुए हिमखण्ड पर सवारी गाँठी और मछलियाँ पकड़ते-खाते हुए उसी चट्टान पर दिन काटते तथा आगे धकेलते हुए बर्फ की चट्टान को नाव बनाकर वे १९६ दिन मे १२०० मील की यात्रा करके लैब्रेडोर तट पर पहुँचे और अपने प्राण बचाने मे सफल रहे।

मैक्सिको के निकट प्रशान्त महासागर में लारा नामक एक जलयान गुजर रहा था। आग लग जाने से जहाज समेत सभी कर्मचारी जल गये। मात्र ५ नाविक एक छोटी जीवन-नौका पर सवार होकर समुद्र में उतरे। किनारा १५०० मील था। सभी बेतरह थके हुए थे। प्यास से प्राण निकल रहे थे। इसी बीच कुछ ऐसा अद्‌भुत हुआ कि नाव समुद्र के मध्यवर्ती एक मीठे चश्मे के पास जा पहुँची। वहाँ उनने प्यास बुझाई। फिर उनने हिम्मत बाँधी और किनारे की ओर चले। पूरे २३ दिन बिना कुछ खाये-पिये मैक्सिको तट पर सुरक्षित पहुँचे।

सन् १७८३ मे फ्रेंस वैज्ञानिक प्रो. चार्ल्स ने पहला गुब्बारा बनाया। इसके बाद उसकी क्षमता और आकृति मे क्रमशः सुधार होता गया। उस समय के विकसित गुब्बारे को, जिसका नाम था 'जैपलीन' को लेकर कुछ दुस्साहसी युवक 'नौटिलस' नामक पनडुब्बी जहाज पर सवार हो उत्तरी ध्रुव की कठिन यात्रा के लिए चल पड़े। उस योजना का संचालन किया जर्मन डा. उल्सटीन ने। जैपलीन मे कुल ५६ आदमी सवार थे—४० चलाने वाले और १६ अनुसंधान करने वाले। गुब्बारा एक छोटे फुटबाल मैदान के बराबर था और गिरजाघर जैसा ऊँचा जिसमे खटोले जैसे लटकने थीं। यात्री उन्हीं पर बैठते थे।

लेक कोसटैस से उड़कर यह गुब्बारा जर्मनी, स्वीडेन, ऐस्योनिया, फिनलैण्ड, रूस की सीमाएँ पार करते हुए ध्रुव प्रदेश पर पहुँचा। स्फोरा अन्तरीप से लेकर सुविस्तृत ध्रुवीय क्षेत्र पर इसने उड़ाने भरी और चित्र-विचित्र फोटो लिए। लगभग एक सप्ताह तक यह गुब्बारा उड़ा और पनडुब्बी को उससे भी अधिक समय लगाना पड़ा।

कैस्टाइन (स्पेन) के एक सैनिक स्वेटो-अवानी के आरम्भिक दिनो मे अपनी प्रेमिका के साथ सम्बद्ध था। रिश्ता निभा नही और दोनो अलग हो गये। फिर भी उस योद्धा ने गले मे एक लोहे का छल्ला अपनी बिछुड़ी प्रेयसी की स्मृति मे पहने रखा। वह बाँका लड़ाकू था। उन दिनो भाला प्रधान शस्त्र था। उसने ६८ योद्धाओ के साथ ७२७ भाला आक्रमणो का प्रहार तथा सामना किया। हर संघर्ष मे उसने अपने स्मृति-चिन्ह पर आँच न आने देने के लिए भरपूर सावधानी बरती। अन्तिम बार एक संघर्ष मे ऐसी चोट लगी कि न केवल उसकी जान गई वरन् यह स्मृति चिन्ह भी टूटकर लाश के साथ ही समाप्त हो गया। उसने दूसरा विवाह नही किया था।

एक बार समुद्री यात्रा करते समय रोम के शासक जूलियस सीजर को समुद्री डाकूओ ने आक्रमण करके

कैद कर लिया और होडस द्वीप मे बन्दी कर दिया, फिर सीजर के सम्बन्धियो को धन भेजने का सन्देश दिया।

इस सम्बन्ध मे प्लूटार्च ने लिखा है कि सीजर डाकूओ का बन्दी होते हुए भी एक सम्राट के रौबदौब मे रहता, जिस किसी डाकू को डाँट देता, वही सुन्न रह जाता। सब डाकू उसकी आज्ञा का पालन करते थे। वह उन्हे धमकाते हुए कहता था कि यहाँ से जाने के बाद तुम सबको फाँसी के तख्ते पर चढ़ा दूँगा किन्तु कोई डाकू चूँ तक नही करता था। वहाँ से छुटकारा पाने के बाद उसने वैसा ही किया भी, पर वहाँ तो उसके आत्म-तेज की ही महत्ता थी, जो गिरफ्तार होकर भी डाकुओ पर शासन करता रहा। नैपोलियन कैद से छूटकर भागा उस समय बोबोर्न की सेनाये सतर्क कर दी गईं। सेनापतियो को आदेश दे दिया गया कि नैपोलियन उधर आये तो उसे गोली मार दी जाये पर हुआ कुछ और ही। नैपोलियन उधर ही गया, जहाँ सन्नद्ध सेना राइफले 'लोड' किये खड़ी थी, पर उसके आगे किसी को भी घोड़ा दाबने का साहस नही हुआ। सारी सेना फिर नैपोलियन के सेनापतित्व मे आ गई।

एथेन्स के बियेडोज ने एक बार शर्त लगाकर नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति हिप्पेनिकोस को सबके सामने थप्पड़ लगा दिया और दूसरे ही दिन उसने उसे इतना प्रसन्न कर लिया कि हिप्पेनिकोस ने अपनी पुत्री का विवाह ही उसके साथ कर दिया। बियेडोज के बारे मे कहा जाता है कि उसके पास इतनी प्रबल आत्म-शक्ति थी कि दुश्मन को एक मिनट मे मित्र बना सकता था।

समझा जाता है कि लोग साधनो के सहारे उन्नति करते है। परिस्थितियाँ अनुकूल हो तो सफलता मिलती है। इस कथन मे इतनी ही सच्चाई है कि अनुकूलता तथा साधन-सुविधा के सहारे प्रगति का पथ अपेक्षाकृत सरल हो जाता है किन्तु बात ऐसी नही है कि जिनके पास साधन नही अथवा जो अवरोधो से घिरे है, वे उन्नति कर ही नही सकते। सफलता के लक्ष्य तक पहुँचने का श्रेय वस्तुत: मनुष्य की जीवट को है। कोई बिना अधीर हुए, प्रतिकूलताओ के साथ तालमेल बिठाते हुए—जो साधन उपलब्ध है, उन्ही का सदुपयोग करते हुए—आगे बढ़ता रहा तो कल न सही; परसो अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँच सकना सम्भव हो जायेगा। ऐसे उदाहरणो से इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े है। जो गई-गुजरी परिस्थितियो से घिरे थे। फिर भी उनने अपने प्रयास पौरुष को मजबूती से पकड़े रखा—निरन्तर चलते पट्टे के क्रम मे व्यतिरेक न पड़ने दिया और अभीष्ट सफलता प्राप्त करके कृत-कृत्य हुए।

ईसाई धर्म-प्रचारको मे अग्रणी ड्वाइटमूडी जवानी तक अनपढ़ रहा। उसकी स्त्री थी तो कम पढ़ी पर चाहती यह थी कि उसका पति पादरी बने। सो उसने उसे पढ़ना-लिखना स्वय सिखाया और जोर देकर गिरजे का शौक लगाया। वह लगी ही रही और अन्तत: मूडी को धर्म प्रचारक ही बनाकर मानी। पादरी भी ऐसा जिसने ईसाई जगत मे असाधारण ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त की।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का पालन-पोषण उनकी सौतेली माँ ने किया था। गरीबी और कठिनाइयो के बीच दिन काटने वाली उस महिला ने इस बालक को ऐसी प्रेरणाएँ और नसीहते दीं जिनके सहारे बच्चे की समझ और शिक्षा ही नहीं, आत्मा भी ऊँची उठती चली गई और वह क्रमिक प्रगति के पथ पर चलते हुए अमेरिका का राष्ट्रपति ही नहीं, विश्व के महामानवो मे से एक बना।

महान वैज्ञानिक टामस अल्वा एडीसन बचपन में अत्यन्त मन्द बुद्धि थे। पढ़ने मे उनकी अक्ल चलती ही न थी। सो अध्यापक ने बच्चे के हाथो अभिभावको को पत्र भेजा। इसे स्कूल से उठा ले, मन्द बुद्धि होने के कारण वह पढ़ न सकेगा। बच्चे की माँ ने भरी आँखो और भारी मन से पत्र को पढ़ा। बच्चे को दुलार और छाती से चिपकाकर कहा—"मेरे बच्चे, तुम मन्द बुद्धि नही हो सकते। मै स्वय ही तुम्हे पढ़ाऊँगी।" बच्चे को स्कूल से उठा लिया गया और उसकी माँ ने पढ़ाना आरम्भ कर दिया। परिणाम सभी के सामने है। बच्चा विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिको मे से एक बना।

जापान के मुसाशी प्रान्त का निवासी हनावा हाकोची सात वर्ष की आयु मे ही अन्धा हो गया था। किन्तु उसने अपनी मस्तिष्कीय चेतना को इतना प्रखर बनाया था कि ४,००,००० हस्तलिपि की विषयसूची तैयार कर सकता था। कहते है वह अँधेरे मे भी पढ़ सकता था। उसने एक ऐसी पुस्तक संकलित की जिसके २८२० खण्ड है। ऐसी विशाल पुस्तक आज तक दुनियाँ मे किसी ने भी नही लिखी। उसने बाबाक्सी मे स्कूल भी खोला, जिसमे जापानी साहित्य का अध्ययन वह स्वय किया करता था।

इस प्रकार की क्षमताएँ बीज रूप से होती सभी मे है, पर उन्हे जगाने, प्रखर बनाने के लिए हर किसी को साहस, सकल्प और अध्यवसाय काम मे लाना पड़ता है। मनस्वी ही जीतते है। आन्तरिक क्षेत्र की और बाह्य जगत की समस्त सफलताएँ साहसिक पुरुषार्थ पर ही निर्भर है।

साहस हो, तो सिंह भी पालतू कुत्ते जैसे सौम्य बनाये जा सकते हैं

"सिंह जैसी खूनी और क्रूर प्रकृति के प्राणी को भी स्नेह-सौजन्य के बन्धनो मे बाँधा जा सकता है और उसे मृदुलता एवं सौजन्य के ढाँचे मे ढाला जा सकता है।" यह सिद्धान्त या आदर्श ही नही एक व्यवहार भी है, जिसे हालेण्ड निवासी एक वन सरक्षक दम्पति ने अफ्रीका मे साकार करके दिखा दिया।

उन्होने समय-समय पर छ. सिंह शावको को उन्मुक्त वातावरण मे पाला और बड़ा किया। स्नेह दिया

और स्नेह पाया। विश्वास किया और विश्वास पाया। परम्परागत क्रूर प्रकृति को सौम्य-सौहार्द में बदला जा सकता है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर दार्शनिक विवाद के रूप मे नहीं, वरन् प्रत्यक्ष उदाहरण के साथ पिछले ही दिनो प्रस्तुत किया गया है।

सिंहो के बारे मे आमतौर से इतना ही जाना गया है कि वे बड़े भयकर बलवान और क्रूर होते है। अपनी सशक्तता और क्रूरता से सारे वन-प्रदेश को आतंकित रखते हैं। उनसे सभी वनचर भय खाते हैं। अस्तु आतंकवादियों को जैसे भूतकाल में शासक मानने की परम्परा थी, उसी के अनुसार सिंहो को भी 'वनराज' कहते है। यद्यपि उस क्षेत्र की शासन व्यवस्था तथा सुविधा संचालन में उनका कोई योगदान नहीं होता।

सिंह स्वच्छताप्रिय प्राणी है। भोजन के बाद वह अपने मुँह के बाहरी भाग को पंजे और जीभ से चाटकर इस तरह साफ करता है जैसे हम भोजन के बाद साबुन, पानी और तौलिये की सहायता से मुँह और हाथ की सफाई करते है। गन्दगी उसे बिलकुल नापसन्द है। इसी प्रकार सिंह अपनी जाति वालों की हत्या नहीं करते जबकि मनुष्यो ने अगणित मनुष्यो को लड़ाइयाँ लड़कर मृत्यु के मुख मे पहुँचाया है।

हालेण्ड निवासी मि. जार्ज नेशनल पार्क के वरिष्ठ वन-जन्तु अभियन्ता के पद पर काम करते थे। उनका निवास अधिकतर इन्ही के साथ रहा। उनकी पत्नी का नाम था—जाय एडमसन। इस दम्पति युगल को स्वभावतः वन जीवो से प्रेम था पर जाय एडमसन तो उनके साथ इतनी अधिक घनिष्ठता स्थापित करने मे सफल हुईं कि उन्हे वनदेवी ही समझा और कहा जाने लगा।

संसार का सबसे बड़ा चिड़ियाघर तजानिया पूर्वी अफ्रीका मे है। नाम है उसका 'सिरेनगेटी'। इसकी लम्बाई १८० मील और क्षेत्रफल ४५०० वर्ग मील है। ऊँचाई समुद्र तल से ४ हजार से लेकर १३ हजार फुट है। वन-जीवो के लिए बने इस उन्मुक्त उद्यान को देखने के लिए संसार भर से लाखों यात्री लम्बी यात्राएँ करके आते है। कुछ समय पूर्व उसमे बड़े जानवरो की संख्या ३६६९८० जाँची गई थी और अनुमान था दस हजार के करीब ऐसे होगे, जो गिने नही जा सके। इसी उद्यान के पशु संरक्षक थे मि. जार्ज।

एक दिन पार्क के एक वन-रक्षक कर्मचारी को गश्त करने भेजा गया था, जब वह वापिस नही लौटा तो खोज-खबर ली गई और पाया गया कि उसे किसी सिंह ने मार डाला। बची हुई लाश से लेकर जहाँ तक सिंह के पंजे गये थे, वहाँ तक पीछा किया गया और अन्तत: झाड़ी मे छिपी सिंहनी को ढूँढ निकाला गया। मनुष्य के रक्त का एक बार चस्का लग जाने पर सिंह प्राय: नरभक्षी हो जाते है। इस संकट से बचने के लिए उन्हे समाप्त ही करना पड़ता है। जार्ज को यही करना पड़ा। वन अभियन्ता के उत्तरदायित्व को निबाहने के लिए यह आवश्यक भी था कि वे उस नरभक्षी को समाप्त करें। वे सधे हुए निशानेबाज थे, सो गोलियाँ चलाकर आसानी से उस नरभक्षी को ढेर कर दिया।

मृत सिंहनी की माँद में कुछ ही दिन के जन्मे बहुत छोटे तीन बच्चे पाये गये। जार्ज को न जाने क्या सूझी कि वे उन बच्चो को पकड़ लाये और पत्नी के सामने खिलौनों के रूप मे प्रस्तुत किया। उस समय उनका प्रयोजन कुछ समय मन बहलाने भर का था। सिंहो को पालने की बात उनके मस्तिष्क मे रही भी नही थी। इतना बड़ा दुस्साहस करने और झंझट मोल लेने की उनकी तनिक भी इच्छा नहीं थी।

पत्नी ने पहले तो सिंह शावकों को आश्चर्य से देखा, पीछे वे डरीं किन्तु बाद मे उनका वात्सल्य उभर आया और माता सदृश सहृदय व्यवहार करने लगी। उन्होने तीनों बच्चों को उसी चाव-दुलार से पालना शुरू कर दिया जैसे कोई अपने बच्चो को सँभालता है। आरम्भ मे उन्हें दूध पीना, सिखाना तक बड़ा कठिन प्रतीत हुआ। मुँह मे रबड़ की नली डालकर दूध पिलाया गया। एक बार तो लगा कि वे इसके अभ्यस्त न हो सकेगे और भूखों मर जायेगे पर पीछे उन्हे समझ आई और दूध पीने को तैयार हो गये। इस सुधार के कारण ही उन्हे मृत्यु के मुख से बचाया जा सका।

कुछ ही महीनो मे बच्चे उछलने-कूदने लायक हो गये। परिवार के सदस्यो की तरह वे रहने मे तो अभ्यस्त हो गये थे पर अपनी उछलने-कूदने की आदत को क्या करते। घर मे रखी वस्तुओ को मौका पाते ही वे तोड़-फोड़ डालते और फाड़-चीरकर रख देते। लालन-पालन से भी यह कठिनाई अधिक बड़ी थी। इस सिरदर्द को हल्का करने के लिए घर के एक हिस्से मे उनके लिए बाड़ा बनाया गया, पर बन्द करते ही वे आसमान सिर पर उठा लेते और बाहर निकलने के लिए बेतरह हैरान करते। जार्ज महोदय उन्हे जल्दी ही किसी चिड़िया घर मे भेज देने के पक्ष में थे। उनकी पत्नी ने एक बच्चे को अपने पास ही रखने का आग्रह किया। नादान दो बच्चे हवाईजहाज से हालेण्ड के चिड़ियाघर के लिए भेज दिये गये। एक घर पर रखा गया। यह मादा थी। उसका नाम रखा गया—एल्सा।

जाय एडमसन ने उस छोटी सिंहनी को अपनी दत्तक पुत्री की तरह पालना शुरू किया। वे अपने हाथों उसे भोजन करातीं। उसी के लिए बनाई गई चारपाई पर सुलाती, मच्छरो से बचाने के लिए मशहरी लगाती, सर्दी न लग जाय इसके लिए रजाई उढ़ाती। इस प्रेम व्यवहार से प्रभावित हुए बिना एल्सा भी न रह सकी। वह अपनी इस नर शरीर धारी मौसी के कृतज्ञतापूर्ण हाथ-पैर चाटती, गोदी मे जा बैठती और सिर खुजलाये जाने का आनन्द लेती। बिल्ली की तरह वह पीछे-पीछे ही लगी फिरती।

इन मौसी भतीजी मे प्यार का रिश्ता दिन-दिन सघन होता गया और स्थिति यहाँ तक पहुँची कि कभी एल्सा अपना सिर जाय एडमसन की गोदी मे रखकर घण्टो निद्रा मग्न रहती और कभी मौसी का तकिया बनी एल्सा चुपचाप पड़ी रहती।

जब तक तीनो बच्चे साथ रहे, तब तक उन्हे बहुत प्रसन्नता रही। पर जब दो बच्चे हालेण्ड भेज दिये गये तो एल्सा अकेलापन महसूस करके उदास रहती। वह अपनी बहिनो को ढूँढने दूर-दूर तक आस-पास की झाड़ियो मे जाती और जब वे नही मिलते तो दुखी होकर वापिस लौट आती। जिस गाड़ी मे बिठाकर उसकी बहिनो को हवाई अड्डे तक पहुँचाया गया था उसे वह पहचान गई थी अस्तु, उससे सदा दूर रहती। उसे भय हो गया था कि कहीं-वही गाड़ी उसे भी कही न भगा ले जाय। भाई-बहिनो का प्यार सिंह शावको मे आमतौर से नही होता।

दो वर्ष बाद ऐडम्स दम्पत्ति हालेण्ड के अजायबघर मे भी दो सिंहनियो को देखने गये। कई वर्ष तक बिछुड़े रहने के बाद भी जब दोनो ने एक दूसरे को देखा तो प्यार की मधुर-स्मृति बह निकली। दोनो सिंहनियाँ कटघरे के पास एडम्स से सटकर आ खड़ी हुई और संतुष्ट नेत्रो से उन्हे चाटती रही। उन्होने भी अपनी इन पोष्य सन्तानो की पीठ पर देर तक हाथ फिराने का क्रम जारी रखा। दर्शको के लिए यह दृश्य अनोखे कौतूहल का विषय था।

यो एल्सा की चारपाई अलग रखी गई थी और जार्ज दम्पत्ति की चारपाइयो के पास ही थी। फिर भी उसे अलग सोने मे सन्तोष न होता और वह प्रयत्न करती कि अपनी खाट छोड़कर उन्ही के पलंग पर जा सोये। कई बार तो उसे गहरी नींद मे से जगाना उचित न समझा जाता, तो वे लोग अलग सोकर किसी प्रकार गुजर करते। यो भोजन उसे स्वय ही करने को दिया जाता था पर वह चाहती यह थी कि उसे प्यारपूर्वक हाथ से खिलाया जाय। जब इसकी इच्छा पूरी न होती तो ही उदास मन से अपने आप खाना खाती।

यह स्नेह-सद्भावना का ही चमत्कार था कि सिंह की क्रूरता इस कदर मृदुल हो गई कि उसके परम्परागत आक्रमणकारी स्वभाव मे ममता और आत्मीयता के गहरे अकुर जम गये और उसकी भयंकरता एक प्रकार तिरोहित हो गई।

वातावरण ने एल्सा की प्रकृति ही बदल दी थी, वह माँस तो खाती थी पर शिकार मारना नही आता था। जाय एडमसन के घर के आस-पास तरह-तरह के पक्षी और हिरन, जिराफ आदि पशु निर्भय होकर घूमते रहते थे। उसने कभी किसी पर हाथ साफ नहीं किया। मरे हुए जानवर जब सामने डाले जाते तो वह भली प्रकार देख लेती कि कही यह जीवित तो नहीं है। उसने अपनी प्रकृति में शाकाहारी भोजन को सम्मिलित कर लिया था। रोटी, सब्जी और फल भी उसे प्रिय लगते थे और उन्हें वह चावपूर्वक खाती थी।

एल्सा को बहुत से शब्दों का और इशारों का अर्थ मालूम हो गया था। इसलिए उसे कुछ निर्देश करना उतना कठिन नहीं रह गया था। जो उसे कहा जाता, उसे वह कभी उत्साहपूर्वक, कभी आलस के साथ पूरा करती थी। अवज्ञा तो उसने शायद ही कभी की हो।

एल्सा क्रमशः बड़ी होती चली गई। दूसरे लोग उसे शेरनी समझकर डरते पर वस्तुतः उसकी आदत बहुत ही सौम्य थी। आक्रमण करने की बात उसे सूझती ही न थी। ऐडम्स वन यात्रा पर जाते तो अपने काफिले के साथ एक पतली जंजीर मे बाँधकर उसे भी ले जाते। गधे, खच्चर, कुत्ते, आदमी और यह पालतू शेर जब बिना किसी भेदभाव के आपस मे नोक-झोंक करते हुए रास्ता काटते तो किसी को भी ऐसा नही लगता था कि कोई खतरा साथ चल रहा है।

धीरे-धीरे एल्सा प्रौढ़ हो गई। उसके भीतर प्रौढ़ता की उमंगे उभरीं और साथी की आवश्यकता अनुभव करती हुई व्याकुलता प्रदर्शित करने लगी। जार्ज ने उसकी मनःस्थिति को समझा और जंगल के उस क्षेत्र मे जा छोड़ा जिधर सिंह रहा करते थे। यौवन गन्ध के आकर्षण ने उसे सिंह साथी मिला दिया और वह फिर उधर ही रहने लगी।

एल्सा इन उलझन भरे दिनो मे भी अपनी मौसी को भूल नही पाती थी और उनसे मिलने जा पहुँचती थी पर साथ मे क्रूर प्रकृति का साथी रहने के कारण उसे वहाँ से जल्दी ही भगा दिया जाता या भागना पड़ता।

सिंह जाति की सुहागराते भी विचित्र होती है। वे लगातार चार पाँच दिन तक हर दिन कई-कई बार जोड़ा मिलाते रहते है। तब कहीं वे गर्भ स्थापना मे सफल होते है। इन दिनो सिंह दम्पत्ति अपने ही गोरखधन्धे मे उलझे रहते है और खाने-पीने तक की सुध भूल जाते है। एल्सा की लगातार गैर हाजरियो से जाय एडमसन को बहुत चिन्ता हुई पर जब उसे सिंह प्रणय प्रक्रिया की जानकारी मिली तो चुप हो गई। गर्भ धारण करने के उपरान्त फिर नया क्रम चलने लगा। एल्सा को पतिव्रत धर्म के अनुसार अधिक समय तो सुसराल मे ही रहना पड़ता था, पर नैहर को सर्वथा छोड़ बैठने को भी तैयार न हुई। पति ने आखिर समझौता कर लिया और सुसराल तक अपनी नव वधू को हर रोज पहुँचाने और वापिस लाने के लिए सहमत हो गया।

एल्सा अपने पति के साथ रहती तो भी उसे अपने नैहर की याद भूलती न थी। वह सायंकाल एक फेरी लगाने जरूर आती। उसका पति भी साथ आता पर वह दूर ही बैठा रहता और यह इन्तजार करता रहता कि उसकी पत्नी कब वापिस आये और कब घर चले। बहुत

दिन बाद वह भी बँगले को पहचान गया तो सुसराल मे स्वादिष्ट भोजन पाने के लालच मे कुछ आगे तक खिसक आता और स्वागत-सत्कार का लाभ लेकर फिर पीछे खिसक जाता। ऐडमसन परिवार के साथ वह घनिष्ठता तो न जोड़ सका पर इतना जरूर समझ गया था कि वह हमारे शुभ-चिन्तको का घर है। इसलिए उसने न तो कभी उस क्षेत्र मे स्वयं कुछ उपद्रव किया और न किसी अन्य सजातीय को इधर पैर रखने दिया। वह घर-जवाँई तो न बन सका पर वफादार सुरक्षा अधिकारी तो आजीवन ही बना रहा।

गृहस्थ बन जाने के बाद एल्सा यो वनवासी हो गई थी और उसका निश्चित निवास पतिगृह बन गया था तो भी वह अपने मौसी-मौसा को भूली नही और न वे लोग ही उसे भुला सके। जार्ज और जाय एडमसन जब कभी वन-विहार को जाते, एल्सा से भेट करने का उनका प्रोग्राम अवश्य रहता। उन्हे पता रहता था कि वह किधर कहाँ होनी चाहिए। अस्तु, वे पुकार लगाते और देखते कि एल्सा किधर से भी दौड़ी चली आ रही है और उनसे लिपटकर अपनी पूर्व स्थिति पर आँसू बहा रही है। यो उसे गृहस्थ बनना तो पड़ा ही पर उसे यह पड़ा बहुत महँगा। माता-पिता के प्यार से उसे पति का प्यार घटिया भी लगा और महँगा भी पड़ा।

कुछ समय बाद एल्सा ने तीन बच्चे दिये। दो नर एक मादा। सिंहो की प्रकृति है कि वे अपने बच्चो के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते है और उनकी सुरक्षा के सन्दर्भ में किसी का भी विश्वास नही करते। यह प्रकृति एल्सा की भी रही। वह अपने बच्चो को छिपाकर झाड़ी मे रख आती और तब नैहर आती। जार्ज को उसकी चालाकी मालूम थी। वे एक दिन बच्चो की झाड़ी के समीप जा पहुँचे। इस पर एल्सा ने नाराजी व्यक्त की और दूसरे दिन दूर की झाड़ी मे उन्हे छिपा आई। लेकिन यह छिपाव-दुराव अधिक दिनो तक न रहा। बच्चे थोड़े बड़े हो गये तो वह उन्हे ननिहाल दिखाने ले गई। नानी ने उनका भी स्वागत-सत्कार किया, फिर तो वे भी अभ्यस्त हो गये और माँ को धकेलकर नानी के यहाँ जल्दी-जल्दी चलने के लिए विवश करने लगे। वहाँ उन्हे अधिक सुविधाएँ, अधिक आव-भगत और अधिक खेलने-कूदने का अवसर जो मिलता था।

बच्चे भी धीरे-धीरे ननिहाल मे इतने घुल-मिल गये कि नानी का कुर्ता पकड़कर लटकने मे उन्हे आनन्द आने लगा। कुछ समय तक तो एल्सा का यह प्रयत्न रहा कि बच्चो के साथ कोई अधिक घुलने-मिलने न पाये। इसमे उसे सुरक्षा मे खतरा पड़ने का डर रहता होगा। पीछे जब उसने समझ लिया कि उसका भय आशका मात्र ही था तो उसने पूरी छूट दे दी और कभी-कभी बच्चो को वहीं छोड़कर घूमने चली जाने लगी।

नानी ने अपने धेवती-धेवतो का चावपूर्वक नामकरण किया। दो लड़के थे। उनके नाम रखे गये जेस्फा और गोपा। लड़की का नाम रखा गया—छोटी एल्सा। माँ बड़ी एल्सा और बेटी छोटी ऐल्सा।

यह लाड़-दुलार विधाता से अधिक दिन न देखा गया। प्रसूति के छः महीने बाद ऐल्सा बीमार पड़ी और मर गई। धेवती-धेवतों के लालन-पालन का भार नानी-नाना के कन्धो पर आया। बाप तो उन्हे अनाथ छोड़कर एक तरफ खिसक गया। पर नानी के मन पर ऐल्सा के प्रति जो स्नेह-वात्सल्य था, उसने अपनी धारा कुंठित नहीं होने दी और यह तीनो बच्चे भी उन्ही के आश्रय मे भली प्रकार पाले गये। पीछे जब वे प्रौढ़ हो गये तो नेशनल पार्क मे सर्वथा स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए उन्हें उन्मुक्त छोड़ दिया गया।

एडमसन द्वारा उन्मुक्त वातावरण मे सिंह पाले जाने और उनकी क्रूरता निरस्त करके सौम्य स्वभाव उत्पन्न करने की कुशलता को सर्वत्र सराहा गया और उस अद्भुत कर्तृत्त्व को देखने के लिए संसार भर के लोग उनके पास आये। पत्र प्रतिनिधियो ने इस सन्दर्भ मे उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछे। उनका जो उत्तर वे देते उसका संक्षिप्त सारांश यही होता कि प्रेम और सौजन्य की शक्ति सर्वोपरि है। यदि हमारी सद्भावना एवं आत्मीयता बनावटी न हो तो उसका प्रभाव दूसरो पर ही अवश्य पड़ेगा, फिर भले ही उसकी प्रकृति कितनी ही क्रूरतायुक्त क्यो न रही हो। वे इस बात पर बहुत जोर देती थी कि यदि भटके हुए दुराग्रही और अपराधी प्रकृति के मनुष्यों को स्नेह-सौजन्य भरे वातावरण मे रखा जा सके तो उन्हे सज्जन और सम्भ्रान्त बनाया जा सकना न तो अशक्य ही होगा और न कठिन ही प्रतीत होगा।

क्रूरता को सौजन्य जीत सकता है

आक्रमण उतना हानिकारक नही, जितना उसका आतंक। हिंसा उतनी विघातक नही होती, जितनी भयग्रस्तता। यदि साहस का सम्बल साथ लेकर चला जाय तो वह जटिल स्थिति भी सामान्य जैसी बन जाती है, जिसकी कि चर्चा सुनते ही डरपोक मनुष्यो के रोगटे खड़े हो जाते है। आदिवासी, वनवासी घने जंगलो मे एक-एक झोपड़ी अलग-अलग बनाकर रहते है। उन जंगलो में हिंस्र व्याघ्र भरे पड़े होते है। किन्तु इन वनवासियो पर उनका कोई आतंक नही होता। रात को गहरी नींद सोते है। दिन मे आहार की तलाश के लिए उन्ही झाड़ियो को ढूँढ़ते रहते है, जिनमें कि इन हिंस्र पशुओ के घर होते है। निर्भीकता का ही परिणाम है कि शेरो से आदिवासी नहीं डरते वरन् आदिवासियो से उन्हे डरना पड़ता है। हर वनवासी अपने जीवन मे ढेरो हिंस्र पशुओ को धराशायी करता है, जबकि उनके परिवार मे मुद्दतो बाद ऐसी घटनाएँ घटित होती है, जिनमे किसी सिंह, व्याघ्र ने आदिवासी की जान ली हो।

अफ्रीका के रायल नेशनल पार्क, सारगेटो नेशनल पार्क, लकमनी आराने पार्क, क्वीन एलिजाबेथ नेशनल पार्क जैसे सुविस्तृत वन विहार बनाये गये है। जिन्हे देखने के लिए दुनियाँ भर के लोग जाते है। इनमे वन्य पशु स्वच्छन्दता और सुविधापूर्वक घूमते और अपना प्राकृतिक जीवन जीते है। इनमे सिंहो की सख्या भी काफी है। वे स्वच्छन्द घूमते है, साथ ही जहाँ वे रहते है, वही जेवरा, जिराफ, हिरन आदि भी निर्भयतापूर्वक विचरण करते है। वे सिंहो को देखकर सतर्क तो हो जाते है पर न तो भागते है और न चरना छोड़ते है। मिल-जुलकर आक्रमण का मुकाबला करते है और कोई चपेट मे आ भी जाय तो मौत और जिन्दगी के मिले-जुले क्रम के बीच निर्भयतापूर्वक रहते हुए उन्हे कोई सकोच नही होता।

अफ्रीकी मसार्क जाति के वनवासी प्राय: उन्ही क्षेत्रो मे रहते है, जिनमे सिंहो का बाहुल्य है। न केवल वे स्वय रहते है वरन् अपने पालतू पशुओ को भी रखते है। भूखे और भरेपेट सिंहो की स्थिति को वे भली प्रकार जानते है और तदनुसार अपनी सुरक्षात्मक व्यवस्था को भी ठीक कर लेते है। मौत और जिन्दगी ने जिस तरह आपस मे समझौता किया हुआ है, उसी तरह वनवासी और हिंस्र पशु भी अपने ढर्रे से अपना समय गुजारते है। भय और आतंक को वे एक ताक पर उठाकर रख देते है।

सरकस के साहसी प्रशिक्षक, किस प्रकार जानवरो को सधाते और उनसे तरह-तरह के खेल कराते है, यह सभी को विदित है। हिंस्र पशुओ को पालने और उन्हे सामान्य पशुओ की तरह रहने के लिए अभ्यस्त करने मे अधिक सफलता मिलती जा रही है, ऐसे एक नही अनेक प्रयोग सामने आते रहते है, जिनसे सिद्ध होता है कि हिंसात्मक प्रकृति को बदलकर उसे सौम्य स्तर का बनाया जा सकता है।

भेड़िये प्रकृतित: हिंस्र जन्तुओ की बिरादरी मे अधिक खूँखार माने जाते है। 'छोटा सो खोटा' वाली उक्ति भेड़ियो पर अधिक सही रूप से लागू होती है। उसकी धूर्तता ही नही, दुष्टता भी अपने ढंग की अनोखी होती है। इसलिए चिड़ियाघरो के पशु-पालको से लेकर जगल मे रहने वाले किसानो से लेकर शिकारियो तक को इनके बारे मे बड़ी सतर्कता बरतनी पड़ती है। वे कभी भी कुछ भी कर सकते है। हिंस्र पशु विशेषज्ञ **विलियम वायरन मोवरी** ने लिखा है—भेड़िया पालने की बात किसी को नही सोचनी चाहिए। बचपन मे भेड़िया पालतू रह सकता है, पर बड़ा होने पर वह दुष्ट आक्रमणकारी बनकर अपने पालनकर्त्ता की ही खबर ले सकता है।

जेरम हैलपुथ को कुत्ते पालने का शौक था। उनने अलास्किन जाति के शिकारी कुत्ते पाल रखे थे। उनकी पत्नी हेलेन ही नही—बच्चे भी इन्हे पालने मे रुचि लेते थे।

हैलपुथ का मस्तिष्क बहुत समय यह सोचने मे लगा रहा कि प्यार की जंजीर में जब इन खूँखार कुत्तो को बाँधा जा सकता है, तो लगभग उसी जाति से मिलते-जुलते भेड़िये क्यो नहीं पल सकते ? इस प्रश्न का समाधान उनने भेड़िया पालकर ही प्राप्त करने का निश्चय किया।

भेड़िये का बच्चा प्राप्त करने के लिए उन्होने टकोसा चिड़ियाघर से सम्पर्क स्थापित किया और वहाँ के अधिकारियो से मिलकर यह सफलता प्राप्त कर ली कि अगले दिनो जब मादा प्रसव करेगी, तब एक बच्चा उन्हे मिल जायगा। नियत समय पर एक बच्चा उन्हें मिल भी गया। नाम रखा गया 'कुनू'।

यह नवजात शिशु मात्र छ: इन्च की थी। पालना एक समस्या थी, फिर भी उसे जीवित रखने मे सफलता प्राप्त कर ली गई। हैलपुथ की पत्नी और उनकी चारो बच्चियो ने इस नये अतिथि के पालन मे उत्साहपूर्वक सहायता की और वह पल भी गया। 'कुनू' नर नही मादा थी।

कुत्तो के साथ उसकी दोस्ती हो गई। खासतौर से डेरियन कुतिया के साथ तो उसकी इतनी घनिष्टता हो गई मानो वे दोनो माँ-बेटी ही है। यह जन्म के समय छ. इन्च की थी पर एक वर्ष मे बढ़कर ५ फुट लम्बी और ७५ पौड भारी हो गई। एक वक्त मे वह प्राय. डेढ पौड खाना खाती।

बड़े होने पर उसमे भेड़ियो की दुष्टता के कुछ लक्षण उभरे तो पर पालक ने पूरी सतर्कता से काम लिया और प्रकृति प्रदत्त क्रूरता भुलाने एव अन्य कुत्तो की तरह के लिए लगातार शिक्षा दी। उसे वैसा ही वातावरण दिया जैसा कि अन्य पालतू कुत्तो को उपलब्ध था। फलत: वह उन्ही के साथ घुल गई और कुत्तो की बिरादरी मे पूरी तरह सम्मिलित होकर उन्ही के आचरण करने लगी।

दुष्टता की किं-वदन्तियो को 'कुनू' ने झुठला दिया और एक नये तथ्य का प्रतिपादन किया कि भेड़िये दूसरे हिंस्र जानवरो की तुलना मे अधिक स्नेहिल होते है। उसे प्यार करने की प्रकृति भी जन्म-जात रूप से ही मिली थी। भेड़िये एक-दूसरे के मुँह मे मुँह डालकर प्यार करते है। कुनू का वास्ता मनुष्यो से पड़ता था सो वह उनकी बांहो तथा पैरो को मुँह मे रखकर चूमने जैसा आचरण करती। घर की बच्चियाँ इसकी प्रतीक्षा करती रहती थी कि कुनू उसे कब और कितनी देर चूमेगी, उन्हे इसमे बड़ा आनन्द आता। कभी-कभी कुनू की चूमने की आकाक्षा इतनी तीव्र होती कि घर आने वाले आगन्तुको के साथ भी वह उसी खेल को खेलती। आगन्तुक पहले तो घबराता पर पीछे जब प्रतीत होता कि खूँखार भेड़िये भी इतने स्नेहिल हो सकते है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहता।

अहमदाबाद के प्राणी संग्रहालय की अफसर ज्योतिबेन मेहता ने व्यक्तिगत रूप से आक्रमणकारी पशुओं में दिलचस्पी ली है और उन्हें अधिक मृदुल, वफादार एवं सहयोगी बनाने में सफलता प्राप्त की है। उनका कहना है—आत्म-विश्वास, निर्भयता, प्रेम एवं सहानुभूति की समुचित मात्रा यदि अपने पास हो तो हिंस्र जन्तुओं को आसानी से मृदुल एवं वफादार बनाया जा सकता है।

ज्योतिबेन ने एक बाघ का बच्चा 'राजू' बड़े लाड़-प्यार से पाला, वह उनसे बहुत घुलमिल गया। जंजीर में पकड़कर वे उसे खुले हुए सार्वजनिक पार्क में घुमाने भी ले जाती थीं। दो वर्ष का होने तक उसका व्यवहार बहुत ही सज्जनतापूर्ण रहा। वे उसे गोदी में उठाकर अक्सर खिलाती थी। एक बार भारतीय चित्र वृत्त विभाग के द्वारा डाक्यूमेन्टरी फिल्म ली जानी थी, जिसमें वे बाघ को गोदी में लेकर चित्र खिंचवाती। यह शूटिंग खुले में हो रही थी। दर्शकों की भीड़ बहुत थी। अचानक बाघ भड़क उठा और उनकी जाँघ में ही दाँत गढ़ा दिया। खून से लथपथ होते हुए भी उन्होंने राजू को गोद में लेकर तस्वीर तो खिंचवाई पर वे इस तथ्य को और भी अधिक गहराई से समझने लगी कि हिंस्र पशुओं की स्नेहशीलता को ही नहीं, उनकी तुनकमिजाजी को भी ध्यान में रखा जाय।

पशुओं में बुद्धिमत्ता की एक मात्रा मानी जाती है, इसलिए यह सोचा जा सकता है कि पालतू पशुओं की तरह हिंस्र पशुओं को भी अधिक परिश्रम करके सधाया या सुधारा जा सकता है। पर सर्प जैसे कीड़ा को क्या कहा जाय, जिसमें समझदारी का नाम भी नहीं होता। दुनियाँ में ऐसे लोग भी है, जिन्होंने सर्पों के न केवल विष दन्त चुभोने की क्रूर प्रकृति को बदला है, वरन् उन्हें कलात्मक नृत्य सिखाकर दर्शकों को मुग्ध करने जैसे कठिन कार्य के लिए प्रशिक्षित किया है।

इंग्लैण्ड की सर्प सुन्दरी सान्या के सर्प नृत्यों की इन दिनों यूरोप और अमेरिका में धूम है और जहाँ भी उसके प्रदर्शन होते है, दर्शकों को जगह मिलना कठिन हो जाता है।

यह महिला आरम्भ में साधारण नर्तकी थी। पीछे उसने सर्पों को अपना सहचर बनाने का निश्चय किया। अजगर, कोबरा तथा दूसरी विषधर जातियों के सर्प पाले। उनकी प्रकृति समझी, दोस्ती बढ़ाई और स्थिति यहाँ तक उत्पन्न कर ली कि वे उसके साथ-साथ रंगमंच पर घण्टों नृत्य कर सके। जब यह नाचती है तो वे पालतू विषधर मात्र उपकरण नहीं बन रहते वरन् नृत्य की ताल और मुद्रा का ध्यान रखते हुए स्वयं भी नृत्य निरत अभिनेता होने का परिचय देते है। दर्शक यह देखकर मुग्ध हो जाते है कि नृत्य में सर्प भी किस प्रकार सहभागीदारी का आश्चर्यजनक एवं नपा-तुला पार्ट अदा करते है।

सर्प सुन्दरी सान्या ने जहाँ अपने सर्प नृत्यों से विपुल सम्पत्ति एवं ख्याति अर्जित की है, वहाँ इस तथ्य का भी प्रतिपादन किया है कि क्रोधी और दुष्ट समझा जाने वाला यह विषधर स्नेह-सौजन्य की कोमल रज्जु में बँधने के लिए किस तरह स्वेच्छापूर्वक तैयार हो जाता है।

हमें देर-सबेर में इस निष्कर्ष पर पहुँचना ही होगा कि अनगढ़ क्रूरता को सदाशयता पूर्ण सत्प्रयत्नों से बदला और सुधारा जा सकता है। इसमें कितना श्रम और समय लगेगा, कितने साहस और धैर्य का परिचय देना पड़ेगा; यह बात दूसरी है।

वे साहसी बालक-जिनकी सर्वत्र प्रशंसा है

बालक-बालिकाओं में प्रारम्भ से ही यदि भयभीत होने, घबड़ा जाने की आदत न डाल दी जाये तो वे भी छोटी आयु में भी साहसिक कार्य कर सकते है। अपने अज्ञान के कारण अभिभावक बच्चों को भयभीत होना सिखा देते है। जो कार्य समझा-बुझाकर प्रेम से कराना चाहिए उसे भय दिखाकर कराते है। फलस्वरूप बच्चों में साहस का विकास नहीं होने पाता, जिसके कारण सामान्य घटनायें दुःखदाई दुर्घटनायें बन जाती है। बहुधा ऐसे अवसर पर 'बिचारा बच्चा ही तो था क्या करता' कहकर बात टाल दी जाती है। किन्तु प्रस्तुत उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि साहस होने पर बच्चे भी आत्म-रक्षार्थ बहुत कुछ कर सकते है।

पश्चिम बंगाल जिला बर्दवान की घटना है। एक सात वर्षीय बालिका शम्पा मुकर्जी घर से ट्यूशन पढ़ने निकली। मई माह की तपती दोपहरी में मार्ग पर आवागमन कम होना स्वाभाविक है। एक मोड़ पर सुनसान देखकर एक बदमाश बच्ची को ले भागा। बेचारी अबोध बालिका यह न समझ सकी कि मामला क्या है ? प्रश्न भरी निगाह से उसकी ओर भौचक्की-सी देखती रह गई। आश्चर्य में चिल्ला भी न सकी। तब तक अपहरणकर्त्ता उसे एक मकान में ले गया तथा कमरे में बन्द कर लिया। कु. शम्पा के कानों में सोने के कुण्डल थे। वह व्यक्ति उन्हें उतारने लगा। अब बच्ची की समझ में बात आई। उसने विचार किया तथा शान्त खड़ी रही। बदमाश बेफ़िक्र होकर कुण्डल खींचने लगा। अचानक बच्ची ने उसके हाथ में जोर से काट खाया। इस अप्रत्याशित घटना के लिये वह तैयार न था अतः पीड़ा से छटपटा उठा। जब तक सतर्क हो, बालिका फुर्ती से दरवाजा खोलकर भाग निकली।

यदि "हौआ कान काट लेता है" का भय बच्ची के मन में होता तो उसकी सारी सूझ-बूझ जवाब दे जाती। घर के लोग बदमाशों तथा पुलिस अव्यवस्था को गालियाँ देकर सन्तोष करके रह जाते। किन्तु बच्ची

साहसपूर्वक भागती हुई घर पहुँची। परिवार तथा पड़ौस के व्यक्ति घटना सुनकर उसके साथ हो लिये। बालिका बिना डरे पुनः सबको उस घर में ले गई। उस व्यक्ति को भी पहचान लिया। प्रमाणस्वरूप उनके हाथ में दाँतों के निशान तो थे ही। व्यक्ति को पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया। बालिका अपने साहस से स्वयं भी बची तथा एक अपराधी को भी पकड़वा दिया।

एक और घटना ग्यारह वर्षीय बालक धर्मसिंह द्वारा पागल सियार का निहत्थे मुकाबला करने की है। चूहे या बिल्ली के झपटने के भय से चुप होने का अभ्यस्त बालक होता तो क्या वह सियार को देखकर अपने होश भी ठिकाने रख पाता ?

घटना जुलाई ६७ की है। पाठशाला के मध्यावकाश में तीन बालक एक तरफ मैदान में खेल रहे थे। अचानक एक पागल स्यार उधर आ निकला। सियार पागल होने पर कुत्ते की ही तरह आक्रामक हो जाता है। उसने बच्चों पर हमला बोल दिया। खेल में मग्न बालक सम्हलें तब तक उसने तीनों को बुरी तरह काट खाया। वीर धर्मसिंह ने मानसिक सन्तुलन बनाये रखा। मौका पाते ही झपटकर सियार का गला हाथ का शिकंजा फँसाकर पकड़ लिया। खूँखार सियार पंजे मारता रहा, छूटने के लिए खींचातानी करता रहा, पर धर्मसिंह की पकड़ ढीली न पड़ी। स्यार का जबड़ा खींचातान में फट गया। तब तक और दो विद्यार्थी पास के खेत में काम कर रहे किसानों को बुला लाये। किसान की लाठी के भरपूर वार में सियार का ढेर हो गया। धर्मसिंह की बहादुरी पर गाँव के सभी व्यक्तियों ने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। [illegible] तथा उनके अभिभावकों ने धर्मसिंह के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। उसी के साहस से दुर्घटना टल गई अन्यथा पागल सियार कम घातक नहीं होता।

आत्मरक्षा ही नहीं, [illegible] अपने अभिभावकों की रक्षा भी साहसी बच्चे कर सकते हैं। बच्चों में [illegible] का गुण स्वाभाविक रूप से होता है। साहस के अभाव में बैठते [illegible] कुछ करने की [illegible] नहीं रहते। उपर्युक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चों में [illegible] की कमी नहीं होती। अपने [illegible] पर होशियार भी [illegible] कर सकते हैं।

बालक ने हिम्मत न हारी। गोता लगाकर पानी के अन्दर से छात्रा को खींच लाया। किनारे पर लाते-लाते बालक थक गया था तथा छात्रा बेहोश हो गई थी। छात्रा के पेट से पानी निकालकर एवं कृत्रिम श्वाँस देकर बचा लिया गया।

उस छात्रा का नाम कु. शुक्लादास तथा बचाने वाले बालक का नाम ध्रुव रुद्र है। ध्रुव रुद्र एक एडवोकेट का पुत्र है। सम्पन्न घरों के बच्चों में बहुधा लापरवाही तथा खतरों से बचकर रहने का स्वभाव होता है। किन्तु संस्कारी बालक ध्रुव रुद्र ने अपने कृत्य से छात्रा की प्राण रक्षा करके स्वयं भी प्रशंसा पाई तथा परिवार को भी गौरवान्वित किया।

इसी प्रकार की प्रशंसा कुमारी स्वर्णलता महती ने भी पाई। २४ मार्च, १९५७ को जन्मी यह बालिका ११ वर्ष की अल्पायु में ही अपने साहस के कारण प्रसिद्धि पा गई। १० फरवरी, ६८ को पुरी (उड़ीसा) की मधुप नहर के किनारे बच्चे स्नान कर रहे थे। अचानक तीन वर्ष का एक बच्चा नहर में गिर पड़ा। कई बच्चे तैरना जानते थे, किन्तु नहर की तेज धार में कूदकर उस बालक को बचाने की हिम्मत किसी की नहीं पड़ रही थी। तभी स्वर्णलता ने छलाँग लगा दी। बच्चा तब तक किनारे से लगभग २० फुट दूर जा चुका था। बालिका को नहर की तेज धार में उसे बचाने के लिए भरपूर संघर्ष करना पड़ा। किन्तु अन्त में वह उसे किनारे तक ले आने में सफल हो गई और बच्चे की जान बच गई।

कृष्णा [illegible] के कृष्णदनु ने भी अपनी सूझ-बूझ तथा धैर्य से अपने एक साथी की जान बचा ली। घटना २६ दिसम्बर सन् १९६७ की है। रात्रि ८ बजे के लगभग कुछ बालक शौचादि के लिये निकले। पास ही एक गहरा कुआँ था। मनोरंजन की दृष्टि से ४-५ बच्चे कुएँ की मुंडेर पर बैठकर गपशप का आनन्द लेने लगे। एक बालक का सन्तुलन बिगड़ा तथा वह कुएँ में जा गिरा। लड़के घबड़ाकर [illegible] पर ही और दौड़े तथा शोर मचाने लगे। [illegible]

[illegible] बालक कुएँ से दूर [illegible] भागे हुए नहीं [illegible]

आत्म-बलिदान करके भी अपने ही विद्यालय (केरल के राजकीय हाईस्कूल) के छात्र की प्राणरक्षा की।

उक्त बालक नदी मे नहाते समय फिसल पड़ा। तेज धार में बहने लगा। अपने बचाव के लिये उसके सारे प्रयास विफल हो गये। एम. के. कट्टापन ने उसे संघर्ष करते देख लिया। उसने परिस्थिति की गम्भीरता समझ ली तथा तुरन्त नदी मे कूद पड़ा। डूबते हुए बालक को पकड़कर वह किनारे की ओर आने लगा। तेज धार का काटना, वह भी बालक को सम्हाले हुए काफी कठिन कार्य था। कट्टापन की दम फूल गई। किन्तु वह साहस करके किनारे की ओर बढ़ रहा था। किनारा अधिक दूर नही रह गया था तभी एक भँवर में वह फँस गया। बरसाती नदी की भयंकर भँवर—थकी हुई अवस्था मे उससे निकलना असम्भव दिखने लगा। दोनो बालको के प्राण संकट मे थे। किन्तु वीर कट्टापन ने अपने कर्तव्य को उस अवस्था मे भी पूरा किया। शरीर की पूरी शक्ति लगाकर उसने उस ७ वर्षीय बालक को जोर से किनारे की ओर ठेल दिया। वह बालक तो किनारे लग गया किन्तु कट्टापन न बच सका। भरपूर प्रयास करने पर भी उसके थके हाथ भँवर को न चीर सके और वह वीर बालक नदी मे ही समाधिस्थ हो गया।

साहसी बच्चे अपने पौरुष तथा मानसिक सन्तुलन से एक व्यक्ति नहीं वरन् समुदाय की रक्षा मे भी सहयोग दे सकते है। प्रस्तुत दो घटनाये ऐसे ही वीर बालको की यश गाथाएँ है।

पहली घटना बंगलौर के कुमार पार्क क्षेत्र की है। दि. २५ सितम्बर, १९६८ की रात्रि को एन. नागराज नामक किशोर ने अपने साहस से अपने भाई-बहनो की प्राणरक्षा कर ली। परिवार एक भयंकर दुर्घटना का शिकार होने से बच गया।

रात्रि को वर्षा पूरे जोर पर थी—रह-रहकर बिजली कड़क रही थी। नागराज अपने दो भाई-बहनो के साथ एक कमरे मे सो रहा था तथा उसकी माँ सबसे छोटे बच्चे को लेकर दूसरे कमरे मे सो रही थी। तेज आवाज से वह जाग गया। उसने बिजली जलाने का प्रयास किया किन्तु अँधेरे मे जल्दी मे स्विच न मिला। नागराज ने अनुभव किया कि मकान मे पानी आ रहा है तथा तेजी से बढ़ रहा है। देरी करने का अर्थ था, भयंकर संकट। उसने तुरन्त अपने भाई-बहिनो को जगाया तथा खिड़की के रास्ते बाहर आ गया।

तब तक उसकी माँ भी जाग गई। कमरे मे ५ फुट पानी आ चुका था। अन्धेरे मे माँ अपनी तथा बच्चो की रक्षार्थ चिल्ला रही थी। नागराज ने चिल्लाकर अपनी कुशलता की सूचना दी तथा माँ को धैर्य बँधाया। तब तक पड़ौसी जाग गये तथा दरवाजा तोड़कर माँ को निकाल लिया गया। तभी नागराज ने देखा कि सबसे छोटा भाई वहाँ नही है। वह माँ के कमरे मे ही पानी मे डूब गया था। माँ चीखकर बेहोश हो गई। पर नागराज झपटकर अन्दर गया तथा पानी मे से खोजकर भाई को निकाल लाया। थोड़ी देर और हो जाती तो बच्चा दम तोड़ देता। सौभाग्य से पास ही एक डाक्टर रहते थे जिनके प्रयास से माँ-बेटे की जान बचा ली गई। यदि बहादुर नागराज हिम्मत से काम न लेता तो दुर्घटना मे कोई कमी न रह गई थी।

दूसरी घटना पश्चिम बंगाल की है। वहाँ नित्यानन्द मण्डल नामक एक बालक ने ग्रामीणो की डाकुओ से मुठभेड़ मे सराहनीय साहस का परिचय दिया। १६ जुलाई, १९५३ मे जन्मे इस किशोर ने अपने वीरतापूर्वक कार्य से गाँव वालो को चकित कर दिया।

एक रात गाँव मे डाकुओ ने हमला किया। गाँव वाले सम्हले तब तक वह लूट-पाट करके भाग निकले। गाँव वालो को भयभीत करने के लिये वे गोलियाँ दागते जा रहे थे। किन्तु उन्हे पता नही था कि उनकी गोलियो से अप्रभावित एक वीर बालक उनका पीछा कर रहा था। नित्यानन्द दबे पाँव तेजी से डाकुओ का पीछा करता गया, उसके हाथ मे अस्त्र के नाम एक कुल्हाड़ी थी। डाकू लूटकर सकुशल निकल भागे, यह उसे सहन नही हो रहा था। प्रयास करके वह डाकुओ के निकट पहुँचने मे सफल हुआ। लपककर उसने भरपूर कुल्हाड़ी का वार एक डाकू के सर पर कर दिया। वह डाकू वही ढेर हो गया। उसका एक साथी और नित्यान्द की कुल्हाड़ी से घायल होकर भाग गया। नित्यानन्द की वीरता से सारे गाँव का उत्साह बढ़ गया तथा डाकुओ को दूर तक खदेड़ दिया गया। भागते हुए डाकू कुछ माल भी छोड़ गये तथा मृत साथी को भी न उठा ले जा सके। उसको पहचानकर गिरोह का अंदाज लगाये जाने मे सुविधा हुई।

उक्त सभी घटनाये इस बात की प्रमाण है कि बालक-बालिकाओ में साहस तथा शौर्य आदि गुण विकसित किये जावे, तो वे गौरवशाली जीवन व्यतीत कर सकते है। देश के भावी नागरिको मे इन वृत्तियो का होना आवश्यक भी है। उक्त थोड़े से बालको की तरह अनेक बच्चो मे भी प्रयासपूर्वक उक्त गुण पर्याप्त मात्रा मे विकसित किया जाना सम्भव है।

साहस और सूझ-बूझ के धनी

साहस और सूझ-बूझ के सहारे साधारण स्थिति के मनुष्य भी कई बार ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य कर दिखाते है, जो उतावले और डरपोक प्रकृति के मनुष्य समर्थ एवं साधन-सम्पन्न होने पर भी नही कर पाते।

सैन मैरिना के एक किसान का हल जोतने वाला खच्चर एक जंगली भालू ने मार दिया था। किसान ने उस रीछ को पकड़ लिया और खच्चर का काम करने के लिए उसे बाधित कर लिया था। इस बूढ़े साहसी किसान के साहस को देखने दूर-दूर के लोग आते थे।

जर्मनी के पहलवान मैक ससिस के शरीर का वजन १४० पौण्ड था पर उसने अपने शरीर से ४० पौण्ड अधिक भारी व्यक्ति को एक हाथ से १६ बार सिर तक की ऊँचाई तक उठाकर दिखाया।

अर्काट के नवाब अनवरुद्दीन १७४९ में १०७ वर्ष के थे। तब भी वे अम्बौर की लड़ाई में हाथी पर चढ़कर लड़ने गये। लड़ाई में उनने जौहर तो बहुत दिखाये पर शत्रु की गोलियों के शिकार होकर मोर्चे पर ही ढेर हो गये।

अटलांटिक सागर ह्वेल मछलियों के शिकारियों के लिए प्रसिद्ध है। उनके शिकार के लिए शिकारी जहाज अक्सर उधर जाते रहते हैं। 'स्टार आव दि ईस्ट' नामक एक जहाज शिकारियों के दस्ते के साथ उधर पहुँचा। एक बड़ी ह्वेल के साथ उनका मुकाबला हुआ। भाले फेंके गये जो ह्वेल को लगे। वह क्रुद्ध होकर जहाज पर टूट पड़ी और एक नाविक को उसने देखते-देखते निगल लिया। नाविक तीस घण्टे उसके पेट में रहा, किसी प्रकार उसने अपना चाकू कमर से निकाला और ह्वेल का पेट चीरकर बाहर निकला। अपने ढंग की यह अनोखी घटना थी।

रोम के एक शासक मैक्सी मियेनस ने एक दरबारी को मौत की सजा दी और यह एक फैसला उसी पर छोड़ दिया कि मृत्यु दण्ड को किस तरह कार्यान्वित किया जाय। दरबारी कान्स्टेन्टाइन सम्राट का दामाद था। उसने भरे दरबार में सजा की स्वीकारोक्ति की व स्वेच्छा से प्राणघात की याचना की। उसने दोनों हाथों से गला घोटकर प्राण त्याग दिये।

न्यूजीलैण्ड के ८५ वर्षीय एल्फ्रेड रीड ने एक १७० मील लम्बी यात्रा १० वर्ष में अकेली पूरी की, उसमें उसे ऊँची पहाड़ियों को चढ़कर और नदियों को तैरकर पार करना पड़ा। खाने-सोने का प्रबन्ध उसे परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं ही करना पड़ता था।

माटामाता न्यूजीलैण्ड का १२२ वर्षीय आदिवासी अपने कबीले की प्रथा के अनुसार मुनलान टापू में छोड़ दिया गया। ९ वर्ष तक वह वहाँ के पक्षी मारकर खाता रहा और अन्त में निढाल होकर मर गया।

पौण्ड भारी लोहे का कवच पहनकर नील नदी तैरकर पार करता और वापस आता। यह क्रम उसने १७ वर्ष तक निरन्तर चलाया।

फैल्डर्स का काउण्ट बाडोइन का एक तगड़े भालू से वन विहार के समय मुकाबला हो गया। काउण्ट ने हिम्मत नहीं हारी और भालू का गला घोंट दिया।

फारसी दार्शनिक अब्दुल कासिम ने अपने जीवन में ३० बार मक्का यात्रा पैदल चलकर की। इसमें उसे ८२००० मील पैदल चलना पड़ा। पहली यात्रा तो उसने घुटनों के बल चलकर पूरी की थी।

केनिया नेशनल पार्क का रेन्जर एक दिन घोड़े पर सवार होकर अपने कार्य-क्षेत्र को देखने जा रहा था कि एक बबर शेर ने उस पर आक्रमण करके नीचे पटक लिया। मौत सामने थी। रेन्जर ने अपने छोटे चाकू से नीचे पड़े-पड़े ही शेर का पेट फाड़ डाला और अपनी जान बचाई।

फोर्हिड काउन्टी के मोह सविन्शन का मुकाबला एक जंगली रीछ से अफ्रीका की घनी झाड़ियों के बीच हो गया। निहत्थे होने पर भी उनने हिम्मत नहीं हारी और कुश्ती-लड़ते रहे। कई घाव सहने के उपरान्त भी उनने रीछ को गला घोटकर मार डाला।

कभी-कभी सूझ-बूझ के सहारे ऐसे काम हो जाते हैं कि दंग रह जाना पड़ता है। न्यू गायना में एक बड़ा दलदल हवाई पट्टी के पास था। उससे जहाजों को खतरा रहता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए वहाँ के आदिवासियों का एक उत्सव कराया गया। २४ घण्टे नाच चला। इतने से ही वह भूमि इतनी कड़ी हो गई मानो रोलर से दबाकर सही की गई हो।

बाइजेन्टाइन के सम्राट कान्स्टेन्टाइन ने बलगेरिया पर ८० हजार सैनिकों से हमला बोला। हमला इतना आकस्मिक हुआ कि बलगेरिया के सैनिक शस्त्र तक न सम्भाल सके और भाग खड़े हुए। जीत अनोखी थी, उसमें आक्रमक सेना का एक भी सैनिक न मरा, न घायल हुआ।

ऐसी ... बलिदान और साहस [illegible]

का अवलम्बन एवं साहस का सम्बल पाकर प्रगति-क्रम आगे ही बढ़ता गया है। फलतः उसने दुस्साहस भरे ऐसे काम कर डाले जो कभी असम्भव एवं दुस्तर समझे जाते रहे होगे।

'ऐडवेवर' युक्त खोजो का इतिहास यो ही सम्भव न हुआ। वह अपने साथ साहस एवं बलिदान की रोमांचक दास्तान जोड़े हुए है। पृथ्वी का सर्वाधिक रहस्यमय क्षेत्र उत्तरी ध्रुव कभी उतना ही अविज्ञात था जितना कि आज चेतन जगत एवं उसकी चमत्कारी सामर्थ्य। किन्तु दुस्साहसियो ने अपनी जान को जोखिम मे डालकर भी वहाँ तक पहुँचने एवं खोज निकालने का बीड़ा उठाया। फलतः उत्तरी ध्रुव के विषय मे रहस्यमय जानकारियाँ मिल पायीं। खोजियो को कितने कष्ट झेलने पड़े, कितनो को प्राण गँवाने पड़े, यह खोज के इतिहास को पढ़ने पर पता चलता है।

सर्वप्रथम डेनमार्क निवासी 'वीनस-बेरिंग' ने ध्रुव प्रदेशों की खोज का संकल्प लिया। सन् १७२५ मे उन्होंने रशिया के आर-पार पैदल ही यात्रा की। यह यात्रा ५ हजार मील लम्बी थी। बेरिंग अपने छोटे से जहाज के सहारे प्रशान्त महासागर से साइबेरिया और अलास्का होकर 'जलडमरू' मध्य को पारकर गया। उसके नाम पर ही इस छोटे से द्वीप का नाम जलडमरू मध्य बेरिंग पड़ा है। अलास्का ध्रुव प्रदेश की खोज के फलस्वरूप अमेरिकी खण्ड पर सोने से भरा विशाल प्रदेश रशिया को मिला, जिसे बाद मे अमेरिका ने खरीद लिया। बेरिंग ने अलास्का एवं साइबेरिया मे उत्तर पूर्व किनारे के ध्रुव प्रदेश में अपनी खोज जारी रखी। सन् १७४१ मे तीसरी यात्रा मे उनका जहाज बर्फ की चट्टानो के बीच दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उन्हे दम तोड़ना पड़ा।

ब्रिटेन के एडवर्ड पेरी ने १८१९ मे उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने का निश्चय किया किन्तु बर्फ के पहाड़ो एवं बर्फीली हवाओ के कारण उन्हे अपना निश्चय बदलना पड़ा। ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ समय बाद घोषणा हुई कि जो भी व्यक्ति उत्तर मे ८९ अंश तक पहुँचकर समुद्री मार्ग खोज निकालेगा, उसे पाँच हजार पौण्ड का पारितोषिक दिया जायेगा। उन्नीसवी सदी के पूर्व इन्जन से चलने वाले जहाजों की सुविधा न थी। इसके निर्माण से ब्रिटिश सरकार को आशा बँधी। लकड़ी से बने एवं पालो के सहारे चलने वाले अधिकांश जहाज बर्फ की चट्टानो से युक्त दुर्गम मार्ग एवं तूफानो के थपेड़ो से टकराकर नष्ट हो जाते थे। मोटर इन्जिन के आविष्कार से इस कठिनाई का हल निकला। ब्रिटिश नौसेना के 'एरवस एव टेटर' नामक दो जहाज आधुनिक यन्त्रो से सुसज्जित होकर सर फ्रेंकलिन के नेतृत्व मे उत्तरी ध्रुव की खोज मे चल पड़े। इस जहाज का वजन साढ़े तीन हजार टन था तथा उन सारी सुविधाओ से युक्त था जो यात्रा के लिए आवश्यक थी। १२९ कुशल नाविको से युक्त जहाज की भव्य विदाई ब्रिटिश नागरिको ने की।

फ्रेंकलिन को इसके पूर्व दो उत्तरी-यात्राओ का अनुभव भी प्राप्त था किन्तु नियति को प्रकृति के इस दुर्गम प्रदेश पर छेड़छाड़ करना सम्भवतः स्वीकार नहीं था। विशालकाय जहाज बर्फ के बीच फँस गया। नाविको सहित फ्रेंकलिन को पहला जाड़ा बर्फ की कैद मे ही व्यतीत करना पड़ा। पोषक आहार के अभाव मे अनेको नाविक 'स्कर्वी' नामक रोग से मरने लगे। दूसरे जाड़े मे फ्रेंकलिन को भी अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। तीसरी ठंड आने तक १०६ नाविक जीवित थे किन्तु दोनो जहाजो के बर्फ के बीच दबकर पिस जाने से उनका जीवन भी मौत के झूले मे झूल रहा था। खुराक समाप्त हो गई और मछली आदि के शिकार के लिए कोई साधन न था। फलस्वरूप नाविको के समक्ष अनजान हिमाच्छादित प्रदेश मे यात्रा करने के अतिरिक्त कोई मार्ग अब शेष न रहा। किन्तु रक्त को भी जमा देने वाली ठंड एवं भोजन के अभाव के कारण सभी नाविको ने दम तोड़ दिया। ब्रिटिश सरकार ने इनकी टोह लेने के लिए एक दूसरा दल 'जान राई' के नेतृत्व मे भेजा, जिन्हे तीस नाविको के शव बर्फ मे जमे हुए मिले।

सन् १८७९ मे अमेरिकी कप्तान 'द लांग' तीन नाव, छः बर्फ गाड़ियाँ, २३ कुत्ते एवं ३३ प्रशिक्षित नाविको को लेकर उत्तरी ध्रुव की खोज मे चल पड़े। साइबेरिया से होकर वे गुजर रहे थे, इतने मे बर्फ का तैरता हुआ विशाल पर्वत उनके साथियो को विरुद्ध दिशा मे नाव सहित बहा ले गया। फलतः एक नाव साइबेरिया के दूसरे किनारे पर जा पहुँची। दूसरी नाव रसद सहित डूब गयी। तीसरी मे 'द लांग' अपने कुछ साथियो सहित साइबेरिया की 'लेना' नदी मे जा पहुँचे। सभी हिमदंश रोग से पीड़ित हो गये और अन्ततः मौत की गोद मे जा पहुँचे। दूसरे खोजी दल को 'द लाग' की लिखी १४० दिनो की प्रवास डायरी प्राप्त हुई, जो आगे यात्रा करने वालो के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुई।

असफलता एवं सफलता की कड़ियाँ परस्पर एक-दूसरे से आबद्ध है। असफलताएँ भी अपने साथ कितने ही अनुभव एवं प्रेरणाएँ छिपाये रहती है तथा दूसरो को मार्गदर्शन देने मे सक्षम होती है। ध्रुव प्रदेशो तक पहुँचने मे ये दुस्साहसी असफल तो रहे किन्तु उनका त्याग, बलिदान से भरा पुरुषार्थ निरर्थक नही गया। दूसरे खोजियो के लिए उनके अनुभव वरदान सिद्ध हुए तथा पथ-प्रदर्शन मे समर्थ रहे। कैप्टिन द लांग की प्राप्त डायरी नार्वे के डा. नानसन की सफलता का कारण बनी। डायरी मे वर्णित अनुभवो से डा. नानसन ने निष्कर्ष निकाला कि उत्तरी ध्रुव के आस-पास बर्फ की पट्टी है। अतएव ऐसे जहाजो का निर्माण किया जाना चाहिए जो बर्फ जमने पर उसके बीच पिस जाने के स्थान पर सुरक्षित ऊपर उठकर सतह पर आ जाय। जिस प्रकार साइबेरिया के किनारे से लकड़ी के लट्ठे प्रवाह के साथ बहकर ग्रीनलैण्ड के किनारे पहुँचते है, उसी प्रकार जहाज

भी उत्तरी ध्रुव पर क्यो नहीं पहुँच सकते। इन विचारो से प्रेरित होकर उन्होने 'फ्राम' नामक एक ऐसे जहाज का निर्माण कराया, जो उपरोक्त आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके और जहाज को बर्फ पर फिसलने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया। पौने दो वर्ष बाद जहाज ७८ अंश उत्तर अक्षांश के पास जा पहुँचा। 'नानसन' ने अब उत्तरी ध्रुव के लिए पैदल यात्रा करना अधिक उपयुक्त समझा। अपने साथी 'शालमार जोहानसन' को लेकर वह चल पड़ा। यह बहुत ही दुस्साहस भरा कदम था। मार्च १८९५ मे यह यात्रा आरम्भ हुई तथा ८ अप्रैल को ८६ उत्तर अक्षांश १४ मिनट तक जाकर एक ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित करते हुए समाप्त हुई। अब गरमी के कारण बर्फ पिघलनी आरम्भ हो गई। पानी पर तैरते, बर्फ से होकर वापस लौटा जा सकता था किन्तु देरी हो जाने के कारण बर्फ के अभाव मे लौटना कठिन था। फलस्वरूप जाड़े की राह देखने तक फ्रान्ज जोसेफलैंड नामक टापू पर पत्थर की झोपड़ी मे समय व्यतीत करना पड़ा। आठ माह व्यतीत करने के बाद पुन: वे वापस लौटे। 'नानसन' उत्तरी ध्रुव से मात्र २२४ समुद्री मील दूर रहे। इस प्रकार इनकी यात्रा एवं अनुभवो ने आगे का मार्ग प्रशस्त किया।

ऐतिहासिक सफलताओ मे किसी व्यक्ति विशेष का एकांगी पुरुषार्थ काम नही करता। उनमे अनेको का योगदान होता है। सफलता का श्रेय भले ही किसी को मिले, उपयोग भले ही कोई करे, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नही किया जा सकता है कि वे महान उपलब्धियाँ अनेको के सहयोग से ही सम्भव हो सकी।

पिछले खोजियो का पुरुषार्थ निरर्थक गया, यह नही कहा जा सकता। एक के अनुभव ने दूसरे का मार्गदर्शन किया तथा आगे बढ़ाया। उत्तरी ध्रुव की खोज का अन्तिम श्रेय पाया, अमेरिका के राबर्ट पियरी एवं उनके नीग्रो साथी 'मेथ्यु हेनसन' एव दो एस्किमो ने। पियरी ने लगभग अपना सम्पूर्ण जीवन ही उत्तरी ध्रुव की खोज मे लगा दिया। पिछले खोजियो की असफलताओ का अध्ययन बारीकी से पियरी ने किया। लोहे से विनिर्मित जहाज, छ: साथियो, १७७ एस्किमो एवं १३३ कुत्तो के साथ वह जुलाई १९०८ को दुस्साहसी अभियान पर चल पड़ा। १ अप्रैल, १९०९ को वह उत्तरी ध्रुव से मात्र १३३ मील दूर था। अन्य साथियो को वही छोड़कर वह एक साथी हेनसन तथा चार अनुभवी एस्किमो को लेकर आगे बढ़ा। प्रकृति ने भी इस दुस्साहसी का साथ दिया। मौसम अनुकूल था। ६ अप्रैल, १९०९ को वह प्रात: ध्रुव से मात्र ३ मिनट के अन्तर पर अर्थात् ८९ अक्षांश ५७ मिनट पर जा पहुँचा। उसकी प्रसन्नता की सीमा नही रही। २३ सौ वर्ष पूर्व से ध्रुव प्रदेश की जो खोज आरम्भ हुई थी—उसका अन्तिम श्रेय उसे मिला।

दुस्साहस भरी दो यात्राएँ एवं तदनुरूप सफलताएँ इस तथ्य की ओर इंगित करती हैं कि मानवी साहस एव पुरुषार्थ के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। छोटे-मोटे अवरोधो के समक्ष सिर झुका लेने एवं अपने लक्ष्य को छोड़ बैठने वालो के लिए ये प्रसंग प्रेरणा देते तथा बताते है कि—"परिस्थितियों के समक्ष कभी हार न मानो, लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अपना प्रयास जारी रखो।"

दक्षिणी ध्रुव की खोज का इतिहास उत्तरी ध्रुव की तुलना मे और भी अधिक रोमांचक एवं दुस्साहस से भरा हुआ है। दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचना तो और भी अधिक कठिन था। अठारहवीं सदी के सातवे दशक मे ब्रिटेन का जेम्स कुक दक्षिणी ध्रुव की खोज करते ७० अक्षांश दक्षिण तक जा पहुँचा। यह स्थान लक्ष्य से १५० मील दूर था किन्तु बर्फ के विशालकाय शिखरो के कारण 'जेम्स' आगे नहीं बढ़ सका। बर्फ के तूफानो मे ही उसे दम तोड़ना पड़ा। सन् १९०१ में जर्मन के कमाण्डर राबर्ट स्काट अर्नेस्ट हेनरी शेकलटन नामक एक आयरिश युवक को साथ लेकर दक्षिणी ध्रुव की ओर चला, किन्तु आपसी मतभेद हो जाने के कारण दोनो को दो दलो मे विभक्त होना पड़ा। शेकलटन अपने दस्ते को साथ लिए दक्षिणी ध्रुव की १०० मील दूर तक पहुँच गया। किन्तु ११ हजार ६ सौ फुट ऊपर तथा शून्य से ५६ अंश नीचे भयंकर ठंड के कारण आगे बढ़ना सम्भव न हो सका। इस बीच बचा हुआ भोजन भी समाप्त हो चला था। फलस्वरूप उसने वापस लौटना अधिक उपयुक्त समझा। उसके द्वारा प्राप्त की गई जानकारियो से प्रो. डेविड के नेतृत्व मे एक खोजी दल दक्षिण चुम्बकीय ध्रुव तक जा पहुँचा।

दूसरी ओर शेकलटन के साथ दक्षिणी ध्रुव की खोज पर निकला स्काट अपने अभियान मे लगा रहा। ध्रुव से १५० मील दूरी पर स्काट चार के अतिरिक्त अन्य साथियो को वही छोड़कर आगे बढ़ा। बर्फ गाड़ी खींचने मे अत्याधिक श्रम लगने एव समुचित पोषण के अभाव के कारण बीमार पड़ गये तथा मृत्यु के ग्रास बन गये।

इन्ही दिनो नार्वे का 'आमुंडसन' नामक नाविक जो कभी 'नानसन' के साथ उत्तरी ध्रुव की यात्रा कर चुका था, उसने दक्षिणी ध्रुव के खोज का संकल्प लिया। उसके विगत अनुभव काम आये। अपने दल के साथ वह १४ दिसम्बर, १९११ को दक्षिणी ध्रुव पर पहुँचने मे सफल रहा और 'नार्वे' का झण्डा फहरा दिया। इसके बाद तो वहाँ आना-जाना सुगम हो गया।

इन दुर्गम प्रदेशो की कठिन यात्राएँ जहाँ मानवी साहस एवं पुरुषार्थ की असाधारण महिमा का प्रतिपादन करती है, वही दूसरी ओर इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। जड़ प्रकृति की तुलना मे चेतन सूक्ष्म जगत कहीं अधिक 'एडवेंचरस' रहस्यमय, शक्ति सामर्थ्य से युक्त है। जितना पुरुषार्थ एवं दुस्साहस प्रकृति के 'ऐडवेंचर' को खोजने एव जानने में किया जाता है उतना ही यदि चेतन जगत

के लिए भी किया जा सके तो इतना कुछ जाना एवं प्राप्त किया जा सकता है, जिसे करतलगत कर और कुछ जानने एवं पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

न करिये कबिरा गरब

जनवरी १७४० की बात है तब रूस के सभी विदेशी सेवाकर्मी नागरिकों के लिए प्रतिबन्ध था कि वे बिना रूसी सम्राट और साम्राज्ञी की आज्ञा के विवाह नहीं कर सकते। आज्ञा अनुचित थी पर राजाज्ञा का प्रतिरोध करने का साहस कौन करता ?

माइकेल गैलीजाइन नामक रूसी नागरिक उन दिनों इटली में सर्विस करता था। भावुकता में आकर उसने निषेधाज्ञा का पालन नहीं किया और एक इटैलियन युवती के साथ विवाह कर लिया। यह एक सहज मानवीय स्वभाव था, उस पर अनावश्यक क्रुद्ध होने की आवश्यकता नहीं थी किन्तु महारानी जारिना एन्ना एवानोवना बहुत अधिक क्रुद्ध हो उठी, साधारण से अपराध पर उन्होंने कठोर दण्ड और वह भी भद्दे से भद्दे तरीके से देने का निश्चय किया।

महारानी की आज्ञा से नीवा नदी के किनारे बर्फ का महल बनाया गया। महल के अन्दर की कोई भी वस्तु बर्फ से अतिरिक्त और न तो किसी धातु की थी, न वर्ण की। यहाँ तक कि पलंग, बिस्तर, बिछावन और कम्बल तक बर्फ के बनाये गये। अभी कसर शेष थी, सो महारानी ने राज्य भर के कुरूप, बौने, फूहड, माँस भक्षी लोगों को आमन्त्रित कर मेहमान बनाया। उनमें से जो सबसे भद्दी स्त्री थी, उसे वधू चुना गया और माइकेल गैलीजाइन के साथ उसका विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया। उस समय कर्णकटु बाजे बजे, प्रशिक्षित विदूषकों ने गन्दे भद्दे और गैलीजाइन को नीचा दिखाने वाले गीत गाये। कोई भी प्रयत्न नहीं छोड़ा गया, जिससे गैलीजाइन का अधिक से अधिक अपमान न हुआ हो।

भगवान की सहन शक्ति अपार है। वे कर्म के अनुसार समय पर दण्ड देते है पर अति उन्हें भी पसन्द नहीं। यदि कोई अति करता है तो उसका हाथोंहाथ दण्ड देने में वे कभी पीछे नहीं रहते। महारानी इवानोवना का अहंकार इतने से भी जब सन्तुष्ट न हुआ तो उन्होंने नव-दम्पत्ति को उसी महल में बन्द कर चारो तरफ से दरवाजे बन्द कर दिये और बाहर सशस्त्र पहरा बैठा दिया ताकि गैलीजाइन उसके अन्दर से भागने न पावे। जिस समय उन्हे इस बर्फ के महल में सुहागरात मनाने के लिये बन्द किया गया, उस समय कमरे के बाहर का तापमान शून्य से भी ४० डिग्री सेन्टीग्रेड निम्न था। गर्म कपड़ों में भी बाहर लोग ठिठुरे जा रहे थे। उस समय उनके शरीर पर कपड़े भी साधारण थे ऊपर से बर्फ पर ही उठना बैठना, सोना, ओढ़ना। उस भयंकरता की कल्पना भी करना कठिन है।

गैलीजाइन सन्तोषी था, सरल स्वभाव का था। उसने भगवान् से प्रार्थना की प्रभु ! तू जो करता है अच्छा ही करता है—तेरी इच्छा को स्वीकार करूँ, उससे बढ़कर प्रसन्नता की बात मेरे लिए क्या हो सकती है। उसने उस अत्यन्त कुरूप और भद्दी स्त्री को भी विवाह के बाद परम साध्वी और सौन्दर्यवती युवती माना और मरण-काल जैसे भीषण समय में आत्मीयता और सहृदयता का ही व्यवहार किया। इस स्थिति में वे एक वर्ष तक कैद रहे। भगवान की इच्छा से इस बीच उनके जीवन को कोई संकट उत्पन्न नहीं हुआ जबकि उन्हें पहले ही दिन मृत्यु के मुख में चले जाना चाहिए था। ऐसी विलक्षण घटनायें संसार में न घटती तो संसार में कोई ईश्वरीय अस्तित्व को मानता ही क्यों ?

नौ माह बाद गैलीजाइन दम्पत्ति को दो स्वस्थ और सुन्दर जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए। जिसने भी बच्चों को देखा, प्रभु की महिमा को धन्यवाद दिया। यही अमृत इवानोवना के लिए विष बन गया। उसने बच्चों के जन्म का समाचार सुना था कि अपमान और सन्ताप से उसका हृदय धड़कने लगा और कुकर्म के फलस्वरूप वह तत्काल परलोक सिधार गई।

संकल्प, श्रम और मनोयोग के चमत्कार

उपयुक्त और उच्च स्तर के साधन जुटाने के लिए लोग इन्तजार करते रहते है और महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ करने के लिए यह सोचते रहते है कि जब आवश्यक साधन जुट जायेंगे तब उसे प्रारम्भ करेंगे। समुचित साधन जुटाने की प्रतीक्षा में बैठे रहना, इस सम्भावना का ही आभास देता है कि शायद वह कार्य कभी भी आरम्भ न हो सकेगा।

स्वल्प साधनों से भी प्रबल साहस के सहारे बड़े-बड़े महत्त्वपूर्ण काम किये जा सकते है। इसके अनेकानेक प्रमाण, उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर भरे पड़े है।

उन दिनों हवाई जहाज नहीं चले थे। हाइड्रोजन गैस के गुब्बारे उड़ने लगे थे। उन्हीं में बैठकर लोग आकाश यात्रा का आनन्द लेने लगे थे। फ्रेंच वैज्ञानिक प्रो. चार्ल्स ने ऐसा पहला गुब्बारा सन् १७८३ में उड़ाया था। इसके बाद उसकी क्षमता और आकृति में क्रमश. और सुधार होता गया। इस उपलब्धि से प्रभावित होकर कुछ साहसी लोगों ने यह व्यवस्था की कि इन्हीं गुब्बारों में बैठकर उत्तरी ध्रुव की यात्रा की जाय और वहाँ की समुद्रीय, भूगर्भीय तथा आकाशीय परिस्थितियों के विवरण से सर्व-साधारण को अवगत कराया जाय। आकाश यात्रा के लिए यह गुब्बारे जिनका विकसित रूप 'जैपलीन' था, कामचलाऊ मान लिया गया। बहुत प्रयत्न करके

अमेरिकी सरकार से एक पुरानी-धुरानी पनडुब्बी माँग ली गई। उसका नया नामकरण किया गया 'नौटिलस'। इन साधनो के सहारे ध्रुव प्रदेश की अति कठिन यात्रा पूरी कर सकना, उन दिनो एक प्रकार से असम्भव और जान जोखिम मे डालकर उठाया जाने वाला खतरा ही कहा गया था। तो भी कुछ दुस्साहसी लोगो ने उसकी योजना बना ही डाली और उसे पूरी करके ही रहे।

उस योजना के संचालक थे, जर्मनी के एक डाक्टर इल्सटीन। उनने सारे साधन जुटाये। एक उड़न गुब्बारा जैपलीन—इस कार्य के लिये विशेष रूप से बनाया गया। उसमे कुल ५६ आदमी सवार थे। ४० चलाने वाले और १६ अनुसंधान कार्य के लिए जाने वाले यात्री। गुब्बारा एक छोटे फुटबाल मैदान के बराबर था, ऊँचा एक अच्छे खासे गिरजाघर जितना। उसमे खटोले जैसे लटके होते थे यात्री उन्ही पर बैठते थे, बैठने के कमरे को एक बड़ी गुफा कहा जा सकता था उसकी छत पर गैस के गुब्बारे टँगे होते थे। गैस को बनाने तथा नियंत्रित रखने तथा दिशा देने के लिए उसमे पाँच यत्र लगे थे। रस्सो और छड़ो के सहारे पहले-पहले उसे झटका देकर आकाश मे उड़ाया जाता था, पीछे तो वह अपने आप ही मन्थर गति से उड़ने लगता था।

लेक कान्सटैस से उड़कर वह गुब्बारा जर्मनी, स्वीडन, एस्थोनिया, फिनलेण्ड रूस की सीमाएँ पार करते हुए ध्रुव प्रदेश पर पहुँचा। ल्फोरा अन्तरीप से लेकर सुविस्तृत ध्रुवीय क्षेत्र पर उसने उड़ान भरी और चित्र-विचित्र विवरण देखे तथा उनके फोटो लिये। लगभग एक सप्ताह यह गुब्बारा आसमान मे उड़ा और पनडुब्बी को उससे भी अधिक समय लगाना पड़ा।

जब यात्री लोग वापिस लौटे और उन्होने वहाँ की परिस्थितियो के विचित्र विवरण से जन-साधारण को अवगत कराया, तो सुनने वालों को सहसा विश्वास न हुआ कि इतनी रोमांचकारी परिस्थितियो मे इतने स्वल्प साधनो से इतनी दुस्साहसपूर्ण यात्रा की जा सकती है।

असामान्य को सामान्य और असम्भव को सम्भव बनाने वाले प्रबल पराक्रम का महत्व जिन्होने जाना है उन्हे यह विदित है कि मानवी श्रम, मनोयोग, साहस और संकल्प का समन्वय जहाँ भी हो जाय, वहाँ कठिन से कठिन कार्य भी सरल हो आता है।

चमत्कारों की जननी संतुलित श्रमनिष्ठा

उच्चस्तरीय दायित्वो को निभाने के लिए जिस प्रतिभा की आवश्यकता है, वह श्रमशीलो मे होती है। श्रम और प्रतिभा इन दोनो को अनुक्रमानुपाती कहा जाय तो उचित ही होगा। एक का जितना विकास होता है दूसरे का भी उतना ही अभिवर्धन होता जाता है। यही कारण है कि पश्चिमी देशो मे बड़े-बड़े उद्योगपति अपने बच्चों को दायित्व का अनुभव कराने के लिए कारखानो मे मजदूरो की तरह श्रम कराते है। यह उचित है। जो इस विद्या को नही जानता, वह दायित्वो का निर्वाह भी गम्भीरतापूर्वक नहीं कर सकता। इस सत्य के बाद भी व्यावहारिक जीवन मे देखा यह जाता है श्रमशील भी सुयोग्य अथवा उतने योग्य नही होते जितना अपेक्षित है।

कारण पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि क्रिया व चिन्तन दोनो के क्षमतावान होने के लिए जिस सामंजस्य की अपेक्षा है, उसकी उपेक्षा की जाती है। शारीरिक श्रम करने वाले मानसिक पक्ष को भुला बैठते है। इसके फलस्वरूप उन्हे गँवार, मूर्ख जैसे शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। मानसिक श्रम करने वाले गँवार भले न कहे जायँ पर शारीरिक पक्ष की ओर ध्यान न दिये जाने के कारण उन्हे दुर्बल, रोगी जैसी स्थिति से गुजरना पड़ता है। दोनो ही स्थितियो मे मानवी प्रतिभा का समुचित उपयोग नही हो पाता। सारी जिन्दगी स्थिति पक्षाघात के रोगी सी बनी रहती है। यो शरीर और मन बड़े करीबी है। एक के प्रभावित होने पर दूसरा प्रभावित होता है। शरीर मे कोई रोग हो जाय तो मन बेचैन रहता है। यदि मन मे क्रोध, आवेश जैसे विक्षोभ उत्पन्न हो जाये तो रक्त संचालन मे तेजी, हाथो-पैरो की हरकत जैसी विचित्र बाते होने लगती है। इन दोनो मे पारस्परिक सामंजस्य अनिवार्य है। इसके बिना इन दोनो की शक्तियाँ ठीक ढंग से विकसित नही हो पाती।

यह सामंजस्य स्थापित हो जाय तो व्यक्तित्व मे प्रौढ़ता आती है। रूस मे तो किसी समय समूचे राज परिवार के सभी सदस्यो के लिए शारीरिक श्रम करना अनिवार्य था। इस परम्परा को शुरू करने वाले सम्राट पीटर तब राजकुमार थे। उन्हे युवराज घोषित किया जा चुका था। इसका अर्थ ही था, समस्त सुविधा और साधनो से सम्पन्न होना। परन्तु उन्होने युवावस्था मे ही निश्चय किया कि वे जीवन की खुली पाठशाला मे पढ़ सामंजस्यपूर्ण जीवन जियेगे। उन्होने शाही शान-शौकत के बाड़े से निकलकर हालैण्ड की जहाज निर्माता कम्पनी मे एप्रेटिस के रूप मे काम किया। इग्लैण्ड की पेपर मिल और आटा मिल मे काम किया। एक बार लोहे के बाँट बनाने वाली फैक्ट्री मे काम कर रहे थे। फैक्ट्री का मालिक उनके युवराज होने से परिचित था। महीने के अन्तिम दिन १० बाँट की एवज मे निर्धारित मजदूरी से अधिक देने लगा। उन्होने वापस लौटाते हुए कहा कि मै ३ कोयक हिसाब से ही पैसा लूँगा। मालिक को मानना पड़ा। बाद में इससे फटे जूतो के स्थान पर नए जूते खरीदे। आज भी ये जूते और तौलने के बाँट रूस के सग्रहालय मे श्रमनिष्ठा के प्रतीक के रूप मे सुरक्षित है। ऐसे उदाहरण पुरातन भारत के उन सभी नरेशो पर लागू होते है, जो जीवन कला-शिक्षण हेतु एक साधारण बालक

की तरह अपने उत्तराधिकारियो को गुरुकुल भेजा करते थे।

मानसिक विकसित अवस्था तथा सुविधा-साधनो के बीच रहते हुए शारीरिक श्रम जीवन को जितना समर्थ व सक्षम बनाता है, उतना ही इसका विपरीत भी सत्य है। अर्थात् शारीरिक श्रम करते हुए मानसिक श्रम का योग इसी तरह का क्षमतावान बना देता है। जानवान मेकर उन दिनो एक किताब की दुकान पर सवा डालर प्रति सप्ताह की दर पर मजदूरी करते थे। किन्तु इसके साथ मानसिक योग्यता अर्जित करने का श्रम बराबर बनाए रखा। व्यापारिक तौर-तरीके, रीति-नीति सीखने के साथ अध्ययन भी करते। विकसित प्रतिभा की बदौलत बाद मे एक दीवालिया फर्म को ले लिया। उस डूबती फर्म को उबार कर जानवान मेकर मजदूर से एक उद्योगपति के रूप मे विकास कर सके।

इसी तरह का एक और उदाहरण दृष्टव्य है। "यूथ्स कम्पेनियन" नामक पत्रिका ने अमेरिका के समृद्धतम व्यक्तियों की गणना मे आने वाले साइरस डब्लू, फील्ड का प्रसग प्रकाशित किया था। भाई से उपेक्षित होकर फील्ड स्टूवर्ट की एक फर्म मे साधारण मजदूरी के लिए भर्ती हुए। सुबह ६ बजे काम पर जाते और सूर्यास्त होने तक अपने काम मे जुटे रहते। वेतन निर्धारित हुआ करीब ४ डालर प्रतिमास। दूसरा कोई होता तो इस शारीरिक मेहनत से थककर शाम को घर जाते ही चैन से सोता। पर उन्होंने प्रतिभाशाली बनने की कसम उठा रखी थी। वह अपनी आत्म-कथा मे लिखते है कि इस कठोर श्रम के बाद भी वह वाणिज्य लाइब्रेरी जाया करते। वहाँ व्यवसाय सम्बन्धी पत्रिकाओ तथा पुस्तको का अध्ययन करते। जहाँ भी कुछ सीखने को मिल जाता, वहाँ पहुँचने का प्रयत्न करते। इसी सामंजस्यपूर्ण परिश्रम के कारण साइरस अमेरिका के सुविख्यात उद्योगपति बन सके।

सामान्य जीवनक्रम मे इससे बिल्कुल विरोधी स्थिति देखने मे आती है। जो मानसिक कार्यों को करते है वे चाहे दफ्तर के क्लर्क हो या अधिकारी अथवा शिक्षक, शारीरिक श्रम से पीछा छुड़ाने की कोशिश करते है। यही नही, मानसिक योग्यताओ को उभारने का अतिरिक्त श्रम करने से भी जी चुराने की कोशिश मे रहते है। कोल्हू के बैल की तरह ढर्रे-ढर्रे मे चलती हुई जिन्दगी चालीस-पचास की वय तक पहुँचते-पहुँचते तकरीबन इतनी ही बीमारियो की चपेट मे आ जाते है।

यही दशा शारीरिक मेहनत करने वालो की है। इनकी शिकायत यह रहती है, हाड़-तोड़ परिश्रम के बाद भी चैन नही नसीब होता। कारणो की तह मे जाने पर बात साफ हो जाती है। रिक्शे, ताँगे वाले भी लगभग तीस-चालीस रुपया नित्य कमा लेते है। चार अको की मासिक आय उन्हे मध्यम वर्ग मे ला सकती है। फिर भी वे गरीब के गरीब क्यो बने रहते है ? इसका कारण है सही नियोजन क्षमता का अभाव, दूसरे अर्थों मे मानसिक लकवा। उनका जीवन मूल्य, सही जिन्दगी जीने की रीति-नीति सीखने की तरफ ध्यान ही नही है। चिन्तन को विकसित करने के प्रयास के बदले उसे भूलने की कोशिश की जाती है। परिणाम भी तद्नुरूप होते है। पशुवत् जिन्दगी बीतती रहती है।

प्रतिभावान बने, इसके लिए अनिवार्य है कि चिन्तन और क्रिया दोनो ही पक्षो मे सामंजस्य उपजे। अँग्रेजी विचारक पैक्टनहुड के शब्दो मे "इस तरह की सन्तुलित श्रमनिष्ठा जिस गति से बढ़ती है, जीवन मे एक अलौकिक निखार आने लगता है। इसे एक बार समझ लिया जाय फिर तो वह आदत बन जाती है। दूसरे लोग भले ही उसे देखकर घबराएँ पर वह हमारी ग्रीवा मे पुष्पाहार की तरह सुशोभित हो जाती है।"

यो व्यावहारिक जीवन में सदैव एक पक्ष प्रधान होगा। पर श्रम से आजीविका कमाने वाले भी यदि चिन्तन के विकास मे जुटें, कर्तव्यो एवं जीवन मूल्यों को जानने के लिए अध्ययन करे अपने ही कार्य की बारीकी जानने का प्रयास करे, तो उपजी सूझ-बूझ तथा व्यवस्थित जीवनक्रम उन्हे सामान्य से असामान्य बना देता है। इस तरह मानसिक श्रम प्रधान जीवन वाले व्यक्ति शारीरिक मेहनत करने लगें। भले ही उसका स्वरूप बागवानी, व्यायाम, खेलकूद क्यो न हो ? इस तरह की उपजी आदत के फलस्वरूप रोग-कष्ट काफूर हो जायेगे ? अभी तक जिन कार्यों को नही सम्पन्न किया जा सका तुरत-फुरत पूरे होने लगेगे।

सन्तुलित श्रमनिष्ठा के महत्त्व को समझा जाय। हमारा जीवन पक्षाघात के रोगी की तरह न रहे। चिन्तन व क्रियाशीलता दोनो को ही उत्तरोत्तर विकसित करने की रुचि जगाई जा सके, तो होने वाले परिणामो को देख चमत्कृत होना पड़ेगा। समूचे व्यक्तित्व का कायाकल्प हो सकेगा। अभी तक की अनगढ़ता के पीछे छुपा प्रतिभाशाली सामर्थ्यवान निज का स्वरूप उभरकर आ सकेगा। जीवन के इस अलौकिक रहस्य को जाने-समझे और आचरण मे लाएँ तो हम स्वयं को समाज की अग्रिम पक्ति मे पाएँगे। यह एक प्रकार की जीवन साधना है पर प्रत्यक्ष फल देने वाली चमत्कारी विधा है। यह तथ्य स्मरण रहा तो सिद्धियो की खोज मे इधर-उधर न भटककर हम जीवन देवता रूपी जिन्न को ही साधने का प्रयास करेगे। यही तो नियन्ता को भी प्रिय है।

परावलम्बन छोड़ें, आत्मावलम्बन अपनायें

प्रगति के पथ पर चलते हुए यदि दूसरो का सहयोग मिल सकता है, तो उसे प्राप्त करने मे हर्ज नही। सहयोग दिया जाना चाहिए और आवश्यकतानुसार लेना भी चाहिए। पर इस तथ्य को ध्यान मे रखना चाहिए कि

हमारी मूलभूत आवश्यकता हमे स्वयं ही पूरी करनी पड़ती है, दूसरों के सहयोग से तो थोड़ा ही सहारा मिलता है।

अपनी आँखे न हो तो दूसरो द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रकाश-उपकरण अथवा सुन्दर दृश्य निरर्थक है। अपना पेट-खराब हो जाय तो दूसरो द्वारा प्रस्तुत सुन्दर व्यंजन कब स्वादिष्ट लगेगे ? कान बहरे हो जायँ तो किसी के सदुपदेश अथवा गीत-वाद्य अपना कुछ भी प्रयोजन सिद्ध न कर सकेगे। विक्षिप्त मस्तिष्क से स्नेही स्वजन भी पशुवत् आचरण करते प्रतीत होते है। अपनी विकृतियाँ समस्त संसार के सुखद साधनो को दु:ख-दारिद्रय से भरकर रख देती है। दूसरो का सहयोग भी ऐसी दशा मे अवरुद्ध हो जाता है। यदि वह मिले भी तो उससे लाभ उठा सकने की स्थिति नहीं रहती।

बाह्य सहयोग को आकर्षित करने और उससे समुचित लाभ उठाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि अपनी निज की मन स्थिति सही और सन्तुलित हो। इसलिए प्रथम महत्त्व दूसरो का नही रहता, अपना ही होता है। दूसरो के सहयोग की आशा करने मे उससे लाभ उठाने की बात सोचने से पूर्व आत्म-निरीक्षण किया जाना चाहिए कि हम सहयोग के अधिकारी भी है, या नही ? कुपात्र तक पहुँचने के बाद विभूतियाँ भी बेकार हो जाती है। पत्थर की चट्टान जल-प्रवाह मे पड़ी रहने पर भी भीतर से सूखी ही निकलती है। मात्र बाहरी सहयोग से न किसी का कुछ काम चल सकता है और न भला हो सकता है।

दूसरो का सहारा तकने की अपेक्षा हमे अपना सहारा तकना चाहिए। क्योकि वे सभी साधन अपने भीतर प्रचुर मात्रा मे भरे पड़े है, जो सुव्यवस्था और प्रगति के लिए आवश्यक है। यदि सूझ-बूझ की वस्तुस्थिति समझ सकने योग्य यथार्थवादी बनाने की साधना जारी रखी जाय, तो सबसे उत्तम परामर्श-दाता सिद्ध हो सकती है। मस्तिष्क मे वह क्षमता मौजूद है, जिसे थोड़ा-सा सहारा देकर उच्चकोटि के विद्वान अथवा बुद्धिमान कहलाने का अवसर मिल जाय। हाथो की सरचना अद्भुत है। यदि उन्हे सही रीति से उपयुक्त काम करने के लिए सधाया जा सके तो वे अपने कर्तृत्व से संसार को चमत्कृत कर सकते है। मनुष्य का पसीना इतना बहुमूल्य खाद है, जिसे लगाकर हीरे-मोतियों की फसल उगाई जा सकती है।

शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के ज्ञाता आश्चर्यचकित है कि विशाल ब्रह्माण्ड की तरह ही इस छोटे से मानव-पिण्ड मे भी एक से एक बढ़कर कैसी अद्भुत क्षमताओ को किसी कलाकार ने किस कारीगरी के साथ सॅजोया है ? कोशिकाओं और ऊतको की क्षमताओ और हलचलो को देखकर लगता है कि जादुई-देवदूतो की सत्ता प्रत्येक जीवाणु मे ठूँस-ठूँसकर भर दी गई है। कायिक क्रियाकलाप और मानसिक-चिन्तन-तन्त्र किस जटिल संरचना और किस संचरण, सन्तुलन का प्रदर्शन करता है ? उसे देखकर हतप्रभ रह जाना पड़ता है।

पिण्ड की आन्तरिक संरचना जैसी अद्भुत है, उससे असंख्य गुनी क्षमता बाह्य-जीवन मे अग्रगामी और सफल हो सकने की भरी पड़ी है। मनोबल का यदि सही दिशा मे प्रयोग हो सके तो फिर कठिनाई नहीं रह जायेगी।

अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था ही है, जो हमें दीन-हीन और लुंज-पुंज बनाये रखती है। दूसरो का सहारा इसलिए तकना पड़ता है कि हम अपने को न तो पहचान सके और न अपनी क्षमताओ को सही दिशा मे, सही रीति से प्रयुक्त करने की कुशलता प्राप्त कर सके। शारीरिक आलस्य और मानसिक प्रमाद ने ही हमें इस गई-गुजरी स्थिति मे रखा है कि आत्म-विश्वास करते न बन पड़े और दूसरो का सहारा ताकना पड़े। यदि आत्मवलम्बन की ओर मुड़ पड़े तो फिर परावलम्बन की कोई आवश्यकता ही प्रतीत न होगी।

हमें संकटों का भी सामना करना होगा

जो इस भय से प्रगति के पथ पर पैर नही बढ़ाता कि ऐसा करने पर किसी संकट का सामना करना पड़ सकता है तो उस मनुष्य और साधारण जीव-जन्तु मे क्या अन्तर है ? उनके बीच का अन्तर केवल प्रगति-भावना ही है। मनुष्य मे इच्छा, आकाक्षा और उन्नति करने की भावना होनी ही चाहिए। प्रगति भावना से रहित होना मानवेतर प्राणियो का लक्षण है। हम सब मनुष्य है। अप्रगति की भावना से निकलकर हमे उस उत्साह, उस जिज्ञासा और उस आकांक्षा का वरण करना ही चाहिए जो उन्नति और प्रगति की सराधिका होती है।

जो व्यक्ति संकट के भय से प्रगति करने का साहस नही करते, उन्हे सोचना चाहिए कि क्या इस जड़ता से वे सर्वथा बच जाएँगे ? माना किसी महत्त्वपूर्ण कार्य मे हाथ डालने पर तत्सम्बन्धी कठिनाइयाँ और प्रतिकूलताएँ आ सकती है। निश्चय ही वे आएँगी। क्योकि ससार का कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य संकट और विघ्न से रहित नही होता। उसकी महत्ता ही इसलिए होती है कि वह संकट और विघ्नो की सभावनाओ से भरा होता है। जिस कार्य मे सकट का सामना न करना पड़े और वह आसानी से पूरा हो जाए तो उसका महत्त्व कम ही रहेगा फिर वह काम देखने मे कितना ही बड़ा क्यो न हो। तो क्या इस सहज सम्भावना के भय से ससार मे महत्त्वपूर्ण कार्य न किए जाएँ ? यदि संसार के सारे लोग सकट की सम्भावना से डरकर कोई महत्वपूर्ण कार्य करना छोड़ दे, तो इस ससार की क्या दशा हो जायेगी ? इसकी कल्पना नही की जा सकती।

ससार का सारा विकास, सारी उन्नति, जिसे देखकर आज हम खुश हो रहे है और जिसका लाभ उठाकर अधिकाधिक आनन्द अनुभव कर रहे है, सब उन्हीं पुरुषार्थियो की कृपा और उनके साहस का ही फल है

जिन्होने संकट की सम्भावना का भय ताक मे रखकर अपना जीवन महान और उपयोगी कामो को समर्पित कर दिया। प्रगति की ओर बढ़ना केवल अपना व्यक्तिगत नियम नही है, उसका सम्बन्ध ससार और समाज के विकास से भी है। जो अप्रगतिशील है वह परोक्ष रूप से समाज का विरोधी है।

वैज्ञानिको, अन्वेषको और समाज-सुधारको को ले लीजिये। यद्यपि संसार के लिए उपयोगी महान कार्यों के क्षेत्र और भी होते हैं तथापि यह तीन क्षेत्र ऐसे है जिनके कार्य समाज के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इन तीन वर्गो के संसार-सेवियो ने संसार के विकास और उसकी प्रगति मे सदा से सराहनीय योगदान किया है। संसार की सेवा के यह तीनो क्षेत्र अन्य क्षेत्रो से अपेक्षाकृत अधिक सकट से भरे है। विघ्न, असफलताएँ और विरोध इन क्षेत्रो में सबसे ज्यादा सामने आते है। इन क्षेत्रो में साधारण संकटो के साथ प्राणो का संकट तक बना रहता है। तब भी संसार का उपकार करने वाले वैज्ञानिको, अन्वेषको और सुधारको की कमी नही रही है। बड़े-बड़े भयंकर संकट उठाकर इन लोगो ने ससार की सेवा की है। यदि यह लोग संकटो की सम्भावना से भयभीत होकर अपना कर्त्तव्य न करते तो क्या यह संसार आज जैसा उन्नत और विकसित दिखलाई देता और यदि आज से यह लोग संकटो के भय से अपने महान कर्त्तव्यो से विरत हो जाएँ तो क्या कल से ही संसार अधोगति की ओर तेजी से न चल पड़े ? अपनी और समाज की प्रगति के लिए पुरुषार्थ करना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है। संकटो से डरकर अगति मे पड़ा रहना अशोभनीय वृत्ति है।

संसार मे संकट कहाँ और किस स्थिति मे नही है ? संसार संकटो का आगार कहा गया है। यहाँ सकट उसके लिए भी है जो आगे बढ़ता है और उसके लिए भी जो एक स्थान पर पड़ा रहता है। यह संसार सम्पत्ति-विपत्ति और सुख-दु:ख के दो सूत्रो से निर्मित हुआ है। जिसने इस ससार मे जन्म लिया है, वह केवल अनुकूलता की ही अपेक्षा नही कर सकता, उसे प्रतिकूलता का भी अपना भाग ग्रहण करना होगा। संसार मे केवल सुख-सुविधा पूर्ण आसान जिन्दगी जीते रहने का कोई अवसर नही है। हर शारीरधारी दु:ख-सुख की द्वन्द्वमयी जिन्दगी स्वीकार करने के लिये बाध्य है। इस प्रतिबन्ध के रहते हुए इस बात मे कोई बुद्धिमानी नजर नही आती कि सकट के भय से प्रगति के पथ पर न बढ़ा जाए। जब प्रगति के पथ पर बढ़ने पर भी संकट की सम्भावना है और अगति की दशा मे भी संकटो से बचा नही जा सकता, तो कौन ऐसा नासमझ होगा जो प्रगति पथ के संकटो को तरजीह न दे, यदि वह पूरी तरह से मनोमृत होकर जड़ नही हो गया है ?

मानिए कि आदमी के पास प्रगति करने के साधन है और वह व्यापार द्वारा उन्नति की ओर बढ़ सकता है। लेकिन घाटे के भय से व्यापार नही करता। वह सोचता है कि यदि मै व्यापार करूँ और उसमे घाटा हो जाए तो उसे गहरी आर्थिक विपत्ति मे पड़ जाना पड़ेगा। चुपचाप बैठे रहने से उस पर आर्थिक सकट आने की सम्भावना नही रहेगी। किन्तु उसका यह विचार सही नही है। प्रगति के उद्योग मे यदि उस पर घाटे का संकट आ सकता है, तो अगति की दशा मे भी लूट, चोरी अथवा आग द्वारा भी उस पर संकट आ सकता है। यदि इससे बच सकता है, तो बीमारी अथवा नालायक सन्तानो के द्वारा भी उस पर आर्थिक संकट आ सकता है। सकट के लिए न तो कोई क्षेत्र निश्चित है और न कार्य। वह किसी पर किसी भी स्थिति मे आ सकता है। उससे भयभीत होना अथवा उसकी सम्भावना से प्रगति पथ का त्याग कर देना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

मनुष्य जीवन उन्नति और प्रगति के लिए ही मिला है। यदि इसका यह उद्देश्य न होता तो इस शरीर के साथ विद्या, बुद्धि, विवेक और चिन्तन-मनन आदि विशेषताओ की सुविधा न होती। मनुष्य भी सीधा-सादा अन्य प्राणियो की तरह ही एक निकृष्ट प्राणी होता। मनुष्य को अपने जीवन-लक्ष्य के लिये एक लम्बी प्रगति परम्परा पूरी करनी है। उसका जीवन-लक्ष्य मोक्ष है जो अगतिपूर्ण स्थिति मे पड़े रहने से कभी नही पाया जा सकता। मनुष्य को अपना वह लक्ष्य पाने के लिये प्रगति-प्रति-प्रगति करते हुए भी बढ़ना होगा। यदि वह साधारण जीवन मे ही प्रगति से मुख मोड़ बैठेगा तो उस आत्मिक उन्नति का प्रयत्न किस प्रकार कर सकता है जो जीवन लक्ष्य के लिये आवश्यक है ? छोटी-छोटी प्रगतियो के अभ्यास द्वारा ही बड़ी प्रगति की क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

अपना वास्तविक जीवन-लक्ष्य पाने के लिये मनुष्य को सामान्य जीवन से ही प्रगति का उद्योग प्रारम्भ कर देना चाहिए। जो स्थूल उन्नति के क्षेत्र मे अपना पुरुषार्थ और पराक्रम नही दिखला सकता, वह अध्यात्म के सूक्ष्म क्षेत्र मे तो और भी कुछ नही कर सकता है। उन्नति और प्रगति की दिशा मे सफलता अर्जित करना मनुष्य का शोभनीय कर्त्तव्य संकटो के भय से उसे अपने इस कर्त्तव्य से विरत होकर न बैठे रहना चाहिए। संकटो अथवा विघ्न-बाधाओ के भय से मुक्त होकर उठिए और आज ही प्रगति की ओर पग बढ़ाने का उपक्रम प्रारम्भ कर दीजिए। दु:ख उठाकर ही सुख और संकट उठाकर ही सफलता मिलती है। इसी मे उसका महत्त्व भी है। जो सफलता जितना अधिक सघर्ष और संकट सहन करने के बाद मिलती है, उसका आनन्द उतना ही अधिक, यथार्थ और स्थायी होता है। यह बात इस छोटे-से उदाहरण से इस प्रकार समझी जा सकती है। एक सम्पन्न व्यक्ति को विविध प्रकार के व्यंजनों की प्रचुर सुविधा है। जरा-जरा-सी देर में उसके सामने खाने-पीने की विविध वस्तुएँ बिना कुछ किए आती रहती है, लेकिन उसमे उसे उतना आनन्द कभी नही मिलता, जितना आनन्द एक श्रमजीवी को दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद मिली सूखी रोटी मे मिलता है। इसी प्रकार उस आलसी और विलासी

धनवान को आराम अथवा नींद का वह स्वर्गिक सुख नही मिलता, जो दिनभर आराम ही करता रहता है, जो उस मेहनतकश इन्सान को मिलता है जो दिन मे दस घण्टे मेहनत करता और थकान से चूर होकर सोता है। आनन्द की पूरी और सच्ची अनुभूति उसी उपलब्धि मे होती है जो कठिनाइयो और कष्टों के बीच से अर्जित की गई है। ऐसी उपलब्धि मे ही सन्तोष भी होता है और आत्म-गौरव भी।

सफलता एक उपलब्धि है और उसमे आनन्द भी होता है। इसलिए कि उसको पाने मे दुःख, तकलीफ और संकटो का सामना करना पड़ता है। आनन्द वास्तव मे उस सिद्धि मे नही होता बल्कि उस कष्ट का मूल्य होता है जो पुरुषार्थी हँसता-खेलता उठाया करता है। कोई सफलता श्रेय अथवा सराहना का विषय इसीलिये बनती है कि उसे पाने मे उद्योगी को कष्ट और सकट उठाकर अपने पुरुषार्थ का परिचय देना होता है। पुरुषार्थ नाम सिद्धि का नही बल्कि उसके मार्ग मे आने वाले संकटो की सहनशीलता का है। जीवन की सफलता और महत्वपूर्ण कार्यों के मार्ग में यदि संकट और कष्ट न आएँ और उनकी पूर्ति आसानी से हो जाया करे तो उनका कोई महत्व ही न रह जाए ? सर्व-सुलभ सफलताएँ यदि आसानी से मिलने लगे तो उनमे और सामान्य दैनिक कार्यो मे क्या अन्तर रह जाए और क्या अन्तर रह जाए एक सामान्य पुरुष और महापुरुष मे। सफलताओ का श्रेय सकटो के कारण ही है और विशेष पुरुषार्थ के कारण ही आकार-प्रकार मे कोई अन्तर न होने पर भी एक साधारण मनुष्य असाधारण पुरुष माना जाता है। दुर्लभता तथा दुःसाध्यता के कारण ही सफलता मे एक अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। सोना स्पृहणीय क्यो है ? इसीलिये कि वह कठिनता से मिलता है और दुर्लभ होता है। यदि वह भी अन्य खनिज पदार्थों की तरह आसानी से प्रचुर मात्रा मे सबको मिलने लगे तो उसका क्या मूल्य-महत्त्व रह जाए ? मनुष्य को कष्ट और सकटो की सम्भावना से निरपेक्ष रहकर जीवन मे उन्नति और विकास मे सफल होने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

उन लोगो को पुरुष नही कापुरुष ही माना जाएगा जो संकटो के भय से प्रगति-पथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न नही करते। सच्चे पुरुषार्थी तो सत्पथ पर आने वाली विपत्तियों को अपने धैर्य, सहिष्णुता और पुरुषार्थ की परीक्षा से अधिक कुछ नही मानते। वे तो हँस-हँसकर उनका स्वागत करते है, खेल-खेल की तरह सहन करते और विश्वासपूर्वक उन पर विजय प्राप्त करके श्रेय के अधिकारी बनते है। सकट और आपत्तियो का अस्तित्व जितना बाहर नही होता, उससे कही अधिक कायर मनुष्य के हृदय मे होता है। कष्ट और संकट मनुष्य जीवन की सामान्य घटनाएँ है। यदि कष्टो, सकटो तथा दुःखो का सर्वथा अभाव हो जाए तो मनुष्य की बुद्धि, विवेक और कार्य-क्षमता का कोई महत्त्व ही न रह जाए और एकरसता के कारण संसार के सारे सुख, सारे आनन्द और सारे कार्य नीरस होकर बोझिल बन जाएँ। तब उस दशा मे मनुष्य को जीना तक कठिन हो जाए। कठिनाइयाँ और संकट ही मनुष्य जीवन को सक्रिय तथा सरस बनाए रखने मे सहायक होती हैं। एकरस सुख मृत्यु की तरह जड़ और शीतल होता है। उसमे रुचि तथा आनन्द की ऊष्मा का संचार संकटो तथा कठिनाइयो का रही होता है। संकट के भय से प्रगति पथ पर न बढ़ना न केवल जीवन को जड़ता की ओर ले जाना है बल्कि उसे नीरस, शीतल और निरुपयोगी बनाना भी है। अस्तु, संकट की भावना को त्यागकर अपनी-अपनी स्थिति-परिस्थिति के अनुसार सबको प्रगति तथा उन्नति का प्रयत्न करना चाहिए, श्रेय पथ पर संकट का भय हृदय क्षुद्र को दुर्बलता के सिवाय और कुछ नहीं। वह तो मानव-जीवन की सामान्य घटनाएँ ही होती है। जिनका कोई मूल्य-महत्त्व नही होता।

परिस्थितियों पर जीवन विजय पाता रहा है

परिस्थितियाँ प्रगति का मार्ग खोलती है या मार्ग अवरुद्ध करती है, यह आंशिक सत्य है। सर्वदा ऐसा ही होता हो सो बात नही है। कितनी ही बार ऐसा भी होता है कि जो कार्य बहुतो के लिए असम्भव है, वह कुछ के लिए सरल स्वाभाविक बन सके।

उत्तरी ध्रुव पर कड़ाके की ठण्ड पड़ती है और शून्य से नीचे वाले तापमान मे कड़ी बर्फ जमी रहती है। छः महीने की लम्बी रात होती है। पेड़-पौधो का नाम नही। इमारते बनाने और कृषि करने जैसे कोई साधन नही। फिर भी उस क्षेत्र मे एस्किमो जन-जाति हजारों लाखो वर्षो से वहाँ रहती चली आ रही है। मछलियो का आहार और कुत्तो का सहयोग उन्हे जीवन-निर्वाह के आवश्यक साधन जुटाने के लिए पर्याप्त सिद्ध होता रहता है। अन्य लोग वहाँ रहे तो ठण्ड से हाथ-पैरो की उँगलियाँ गलने लगे और जीवन सम्भव न हो, पर अभ्यास से वे लोग वहाँ मजे मे रहते है। प्रकृति ने परिस्थिति के साथ तालमेल बिठा लिया है।

अटलांटिक समुद्र मे कुछ ऐसे टापू खोजे गये है जिनमे न जाने कब से जन-जीवन निवास और निर्वाह करता चला आ रहा है। न वहाँ सभ्यता पहुँची है, न भाषा। रीति और नीति का भी कोई तर्क सगत प्रचलन नही है। वनमानुषों जैसी उनकी जीवन-पद्धति और निर्वाह पद्धति है। परस्पर मिल-जुलकर किस तरह रहा जा सकता है। आवश्यक साधनो को किस तरह उगाया और आड़े वक्त के लिए सँजोकर रखा जा सकता है, इतना तौर-तरीका उनने अपनी निजी सूझ-बूझ से ही सीख लिया है। प्रकृति और परिस्थिति का तालमेल ऐसा बैठ गया है कि बाहरी दुनिया मे प्रचलित सभ्यता से सर्वथा अपरिचित

होते हुए भी वे लोग बिना कोई कठिनाई अनुभव किये लम्बे समय से दिन गुजारते आ रहे है। यह लोग वहाँ किस प्रकार पहुँचे, यह अभी भी रहस्य का विषय बना हुआ है।

समुद्री अष्टभुज प्राणियो को अपनी भुजाओ से कसकर मार डालने के कारण बहुत ही भयंकर समझा जाता है। उससे समुद्र मे उतरने वाले सभी को डर लगता है। पर भूमध्य सागर के किनारे बसने वाले यूनानी लोगो का सबसे प्रिय भोजन यह अष्टभुज ही है। वे उसे प्रयत्नपूर्वक पकड़ते और तरह-तरह के व्यंजन बनाते हैं।

न्यू गिनी की कुओर पहाड़ियो पर भयंकर विषधर सर्प पाये जाते है। उनकी फुफकार भर से प्राणियो की मृत्यु हो जाती है पर उस क्षेत्र के आदिवासी इन्ही को स्वादिष्ट भोजन मानते है। जब वे अधिक संख्या मे हाथ लग जाते है तो पेड़ो से बाँधकर सुरक्षित खाद्य का भण्डार बना लेते है।

कई बार माँ और बच्चे का मध्यवर्ती अन्तर औसत प्राणियो की तुलना मे कही अधिक भी पाया जाता है। मादा कंगारू की ऊँचाई २ मीटर और वजन १०० किलोग्राम होता है पर जन्मते समय उसके बच्चे झीगुर जैसे इतने छोटे होते है कि एक चाय के चम्मच मे तीन बैठ सके।

बड़ा कीर्तिमान काँटेदार सोई का है। मादा की लम्बाई ८० सेन्टीमीटर होती है पर जन्मते ही उसका बच्चा ८० से. मी. तक लम्बा होता है।

बच्चो की वृद्धि मे ब्लू ह्वेल की सन्तति सबसे बाजी मारती है। शिशु सवा तीन ग्राम प्रति घण्टे के हिसाब से बढ़ता है और एक दिन मे माँ का तीस लीटर दूध पी जाता है। प्रकृति की यह विचित्रता बताती है कि परिस्थितियाँ ही प्रवृत्तियो का विकास करती हैं।

जीव चेतना विलक्षण है। वह बाधाओ के बीच अपना रास्ता बना लेना और वातावरण के अनुरूप ढलना जानती है। अवरोध, अड़चन तो अवश्य उत्पन्न करते है पर सर्वथा रास्ता रोक देने मे समर्थ नही हो पाते।

मानवी पुरुषार्थ की एक संकल्प भरी यात्रा

अगणित सम्पदाएँ भूगर्भ मे छिपी पड़ी है जिनमे से कुछ को ही मनुष्य प्राप्त कर सका है। उन्ही के सहारे अपनी-जीवन यात्रा पूरी कर रहा है। वे न मिली होती तो मनुष्य आज की विकसित स्थिति मे नही पहुँच पाता। आदिम युग की परिस्थितियो मे ही पड़ा पशुओ जैसा जीवन जीता रहता। मूलत: मनुष्य ने किसी नयी चीज का निर्माण नही किया है। जो कुछ भी प्रकृति के अन्तराल मे दबा था, उसे कुरेद कर, सुधारकर एव सँवारकर बुद्धिबल द्वारा नया स्वरूप भर दिया है। पाषाण न रहे होते तो उससे यह भी पता तक न चल पाता कि अग्नि जैसी शक्ति का अस्तित्व भी प्रकृति मे मौजूद है। फास्फोरस का भण्डार न मिलता तो माचिस का आविष्कार न हो पाता। मिट्टी न रही होती तो कृषि कैसे करता ? खाने के लिए खाद्यान्न कहाँ से पाता ? मकान का निर्माण कहाँ से करता ? निवास की व्यवस्था कैसे बनाता ? जमीन मे दबा लोहे का भण्डार हाथ न लगा होता तो जीवनोपयोगी यन्त्रो का निर्माण नही हो पाता। विशालकाय कल-कारखाने नही लग पाते। वाहनो का आविष्कार नही हो पाता। आकाश को चीरकर उड़ने वाले वायुयानो, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति को लाँघकर अन्तरिक्ष मे जा पहुँचने वाले राकेटो, स्पेस शटलो का बनाना सम्भव न था। मुफ्त मे मिले भण्डार ने ही मनुष्य की धरती से छलाँग लगाकर आसमान मे जा पहुँचने की स्थिति बनायी है।

प्रगति के इस युग मे ऊर्जा के बिना एक कदम भी बढ़ना सम्भव नही। जिन साधनो से वे प्राप्त होते है वे विशुद्ध रूप से प्रकृति की देन है, मनुष्य द्वारा उपार्जित नही। लकड़ी, कोयला, पेट्रोलियम के विशाल भण्डार उसे प्रकृति से मिले है, जिनका उपयोग करके वह अनवरत रूप से आगे बढ़ता जा रहा है। वे न मिले होते तो मनुष्य को बैलगाड़ी, ढकेलगाड़ी से ही काम चलाना पड़ता तथा घण्टा मील की गति से ही अपनी यात्रा सम्पन्न करनी पड़ती। बिजली ने संसार की काया ही पलट दी है। पर यदि जल के विशाल स्रोत नदियाँ, झरने, समुद्र न रहे होते तो संसार अन्धकार की कालिमा मे ही डूबा रहता। उसके सौन्दर्य का प्रकटीकरण न हो पाता।

परमाणु ऊर्जा के शक्ति स्रोत यूरेनियम, स्ट्रांशियम जैसे बहुमूल्य शक्ति-स्रोत हाथ न लगे होते तो उस विस्फोटक असीम ऊर्जा सम्पदा को प्राप्त करना कैसे सम्भव हो पाता? जो इनके नाभिकीय विखण्डन से प्राप्त होती है। तब न परमाणु बमो का आविष्कार सम्भव था और न ही नाभिकीय ऊर्जा सयन्त्रो का। रेडियो, टेलीविजन जैसे मनोरंजन संसाधन आज घर-घर मौजूद है। पर आकाश में ईथर तत्त्व का अस्तित्व न होता तो रेडियो वेव्स, इलेक्ट्रो-मैग्नेटिक वेव्स का प्रसारण सम्भव न था। तब सुदूर बजने वाले संगीत, प्रसारित होने वाले समाचार तथा दृश्यो का आनन्द नही मिल पाता। ससार के मनोरजन के इन साधनो की खोज नही हो पाती।

सूर्य जीवन का अधिष्ठाता है। जो कुछ भी हलचल इस धरती पर दिखायी पड़ रही है उसका श्रेय सूर्य को है। ताप, गर्मी, प्राण, पेड़, पादपो तथा प्राणियो को उससे ही प्राप्त होता है। इन्हे प्राप्त करने के लिए किसी को भी राई-रत्ती भर कीमत नहीं चुकानी पड़ी है। मुफ्त मे अनवरत रूप से मिलता रहता है। ऊर्जा संकट के इस युग मे सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि अगले दिनो

ऊर्जा का प्रमुख स्रोत सूर्य ही होगा। लम्बे समय तक सस्ती तकनीक द्वारा स्थायी रूप से सूर्य ऊर्जा को स्टोर करने की सुगम विधा तो अभी हाथ न लग सकी है वैज्ञानिक आश्वस्त है कि कल नही तो परसो सूर्य की पर प्रचण्ड ऊर्जा का मनमाना उपभोग करने की स्वच्छन्दता उन्हे प्राप्त होगी।

जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओ मे प्रकाश एवं गर्मी के बाद वायु एवं पानी को मुख्य माना जाता है। पृथ्वी के वातावरण मे मीलो तक अरबो-खरबो टन स्वच्छ वायु का भण्डार जमा है। हर प्राणी को उसकी आवश्यकतानुसार वह मुफ्त मे मिलती रहती है। इसे पाने के लिए मनुष्य को किसी प्रकार का कोई पुरुषार्थ नही करना पड़ा है। पानी का विपुल भण्डार पृथ्वी पर मौजूद है। जिससे जीव-जन्तु अपनी प्यास बुझाते; वृक्ष, वनस्पतियाँ पोषण प्राप्त करते है। सूर्य, प्रकाश, ताप, वायु एव पानी जैसे जीवनदायी स्रोत हाथ न लगे होते तो इस पृथ्वी पर प्राणियो का अस्तित्व ही नही होता। वैज्ञानिकगण इन शक्ति स्रोतो का अब अगणित प्रयोगो मे उपयोग करके नये प्रकार के आविष्कारो को जन्म दे रहे है।

यह तो दृश्यमान प्रकृति परिकर की चर्चा हुई। इस विशाल भाण्डागार से जितना मिला और उपयोग मे आया है, उसकी तुलना मे अविज्ञात का क्षेत्र कई गुना अधिक है। स्थूल शक्ति स्रोतो का छोटा-सा हिस्सा ही मनुष्य की पकड़ सीमा मे आ सका है। बड़ा भाग अभी भी अछूता है। सूक्ष्म शक्तियो तक तो मनुष्य की पहुँच नही हो पायी है। कुछ की जानकारियाँ मात्र मिली है। जिन्हे अत्यन्त सामर्थ्यवान समझा जा रहा है। एक्स, गामा, रश्मि किरणो, लेसर, मेसर आदि का छुट-पुट प्रयोग विभिन्न क्षेत्रो मे होने लगा है। सृजन एव ध्वस दोनो ही तरह के प्रयोग उनके माध्यम से हो रहे है। कुछ से आयुध भी बन रहे है तथा चिकित्सा जैसे क्षेत्र मे उपचार प्रयोग भी चल रहे है।

सूक्ष्म प्रकृति शक्तियो का जो परिचय मिल रहा है, उनके आधार पर अटकले लगायी जा रही है कि अब तक मनुष्य को जितना हस्तगत हुआ है, वह उन असीम सम्भावनाओ के समक्ष कुछ भी नही है। अपने ही इर्द-गिर्द रहस्यो एवं शक्तियो से भरी कितने ही प्रकार की दुनिया मौजूद है, जो इन आँखो से दिखायी भी नही पड़ती। एण्टीमैटर, एण्टीपार्टीकल, एण्टीयूनीवर्स की चर्चा इन दिनो जोरो पर है। ये पकड़ मे तो नही आ सके है पर अपना परिचय सैद्धान्तिक रूप से दे चुके है। समझा जाता है कि यदि ये किसी तरह वैज्ञानिको द्वारा खोजे जा सके तो वर्तमान दुनिया का स्वरूप ही बदल जायेगा। एक साथ दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियो के बीच मनुष्य को रहना पड़ेगा, जिनके सहयोग पर असीम शक्ति करतलगत हो सकती है जबकि असहयोग पर ससार का अस्तित्व तक मिट सकता है। विज्ञात के अतिरिक्त ऐसी अगणित प्रकृति की शक्तिधाराएँ अविज्ञात रूप में है जो अभी मानवी जानकारी की सीमा से परे हैं।

यह सच है कि प्रकृति की हाथ आयी शक्तिधाराओ का मूलतः निर्माण मनुष्य ने नहीं किया है, पर उतना ही सच यह भी है कि उन्हे करतलगत करने, अपने उपयोग योग्य बनाने के लिए मनुष्य ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय दिया तथा अपने बुद्धिबल का प्रयोग किया है। शक्ति स्रोत तो पहले भी—आदिकाल मे भी मौजूद थे, पर मनुष्य उनका उपयोग कहाँ कर सका, उनसे लाभ कहाँ उठा सका ? प्रशंसा उस आविष्कारक बुद्धि की करनी होगी जिसका वह सतत नियोजन करता रहा और एक से बढ़कर एक उपलब्धियाँ हस्तगत करता गया। अन्यान्य जीवो के समक्ष भी वे शक्ति स्रोत आदि काल से ही पड़े हैं पर उनका सदुपयोग कर सकना तो दूर रहा, उनकी जानकारी तक उन्हे नहीं है। तब भी वे प्रकृति के गुलाम थे, आज भी है और भविष्य मे भी उस स्थिति से किसी प्रकार उबरने की गुंजाइश नही दिखायी पड़ती। प्रकृति ने मुक्त हस्त से जो भी कुछ दिया, कृतज्ञता उसके प्रति तो व्यक्त करनी ही चाहिए, उतनी प्रशंसा मनुष्य के पुरुषार्थ एवं बुद्धिबल की भी करनी चाहिए जिनके सुनियोजन से आज की सुविकसित स्थिति तक वह पहुँच सका है।

प्रकृति पर प्रयोक्ता के पुरुषार्थ एवं उपलब्धियो की यह एक संक्षिप्त-सी गाथा है, जिसका आरम्भ तो है पर कोई अन्त नही। उन उपलब्धियो की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकेगी जब मनुष्य स्वयं के स्वरूप एव सामर्थ्य से परिचित हो। अन्यथा विभीषिका पूर्ण परिस्थितियाँ ही पैदा होगी जो अन्ततः सबको ले डूबेगी। सम्पदा का भण्डार प्रकृति के अंचल मे बिखरा पड़ा है पर है वह जड़ की शक्ति। चैतन्य बुद्धि का सहयोग न मिला होता तो वह प्रकृति सम्पदा जड़ ही बनी रहती, उसका कोई उपयोग नही हो पाता।

जड़ की तुलना मे चेतना की शक्ति कई गुनी अधिक है। शोध बुद्धि उसकी एक स्थूल अभिव्यक्ति है जिसके एक नगण्य हिस्से का चमत्कार चारो ओर अगणित प्रकार की भौतिक उपलब्धियो के रूप मे दृष्टिगोचर हो रहा है। जिस दिन अवशेष बुद्धि का शेष निन्यानवे प्रतिशत हिस्सा भी जागरण की स्थिति मे आ जायेगा तथा उसका प्रयोग होने लगेगा, उस दिन की असामान्य स्थिति की तो अभी कल्पना भी नही की जा सकती। सम्भव है जन्म-जन्मान्तर की स्मृतियाँ सूक्ष्म रूप मे उसी प्रसुप्त भाग मे दबी पड़ी हो तथा मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुरूप ऐसी प्रेरणाएँ देती हो, जिनसे अनायास ही वह एक विशेष दिशा मे प्रगति-पथ पर चल पड़ता हो, विशेष प्रकार का चिन्तन करने लगता हो, विशेष तरह का आचरण दर्शाता हो जिसका कोई प्रत्यक्ष कारण मनःशास्त्री तथा व्यवहार विज्ञानी न निकाल पाते हों। वह

सूत्र हाथ लगते ही मानवी प्रकृति को मनचाहे रूप मे गढ़ने-बदलने का आधार मिल सकता है। "ब्रेनवाशिंग" तथा 'जेनेटिक इन्जीनियरिंग' के अँधेरे मे तीर छोड़ने जैसे प्रयोगो के खतरनाक परिणामो की तुलना में वे आध्यात्मिक आधार कहीं अधिक सफल सिद्ध होगे।

चेतना की गहरी परते तो और भी रहस्यमय है। इच्छा आकांक्षा करने, सुख-दुःख की अनुभूति करने, प्रसन्नता, क्रोध व्यक्त करने जैसे सामान्य रूपो मे मन का परिचय मिलता है, जो अपनी सहज प्रकृति के रूप मे मनुष्य को जीवनपर्यन्त दौड़ाता है। शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति मे ही मन की घुड़दौड़ चलती है, पर उसकी क्षमता उतने ही तक सीमित नहीं है। बुद्धि से भी अधिक सामर्थ्यवान उसकी सूक्ष्म गहरी परतें है। मनोबल, सकल्पबल, प्राणबल का परिचय किन्हीं-किन्ही व्यक्तियो मे प्रचण्ड रूप मे मिलता है। उनके सहारे सामान्य व्यक्ति भी असामान्य कार्य कर गुजरते है। व्यक्ति ही नही, वातावरण को भी उनके सहारे बदलता देखा जा सकता है।

इससे भी गहरी तथा समर्थ परते मानवी अन्तराल मे विद्यमान है, जिनका न तो सामान्य व्यक्तियो को कुछ ज्ञान होता है और न ही वे जीवनपर्यन्त उपयोग कर पाते है। दवाखाने की तरह अपनी उन आन्तरिक विभूतियो का वे कभी प्रयोग नही कर पाते। मनुष्य की चैतन्य परतो मे ऐसी सामर्थ्य भी विद्यमान है कि सुदूर क्षेत्र मे घट रही घटनाओ तथा भविष्य मे होने वाले परिवर्तनो का एक स्थान पर बैठे वह पता लगा सके। व्यक्तियो एवं पदार्थो के स्वरूप में भी वह अपने प्रचण्ड शक्ति से परिवर्तन ला सकने मे सक्षम है। इन अतिमानवी सामर्थ्यों का भण्डार उसके चैतन्य घटको मे प्रसुप्त पड़ा है।

आनन्द की खोज मे मृग-मरीचिका मे भटकने वाले मनुष्य को जिस दिन यह विदित होगा कि उसका मूल स्रोत अपने ही भीतर है, सचमुच ही वह पक्ष मानवी अनुसंधान-आविष्कार की विधा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष होगा। तब ससार मे दिखायी पड़ने वाले कलह, मतभेद, संघर्ष, वैमनस्य, विग्रह सदा के लिए समाप्त हो जायेगे।

प्रकृति से जितना मिला है, उससे भी विपुल भण्डार मनुष्य के चेतन संसार मे अदृश्य जगत मे विद्यमान है। उसे कुरेदा, उभारा, जगाया जा सके तो वह सब कुछ प्राप्त कर सकना सम्भव है, जिसके लिये मनुष्य परेशान रहता तथा अपने को असमर्थ, असहाय महसूस करता है। सन्तुष्टि एवं परितृप्ति की आभा उसके चेहरे पर उस दिन दमकेगी जिस दिन वह अपने भीतर के वैभव को पा लेगा, सारी जगती उससे लाभोन्वित होने लगेगी।

दैवी अनुकम्पा एवं संकल्पशक्ति का चुम्बकत्व

अनगढ़ और पुरुषार्थी दो स्तर के लोग आम जनता के बीच पाये जाते है। उन्ही को गरीब-अमीर, सफल-असफल भी कहते है किन्तु इन सबसे ऊँचा एक और स्तर है, जिसे देव मानव कहकर सराहा जाता है। प्रतिभाशाली उपयुक्त सफलताएँ पाते है, भले ही उसका दुरुपयोग करके अपयश के भाजन ही क्यो न बने ? किन्तु जिनने अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुनियोजित, सुसंस्कृत बना लिया है, उनके लिए आत्मिक संतोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह तीनो ही सुरक्षित रहते और दिन-दिन समुन्नत होते जाते है। वस्तुतः व्यक्तित्व का परिष्कार और उदात्तीकरण ही वह योगाभ्यास है, जिसके माहात्म्य को लोक और परलोक की अभीष्ट सफलताएँ देने वाला बताया गया है। प्रखर प्रतिभा का उद्गम स्रोत ईश्वर है, जिसे दूसरे शब्दो मे सत्प्रवृत्तियो का समुच्चय भी कहा जा सकता है। मनुष्य जीवन मे वह गरिमामयी आदर्शवादिता और उत्कृष्टता के रूप मे ही अवतरित होती है। पूजा-उपासना के समस्त कर्मकाण्डो का उद्देश्य इसी आन्तरिक वरिष्ठता का सम्पादन और अभिवर्धन करना है।

मशीनो में बिजली का प्रवाह कम मात्रा मे पहुँचता है, तो उनकी चाल बहुत धीमी पड़ जाती है, पर जैसे-जैसे वह विद्युत प्रवाह बढ़ता है, वैसे ही वैसे उन सब मे तेजी, गति, शक्ति बढ़ती जाती है। चेतना का कामचलाऊ अंश तो प्राणि मात्र मे रहता है, जिससे वह किसी प्रकार अपनी जीवनचर्या चलाता रह सके। यह जन्मजात है, किन्तु जब कभी इसकी अतिरिक्त मात्रा की आवश्यकता पड़ती है तो यह कार्य योग और तपपरक साधना करती है। इन दोनो का तात्पर्य प्रकारान्तर से प्रतिभा और सेवा साधना मे सरसता अनुभव होने की प्रकृति ही समझी जा सकती है।

योगदर्शन में अष्टांग साधना मे सर्वप्रथम यम-नियम की गणना की गई है। यह अन्तरंग और बहिरंग सुव्यवस्था के ही दो रूप है। जिसने इस दिशा में जितनी प्रगति की, समझना चाहिए कि उसे उतनी ही आत्मिक प्रगति हस्तगत हुई और उसकी क्षमता उस स्तर की निखरी, जिसका वर्णन महामानवो मे पाई जाने वाली ऋद्धि-सिद्धियो के रूप मे किया जाता है। उपासनात्मक समस्त कर्मकाण्डो की संरचना इसी एक प्रयोजन के लिए हुई है कि व्यक्ति की पशु-प्रवृत्तियो के घटने और दैवी सम्पदाओ के बढ़ने का सिलसिला क्रमबद्ध रूप से चलता रहे। यदि उद्देश्य का विस्मरण कर दिया जाय और मात्र पूजापरक क्रिया-कृत्यो को ही सब कुछ मान लिया जाय, तो यह चिन्ह-पूजा का निर्जीव उपक्रम ही माना जायेगा

और उतने भर से बढ़ी-चढ़ी उपलब्धियो की आशा करने वालो को निराश ही रहना पड़ेगा।

समर्थ पक्षियो के नेतृत्व मे अनेको छोटी चिड़ियाँ उड़ान भरती है। बलिष्ठ मृग के परिवार मे आश्रय पाने के लिए उसी जाति के अनेक प्राणी सम्मिलित होते जाते है। चीटियाँ कतार बनाकर चलती है। बलिष्ठ आत्मबल के होने पर दैवी शक्तियो का अवतरण आरम्भ हो जाता है और साधक क्रमश· अधिक सिद्ध स्तर का बनता जाता है। यही है वह उपलब्धि, जिसके सहारे महान प्रयोजन सधते और ऐसे गौरवास्पद कार्य बन पड़ते है, जिन्हे सामान्य स्तर के लोग प्राय: असंभव ही मानते रहते है।

बड़ी उपलब्धियो के लिए प्राय: दो मोर्चे सँभालने पड़ते है। एक यह कि अपनी निजी दुर्बलताओ को घटाना-मिटाना पड़ता है। उनके रहते मनुष्य मे आधी-चौथाई शक्ति ही शेष रह जाती है। अधिकांश तो निजी दुर्बलताओ के छिद्रो से होकर बह जाती है। जिनके लिए अपनी समस्याओ को सुलझाना ही कठिन पड़ता है, वह आपके क्षेत्र के बड़े कामो का सरजाम किस प्रकार जुटा सकेगे। भूखा व्यक्ति किसी भी मोर्चे पर जीत नही पाता। इसी प्रकार दुर्गुणी व्यक्ति स्वयं अपने लिए इतनी समस्याएँ खड़ी करता रहता है, जिनके सुलझाने मे उपलब्ध योग्यता का अधिकांश भाग खपा देने पर भी यह निश्चय नहीं होता कि अन्य महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करने के लिए कुछ सामर्थ्य बचेगी या नही।

बच्चो को लोरी गाकर सुला दिया जाता है। झूले पर हिलते रहने वाले बच्चे भी जल्दी सो जाते है। रोने वाले बच्चे को अफीम चटाकर खुमारी मे डाल दिया जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति को भी कुसंग मे, दुर्व्यसन मे आलस्य-प्रमाद का आदी बनाकर ऐसा कुछ बना दिया जाता है, मानो वह अर्धमृत या अर्धविक्षिप्त, अनगढ़ स्थिति मे रह रहा हो। ऐसे व्यक्ति पग-पग पर भूले करते और कुमार्ग पर चलते देखे जाते है। उपलब्धियो का आमतौर से ऐसे ही लोग दुरुपयोग करते और घाटा उठाते हैं, किन्तु जिनने इस अनौचित्य की हानियो को समझ लिया है, उनके लिए आत्मानुशासन कठिन नही रहता वरन् उसके मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो को उससे कही अधिक हल्की अनुभव करते है, जो कुमार्ग पर चलने वाले को पग-पग पर उठानी पड़ती है। परमार्थ कार्यों मे समय और साधनो का खर्च तो होता है, पर वह उतने दुष्परिणाम उत्पन्न नही करता, जितने कि संकीर्ण-स्वार्थपरता अपनाकर तत्काल दीखने वाले लाभो के व्यामोह मे निरन्तर पतन और पराभव ही हाथ लगता है।

हर महत्वपूर्ण कार्य के लिए प्रतिभाशाली व्यक्तित्व चाहिए, अन्यथा असावधान एवं अनगढ़ जितना कुछ कर पाते हैं, उससे अधिक हानि करते रहते है। ऐसो की न कही आवश्यकता होती है, न इज्जत और न उपयोगिता। ऐसी दशा मे उन्हे जहाँ-तहाँ ठोकरे ही खाते देखा जाता है। इसके विपरीत उन जागरूक लोगो का पुरुषार्थ है, जो पूरे मनोयोग के साथ काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाते हैं और उसमे समूची शक्ति लगाकर लक्ष्य तक पहुँचकर दिखाते है। बड़प्पन ऐसे लोगो के हिस्से मे ही आता है। बड़े काम सम्पन्न करते ऐसे ही लोग देखे जाते है, बड़ाई उन्ही के हिस्से मे आती है। साधन तो सहायक भर होते है। वस्तुत: मनुष्य की क्षमता और दक्षता उसके गुण, कर्म, स्वभाव के निखार पर निर्भर रहती है।

अध्यात्म जादूगरी नहीं है और न कही आसमान से बरसने वाले वरदान-अनुदान। देवी-देवताओं का भी यह धंधा नही है कि चापलूसी करने वालो को निहाल करते रहे और जो इनके लिए ध्यान न दे सके, उन्हे उपेक्षित रखे या आक्रोश का भाजन बनाये। वस्तुत, देवत्व आत्म-जागरण की एक स्थिति विशेष है, जिसमे अपने ही प्रसुप्त वर्चस्व को प्रयत्नपूर्वक काम मे लाया जाता है और सत्प्रयासो का अधिकाधिक लाभ उठाया जाता है।

कहते है कि भगवान शेष-शैय्या पर सोते रहते है। कुसंस्कारी लोगो के भगवान उन बचकानो की बेहूदी धमा-चौकड़ी से तंग आकर आँखे मूँदकर इसी प्रकार जान बचाते है, पर जो मनस्वी उनकी सहायता से कठिनाइयो से त्राण पाना चाहते है, उनके लिए द्रौपदी या गज की तरह उसकी कष्ट-निवारण शक्ति भी दौड़ी आती है। जिन्हे वर्चस्व प्राप्त करना होता है, उन्हे सुदामा, नरसी, विभीषण, सुग्रीव की तरह अयाचित वैभव भी प्रचुर परिमाण मे हस्तगत होता है।

इच्छाशक्ति ससार की सबसे बड़ी सामर्थ्य है। साहस भरे सकल्प बल से बढ़कर इस संसार मे और कोई बलिष्ठ नही। इन्ही को अर्जित करते जाना जीवन का वास्तविक लक्ष्य है, क्योकि स्वर्ग-मुक्ति जैसे आध्यात्मिक और ऋद्धि-सिद्धि जैसे भौतिक लाभ इसी आधार पर अब तक उपलब्ध किये जाते रहे है व आगे भी यही राजमार्ग इन उपलब्धियो के लिए खुला पड़ा है।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

सांसारिक सुख-सुविधाओ की प्राप्ति और उनके उपभोग की दृष्टि से शारीरिक बल का महत्व निर्विवाद है। रोगी और दुर्बल शरीर वालो को धरती के सुख के सारे उपहार बेकार है। उनसे उसकी परेशानियाँ ही बढ़ती है, झझट ही उत्पन्न होते है। कहा भी है—"सर्व सुखी निरोग काया" रोग रहित सशक्त शरीर सब सुखो का मूल है।

किन्तु मन का बल शरीर के बल से भी बड़ा है। इसके अभाव मे शारीरिक बल भी किसी काम का नहीं होता। देखा गया है कि उत्तम स्वास्थ्य वाले व्यक्तियो को भी जब कोई मानसिक आघात लगता है तो वे अपनी स्थिति सम्हाल नही पाते और अपने सामान्य जीवनक्रम

से गिरकर स्वय ही अपनी दशा दयनीय बना डालते है। एक व्यक्ति बड़ा धनी था। उसका स्वास्थ्य भी बड़ा अच्छा था। उन्होने जीवन मे कभी असफलता न देखी थी, कभी सफलता के लिये उन्हे सघर्ष करने की आवश्यकता भी न पड़ी थी। पैतृक व्यवसाय हाथ लग गया था, खूब अच्छे खाते-पीते और मस्त रहते थे। किसी तरह का उन्हे कोई अभाव न था।

मित्रो की सलाह पर एक दिन उन्होने काफी बड़ा सौदा कर लिया। रातो-रात भाव बदला और दूसरे दिन जब बिक्री का समय आया तो उन महाशय को पता चला कि इससे उन्हे कई लाख का घाटा हुआ। बस ! सेठ जी का दिल धड़कने लगा। हक्के-बक्के रह गये। दुबारा सही आवाज भी न निकली। विक्षिप्त से हो गये। चाहते तो उनके पास तब भी लाखो की सम्पत्ति बची हुई थी, दुबारा फिर रोजगार खड़ा कर लेते। पर सेठ जी का मनोबल इतना कमजोर था, वे स्थिति की गम्भीरता को बर्दाश्त न कर सके और पागल हो गये और इसी अफसोस मे पड़े रहने के कारण अन्त मे उनकी मृत्यु भी हो गई।

धन कोई महत्त्व की वस्तु नही। उसके आने या चले जाने से किसी का कुछ बनता-बिगड़ता भी नहीं पर मानसिक दुर्बलता के कारण उक्त महाशय को जीवन जैसी बहुमूल्य वस्तु की क्षति उठानी पड़ी।

अपने परिचय के पाठक जी है। पन्द्रह वर्ष पूर्व जब वे मिले थे उनका शरीर बड़ा दुबला-पतला था, साधारण से अध्यापक थे। पाँच व्यक्तियो का परिवार था। उनमे भी कोई न कोई आये दिन बीमार ही बना रहता था। पाठक जी कभी मिलते तो उनकी दयनीय स्थिति पर कुछ सहायता करने की इच्छा होती तो वे कहते—नही भाई ! स्थिति कमजोर है पर मेरा मन कमजोर नही, तन हारा है मन नही। आप देखिये तो सही ! मै आपको क्या करके दिखाता हूँ ?

ऐसी कमजोर स्थिति मे भी मास्टर साहब का मन कभी म्लान न हुआ, सदैव हँसते-खेलते, विनोद करते मिलते। भीतर ही भीतर उनकी योजनाये चलती रहती। बड़ी गुप्त और बड़ी ठोस योजनाये। आकाश और पाताल को उलट-पलटकर डालने वाली योजनाये।

प्राइमरी स्कूल के मास्टर साहब की स्थिति मे परिवर्तन शुरू हुआ। बी. ए किया, एम ए किया और प्रोफेसर बन गये। मस्ती तो जीवन मे थी ही। अभाव था, सो भी पूरा हो गया। अब उनकी आय चार हजार मासिक से भी अधिक है। घर-गृहस्थी ऐसी जिसे देखकर मन प्रसन्नता से भर जाय। मास्टर साहब का स्वास्थ्य ऐसा बढ़िया हो गया जैसे उन्होने वर्षो कसरत की हो। इतना बड़ा परिवर्तन क्या उनके भाग्य ने किया ? नहीं, वह तो उनका तीक्ष्ण मनोबल था, जिसने यह चमत्कार कर दिखाया।

अनिश्चयता की मनोवृत्ति रहने के कारण लोगो के उपाय कारगर नही होते। सफलता का एक आधार है व्यक्ति का मनोबल। मनुष्य के मन मे कल्पनाएँ उठे और उन्हे पूर्ण करने के प्रयत्न करने का वह साहस करे। न हिम्मत छूटे, न धैर्य टूटे, तो इच्छाएँ पूरी होती है। इससे जीवन मे आशा का संचार होता है, निराशा दूर भागती है। काम मे सफलता मिलती जाती है तो नये काम हाथ मे लेने और उन्हे पूरा करने की प्रवृत्ति जगती है।

यह सच है कि प्रत्येक सफलता मनुष्य का मनोबल बढ़ाती है पर क्रिया-क्षेत्र मे यह बात सदैव संभव नही है। संघर्ष करते हुए सफलता के साथ असफलता मिला सकती है। आशा के साथ ही निराशा की भी उत्पत्ति हो सकती है। मनोबल की परीक्षा का यही समय होता है। आशायुक्त जीवन से निरन्तरता आती है तो निराशा से निकम्मापन भी आ सकता है। यहाँ परिस्थिति न सम्भालें तो मनुष्य के सारे प्रयास व्यर्थ हो सकते है। इसलिए यह बहुत जरूरी बात है कि सफलता की आशा रखे पर साथ ही असफलता के समय धैर्य भी जाग्रत रखे। किसी भी अवस्था मे मनोबल क्षीण न हो तो रुका कदम रुका नही रहता, निराशा आशा मे बदलती और हारी बाजी फिर से जीत मे बदल जाती है।

इच्छाये करे पर यह न भूले कि उनका विकास एकाएक नही हो जाता। कुछ समय लगता है, कुछ श्रम लगता है। परिस्थितियो की अनुकूलता और प्रतिकूलता का भी विचार करना पड़ता है। इतना सब न करे तो इच्छाएँ कल्पना मात्र रह जायेगी और उनसे कोई उद्देश्य पूरा न होगा।

पहले छोटी इच्छाएँ कीजिये और उन्हे संकल्प का रूप दीजिये। एक संकल्प पूरा होगा तो आपका मनोबल बढ़ेगा, उत्साह और उल्लास जागेगा। क्रमश· अपने संकल्प का स्तर बड़ा बनाइये और इस तरह अपने मनोबल को और भी ऊँचे उठाते हुए चले जाइये। पर यह याद रहे कि संकल्प टूटना नही चाहिये, अन्यथा मन मे निराशा उत्पन्न होगी और मानसिक क्रियाशक्ति को छिन्न-भिन्न कर देगी।

उदाहरणार्थ—जब आप प्रात काल सोकर उठते है तो बिस्तर त्यागने के पूर्व आप कुछ क्षण रुकिये। स्वस्थ और चैतन्य होकर शान्त मुद्रा मे बैठिये। परमात्मा की याद कीजिये और यह भावना कीजिए कि आज का दिन आपका एक जीवन है। आज आप अपनी शक्ति का अपव्यय रोकेगे और ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। दिन-भर कामुक विचारो से बचते रहिये और अन्त तक आज का अपना प्रण पूरा कर ही जाइये। यह आपका एक छोटा सकल्प हुआ। धीरे-धीरे सकल्प के स्वरूप और उसकी अवधि को और भी चौड़ा करते रहिये। आपका मनोबल संकल्प की तौल के अनुसार बढ़ता ही जायेगा।

आत्म-विकास के इन कार्यक्रमो मे मन को व्यस्त रखिये तो वह आपके बड़े काम आयेगा, आपको बहुत लाभ देगा। ऐसा नही करेगे तो मन स्थिर नही रहेगा यह आप निश्चय जान लीजिए। मन को काम चाहिए, प्रोग्राम के बिना तो वह एक क्षण नही टिक सकता। यह नही तो आत्म-विनाश की खुराफात शुरू कर देगा। ताश-तमाशो के लिये, सैर-सपाटे के लिए, लड़ाई-झगड़ा, कानाफूसी, मजाक आदि की अश्लील दुष्प्रवृत्तियों की ओर वह तभी दौड़ता है, जब उसे कोई रचनात्मक कार्यक्रम नही मिलता। इससे सिवाय मनोबल क्षय होने के और कोई कारण नही। निर्धनता, दुर्बलता, दैन्यता आदि इसी आत्म-विनाश के फल है। इन्हे रोकिये और अपना जीवन बरबाद होने से बचाइये।

आप याद रखिये कि स्वाभिमान ऊँचा रहता है तो मनोबल भी बढ़ा हुआ होता है। हीन भावनाये रखेगे और गलत काम करेगे तो आपका स्वाभिमान कौन ऊँचा रहने देगा ? घर वाले डाँट मारेगे, अध्यापक झिड़कियाँ देगा, प्रधान फटकार लगायेगा, फैक्टरी का मालिक काम से निकाल देगा। इससे आपके अपमान हो जाने का उतना भय नही है जितना आपके दुर्बल मन हो जाने का। यदि आप ऐसा करते है तो वह आपकी *सबसे बड़ी कमजोरी होगी।*

आप छोटे होने का विचार अपने मन से निकालकर दूर फेकिए, आपके मन मे अपार सामर्थ्य है। इधर देखिए यह जो विज्ञान फैला पड़ा है, यह सब मन की शक्ति का चमत्कार है। उस शक्ति का अपमान न होने दीजिए। अपने मनोबल को सदैव दृढ़ रखिये। मन हार जाता है तो यह ससार भी दु.ख का आगार ही समझ मे आता है। आपकी सफलता, आपकी जीत आपके मन की जीत है। मन को बलवान रखना आपका धर्म है, इससे आप संसार मे बड़े काम कर सकते है, बड़ी सफलताये अर्जित कर सकते है।

सुख चाहिए किन्तु दुःख से डरिये मत

जीवन मे दु.ख, शोक और संघर्षों का आना स्वाभाविक है। इससे कोई भी जीवधारी नही बच सकता। सुख, दुःख मानव-जीवन के दो समान पहलू है। सुख के बाद दु ख और दुःख के बाद सुख आते ही रहते है। यदि कोई इतना साधन-सम्पन्न भी हो कि उसके जीवन मे किसी दु.ख, किसी अभाव अथवा किसी संघर्ष की संभावना को अवसर ही न *मिले और वह निरन्तर* अनुकूल परिस्थितियो मे मौज करता रहे, तब भी एक दिन उसका एकरस सुख ही दु ख का कारण बन जायेगा। वह अपनी एकरसता से ऊब उठेगा, थक जायेगा। उसे एक अप्रिय नीरसता घेर लेगी, जिससे उसका मन विषाद से भरकर कराह उठेगा, वह दु.खी रहने लगेगा। मानव-जीवन में दु ख-सुख के आगमन के अपने नियम को प्रकृति किसी भी अवस्था मे अपवाद नहीं बना सकती। जो सुखी है उसे दु:ख की कटुता अनुभव करनी ही होगी और इस समय जो दु:खी है उसे किसी न किसी कारण से सुख की शीतलता का अनुभव करने का अवसर मिलेगा ही।

दु:ख-सुख है क्या ? यह किसी भी मनुष्य के लिए परिस्थितियो का परिवर्तन मात्र ही है। और यदि ठीक दृष्टिकोण से देखा जाये तो परिस्थितियाँ भी दु.ख-सुख का वास्तविक हेतु नही है। वास्तविक हेतु तो मनुष्य की मनःस्थिति ही है, जो किसी परिस्थिति विशेष मे सुख-दुःख का आरोपण कर लिया करती है। बहुत बार देखा जा सकता है कि किसी समय कोई एक परिस्थिति मनुष्य को पुलकित कर देती है, हर्ष-विभोर बना देती है, तो किसी समय वही अथवा उसी प्रकार की परिस्थिति पीड़ादायक बन जाती है। यदि सुख-दुःख का निवास किसी परिस्थिति विशेष मे रहा होता तो तदनुकूल मनुष्य को हर बार सुखी या दु:खी ही होना चाहिए। एक जैसी परिस्थिति मे यह सुख-दु:ख की अनुभूति का परिवर्तन क्यो ? वह इसीलिए कि सुख-दु.ख वास्तव मे परिस्थितिजन्य न होकर मनोजन्य ही होते है।

इस सत्य के *अनुसार मनुष्य* को सुखी अथवा दु:खी होने का कारण अपने *अन्त:करण* मे ही खोजना चाहिए। परिस्थितियो को श्रेय अथवा दोष नहीं देना चाहिए। जो मनुष्य अपने दु:ख के लिये परिस्थितियो को कोसा अथवा सुख के लिये उन्हे धन्यवाद दिया करता है, वह अपनी अल्पज्ञता का ही द्योतन करता है। यह सर्वदा सत्य है कि कोई भी मनुष्य दु.ख की कामना तो करता ही नही, वह तो सदा सुख ही चाहा करता है। इसलिए उसे अपनी यह चाह पूरी करने के लिए परिस्थितियो से अधिक मन पर ध्यान देने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे *ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता, क्षोभ अथवा असन्तोष* से अभिभूत न होने देना चाहिये। इस प्रकार का निराभिभूत मानस गोमुखी गंगा जल की तरह निर्मल एव प्रसन्न होता है। मन प्रसन्न है तो ससार मे सभी ओर प्रसन्नता ही प्रसन्नता दृष्टिगोचर होगी, सुख ही सुख अनुभव होगा। तब ऐसी सहज प्रसन्नता की दशा मे परिस्थितियों के अनुकूल होने की अपेक्षा नही रहती। परिस्थितियाँ अनुकूल है, मनभावनी है तो बहुत अच्छा। परिस्थितियाँ अनुकूल नही है तब भी कोई अन्तर नही पड़ता। प्रसन्न-मन मानव उन्हे अनुकूल करने के लिए प्रयत्न करेगा, सघर्ष करेगा, पसीना *बहायेगा, मूल्य चुकायेगा, कष्ट उठायेगा* किन्तु दु.खी नहीं होगा। वह, यह सब हँसते-हँसते, प्रसन्न मनोमुद्रा मे ही करता रहेगा। उसे परिश्रम मे आनन्द आयेगा। सघर्ष मे सुख मिलेगा। असफलता पर हँसी आयेगी और सफलता का स्वागत करेगा। जीवन की विविध परिस्थितियाँ तथा विविध उपलब्धियाँ उसकी प्रसन्नता को बढ़ा ही सकती है, घटा नही सकती।

'यह सही है कि संसार का कोई मनुष्य दुःख की कामना नही करता। यदि चाहता है तो केवल सुख ही चाहता है। किन्तु एकमात्र सुख की स्वार्थपूर्ण कामना का अर्थ यह है कि दुःख-क्लेश आ जाने पर हाय-हाय करते हुए हाथ-पैर छोड़कर बैठे रहना और दुर्भाग्य अथवा नियति को कोसते रहना। इस प्रकार की निरुत्साह वृत्ति ही सुख की स्वार्थपूर्ण कामना है जो कि किसी मानव को शोभा नही देती।

एकमात्र सुख की आकांक्षा रखने वाले और दुःख-क्लेशो से भयभीत होने वाले न केवल स्वार्थी ही होते है, अपितु कायर भी होते है। कायरता मनुष्य जीवन का कलंक है। जो संघर्षो, मुसीबतो तथा आपत्तियो से डरता है, उनके आने पर निराश अथवा निरुत्साहित हो जाता है, वह और कोई बड़ा काम कर सकना तो दूर साधारण मनुष्यों की तरह साधारण जीवन-यापन भी नही कर सकता है। ससार मे न तो आज तक ऐसा कोई मनुष्य हुआ है और न आगे ही होगा, जिसके जीवन मे सदा प्रसन्नता की परिस्थितियाँ ही बनी रहे। उसे कभी दु ख-क्लेश के तप्त झोके न सहन करने पड़े हो। राजा से लेकर रंक तक और बलवान से लेकर निर्बल तक प्रत्येक प्राणी को अपनी-अपनी स्थिति मे अपनी तरह के दुःख-क्लेश उठाने पड़ते है। कभी शारीरिक कष्ट, कभी मानसिक क्लेश, कभी सामाजिक कठिनाई, कभी आर्थिक अभाव तो कभी आध्यात्मिक अन्धकार मनुष्य को सताते ही रहते है। सदा-सर्वदा कोई भी व्यक्ति कष्ट एवं कठिनाइयों से सर्वथा मुक्त नही रह सकता। तब ऐसी अनिवार्य अवस्था मे किसी प्रकार की कठिनाई आ जाने पर निराश, चिन्तित अथवा क्षुब्ध हो उठना, इस बात का प्रमाण है कि हम ससार के शाश्वत नियमो से सामंजस्य स्थापित नही करना चाहते, हम असामान्यता के प्रति हठी अथवा दुराग्रही बने रहना चाहते हैं।

सुख-सुविधा की कामना बेशक की जाये और उसके लिए अथक प्रयत्न भी, पर साथ ही कठिनाइयो का स्वागत करने के लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिए। अनुकूलता पाकर हर्षोन्मत्त हो उठना और प्रतिकूलता देखते ही रो उठना मानसिक हीनता का लक्षण है। मनोहीन मनुष्य ससार मे कुछ भी करने लायक नही होता। वह जीता जरूर है लेकिन मृतको से भी बुरी जिन्दगी। जिसका हृदय विषाद से आक्रान्त है, चिन्ताओ से अभिभूत है उसका जीना जीने मे नहीं गिना जा सकता। जिन्दगी वास्तव मे वही है, जिसमे जीने के साथ कुछ ऊँचा और अच्छा करते रहने का उत्साह सक्रिय होता रहे। यह उत्साहपूर्ण सक्रियता केवल उसी मे सम्भव है जो हर समय कठिनाइयो से लड़ने का साहस रखता है, आपत्तियो से संघर्ष करने की हिम्मत वाला है। जो व्यग्र है, त्रस्त है और निराश है, वह न केवल संसार पर ही बल्कि अपने पर भी बोझ बना हुआ श्वाँसो का भार ढोया करता है। चिन्तित तथा निराश मन स्थिति वाला व्यक्ति किसी पुरुषार्थ के योग्य नही रहता। जिसकी जड़ मे दीमक लग चुकी है अथवा जिसका मूल किसी कीड़े ने काट डाला है उस लता से, उस वृक्ष से सुन्दर फल-फूलो की आशा नही की जा सकती।

सुख-सुविधा की कामना अवश्य करिए। यह उपयुक्त है किन्तु साथ ही कठिनाइयो से लोहा लेने के लिए भी सदैव तत्पर रहिये। कठिनाइयाँ स्वयं कष्ट लेकर नही आती। वे केवल आती है आपकी मानसिक प्रसन्नता, आपकी आशा तथा आपके उत्साह पर आवरण डालने। यदि आपने उनको अपनी इन आत्म-किरणो पर परदा डाल लेने दिया तो आपके मनो-मन्दिर मे अन्धकार हो जायेगा और तब तमोजन्य निराश, क्षोभ, दुःख, भय तथा असन्तोष की अशिव भावनायें आपको तरह-तरह से ग्रस्त करने लगेगी और आप अकारण ही पीड़ित रहने लगेगे।

आशा और उत्साह मनुष्य जीवन के दो बहुत बड़े सम्बल है। मनुष्य की प्रसन्नता के यह दोनो प्रामाणिक आधार है। जो बुद्धिमान किसी भी दशा मे इनको मन्द नहीं होने देते; अभाव, दुःख, कष्ट तथा प्रतिकूलताये उस पर वैसे ही प्रभाव नही डाल पाती जैसे कवच-सज्जित शरीर पर शत्रु के बाण। कष्ट आयेगा, कठिनाई खड़ी हो जायेगी, आशा उनका सत्य स्वरूप समझने और उनके हल के लिये मार्ग दिखलायेगी, उत्साह आगे बढ़ायेगा। और बढ़ते हुए व्यक्ति का मार्ग कोई भी अवरोध रोक नही सकता। दुःख-क्लेश होता उन्ही को है जो किसी कारण से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर एक जगह ठिठके रहते है। जो ठिठककर रुकना नही जानता, वह कठिनाइयो को परास्त कर आगे निकल ही जाता है।

आशा और उत्साह की शक्ति अपरिमित है। उसका परिमाण लगाया ही नही जाता। प्राणान्तक संकट मे पड़े हुये न जाने कितने वीर व्यक्तियो ने केवल आशा और उत्साह के बल पर इतिहास-प्रसिद्ध विजयो का वरण किया है। आशा और उत्साह के अभाव मे एक नगण्य से कारण से परास्त होकर न जाने कितने व्यक्ति आत्महत्या कर लिया करते है, जबकि उनका वह दुःख, वह क्लेश अथवा वह अभाव—प्राण तो दूर, एक रोम के बलिदान योग्य भी नही होता। आशा और उत्साह का अभाव तिनके जैसी कठिनाई को पहाड़ जैसी बना दिया करता है। निराशा अन्धकार है और निरुत्साह व्याधि। अन्धेरे में एक छोटी-सी आशका प्राणलेवा बन जाया करती है और व्याधिग्रस्त व्यक्ति एक कदम आगे बढ़ने का साहस नही रखता।

दिनो, महीनो और वर्षों के संचित विषाद को आशा की एक छोटी-सी किरण क्षणभर मे दूर करके जीवन मे उल्लास तथा उत्साह का सचार कर देती है। मरणशैय्या पर पड़ा रोगी औषधि की अपेक्षा आशा के सहारे रोग या मृत्यु पर अधिक विजय पाता है। जीवन से क्षुब्ध, परेशानियो से परेशान होकर आत्महत्या को उद्यत

यदि किसी व्यक्ति को किसी संयोग से आशा की किरण मिल जाती है तो वह तुरन्त अशुभ विचार छोड़कर जीवन-पथ पर हँसता हुआ बढ़ चलता है। तिल-तिल भूमि पर बलिदान देता हुआ कोई भी योद्धा विजय की आशा से ही युद्ध-भूमि मे बढ़ता चला जाता है।

अनेक बार अनुभव किया जा सकता है कि कभी-कभी जीवन मे ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती है जिनसे जीवन का हर क्षेत्र निराशा, कठिनाइयो तथा आपत्तियों से भरा दिखाई पड़ता है। हर समय वही अनुभव होता है कि अब जीवन मे कोई सार नही रहा है, उसके अस्तित्व को हर प्रकार से खतरा पैदा हो गया है। किन्तु किसी भी माध्यम से आशा का एक प्रकाश कण दीख जाने से परिस्थिति बिल्कुल बदल जाती है और वही निराश व्यक्ति एक बार फिर कमर कसकर जीवन-संग्राम मे योद्धा की तरह उतर पड़ता है व निश्चय ही विजय प्राप्त किया करता है। हानि के धक्के अथवा असफलता के क्षोभ से जब भी किसी व्यक्ति के मरने अथवा निराश, निकम्मे हो बैठने का समाचार सुने तो समझ ले कि उसने अपनी भौतिक हानि के साथ अपनी आशा की भी हानि कर ली है, अपने उत्साह का पल्ला छोड़ दिया है।

आशा तथा उत्साह कही से लाने अथवा आने वाली वस्तु नही है। यह दोनो तेज आपके अन्तःकरण मे सदैव ही विद्यमान रहते है। हाँ, आवश्यकता के समय उनको जगाना तथा पुकारना अवश्य पड़ता है। जीवन की कठिनाइयो तथा आपत्तियो से घबराकर अपने इन अन्तरग मित्रो को भूल जाना अथवा इनका साथ छोड़ देना बहुत बड़ी भूल है। ऐसा करने का अर्थ है कि आप अपने दुर्दिनो को स्थायी बनाते है, अपनी कठिनाइयो को पुष्ट तथा व्यापक बनाते है। किसी भी अन्धकार, मे किसी भी प्रतिकूलता अथवा कठिनाई मे अपने आशा-उत्साह के सम्बन्ध को कभी मत छोड़ियेगा, कठिनाइयाँ कुछ भी नही कर सकेगी।

सुख की कामना करिये, किन्तु दुःख से डरिये नही। आशा और उत्साह के तल पर उन्हे जीतकर सुख के रूप मे बदल डालिये। चिर प्रसन्न, आशान्वित तथा उत्साहित रहिये। आपको सुख की याचना करने की आवश्यकता न होगी। वह स्वयं ही दरबान की तरह आपके जीवन की हर ड्योढ़ी पर खड़ा आपका स्वागत करता हुआ मिलेगा।

हम मुसीबतों से घबराएँ नहीं

संसार मे ऐसा कोई मनुष्य नहीं, जिसे जीवन मे कभी मुसीबतो का, विपत्तियो का सामना न करना पड़ा हो। दिन और रात के समान सुख-दुःख का काल-चक्र सदा घूमता ही रहता है। जैसे दिन के बाद रात्रि का आना अवश्यम्भावी है, वैसे ही सुख के बाद दुःख का भी आना अनिवार्य है। दुःख भी इष्टापत्ति है। इससे मनुष्य के साहस, धैर्य, सहिष्णुता और आध्यात्मिकता की परीक्षा होती है। जैसे सुवर्ण अग्नि मे तपकर अधिक सतेज बनता है, वैसे ही धैर्यवान मनुष्य विपत्तियो का साहस के साथ सामना करते हुए जीवन-संग्राम मे विजय प्राप्त करता है। विपत्तियो की हम किस तरह उपेक्षा कर सकते है और अनिवार्य होने पर उनका किस तरह मुकाबला कर सकते है, इस पर हम विचार करे।

विपत्तियाँ वास्तव मे कुछ नहीं, केवल हमारी प्रतिकूलताएँ है। हम जिन वस्तुओ की, जिन परिस्थितियो की इच्छा करते है, उनका प्राप्त न होना ही विपत्तियाँ कहलाता है। हमारी इच्छा के प्रतिकूल, हमारे स्वार्थ के प्रतिकूल जो भी बात सामने आई, उसे ही हम विपत्ति मान लेते है। यदि हम अपने स्वार्थ को, मोह-ममता को और इच्छाओ को मर्यादित और संयमित रखे तो हमे जीवन मे बहुत कम मुसीबतो का सामना करना पड़ेगा। हमारा जीवन सादा, स्वावलम्बी और सहिष्णु बनने पर विपत्तियो से हमे बहुत कम पाला पड़ेगा और यदि पाला पड़ा भी तो हम उसे हँसते हुए सहज भाव से स्वीकार कर उस पर हावी हो सकेगे।

विपत्तियाँ साहस के साथ कर्मक्षेत्र मे बढ़ने के लिए चुनौती है। हम उनसे घबराये नही। बहुत-सी मुसीबते तो केवल काल्पनिक होती है। छोटी-मोटी बातो को तूल देकर हम व्यर्थ ही अपने चारो और भय का भूत खड़ा कर लेते है। किसी भी कार्य को हाथ मे लेने के पहले ही हम उसकी असफलता का चित्र अपने मन.चक्षु के सम्मुख उपस्थित कर लेते है और केवल मजबूर होकर उस कार्य को बेमन से किया करते है। ऐसी दशा मे कार्य मे सफलता कैसे प्राप्त होगी ? और फिर असफल होने पर भाग्य को कोसते हुए निराश होकर बैठ जाते है। हमारी बहुत-सी विपत्तियाँ इसी प्रकार के हमारे अधूरे मन की उपज हुआ करती है। इनके अतिरिक्त परिस्थिति, भाग्य, अज्ञान या अन्य अनभिज्ञ कारणो से भी मनुष्य को विपत्तियो का सामना करना पड़ता है। पर यदि हम इन्हे ईश्वर द्वारा हमारी आस्तिकता, आत्म-विश्वास, धैर्य एवं सहिष्णुता की परीक्षा के लिए प्रदत्त उपकरण मानकर हँसते हुए साहस के साथ सहने का अभ्यास डाल ले तो कोई भी मुसीबत, मुसीबत नही मालूम पड़ेगी बल्कि उन्हे हम हँसी-खेल समझकर आसानी से झेलते हुए अपने कर्तव्य मार्ग पर अबाधित गति से अग्रसर होते रहेगे।

ऐसी भी कई विपत्तियाँ हो सकती है, जिनका साहसपूर्वक मुकाबला करने पर भी हमारा घोर अनिष्ट कर दे, पर हमे उसे भी ईश्वरी विधान मानकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। इससे हमारा आन्तरिक मनोबल बढ़ेगा और हम कठिन से कठिन परिस्थितियो का सामना करने की शक्ति अर्जित कर सकेगे। हमे हर परिस्थिति मे अपने मन को सन्तुलित, शान्त और स्थिर रखने का प्रयत्न करना चाहिए। हमे अपने से अधिक सम्पन्न और सुखी व्यक्तियो

को देखकर ईर्ष्यालु एवं खिन्न होने की बजाय करोड़ो अपने से अधिक साधनहीन, दु:खी एवं अभावग्रस्त लोगो की ओर देखकर संतोष मानना चाहिए कि हम पर भगवान की बड़ी दया है।

किसी वस्तु के अभाव का नाम ही विपत्ति है अंत: अभाव के लिए रात-दिन चिन्ता करते रहना व्यर्थ है। हम अपनी परिस्थिति को सुधारने का भरसक प्रयत्न करते रहें और उसके मार्ग मे. आने वाले संकटो का धैर्यपूर्वक मुकाबला करे। पर यदि प्रयत्नो के बावजूद हमारी आकाक्षा और इच्छाओ के अनुसार हमारी परिस्थिति मे किसी अज्ञात कारणवश शीघ्र वांछित परिवर्तन या सुधार नही होता है तो हमे घबराकर प्रयत्नो को नही छोड़ देना चाहिए बल्कि दुगुने उत्साह के साथ हमे अपनी उद्देश्य-प्राप्ति मे जुट जाना चाहिए। कष्ट या विपत्ति के आने पर कभी-कभी हमारी विचार शक्ति भ्रमित और कुंठित-सी हो जाती है, ऐसे समय हम अपने आत्म मित्र एवं हितचिन्तको से इस विषय मे परामर्श और मार्गदर्शन प्राप्त करने का प्रयत्न करे। सभव है, उनकी सूझबूझ और सहायता से हमारा संकट अनायास निवारण हो जाय। समस्या को हम अपने परिवार के सदस्यो के सम्मुख उपस्थित कर उनकी सलाह भी ले। इस प्रकार हमे कही-न-कही से ऐसे प्रेरक विचार मिल जायेगे, जिनके द्वारा हम अपनी कठिनाई का आसानी से निवारण कर सकेंगे।

यह जीवन एक संग्राम है। इसमे वही व्यक्ति विजय प्राप्त कर सकता है जो या तो परिस्थिति के अनुकूल अपने को ढाल लेता है या जो अपने पुरुषार्थ के बल पर परिस्थिति को बदल देता है। हम इन दोनो मे से किसी भी एक मार्ग का या समयानुसार दोनो मार्गों का उपयोग कर जीवन-संग्राम मे विजयी हो सकते है।

स्मरण रखिए ! विपत्तियाँ केवल कमजोर, कायर, डरपोक और निठल्ले व्यक्तियो को ही डराती, धमकाती और पराजित करती है और उन लोगों के वश मे रहती है जो उनसे जूझने के लिए कमर कसकर तैयार रहते है। ऐसे व्यक्ति भलीभाँति जानते है कि यह जीवन फूलो की सेज नही वरन् रणभूमि है, जहाँ हमे प्रति क्षण दुर्भावनाओ, दुष्प्रवृत्तियो और आपत्तियो से निडर होकर जूझना है। वे इस संघर्ष मे सूझबूझ से काम लेते हुए अपना जीवन-क्रम तद्नुसार ढाँचे मे ढालने का प्रयास करते रहते है और हमेशा इस बात का स्मरण रखते है कि किसी भी तात्कालिक पराजय को पराजय न माना जाय बल्कि हर हार से उचित शिक्षा ग्रहण कर नये मोर्चे पर युद्ध जारी रखा जाय और अन्तिम विजयश्री का वरण किया जाय। इस प्रकार के दृढ संकल्प वाले कर्मठ व्यक्ति कभी अपने जीवन मे निराश नही होते अपितु वे दूसरे निराश एव हताश व्यक्तियो के लिए प्रेरणा के केन्द्र बन जाते है।

बहुत से मनुष्य अकारण ही अपने मार्ग मे काल्पनिक विघ्न-बाधाओ का खयाल करते रहते है। इससे उनका मन कमजोर हो जाता है, उनमे किसी प्रकार का साहस नही रहता और उनकी बौद्धिक शक्ति भी नष्ट हो जाती है। उनका मन निषेधात्मक हो जाता है। ऐसे मनुष्यों को अपने चारो ओर विघ्न-बाधाये ही दिखाई देने लगती है। उनका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है और वे सारा जीवन रोते-झीकते निराशा मे व्यतीत करते रहते है। वास्तव मे आशा और आत्म-विश्वास ही महान शक्तियाँ है, जिनके बल पर हम अनेक महान और कठिन दिखाई देने वाले कार्यों को आसानी से एवं सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते है।

जीवन-संग्राम मे विजय प्राप्त करने के लिए अपने कार्यक्षेत्र रूपी अखाड़े मे निडर होकर खम ठोककर लड़ते रहने की आवश्यकता है। इसी तरीके से आप सभी सामान्य सकटो और विपत्तियों से लोहा लेकर उन्हे परास्त कर सकते है। राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाँधी आदि महापुरुषो के जीवन सकटों और विपत्तियों से भरे हुए थे, पर वे संकटो की तनिक भी परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य मार्ग पर अविचल और अबाध गति से अग्रसर होते रहे। फलत: वे अपने उद्दिष्ट मे सफल हुए और आज ससार उन्हे ईश्वरी अवतार मानकर पूजता है।

विपत्तियो एवं कठिनाइयो से जूझने मे ही हमारा पुरुषार्थ है। हमारे राष्ट्रनायक पं. जवाहर लाल नेहरू का कथन है 'हमेशा खतरो से भरा जीवन जियो।' बिना संकटो के मनुष्य का जीवन निखर नही सकता और न उसमे त्याग, तितिक्षा एवं सहिष्णुता का ही विकास हो पाता है। अत: कठिनाइयो को खिलवाड़ समझकर उनका हँसते-हँसते मुकाबला करना सीखिए। धैर्य की परीक्षा आपत्तिकाल मे ही होती है—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी।

आपतिकाल परखिए चारी।।

रामायण की इस चौपाई को हम अहर्निश ध्यान में रखते हुए आने वाली हर मुसीबत का निर्भीकता और दृढ़ता के साथ सामना करे। आप देखेंगे कि ज्यो ही हम विपत्तियो का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध होगे, त्यों ही विपत्तियाँ दुम दबाकर भाग खड़ी होगी, सकटो के सारे बादल छँट जायेगे और परिस्थिति निष्कटक होकर हमारे लिए अनुकूल हो जायेगी।

कठिनाइयाँ हमारे व्यक्तित्व को प्रखर बनाती हैं

कठिनाइयो का मानव-जीवन मे बड़ा महत्त्व है। यह बात सुनने मे बड़ी अजीब सी लगती है, लेकिन है

सत्य। कोई सोच सकता है कि जिन कठिनाइयो से कष्ट होता है, प्रगति मे बाधा पड़ती है, वे किसी के जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण किस प्रकार हो सकती है ? जीवन मे महत्व तो सुविधा का होता है, जिससे आराम मिलता है और प्रगति का लक्ष्य आसान होता है। यह विचार किसी हद तक सही होने पर भी अपूर्ण है। यदि कठिनाइयो के महत्व पर गहराई से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि कठिनाइयाँ मानव-जीवन की सार्थकता के लिये जरूरी है।

सोने के लिये आग का जो महत्त्व है, वही महत्व मानव-जीवन के लिये कठिनाइयो का है। सोना जब आग मे अच्छी तरह तप लेता है तभी वह पूरी तरह निखरता है और हर प्रकार से इस संसार मे अपना उचित मूल्य पाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य कठिनाइयो के बीच से गुजरता है ,तो उसकी बहुत सी कमियाँ और विकृतियाँ दूर हो जाती है। वह शुद्ध सोने जैसा खरा और मूल्यवान हो जाता है। जब तक मनुष्य पूरी तरह सुख-सुविधा मे रहता है, तब तक एक प्रकार से उसकी आँखे बन्द रहती है। अपनी मौज मे वह जो चाहता है करता रहता है। इस प्रकार के अल्हड़ जीवनयापन मे मनुष्य मे अनजाने मे ही अनेक दोष और विकार आ जाते है किन्तु उस सुख-सुविधा की स्थिति मे उसे उनका पता नही चलता। अपने उन विकारो तथा दोषो का पता उसे तभी चलता है जब किसी कठिनाई के आने पर उसकी आँखे खुलती है।

यह मानव-स्वभाव की विचित्रता ही है कि वह सुख-सुविधा के समय तो असावधानी बरतता है किन्तु मुसीबत आने पर अधिक से अधिक सावधान, शुभ तथा शुद्ध रहने का प्रयत्न करता है। बड़े-बड़े आस्तिक लोग भी सम्पत्ति की स्थिति मे ईश्वर को भूले रहते है, उन्हे सुख के नशे मे उसकी याद तक नही आती। पर जब कोई विपत्ति सिर पर आ जाती है तो वह बड़ी तत्परता से परमात्मा का स्मरण ही नही, उसकी उपासना तक करने लगता है। इस विरोधी प्रतिक्रिया को देखते हुए यही मानना होगा कि वे कठिनाइयाँ वास्तव मे बड़ी महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी है जो मनुष्य को शुद्ध-बुद्ध और आस्तिक बनने मे सहायक होती है। पावनता मानवता की विशेष शोभा है, जिसकी प्राप्ति कठिनाइयो की प्रेरणा से ही होती है। यह बात मानव-जीवन मे कठिनाइयो के महत्व का ही प्रतिपादन करती है।

किसी शस्त्र के लिये 'सान' का जो महत्त्व है वही महत्त्व मानव-जीवन मे कठिनाइयो का है। रखे अथवा पड़े रहने से हथियारो मे जंग लग जाती है। उनकी धार उतर जाती है और वे कुन्द होकर बेकार हो जाते है। किन्तु जब वे शरण पर चढ़ाकर तराश दिये जाते है तो पुन. तीव्र, प्रखर तथा शानदार होकर चमकने लगते है। उनका विकार दूर हो जाता है और वे शुद्ध तथा नए होकर उपयोगी बन जाते है। तब उनसे उनका काम बखूबी लिया जा सकता है। इसी प्रकार कठिनाइयों के चक्र पर चढ़कर, उनसे रगड़कर मनुष्य की सारी शक्तियाँ और सारे गुण प्रखर हो उठते है। उनमे नई सज-धज और नई योग्यता आ जाती है। आराम का जीवन बिताते रहने पर शक्तियो में कुण्ठा आ जाती है। अप्रयुक्त होने से वे बेकार लगती है। पर जैसे ही कोई कठिनाई अथवा मुसीबत सामने आती है, मनुष्य उससे बचने और छूटने के लिये सक्रिय हो उठता है, साथ ही उसकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियाँ भी संघर्ष मे पड़कर अपना योगदान करने लगती है। इस संघर्ष से उनकी सारी कुण्ठा और निरुपयोगिता समाप्त हो जाती है। मनुष्य हर ओर से नया और तरोताजा हो जाता है। कठिनाइयो के अवसर पर ही उसे अपनी शक्ति और गुणो का ठीक-ठीक पता चलता है। मानव-जीवन मे शक्ति तथा गुणो की सक्रियता की जो महती आवश्यकता है, उसकी पूर्ति कठिनाइयो द्वारा ही होती है।

मानव-मस्तिष्क की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि इससे ज्यो-ज्यों काम लिया जाता है वह त्यो-त्यो अधिक प्रौढ़, प्रबुद्ध तथा शक्तिशाली होता जाता है। इसके विपरीत ज्यो-ज्यो इसे आराम दिया जाता है, त्यो-त्यों सुस्त और चेतनाहीन होता जाता है। सुख-सुविधा के समय तो मनुष्य निष्क्रिय होकर आलस्य मे पड़ा रहता है। उसे प्राय: न किसी बात पर सोचने की जरूरत होती है और न मगज मारने की। ऐसी दशा मे मस्तिष्क का सुस्त और कुण्ठित होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कठिनाई तथा विपत्ति के अवसर पर स्थिति बिल्कुल भिन्न होती है। उस दशा मे मुसीबत से बचने और कठिनाई को हल करने के लिये उसे बहुत कुछ सोचना, विचारना, योजना और कार्यक्रम बनाने पड़ते है। मस्तिष्क को हर समय सक्रिय तथा कार्यरत रखना पड़ता है। इस बौद्धिक परिश्रम से उसका मस्तिष्क बड़ा ही विचारक, निर्णायक तथा विवेकवान बन जाता है। मानव-प्रगति के लिये जिस विवेकशीलता, विचारशीलता और निर्णय शक्ति की आवश्यकता होती है, वह कठिनाइयो की कृपा से सहज ही पूरी होती रहती है।

किन्तु कठिनाइयो से यह सब लाभ होता उन्ही लोगो को है जो उनका सहर्ष स्वागत करता है, डटकर उनसे लोहा लेता है और उन्हे परास्त करने मे गौरव और पुरुषार्थ की सार्थकता समझता है। ऐसे धीर तथा बुद्धिमान व्यक्ति के लिये कठिनाइयाँ उसी प्रकार हितैषिनी होती है जिस प्रकार अखाड़े का वह गुरु जो अपने शिष्यो को रगड़-रगड़कर मजबूत तथा पकड़ लड़ने मे दक्ष बनाता है। कायर और भीरु व्यक्ति के लिये मुसीबत वास्तव मे मुसीबत ही होती है। जो कठिनाई अथवा आपत्ति को देखकर भयभीत हो जाते है, जिनका मन-मस्तिष्क निराशा से अधेरा हो जाता है, कर्तव्यमूढ़ता से जिनके हाथ-पैर रुक जाते है, साहस और शक्ति

जवाब दे जाती है, वे निश्चय ही उसके शिकार बनकर बरबाद हो जाते है। कायर मनुष्य की कठिनाइयाँ नहीं बल्कि उनके प्रति उसका भय ही उसे खा जाता है। जो कठिनाइयों से हार मान लेते है, वे निश्चय ही जीवन का दाँव हार जाते है और जो उनकी चुनौती स्वीकार कर खम ठोककर उद्यत हो जाते है वे उन्हे निश्चय ही परास्त कर देते हैं।

कठिनाइयो का वास्तविक स्वरूप क्या है इसकी व्याख्या दार्शनिक 'चुर्निंग तो हांग' ने ठीक ही की है। वे लिखते हैं—"कठिनाई एक विशालकाय, भयंकर आकृति के किन्तु कागज के बने हुए शेर के समान होती है। जिसे दूर से देखने पर बड़ा डर लगता है, पर एक बार जो साहस करके उसके पास पहुँच जाता है, वह उसकी इस असलियत को जान लेता है कि वह केवल एक कागज का खिलौना मात्र ही है।"

कठिनाइयाँ वास्तव मे कागज के शेर के समान ही होती है। वे दूर से देखने पर बड़ी ही डरावनी लगती है। इस भ्रमजन्य डर के कारण ही मनुष्य उन्हे देखकर भाग पड़ता है। पर जो एक बार साहस कर उनको उठाने के लिए तैयार हो जाता है, वह इस सत्य को जान जाता है कि कठिनाइयाँ जीवन की सहज प्रक्रिया का अग होने के सिवाय और कुछ नही होती। ससार मे सम्पत्ति-विपत्ति, लाभ-हानि, सुख-दुःख का जोड़ा दिन-रात की तरह एक-दूसरे से बँधे घूमते रहते है। इस द्वन्द्व चक्र से ससार मे कोई नही बच सकता। हम साधारण लोगो की बात ही क्या ? बड़े-बड़े महापुरुष भी कठिनाइयो और विपत्तियो से न बच सके। सर्व साधनसम्पन्न राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसे लोग तक विपत्ति के चक्र से नही बच सके। कठिनाइयाँ मानव-जीवन की सामान्य प्रक्रिया का ही एक अंग है। जो संसार मे जन्मा है, उसे कठिनाइयो का सामना करना ही पड़ेगा। ऐसी अनिवार्य स्थिति से घबराना अथवा भयभीत होना बुद्धिमानी नही है। बुद्धिमानी है विपत्तियो तथा कठिनाइयो से लड़ने और उन पर विजय पाने मे।

जो चेतन है, विवेकवान और जीवनपूर्ण है, वह मनुष्य जीवन और उन्नति करने के लिये अवश्य ही जिज्ञासा करता है। प्रायः सभी मनुष्य अपने को चेतन तथा जीवन्त मानते है और सभी जीवन मे कुछ न कुछ उन्नति करने के लिए उत्सुक रहते है। लेकिन ससार मे ऐसे मनुष्यों की संख्या अधिक नही होती जो किसी उल्लेखनीय शिखर पर पहुँचते है। ऐसा केवल इसलिए होता है कि सब मनुष्य समान रूप से न तो पुरुषार्थ करते है और न कठिनाइयो से टक्कर लेने का साहस रखते है। उन्नति का पथ सरल अथवा सुगम नही होता। उसमे पग-पग पर विघ्न-बाधाओ का सामना करना पड़ता है। श्रेय की प्राप्ति, परिश्रम तथा संघर्ष द्वारा होती है। संसार का ऐसा कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नही जो कठिनाई उठाए बिना ही पूर्ण हो जाए। जिसमे कठिनाई सहने और विपत्ति से लड़ने का साहस होता है, वह ही सफलता के उन्नत शिखर पर पहुँच जाता है। जिन-जिन ने अपने जीवन मे आपत्तियो का सामना किया है, कठिनाइयो के बीच से अपना अभियान आगे बढ़ाया है वे ही महान कार्य कर सके और महापुरुष कहला सके।

महापुरुषत्व का प्रमाण इस बात मे नही कि कोई किस ऊँचे स्थान पर पहुँच सका है। महापुरुषत्व का प्रमाण इस बात मे है कि उस स्थान पर पहुँचने मे किसने कितनी कठिनाई उठाई, कितनी आपत्तियो और प्रतिकूलताओ से संग्राम किया और उनको परास्त किया। जो पद अथवा प्रतिष्ठा जितनी आसानी से मिल जाती है वह उतनी ही सस्ती और कम महत्त्व की होती है। आज अमेरिका का प्रेसीडेण्ट कोई न कोई व्यक्ति हर पाँच साल बाद होता रहता है किन्तु उस सर्वोच्च पद पर हर व्यक्ति उतना महान नही समझा जा सकता जितने कि जार्ज वाशिंगटन और अब्राहम लिंकन माने जायेगे। आज सामान्यतः राष्ट्र के उस सर्वोच्च पद पर पहुँचने वाला व्यक्ति महत्वपूर्ण तो हो सकता है लेकिन महापुरुष नही। उस श्रेणी मे महापुरुष जार्ज वाशिंगटन अथवा अब्राहम लिंकन ही माने जा सकते है। इस अन्तर का कारण केवल यही है कि जार्ज वाशिंगटन ने अपने पूरे जीवन को लगाकर और अपार संघर्ष करने के बाद अमेरिका का निर्माण तथा संचालन किया था। अब्राहम लिंकन और उस पद मे जमीन आसमान का अन्तर था। तथापि सब साधनहीन एक लकड़हारे के बेटे लिंकन ने अपने पुरुषार्थ, अध्यवसाय तथा लगन के साथ ही असंख्यो बाधाओ, विपत्तियो, असफलताओ, विरोधो, सकटो और कठिनाइयो के बावजूद भी न हिम्मत हारी, न भय माना और न निराशा को पास आने दिया। वे निरन्तर श्रेय पथ पर विरोध-बाधाओ से लड़ते हुए आगे बढ़ते गए और राष्ट्र के उस सर्वोच्च पद पर पहुँचे जो उनकी स्थिति को देखते हुए असम्भव कहा जा सकता था। महापुरुषत्व का मानदण्ड पद अथवा स्थिति नही है, उसका मानदण्ड वह कठिनाई तथा विपत्ति है जो वहाँ तक पहुँचने मे आई होती है। अपने श्रेय पथ पर जो जितना ही कष्ट-सहिष्णु और साहसी रहता है, जितनी अधिक कठिनाइयाँ सहन कर सफलता पाता है, वह उसी अनुपात से महापुरुष माना जाता है।

श्रेय पथ पर कठिनाइयो का आना बहुत जरूरी है। यदि उन्नति और प्रगति का पथ सरल हो, श्रेय और लक्ष्य यो ही आसानी से मिल जाया करें तो उसका कोई महत्त्व ही न रह जाये। वह तो पकी-पकाई रोटी खा लेने के समान ही सस्ता और सामान्य काम हो जाए। ऐसी सरल सफलता पाने पर उसमे न तो आनन्द का लेश रह जाएगा और न वह आत्म-गौरव जो इस स्थिति मे

सत्य। कोई सोच सकता है कि जिन कठिनाइयो से कष्ट होता है, प्रगति मे बाधा पड़ती है, वे किसी के जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण किस प्रकार हो सकती है ? जीवन मे महत्व तो सुविधा का होता है, जिससे आराम मिलता है और प्रगति का लक्ष्य आसान होता है। यह विचार किसी हद तक सही होने पर भी अपूर्ण है। यदि कठिनाइयो के महत्त्व पर गहराई से विचार किया जाय तो पता चलेगा कि कठिनाइयाँ मानव-जीवन की सार्थकता के लिये जरूरी है।

सोने के लिये आग का जो महत्त्व है, वही महत्त्व मानव-जीवन के लिये कठिनाइयो का है। सोना जब आग मे अच्छी तरह तप लेता है तभी वह पूरी तरह निखरता है और हर प्रकार से इस ससार में अपना उचित मूल्य पाता है। इसी प्रकार जब मनुष्य कठिनाइयो के बीच से गुजरता है ,तो उसकी बहुत सी कमियाँ और विकृतियाँ दूर हो जाती है। वह शुद्ध सोने जैसा खरा और मूल्यवान हो जाता है। जब तक मनुष्य पूरी तरह सुख-सुविधा मे रहता है, तब तक एक प्रकार से उसकी आँखे बन्द रहती है। अपनी मौज मे वह जो चाहता है करता रहता है। इस प्रकार के अल्हड़ जीवनयापन मे मनुष्य मे अनजाने मे ही अनेक दोष और विकार आ जाते है किन्तु उस सुख-सुविधा की स्थिति मे उसे उनका पता नही चलता। अपने उन विकारो तथा दोषो का पता उसे तभी चलता है जब किसी कठिनाई के आने पर उसकी आँखे खुलती है।

यह मानव-स्वभाव की विचित्रता ही है कि वह सुख-सुविधा के समय तो असावधानी बरतता है किन्तु मुसीबत आने पर अधिक से अधिक सावधान, शुभ तथा शुद्ध रहने का प्रयत्न करता है। बड़े-बड़े आस्तिक लोग भी सम्पत्ति की स्थिति मे ईश्वर को भूले रहते है, उन्हे सुख के नशे मे उसकी याद तक नही आती। पर जब कोई विपत्ति सिर पर आ जाती है तो वह बड़ी तत्परता से परमात्मा का स्मरण ही नही, उसकी उपासना तक करने लगता है। इस विरोधी प्रतिक्रिया को देखते हुए यही मानना होगा कि वे कठिनाइयाँ वास्तव मे बड़ी महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी है जो मनुष्य को शुद्ध-बुद्ध और आस्तिक बनने मे सहायक होती है। पावनता मानवता की विशेष शोभा है, जिसकी प्राप्ति कठिनाइयो की प्रेरणा से ही होती है। यह बात मानव-जीवन मे कठिनाइयो के महत्त्व का ही प्रतिपादन करती है।

किसी शस्त्र के लिये 'सान' का जो महत्त्व है वही महत्त्व मानव-जीवन मे कठिनाइयों का है। रखे अथवा पड़े रहने से हथियारो मे जग लग जाती है। उनकी धार उतर जाती है और वे कुन्द होकर बेकार हो जाते है। किन्तु जब वे शरण पर चढ़ाकर तराश दिये जाते है तो पुन: तीव्र, प्रखर तथा शानदार होकर चमकने लगते है। उनका विकार दूर हो जाता है और वे शुद्ध तथा नए होकर उपयोगी बन जाते है। तब उनसे उनका काम बखूबी लिया जा सकता है। इसी प्रकार कठिनाइयो के चक्र पर चढ़कर, उनसे रगड़कर मनुष्य की सारी शक्तियाँ और सारे गुण प्रखर हो उठते है। उनमें नई सज-धज और नई योग्यता आ जाती है। आराम का जीवन बिताते रहने पर शक्तियो मे कुण्ठा आ जाती है। अप्रयुक्त होने से वे बेकार लगती हैं। पर जैसे ही कोई कठिनाई अथवा मुसीबत सामने आती है, मनुष्य उससे बचने और छूटने के लिये सक्रिय हो उठता है, साथ ही उसकी शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियाँ भी संघर्ष मे पड़कर अपना योगदान करने लगती है। इस संघर्ष से उनकी सारी कुण्ठा और निरुपयोगिता समाप्त हो जाती है। मनुष्य हर ओर से नया और तरोताजा हो जाता है। कठिनाइयो के अवसर पर ही उसे अपनी शक्ति और गुणो का ठीक-ठीक पता चलता है। मानव-जीवन मे शक्ति तथा गुणो की सक्रियता की जो महती आवश्यकता है, उसकी पूर्ति कठिनाइयो द्वारा ही होती है।

मानव-मस्तिष्क की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि इससे ज्यो-ज्यो काम लिया जाता है यह त्यो-त्यो अधिक प्रौढ़, प्रबुद्ध तथा शक्तिशाली होता जाता है। इसके विपरीत ज्यो-ज्यो इसे आराम दिया जाता है, त्यो-त्यो सुस्त और चेतनाहीन होता जाता है। सुख-सुविधा के स[illegible] तो मनुष्य निष्क्रिय होकर आलस्य मे पड़ा रहता है। प्राय. न किसी बात पर सोचने की जरूरत होती है न मगज मारने की। ऐसी दशा मे मस्तिष्क का [illegible] और कुण्ठित होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कठिनाई विपत्ति के अवसर पर स्थिति बिल्कुल भिन्न होती है दशा मे मुसीबत से बचने और कठिनाई को हल के लिये उसे बहुत कुछ सोचना, विचारना, योज[illegible] कार्यक्रम बनाने पड़ते है। मस्तिष्क को हर समय तथा कार्यरत रखना पड़ता है। इस बौद्धिक प[illegible] उसका मस्तिष्क बड़ा ही विचारक, निर्णा[illegible] विवेकवान बन जाता है। मानव-प्रगति के [illegible] विवेकशीलता, विचारशीलता और निर्णय [illegible] आवश्यकता होती है, वह कठिनाइयो की कृप[illegible] ही पूरी होती रहती है।

किन्तु कठिनाइयो से यह सब लाभ लोगो को है जो उनका सहर्ष स्वागत करत[illegible] उनसे लोहा लेता है और उन्हे परास्त क[illegible] और पुरुषार्थ की सार्थकता समझता है। [illegible] बुद्धिमान व्यक्ति के लिये कठिनाइयाँ उसी [illegible] होती हैं जिस प्रकार अखाड़े का वह [illegible] शिष्यो को रगड़-रगड़कर मजबूत तथा पक्[illegible] बनाता है। कायर और भीरु व्यक्ति के वास्तव मे मुसीबत ही होती है। जो आपत्ति को देखकर भयभीत हो ज[illegible] मन-मस्तिष्क निराशा से अधेरा हो जाता से जिनके हाथ-पैर रुक जाते है, स[illegible]

अन्त:करण मे अपार सन्तोष और आनन्द भरा रहता है। कस्तूरी के हिरन को अपनी नाभि की महक से दसो दिशाएँ सुगन्धित दीखती है। यही स्वर्ग है। दर्पण मे अपना ही प्रतिबिम्ब दीखता है। अपनी सज्जनता बाहर के लोगो की श्रद्धा, सहानुभूति एव सहायक योगदान लेकर वापस लौटती है। ऐसे व्यक्ति घटिया व्यक्तियो, वस्तुओ तथा परिस्थितियो के बीच भी उल्लास भरा वातावरण विनिर्मित कर लेते है। यही स्वर्ग का सृजन हुआ। सन्त **इमर्सन** कहा करते थे—"मुझे नरक मे भेज दो, मै वहीं अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।" इस कथन मे ठोस सत्य भरा हुआ है। सज्जन अपनी प्रखर उत्कृष्टता के सहारे सम्पर्क मे आने वाले हर जड़ चेतन को अपने अनुरूप बहुत कुछ बदल लेते है। यदि अभीष्ट परिवर्तन न हो सके तो वे अपने व्यवहार को मैत्री, करुणा, उपेक्षा की त्रिविधि नीति अपनाकर कामचलाऊ ताल-मेल बिठा लेते हैं। सुविकसित लोगो के साथ मैत्री, दु:खियो के साथ करुणा और अवांछनीय लोगो के साथ उपेक्षा का व्यवहार करते हुए टकराव बच सकता है और अपनी सौम्य प्रवृत्ति सुरक्षित रह सकती है।

ठीक इसी प्रकार नरक का सृजन है। दुर्बुद्धि वाले मनुष्य अपनी दूषित दृष्टि और दुष्प्रवृत्तियो के कारण अच्छे वातावरण के बीच भी विक्षोभ उत्पन्न करते है। तंग करने पर भोली गाय भी लात मारती है। अनुचित छेड़खानी करने पर सरल लोगों को भी क्रोध आता है और वे भी कठोरता बरतने पर उतारू हो जाते है।

अपने से अधिक सम्पन्न लोगो के साथ तुलना करने पर दरिद्रता लदी दीखेगी और दुर्भाग्य का दु:ख होगा। इसके विपरीत यदि अपने से अभावग्रस्त लोगों अथवा कठिनाइयो से संत्रस्तो के साथ तुलना की जाय तो फिर अपनी स्थिति पर सन्तोष व्यक्त करते और ईश्वर को धन्यवाद देते ही बनेगा। दरिद्रता और सम्पन्नता स्वयं में कुछ भी नही। वे सापेक्ष है। ऊँची स्थिति से तुलना करते हुए हम दरिद्र बन जाते है और गिरी स्थिति के मुकाबले में सम्पन्न लगते है। इस तुलना मापदण्ड मे थोड़ा हेर-फेर करके कोई भी दरिद्र अपने को सम्पन्न और कोई भी सम्पन्न अपने को दरिद्र अनुभव कर सकता है।

परिस्थितियाँ नही, मन:स्थिति ही हमे नरक मे डुबोती है और स्वर्ग के शिखर पर चढ़ाती है। नरक को नीचे पाताल मे बताया गया है और स्वर्ग को ऊपर आसमान मे। इसका तात्पर्य इतना ही है कि पतित और निष्कृष्ट व्यक्तित्व अपनी दुर्भावनाओ और दुष्प्रवृत्तियो के कारण दु:खद अनुभूतियो और परिस्थितियो से घिरा रहता है और यमदूतो द्वारा उत्पीड़न दिये जाने जैसी पीड़ा सहता है। यह यमदूत और कोई नही अपने ही कुविचार है। अपना आपा ही नरक है। गया-गुजरा स्तर भीतर ही भीतर जलता है और बाहर से प्रतिकूलताएँ सहता है। यही यमदूतो का दण्ड प्रहार है।

ठीक इसी प्रकार स्वर्ग का सृजन भी मनुष्य के अपने हाथ मे है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाकर कोई भी मनुष्य आन्तरिक प्रसन्नता और बाहर से सज्जनो का सद्भाव-सम्पन्न सहयोग पाकर यह अनुभव कर सकता है कि वह स्वर्गीय आनन्द का रसास्वादन कर रहा है। उर्ध्व गमन ही स्वर्गारोहण है। पाण्डव इसी शान्त शीतलता की तलाश मे हिमालय की चोटियो पर चढ़े थे। इस उपाख्यान मे यह अलंकार व्यक्त किया गया है कि जितनी अधिक मात्रा मे उत्कृष्टता अपनाई जायेगी, अपनी स्थिति दूसरों की तुलना मे उतनी ही ऊँची उठ जायेगी और उतनी ही मात्रा मे शान्त-शीतलता का अनुभव होगा। स्वर्ग इसी प्रकार पाया जाता है।

दूसरे सहायता तो करते है, पर वह उसी दिशा मे होती है जिसमे कि अपना प्रवाह बहता है। यदि अपनी दिशा पतन की ओर चल रही है और दुर्गुणो, दुर्व्यसनों मे लिप्त है तो उसी प्रकृति के लोग अपने इर्द-गिर्द जमा होते चले जायेगे और पतन की गति और भी तीव्र बनाने मे पूरी-पूरी सहायता करेगे। इसके विपरीत यदि अपनी यात्रा सदुद्देश्य की दिशा मे सत्प्रवृत्तियाँ अपनाये हुए चल रही है तो उस स्तर के सहयोगियो की भी कमी न रहेगी। श्रेष्ठ, सज्जन ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने का मार्ग-दर्शन एव सहयोग देने के लिए भी कही न कही से मिल ही जायेगे। इस प्रकार अपने प्रयास की सफलता और भी सरल हो जायेगी। पतन और उत्थान में से किसी एक को चुनना अपना काम है। जैसा निश्चय होगा उसी के अनुरूप चुम्बकत्व उत्पन्न होगा और उसी स्तर के सहयोगियो को आमन्त्रित करके प्रगति-क्रम मे तीव्रता उत्पन्न कर लेगा।

दूसरो से सहयोग की अपेक्षा करने मे कोई हर्ज नही, वह मिलता भी है और मिलना भी चाहिए। पर एक बात सदा ध्यान मे रखकर चलना होगा कि अपने स्तर के अनुरूप ही यह बाहरी सहयोग जुटाया जा सकेगा। रात भर भले ही पानी बरसता रहे, पर अपने को उसका उतना ही लाभ मिलेगा, जितना बड़ा बर्तन पास मे हो। पात्रता से अधिक बाहरी सहायता मिलती भी कहाँ है ? दरिद्र, भिखारियो को कौन सोने की मुहरे बाँटता है, उनके पल्ले दो-पाँच पैसे के सिक्के ही पड़ते है। इसके विपरीत महत्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रभावशाली व्यक्ति, प्रयोजन की गरिमा समझाकर लाखो रुपया चन्दा इकट्ठा कर लेते हैं। जो दानी, घिनौने, भिखमगे को उपेक्षापूर्वक दस पैसे का सिक्का फेकता है, वही व्यक्ति दूसरे सत्पात्र को खुशी-खुशी सौ रुपये का नोट थमा देता है। इस अन्तर मे दानी की उदारता को न्यूनाधिक के रूप मे नही, प्राप्तकर्ता की पात्रता को, घट-बढ़ को ध्यान मे रखते हुए समझा जाना चाहिए।

अपेक्षित हो जाता है। लक्ष्य का महत्त्व कठिनाइयों से और पुरुष का गौरव उनको पार कर लक्ष्य पाने मे ही होता है।

कठिनाइयो का मानव-जीवन मे बड़ा महत्त्व तथा उपयोग है। किसी को उनसे घबराना नही चाहिए। उन्हे कागज का शेर समझकर, टक्कर लेनी और विजय पाने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। कठिनाइयाँ ही मानव को महामानव और पुरुष को महापुरुष बनाती है।

अपने भाग्य-भविष्य का निर्माण हम स्वयं ही करते हैं

दूसरो की सहायता से अपनी सुविधाएँ बढ़ती है और उनके असहयोग एवं आक्रमण से अपनी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध होता है, विद्वेषी लोग विपत्ति खड़ी करते है और सहयोगी सुखद सम्भावनाएँ उत्पन्न करते है; यह तथ्य सर्वविदित है। इसलिए हर किसी की इच्छा यही रहती है कि उसके सहयोगी बढ़ते रहे और विद्वेषी घटते जायँ। इस स्वाभाविक आकांक्षा की पूर्ति का जो सही तरीका है, उससे बहुत कम लोग परिचित होते है। यही बहुत बड़े दुर्भाग्य की बात है। अनुभवहीन प्रयास मे भटकते हुए पैर कही से कही जा पहुँचते है और भटकाव के कारण उल्टे उलझन मे फँसते तथा कष्ट सहते है।

संसार का सुस्थिर, सनातन, शाश्वत नियम यह है कि व्यक्ति का स्तर अपने स्तर की ओर आकर्षित होता है और आकर्षित करता है। चुम्बक लोहे के टुकड़ो को अपनी ओर खीचता है और लौह चूर्ण चुम्बक की ओर दौड़ता है। चोरो के पास चोर, जुआरियो के पास जुआरी, नशेबाजो के पास नशेबाज ढूँढ़ते-टटोलते जा पहुँचते है और परस्पर घुल-मिलकर अपने ढग का ताना-बाना बुनते है। ठीक यही बात साधु, सज्जन, सद्गुणी लोगो के सम्बन्ध मे लागू होती है। उनके भी सत्सग जुड़ते और जमाते बनती है और सदुद्देश्य पूरा करने वाली योजनाओ को कार्यान्वित करने के प्रयास चलते है। उस समूह मे भी सहयोगियो की संख्या बढ़ती ही जाती है। दूसरी ओर चोर, दुराचारियो के गिरोह भी बढ़ते और मजबूत होते जाते है। यह समान स्तर के लोगो का समान स्तर वालो के साथ जुड़ते-घुलते जाने के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

धातुओ की खदाने क्रमश: बढ़ती ही जाती है। इसका कारण यह है जहाँ जितनी धातु जमा होती है, वहाँ उस स्तर का उतना ही चुम्बकत्व बढ़ता है और वह अपने सजातीय धातु कणो को दूर-दूर तक धूलि मे पड़े बिखरे होने पर भी प्रभावित करता है। उस आकर्षण से वे खिंचते चले जाते है और जहाँ धातु की खदान थी, वहाँ इकट्ठे होते रहते है। खदाने इसी आधार पर दिन-दिन विस्तृत होती रहती है। यह सिद्धान्त मनुष्यो पर भी लागू होता है। उनका आन्तरिक चुम्बकत्व सजातियों को अपनी ओर खीचता रहता है और तरह-तरह के समूह बनते रहते है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप जिस स्तर का व्यक्तित्व विनिर्मित होता है, उसी प्रकार के व्यक्ति घनिष्ठ बनते चले जाते है और फिर उनके संयोग से जो प्रतिक्रिया होनी चाहिए वह होती है। दुष्ट-दुर्जनो के मिलने पर एक प्रकार की हलचले उत्पन्न होती है और स्नेही, सज्जनो का सद्भाव सम्पन्न आदान-प्रदान चल पड़ता है। देखने मे यह दोनो परिस्थितियाँ एक दूसरे से भिन्न है और ईश्वरीय कोप अथवा अनुग्रह का परिचय देती है। तो भी वे एक ही क्रम व्यवस्था के कारण उत्पन्न हो रही होती है। अपना दूषित व्यक्तित्व दूसरे दुर्जनो को एकत्रित कर रहा होता है अथवा अपनी सज्जनता दूसरे सज्जनो को आमन्त्रित करने मे जुटी होती है। एक स्थिति मे विग्रह और अनाचार उत्पन्न होता है, दूसरी मे स्नेह, सहयोग की वर्षा होती है। यह भिन्नताएँ अपनी भीतरी स्थिति की ही प्रतिध्वनियाँ-प्रतिच्छाया है, मालूम ऐसी होती है मानो कही बाहर से वे अप्रत्याशित रूप से आ धमकी है।

हर मनुष्य के अन्दर कुछ न कुछ अच्छाई और कुछ न कुछ बुराई पाई जायेगी। उनमे से जिस भी अश का हम स्पर्श करेगे, वही अपने लिए फलप्रद बन जायेगी। गाय दूध भी देती है और गोबर भी। अपनी रुचि जिसमे होगी, वही खोजा जायेगा और वही मिलेगा। बगीचे मे फूल भी रहते है और गन्दगी भी। भौरे फूलो का आनन्द लेते है, गुबरीले कीड़ो को सारे उद्यान मे गन्दगी के ही ढेर लगे मिलते हैं। अपनी रुचि के अनुरूप हम किसी भी व्यक्ति के दुर्गुणो के, सद्गुणो के सम्पर्क में आते है और उसी के सम्पर्क की प्रतिक्रिया अनुभव करते है। हरा चश्मा पहन लेने पर हर वस्तु हरे रंग की दीखती है, पर उसे बदलकर लाल रग का पहन ले तो सब कुछ लाल रंग का दिखाई पड़ने लगेगा। चश्मे की तरह ही दृष्टिकोण का प्रभाव होता है। सन्त, सज्जन इस ससार को विराट् ब्रह्म के रूप मे देखते है और "सियाराम मय सब जग जानी" की भावना से लोक-मंगल मे निरत रहते है। इसके विपरीत दोष दृष्टि भरी रहने से यह विश्व भव-सागर दिखाई पड़ता है और सर्वत्र पाप-अनाचार की असुरता, आधि-व्याधि की बहुलता ही दिखाई पड़ती है।

स्वर्ग किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। किसी लोक विशेष मे वैसी इमारते या परिस्थितियाँ नहीं है जैसी कि स्वर्ग का वर्णन करते हुए कथा-पुराणो मे बताई गई है। न किसी ग्रह-नक्षत्र मे वैसा नरक है जैसा यमदूतों द्वारा उत्पीड़न दिये जाने के कथा-विवरणो मे बताया जाता है। इन दोनो का अस्तित्व इसी लोक मे है और हर व्यक्ति के दांये-बाये साथ-साथ चलता है। जब चिन्तन की धारा उत्कृष्ट और क्रिया-प्रक्रिया आदर्श होती है तो

अन्तःकरण मे अपार सन्तोष और आनन्द भरा रहता है। कस्तूरी के हिरन को अपनी नाभि की महक से दसो दिशाएँ सुगन्धित दीखती है। यही स्वर्ग है। दर्पण मे अपना ही प्रतिबिम्ब दीखता है। अपनी सज्जनता बाहर के लोगो की श्रद्धा, सहानुभूति एवं सहायक योगदान लेकर वापस लौटती है। ऐसे व्यक्ति घटिया व्यक्तियो, वस्तुओ तथा परिस्थितियो के बीच भी उल्लास भरा वातावरण विनिर्मित कर लेते है। यही स्वर्ग का सृजन हुआ। सन्त **इमर्सन** कहा करते थे—"मुझे नरक मे भेज दो, मै वहीं अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।" इस कथन मे ठोस सत्य भरा हुआ है। सज्जन अपनी प्रखर उत्कृष्टता के सहारे सम्पर्क मे आने वाले हर जड़ चेतन को अपने अनुरूप बहुत कुछ बदल लेते है। यदि अभीष्ट परिवर्तन न हो सके तो वे अपने व्यवहार को मैत्री, करुणा, उपेक्षा की त्रिविधि नीति अपनाकर कामचलाऊ ताल-मेल बिठा लेते है। सुविकसित लोगो के साथ मैत्री, दुःखियो के साथ करुणा और अवांछनीय लोगो के साथ उपेक्षा का व्यवहार करते हुए टकराव बच सकता है और अपनी सौम्य प्रवृत्ति सुरक्षित रह सकती है।

ठीक इसी प्रकार नरक का सृजन है। दुर्बुद्धि वाले मनुष्य अपनी दूषित दृष्टि और दुष्प्रवृत्तियो के कारण अच्छे वातावरण के बीच भी विक्षोभ उत्पन्न करते है। तंग करने पर भोली गाय भी लात मारती है। अनुचित छेड़खानी करने पर सरल लोगो को भी क्रोध आता है और वे भी कठोरता बरतने पर उतारू हो जाते हैं।

अपने से अधिक सम्पन्न लोगो के साथ तुलना करने पर दरिद्रता लदी दीखेगी और दुर्भाग्य का दुःख होगा। इसके विपरीत यदि अपने से अभावग्रस्त लोगो अथवा कठिनाइयो से सत्रस्तो के साथ तुलना की जाय तो फिर अपनी स्थिति पर सन्तोष व्यक्त करते और ईश्वर को धन्यवाद देते ही बनेगा। दरिद्रता और सम्पन्नता स्वयं में कुछ भी नही। वे सापेक्ष है। ऊँची स्थिति से तुलना करते हुए हम दरिद्र बन जाते है और गिरी स्थिति के मुकाबले में सम्पन्न लगते है। इस तुलना मापदण्ड मे थोड़ा हेर-फेर करके कोई भी दरिद्र अपने को सम्पन्न और कोई भी सम्पन्न अपने को दरिद्र अनुभव कर सकता है।

परिस्थितियाँ नही, मनःस्थिति ही हमे नरक मे डुबोती है और स्वर्ग के शिखर पर चढ़ाती है। नरक को नीचे पाताल मे बताया गया है और स्वर्ग को ऊपर आसमान मे। इसका तात्पर्य इतना ही है कि पतित और निष्कृष्ट व्यक्तित्व अपनी दुर्भावनाओ और दुष्प्रवृत्तियो के कारण दुःखद अनुभूतियो और परिस्थितियो से घिरा रहता है और यमदूतो द्वारा उत्पीड़न दिये जाने जैसी पीड़ा सहता है। यह यमदूत और कोई नही अपने ही कुविचार है। अपना आपा ही नरक है। गया-गुजरा स्तर भीतर ही भीतर जलता है और बाहर से प्रतिकूलताएँ सहता है। यही यमदूतों का दण्ड प्रहार है।

ठीक इसी प्रकार स्वर्ग का सृजन भी मनुष्य के अपने हाथ मे है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाकर कोई भी मनुष्य आन्तरिक प्रसन्नता और बाहर से सज्जनो का सद्भाव-सम्पन्न सहयोग पाकर यह अनुभव कर सकता है कि वह स्वर्गीय आनन्द का रसास्वादन कर रहा है। ऊर्ध्व गमन ही स्वर्गारोहण है। पाण्डव इसी शान्त शीतलता की तलाश मे हिमालय की चोटियो पर चढ़े थे। इस उपाख्यान मे यह अलंकार व्यक्त किया गया है कि जितनी अधिक मात्रा मे उत्कृष्टता अपनाई जायेगी, अपनी स्थिति दूसरो की तुलना मे उतनी ही ऊँची उठ जायेगी और उतनी ही मात्रा मे शान्त-शीतलता का अनुभव होगा। स्वर्ग इसी प्रकार पाया जाता है।

दूसरे सहायता तो करते हैं, पर वह उसी दिशा में होती है जिसमे कि अपना प्रवाह बहता है। यदि अपनी दिशा पतन की ओर चल रही है और दुर्गुणो, दुर्व्यसनो मे लिप्त है तो उसी प्रकृति के लोग अपने इर्द-गिर्द जमा होते चले जायेंगे और पतन की गति और भी तीव्र बनाने मे पूरी-पूरी सहायता करेगे। इसके विपरीत यदि अपनी यात्रा सदुद्देश्य की दिशा मे सत्प्रवृत्तियाँ अपनाये हुए चल रही है तो उस स्तर के सहयोगियो की भी कमी न रहेगी। श्रेष्ठ, सज्जन ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने का मार्ग-दर्शन एवं सहयोग देने के लिए भी कही न कही से मिल ही जायेगे। इस प्रकार अपने प्रयास की सफलता और भी सरल हो जायेगी। पतन और उत्थान मे से किसी एक को चुनना अपना काम है। जैसा निश्चय होगा उसी के अनुरूप चुम्बकत्व उत्पन्न होगा और उसी स्तर के सहयोगियो को आमन्त्रित करके प्रगति-क्रम मे तीव्रता उत्पन्न कर लेगा।

दूसरो से सहयोग की अपेक्षा करने मे कोई हर्ज नही, वह मिलता भी है और मिलना भी चाहिए। पर एक बात सदा ध्यान मे रखकर चलना होगा कि अपने स्तर के अनुरूप ही यह बाहरी सहयोग जुटाया जा सकेगा। रात भर भले ही पानी बरसता रहे, पर अपने को उसका उतना ही लाभ मिलेगा, जितना बड़ा बर्तन पास मे हो। पात्रता से अधिक बाहरी सहायता मिलती भी कहाँ है ? दरिद्र, भिखारियो को कौन सोने की मुहरे बाँटता है, उनके पल्ले दो-पाँच पैसे के सिक्के ही पड़ते है। इसके विपरीत महत्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रभावशाली व्यक्ति, प्रयोजन की गरिमा समझाकर लाखों रुपया चन्दा इकट्ठा कर लेते है। जो दानी, घिनौने, भिखमगे को उपेक्षापूर्वक दस पैसे का सिक्का फेकता है, वही व्यक्ति दूसरे सत्पात्र को खुशी-खुशी सौ रुपये का नोट थमा देता है। इस अन्तर मे दानी की उदारता को न्यूनाधिक के रूप मे नहीं, प्राप्तकर्ता की पात्रता को, घट-बढ़ को ध्यान मे रखते हुए समझा जाना चाहिए।

परावलम्बन की, दूसरों की गुलामी की सर्वत्र निन्दा की गई है। स्वावलम्बन की, आत्म-निर्भरता को मनीषियों ने भरपूर सराहा है। स्वर्ग की भाँति मुक्ति को भी सर्वोच्च आध्यात्मिक सफलताओ मे गिना गया है। मुक्ति का अर्थ है—बन्धन से, परावलम्बन से छूटना और स्वावलम्बी बनना। इस दृष्टिकोण को अपनाते ही अनेक महान सत्यो का रहस्योद्‌घाटन होता है और मनुष्य को विश्वास हो जाता है कि अपनी भली-बुरी परिस्थितियों के लिए पूर्णतया हम स्वयं ही जिम्मेदार है। भगवान ने अपने भाग्य निर्माण का दायित्व पूरी तरह हमारे हाथ मे सौपा है। चिन्तन और कर्तृत्व के दोनो पैरो के सहारे से किसी भी दिशा मे, कितनी ही लम्बी यात्रा भली प्रकार कर सकते है। दूसरे तो यत्किंचित सहारा भर ही दे सकते है। उनके बलबूते कोई बड़ी योजना बनाना और उसके पूरा होने का स्वप्न देखना निरर्थक है।

यदि हम स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्पन्नता, सम्मान, सफलता से वंचित रहते है, तो इसके लिए दूसरो को दोष देना व्यर्थ है। गहराई से उन कारणो को तलाश करना चाहिए जिनके द्वारा विपन्नता विनिर्मित होती है। आलस्य, प्रमाद, उपेक्षा, उदासीनता, आवारागर्दी जैसे दुर्गुणो मे लोग अपनी अधिकांश शक्तियाँ नष्ट करते रहते है। महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए उनका श्रम, समय, मनोयोग लगता ही नही, फिर वे सफलताएँ कैसे मिले, जो प्रगाढ़ पुरुषार्थ का मूल्य माँगती है। असफलताओ का दोष भाग्य, भगवान, ग्रह-दशा अथवा सम्बन्धित लोगो को देकर मात्र मन को बहलाने की आत्म-प्रवंचना की जा सकती है, उसमे तथ्य तनिक भी नही है। संसार के प्रायः सभी सफल मनुष्य अपने पुरुषार्थ से आगे बढ़े है। उन्होंने कठोर श्रम और तन्मय मनोयोग का महत्त्व समझा है। यही दो विशेषताएँ जादू की छड़ी जैसा काम करती है और घोर अभाव की, घोर विपन्नताओ की परिस्थितियो के बीच भी प्रगति का रास्ता बनाती है। सफल मनुष्यो मे से प्रत्येक के जीवन पर गहरी दृष्टि डालने से यही तथ्य उभरता दिखाई पड़ेगा कि वे अपनी साहसिकता और श्रमशीलता के सहारे ही आगे बढ़े है। उठने वाले या गिरने वाले को उनकी दिशा मे प्रोत्साहन देना ससार का काम है। बाहर की कोई शक्ति किसी को उठाती, गिराती नही। यह सब पूर्णतया अपनी स्थिति पर निर्भर है।

यह भ्रम जितनी जल्दी हटाया जा सके, उतना ही अच्छा है कि कोई देव, दानव, मन्त्र-तन्त्र, गुरु, सिद्ध पुरुष, मित्र, स्वजन, धनी, विद्वान हमारी कठिनाइयाँ हल कर देंगे या हमे सम्पन्न बना देंगे। इस परावलम्बन से अपनी आत्मा कमजोर होती है और अन्तःकरण मे छिपी प्रचण्ड आत्म-शक्ति को विकसित होने मे भारी अड़चन पड़ती है। अस्तु, परावलम्बी मनोवृत्ति को जितनी जल्दी छोड़ा जा सके, आत्म-निर्भरता को जितनी दृढ़ता मे अपनाया जा सके; उतना ही कल्याण है।

भाग्य अपने हाथों बनाइये

वैयक्तिक शक्ति से परे, सनातन सत्ता को यदि स्वीकार न करें तो इसे हमारा अहंकार ही माना जायेगा। यह भूल मनुष्य को करनी भी नहीं चाहिए। इस सृष्टि के कण-कण का विधान परमात्मा के हाथ मे है। उसे चाहे अटल नियम कहें, काल कहें; विधाता या परमेश्वर कहें बात एक ही है। उसे मानना अवश्य पड़ता है। इससे बुद्धि को एक स्थिति प्राप्त होती है। इसके बिना मनुष्य को न तो विश्राम मिलता है, न अहंकार छूटता है। बुद्धि भी भ्रमित रहती है।

किन्तु मनुष्य का निज का भी अपने भाग्य-विधान से कुछ सम्बन्ध अवश्य है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मनुष्य स्वाधीन नही है, उसका जीवन परमात्मा के विधान के अनुसार ही चलता है। न्याय की दृष्टि से उसका विधान भी स्वतन्त्र होना चाहिए। यह बात ठीक भी है। ईश्वर ने कर्म-फल का एक सुदृढ़ नियम बना दिया है, इसी के अनुसार मनुष्य का भाग्य बनता-बिगड़ता है।

भ्रम इस बात से पैदा हो जाता है कि कई बार प्रत्यक्ष रूप से कर्म करने पर भी विपरीत परिणाम प्राप्त हो जाते है, तो लोग उसे भाग्य-चक्र मानकर परमात्मा को दोष देने लगते है। किन्तु यह भाग्य तो अपने पूर्व संचित कर्मों का ही परिणाम है। यहाँ मनुष्य जीवन के विराट् रूप की कल्पना की गई है और एक जीवन का दूसरे जीवन से संस्कारजन्य सम्बन्ध माना गया है। इस दृष्टि से भी जिसे आज भाग्य कहकर पुकारते है, वह भी कल के अपने ही कर्म का परिणाम है। सृष्टि के प्राणियो मे चेष्टा न होती, तो अब तक जो ऐतिहासिक विकास हुआ है, उसकी कल्पना न की जा सकती थी।

भाग्य का रोना रोने का अर्थ तो इतना ही समझ मे आता है कि हम अपने कर्म के लिये सचेत नहीं हो पाये है। अपनी शक्तियो का दुरुपयोग 'अब' नहीं तो 'तब' किया था, जिसका कटु आघात भोगना पड़ रहा है। पर प्राकृतिक विधान के अनुसार तो यह भाग्य अपनी ही रचना है। अपने ही किए हुए का प्रतिफल है। मनुष्य भाग्य के वश मे नही है, उसका निर्माता मनुष्य स्वयं है। परमात्मा के न्याय मे अभेद देखें तो यही बात पुष्ट होती है कि भाग्य स्वय हमारे द्वारा अपने को सम्पन्न करता है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व कुछ भी नही है।

वास्तव मे हमे शिक्षा लेनी चाहिए कि कर्म-फल किसी भी दशा मे नष्ट नही होता। किसी न किसी समय वह अवश्य सामने आता है। विवशतावश उस समय उसे भले ही भाग्य कहकर टाल दिया जाय, पर इससे कर्म-फल का सिद्धान्त तो नही मिट सकता। हम जैसा करेंगे वैसा ही तो भरेंगे। यदि स्वेच्छापूर्वक परमात्मा ही जिसे जो जी चाहे देने लगे तो इस सृष्टि की सारी

न्याय-व्यवस्था बिगड़ जायेगी। हम उस स्वतन्त्रता को किस तरह क्रम मे लावे यह एक अलग बात है किन्तु अपना कल्याण करने का अधिकार हमे ही है। न इसके लिए किसी को दोषी ठहराया जा सकता है और न किसी के भरोसे ही बैठा जा सकता है।

अपने सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, कल्याण-अकल्याण, स्वर्ग और नर्क का कारण मनुष्य स्वयं है फिर दुःख या आपत्ति के समय भाग्य के नाम पर संतोष कर लेना और भावी सुधार के प्रति अकर्मण्य बन जाना ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति आने पर तो हमें यह अनुभव करना चाहिए कि हम से जरूर कोई भूल हुई है और उस पर पश्चाताप करना चाहिए।

यथा, संयम न रखने के कारण आपका स्वास्थ्य गिर गया है। शरीर मे ऋतु-परिवर्तन को भी बर्दाश्त करने की शक्ति नही रही, थोड़ी-सी असावधानी से कभी पेट में गड़बड़ी पैदा हो जाती है, कभी सिर दर्द करता है, जुकाम हो जाता है, सर्दी लग जाती है। आप कहेगे—क्या करे ? हमारा भाग्य ही खराब है। वस्तुत: यह भाग्य का दोष नही है। आप थोड़ा-सा भी निष्पक्षता और कठोर सत्य की साक्षी मे विचार करे तो आप यह मानने के लिए विवश होगे कि आपने असंयम के कारण ही यह स्थिति बना ली है। जिसके कारण आपको इन कठिनाइयो का सामना करना पड़ रहा है। यदि आप संकल्प से काम ले, जिह्वा तथा कामेन्द्रियो पर कसकर अंकुश रखे, तो आपका खोया हुआ स्वास्थ्य फिर से वापस आ सकता है। पाना या खोना भाग्य के हाथ की बात नही है। वह तो मनुष्य के पौरुष-अपौरुष का फल है। इसे ही बाद मे चाहे तो भाग्य कह सकते है।

दूसरे व्यक्ति अपने पास के साधन-सम्पन्न व्यक्तियो को देखकर ईर्ष्या से जलते रहते है। सोचते है, यह व्यक्ति कितना भाग्यशाली है। भगवान ने उसे मोटर दी है, रहने के लिए सुसज्जित कोठी है, नौकर-चाकर सभी कुछ है। धन से तिजोरियाँ भरी पड़ी है, किन्तु अपना तो जीवन ही कठिनाई से बीतता है। बड़ा कष्ट है। एक-एक पैसे के लिए दूसरो का मुँह ताकना पड़ता है। सच है, आप बड़ी मुसीबत में है, किन्तु दरअसल क्या आप उन गहराइयों मे गये है, जिसके कारण आप निर्धन है। ससार के ८० प्रतिशत व्यक्ति विधिवत् खाते-कमाते है। आप ही क्यो परेशान है ? आप देखिए आपके जीवन मे जरूर कही आलस्य, अकर्मण्यता, निरुद्योगिता का चोर-छुपा हुआ है। इसे भगाइए , इस दुष्ट ने ही आपको निर्धन बनाया है। भगवान को तो आप नाहक कोसते है। महान विचारक वर्जिल ने कहा है—"भाग्य साहसी और कर्मठ व्यक्ति की सहायता करता है।" डिजरायली का भी ऐसा ही मत है—"हम अपना ऐश्वर्य स्वय बनाते है और उसी को अपना भाग्य कहते है।"

भाग्यवाद का नाम लेकर अपने जीवन मे निराशा, निरुत्साह के लिए स्थान मत दीजिए। आपका गौरव निरन्तर आगे बढ़ते रहने मे है। भगवान का वरद-हस्त सदैव आपके मस्तक पर है। वह तो आपका पिता, अभिभावक, संरक्षक, पालक सभी कुछ है। उसकी अकृपा आप पर भला क्यो होगी ? क्या यह सब नहीं है कि उसने आपको यह अमूल्य मनुष्य शरीर दिया है। बुद्धि दी है, विवेक दिया है, कुछ अपनी इन शक्तियो से भी काम लीजिए। देखिए आपका भाग्य बनता है या नही ? भाग्य सदैव पुरुषार्थी का ही साथ देता है।

परिस्थितिवश यदि प्रयत्न के करने पर भी आपको उचित सफलता नही मिली तो आप इसे अपने पूर्वकृत-कर्मों का फल मानकर तात्कालिक सन्तोष प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु अपने प्रयत्नो को यो ही ढीला मत छोड़िए। आज जो कर लेगे, वही तो कल भाग्य बनेगा। कल आप अधिक सुख प्राप्त करे, इसकी तैयारी आज नही करेगे तो कब करेगे ? प्राणी की प्रकृति ही उसके कर्मों का कारण कही जाती है, इसलिए आज आप अपनी विश्वास-शक्ति को जगाकर अपने जीवन मे सद्‌गुणो को बढ़ाने का प्रयत्न कीजिए। इससे आपका भावी जीवन निश्चय ही सुखी तथा समुन्नत हो सकेगा।

दुर्भाग्य के प्रमुख कारण मनुष्य के मनोविकार है। इन्ही से जीवन बर्बाद होता है। काम, क्रोध, लोभ तथा मोह आदि के द्वारा ही मनुष्य का जीवन अपवित्र बनता है। संक्षेप मे इसी को ही दुर्भाग्य की संज्ञा दी जा सकती है। अत: मनुष्य को चाहिए कि वह इन्द्रिय, मन और बुद्धि की अस्वच्छता को शुद्ध बनाने का सदैव अभ्यास करता रहे, इससे वह भविष्य सुन्दर बना सकता है। अनावश्यक वस्तुओ के अधिक से अधिक सचय को ही भाग्य नही कहते। वह मनुष्य जीवन मे अच्छाइयो का विकास है, इसी से उससे शाश्वत सुख और शान्ति की उपलब्धि होती है। सत्कर्मो का आश्रय ही एक प्रकार से सौभाग्य का निर्माण करता है।

कर्म चाहे वह आज के हो अथवा पूर्व जीवन के, उनका फल असंदिग्ध है। परिणाम से मनुष्य बच नही सकता। दुष्कर्मों का भोग जिस तरह भोगना ही पड़ता है, शुभ कर्मों से उसी तरह श्री-सौभाग्य और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह सुअवसर जिसे उपलब्ध हो, वही सच्चा भाग्यशाली है और इसके लिए किसी दैव के भरोसे नही बैठना पड़ता। कर्मों का सम्पादन मनुष्य स्वय करता है। अत: अपने अच्छे-बुरे भाग्य का निर्णायक भी वही है। अपने भाग्य को वह कर्मों द्वारा बनाया-बिगाड़ा करता है। हमारा श्रेय इसमे है कि सत्कर्मों के द्वारा अपना भविष्य सुधार ले। जो इस बात को समझ लेगे और इस पर आचरण करेगे उनको कभी दुर्भाग्य का रोना नही रोना पड़ेगा।

दुर्भाग्य सौभाग्य बना

मैक्सिको, अमेरिका की मध्यरात्रि। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी और सुनसान सड़क पर एक व्यक्ति चला जा रहा था। अचानक वह फालिज का शिकार हो गया और सड़क पर ही लुढ़क गया। अचेतावस्था मे ही बहुत देर तक पड़ा रहा। एक ट्रक उस रास्ते से गुजरा तो ड्राइवर का ध्यान गया और उसने अचेत व्यक्ति को कम्बल मे लपेटकर गाड़ी मे सुला लिया।

एक विशाल भवन के सामने ट्रक रोका। उस इमारत का नाम था 'पुनर्वास संस्थान'। जो अपगो की आवास और निर्वाह-व्यवस्था करती थी। अपग व्यक्ति को संस्थान मे ले आया गया और परिचारको ने उसकी आठ महीने तक सेवा-सुश्रूषा की। तदुपरान्त वह 'पट्टी' के सहारे अस्पताल से बाहर निकल आया।

दान देने वाले के मन मे बड़प्पन और लेने वाले के मन मे दीन भाव स्वाभाविक रूप मे आ जाते है। संस्थान ने इस बात को ध्यान मे रखते हुए अपंगो को आत्मनिर्भर बनाने का कार्यक्रम हाथ मे लिया ताकि कही भी रहते हुए उन्हे पराश्रित न होना पड़े। इसी संस्थान से उस व्यक्ति ने घड़ीसाजी का धन्धा सीखा और उसी के सहारे अपना तथा अपने परिवार का समुचित निर्वाह करने लगा।

ऐसे महान सस्थान के संस्थापक है—डान रोमुलो ओ फेरिल। वह मैक्सिको का सबसे बड़ा प्रकाशक और समाज-सेवक है। सारा लैटिन अमेरिका उसके सत्कार्यों से परिचित है। समाज-सेवा के लिए इस दिशा मे लगने की प्रेरणा भी उसे एक ऐसी ही घटना से मिली जो उसके स्वयं के साथ ही बीती थी।

जुलाई १९५५ की बात है। जैनेवा की एक व्यस्त सड़क पर रोमुलो की कार का एक पहिया पचर हो गया। रोमुलो ने कार को वही रोक दिया और तेजी से पहिया बदलने लगा। उसी समय पीछे से आती हुई एक मोटरसाइकिल उससे टकरा गई और उसकी बायी टाँग को कुचलती हुई निकल गयी।

मैक्सिको के अस्थि विशेषज्ञ डा. जुआन फैरिलजा रोमुलो के अभिन्न मित्र थे। उन्होने तुरन्त रोमुलो की मदद की और टाँग बचाने की पूरी-पूरी कोशिश की। परन्तु सारे प्रयत्न असफल रहे। एक के बाद एक ग्यारह बार आपरेशन किये गये, मगर एक भी आपरेशन सफल नही हुआ। अन्त मे निराश होकर बारहवी बार टाँग ही देनी पड़ी।

सामान्य व्यक्ति के लिए ऐसी घटना बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण और निराशाजनक हो सकती है। परन्तु रोमुलो के लिए आशा और एक नये प्रकाश का उदय हुआ। संकल्प के धनी और आशावादी लोगो के लिए जो घटनाएँ सामान्य लोगो को स्मरण से भी ज्यादा भयभीत करती है, नय जीवन की प्रेरणा देती है। रोमुलो मात्र दौलतमन्द ही नहीं, संकल्प का भी धनी था। उसने निश्चय किया कि मै वैसाखियो का सहारा नहीं लूँगा। उस समय वह ६० वर्ष का था परन्तु तरुणो से भी ज्यादा उत्साही था। इष्ट मित्रो ने उसे ऑकलैण्ड कैलिफोर्निया के विख्यात सैनिक अस्तपताल मे भर्ती करवाया। एक और कृत्रिम जल सिद्ध (वाटर प्रूफ) टाँग लगाई गयी। जिसे पहनकर तैरा भी जा सकता था। रोमुलो ने इस टाँग का इतनी कुशलता से उपयोग करने का अभ्यास कर लिया कि जब वह चलता था तो यह अनुमान भी नही होता कि यह टाँग शरीर के अंगो से भिन्न है।

जिस समय रोमुलो को कृत्रिम टाँग का उपयोग करने की विधि सिखाई जा रही थी, अस्पताल के डाक्टर ने चर्चा के दौरान बताया कि मैक्सिको मे कोई छ: लाख ऐसे अपंग है, जिनकी चिकित्सा आदि की कोई व्यवस्था नही है और न ही राजकीय सहायता का कोई प्रबन्ध है। रोमुलो का मानवीय अन्त:करण आन्दोलित हो उठा और इस दिशा मे कुछ करने के लिए उसका अन्त:करण छटपटाने लगा। उसने अबकी बार संकल्प किया कि उन छः लाख अपंगो की सेवा करना मेरा धर्म है। ईश्वर ने मुझे फिर से काम करने की क्षमता दी है तो उसके ऋण से उन्मुक्त होने के लिए मुझे इन छ: लाख लोगो को समर्थ बनाने मे ही आत्मार्पण करना होगा।

उसने निश्चय किया कि अपंगो के अंग-भंग से लेकर पुनर्वास तक की व्यवस्था के लिए प्रयत्न करेगा। मैक्सिको लौटकर रिहैबिलिटेशन—एसोसियेशन नाम से एक संस्था की स्थापना की। लोकमंगल की दिशा मे जब भी कोई नया कदम उठाया जाता है, तो बहुत से सहयोगी लका विजय अभियान मे रीछ-वानरो की तरह दौड़ उठते है। मैक्सिको के तत्कालीन राज्यपाल से लेकर सामान्य व्यक्ति ने रोमुलो के अभियान मे अपनी सेवा-सहायता प्रस्तुत की। राष्ट्रपति ने एक विशाल दोमंजिली इमारत इस संस्थान के लिए देने की घोषणा की।

अपनी टाँग कटने के ठीक पाँच वर्ष बाद रोमुलो ने सन् १९६० मे लाजयान नामक स्थान मे रिहैबिलिटेशन—ऐसोसियेशन सस्थान का उद्घाटन किया। जैसे ही इस संस्थान की स्थापना का समाचार फैला, देश के कोने-कोने से अपग लोग आने लगे। सस्थान मे केवल चालीस व्यक्तियो के ठहरने का ही प्रबन्ध था परन्तु आगन्तुक अपंगो की संख्या कम से कम हजार तक पहुँच चुकी थी। विवशता भरी लाचारी के कारण वे सब शहर मे ही ठहरते थे। यह देखकर श्रीमती रोमुलो को बड़ी व्यथा हुई और उन्होने एक अतिथि-गृह का निर्माण करवा दिया। असमर्थ मानव परमात्मा की सेवा का लाभ मिल सके, इसलिए श्रीमती रोमुलो ने अतिथि-गृह मे अपगो की

स्वयं ही परिचर्या करना शुरू कर दिया। कुछ दिनो के बाद सेवाभावी स्त्रियो का एक स्वयंसेविका दल श्रीमती रोमुलो के नेतृत्व मे गठित कर लिया गया।

संस्थान की ओर से यह सार्वजनिक घोषणा कर दी गयी कि जहाँ कही भी कोई अपंग किसी को भी दीख पड़े, उसे तुरन्त संस्थान तक पहुँचाने का प्रयत्न करे। सस्थान मे ऐसी व्यवस्था है कि अपंग व्यक्ति स्वयं ही बिना किसी की सहायता लिए सामान्य लोगो की तरह अपना दैनन्दिन जीवन व्यतीत कर सके तथा निर्वाह के लिए दूसरो पर निर्भर भी न रहना पड़े।

रोमुलो के इस संस्थान ने अपग लोगो मे नवजीवन का संचार किया है। इसमे से ही एक भूतपूर्व शिक्षक हेरीबरतो कास्त्रो की कहानी बहुत ही हृदय-द्रावक है। बचपन मे ही एक दुर्घटना मे उसके दोनो हाथ और दोनो पाँव नष्ट हो चुके थे। उसके कई वर्ष बाद अपने फार्म पर जब उसने रोमुलो के इस संस्थान के बारे मे सुना तो आशा की एक क्षीण रेखा दीख पड़ी और मैक्सिको आया। उसके माता-पिता ने कास्त्रो के सम्बन्ध मे आवेदन भेजा और उसे सस्थान में भरती कर दिया। कास्त्रो को कृत्रिम अंग लगा दिये गये और वह शीघ्र ही बिना किसी की सहायता के चलने-फिरने लगा। इन कृत्रिम अगो से वह अन्य सामान्य लोगो की तरह चलने लगा। संस्थान मे ही सेरानो प्रशिक्षण लेकर वहाँ शिक्षक भी हो गया और अपने कृत्रिम हाथो से ही टाईपिंग सीखकर कुशल टाइपिस्ट बन गया। उसके साहस और कौशल ने रोमुलो को बड़ा प्रभावित किया। उसने सेरानो को नगर के जकाते ऑफ यूनिवर्सिटी मे भर्ती करवा दिया। प्राकृतिक अगो से विहीन अपंग सेरानो ने अपने कृत्रिम अगो से भी इतनी योग्यता अर्जित कर ली, जितनी कि समर्थ व्यक्ति भी नही कर पाते।

प्राय: लोकसेवी सस्थाएँ दान और चन्दे पर चलती है। रोमुलो ने इस परम्परा तो तोड़कर सस्थान को एक स्वावलम्बी आधार दिया। यद्यपि संस्थान मे अपगो से किसी भी प्रकार का चिकित्सा शुल्क नही लिया जाता फिर सस्थान को आर्थिक आत्म-निर्भरता प्रदान करने के लिए रोमुलो ने कृत्रिम अग बनाने का एक कारखाना खोल दिया है ,तथा जब रोमुलो ने देखा कि पूरे मैक्सिको मे कार-रेडियो बनाने का कोई कारखाना नही है तो अमेरिका की बेडिक्स कम्पनी से एक समझौता किया। जिसके अनुसार बेडिक्स ने सस्थान के कुछ कार्यकर्ताओ को कार-रेडियो बनाने का प्रशिक्षिण दिया। इन प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओ ने अपग-रोगियो को प्रशिक्षण दिया। इस योजना के सफल होने पर सस्थान प्रति वर्ष एक हजार से भी अधिक कार-रेडियो तैयार करने लगी।

डान रोमुलो के इस संस्थान की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि आज तक किसी भी अपग रोगी को निराश कर नही लौटाया गया। जो भी कोई आया, अपनी आशा के अनुरूप लाभ उठाकर और उससे भी अधिक योग्य बनकर वापस गया। यहाँ तक कि किसी दुर्घटना मे जिन लोगो का चेहरा कुरूप या विकृत हो चुका होता है, उनके लिए संस्थान ने एक अलग विभाग, जो सौन्दर्य प्रसाधन विभाग के नाम से सक्रिय है, खोला है। जहाँ प्लास्टिक कान, नाक, हाथ आदि लगाये जाते है और आकार की दृष्टि से मनोनुकूल उपयुक्त उपकरण तैयार किये जाते है। इस विभाग के पीछे रोमुलो का यह विचार मूल सिद्धान्त है कि रूप और सौन्दर्य का अपना मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। व्यक्ति को उत्साही और साहसी बनाने के लिए सुन्दरता भी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

संस्थान के व्यावसायिक प्रशिक्षण विभाग, विद्युत यन्त्रो से लेकर घड़ीसाजी, टाईपिंग, टाइपराइटर सुधारने की कला, सिलाई और मोचीगिरी तक का प्रशिक्षण दिया जाता है। रोगी बच्चे तो अपनी चिकित्सा के दौरान स्कूल पढ़ने भी जाया करते है। इस प्रकार रोमुलो का रिहैबिलिटेशन एसोसियेशन अपने ढंग का एक अनूठा और अद्वितीय चिकित्सा संस्थान है। जिसकी कार्य-पद्धति स्वय रोमुलो ने अपने ऊपर किये गये प्रयोगों के आधार पर निर्धारित की।

डान रोमुलो अपनी कृत्रिम टाँग के माध्यम से कूद-फाँद लेता है, दौड़ सकता है। उसे देखकर यह अनुमान लगाया जा सकना असम्भव प्राय: है कि यह व्यक्ति प्रकृति और नियति से अभिशाप लेते हुए भी स्वय के साहस और श्रम के बल पर अपने भाग्य पर विजयी हुआ।

डान रोमुलो अभी भी अठारह घण्टे श्रमरत है। यद्यपि उनका पुनर्वास सस्थान पर्याप्त रूप से लोकसेवा कर रहा है। परन्तु रोमुलो को इतने मात्र से ही सन्तोष नही है। वस्तुत: महत्वाकांक्षी व्यक्ति का सन्तुष्ट हो जाना प्रगति मे बाधक ही है। ज्यो-ज्यो वह अपनी उपलब्धियो से असन्तुष्ट होता है, विकास-पथ पर आगे बढ़ने की लगन उसी तीव्रता से बढ़ती चलेगी। रोमुलो का एक सपना है कि इस प्रकार के पुनर्वास संस्थान सारे विश्व के कोने-कोने मे स्थापित किये जायें, जिनसे विकलाग और अंगहीन लोगो के जीवन मे नये प्रभात का प्रकाश फैल सके।

स्थूल रूप से ईश्वर पूजा के लिए कोई क्रियाकंाण्ड ही अपनाते रहने की अपेक्षा साकार ईश्वर मानवता की सेवा शुश्रूषा उनकी श्रेष्ठ उपासना है।

प्रगति में लगन का योगदान

किन्ही-किन्ही बच्चो मे छोटी आयु से ही पढ़ने मे असाधारण रुचि होती है। जो वे पढते है वह याद भी हो जाता है और भविष्य मे भी चिरकाल तक स्मरण बना रहता है। ऐसे बच्चे परीक्षाओ मे साथियो की तुलना मे अधिक जल्दी उत्तीर्ण होते जाते है और अपनी प्रतिभा से सम्पर्क मे आने वाले सभी को प्रभावित करते है।

इन दिनो आयु का भी बन्धन है पर कुछ शताब्दियो पूर्व ऐसा बन्धन नही था। प्रतिभा और योग्यता की कसौटी पर खरे उतरने वाले पदाधिकारी बना दिये जाते थे चाहे उनकी आयु कम ही क्यो न हो। जो स्वयं पढ़ने के अतिरिक्त दूसरो को भी पढ़ाने की क्षमता प्रदर्शित करता था, वह बिना रोक-टोक कम आयु होते हुए भी अध्यापन कार्य करने लगता था।

जिन्हे विद्या मे वास्तविक रुचि है, उनका शिक्षाकाल आजीवन चलता है। वे आजीविका उपार्जन भी करते रहते है और साथ ही विद्यार्थियो की भाँति आगे का शिक्षण कार्य भी जारी रखते है। ऐसो को ही उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचने का अवसर मिलता है।

शिक्षा मे अभिरुचि का असाधारण स्तर का होना पूर्व जन्मो के सचित संस्कारो का भी प्रतिफल है।

जिन्हे विद्याध्ययन मे रस आने लगता है, उनके लिए उस क्षुधा पूर्ति करते रहना एक प्रिय विषय बन जाता है। उसी तरह जिस तरह कि व्यसनी अपने शौक चाव की पूर्ति को ही एक बड़ी उपलब्धि मानकर उसके लिए किसी भी प्रकार समय निकाल लेते है और तन्मयतापूर्वक बिना ऊबे, उकताये अपनी गतिविधियो को निरन्तर जारी रखते है।

इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध रोज पब्लिक स्कूल मे जब फिलिप हैरंग्रम हैडमास्टर बने, तब वे पूरे १८ वर्ष के भी नही होने पाये थे। वे व्यवस्था बड़ी कुशलतापूर्वक चलाते थे और साथ ही विद्यार्थियो को पढ़ाते भी थे। इसके अतिरिक्त उनने आगे की अपनी पढ़ाई भी जारी रखा।

अरकन्सास के एक असाधारण विद्वान और प्रबन्धक अपने जीवन-काल मे पाँच कालेजो के अध्यक्ष रहे और उन्हे आजीवन व्यवस्थापूर्वक चलाते रहे।

केन्टुकी लेबनान का एक प्रतिभाशाली बालक १४ वर्ष की आयु मे सेन्ट मेरीज कालेज की उच्च कक्षाओ को गणित पढ़ाने वाला अध्यापक नियुक्त हुआ। बिना किसी की सहायता के वह अपनी प्रतिभा के बल पर ऊँचा उठता गया और बाल्टीमोर का आर्क बिशप बना।

सन् १९०० मे रदरफोर्ड कालेज से चार्ल्स बीबर सर्वोच्च परीक्षा मे उत्तीर्ण हुआ। वह प्रतिभाशाली छात्र उसी वर्ष कालेज का अध्यक्ष भी चुन लिया गया।

शिकागो विश्वविद्यालय के संस्थापक विलियम रैनेहायर ने हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करके मरकिंगम कालेज मे प्रवेश पा लिया था। वे प्रसिद्ध शिक्षाविद् रूप मे प्रख्यात हुए। ९ कालेजो के अध्यापक बनाये। उनका प्रत्येक क्षण शिक्षा सेवा मे ही संलग्न रहा।

सन् १६३० मे जन्मा एक जर्मन छात्र १६ वर्ष की आयु मे यूनानी लेटिन और हिब्रू भाषाओ मे कविता लिखने लगा था। तभी वे छपने भी लगी थी।

आँखे चली जाने और शरीर को लकवा मार जाने के बाद फ्रांसीसी इतिहासकार अगास्टि ने मुँह से बोलकर और दूसरो से लिखवाकर इतिहास के अत्यन्त सम्पादित २८ ग्रन्थ लिखाये।

अँग्रेजी उपन्यासकार चार्लोट योन्ज ७ वर्ष की आयु से एक रविवासरीय स्कूल मे धर्मशिक्षा लेने जाया करता था। बड़ा होने पर उसने उसी स्कूल मे पढ़ाना शुरू किया और ७१ वर्ष की आयु तक उस व्रत को निबाहा।

बोडोइन कालेज के अध्यापक एल्युअस लगातार ६६ वर्ष तक अध्यापक का काम करते रहे। रिटायर होने के नियमो को उन्होने स्वीकार नहीं किया। बिना वेतन लिए भी वे मरण तक अध्यापन करते रहे।

बेंजामिन शुल्ज को १०० विदेशी भाषाएँ आती थी। उसने आजीवन उन भाषाओ मे बाइबिल का अनुवाद किया। शुल्ज की मृत्यु १७६० मे हुई।

एम्बडन की अध्यापिका ओजियन्स को नये स्कूल खोलने की भारी लगन थी। उसने ३० वर्षों तक पढ़ाया। प्रथम वर्ष स्वयं ही सचालिका और अध्यापिका रही। इस प्रकार उसे ३० स्कूलो की सस्थापिका और प्रधानाध्यापिका रहने का गौरव प्राप्त हुआ।

जहाँ तक प्रकाशन का सम्बन्ध है, पहला नम्बर बाइबिल का है। बाइबिल और उसके अन्यान्य हिस्से १७३५ भाषाओ में अनुदित हुए। १८७५ से १९७५ के बीच इसकी २५० करोड़ प्रतियाँ छपी। इसके बाद दूसरी पुस्तक चीन के अधिनायक माओ लिखित 'लाल किताब' का नम्बर आता है जो अब तक १०० करोड़ बिकी या वितरित हुई। यह किसी एक व्यक्ति ने नही किया पर यह भी एक समूह की लगन का परिणाम है।

इस प्रकार की विद्या, लगन और प्रतिभा कोई भी अर्जित कर सकता है। शर्त एक ही है कि अपने विषय मे समूची तन्मयता और तत्परता को नियोजित कर दिया जाय और अपने विषय मे रस आने लगे।

शिक्षा की ही भाँति चिकित्सा भी जनसेवा का कार्य है। उसमे दूसरो का स्वास्थ्य सुधारने के अतिरिक्त अपने स्वास्थ्य की साज-सम्भाल रखने का भी ध्यान रहता है। ऐसे सेवाभावी चिकित्सक प्राय. दीर्घजीवी पाये जाते है और लम्बे समय तक उनका शरीर उस कार्य को करते रहने योग्य बना रहता है।

हारवर्ड विश्वविद्यालय मे डाक्टर की डिग्री प्राप्त करने वाला एडवर्ड होलियोक सन् १७२८ मे जन्मा और पूरा सौ वर्ष का होकर १८२८ मे मरा। उसने ८० वर्ष तक चिकित्सा-कार्य पूरी तत्परता के साथ किया। घर मे अस्पताल तक वह ७ मील रोज पैदल चलकर जाता था। गम्भीर आपरेशन करने योग्य उसका शरीर ९० वर्ष की आयु तक बना रहा।

लैग हाम्स (स्काटलैण्ड) का एक डॉक्टर जेम्स पुअट सन् १६५६ मे पैदा हुआ और १७७६ मे १२०

वर्ष जीवित रहने के उपरान्त मरा। वह ९५ वर्ष की आयु तक सर्जरी मे अपनी निपुणता सिद्ध करता रहा।

इस प्रकार की सफलताएँ भाग्य के ऊपर नही, लगन और रुचि के ऊपर निर्भर है। इन विशेषताओ को अपने मे उत्पन्न करके कोई भी ऐसी ही सराहनीय स्थिति तक पहुँच सकता है।

मानवी क्षमता का कोई पारावार नहीं

वर्तमान ओलम्पिक खेलो के बाद पर्यवेक्षको ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मानवी प्रगति का कोई अन्त नही। पिछले दिनो खेल-कूदो मे बाजी मारने, प्रवीणता और पूर्णता के लिए एक सीमा निर्धारित की गई थी और कहा गया था कि मानवी अवयवो की संरचना तथा विकसित प्रयत्नशीलता के सहारे वह अमुक खेल मे इतनी क्षमता तक का ही परिचय दे सकता है।

अब उन अनुमानो से बहुत आगे बढ़कर खिलाड़ियो ने कीर्तिमान स्थापित किये है। इसी प्रकार शिक्षाशास्त्रियो का अनुमान था कि बच्चो के बौद्धिक विकास-क्रम को देखते हुए कोई प्रतिभाशाली बालक इतनी कक्षाएँ उत्तीर्ण कर सकता है। किन्तु वह अनुमान भी गलत साबित हुए और कितने ही बालको ने निर्धारित मापदण्ड से कही अधिक प्रगति करके दिखाई है।

मध्यकाल मे वीरता का मापदण्ड युद्धकौशल रहा है। कोई व्यक्ति शस्त्र चलाने मे जितना कौशल दिखा सकता है और परिस्थितियो के प्रतिकूल होते हुए भी कितना साहस दिखा सकता है, इसकी भी एक सीमा निर्धारित की गई थी पर पिछली शताब्दी मे आग्नेयास्त्रो का सामना करने और उनके बीच सनसनाते हुए आगे बढ़ते जाने तथा शत्रु के बारूदखाने पर कब्जा करने का नया कीर्तिमान स्थापित किया गया है।

विद्वानो की बिरादरी का कोई भी व्यक्ति कितने ही ग्रन्थो में पारगत हो सकता है और उसकी स्मरण-शक्ति कितनी तीव्र हो सकती है, इसका अनुमान भूतकाल के सर्वोत्तम समझे जाने वाले विद्वानो की सफलताओ को देखते हुए किया गया था। पर वर्तमान शताब्दी मे वे पुरातन निर्धारण टूट गये और यह कहना पड़ा कि मानवी बुद्धि की कोई सीमा निर्धारित नही हो सकती।

विज्ञान, अन्वेषण, समीक्षा के क्षेत्रो मे मानवी आयुष्य को देखते हुए कितनी सफलता सम्भव है, इस पुरातन आधार का अब व्यतिरेक कर दिया गया है और समझा गया है कि मनुष्य की प्रतिभा का कोई अन्त नही। इच्छाशक्ति की तीव्रता और निरन्तर अभ्यास के सहारे मनुष्य कितना आगे बढ़ सकता है, इसकी कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती। मनुष्य असीम है उसकी प्रगति और सफलता के सम्बन्ध मे यह नही कहा जा सकता कि भूतकाल मे जो अधिक से अधिक हो सकता है, भविष्य मे उससे बढ़कर नही हो सकता।

किस क्षेत्र मे मनुष्य किस सीमा तक आगे बढ़ सकता है और अपने कर्तव्य को कहाँ तक अग्रगामी बना सकता है ? इस सम्बन्ध मे कुछ सीमा बन्धन नही बाँधा जा सकता। कोई रिकार्ड बुक नही बनाई जा सकती कि यही अन्तिम है। मनुष्य की क्षमता असीम है। पर वह विकसित तभी होती है जब मनुष्य अपने संकल्प और प्रयास को ऊँचा उठाता चले। उसके उत्साह और साहस मे कमी न पड़े।

दूसरो के लिए आदर्शवादिता का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने मे भूतकाल के त्यागी-तपस्वी ही चरमोत्कर्ष का स्पर्श करते रहे है, उससे आगे बढ़ने और अपने को महान सिद्ध करने की अब अधिक गुंजायश नही रही यह सोचना व्यर्थ है। स्वयं को कठिनाई मे डालकर दूसरो की सेवा-साधना मे निरत रहने वाले वर्तमान उदाहरण यही बताते है।

जहाँ साधनहीनो ने अपने सद्‌गुणो और श्रेष्ठता सिद्ध करने वाले प्रयासो के आधार पर उन्नति के उच्च शिखर तक पहुँचने मे सफलता प्राप्त की है। वहाँ ऐसे लोग भी कम नही है, जिन्हे सब प्रकार की सुविधा, अनुकूलता होते हुए भी अपने आलस्य, प्रमाद मे पूर्वजो की सम्पदा और ख्याति को भी धूलि मे मिला दिया और दूसरो की सलाह और सहायता मिलने पर भी पतन पराभव के गर्त मे गिरते चले गये। इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। उसकी सम्भावनाएँ महान है।

अध्यवसाय से अर्जित प्रामाणिकता

आगे बढ़ने, ऊँचा उठने, कीर्तिमान स्थापित करने की महात्त्वाकांक्षा उस हद तक सराहनीय भी मानी जाती है और अन्यायो के लिए प्रेरणाप्रद भी बनती है, जब वह नीति-मर्यादाओ के अन्दर रहती है। आतुरता अपनाकर जब लोग बड़े बनने के लिए अनीति का अपवाद अपनाते है तो उन प्रगति प्रयासो का स्वरूप अनाचार जैसा बन जाता है। उस तरह अपनाई गई सफलता भी गर्हित- मानी जाती है और बड़प्पन लूटने की अभिलाषा को जन-समुदाय की दृष्टि मे हेय एव घृणित बना देती है।

अपने देश मे संतोष के उच्च अध्यात्म आदर्श को आलस्य और प्रमाद मे परिणित कर लिया जाता है। फलत: उत्कर्ष की प्रगतिशीलता अपनाने के लिए मन मे उत्कण्ठा ही नही उभरती। उभरती भी है तो उस सन्दर्भ मे यह समझा जाता है कि इसके लिए अनीति अपनाना, चालबाजी, धोखेबाजी, बेईमानी का आश्रय लेना अनिवार्य है। वे उसी कुपंथ पर चल पड़ते है और इस प्रकार जो कमाते है, उसकी तुलना में अपनी बहुमूल्य प्रामाणिकता

गवाँ बैठते है। दबाव या प्रलोभन के बिना उस सहयोग को अर्जित नही कर सके जो प्रगति का मूलभूत आधार है।

एकाकी व्यक्ति अपने बलबूते एक छोटी सीमा तक ही उत्कर्ष कर सकता है। व्यापार से लेकर लोक-नेतृत्व तक मे किसी न किसी प्रकार जन सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। यह सम्बन्ध घनिष्ट और भाव भरे होने चाहिए। आत्मीयता और मैत्री का आधार यही है। शिष्टाचार लोकाचार से तो मात्र इतना ही लाभ है कि गाड़ी अपनी लाइन पर चलती रहे, किसी से टकराये नही। उसे उस स्तर तक विकसित करना जिससे स्वेच्छा-सहयोग एवं आत्मभाव उभरने लगे; यह अनायास उपलब्ध नही होता। इसके लिए आवश्यक तो प्रतिफल लेकर लौटने वाली सेवा सहायता भी चाहिए पर उतना न बन पड़े तो भी इतना तो होना ही चाहिए कि व्यक्ति को कर्मठ और प्रामाणिक समझा जाय। इसके बिना श्रद्धा नही जगती और सहयोग नही मिलता।

जिस प्रकार बड़े क्षेत्र मे नेतृत्व करने वाले लोगो को जनता का व्यापक समर्थन चाहिए, उसी प्रकार अपने क्षेत्र मे जिनसे काम लेना है, जिनकी सहायता करनी पड़ती है, उनकी सद्भावना अर्जित करना न्यूनतम वह कार्य है जो सफलता एव प्रगति के इच्छुको को करना ही चाहिए। परिवार को अनुशासित, सुसंस्कारी, प्रगतिशील एवं समुन्नत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस परिकर मे सद्भावना का स्तर बढ़ा-चढ़ा हो। इसके उपरान्त उन्हे मार्गदर्शन देना, किसी दिशा मे मोड़ना सरल पड़ता है। अन्दर दुर्भावनाएँ भरी हो तो सत्परामर्श का भी उपहास उड़ाया जाता है और अनुशासन के शिकन्जे मे कसने पर विद्रोह खड़ा होता है। परिवार की तरह व्यवसाय, कारोबार, उत्पादन, सगठन आदि के बारे मे यही बात है। प्रगतिशीलता के इतिहास मे इन्ही तथ्यो का समावेश है। आकाश से टूटकर अनायास ही सफलता तो किसी विरले को ही मिलती है। जमीन मे गड़ा खजाना तो किसी को कदाचित् ही मिलता है।

वैज्ञानिक, विद्वान, पहलवान, धनवान स्तर के लोगो के प्रगतिक्रम का पर्यवेक्षण किया जाय तो उनमे से कदाचित ही कुछ मिले जो सरलतापूर्वक सस्ती सफलताएँ पा सके हो। उन सभी ने अध्यवसाय का आश्रय लिया है। अपने स्वभाव को मृदुल एव लगनशील बनाया है। जिम्मेदारियो को समझा है और कठोर परिश्रम नियमित रूप से करने का उपक्रम बनाया है। वैज्ञानिको, विद्वानो, सगठनो, सृजेताओ मे अन्य विशेषताओ की तुलना मे यही वर्चस्व बहुलतापूर्वक पाया गया है, जिसमे सफलताओ के पीछे परिष्कृत व्यक्तित्व काम करता हुआ दिखाई देता है।

अमेरिका और योरोप के देशो मे कितने ही ऐसे है, जिनकी जन्मजात परिस्थितियाँ गई-गुजरी उनकी प्रगति आकांक्षा सही दिशा मे चली और सफलता के घेरे मे सीमा तक पहुँची। कार्यक्षेत्र कोई भी क्यो न हो, उपलब्धियाँ किसी भी प्रकार की क्यो न हो पर उन सब के मूल मे एक ही तथ्य काम करता है—कर्मनिष्ठ उत्तरदायित्वो से भरा साहसी और मधुर जीवन, मिलनसार स्वभाव और आत्मीयता-सद्भावना। इसी आधार पर वे सम्पर्क क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओ को विशिष्ट सहयोगी बना सके। उनकी प्रशंसा सहकारिता के आधार पर ऊँचे उठ सके, आगे बढ़ सके।

गत वर्ष अमेरिका के अरबपतियो की गणना हुई। जिनके पास अरबों-खरबो की सम्पदा थी, उनकी सख्या ४०० के लगभग पाई गई। इनमे से मात्र ५ ही ऐसे थे जिन्हे पैतृक सम्पदा के रूप मे कुछ काम आरम्भ कर सकने योग्य पूँजी मिली थी। शेष सभी ऐसे थे जिनने गरीबी की स्थिति मे जन्म लेते हुए भी अपने सद्गुण बढ़ाये और सम्पर्क मे आने वालो को अपनी प्रामाणिकता से प्रभावित करके उनके सहयोग आकर्षित किये। इसी आधार पर उनके व्यवसाय पनपते रहे और बढ़ते रहे।

उपरोक्त ४०० अरबपतियो मे ७८ महिलाएँ भी है। उनमे से कुछ की शिक्षा तो मैट्रिक से भी कम है। वे धनिको की पत्नियाँ या बेटियाँ भी नही है। उनने अपने स्वतन्त्र अध्यवसाय और परिश्रम से प्रगति की। इस मार्ग मे सबसे अधिक कारगर हुआ उनका मधुर स्वभाव, प्रामाणिक व्यक्तित्व तथा दृढ़तापूर्वक अपनाया गया आत्मानुशासन।

यह ठीक है कि प्रगति के लिए परिस्थितियो की अनुकूलता भी अपनी महती भूमिका निभाती है। सम्पन्न देशो मे फलने-फूलने वाले व्यवसाय आसानी से हाथ लग जाते है और उनके गति पकड़ने मे देर नही लगती। निर्धन देशो की आर्थिक स्थिति ऐसी नही है जिसमे सफलतापूर्वक धनी बना जा सके। फिर भी इतना तो निश्चित है कि समृद्धि के सम्बन्ध मे अपवाद मानते हुए भी अन्यान्य सभी क्षेत्र ऐसे है, जिनमे आसानी से प्रगतिपथ पर बढ़ा जा सकता है। उदाहरणार्थ, स्वास्थ्य और ज्ञान जैसे क्षेत्र ऐसे है जिनमे आत्मानुशासन और उत्साह भरा प्रयास ही अनेकानेक उपलब्धियाँ प्रस्तुत कर देता है। कालिदास और बरदराज जैसे जन्मतः मूढ़मति समझे जाने वाले भी जब धुरन्धर विद्वान बन सकते है तो कोई कारण नही कि मध्यवर्ती मानसिक सरचना के व्यक्ति अध्ययनशील बनकर मन की तत्परता एव तन्मयता के सहारे आरम्भिक स्थिति की तुलना मे असाधारण रूप से प्रगतिशील न बन सके। यही बात स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे भी है। सुविधा-साधनो की दृष्टि से गई बीती स्थिति मे रहने का व्रत लेकर गान्धी, विनोबा, कबीर और बुद्ध जैसे व्यक्ति के अधिकारी बन सके।

कितने ही ऐसे है पिता की लिए मिली

फिर भी वे अपनी आकांक्षा के अनुरूप वातावरण एवं सहयोग प्राप्त कर सके और ऐसे आविष्कार कर सकने मे सफल हुए, जिनकी परिणति पर संसार भर को चकित होना पड़ा है। यह लगनशीलता और प्रमाणिकता ही है जो किसी को भी प्रगतिपथ पर आगे बढ़ाने मे समर्थ होती है।

संकल्पशक्ति ही पहुँचाती है साधक को लक्ष्य तक

आत्मिक प्रगति का द्वार जिन दो कपाटो मे बन्द रहता है, उनमे से एक का नाम है ललक तथा दूसरे का नाम है लिप्सा। ललक अर्थात् जिव्हा का चटोरापन और लिप्सा से तात्पर्य है, मन पर छाई रहने वाली कामुकता। यही दोनो मिलकर शरीर को जीर्ण-शीर्ण बना देती है और असमय ही अकाल मृत्यु मरने के लिये बाधित करती है। इन्ही के कारण मनुष्य अनेक प्रकार के साधनापरक योगाभ्यास करते रहने पर भी सफल नही हो पाता। फूटे बर्तन मे दूध दुहने पर भी वह नीचे ही टपकता रहता है और दुहने वाले का दुधारू पशु पालने का प्रयास निरर्थक चला जाता है। जो इन छिद्रो को जिस सीमा तक बन्द कर पाता है, उसका बर्तन साधना की कामधेनु के दूध से भरा-पूरा पाया जाता है।

अध्यात्म प्रयोजन मे पग-पग पर संकल्पशक्ति के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। दुनिया के प्रवाह से, प्रलोभनो और दबावो से निरन्तर टकराना पड़ता है। यदि वैसा साहस, पुरुषार्थ मनोबल न हो तो जन्म-जन्मातरो के संचित कुसंस्कार और इस जन्म के अवाछनीय अभ्यास बार-बार समुद्री लहरो की तरह उफनने लगते है और तटवर्ती बालू की दीवार को देखते-देखते बहा ले जाते है। ससार का प्रचलन भी अनोखा है। अधिकांश व्यक्ति लोभ, मोह और अहकार मे ग्रसित पाये जाते है। इन प्रयोजनो की पूर्ति मे उन्हे रस भी आता है और हर्ष, दर्प और गर्व का अनुभव भी होता है।

साधना मार्ग मे विघ्न आने की चर्चा प्राय होती रहती है। आसुरी शक्तियाँ उसे गिराने का प्रयत्न करती है। कोई साधक सिद्धावस्था तक पहुँचना चाहता है तो अनेक यक्ष-गन्धर्व अनेको रूप बनाकर उसे डराने या लुभाने का प्रयत्न करते है। इसी समुदाय ने मेनका भेज कर विश्वामित्र का तप खण्डित कर दिया था। इन्द्र को अपना इन्द्रासन छिनने के भय से अनेक तपस्वियो का, याज्ञिको का प्रयास नष्ट करने की सूझती है। दक्ष का यज्ञ इन्द्र के ऐसे ही षड्यन्त्रो से भग हुआ था।

भगवान कृष्ण को जन्म से ही पूतना, तृणावर्त, वृत्रासुर, अघासुर, कालियानाग, कंस आदि नष्ट करने पर उतारू थे। राम को भी बचपन मे ही ताड़का, सुबाहु, मारीच से जूझना पड़ा था। पतगा दीपक को बुझाने के लिये उस पर टूट पड़ता है और अपने प्राण होम देता है। इस ससार का भी यही प्रचलन है। अधिकांश अनाचारी इस संसार मे भरे पड़े है। वे नही चाहते कि धर्म पक्ष बलवान हो, इसलिये उन्हे लुभाने, डराने, गिराने के लिये जो कुछ संभव होता है वे करते है। इस समुदाय मे निकटवर्ती मित्र-सम्बन्धी भी सम्मिलित हो जाते है और संसार की राह पर चलने मे ही भलाई समझते है। ये लोग आदर्शवाद के मार्ग पर चलने वालो को, खतरो को इतना बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं, मानो किसी आत्महत्या करने वाले को रोकने मे अपनी समूची बुद्धिमत्ता दाँव पर लगा रहे हो। साधक प्रहलाद की तरह अकेला होता है और उसे रोकने के लिये हिरण्यकश्यप का समूचा समुदाय सामने खड़ा होता है। ऐसी स्थिति मे साधक किस अवलम्बन के सहारे खड़ा रह सके और समस्त प्रतिपक्षियो के साथ कैसे लोहा ले सके, यह एक टेढ़ी खीर है। इससे जूझने के लिये उसके पास एक ही शस्त्र होता है मनोबल का, संकल्पशक्ति का अक्षय भण्डार। इस क्षमता को कैसे अर्जित किया जाय ? यह एक टेढ़ा प्रश्न है। यदि इस नाव का आश्रय न मिला तो भँवरो वाली, ग्राहो वाली इस वैतरणी से पार होना मुश्किल है। साधक असमजस मे, संकोच मे पड़ा, तो समझना चाहिये कि उसका आरम्भ किया प्रयास निरर्थक गया।

गीताकार ने योगी की उस मनःस्थिति को समझते हुये उनकी उपेक्षा करने और अपने मार्ग पर चट्टान की तरह दृढ़ रहने का परामर्श दिया है। कहा है कि "दुनिया जब सोती है तब योगी जागता है और जब योगी जागता है तब दुनिया सोती है। दुनिया के लिये जो रात है, वही योगी का दिन है और जो लोगो का दिन है, वह योगी की रात है।" इसका तात्पर्य यह हुआ कि अध्यात्म मार्ग के साधक को सिद्धियो का टीला लूटे जाने का सुयोग नही मिलता वरन् उसे मोर्चे पर डटकर जूझना पड़ता है।

गीता की सरचना उसी रहस्यवाद को उदाहरण देते हुये समझाने के लिये हुई है। एक ओर राम का उदाहरण है, जिसमे उनने भाई के लिये सब कुछ त्यागना अंगीकार किया, दूसरी ओर महाभारत का कथानक है जिसमे अर्जुन के अनिच्छा व्यक्त करने पर भी कृष्ण द्वारा उसे लड़ने के लिये विवश-बाधित किया जाता है। इस असमंजस का समाधान लोकाचार की दृष्टि से नही, आध्यात्मिक रहस्यवाद की दृष्टि से ही होता है। अपने सचित कुसस्कारी स्वभाव तथा मित्र-सम्बन्धियो के परिकर से आदर्शवाद के मोर्चे पर जूझना पड़ता है।

प्रत्यक्षतः आदर्शवाद अपनाने मे अध्यात्म मार्ग पर चलने मे घाटा ही घाटा दीखता है। भले ही अन्ततः उसमे असीम लाभ की ही संभावना क्यो न हो। इसी प्रकार अवाछनीयता अपना कर तुरन्त लाभ उठाने की बात

दीखती है, पर अन्ततः उसमे इतना अधिक घाटा है, जिसकी क्षतिपूर्ति किसी भी प्रकार नहीं हो सकती। अर्जुन को कृष्ण ने इसी आन्तरिक विग्रह मे उतारा था। यही महाभारत है। इसमे अपनों के साथ ही लड़ना पड़ता है। अपनों अर्थात् अपने स्वभाव, व्यक्तित्व, परिवार एवं सम्पर्क क्षेत्र से, उनमे से किसी के साथ भी जो अनीतिपूर्वक समझौता करने से इन्कार कर देता है, और प्राण हथेली पर रखकर धर्म क्षेत्र में उतरता है, वही सच्चा कृष्णभक्त और सखा है। जो निर्देश-अनुकरण से दूर रहे और चन्दन पुष्प चढ़ाकर अपनी भक्ति-भावना का दावा करे, उसका छद्म ऐसा है जो न आत्मा को प्रभावित करता है और न परमात्मा को।

पहले निषेधात्मक तत्त्वों से जूझना पड़ता है, उसके उपरान्त विधेयात्मक क्रिया-कलापों का अवलम्बन बन पड़ता है। पहले 'ना' कहने की हिम्मत अर्जित करनी पड़ती है, पीछे 'हाँ' कहने का संकल्प निभता है। आत्मा में परमात्मा की ज्योति प्रज्ज्वलित करने के लिये जिस तेल की जरूरत पड़ती है, वह तिलहन को कोल्हू में पेलने के उपरान्त ही निकलता है।

इन्द्रिय निग्रह सकल्प शक्ति बढ़ाने का सर्वसुलभ और सर्वप्रथम प्रयोग है। इसके उपरान्त या साथ-साथ कुछ और सयमो को भी अपनाना पड़ता है। वे है—अर्थसंयम, समयसंयम, विचारसयम। यदि ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि कितने आवश्यक एव उपयोगी काम आर्थिक अभाव के कारण रुके पड़े रहते है और कितने ऐसे है जो निरर्थक होते हुये भी हेय प्रयोजनो की पूर्ति के निमित्त ढेरो पैसा खर्च करा लेते है। हमे कृपण की तरह एक-एक पाई बचानी चाहिये और उदारतापूर्वक सत् प्रयोजनो मे लगानी चाहिये। इस नीति को अपनाने मे भी अपनी आदतो और सम्बन्धियो से लड़ना पड़ सकता है। हमे उस मोर्चे पर भी मजबूती से अड़े रहना चाहिये, पलायन नही करना चाहिये।

इससे भी बढ़कर समयसंयम है। समय ही जीवन है। घड़ियो के घटको से ही मिलकर जीवन मिला है। यदि उन्हे बरबाद करते रहा जाय तो जिन्दगी लाश ढोने भर की बात बन पड़ती है। उसमे कोई उपयोगी कार्य नही हो सकता। जिन महामानवो ने अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, उनमे से प्रायः सभी ने अपने समय का एक-एक क्षण हीरे मोतियों की तरह सँभाला-सँजोया है, और वे गई-गुजरी परिस्थिति मे रहते हुये भी तेजी से बढ़े है और कहीं-से-कहीं पहुँचे है। जिनने समय गँवाया, वे रोते-चिल्लाते और हाथ मलते ही रह गये है।

समय की ही तरह विचारो की सम्पदा है। जो उन्हे अस्तव्यस्त कल्पनाओ मे खर्च कर डालते है—असयत, अनुपयुक्त और असभव कल्पनाओ मे उलझे रहने वाले शेखचिल्ली की तरह बिना पखो की उड़ाने उड़ने मे गवाँ देते है या चिन्ता, उद्वेग, आवेश, निराशा, ईर्ष्या, द्वेष और अन्तर्चेतना में बदल कर देते हैं, ... पर ये विचार यदि रचनात्मक ढांचे में गुंथ लिये ... तो दार्शनिक, साहित्यकार, वैज्ञानिक, कलाकार, ... आदि बन सकते हैं व अपनी प्रतिभा से ... सकते हैं। वर्डसवर्थ, शेक्सपियर के मन ... दिशा की ओर से उन्मुख थी ... अलग-अलग ... पर जब उनने अपने विचारों का केन्द्रीकरण ... विद्याध्ययन के लिये किया तो ऐसे बढ़ते कि ... हो गया।

आध्यात्मिक साधनाओं में संकल्पशक्ति ... नियोजन ही सफलता का एकमात्र कारण है। ... शृंगार मात्र है। कर्मकाण्ड औंधी-तिरछी रीति से ... जाय, पर संकल्प, दृढ निश्चय और ... समावेश न हो तो उस लकीर के पीटने से कुछ ... बनने वाला है। इसलिये हमें अपनी संकल्पशक्ति ... भीतरी और बाहरी अवांछनीयता के विरुद्ध ... तीखी बनानी चाहिये, इसके बाद साधनाओं की ... मे संदेह नहीं रह जाता।

साधक की तन्मयता

महान चित्रकार आगस्टी केन्वायर जितने ... वृद्ध होते गये, उतना ही उनका कला-प्रेम बढ़ता ... युवावस्था मे वे एक अच्छे चित्रकार थे। उनकी ... उसी से चलती थी, पर दुर्भाग्य से यह न देखा ... उनके हाथ-पैरो मे गठिया की शिकायत आरम्भ हुई ... इतनी बढ़ी कि पैरो ने दो कदम चलने से भी ... कर दिया। पहियेदार कुर्सी के सहारे ही वे घर के ... कोने से दूसरे कोने तक खाने, सोने जैसी ... आवश्यकताएँ पूरी करने जा सकते थे। हाथो का ... हाल हो गया कि ब्रुश पकड़ना उँगलियो के लिए ... हो गया। तब वे उँगलियो के साथ रस्सी से ब्रुश ... लेते और चित्रकारी मे तन्मय रहते।

यो दर्द उन्हे चौबीस घण्टे बना रहता था। कई ... यह इतना बढ़ जाता कि पहियेदार कुर्सी से उतरने ... चढ़ने का अवसर आने पर उन्हे कराहना पड़ता। ब्रुश रंग की प्लेट तक ले जाने, डुबाने और उठाने मे बार उँगलियो मे बेतरह कसक होती और वे उसे की तहाँ रखने के लिए मजबूर हो जाते। थोड़ा ... मिलने पर ही हाथ उठता, पर चित्रकला की उन ... तन्मयता मे इससे भी कुछ अन्तर न आया।

अपग कलासाधक की लगन और कला देखने ... लिये दूर-दूर से नौसिखिये चित्रकार उनके पास आ... करते थे और उस सन्दर्भ मे गूढ़ प्रश्न पूछते थे। ए... प्रश्न यह तो होता ही था, सत्तर वर्ष से अधिक आ... हो जाने के कारण जरा-जीर्णता और रुग्णता के रहते हु... भी वे किस प्रकार 'अपने प्रयास मे इतने दत्तचित्त ... पाते है ? उत्तर मे वे नये कलाकारो को अप...

मनःस्थिति का सार बताते हुए यही कहते—यदि कोई कलाकार अपनी कृति और प्रगति को देखकर सन्तोष कर बैठे या अहंकार करने लगे तो समझना चाहिए उसके विकास का अन्त हो गया। प्रगति का एक ही मार्ग है—अकल्पनीय प्रगति तक पहुँचने की उत्कट आकांक्षा और उसके लिए मजदूर जैसी कठोर श्रम-साधना। जिसने थोड़ी सफलता पर अहकार व्यक्त किया समझ लो वह मारा गया। प्रगति तो अनन्त है इसलिये उसकी साधना भी असीम ही होनी चाहिए।

७८ वर्ष की आयु मे जबकि आगस्टी केन्वायर बहुत अधिक वृद्ध हो गये थे और बीमारी ने उन्हे नर-कंकाल मात्र बना दिया था तो भी उन्होंने अपनी कला-साधना छोड़ी नहीं। फेफड़ो की खाँसी बेतरह तंग करती थी और लगता था कि वे अब महाप्रयाण करने ही वाले है तो भी उन्होंने अपनी साधना छोड़ी नही। अन्तिम दिनो वे महिला मित्र नामक अत्यन्त कला-पूर्ण चित्र बनाने मे निमग्न थे और अपने बेटे की मेज पर रखने के लिए एक गुलदस्ता चित्रित कर रहे थे।

डाक्टरो ने पूर्ण विश्राम के लिए कहा तो उन्होंने एक ही उत्तर दिया—कुछ न करने की, कुछ न सोचने की बात मेरी प्रकृति स्वीकार ही न कर पायेगी। अन्तिम दिन उन्हे साँस का ऐसा विकट दौरा पड़ा जो उन्हे साथ लिए बिना गया ही नही। वे फर्श पर बेहोश होकर गिर पड़े, वे होश मे आये तो गृहसेविका लूसी ने पूछा अब आपकी तबियत कैसी है ? तो उन्होंने तबियत का मतलब अपनी कला-साधना से समझा और बुझती हुई आँखो को नये सिरे से चमकाते हुए कहा—लूसी मै समझता हूँ कि चित्रकला के बारे मे अब कुछ-कुछ समझ सकने योग्य हो चला। इसके बाद उन्होंने सदा के लिए आँखे बन्द कर ली।

समग्र सफलताओं का मूलभूत आधार

ईसामसीह ने अपने शिष्यो को उपदेश देते हुए कहा है, "जो द्वार खटखटायेगा उसके लिए दरवाजा खोला जायगा और जो माँगेगा वह दिया जायगा।" इस उक्ति मे आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के, सम्पूर्ण क्षेत्रो मे सफलता प्राप्त करने का अचूक रहस्य उद्‌घाटित किया गया है। सफलता का द्वार खटखटाने का अर्थ है, उसे प्राप्त करने का दृढ़ सकल्प और माँगने पर मिलने का अर्थ पूरी शक्ति के साथ अपनी शक्तियो का उपयोग। स्मरणीय है कि सफलताएँ भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, उन्हे प्राप्त करने के लिए कोई बाहरी साधनो की आवश्यकता नही पड़ती। मूल आवश्यकता तो अपनी आन्तरिक शक्तियो को जाग्रत करने तथा उन्हे सक्रिय बनाने की होती है। बाहरी साधन और उपकरण भी आवश्यक होते है, पर वे एक सीमा तक ही उपयोगी सिद्ध होते है। यदि उनका ठीक प्रकार से उपयोग करने की कला न आती हो, संकल्प, साहस और पुरुषार्थ न किया जाय तो वे साधन एक तरह निरर्थक और व्यर्थ ही सिद्ध होते है। मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा करता है, हृदय से पूरे प्राण से जो संकल्प करता है, उसी के अनुरूप परिस्थितियाँ उसके निकट एकत्रित होने लगती है। इस इच्छा या संकल्प को एक प्रकार का चुम्बक कहा जा सकता है, जिसके आकर्षण से अनुकूल शक्तियाँ खिंची आती है। जहाँ गड्ढा होता है वहाँ चारो ओर से वर्षा का पानी बहता हुआ सिमट आता है और गड्ढा भर जाता है। लेकिन जहाँ ऊँचा टीला है। वहाँ भारी वर्षा होने पर भी पानी नही ठहरता। इच्छा और संकल्प एक प्रकार का गड्ढा है, जिसमे सब ओर से अनुकूल स्थितियाँ खिंच-खिंचकर चली आती है।

प्रश्न उठता है कि सफलता और सुख-शांति की इच्छा तो सभी करते है, प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना और आगे बढ़ना चाहता है, फिर सभी की इच्छाएँ पूरी क्यो नही होतीं ? इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। पैर मे काँटा चुभता है और पीड़ा होती है तो मनुष्य सभी काम छोड़कर अपना पूरा ध्यान उस काँटे को निकालने मे लगा देता है। उसे तब तक चैन नही आता जब तक कि पैर से काँटा नहीं निकल जाय। इच्छा या आकांक्षा का यही वास्तविक स्वरूप है। सुख-शांति से सभी रहना चाहते है, प्रगति और उन्नति करने की आकांक्षा हर कोई करता है, पर कितने व्यक्ति है जो इन इच्छाओ को पूरा करने के लिए समग्र तत्परता से प्रयत्न करते है। स्पष्ट है कि जिन्हे इच्छा या आकांक्षा कहा जाता है वे सतही स्तर की होती है। यदि पूरे मन और प्राण से इच्छा की जाती है, वर्तमान परिस्थितियाँ शूल की तरह चुभती है तो उन्हे दूर करने के लिए भी उसी स्तर की तत्परता होनी चाहिए।

इस स्तर की इच्छा जहाँ भी रहेगी वहाँ अभिरुचि, मनोयोग और आवश्यक साधन जुटाने के लिए समस्त शक्तियाँ सक्रिय हो उठेगी। इसके विपरीत सतही इच्छाएँ तथा आकांक्षाओ की कमी रहने पर विभूतियाँ प्राप्त नही हो सकेगी। स्मरण रखा जाना चाहिए कि मन मे जो इच्छा प्रधान रूप से काम करती है, उसे पूरा करने के लिए शरीर की समस्त शक्तियाँ काम करने लगती है। निर्णय शक्ति, निरीक्षण शक्ति, आकर्षक, अन्वेषण, चिन्तन और कल्पना आदि मस्तिष्क की सभी शक्तियाँ उसी दिशा मे सक्रिय हो जाती है और तब एक जीवित चुम्बकत्व तैयार हो जाता है। जिस प्रकार चुम्बक को कूड़े-कचरे मे भी फिराया जाय तो धातुओ के इधर-उधर बिखरे हुए टुकड़े उससे चिपक जाते है उसी प्रकार विशिष्ट आकांक्षाएँ मन मे उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति की जाग्रत शक्तियाँ उन सभी तथ्यो को ढूँढ़ और प्राप्त कर लेती है जो सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

दीखती है, पर अन्ततः उसमे इतना अधिक घाटा है जिसकी क्षतिपूर्ति किसी भी प्रकार नही हो सकती। अर्जुन को कृष्ण ने इसी आन्तरिक विग्रह मे उतारा था। यही महाभारत है। इसमे अपनो के साथ ही लड़ना पड़ता है। अपनो अर्थात् अपने स्वभाव, व्यक्तित्व, परिवार एवं सम्पर्क क्षेत्र से, उनमे से किसी के साथ भी जो अनीतिपूर्वक समझौता करने से इन्कार कर देता है, और प्राण हथेली पर रखकर धर्म क्षेत्र मे उतरता है, वही सच्चा कृष्णभक्त और सखा है। जो निर्देश-अनुकरण से दूर रहे और चन्दन पुष्प चढ़ाकर अपनी भक्ति-भावना का दावा करे, उसका छद्म ऐसा है जो न आत्मा को प्रभावित करता है और न परमात्मा को।

पहले निषेधात्मक तत्त्वो से जूझना पड़ता है, उसके उपरान्त विधेयात्मक क्रिया-कलापो का अवलम्बन बन पड़ता है। पहले 'ना' कहने की हिम्मत अर्जित करनी पड़ती है, पीछे 'हाँ' कहने का संकल्प निभता है। आत्मा मे परमात्मा की ज्योति प्रज्ज्वलित करने के लिये जिस तेल की जरूरत पड़ती है, वह तिलहन को कोल्हू मे पेलने के उपरान्त ही निकलता है।

इन्द्रिय निग्रह संकल्प शक्ति बढ़ाने का सर्वसुलभ और सर्वप्रथम प्रयोग है। इसके उपरान्त या साथ-साथ कुछ और सयमो को भी अपनाना पड़ता है। वे है—अर्थसंयम, समयसंयम, विचारसंयम। यदि ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि कितने आवश्यक एव उपयोगी काम आर्थिक अभाव के कारण रुके पड़े रहते है और कितने ऐसे है जो निरर्थक होते हुये भी हेय प्रयोजनो की पूर्ति के निमित्त ढेरो पैसा खर्च करा लेते है। हमे कृपण की तरह एक-एक पाई बचानी चाहिये और उदारतापूर्वक सत् प्रयोजनो मे लगानी चाहिये। इस नीति को अपनाने मे भी अपनी आदतो और सम्बन्धियो से लड़ना पड़ सकता है। हमे उस मोर्चे पर भी मजबूती से अड़े रहना चाहिये, पलायन नही करना चाहिये।

इससे भी बढ़कर समयसंयम है। समय ही जीवन है। घड़ियो के घटको से ही मिलकर जीवन मिला है। यदि उन्हे बरबाद करते रहा जाय तो जिन्दगी लाश ढोने भर की बात बन पड़ती है। उसमे कोई उपयोगी कार्य नही हो सकता। जिन महामानवो ने अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य किये है, उनमे से प्रायः सभी ने अपने समय का एक-एक क्षण हीरे मोतियो की तरह सँभाला-सँजोया है, और वे गई-गुजरी परिस्थिति मे रहते हुये भी तेजी से बढ़े है और कही-से-कही पहुँचे है। जिनने समय गँवाया, वे रोते-चिल्लाते और हाथ मलते ही रह गये है।

समय की ही तरह विचारो की सम्पदा है। जो उन्हे अस्तव्यस्त कल्पनाओ मे खर्च कर डालते है—असयत, अनुपयुक्त और असभव कल्पनाओ मे उलझे रहने वाले शेखचिल्ली की तरह बिना पखो की उड़ाने उड़ने मे गवाँ देते है या चिन्ता, उद्वेग, आवेश, निराशा, ईर्षा, द्वेष आदि अचिन्त्यचिन्तन मे बरबाद कर देते है, इसके स्थान पर वे विचार यदि रचनात्मक कार्यों मे प्रयुक्त किये जायँ तो व्यक्ति साहित्यकार, वैज्ञानिक, कलाकार, दार्शनिक आदि बन सकते है व अपनी प्रतिभा मे चार चाँद लगा सकते है। कालिदास, वरदराज के नाम ऐसे ही है, जिनने विद्या की ओर से उपेक्षा की तो अनपढ़-अनगढ़ बने रहे, पर जब उनने अपने विचारो का केन्द्रीकरण संकल्पपूर्वक विद्याध्ययन के लिये किया तो ऐसे बदले कि चमत्कार ही हो गया।

आध्यात्मिक साधनाओ मे संकल्पशक्ति का समग्र नियोजन ही सफलता का एकमात्र कारण है। कर्मकाण्ड तो श्रृगार मात्र है। कर्मकाण्ड औधी-तिरछी रीति मे करते रहा जाय, पर संकल्प, दृढ निश्चय और भावनाओ का समावेश न हो तो उस लकीर के पीटने से कुछ भी नहीं बनने वाला है। इसलिये हमे अपनी संकल्पशक्ति को भीतरी और बाहरी अवांछनीयता के विरुद्ध प्रयुक्त करके तीखी बनानी चाहिये, इसके बाद साधनाओ की सफलता मे सदेह नही रह जाता।

साधक की तन्मयता

महान चित्रकार आगस्टी केन्वायर जितने अधिक वृद्ध होते गये, उतना ही उनका कला-प्रेम बढ़ता गया। युवावस्था मे वे एक अच्छे चित्रकार थे। उनकी रोजी-रोटी उसी से चलती थी, पर दुर्भाग्य से यह न देखा गय उनके हाथ-पैरो मे गठिया की शिकायत आरम्भ हुई औ इतनी बढ़ी कि पैरो ने दो कदम चलने से भी इन्का कर दिया। पहियेदार कुर्सी के सहारे ही वे घर के ए कोने से दूसरे कोने तक खाने, सोने जैसी दैनि आवश्यकताएँ पूरी करने जा सकते थे। हाथो का या हाल हो गया कि ब्रुश पकड़ना उँगलियो के लिए कठि हो गया। तब वे उँगलियो के साथ रस्सी से ब्रुश बाँ लेते और चित्रकारी मे तन्मय रहते।

यो दर्द उन्हे चौबीस घण्टे बना रहता था। कई बा वह इतना बढ़ जाता कि पहियेदार कुर्सी से उतरने औ चढ़ने का अवसर आने पर उन्हे कराहना पड़ता। ब्रुश को रग की प्लेट तक ले जाने, डुबाने और उठाने मे कई बार उँगलियो मे बेतरह कसक होती और वे उसे जह की तहाँ रखने के लिए मजबूर हो जाते। थोड़ा चैन मिलने पर ही हाथ उठता, पर चित्रकला की उनकी तन्मयता मे इससे भी कुछ अन्तर न आया।

अपंग कलासाधक की लगन और कला देखने के लिये दूर-दूर से नौसिखिये चित्रकार उनके पास आया करते थे और उस सन्दर्भ मे गूढ प्रश्न पूछते थे। एक प्रश्न यह तो होता ही था, सत्तर वर्ष से अधिक आयु हो जाने के कारण जरा-जीर्णता और रुग्णता के रहते हुए भी वे किस प्रकार अपने प्रयास मे इतने दत्तचित्त रह पाते है ? उत्तर मे वे नये कलाकारो को अन्दे

मनःस्थिति का सार बताते हुए यही कहते—यदि कोई कलाकार अपनी कृति और प्रगति को देखकर सन्तोष कर बैठे या अहंकार करने लगे तो समझना चाहिए उसके विकास का अन्त हो गया। प्रगति का एक ही मार्ग है—अकल्पनीय प्रगति तक पहुँचने की उत्कट आकांक्षा और उसके लिए मजदूर जैसी कठोर श्रम-साधना। जिसने थोड़ी सफलता पर अहंकार व्यक्त किया समझ लो वह मारा गया। प्रगति तो अनन्त है इसलिये उसकी साधना भी असीम ही होनी चाहिए।

७८ वर्ष की आयु मे जबकि आगस्टी केन्वायर बहुत अधिक वृद्ध हो गये थे और बीमारी ने उन्हे नर-कंकाल मात्र बना दिया था तो भी उन्होने अपनी कला-साधना छोड़ी नही। फेफड़ो की खाँसी बेतरह तंग करती थी और लगता था कि वे अब महाप्रयाण करने ही वाले है तो भी उन्होंने अपनी साधना छोड़ी नही। अन्तिम दिनो वे महिला मित्र नामक अत्यन्त कला-पूर्ण चित्र बनाने मे निमग्न थे और अपने बेटे की मेज पर रखने के लिए एक गुलदस्ता चित्रित कर रहे थे।

डाक्टरो ने पूर्ण विश्राम के लिए कहा तो उन्होने एक ही उत्तर दिया—कुछ न करने की, कुछ न सोचने की बात मेरी प्रकृति स्वीकार ही न कर पायेगी। अन्तिम दिन उन्हे साँस का ऐसा विकट दौरा पड़ा जो उन्हे साथ लिए बिना गया ही नही। वे फर्श पर बेहोश होकर गिर पड़े, वे होश मे आये तो गृहसेविका लूसी ने पूछा अब आपकी तबियत कैसी है ? तो उन्होने तबियत का मतलब अपनी कला-साधना से समझा और बुझती हुई आँखो को नये सिरे से चमकाते हुए कहा—लूसी मै समझता हूँ कि चित्रकला के बारे मे अब कुछ-कुछ समझ सकने योग्य हो चला। इसके बाद उन्होंने सदा के लिए आँखे बन्द कर ली।

समग्र सफलताओं का मूलभूत आधार

ईसामसीह ने अपने शिष्यो को उपदेश देते हुए कहा है, "जो द्वार खटखटायेगा उसके लिए दरवाजा खोला जायगा और जो माँगेगा वह दिया जायगा।" इस उक्ति मे आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के, सम्पूर्ण क्षेत्रो मे सफलता प्राप्त करने का अचूक रहस्य उद्घाटित किया गया है। सफलता का द्वार खटखटाने का अर्थ है, उसे प्राप्त करने का दृढ़ सकल्प और माँगने पर मिलने का अर्थ पूरी शक्ति के साथ अपनी शक्तियों का उपयोग। स्मरणीय है कि सफलताएँ भौतिक हो अथवा आध्यात्मिक, उन्हे प्राप्त करने के लिए कोई बाहरी साधनो की आवश्यकता नही पड़ती। मूल आवश्यकता तो अपनी आन्तरिक शक्तियो को जाग्रत करने तथा उन्हे सक्रिय बनाने की होती है। बाहरी साधन और उपकरण भी आवश्यक होते है, पर वे एक सीमा तक ही उपयोगी सिद्ध होते है। यदि उनका ठीक प्रकार से उपयोग करने की कला न आती हो, संकल्प, साहस और पुरुषार्थ न किया जाय तो वे साधन एक तरह निरर्थक और व्यर्थ ही सिद्ध होते है। मनुष्य जिस प्रकार की इच्छा करता है, हृदय से पूरे प्राण से जो संकल्प करता है, उसी के अनुरूप परिस्थितियाँ उसके निकट एकत्रित होने लगती है। इस इच्छा या सकल्प को एक प्रकार का चुम्बक कहा जा सकता है, जिसके आकर्षण से अनुकूल शक्तियाँ खिंची आती है। जहाँ गड्ढा होता है वहाँ चारो ओर से वर्षा का पानी बहता हुआ सिमट आता है और गड्ढा भर जाता है। लेकिन जहाँ ऊँचा टीला है। वहाँ भारी वर्षा होने पर भी पानी नही ठहरता। इच्छा और संकल्प एक प्रकार का गड्ढा है, जिसमे सब ओर से अनुकूल स्थितियाँ खिंच-खिंचकर चली आती है।

प्रश्न उठता है कि सफलता और सुख-शांति की इच्छा तो सभी करते है, प्रत्येक व्यक्ति उन्नति करना और आगे बढ़ना चाहता है, फिर सभी की इच्छाएँ पूरी क्यो नही होती ? इस प्रश्न का समाधान खोजने के लिए एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। पैर मे काँटा चुभता है और पीड़ा होती है तो मनुष्य सभी काम छोड़कर अपना पूरा ध्यान उस काँटे को निकालने मे लगा देता है। उसे तब तक चैन नही आता जब तक कि पैर से काँटा नही निकल जाय। इच्छा या आकांक्षा का यही वास्तविक स्वरूप है। सुख-शांति से सभी रहना चाहते है, प्रगति और उन्नति करने की आकांक्षा हर कोई करता है, पर कितने व्यक्ति है जो इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए समग्र तत्परता से प्रयत्न करते है। स्पष्ट है कि जिन्हे इच्छा या आकाक्षा कहा जाता है वे सतही स्तर की होती है। यदि पूरे मन और प्राण से इच्छा की जाती है, वर्तमान परिस्थितियाँ शूल की तरह चुभती है तो उन्हे दूर करने के लिए भी उसी स्तर की तत्परता होनी चाहिए।

इस स्तर की इच्छा जहाँ भी रहेगी वहाँ अभिरुचि, मनोयोग और आवश्यक साधन जुटाने के लिए समस्त शक्तियाँ सक्रिय हो उठेगी। इसके विपरीत सतही इच्छाएँ तथा आकाक्षाओ की कमी रहने पर विभूतियाँ प्राप्त नही हो सकेगी। स्मरण रखा जाना चाहिए कि मन मे जो इच्छा प्रधान रूप से काम करती है, उसे पूरा करने के लिए शरीर की समस्त शक्तियाँ काम करने लगती है। निर्णय शक्ति, निरीक्षण शक्ति, आकर्षक, अन्वेषण, चिन्तन और कल्पना आदि मस्तिष्क की सभी शक्तियाँ उसी दिशा मे सक्रिय हो जाती है और तब एक जीवित चुम्बकत्व तैयार हो जाता है। जिस प्रकार चुम्बक को कूड़े-कचरे मे भी फिराया जाय तो धातुओं के इधर-उधर बिखरे हुए टुकड़े उससे चिपक जाते है उसी प्रकार विशिष्ट आकाक्षाएँ मन मे उत्पन्न होती है, तो व्यक्ति की जाग्रत शक्तियाँ उन सभी तथ्यो को ढूँढ और प्राप्त कर लेती है जो सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

ईसामसीह के उक्त कथन का यही रहस्य है कि खटखटाने पर द्वार खुलता है और माँगने पर मिलता है अर्थात् आकांक्षा उत्कट और बलवती होनी चाहिए। उत्कट और बलवती आकांक्षा मनुष्य मे वह तत्परता उत्पन्न करती है जो प्रत्येक क्षेत्र मे अवरोधो को चीरती, रुकावटो को हटाती और बाधाओ को मिटाती, अभीष्ट दिशा मे बढ़ती जाती है। तत्परता के बल पर ही किसी भी क्षेत्र मे सफल हुआ जा सकता है, क्योकि उसके द्वारा प्रेरित क्रियाशीलता अभीष्ट शक्ति सम्पादित कराती है और यह सुविदित है कि सक्रियता अथवा निरन्तर अभ्यास से पूरे शरीर को या उसके किसी भी अंग को अथवा व्यक्तित्व के किसी भी पक्ष को बलवान बनाया जा सकता है। लुहार का दाहिना हाथ अपेक्षाकृत अधिक मजबूत होता है, क्योकि अधिक काम मे आने के कारण उसकी क्षमता बढ़ी हुई रहती है। पैदल चलने के अभ्यासी लोगो की रगे मजबूत पाई जाती है। नफीरी बजाने वालो के गलफड़े-फेफड़े दूसरे लोगो की तुलना मे अधिक पुष्ट होते है। इसका एकमात्र कारण उन अंगो की क्रियाशीलता ही है।

उत्कट आकाक्षा और तज्जन्य तत्पर क्रियाशीलता के बल पर कितने ही लोगो ने विभिन्न क्षेत्रो मे आश्चर्यजनक प्रगति की है। दुबले-पतले शरीर वाले कितने ही लोगो ने बलवान बनने की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित होकर व्यायाम, आहार, विहार-सयम, नियम का पालन कर अपने को उच्च श्रेणी का बलवान तथा पहलवान बना लिया। विश्वविख्यात पहलवान सेडो बचपन मे बहुत दुबला-पतला और प्राय: बीमार रहा करता था। परन्तु जब उसमे बलवान बनने की भावना जागी और इसके लिए नियमित रूप से व्यायाम करने के साथ-साथ आहार-विहार का संयम अपनाया तो उसने अपनी पहलवानी की धाक सारे ससार मे जमा दी। भारत के माने हुए पहलवान मास्टर चन्दगीराम २१ वर्ष की आयु तक जुकाम, सर्दी, बुखार आदि रोगो से इस बुरी तरह ग्रस्त रहते थे कि उनका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। चलते-चलते उन्हे चक्कर आने लगते। किन्तु जब उन्होने अपना ध्यान शारीरिक बल वृद्धि पर केन्द्रित किया और व्यायाम, कसरत करने लगे तो फिर शरीर का काया-कल्प ही हो गया। ऐसे अगणित उदाहरण है जो मनुष्य की उत्कट आकांक्षा, एकाग्रता, लगन और तत्परता के समन्वय द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे आश्चर्यजनक प्रगति के प्रमाण प्रस्तुत करते है।

मस्तिष्क की स्मरण शक्ति और बुद्धि की प्रखरता बढ़ाने मे इग्लैण्ड के डब्ल्यू. जे. एम. बाटन की कोई सानी नही रखता। इग्लैण्ड के केट कस्बे मे. जन्मा बाटन आरम्भ मे इतना मन्दबुद्धि था कि उसे पढ़ी हुई कोई बात याद नही रहती। वह कमजोर भी काफी था और कमजोरी, बीमारी के कारण उसे ११ वर्ष की आयु मे ही स्कूल छोड़ देना पड़ा। अब मस्तिष्क या बुद्धि के विकास की क्या कल्पना या आशा की जा सकती थी ? लेकिन इस स्थिति मे भी बाटन ने अपने पिता की प्रेरणा से मनोरंजन का एक शौक बढ़ाया। वह इधर-उधर की बातें याद कर लेता और उनका स्थान, समय, घटनाक्रम आदि का ठीक-ठीक विवरण बताकर लोगो पर अपनी स्मरण शक्ति का रौब जमाता।

धीरे-धीरे उसने अपनी स्मरण शक्ति को इतना अधिक विकसित कर लिया वह चलता-फिरता विश्वकोश समझा जाने लगा। यह अभ्यास उसने इस लक्ष्य के प्रति गाँठ-बाँधकर किया कि उसे अपनी याददाश्त को बढ़ाना है। पूरी तत्परता के साथ इस दिशा मे लगे रहने के बाद उसने अपनी याददाश्त को इतना तेज कर लिया कि उसकी ख्याति चारो दिशाओं मे फैलने लगी। एक बार उससे यूरोप के प्रमुख ज्योतिषियो, राजनीतिज्ञो और प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने ऐसी घटनाओ के विवरण पूछे जो विस्मृति के गर्त मे गुम गये ही प्रतीत होते थे, पर उसने पूछी गई सारी घटनाओ को सिलसिलेवार सन्, तारीख सहित इस प्रकार बताया कि पूछने वालो को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा। बाटन अपने समय मे इतना प्रसिद्ध हो गया था कि उसकी मृत्यु के बाद अमेरिका के एक स्वास्थ्य संस्थान ने उसका सिर १० हजार डालर मे खरीदा ताकि उसकी मस्तिष्कीय विलक्षणताओ का रहस्य मालूम किया जा सके।

इच्छाशक्ति का केन्द्रीकरण तथा पूरी तत्परता के साथ प्रयत्नशील रहना ही वह आधार है जिसके बल पर इच्छित उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मनुष्य उन्हीं वस्तुओ अथवा उपलब्धियो को प्राप्त कर सकता है जिनके लिए वह आग्रहपूर्वक प्रयत्न करता है। अगर किसी लक्ष्य विशेष का निर्धारण न कर काम किया जाय तो उनका परिणाम भी शून्य या नगण्य ही रहेगा और कहना नही होगा कि लक्ष्य का निर्धारण तभी होता है जब मन मे किसी विशिष्ट आकांक्षा का निवास हो और उसे प्राप्त करने के लिए तत्परता के स्तर की व्यग्रता हो। अनेक जीव-जन्तु, कीट-पतगे फूलो के आसपास घूमते रहते हैं, पर उनमे से केवल मधुमक्खी ही शहद निकालती है, क्योंकि उसे मधु प्राप्त करने की आकांक्षा और व्यग्रता रहती है। इस सम्बन्ध मे ब्रिटेन के प्रसिद्ध विचारक कार्लाइल का कथन है कि "एक ही विषय पर अपनी शक्तियो को एकाग्र करने से कमजोर व्यक्ति भी बहुत कुछ कर सकता है, जबकि बलवान व्यक्ति भी यदि अपनी शक्तियो को कई दिशाओं मे बिखेर देता है तो वह बलवान होते हुए भी कुछ नही कर सकता। एक-एक बूँद पानी अगर एक ही स्थान पर निरन्तर पड़ता रहे तो कड़े-से-कड़े पत्थर मे भी छेद हो जाता है लेकिन यदि पानी का बड़ा भारी बहाव उसके ऊपर से शीघ्रतापूर्वक निकल जाय तो उसका नाम-निशान भी उस पर नहीं दिखाई पड़ता।"

अँग्रेजी भाषा के प्रख्यात साहित्यकार बुल्वर लिटन शौकिया तौर पर ही लिखा करते थे लेकिन उन्होने जो कुछ भी लिखा, वह इतना श्रेष्ठ था कि उसके कारण लिटन की गणना अँग्रेजी के अग्रणी लेखको मे की जाती है। एक बार किसी ने उनसे इसका रहस्य पूछा तो लिटन ने कहा कि, "मै कभी शीघ्रतापूर्वक बहुत अधिक काम कर डालने की कोशिश नही करता बल्कि उसे उत्तम रीति से करना ही ज्यादा पसन्द करता हूँ। अगर आज अपनी शक्ति से अधिक काम कर डाला जाय तो कल तक थकान आ जायगी और फिर थोड़ा-सा काम भी ठीक ढंग से नही हो सकेगा। जब मैने कालेज छोड़ा और सासारिक कामो मे पड़ा तो उसके पहले वास्तव मे मैने ऐसे कामो का कोई अध्ययन नही किया था। लेकिन इसके बाद मै पढ़ने लगा और मेरा विश्वास है कि मैने सामान्य लोगो से कम नही पढ़ा। मैने बहुत-सी दूर-दूर देशो की यात्राएँ की, राजनीति मे भाग लिया और उद्योग-धन्धो मे भी समय बिताया। फिर भी साठ से अधिक किताबे लिख डाली। आपको विश्वास नही होगा कि मैने इस पढ़ने-लिखने मे कभी तीन घण्टे से अधिक समय खर्च नही किया। लेकिन इन तीन घण्टो मे जो भी पढ़ता-लिखता था वह पूरी एकाग्रता, तन्मयता और तत्परता के साथ।"

सफलता का मूलभूत आधार उत्कट इच्छा, तत्पर सक्रियता और क्रियाशीलता ही है। इसके बिना कोई भी व्यक्ति ऊँचा नही उठ सका है और कोई उल्लेखनीय सफलता नही प्राप्त कर पाया है। तत्परता, तन्मयता, सक्रियता और मनोयोग के मूल मे भी उत्कट आकांक्षा ही उत्प्रेरक का काम करती है। यद्यपि सुख-दु:ख भली-बुरी परिस्थितियाँ और उत्थान-पतन का मुख्य कारण मनुष्य का कर्म समझा जाता है। लेकिन कर्म रूपी वृक्ष भी तो विचार और इच्छा रूपी बीज से ही उत्पन्न होता है। इच्छा से प्रेरणा की और प्रेरणा से कर्म की उत्पत्ति होती है।

मनुष्य अपनी आकाक्षा के अनुरूप सोचता है और जैसा वह सोचता है वैसे ही साधन उपलब्ध करता है। जैसे साधन उपलब्ध होते है वैसा ही कर्म वह करने लगता है। जैसे कर्म किये जाते है वैसी ही परिस्थितियाँ सामने आ खड़ी होती है और उसी तरह के परिणाम प्रस्तुत करती है। इसे भाग्य, कर्मो का फल, किस्मत, चाहे जो नाम दे दिया जाय, पर सचाई यह है कि यह सब अपनी ही इच्छाओ की परिणति और फलश्रुति है। जो चाहा जाता है वही प्राप्त होता है। इसीलिए कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता और तकदीर का लेखक स्वयं है। संसार मे जितने भी व्यक्तियो ने सफलताएँ प्राप्त की है, उन्होने अपने प्राप्तव्य के लिए पूरे मन से अभिलाषा की है और वे इस बात के लिए तड़पते, बेचैन होते रहे है कि किस प्रकार अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त की जाय। इस आकाक्षा और तड़प ने ही उन्हे क्रियाशील बनाया तथा समस्त बाधाओ से जूझते हुए, असफलताओ की घड़ी मे भी आशान्वित रहते और पराजय के बाद भी नये प्रयत्न करते रहकर अन्त मे अपने अभीष्ट को प्राप्त किया। अस्तु, उत्कट आकांक्षा ही एक शब्द मे सफलता का मूलभूत आधार कही जा सकती है।

क्या मनुष्य क्रमश: घटता ही चला जायगा

देखा जाता है कि जानवरो की नस्ले जैसी भी है, वैसी ही बनी रहती है। खुराक या सुविधा के कारण दुबले-मोटे तो हो जाते है, पर ऐसा कदाचित् ही किसी जीवधारी मे होता है कि अपनी नस्ल की दृष्टि से गिर रहा हो।

यह आश्चर्य मनुष्यो मे ही देखने को मिलता है कि उनकी नस्ल क्रमश: छोटी होती जा रही है। कद और वजन की दृष्टि से वह निरन्तर घटता जा रहा है, फलत: उसकी प्रतिभा और क्षमता भी न्यून होती जा रही है। कुछ शताब्दी पूर्व के लोगो पर दृष्टिपात करे तो ज्ञात होगा कि कद, ऊँचाई, वजन, क्षमता, पराक्रम और पुरुषार्थ की दृष्टि से वे अब के लोगो की तुलना मे कही अधिक समर्थ और बलिष्ठ होते थे। पर आज स्थिति विपरीत नजर आ रही है, क्रम उल्टा हो चला है। लोग हर दृष्टि से कमजोर होते जा रहे है। शारीरिक बल तो गँवाया ही, अपनी स्वाभाविक लम्बाई भी खोते चले जा रहे है। यदि यह क्रम अविराम चलने लगे तो इसे चिन्ता की बात समझनी चाहिए।

ऐसे अपवादो मे कुछ समय पहले लाख के पीछे एक बौना दृष्टिगोचर होता था। अब वह संख्या बढ़ रही है। अब दस हजार के पीछे एक बौना होने लगा है।

बौनो मे आमतौर से तीन फुट के बौने पहले देखने मे आते थे, पर अब कुछ उदाहरण ऐसे भी सामने आ रहे है, जिसमे वे दो फुट से भी कम रह गये हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका पराक्रम कितना कम रह जायेगा और उनका जीवनकाल भी कितना स्वल्प होगा। विश्व मे ऐसी घटनाएँ अब बढ़ती जा रही है।

मवूती (अफ्रीकी) आदिम जाति के लोग सामान्य ऊँचाई से अब काफी कम के रह गये है। पुरुष ४ फुट ७ इंच तथा स्त्रियाँ ४ फुट ३ इच तक की होती है।

अफ्रीका का कांगो प्रदेश तो पूर्ण रूप से बौनो का हो चला है। वहाँ अब ३ फुट से अधिक का कोई विरला ही दीखता है। अब से सौ वर्ष पूर्व वे तीरकमान के सहारे शिकार मार लेते थे। अब वे गुलेल के सहारे पक्षियो पर निर्भर रह गये है। लक्षणो को देखने से संभावना और भी अधिक घटने की है।

इसके अतिरिक्त जहाँ-तहाँ जो बौने पाये जाते है, उनका कद और भी घटा हुआ है। ऐसे लोगो को लोग मनुष्य मे न मानकर खिलौना समझते है और उन्हे उसी दृष्टि से पालते है। संसार के कुछ प्रसिद्ध बौनो ने तो घटते-घटते अपनी स्थिति आश्चर्यजनक स्तर तक पहुँचा दी है।

रियलिंग ब्रदर्स के सर्कस मे काम करने वाली एक बौनी का कद मात्र २१ इंच था। नाम था—लिया ग्राफ। इसकी सर्वत्र बड़ी धूम थी। हिटलर ने उसे जासूसी के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया था। किन्तु मृत्युदण्ड से वह बच गयी।

रूसी शासक 'पीटर' के नाम पर बौनो की एक छोटी बस्ती बसायी गई थी। नाम था—'पीटर्सवर्ग'। इसमे प्रावधान ऐसा था कि अत्यन्त छोटे बौने ही रह सकते थे।

कोनी आइलैण्ड मे 'लिलीपुट' नाम की कई बस्ती भी ऐसी ही बनी थी, जो पीछे आग मे जलकर नष्ट हो गईं। संभवत: गुलीवर की कहानी की कल्पना का आधार लेखक ने इसे ही बनाया हो। रूस के बादशाह जार ने एक बौने जोड़े की शादी मे खुद बहुत दिलचस्पी ली। राजकुमारी की एक बौनी सेविका के लिए उसने खुद वैसा वर ढूँढ़ा और शादी सजधज के साथ की। उनकी औसत ऊँचाई २ फुट ३ इच थी।

इंग्लैण्ड के जाफरी हडसन ने बौने जासूसो की एक सेना बनायी थी। उसके पास एक ऐसा बौना था जो १६ वर्ष की उम्र मे भी ९ इच का था। महारानी मारिया ने उसे निजी सेवा मे रखा। एक मुकदमे मे एक बार वह फँस गया। जलयान द्वारा छिपकर भागा, पर समुद्री डाकुओं ने उसे पकड़ लिया और ऊँचे दाम मे बेच दिया। फिर इंग्लैण्ड का शाही जासूस बन गया। गिब्सन नामक एक और बौना महारानी मारिया का मुँहलगा बन गया था। इसी प्रकार फ्रास का नन्हा जासूस रिशबोर्ड जासूसी के बड़े-बड़े कारनामे दिखाता रहा। मैक्सिको की लूरिया जारेस पूर्ण वयस्क होने पर २० इंच की हो सकी। उसका वजन २ कि. २७ ग्रा. तक बढ़ा। शिकागो के एक मेले मे सन् १९३३ मे तथा न्यूयार्क मे हुए १९३९ के विश्व मेले मे संसार भर के बौने एकत्रित किये गये थे। इसमे सबसे नन्हा बौना ९ इंच का था। उसकी आयु २० वर्ष थी।

अमरीकी फिल्मी कम्पनियो मे काम करने वाले हेरी, टिनी, ग्रेस और डेजी नामक बौने बहुत ख्याति अर्जित कर चुके है। साढ़े बत्तीस इंच के मंचू ने भी सर्कस मे नाम कमाया था। २ फुट १ इंच के थम्ब और टाम अमेरिका भर का मनोरंजन करते रहे। टाम-थम्ब का बाद मे वैसी ही लड़कियो से विवाह भी हो गया था।

हालैण्ड की पार्लिन नामक लड़की जब जन्मी तब २० से. मी. थी। १६ वर्ष की होकर मरी तब तक उसकी लम्बाई ३० से. मी. हो पायी थी तथा वजन डेढ कि. ग्रा. था। 'लाइफ' पत्रिका के अनुसार स्पेन के एक बौने की लम्बाई ५० से. मी. थी तथा वजन दो कि ग्रा.। फ्रांस की एक सर्कस कम्पनी 'लिक फोक्स' के सभी कलाकार बौने थे। कम्पनी ने बड़े प्रयत्नपूर्वक करीब-करीब समान ऊँचाई के ३५ बौने इकट्ठे किये थे। वे अपने आश्चर्यजनक करतबो से दर्शको का मन मोह लेते थे। एक बार यह प्रदर्शन फ्रांस के तत्कालीन शासक लुई चौदहवे के समक्ष किया गया। राजा उनके कारनामो से बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बौनों को भरपूर उपहार दिया।

इसी प्रकार रूस की एक सर्कस कम्पनी 'काखोव' मे एक ढाई फुट का बौना था। वह तरह-तरह से लोगों का मनोरंजन करता था। कम्पनी वालो ने उसकी शादी एक बौनी लड़की से यह सोचकर कर दी कि इसके जो बच्चे होगे, उससे कम्पनी मे बौनो की सख्या बढ़ेगी। जिससे उनके करतबो को देखने के लिए लोगो का आकर्षण भी बढ़ेगा, फलत: कम्पनी की आय बढ़ेगी। दुर्भाग्यवश उनके दो बच्चे हुए भी, पर कोई भी लम्बे समय तक ठहर न सके। वे एक-एक दिन ही जी सके।

पहले के योरोपीय राजाओ को भी बौने पालने का शौक था। वे दूर-दूर से उन्हे एकत्रित कर अपने राजदरबार मे रखते थे। रोम सम्राट आगस्टस का एक योद्धा मात्र २ फुट ऊँचा था। सम्राट डोमेसियन को भी यह शौक जीवनभर लगा ही रहा। वह उनसे मनोरंजन का काम लेते थे। लीबिया के बादशाह मे भी यह प्रवृत्ति थी। सोलहवी और सत्रहवी सदी मे बौने संग्रह करने का शौक बहुत बढ़ गया था और वे ऊँची कीमत पर बिकने भी लगे थे।

यह सब आँकड़े निश्चय ही चिन्ताजनक है और बताते है कि हवा का रुख किधर है। यदि यही हाल रहा तो वह दिन दूर नही, जब आदमी खरगोशो की समता करने लगेगा और प्रकृति का एक खिलौना मात्र रह जायेगा। आदमी घटेगा-गिरेगा तो आखिर उसका यही हश्र होना है। पौराणिक मिथक बताते है कि द्वापर व त्रेता युग मे मनुष्यो की अच्छी-खासी ऊँचाई होती थी। किन्तु अब बौनो की बढ़ती संख्या बताती है कि आने वाले समय मे मनुष्य शरीर सरचना व क्षमता की दृष्टि से अब से छोटा ही होता जाएगा। अक्ल की दृष्टि से भले ही उसने प्रगति कर ली हो, कम्प्यूटर, माइक्रोचिप्स व सुपरकण्डक्टर्स की शोधो द्वारा न्यूनतम आकार मे बड़े-बड़े यन्त्रो की कार्यपद्धति को समाहित कर दिया हो, एक भय मन मे उठता है कि कही वही 'माइक्रो' वाला छूत का रोग मनुष्य को तो नही लग गया जिस कारण वह छोटा और छोटा होता चला जा रहा है।

बौने शरीर से भले हों, मन से नहीं

मानवी क्षमता असीम एवं अप्रत्याशित है। काया का रंग, रूप, आकार, प्रकार ऊँचाई-निचाई कैसी भी क्यो न हो, यदि मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से स्वस्थ है तो प्रतिभा-प्रखरता के क्षेत्र मे वह कीर्तिमान स्थापित कर सकता है। शरीर से छोटे लोग मन से भी छोटे होते है, यह मान्यता किसी हद तक ठीक हो सकती है, पर उसे निर्विवाद एवं सुनिश्चित नही कहा जा सकता। चेतन सत्ता पर कोई सीमा बन्धन नही लग सकते। वह इच्छा और संकल्प लेकर खड़ी हो जाय तो अद्भुत एवं असाधारण प्रगति हर परिस्थिति मे करके दिखा सकती है।

प्रायः शरीर का बौनापन उपहासास्पद माना जाता है और समझा जाता है कि असाधारण कम ऊँचाई के कारण बौनेपन से ग्रस्त व्यक्ति सामान्य लोगो की तरह पुरुषार्थ नही कर पाते, फलतः उनकी प्रगति भी अवरुद्ध हो जाती है। जो लोग उन्हे अपनी तुलना मे छोटे पाते है और कौतुक-कौतूहल की दृष्टि से देखते तथा उपहास करते है, वे इस तथ्य को भूल जाते है कि वास्तविक बौनापन तो मन का बौनापन है, जो शरीर की ऊँचाई कम होने से भी कहीं अधिक उपहासास्पद है। शरीर की वृद्धि रुक जाने मे मनुष्य के अपने पुरुषार्थ का दोष नही होता। उसके कारण अविज्ञात होते है और उन्हे हटाने मे व्यक्ति के प्रयत्न प्रायः कुछ अधिक काम नही आते, किन्तु मन के बौनेपन के बारे मे ऐसी बात नही। मनुष्य चाहे तो अपने गुण, कर्म, स्वभाव की, चिन्तन, चरित्र, व्यवहार की उत्कृष्टता ही नही, मस्तिष्कीय चेतना की प्रखरता भी बढ़ा सकता है। मानसिक दृष्टि से ओछे एवं पिछड़े हुए मनुष्यों को बौने मन वाला कहा जाना और भी उपहासास्पद माना जा सकता है।

इतिहास मे अनेक बौने व्यक्तियो की प्रतिभा का उल्लेख मिलता है। हिन्दू धर्म की अवतार शृंखला मे एक 'वामन अवतार' भी थे, यह नाम उन्हे इसलिए दिया गया कि वे बावन अंगुल के थे, शब्द शास्त्र की दृष्टि से वामन और बौना लगभग एक ही अर्थ का बोधक है। अष्टावक्र ऋषि, जो महाराज जनक के भी गुरु थे, आठ जगह से टेढ़े-मेढ़े थे। उनके हाथ-पैर मुड़े-तुड़े थे, अपंग पीठ, कूबड़ के होते हुए वे ऊँचाई की दृष्टि से बौने जितने ही रह गये थे। इतने पर भी वह प्रतिभा के धनी थे और सर्वत्र पूजनीय माने जाते थे। यह इस बात का प्रमाण है कि चेतन सत्ता पर शारीरिक अपंगता या बौनेपन का कोई बन्धन नही है। प्रयास एवं पुरुषार्थ के बल पर उसे हर कोई विकसित कर महानता का वरण कर सकता है। बौने व्यक्तियो मे भी कभी-कभी ऐसी विशेषताये देखी जाती है, जिनसे भाग्य पर पुरुषार्थ की विजय' का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

प्रख्यात ग्रीक कवि **फिलेटास** की गणना बहुत छोटे कद के लोगो मे होती है। पैरो मे बहुत भारी जूते वे इस डर से सदैव पहने रहते थे कि हल्के होने के कारण कही हवा मे उड़ न जायँ। वे मिस्र देश के राजगुरु भी थे। इसी तरह होमर, हैरोडोट्स, प्लिनी पोम्पोनियम, अरस्तु आदि विश्व-विख्यात मनीषियो का शारीरिक दृष्टि से बौने के रूप मे उल्लेख हुआ है।

फ्रांस का प्रसिद्ध चित्रकार और फिल्म अभिनेता तुलूज लात्रे यो तो अपनी प्रतिभा के कारण ही प्रख्यात हुआ था, पर उसके बौनेपन ने इस प्रसिद्धि मे और भी चार चाँद लगा दिये थे। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के एक बौने ने रोते हुए व्यक्ति को भी हँसा देने की कला मे भारी ख्याति और प्रवीणता प्राप्त की थी। जेफरी हडसन नामक इस बौने ने इसी आधार पर अच्छी आजीविका भी उपार्जित करने मे सफलता पायी थी। ड्यूक आफ बर्मिघम की रानी छोटे कद के कारण राजपरिवार मे कृपा पात्र मानी जाती थी। एक बार चोरो ने उनका अपहरण कर लिया तो रानी ने अपनी सूझ-बूझ से एक बड़ी राशि फिरौती के रूप मे देकर किसी प्रकार उनके पंजे से छुटकारा पाया।

अमेरिका मे गत शताब्दी मे जनरल टाम थम्ब अपनी प्रतिभा के लिए प्रख्यात थे। जटिल से जटिल गुत्थियो को सुलझा देना उनके बाये हाथ का खेल था। वे मात्र इकत्तीस इंच के थे। अपने नाटे कद के कारण वे चाहे जहाँ प्रवेश पा लेते थे। इनके समान या छोटे कद की पत्नी न मिली तो उन्हे अपने से दो इंच ऊँची लेविनिया वारेन नामक बौनी महिला से विवाह स्वीकार करना पड़ा।

फ्रांस मे एक तेईस इंच ऊँचा बौना रिचीवर्ग जासूसी दुनिया मे सबसे अधिक विख्यात है। युद्धकाल मे वह जासूसी की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा। दुश्मन सेना उसे बालक समझती थी और वह युद्ध मोर्चे तक बहुत महत्त्व के कागज पहुँचाने और लाने का काम सरलतापूर्वक करता। ९० वर्ष की दीर्घायुष्य तक वह जीवित रहा।

फ्रांस के मूर्धन्य नृतत्ववेत्ता ब्रेसचिन ने अपनी पुस्तक मे बौने व्यक्तियो मे सामान्य व्यक्तियो की तुलना मे कई गुणो की अधिकता रहने की बात लिखी है। उनके अनुसार बौने व्यक्ति अपने आकार की तुलना मे अधिक फुर्तीले और हिम्मत वाले होते है। वे मिल-जुल कर रहने और प्यार-मुहब्बत का परिचय देने मे किसी से कम नही होते। सहयोग-सहकार की प्रवृत्ति इनके नैसर्गिक गुण है। विद्वान मनीषी **वैफोन** ने भी इसी तरह मैडागास्कर मे पायी जाने वाली कीमोस नामक एक बौने कबीले का कई दृष्टियो से विवेचन किया है। अपनी कृति मे उन्होने कहा है कि शरीर छोटे होते के साथ-साथ

अनेक क्षमताये घट जाती है, फिर भी चेतनात्मक स्तर पर वह सामान्य कद वालो की तुलना मे किसी से कम नही ठहरते। उनका भावनात्मक स्तर तो देखते ही बनता है।

इतिहासवेत्ता जानते है कि ससार मे पहले बौनापन अधिक था, अब वह क्रमश. घट रहा है। वशानुक्रम की परतो तक जहाँ इस कमी ने प्रवेश कर लिया है वहाँ अब भी पीढ़ी दर पीढ़ी यह कमी चलती रहती है और बौनी जातियाँ ही बन जाती है। अभी भी फिलीपीन्स, मलेशिया, न्यूगायना, मध्य एशिया, अफ्रीका मे कितने ही कबीले कद की दृष्टि से बौने ही बने हुए है। अफ्रीका का कागो देश तो बौने नागरिको के लिए ही प्रसिद्ध है। वहाँ के वन्य प्रदेश मे चार फुट से भी कम ऊँचाई के लोगो की बहुत बड़ी आबादी है। पिछली सहस्राब्दी मे लंका, भारत, जापान, चीन, फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड आदि एशिया एव योरोप के कई देशो मे बौनी जातियाँ रहती थी। अनुसंधानकर्त्ताओ का कहना है कि वे या तो अविवाहित रहने के कारण अथवा बड़ी आयु के लोगो के साथ रक्त मिश्रण कर बैठने के कारण समाप्त होते चले गये।

यह मान्यता सही नही है कि शरीर के छोटे होने से मन भी छोटा है और सूझ-बूझ तथा परिस्थितियो का सामना कर सकने की कुशलता मे भी कमी आ जाती है। कद की ऊँचाई-निचाई का प्रतिभा-प्रखरता से कोई सीधा सम्बन्ध नही है। इसका एक उदाहरण बाल्टीमोर मे पिछले दिनो सम्पन्न हुए एक बौने सम्मेलन मे बौने लोगो ने ही प्रस्तुत किया था। यह सम्मेलन इस विकृति के कारणो को खोजने और निवारण उपायो की खोज करने के साथ ही शारीरिक कमी के कारण उन्हे अर्थोपार्जन एवं नागरिक सम्मान पाने मे जो कठिनाई होती है, उसके निवारण मे सहयोग देने के लिए आयोजित किया गया था। जब यह सम्मेलन चल रहा था, उसी समय एक बहुत छोटे कद के बौने इजीनियर अपने निजी विमान को स्वयं उड़ाते हुए भाग लेने पहुँचे तो उपस्थिति सदस्यो का साहस बढ़ा और उनने समझा कि शरीर की ऊँचाई कम होने से भी अन्य विशेषताओ को ऊँचा उठाने मे कोई अड़चन उत्पन्न नहीं होती है। अमेरिका मे बौने लोगो का संगठन "दी लिटिल पीपुल्स आर्गेनाइजेशन" की स्थापना बिलीबार्टी नामक एक प्रतिभावान व्यक्ति ने की थी। वह माना हुआ विद्वान और प्रतिभाशाली होने के साथ-साथ बौना भी था।

वंशानुक्रम मे उत्पन्न हुई खामी एवं हारमोन ग्रन्थियो की विकृति शारीरिक बौनेपन के दो प्रमुख कारण माने जाते है। जिस तरह पिछड़ेपन के अनेको अभिशाप विभिन्न कारणो से मनुष्य पर बरसते रहते है और व्यक्तित्व को दबाने का प्रयत्न करते है, उसी प्रकार बौनापन भी है। यह प्रकृति प्रदत्त लगते हुए भी वस्तुत: मनुष्यकृत है। उसे अन्य रोगो की तरह प्रयत्नपूर्वक हटाया जा सकता है। कोई भी कठिनाई ऐसी नही जो सरल न की जा सके। बौनापन भी इसका अपवाद नही है। मानवी संकल्प और पुरुषार्थ सर्वोपरि है। वह हर कठिनाई से लड़ने और हर स्थिति मे आगे बढ़ने मे सफल हो सकता है। शारीरिक एव मानसिक बौनेपन के कारण उत्पन्न पिछड़ेपन को निरस्त कर सकना मानवी पुरुषार्थ के लिए नितांत संभव है।

युग-भेद से मानव देह का अपकर्ष

यह तो प्राय: सभी विद्वानो ने स्वीकार किया है कि काल-चक्र अनादि है और इसमे प्रत्येक पदार्थ का उत्थान और पतन होता रहता है। पर हिन्दू शास्त्रो मे इस परिवर्तन को एक निश्चित योजना पर आधारित बतलाया है और एक-एक काल-खण्ड के चार भाग करके उनका नाम सतयुग, त्रेता, द्वापरयुग और कलियुग कहा है। शास्त्रकारो का मत है कि सतयुग मे सब पदार्थों और प्राणियो का उत्कर्ष होता है जो धीरे-धीरे पतन के मार्ग पर अग्रसर होता हुआ कलियुग मे सबसे निम्न कोटि पर पहुँच जाता है। इस नियम का प्रभाव सब प्रकार के प्राणियो के शरीरो पर भी पड़ता है। सतयुग मे मानव-शरीर आजकल की नाप से इक्कीस हाथ का होता था, त्रैतायुग मे चौदह, द्वापरयुग मे सात और कलियुग मे साढ़े तीन हाथ का माना गया है।

विष्णु पुराण मे लिखा है कि राजा शर्याति के वंशधर कुशस्थली के राजा रैवत बहुत अन्वेषण करने पर भी अपनी कन्या रेवती के योग्य पात्र न पा सके। अन्त मे इस विषय मे ब्रह्मा से जिज्ञासा करने के लिए वे अपनी कन्या को साथ लेकर ब्रह्मलोक गये। वहाँ वेद-गान हो रहा था, अतएव उनको एक-दो घड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने उनको बतलाया कि "जब तक तुम वहाँ प्रतीक्षा मे रहे तब तक अनेक मानवीय युग समाप्त हो गये, क्योकि ब्रह्मा का एक दिन अनेको कल्प के बराबर होता है। अब पृथ्वी पर तुम्हारा समकालीन कोई नही है। इसलिए अब तुम वहाँ जाकर श्रीकृष्ण के भाई माया मानुष श्री बलदेवजी के साथ इसका विवाह कर दो।" पृथ्वी पर लौटने पर रेवती अन्य मनुष्यों की अपेक्षा तीन गुनी से भी अधिक लम्बी दिखलाई पड़ने लगी। तब—

उच्चप्रमाणामिति तामवेक्ष्य

स्व लांगलाग्रेण च तालकेतु:।

विनम्रयामास ततश्च सापि

बभूव सद्यो वनिता यथान्या।। (विष्णु पुराण ४/१/३८)

"ताल की ध्वजा वाले भगवान बलदेवजी ने इस रेवती को बहुत लम्बे शरीर वाली देखकर अपने हलाग्र के द्वारा उसे नमाकार कर दिया। तब रेवती उस समय की अन्य कन्याओ के समान छोटे आकार वाली हो गई।"

सूर्यवंशी भक्तराज अम्बरीष के भाई और सम्राट मान्धाता के पुत्र राजा मुचुकुन्द सतयुग मे देवताओ के लिए असुरो से युद्ध करते-करते थक गये। देवताओ ने उनको वरदान दिया, जिसके प्रभाव से वे एक गुफा मे दीर्घ निद्रा मे सो गये। द्वापर मे जब श्रीकृष्ण कालयवन को न मार सके तो उसे छल से उसी गुफा मे ले गये, जहाँ मुचुकुन्द सो रहा था। कालयवन ने भ्रम से राजा मुचुकुन्द को ठोकर से मारा, पर उनकी दृष्टि पड़ते ही वह जलकर भस्म हो गया। मुचुकुन्द ने भगवान की स्तुति करके इच्छित वरदान प्राप्त किया। इसके बाद—

इत्युक्तः प्रणि प्रत्येशं जगतामच्युतं नृपः।

गुहा मुखाद्विनिष्क्रान्तः स ददर्शाल्पकान नरान्॥

ततः कलियुगं मत्वा प्राप्तं तप्तुं नृपस्ततः

नरनारायणस्थानं प्रययौ गन्धमादनम्॥

(विष्णु पुराण ५/२४/४-५)

"राजा मुचुकुन्द ने गुफा से बाहर आकर देखा कि दूसरे मनुष्य उसकी अपेक्षा बहुत छोटे आकार के है और समझा कि कलियुग आरम्भ हो गया है।"

महाभारत के वन पर्व मे भी हनुमान-भीम संवाद मे युग-भेद से तेज, शक्ति और आकार के घटते जाने की बात आई है।

अनेक विदेशी विद्वानो ने पूर्व समय मे मनुष्य देह की अत्यधिक उच्चता की बड़ी हँसी उड़ाई है। भारतीय शिक्षित वर्ग का भी ऐसा ही विश्वास हो चला है। पर अब अनेक ऐसे प्रमाण मिल रहे है, जिनसे उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है।

भारत मे शवदाह की प्रथा सदा से चली आई है, इस कारण यहाँ प्राचीन ककालो का प्राप्त हो सकना बहुत कठिन है। तथापि बीच-बीच मे कही कंकाल मिल ही जाते है। सप्तम शताब्दी मे प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसाँग भारत भ्रमण के लिए आया था। उसने कुरुक्षेत्र (धर्मक्षेत्र) का वर्णन करते हुए लिखा है कि "मृत-देह लकड़ी के समान स्तूपकार हो गये है और इस प्रांत मे सर्वत्र उनकी हड्डियाँ बिखरी हुई पाई जाती है। यह बहुत प्राचीन समय की बात है, क्योकि हड्डियाँ बहुत बड़ी-बड़ी है।"

सन् १९४१ ई. मे कुरुक्षेत्र के समीप एक विलक्षण मनुष्य की खोपड़ी पाई गई थी जो अब से बहुत बड़ी थी। लगभग १५ वर्ष पूर्व मध्यप्रदेश के सोहागपुर के निकट एक बहुत बड़े आकार का कंकाल पाया गया था। सन् १९४६ के लगभग अमरीका के कोलोण्डो मरुभूमि की गुफा मे अनेको ९ फीट लम्बे ककाल पाये गए थे। अनुमान किया जाता है कि यह स्थान लगभग आठ हजार वर्ष पहले किसी प्राचीन जाति के राजवश का समाधि स्थल था। इसी प्रकार डा. लीकी ने केनियाँ की मैगजी झील मे से कितने ही ककाल प्राप्त किये थे, वे भी आजकल से बहुत बड़े थे। डा. लीकी ने बतलाया है कि ये मनुष्य अब से एक लाख पच्चीस हजार वर्ष पहले वहाँ रहते थे। ये कंकाल अब पत्थरो मे मिलकर पत्थर ही बन गये है। उनके अध्ययन करने से यह सिद्ध होता है कि ये लाखो वर्ष पुराने प्राणी खेती करते थे, वस्त्र पहनते थे और सीधे खड़े होकर चलते थे।

'फान कोनिग्सवाल्ड' ने द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जावा द्वीप मे खुदाई कराके कुछ ककाल निकाले थे, जो प्राचीन 'जावामैन' की अपेक्षा भी बड़े और पूर्ववर्ती काल के थे। इन हड्डियो को लगभग ५ लाख वर्ष पुराना समझा गया था और इनकी खोपड़ी आजकल के मनुष्य की खोपड़ी से लगभग दुगुनी थी। इसी समय चीन मे प्राचीन समय के तीन दाँत मिले थे, जो आजकल के मनुष्य के दाँतो से दुगुने बड़े थे।

इन सब खोजो पर जब विचार किया जाता है तो हमको डार्विन के विकास-सिद्धान्त पर घोर सन्देह होने लगता है। भारतीय शास्त्रो का मत तो इस विकासवाद के सर्वथा विपरीत है ही। यद्यपि डार्विन ने भगवान को अस्वीकार नही किया, फिर भी उनके नवीन सिद्धान्त के सम्पर्क मे आकर बहुत से लोग ईश्वर की सत्ता मे सन्देह करने लगे है।

परमेश्वर सर्व शक्तिमान है। वे ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त विशाल सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते है। फिर वे क्या वानर के स्थान पर मनुष्य की रचना नही कर सकते थे ? दो वृक्ष के पत्ते—यही क्यो, घास के दो तिनके, कभी एक-से नही रचे गये। एक बूँद जल की बीच भी असंख्य जीव रहते है, जो केवल अनुवीक्षण यन्त्र की सहायता से देखे जा सकते है।

आर्य-शास्त्रो मे मनुष्य का एक विशिष्ट स्थान है, क्योकि चतुर्दश भुवन मे एकमात्र पृथ्वी ही कर्म-क्षेत्र है और मानव-शरीर ही एकमात्र कर्म करने का साधन है। दूसरे सभी लोक भोग भूमियाँ है और दूसरे सारे शरीर (यहाँ तक कि देव शरीर भी) भोग शरीर है। उनमे तथा उनके द्वारा मुक्ति के उद्देश्य से कोई कर्म नही होते। अतएव मनुष्य भगवान की सृष्टि का श्रेष्ठ जीव है, नर-देह अत्यन्त दुर्लभ है। देवताओ को भी मुक्ति के लिए धराधाम मे आकर मनुष्य-देह ग्रहण कर जन्म लेना पड़ता है।

आज जो अनुसन्धान हो रहे है, उनसे तथा पाश्चात्य अन्वेषको के मत से भी नि.सन्देह सिद्ध हो रहा है कि प्राचीन काल से मानव-देह क्रमशः छोटा होता आ रहा है तथा आज से दस लाख वर्ष पूर्व भी सभ्य मानव का पृथ्वी पर अस्तित्व था। इससे शास्त्रो मे जो युग-भेद से क्रमशः सब विषयो मे अवनति होने की बात लिखी है, वह सर्वथा सत्य सिद्ध होती है।

बलिष्ठ दैत्य बनें, कि प्रतिभा-सम्पन्न देव

मनुष्य शरीर-शक्ति और आकार-प्रकार मे चाहे कितना भी बढ़ा-चढ़ा क्यो न हो, यदि परस्पर स्नेह-सौजन्य, सहयोग-सहकार का अभाव रहा, तो वह लम्बे समय तक अपना अस्तित्व किसी भी प्रकार बनाये रखने मे असफल ही रहेगा। इतिहास साक्षी है कि पिछले दिनो की दैत्याकार मानवी प्रजातियाँ सिर्फ इसलिए लुप्त हो गईं कि उनने प्रेम-सद्भाव की जगह शरीर बल को अधिक महत्व दिया, फलतः वे एक-दूसरे को अपने अधीन बनाने मे ही लड़-भिड़कर मर-खप गयी और आज उनकी स्मृति मात्र शेष है। इतिहास मे यदा-कदा उनकी चर्चा भर होती है। अविस्मरणीय तो वही बन पाते है, जो बुद्धिबल का प्रयोग करते और दूरदर्शिता अपनाते है। लम्बे समय तक अपनी सभ्यता को सुरक्षित ऐसे ही लोग रख पाते है। दूसरे तो स्वयं डूबते और साथ-साथ अन्यो को भी डुबा ले जाते है।

पिछले दिनो के पुरातात्विक गवेषणाओ एवं यात्रा-विवरणो से विश्व के अनेक हिस्सो मे ऐसी मानवी प्रजातियो का पता चला है, जो कभी अपनी दैत्याकार आकृति के कारण प्रसिद्ध थी पर विवेक-बुद्धि की कमी ने उन्हे समूल नष्ट कर दिया। ऐसा ही एक विशालकाय अस्थि-पिंजर सन् १५७७ मे स्विटजरलैण्ड के ल्यूसर्न प्रांत के विलिसायू स्थान मे उत्खनन के दौरान प्राप्त हुआ था। उसके मानव अस्थि होने के सम्बन्ध मे तत्कालीन अस्थि विशेषज्ञ फेलिक्स प्लैटर से सलाह ली गई। उन्होने गहन जाँच-पड़ताल के उपरान्त उसके मानव-अस्थि होने की पुष्टि कर दी। कंकाल के अध्ययन के आधार पर जीवित स्थिति मे उसकी ऊँचाई नौ फुट के करीब बतायी गई। इसी प्रकार की एक अन्य कब्र खुदाई के दौरान सेण्ट एण्टोनी के निकट चाउमोण्ट किले के पास देखी गई। कब्र की लम्बाई-चौड़ाई आश्चर्यजनक ढंग से विशाल थी, जिसमे लगभग १२ फुट लम्बा, ३ फुट चौड़ा तथा २ फुट ऊँचा कंकाल पड़ा था, जिसके मानवी होने मे किसी भी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता था। कब्र के ऊपर पिंजर का नाम—"ट्यूटोबोक्ट्स रेक्स" खुदा था और आस-पास अनेक पदक, सिक्के आदि पड़े हुए थे। आज भी इसकी अस्थियाँ "म्यूजीम डी पैलिओण्टोलोजी" नामक पेरिस के एक संग्रहालय मे पड़ी हुई है। अन्वेषणकर्ताओ का कहना है कि एक युद्ध के दौरान सिम्बी के भीमकाय राजा ट्यूटोबोक्टस को बन्दी बना लिया गया और दूसरे विजयी सम्राट मेरियस द्वारा मार डाला गया, तत्पश्चात् उसे चाउमोण्ट किले के समीप एक कब्र मे सुरक्षित दफना दिया गया।

इसी प्रकार के एक दैत्याकार मनुष्य का उल्लेख प्रसिद्ध इतिहासकार जैफरसन ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ ओलरडेल एवव उरवेण्ट" मे किया है। वे लिखते है कि मूर्धन्य नृतत्वविज्ञानी ह्यूज हडसन का यह कथन गलत नही है कि प्राचीन समय मे मनुष्य का आकार-प्रकार असाधारण रूप से बड़ा हुआ करता था। इस संदर्भ मे प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वे लिखते है कि सेण्ट बीज के समीप कुम्बरलैण्ड मे प्राप्त मानवी अवशेष इस बात की पुष्टि करते है कि हमारे पूर्वज असंदिग्ध रूप से विशालकाय रहे होंगे। सेंट बीज के उक्त कंकाल की चर्चा करते हुए वे कहते है कि जहाँ यह अद्भुत कब्र मिली, इन दिनो वहाँ धान का खेत है। बीज बोते श्रमिको को उसका कुछ हिस्सा एक दिन दिखाई पड़ा तो वे उत्सुकतावश उसे खोदने लगे, फलस्वरूप वहाँ उस कब्र के होने की जानकारी मिली। कब्र जमीन से १२ फुट नीचे थी, पर बरसात के कटाव से अब वह उतनी गहरी नही रह गई थी और उसका कुछ हिस्सा बाहर निकल आया था। उसे खोदने पर उसके भीतर साढ़े बारह फुट लम्बा मानवी पिंजर सुरक्षित प्राप्त हुआ। उसके मानवी न होने का भ्रम गड्ढे से प्राप्त वस्तुओ से जाता रहा। वहाँ कई विशाल कलेवर के आयुध पड़े थे। इनमे उसका स्वयं का लौह कवच और कुल्हाड़ा विशेष उल्लेखनीय है। कवच की लम्बाई ५ फुट थी, जो सिर और कमर तक शरीर के सम्पूर्ण भाग को ढकता था। शरीर के एक ओर उसका विलक्षण कुल्हाड़ा था तथा दूसरी ओर ६ फुट लम्बी तलवार। कुल्हाड़ा कितना विशाल था, इसका अनुमान उसके आकार से लगाया जा सकता है और इस आधार पर इसके प्रयोक्ता के आकृति की सहज कल्पना की जा सकती है कि वह कैसा पर्वताकार रहा होगा ? कुल्हाड़े का सिर तीन फुट लम्बा था और इसका हत्था जो पूर्णतः लोहे का बना था, ६ फुट लम्बा था और मोटाई एक औसत मानवी जाँघ के बराबर थी।

यह तो कब्रो और अवशेषो के आधार पर मानवी आकार के सम्बन्धो मे लगाये गये अनुमानों की चर्चा हुई, पर समय-समय पर सुदूर क्षेत्रो की यात्रा करने वाले यात्रियो की यात्रा-विवरणो से भी इस बात को बल मिलता है कि उन दिनो भीमकाय मनुष्य अस्तित्व मे थे। ऐसा ही एक साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए "जाइण्टस ऑफ पैटागोनिया" पुस्तक मे मैगेलन लिखते है कि जब उनका बेड़ा कथित पैटागोनिया (चिली और आर्जेन्टीना का दक्षिणी भाग) के पोर्ट सैन जुलियन के तटवर्ती क्षेत्र मे खड़ा था, तो एक दैत्याकार मानव उनके जहाज के निकट समुद्र तट पर आया। उसकी लम्बाई इतनी अधिक थी कि नाविको के सिर मुश्किल से उसकी कमर को छू पाते थे। उसकी आवाज साँड जैसी तेज और कर्कश थी। कुछ ही देर मे उसी डील-डौल के कुछ और लोग वहाँ आ पहुँचे। मैगेलन और उनके साथी उनमे से दो को पकड़ने मे सफल रहे। उन्हे लोहे के एक बड़े पिंजड़े मे रखा

गया और योरोप की ओर यात्रा प्रारम्भ की गई, पर योरोप पहुँचने से पूर्व ही रास्ते में उनकी मृत्यु हो गई।

ड्रेक, पेड्रो सरमिएण्टो, एन्थोनी, नीवेट एवं कैवेडिश आदि सभी यात्रियो ने पैटागोनिया क्षेत्र मे रहने वाले दानवाकार मानवो का अपने यात्रा-वृत्तान्तों मे उल्लेख किया है। उनकी लम्बाई के सम्बन्ध मे उनमे मतैक्य है। सभी ने उनकी ऊँचाई साढ़े दस फुट से बारह फुट के बीच बतायी है। कइयो ने उनके मृत शरीरो को नापा भी। ऊँचाई उपरोक्त सीमान्तर्गत ही पायी गई। सीबाल्ड डी वीयर्ट, जोरिस स्पीलबर्जेन, जैकब ली मेयर एवं विल्हेल्म साउटेन जैसे बाद के भ्रमणकर्त्ताओ ने भी अपने पूर्व साथियो के विवरणो की सत्यता की पुष्टि की है।

यद्यपि आज के लोगो को ऐसे दानवाकार मनुष्यों के अस्तित्व पर सहज ही विश्वास नही हो सकता, पर इस प्रकार की संभावना से सर्वथा इन्कार भी नही किया जा सकता। इस सम्बन्ध मे कोम्मोडोर बोयरन के साक्ष्य और तथ्य सबसे अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय माने जाते है। वे अपने ग्रन्थ 'इक्सटिंक्ट पैटागोनियन जाइण्ट' मे लिखते है कि निस्संदेह पूर्व काल मे पृथ्वी पर भीमकाय मनुष्य निवास करते थे। इसके प्रमाण न सिर्फ पैटागोनिया क्षेत्र मे मिले है, वरन् विश्व के अनेक हिस्सो मे असामान्य आकार-प्रकार के ऐसे नरपिंजर मिले है, जो यह साबित करते है कि प्राचीन समय मे धरती पर कभी ऐसे मानव निश्चय ही रहते थे।

उनका लोप कैसे हो गया ? इस सदर्भ मे गहन अनुसंधान के उपरान्त वे कहते है, तब के मनुष्यो मे काया की स्थूलता जिस प्रकार बढ़ी-चढ़ी थी, बुद्धि भी वैसी ही स्थूल व मोटी थी। फलत: उनमे आये दिन इस बात की प्रतिद्वंद्विता छिड़ी रहती थी कि कौन किसे पराजित कर अपने अधीन बनाता है। जो सहजता से दूसरो की अधीनता स्वीकार लेते, उन्हे गुलामो जैसी जिन्दगी जीनी पड़ती। ऐसे लोग प्राय. कम ही होते, जो सहयोग, सद्भावपूर्वक रहने के लिए उद्यत होते। अधिकाश लोग गुलामी की तुलना मे लड़-भिड़ कर मर जाना पसंद करते। इस प्रकार शरीर-बल की अहता और इसकी प्रतियोगिता तथा असहयोग के कारण धीरे-धीरे उनकी संख्या घटती गई। बाद मे जब उनकी स्थूल बुद्धि को इसका दुष्परिणाम समझ मे आया, तो एक जगह रह कर लड़ने-भिड़ने की तुलना मे बिखर जाना उन्होने उपयुक्त समझा। उन्ही बचे लोगों की आनुवंशिकता लम्बी आनुवंशिक-यात्रा के उपरान्त यत्र-तत्र प्रकट होती और अपना प्रमाण-परिचय प्रस्तुत करती है। शारीरिक बलिष्ठता आवश्यक तो है, पर मानसिक प्रखरता के बिना उसका सुनियोजन बन पड़ना शक्य नही।

मनुष्य देवता और दैत्य

पौराणिक मिथको मे मनुष्य की ही तरह देवताओ और दैत्यो का भी वर्णन है। मनुष्य भूलोक मे, देवता स्वर्ग लोक मे और दैत्य पाताल मे रहते थे। यह तीनो क्या थे ? कहाँ रहते थे ? किस आकृति-प्रकृति के थे, इस सम्बन्ध मे जो वर्णन उपलब्ध है उनमे कितनी कल्पना का मिश्रण और कितना यथार्थता का समावेश है यह कहना कठिन है। फिर भी सामान्यतया यह सोचा जा सकता है कि मनुष्य प्राचीनकाल मे भी ऐसी ही आकृति, प्रकृति के रहे होगे जैसे आज है। साधन सुविधाओ के अभाव मे वन्य क्षेत्र अधिक और जनसंख्या कम होने की परिस्थिति मे मनुष्यो को आज की तुलना मे अधिक कष्ट-साध्य परिस्थितियो का सामना करना पड़ता होगा तो भी वे निर्वाह की स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी कर लेते थे और प्रकृति से संघर्षरत रहने के कारण बलिष्ठ भी रहते थे।

सुविधाएँ बढ़ने पर छीन-झपट चल पड़ती है किन्तु असुविधाग्रस्तो में परस्पर अधिक सहयोग-सद्भाव रहता है। इस आधार पर प्राचीनकाल के मनुष्य अपेक्षाकृत अधिक पुरुषार्थी, सन्तोषी और सहयोगी प्रकृति के रहे होगे यह कहा जा सकता है।

देवताओ की स्थिति का बुद्धिसंगत स्वरूप सोचा जाय तो एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि अधिक सुयोग्य, समर्थ, बुद्धिमान एवं उदारचेता प्रकृति वाले देव श्रेणी मे गिने जाते रहे होगे। हो सकता है कि प्रकृति की विशिष्ट शक्तियो और भावना क्षेत्र की सज्जनता को देवत्व का प्रतिनिधि माना गया होगा। उनके साथ जुड़ी हुई विशेषताओ-विभूतियो को आलंकारिक रूप मे चित्रित किया गया होगा। देवताओ के वाहन, आयुध, ऐसे ही रहस्यो को अपने मे छिपाये हुए है। उनकी अनेक भुजाओ, मुखो, नेत्रो का अकन भी सम्भवत: इसी आधार पर हुआ है। देने वालो को देव कहा जाना स्वाभाविक है। जिन शक्तियो द्वारा सर्वसाधारण का हित साधन होता है, उन्हे देव रूप मे प्रतिष्ठा एवं मान्यता देना युक्ति सगत भी है।

'दैत्य का भावार्थ है—विशाल, समर्थ एवं उद्धत। दैत्य, दानव, असुर यो एक ही अर्थ मे लिये जाते है पर वे सब है वस्तुत: अलग-अलग। सुर समुदाय के अतिरिक्त अन्यान्यो को असुर कहा गया है। मध्य एशिया मे बसने वाली एक जाति भी थी-अहुर। जिसे असुर शब्द का अपभ्रंश कह सकते है। उन क्षेत्रो मे जीवनोपयोगी सामग्री का अभाव रहने से वे दूर-दूर तक आक्रामक धावे बोलते थे। क्रूर प्रकृति के कारण उन्हे यह नाम दिया गया होगा अथवा परम्परागत यही नाम उनके हिस्से मे आया होगा। दानव शब्द भी क्रूरता का बोधक है।

'दैत्य' शब्द आकार एवं वैभव का बोधक है। अँग्रेजी में उसे 'जॉइन्ट' कहा जाता है। रावण, कुम्भकरण, सहस्रबाहु आदि के शरीर सामान्यों की अपेक्षा अधिक बड़े माने जाते है। उनकी बलिष्ठता भी उसी अनुपात में बढ़ी-चढ़ी होनी चाहिए।

प्रागैतिहासिक काल मे महागज, महासरीसृप, महागरुड़ जैसे विशालकाय प्राणियो का इस धरती पर आधिपत्य था। इन्ही दिनो मनुष्य स्तर के प्राणियो की उत्पत्ति हुई होगी तो वे नर-वानर भी विशालकाय ही रहे होगे। अब भी साधारण वनमानुषो की तुलना मे गोरिल्ला, चिम्पाजी नस्ल के बन्दर कही अधिक बड़े भारी और बलिष्ठ होते है। हिम मानवों के देखे जाने, पाये जाने की चर्चा अभी भी होती रहती है। उन्हे मनुष्य की तुलना में दूनी लम्बाई चौड़ाई का कहा जाता है। पैरो के निशान भी उसी अनुपात के पाये गये है।

ऐतिहासिक खोजो मे विशालकाय मनुष्यो के अस्तित्व का पता चला है। फ्रांसीसी पुरातत्ववेत्ता लुई बरबलिटा ने अपनी खोजो मे किसी समय के विशालकाय मनुष्यो के अवशेष प्राप्त किये है। उनकी कृतियो के आधार पर ड्योढ़े से लेकर दूने तक आकार का उन्हे बताया गया है। सीरिया के सासनी क्षेत्र की खुदाई में चुम्बक पत्थर के बने आठ पौण्ड भारी हथियार मिले है। उत्तरी मोरक्को मे भी प्राय इतने ही भारी और बड़े आकार के शस्त्र मिले है। वे ऐसे है जिन्हे १२ फुट से कम ऊँचाई वाले मनुष्य प्रयुक्त नही कर सकते।

लेवनान मे एक-दो लाख पौण्ड भारी विशेष पत्थर मिला है, जिस पर कई ओर से बढ़िया नक्काशी की गई है। यह कार्य दैत्याकार मानवो का ही हो सकता है। इस ऐतिहासिक पत्थर का नाम 'हजरएल गुल्ले' रखा गया है। उसे देखने संसार भर के लोग पहुँचते है।

इटली और आस्ट्रेलिया के कई दुर्गम शिखरो पर ऐसी ही कलाकृतियाँ पाई गई है। इतने ऊँचे पहुँचकर उतने कठिन काम कर सकना, विशालकाय मनुष्यो के लिए ही सम्भव हो सकता है। मिश्र के पिरामिडो मे लगे पत्थर इतने वजनी है और इतनी ऊँचाई पर अवस्थित है कि उन्हे इस प्रकार जोड़ना वर्तमान आकृति के मनुष्यो के लिए किसी भी प्रकार सम्भव नही हो सकता। दक्षिण अमेरिका मे पाये गये पिरामिड खण्डहर इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक है।

प्राणिविज्ञान के शोधकर्ताओ का एक वर्ग ऐसा भी है जो कहता है कि प्राणि विकास की एक मंजिल ऐसी भी रही है जिसमे मनुष्यो और पशुओ के बीच की विभाजन रेखा पूरी तरह नही बन पाई थी और उनके मध्य यौनाचार चलता था। उस संयोग से शंकर प्राणि भी उत्पन्न होते थे और उनमे दोनो के गुण समन्वित रहते थे। मनुष्य की बुद्धिमत्ता और पशुओ की बलिष्ठता के संयोग से उत्पन्न प्राणी दैत्याकार थे।

प्लेटो ने अपने ग्रन्थ 'सिम्पोजियम' में मनुष्य और पशुओ के संयोग से दैत्याकार प्राणियो की उत्पत्ति का वर्णन किया है। "टैटीक्स एनेल्स" में भी ऐसे ही विवरणो का उल्लेख है, जिनमे मनुष्यो और पशुओ के बीच चलने वाले यौनाचार का विवरण मिलता है। इतिहासकार 'हैरोयोतस' ने अपने विवरणो मे ऐसे ही प्रचलनो का विवरण दिया है। बगदाद और लन्दन के संग्रहालयो मे ऐसी कई पाषाण प्रतिमाएँ है जिनमे उन दिनो ऐसा प्रचलन रहने की साक्षी मिलती है।

सुमेर सभ्यता के पुराण कथानको मे निपुर क्षेत्र के निवासी ऐनेलिल नामक देव समुदाय मे निनलिल नामक मानवेतर मादाओ के साथ संयोग करके अर्ध पशु और अर्ध मनुष्य स्तर की प्रजा उत्पन्न करने का वर्णन है। भारतीय पुराण मिथक इससे भी एक कदम आगे है। उनमे हनुमान पुत्र मकरध्वज, मत्स्य कन्या आदि का वर्णन है। नृसिंह, हयग्रीव जैसे अवतारो की आकृति अर्धपशु और अर्ध मनुष्य जैसी दर्शाई गई है। गणेश को भी ऐसा ही चित्रित किया गया है। भीम का एक ऐसा ही पुत्र घटोत्कच भी था जो किसी अविकसित वर्ग की नारी से जन्मा था और सामान्यजनो की अपेक्षा कही अधिक बलिष्ठ था।

इतिहासकार पाताल अमेरिका को कहते है और वहाँ किसी समय मय सभ्यता का चरमोत्कर्ष मानते है। महाभारत में 'मय' दानव पारकर है, जो सूर्योपासक था। ज्योतिर्विज्ञान का उसे आविष्कर्ता एवं मूर्धन्य भी माना है। अहिरावण पातालपुरी का ही एक शासक था। भौतिक विज्ञान और बलिष्ठता-सम्पन्नता की दृष्टि से बढ़े-चढ़े होने के कारण यह लोग दैत्य कहे जाते थे।

पुरातत्त्व विशेषज्ञ हैविट्ट मैकेन्जी, थेड आदि का कथन है कि मय सभ्यता के दिनो में भारतीय सभ्यता के अनुरूप ही मान्यताएँ प्रचलित थी। नाग जाति के लोग रहते थे, अतएव उस क्षेत्र को नागलोक भी कहा जाता था। नागलोक पाताल का ही दूसरा नाम है। मय शासकों को दैत्य कहा जाता था। वे भूलोक में भी आते थे। मायावी कहलाते थे। जल से थल और थल से जल का भ्रम उत्पन्न करने वाला भवन उन्होंने द्रौपदी के मनोरंजन हेतु बनाया था। उसी मे भ्रमित होकर दुर्योधन को उपहासास्पद बनना पड़ा था।

देवता और दैत्य यो उपाख्यानो मे मनुष्य से भिन्न प्रकार के प्राणी माने गये है, पर वास्तविकता यह है कि तीनो ही वर्ग प्रकृति मे तो भिन्न होते ही है पर तीनों की आकृति एक जैसी ही होती है।

धर्म युद्ध में लड़ने वाले सच्चे शूरवीर

सच्चा शूरवीर वह है जो आत्म-बलिदान की भावना लेकर आगे बढ़ा है। हत्या की कला तो कसाई भी जानता है। बगुला छल-कपट से आये दिन ढेरो मछली मारता है और भेड़िया कितने ही जीवो का नित्य प्राण हरण करता है। दीमक खाने मे तीतर की कुशलता देखते ही बनती है। सर्प तो इनसे भी आगे है। वह अपना आहार न मिलने पर भी दूसरो को मृत्यु के घाट उतार देता है। बिच्छू के कौशल से कौन अपरिचित है। प्राण-हरण मे किसने कितनी सफलता प्राप्त की ? इस आधार पर किसी को शूरवीर ठहराने की बात सर्वथा अनुपयुक्त है।

शूरवीर वह है जो अनीति से लड़ता है और उसके लिए दूसरो का प्राण-हरण करने को नहीं; आत्म-बलिदान को प्रधानता देता है। उसे अवाछनीयता से घृणा होती है। अनीति के आधारो को वह नष्ट करना चाहता है। इसके लिए उसे प्रबल और परिपुष्ट अन्याय के विरुद्ध जूझना पड़ता है। स्पष्ट है कि सदाशयता का पक्ष सदा असगठित रहा है और दुरभिसधियाँ अपने समर्थको को संगठित रखती है। इस प्रकार अनीति पक्ष की प्रबलता और नीति पक्ष की दुर्बलता ही बहुत करके देखने मे आती है। शान्ति की रट लगाने वाले मैत्री, करुणा के समर्थक अनीति से जूझने मे प्राय. हिचकते है। फलत. सगठित अनीति क्रमश· अधिक परिपुष्ट और अधिक सफल होती चली जाती है। देव पक्ष की दुर्बलता और असुर पक्ष की प्रबलता एक तथ्य है जो आये दिन आँखो के सामने ही खड़ा रहता है।

इस स्थिति को बदलने के लिए उन साहसी शूरवीरो को आगे आना पड़ता है, जो साथी-सहायको की प्रतीक्षा किये बिना, शक्ति सन्तुलन का लेखा-जोखा लिए बिना अकेले ही आगे बढ़ चलते है। और अनीति को अपने ही आत्मबल के बलबूते पर ललकारने का दुस्साहस भरा कदम उठाते है। प्रत्यक्ष ही इसमें हानि दिखाई पड़ती है। अनीति पथ के साधन और सहायक बहुत होते है। वे अपने विरोधी को सहज ही भारी क्षति पहुँचा सकते है। बहुत करके अनीति का प्रतिरोध करने वालो को बहुत आघात सहने पड़ते है और बहुत कष्ट उठाने पड़ते है। कई बार तो अनीति मिटाने के स्थान पर वह योद्धा स्वयं ही मिट जाता है।

शूरवीर वह है जो इस वस्तुस्थिति को समझते हुए अपने आपको सकट में फँसाने की पूरी तैयारी के साथ सोच-विचार कर आगे बढ़ता है। वह जानता है कि अनीति का विरोध किया जा सकता है, पर उसे तुर्त-फुर्त उखाड़ फेकना उतना सरल नहीं है; संगठित और समर्थ प्रतिपक्षी अपने बचाव के लिए और प्रतिपक्षी को कुचलने के लिए बुरे से बुरे कदम उठा सकता है। आवश्यक नहीं कि विरोध सफल हो जाय और जिस अनीति का उन्मूलन करने चले थे, उसका अन्त हो ही जाय। किन्तु इसका अर्थ यह तो नही ही होना चाहिए कि अन्याय को चुनौती देने के लिए कोई इसलिए आगे बढ़े ही नही कि उसमे जोखिम भरा हुआ है। इस जोखिम से जूझने और उस प्रयास मे आने वाले कष्टो की पूरी तरह कल्पना कर लेने के बाद भी जिसने बलिदानी वीर की भावना अपनाई, वस्तुत: सच्चा शूरवीर उसी को कहना चाहिए।

अनीति के पैर उखाड़ने मे आत्म-बलिदान से बढ़कर दूसरा शस्त्र हो ही नही सकता। इससे असुरता की हिम्मत आधी टूट जाती है। निर्बाध और निर्विरोध रीति से कुकृत्य करते चलने वालो का बढ़ता हुआ मनोबल टूटता है और उन्हे सोच-समझकर ही कुकृत्य करने की अकल आती है। विरोध खड़ा हो गया तो जिनके मन मे रोष तो था, पर कुछ कर नही पा रहे थे, आगे चलने की हिम्मत न होने से चुपचाप बैठे सहन करते थे, उनका भी साहस बढ़ता है और आत्म-बलिदानी के समर्थको की पिछली पक्ति मे वे भी खड़े दिखाई पड़ते है। इस प्रकार देव पक्ष क्रमशः समर्थ होता जाता है। अनीति का दम तोड़ने के लिए उसके पक्ष मे विरोधी वातावरण का बनना भी कम महत्वपूर्ण नही है। आग की छोटी-सी चिनगारी घास के बड़े ढेर को जलाकर भस्म कर देती है। अनीति भी घास के ढेर की तरह है। जब विरोध और प्रतिरोध की चिनगारियाँ उस पर पड़ने लगे तो समझना चाहिए कि इसकी बढ़ी-चढ़ी विभीषिका का अन्त आ गया।

दीपक स्वय जलता है। उसका जलने का संकल्प और साहस ही सुविस्तृत क्षेत्र मे फैले हुए अन्धकार को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। वस्तुत: शक्ति अन्धकार मे नही होती। समर्थ तो प्रकाश होता है। पाप कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यो न हो, उसमे देर तक टिक सकने की, प्रतिरोध का सामना करने की क्षमता नही होती। वह तभी तक टिकता है जब तक निर्विरोध और निर्बाध रीति से गुजर होती रहे। असुरता को सफलता इसलिए नही मिलती कि वह वस्तुत. समर्थ होती है। गुण्डा वस्तुत: परले सिरे का कायर होता है। पकड़े जाने पर उसका गिड़गिड़ाना और कातर पुकार करना देखते ही बनता है। उसकी सारी सामर्थ्य इस केन्द्र पर टिकी रहती है कि भले आदमी कहलाने वाले शान्ति के नाम पर कायर बने बैठे रहते है और आततायी के विरुद्ध आवाज उठाने से डरते है।

इस दयनीय स्थिति को चीरने के लिए जिसने एकाकी साहस सँजोया, उसे सच्चे अर्थो मे शूरवीर कहना चाहिए। साथियो की प्रतीक्षा न करके जो अपने आत्मबल को ही पर्याप्त मानता है, उसे योद्धा कहना चाहिए। शत्रु को कमजोर और अपने को समर्थ मानकर चलने वाले और प्रतिद्वन्द्वी को बात की बात मे ढेर करके आने का

विश्वास कितने ही लोगो को बहादुर बना देता है। विजय प्राप्त करने का आवेश उन पर छाया रहता है और सफलता सामने खड़ी दीखती है। ऐसी मन.स्थिति मे किसी को भी लड़ाकू प्रवृत्ति उभर सकती है और तलवार घुमाता हुआ आगे बढ़ सकता है। यह साधारण सैनिक की बात हुई। सच्चे शूरवीर की आन्तरिक स्थिति इससे कहीं ऊँची होती है। वह विजय और पराजय को समान मानकर चलता है। अन्याय के विरुद्ध वह अकेला ही खड़ा हो सका, स्वल्प साधनो के रहते हुए भी समर्थ प्रतिपक्षियो के विरुद्ध सीना तानकर खड़ा हो सका; यह दुस्साहस जिसने सँजोया, वह वस्तुत: शूरवीर है। विजय माल तो उसके पहले चरण मे ही उसके गले मे डाल दी गई। उसने अपने शौर्य, साहस और प्रखर आदर्शवाद को प्रमाणित करके मनस्वी महामानवो की पंक्ति मे अपने को बिठा दिया।

बड़ी-बड़ी अनीति को समूल मिटाने मे देर लगती है, उसके लिए बलिदानो की लम्बी शृखला प्रस्तुत करनी पड़ती है। धैर्य और साहस के साथ लम्बी लड़ाई लड़ने की तैयारी करनी पड़ती है। अनीति को उखाड़ने मे वीर बलिदानियो को देर तक जूझना पड़ता है। प्रथम चरण मे, प्रथम प्रयास मे ही इतना बड़ा प्रयोजन सहज ही पूरा नही हो जाता है। अन्याय से जूझने वालो मे से कितनो को ही स्वयं मिटना पड़ा है, ऐसे बलिदानी वीरो को आत्मबल के धनी शहीदो के चरणो पर लोक-श्रद्धा के सुमन सदा ही चढ़ाये जाते रहेगे। प्रत्यक्षत: वे पराजित और असफल ही रहे, पर परोक्ष रूप से अपनी साहसिकता को इतना सम्मिलित और सफल बना दिया जितना कदाचित् वे शत्रु का विनाश करने के उपरान्त भी न हो पाते।

अनीति से जूझने मे आवश्यक नही कि आततायियो को एक ही झटके मे उखाड़ फेंकना सम्भव हो जाय। आवश्यक नही कि प्रतिरोध की मशाल जलाने वाले को विजयी कहलाने का श्रेय मिल जाय। यह सब समझते हुए भी, पराजय और विपत्ति की सम्भावना को ध्यान मे रखते हुए भी जो कर्तव्य बुद्धि से आदर्शो का पालन करने के लिए समरभूमि मे उतरा, वह सच्चा शूरवीर है।

शत्रु पक्ष के कितने लोगो को किसने मारा। कितना बड़ा प्रयोजन किसने किस प्रकार पूरा किया, यह उतने महत्त्व की बात नहीं। महत्त्व इस बात का है कि उस संघर्ष में कितने लोग उच्च आदर्श के लिए आत्म-बलिदान की भावना से आगे आये। ऐसे धर्मयुद्ध ही धन्य है और धन्य है उनमे लड़ने वाले सच्चे शूरवीर।

हमारी वीरता अक्षुण्ण रहनी चाहिये

धर्म, संस्कृति, शिक्षा, कृषि विज्ञान, चिकित्सा, ज्योतिष, ग्रह-विज्ञान आदि मे अग्रगण्य भारतवर्ष अपनी वीरता के कारण भी संसार मे प्रसिद्ध है। यहाँ की धरती को वीर-प्रसूता कहा गया है। इतिहास साक्षी है कि इस देश ने जहाँ संसार को सत्य-अहिंसा, न्याय-नीति, धर्म-परायण का पाठ पढ़ाया है, वहाँ असुरत्व के दमन के लिए, आत्मरक्षा के लिए उसने वीरता भी प्रदर्शित की है। वीरता हमारी शक्ति है, जिससे हम संगठित रहे है और हमारे धर्म तथा संस्कृति की रक्षा हुई है। किन्तु आज जो परिस्थितियाँ हमारे आगे दिखलाई पड़ रही है, उनसे भारी असंतोष होता है। अन्य आध्यात्मिक तत्वों की तरह राष्ट्र की वीर भावनाये भी घटती चली जा रही है।

वीर संस्कार प्रत्येक युग मे आवश्यक रहे है। भगवान राम ने रावण की दुष्टता का दमन किया था। कृष्ण ने कौरवो का मान-मर्दन किया था। शिवाजी, राणाप्रताप, झाँसी की रानी की वीरतापूर्ण कहानियाँ इतिहास के पन्नो-पन्नो मे अंकित है और वे युग-युगान्तरो तक असत्य, अनीति और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देती रहेगी। यहाँ वीर भावना केवल काव्य का विषय नही, वह सर्व-साधारण की उदात्त जीवन-पद्धति रही है। शत्रु से युद्ध करते हुये मृत्यु का आलिंगन करना यहाँ शोक का नही, आल्हाद और उत्सव का विषय माना जाता रहा है। शास्त्रो का गहन अध्ययन करने वाले पंडित अपनी पीठ पर तर्कस और कंधो पर प्रत्येक-क्षण धनुष डाले घूमते थे ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे दुष्टो से संघर्ष भी कर सके। जो उपदेश से न माने उन्हे शक्ति और बल के द्वारा भी सिखाया-जगाया जा सके। "शक्ति और सरस्वती की" समवेत् साधना इस देश की विशेषता रही है।

माताये अपने बालको को पालने मे झुलाती हुई कहती थी—

इला न देणी आपणी, हालरिया हुलराय।

पूत सिखावे पालणै मरण बड़ाई—माय॥

"ओ ! मेरे प्यारे पुत्र ! अपनी धरती शत्रु के हाथ न जाने देना चाहे तेरे प्राण क्यो न चले जायँ। मृत्यु तो मनुष्य का बड़प्पन है।" माताओ के इन शब्दो मे क्या ही अनोखी शान थी, कितना गौरव था उनकी आत्माओ मे। तभी तो उनकी आत्मा का रस पीकर परिवर्द्धित होने वाले बालक भी इतने प्रौढ़-भावनाओ के होते थे जो इस संसार मे जीवन और मृत्यु को खेल समझते थे। उन्हे न जीवन के प्रति कोई राग होता था न मृत्यु से भय। देश की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए सब से आगे बढ़ कर प्राण देने की प्रतिद्वन्द्विता होती थी। मौत भी उन शूरवीरो की वीरता के आगे सिर झुका देती थी।

किन्तु आज वह संस्कार जाने कहाँ लोप होते जा रहे है। न तो हमारी माताओ मे वह तेजस्विता रही है कि बेटो को जीवन-संग्राम के लिये विधिवत् तैयार कर सके और न अब वह वातावरण ही रहा है। अपने से गई-गुजरी स्थिति के व्यक्ति को डराने, धमकाने और दैव

दिखाने को ही लोग वीरता समझते है। पड़ौसियो को नीचा दिखाने मे लोग शान समझते है। हतवीर्य बालक अल्प अवस्था से कायर, कमजोर और जरा-सी परिस्थिति मे घबड़ा जाने वाले होते है। लड़ाई तो वह स्वप्न मे भी देख ले तो दिल धक-धक करने लगे। इस साहस की कमी का एक ही कारण है—वीरतापूर्वक संस्कारो का जागरण न किया जाना। पहले शिक्षा के साथ युद्ध का भी अभ्यास कराया जाता था। शास्त्र के साथ शस्त्र की भी पूजा की जाती थी। छोटे-छोटे बालको को प्रारम्भ से ही कठोर जीवन बिताने का अभ्यास कराया जाता था। कथा-कहानियाँ भी उन्हे ऐसी ही सुनाई तथा पढ़ाई जाती थी जो सच्ची और घटनात्मक होती थी। इससे बालको का साहस जाग्रत होता था और वीरता के संस्कार परिपुष्ट होते थे। आहार आदि की व्यवस्था भी ऐसी ही होती थी, जिससे उनका शरीर शक्तिशाली बना रहता था। आने वाली मुसीबत का वे वरदान की तरह स्वागत करते थे। प्रत्येक नवयुवक इस प्रतीक्षा मे रहा करता था कि कब कोई ऐसा समय आये जब उन्हे अपनी प्रतिभा एवं शक्ति प्रदर्शन का अवसर मिले। उनका शौर्यत्व सदैव जाग्रत बना रहता था। पर वह परिस्थितियाँ अब कही दिखाई नही देती।

वीरता के संस्कार संघर्ष, शक्ति और कठोर जीवन-पद्धति से बनकर आते है। किन्तु अब इनमे से एक भी परिस्थिति दिखाई नही देती। लोगो के मनोबल इतने गिरे हुये है कि अपने सामने अन्याय होता हुआ देखकर भी तमाशबीन की तरह चुपचाप खड़े रहते है। बुरे तत्वो और बुराइयों से टक्कर लेने की उनकी जरा भी हिम्मत नही पड़ती। विलासिता, राग-रंग, सिनेमा-शौकीनी बढ़ने के कारण लोगो के दिल बिलकुल छोटे होते जा रहे है। अन्धकार मे पैर रखते हुए काँपते है। शरीर मे थोड़ी-सी पीड़ा हो जाय तो यो चिल्लाते, रोते और कराहते है मानो उन पर कोई मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा है। शरीरो मे सहन शक्ति रही नही, हृदय कमजोर पड़ गये है, सरल जीवन मे ही सुख अनुभव करने की भद्दी आदतो ने आज देश की वीर-भावनाओ को मटियामेट करके रख दिया है।

क्षात्र-धर्म मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। उसका पालन न किया जाय तो न देश की सुरक्षा सभव हो सकती है न जाति, धर्म और संस्कृति की। "वीर-भोग्या वसुन्धरा" की कहावत के अनुसार धरती मे जीने का सच्चा आनन्द वीरो को मिलता है। पर यह वीरता उद्धतपन, अत्याचार या डाकुओ जैसा साहस नही है। राणासाँगा, रणजीत सिंह, गोरा बादल, फतेहसिंह, जोरावर सिह, भगतसिंह, महात्मा गाँधी तथा बिगेडियर शैतान सिंह की तरह किसी आदर्श की रक्षा के लिये आत्म-बलिदान की भावना का नाम ही वीरता है। प्रेम और मृत्यु वीरो के लिये समान होते है। धर्म और कर्तव्य-पालन के लिए जो बड़े से बड़े प्रलोभन को ठुकरा सकता है, जिसे न जीवन मे आसक्ति होती है न मौत से घबराहट, वही सच्चा वीर है। वीरता से मनुष्य की स्थिर भावना और उसकी निष्ठा की परीक्षा होती है। जो इस कसौटी पर सही उतरते है उन्हे ही वीर कहा जायेगा, फिर भले ही रणक्षेत्र मे प्राण-त्याग करे या सामाजिक जीवन के किसी सत्य आदर्श के लिए सघर्ष करते हुये जीवन बलिदान करना पड़े।

हमारी इस शानदार परम्परा का ह्रास नही होना चाहिये अन्यथा इस देश का गौरव मिट जायगा। हमारी भावनाओ मे "यदि वह शक्ति न हुई, जिससे आस-पास फैली हुई दुष्टता से मुकाबला किया जाता है तो हमारे हित भी सुरक्षित न रह सकेगे। निर्बल चिड़ियो को जिस तरह बाज झपट ले जाता है उसी तरह हम भी लूट लिये जायेगे। कायर को कही शरण नही मिलती। अपनी रक्षा मनुष्य स्वय कर सकता है। अपने मुकाबले के लिये उसे स्वयं कठोर और साहसी बनना पड़ता है। दूसरो के सहारे जिन्दगी बिताने मे कुछ आनन्द भी नही आता। यह सभव भी नही है कि किसी दूसरे व्यक्ति या राष्ट्र का संरक्षण सदैव ही मिलता रहे, क्योकि दूसरो के भी अपने हित होते है और उनकी सुरक्षा भी उन्हे करनी पड़ती है। अत: हमारे लिये परम आवश्यक है कि हम अपने जीवन मे वीरता के सस्कारो का स्वत: जागरण करे अपने पैरो पर आप खड़े हो।

अब वह युग आ गया है जब हमे इस बात पर गम्भीरता से विचार करना है कि आत्म-रक्षा और आत्म-कल्याण के योग्य हम मे शक्ति, सामर्थ्य तथा उत्कट भावनाएँ जाग्रत हो। आत्म-पतन की ओर इसी गति से बढ़ते रहे तो जो गौरव अभी तक अन्य जातियो के समक्ष हम को जीवित किये हुये है वे भी नष्ट हो जायेगे और हमारी गणना ससार के निकृष्ट श्रेणी के लोगो मे होने लगेगी।

"वीरता हमारा स्वभाव है, हम शक्ति के उपासक है, संघर्ष से हम नही घबराते।" इन मान्यताओ को फिर से जगाने की जरूरत है ताकि हमारे धर्म, संस्कृति तथा आदर्शो की रक्षा हो सके। आओ आज वेद भगवान की इस प्रार्थना को फिर दोहराये—

त्वं शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे शतक्रतो।

स नो रास्व सुवीर्यम्॥

ऋ० वे० ८/९८/१२

हे प्रभो ! आप उन्हे अधिक प्यार करते है जो शक्तिशाली होते है, अत: हम भी शक्तिशाली, वीर और बलवान बनेगे।"

आत्मबल का मूल उद्गम केन्द्र

पशुओ मे शरीर बल काम करता है किन्तु मनुष्य का प्रधान बल उसका मनोबल ही है। शरीर उसका

कबीर शिक्षा की दृष्टि से अशिक्षितों मे गिने जाते है पर उनका मनोबल प्रचंड था। तेज दिमाग वाले अनेक वकील अदालतो के आगे धरना दिये बैठे रहते है। उनमे से कितने है जो अपने मनोबल के आधार पर कोई महान पुरुषार्थ कर सकने मे सफल हुए हो ?

शरीर और मस्तिष्क के बल भी उपयोगी एव आवश्यक है पर मनोबल उन दोनो मे भिन्न है। वस्तुतः इस महान तत्त्व की अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसका असली नाम 'प्राणतत्त्व' है। प्राण ही जीवन है। भीष्म पितामह के शरीर मे यह प्राण ही प्रचुर मात्रा मे था जिसके बल पर वे छः महीने शरशैय्या पर पड़े हुए अपना जीवन धारण किये रहे। जन्मजात रूप से यह प्राण किसी को कुछ अधिक मात्रा मे मिलता है, कोई इसे अपने प्रयत्नो से बढ़ाते है, पर जिनके पास भी इसकी समुचित मात्रा होगी, वह वीर पुरुषो की भाँति जियेगा। उसके प्रत्येक कार्य मे से पराक्रम और पुरुषार्थ छलक रहा होगा। साहस और धैर्य उसमे भरे होगे और निराशा एव अधीरता उससे कोसो दूर रही होगी। उत्तेजना के अवसर आने पर भी वह आत्म-नियन्त्रण रख सका होगा, विपत्ति मे भी उसे मुसकराता हुआ देखा जा सकता है।

प्राणशक्ति की महिमा

रोगी मे यदि प्राणतत्त्व की समुचित मात्रा रही हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगो को भी परास्त कर सकता है। प्राणायाम द्वारा योगी लोग इसी प्राणतत्त्व का संग्रह करते हैं और इच्छित समय तक जीवित रह सकने की सिद्धि प्राप्त करते है। प्राण की प्रचुरता होने पर अपनी कितनी ही समस्याओं को हल कर लेना, दूसरो को प्रभावित करना, उन्हे आवश्यक शक्ति प्रदान कर सकना, दूसरो के शारीरिक, मानसिक रोगो का निवारण कर सकना कैसे सभव हो सकता है ? इसकी चर्चा हम अपनी 'प्राण चिकित्साविज्ञान', 'परकाया प्रवेश' और 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तको मे लिख चुके है। तनवल, धनवल, बुद्धिबल आदि से जितने प्रयोजन सिद्ध हो सकते है, प्राणवल के द्वारा उमसे अनेक गुनी महत्त्वपूर्ण सफलताऐ प्राप्त कर सकना सभव हो सकता है।

'प्राण' भी हवा, गर्मी (बिजली), आकाश (ईथर) आदि की तरह एक तत्त्व है, जो इस निखिल विश्व मे संव्याप्त ही रहता है। परमाणुओ से यह विश्व भरा पड़ा है परमाणु शक्ति से ही ससार का सारा व्यापार चल रहा है पर अपने प्रयोजनो के लिए अणुशक्ति को काम मे लेना एक विशेष विद्या है। जो उस विद्या को जानते है, वे ही अणुशक्ति चालित यन्त्रो का निर्माण एवं अणुबमो का उत्पादन कर सकते है। प्राणविद्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। ऐटम जड़ है इसलिए उसकी शक्ति सीमित है। प्राण चेतन है इसलिए उसकी सामर्थ्य भी असीम है। प्राचीनकाल के अध्यात्म विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति को तुच्छ और प्राणशक्ति को महान मानते थे, इसलिए उनने अध्यात्म विज्ञान मे प्राण विद्या को प्रमुख स्थान दिया था, प्राणायाम को आत्मोत्थान का प्रधान साधन माना था।

गायत्री की प्राण-विद्या

'गायत्री' प्राण-विद्या ही है। 'गाय' का अर्थ है प्राण, 'त्री' का अर्थ है त्राण करने वाली। प्राण शक्ति की मानव जीवन मे सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने वाली विद्या गायत्री ही है। 'गायत्री' का देवता 'सविता' माना गया है। सविता का मोटा अर्थ सूर्य होता है, पर उसका वास्तविक अर्थ प्राण ही है। प्राण ही गायत्री का देवता है। इस रहस्य पर 'अखण्ड ज्योति' मे 'गायत्री का देवता सविता' लेख मे कुछ प्रकाश डाला भी जा चुका है। गायत्री की उच्चस्तरीय भूमिका मे प्रवेश करने वाला साधक अपने को जिन शक्तियो तथा सिद्धियो से ओत-प्रोत पाता है वस्तुत. वह प्राण शक्ति का ही प्रसाद एवं चमत्कार होता है।

आत्म-उत्कर्ष मार्ग के पथिको का कार्य प्राण साधना के बिना नही चल सकता। इस तत्त्व का संग्रह किये बिना उनका मनोबल दुर्बल रहेगा। संकल्प बीच मे ही टूट जायेगे और लक्ष्य की ओर चलते हुए थोड़ी ही दूर पर पैर लड़खड़ाने लगेगे। साधना का पहिया निर्जीव यन्त्र की तरह घूमता तो रहेगा पर उसमे कुछ चमत्कार उत्पन्न न होगा। प्राण को मनोबल नही, आत्मबल का प्रतीक मानना चाहिए। हमारी प्राण-साधना जितनी ही प्रबल होगी, उतने ही मनोबल से, आत्मबल से हम सम्पन्न होते जायेगे।

आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम मे गये-गुजरे ही बढ़ते है और उन्ही का विस्तार होते देखा जाता है, किन्तु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते है। वह लक्षण है—प्रतिभाओ का अभिवर्धन और उनकी भावनाओ मे, गतिविधियो मे, उत्कर्षवादी तत्त्वों का अभिवर्धन।

अन्य जीव-जन्तुओ की भाँति मनुष्यो मे भी अनगढ़ो की, गये-गुजरो की संख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनो अशुभ सभावनाओ का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का, अवाछनीयता का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे है। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियो मे विपन्नता बढ़ने के रूप में देखी जाती है, किन्तु जब भावनाशील उत्कृष्टता की पक्षधर आशावादी व्यक्तियो की समर्थता और अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे संभावनाएँ निकट आ गईं, जो अनौचित्य को गिराती और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती है।

साधारण-सा है पर यदि मनोबल् पर्याप्त हुआ तो साधारण शरीर होते हुए भी वह महान कार्य सम्पादन कर सकता है इसके विपरीत देह से हट्टे-कट्टे होते हुए भी कितने ही व्यक्ति मनोबल की दृष्टि से दुर्बल होने के कारण बड़े दीन-हीन देखे जाते है। महात्मा गान्धी ठिगने और दुबले-पतले आदमी थे। उनका वजन कुल ९६ पौंड अर्थात् ४७ सेर के करीब था, फिर भी वे अपने अपार मनोबल के सहारे उस ब्रिटिश सिंह से लड़ पड़े जिसके राज्य मे सूर्य कभी अस्त नही होता था और जिसके पास हर किसी को कुचल डालने लायक पर्याप्त शक्ति मौजूद थी।

साहस के बल पर लोगो ने बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे किये है। असहाय फरिहाद अपनी प्रेमिका शीरी की खातिर एक बड़े पर्वत को काटकर लम्बी नहर खोद लाने मे सफल हुआ था। उसके पास एकमात्र बल—मनोबल ही था। संसार मे अगणित ऐसे नर-रत्न हुए है जिन्ने अभावग्रस्त परिस्थितियो मे रहते हुए अपने साहस के बलबूते किन्ही असंभव दीखने वाले महान कार्यों की ओर कदम बढ़ाये और भारी सघर्ष मे उलझते हुए अन्त मे सफलता के शिखर तक जा पहुँचे। इसके विपरीत सब प्रकार की सुविधाओ से सम्पन्न होते हुए भी अनेक व्यक्ति असफल और हताश रहते देखे जाते है। इसका कारण बहुधा उनके मनोबल की दुर्बलता ही होती है।

मनोबल की न्यूनता

इच्छा-शक्ति और सकल्प-बल की कमी का नाम ही कायरता है। कायर व्यक्ति हर घड़ी डरते रहते है। उन्हे अपने चारो ओर आशका, अविश्वास और असफलता के चिह्न ही दीखते रहते है। थोड़ी-सी कठिनाई को देखकर वे बहुत घबराते है और जरा-सी विपत्ति आने से किंकर्तव्यविमूढ होकर पागलो जैसी चेष्टाएं करने लगते है। आत्महत्या ऐसे ही उद्विग्न लोग कर बैठते है। हर समय चिन्ता, शोक, भय, आशका मे डूबे रहकर अपनी नीद हराम कर लेते है। कायर व्यक्ति निरन्तर परेशान बने रहते है। कोई न कोई छोटा-मोटा कारण उन्हे डराने और चिंतित करने के लिए पैदा होता ही रहता है। इसके विपरीत जिनमे साहस है, मनोबल है वे मौत के साथ जूझते हुए भी हँसते देखे गये है। युद्ध के मोर्चे पर जहाँ दोनो ओर से गोलियाँ सनसनाती रहती है, उस मौत के साये मे भी वीर-योद्धा हंसते, विनोद करते और नीद आने पर खर्राटे की गहरी नीद सोते रहते है। बड़ी से बड़ी आपत्ति मे वे अपने धैर्य, साहस और विवेक को स्थिर रखते है तथा कठिन परिस्थिति आने पर दूने उत्साह से उसे पार करने का प्रयत्न करते है। डरते वे किसी से भी नही। अपने पर और अपने भगवान पर जिसे भरोसा है वह क्यों किसी से डरेगा ? क्यो निराश एव हतोत्साहित होगा ?

सांसारिक सभी कार्यों को सफलतापूर्वक सुसम्पन्न करने के लिए मनोबल की आवश्यकता होती है। इसी के आधार पर दुर्बल शरीर प्रचुर पराक्रम दिखा देता है और उसी के आधार पर साधारण मस्तिष्क महत्वपूर्ण निर्णय करते है। इसलिए जीवन की महत्त्वपूर्ण सम्पदाओ मे मनोबल का होना एक बड़ी विभूति मानी जाती है। जिसके पास यह है, उसके पास कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। वह अपना तो रास्ता बनाता ही है, अन्य अनेको का भी नेतृत्व करता है।

संकल्प शक्ति की दुर्बलता

आध्यात्मिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भी इस मनोबल की नितान्त आवश्यकता है। इसके अभाव मे कोई व्यक्ति न तो वासना पर नियन्त्रण कर सकता है। और न तृष्णा के बन्धनो से छूट सकता है। बार-बार वह किन्ही दुर्गुणो को त्यागने की इच्छा करता है, उनके परित्याग का सकल्प भी करता है पर आन्तारिक दुर्बलता के कारण वह बात निभती नही। मनोवेगो का उफान जब आता है, तो उस परित्याग के दुर्बल निश्चय को बात की बात मे उखाड़ फेंकता है। जप, तप, ध्यान, भजन, पूजन आदि करने का कार्यक्रम बनता है। थोड़े दिनो मे वह जोश ठडा होते ही आलस आ घेरता है और बनाया हुआ कार्यक्रम छूट जाता है। कई बार इस प्रकार आत्मोन्नति के प्रयत्न असफल हो जाने पर फिर हिम्मत ही नहीं रहती। मनुष्य सोच लेता है कि यह सब हमारे वश का नहीं, हम से यह सब नही निभेगा। भगवान की इच्छा हमारा कल्याण करने की नही दीखती।

लौकिक और पारलौकिक पुरुषार्थों की सफलता का प्रमुख आधार मनोबल है। साहस और धैर्य के बिना किसी को इस ससार मे कोई कहने लायक सफलता नही मिली। इसलिए मानव-जीवन का पूरा लाभ उठाने के इच्छुक सदा से अपने मनोबल को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे है। जिसे यह तत्त्व जितनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो गया उसका मनोरथ उतना ही सफल होता देखा गया है।

आन्तरिक सामर्थ्य की प्रधानता

यह इतना उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण पदार्थ 'मनोबल' आखिर है क्या ? आइए इस पर विचार करे। मनोबल को शरीरबल या बुद्धिबल नही कहा जा सकता क्योंकि देह के दुर्बल होते हुए भी कितने ही व्यक्तियो मे भारी मनोबल पाया जाता है। कुख्यात 'तॉतिया' डाकू बहुत दुबला था। उसका असली नाम कुछ और था पर शरीर रुई धुनने की ताँत-सा पतला देखकर लोगो ने उसका नाम 'ताँतिया' रख दिया था। इसी प्रकार शिक्षा या मस्तिष्क की उर्वरता से भी मनोबल का कोई सबध नही है। पजाब-केशरी रणजीतसिंह, बादशाह अकबर और स

कबीर शिक्षा की दृष्टि से अशिक्षितो मे गिने जाते है पर उनका मनोबल प्रचंड था। तेज दिमाग वाले अनेक वकील अदालतो के आगे धरना दिये बैठे रहते है। उनमे से कितने है जो अपने मनोबल के आधार पर कोई महान पुरुषार्थ कर सकने मे सफल हुए हो ?

शरीर और मस्तिष्क के बल भी उपयोगी एवं आवश्यक है पर मनोबल उन दोनो मे भिन्न है। वस्तुतः इस महान तत्त्व की अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसका असली नाम 'प्राणतत्त्व' है। प्राण ही जीवन है। भीष्म पितामह के शरीर मे यह प्राण ही प्रचुर मात्रा मे था जिसके बल पर वे छः महीने शरशैय्या पर पड़े हुए अपना जीवन धारण किये रहे। जन्मजात रूप से यह प्राण किसी को कुछ अधिक मात्रा मे मिलता है, कोई इसे अपने प्रयत्नो से बढ़ाते है, पर जिनके पास भी इसकी समुचित मात्रा होगी, वह वीर पुरुषो की भाँति जियेगा। उसके प्रत्येक कार्य मे से पराक्रम और पुरुषार्थ छलक रहा होगा। साहस और धैर्य उसमे भरे होगे और निराशा एवं अधीरता उससे कोसो दूर रही होगी। उत्तेजना के अवसर आने पर भी वह आत्म-नियन्त्रण रख सका होगा, विपत्ति मे भी उसे मुसकराता हुआ देखा जा सकता है।

प्राणशक्ति की महिमा

रोगी मे यदि प्राणतत्त्व की समुचित मात्रा रही हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगो को भी परास्त कर सकता है। प्राणायाम द्वारा योगी लोग इसी प्राणतत्त्व का संग्रह करते हैं और इच्छित समय तक जीवित रह सकने की सिद्धि प्राप्त करते है। प्राण की प्रचुरता होने पर अपनी कितनी ही समस्याओ को हल कर लेना, दूसरो को प्रभावित करना, उन्हे आवश्यक शक्ति प्रदान कर सकना, दूसरो के शारीरिक, मानसिक रोगो का निवारण कर सकना कैसे संभव हो सकता है ? इसकी चर्चा हम अपनी 'प्राण चिकित्साविज्ञान', 'परकाया प्रवेश' और 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तको मे लिख चुके है। तनबल, धनबल, बुद्धिबल आदि से जितने प्रयोजन सिद्ध हो सकते है, प्राणबल के द्वारा उससे अनेक गुनी महत्त्वपूर्ण सफलताऐ प्राप्त कर सकना संभव हो सकता है।

'प्राण' भी हवा, गर्मी (बिजली), आकाश (ईथर) आदि की तरह एक तत्त्व है, जो इस निखिल विश्व मे सव्याप्त ही रहता है। परमाणुओ से यह विश्व भरा पड़ा है परमाणु शक्ति से ही संसार का सारा व्यापार चल रहा है पर अपने प्रयोजनो के लिए अणुशक्ति को काम मे लेना एक विशेष विद्या है। जो उस विद्या को जानते है, वे ही अणुशक्ति चालित यन्त्रो का निर्माण एवं अणुबमो का उत्पादन कर सकते हैं। प्राणविद्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। ऐटम जड़ है इसलिए उसकी शक्ति सीमित है। प्राण चेतन है इसलिए उसकी सामर्थ्य भी असीम है। प्राचीनकाल के अध्यात्म विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति को तुच्छ और प्राणशक्ति को महान मानते थे, इसलिए उनने अध्यात्म विज्ञान मे प्राण विद्या को प्रमुख स्थान दिया था, प्राणायाम को आत्मोत्थान का प्रधान साधन माना था।

गायत्री की प्राण-विद्या

'गायत्री' प्राण-विद्या ही है। 'गाय' का अर्थ है प्राण, 'त्री' का अर्थ है त्राण करने वाली। प्राण शक्ति की मानव जीवन मे सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने वाली विद्या गायत्री ही है। 'गायत्री' का देवता 'सविता' माना गया है। सविता का मोटा अर्थ सूर्य होता है, पर उसका वास्तविक अर्थ प्राण ही है। प्राण ही गायत्री का देवता है। इस रहस्य पर 'अखण्ड ज्योति' मे 'गायत्री का देवता सविता' लेख मे कुछ प्रकाश डाला भी जा चुका है। गायत्री की उच्चस्तरीय भूमिका मे प्रवेश करने वाला साधक अपने को जिन शक्तियों तथा सिद्धियो से ओत-प्रोत पाता है वस्तुतः वह प्राण शक्ति का ही प्रसाद एवं चमत्कार होता है।

आत्म-उत्कर्ष मार्ग के पथिको का कार्य प्राण साधना के बिना नही चल सकता। इस तत्त्व का संग्रह किये बिना उनका मनोबल दुर्बल रहेगा। संकल्प बीच मे ही टूट जायेगे और लक्ष्य की ओर चलते हुए थोड़ी ही दूर पर पैर लड़खड़ाने लगेगे। साधना का पहिया निर्जीव यंत्र की तरह घूमता तो रहेगा पर उसमे कुछ चमत्कार उत्पन्न न होगा। प्राण को मनोबल नही, आत्मबल का प्रतीक मानना चाहिए। हमारी प्राण-साधना जितनी ही प्रबल होगी, उतने ही मनोबल से, आत्मबल से हम सम्पन्न होते जायेगे।

आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम मे गये-गुजरे ही बढ़ते है और उन्ही का विस्तार होते देखा जाता है, किन्तु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते है। वह लक्षण है—प्रतिभाओ का अभिवर्धन और उनकी भावनाओ मे, गतिविधियो मे, उत्कर्षवादी तत्त्वो का अभिवर्धन।

अन्य जीव-जन्तुओ की भाँति मनुष्यो मे भी अनगढ़ो की, गये-गुजरो की सख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनो अशुभ संभावनाओ का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का, अवांछनीयता का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे हैं। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियो मे विपन्नता बढ़ने के रूप में देखी जाती है, किन्तु जब भावनाशील उत्कृष्टता की पक्षधर आशावादी व्यक्तियो की समर्थता और अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे सभावनाएँ निकट आ गई, जो अनौचित्य को गिराती और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती है।

साधारण-सा है पर यदि मनोबल् पर्याप्त हुआ तो साधारण शरीर होते हुए भी वह महान कार्य सम्पादन कर सकता है इसके विपरीत देह से हट्टे-कट्टे होते हुए भी कितने ही व्यक्ति मनोबल की दृष्टि से दुर्बल होने के कारण बड़े दीन-हीन देखे जाते है। महात्मा गान्धी ठिंगने और दुबले-पतले आदमी थे। उनका वजन कुल ९६ पौंड अर्थात् ४७ सेर के करीब था, फिर भी वे अपने अपार मनोबल के सहारे उस ब्रिटिश सिंह से लड़ पड़े जिसके राज्य मे सूर्य कभी अस्त नही होता था और जिसके पास हर किसी को कुचल डालने लायक पर्याप्त शक्ति मौजूद थी।

साहस के बल पर लोगो ने बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे किये है। असहाय फरिहाद अपनी प्रेमिका शीरी की खातिर एक बड़े पर्वत को काटकर लम्बी नहर खोद लाने मे सफल हुआ था। उसके पास एकमात्र बल—मनोबल ही था। संसार मे अगणित ऐसे नर-रत्न हुए है जिनने अभावग्रस्त परिस्थितियो मे रहते हुए अपने साहस के बलबूते किन्ही असंभव दीखने वाले महान कार्यो की ओर कदम बढ़ाये और भारी संघर्ष मे उलझते हुए अन्त मे सफलता के शिखर तक जा पहुँचे। इसके विपरीत सब प्रकार की सुविधाओ से सम्पन्न होते हुए भी अनेक व्यक्ति असफल और हताश रहते देखे जाते है। इसका कारण बहुधा उनके मनोबल की दुर्बलता ही होती है।

मनोबल की न्यूनता

इच्छा-शक्ति और संकल्प-बल की कमी का नाम ही कायरता है। कायर व्यक्ति हर घड़ी डरते रहते है। उन्हे अपने चारो ओर आशका, अविश्वास और असफलता के चिह्न ही दीखते रहते है। थोड़ी-सी कठिनाई को देखकर वे बहुत घबराते है और जरा-सी विपत्ति आने से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पागलो जैसी चेष्टाएं करने लगते है। आत्महत्या ऐसे ही उद्विग्न लोग कर बैठते है। हर समय चिन्ता, शोक, भय, आशका मे डूबे रहकर अपनी नीद हराम कर लेते है। कायर व्यक्ति निरन्तर परेशान बने रहते है। कोई न कोई छोटा-मोटा कारण उन्हे डराने और चिंतित करने के लिए पैदा होता ही रहता है। इसके विपरीत जिनमें साहस है, मनोबल है वे मौत के साथ जूझते हुए भी हँसते देखे गये है। युद्ध के मोर्चे पर जहाँ दोनो ओर से गोलियाँ सनसनाती रहती है, उस मौत के साये मे भी वीर-योद्धा हँसते, विनोद करते और नीद आने पर खर्राटे की गहरी नीद सोते रहते है। बड़ी से बड़ी आपत्ति मे वे अपने धैर्य, साहस और विवेक को स्थिर रखते है तथा कठिन परिस्थिति आने पर दूने उत्साह से उसे पार करने का प्रयत्न करते है। डरते वे किसी से भी नही। अपने पर और अपने भगवान पर जिसे भरोसा है वह क्यों किसी से डरेगा ? क्यो निराश एव हतोत्साहित होगा ?

सांसारिक सभी कार्यों को सफलतापूर्वक सुसम्पन्न करने के लिए मनोबल की आवश्यकता होती है। इसी के आधार पर दुर्बल शरीर प्रचुर पराक्रम दिखा देता है और उसी के आधार पर साधारण मस्तिष्क महत्त्वपूर्ण निर्णय करते है। इसलिए जीवन की महत्त्वपूर्ण सम्पदाओ मे मनोबल का होना एक बड़ी विभूति मानी जाती है। जिसके पास यह है, उसके पास कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। वह अपना तो रास्ता बनाता ही है, अन्य अनेको का भी नेतृत्व करता है।

संकल्प शक्ति की दुर्बलता

आध्यात्मिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भी इस मनोबल की नितान्त आवश्यकता है। इसके अभाव मे कोई व्यक्ति न तो वासना पर नियन्त्रण कर सकता है। और न तृष्णा के बन्धनो से छूट सकता है। बार-बार वह किन्ही दुर्गुणो को त्यागने की इच्छा करता है, उनके परित्याग का संकल्प भी करता है पर आन्तरिक दुर्बलता के कारण वह बात निभती नही। मनोवेगो का उफान जब आता है, तो उस परित्याग के दुर्बल निश्चय को बात की बात मे उखाड़ फेकता है। जप, तप, ध्यान, भजन, पूजन आदि करने का कार्यक्रम बनता है। थोड़े दिनो मे वह जोश ठंडा होते ही आलस आ घेरता है और बनाया हुआ कार्यक्रम छूट जाता है। कई बार इस प्रकार आत्मोन्नति के प्रयत्न असफल हो जाने पर फिर हिम्मत ही नही रहती। मनुष्य सोच लेता है कि यह सब हमारे वश का नही, हम से यह सब नही निभेगा। भगवान की इच्छा हमारा कल्याण करने की नही दीखती।

लौकिक और पारलौकिक पुरुषार्थो की सफलता का प्रमुख आधार मनोबल है। साहस और धैर्य के बिना किसी को इस संसार में कोई कहने लायक सफलता नही मिली। इसलिए मानव-जीवन का पूरा लाभ उठाने के इच्छुक सदा से अपने मनोबल को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे है। जिसे यह तत्त्व जितनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो गया उसका मनोरथ उतना ही सफल होता देखा गया है।

आन्तरिक सामर्थ्य की प्रधानता

यह इतना उपयोगी एव महत्वपूर्ण पदार्थ 'मनोबल' आखिर है क्या ? आइए इस पर विचार करे। मनोबल को शरीरबल या बुद्धिबल नही कहा जा सकता क्योंकि देह के दुर्बल होते हुए भी कितने ही व्यक्तियो मे भारी मनोबल पाया जाता है। कुख्यात 'ताँतिया' डाकू बहुत दुबला था। उसका असली नाम कुछ और था पर शरीर रुई धुनने की ताँत-सा पतला देखकर लोगो ने उसका नाम 'ताँतिया' रख दिया था। इसी प्रकार शिक्षा या मस्तिष्क की उर्वरता से भी मनोबल का कोई संबध नही है। पंजाब-केशरी रणजीतसिंह, बादशाह अकबर और संत

कबीर शिक्षा की दृष्टि से अशिक्षितो मे गिने जाते है पर उनका मनोबल प्रचंड था। तेज दिमाग वाले अनेक वकील अदालतो के आगे धरना दिये बैठे रहते है। उनमे से कितने है जो अपने मनोबल के आधार पर कोई महान पुरुषार्थ कर सकने मे सफल हुए हो ?

शरीर और मस्तिष्क के बल भी उपयोगी एवं आवश्यक है पर मनोबल उन दोनो मे भिन्न है। वस्तुत: इस महान तत्त्व की अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसका असली नाम 'प्राणतत्व' है। प्राण ही जीवन है। भीष्म पितामह के शरीर मे यह प्राण ही प्रचुर मात्रा मे था जिसके बल पर वे छ: महीने शरशैय्या पर पड़े हुए अपना जीवन धारण किये रहे। जन्मजात रूप से यह प्राण किसी को कुछ अधिक मात्रा मे मिलता है, कोई इसे अपने प्रयत्नो से बढ़ाते है, पर जिनके पास भी इसकी समुचित मात्रा होगी, वह वीर पुरुषो की भाँति जियेगा। उसके प्रत्येक कार्य मे से पराक्रम और पुरुषार्थ छलक रहा होगा। साहस और धैर्य उसमे भरे होगे और निराशा एवं अधीरता उससे कोसो दूर रही होगी। उत्तेजना के अवसर आने पर भी वह आत्म-नियन्त्रण रख सका होगा, विपत्ति मे भी उसे मुसकराता हुआ देखा जा सकता है।

प्राणशक्ति की महिमा

रोगी मे यदि प्राणतत्त्व की समुचित मात्रा रही हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगो को भी परास्त कर सकता है। प्राणायाम द्वारा योगी लोग इसी प्राणतत्त्व का सग्रह करते है और इच्छित समय तक जीवित रह सकने की सिद्धि प्राप्त करते है। प्राण की प्रचुरता होने पर अपनी कितनी ही समस्याओ को हल कर लेना, दूसरो को प्रभावित करना, उन्हे आवश्यक शक्ति प्रदान कर सकना, दूसरो के शारीरिक, मानसिक रोगो का निवारण कर सकना कैसे सभव हो सकता है ? इसकी चर्चा हम अपनी 'प्राण चिकित्साविज्ञान', 'परकाया प्रवेश' और 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तको मे लिख चुके है। तनबल, धनबल, बुद्धिबल आदि से जितने प्रयोजन सिद्ध हो सकते है, प्राणबल के द्वारा उससे अनेक गुनी महत्त्वपूर्ण सफलताऐ प्राप्त कर सकना संभव हो सकता है।

'प्राण' भी हवा, गर्मी (बिजली), आकाश (ईथर) आदि की तरह एक तत्त्व है, जो इस निखिल विश्व मे सव्याप्त ही रहता है। परमाणुओ से यह विश्व भरा पड़ा है परमाणु शक्ति से ही ससार का सारा व्यापार चल रहा है पर अपने प्रयोजनो के लिए अणुशक्ति को काम मे लेना एक विशेष विद्या है। जो उस विद्या को जानते है, वे ही अणुशक्ति चालित यन्त्रो का निर्माण एव अणुबमो का उत्पादन कर सकते है। प्राणविद्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। ऐटम जड़ है इसलिए उसकी शक्ति सीमित है। प्राण चेतन है इसलिए उसकी सामर्थ्य भी असीम है। प्राचीनकाल के अध्यात्म विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति को तुच्छ और प्राणशक्ति को महान मानते थे, इसलिए उनने अध्यात्म विज्ञान मे प्राण विद्या को प्रमुख स्थान दिया था, प्राणायाम को आत्मोत्थान का प्रधान साधन माना था।

गायत्री की प्राण-विद्या

'गायत्री' प्राण-विद्या ही है। 'गाय' का अर्थ है प्राण, 'त्री' का अर्थ है त्राण करने वाली। प्राण शक्ति की मानव जीवन मे सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने वाली विद्या गायत्री ही है। 'गायत्री' का देवता 'सविता' माना गया है। सविता का मोटा अर्थ सूर्य होता है, पर उसका वास्तविक अर्थ प्राण ही है। प्राण ही गायत्री का देवता है। इस रहस्य पर 'अखण्ड ज्योति' मे 'गायत्री का देवता सविता' लेख मे कुछ प्रकाश डाला भी जा चुका है। गायत्री की उच्चस्तरीय भूमिका मे प्रवेश करने वाला साधक अपने को जिन शक्तियो तथा सिद्धियो से ओत-प्रोत पाता है वस्तुत: वह प्राण शक्ति का ही प्रसाद एवं चमत्कार होता है।

आत्म-उत्कर्ष मार्ग के पथिको का कार्य प्राण साधना के बिना नही चल सकता। इस तत्त्व का संग्रह किये बिना उनका मनोबल दुर्बल रहेगा। संकल्प बीच मे ही टूट जायेगे और लक्ष्य की ओर चलते हुए थोड़ी ही दूर पर पैर लड़खड़ाने लगेगे। साधना का पहिया निर्जीव यत्र की तरह घूमता तो रहेगा पर उसमे कुछ चमत्कार उत्पन्न न होगा। प्राण को मनोबल नही, आत्मबल का प्रतीक मानना चाहिए। हमारी प्राण-साधना जितनी ही प्रबल होगी, उतने ही मनोबल से, आत्मबल से हम सम्पन्न होते जायेगे।

आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम मे गये-गुजरे ही बढ़ते है और उन्ही का विस्तार होते देखा जाता है, किन्तु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते है। वह लक्षण है—प्रतिभाओ का अभिवर्धन और उनकी भावनाओ मे, गतिविधियो मे, उत्कर्षवादी तत्त्वों का अभिवर्धन।

अन्य जीव-जन्तुओ की भाँति मनुष्यो मे भी अनगढ़ो की, गये-गुजरो की सख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनो अशुभ सभावनाओ का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का, अवाछनीयता का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे है। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियो मे विपन्नता बढ़ने के रूप मे देखी जाती है, किन्तु जब भावनाशील उत्कृष्टता की पक्षधर आशावादी व्यक्तियो की समर्थता और अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे सभावनाएँ निकट आ गईं, जो अनौचित्य को गिराती और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती है।

साधारण-सा है पर यदि मनोबल पर्याप्त हुआ तो साधारण शरीर होते हुए भी वह महान कार्य सम्पादन कर सकता है इसके विपरीत देह से हट्टे-कट्टे होते हुए भी कितने ही व्यक्ति मनोबल की दृष्टि से दुर्बल होने के कारण बड़े दीन-हीन देखे जाते है। महात्मा गान्धी ठिंगने और दुबले-पतले आदमी थे। उनका वजन कुल ९६ पौड अर्थात् ४७ सेर के करीब था, फिर भी वे अपने अपार मनोबल के सहारे उस ब्रिटिश सिंह से लड़ पड़े जिसके राज्य मे सूर्य कभी अस्त नही होता था और जिसके पास हर किसी को कुचल डालने लायक पर्याप्त शक्ति मौजूद थी।

साहस के बल पर लोगो ने बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे किये है। असहाय फरिहाद अपनी प्रेमिका शीरी की खातिर एक बड़े पर्वत को काटकर लम्बी नहर खोद लाने मे सफल हुआ था। उसके पास एकमात्र बल—मनोबल ही था। संसार मे अगणित ऐसे नर-रत्न हुए है जिन्ने अभावग्रस्त परिस्थितियो मे रहते हुए अपने साहस के बलबूते किन्ही असंभव दीखने वाले महान कार्यो की ओर कदम बढ़ाये और भारी सघर्ष मे उलझते हुए अन्त मे सफलता के शिखर तक जा पहुँचे। इसके विपरीत सब प्रकार की सुविधाओ से सम्पन्न होते हुए भी अनेक व्यक्ति असफल और हताश रहते देखे जाते है। इसका कारण बहुधा उनके मनोबल की दुर्बलता ही होती है।

मनोबल की न्यूनता

इच्छा-शक्ति और संकल्प-बल की कमी का नाम ही कायरता है। कायर व्यक्ति हर घड़ी डरते रहते है। उन्हे अपने चारो ओर आशका, अविश्वास और असफलता के चिह्न ही दीखते रहते है। थोड़ी-सी कठिनाई को देखकर वे बहुत घबराते है और जरा-सी विपत्ति आने से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर पागलो जैसी चेष्टाएं करने लगते है। आत्महत्या ऐसे ही उद्विग्न लोग कर बैठते है। हर समय चिन्ता, शोक, भय, आशका मे डूबे रहकर अपनी नीद हराम कर लेते है। कायर व्यक्ति निरन्तर परेशान बने रहते है। कोई न कोई छोटा-मोटा कारण उन्हे डराने और चिंतित करने के लिए पैदा होता ही रहता है। इसके विपरीत जिनमे साहस है, मनोबल है वे मौत के साथ जूझते हुए भी हँसते देखे गये है। युद्ध के मोर्चे पर जहाँ दोनो ओर से गोलियाँ सनसनाती रहती है, उस मौत के साये मे भी वीर-योद्धा हँसते, विनोद करते और नीद आने पर खर्राटे की गहरी नीद सोते रहते है। बड़ी से बड़ी आपत्ति मे वे अपने धैर्य, साहस और विवेक को स्थिर रखते है तथा कठिन परिस्थिति आने पर दूने उत्साह से उसे पार करने का प्रयत्न करते है। डरते वे किसी से भी नही। अपने पर और अपने भगवान पर जिसे भरोसा है वह क्यो किसी से डरेगा ? क्यो निराश एव हतोत्साहित होगा ?

सांसारिक सभी कार्यों को सफलतापूर्वक सुसम्पन्न करने के लिए मनोबल की आवश्यकता होती है। इसी के आधार पर दुर्बल शरीर प्रचुर पराक्रम दिखा देता है और उसी के आधार पर साधारण मस्तिष्क महत्वपूर्ण निर्णय करते है। इसलिए जीवन की महत्वपूर्ण सम्पदाओ मे मनोबल का होना एक बड़ी विभूति मानी जाती है। जिसके पास यह है, उसके पास कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। वह अपना तो रास्ता बनाता ही है, अन्य अनेको का भी नेतृत्व करता है।

संकल्प शक्ति की दुर्बलता

आध्यात्मिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भी इस मनोबल की नितान्त आवश्यकता है। इसके अभाव मे कोई व्यक्ति न तो वासना पर नियन्त्रण कर सकता है। और न तृष्णा के बन्धनो से छूट सकता है। बार-बार वह किन्हीं दुर्गुणो को त्यागने की इच्छा करता है, उनके परित्याग का सकल्प भी करता है पर आन्तरिक दुर्बलता के कारण वह बात निभती नही। मनोवेगो का उफान जब आता है, तो उस परित्याग के दुर्बल निश्चय को बात की बात मे उखाड़ फेकता है। जप, तप, ध्यान, भजन, पूजन आदि करने का कार्यक्रम बनता है। थोड़े दिनो मे वह जोश ठंडा होते ही आलस आ घेरता है और बनाया हुआ कार्यक्रम छूट जाता है। कई बार इस प्रकार आत्मोन्नति के प्रयत्न असफल हो जाने पर फिर हिम्मत ही नहीं रहती। मनुष्य सोच लेता है कि यह सब हमारे वश का नही, हम से यह सब नही निभेगा। भगवान की इच्छा हमारा कल्याण करने की नही दीखती।

लौकिक और पारलौकिक पुरुषार्थो की सफलता का प्रमुख आधार मनोबल है। साहस और धैर्य के बिना किसी को इस संसार मे कोई कहने लायक सफलता नहीं मिली। इसलिए मानव-जीवन का पूरा लाभ उठाने के इच्छुक सदा से अपने मनोबल को बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे है। जिसे यह तत्व जितनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो गया उसका मनोरथ उतना ही सफल होता देखा गया है।

आन्तरिक सामर्थ्य की प्रधानता

यह इतना उपयोगी एव महत्वपूर्ण पदार्थ 'मनोबल' आखिर है क्या ? आइए इस पर विचार करे। मनोबल को शरीरबल या बुद्धिबल नही कहा जा सकता क्योंकि देह के दुर्बल होते हुए भी कितने ही व्यक्तियो मे भारी मनोबल पाया जाता है। कुख्यात 'तॉतिया' डाकू बहुत दुबला था। उसका असली नाम कुछ और था पर शरीर रुई धुनने की ताँत-सा पतला देखकर लोगो ने उसका नाम 'ताँतिया' रख दिया था। इसी प्रकार शिक्षा या मस्तिष्क की उर्वरता से भी मनोबल का कोई सबध नही है। पजाब-केशरी रणजीतसिह, बादशाह अकबर और संत

कबीर शिक्षा की दृष्टि से अशिक्षितो मे गिने जाते है पर उनका मनोबल प्रचंड था। तेज दिमाग वाले अनेक वकील अदालतो के आगे धरना दिये बैठे रहते है। उनमे से कितने है जो अपने मनोबल के आधार पर कोई महान पुरुषार्थ कर सकने मे सफल हुए हो ?

शरीर और मस्तिष्क के बल भी उपयोगी एवं आवश्यक है पर मनोबल उन दोनो मे भिन्न है। वस्तुतः इस महान तत्त्व की अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसका असली नाम 'प्राणतत्त्व' है। प्राण ही जीवन है। भीष्म पितामह के शरीर मे यह प्राण ही प्रचुर मात्रा मे था जिसके बल पर वे छः महीने शरशैय्या पर पड़े हुए अपना जीवन धारण किये रहे। जन्मजात रूप से यह प्राण किसी को कुछ अधिक मात्रा मे मिलता है, कोई इसे अपने प्रयत्नो से बढ़ाते है, पर जिनके पास भी इसकी समुचित मात्रा होगी, वह वीर पुरुषो की भाँति जियेगा। उसके प्रत्येक कार्य मे से पराक्रम और पुरुषार्थ छलक रहा होगा। साहस और धैर्य उसमे भरे होगे और निराशा एवं अधीरता उससे कोसो दूर रही होगी। उत्तेजना के अवसर आने पर भी वह आत्म-नियन्त्रण रख सका होगा, विपत्ति मे भी उसे मुसकराता हुआ देखा जा सकता है।

प्राणशक्ति की महिमा

रोगी मे यदि प्राणतत्त्व की समुचित मात्रा रही हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगो को भी परास्त कर सकता है। प्राणायाम द्वारा योगी लोग इसी प्राणतत्त्व का सग्रह करते है और इच्छित समय तक जीवित रह सकने की सिद्धि प्राप्त करते है। प्राण की प्रचुरता होने पर अपनी कितनी ही समस्याओ को हल कर लेना, दूसरो को प्रभावित करना, उन्हे आवश्यक शक्ति प्रदान कर सकना, दूसरो के शारीरिक, मानसिक रोगो का निवारण कर सकना कैसे सभव हो सकता है ? इसकी चर्चा हम अपनी 'प्राण चिकित्साविज्ञान', 'परकाया प्रवेश' और 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तको मे लिख चुके है। तनबल, धनबल, बुद्धिबल आदि से जितने प्रयोजन सिद्ध हो सकते है, प्राणबल के द्वारा उससे अनेक गुनो महत्त्वपूर्ण सफलताऐ प्राप्त कर सकना संभव हो सकता है।

'प्राण' भी हवा, गर्मी (बिजली), आकाश (ईथर) आदि की तरह एक तत्त्व है, जो इस निखिल विश्व मे सव्याप्त ही रहता है। परमाणुओ से यह विश्व भरा पड़ा है परमाणु शक्ति से ही संसार का सारा व्यापार चल रहा है पर अपने प्रयोजनो के लिए अणुशक्ति को काम मे लेना एक विशेष विद्या है। जो उस विद्या को जानते है, वे ही अणुशक्ति चालित यन्त्रो का निर्माण एव अणुबमो का उत्पादन कर सकते है। प्राणविद्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। ऐटम जड़ है इसलिए उसकी शक्ति सीमित है। प्राण चेतन है इसलिए उसकी सामर्थ्य भी असीम है। प्राचीनकाल के अध्यात्म विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति को तुच्छ और प्राणशक्ति को महान मानते थे, इसलिए उनने अध्यात्म विज्ञान मे प्राण विद्या को प्रमुख स्थान दिया था, प्राणायाम को आत्मोत्थान का प्रधान साधन माना था।

गायत्री की प्राण-विद्या

'गायत्री' प्राण-विद्या ही है। 'गाय' का अर्थ है प्राण, 'त्री' का अर्थ है त्राण करने वाली। प्राण शक्ति की मानव जीवन मे सुरक्षा एवं अभिवृद्धि करने वाली विद्या गायत्री ही है। 'गायत्री' का देवता 'सविता' माना गया है। सविता का मोटा अर्थ सूर्य होता है, पर उसका वास्तविक अर्थ प्राण ही है। प्राण ही गायत्री का देवता है। इस रहस्य पर 'अखण्ड ज्योति' मे 'गायत्री का देवता सविता' लेख मे कुछ प्रकाश डाला भी जा चुका है। गायत्री की उच्चस्तरीय भूमिका मे प्रवेश करने वाला साधक अपने को जिन शक्तियों तथा सिद्धियो से ओत-प्रोत पाता है वस्तुतः वह प्राण शक्ति का ही प्रसाद एवं चमत्कार होता है।

आत्म-उत्कर्ष मार्ग के पथिको का कार्य प्राण साधना के बिना नही चल सकता। इस तत्त्व का संग्रह किये बिना उनका मनोबल दुर्बल रहेगा। सकल्प बीच मे ही टूट जायेगे और लक्ष्य की ओर चलते हुए थोड़ी ही दूर पर पैर लड़खड़ाने लगेगे। साधना का पहिया निर्जीव यंत्र की तरह घूमता तो रहेगा पर उसमे कुछ चमत्कार उत्पन्न न होगा। प्राण को मनोबल नही, आत्मबल का प्रतीक मानना चाहिए। हमारी प्राण-साधना जितनी ही प्रबल होगी, उतने ही मनोबल से, आत्मबल से हम सम्पन्न होते जायेगे।

आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम मे गये-गुजरे ही बढ़ते है और उन्ही का विस्तार होते देखा जाता है, किन्तु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते है। वह लक्षण है—प्रतिभाओ का अभिवर्धन और उनकी भावनाओ मे, गतिविधियो मे, उत्कर्षवादी तत्त्वों का अभिवर्धन।

अन्य जीव-जन्तुओ की भाँति मनुष्यो मे भी अनगढ़ो की, गये-गुजरो की सख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनो अशुभ संभावनाओ का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का, अवांछनीयता का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे है। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियो मे विपन्नता बढ़ने के रूप मे देखी जाती है, किन्तु जब भावनाशील उत्कृष्टता की पक्षधर आशावादी व्यक्तियो की समर्थता और अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे संभावनाएँ निकट आ गईं, जो अनौचित्य को गिराती और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती है।

साधारण-सा है पर यदि मनोबल पर्याप्त हुआ तो साधारण शरीर होते हुए भी वह महान कार्य सम्पादन कर सकता है इसके विपरीत देह से हट्टे-कट्टे होते हुए भी कितने ही व्यक्ति मनोबल की दृष्टि से दुर्बल होने के कारण बड़े दीन-हीन देखे जाते है। महात्मा गान्धी ठिगने और दुबले-पतले आदमी थे। उनका वजन कुल ९६ पौंड अर्थात् ४७ सेर के करीब था, फिर भी वे अपने अपार मनोबल के सहारे उस ब्रिटिश सिंह से लड़ पड़े जिसके राज्य मे सूर्य कभी अस्त नही होता था और जिसके पास हर किसी को कुचल डालने लायक पर्याप्त शक्ति मौजूद थी।

साहस के बल पर लोगो ने बड़े-बड़े कठिन कार्य पूरे किये है। असहाय फरिहाद अपनी प्रेमिका शीरी की खातिर एक बड़े पर्वत को काटकर लम्बी नहर खोद लाने मे सफल हुआ था। उसके पास एकमात्र बल—मनोबल ही था। ससार मे अगणित ऐसे नर-रत्न हुए है जिनने अभावग्रस्त परिस्थितियो मे रहते हुए अपने साहस के बलबूते किन्ही असभव दीखने वाले महान कार्यों की ओर कदम बढाये और भारी सघर्ष मे उलझते हुए अन्त मे सफलता के शिखर तक जा पहुँचे। इसके विपरीत सब प्रकार की सुविधाओ से सम्पन्न होते हुए भी अनेक व्यक्ति असफल और हताश रहते देखे जाते है। इसका कारण बहुधा उनके मनोबल की दुर्बलता ही होती है।

मनोबल की न्यूनता

इच्छा-शक्ति और सकल्प-बल की कमी का नाम ही कायरता है। कायर व्यक्ति हर घड़ी डरते रहते है। उन्हे अपने चारो ओर आशका, अविश्वास और असफलता के चिह्न ही दीखते रहते है। थोड़ी-सी कठिनाई को देखकर वे बहुत घबराते है और जरा-सी विपत्ति आने से किंकर्तव्यविमूढ होकर पागलो जैसी चेष्टाएं करने लगते है। आत्महत्या ऐसे ही उद्विग्न लोग कर बैठते है। हर समय चिन्ता, शोक, भय, आशका मे डूबे रहकर अपनी नीद हराम कर लेते है। कायर व्यक्ति निरन्तर परेशान बने रहते है। कोई न कोई छोटा-मोटा कारण उन्हे डराने और चिंतित करने के लिए पैदा होता ही रहता है। इसके विपरीत जिनमे साहस है, मनोबल है वे मौत के साथ जूझते हुए भी हँसते देखे गये है। युद्ध के मोर्चे पर जहाँ दोनो ओर से गोलियाँ सनसनाती रहती है, उस मौत के साये मे भी वीर-योद्धा हँसते, विनोद करते और नीद आने पर खर्राटे की गहरी नीद सोते रहते है। बड़ी से बड़ी आपत्ति मे वे अपने धैर्य, साहस और विवेक को स्थिर रखते है तथा कठिन परिस्थिति आने पर दूने उत्साह से उसे पार करने का प्रयत्न करते है। डरते वे किसी मे नही। अपने पर और अपने भगवान पर जिसे भरोसा वह क्यो किसी से डरेगा ? क्यो निराश एव [illegible] होगा ?

सांसारिक सभी कार्यों को सफलतापूर्वक सुसम्पन्न करने के लिए मनोबल की आवश्यकता होती है। इसी के आधार पर दुर्बल शरीर प्रचुर पराक्रम दिखा देता है और उसी के आधार पर साधारण मस्तिष्क महत्वपूर्ण निर्णय करते है। इसलिए जीवन की महत्वपूर्ण सम्पदाओ मे मनोबल का होना एक बड़ी विभूति मानी जाती है। जिसके पास यह है, उसके पास कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ है। वह अपना तो रास्ता बनाता ही है, अन्य अनेको का भी नेतृत्व करता है।

संकल्प शक्ति की दुर्बलता

आध्यात्मिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भी इस मनोबल की नितान्त आवश्यकता है। इसके अभाव मे कोई व्यक्ति न तो वासना पर नियन्त्रण कर सकता है। और न तृष्णा के बन्धनो से छूट सकता है। बार-बार वह किन्ही दुर्गुणो को त्यागने की इच्छा करता है, उनके परित्याग का सकल्प भी करता है पर आन्तरिक दुर्बलता के कारण वह बात निभती नही। मनोवेगो का उफान जब आता है, तो उस परित्याग के दुर्बल निश्चय को बात की बात मे उखाड़ फेकता है। जप, तप, ध्यान, भजन, पूजन आदि करने का कार्यक्रम बनता है। थोड़े दिनो मे वह जोश ठडा होते ही आलस आ घेरता है और बनाया हुआ कार्यक्रम छूट जाता है। कई बार इस प्रकार आत्मोन्नति के प्रयत्न असफल हो जाने पर फिर हिम्मत ही नहीं रहती। मनुष्य सोच लेता है कि यह सब हमारे वश का नही, हम से यह सब नही निभेगा। भगवान की इच्छा हमारा कल्याण करने की नही दीखती।

लौकिक और पारलौकिक पुरुषार्थों की सफलता का प्रमुख आधार मनोबल है। साहस और धैर्य के बिना किसी को इस ससार मे कोई कहने लायक सफलता नही मिली। इसलिए मानव-जीवन का पूरा लाभ उठाने के इच्छुक सदा से अपने मनोबल को बढाने का प्रयत्न करते रहे है। जिसे यह तत्त्व जितनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो गया उसका मनोरथ उतना ही सफल होता देखा गया है।

आन्तरिक सामर्थ्य की प्रधानता

यह इतना उपयोगी एव महत्वपूर्ण पदार्थ 'मनोबल' आखिर है क्या ? आइए इस पर विचार करे। मनोबल को शरीरबल या बुद्धिबल नही कहा जा सकता क्योकि देह के दुर्बल होते हुए भी कितने ही व्यक्तियो मे भारी मनोबल पाया जाता है। कुख्यात 'ताँतिया' डाकू बहुत दुबला था। उसका असली नाम कुछ और था पर शरीर रुई धुनने की ताँत-सा पतला देखकर लोगो ने उसका नाम 'ताँतिया' रख दिया था। इसी प्रकार शिक्षा या मस्तिष्क की उर्वरता से भी मनोबल का कोई सबध नहीं है। पजाब-केशरी रणजीतसिंह, बादशाह अकबर और सत

कबीर शिक्षा की दृष्टि से अशिक्षितो मे गिने जाते है पर उनका मनोबल प्रचंड था। तेज दिमाग वाले अनेक वकील अदालतो के आगे धरना दिये बैठे रहते है। उनमे से कितने हैं जो अपने मनोबल के आधार पर कोई महान पुरुषार्थ कर सकने मे सफल हुए हो ?

शरीर और मस्तिष्क के बल भी उपयोगी एवं आवश्यक है पर मनोबल उन दोनो मे भिन्न है। वस्तुतः इस महान तत्त्व की अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है, जिसका असली नाम 'प्राणतत्त्व' है। प्राण ही जीवन है। भीष्म पितामह के शरीर मे यह प्राण ही प्रचुर मात्रा मे था जिसके बल पर वे छः महीने शरशैय्या पर पड़े हुए अपना जीवन धारण किये रहे। जन्मजात रूप से यह प्राण किसी को कुछ अधिक मात्रा मे मिलता है, कोई इसे अपने प्रयत्नो से बढ़ाते है, पर जिनके पास भी इसकी समुचित मात्रा होगी, वह वीर पुरुषो की भाँति जियेगा। उसके प्रत्येक कार्य मे से पराक्रम और पुरुषार्थ छलक रहा होगा। साहस और धैर्य उसमे भरे होगे और निराशा एवं अधीरता उससे कोसो दूर रही होगी। उत्तेजना के अवसर आने पर भी वह आत्म-नियन्त्रण रख सका होगा, विपत्ति मे भी उसे मुसकराता हुआ देखा जा सकता है।

प्राणशक्ति की महिमा

रोगी मे यदि प्राणतत्व की समुचित मात्रा रही हो तो वह देर तक बीमारी से मुकाबला कर सकता है और असाध्य लगने वाले रोगो को भी परास्त कर सकता है। प्राणायाम द्वारा योगी लोग इसी प्राणतत्व का संग्रह करते है और इच्छित समय तक जीवित रह सकने की सिद्धि प्राप्त करते है। प्राण की प्रचुरता होने पर अपनी कितनी ही समस्याओ को हल कर लेना, दूसरों को प्रभावित करना, उन्हे आवश्यक शक्ति प्रदान कर सकना, दूसरो के शारीरिक, मानसिक रोगो का निवारण कर सकना कैसे सभव हो सकता है ? इसकी चर्चा हम अपनी 'प्राण चिकित्साविज्ञान', 'परकाया प्रवेश' और 'मानवीय विद्युत के चमत्कार' पुस्तको मे लिख चुके है। तनबल, धनबल, बुद्धिबल आदि से जितने प्रयोजन सिद्ध हो सकते है, प्राणबल के द्वारा उमसे अनेक गुनी महत्त्वपूर्ण सफलताऐं प्राप्त कर सकना संभव हो सकता है।

'प्राण' भी हवा, गर्मी (बिजली), आकाश (ईथर) आदि की तरह एक तत्त्व है, जो इस निखिल विश्व मे सव्याप्त ही रहता है। परमाणुओ से यह विश्व भरा पड़ा है परमाणु शक्ति से ही ससार का सारा व्यापार चल रहा है पर अपने प्रयोजनो के लिए अणुशक्ति को काम मे लेना एक विशेष विद्या है। जो उस विद्या को जानते हैं, वे ही अणुशक्ति चालित यन्त्रो का निर्माण एव अणुबमो का उत्पादन कर सकते है। प्राणविद्या के सम्बन्ध मे भी यही बात है। ऐटम जड़ है इसलिए उसकी शक्ति सीमित है। प्राण चेतन है इसलिए उसकी सामर्थ्य भी असीम है। प्राचीनकाल के अध्यात्म विज्ञानवेत्ता अणुशक्ति को तुच्छ और प्राणशक्ति को महान मानते थे, इसलिए उनने अध्यात्म विज्ञान मे प्राण विद्या को प्रमुख स्थान दिया था, प्राणायाम को आत्मोत्थान का प्रधान साधन माना था।

गायत्री की प्राण-विद्या

'गायत्री' प्राण-विद्या ही है। 'गाय' का अर्थ है प्राण, 'त्री' का अर्थ है त्राण करने वाली। प्राण शक्ति को मानव जीवन मे सुरक्षा एव अभिवृद्धि करने वाली विद्या गायत्री ही है। 'गायत्री' का देवता 'सविता' माना गया है। सविता का मोटा अर्थ सूर्य होता है, पर उसका वास्तविक अर्थ प्राण ही है। प्राण ही गायत्री का देवता है। इस रहस्य पर 'अखण्ड ज्योति' मे 'गायत्री का देवता सविता' लेख मे कुछ प्रकाश डाला भी जा चुका है। गायत्री की उच्चस्तरीय भूमिका मे प्रवेश करने वाला साधक अपने को जिन शक्तियो तथा सिद्धियो से ओत-प्रोत पाता है वस्तुतः वह प्राण शक्ति का ही प्रसाद एवं चमत्कार होता है।

आत्म-उत्कर्ष मार्ग के पथिको का कार्य प्राण साधना के बिना नही चल सकता। इस तत्व का संग्रह किये बिना उनका मनोबल दुर्बल रहेगा। संकल्प बीच मे ही टूट जायेगे और लक्ष्य की ओर चलते हुए थोड़ी ही दूर पर पैर लड़खड़ाने लगेगे। साधना का पहिया निर्जीव यंत्र की तरह घूमता तो रहेगा पर उसमे कुछ चमत्कार उत्पन्न न होगा। प्राण को मनोबल नही, आत्मबल का प्रतीक मानना चाहिए। हमारी प्राण-साधना जितनी ही प्रबल होगी, उतने ही मनोबल से, आत्मबल से हम सम्पन्न होते जायेगे।

आत्मबल की दिव्य प्रेरणा

पतन के मौसम मे गये-गुजरे ही बढ़ते है और उन्ही का विस्तार होते देखा जाता है, किन्तु उत्थान का समय आते ही उसके भी चिन्ह समय से पूर्व प्रकट होने लगते है। वह लक्षण है—प्रतिभाओं का अभिवर्धन और उनकी भावनाओ मे, गतिविधियो मे, उत्कर्षवादी तत्त्वों का अभिवर्धन।

अन्य जीव-जन्तुओ की भाँति मनुष्यो मे भी अनगढ़ों की, गये-गुजरो की संख्या बढ़ती रहती है। यही वह चिन्ह है, जिसके सहारे अगले दिनो अशुभ संभावनाओ का विस्तार होने जैसा अनुमान लगाया जा सकता है। अनीति का, अवाछनीयता का जब भी विस्तार हुआ है, तब उससे पूर्व यह पाया गया है कि घटिया व्यक्तित्व ही बढ़ने और क्रियाशील होने लगे है। इसी की प्रतिक्रिया परिस्थितियो मे विपन्नता बढ़ने के रूप मे देखी जाती है, किन्तु जब भावनाशील उत्कृष्टता की पक्षधर आशावादी व्यक्तियो की समर्थता और अभिवृद्धि होने लगे तो समझना चाहिए कि वे संभावनाएँ निकट आ गईं, जो अनौचित्य को गिराती और प्रगति के उत्साह भरे आधार खड़े करती है।

पिछलो दिनो जब भी सराहनीय क्रान्तियाँ हुई है, तब अनुकूलताएँ आकाश से नही बरसी, वरन् मात्र इतना हुआ है कि औचित्य की पक्षधर प्रतिभाएँ बढ़ी, सुविस्तृत हुईं और कार्यरत् दृष्टिगोचर हुई है। मनुष्य की सामर्थ्य असीम है। जब वह प्रकट होती है तो प्रतिभा कही जाती है। यदि वह उच्च स्तर की हो, तो समझना चाहिए कि उनका समुदाय छोटा अथवा स्वल्प साधन वाला होते हुए भी अपने मनोबल के आधार पर महत्त्वपूर्ण अनुकूलताएँ उपार्जित कर लेता है। साथियो की भी कमी नही रहती, अनुयायियो का अभाव भी नही देखा जाता। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके अन्तराल मे ऐसे तूफान उठते है, जो उच्चस्तरीय वातावरण बनाये बिना रह सकते ही नही। व्यक्तिगत वरिष्ठता के चरितार्थ होने पर ऐसा भी होते देखा गया है कि उस उत्साह मे असख्यो भाव-तरगित होने लगते है। यह समुदाय ही उन महाक्रान्तियो की भूमिका बनाता है, जिसे ऐतिहासिक माना और सराहनीय कहा जाता है। कुछ के अन्तराल मे उठी आदर्श उमगे अन्यान्यो को भी अपने रग मे रग लेती है और देखते-देखते उस दिशा निर्धारण पर चल पड़ने वाले असख्यो मनस्वी ऐसे कार्य कर गुजरते है, जिनके अनुकरण करने वाले आश्चर्यजनक सख्या मे दीख पड़ते है। अनुकूलता भी अपने अनुरूप अनेको साधको को एकत्रित कर लेते है।

जिन परिस्थितियो मे कोई बड़ा काम बन पड़ने की सभावना नही होती है, उनमे अनौचित्य को घटाने या मिटाने की सभावना इसलिए नही दीखती कि प्रतिकूलताओ का पलड़ा बहुत अधिक भारी दीखता है और टकराने पर जीतने के लक्षण कम ही दीख पड़ते है। हार की सभावना को देखते हुए उत्साह भी ठंडा पड जाता है। किन्तु होता कुछ ऐसा विलक्षण एव विपरीत है, जिसमे आशा और अपेक्षाओ का अनुकूल प्रवाह बहने लगता है और अप्रत्याशित सफलताओ के आधार न जाने कैसे और कहाँ से बन जाते है। क्रान्तियाँ प्राय अप्रत्याशित ही हुई है उनके लिए न जाने कहाँ से उत्साह उभरा, उफना कि सहयोगियो का दल दौड़ता चला आया और वे परिस्थितियाँ बन गईं जिनकी साधारण बुद्धि से कोई आशा या सभावना नही दीख पड़ती थी। हल्के प्रतीत होने वाले व्यक्ति भारी पड़ते है और इतने बड़े काम कर दिखाते है, जिनकी पूर्व कल्पना कदाचित ही किसी मे रही हो। असाधारण शक्ति आदर्शों को अपनाने से उभरती है। प्रतिकूलताओ को अनुकूलनाओ मे बदल देने वाले अवसर यो कभी-कभी सामान्य मनस्वियो को भी मिल जाते है, पर सर्वांगपूर्ण सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्ही मे उभरती है जिनमे आदर्शों के पराक्रम कर गुजरने के उल्लास की उमंगे अपने अन्तर मे ज्वारभाटो की तरह उठती-उमगती दीखती हो।

व्यवसाय-बुद्धि सदा हानि-लाभ का हिसाब लगाती है और वही करती है, जिसमे अनुकूलता दृष्टिगोचर होती है। सफलता की सभावना के अवसर असंदिग्ध रूप से नजर आते है, किन्तु आदर्शवादी पराक्रमों मे तात्कालिक घाटा ही दीख पड़ता है। व्यवसाय-बुद्धि ऐसे जोखिम भरे कदम उठाने से रोकती है। मात्र आदर्शों से प्रेरित साहस ही ऐसे समर्थन करता है, जिसमे आदर्शों की रक्षा मे घाटा स्पष्ट दीखता है, किन्तु अन्तःकरण वैसा कर गुजरने के बिना रुकता ही नहीं। बलिदानियो की परम्परा मात्र उन्ही के गले उतरती है, जिनके अन्तःकरण मे दैवी प्रयोजनो के लिए अपना सब कुछ, बहुत कुछ निछावर कर देने हेतु सकट उठाने के साथ-साथ उत्साह भरी उमगे ही हिलोरें लेती है और घाटे मे नफा तथा नफे मे घाटा देखती है। यह दैवी प्रेरण है। वह अपने साथ अकूत शक्ति लेकर कार्य क्षेत्र मे उतरती है और न जाने कहाँ-कहाँ से सम्बन्धी-सहयोगियो की प्राणवान मंडली बुलाकर साथ चलने के लिए विवश कर देती है। ऐसे प्रसगो मे देखा यह गया है कि सख्या मे कम और क्षमता की दृष्टि से साधारण दीखने वाले लोग भी साहस की दृष्टि से अतिशय बलिष्ठ सिद्ध होते है। यो आरम्भ मे ऐसे लोगो के बारे मे सामान्यतया यह धारणा नही बनती कि वे इतने बड़े शौर्य-बलिदान कर गुजरने के लिए उच्चस्तरीय साहस दिखा सकेगे।

शरीर-बल, साधन-बल, सगठन-बल आदि कितने ही लोगो मे होते है, पर वे उनका उपयोग भी साधारण या हेय स्तर के कार्यों मे ही कर पाते है। त्याग-बलिदान मे एक प्रकार घाटे की, जोखिम की स्थिति दीखती है, साथ ही वहाँ यह भी प्रतीत होता है कि घाटे के साथ ही असफलता भी मिल सकती है। इतने पर भी यदि आत्मबल उच्चस्तरीय साहस उभार दे तो यही समझना चाहिए कि आत्मबल के रूप मे दैवी प्रेरणा कुछ अद्भुत कर गुजरने की प्रेरणा भर रही है। नवयुग के अवतरण पर व्यक्ति मे ऐसी ही प्रेरणाओ का बाहुल्य उभरता है और असभव को सभव बना देता है।

महान परिवर्तन इसी प्रक्रिया द्वारा सम्पन्न होते रहे है व आगे भी महाकाल साधारण मनुष्यो को ही माध्यम बनाकर उनमे नवीन चेतना फूँककर जीवन्त प्राणवान के रूप मे उभारकर उनसे असभव प्रतीत होने वाले कार्य सम्पन्न कर दिखाएगा। मानव मे निहित यह सभावना ही युग परिवर्तन का आधार है।

संकल्प शक्ति और उसकी अद्भुत परिणतियाँ

जिल्दसाज से महान वैज्ञानिक

माइकल फैरिडे निर्धन के पुत्र होने के कारण प्रारम्भ मे एक जिल्दसाज के यहाँ बहुत थोडे वेतन पर नौकर थे। दुकान पर जिल्द बाँधने के लिए जो पुस्तकें आती, उनमें से वे विज्ञान की पुस्तके चुपचाप पढ़ा करते थे। यह उन्हे अच्छी लगती थी।

पढ़ते-पढ़ते विज्ञान जैसे विषय मे उसकी रुचि जाग्रत हो उठी। कुछ समझ मे आने लगा। शौक उत्तरोत्तर बढ़ता गया। तनिक भी समय फालतू मिलता कि फैरिडे किताबों मे डूब जाता। जब तक किताब पूरी न पढ़ लेता, उसे न छोड़ता।

अब उसे ज्ञान के प्रति सच्ची लगन लग गयी थी। विज्ञान को समझने की उत्कृष्ट इच्छा पैदा हो गई पर सुविधाएँ और साधनों की बड़ी कमी थी। बड़ा गरीब था।

एक दिन रायल कैमिकल सोसायटी मे घोषणा हुई कि सर हैम्फ्री डैवी का विज्ञान सम्बन्धी भाषण होने वाला है। इस विज्ञप्ति को सुनकर बालक फैरिडे के मन मे उसे सुनने की बड़ी इच्छा हुई। इस वैज्ञानिक की बड़ी प्रशसा सुनी थी। मालिक जिल्दसाज से आज्ञा लेकर वह उस भाषण को सुनने गया। साथ मे नोट करने के लिए कागज और पैन्सिल भी लेता गया।

उसे हैम्फ्री डैवी का भाषण इतना महत्वपूर्ण और रोचक लगा कि उसने उसे जल्दी-जल्दी समूचा ही लिख डाला। फिर सुवाच्य अक्षरों में लिखकर उसे हैम्फ्री के पास दिखाने गया। उन्होंने उसे पढ़ा तो चकित रह गये। इतनी जल्दी उस महत्वपूर्ण भाषण को लिख डालने वाला अवश्य ही उस विषय का अच्छा ज्ञाता होना चाहिए।

हैम्फ्री डैवी ने आश्चर्य से पूछा—"माइकिल फैरिडे हम तुम्हारी लगन और विज्ञान के प्रति असीम उत्साह से बड़े प्रसन्न है। तुम आखिर हमसे क्या चाहते हो ?"

माइकिल फैरिडे उनके साथ रहना और विज्ञान का गहरा अध्ययन करना चाहता था। वह किसी समय अध्यापक की शागिर्दी करना चाहता था। इस अवसर से लाभ उठाने की दृष्टि से उसने तुरन्त कहा—"मुझे आप अपनी प्रयोगशाला मे कोई छोटा काम दे दीजिए। मै जिन्दगी गुजारना चाहता हूँ।"

हैम्फ्री डैवी ने उसकी सेवाएँ स्वीकार कर ली। अब वह उनकी प्रयोगशाला मे तन्मयता से कार्य करता, नई-नई विज्ञान की पुस्तके पढ़ता, तरह-तरह से अपना ज्ञान बढ़ाता और हैम्फ्री डैवी के भाषणो को सुनता रहता। जीवन में अध्ययन की जो सुविधा पहले कभी न मिलती थी, वह उसे अब मिल रही थी। अध्ययन और योग्यताएँ बढ़ाने का कार्य ऐसा है कि कभी भी किया जा सकता है। कुछ बड़ी उम्र मे ही, माइकल फैरिडे ने तन्मयता और बड़ी लगन से पढ़ना शुरू कर दिया। उत्कृष्ट इच्छा के कारण उसकी योग्यताएँ निरन्तर बढ़ती ही गयी। बुद्धि प्रखर होने लगी।

एक दिन उसकी जिन्दगी ने नई करवट ली। रात्रि का समय था। अपनी प्रयोगशाला मे हैम्फ्री डैवी कोई महत्वपूर्ण घोल (सौल्यूशन) तैयार कर रहे थे। दैवयोग से उन्हे किसी आवश्यक कार्य से प्रयोगशाला से बाहर आना पड़ा। उन्होंने फैरिडे को बुलाया और बोले, "मुझे एक जरूरी काम से अभी बाहर जाना है। इस सौल्यूशन को हिलाना बेहद् जरूरी है। इसमे मेरा एक नया प्रयोग चल रहा है। यदि तनिक भी रुक गया, तो सारा श्रम नष्ट हो जायेगा। तुम इसे इसी प्रकार हिलाते रहना, मै जल्दी लौटता हूँ। लो सम्हालो काम।"

माइकल फैरिडे ने वह कार्य प्रारम्भ कर दिया। लेकिन न जाने क्या हुआ कि एक घण्टे के बाद भी डैवी वापिस न लौटे। वह प्रतीक्षा करता रहा।

उसका कार्य फिर भी जारी रहा। अब दो घण्टे बीत चुके थे। माइकल फैरिडे के हाथ घोल हिला रहे थे, नेत्रो मे नीद आ रही थी। वह नीद को भगा रहा था और समय बीता।

यहाँ तक कि सारी रात ही बाट देखते-देखते बीत गयी। प्रातःकालीन रंगीन रश्मियाँ क्षितिज पर हँसने लगी।

सुबह जब हैम्फ्री डैवी आये तो उन्होने देखा माइकल फैरिडे अब भी तन्मयता और लगन से उनका घोल पूर्ववत् हिला रहा था। वहाँ तनिक शिकायत न थी।

वह लड़के की परिश्रमशीलता और तन्मयता पर दंग रह गये और विज्ञान के प्रति इतनी लगन, इतनी असीम एकाग्रता। अपने शरीर तक की कोई परवाह नही। नीद की एक झपकी तक नही। जरूर इस लड़के मे बड़ा

आदमी बनने के गुण है। वही श्रम, वही उद्योग,
आज्ञाकारिता, लगन और उत्साह। क्यो न लड़के को ऊँचा
उठने का मौका दिया जाय। उनका वात्सल्य जैसे जाग
उठा।

वे फैरिडे से बोले, "तुम्हे विज्ञान के प्रति सच्चा
और गहरा लगाव है। पूर्ण निष्ठा है। यह लगन और
उत्साह तुम्हारी आदत का एक अग है। ऐसा कोई कार्य
नही जो उत्कृष्ट इच्छा और उद्योग से पूर्ण न हो सकता
हो। उत्साहपूर्वक मेहनत से तुम विज्ञान मे बहुत महत्वपूर्ण
कार्य कर सकते हो। दृढ सकल्प से तुम जरूर ऊँचे
उठोगे । मुझसे थोड़ा-थोड़ा विज्ञान पढा करो मैं तुम्हे
उच्चकोटि का वैज्ञानिक देखना चाहता हूँ।" अन्धा

फैरिडे को जैसे मन की मुराद ही मिल गई। अन्धा
क्या माँगे ? दो नयन।

उसने नियमित रूप से बड़ी लगन और उत्साह से
व्यवस्थित रूप मे विज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।
उसने अपनी सारी ताकते उसी मे लगायी और आश्चर्य
जनक योग्यता उपार्जित की। अन्त मे उसके परिश्रम से
बड़े बहुमूल्य परिणाम निकले।

फैरिडे ने विद्युत परिचालित डाइनमा, चुम्बक से
बिजली पैदा होने के सिद्धान्त तथा इलेक्ट्रोनिक्स के नियम
मालूम किये। रसायन शास्त्र तथा भौतिक शास्त्र दोनो मे
ही फैरिडे का नाम अति आदर के साथ लिया जाता है।

एक जिल्दसाज से उच्चतम वैज्ञानिक ? उत्साहपूर्वक
कार्य कभी भी प्रारम्भ किया जा सकता है। वह सदैव
ऊँचे फल पाता है।

गुप्त मन की विराट शक्ति

एक व्यक्ति था, जो अपनी पत्नी द्वारा "महामूर्ख"
कहा गया, बुरी तरह तिरस्कृत और लाछित हुआ। बात
उसके गुप्त मन मे लग गई। उसे बड़ा बुरा लगा। उसने
पत्नी को छोड़ा और बड़ी आयु मे विद्या-अध्ययन मे लग
गया। दीर्घकाल के अभ्यास और अटल संकल्प के बल
से वह सस्कृत का महाकवि कालिदास बना। समग्र भारत
उसकी प्रतिभा और विद्या से चमत्कृत हो उठा। उसके
गुप्त मन मे काव्यशक्ति का वृहत् भण्डार छिपा हुआ था।

एक डाकू था, जिसकी जीविका का उपार्जन
मुसाफिरो को लूटने और हत्याएँ करने से चलता था। एक
दिन एक मुनि उसकी पकड़ मे आ गये। उसने उन्हे भी
मारना चाहा पर उन्होने विनीत भाव से उससे कहा, जिन
व्यक्तियों के पालने के लिए तुम इतने व्यक्तियो का पाप
अपने ऊपर ले रहे हो, क्या वे तुम्हारे इस पाप मे
हिस्सेदार बनेगे ? जाओ और अपने परिवार वालो से
पूछें।" डाकू चला गया। उसने यह बात पूछी लेकिन
उनका उत्तर सुनते ही उसका चेहरा उतर गया। उनका
उत्तर था, "हम तुम्हारे आश्रित है। तुम्हारा कार्य हमारे
लिए भोजन की व्यवस्था करना है। वह पाप से होती है
या पुण्य से इससे हमे क्या प्रयोजन ?" उसे ज्ञान हुआ,
वह बदलकर महर्षि वाल्मीकि बन गया। उसकी गुप्त
शक्तियाँ यकायक खुल गईं। उन्होंने संसार को अपनी
बुद्धि से चमत्कृत कर दिया।

इसी प्रकार न जाने कितने महान पुरूष हुए है,
जिन्हे किसी मानसिक आघात या आकस्मिक झटके से
अपने गुप्त मन मे सोई पड़ी गुप्त शक्तियो का ज्ञान
हुआ, उनके जीवन का पृष्ठ बदला और वे अपने गुणो
से संसार को चमत्कृत, विस्मित कर गये।

आप मे भी आसाधारण गुप्त शक्तियां—मन, शरीर,
आत्मा की असख्य शक्तियो का भण्डार छिपा हुआ है।
खेद है कि आप अपने को साधारण प्राणी मानते है।
आप कभी भी ऐसा विचार नही करते कि हम मे दिव्य
और आश्चर्यमयी शक्तियाँ छिपी पड़ी होंगी। सच मानिये,
आप शक्तियां के वृहत् भण्डार है।

घोड़ां को यदि शारीरिक शक्ति का ज्ञान हो जाये, तो वे
हमारे वाहन न रहें। हाथी अपनी शारीरिक ताकतो से विश्व को
अपने वश में ही कर लें। शेर, चीता, रीछ, भैसे, बैल, खच्चर
इत्यादि पशुओं को अपनी शक्तियां का ज्ञान हो जाय, तो वे
हम पर राज्य ही करने लगे।

ये पशु हमारे लिए इतनी तेजी से बड़े-बड़े बोझ
ढोते है, भारी काम करते है, जो मनुष्य नही कर सकता।
यदि वे सब अपनी शक्तियों को मनुष्य के विरुद्ध लगाये
तो कदाचित वे हमे अपना वाहन बना सकते है। हमारे
ऊपर सवारी कर सकते है।

जिस प्रकार ऐसे उपयोगी प्राणियो को अपनी शक्ति
का ज्ञान नहीं है, ऐसे आपको भी अपनी शक्तियो का
पता नही है। हम अशक्त हो, अन्धेरे मे भटक रहे है।
हम रास्ता ढूँढ रहे और पंगु बने हुए है।

यदि हमे अपनी शक्तियो का ज्ञान हो जाय, तो हमे
दु:ख, भय, चिन्ता, आपत्ति, शोक, द्वेष आदि का बिल्कुल भी
भान न हो, ये दुष्ट मनोविकार हमारा कभी भी कुछ न बिगाड़
सके। हमारे स्वास्थ्य, मन और जीवन पर इनका कोई भी बुरा
प्रभाव न हो। खेद है कि हम इन दुष्टो के आसानी से वश मे
आ जाते है और अपना सर्वनाश कर लेते है। हम अपना भाग्य
बुरा समझ लेते है, संसार फीका-फीका मालूम होने लगता है।
जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है।

खेद है कि कभी तो हम ईश्वर पर भरोसा करते
है, कभी प्रारब्ध को मानने लगते है फिर कभी "पुरुषार्थ,
पुरुषार्थ" कहकर गला फाड़ने लगते हैं। हम कभी स्थिर
नही रहते। हमारा मन सदैव इसी प्रकार डाँवाडोल रहता
है। हम पूजा-पाठ भी करते है, पर जब अल्पकालिक और
अस्थिर मन से करने के कारण धन-दौलत या सिद्धि प्राप्त
नही होती, तो हमारा विश्वास सब पर से उठ जाता है।
हम इन्हे ढोग मानने लगते है।

वास्तविक कमजोरी यह है कि अभी हमे स्वय अपने ऊपर विश्वास नही है। हम दूसरो को धनवान और शान-शौकत से रहते देख उन्हे सुखी समझते है, पर यदि हम उन्हे अन्दर से देखे तो हमारे विचार बदल जायँ।

आप पूछेगे कि लोगो के पास बहुत-सा धन है, सुख है, इतना वैभव-बड़प्पन और अधिकार है फिर भी दुःख कैसे ? उन पर ईश्वर की बड़ी कृपा है, पर हम पर प्रकोप या ईश्वर की अकृपा कैसे ? हमारे पास ऐश्वर्य के साधन नही है और उनके बिना हम दुःखी है और उनके पास सब साधन है इसलिए वे सुखी है।

पर यह आपका केवल भ्रम है। ईश्वर का इसमे कोई पक्षपात नहीं है। ईश्वरीय शक्तियाँ, विपुल ताकतो, मानसिक, शारीरिक, आत्मिक सम्पदाओ का जो अंश उनमे है, वही वास्तव मे आप मे भी मौजूद है। यह याद रखिए कि सतत् परिश्रम और एक लक्ष्य सिद्धि से ही भाग्य बनता है। जनता की सतत इच्छा साधना से देश उठता है। इच्छा एक प्रबल शक्ति है, जो अपना मार्ग खोज निकालती है। मूर्खो का प्रारब्ध एक बहाना मात्र है। वास्तव मे प्रारब्ध या तकदीर कोई वस्तु नही है।

जहाँ कार्य-कारण का अटूट सम्बन्ध है, वहाँ प्रारब्ध और तकदीर मानना मूर्खता के अतिरिक्त क्या है ? जिसे विचार करने का मार्ग मालूम नहीं है, जो प्रत्येक कार्य के पीछे काम करने वाले कारण को नही जानता है और जीवन के तूफानो से सदा डाँवाडोल रहता है, वही अपने कल्पित भूत-प्रेतो और बुरे ग्रहो का दास बना रहता है।

संकल्प ने परिस्थितियों को परास्त किया

अँग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट ने किताबे लिखकर स्वयं साझीदार के साथ उन्हे छापने का काम चालू कर दिया। प्रेस भी चलने लगा।

दुर्भाग्य से उसका साथी ईमानदार और लगन वाला न था। दोनो मे ही व्यापारिक चातुर्य की कमी थी। नतीजा यह हुआ कि प्रेस घाटे मे चलने लगा। अनेक वर्ष तक उसके लाभ मे चलने की आशाएँ लगाते रहे। कर्ज दिन दूना, तो रात चौगुना बढ़ता है। प्रेस पर ऋण का बोझ बढ़ गया। साझीदार भाग खड़ा हुआ और सारा ऋण वाल्टर स्काट के ऊपर आ गया।

दिन-रात पर्वत जैसे कर्ज का बोझ सोचते-विचारते कोई साधारण मनोबल का व्यक्ति होता, तो सम्भव था पागल हो जाता अथवा मानसिक भार से परेशान होकर आत्म-हत्या ही कर बैठता। उसका मानसिक सन्तुलन समाप्त हो जाता।

पर वाल्टर स्काट विषम परिस्थितियो से हार मानने वाले लेखक न थे। वे जीवन युद्ध के वीर सिपाही थे।

उन्होने ऋण उतारने के लिए लेखन व्यवसाय से सम्बन्धित कई कार्य प्रारम्भ किये। कभी कोई मासिक-पत्र प्रकाशित किया, कभी दूसरो की पुस्तके छापी, अखबार निकाले, असंख्य उद्योग किये। वे विषम परिस्थिति से निकलने के निरन्तर कोशिश करते ही रहे। आशा और उत्साह बनाये रहे।

आखिर एक गोली निशाने पर बैठ ही गई। लेखन के प्रयोग मे ऐतिहासिक उपन्यासो के क्षेत्र मे यकायक उनका नाम चमक उठा। वे जमकर महीनो, वर्षों तक लिखते ही रहे, उनके पाठक बार-बार उनसे ऐतिहासिक उपन्यासो की माँग करते ही रहे। अन्त मे उनकी लेखन शैली इतनी परिष्कृत हो गई कि उनका यह व्यवसाय अच्छे लाभ मे चल निकला। उन्होने अनेक सुन्दर उपन्यास लिखे जिनका खूब स्वागत हुआ और उनकी आय से कर्ज का भुगतान हुआ।

अपनी लेखनी के बल पर स्काट ने अपने ऊपर चढ़े लाखो रुपयो के कर्ज को उतार डाला। यही नही और भी असीमित धन उपार्जित किया। सदा के लिए उनकी गरीबी गई और स्थायी यश-समृद्धि की प्राप्ति हुई। ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र मे वे अमर हो गये।

वाल्टर स्काट की सफलता का रहस्य क्या था ?

कभी भी विकट परिस्थिति से हार न मानो। बल्कि जितनी भी कठिन परिस्थिति हो, उतना ही अधिक धैर्य और उत्साह बाहर निकालो। तरह-तरह की कोशिशें करो, कई-कई जगह काम करो। कही न कही से सफलता प्राप्त हो ही जायेगी। संकल्प की मजबूती, धैर्य और साहस से आदमी जीतता है।

उन्होंने कभी असफलता मे हार नही मानी और निराशा को पास नही फटकने दिया। जिसके पास कभी भी जीतने की आशा है, काम मे उत्साह है और मन मे धैर्य है, उसका संकल्प एक न एक दिन निःसन्देह सफल होकर रहता है।

नाविक लड़के का उत्साह

दूसरो को देखते समय भी प्रधानता हमारे अपने ही दृष्टिकोण की हुआ करती है। हताश व्यक्ति को चारों ओर अर्थहीनता, नीरसता ही दिखाई पड़ती है। संकल्पहीन व्यक्ति सदैव दूसरो की विफलता देखते और स्मरण करते रहते है तथा भयभीत–आशंकित बने रहकर कभी कोई महत्वपूर्ण काम शुरू ही नही कर पाते। यह निषेधात्मकता अस्वाभाविक है। इसे मनोविकृति ही कहा जा सकता है। दूसरो को मरते देखकर स्वयं भी मृत्यु भी निश्चित मानना एक बात है और उस मृत्यु से भयभीत रहकर जीने से ही कतराने लगना भिन्न बात है। निराश दृष्टिकोण पाल लिया जाय, तब तो किसी भी काम में हाथ लगाते न बनेगा।

एक नदी में मल्लाह का लड़का नाव चला रहा था। नदी में काफी पानी था और नाव गहरे में थी. सहायता के लिए कोई पास न था। एक सौदागर दूर से देर तक उस नाविक लड़के को देखता रहा। लड़का बराबर पतवार चलाता रहा। हिम्मत से आगे बढ़ता ही गया। अन्त में नाव किनारे पर आ लगी। सौदागर उससे बातें करने का इच्छुक था।

उसने पूछा—"क्यों जी, तुम्हारे बाबा की मृत्यु कैसे हुई ?"

लड़का आश्चर्य में पड़ गया। अजीब-सा सवाल था वह। इस तरह के सवाल के लिए कदापि तैयार न था।

बाल-नाविक ने दुःख भरे स्वर में उत्तर दिया—"नाव चलाते समय दुर्भाग्य से तूफान आ गया। दुर्भाग्य से लहरों का पानी बहुत ऊँचा उठ आया। यकायक नाव पानी में पलट गई और इसी नदी में डूबकर मेरे बाबा की मृत्यु हो गई।" —लड़के की आँखें गीली हो गयी। लड़के का उत्तर सुनकर सौदागर विस्मय में पड़ गया। वह कुछ देर तक चुप रहा, फिर आगे पूछा—

"और तुम्हारे पिताजी ?"

अभी सवाल पूरा भी न हुआ था कि बालक ने छूटते ही उसी करुण स्वर में जवाब दिया—"उनकी भी मृत्यु इसी तरह नदी में तूफान में हुई थी। दोनों एक ही तरह मरे।"

अब सौदागर दुःख से उद्विग्न था। मन में परेशानी दबाये था। कुछ देर तक चुप रहकर बोला—

"मेरे नन्हे दोस्त ? जब तुम्हारे बाबा और तुम्हारे पिता दोनों ही नाव चलाने के इस खतरनाक काम में मौत के शिकार हुए हैं तो तुम जान-बूझकर यह खतरनाक काम क्यों कर रहे हो ? मौत के मुँह में क्यों खेल रहे हो ?"

बालक कुछ देर तक चुप रहा। उसने अपने आँसू पोंछे, कुछ सोचता रहा। क्या करे, अपने से बड़े को क्या उत्तर दे ? उसे कोई जवाब नहीं सूझ रहा था। फिर बोला—"महाशय माफ कीजिए, मैं भी अब आप से दो-एक सवाल पूछ लूँ ?"

सौदागर—"हाँ, हाँ ! शौक से पूछो !"

नाविक बालक ने कुछ सकुचाते हुए पूछा—"महाशयजी ! क्या आप बता सकते हैं कि आपके बाबा और पिताजी की मृत्यु कैसे हुई थी ?"

प्रश्न सुनकर सौदागर विस्मित हुआ। नाविक बालक अपनी उम्र से ऊँचा सवाल कर बैठा था। उस पर अपनी बुद्धिमत्ता की छाप डालनी थी। इसलिए सौदागर ने उत्तर दिया—

"उन दोनों को तो बीमारी हुई थी और वे घर पर चारपाई पर पड़े-पड़े ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे।"

"तो फिर आप उस घर में क्यों रहते हैं, जिसमें उन दोनों की मृत्यु हुई थी ?"

इस प्रश्न का सौदागर के पास कोई जवाब नहीं था।

मल्लाह के पुत्र ने अपनी बात जारी रखते हुए आगे कहा—"श्रीमान्, यहाँ या वहाँ, मृत्यु तो सब जगह आती ही है. फिर हम जिन्दा हैं, तब तक हमें आशा और उत्साह मन में रखकर सुन्दर से सुन्दर भविष्य की कल्पना करनी चाहिए। अभी से ही परेशानी में पड़ने की बात ही क्यों सोचें ? जैसी अच्छी या बुरी स्थिति आगे आयेगी, साहस और उत्साह से उसका सामना किया जायगा, अभी तो आशा लगाकर उन्नति की बात ही सोचें। साहस से आगे बढ़ें।"

यह उत्तर सुनकर सौदागर चकित हो गया। कैसा विलक्षण था उस बालक का उत्साह ! कैसी रंगीन और सशक्त थी उसकी आशा !

उज्ज्वल भविष्य की आशा और लक्ष्य प्राप्ति में सतत प्रयत्न हेतु दृढ़ संकल्प सफलता की सीढ़ियाँ हैं।

उन्नति और विकास का मार्ग कठिनाइयों के कंकरीले पथ से ही आता है। जो व्यक्ति जीवन में कठिनाइयों से घबराता है, उसे उन्नति की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्नति का अर्थ ही ऊँचाई है, जिस पर चढ़ने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है। समतल पर चलने की अपेक्षा कहीं अधिक पसीना बहाना पड़ता है। पतन की ओर चलने में मनुष्य को न तो कोई विशेष श्रम करना पड़ता है और न उसे अधिक विलम्ब लगता है। यदि दो आदमियों में से एक को निम्नगामी और दूसरे को ऊर्ध्वगामी मार्ग पर चलाया जाये तो जहाँ एक निश्चित दूरी तक पहुँचने के लिए निम्नगामी को एक दिन लगेगा और निम्नगामी को कोई परिश्रम न करना होगा तथा उर्ध्वगामी पसीना-पसीना हो जायेगा।

उन्नत मार्ग में कठिनाइयाँ स्वाभाविक हैं। यदि ऐसा न होता तो संसार में सभी महान बन सकते, कोई साधारण, सामान्य अथवा पतित होता ही नहीं। कठिनाइयों पर विजय पाने का संकल्प जाग्रत रहे, तो वह पूरा होगा ही।

कैसा बीज, कैसे फल

खेत में जिस प्रकार का बीज बोया जायेगा उसी तरह के पौधे उगेंगे और वैसी ही फसल उगेगी। किसान जो फसल उगाना चाहता है उसके लिए उसी प्रकार के बीज की व्यवस्था करता है। साथ ही यह भी ध्यान रखता है कि वह बीज सड़ा, घुना, छोटा, पुराना, कमजोर न हो।

जीवन एक खेत है। उसमे प्रगति और सफलता की फसल उगाई जानी है तो ऐसे विचारो का मन.क्षेत्र मे आरोपण करना चाहिए, जो प्रगति के लिए आवश्यक शक्ति का उद्भव कर सके। साहस और पुरुषार्थ के बिना किसी का आगे बढ सकना सम्भव नही। आलस्य और अनियमितता का अवरोध रहते कोई व्यक्ति किसी प्रयोजन मे सफल नही हो सकता। इन दुर्बलताओ को हटाने के लिए खेत के खर-पतवार उखाड़ने जोतने की तरह हमे किसान का अनुकरण करना होगा।

जीवन का स्वरूप सकल्प बीज की लहराती हुई हरी-भरी फसल है। आशा है, अन्न की राशि। मन.क्षेत्र मे किन विचारो को स्थान मिले इसके लिए अत्यधिक सतर्कता की आवश्यकता है। कुछ भी--कैसा ही-बीज बो देने से कुछ भी उग सकता है और उपलब्धि कैसी भी हो सकती है ? बीज की ओर से उपेक्षा बरतने वाला किसान अभीष्ट फसल काटने मे सफल मनोरथ कैसे होगा ?

प्रगति के लिए प्रयास बहुत किये जाते है पर यह भुला दिया जाता है कि निर्धारित दिशा मे प्रेरणा देने वाले और पथ-प्रशस्त करने वाले समर्थ विचारो की अभीष्ट मात्रा संकलित कर ली गई या नही ?

वैयक्तिक दोष-दुर्गुणो की कंटीली झाड़ियाँ प्रगति के पथ को अवरुद्ध और दुरूह बनाती है। यह दुर्गुण और कुछ नही उन विचारो के प्रतीक प्रतिनिधि है, जिन्हे बहुत समय से—ज्ञात या अविज्ञात रूप मे मन.क्षेत्र मे सँजोये जमाये रखा गया है। सर्प के काटने पर उसका विष एक बूँद ही रक्त मे प्रवेश करता है। पर वह कुछ ही देर मे समस्त शरीर मे फैल जाता है और अपना असर दिखाता है। कुविचार सर्प-दंश की तरह है—वे ही अपना विस्तार करके दोष-दुर्गुणो के रूप मे फैल जाते है। कहने की आवश्यकता नही कि आंतरिक शत्रु-मनोविकार--बाहर के शस्त्रधारी शत्रुओं की अपेक्षा हजार गुने अधिक बलिष्ठ और घातक होते है। दूर रहने वाले बाहरी शत्रुओ से बचने और उन्हे निरस्त करने के अनेक उपाय हो सकते है पर अहर्निश सामने रहने वाले इन घर के भेदियो को क्या कहा जाय ? आस्तीन के साँप की तरह वे सदा विघातक ही सिद्ध होते है।

क्षतिग्रस्त दुर्बल और मरणासन्न शरीर वस्तुत उस रोग के विषाणुओ का ही खाया हुआ होता है। घुन का कीड़ा चुपचाप लगा रहता है और विशाल महतीर को खोखला कर देता है। कुविचार विषाणुओ से अधिक घातक और घुन से अधिक अदृश्य होते है। वे भीतर जमकर बैठ जाते है और गुण, कर्म, स्वभाव की सारी सम्पदा को खोखली और विषाक्त बना देते है।

ओछे स्वभाव के आदर्शरहित और लक्ष्यविहीन व्यक्ति जीवन की लाश ढोते रहते है। उनके मनोरथ सफल हो ही नही सकते क्योंकि प्रगति के लिए-प्रखर व्यक्तित्व की आवश्यकता है।

सफल जीवन जीने की आकांक्षा यदि साकार करनी हो तो पहला कदम आत्म-निरीक्षण मे उठाया जाना चाहिए। अपने विचारो, मान्यताओ और अभिमान की समीक्षा करनी चाहिए और उनमे जितने भी अवाछनीय तत्व हो उन्हे उन्मूलन करने के लिए संकल्पपूर्वक जुट जाना चाहिए। सकल्प शक्ति की साधना और आत्म-निरीक्षण से व्यक्तित्व को इच्छित ऊँचाई तक पहुँचाया जा सकता है।

प्रबल संकल्प शक्ति की प्रचण्ड प्रतिक्रियाएँ

नदी जब समुद्र मे मिलने की प्रबल आकांक्षा से अभियान करती है तो उसकी गति रोकने वाले अवरोधो को परास्त ही होना पड़ता है। समुद्र से मिलने की प्रबल आकाक्षा, आवश्यकतानुसार उसे विरोधी चट्टानो को कभी काटने पर विवश करती है तो कभी इधर-उधर घूमकर रास्ता निकाल लेने की प्रेरणा देती है। उसकी प्रबल इच्छा उसे अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए कभी टक्कर लेने, कभी निम्न होने, कभी रास्ता बदलने और कभी मन्द मंथर हो जाने का ज्ञान देती है। उसका वाछित लक्ष्य सागर से मिलन होता है और वह उसे किसी न किसी प्रकार सघर्ष अथवा सामजस्यपूर्ण नीति से प्राप्त ही कर लेती है। वह किन्ही कारणो से हारकर निराश अथवा निरुत्साह होकर गतिहीन नही होती। इसलिए कि उसकी इच्छाशक्ति मे सच्चाई और प्रबलता होती है।

नदी की तरह ही वह मनुष्य भी अपनी सफलता के लिए मार्ग निकाल ही लेता है, जिसकी इच्छा शक्ति दृढ और बलवती होती है। उसकी इच्छा स्वयं ही उसका मार्ग प्रदर्शन करती चलती है। सफलता का मूल मनुष्य की इच्छाशक्ति मे सन्निहित रहता है। मानवीय शक्तियो मे उसकी इच्छाशक्ति सबसे प्रबल और प्रमुख होती है। जिन मनुष्यो की इच्छाशक्ति निर्बल होती है, वे साधन सम्पन्न होने पर भी कोई उल्लेखनीय सफलता नही प्राप्त कर पाते। निर्बल इच्छाशक्ति वाले लोग मार्ग मे आई एक साधारण-सी कठिनाई अथवा सामान्य विरोध को देखकर हिम्मत खो बैठते है।

मनुष्य की शारीरिक शक्ति का अपना महत्व है। लेकिन उसकी सचालिका शक्ति इच्छाशक्ति ही होती है। यदि इच्छाशक्ति का अभाव हो जाय तो मनुष्य की शारीरिक शक्ति भी कुण्ठित हो जायेगी। शरीर पर इच्छा शक्ति का ही शासन होता है। शरीर क्या है ? इन्द्रियो का सगठित समूह। इन्द्रियो का कार्य ही शरीर का कार्य होता है। इन्द्रियाँ इच्छाशक्ति से ही कार्य की प्रेरणा पाती है। कोई कितना ही आवश्यक काम क्यो न हो, इन्द्रियाँ

सक्षम और प्रस्तुत क्यो न हो, जब तक इच्छा शक्ति की प्रेरणा न होगी, वे बँधी बैठी रहेगी, किसी काम मे हाथ न लगायेगी। जब इच्छा का स्फुरण होगा, उसकी प्रेरणा होगी तभी इन्द्रियाँ कार्यरत हो जायेगी। शरीर इन्द्रियो के और इन्द्रियाँ इच्छाशक्ति के अधीन होती है। इच्छाशक्ति की जागरूकता के बिना मनुष्य कोई भी कार्य करने मे सक्षम नही हो सकता।

संसार के छोटे-बड़े सभी कार्य शक्ति द्वारा ही पूरे होते है। शक्ति के बिना मनुष्य एक पग भी आगे नही बढ़ सकता। श्वाँस लेने की सामान्य प्रक्रिया से लेकर पहाड़ काटने तक के कठिन काम शक्ति द्वारा ही सम्पादित किये जाते है। जब तक शक्ति है, तब तक कर्म है, तब तक जीवन है। शक्ति के समाप्त होते ही क्रिया स्थगित हो जाती और क्रिया के स्थगित होते ही जीवन समाप्त हो जाता है। अपाहिज, असाध्य, अकर्मण्य आदि सब, जिनकी क्रियाएँ स्थगित हो गई होती है, जो किसी मतलब और मसरफ के नही रहते वे एक बार प्राण भले ही ढो रहे हो पर होते मृतक समान ही है।

किन्तु मनुष्य की वह वास्तविक शक्ति है क्या ? वह वास्तविक शक्ति मनुष्य की इच्छाशक्ति ही है क्योकि यही जीवन के चिन्ह-कर्म की विधायिका तथा प्रेरिका होती है। जहाँ इच्छा नही वहाँ कर्म नही-और जहाँ इच्छा है वहाँ कर्मों का होना अनिवार्य है। इच्छा की प्रेरणा से ही मनुष्य कर्मो मे प्रवृत्त होता है। यदि उसमे इच्छा की स्फुरणा नही उसकी प्रेरणा न हो तो मनुष्य भी जड़ बनकर पड़ा रहे। आदिकाल से मनुष्य अब तक जो विकास और उन्नति करता आया है, वह सब इच्छाशक्ति का ही चमत्कार है। मनुष्य मे यदि इच्छाशक्ति की विशेषता न होती तो वह अब तक भी दो हाथ-पैरो वाला वनमानुष बना, अन्य पशुओ की तरह ही जीवन बिताता, गुफा-कन्दराओ मे पड़ा होता। इस प्रकार आश्चर्यजनक साधनो के साथ शान से देवताओ से एक पद पूर्व न रह रहा होता। तथापि जिनमे इच्छाशक्ति का प्राबल्य होता है वे अब भी अपनी साधना और तपश्चर्या के बल पर देवताओ के समकक्ष होना तो क्या परमात्मा के समकक्ष हो जाते है। जीवन की समग्र उन्नतियाँ और सारी सफलताएँ इच्छा शक्ति के ही अधीन होती है।

नव सृजन, नव चेतना, नव निर्माण की जो भी क्रान्तियाँ ससार मे हुई है अथवा होती है उनका आधार मनुष्य की प्रबल इच्छाशक्ति ही होती है। संसार मे अब तक जो भी महान और उल्लेखनीय काम हुए है, उनको उन्ही महामानवो ने सम्पादित किया है, जिनकी इच्छाशक्ति प्रबल और प्रखर रही है। निर्बल इच्छाशक्ति वाले लोग संसार मे अब तक न कोई उल्लेखनीय कार्य कर सके है और न आगे ही कर सकेगे। निर्बल इच्छा शक्ति वाले व्यक्तियो के मन मे महानता, सफलता और उन्नति के विरोधी भाव, जैसे—सन्देह, आशका, भय और अविश्वास आदि भरे रहते है। उसे अपने कुविचारो, कुकल्पनाओ और कुप्रवृत्तियो के जाल से निकलने का अवकाश ही नही मिलता जिससे वह श्रेय-पथ पर अग्रसर हो सके। वह स्वभावत· अस्थिर विचार, अस्थिर उद्देश्य और अस्थिर निश्चय वाला होता है। एक काम को तब तक करते रहने का धैर्य उसमे नहीं होता जब तक कि उसका अन्तिम निष्कर्ष न निकल आये। वह जल्दी ही एक काम को छोड़कर दूसरा और दूसरे को छोड़ कर तीसरा पकड़ता रहता है। अपनी इच्छाशक्ति की अदृढ़ता के कारण वह एक छोटी-सी कठिनाई से ही भयभीत तथा उद्विग्न हो जाता है और जल्दी ही कर्तव्य से हट जाता है। इच्छाशक्ति की निर्बलता मनुष्य के समग्र जीवन की निर्बलता है।

निर्बल इच्छाशक्ति की हानियाँ

प्रबल इच्छाशक्ति जहाँ एक प्रकार की अमोघ औषधि है, वहाँ निर्बल इच्छाशक्ति विविध प्रकार के रोगो की जननी होती है। जिसकी इच्छाशक्ति निर्बल होती है वह एक छोटे-से रोग मे ही अपनी मृत्यु की कल्पना करने लगता है। उसके विचार प्रतिगामी होते है। वह रोगो का उपचार भी करता है तो भी सोचता रहता है कि औषधि उसे लाभ नही कर रही है। बहुत बार तो वह काल्पनिक रोगो के भय से ही त्रस्त बना रहता है और देर-सबेर उस प्रकार का रोग उत्पन्न ही कर लेता है। मानस चिकित्साशास्त्रियो ने अपने अनुभव के आधार पर बतलाया है कि वास्तविक रोगियो की अपेक्षा ऐसे रोगियो की सख्या अधिक होती है, जो अपनी प्रतिगामी कल्पना के कारण अपने को रुग्ण तथा अस्वस्थ समझते रहते है। यह अनेक प्रयोगो के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है कि यदि मनुष्य की इच्छाशक्ति प्रबल हो तो वह बिना किसी उपचार के रोगो पर विजय प्राप्त कर सकता है।

निर्बल इच्छाशक्ति की हानियाँ केवल व्यक्ति तक ही सीमित नही रहती। वे समाज पर भी अपना प्रभाव डालती है। मनुष्य की इच्छाशक्ति मे एक प्रकार की अदृश्य तरंगे होती है, जो मानसिक गतिविधियो से निकलकर वातावरण मे फैल जाती है और दूसरो को प्रभावित करती है। उनके मानसिक भावो को अपने प्रकार का बनाने का प्रयत्न करती है। यही तो कारण है कि जिस स्थान पर कमजोर और कायर मन वाले लोग रहते है, वहाँ प्राय· भय और आशका का वातावरण बना रहता है। किसी संगठन मे दुर्बल इच्छाशक्ति वाले अपनी गतिविधियो से औरो को भी निर्बल और हतोत्साह बना देते है। युद्ध मे एक कायर सैनिक भागकर और भी अनेक सैनिको को भागने की प्रेरणा देता है। जिस देश, समाज अथवा राष्ट्र के नेता निर्बल इच्छा शक्ति वाले होते है वह देश, समाज अथवा राष्ट्र बहुधा अवनति और पराभव के ही अधिकारी बनते है। नेता का प्रभाव विस

होता है, उसमे जनगण का विश्वास होता है। इसी कारण, नेता यदि निर्बल इच्छा शक्ति वाला होता है तो उसकी संक्रमकता, निर्बलता जनता का भी हृदय दुर्बल बना देती है। सारे राष्ट्र मे भय, आशंका और कायरता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। जहाँ इस तरह के पाप-अभिशाप जनगण को दबाये होते है, वहाँ उन्नति, प्रगति अथवा विजय श्री का पदार्पण नही होता।

इसके विपरीत जिस समाज अथवा राष्ट्र के नेता प्रबल इच्छाशक्ति वाले होते है, वह समाज और राष्ट्र भी प्रबल तथा शक्तिशाली बना रहता है, फिर चाहे वह विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से छोटा ही क्यो न हो। जापान, इंग्लैड और जर्मनी आदि देश इस बात के ज्वलंत प्रमाण है। भारत मे भी राणा प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, हम्मीर देव आदि के अनेक ऐसे उदाहरण मौजूद है जो साधन और सैन्य शक्ति की दृष्टि से नगण्य होने पर भी सर्वसम्पन्न मुगल बादशाहो के अत्याचारो से टक्कर लेते रहे। महात्मा गाँधी तो प्रबल इच्छाशक्ति के एक जीते-जागते आदर्श थे। उनके पास एक प्रबल, दृढ तथा प्रखर इच्छाशक्ति को छोड़कर और क्या साधन थे ? न सेना, न शस्त्र और न साम्राज्य तथापि उन्होंने अपनी एक उस अमोघ इच्छाशक्ति के आधार पर उदयास्तपर्यन्त फैले अँग्रेजी साम्राज्य से टक्कर ली और अपनी शान्ति अहिंसा की नीति से ही उनकी तोपो, बन्दूको, गनमशीनो और सेनाओ की शक्ति को पराभूत कर दिया। महात्मा गाँधी की प्रबल इच्छा शक्ति का ही तो यह चमत्कार था कि उनके नेतृत्व का भारत आबाल वृद्ध स्त्री-पुरुषो के साथ साधनहीन होने पर भी अजेय बन गया था। इच्छाशक्ति की महिमा अपार और अपूर्व है।

यदि हमे अपने जीवन को उन्नति और प्रगति के द्वारा सार्थक बनाना है, तो अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ाना और प्रबल बनाना होगा। तभी हममे दृढ़ता, साहस और कार्य क्षमता का विकास होगा। हम उत्साही वीर और संकल्पवान बनेगे। हममे वह कर्मठता आएगी जो जीवन पथ की बाधाओ तथा विपत्तियो से भी कुण्ठित न हो सकेगी। सफलता का पथ निश्चय ही बड़ा कठिन और दुर्गम होता है। उसको सरल और प्रशस्त बनाने मे मनुष्य की इच्छाशक्ति का बड़ा उपयोग है। इच्छा शक्ति की दृढ़ता और प्रबलता मनुष्य को पराक्रमी, पुरुषार्थी और धीर-गम्भीर बना देती है। प्रबल इच्छा शक्ति वाला जिस काम मे हाथ डालता है, उसे तब तक नही छोड़ता, जब तक पूरा नही कर लेता। वह बाधाओ, विरोधो से साहसपूर्वक लड़ता हुआ बढ़ता रहता है। उन्नति और सफलता का इसके सिवाय और कोई उपाय नही है।

संसार की सारी सफलताओ का मूल मन्त्र है, प्रबल इच्छाशक्ति—इसी के बल पर विद्या, सम्पत्ति और साधनो का उपार्जन होता है। यही वह आधार है, जिस पर आध्यात्मिक तपस्याएँ और साधनाएँ निर्भर रहती है। यही वह दिव्य सम्बल है, जिसे पाकर संसार मे खाली हाथ आया मनुष्य वैभव और ऐश्वर्यवान बनकर संसार को चकित कर देता है। यही वह मोहन और वशीकरण मन्त्र है, जिसके बल पर एक अकेला पुरुष कोटि-कोटि जनगण को अपना अनुयायी बना लेता है। जीवन मे उन्नति और सफलता की आकांक्षा करने से पहले अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल तथा प्रखर बना लेने वालो को न कभी असफल होना पड़ता है और न निराश। वे अपनी मनोवांछित विजय-माल पहनकर ही मानते है। किसी वस्तु की प्राप्ति की लालसा को इच्छा कहते है। इस लालसा की तीव्रता को इच्छाशक्ति कहते है।

शारीरिक शक्ति से कई गुनी अधिक इच्छाशक्ति

इच्छाशक्ति के प्रभाव के सन्दर्भ मे श्री योगानन्द ने अपनी पुस्तक "आटोबायग्राफी ऑफ ए योगी" मे बंगाल मे उन दिनो 'टाइगर योगी' के नाम से प्रसिद्ध सोहंग स्वामी का विवरण उन्ही के शब्दो मे यो दिया है—

"कह नही सकता, किस जीवन के कौन-से संस्कार थे कि शरीर तो दुबला-पतला ही था किन्तु बाल्यावस्था से ही मन किया करता कि कोई शेर या चीता मिले तो उससे कुश्ती लड़ूँ ? यह कमजोर शरीर ही था जो निराश करता था वरना राजकुमार भरत की तरह छोटे मे ही कई बार बाघ के दाँत तोड़ चुका होता।

जो इच्छाशक्ति कुछ दिन पहले जंगली जानवरो से लड़ने की ओर मुड़ी थी अब वह अन्तर्मुखी हो उठी। मै दिन-रात यही सोचा करता कि मै बहुत शक्तिशाली हो जाऊँ, मेरा शरीर बलवान हो जाये, मेरे रग-पुट्ठे सुदृढ और सुडौल हो जाये, मुट्ठी भीचूँ तो गदेलियो से पसीना छूट जाये। मुझे तब पता नहीं था कि इच्छाशक्ति मे भी कुछ जादू होता है, पर मैने उसे अपने आप मे सचमुच जादू पाया। मेरा स्वास्थ्य दिनो-दिन अच्छा होता गया और मै एक हट्टा-कट्टा युवक बन गया।

अब मनचीती करने का समय आ गया तो मेरी प्रसन्नता का वारापार नही रहा। मै विचार करता कि जगल के यह बड़े जन्तु छोटे जीव-जन्तुओ को पकड़कर खा जाते है, तो गुस्से से मेरी आँखे लाल हो जाती थी। बड़े जीवो द्वारा छोटो का सताया जाना मुझे कतई पसन्द नही था। इसलिए मैने निश्चय किया, जगल के इन हिंसक जन्तुओ को सबक सिखाना चाहिए। इसी निश्चय के साथ मै जगल जाने लगा।

अब तक मेरी इच्छाशक्ति पूर्ण प्रौढ़ और प्रखर हो चुकी थी। भय नाम की भी कोई वस्तु होती है, यह मैने पूरी तरह भुला दिया। एक बार जब जगल मे प्रविष्ट हो जाता तो वहाँ के हिंसक—बाघ, शेर, चीते भी मुझे

मूषको और भेड़-बकरियो की तरह लगते। एक बार जब निश्चित कर लिया तो यह मेरे प्रतिदिन के जीवन का एक अग बन गया। मैं प्रतिदिन जंगल जाता, हिंसक जीव मुझे साक्षात् काल के समान देखते और दूर से ही भाग जाते। वह बड़ा दुर्भाग्यशाली होता जो एक बार भी मेरी दृष्टि मे पड़ जाता। आँख से आँख मिलाते ही मेरी प्रखर इच्छा शक्ति उसके मन पर बुरी तरह आघात करती और वह जन्तु भले ही शेर ही क्यो न रहा हो बिल्ली बन जाता, पूँछ दबाकर दया की भीख माँगता, पर मुझ निष्ठुर 'सोहग स्वामी' से बचकर जाना उसके लिए कठिन होता। जी भर पीटता पटकता और जिस पर दया न आती मारकर ही छोड़ता। स्मरण नही ऐसे कितने बाघ, चीते, लकड़बग्घे मारे होंगे। मेरी इन वारदातो का ही परिणाम था कि लोग मेरा 'सोहंग स्वामी' नाम तो भूल गये पर मै एक नये 'टाइगर योगी' के नाम से सारे बगाल प्रान्त में विख्यात हो गया। मेरे पास इससे सम्बन्धित जानकारी के लिए प्रतिदिन देश-विदेश मे सैकड़ो पत्र आते पर मुझे इस व्यवसाय से ही फुरसत कहाँ मिलती थी ? जो उनके उत्तर देता।

एक दिन की बात है एक साधु मेरे घर आये। मै तब जगल मे ही था। उन्होंने मेरे पिताजी को बुलाकर कहा-आपका लड़का जगली जीवो को सताता है, यह अच्छी बात नही है। उसे तुम रोको अन्यथा कभी कोई भयकर परिणाम भी निकल सकते है।

पिताजी ने साधु को प्रणाम करते हुए कहा—महात्मन् ! मेरा लड़का छोटे कमजोर जीवो को नही सताता। वह तो हिंसक जीवो को मारता है, वह भी निहत्थे, तब फिर इसमे दोष क्या है ?

दोष ! साधु बोले—किसको कब दण्ड देना है कैसे देना है ? यह ईश्वर का काम है, मनुष्य का नही। तुच्छ जीवो की उत्पत्ति सम्भवत इच्छाशक्ति का निम्नगामी रूप है। परमात्मा नही चाहता कि मेरी सृष्टि मे कायर कमजोर और अमंगल इच्छाएँ रहे। निर्बलता तो प्रकृति को भी कतई पसन्द नही। तभी तो शेरनी अपने चोट खाये या उस जख्मी बच्चे को भी खा जाती है, जो दौड़ने, चलने फिरने मे उसका साथ दे नही सकता। ''जीव जीवस्य भोजन'' छोटा जीव बड़े जीव का आहार प्रकृति के किसी उपयोगी सिद्धान्त के आधार पर ही काम करता है, यह काम पूर्णतया प्रकृति का है, मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग बनाना और उस पर चलना ही कौन-सा कम कठिन है ? जो वह प्रकृति के सिद्धान्तो से व्यर्थ टक्कर ले।

साधु की सारी बाते पिताजी ने ध्यान से सुनी और फिर जब मै जगल से लौटा तो मुझसे भी कही। एक बार तो मुझे उन बातो मे कुछ सार सा प्रतीत हुआ किन्तु मैने दूसरे ही क्षण उस उपदेश की भी उपेक्षा कर दी। अब मुझे हिंसक जन्तुओ से भिड़ने और उन्हे मारने मे आनन्द आने लगा था। उसे छोड़ना कठिन बात थी, तो भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने कोई ईश्वरीय सत्ता भी अवश्य है और उसके क्रिया-कलापों मे हस्तक्षेप का पाप मुझे नहीं करना चाहिए। इसलिए अब कई बार मैं अपने आप को कुछ कमजोर और भयभीत भी अनुभव करता। मुझे इसके लिए उस साधु पर कभी-कभी गुस्सा भी आ जाया करता।

संकल्प-विकल्प के इन दिनो मे मेरी ख्याति कम से कम बंगाल मे तो घर-घर थी ही। कूँच विहार के राज्याध्यक्ष ने भी यह खबर सुनी। उन्हे जंगली जानवर पालने का बड़ा शौक था। इसलिए वे जगली जन्तुओ के हिंसक स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित थे। मेरे करतब उन्हे अद्भुत, आश्चर्यजनक और तान्त्रिक से लगे। फलत: उन्होंने अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए मुझे कूँच विहार आने और उक्त प्रदर्शन करने का निमन्त्रण दिया। वहाँ की प्रजा भी मेरी बाघ से कुश्ती देखने को बहुत लालायित थी। कई चुनौती भरे पत्र मेरे पास आते थे। इसलिए न चाहते हुए भी मुझे यह निमन्त्रण स्वीकार करना ही पड़ा।

ईश्वर के विधान बड़े विलक्षण है, उन्हे मानवीय बुद्धि समझ सके ऐसा सम्भव नही है। जिन दिनो यह पत्राचार चल रहा था उन दिनों कूँच विहार मे कही से एक बहुत खूँखार बाघिनी आ गई। उसका इतना आतक होने पर भी पता नहीं कैसे वह जीवित कैद मे आ गई, वह भी स्वय वहाँ के राजकुमार द्वारा। शाही कटघरे मे रहने वाली इस बाघिन का नाम 'राजबेगम' था और मुझे उसी से लड़ाये जाने का वहाँ के राजा साहब ने निश्चय कर लिया था।

उन्होने कुछ छल किया हो सो बात नही थी। उनने तो सारी बाते वहाँ पहुँचने पर मुझे स्पष्ट बता दी थी। पर यदि मै अपने वचन से हटता तो यह मेरे आत्माभिमान पर आघात होता, अतएव मैने राजबेगम से लड़ने का निश्चय कर लिया। पर न जाने क्यो उस दिन मुझे साधु के वह शब्द जो उन्होंने पिताजी से कहे थे, एक चेतावनी की तरह बार-बार याद आते थे, तो भी मैं यो ही एकाएक भयभीत होने वाला न था। मेरा निश्चय आखिर तक अटल रहा।

यह दृश्य देखने के लिए अखबारो मे पहले से ही समाचार छापे गये। भीड़ बरसात के पानी की तरह उमड़ पड़ी। जिस मैदान मे यह प्रदर्शन होना था कटीले तारों से सुरक्षित कर पिजरा जिसमे बाघिन बन्द थी मैदान मे रख दिया गया। हजारो लोगो के सामने मैं लँगोट पहनकर निहत्था ही पिजड़े की ओर बढ़ा।

बाघिन मुझे देखकर गुर्राई- किन्तु मुझे उससे कुछ भी भय न लगा। पिंजरा खोलकर उसमे प्रविष्ट हो गया। चाभी मैंने वही फेंक दी, केवल एक चैन मेरे हाथ मे थी, जिससे बाघिन को बाँधने के लिए कहा गया था।

मेरे पिंजरे मे प्रवेश करते ही बाघिन टूटकर मेरे ऊपर आ झपटी और मेरी पीठ के दाहिने पुट्ठे पर घाव करती हुई मुट्ठीभर माँस नोच ले गई। मै हक्का-बक्का रह गया। एक बार दर्द से सारा शरीर ही काँप उठा। खून दाढ़ मे लग जाने से बाघिन और भी उत्तेजित हो उठी। उसने देर किये बिना दूसरा झपट्टा लगाया पर अब मै सम्भल चुका था, मैने अपना वही इच्छाशक्ति वाला दाँव लगाया। बाघिन की आँखो मे आँखे डालकर मैने उसके मन मे दुर्दान्त प्रहार किया और ऐसा करना भर था कि बाघिन कटे वृक्ष की तरह अपने आप धराशायी हो गई। अब पूरे गुस्से के साथ मै उस पर टूटा और लात-घूँसो की बौछार से उसे बेदम कर दिया। मेरी इच्छाशक्ति बराबर काम कर रही थी इतनी खूँख्वार बाघिन उसी का परिणाम था कि मरी बिल्ली जैसी सिमटी-सी पड़ी थी। अब उसमे आक्रमण करने की शक्ति नही थी तथापि वह गुर्राकर अपना क्रोध अवश्य प्रकट कर रही थी। ऐसे मे ही आगे बढ़कर मैने उसको चैन बाँध दी और विजयी योद्धा की भाँति चारो ओर खड़ी भीड़ की ओर देखा। सब लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता मे उछल पड़े। मेरा हार्दिक स्वागत किया गया। उपस्थित लोगो ने मुझे फूल और हारो से लाद दिया बहुत-सा पुरस्कार भी मुझे मिला।

किन्तु घर लौटा तब पता चला कि साधु का कथन असत्य नहीं था। घाव होने के कारण शरीर मे विष हो गया और उसे ठीक होने मे लगभग ६ महीने लगे।

इसी बीच एक दिन वह साधु फिर प्रकट हुए, उन्होने समझाया—"बेटा अब ऐसा नही करना। उन्होने योगाभ्यास की कुछ क्रियाएँ भी बतलाई और कहा इच्छा शक्ति का बल तुम्हारे पास है। चाहते तो आत्म-कल्याण और ईश्वर दर्शन जैसी महान उपलब्धि प्राप्त करते पर व्यर्थ ही खेल-खिलौनो मे लगे रहे। योगी लोग ईश्वर प्राप्ति और आत्म-दर्शन का पुरुषार्थ साधते है, चमत्कारो के चक्कर मे नही पड़ते। उन्होने मुझे दवा भी दी उसी से मेरा घाव ठीक हुआ। साथ ही उनकी बात भी अच्छी तरह समझ मे आ गई और मैने आत्म-कल्याण के लिए उच्चस्तरीय योग साधनाएँ करने का निश्चय कर लिया।"

अपने जीवन मे इच्छाशक्ति के प्रयोग का यह महत्त्वपूर्ण वर्णन सुनाने वाले यह सोहग स्वामी कलकत्ता मे जन्मे एक महान योगी हो गये है। उन्हे बंगाल मे टाइगर स्वामी के नाम से आज भी लोग याद करते है। एक बार उनकी ख्याति सुनकर श्री स्वामी योगानन्द जी उनसे मिलने गये, उन्होने पूछा—आप खूँख्वार जानवरो से कैसे लड़ते है? तो उन्होने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति कही अधिक प्रखर होती है। यदि हम दृढ़ विश्वास कर ले कि बाघ नही बिल्ली है, तो वह बिल्ली ही हो जायेगा। जरूरत पड़े तो मै अभी भी चीतो के दाँत—यह कहते हुए वे उठे और सामने सीमेण्टकी लगी दुकान मे धँसे साबित ईंट को पकड़कर निकालते हुए बोले—इस तरह पकड़कर निकाल सकता हूँ। स्वामीजी को उनकी क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

किन्तु बताया—इसमे आश्चर्य जैसी कोई बात नही है। अब तो विज्ञान भी सिद्ध करता है कि मस्तिष्क ही है, जो माँसपेशियो को नियन्त्रित करता है। मस्तिष्क जितना बलवान होगा उतना ही सूक्ष्म शरीर काम करेगा। जितनी शक्ति से हथौड़े का प्रहार किया जाता है उतनी ही गहरी चोट लगती है। उसी प्रकार शरीर हथौड़ा है और उसे शक्ति देने वाली मशीन तो मन या इच्छाशक्ति है। शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन इस बात पर है कि इच्छाशक्ति मे कितना बल है ? शरीर एक यन्त्र है। उसका उपयोग चाहे जैसे कर सकते है, इसके विपरीत यदि मन, शरीर और इन्द्रियो का दास होगा तो वह कुछ भी नही कर सकेगा।

श्री योगानन्द ने प्रश्न किया—क्या मै भी बाघ से लड़ सकता हूँ-इस पर उन्होने हँसते हुए कहा—भाई बाघ से कोई भी लड़ सकता है। पर अपनी लालसाओ, कामनाओ, वासनाओ, से लड़कर उन पर विजय पाना अति दुस्तर कार्य है। जो वह कर ले, समझ लो वह सैकड़ो बाघो को जीत चुका। अब मै भी उसी दिशा मे आ रहा हूँ, जो मुझे पहले ही करना चाहिए था, वह अब कर रहा हूँ। शक्ति प्रदर्शन मे तो मैने व्यर्थ ही इतना जीवन बिता दिया। इस प्रकार सोहंग स्वामी ने इच्छा शक्ति का महत्त्व तो स्पष्ट किया ही, उसके सदुपयोग की दिशा भी बतलाई।

परन्तु शुभ या अशुभ सकल्प एक साथ मनुष्य पर अपना प्रभाव नही डाल सकते। इन दोनो मे जो बलवान् होगा, उसी का प्रभाव पड़ेगा, क्योकि बलवान् सकल्प कमजोर को नष्ट कर देता है।

यदि हमारा मन बलवान् है और हम सद्प्रवृत्ति या शुभ स्थाई वृत्ति वाले है, हमारे सस्कारो मे शुभ प्रभाव प्रबल है, तो हम पर किसी बुरे विचार का प्रभाव नही पड़ सकता। हम पहाड़ पर एक चट्टान के सदृश अपने मन को दृढ़ और अटल बना ले, जिस पर आँधी, पानी, ठण्ड, गर्मी का असर बाह्य मे भले ही पड़े, परन्तु अन्तर में नही पड़ता। ऐसी दृढ़ मानसिक स्थिति बना लेने पर कोई दुष्ट भाव हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। चाहे हमारे शत्रु हम पर अशुभ और दुष्ट सकल्प प्रेरित करते रहे, पर उनका प्रभाव नही के बराबर होगा।

दृढ़ मानसिक स्थिति उस शिला की तरह है जिस पर पानी की फटकार का कोई भी प्रभाव नही होता। इसी प्रकार शत्रु के अशुभ विचार हमारे चारो ओर कुछ समय तक विचरण करते रहेगे या सदैव ही विचरण करते रहे, पर उनका प्रभाव हम पर कुछ नही होगा।

मन मे किसी प्रकार का अशुभ सकल्प या विचार मत आने दीजिये। दूसरे के अशुभ या विरोधी विचारो को

मूषको और भेड़-बकरियो की तरह लगते। एक बार जब निश्चित कर लिया तो यह मेरे प्रतिदिन के जीवन का एक अग बन गया। मै प्रतिदिन जंगल जाता, हिसक जीव मुझे साक्षात् काल के समान देखते और दूर से ही भाग जाते। वह बड़ा दुर्भाग्यशाली होता जो एक बार भी मेरी दृष्टि मे पड़ जाता। आँख से आँख मिलाते ही मेरी प्रखर इच्छा शक्ति उसके मन पर बुरी तरह आघात करती और वह जन्तु भले ही शेर ही क्यो न रहा हो बिल्ली बन जाता, पूँछ दबाकर दया की भीख माँगता, पर मुझ निष्ठुर 'सोहग स्वामी' से बचकर जाना उसके लिए कठिन होता। जी भर पीटता पटकता और जिस पर दया न आती मारकर ही छोड़ता। स्मरण नही ऐसे कितने बाघ, चीते, लकड़बग्घे मारे होगे। मेरी इन वारदातो का ही परिणाम था कि लोग मेरा 'सोहग स्वामी' नाम तो भूल गये पर मै एक नये 'टाइगर योगी' के नाम से सारे बगाल प्रान्त मे विख्यात हो गया। मेरे पास इससे सम्बन्धित जानकारी के लिए प्रतिदिन देश-विदेश से सैकड़ो पत्र आते पर मुझे इस व्यवसाय से ही फुरसत कहाँ मिलती थी ? जो उनके उत्तर देता।

एक दिन की बात है एक साधु मेरे घर आये। मै तब जगल मे ही था। उन्होंने मेरे पिताजी को बुलाकर कहा-आपका लड़का जगली जीवो को सताता है, यह अच्छी बात नही है। उसे तुम रोको अन्यथा कभी कोई भयकर परिणाम भी निकल सकते है।

पिताजी ने साधु को प्रणाम करते हुए कहा—महात्मन् । मेरा लड़का छोटे कमजोर जीवो को नही सताता। वह तो हिंसक जीवो को मारता है, वह भी निहत्थे, तब फिर इसमे दोष क्या है ?

दोष ! साधु बोले—किसको कब दण्ड देना है कैसे देना है ? यह ईश्वर का काम है, मनुष्य का नही। तुच्छ जीवो की उत्पत्ति सम्भवतः इच्छाशक्ति का निम्नगामी रूप है। परमात्मा नही चाहता कि मेरी सृष्टि मे कायर कमजोर और अमगल इच्छाएँ रहे। निर्बलता तो प्रकृति को भी कतई पसन्द नही। तभी तो शेरनी अपने चोट खाये या उस जख्मी बच्चे को भी खा जाती है, जो दौड़ने, चलने फिरने मे उसका साथ दे नही सकता। "जीव जीवस्य भोजनं" छोटा जीव बड़े जीव का आहार प्रकृति के किसी उपयोगी सिद्धान्त के आधार पर ही काम करता है, यह काम पूर्णतया प्रकृति का है, मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग बनाना और उस पर चलना ही कौन-सा कम कठिन है ? जो वह प्रकृति के सिद्धान्तो से व्यर्थ टक्कर ले।

साधु की सारी बाते पिताजी ने ध्यान से सुनी और फिर जब मैं जंगल से लौटा तो मुझसे भी कहीं। एक बार तो मुझे उन बातो मे कुछ सार सा प्रतीत हुआ किन्तु मैने दूसरे ही क्षण उस उपदेश की भी उपेक्षा कर दी। अब मुझे हिसक जन्तुओ से भिड़ने और उन्हे मारने मे आनन्द आने लगा था। उसे छोड़ना कठिन बात थी, तो भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने कोई ईश्वरीय सत्ता भी अवश्य है और उसके क्रिया-कलापो मे हस्तक्षेप का पाप मुझे नहीं करना चाहिए। इसलिए अब कई बार मैं अपने आप को कुछ कमजोर और भयभीत भी अनुभव करता। मुझे इसके लिए उस साधु पर कभी-कभी गुस्सा भी आ जाया करता।

सकल्प-विकल्प के इन दिनो मे मेरी ख्याति कम से कम बंगाल मे तो घर-घर थी ही। कूँच विहार के राज्याध्यक्ष ने भी यह खबर सुनी। उन्हे जंगली जानवर पालने का बड़ा शौक था। इसलिए वे जंगली जन्तुओं के हिंसक स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित थे। मेरे करतब उन्हे अद्भुत, आश्चर्यजनक और तान्त्रिक से लगे। फलत· उन्होंने अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए मुझे कूँच विहार आने और उक्त प्रदर्शन करने का निमन्त्रण दिया। वहाँ की प्रजा भी मेरी बाघ से कुश्ती देखने को बहुत लालायित थी। कई चुनौती भरे पत्र मेरे पास आते थे। इसलिए न चाहते हुए भी मुझे यह निमन्त्रण स्वीकार करना ही पड़ा।

ईश्वर के विधान बड़े विलक्षण है, उन्हे मानवीय बुद्धि समझ सके ऐसा सम्भव नही है। जिन दिनो यह पत्राचार चल रहा था उन दिनो कूँच विहार मे कहीं से एक बहुत खूँख्वार बाघिनी आ गई। उसका इतना आतक होने पर भी पता नही कैसे वह जीवित कैद मे आ गई, वह भी स्वय वहाँ के राजकुमार द्वारा। शाही कटघरे मे रहने वाली इस बाघिन का नाम 'राजबेगम' था और मुझे उसी से लड़ाये जाने का वहाँ के राजा साहब ने निश्चय कर लिया था।

उन्होने कुछ छल किया हो सो बात नही थी। उ तो सारी बाते वहाँ पहुँचने पर मुझे स्पष्ट बता दी थी। पर यदि मै अपने वचन से हटता तो यह मेरे आत्माभिमान पर आघात होता, अतएव मैने राजबेगम से लड़ने का निश्चय कर लिया। पर न जाने क्यो उस दिन मुझे साधु के वह शब्द जो उन्होंने पिताजी मे कहे थे, एक चेतावनी की तरह बार-बार याद आते थे, तो भी मैं यो ही एकाएक भयभीत होने वाला न था। मेरा निश्चय आखिर तक अटल रहा।

यह दृश्य देखने के लिए अखबारो मे पहले से ही समाचार छापे गये। भीड़ बरसात के पानी की तरह उमड़ पड़ी। जिस मैदान मे यह प्रदर्शन होना था कटीले तारो से सुरक्षित कर पिजरा जिसमे बाघिन बन्द थी मैदान मे रख दिया गया। हजारो लोगो के सामने मै लँगोट पहनकर निहत्था ही पिंजड़े की ओर बढ़ा।

बाघिन मुझे देखकर गुर्राई· किन्तु मुझे उससे कुछ भी भय न लगा। पिजरा खोलकर उसमे प्रविष्ट हो गया। चाभी मैने वही फेक दी, केवल एक चैन मेरे हाथ मे थी, जिससे बाघिन को बाँधने के लिए कहा गया था।

मेरे पिंजरे मे प्रवेश करते ही बाघिन टूटकर मेरे ऊपर आ झपटी और मेरी पीठ के दाहिने पुट्ठे पर घाव करती हुई मुट्ठीभर माँस नोच ले गई। मै हक्का-बक्का रह गया। एक बार दर्द से सारा शरीर ही काँप उठा। खून दाढ मे लग जाने से बाघिन और भी उत्तेजित हो उठी। उसने देर किये बिना दूसरा झपट्टा लगाया पर अब मै सम्भल चुका था, मैने अपना वही इच्छाशक्ति वाला दाँव लगाया। बाघिन की आँखो मे आँखें डालकर मैने उसके मन मे दुर्दान्त प्रहार किया और ऐसा करना भर था कि बाघिन कटे वृक्ष की तरह अपने आप धराशायी हो गई। अब पूरे गुस्से के साथ मै उस पर टूटा और लात-घूँसो की बौछार से उसे बेदम कर दिया। मेरी इच्छाशक्ति बराबर काम कर रही थी इतनी खूँख्वार बाघिन उसी का परिणाम था कि मरी बिल्ली जैसी सिमटी-सी पड़ी थी। अब उसमे आक्रमण करने की शक्ति नही थी तथापि वह गुर्राकर अपना क्रोध अवश्य प्रकट कर रही थी। ऐसे मे ही आगे बढ़कर मैने उसको चैन बाँध दी और विजयी योद्धा की भाँति चारो ओर खड़ी भीड़ की ओर देखा। सब लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से उछल पड़े। मेरा हार्दिक स्वागत किया गया। उपस्थित लोगो ने मुझे फूल और हारो मे लाद दिया बहुत-सा पुरस्कार भी मुझे मिला।

किन्तु घर लौटा तब पता चला कि साधु का कथन असत्य नही था। घाव होने के कारण शरीर मे विष हो गया और उसे ठीक होने मे लगभग ६ महीने लगे।

इसी बीच एक दिन वह साधु फिर प्रकट हुए, उन्होने समझाया—"बेटा अब ऐसा नहीं करना। उन्होने योगाभ्यास की कुछ क्रियाएँ भी बतलाई और कहा इच्छा शक्ति का बल तुम्हारे पास है। चाहते तो आत्म-कल्याण और ईश्वर दर्शन जैसी महान उपलब्धि प्राप्त करते पर व्यर्थ ही खेल-खिलौनो मे लगे रहे। योगी लोग ईश्वर प्राप्ति और आत्म-दर्शन का पुरुषार्थ साधते है, चमत्कारो के चक्कर मे नही पड़ते। उन्होने मुझे दवा भी दी उसी से मेरा घाव ठीक हुआ। साथ ही उनकी बात भी अच्छी तरह समझ मे आ गई और मैने आत्म-कल्याण के लिए उच्चस्तरीय योग साधनाएँ करने का निश्चय कर लिया।"

अपने जीवन मे इच्छाशक्ति के प्रयोग का यह महत्वपूर्ण वर्णन सुनाने वाले यह सोहंग स्वामी कलकत्ता मे जन्मे एक महान योगी हो गये है। उन्हे बगाल मे टाइगर स्वामी के नाम से आज भी लोग याद करते है। एक बार उनकी ख्याति सुनकर श्री स्वामी योगानन्द जी उनसे मिलने गये, उन्होंने पूछा—आप खूँख्वार जानवरो से कैसे लड़ते है? तो उन्होंने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति कही अधिक प्रखर होती है। यदि हम दृढ विश्वास कर ले कि बाघ नही बिल्ली है, तो वह बिल्ली ही हो जायेगा। जरूरत पड़े तो मै अभी भी चीतो के दाँत—यह कहते हुए वे उठे और सामने सीमेण्टकी लगी दुकान मे धँसे साबित ईंट को पकड़कर निकालते हुए बोले—इस तरह पकड़कर निकाल सकता हूँ। स्वामीजी को उनकी क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

किन्तु बताया—इसमे आश्चर्य जैसी कोई बात नही है। अब तो विज्ञान भी सिद्ध करता है कि मस्तिष्क ही है, जो माँसपेशियो को नियन्त्रित करता है। मस्तिष्क जितना बलवान होगा उतना ही सूक्ष्म शरीर काम करेगा। जितनी शक्ति से हथौड़े का प्रहार किया जाता है उतनी ही गहरी चोट लगती है। उसी प्रकार शरीर हथौड़ा है और उसे शक्ति देने वाली मशीन तो मन या इच्छाशक्ति है। शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन इस बात पर है कि इच्छाशक्ति मे कितना बल है ? शरीर एक यन्त्र है। उसका उपयोग चाहे जैसे कर सकते है, इसके विपरीत यदि मन, शरीर और इन्द्रियो का दास होगा तो वह कुछ भी नही कर सकेगा।

श्री योगानन्द ने प्रश्न किया—क्या मै भी बाघ से लड़ सकता हूँ-इस पर उन्होने हँसते हुए कहा—भाई बाघ से कोई भी लड़ सकता है। पर अपनी लालसाओ, कामनाओ, वासनाओ, से लड़कर उन पर विजय पाना अति दुस्तर कार्य है। जो यह कर ले, समझ लो वह सैकड़ो बाघो को जीत चुका। अब मै भी उसी दिशा मे आ रहा हूँ, जो मुझे पहले ही करना चाहिए था, वह अब कर रहा हूँ। शक्ति प्रदर्शन मे तो मैने व्यर्थ ही इतना जीवन बिता दिया। इस प्रकार सोहंग स्वामी ने इच्छा शक्ति का महत्व तो स्पष्ट किया ही, उसके सदुपयोग की दिशा भी बतलाई।

परन्तु शुभ या अशुभ संकल्प एक साथ मनुष्य पर अपना प्रभाव नही डाल सकते। इन दोनो मे जो बलवान् होगा, उसी का प्रभाव पड़ेगा, क्योकि बलवान् सकल्प कमजोर को नष्ट कर देता है।

यदि हमारा मन बलवान् है और हम सद्प्रवृत्ति या शुभ स्थाई वृत्ति वाले है, हमारे संस्कारो मे शुभ प्रभाव प्रबल है, तो हम पर किसी बुरे विचार का प्रभाव नही पड़ सकता। हम पहाड़ पर एक चट्टान के सदृश अपने मन को दृढ और अटल बना ले, जिस पर आँधी, पानी, ठण्ड, गर्मी का असर बाह्य मे भले ही पड़े, परन्तु अन्तर मे नहीं पड़ता। ऐसी दृढ मानसिक स्थिति बना लेने पर कोई दुष्ट भाव हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। चाहे हमारे शत्रु हम पर अशुभ और दुष्ट सकल्प प्रेरित करते रहे, पर उनका प्रभाव नही के बराबर होगा।

दृढ मानसिक स्थिति उस शिला की तरह है जिस पर पानी की फटकार का कोई भी प्रभाव नहीं होता। इसी प्रकार शत्रु के अशुभ विचार हमारे चारो ओर कुछ समय तक विचरण करते रहेगे या सदैव ही विचरण करते रहे, पर उनका प्रभाव हम पर कुछ नही होगा।

मन मे किसी प्रकार का अशुभ सकल्प या विचार मत आने दीजिये। दूसरे के अशुभ या विरोधी विचारो को

मूषको और भेड़-बकरियो की तरह लगते। एक बार जब निश्चित कर लिया तो यह मेरे प्रतिदिन के जीवन का एक अग बन गया। मै प्रतिदिन जंगल जाता, हिंसक जीव मुझे साक्षात् काल के समान देखते और दूर से ही भाग जाते। वह बड़ा दुर्भाग्यशाली होता जो एक बार भी मेरी दृष्टि मे पड़ जाता। आँख से आँख मिलाते ही मेरी प्रखर इच्छा शक्ति उसके मन पर बुरी तरह आघात करती और वह जन्तु भले ही शेर ही क्यो न रहा हो बिल्ली बन जाता, पूँछ दबाकर दया की भीख माँगता, पर मुझ निष्ठुर 'सोहग स्वामी' से बचकर जाना उसके लिए कठिन होता। जी भर पीटता पटकता और जिस पर दया न आती मारकर ही छोड़ता। स्मरण नही ऐसे कितने बाघ, चीते, लकड़बग्घे मारे होगे। मेरी इन वारदातो का ही परिणाम था कि लोग मेरा 'सोहग स्वामी' नाम तो भूल गये पर मै एक नये 'टाइगर योगी' के नाम से सारे बगाल प्रान्त मे विख्यात हो गया। मेरे पास इससे सम्बन्धित जानकारी के लिए प्रतिदिन देश-विदेश से सैकड़ो पत्र आते पर मुझे इस व्यवसाय से ही फुरसत कहाँ मिलती थी ? जो उनके उत्तर देता।

एक दिन की बात है एक साधु मेरे घर आये। मै तब जगल मे ही था। उन्होंने मेरे पिताजी को बुलाकर कहा-आपका लड़का जगली जीवो को सताता है, यह अच्छी बात नही है। उसे तुम रोको अन्यथा कभी कोई भयकर परिणाम भी निकल सकते है।

पिताजी ने साधु को प्रणाम करते हुए कहा—महात्मन् ! मेरा लड़का छोटे कमजोर जीवो को नही सताता। वह तो हिंसक जीवो को मारता है, वह भी निहत्थे, तब फिर इसमे दोष क्या है ?

दोष ! साधु बोले—किसको कब दण्ड देना है कैसे देना है ? यह ईश्वर का काम है, मनुष्य का नही। तुच्छ जीवो की उत्पत्ति सम्भवत इच्छाशक्ति का निम्नगामी रूप है। परमात्मा नही चाहता कि मेरी सृष्टि मे कायर कमजोर और अमगल इच्छाएँ रहे। निर्बलता तो प्रकृति को भी कतई पसन्द नही। तभी तो शेरनी अपने चोट खाये या उस जख्मी बच्चे को भी खा जाती है, जो दौड़ने, चलने फिरने में उसका साथ दे नही सकता। "जीव जीवस्य भोजनं" छोटा जीव बड़े जीव का आहार प्रकृति के किसी उपयोगी सिद्धान्त के आधार पर ही काम करता है, यह काम पूर्णतया प्रकृति का है, मनुष्य को अपने कल्याण का मार्ग बनाना और उस पर चलना ही कौन-सा कम कठिन है ? जो वह प्रकृति के सिद्धान्तो से व्यर्थ टक्कर ले।

साधु की सारी बाते पिताजी ने ध्यान से सुनी और फिर जब मैं जंगल से लौटा तो मुझसे भी कही। एक बार तो मुझे उन बातो मे कुछ सार सा प्रतीत हुआ किन्तु मैंने दूसरे ही क्षण उस उपदेश की भी उपेक्षा कर दी। अब मुझे हिंसक जन्तुओं से भिड़ने और उन्हे मारने मे आनन्द आने लगा था। उसे छोड़ना कठिन बात थी, तो भी मुझे ऐसा लगा कि मेरे सामने कोई ईश्वरीय सत्ता भी अवश्य है और उसके क्रिया-कलापों मे हस्तक्षेप का पाप मुझे नही करना चाहिए। इसलिए अब कई बार मैं अपने आप को कुछ कमजोर और भयभीत भी अनुभव करता। मुझे इसके लिए उस साधु पर कभी-कभी गुस्सा भी आ जाया करता।

सकल्प-विकल्प के इन दिनों मे मेरी ख्याति कम से कम बंगाल मे तो घर-घर थी ही। कूँच विहार के राज्याध्यक्ष ने भी यह खबर सुनी। उन्हे जंगली जानवर पालने का बड़ा शौक था। इसलिए वे जंगली जन्तुओ के हिंसक स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित थे। मेरे करतब उन्हे अद्भुत, आश्चर्यजनक और तान्त्रिक से लगे। फलत उन्होने अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए मुझे कूँच विहार आने और उक्त प्रदर्शन करने का निमन्त्रण दिया। वहाँ की प्रजा भी मेरी बाघ से कुश्ती देखने को बहुत लालायित थी। कई चुनौती भरे पत्र मेरे पास आते थे। इसलिए न चाहते हुए भी मुझे यह निमन्त्रण स्वीकार करना ही पड़ा।

ईश्वर के विधान बड़े विलक्षण है, उन्हे मानवीय बुद्धि समझ सके ऐसा सम्भव नही है। जिन दिनो यह पत्राचार चल रहा था उन दिनो कूँच विहार मे कही से एक बहुत खूँख्वार बाघिनी आ गई। उसका इतना आतक होने पर भी पता नही कैसे वह जीवित कैद मे आ गई, वह भी स्वयं वहाँ के राजकुमार द्वारा। शाही कटघरे मे रहने वाली इस बाघिन का नाम 'राजबेगम' था और मुझे उसी से लड़ाये जाने का वहाँ के राजा साहब ने निश्चय कर लिया था।

उन्होंने कुछ छल किया हो सो बात नही थी। उनने तो सारी बाते वहाँ पहुँचने पर मुझे स्पष्ट बता दी थी। पर यदि मै अपने बचन से हटता तो यह मेरे आत्माभिमान पर आघात होता, अतएव मैने राजबेगम से लड़ने का निश्चय कर लिया। पर न जाने क्यो उस दिन मुझे साधु के वह शब्द जो उन्होंने पिताजी से कहे थे, एक चेतावनी की तरह बार-बार याद आते थे, तो भी मैं यो ही एकाएक भयभीत होने वाला न था। मेरा निश्चय आखिर तक अटल रहा।

यह दृश्य देखने के लिए अखबारो मे पहले से ही समाचार छापे गये। भीड़ बरसात के पानी की तरह उमड़ पड़ी। जिस मैदान मे यह प्रदर्शन होना था कटीले तारो से सुरक्षित कर पिंजरा जिसमे बाघिन बन्द थी मैदान मे रख दिया गया। हजारो लोगो के सामने मै लँगोट पहनकर निहत्था ही पिंजड़े की ओर बढ़ा।

बाघिन मुझे देखकर गुर्राई किन्तु मुझे उससे कुछ भी भय न लगा। पिंजरा खोलकर उसमे प्रविष्ट हो गया। चाभी मैंने वही फेंक दी, केवल एक चैन मेरे हाथ मे थी, जिसमे बाघिन को बाँधने के लिए कहा गया था।

मेरे पिंजरे मे प्रवेश करते ही बाघिन टूटकर मेरे ऊपर आ झपटी और मेरी पीठ के दाहिने पुट्ठे पर घाव करती हुई मुट्ठीभर माँस नोच ले गई। मै हक्का-बक्का रह गया। एक बार दर्द से सारा शरीर ही काँप उठा। खून दाढ़ मे लग जाने से बाघिन और भी उत्तेजित हो उठी। उसने देर किये बिना दूसरा झपट्टा लगाया पर अब मै सम्भल चुका था, मैने अपना वही इच्छाशक्ति वाला दाँव लगाया। बाघिन की आँखो मे आँखे डालकर मैने उसके मन मे दुर्दान्त प्रहार किया और ऐसा करना भर था कि बाघिन कटे वृक्ष की तरह अपने आप धराशायी हो गई। अब पूरे गुस्से के साथ मै उस पर टूटा और लात-घूँसो की बौछार से उसे बेदम कर दिया। मेरी इच्छाशक्ति बराबर काम कर रही थी इतनी खूँख्वार बाघिन उसी का परिणाम था कि मरी बिल्ली जैसी सिमटी-सी पड़ी थी। अब उसमे आक्रमण करने की शक्ति नही थी तथापि वह गुर्राकर अपना क्रोध अवश्य प्रकट कर रही थी। ऐसे में ही आगे बढ़कर मैने उसके चैन बाँध दी और विजयी योद्धा की भाँति चारो ओर खड़ी भीड़ की ओर देखा। सब लोग आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता से उछल पड़े। मेरा हार्दिक स्वागत किया गया। उपस्थित लोगो ने मुझे फूल और हारो मे लाद दिया बहुत-सा पुरस्कार भी मुझे मिला।

किन्तु घर लौटा तब पता चला कि साधु का कथन असत्य नही था। घाव होने के कारण शरीर मे विष हो गया और उसे ठीक होने मे लगभग ६ महीने लगे।

इसी बीच एक दिन वह साधु फिर प्रकट हुए, उन्होने समझाया—"बेटा अब ऐसा नही करना। उन्होने योगाभ्यास की कुछ क्रियाएँ भी बतलाईं और कहा इच्छा शक्ति का बल तुम्हारे पास है। चाहते तो आत्म-कल्याण और ईश्वर दर्शन जैसी महान उपलब्धि प्राप्त करते पर व्यर्थ ही खेल-खिलौनो मे लगे रहे। योगी लोग ईश्वर प्राप्ति और आत्म-दर्शन का पुरुषार्थ साधते है, चमत्कारो के चक्कर में नही पड़ते। उन्होने मुझे दवा भी दी उसी से मेरा घाव ठीक हुआ। साथ ही उनकी बात भी अच्छी तरह समझ मे आ गई और मैने आत्म-कल्याण के लिए उच्चस्तरीय योग साधनाएँ करने का निश्चय कर लिया।"

अपने जीवन मे इच्छाशक्ति के प्रयोग का यह महत्वपूर्ण वर्णन सुनाने वाले यह सोहग स्वामी कलकत्ता में जन्मे एक महान योगी हो गये है। उन्हे बगाल मे टाइगर स्वामी के नाम मे आज भी लोग याद करते है। एक बार उनकी ख्याति सुनकर श्री स्वामी योगानन्द जी उनसे मिलने गये, उन्होने पूछा—आप खूँख्वार जानवरो से कैसे लड़ते है? तो उन्होने उत्तर दिया—"शारीरिक शक्ति से मानसिक शक्ति कही अधिक प्रखर होती है। यदि हम दृढ विश्वास कर ले कि बाघ नही बिल्ली है, तो वह बिल्ली ही हो जायेगा। जरूरत पड़े तो मै अभी भी चीतो के दाँत—यह कहते हुए वे उठे और सामने सीमेण्टकी लगी दुकान मे धँसे साबित ईंट को पकड़कर निकालते हुए बोले—इस तरह पकड़कर निकाल सकता हूँ। स्वामीजी को उनकी क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

किन्तु बताया—इसमे आश्चर्य जैसी कोई बात नही है। अब तो विज्ञान भी सिद्ध करता है कि मस्तिष्क ही है, जो माँसपेशियो को नियन्त्रित करता है। मस्तिष्क जितना बलवान होगा उतना ही सूक्ष्म शरीर काम करेगा। जितनी शक्ति से हथौड़े का प्रहार किया जाता है उतनी ही गहरी चोट लगती है। उसी प्रकार शरीर हथौड़ा है और उसे शक्ति देने वाली मशीन तो मन या इच्छाशक्ति है। शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन इस बात पर है कि इच्छाशक्ति मे कितना बल है ? शरीर एक यन्त्र है। उसका उपयोग चाहे जैसे कर सकते है, इसके विपरीत यदि मन, शरीर और इन्द्रियो का दास होगा तो वह कुछ भी नही कर सकेगा।

श्री योगानन्द ने प्रश्न किया—क्या मै भी बाघ से लड़ सकता हूँ-इस पर उन्होने हँसते हुए कहा—भाई बाघ से कोई भी लड़ सकता है। पर अपनी लालसाओ, कामनाओ, वासनाओ, से लड़कर उन पर विजय पाना अति दुस्तर कार्य है। जो यह कर ले, समझ लो वह सैकड़ों बाघो को जीत चुका। अब मै भी उसी दिशा मे आ रहा हूँ, जो मुझे पहले ही करना चाहिए था, वह अब कर रहा हूँ। शक्ति प्रदर्शन मे तो मैने व्यर्थ ही इतना जीवन बिता दिया। इस प्रकार सोहंग स्वामी ने इच्छा शक्ति का महत्त्व तो स्पष्ट किया ही, उसके सदुपयोग की दिशा भी बतलाई।

परन्तु शुभ या अशुभ संकल्प एक साथ मनुष्य पर अपना प्रभाव नही डाल सकते। इन दोनो मे जो बलवान् होगा, उसी का प्रभाव पड़ेगा, क्योकि बलवान् संकल्प कमजोर को नष्ट कर देता है।

यदि हमारा मन बलवान् है और हम सद्प्रवृत्ति या शुभ स्थाई वृत्ति वाले है, हमारे संस्कारो मे शुभ प्रभाव प्रबल है, तो हम पर किसी बुरे विचार का प्रभाव नही पड़ सकता। हम पहाड़ पर एक चट्टान के सदृश अपने मन को दृढ और अटल बना ले, जिस पर आँधी, पानी, ठण्ड, गर्मी का असर बाह्य मे भले ही पड़े, परन्तु अन्तर मे नही पड़ता। ऐसी दृढ मानसिक स्थिति बना लेने पर कोई दुष्ट भाव हमारा कुछ नही बिगाड़ सकता। चाहे हमारे शत्रु हम पर अशुभ और दुष्ट संकल्प प्रेरित करते रहे, पर उनका प्रभाव नही के बराबर होगा।

दृढ मानसिक स्थिति उस शिला की तरह है जिस पर पानी की फटकार का कोई भी प्रभाव नही होता। इसी प्रकार शत्रु के अशुभ विचार हमारे चारो ओर कुछ समय तक विचरण करते रहेगे या सदैव ही विचरण करते रहे, पर उनका प्रभाव हम पर कुछ नहीं होगा।

मन मे किसी प्रकार का अशुभ संकल्प या विचार मत आने दीजिये। दूसरे के अशुभ या विरोधी विचारो को

ग्रहण न करने से वे पुनः वापिस भेजने वाले के पास लौट जाते है और उसी को हानि पहुँचाते है।

शुभ और अशुभ सकल्पो की तुलना देवताओं और राक्षसों से की जा सकती है। देवता हमारा भला करते है और राक्षस हमारी हानि करते है। इसलिए जो पुरुष उदार शुभ और परोपकारी सकल्प वाला है, उसे हम देवता कहकर पुकारते है। जो व्यक्ति अशुभ, दुष्ट और कटु सकल्प वाला है, उसे हम राक्षस के बराबर करते है।

कारण यह है कि मनुष्यः के जैसे विचार होते है वैसे भाव ही वह अपने शब्दों और कार्यों द्वारा व्यक्त करता है। अर्थात् उसमे दुष्ट सकल्प आने से वह कुवचन बोलता है और कुकर्म करता है, जिससे दूसरो को दुःख होता है।

शुभ सकल्प वाला पुरुष सदा सबसे प्रेम करता है। सदा मन, वचन और कर्म से सबका उपकार करता है। अपनी शुभ सकल्पयुक्त मीठी वाणी से सबको हर्ष देता है। अतः लोग उसे देवता-तुल्य मानते है।

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया।
विश्वेदेवा पुनीत मा जातवेदः पुनीति मा पुनातु मा।।

(ऋग् ९, ६७, २७)

''देवजन मुझे पवित्र करे। मननशील लोग विचार द्वारा पवित्र करे। सब पदार्थ मुझे सत् सकल्प दे। पवित्रता मेरा आधार हो। भगवान मुझे पवित्र करे।''

''सकल्पो की पवित्रता मनुष्य के समग्र जीवन को पवित्र और तृप्त बनाने वाली है।''

संकल्प शक्ति का आकर्षण

एक विद्वान का कथन है कि बलवान और कार्य के लिए तैयार विचार वाले मनुष्य के बहुत से हाथ होते है। अपने लिए उपयोगी हो सके ऐसी नजदीक की प्रत्येक वस्तु के ऊपर वह हाथ रखता है। अपने अनुकूल वस्तुओं को अपनी तरफ खींचने की उसमे आकर्षण शक्ति होती है।

पर्वत के शिखर पर स्थित एक किला जब फतह न किया जा सका तो एक सैनिक अधिकारी ने कहा कि ''यह किला हम नही जीत सकते। यह एक असम्भव कार्य है।''

महान सिकन्दर ने गर्जकर कहा—''दूर हटो, जो कोशिश करेगा उसके लिए कुछ भी असम्भव नही है।'' यह कहकर उसने एक सैन्यदल का स्वयं संचालन किया और थोड़ी ही देर में शत्रुओ को भगा दिया।

मिस्र पर आक्रमण करते समय जब नैपोलियन की सेना मे प्लेग फैला तो वह स्वयं बीमार सिपाहियो के पास जाकर पूछताछ करता। इस प्रकार वह यह प्रकट करता था कि उसके हृदय में डर नहीं है, जिससे स्वभाव भयभीत होने का नहीं है; वह प्लेग जैसी महामारी को भी हरा देता है। ऐसी दृढ़ इच्छाशक्ति शरीर को भी एक बड़ा आश्रय बन जाती है। उस समय मनुष्य ऐसे अद्भुत कार्य कर सकता है, जो अन्य लोगों को असम्भव जान पड़ते है।

पचपन वर्ष की आयु में अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट पर बीस लाख रुपये का कर्ज हो गया था। उन्होंने निश्चय किया कि उसे पूरा-पूरा चुकाना चाहिए। इस दृढ़ संकल्प से उनकी शारीरिक, मानसिक अन्य शक्तियों को बड़ा बल मिला और उनके शरीर के प्रत्येक तन्तु से यही ध्वनि निकलने लगी कि कर्ज अवश्य चुकाना चाहिए। वे लिखकर आमदनी करने और कर्ज चुकाने में लग गये और कुछ वर्षों में अपने उद्देश्य को पूरा करके दिखा दिया।

इगलम जेरल्ड को डाक्टरों ने बताया कि 'तुम जीवित नहीं रह सकते।' वह बोला- ''क्या मैं निराधार बालकों को ऐसे ही छोड़ जाऊँगा ? मैं नहीं मर सकता।'' इसके बाद वह बहुत वर्षों तक जीवित रहा। इसी प्रकार 'सैनेका' बहुत समय तक रोग-शय्या पर पड़े रहने के पश्चात् उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा कि मेरे मरने की बात को मेरा पिता सहन नहीं कर सकता था, इस भावना से मैंने जीवित रहने का निश्चय किया और प्राणघातक व्याधि को हटा देने मे समर्थ हुआ।

एक लेखक का कथन है कि जगत मे तीन प्रकार के मनुष्य होते है—'करूँगा', 'नहीं करूँगा' और 'कर नहीं सकता।' पहली प्रकार के सब कामों को पूरा कर डालते है, दूसरी प्रकार वालों को सब बातों का उल्टा फल मिलता है और तीसरी प्रकार के सदैव असफल होते है। आत्म-श्रद्धा में इतना बल है कि कोई कार्य असम्भव जान पड़ता है, उसको भी करने का जो दृढ़ निश्चय कर लेता है तो वह कार्य उसके जीवन मे कभी न कभी पूरा हो ही जाता है।

फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक बाल्जाक का पिता उसके लेखन व्यवसाय के विरुद्ध था। उसने उसे समझाया कि साहित्य-जीवन मे मनुष्य तो भिखारी बन जाता है या राजा हो जाता है। लड़के ने उत्तर दिया कि ''अच्छा, तब मै राजा ही बनूँगा।'' इस पर उसके माँ-बाप ने उसको किसी प्रकार की सहायता न देकर अपने परिश्रम के आधार पर ही छोड़ दिया। वह दस वर्ष तक संकट और गरीबी के साथ लड़ता रहा और अन्त मे उसने महान विजय प्राप्त की।

एक बढ़ई किसी मजिस्ट्रेट की मेज को बहुत अधिक सावधानी से तैयार कर रहा था। किसी ने पूछा कि तुम इसे इतने परिश्रम से क्यो बना रहे हो ? बढ़ई ने उत्तर दिया कि ''जब मै मजिस्ट्रेट होकर इस मेज पर

बैठकर काम करूँ तो मुझे यह सुन्दर लगे।" कुछ वर्ष बाद वह वास्तव मे मजिस्ट्रेट बनकर उस मेज पर बैठा।

अमरीका के महान जन-सेवक गैरीसन ने अन्यायी रूढ़ियो का उच्छेद करने के लिए जब 'लिबरेटर' नाम का सामयिक पत्र प्रकाशित किया तो उसके प्रथम अंक मे ही उसने लिखा था—"सच्चे दिल से मै यह कार्य कर रहा हूँ। मेरे हृदय मे किसी प्रकार की शका नहीं है। मै कभी किसी प्रकार का बहाना करके एक इन्च भी पीछे नही हटूँगा और मेरी बात को सब कोई सुनेगे।" ऐसी अचल निष्ठा से गैरीसन का चरित्र विकसित हुआ था। इतना ही नही लिंकन, ग्राण्ट आदि जो बहुसंख्यक महा आत्माएँ प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुई, वे भी ऐसे ही दृढ निश्चय वाली थीं। इस प्रकार की इच्छाशक्ति होना वास्तव मे महत्त्व की बात है।

दृढ संकल्प शक्ति वाले पुरुष मरते हुए भी उस बात से पीछे कदम नही हटाते जिसे उन्होंने सच मान लिया है। फ्रांस-इंग्लैण्ड के युद्ध के अन्तिम दिनो मे 'छोटा पिट' इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री बना और उसने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के विरुद्ध जोरदार अभियान आरम्भ किया। उसे बहुत-सी सफलतायें प्राप्त हुईं परन्तु उधर भी महान नैपोलियन जैसा व्यक्ति उसका मुकाबला कर रहा था जिससे अन्त मे इंग्लैण्ड का प्रधान सेनानायक वीरगति को प्राप्त हुआ। इस घटना से 'पिट' को बड़ा आघात पहुँचा। नैपोलियन की विजय का समाचार सुनकर उसने योरोप के नक्शे की तरफ उँगली उठाते हुए कहा—"इस नक्शे को जला दो, अब दस वर्ष तक उसकी आवश्यकता नही पड़ेगी।" यह कहकर वह मूर्छित हो गया। उसे केवल एक बार होश आया तो उसके मुख से धीरे से ये ही शब्द निकले—'हाय, मेरा देश।' वह इतना बुद्धिमान था कि समय की घटनाओ की पूरी शक्ति और महत्त्व का ठीक अनुमान लगा लेता था। उसके कथनानुसार ठीक दस वर्ष बाद वाटरलू के युद्ध मे अँग्रेजो ने नैपोलियन को हराकर ब्रिटिश साम्राज्य की पताका पुनः संसार भर में फहरा दी।

विकासवाद के आचार्य डार्विन की इच्छाशक्ति कैसी बलवान थी ? वह हमेशा बीमार रहता था, दुःख पर दुःख उसे उठाने पड़ते थे। वह जितना सहन करता था उसे उसकी स्त्री के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था। उसके पुत्र ने लिखा है कि चालीस वर्ष तक एक भी दिन ऐसा नही निकला, जबकि उसकी तबियत ठीक रही हो। पर इन चालीस वर्षो मे वह लगातार इतना काम करता रहा कि अच्छे-अच्छे मन और शरीर वाले भी उतना काम नही कर सकते। किसी भी विषय मे पूर्णत. संलग्न हो जाने की उसमे अद्भुत क्षमता थी। वह हार जाने को निर्बलता का चिन्ह मानता था और इसलिए पराजय को सहन नहीं कर सकता था। उसकी एक प्रिय कहावत यह थी कि "आग्रहपूर्वक करने वाला ही कार्य को सिद्ध कर सकता है।" उसके अद्भुत धैर्य और साहस का प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि 'प्राणियो की उत्पत्ति' ग्रन्थ की सामग्री इकट्ठी करने मे उसे बीस वर्ष का समय लगा और 'मनुष्य का विकास' तीस वर्ष तक निरन्तर श्रम करने पर लिखा जा सका।

एक प्राचीन लेखक दृढ़ संकल्प शक्ति के विषय मे जो लिख गया है, वह आज भी सर्वथा सत्य जान पड़ता है कि 'विश्वास मनुष्यो के ऊपर विजय प्राप्त करता है। वह उनमे ऊपर ही नहीं भीतर भी विजय प्राप्त करता है। एक बलवान हृदय की इच्छा के आगे हजारो काँप जाते है। एक छोटा व्यक्ति भी यदि निर्भय होकर निश्चय करले तो उससे संघर्ष का स्वरूप ही बदल जाता है और उसे देखकर भागने वाले बड़े-बड़े व्यक्ति पुनः लौटकर जूझने लग जाते है।"

जीवन-निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र मे संकल्प शक्ति को विशिष्ट स्थान मिला है। यो प्रत्येक इच्छा एक तरह की संकल्प ही होती है किन्तु तो भी सब इच्छाये संकल्प की सीमा का स्पर्श नही कर पाती। उनमे पूर्ति का बल नही होता, अत. वे निर्जीव मानी जाती है। किन्तु वही इच्छाएँ बुद्धि, विचार और दृढ भावना द्वारा जब परिष्कृत हो जाती हैं तो संकल्प बन जाती है। ध्येय सिद्धि के लिए इच्छा की अपेक्षा संकल्प मे अधिक शक्ति होती है। संकल्प उस दुर्ग के समान है, जो भयंकर प्रलोभन, दुर्बल एव डाँवाडोल परिस्थितियो से भी रक्षा करता है और सफलता के द्वार तक पहुँचने में मदद करता है। शास्त्रकार ने "संकल्पमूलः कामः" अर्थात् कामना पूर्ति का मूल सकल्प बताया है। इसमे सन्देह नही है। प्रतिज्ञा, नियमाचरण तथा धार्मिक अनुष्ठानो से भी वृहत्तर शक्ति संकल्प मे होती है।

महान विचारक एमर्सन ने लिखा है, "इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य की सकल्प शक्ति के सम्मुख देव, दनुज सभी पराजित होते रहे है।"

उत्कृष्ट या निकृष्ट जीवन यथार्थतः मनुष्य के विचारो पर निर्भर है। कर्म हमारे विचारो के रूप है। जिस बात की मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है, वह अपनी पसन्द या दृढ इच्छा के कारण गहरी नीव पकड़ लेती है, उसी के अनुसार बाह्य जीवन का निर्माण होने लगता है।

विचार यों अव्यक्त मन से भी प्रस्फुटित होते है, किन्तु वे प्रभावशाली नही होते, अतः संकल्प भी एक तरह की विचार-उत्पादक शक्ति है। इस तरह के विचार क्रमिक एवं योजनाबद्ध होते है, अव्यक्त विचारो की अपेक्षा उनकी शक्ति भी अधिक प्रखर होती है। इसलिए जो काम विशेष संकल्प के साथ किये जाते है वे प्रायः असफल नही होते।

यहाँ सकल्प शक्ति के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। हवा के आघात से जिस प्रकार जल मे तरंगे उठा करती है और एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ा करती है। जो लहरें अधिक शक्तिशाली होती है, वे अधिक वेग और कम्पन के साथ किनारो से थपेड़े

मारती है, उसी तरह मन मे भी शुभ-अशुभ विचारो के कम्पन या तरग उठा करती है जो सूक्ष्म आकाश मे सुदूर तक प्रसारित होती रहती है, प्रत्येक विचार का एक निश्चित स्वरूप होता है जो दूसरे सजातीय प्रवाहो के साथ मिलकर और भी शक्तिशाली बनता रहता है। इस तरह के अनेक संकल्प-विकल्प इस सूक्ष्म जगत मे विद्यमान है पर उनका लाभ मनुष्य को तब मिल पाता है जब वह विशेष मनोयोगपूर्वक किसी एक इच्छा की पूर्ति की ओर प्रवृत्त होता है। इस तरह का मस्तिष्क उन सजातीय विचार-तरगो को सूक्ष्म आकाश से उसी तरह खीचता है जैसे—भूखा अजगर साँस की तेजी के साथ छोटे-छोटे अनेक जीव-जन्तु, कीट-पतगो को खीच लेता है। सजातीय तत्वो की एक अदृश्य शक्ति काम करने लगती है और सफलता के अनेक मार्ग अपने आप सूझने लगते है। ऐसा लगता है कोई दैवी-शक्ति आपका साथ दे रही है किन्तु वह शक्ति सकल्प की ही होती है, जो मस्तिष्क मे अनेक पुरुषो की वैसी ही कल्पनाएँ तथा सूझ-बूझ ढूँढ-ढूँढकर लाती रहती है और विचारवान व्यक्ति उनमे से अपनी परिस्थितियो के अनुरूप साधनो को ग्रहण करता हुआ चला जाता है। इससे सफलता प्राप्त करने मे कुछ अधिक देर नही लगती ।

इस ससार मे भलाई अधिक है। अत: भले विचारो के सूक्ष्म प्रवाह भी सूक्ष्म आकाश मे अधिक विद्यमान है, अत अच्छे काम को करने मे धन की आवश्यकता उतनी नही, जितने शुद्ध हृदय और सात्विक सकल्प की आवश्यकता होती है। जब सकल्प दृढ हो जाता है और अध्यवसाय मे भी कुछ शिथिलता नही रहती तो उद्देश्य की सफलता भी निश्चित हो जाती है। निश्चयात्मक विचारो का कार्य-सिद्धि मे बड़ा महत्व है।

एक बार खूब अच्छी तरह से विचार करने के बाद कोई सकल्प कर ले और फिर उसे छोड़े नही तो कैसा ही कठिन कार्य हो उसमे भी सफलता की बहुत कुछ सम्भावनाएँ बढ जाती है।

पर इसके लिए उचित उद्योग तथा साध्य की तत्परता होना भी आवश्यक है। इसके बिना सकल्प मे वह सामर्थ्य नही आ पाती जो सफलता के लिए अभीष्ट होती है। जिस बात का सकल्प लिया जाय उस पर उसी क्षण से अमल भी होना चाहिए। विचार और क्रिया दोनो के सम्मिश्रण से ही सफलता मिलती है।

मान लीजिए आपने संकल्प लिया है कि इस वर्ष अच्छे नम्बरो से परीक्षा पास करेगे, तो इसके लिए आपको प्रात:काल उठना ही पड़ेगा, पढाई भी करनी पड़ेगी। इसमे ढील देने से आपकी कामना अधूरी ही रहेगी। दृढ संकल्प मे मनुष्य की मति स्थिर और शरीर क्रियाशील बना रहना चाहिए। यदि हमारा मन बलवान है और कार्य करने की लगन है तो कोई अशुभ या अवरोध विचार सफलता के रास्ते मे अपना प्रभाव नही डाल सकता। अपने मन को तूफानी आघातो से भीषण, गर्मी-बरसात, ओलो के बीच अडिग अटूट रहने वाली चट्टान की तरह बनाले, तो परिस्थितियाँ और सासारिक अड़चने आपका कुछ भी बिगाड़ नही सकेगी।

इग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री सर. विन्स्टन चर्चिल ने अपनी डायरी मे लिखा है "मेरे पुन: स्वस्थ हो जाने का कारण कोई नई दवा नहीं थी। दवा का काम तो मेरी दृढ सकल्प शक्ति ने किया। मुझे दृढ विश्वास था कि परमात्मा ने अभी मेरे लिए कुछ काम शेष रखा है और उसे मुझे पूरा करना ही है।" कहते है यह बात उन्होने अपनी पक्षाघात की बीमारी के समय सन् १९४५ मे लिखी थी, तब उनके प्राय: सभी मित्रो ने यह विश्वास कर लिया था कि उनके दाहिने हाथ का पक्षाघात ठीक नही होगा। किन्तु चर्चिल की संकल्प शक्ति के आगे पक्षाघात को झुकना ही पड़ा।

साहस और निश्चयात्मक विश्वास संकल्प के दो पहलू है, इन्ही से मनुष्य की जीत होती है। साहस निरन्तर आगे बढते रहने की प्रेरणा देता है। इसमे कर्म की गति बनी रहती है। निश्चयात्मक विचार डाँवाडोल परिस्थितियो मे भी सन्तुलन बनाये रहते है, इस तरह से मनुष्य अविचल भाव से अपने इच्छित कर्म पर लगा रहता है।

स्वास्थ्य की तरह शिक्षा, उद्योग, साधना आदि अनेक क्षेत्रो मे संकल्प शक्ति से द्रुतगामी सफलता अर्जित की जा सकती है।

किन्तु यह न भूलना चाहिए कि कभी-कभी परिस्थितियो की गम्भीरता का संकल्प के साथ सघर्ष हो जाता है। अपने साधनो को दृष्टि मे रखकर भी जो संकल्प लिये जाते है, उनमे भी आकस्मिक रुकावटे आ सकती है। ऐसी अवस्था मे मनुष्य की सारी विचार शक्ति लड़खड़ा जाने का खतरा रहता है। ऐसे अवसर जब कभी आये उस समय दैवी-सकल्प को महत्तर समझकर धैर्य करना ही लाभदायक होता है। घबराहट की-सी बात क्यो ? आगे के लिए फिर कोई नया मार्ग तलाश कर लेना चाहिए। विवशता या विभ्रम से बचने के लिए यह पहले अनुमान कर लेना ही ठीक है कि आप जो कार्य करने जा रहे है या जिस बात को आप उठा रहे है, उसके पूरा करने की कितनी शक्ति आप मे है। यदि सकल्प करते रहे किन्तु तदनुसार कार्य न हो तो आत्म शक्ति का ह्रास हो जाता है, अब कोई संकल्प लिया जाय तो, जहाँ तक बन पड़े उसे पूरा ही करके छोड़ना चाहिए। हाँ, परिस्थितियाँ ऐसा असम्भव बना दे, तो भिन्न बात है।

अत. प्रथमत संकल्प अपनी यथार्थ स्थिति और उपलब्ध साधनो को दृष्टि मे रखकर ही लेना चाहिए। दूसरे, परिस्थितियो के कारण उनकी पूर्ति सम्भव नही हो, तो उस पर अड़ने की बजाय, परिस्थितियों के अनुरूप सकल्प एव कर्म की नई दिशा-नीति निर्धारित करनी चाहिए।

संकल्प की दृढ़ता—विचारों की गहराई से

कर्मयोग के लिए अपने विचारतन्त्र को सही करना-असम्बद्ध और असम्बद्ध कल्पनाओ मे उड़ते-फिरने की अस्त-व्यस्तता को निरस्त करना आवश्यक है। भविष्य के सुनहरे सपने देखते रहने की अपेक्षा यही उचित है कि आज की समस्याओ को—आज के साधनो से हल करने का ताल-मेल बिठाया जाय। कल जब अधिक अच्छी परिस्थितियाँ सामने होगी तो कल उससे आगे की बात सोची जा सकती है। भूतकाल चला गया वह लौट नहीं सकता। इसलिए "बीती ताहि बिसार दे" की उक्ति को सही मानकर गड़े मुर्दे उखाड़ने की बात भुला देने मे ही बुद्धिमत्ता है। भूतकाल की समीक्षाओ का लाभ इतना ही है कि पिछले अनुभवो से लाभ उठा लिया जाय। बीती घटनाओ की बात सोचकर रंज करने और पछताने मे वर्तमान भी नष्ट होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण समय वर्तमान ही है। भविष्य की कल्पनाओ मे उड़ना भी भूत चिन्तन की तरह ही निरर्थक है। कहते है बुड्ढे भूतकाल की बाते सोचते और बच्चे भविष्य की कल्पनाओ मे उलझे रहते है। प्रौढ़ावस्था की बुद्धिमत्ता इसी मे है कि वर्तमान को देखा समझा जाय और प्रस्तुत अवसर का अधिक सदुपयोग करने मे तत्पर हुआ जाय। हमारा चिन्तन यथार्थवादिता पर निर्भर होना चाहिए और भावी प्रगति के लिए आज जो किया जाना सम्भव है, उसी पर ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए।

आवेशो से जितना बचना सम्भव हो उतना बचना चाहिए व मन को अव्यवस्थित भाग-दौड़ करने से रोकना चाहिए। मन की अव्यवस्थित भाग-दौड़ का तात्पर्य एक ही है कि उसे कोई महत्त्वपूर्ण काम सुनिश्चित रूप से सौपा ही नही गया। यदि सौपा जाय तो वह अपनी अस्त-व्यस्तता छोड़कर निर्धारित दिशा मे कार्य संलग्न बना रहेगा। वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार, शिल्पी, व्यवसायी, कृषक आदि अपने को नियत निर्धारित काम मे लगाये रहने का अभ्यास करते है। फलत· चिन्तन क्रम अस्त-व्यस्तता मे भ्रमण नही करता और बिना ननुनच किये अपने निर्धारित क्रम मे जुटा रहता है।

आरम्भ मे अनगढ़ मन को एकाग्र करना थोड़ा कठिन पड़ता है, पर यह कठिनाई तो हर नये काम मे आती है। हल मे चलने के लिए नया बछड़ा सहज ही कहाँ रजामन्द हो जाता है। नये घोड़े ताँगे मे जुतते समय कितनी गड़बड़ी फैलाते है। यदि मालिक लोग इस असहमति से निराश होकर अपना प्रयास छोड़ दे तो फिर उनका बछड़ा पालना और घोड़े खरीदना ही व्यर्थ है। तब वे हल जोतने और ताँगा चलाने के लाभ से वंचित ही रहेंगे। हिम्मत के साथ देर तक डाँट-पुचकार कर लगे ही रहने पर सरकस के जानवर कैसे-कैसे करतब दिखाने लगते है। फिर कोई कारण नही कि मन को निर्दिष्ट दिशा मे ही अपनी चिन्तन प्रक्रिया केन्द्रित किये रहने के लिए अभ्यस्त न किया जा सके।

उथले विचार ऊपरी सतह पर घूमते रहते है और गोता मारकर कीमती मोती पाने मे सफल नही होते। किसी भी विषय पर जितनी गम्भीरतापूर्वक उसके पक्ष प्रतिपक्ष का मन्थन करते हुए निष्कर्ष निकाला जायेगा उतनी ही वस्तुस्थिति स्पष्ट रूप से सामने आवेगी। एकांगी-एकपक्षीय-विचार भावुकता कहलाते है। होना यह चाहिए कि पक्ष और विपक्ष के दोनो विचार काम करें-सरलता और कठिनाई की दोनो तस्वीरे सामने रखी जाये और सोचा जाय कि अधिक अनुकूलता उत्पन्न करने के लिए क्या-क्या करना होगा और उसके लिए क्या साधन जुटाने होंगे? मात्र कठिनाइयों की बात सोचकर किसी प्रयास के लिए साहस न करना जितना अबुद्धिमत्तापूर्ण है, उतना ही यह भी उपहासास्पद है कि अभीष्ट मनोरथ को चुटकी बजाते सफल होने की बाल-बुद्धि अपनाई जाय। ऐसे उतावले लोग आये दिन असफलता का मुँह देखते, दुर्भाग्य का रोना रोते पाये जाते है।

हर छोटा-बड़ा काम आवश्यक मनोयोग, परिश्रम, साधन और समय की अपेक्षा रखता है। उन्हे जुटाने के लिए प्रबल-पुरुषार्थ करना पड़ता है। जिनमे इसके लिए धैर्य, साहस और संकल्प होगा वे ही कुछ कर सकने और पा सकने मे सफल होंगे। योग्यता का अभाव और साधनो की कमी पूरी करने के लिए घनघोर प्रयास करने को ही सफलता की पदयात्रा कहते है। उछलकर क्षणमात्र मे आकाश चूमने के आतुर लोगो ने कभी कुछ कहने लायक सफलता पाई हो—ऐसा देखने-सुनने मे नही आया। क्योंकि प्रखर संकल्प को ही सफलता की जननी कहा गया है। यह इच्छाशक्ति का ही सघन रूप है। इच्छा-आकांक्षा ही घनीभूत होकर व्यक्ति को कर्म मार्ग पर अग्रसर करती है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। किसी भाप से चलने वाली रेलगाड़ी को पटरी पर दौड़ाने के लिए भाप आवश्यक है। यद्यपि उसके साथ चालक की इच्छा-आकांक्षा और नियन्त्रण दक्षता भी आवश्यक है। चालक की कुशलता और दक्षता को इच्छाशक्ति का प्रतिरूप करें तो अकेले रेलगाड़ी और चालक होना ही पर्याप्त नही है। उसके लिए वाष्प से उत्पन्न की गई शक्ति, जिसके कारण कि रेल के पहियो मे गति आती है का होना भी अति आवश्यक है।

मन को रोकें नहीं संकल्पवान बनायें

मनोविज्ञानी फ्रायड अपनी पत्नी और बच्चे समेत एक उद्यान मे सैर करने गये। बैठे गप-शप कर रहे थे। इतने मे एक छोटा चार वर्ष का बच्चा गायब हो गया। निगाह दौड़ाई तो कही भी दिखाई नही दिया। पत्नी बहुत घबराने लगी और ढूँढने के लिए आतुरता प्रकट करने लगी।

सुनिश्चित संकल्पों की महान उपलब्धियाँ

कठिनाइयों से डरें नहीं—लड़ें

प्रकृति के कुछ नियम है, जिनके अनुसार यह संसार चलता है। जड़ जगत् ही नही चेतन प्राणियो का नियमन-नियन्त्रण भी प्रकृति के उन नियमो के अनुसार होता है। इन नियमो के या प्रकृति के विधान के अनुसार स्थिति मे परिवर्तन आते रहना एक स्वाभाविक क्रम है। मनुष्य की स्थिति में भी परिवर्तन होते रहना प्रकृति नियमो के अन्तर्गत आता है। जीवन मे उतार-चढ़ाव आना प्रकृति विधान के अनुसार स्वाभाविक है। इसे मनुष्य मन की दुर्बलता ही कहा जायेगा कि वह उतार-चढ़ाव की नियति को स्वीकार नही कर पाता और अनुकूल परिस्थितियो मे सुख का अनुभव करता है तो प्रतिकूल परिस्थितियो मे दुःखी होता, पीड़ा अनुभव करता है।

उस दुर्बलता के कारण ही मनुष्य ने कठिनाई, मुसीबत, कष्ट आदि समानार्थी शब्दो की रचना की और सदैव यह चाहा कि किसी न किसी प्रकार इनसे बचते रहा जाये। जबकि कठिनाइयाँ जीवन प्रवाह का एक सहज स्वाभाविक क्रम है जो आता है, कुछ देर रुकता है और बहकर चला जाता है। यदि इस सत्य को स्वीकार कर लिया जाए तो कठिनाइयाँ भी अपने लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है और उनका सहयोग जीवन तथा व्यक्तित्व के विकास में किया जा सकता है। किन्तु इस सत्य को स्वीकार नही किया . जाता अथवा यह बात गले नही उतरती इसलिए कठिनाइयाँ विकरालता बनकर मनुष्य को डराती, दबाती और विपण्ण करती है। वस्तुतः कठिनाइयाँ इतनी भयकर नही होती, जितना कि उन्हे समझा जाता है। जिन प्रतिकूल परिस्थितियो मे कई लोग रोते-कलपते है, उन्हीं प्रतिकूलताओ मे दूसरे व्यक्ति नई-नई प्रेरणाएँ प्राप्त कर सफलता क[illegible] करते है।

से ही उनका स्वरूप बनता है। निर्बल मनोभूमि तो अपनी कल्पनाजन्य कठिनाइयो मे ही अशान्त हो जाती है, जबकि मनोबल सम्पन्न व्यक्ति कठिनाइयो को सहज भाव से स्वीकार करते हुए आगे बढ़ते है। सन्तुलित रहने वाले व्यक्तियो की जीवन-यात्रा इसी सहज गति से आगे बढ़ती चलती है।

कठिनाइयो में, प्रतिकूल परिस्थितियो में सन्तुलित किस प्रकार रहा जाए ? इसके उत्तर मे अपनी मन-स्थिति को सुधारने, सन्तुलन साधने की आवश्यकता ही बताई जा सकती है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि परीक्षा की कसौटी पर कसे बिना कोई भी वस्तु अपनी उत्कृष्टता सिद्ध नही कर सकती। सोना अग्नि में तपकर ही शुद्ध बनता और निखरता है। आग की गोद मे पिघलाकर ही लोहा साँचे मे ढलने योग्य बनता है। इसी प्रकार मनुष्य भी कठिनाइयो की आग मे तप-गलकर ही उत्कृष्ट, सौन्दर्ययुक्त, प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है। अस्तु, कठिनाइयाँ मनुष्य के विकास मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उनके साथ खेलने पर इच्छाशक्ति प्रखर बनती है और उन्ही मे व्यक्तित्व की परख होती है।

जो व्यक्ति कठिनाइयों या प्रतिकूलताओं से घबड़ाकर हिम्मत हार बैठा, वह हार गया और जिसने उनसे समझौता कर लिया, वह सफलता की मंजिल पर पहुँच गया। इस प्रकार हार बैठने, असफल होने या विजयश्री और सफलता का वरण करने के लिए और कोई नही मनुष्य स्वय ही उत्तरदायी है। चुनाव उसी के हाथ मे है कि वह सफलता को चुने या विफलता को। यदि वह चाहे तो कठिनाइयो को वरदान बना सकता है और चाहे तो अभिशाप भी। कठिनाइयाँ वरदान बनती है या अभिशाप यह इस बात पर निर्भर करता है कि मनुष्य उनसे समझौता करता है, उनका स्वागत करता है अथवा

जो मनुष्य के व्यक्तित्व को तराशकर चमका दिया करती हैं। उनका जीवन मे यही अस्तित्व है, जो श्रम का और भोजन का।

देखा जाय तो श्रम भी क्या है ? श्रम भी एक प्रकार की कठिनाई है। कठिनाई अर्थात् प्रतिकूलता। रोटी खाना है तो आटा गूँधने से लेकर तवे पर सेकने और आग पर फुलाने तक न जाने क्या-क्या करना पड़ता है ? जो चाहे वे इसे कठिनाई भी कह सकते है क्योंकि सुविधा तो सीधे थाली मे रोटी आ जाने से ही बन पड़ती है। उपार्जन के लिए श्रम, स्वास्थ्य के लिए श्रम, शिक्षा के लिए श्रम प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य या उपलब्धि के लिए श्रम करना पड़ता है। सीधे और सहज कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अतः श्रम को कठिनाई भी तो कहा जा सकता है। परन्तु श्रम और कठिनाई मे अन्तर यह है कि श्रम के प्रति सहज स्वीकार का भाव होता है, जबकि कठिनाई के प्रति असहिष्णुता का भाव रहता है। कठिनाई थोड़े अधिक श्रम की माँग करती है और श्रम करने मे थोड़ी कम कठिनाई सहनी पड़ती है। दोनो मे मात्रा भेद है, गुण या स्वरूप मे कोई विशेष अन्तर नही है।

कठिनाइयाँ अथवा प्रतिकूलताएँ चरित्र निर्माण के लिए भी उपयोगी हैं। उत्तराधिकार मे जिन्हे सम्पन्नता प्राप्त होती है, उनमे से अधिकांश व्यक्तियो को दुर्व्यसनो और विलासिता मे फँसे देखा जा सकता है। किन्तु जो कठिनाइयो मे जूझ रहा है, उसे संसार की फिजूल बातो के लिए अवकाश कहाँ ? कष्ट और कठिनाइयाँ मनुष्य के अहंकार को नष्ट करके, उनमें विनम्रता तथा श्रद्धा भक्ति भर देती है। इतना ही नही उसे स्वस्थ और सुदृढ़ भी बनाती है। इस रूप मे कठिनाइयों को वरदान ही कहा जाना चाहिए। परिश्रमी, पुरुषार्थी और साहसी व्यक्ति कठिन परिस्थितियों मे अनेक विभूतियाँ अर्जित कर लेते है। किन्तु जो कायर है, क्लीव है, आत्मबल से रहित है, वे प्रतिकूलताओ को देखकर डर जाते है तथा हाय-हाय करते हुए जीवन के दिन पूरे करते है।

छान्दोग्य उपनिषद् मे कहा गया है कि—"जब तक यह शरीर बना हुआ है, तब तक सुख और दुःख का निवारण नही हो सकता।" कठिनाइयाँ जीवन का उसी तरह अंग है जिस तरह दिन के बाद रात्रि का होना, ऋतुएँ बदलते रहना। अत. आवश्यकता इस बात की है कि कठिनाइयो या प्रतिकूलताओ को अपने ऊपर हावी न होने दिया जाये और उनके बीच से रास्ता निकालकर आगे बढ़ते रहा जाए।

कठिनाइयों को अपने ऊपर हावी न होने देने का एक मार्ग व्यस्त रहना है। मनुष्य के व्यस्त रहने से कठिनाइयों के प्रति शोक, चिन्ता एवं उद्विग्नता मे डूबने के लिए समय ही नही मिलेगा। स्वामी विवेकानन्द ने एक स्थान पर लिखा है कि 'व्यस्त मनुष्य को आँसू बहाने के लिए भी समय नही मिलता।' यह ठीक भी है, जो व्यस्त रहेंगे, उन्हे कठिनाइयो के सम्बन्ध मे सोच-सोचकर दुःखी होते रहने का अवकाश ही कहाँ रहेगा ? इसके अतिरिक्त इन्हे जीवन मे एक सहज क्रम मानकर भी निश्चिंत रहा जा सकता है। यह सोचकर भी प्रसन्न हुआ जा सकता है कि आपत्तियो का झंझावत नरसिंहो को झकझोरकर, उनका प्रमाद तोड़कर उन्हे पुरुषार्थ के लिए खड़ा कर देता है।

विपत्तियाँ, प्रतिकूलताएँ अथवा कठिनाइयाँ जीवन का सहज स्वाभाविक क्रम है। उनसे प्रभावित होना हो तो इस रूप में होना चाहिए कि वे मनुष्य को शिक्षा देने के लिए आती है, जाती है और आती रहेगी। इसलिए उनसे न तो भयभीत होने की आवश्यकता है और न ही उनसे भागने की।

आत्मविश्वासी सदैव सफल होता है

एक साधारण परिवार मे पलकर अपनी योग्यता, लगन व पुरुषार्थ के बल पर बैंजामिन डिजरायली ब्रिटेन के पार्लियामेन्ट मे सदस्य चुने गए, तो धनी परिवार से आये सांसद उन्हे बड़ी उपेक्षा से देखने लगे। न जाने क्यों पुराने सांसद उन्हें अपने पास तक नही फटकने देते। शायद इसलिए कि डिजरायली का वेष-विन्यास अथवा रहन-सहन राजसी नही था। वे साधारण वस्त्र पहनते और गरीब लोगो की तरह रहते। अर्थ प्रधान दृष्टिकोण वाले लोग गरीब व्यक्ति का क्यो कर सम्मान करते ? उलटे उनके साथी सांसद उनकी इतनी उपेक्षा करते कि जब वे सदन मे बोलने के लिए उठते थे, तो उन्हे बोलने तक नही देते लेकिन इन परिस्थितियो मे भी डिजरायली का मनोबल नही डिगा। जब उनके भाषणो मे व्यवधान उपस्थित किया जाता तो वे कहते, 'आपको एक दिन मेरी बाते अवश्य सुननी पड़ेगी।'

यह डिजरायली नही उनका आत्मविश्वास बोल रहा था। उन्हे अपनी आन्तरिक शक्तियो पर पूरा विश्वास था। वे अपना उचित मूल्यांकन करना जानते थे। भविष्य के सम्बन्ध मे उनके सामने एक सुनिश्चित योजना थी और उस योजना को भी दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए वे कृत संकल्प थे। इसी का परिणाम था कि वे अपने प्रयत्न और परिश्रम के बल पर वे एक दिन ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री बन गये। लोगो ने उनके प्रति, उनकी योग्यताओ के प्रति इतना विश्वास व्यक्त किया, उन्हे इतना ठीक-ठीक पहचाना कि वे ब्रिटेन के सफल तथा योग्यतम प्रधानमन्त्री सिद्ध हुये। पहले जो लोग उनका उपहास किया करते थे, वे ही उनके प्रशंसक बन गये और उनका गुणगान करने लगे।

यदि डिजरायली अपने साथियो द्वारा की जाने वाली उपेक्षा से, उनके द्वारा हुए उपहास से हतोत्साहित होकर चुपचाप बैठ जाते, तो ससार उन्हे उस रूप मे नही जान पाता, जिस रूप मे कि आज जानता है। उनकी सफलता

आस्तिकता है। ऐसे आस्तिक उन ढर्रों पर चलने वाले व्यक्तियों से अलग होते है, जो कभी इस शक्ति स्रोत को उभारने का प्रयास भी नही करते।

परमात्मा ने मनुष्य को इस संसार मे उन विभूतियो से विभूषित कर भेजा है, जो अन्य प्राणियो को प्राप्त नही है। उन विभूतियो का उपयोग कर ही वह आदिम काल की जंगली पिछली स्थिति से विकसित होकर आधुनिकतम सुविधा-साधनो का विकास कर सका है। निश्चित ही सभ्यता और संस्कृति के विकास मे थोड़े बहुत गिने-चुने प्रतिभाशाली व्यक्तियो का योगदान रहा है। अधिकांश व्यक्ति तो सामान्य क्रम से ढर्रे का जीवन ही व्यतीत करते रहे है। उन्हे अपने भीतर निहित शक्तियो और सम्भावनाओ पर विश्वास ही नहीं होता और वे दीन-हीन जीवन जीते रहते है। कई लोगो की मान्यता रहती है कि सफलता किन्हीं सौभाग्यशाली व्यक्तियो को ही प्राप्त होती है तथा उन्हे जन्म से ही अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती है, जिनमे आगे बढ़ने के अवसर अनायास ही प्रस्तुत होते रहते है।

इस तथ्य को भूल जाना चाहिए कि अनुकूल परिस्थितियाँ और आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करने वाली पृष्ठभूमि किन्ही गिने-चुने लोगो को ही प्राप्त होती है, जबकि अधिकांश व्यक्तियो को अपना मार्ग स्वयं खोजना पड़ता है और स्वयं के बलबूते पर ही प्रगति पथ पर अग्रसर होना पड़ता है।

प्रस्तुतः सफलता या प्रगति न अनुकूल परिस्थितियो पर निर्भर करती है और न उपयुक्त अवसरो पर। सफलता बहुत कुछ व्यक्ति के अपने आत्म-विश्वास और उस आधार पर संचित किए गए आत्मबल पर ही निर्भर करती है। यदि अपने भीतर, अपनी शक्तियो के प्रति विश्वास कूट-कूटकर भरा हो तो कदाचित ही किसी को असफलताओ का सामना करना पड़े। असफलताओ का सामना तभी करना पड़ता है, जब सामर्थ्य और साधनो का विचार न करते हुए ऐसे कदम उठा लिए जाते है, जो विचारशीलता और विवेक की दृष्टि से उपयुक्त नही कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त आत्मविश्वास का अभाव भी सफलता का एक कारण है। आत्मविश्वास का अर्थ अनियन्त्रित भावुकता नही है, वरन् यह उस दूरदर्शिता का नाम है जिसके साथ संकल्प और साहस भी जुड़ा रहता है। ऐसे आत्मविश्वासी जो भी काम करते है, उसमे न तो ढील-पोल होती है और न ही अनुत्तरदायित्व। इस स्तर के आत्मविश्वास को लेकर जो भी कार्य किये जाते हैं, उनमे पूरा मनोयोग, तन्मयता, तत्परता तथा परिश्रम का समावेश रहता है।

नीति को अपनाकर कई व्यक्ति प्रतिकूलताओ [illegible] प्रगति कर चुके है। अमेरिका के प्रसिद्ध अब्राहम लिंकन का नाम ऐसे व्यक्तियो मे लिया जा सकता है, जिन्होने प्रतिकूल परिस्थितियो मे रहते हुए भी सफलता के शिखरों को स्पर्श किया। उनका पालन-पोषण उनकी सौतेली माँ ने किया था। गरीबी और कठिनाइयो के बीच रहते हुए उसने अपने बेटे को ऐसी प्रेरणाएँ दीं और उसके अन्तःकरण मे ऐसे बीज बोये, जिनके अंकुर लिंकन की शिक्षा और समझ को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी ऊँचा उठाते चले गए। उनमे पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने का ऐसा भाव हुआ कि वे पुस्तके प्राप्त करने के लिए मीलो पैदल चलकर जाते और अपने मित्रो से पुस्तकें माँगकर लाते। पढ़ने के बाद उसी प्रकार पुस्तक को वापस करने के लिए वापस जाते।

लक्ष्य के प्रति निष्ठा, लगन और तन्मयतापूर्वक आत्मविश्वास के साथ अपने काम मे लगे रहकर प्रगति करते हुए लिंकन न केवल अमेरिका के राष्ट्रपति बने, बल्कि उनकी गणना विश्व के महामानवो मे की जाने लगी। इस बीच उन्हे कई बार असफलताओ का सामना करना पड़ा, पर क्या मजाल कि उन्होने अपने मन को छोटा किया हो। एक बार लिंकन से किसी ने उनकी उन्नति का कारण पूछा तो उन्होने बताया कि जन्मदात्री न होते हुए भी जिसने मेरी निर्मात्री होने का कार्य पूरा किया मै अपनी उस माँ का हाथो बनाया गया एक खिलौना मात्र हूँ।

अस्पताल की एक साधारण-सी नर्स फ्लोरेंस नाइटिंगेल के पास न साधन थे न सुविधाएँ, पर उनके मन मे रोगियों और दुर्घटनाग्रस्त लोगो के प्रति अपार वेदना का समाधान करने और घायलो, विपत्ति के मारे लोगो की सहायता-सुश्रुषा करने के लिए उन्होने रेडक्रास सोसायटी की योजना बनाई और संस्था के उद्देश्य तथा स्वरूप को लेकर बड़े-बड़े लोगो के पास गई। नाइटिंगेल की स्थिति, सामर्थ्य और कार्य की गरिमा मे इतना भारी अन्तर देखते हुए लोगो ने उन्हे यही परामर्श दिया कि इस तरह की हवाई कल्पनाएँ करना व्यर्थ है। अच्छा हो आप अपनी नौकरी ही ठीक-ठाक ढंग से करे और इसी मे अपनी भावनाओ का सन्तोष खोजें। कइयो ने उन्हे प्रत्यक्ष रूप से भी निरुत्साहित किया परन्तु नाइटिंगेल हताश नही हुईं। कहीं से भी कोई सहायता न मिलने पर उन्होने अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम आरम्भ कर दिया और संस्था जब धीरे-धीरे विकसित होने लगी तो, वही लोग जिन्होने नाइटिंगेल को आरम्भ मे निरुत्साहित किया था, सहयोग की भावना लेकर आये। यह लक्ष्य के प्रति निष्ठा और तन्मयतापूर्ण समन्वय का ही परिणाम है कि फ्लोरेंस नाइटिंगेल द्वारा स्थापित रेडक्रास सोसायटी तथा उनका मिशन देश-काल की सीमाओ को लाँघकर विश्व भर मे फैली हुई है और सार्वभौम बन गई है।

का एक ही कारण है कि उन्होने अपनी योग्यताओ को पहचाना, मूल्याकन किया और उसके बल पर सफलता की सीढ़ियाँ चलते गये। इस ससार का यह विचित्र नियम है कि बाजार मे वस्तुओ की कीमत दूसरे लोग निर्धारित करते है, पर मनुष्य अपना मूल्यांकन स्वय करता है और वह अपना जितना मूल्यांकन करता है, उससे अधिक सफलता उसे कदापि नही मिल पाती है, प्रत्येक व्यक्ति जो जीवन मे सफलता प्राप्त करना चाहते है तथा आगे बढ़ने की आकांक्षा रखते है, उन्हे यह मानकर चलना चाहिए कि परमात्मा ने उसे मनुष्य के रूप मे इस पृथ्वी पर भेजते समय उनकी चेतना में समस्त सम्भावनाओ के बीज डाल दिये है। इतना ही नही उसके अस्तित्व मे सभी सम्भावनाओ के बीज डालने के साथ-साथ उनके अंकुरित होने की क्षमताएँ भी भर दी है लेकिन प्राय. देखने मे यह आता है, कि अधिकाश व्यक्ति अपने प्रति ही अविश्वास से भरे होते है तथा उन क्षमताओ और सम्भावनाओ के बीजो को विकसित तथा अंकुरित करने की चेष्टा तो दूर रही उनके सम्बन्ध मे विचार तक नही करना चाहते।

जीवन मे कई बार अनपेक्षित परिस्थितियाँ आती है, जिनके कारण अपने प्रति विश्वास डगमगाने लगता है और व्यक्ति उन परिस्थितियो मे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उपलब्ध साधनो का उपयोग करने मे संकोच करने लगता है अथवा यह सोचने लगता है कि वह इन साधनो के योग्य नही है। एक घटना नैपोलियन के सम्बन्ध मे विख्यात है, उसका एक सैनिक अपने सेनापति के पास कोई महत्त्वपूर्ण सन्देश लेकर भेजा गया था। सन्देश इतना महत्त्वपूर्ण था कि जितना जल्दी हो सके उसे पहुँचाना और उसका उत्तर लेकर तुरन्त वापस आना आवश्यक था। सौपे गये दायित्व को तत्परता से पूरा करने के लिए उस सैनिक ने अपना घोड़ा इतनी तेजी से दौड़ाया कि गन्तव्य स्थल पर पहुँचते ही उसने दम तोड़ दिया।

नैपोलियन ने उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा को सराहा तथा पत्र का उत्तर लेकर उसी शीघ्रता से जाने के लिए कहा लेकिन सैनिक का घोड़ा तो मर चुका था। नैपोलियन को यह मालूम था। सैनिक को असमंजस मे देखकर वह बोला, 'यह लो मेरा घोड़ा और जल्दी से यह उत्तर ले जाओ।' सैनिक भौचक्का होकर अपने सेनापति की ओर देखने लगा। उसने कहा, 'लेकिन श्रीमान् ....', सैनिक ने यह दो शब्द ही कहे थे कि नैपोलियन बीच मे टोकते हुए बोला, 'मै जानता हूँ तुम क्या कहना चाहते हो ? पर याद रखो कि दुनिया का कोई भी घोड़ा ऐसा नही है, जिसकी सवारी तुम न कर सको।

घटना छोटी-सी है, पर उन सभी लोगो के लिए लागू होती है, जो स्वय को किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के लिए अयोग्य समझते है। दुनिया उस सिपाही जैसे असख्य लोगो से भरी पड़ी है, जो यह सोचते है कि अधिकांश सुख उनकी पहुँच से बाहर है। इस सम्बन्ध मे एक विचारक का कथन है कि "दुनिया के कई लोग अपने आपको उन सौभाग्यशाली लोगो से अलग समझते है, जो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुके है। ऐसा सोचना कितना हानिकारक है, इसका अनुमान सिर्फ इसी बात से लगाया जा सकता है कि ऐसे विचार मात्र व्यक्ति को कई ऊँचाइयो पर पहुँचने से रोक देते है। अपने आपको बौना समझने वाला व्यक्ति देवता कैसे बन सकता है ?"

इसमे कोई सन्देह नही कि कोई भी व्यक्ति केवल उतनी ही सफलताएँ प्राप्त कर सकता है या उतनी ही उपलब्धियाँ अर्जित कर सकता है, जितनी कि वह चाहता है, चाहने को तो लोग न जाने क्या-क्या चाहते, न जाने क्या-क्या आकाक्षाएँ रखते है, पर वैसा चाहना और बात है तथा उसका फलित होना और बात। लोग चाहते है कि उसके पास खूब सम्पति जमा हो, पर सौ मे से दस प्रतिशत भी सच्चे मन से यह नही चाहते है कि वे सम्पन्न बने। उन्हे विश्वास ही नही होता कि वे सम्पन्न भी बन सकते है। पानी मे डूबते समय जैसे तीव्र आकाक्षा होती है कि बच जाया जाये और डूबने वाला व्यक्ति हाथ-पैर मारने लगता है, अपने शरीर के दबाव और पानी की उछाल शक्ति मे सन्तुलन बिठाने के लिए हड़बड़ाहट मे ही सही प्रयत्न करने लगता है। यही तीव्र आकांक्षा का परिचय है। कोई व्यक्ति दरिद्रता से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे दरिद्रता मे वैसी ही घुटन अनुभव करनी चाहिए जैसी कि डूबने वाला व्यक्ति पानी मे डूबते समय करता है, पर वैसी घुटन कहाँ अनुभव होती है ?

आत्म-विश्वासी भाग्य को अपने पुरुषार्थ का दास समझता है तथा उसे अपना इच्छानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए आवश्यकता केवल इस बात की है कि उचित मूल्याकन किया जाए और आत्मविश्वास को सुदृढ़। यदि अपना उचित मूल्याकन किया जाये तो वह निष्कर्ष अपनी प्रतिभा का स्पर्श पाते ही जीवन्त हो उठता है तथा व्यक्ति बड़ी से बड़ी कठिनाइयो को लाँघ सकती है। नैपोलियन को अपने विजय अभियान मे जब आल्पस पर्वत पार करने का अवसर आया तो लोगो ने उसे बहुत समझाया कि आज तक आल्पस पर्वत कोई भी पार नहीं कर सका है और इस तरह की चेष्टा करने वाले को मौत के मुँह मे जाना पड़ा है। उन व्यक्तियो को नैपोलियन ने यही उत्तर दिया कि मुझे मौत के मुँह मे जाना मजूर है, पर आल्पस से हार मानना नही और इस निश्चय के सामने आल्पस को झुकना ही पड़ा।

स्मरण रखा जाना चाहिए और विश्वास किया जाना चाहिए कि इस ससार मे मनुष्य के लिए न तो कोई वस्तु या उपलब्धि अलभ्य है तथा न ही कोई व्यक्ति किसी प्रकार अयोग्य है। अयोग्यता एक ही है और वह है अपने आपके प्रति अविश्वास। आत्मविश्वास ही वस्तुत'

आस्तिकता है। ऐसे आस्तिक उन ढर्रों पर चलने वाले व्यक्तियों से अलग होते है, जो कभी इस शक्ति स्रोत को उभारने का प्रयास भी नही करते।

परमात्मा ने मनुष्य को इस संसार में उन विभूतियो से विभूषित कर भेजा है, जो अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं है। उन विभूतियो का उपयोग कर ही वह आदिम काल की जंगली पिछली स्थिति से विकसित होकर आधुनिकतम सुविधा-साधनो का विकास कर सका है। निश्चित ही सभ्यता और संस्कृति के विकास मे थोड़े बहुत गिने-चुने प्रतिभाशाली व्यक्तियो का योगदान रहा है। अधिकांश व्यक्ति तो सामान्य क्रम से ढर्रे का जीवन ही व्यतीत करते रहे है। उन्हे अपने भीतर निहित शक्तियो और सम्भावनाओ पर विश्वास ही नही होता और वे दीन-हीन जीवन जीते रहते है। कई लोगो की मान्यता रहती है कि सफलता किन्ही सौभाग्यशाली व्यक्तियो को ही प्राप्त होती है तथा उन्हे जन्म से ही अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती है, जिनमे आगे बढ़ने के अवसर अनायास ही प्रस्तुत होते रहते है।

इस तथ्य को भूल जाना चाहिए कि अनुकूल परिस्थितियाँ और आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करने वाली पृष्ठभूमि किन्ही गिने-चुने लोगो को ही प्राप्त होती है, जबकि अधिकांश व्यक्तियो को अपना मार्ग स्वयं खोजना पड़ता है और स्वयं के बलबूते पर ही प्रगति पथ पर अग्रसर होना पड़ता है।

प्रस्तुतः सफलता या प्रगति न अनुकूल परिस्थितियो पर निर्भर करती है और न उपयुक्त अवसरो पर। सफलता बहुत कुछ व्यक्ति के अपने आत्म-विश्वास और उस आधार पर संचित किए गए आत्मबल पर ही निर्भर करती है। यदि अपने भीतर, अपनी शक्तियो के प्रति विश्वास कूट-कूटकर भरा हो तो कदाचित ही किसी को असफलताओ का सामना करना पड़े। असफलताओ का सामना तभी करना पड़ता है, जब सामर्थ्य और साधनो का विचार न करते हुए ऐसे कदम उठा लिए जाते है, जो विचारशीलता और विवेक की दृष्टि से उपयुक्त नही कहे जा सकते। इसके अतिरिक्त आत्मविश्वास का अभाव भी सफलता का एक कारण है। आत्मविश्वास का अर्थ अनियन्त्रित भावुकता नही है, वरन् यह उस दूरदर्शिता का नाम है जिसके साथ सकल्प और साहस भी जुड़ा रहता है। ऐसे आत्मविश्वासी जो भी काम करते हैं, उसमे न तो ढील-पोल होती है और न ही अनुत्तरदायित्व। इस स्तर के आत्मविश्वास को लेकर जो भी कार्य किये जाते है, उनमे पूरा मनोयोग, तन्मयता, तत्परता तथा परिश्रम का समावेश रहता है।

इस नीति को अपनाकर कई व्यक्ति प्रतिकूलताओ मे भी आशातीत प्रगति कर चुके है। अमेरिका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति स्वर्गीय अब्राहम लिंकन का नाम ऐसे व्यक्तियो मे अग्रणी तौर पर लिया जा सकता है, जिन्होने प्रतिकूल परिस्थितियो मे रहते हुए भी सफलता के शिखरो को स्पर्श किया। उनका पालन-पोषण उनकी सौतेली माँ ने किया था। गरीबी और कठिनाइयो के बीच रहते हुए उसने अपने बेटे को ऐसी प्रेरणाएँ दीं और उसके अन्त-करण मे ऐसे बीज बोये, जिनके अंकुर लिंकन की शिक्षा और समझ को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी ऊँचा उठाते चले गए। उनमे पढ़ने और ज्ञान प्राप्त करने का ऐसा भाव हुआ कि वे पुस्तके प्राप्त करने के लिए मीलो पैदल चलकर जाते और अपने मित्रो से पुस्तके माँगकर लाते। पढ़ने के बाद उसी प्रकार पुस्तक को वापस करने के लिए वापस जाते।

लक्ष्य के प्रति निष्ठा, लगन और तन्मयतापूर्वक आत्मविश्वास के साथ अपने काम मे लगे रहकर प्रगति करते हुए लिंकन न केवल अमेरिका के राष्ट्रपति बने, बल्कि उनकी गणना विश्व के महामानवो मे की जाने लगी। इस बीच उन्हे कई बार असफलताओ का सामना करना पड़ा, पर क्या मजाल कि उन्होने अपने मन को छोटा किया हो। एक बार लिंकन से किसी ने उनकी उन्नति का कारण पूछा तो उन्होने बताया कि जन्मदात्री न होते हुए भी जिसने मेरी निर्मात्री होने का कार्य पूरा किया मै अपनी उस माँ का हाथो बनाया गया एक खिलौना मात्र हूँ।'

अस्पताल की एक साधारण-सी नर्स फ्लोरेंस नाइटिंगेल के पास न साधन थे न सुविधाएँ, पर उनके मन मे रोगियो और दुर्घटनाग्रस्त लोगो के प्रति अपार वेदना का समाधान करने और घायलो, विपत्ति के मारे लोगो की सहायता-सुश्रुषा करने के लिए उन्होने रेडक्रास सोसायटी की योजना बनाई और संस्था के उद्देश्य तथा स्वरूप को लेकर बड़े-बड़े लोगो के पास गई। नाइटिंगेल की स्थिति, सामर्थ्य और कार्य की गरिमा मे इतना भारी अन्तर देखते हुए लोगो ने उन्हे यही परामर्श दिया कि इस तरह की हवाई कल्पनाएँ करना व्यर्थ है। अच्छा हो आप अपनी नौकरी ही ठीक-ठाक ढंग से करे और इसी मे अपनी भावनाओ का सन्तोष खोजे। कइयो ने उन्हे प्रत्यक्ष रूप से भी निरुत्साहित किया परन्तु नाइटिंगेल हताश नहीं हुईं। कहीं से भी कोई सहायता न मिलने पर उन्होंने अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम आरम्भ कर दिया और संस्था जब धीरे-धीरे विकसित होने लगी तो, वही लोग जिन्होने नाइटिंगेल को आरम्भ मे निरुत्साहित किया था, सहयोग की भावना लेकर आये। यह लक्ष्य के प्रति निष्ठा और तन्मयतापूर्ण समन्वय का ही परिणाम है कि फ्लोरेंस नाइटिंगेल द्वारा स्थापित रेडक्रास सोसायटी तथा उनका मिशन देश-काल की सीमाओ को लाँघकर विश्व भर मे फैली हुई है और सार्वभौम बन गई है।

साहसी ही जीवन को सार्थक बनाते हैं

शरीर बल और बुद्धि बल का अपना महत्व, अपनी उपयोगिता है। उपार्जन, श्रम और समस्याओं का हल वैचारिक स्तर ढूँढने मे इनका योगदान आवश्यक है। पर कितने ही अवसर ऐसे आते है, जब जीवन-मरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है और मात्र शरीर की सामर्थ्य और बुद्धि बल उनका समाधान निकाल पाने मे समर्थ नही हो पाते। प्रस्तुत संकट के हल के लिये अभीष्ट परिमाण मे साहस जुटाये बिना कुछ काम नही बनता। साहस के अभाव मे ऐसे अवसरो पर कितने ही व्यक्ति अपना सन्तुलन गँवाते, भयभीत हो उठते तथा जान गँवाते तक देखे जाते है।

कितने ही दुस्साहसी ऐसे भी होते है, जो विकट से विकट परिस्थितियो मे भी नहीं घबराते और ऐसे साहस भरे उदाहरण प्रस्तुत करते है, जिन्हे देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। शेर, बाघ, चीता, रीछ जैसे हिंसक जीवों से सामना पड़ने पर प्रायः अधिकांश व्यक्ति इतना अधिक घबड़ा उठते है कि उस समय अपने बचाव के लिए जो कर सकते थे, वह भी नही कर पाते। हिम्मत हार बैठने से कुछ भी करते नही बनता। ऐसे लोगों के उदाहरण भी मौजूद है, जो अपने साहस के बलबूते बिना किसी घातक हथियार के ही हिंसक जीवों को परास्त करने मे सफल हुए।

बस्तर जिले की एक बारह वर्षीय बालिका जगल से लकड़ी काटकर वापिस लौट रही थी। अचानक सामने से जगली रीछ ने आक्रमण कर दिया। आगे-पीछे कोई भी सहयोग देने वाला नही दिखाई पड़ रहा था। लकड़ी के गट्ठर से एक टुकड़ा निकाला और रीछ के मुँह मे घुसेड़ दिया। क्रुद्ध रीछ ने प्रत्याक्रमण मे बालिका को घायल कर दिया, पर वह लड़की डण्डा रीछ के मुँह मे पूरी शक्ति से दबाये रही। परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही देर बाद रीछ ने दम तोड़ दिया। थोड़े समय बाद कुछ राही उधर से निकले तो देखा बालिका अपने जख्मी शरीर से कपड़े से खून साफ कर रही थी। उसके साहस युक्त कार्य के लिए जिलाधीश द्वारा पुरस्कृत किया गया।

कगहेड काउण्टी का मोजराविन्सन नामक व्यक्ति शिकार के लिये निकला। एक शेर से सामना होते ही उसके हाथ से बन्दूक अचानक छूटकर गिर पड़ी। शेर ने राविन्सन पर छलाँग लगा दी। किसी तरह शेर का सिर उसकी पकड़ मे आ गया। दोनों पैरो के बीच उसका सिर फँसाकर वह हाथ से सिर को पूरी शक्ति से दबाने लगा। इस बीच भारी भरकम शेर ने राविन्सन को कितनी ही बार उछालने का प्रयास किया पर उसने शेर के सिर की पकड़ ढीली न की और दोनों हाथो से दबाता रहा। वह स्वय लहूलुहान तो हो गया पर दम घुटने के कारण शेर भी निश्चल-निष्प्राण होकर गिरा तो फिर नही उठा।

अँग्रेजी शासन काल में भी मद्रास के सेन्टजार्ज किले का अँग्रेज कमाण्डर सर एडवर्ड विक्टर का नाम भी साहसियों की श्रेणी में उल्लेखनीय है। बिना किसी हथियार के ही उसने एक पूर्ण और वयस्क बाघ को खाली हाथो गला घोटकर मार डाला।

ई. क्रौज विल्यार नामक एक अँग्रेज शिकारी अफ्रीका के जगलों मे शिकार के लिए निकला। उसकी बन्दूक खराब हो गई। उसी समय एक शेर ने भी आक्रमण कर दिया। दोनों के बीच देरी तक द्वन्द्व युद्ध चलता रहा। शरीर के २३ स्थानों का माँस शेर ने अपने खूँखार पंजों मे नोंच लिया। शरीर की शक्ति क्रौज की क्षीण होती जा रही थी पर साहस अभी भी यथावत् बना हुआ था। उसने निश्चय किया कि हिम्मत हारकर मर जाने की अपेक्षा लड़कर मरना कही अधिक श्रेष्ठ है। पूरी ताकत मे उसने शेर के मुँह मे अपना पूरा दाहिना हाथ घुसेड़ दिया और दूसरे हाथ से शेर का जबड़ा पकड़े रहा। थोड़ी देर बाद शेर गिर पड़ा और मर गया। स्वय भी क्रौज इतना अधिक जख्मी हो गया था कि चलने-फिरने में असमर्थ था। बेहोशी की स्थिति में मार्ग गुजरने वालों ने उसे निकटवर्ती अस्पताल पहुँचाया। उपचार से स्वस्थ होने पर उसने पूरी दास्तान बताई।

ससार मे ऐसे दुस्साहसियों की भी कमी नही है, जो स्वत: संकटो को आमन्त्रित करते है तथा अपने अदम्य शौर्य का परिचय देते है। फ्रांस के मेधावी अभिनेता चार्ल्स डर्लिन के विषय मे प्रामाणिक विवरण मिलता है कि उसने शेरों के एक कटघरे मे अभिनय का प्रशिक्षण वर्षो तक प्रतिदिन कविता का पाठ करके प्राप्त किया था।

स्पेन के सुप्रसिद्ध सेनानायक रौड्रिगो पान्स डि लियोन का नाम आज भी वहाँ उसके वीरतायुक्त कार्य के लिए लिया जाता है। एक विशाल राजकीय समारोह मे वहाँ के तत्कालीन राजा और महारानी उपस्थित थे। जमीन के नीचे एक गहरा गड्ढा बनाया गया था, जिसमे खूँखार शेरो को रखा गया। महारानी को जाने क्या सूझा कि उन्होंने अपने हाथ का एक कीमती दस्ताना निकालकर शेरो वाले गड्ढे मे गिरा दिया तथा उपस्थित सैनिको मे से प्रत्येक को चुनौती दी कि वे दस्ताने को शेरो के बीच से निकालकर अपने साहस का परिचय दे। रौड्रिगो पान्स ने रानी की चुनौती को सुनकर उस मौतरूपी खाई मे छलाँग लगा दी। विस्मित नेत्रो से सभी यह रोमाचक दृश्य देख रहे थे। बड़ी ही फुर्ती से पान्स ने दस्ताना उठाया और एक शेर के सिर पर पैर रखते हुए ऊपर की ओर छलाँग लगा दी। इसके पूर्व शेर आक्रमण करे वह गड्ढे मे बाहर था। उस अदम्य साहस से प्रभावित होकर राजा ने उसे देश की वीरता का सबसे बड़ा पदक प्रदान किया तथा सेना मे प्रमुख सेनानायक के पद पर आरूढ़ किया।

भारत का प्राचीन कालीन इतिहास पढ़ने पर आश्चर्य होता है कि शकुन्तला-पुत्र भरत शेरो के बच्चो के साथ खेलता था। पर 'जान ब्लू नामक एक फ्रांस का युवक शेरो द्वारा घोड़ागाड़ी खींचने का कार्य करता था, यह जानकर वह प्राचीन घटना असम्भव नही लगती तथा इस सत्य को प्रमाणित करती है कि दुस्साहसियो के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

साक्षात् मृत्यु से जूझने और उसे उलटे पैर वापिस लौटने के लिए बाध्य करने वालो के ये अविस्मरणीय उदाहरण इस बात की ही पुष्टि करते है कि यदि साहस उभर आये तो मनुष्य असम्भव कार्य भी कर सकता है। हर मनुष्य के जीवन मे ऐसे अवसर आते है, जब किसी न किसी प्रकार के आततायी, आक्रमणकारियो का सामना करना पड़ता है। ऐसे अवसरो पर यदि मनःसन्तुलन बनाकर साहसपूर्वक सामना किया जा सके तो कोई कारण नही है कि सामूहिक रूप से उन आततायियो के दुष्प्रयोजन को निष्फल नही किया जा सके। वस्तुतः मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे साहस का महत्वपूर्ण स्थान है। साहस लक्ष्य को प्राप्त करने अथवा किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए उठाया गया जोखिम है। किसान जानता है कि बीज बोया तो जा रहा है किन्तु कभी भी फसल सूख सकती है, पाला पड़ सकता है, चोरी हो सकती है पर वह इन आशंकाओ के लिए अपने काम को नहीं छोड़ता। व्यापारी, सैनिक, डाक्टर आदि सभी यही करते है। विपत्ति, बाधा, अवरोध और असफलता की सम्भावनाओ के रहते हुए भी जब किसी काम को करने का दृढ़ संकल्प कर लिया जाता है तो मार्ग की बाधाओं की चिन्ता किये बिना आगे बढ़ने की भावभूमि को ही साहस कहते है।

यह सामान्य जीवन क्रम मे बरता जाने वाला सामान्य साहस हुआ। असामान्य साहस वह है, जिसमे स्वार्थ की भावना तनिक भी न हो। साहस को दैवी, अप्रतिम, सत्साहस आदि नामो से अलंकृत किया जाता है। अपना निज का कोई स्वार्थ न होने पर भी जब व्यक्ति अन्त.करण की प्रेरणा से विशुद्ध लोकहित या परहित के लिए दुष्कर ही नहीं असम्भव जैसे लगने वाले काम कर बैठता है तो उसका सत्साहस मात्र सराहनीय ही नही वन्दनीय और अभिनन्दनीय भी बन जाता है।

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले की सत्साहस की एक घटना उल्लेखनीय है। मैया के रूप मे लोक श्रद्धा का केन्द्र बनी नर्मदा मानो किसी के सत्साहस की परीक्षा के लिए रौद्र रूप धारण किए बाढ़ पर उफन रही थी। इसी बाढ़ की चपेट मे आ रहा था गाँव—माला खेड़ी। लगता था नर्मदा इस गाँव को निगलने के लिए निरन्तर बढ़ती आ रही है। सम्भवत. मानवता से पतित होते जा रहे अपने बच्चो को हल्की-सी प्रताड़ना देने का उपक्रम था वह। लोगो ने अपने जीवन मे ऐसा जल प्लावन पहले कभी नही देखा था। नर्मदा की विकराल लहरो मे मृत्यु की फुफकार सुनाई दे रही थी। ऐसा लग रहा था कि इसी बाढ़ मे फँसकर गाँव के लोग मृत्यु के करालगाल में समा जायेगे।

त्राहि-त्राहि और चीख-पुकार से सारा वातावरण गूँज रहा था। ऐसे अवसर पर लोगो के करुण स्वरो को सुनकर धीवर कन्या सरस्वती अपने को न रोक सकी। अन्तःकरण मे छिपे सत्साहस के देवता ने उसे चैन से बैठने नही दिया। वह अपने रुग्ण पिता को पड़ौसियो के भरोसे छोड़कर एक छोटी-सी डोगी लेकर लोगो की प्राण रक्षा के लिए चल पड़ी। कहाँ नर्मदा की उफनती-उछलती हुई ऊँची लहरे और कहाँ एक साधारण-सी डोगी। ऐसी विषम स्थिति मे जबकि कोई अच्छा से अच्छा तैराक भी नर्मदा से खेलने, उसमे उतरने की हिम्मत न करता वहाँ सोलह वर्षीय सरस्वती के सकल्प ने नर्मदा से होड़ लेने की ठान ली। लोगो की प्राणरक्षा के लिए उसका निकल पड़ना अनूठा एवं अद्वितीय साहस का परिचायक है। अठारह घण्टे तक भूख एवं प्यास की चिन्ता किए बिना वह नर्मदा से सतत संघर्ष करती रही और उसने करीब १५० व्यक्तियो की प्राण रक्षा की। नर्मदा शांत हो गई। उसने अपनी बेटी के साहस से प्रसन्न होकर अपनी विकरालता को समेट लिया।

साहस मनुष्य का सहज स्वभाव है। इसे विकसित करना पड़ता है। मात्र रस गुण के अन्दर होने से व्यक्ति पराक्रमी, शूरमा नही बन जाता। तलवार किसी के हाथ मे हो तो इतने भर से वह वीर नही हो जाता। पौरुषहीन व्यक्ति के लिये तो वह स्वयं ही खतरा बना जाती है। साहस वाला इसका भय दिखाकर औरो को आतंकित भी कर सकता है और दीन-दुर्बल की रक्षा भी। जहाँ पहला कृत्य निन्दनीय है, वहाँ दूसरा सराहनीय है। व्यक्ति के अन्दर जो सत्साहस विद्यमान है, वह उभरे-फूट पड़े तो सामान्य से नजर आने वाले व्यक्ति भी वे कार्य कर जाते है, जिन्हे मानवता पीढ़ियो तक याद रखती है।

आशा ही जीवन और निराशा ही मौत है

पुरुषार्थी, साहस एवं जीवट से सम्पन्न व्यक्ति मौत को भी चुनौती देते-उसे खेल-खिलवाड़ समझकर जूझते है। उनके प्रचण्ड पुरुषार्थ, मनोबल एवं जीवन के प्रति अदम्य प्रेम को देखकर कुछ समय के लिये मौत भी ठिठक जाती और अपनी राह बदल देने को विवश हो जाती है। परिस्थितियों को उनके समक्ष नत-मस्तक होना पड़ता है। मृत्यु के निकट पहुँचकर भी वे अपना अस्तित्व बनाये रखने मे सफल होते है। वे मृत्यु से तनिक भी घबराते नही वरन् हँसते-हँसते उसका स्वागत करने को उद्यत रहते है। ऐसे अनेको उदाहरण समय-समय पर मिलते है,

साहसी ही जीवन को सार्थक बनाते हैं

शरीर बल और बुद्धि बल का अपना महत्त्व, अपनी उपयोगिता है। उपार्जन, श्रम और समस्याओ का हल वैचारिक स्तर ढूँढ़ने मे इनका योगदान आवश्यक है। पर कितने ही अवसर ऐसे आते है, जब जीवन-मरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है और मात्र शरीर की सामर्थ्य और बुद्धि बल उनका समाधान निकाल पाने मे समर्थ नही हो पाते। प्रस्तुत संकट के हल के लिये अभीष्ट परिमाण मे साहस जुटाये बिना कुछ काम नही बनता। साहस के अभाव मे ऐसे अवसरो पर कितने ही व्यक्ति अपना सन्तुलन गँवाते, भयभीत हो उठते तथा जान गँवाते तक देखे जाते है।

कितने ही दुस्साहसी ऐसे भी होते है, जो विकट से विकट परिस्थितियो मे भी नही घबराते और ऐसे साहस भरे उदाहरण प्रस्तुत करते है, जिन्हे देखकर दाँतो तले उँगली दबानी पड़ती है। शेर, बाघ, चीता, रीछ जैसे हिंसक जीवों से सामना पड़ने पर प्रायः अधिकाश व्यक्ति इतना अधिक घबड़ा उठते है कि उस समय अपने बचाव के लिए जो कर सकते थे, वह भी नही कर पाते। हिम्मत हार बैठने से कुछ भी करते नही बनता। ऐसे लोगों के उदाहरण भी मौजूद है, जो अपने साहस के बलबूते बिना किसी घातक हथियार के ही हिंसक जीवो को परास्त करने मे सफल हुए।

बस्तर जिले की एक बारह वर्षीय बालिका जंगल से लकड़ी काटकर वापिस लौट रही थी। अचानक सामने से जंगली रीछ ने आक्रमण कर दिया। आगे-पीछे कोई भी सहयोग देने वाला नही दिखाई पड़ रहा था। लकड़ी के गट्ठर से एक टुकड़ा निकाला और रीछ के मुँह मे घुसेड़ दिया। क्रुद्ध रीछ ने प्रत्याक्रमण मे बालिका को घायल कर दिया, पर वह लड़की डण्डा रीछ के मुँह मे पूरी शक्ति से दबाये रही। परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही देर बाद रीछ ने दम तोड़ दिया। थोड़े समय बाद कुछ राही उधर मे निकले तो देखा बालिका अपने जख्मी शरीर से कपड़े से खून साफ कर रही थी। उसके साहस युक्त कार्य के लिए जिलाधीश द्वारा पुरस्कृत किया गया।

कगहेड काउण्टी का भोजराविन्सन नामक व्यक्ति शिकार के लिये निकला। एक शेर से सामना होते ही उसके हाथ मे बन्दूक अचानक छूटकर गिर पड़ी। शेर ने राविन्सन पर छलाँग लगा दी। किसी तरह शेर का सिर उसकी पकड़ मे आ गया। दोनों पैरो के बीच उसका सिर फँसाकर वह हाथ से सिर को पूरी शक्ति से दबाने लगा। इस बीच भारी भरकम शेर ने राविन्सन को कितनी ही बार उछालने का प्रयास किया पर उसने शेर के सिर की पकड़ ढीली न की और दोनो हाथो से दबाता रहा। वह स्वयं लहूलुहान तो हो गया पर दम घुटने के कारण शेर भी निश्चल-निष्प्राण होकर गिरा तो फिर नही उठा।

अँग्रेजी शासन काल मे भी मद्रास के सेन्टजार्ज किले का अँग्रेज कमाण्डर सर एडवर्ड विक्टर का नाम भी साहसियो की श्रेणी मे उल्लेखनीय है। बिना किसी हथियार के ही उसने एक पूर्ण और वयस्क बाघ को खाली हाथो गला घोटकर मार डाला।

ई. क्रौज विल्यार नामक एक अँग्रेज शिकारी अफ्रीका के जंगलो मे शिकार के लिए निकला। उसकी बन्दूक खराब हो गई। उसी समय एक शेर ने भी आक्रमण कर दिया। दोनो के बीच देरी तक द्वन्द्व युद्ध चलता रहा। शरीर के २३ स्थानो का माँस शेर ने अपने खूँखार पंजो से नोंच लिया। शरीर की शक्ति क्रौज की क्षीण होती जा रही थी पर साहस अभी भी यथावत् बना हुआ था। उसने निश्चय किया कि हिम्मत हारकर मर जाने की अपेक्षा लड़कर मरना कही अधिक श्रेष्ठ है। पूरी ताकत से उसने शेर के मुँह मे अपना पूरा दाहिना हाथ घुसेड़ दिया और दूसरे हाथ से शेर का जबड़ा पकड़े रहा। थोड़ी देर बाद शेर गिर पड़ा और मर गया। स्वयं भी क्रौज इतना अधिक जख्मी हो गया था कि चलने-फिरने मे असमर्थ था। बेहोशी की स्थिति मे मार्ग गुजरने वालो ने उसे निकटवर्ती अस्पताल पहुँचाया। उपचार से स्वस्थ होने पर उसने पूरी दास्तान बताई।

संसार मे ऐसे दुस्साहसियो की भी कमी नही है, जो स्वतः संकटो को आमन्त्रित करते है तथा अपने अदम्य शौर्य का परिचय देते है। फ्रांस के मेधावी अभिनेता चार्ल्स डर्लिन के विषय मे प्रामाणिक विवरण मिलता है कि उसने शेरो के एक कटघरे मे अभिनय का प्रशिक्षण वर्षो तक प्रतिदिन कविता का पाठ करके प्राप्त किया था।

स्पेन के सुप्रसिद्ध सेनानायक रौड्रिगो पान्स डि लियोन का नाम आज भी वहाँ उसके वीरतायुक्त कार्य के लिए लिया जाता है। एक विशाल राजकीय समारोह मे वहाँ के तत्कालीन राजा और महारानी उपस्थित थे। जमीन के नीचे एक गहरा गड्ढा बनाया गया था, जिसमे खूँखार शेरो को रखा गया। महारानी को जाने क्या सूझा कि उन्होने अपने हाथ का एक कीमती दस्ताना निकालकर शेरो वाले गड्ढे मे गिरा दिया तथा उपस्थित सैनिको मे से प्रत्येक को चुनौती दी कि वे दस्ताने को शेरो के बीच से निकालकर अपने साहस का परिचय दे। रौड्रिगो पान्स ने रानी की चुनौती को सुनकर उस मौतरूपी खाई मे छलाँग लगा दी। विस्मित नेत्रो से सभी यह रोमाचक दृश्य देख रहे थे। बड़ी ही फुर्ती से पान्स ने दस्ताना उठाया और एक शेर के सिर पर पैर रखते हुए ऊपर की ओर छलाँग लगा दी। इसके पूर्व शेर आक्रमण करे वह गड्ढे से बाहर था। उस अदम्य साहस से प्रभावित होकर राजा ने उसे देश की वीरता का सबसे बड़ा पदक प्रदान किया तथा सेना मे प्रमुख सेनानायक के पद पर आरूढ़ किया।

भारत का प्राचीन कालीन इतिहास पढ़ने पर आश्चर्य होता है कि शकुन्तला-पुत्र भरत शेरो के बच्चो के साथ खेलता था। पर 'जान ब्लु' नामक एक फ्रांस का युवक शेरो द्वारा घोड़ागाड़ी खींचने का कार्य करता था, यह जानकर वह प्राचीन घटना असम्भव नहीं लगती तथा इस सत्य को प्रमाणित करती है कि दुस्साहसियो के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

साक्षात् मृत्यु से जूझने और उसे उलटे पैर वापिस लौटने के लिए बाध्य करने वालो के ये अविस्मरणीय उदाहरण इस बात की ही पुष्टि करते है कि यदि साहस उभर आये तो मनुष्य असम्भव कार्य भी कर सकता है। हर मनुष्य के जीवन मे ऐसे अवसर आते है, जब किसी न किसी प्रकार के आततायी, आक्रमणकारियो का सामना करना पड़ता है। ऐसे अवसरो पर यदि मनःसन्तुलन बनाकर साहसपूर्वक सामना किया जा सके तो कोई कारण नहीं है कि सामूहिक रूप से उन आततइयो के दुष्प्रयोजन को निष्फल नही किया जा सके। वस्तुतः मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे साहस का महत्वपूर्ण स्थान है। साहस लक्ष्य को प्राप्त करने अथवा किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए उठाया गया जोखिम है। किसान जानता है कि बीज बोया तो जा रहा है किन्तु कभी भी फसल सूख सकती है, पाला पड़ सकता है, चोरी हो सकती है पर वह इन आशंकाओ के लिए अपने काम को नही छोड़ता। व्यापारी, सैनिक, डाक्टर आदि सभी यही करते है। विपत्ति, बाधा, अवरोध और असफलता की सम्भावनाओ के रहते हुए भी जब किसी काम को करने का दृढ़ संकल्प कर लिया जाता है तो मार्ग की बाधाओ की चिन्ता किये बिना आगे बढ़ने की भावभूमि को ही साहस कहते है।

यह सामान्य जीवन क्रम मे बरता जाने वाला सामान्य साहस हुआ। असामान्य साहस वह है, जिसमे स्वार्थ की भावना तनिक भी न हो। साहस को दैवी, अप्रतिम, सत्साहस आदि नामों से अलंकृत किया जाता है। अपना निज का कोई स्वार्थ न होने पर भी जब व्यक्ति अन्तःकरण की प्रेरणा से विशुद्ध लोकहित या परहित के लिए दुष्कर ही नहीं असम्भव जैसे लगने वाले काम कर बैठता है तो उसका सत्साहस मात्र सराहनीय ही नही वन्दनीय और अभिनन्दनीय भी बन जाता है।

मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले की सत्साहस की एक घटना उल्लेखनीय है। मैया के रूप मे लोक श्रद्धा का केन्द्र बनी नर्मदा मानो किसी के सत्साहस की परीक्षा के लिए रौद्र रूप धारण किए बाढ़ पर उफन रही थी। इसी बाढ़ की चपेट मे आ रहा था गाँव—माला खेड़ी। लगता था नर्मदा इस गाँव को निगलने के लिए निरन्तर बढ़ती आ रही है। सम्भवतः मानवता से पतित होते जा रहे अपने बच्चो को हल्की-सी प्रताड़ना देने का उपक्रम था वह। लोगो ने अपने जीवन मे ऐसा जल प्लावन पहले कभी नही देखा था। नर्मदा की विकराल लहरो में मृत्यु की फुफकार सुनाई दे रही थी। ऐसा लग रहा था कि इसी बाढ़ मे फँसकर गाँव के लोग मृत्यु के कालगाल में समा जायेगे।

त्राहि-त्राहि और चीख-पुकार से सारा वातावरण गूँज रहा था। ऐसे अवसर पर लोगो के करुण स्वरो को सुनकर धीवर कन्या सरस्वती अपने को न रोक सकी। अन्त करण मे छिपे सत्साहस के देवता ने उसे चैन से बैठने नही दिया। यह अपने रुग्ण पिता को पड़ौसियो के भरोसे छोड़कर एक छोटी-सी डोगी लेकर लोगो की प्राण रक्षा के लिए चल पड़ी। कहाँ नर्मदा की उफनती-उछलती हुई ऊँची लहरे और कहाँ एक साधारण-सी डोगी। ऐसी विषम स्थिति मे जबकि कोई अच्छा से अच्छा तैराक भी नर्मदा से खेलने, उसमे उतरने की हिम्मत न करता वहाँ सोलह वर्षीय सरस्वती के सकल्प ने नर्मदा से होड़ लेने की ठान ली। लोगो की प्राणरक्षा के लिए उसका निकल पड़ना अनूठा एवं अद्वितीय साहस का परिचायक है। अठारह घण्टे तक भूख एवं प्यास की चिन्ता किए बिना वह नर्मदा से सतत संघर्ष करती रही और उसने करीब १५० व्यक्तियो की प्राण रक्षा की। नर्मदा शांत हो गई। उसने अपनी बेटी के साहस से प्रसन्न होकर अपनी विकरालता को समेट लिया।

साहस मनुष्य का सहज स्वभाव है। इसे विकसित करना पड़ता है। मात्र रस गुण के अन्दर होने से व्यक्ति पराक्रमी, शूरमा नहीं बन जाता। तलवार किसी के हाथ मे हो तो इतने भर से वह वीर नही हो जाता। पौरुषहीन व्यक्ति के लिये तो वह स्वयं ही खतरा बना जाती है। साहस वाला इसका भय दिखाकर औरो को आतंकित भी कर सकता है और दीन-दुर्बल की रक्षा भी। जहाँ पहला कृत्य निन्दनीय है, वहाँ दूसरा सराहनीय है। व्यक्ति के अन्दर जो सत्साहस विद्यमान है, वह उभरे-फूटे पड़े तो सामान्य से नजर आने वाले व्यक्ति भी वे कार्य कर जाते है, जिन्हे मानवता पीढ़ियो तक याद रखती है।

आशा ही जीवन और निराशा ही मौत है

पुरुषार्थी, साहस एवं जीवट से सम्पन्न व्यक्ति मौत को भी चुनौती देते-उसे खेल-खिलवाड़ समझकर जूझते है। उनके प्रचण्ड पुरुषार्थ, मनोबल एव जीवन के प्रति अदम्य प्रेम को देखकर कुछ समय के लिये मौत भी ठिठक जाती और अपनी राह बदल देने को विवश हो जाती है। परिस्थितियों को उनके समक्ष नत-मस्तक होना पड़ता है। मृत्यु के निकट पहुँचकर भी वे अपना अस्तित्व बनाये रखने मे सफल होते है। वे मृत्यु से तनिक भी घबराते नही वरन् हँसते-हँसते उसका स्वागत करने को उद्यत रहते है। ऐसे अनेको उदाहरण समय-समय पर मिलते है,

जिन्होने भयकर परिस्थितियो मे मौत की घाटियो मे कार्य की सफलता प्राप्त करके अद्भुत साहस का परिचय दिया है।

सन् १९७४ मे इटली के रेनहोल्ड मेसनर एवं आस्ट्रिया के पीटर हवेलर नामक साहसी पर्वतारोहियो ने 'आल्पस' पर्वत की एक खतरनाक चोटी पर मात्र १० घण्टे मे चढ़कर एक कीर्तिमान स्थापित किया। इस चोटी पर चढ़ने के प्रयास मे इससे पूर्व ३८ कुशल पर्वतारोहियो की मृत्यु हो चुकी थी।

उनकी इस सफलता मे कोई दैवी अनुकम्पा या विशेष तकनीकी युक्त उपकरणो का सहयोग नही था। इसके पीछे उनका किशोरावस्था से चला आ रहा पर्वतारोहण का सतत अभ्यास था। उन्होने न तो ऑक्सीजन का ही प्रयोग किया, न रस्सी जैसे सरल उपयोगी साधन का। उनको यह अस्वाभाविक-सा लगता था। अस्तु उन्होने अपनी पर्वतीय चढ़ाई मे एक तो बर्फ पर चलने की लोहे की खड़ाऊँ और दूसरे बर्फ काटने की कुल्हाड़ी मात्र दो साधारण समझे जाने वाले प्रमुख सरलतम उपकरणो का ही प्रयोग करने का निश्चय कर लिया था और केवल उन्ही के सहारे पर्वतारोहण का यह सफल अभियान पूरा किया।

सन् १९७५ मे इन दो साहसी युवको ने हिमालय की पश्चिमी पर्वत-श्रेणी कराकोरम की 'हिडेनपीक' (छिपी अज्ञात चोटी) पर चढ़ने का निश्चय किया। इस चोटी की ऊँचाई ८ किलोमीटर ६८ मीटर है। पूरे ससार मे ८ किलोमीटर से अधिक ऊँचे केवल १४ पहाड़ है। इस चढ़ाई के लिए इन दोनो पर्वतारोहियो ने इतना अभ्यास किया कि १ मिनट मे लगभग २६ मीटर ऊँचाई चढ सके तथा मात्र अपनी उँगलियो के सहारे अपने पूरे सामान सहित लटक सके।

'मेसनर' और हवेलर के इस अभियान की सफलता के सम्बन्ध मे बहुत-से अनुभवी लोगो ने आशका व्यक्त की तथा ऑक्सीजन, रस्सी आदि के बिना इसे खतरा मोल लेना बताया। परन्तु आत्मविश्वास और पुरुषार्थ के धनी मानने वाले कब थे। १३ जुलाई, १९७५ की प्रात को ये दोनो अपने अभियान मे 'बाल्टोरी ग्लेशियर' की ओर चल पड़े। वहाँ तक पहुँचने मे उनको एक सप्ताह का समय लग गया। इसके पश्चात् ६५ किलोमीटर दूरी पार करके २४ जुलाई, १९७५ को वे ग्लेशियर के अन्तिम छोर पर ५१ हेक्टोमीटर की ऊँचाई पर पहुँच गये। वहाँ उन्होने अपने साथ के वाहको को छोड़ दिया और गहन निरीक्षण मे संलग्न हो गये।

२७ जुलाई, १९७५ को उन्होने हिमाच्छादित, 'हिडेनपीक' के उत्तरी-पश्चिमी भाग को देखा। दस-ग्यारह दिन तक वे प्रारम्भिक निरीक्षण कार्य करते रहे। दूरदर्शी, विवेकशील, बुद्धिमान मनुष्य सम्भावित कठिनाइयो पर विचार कर उनके आने पर सजगता, सतर्कतापूर्वक मुकाबला करके सफलता की ओर बढ़ जाते है। अदूरदर्शी बिना सोचे-समझे कार्य प्रारम्भ कर विषम परिस्थितियाँ आने पर उसे छोड़ बैठते और असफल होने पर दुर्भाग्य का रोना रोने लगते है।

'हिडेनपीक' के उत्तरी-पश्चिमी भाग से उन्होने ८ अगस्त, १९७५ को अपनी चढ़ाई-यात्रा प्रारम्भ की। लगभग ८०० मीटर की ऊँचाई-चढ़ाई के बाद ४९ हेक्टोमीटर की ऊँचाई पर पहला अस्थायी पड़ाव डाला। 'हेलर' को ४ घण्टे तक जोर का सिर-दर्द रहा पर जीवट वाले व्यक्तियो के पास बीमारी ठहरती कब है? दूसरे दिन दूने उत्साह से चढ़ाई प्रारम्भ कर दी। बड़ी कठिनाइयो के साथ एक-एक पग आगे बढ़ रहे थे। ८ घण्टे के अथक परिश्रम के बाद वे ऐसे स्थान पर पहुँच गये, जहाँ से ऊपर की चढ़ाई अत्यन्त दुर्गम थी। रात्रि हो रही थी। मेसनर आगे और 'हेलर' पीछे उँगलियो से दरारो का सहारा लेते हुए एक-एक सेन्टीमीटर सरक रहे थे और ७१ हेक्टोमीटर की ऊँचाई पर दूसरा पड़ाव डालकर रात्रि विश्राम किया। अत्यधिक ठण्ड से हाथ-पैर बिल्कुल सुन्न हो रहे थे, साँस लेने मे भी कठिनाई हो रही थी। यह वह स्थान था जिसे 'मृत्यु का क्षेत्र' कहा जाता है।

वे दोनो मृत्यु से अठखेलियाँ करते हुए आगे बढ़ते ही जा रहे थे। गिरते, पड़ते, हाँफते वे ८०६८ मीटर ऊँची, 'हिडेनपीक' के शिखर पर पहुँच गये। उनके आनन्द की सीमा न रही। हृदय उल्लास से उमगने लगा। अपने पहुँचने का उन्होने वहाँ संकेत भी लगा दिया। अपने अटूट अभ्यास और प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर यह अद्भुत सफलता अर्जित की।

इतना ही नही अपनी लगन, परिश्रम और निष्ठा के बल पर उन्होने मई, १९७८ मे संसार के सर्वोच्च शिखर 'एवरेस्ट' पर भी बिना ऑक्सीजन आदि के सहारे चढ़ने मे सफलता पाई और अपने मनोबल से संसार को चकित कर दिया।

मनुष्य के समस्त कार्य उसके ही सत्प्रयास और तत्परता के परिणामस्वरूप सिद्ध और सफल हुआ करते है। संकल्पवान, कर्मनिष्ठ, उद्यमी व्यक्ति ही सफलताएँ उपलब्ध करते है। मनस्वी व्यक्ति के लिए इस ससार में कुछ भी अप्राप्त नही और कोई भी स्थान अगम्य नहीं है। साधनो की अपनी उपयोगिता तो है पर उनका लाभ मनस्वी एव परिश्रमी कर्मनिष्ठ व्यक्ति ही उठा पाते है। मनोबल, जिजीविषा मानव की अमूल्य सम्पदा है। इसका महत्त्व एव गरिमा समझने वाले कठिन परिस्थितियो मे भी आशान्वित रहते और आये हुए सकट को चीरते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे सफल होते है। ऐसे जीवट सम्पन्न व्यक्तियो के सामने प्रस्तुत प्रतिकूलताएँ उनमे और निखार लाती है और वे परिस्थितियो की परवाह न करते हुए उद्देश्य प्राप्ति मे सफल होते है। सामान्यतः हर मनुष्य के जीवन मे भली-बुरी दोनो ही प्रकार की

परिस्थितियाँ आती है। सामान्य व्यक्ति उनसे प्रभावित होता, अनुकूल मे प्रसन्न एवं प्रतिकूल मे खिन्न होता दिखायी देता है। असामान्य व्यक्ति दोनो मे ही एकरस रहते और उन्हे सहर्ष स्वीकार करते है। प्रतिकूलताओ मे वे घबड़ाते नही, वरन् अपना सन्तुलन बनाये रखते है। कितने ही व्यक्ति छोटे-मोटे आघातो को भी सहन नही कर पाते ? साहस एवं सन्तुलन के अभाव मे सामने आये संकट का सामना नहीं कर पाते। थोड़े प्रयत्न, पुरुषार्थ से प्रस्तुत संकटों को टाला जा सकता था, उनसे भी जूझ पाने मे असमर्थ होते हैं। जबकि कितने ही साहसी, जीवट सम्पन्न व्यक्ति जीवन-मरण के तुल्य संकटो मे भी धैर्य नहीं खोते। साहस एवं सन्तुलन बनाये रखते है तथा भविष्य के प्रति आशान्वित रहते है।

जिन्दगी को जिन्दादिली से जीयें

मनुष्य जीवन की असफलताओ का एक सबसे बड़ा कारण यह है कि अधिकांश व्यक्तियो मे परिस्थितियो के अनुरूप ढलने-उनसे समायोजन करने की कल्पना नही विकसित हो पाती। उपलब्ध से तालमेल न बैठ पाने और अनुपलब्ध अनुकूलताओं की कामना करते रहने से असन्तोष ही हाथ लगता है। मानव जीवन इतना समर्थ और जीवट सम्पन्न है कि वह हर प्रकार की प्रतिकूलताओ को चुनौती दे सकता है—उनमे रहते हुए भी अपनी सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रख सकता है। मन की प्रसन्नता और अप्रसन्नता का, संतोष-असन्तोष का भी उपलब्ध परिस्थितियो से राई-रत्तीभर सम्बन्ध नही है। ये मन:स्थिति की प्रतिक्रियाएँ मात्र है। किस व्यक्ति ने समायोजन की कला कितनी अधिक विकसित करली, इस तथ्य पर ही उसकी प्रसन्नता अवलम्बित होगी। जिसमे इस विशेषता का जितना ही अभाव होगा वह उतना ही अप्रसन्न, असन्तुष्ट होगा। अभावो, विपन्नताओ का रोना रोने वाले तथा परिस्थितियो को अत्यधिक महत्व देने वालो को उन व्यक्तियो एवं जातियो से प्रेरणा लेनी चाहिए, जिनके साथ प्रकृति ने भी घोर प्रतिकूलताएँ प्रस्तुत करके क्रूर मजाक किया है। पर आश्चर्य यह है कि भीषण कठिनाइयो मे भी वे जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए है। उनकी मस्ती, प्रसन्नता, प्रफुल्लता से युक्त उन्मुक्त जीवन क्रम को देखकर प्रचलित यह मान्यता बदलनी पड़ती है कि साधनो की सम्पन्नता एव अनुकूलताओ से ही सुख और सतोष की प्राप्ति होती है।

चारो ओर बर्फ ही बर्फ, पेड़-पौधो का कहीं नामोनिशान भी नही, शून्य से भी नीचे ३० से ४० अंश के तापमान की खून को भी जमा देने वाली भयंकर सर्दी, महीनो सूर्य के दर्शन नही हो पाते तथा सौ मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चलने वाली बर्फीली हवा से युक्त वातावरण मे भी चिरकाल तक कोई रह सकता है, सामान्य व्यक्ति इसकी कल्पना भी नही कर पाते। पर ऐसी जातियाँ भी है, जो ऐसे निर्जन और कठोर परिस्थितियो में हजारो वर्षो से प्रकृति से लोहा लेती रही हैं। अमेरिका के उत्तर पूर्व मे स्थित ध्रुव से सटे हुए ग्रीनलैण्ड के विशाल द्वीप से लेकर पश्चिम मे अलास्का और बेयरिंग जलडमरूमध्य के उस पार साइबेरिया के उत्तर-पूर्वीय किनारे का क्षेत्र लगभग पूरे वर्ष एक अखण्ड बर्फ की चादर से ढँका रहता है। एस्किमो जाति का स्थाई निवास हजारो वर्षो से इसी वातावरण में है। सचमुच ही एस्किमो इस तथ्य के जीते-जागते प्रमाण हैं कि मनुष्य के भीतर कठोर से कठोर वातावरण मे भी सामञ्जस्य स्थापित कर लेने की विलक्षण सामर्थ्य विद्यमान है।

उत्तरी ध्रुव के निकट उत्तरी नार्वे, स्वीडन और फिनलैण्ड मे भी सर्दी के दिनो मे प्रायः तापक्रम शून्य से भी ३६ डिग्री फारेनहाइट नीचे रहता है। हड्डियो को कँपा देने वाले इस क्षेत्र मे 'लाप' नामक जाति रहती है। जिनका जीवनक्रम एस्किमो से विशेष रूप से मिलता-जुलता है। समुद्र की मछलियाँ और शैवाल इनके आहार के प्रमुख स्रोत हैं। बर्फ की शिलाओ पर आप घण्टो बैठकर मछलियो का शिकार करते रहते हैं। इस क्षेत्र मे बारहसिंघा जानवर पाया जाता है, जिसको पकड़कर ये स्लेज गाड़ी खीचने के काम मे लाते है। भीषण प्रतिकूलताओं एव अभावो मे रहते हुए भी लाप जाति के लोग अत्यन्त ही सौम्य, उदार और मिलनसार स्वभाव के होते हैं। सभ्य समाज मे पाई जाने वाली नाना प्रकार की बुराइयो से ये अभी भी अपरिचित है। इनके चेहरे से सदा टपकने वाली मस्ती को देखकर कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि इन्हे प्रकृति विक्षोभो एवं प्रतिकूलताओ का सर्वाधिक सामना करना पड़ता होगा। ऐसा लगता है कि संसार की सारी प्रसन्नता इनके भीतर ही सिमट गई हो।

प्रकृति प्रदत्त कठिनाइयो को चुनौती देने वाली जातियो मे प्रशात महासागर की 'पोलिनेशियन', 'फ्यूजियन' जातियो का नाम भी उल्लेखनीय है। अपने कठोर श्रम और पुरुषार्थ के बलबूते इन जातियो ने यह सिद्ध कर दिया है कि मानवी सत्ता इतनी कमजोर नही है कि वह कठिनाइयो के समक्ष दम तोड़ दे—वह हर परिस्थिति का सामना करने मे पूर्णतया समर्थ है।

एक ओर ये जातियाँ है जिनके समक्ष अनेको प्रकार की असुविधाएँ उत्पन्न करके प्रकृति ने भी उनके साथ क्रूर उपहास किया है पर हर कठिनाई का समाधान उन्होने अपने साहस, धैर्य एव प्रचण्ड पुरुषार्थ के आधार पर निकाल लिया है। अनुकूलताओ के लिए रोते रहने की तुलना मे उपलब्ध नगण्य साधनो का ही मात्र सदुपयोग कर इन्होने निर्वाह की आवश्यक व्यवस्था बना ली है। दूसरी ओर बहुतायत ऐसे व्यक्तियो की भी है, जिनका साथ प्रकृति ने भी उन्मुक्त हृदय से दिया है। उन्हे हर

तरह के प्राकृतिक साधन उपलब्ध है। मात्र अपने श्रम एवं पुरुषार्थ का भली-भाँति नियोजन करके किसी भी क्षेत्र मे वे सफलता अर्जित कर सकते है। पर दुर्भाग्य कि अधिकांश व्यक्ति अपनी निष्ठा की सामर्थ्य और सहज ही उपलब्ध प्रकृति की अनुकूलताओ का ठीक तरह मूल्यांकन नही कर पाते। अनुपलब्ध साधनो को अत्यधिक महत्त्व देने, अपनी क्षमता की उपेक्षा-अवहेलना करने से सामर्थ्य का एक बड़ा भाग यो ही व्यर्थ चला जाता है। परिस्थितियो के साथ मन:स्थिति का समायोजन नही बैठ पाने से निराशा, असतोष का सामना करना पड़ता है। ऐसे व्यक्ति जीवनपर्यन्त अभावो एवं विपन्नताओ का रोना रोते रहते और कुछ महत्त्वपूर्ण काम नहीं कर पाते है। समय, श्रम और पुरुषार्थ मनुष्य जीवन की सबसे मूल्यवान सम्पदाएँ है जिनका सदुपयोग कर मनचाही सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उत्तरी-दक्षिणी ध्रुव की भीषण ठण्ड एवं प्रतिकूलताओ से भरे जीवन मे व्यक्ति अलमस्त बना अठखेलियाँ कर सकता है तो कोई कारण नही है कि उपलब्ध परिस्थितियो के बीच रहकर अपनी प्रसन्नता एवं मस्ती को जीवन्त न बनाये रखा जा सके।

मानवी जीवट की परीक्षा वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थितियो मे ही होती है। उस समय दूसरा विश्व युद्ध चल रहा था। अमेरिका और जापान की सेनाएँ मोर्चों पर आमने-सामने डटी हुई थीं। जापान की सरकार ने अपने एक छोटे-से टापू गुआम को बचाने के लिए १९ हजार सैनिक तैनात कर दिये थे और अमरीका जल्दी से जल्दी इस टापू पर अपना अधिकार देखना चाहता था क्योकि गुआम सैनिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण था। यहाँ से दुश्मन पर सीधे वार किया जा सकता था।

गुआम पर कब्जा बनाये रखने और उस पर अधिकार करने के लिए दोनो देशो की सेनाएँ घमासान लड़ाई लड़ रही थीं। जब जापानी सैनिको के हारने का मौका आया तो उन्होने आत्मसमर्पण करने के स्थान पर लड़ते-लड़ते मर जाना श्रेयस्कर समझा। संख्या और साधन बल मे अधिक शक्तिशाली होने के कारण अमेरिकी सैनिको को जल्दी विजय मिल गई और गुआम का पतन हो गया। सैकड़ों जापानी सैनिक निर्णायक युद्ध की अन्तिम घड़ियो तक लड़ते रहने के बाद, कुछ बस न चलता देख जंगलो मे भाग गये क्योकि सामने रहते हुए उन्हे हथियार डालने पड़ते, समर्पण करना पड़ता, पर उन्हें यह किसी कीमत पर स्वीकार नही था।

सन् १९७३ मे इन्हीं सैनिको मे से एक सैनिक सार्जेण्ट शियोचीयोकोई वापस लौटा, जिसे जापान ने सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान से सम्मानित किया। योकोई अट्ठाईस वर्षो तक जंगल की खाक छानता हुआ, पेड़-पौधो को अपना साथी मानते हुए, प्रगति की दौड़ रही दुनिया से बेखबर सभ्य संसार में लौटा था। उसके इस वनवास की कहानी बहुत ही रोमांचकारी है। योकोई को किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पड़ा ? और उसने इन सबको किस सहजता से स्वीकार किया ? उसके मूल मे है—आत्मसम्मान और राष्ट्रीय गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने की भावना। 'टूट' जायेगे पर झुकेगे नही, यह निष्ठा।

अट्ठाईस वर्षों तक जंगल में रहते हुए योकोई को यह पता ही नही चला कि दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हो गया है। इस सम्बन्ध मे वह क्या सोचता था ? पत्रकारो ने योकोई से यह प्रश्न किया तो उसने बताया, 'मैने यह सीखा था कि जीते-जी बन्दी बनाने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है। गुआम की लड़ाई मे आसन्न पराजय को देखते हुए सैकडो सैनिको के साथ मे भी जंगल मे भाग गया। मेरे साथ आठ सैनिक और थे। हमे लगा कि सबका एक साथ रहना खतरे से खाली नही है। इसलिए हम टोलियो मे बँट गये। मेरी टोली मे दो सैनिक और थे। हम तीनो टोलोफेफोखिर किले की ओर चले गये। यही पर हमे पता चला कि जापान हार गया है। अब तो नगर मे जाने की सम्भावना और भी समाप्त हो गई।

अट्ठाईस वर्षों तक योकोई ने आदिम जीवन बिताया। उसके पास केवल एक कैंची थी, जिससे वह पेड़ो की शाखाएँ काटता और उनका उपयोग भोजन पकाने तथा छाया करने के लिए करता। कपड़े सीने के लिए उसने अपने बढ़े हुए नाखूनो का सुई के रूप मे इस्तेमाल किया। रहने के लिए उसने जमीन मे गुफा खोद ली और वह बिछौने के लिए पेड़ो की पत्तियो का उपयोग करता। भोजन मे जंगली फल काम आते।

समय की जानकारी तो कैसे रखता ? परन्तु महीने और वर्ष की गणना तो वह रखता ही था। पूर्णिमा का चाँद देखकर वह पेड़ के तने पर एक निशान बना देता। वह गुफा से बाहर बहुत कम निकलता था। प्रायः रात को ही वह बाहर भोजन की तलाश मे आता था। कभी-कभार बाहर आना उसे पुनः सभ्य संसार मे ले आया।

एक बार वह टोलोफोको नदी के किनारे घूम रहा था कि दो मछुआरो ने उसे देख लिया और सन्देह होने के कारण वे उसे पकड़कर ले आये तथा पुलिस को सौप दिया। वहाँ पूछताछ करने पर पता चला कि वह जापान की शाही सेना की ३८वीं इन्फैन्ट्री रेजीमेण्ट का सिपाही है। जापान की सरकार ने उसे करीब ३५० सेन वेतन सहायता के रूप मे काफी रकम देने की घोषणा भी की।

प्रतिकूलताओं को चुनौती देती मानवी जीवट

परिवर्तन जीवनता का प्रतीक है। स्थिर और अचल स्थिति मे जड़-पदार्थ और निष्प्राण शरीर ही रहते है। यदि जीवन चेतना का अस्तित्व है तो परिस्थितियो मे परिवर्तन उतार-चढ़ाव भी नितान्त स्वाभाविक एवं अनिवार्य है, उनका प्रभाव भी पड़ता है। बहुत-से लोग समझते है कि अनुकूल परिस्थितियाँ विकास एव प्रगति मे सहायक होती है तो प्रतिकूलताएँ अवरोधक। एक सीमा तक यह सही है, लेकिन जीवटदार और मनोबल सम्पन्न व्यक्तियो के प्रतिकूलताएँ भी चुनौती देती है और अनुकूलताओ की अपेक्षा कही अधिक सहायक सिद्ध होती है। इस चुनौती भरी स्थिति में मनुष्य की अन्तर्निहित ऊर्जा प्रसुप्त स्थिति से जाग्रत होकर अवरोधो को हटाने, मिटाने मे लग जाती है। सामान्य अवस्था मे वह शक्ति प्रसुप्त ही रहती है, जो प्रतिकूल परिस्थितियो मे किसी दैवी सहायता की तरह उभरकर आती है।

कई व्यक्ति प्रतिकूलताओ के भय से वर्तमान ढर्रे को बदलते हुए घबराते है और सोचते है कि परिवर्तन को सहन करना उनके लिए सम्भव न होगा लेकिन यदि मानव सत्ता का विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढाल लेने की उसकी क्षमता अद्भुत है। जिन परिस्थितियो मे उसे रहना पड़ता है, वह उसी के अनुरूप अपनी रुचि और प्रकृति को ही नहीं, शारीरिक क्षमता को भी ढाल लेती है।

परिवर्तन को सहन कर पाने का भय या आशंका उस स्थिति मे विशेष रूप से उत्पन्न होती है, जब सुविधाजनक जीवन मे से निकलकर किसी महान् उद्देश्य के लिए कष्टसाध्य जीवन अपनाने की जरूरत पड़ती है। निस्सन्देह सेवा, साधना और परमार्थ प्रयोजनो का मार्ग सुख-सुविधाओं से भरा नही है। उसमे अपेक्षाकृत अधिक श्रम करना पड़ता है और सुख-सुविधाओ मे भी कटौती करनी पड़ती है, लेकिन उस आदर्श को अपनाने से ऐसा कोई संकट उत्पन्न नही होता कि मनुष्य के लिए वह सहन करना भी दुष्कर हो जाय।

फिर भी इस तरह का भय तो उत्पन्न होता ही है कि सुविधाएँ छोड़ देने पर उनका अभ्यस्त अपना जीवनक्रम किस प्रकार चलेगा ? परमार्थ प्रयोजनो मे सुख-सुविधाओ की कटौती तभी तक डरावनी और शंकित लगती है जब तक कि उस क्षेत्र मे प्रवेश नहीं किया जाता। जिसने तैरना नही सीखा है, उसे पानी मे घुसना संकट को निमन्त्रण देना जैसा लगता है, पर जब नौसिखिए पानी मे घुसते और हाथ-पैर चलाना आरम्भ करते है तो विश्वास होता है कि न तो पानी मे घुसना उतना संकटापन्न था और न तैरने की प्रक्रिया ही इतनी जटिल थी।

अभ्यास हर कठिनाई को सरल बना देता है क्योंकि मनुष्य मे परिस्थितियो के अनुरूप अपने आपको ढालने की क्षमता अद्भुत और आश्चर्यजनक रूप से विद्यमान है। उसकी इस क्षमता का कही अन्त ही नही है और अभ्यास किया जाय तो कोई भी व्यक्ति ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी सन्तोष तथा आनन्द के साथ जीवन व्यतीत कर सकता है जो अनभ्यस्त लोगो को मृत्यु जैसी प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए, शीत सम्बन्धी सहनशीलता को ही लिया जाए। साधारण सर्दी भी कई लोगो के लिए बाहर निकलना दुश्वार कर देती है। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की सर्दी तो इतनी भयंकर होती है कि उसकी कल्पना ही नही की जा सकती। जहाँ सदैव असह्य शीत पड़ता है और सर्वत्र बर्फ की मोटी परते ही नजर आती है, बर्फीली हवाएँ अधिक चलती है। वहाँ कैसे निर्वाह हो सकता है, सामान्य व्यक्ति के लिए इसकी कल्पना कर पाना कठिन है।

परन्तु जब से यह पता चला कि ध्रुव प्रदेशो मे पहुँचकर वहाँ पृथ्वी के गहन रहस्यो का पता लगाया जा सकता है। वहाँ के अन्तर्ग्रहीय विकिरण के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है। इतना ही नही उस क्षेत्र मे दबी पड़ी प्रचुर धातु सम्पदा का हस्तगत होना भी सहज सम्भव है। इन सम्भावनाओ को जाँचने के लिए यह आवश्यक हो गया कि शोधकर्त्ता वैज्ञानिको का दल देर तक वहाँ रहे और अपना खोज कार्य जारी रखे। ध्रुव प्रदेश के बर्फीले भू-भाग पर हमेशा दो सौ मील प्रति घण्टे की चाल वाले बवन्डर, तूफान चलते है। इन बवन्डरो से बर्फ के टुकड़े और कण उसी तरह उड़ते, लहराते है, जिस प्रकार हवा और आँधी मे धूलि कण। वहाँ का तापमान शून्य से १२५ डिग्री नीचे रहता है। चारो ओर बर्फ ही बर्फ जमी रहती है, जमीन के कही दर्शन तक नही होते। नीरवता का साम्राज्य है, चारो ओर सन्नाटा तथा सुनसान वातावरण। सूर्यास्त के समय वहाँ ऐसी चित्र-विचित्र भयंकर आकृतियो वाली ज्योतियाँ दिखाई देती है कि लगता है, प्रेतलीला हो रही हो।

ऐसे प्रदेश मे जाना, मौत के मुँह मे घुसने जैसा ही हो सकता है। पर दुस्साहसी मनुष्य प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थितियो की चुनौती स्वीकार कर अपने शौर्य एवं साहस का परिचय देते हैं। ध्रुव प्रदेशो की खोज के लिए वही साहस आगे आया और उस हिमाच्छादित प्रदेश मे बस्ती बसाकर रहना स्वीकार कर लिया गया। यह कार्य कई वर्षों से निरन्तर चल रहा है और सुविधापूर्ण जीवन-यापन करने वाले अब इस असुविधा भरी परिस्थितियो के न केवल अभ्यस्त हो गए है, वरन् आनन्द भी अनुभव करते है।

इस शोध कार्य मे बारह देशो के वैज्ञानिक भाग ले रहे है। ब्रिटेन, अमेरिका और रूस के वैज्ञानिको ने तो

दक्षिणी ध्रुव प्रदेश मे अपने स्थायी कैंप भी डाल दिये है। दक्षिणी ध्रुव प्रदेश का धरातल ऐसा है कि वहाँ हल्के से हल्का खेमा भी गाड़ा जाय तो भी प्रतिवर्ष खेमा छह फुट बर्फ मे धँस जाता है। इस कठिनाई से बचने के लिए वैज्ञानिक डेरे गाड़ते समय अपने साथ जहाजो मे पत्थर लेकर आते है ताकि धँसने की अड़चन अपेक्षाकृत कम उठानी पड़े। इस क्षेत्र मे केवल पेंगुइन पक्षी ही रहते है, जो वहाँ पहुँचे वैज्ञानिको की हलचले कुतूहलपूर्वक देखने के लिए अक्सर पंक्तिबद्ध आकर खड़े हो जाते है।

इस प्रदेश मे शोधरत वैज्ञानिको और उनके कर्मचारियो को चमड़े के कपड़े पहनने पड़ते है और दुहरे तिहरे गरम मोजे। फिर भी ठण्ड की अधिकता से बचा नही जा सकता। बिजली के उपकरण, तेल, आवश्यक यन्त्र तथा खाद्य पदार्थ आदि जरूरी वस्तुएँ, वहाँ जहाजो द्वारा पहुँचाई जाती है। वस्तुओ और कुछ भारी उपकरणो को ढोने के लिए वहाँ हल्के टैंक भी पहुँचा दिये गये है। अब वहाँ शोधकर्त्ताओ और उनके साथ गये कर्मचारियो के लिए कुछ बस्तियाँ भी बसा दी गई है। विर्डस्टेशन, मैकमर्डी, अपडसन, स्कार्ट, एल्सवर्थ हैलट आदि वैज्ञानिको के नाम पर बनी इन बस्तियो मे हो आवश्यक संयन्त्र लगे हुए है, जो उन सम्भावनाओ की खोज मे निरत है, जिनसे अगले दिनो संसार के भाग्य और भविष्य निर्माण में भारी सहयोग मिल सकेगा।

दक्षिणी ध्रुव प्रदेश मे ग्रीष्म ऋतु प्रायः जनवरी, फरवरी के महीनो मे आती है। पर उन दिनो भी अधिकतम तापमान जीरो डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है। इसी ऋतु मे वहाँ जहाजो से माल पहुँचाया जाता है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल भारत से लगभग पाँच गुना अधिक है। करीब दो हजार मील दूर इस प्रदेश से कही कोई आबादी है। अब तक की खोज-खबर से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि इस भू-भाग के नीचे सोना, चाँदी, टिन, कोयला, लोहा, जस्ता, अभ्रक, सीसा, यूरेनियम, क्रोफाइट आदि धातुओ का विपुल भण्डार है। सम्पदा को यदि निकाला जा सके तो संसार की समृद्धि मे भारी बढ़ोतरी हो सकेगी। यदि इस प्रदेश को यातायात के उपयुक्त बना लिया गया और उधर से वायुयानो का गुजरना सम्भव हो सका तो पृथ्वी के किसी भी दूरवर्ती कोने मे पहुँचना अपेक्षाकृत अधिक सरल हो जायेगा।

यह भी सम्भावना बताई जा रही है कि यदि मनुष्य दक्षिणी ध्रुव तक सरलतापूर्वक पहुँच सका तो वहाँ से राकेट, भारी वायुयान आदि चलाना सरल पड़ेगा। अमेरिका से अफ्रीका की ओर, आस्ट्रेलिया से अलास्का की ओर वायुयान द्वारा यात्रा करने मे बहुत कम समय लगेगा तथा बहुत कम दूरी तय करनी पड़ेगी। यही नहीं इस क्षेत्र से अन्तरिक्षयान छोड़ने मे भी भारी सुविधा रहेगी। समस्त पृथ्वी की सूचनाएँ एक स्थान पर एकत्रित करना इस एक जगह पर अपेक्षाकृत अधिक आसान रहेगा। धरती पर सर्वत्र फैले परमाणुओ तथा इलेक्ट्रॉन किरणो का प्रभाव दक्षिणी ध्रुव पर बहुत कम है। यहाँ कास्मिक किरणो की अधिकता के कारण अन्तरिक्ष सम्बन्धी शोध कार्य भी आसानी से किये जा सकेंगे।

दक्षिण ध्रुव की अपेक्षा उत्तरी ध्रुव की परिस्थितियाँ भिन्न और अधिक जटिल है। वैज्ञानिक इस क्षेत्र मे और फूँक-फूँककर पैर रख रहे है, इतने पर भी यह एक आश्चर्य की बात है कि इस क्षेत्र मे मनुष्य जाति का अस्तित्व बहुत पहले से विद्यमान पाया गया। वैज्ञानिक अब-तब और जहाँ-तहाँ आते है, पर आश्चर्य इस बात का है कि उन जैसे उपकरणो और सुरक्षा साधनो से वंचित रहते हुए भी घोर शीत के वातावरण मे भी वहाँ मनुष्य चिरकाल से रह रहा है और उस गला डालने जैसी शीत की विभीषिका को चुनौती देता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा है।

वैज्ञानिक पीटर स्कालेडर ने उत्तरी ध्रुव प्रदेश के मूल निवासी एस्किमो लोगो की जीवनचर्या का गहन अध्ययन किया और पता लगाया है कि इन लोगो ने न केवल अपने शरीर मे ही शीत सहने की क्षमता एकत्रित की है, वरन् उससे निपटने के लिए ऐसी तरकीबे भी खोज निकाली है जिसे देखकर उनकी विज्ञानबुद्धि को सराहे बिना नही रहा जा सकता। उदाहरण के लिए, वे बर्फ की सतह पर बर्फ से ही अपने लिए घर बनाते है जो काफी गर्म रहते है। कारण कि उनके भीतर जिससे जो हवा कैद रहती है, उसे ईंधन से गर्म कर लिया जाता है कि वह गर्मी देर तक बनी रहती है, जिसमे मनुष्य लम्बे समय तक सुविधापूर्वक साधारण वस्त्र पहनकर भी रह सके।

बर्फ पर बर्फ से बने मकानो के भीतर भी गर्म वातावरण रह सकता है, यह वैज्ञानिक बुद्धि का ही कमाल है और परिस्थितियो ने यह वैज्ञानिक बुद्धि कथित सभ्य संसार से पिछड़े होने के बावजूद भी उन लोगो मे उत्पन्न कर दी। मोमबत्ती की तरह चर्बी भरी मछली को वे लोग न जाने कहाँ से ढूँढ लाते है और उससे अपनी प्रकाश सम्बन्धी आवश्यकता पूरी करते है। आमतौर पर देर तक बर्फ मे रहने से हाथ-पैर की अँगुलियाँ गलने लगती है और शरीर के अन्य अंगो का भी यही हाल होता है, पर एस्किमो लोगो के शरीर मे परिस्थितियो के अनुरूप अपने आपको ढाल लिया है। उनका रक्त प्रवाह शीत के प्रतिरोध करने जितना ही तीव्र हो जाता है और गर्म बना रहता है तथा अँगुलियो सहित उनके शरीर का प्रत्येक अंग बर्फ को चुनौती देता हुआ उछलता, कूदता रहता है।

यह तो हुई वहाँ रहने वालो की बात। अब उस क्षेत्र के भू-गर्भ मे छिपी उस सम्पदा का अध्ययन ही किया जा रहा है, जिसे हथिया लेने के बाद मनुष्य कुबेर जैसा सम्पत्तिशाली बन जायेगा। ध्रुव प्रदेश के निकटवर्ती

हिमाच्छादित क्षेत्रों में भी शीत की कमी नहीं, वहाँ भी शोधकार्य चल रहा है और पता लगाया गया है कि साइबेरिया में स्वर्ण, अलास्का में पैट्रोल, उत्जावा में लोहा, उत्तरी कनाडा में ताँबा प्रचुर परिमाण में बर्फ की मोटी परतों के नीचे दबा पड़ा है।

पृथ्वी की इस विशाल सम्पदा को दुस्साहस भरे शोध कार्यों द्वारा ही हस्तगत किया जा सकता है। इसके लिए उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के असह्य शीत को चुनौती देते हुए दुस्साहसी लोगों ने वहाँ अड्डा जमाया है—ठीक उसी स्तर का दुस्साहस उच्चस्तरीय आध्यात्मिक प्रयोजनों के लिए भी चाहिए, जिससे नव-निर्माण जैसे महान् लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। यदि वे इस दिशा में सचमुच चल पड़ें तो समय बतायेगा कि उस मार्ग में आने वाली जिन असह्य असुविधाओं की कल्पना की जा रही थी वे कितनी सरल है ? मनुष्य का यह छोटा-सा दिखाई देने वाला काय-कलेवर अद्भुत आश्चर्यों से भरा हुआ है। आवश्यकता केवल उसे चुनौती देने और साहस जुटाने भर की है।

मनुष्य के लिए कुछ भी असंभव नहीं

आगे बढ़ने, ऊँचा उठने और सामान्य से कुछ अधिक कर गुजरने की आकांक्षा हर व्यक्ति की होती है। इसके लिए बाह्य सहयोग और अनुकूलताओं की प्रतीक्षा में कितने ही व्यक्ति रहते है ? ऐसे विरले ही होते है जिन्हें अभीष्ट परिमाण में जन्म से ही ऐसी परिस्थितियाँ मिल भी जाती है। फिर भी बहुसख्य ऐसे होते है, जिन्हें अपना मार्ग स्वयं बनाना पड़ता है। अपनी परिस्थितियाँ स्वयं गढ़नी होती हैं। संकल्प शक्ति के सहारे ऐसे पुरुषार्थी असम्भव को भी सम्भव कर दिखाते है। निराशा के घोर अन्धकार और प्रतिकूलताओं के अम्बार ऐसे प्रचण्ड संकल्प बल वालों के समक्ष बहुत दिन टिकते नहीं। ये बादल शीघ्र ही छटते चले जाते है। शारीरिक अपगता जैसी प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी उनके आड़े नहीं आतीं। कालान्तर में ऐसे पुरुषार्थियों को सम्मान मिलता है, सफलता उनके कदम चूमती है।

अमेरिका के टेनेसी राज्य में रहने वाली एक बालिका पाँच वर्ष की अवस्था में ही लकवे का शिकार हो गयी। उसे अपना बायाँ पैर गँवाना पड़ा। परन्तु वह जीवन से निराश नहीं हुई। निरन्तर खेलते रहने, घूमने, व्यायाम आदि का क्रम उसने बनाये रखा। धीरे-धीरे लांग जम्प व जिमनेस्टिक में उसने ऐसी महारत हासिल कर ली कि उसे १९६० के ओलम्पिक खेलों में भेजा गया। विल्मा गोल्डीन नामक इस साहसी महिला ने तीन स्वर्ण पदक प्राप्त कर कीर्तिमान स्थापित किया। पत्रकारों ने उसकी सफलता का रहस्य पूछा—तो उसने बताया—"मै अपने पैरों के कारण शरीर से तो अपग हूँ परन्तु मन तथा विचारों से नहीं। मेरे संकल्प व दृढ़ इच्छाशक्ति ने ही आज मुझे यह विजयश्री दिलाई है।"

अभी कुछ वर्ष पूर्व ही एक अन्धे युवक ने अमेरिका में चिकित्सक की डिग्री प्राप्त की है। विश्व का वह पहला अन्धा चिकित्सा स्नातक है, जिसे एक मान्यता प्राप्त मेडीकल स्कूल द्वारा एम. डी. की डिग्री दी गयी। उसने दृढ़ संकल्प बल से अपनी स्पर्शेन्द्रियों को इस प्रकार विकसित कर लिया था कि कोई भी अन्य स्वस्थ बुद्धिमान छात्र उससे सीखने की क्षमता में पीछे ही रहता था। उसने सर्वोच्च स्थान पाकर यू. एस. मेडीकल हिस्ट्री में एक कीर्तिमान स्थापित किया।

परिस्थितियों को दोषी ठहराने व अनुकूलताओं की ताक में बैठे रहने वाले उन व्यक्तियों को जो शरीर से समर्थ-स्वस्थ है, पुरुषार्थ के ये उदाहरण चुनौती देते हैं। साहस के रहते अपंगता कभी बाधक नहीं होती।

'एबिलिटीज इन्कारपोरेटेड' एक ऐसी असाधारण संस्था है जिसके जन्म, विकास की गाथा, वर्तमान तथा भविष्य की प्रतिज्ञाओं को पढ़-सुनकर रोमांच हो उठता है। हेनरी विस्कार्डी जूनियर, जो स्वयं विकलांग है, ने एक मार्मिक पुस्तक लिखी है—'गिव अस द टूल्स' ('हमे औजार दीजिए') प्रकाशित होने के कुछ ही माहों में इस पुस्तक ने तहलका मचा दिया है। नवनीत (अक्टूबर ८१) ने इसका सार प्रस्तुत किया है। इस हृदयस्पर्शी वृतान्त को स्वयं उस व्यक्ति ने लिखा है कि जो जीवन के इन हादसों से गुजर चुका है, जो किसी भी व्यक्ति को तोड़ दे सकने में समर्थ है। 'एबिलिटिज इन्कारपोरेटेड' उन्हीं की स्थापित संस्था है। इसके सदस्यों से जुड़े प्रसंगों पर एक नजर डालने से स्वयं स्पष्ट हो जायेगा क्योंकि यह वृतान्त यहाँ प्रस्तुत किया गया।

यह संस्था एक उद्योगशाला है, जिसका संचालन अपग व्यक्ति अपंगों की खातिर ही करते है। इसकी स्थापना इसी उद्देश्य को लेकर हुई कि यदि अवसर दिया जाय तो विकलांग स्वयं अपनी मदद कर सकते है और अपने पुरुषार्थ से अपने विकलांग भाईयों की ही नहीं, सारे समाज की सेवा कर सकने में समर्थ हो सकते है। इसका शुभारम्भ हुआ एक छोटे-से गैराज से, एक लकवाग्रस्त रोगी हेनरी विस्कार्डी द्वारा। पाँच वर्षों के भीतर ही उसका इतना विकास हुआ कि यह एक विशाल कर्मशाला में रूपान्तरित हो गया, जिसमें मात्र विकलांग काम करते है, लाखों डालर का उत्पादन करते है और स्वाभिमान से जीते है। हेनरी विस्कार्डी जो इस संस्था के अध्यक्ष और पुस्तक के लेखक भी है कहते है, "मै उस भगवान को लाख धन्यवाद देता हूँ, जिसने मुझे अपंग बनाया और फिर जूझने की शक्ति दी। इसी शक्ति की फल श्रुति है—"यह संस्था।"

जन्म से ही हेनरी पावों के स्थान पर ठूँठ लिये पैदा हुए थे। छह वर्ष की उम्र तक वे अस्पताल में ही

रहे। चिकित्सकों ने 'विकलांग शूज' पहनाकर अपनी छुट्टी की व समझाया, अब इसी प्रकार तुम्हें रहना होगा। पौने चार फुट का हेनरी जब अपनी बाहे नीचे लाता तो जमीन से छूती। ऐसे में जब घर वालो की सहज करुणा इन पर टपकती तो उन्हे बुरा लगता था, हँसी उड़ाने पर नही। एक चिकित्सक ने अल्यूमिनियम के जूते पहनाकर उसकी ऊँचाई ५ फुट ८ इन्च कर दी। चिकित्सक डॉ. यानोवर ने फीस न लेते हुए एक ही प्रार्थना की, "हेनरी ! तुम यदि किसी और अपंग को प्रेरणा दे सके या मदद कर सकने मे समर्थ हो सके तो मै समझूँगा मुझे मेरी फीस मिल गई है।" इन शब्दो ने हेनरी पर चमत्कारिक प्रभाव डाला। उसे जीने का मूलमन्त्र मिल गया "अपने ही जैसे और भाईयों की सहायता कर उन्हे भी जिन्दगी जीना सिखलाया।"

विवाहोपरान्त कुछ वर्षों तक तो हेनरी ने नौकरी की। अपनी बौद्धिक प्रखरता के बलबूते उसे अपंग होने के बावजूद एक बड़ी सूती मिल मे ऊँचे वेतन पर कार्मिक निदेशक का पद मिल गया। पर बार-बार उसका मन कचोटकर डॉ. यानोवर के शब्दो की याद दिलाता रहा। एक दिन अन्तत निर्णय लेने का समय आ ही गया। उन्होने अपनी संस्था से त्याग-पत्र देकर कम वेतन पर "जस्ट बन ब्रेक" नामक संस्था के व्यवस्थापक का पद सम्भाल लिया। यह सस्था अपंगो का पुनर्वास करती थी, उनका काम था सर्व साधारण से अनुरोध कर, उद्योगपतियो से अपील करके सस्था को पंजीकृत विकलांगो को रोजगार दिलाना। पर इसमे उन्हे न केवल कठिनाई का सामना करना पड़ता था, अपितु अपने विकलांग साथियो का सहयोग भी कम मिल पाता था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बेरोजगारी के बढ़ने, अपंगो की संख्या भी अधिक होने से अधिकांश विकलांग काम पर नही लग पाए थे, न ही मालिको की उनके प्रति रुचि थी।

एक छोटे उद्योगपति द्वारा दी गयी आर्थिक सहायता, कुछ विकलांग भाईयो का सहयोग और हेनरी के स्वयं के आत्मविश्वास के समुच्च ने जादू किया। उन्होने पिछली संस्था छोड़ी और एक गैराज मे अपनी उद्योगशाला आरम्भ की इसका नाम उन्होने प्रारम्भ से ही विधेयात्मक रखा 'अयोग्यता' नही 'योग्यता' "एबिलिटीज संस्था" का जन्म हुआ। धीरे-धीरे साथी बढ़े और यह गैराज एक विशाल वर्कशाप मे बदल गया। इससे जुड़ने को हेनरी ने तीन ही प्रारम्भिक शर्त रखी थी—केवल विकलांग को कर्मचारी के रूप मे रखना, मुनाफे का सभी मे बराबर बँटवारा तथा किसी से भी धन की आर्थिक सहायता की याचना नही करना।

कितनी मेहनत व साहस से इस सस्था ने प्रगति की है, इसके साक्षी विकलांग कर्मचारियो के कुछ उदाहरण है। ये व्यक्ति जिन्हें बेकार, समाज का कूड़ा-कर्कट समझा जाता है, कितने आत्म निर्भर, कितने स्वाभिमानी हो सकते है ? इसका आभास मिलता है, उनके द्वारा सरकार के पुनर्वास विभाग द्वारा दी गयी अनुदान राशि को अस्वीकृत किये जाने से। सरकारी पूछताछ व हरेक के बायोडेटा की जानकारी प्रतिमाह लिये जाने से सभी असंतुष्ट थे। हेनरी ने कहा, "यदि आप सभी कुछ समय किफायत से काट ले व कम घर से गुजारा कर ले तो हम एकमात्र इस अनुदान को भी नकार सकते है। सबने समवेत स्वरो मे सहमति दी और अधिक श्रम, कम राशि पाकर करने को संकल्पित हो गए ताकि पहिया जाम न होने पाये व संस्था जीवित आत्म-निर्भर बनी रहे।

ऐसे-ऐसे कठिन दुष्कर कार्य इन अपंग कर्मचारियो ने छोटे-छोटे 'अप्लाए सेज' हाथ की जगह हुक, उँगलियो के स्थान पर तारो की बनी झीनी सींको तथा पैर के स्थान पर नकली धातु के पैड्स इन सभी की मदद से इन विकलागो ने इलेक्ट्रॉनिक्स के बहुत छोटे उपकरणो से लेकर बड़े-बड़े खराद वाले उपकरण चलाये है। अष्टावक्र की भाँति टेढ़े जिम एलबर्ट, अन्धा एंजेलो, कुल्हा व पैर रहित बिल ग्राहम, गूँगा-बहरा तथा एक लूले हाथ वाला अल्येण्टो, रूमेटॉइड अर्थराइटिस से ग्रस्त अपंग रॉक्स एलफंसन इस तथ्य के जीते-जागते उदाहरण है कि जीवनेच्छा के रहते शारीरिक असमर्थता, विकलांगता विकास में कभी बाधक नही होती।

इन कर्मचारियों मे से किसी को मिर्गी का रोग था, किसी की उँगलियाँ काँपती थी, कोई आधे घण्टे से अधिक एक स्थान पर बैठ सकने मे असमर्थ था; फिर भी सामूहिक चेतना व अन्तः की जीने की प्रबल आकांक्षा ने कुछ ऐसा जादू किया कि काम करते-करते कोई दुर्घटना तो दूर, इनमे से अधिकाश के रोगों का कोई बाह्य चिन्ह भी शेष नही रहा। इन सभी का विश्वास था कि काम से बढ़कर कोई चिकित्सा नही विशेषकर ऐसा काम जिसे लगनपूर्वक जीने के लिए आत्मसम्मान की रक्षार्थ किया जाय। इनमे बीमारी की छुट्टी लेने का औसत १०० काम के दिनों मे १-३ है जो कि किसी भी सरकारी अथवा निजी प्रतिष्ठान के इन्ही आँकड़ो मे न्यूनतम से भी बहुत कम है। अनुपस्थिति का औसत अन्य आदर्श प्रतिष्ठानो के मुकाबले एक तिहाई है। इसका कारण एक ही है कि लोगों की काम के प्रति निष्ठा, समर्पण व सतत संघर्षशीलता। इस सस्था के इतिहास में इतने उतार-चढ़ाव आये, पर किसी ने निराशा को पास नही फटकने दिया।

उत्साह एवं मनोबल अवरोधों को भी हटा सकते हैं

ससार मे अनेको आश्चर्यजनक वस्तुएँ पाई जाती है और घटनाएँ देखी जाती है। इन सबमे विलक्षण है

मानवी संरचना और उसमें सन्निहित सम्भावना। लगता है कि सृष्टा ने अपनी विभूतियो और कुशलताओ को मनुष्य के छोटे से कलेवर मे गागर मे सागर की तरह भर दिया है। असमंजस इसी बात का है कि वे विशिष्टताएँ प्रसुप्त स्थिति मे पड़ी रहती है। सामान्यतया इस रहस्यमय भण्डार मे से उतना ही प्रकट और विकसित होता है, जितनी कि आवश्यकता पड़ती और उभारने की चेष्टा की जाती है। शेष सब कुछ अविकसित एवं अविज्ञात स्थिति मे ही पड़ा रहता है।

सफलताओ मे अवरोध उत्पन्न करने वाले अन्य कारण भी हो सकते है, पर सबसे बड़ा कारण अपनी सामर्थ्य से अनजान रहना, योग्यता को न बढ़ाना और प्रगति के लिए पुरुषार्थ न करना। ऐसे कई उदाहरण मिलते है, जिनमे व्यक्तियो ने कमियो के रहते जीवन सफलता से जिया, प्रतिकूलताओ से स्वयं को अप्रभावित रखा।

इंग्लैण्ड का प्रसिद्ध कलाकार 'स्टेगमान' ६ वर्ष की अल्पायु मे लकवे का शिकार हो गया। टट्टी-पेशाब जाने एवं खाना खाने तक मे पराश्रित हो गया। चारपाई पर लेटे-लेटे अपनी असहाय स्थिति पर विचार करता रहता एवं अपने जीवनयापन के लिए स्वावलम्बी बनने का उपाय सोचता रहता। दूसरों की दया पर जीवन बिताना उसे अच्छा न लगा। उसने अभिभावको से अपने मन की व्यथा कही। कलाकार की आकांक्षा के अनुसार उसे प्राथमिक विद्यालय मे प्रवेश दिला दिया गया।

हाथ-पैरो से बेकार स्टेगमान ने मुख मे कूँची दबाकर चित्र बनाने का अभ्यास आरम्भ कर दिया। अपने प्रयास-लगन और श्रमशीलता से यह सिद्ध कर दिखाया कि अपंगता कला साधना मे बाधक नही हो सकती। आवश्यकता केवल अपने अन्दर श्रम-निष्ठा एवं दृढ संकल्प उभारने की है। स्टेगमान का तो यहाँ तक कहना है कि कोई कलाकार हाथ से चित्र नही बनाता, वरन् हृदय के अन्तराल से उद्भूत भावनाये ही कागज पर यथार्थ रूप से साकार होती है। चित्रकारी के बाद स्टेगमान ने मूर्तिकला का अभ्यास किया तथा मुख और पैर की यत्किंचित सहायता से बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ बनाना प्रारम्भ कर दिया, जिन्हे देखकर कोई कह नही सकता कि किसी अपग व्यक्ति ने इन्हे बनाया होगा। ब्रिटेन के इस कलाकार ने 'लाइसतेन्स्तीन' मे मुख और पैर से मूर्तियाँ बनाने का एक संघ स्थापित किया, जो आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की सस्था का रूप ले चुका है।

आशा के दीप बुझे न हो और संकल्प दृढ हो तो असम्भव बाते भी सम्भव होती देखी गई है। विश्व प्रसिद्ध ओलम्पिक खिलाड़ी अमेरिका के 'रेसीयूरी' के साथ कुछ ऐसे ही घटनाक्रम जुड़े हुए है। उनकी समवय के बच्चे जब दिनभर खेला करते थे, उछल-कूद मचाते थे, यूरी विस्तर पर पड़ा रहता था। उसको कमर से नीचे के भाग मे लकवा हो गया था। चाहते हुए भी अपने मित्रो के साथ खेल नही पाता था।

ऐसी स्थिति मे भी वह आशान्वित बना रहा। उसके मन मे अन्य व्यक्तियो की तरह स्वस्थ और सामान्य बनने की इच्छा थी। चिकित्सको ने असाध्य रोग कहकर अपनी असमर्थता व्यक्त कर दी किन्तु यूरी के मन मे आशा का दीप बुझने नहीं पाया। भीतर के संकल्प बल ने साथ दिया और यूरी ने नये सिरे से स्वयं अपना इलाज आरम्भ कर दिया। व्यायाम के रूप मे धीरे-धीरे विस्तर पर पड़े-पड़े ही उन्होने पैरो का चलाना शुरू कर दिया। महीनो तक यह प्रयास अबाध गति से चलता रहा और सहसा एक दिन उन्हे अपनी टाँगों मे कुछ चेतना का आभास होने लगा। फिर भी वे चल सकने मे समर्थ न हो पाये, पर उनका स्वयं का खोजा हुआ व्यायाम लगातार चलता रहा और उसी से शक्ति मिलती चली गयी। तब तो सामान्य व्यक्तियो की तरह चलने-फिरने लगे।

क्रीड़ा के प्रति अभिरुचि तो यूरी के भीतर पहले से ही थी। चलने-फिरने की स्थिति बनते ही उसने उसे साकार रूप देना आरम्भ कर दिया। उसके उत्साह, धैर्य एवं साहस की कहानी क्रीड़ा जगत् मे अपना विशेष स्थान रखती है। आगे चलकर वह विश्व प्रसिद्ध हो गया। लोगो को आश्चर्य होता था कि जो यूरी विस्तर पर पड़े-पड़े मलमूत्र त्याग करता था, वह आज विश्व विख्यात खिलाड़ी कैसे बन गया ? ओलम्पिक के इतिहास मे वही एक ऐसा खिलाड़ी हुआ, जिसने सन् १९०० मे पेरिस के, १९०४ मे सेटलुई के और १९०८ मे लन्दन के ओलम्पिक मे ८ स्वर्ण पदक प्राप्त किये। स्टैण्डिग हाई जम्प, स्टैण्डिग लांग जम्प और स्टैण्डिग हाप स्टेप एण्ड जम्प मे जो कीर्तिमान उन्होने स्थापित किया, उसे आज तक कोई खिलाड़ी तोड़ न सका। १९०८ के बाद इन खेलो को बन्द कर दिया पर यूरी की सफलता आज भी प्रत्येक खिलाड़ी के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है।

ऐसी ही एक महिला चित्रकार की धैर्यशीलता एवं उत्साह भरी कहानी है। इंग्लैण्ड मे जन्मी कुमारी फिलिस आइटीन नार्थ कोट अपनी योग्यता, कार्यकुशलता एवं खेलकूदो मे विशेष अभिरुचि रखने के कारण पूरे विद्यालय मे लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी थी। एक दिन पिकनिक पर जाते समय मोटर साइकिल दुर्घटना की शिकार हो गई। उनके पैर बिल्कुल बेकार हो गये। असह्य पीड़ा होते हुए भी वह न तो घबरायी और न ही जीवन से निराश हुई। क्रिसमस का पर्व नजदीक ही था, उसकी इच्छा हुई कि अपने मित्रो को हाथ से चित्रकारी करके शुभ कामनाओं के कार्ड भेजे। फिलिस के पिता एवं मामा दोनो चित्रकार थे। उन्होने उसकी आशा एवं आकांक्षा को और प्रबल बना दिया।

प्रतिभावानों का अजेय अस्त्र—इच्छाशक्ति

सामान्य से असामान्य बनाने वाली शक्ति

मनुष्य शरीर में सबसे अधिक संवेदनशील अवयव मस्तिष्क है। वह मात्र सोचने-विचारने के ही काम नहीं आता, वरन् उसमे उत्पन्न होने वाली विद्युत सम्पूर्ण शरीर का क्रिया सचालन करती है। अचेतन मस्तिष्क से सम्बन्धित असंख्यों तार शरीर के प्रत्येक घटक तक पहुँचते है, उसकी सुव्यवस्था रखते है, आवश्यक आदेश देते है तथा समस्याओ का समाधान करते है।

यह शरीर चर्चा की बात हुई, इसके अतिरिक्त सचेतन भाग द्वारा विभिन्न आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए मन और बुद्धि द्वारा निर्णय किए जाते है और उनकी पूर्ति के लिए योजना बनाने और कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व उठाया जाता है। इसके प्रखर होने पर मनुष्य 'प्रतिभावान बनता है और अनेक सफलताएँ अर्जित करता है। बाह्य मस्तिष्क का स्तर मन्द होने पर मनुष्य मूर्ख कहलाता है और उसका चिन्तन अटपटा रहता है।

जीवन के [illegible] क्षेत्र को मस्तिष्क प्रभावित करता है। उसके स्तर के अनुरूप शारीरिक स्वास्थ्य के उतार-चढाव आते रहते हैं। मनोविकार स्वास्थ्य को गिराने और व्यक्तित्व को अटपटा बनाने के प्रधान कारण होते है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की—गुण, कर्म, स्वभाव की दिशाधारा इसी आधार पर बनती है कि मस्तिष्क को किस प्रकार प्रशिक्षित एवं अभ्यस्त किया गया ?

यो कोई व्यक्ति आकाक्षाओ के अनुरूप अपने मनोबल को विकसित कर सकता है, तद्नुरूप साधन जुटा सकता है और उस दिशा मे सहायक सिद्ध होने वाले व्यक्तियो के साथ सम्पर्क बना सकता है, पर यह अपवाद रूप ही होता है और साथी, सहयोगी, कुटुम्बी जिस मार्ग पर चलते है, उसी का अनुकरण होने लगता है। सत्संग की ही तुलना मे स्वाध्याय भी प्रभावशाली होता है। यदि उन्नतिशील बनाने वाले तथ्यो से भरा-पूरा साहित्य मिलता रहे और उसमे प्रस्तुत किए गये विवेकपूर्ण तथ्यो को विवेकपूर्वक अपनाया जाता रहे तो भी सवेदनशील मस्तिष्क उसी प्रकार के ढाँचे मे ढलने लगते है जैसे कि वातावरण प्रभावित करता है।

प्रकृति भी ऋतुओ के वय के अनुरूप मनुष्य मे कई परिवर्तन करती रहती है। कामवासना, मनोरंजन के लिए उमंग यो हारमोनों से सम्बन्धित है किन्तु संचित संस्कार भी भले-बुरे कामो के लिए उत्साह प्रदान करते हैं। मस्तिष्क माता के गुण-कर्मों से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसलिए कहा जाता है कि सुसन्तति प्राप्त करने की आकांक्षा की पूर्ति के लिए जननी का स्तर ऊँचा उठाया जाना चाहिए। उसके स्वास्थ्य, शिक्षण के अतिरिक्त ऐसा वातावरण दिया जाना चाहिए, जिसमे प्रसन्नता के साथ-साथ नैतिकता की प्रेरणा भी मिलती रहे। सुयोग्य सन्तान के लिए जननी का स्तर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूध पीने की तरह वह स्वभाव की विशेषताएँ भी बहुत कुछ माता से ही प्राप्त करता है।

यह मानसिक विकास का प्रथम अध्याय है। दूसरे अध्याय मे स्कूली प्रशिक्षण को महत्त्व दिया जाता है। पाठ्यक्रम के सहारे विविध-विधि जानकारियो की आवश्यकता है। किन्तु अध्यापकों और साथियो के स्वभाव से बनने वाला वातावरण भी मानसिक विकास मे कम सहायक नही होता। इसलिए जिन्हे बुद्धिमान बनना है, उन्हे ऐसे वातावरण में पढाया जाना चाहिए, जहाँ मूर्खतापूर्ण बाते न होती हो।

मानव मन की भिन्नताओं और विशेषताओ मे प्रकृतिगत सूक्ष्म प्रवाहो का भी प्रभाव पड़ता है। हर मस्तिष्क की संरचना देखने पर एक जैसी लगते हुए भी उसके न्यूरोन घटको के आकार-प्रकार मे बहुत अन्तर होता है। जिस प्रकार हथेली की लकीरें और पोरवो पर रहने वाले अंकनो मे प्रत्येक मनुष्य की स्थिति भिन्न होती है, उसी प्रकार मस्तिष्कीय न्यूरोन, जीन कोष तथा विद्युत कम्पनो मे भिन्नता रहती है। मस्तिष्क मे दो प्रधान ग्रन्थियाँ है। एक पिट्यूटरी, दूसरी पीनियल। इनसे हारमोन स्तर के स्रावों का प्रवाह बहता रहता है। उसकी न्यूनाधिकता तथा दिशाधारा के अनुरूप मनुष्य की अभिरुचि तथा प्रतिभा प्रवाहित होती है। वंशानुक्रम से पीढ़ियो के मिले उत्तराधिकार भी इसी क्षेत्र मे विद्यमान रहते है। ग्रह-नक्षत्रो के विकिरण एक मस्तिष्क पर एक प्रकार का प्रभाव डालते है, तो दूसरे पर दूसरे प्रकार का। ऐसे ही अनेक कारणो से हर मस्तिष्क दूसरो से भिन्न स्तर का होता है। इन सब कारणो को देखते हुए लगता है कि मस्तिष्क

एक प्रकृतिगत देन है और उसी आधार पर मनुष्य मूर्ख या बुद्धिमान होता है। स्वभाव और चिन्तन की दृष्टि से भी वह इन्ही कारणो से प्रभावित रहता है। यह तथ्य बताते है कि सौन्दर्य और कुरूपता की तरह मस्तिष्कीय विलक्षणताएँ भी प्राकृतिक कारणो एवं जन्मजात संस्कारो से प्रभावित होती है। इतने पर भी वातावरण एवं संकल्प का अपना महत्त्व है। वह इन सब प्राकृतिक कारणो को बदल सकने मे समर्थ है। कालिदास, वरदराज आदि के उदाहरण ऐसे है, जिनमे उनकी आरम्भिक स्थिति देखते हुए अनुमान होता था कि ये सदा मूर्ख रहेगे। विद्याध्ययन मे भी इन्हे सफलता न मिलेगी, पर जब उनने संकल्पपूर्वक विद्वान बनने का निश्चय किया तो प्राकृतिक संरचना को उलटकर उनने तीक्ष्णता अर्जित कर ली और सामान्यजनो की अपेक्षा अधिक ऊँचे स्तर के विद्वान बन गये। इससे प्रतीत होता है कि संरचना और वातावरण का प्रभाव कैसा ही क्यो न हो, मनुष्य उसमे आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकता है। सुधारना ही नही बिगाड़ना भी सम्भव है।

जिस प्रकार औषधियो का शरीर के विभिन्न अवयवों पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार संकल्प भी शरीर के ढाँचे को, स्वास्थ्य को ही नही, मानसिक क्षमता को भी प्रभावित करता है और स्वभाव तक मे आश्चर्यजनक परिवर्तन लाता है। जिस प्रकार आहार का शरीर-क्रम के साथ भारी सम्बन्ध है, उसी प्रकार आकांक्षा, चिन्तन-प्रक्रिया और संकल्पशक्ति मन-संस्थान को प्रभावित करती है। उसकी संरचना का कितना ही महत्त्व क्यो न हो ? वातावरण से, प्रकृति प्रवाहो से वह कितना ही प्रभावित क्यों न रहता हो, पर इन सबमे इतनी शक्ति नहीं है कि वह निश्चयपूर्ण संकल्पो के दबाव से अस्वीकार कर सके। शरीर के अन्यान्य अवयवों को हम इच्छानुसार मोड़ने-मरोड़ने मे एक सीमा तक ही सफल हो सकते है पर मस्तिष्क के सम्बन्ध मे बात दूसरी है। उसे सुधारा, बदला ही नही उलटा तक जा सकता है। इस दृष्टि से यह जितना सशक्त और महत्वपूर्ण है, उतना ही कोमल भी है। यह शरीर मे सबसे ऊँचे स्थान पर अवस्थित है। इतने पर भी वह संकल्पशक्ति से ऊपर नहीं है। संसार मे ऐसे अगणित व्यक्ति हुए है, जिनका आरम्भिक जीवन साधारण ही नही हेय स्तर का भी था, किन्तु जब उनने अपने आपे को उच्चस्तरीय बनाने का निश्चय कर लिया तो अभ्यस्त आदतें जो परिवर्तन स्वीकारने में आना-कानी करती थी, संकल्प शक्ति के दबाव मे आमूल-चूल परिवर्तित हो गयीं। सामान्य व्यक्ति असामान्य बन गये।

मनुष्य में छिपी इच्छाशक्ति की सामर्थ्य

मानव शरीर के रूप मे मनुष्य को मिला [illegible] इतना [illegible] है कि [illegible] अर्थात

किसी भी क्षेत्र मे प्रगति मार्ग मे सम्पन्न होने वाली प्रत्येक बाधा को पैरो तले रौंदकर आगे बढ़ाता तथा सफलताओं को मनुष्य के कदमो मे बिछाता देखा जा सकता है।

संसार में जितने भी महापुरुष हुए है अथवा जिन्होने अपनी असाधारण प्रतिभाएँ प्रदर्शित की है, उसके मूल मे उनका दृढ़ संकल्प ही कार्यरत रहा है। यही वह बल है, जिसके आधार पर महान लक्ष्य को लेकर साहसिक यात्राएँ सम्पन्न की गयी हैं। नैपोलियन ने इसी के सहारे अजेय आल्पस पर्वत को सेना सहित पैदल पार कर संसार मे अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया था। शेरपा तेनसिंह और हिलेरी ने संसार के सर्वोच्च पर्वत शिखर गौरीशंकर (एवरेस्ट) पर जा पहुँचने का दुस्साहस किया था और वहाँ अपनी विजय पताका फहराते हुए यह उद्घोष किया था कि इस संसार मे कुछ भी ऐसा दुष्कर कार्य नही है, जिसे संकल्प बल से सम्पन्न न किया जा सके।

आत्मिक क्षेत्र मे उच्चस्तरीय लक्ष्य तक जा पहुँचने वालो मे ध्रुव और सप्त ऋषियो की गणना होती है, जो अभी भी आकाश मे ज्योति पुंज बनकर चमकते है। दिशासूचक ध्रुव और आत्मबल की सर्वोच्च सिद्धि करने वाले ऋषि मण्डल अभी भी अपनी गरिमा की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करते है और कहते है कि सामान्य स्थिति मे जन्मे और पले मनुष्य को हमारी तरह अजस्र श्रेय साधने मे निश्चित रूप से सफलता मिल सकती है, पर आवश्यकता मात्र एक ही वस्तु की है और वह है—साहसिक सत्संकल्प।

पूर्व अभ्यासो, आदतो एवं कुसंस्कारो को बदलना कठिन तो है पर इतना नहीं जिसे प्रचण्ड संकल्प शक्ति के सहारे निरस्त न किया जा सके। तुलसीदास, सूरदास युवाकाल तक कामुकता तथा नैतिकता की मर्यादाओं की दृष्टि मे हेय जीवन जीते रहे, किन्तु जब उनने अपने को बदल डालने का दृढ़ निश्चय कर लिया तो पुरानी आदतों तथा मान्यताओ को बदलते देरी न लगी। आन्तरिक परिवर्तन प्रस्तुत करने मे दृढ़ संकल्प के अतिरिक्त और शक्ति काम नहीं करती। सामान्य लोग असमंजस मे पड़े रहते तथा आत्म-निरीक्षण मे सफलता न मिलने का रोना रोते रहते है, पर दृढ़ संकल्प का आश्रय लेने वाले मनस्वी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। ऐसे उदाहरणों की कमी नही है। वाल्मीकि तथा अंगुलिमाल जैसे डाकू सन्त बने है। किसी समय का महान क्रूर शासक अशोक जब बदला तो उसने धर्म चक्र प्रवर्तन की सर्वोच्च भूमिका निभायी। वासना के दलदल मे पड़ी अम्बपाली बदली तो बौद्ध धर्म की महान प्रचारिका बन गयी। आन्तरिक परिवर्तन से वह परम साध्वी कहलायी तथा [illegible] के साथ [illegible] गयी। अंगुलिमाल, [illegible] जैसे [illegible] के [illegible] पा रहे है

आन्तरिक परिवर्तन उनकी संकल्प शक्ति के माध्यम से ही सम्भव हो सके है।

असफलताएँ सिर्फ यह सिद्ध करती है कि सफलता के लिए जो तत्परता बरती जानी चाहिए, उसमें कही कोई कमी रह गयी है। मनस्वी हारते नही, वे हर असफलता के बाद दूने साहस, चौगुने उत्साह के साथ-साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते है। अब्राहम लिंकन १७ बार पराजित होने के उपरान्त चुनाव जीत पाये थे। कठिनाइयो के साथ पग-पग पर संघर्ष करते हुए आगे ही बढ़ते चले गये। जार्ज वाशिंगटन अमरीका के श्रद्धा पात्र राष्ट्रपति बने। जन्म से ही उन्हे घोर गरीबी का सामना करना पड़ा पर अपने ही पुरुषार्थ के सहारे आगे बढ़ते गये।

व्रतशील अपने संकल्पो के प्रति दृढ़ रहते तथा हर हालत मे उन्हे पूरा करते है। भीष्म ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत लिया और उसे पूरा कर दिखाया। गिरता शरीर नहीं, मन है। मनोबल ऊँचा रहने पर मानसिक दुर्बलताओ की दाल नही गलती। पशु प्रवृत्तियाँ भी सिर पर चढ़ बैठने का साहस नही करती है। भागीरथ को गंगावतरण अभीष्ट था। वे प्रचण्ड तपश्चर्या मे संलग्न होकर उसे पूरा करने मे सफल हुए। जगद्गुरु शंकराचार्य की आरम्भिक परिस्थितियाँ ऐसी नही थी, जिनमे उनके द्वारा किसी बड़े उपक्रम की आशा की जा सके, किन्तु उन्होंने अपनी प्रचण्ड प्रतिभा का उपयोग किसी महान प्रयोजन मे करने का निश्चय किया और उसमे सफल रहे।

कोलम्बस अपनी नाव लेकर भारत की खोज मे निकला। समुद्र यात्रा की प्राणघातक चुनौतियो का सामना करते हुए नई दुनिया अमेरिका को खोज निकालने मे सफल हो सका। यह उसके प्रचण्ड संकल्प की ही परिणति थी। अन्धी, गूँगी, बहरी हेलन केलर का विद्या की मूर्ति भाण्डागार बन सकना, सत्रह विश्वविद्यालयो से डाक्टर का सम्मान दिला सकना उसकी संकल्प शक्ति का ही चमत्कार है। इसके विपरीत साधन सम्पन्न छात्र भी अपनी असफलता का रोना रोते रहते है। इसमे अन्य कारण कम और मनोबल की दुर्बलता ही प्रमुख अवरोध उत्पन्न कर रही होती है।

प्रख्यात अँग्रेजी साहित्यकार एच. जी. वेल्स की माता घरों मे बर्तन माँजने की मजदूरी करके अपना और अपने बच्चो का पेट पालती थी। ऐसी विकट परिस्थितियो मे भी वे बड़े उत्साह से शिक्षा अर्जन के हर अवसर ढूँढ़ते रहे और उस प्रयास से उच्चकोटि के साहित्यकार बने। वैज्ञानिक एडीसन की जीवन गाथा भी वेल्स से मिलती-जुलती है। ढूँढ़ने पर ऐसे अन्य प्रमाण भी देश-विदेश मे मिल सकते है, जिसमे विषम परिस्थितियो से जूझते हुए मनस्वी लोगो ने इतनी बड़ी-बड़ी सफलताएँ पायी है, जिन्हे चमत्कार कहा जा सकता है। वस्तुतः संकल्प शक्ति ऐसा दैवी अनुदान है, जिसकी अनुकम्पा से लाभान्वित हो सकना हर किसी के लिए सम्भव है।

नर हो या नारी, बालक हो या वृद्ध, स्वस्थ हो या रुग्ण—धनी हो या निर्धन, परिस्थितियो से कुछ बनता-बिगड़ता नही, महत्त्व शक्ति का है मनस्वी अपने लिए परिस्थितियाँ स्वयं बनाते तथा सफल होते है। समय और श्रम कितना लगा, उसमे अन्तर हो सकता है, पर आत्म निर्माण के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अपनी आकांक्षा को प्रयत्नो के अनुरूप देर-सबेर पूरा कर लेते हैं। नर की तुलना मे नारी की परिस्थितियाँ, कई दृष्टियो से न्यून मानी जाती है, पर यह मान्यता वही तक सही है जहाँ तक कि उनका मनोबल गया-गुजरा बना हुआ है। अपनी गरिमा को समझकर यदि वे संकल्प शक्ति को जगा ले तो कोई कारण नही है कि वे पुरुष से किसी क्षेत्र मे भी पीछे रहे।

विद्वान कैयट व्याकरण शास्त्र की संरचना में लगे थे। उसकी पत्नी भामती मूँज की रस्सी बँटकर उससे गुजारे का प्रबन्ध करती थी। साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स भी कुछ कमा न पाते थे। यह कार्य उनकी पत्नी 'जैनी' करती थी। पुराने कपड़े खरीदकर उनमे से छोटे बच्चो के कपड़े बनाती तथा फेरी लगाकर उनको बेचती थी। आदर्शों के लिए पतियो को इस प्रकार कष्ट उठाकर भी प्रोत्साहित करने एवं सहयोग देने मे उनका उच्चस्तरीय संकल्प बल ही कार्य करता था। बंगाल के निर्धन विद्वान प्रतापचन्द्र राय ने अपनी सारी शक्ति और सम्पत्ति को लगाकर महाभारत का अनुवाद कार्य हाथ मे लिया पर बीच मे ही चल बसे। उनकी पत्नी ने अवशेष कार्य को अपना संस्कृत ज्ञान बढ़ाकर पूरा किया।

संकल्प बल—एक ईश्वरीय अनुदान

मनुष्य को बुद्धिबल एवं साधनो के अतिरिक्त संकल्पबल का इतना बड़ा ईश्वरीय अनुदान मिला है, जिसके द्वारा वह असम्भव को भी सम्भव करके दिखा सकता है। घटना सन् १९१० की है—एक जर्मनी ट्रेन मे एक सोलह वर्षीय किशोर यात्रा कर रहा था। घर से भागकर वह कही दूर जाना चाहता था, पैसे के अभाव मे वह टिकट न ले सका। टिकट निरीक्षक को देखते ही उसने सीट के नीचे छिपने की कोशिश की, पर वह टिकट निरीक्षक की निगाहो से बच न सका। उसने किशोर से टिकट माँगा, टिकट तो उसके पास था नहीं। पास मे अखबार का टुकड़ा पड़ा था, किशोर ने उसे हाथ मे उठाया, मन मे संकल्प किया कि यह टिकट है और उसने टिकट निरीक्षक के हाथों मे वह टुकड़ा थमा दिया। मन ही मन यह संकल्प दुहराता रहा—हे परमात्मा ! उसे वह कागज का टुकड़ा टिकट दिखाई पड़ जाय। उसके आश्चर्य का तब ठिकाना न रहा जब देखा कि निरीक्षक ने उसे कागज के टुकड़े को वापिस लौटाते हुए यह कहा कि—"क्या तुम पागल हो

रात्रि में अव्यक्त का निर्माण

संकेत विद्या की साधना करने मे तुम्हे अपनी रात्रियो पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। हमारा अव्यक्त मन रात्रि मे अधिक तीव्रता से कार्य करता है। जिन भावनाओ को दृढ़ता से लेकर तुम सोते हो, वे ही निद्रित अवस्था मे अव्यक्त क्षेत्र मे प्रवेश करती है। प्रारम्भ मे कुछ समय तक तो यह प्रतीत नहीं होता कि हमारे अव्यक्त का पुनःनिर्माण हो रहा है। किन्तु प्रभाव अवश्य पड़ता है। जितना दृढ़ तुम्हारा संकल्प होगा, उतनी ही दृढ़तापूर्वक इन शुभ भावनाओ की जड़ जमेगी।

प्रत्येक रात्रि मे सोने से पूर्व आधे घण्टे का प्रोग्राम निश्चित करो। अच्छी पुस्तको मे से किसी के कुछ अंश पढ़ो।

इस पुस्तक के कुछ अंश अवश्य पढ़ो। तुम्हारे रात्रि के प्रयोगो के लिए कुछ संकेत यहाँ दिये जाते है। इनसे एक-एक दिन के लिए सात प्रकार की भावनाएँ दी जाती है।

आत्म-ज्योति की भावना—"एक प्रखर आत्म-ज्योति मेरे हृदय-सूर्य से प्रकाशित हो रही है। इसके दिव्य प्रकाश मे मुझे निज कर्त्तव्य भलीभाँति दृष्टिगोचर हो रहा है। मेरा अन्तर्जगत सब ओर से प्रकाशित है। उसमे अज्ञान का अँधेरा ठहर नही सकता।"

"मेरी समस्त भ्रांतियाँ विलीन हो गई है। अब मै व्यर्थ के मिथ्याजाल मे नही फँसता, थोथे झमेलो मे समय तथा अपनी मनःशान्ति नष्ट नही करता। मैं अपनी परम पवित्र आत्मा मे अचल और स्थिर हो गया हूँ। मै सांसारिक लोभ एवं तृष्णा के पंजे से छूट चुका हूँ।"

"मै अब क्षुब्ध नहीं होता। व्यग्रता मुझे नही सताती क्योंकि मुझे सत्पथ का निर्देश करने वाली आत्मज्योति की प्राप्ति हो गई है। अब मै वासनाओ के मुग्धकारी थोथे जाल मे नही फँसता, क्षण-भगुर जिह्वा के स्वादो से भ्रमित नही होता। कड़ी से कड़ी विपत्ति आने पर भी व्यग्र नही होता। मेरे वातावरण की हलचले मेरी मनःशान्ति को भग नही कर सकती। मै बदलती दुनिया की मिथ्या वस्तुओं पर मनोवृत्ति को केन्द्रित नहीं करता।"

"मेरा मन जगत प्रकाशवान है। वहाँ सर्वत्र शान्ति की शीतलता है। प्रखर परिताप का प्रज्ज्वलन सदा-सर्वदा के लिये चला गया। बाह्य क्लेशो की झंझटे मुझे परेशान नहीं करती। उनकी मेरी आत्मा तक पहुँच भी नही है। मेरी आत्मा तो संसार की क्षणभंगुरता से निर्दोष है। सर्वथा उन्मुक्त है।"

"मुझे अपनी वृत्तियाँ बाह्य जगत् की हलचलो से हटाकर आत्मा मे स्थिर करने से परम आनन्द आता है। नवीन उत्साह, नवीन ज्ञान, नवीन आनन्द प्राप्त होता है।

"मै निकृष्ट अवस्था से हटकर उत्कृष्ट अवस्था में निवास करता हूँ। उत्कृष्ट भूमिका मे ससार की विविध बाधाएँ मेरा पीछा नहीं कर सकती। आत्मा मे वृत्ति स्थिर करने के उपरान्त मैं पूर्ण निर्मलता का अनुभव करता हूँ। मेरी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक शब्द—यहाँ तक कि अणु-अणु मे आत्म-तेज निकल रहा है। मै अपने परम देव-आत्मदेव की महानता से अनुरजित हूँ। मुझमे भी वही आनन्द, शक्ति भासमान हो रही है। सबका पल्ला त्यागकर अब मैंने परम देव का आश्रय ग्रहण किया है।

अपनी उन्नति की भावना—"अब मै अज्ञानान्धकार की मोह निद्रा से जाग्रत हो गया हूँ। मुझे ज्ञान हो गया है कि इस संसार मे बिना हाथ हिलाये कुछ भी काम नहीं हो सकता। मै अब अपनी शक्ति का अनुभव करता हूँ। मेरी शक्तियाँ मेरे अणु-अणु से प्रकाशित हो रही है। मेरी नस-नस मे शक्तिशाली रक्त दौड़ रहा है।

"मै अपने भाग्य को दोष नही देता। मेरे भाग्य का निर्माण अत्यन्त शुभ मुहूर्त मे हुआ है। उसमे अनेक उत्कृष्ट तत्त्व लगाये गये है। क्लेश, असंतोष, निराशा, कायरता तथा सशय उत्पन्न करने वाली वृत्तियो का उपयोग मेरे भाग्य-विधान मे नही हुआ है।

"मै अपने विचारो का स्वामी हूँ। स्वयं विचार करना जानता हूँ। अपने जीवन की बागडोर दूसरो को नही सौपता। मेरे निश्चयपूर्ण परिपुष्ट हो चुके है। अपने जीवन को उच्च बनाने का निश्चय कर, मै जीवन सग्राम मे प्रविष्ट हो रहा हूँ। मै निरन्तर आगे ही चलता रहूँगा।

"प्रतिकूलता से युद्ध करने की शक्ति मुझ मे है। मै अत्यन्त साहस से प्रतिकूल परिस्थितियो पर अधिकार कर सकता हूँ। विरोधी से विरोधी को भी जीत सकता हूँ। मै अपने मनोरथो के प्रति पर्वत के सदृश अटल हूँ, स्थिर हूँ। मै जीवन मे आने वाली कठिनाइयो को हटा दूँगा।"

"किसी दूसरे का जादू या सत्ता मुझ पर नही चल सकती। सम्पूर्ण ब्रह्मांड मे कोई भी ऐसी शक्ति नही जो मुझ पर अधिकार कर सके। मैं अपनी शक्तियो का स्वामी हूँ। प्रतिकूल विकट प्रसंग उपस्थित होने पर हिम्मत नही तोड़ता हूँ।"

"मुझे अपने जीवन मे कितने ही महत्वपूर्ण कार्य करने है ? साधारण पुरुषो की अपेक्षा बहुत ऊँचा उठ जाना है। अधिक शक्तियाँ प्राप्त करनी है। मै अपनी विशेषता को प्रकाशित कर संसार को चकित करूँगा।"

दृढ़ निश्चय, दृढ़ संकल्प तथा दृढ़ स्थिरता की भावना—आज से मै दृढ़ निश्चय करता हूँ कि अपने मनोरथो, अपने आदर्शों, अपनी प्रेरणाओं तथा अपनी आत्मा के प्रति सच्चा रहूँगा। जीवन का जो क्रम मैंने निश्चय किया है उसी पर जमा रहूँगा। मैं अपने कर्तव्य के विरुद्ध आचरण न करूँगा।

"मेरे अन्तर प्रदेश मे जो भव्य प्रेरणाएँ उद्दीप्त होती है, उनका प्रकाश करूँगा उन्हे यो ही नष्ट न होने दूँगा। वे मेरी उन्नति की द्योतक है। मेरी सम्पत्ति है। इनकी ही पूर्ति से मेरी उन्नति सम्भव है। जिन वस्तुओ की मै अभिलाषा करता हूँ, वे मुझे अवश्य प्राप्त होगी। मेरी आशापूर्ण तरंगे, आत्मा की महत्त्वाकांक्षाएँ, मेरे मन की दिव्य भावनाएँ जीवनप्रद है। पूरी तरह सत्य है, मजबूत है, बड़ी प्रबल है, प्रभावोत्पादक है। मेरी शक्ति की सूचक है। मेरी उन्नति की परिचायक है। मेरी कार्य सम्पादन शक्ति की द्योतक है।"

"जिसकी मै कामना करता हूँ, जिसकी सिद्धि के लिए मै अन्त करणपूर्वक अभिलाषा करता हूँ, उसकी मुझे अवश्य प्राप्ति होगी। जो आदर्श मैने सच्चे अन्तःकरण से बनाया है, वह अवश्य ही मेरे सामने सत्य के रूप में प्रकट होगा। मेरे मनोरथ सिद्ध होगे, मेरे सुख-स्वप्न सच्चे होगे।

सर्वेश्वर ने मुझे आत्मशक्ति प्रदान की है। मेरे प्रत्येक अंग को शक्ति से परिपूर्ण किया है। अतः दृढ निश्चय द्वारा मैं उन दिव्य शक्तियो का विकास करूँगा। मुझ मे आत्मज्योति की शुद्धता प्रदीप्त है। मेरे हृदय मे उज्ज्वल भाव ही प्रवेश करते हैं।

"मै दृढ हूँ। आजकल की अपेक्षा अधिक सबल हूँ। पर्वत की तरह स्थिर हूँ। संसार के क्षुद्र प्रलोभन या घटनाएँ मेरे दृढ निश्चय को चलायमान नहीं कर सकतीं। मैं दृढ निश्चय से कितने ही कठिन से कठिन विघ्न-बाधाओ के आने पर भी हटने वाला नहीं हूँ। मै अब पूर्ण दृढ निश्चय वाला व्यक्ति बन गया हूँ।"

आध्यात्मिक विवेक की भावना—"मै अपना बहुमूल्य समय खान-पान, वस्त्र, आभूषण, पदार्थ-संग्रह आदि में व्यर्थ खराब नहीं करता। शृंगार मे समय नष्ट नही करता। दूसरो के दोष-दर्शन नहीं करता। मुझे विवेक हो गया है। मैं जगत् का वास्तविक स्वरूप समझ गया हूँ। संसार मे मिथ्या जाल की स्थिति को भलीभाँति समझ गया हूँ।"

"अब मै तुच्छ वासनाओ का गुलाम नही बना रहूँगा। क्षुद्र इच्छाएँ अब मुझे नही दबा सकती। पानी के बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर पदार्थों के पीछे अब मै छटपटाता न फिरूँगा। सांसारिक सम्पदा की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति मे अब मुझे अधिक सुख अनुभव होता है। स्वार्थ की भावनाएँ मुझे विक्षुब्ध नहीं कर सकती। संसार की मोहक वस्तुएँ मुझे पथ-भ्रष्ट नही कर सकती, प्रबल से प्रबल आसुरी प्रवृत्तियाँ मुझे अस्त-व्यस्त नहीं कर सकती।

"चारो दिशाओ मे मेरी विशुद्ध आत्मा का प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा है। मेरे हृदय को परमात्मा का शुभ्र प्रकाश स्पर्श कर रहा है। मेरी आत्मज्योति प्रज्ज्वलित हो रही है। मेरी स्वार्थ की वासनाएँ जड़-मूल से विनष्ट हो चुकी हैं।

"उचित कर्म मे प्रवृत्त कराने वाली सद्बुद्धि मेरे हृदय मे जागृत हो चुकी है। मेरे हृदय को सत् प्रेरणा प्राप्त हो रही है। परमात्मा के परम पावन पवित्र स्पर्श से मेरा अणु-अणु प्रकाशित हो उठा है। मेरी दुर्मति नष्ट हो चुकी है। मन विशुद्ध हो चुका है। मेरे हृदय मे परमात्मा के प्रति अटूट श्रद्धा है। क्षण भर भी मै इन्द्रियो का दास नहीं बन सकता। मैने भलीभाँति अनुभव कर लिया है कि संसार जिस सुख को पाने के लिये मरा जाता है, उसमे सुख नहीं है, वास्तविक सुख का भण्डार तो मेरे भीतर है।"

"मेरी प्रबल इच्छाशक्ति के सम्मुख विघ्न-बाधा तिल मात्र भी नही ठहर सकती। विघ्न-बाधाएँ मेरी अन्तर्ज्योति को प्रज्ज्वलित करती हैं। मै प्रत्येक संकट का अभिनन्दन करता हूँ।"

"मैं भीषण से भीषण विपत्ति मे भी प्रफुल्लित रहता हूँ क्योंकि मेरी आत्मा मे सुप्त शक्तियाँ सजग हो उठी है। मंगलकारी विपत्तियो आओ ! तुम मुझे झुका नही सकती क्योंकि मै अपरिमित बल वाला आत्म पिंड हूँ।"

भय से मुक्ति का निर्देश—मेरे अन्तस्थल मे संचित भय के कीटाणु निकल रहे हैं। अब उनके लिए मेरे हृदय-प्रदेश मे कोई स्थान नही। अविश्वास, चिन्ता, अश्रद्धा, संकोच, कायरता इत्यादि विजातीय तत्त्व मेरे अन्तःकरण मे नही ठहर सकते।

"मुझे प्रतीत हो गया है कि निश्चित एवं निर्भय पुरुष ही उत्कृष्ट जीवन प्राप्त करते है। चिन्तायुक्त पुरुष कभी अग्रसर नही हो पाता। मैं भविष्य के लिए दुःखो की कल्पना नहीं करता। भय की पुष्टि द्वारा मैं अपनी स्फूर्ति को नष्ट-भ्रष्ट नहीं होने देता। भयभीत जीवन वास्तविक जीवन से अत्यन्त दूर है। मै निज अन्त करण को भूतो का डेरा कभी नहीं बनाता।"

"मुझे कोई भय नही। चिन्ता नही। डर नहीं। मैं पूर्ण निर्भय हूँ, पूर्ण प्रकाशित हूँ। मुझे तो ससार से सुख का आनन्द लूटना है फिर भला भय क्यो कर घुस सकता है ? मैं परम निशंक हूँ। मुझे अस्त-व्यस्त करने की किसी को हिम्मत नही।"

"मुझे ससार मे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। अनुचित रीति से कोई नहीं दबा सकता। मै निरन्तर आगे बढ रहा हूँ। कौन मेरे मार्ग मे बाधा पहुँचा सकता है ? मैं सब ओर से पूर्ण सुरक्षित हूँ। मुझे मेरी आत्मा ने ऐसा बल प्रदान किया है कि उसके आगे सबको ही झुकना पड़ता है।

"मैं भय को फूँक से उड़ा देता हूँ। पास तक नही आने देता। भय से मेरा कोई नाता-रिश्ता नहीं। भय से मेरा अन्तःकरण निर्मल हो चुका है। अब उसमे उन पवित्र

विचारो का समावेश हो चुका है कि भय की दाल नही गल सकती। भय मुझसे डरता है। मेरी शक्ति से डरता है। मेरी आत्मश्रद्धा महान है। जहाँ आत्मा का भव्य प्रकाश है, वहाँ भय का अन्धकार कहाँ टिक सकता है।"

"मै एक ऐसे दिव्यलोक मे निवास करता हूँ जहाँ न चिन्ता है, न भय है, न घृणा है, न अहंकार ! वहाँ तो अखण्ड आनन्द, अखण्ड शान्ति तथा अखण्ड प्रसन्नता निवास करती है। मै तो परब्रह्म के अखण्ड आनन्द स्रोत मे विहार करता हूँ, फिर भय मेरे ऊपर किस प्रकार आक्रमण कर सकता है ?"

आत्मावलम्बन की भावना—मै अपने चित्त को किसी भी प्रकार की परिस्थिति से विक्षिप्त नही होने देता। मै बाह्य दु:खो और चिन्ताओ से परेशान नही होता। मेरे इर्द-गिर्द की झंझटे मेरी शान्ति को भंग नही कर सकती। मै क्षणभंगुर वस्तुओं पर अपनी चित्त-वृत्ति स्थिर नही करता।

"मै बड़ी से बड़ी विपत्ति, भारी कष्ट, पीड़ा, आघात आने पर भी नही घबराता। संसार मे जो कुछ है, उसका उद्देश्य महान है, इसी भावना को हृदय मे धारण करके मै संसार का व्यवहार करता हूँ। मुझे अपनी वृत्ति आत्मा मे स्थिर करने मे आनन्द आता है। आत्मा मे मन को एकाग्र करने से मुझे नवीन उत्साह, नवीन ज्ञान और नित नवीन आनन्द प्राप्त होता है।"

"अब मै प्रकृति के जाल मे नही फँसता और प्रकृति से हटकर आत्मा की ओर दौड़ता हूँ। मै अब बाह्य वस्तुओं का आश्रय ग्रहण नही करता। मुझे अनुभव हो गया है कि आत्मा से बढ़कर संसार मे अन्य कोई वस्तु नही है।"

"अब मुझे किसी बाह्य वस्तु की अपेक्षा नही है। मेरा मन आत्मा में रमण करने लगा है। जगत् मे अब किसी के आधीन नही हूँ, मेरे सत्यस्वरूप आत्मा के सन्मुख संसार की विघ्न-बाधाएँ एक क्षण भी नही ठहर सकती। मै मेरु की तरह अटल हूँ।"

"मै अपने परम-देव का साक्षात्कार कर रहा हूँ। आत्मज्योति मेरे हृदय मन्दिर मे प्रकाशमान हो रही है, मेरी समस्त भ्रान्तियाँ लोप हो गई है। अब मै कभी भी ससार के क्षणभंगुर अवलम्बन के पीछे नही छटपटाता प्रत्युत, अपनी आत्मा मे पूर्ण स्थिर हो गया हूँ।"

"मुझे ज्ञात हो गया है कि आत्मा मे ही वास्तविक सुख, वास्तविक आनन्द एवं वास्तविक स्वाधीनता है। मै सांसारिक लोभ और तृष्णा से मुक्त हो गया हूँ। अब मै क्षुभित नही होता। अस्त-व्यस्त नही होता। परेशान नही होता क्योंकि मुझे अपने आपका अनुभव हो गया है।

विपत्ति पर विजय प्राप्त करने की भावना—"मुझे अनुभव हो गया है कि जीवन मे जो विपत्तियाँ, कष्ट और प्रतिकूलताएँ आती है, वे सब मेरी भलाई के लिये आती है। भारी से भारी विपत्ति सहन करने की सामर्थ्य मुझ मे है। मेरे अन्तःकरण के अन्तस्थल मे ऐसा असाधारण बल है कि भारी से भारी संकट और विघ्न-बाधाओ को मै छिन्न-भिन्न कर सकता हूँ।

"मै विपत्तियो का प्रसन्नता से स्वागत करता हूँ। अग्नि मे तपकर हथौड़े के प्रहार सहन कर, लोहे के जैसे सुन्दर हथियार बनते है, उसी प्रकार विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ और बाधाएँ ही महान गुणो का विकास करती है।"

"मै विरोधी और विपरीत परिस्थिति मे रहकर अपने अविचल लक्ष्य पर स्थिर रहता हूँ। मै भारी से भारी विपत्ति को हँसते-हँसते सहन करता हूँ और अपने जीवन की दुःख-गाथा को लोगो को नही सुनाता फिरता। मेरे हृदय मे वह देव बल है कि क्षुद्र दुर्भाव या आसुरी विचार मुझे दबा नही सकते।"

दैनिक जीवन में संकेत का प्रयोग

हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य मे हमारे संकेत या निर्देश कार्य किया करते है। संकेत ही मनुष्य के विविध कार्यों को सफलता प्रदान करता है। हमारे चरित्र विकास मे धैर्य, कर्तव्यपरायणता और संकल्प की दृढ़ता प्रायः हमारे पुण्य संकेतो पर ही निर्भर है। अपने नित्य प्रति के संकेतों से हम अपने वातावरण की सृष्टि करते है। मकड़ी के जाले के सदृश्य हम कभी गुनगुनाकर, कभी मूल रूप मे अपने आपको कुछ न कुछ आज्ञा दिया करते है। अपनी आत्मा को जैसा निर्देश दे देते है, वैसी ही सृष्टि सर्वप्रथम हमारे अन्तःकरण मे होती है, तत्पश्चात् उन निर्देशो के अनुसार ही वातावरण निर्मित होता चलता है। कितनी ही बार दूसरे के संकेत हमारे ऊपर जादू-सा कर दिखाते है। कितने ही मनुष्य दूसरो के संकेतो के दास होते है। जब तक उन्हे कोई निर्देश नहीं करता, तब तक वे कार्य मे हाथ ही नही डालते। लोग उन्हे बुरे संकेत दे देते हैं, तो वे परेशान हो उठते हैं, सर्वत्र तूफान-सा अनुभव करते है। उत्तेजना के शिकार हो उठते है और मन स्थिरता खो बैठते है। कोई उन्हे आश्वासनयुक्त संकेत प्राप्त करा देते है, उनकी चिन्ता, व्यग्रता, उद्वेग, निराशा, दु:ख, चिड़चिड़ापन शान्त हो जाता है। वे शान्त होकर आशा की श्वाँस लेते है, वातावरण सुख-शान्तिमय बन जाता है, अन्तरात्मा मे अपूर्व बल का संचार होता है।

कलुषित निर्देश अन्धकार की वस्तु है। वे जीवन का नाश कर सकते है। तुम बुरे संकेतो को स्वीकार कदापि न करो। अनायास ही उनके अनुगामी न बनो। उनसे युद्ध करो। दूसरो के विपरीत संकेतो को ग्रहण करना अपना पतन करना है।

संकेत का सूक्ष्म कार्य—एक व्यक्ति दूसरे के संकेतो का अनुगामी बन जाता है किन्तु उसे यह ज्ञान नही रहता कि वह क्यो कर दूसरे के विचारो का अनुसरण करने लगा। संकेत बड़ी सूक्ष्म रीति से निर्देशित

व्यक्ति के अव्यक्त में कार्य आरम्भ करता है। उस व्यक्ति को यह सुधि-बुधि नही रहती कि दूसरे के संकेत निरन्तर उसमे विचार-परिवर्तन कर रहे है। अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण दूसरे व्यक्ति के पुष्ट संकेत उसके दुर्बल मन-क्षेत्र मे प्रवेश कर जाते है और सरलतापूर्वक जड़ पकड़ लेते है। वास्तव मे अगर निर्देशित व्यक्ति को इस तत्त्व का ज्ञान हो जाय कि वह दूसरो के संकेतो से प्रभावित हो रहा है या जान-बूझकर उस संकेत का प्रयोग किया जा रहा है, तो फिर उस संकेत का प्रभाव अति न्यून रह जाता है। यदि निर्देशित व्यक्ति कुछ भी संकल्प वाला हुआ तो उस पर संकेत का प्रभाव कुछ भी नही रह जाता।

एक व्यक्ति का अद्भुत वृतान्त किसी पत्र मे छपा था। वह संकेत शक्ति पर व्याख्यान दिया करता है। व्याख्यान प्रारम्भ करने से पूर्व वह अपनी जेब मे से एक बोतल निकालकर स्टेज पर तरल पदार्थ छिड़क देता है और निर्देश करता है—

"मैने थोड़ी-सी सुगन्ध छिड़की है। यह तीव्र गति से आप के पास पहुँचेगी ज्योही यह सुगन्धि आप तक पहुँचे, आप हाथ उठाते जाइये। इससे मुझे अतीव सहायता प्राप्त होगी और मै अपना कार्य शीघ्रता से आरम्भ कर सकूँगा। मै यह जान सकूँगा कि यह सुगन्ध कितनी तेजी से चलती है ?"

ऐसा निर्देश देकर वह अपना भाषण प्रारम्भ कर देता है। पहले अगली पंक्ति मे, तत्पश्चात् मध्य की पंक्तियों मे और अन्ततः अन्तिम पंक्तियो मे क्रमशः हाथ उठते जाते है। इसी बीच मे व्याख्यानदाता सिर हिलाकर हाथ उठाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को धन्यवाद देता जाता है और जब सबसे अन्तिम व्यक्ति अपना हाथ उठा चुकता है तो तब वह कहता है—

"आपको स्मरण होगा कि मै आज संकेत शक्ति 'पावर ऑफ सजेशन' पर व्याख्यान दे रहा हूँ। मैने यहाँ स्टेज पर जो कुछ छिड़का वह सुगन्ध नही थी, वरन् शुद्ध जल था। आप आगे आकर बोतल को सूँघकर देख सकते है।" उपस्थित सज्जनो को बोतल सूँघ कर बड़ा कौतूहल होता है। वास्तव मे प्रारम्भ मे ही यदि निर्देशित व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाय कि उस पर संकेत किया जाने वाला है तो वह उससे साफ बच जाता है। उसका अव्यक्त मन अनायास ही निर्देश करने वाले के विचारो का अनुगामी नही बनता।

संकेत की दो अवस्थाएँ—कुछ व्यक्ति ऐसे भोले-भाले होते है, जो बिना सोचे-समझे, तर्क-वितर्क किये जो कुछ संकेत उन्हे दिया जाता है, उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते है। ये उसकी सत्यता के विषय मे लेशमात्र भी संशय नही करते। यह संकेत की असाधारण अवस्था है जिसमे निर्देशित व्यक्ति हतबुद्धि-सा होकर जो कुछ उसे सुझाया जाता है मान लेता है।

एक समय की बात है। बाजीगर ने एक रुपया हाथ मे लिया और बोला—देखिये मै इसी रुपये मे से जैसी आप चाहेंगे उसी प्रकार की सुगन्ध सुँघाऊँगा। ऐसा कहकर वह निर्देशित व्यक्ति से पूछता है—बोलो कौन-सी सुगन्ध चाहते हो ? निर्देशित व्यक्ति कहता है—'गुलाब' और तुरन्त उसे रुपये मे से गुलाब की सुगन्ध आती है। इसी प्रकार के अनेक भ्रम असाधारण संकेतो से उत्पन्न किये जा सकते है।

एक शिक्षक अपनी कक्षा मे एक सुन्दर चित्र लाया और बोला देखो लड़को ! यह एक सुन्दर नदी का चित्र मै तुम्हे दिखाता हूँ। तुम दूर से देखकर बताना कि इसमे और क्या-क्या है ? ऐसा कहकर वह चित्र को दूर से दिखाता है। विद्यार्थी खड़ा होता है और कहता है—इस नदी मे एक नाव तैर रही है। दूसरा कहता है—नदी के किनारे दो वृक्ष खड़े है। तीसरा कहता है—नाव मे दो व्यक्ति बैठे है। चौथा कहता है—नाव पश्चिम की ओर बढ़ती जा रही है इत्यादि। अन्त मे एक प्रौढ़ विद्यार्थी से प्रश्न हुआ। वह घबरा गया और अन्त मे बोला—"मास्टर साहब, मुझे तो चित्र मे नाव भी नही दीखती।" सचमुच चित्र मे नाव न थी। वह एक साधारण-सा चित्र था, जिसमे एक नदी तथा बादल अंकित किये गये थे। संकेत के कारण लड़को के मन मे भ्रम उत्पन्न हो गया था।

असाधारण अवस्था मे निर्देशित व्यक्ति का मन इतना निर्बल होता है कि निर्देशक जो कुछ चाहता है मनवा लेता है। ऐसे व्यक्ति को जो संकेत दिया जाता है वह फौरन स्वीकार कर लेता है। यह सब निर्देशित व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता के कारण होता है।

दूसरे प्रकार के संकेत मन की साधारण अवस्था मे ही कार्य किया करते है। उपरोक्त असाधारण अवस्था मे निर्देशित व्यक्ति को यह ज्ञान नही रहता कि उसे संकेत किया जा रहा है। किन्तु साधारण अवस्था मे संकेत का कार्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। एक बालक अपनी माता को प्रातःकाल पूजा करते देखता है तो उसे संकेत मिलता है। वह बोलता है कि मेरी माँ इस कार्य को करती है। मै भी करूँ और वह चुपचाप ईंट-पत्थरो के ठाकुर जी की पूजा प्रारम्भ करता है। सिगरेट का शौक बच्चो को अन्य घर वालो को सिगरेट पीता देखकर लगता है। वे सोचते है अमुक चाचा या काका सिगरेट पीता है तो मै भी उसे पीयूँगा क्योकि अन्य व्यक्ति भी पीते है इसलिये वह जान-बूझकर धूम्रपान प्रारम्भ कर देता है।

इस अवस्था मे मन साधारण अवस्था मे है और संकेत का कार्य स्पष्ट रूप मे चलता है। इसी प्रकार के अनेक प्रभाव कभी असाधारण अवस्था मे तो कभी साधारण अवस्था मे हमारे दैनिक जीवन मे घटित होते रहते है।

शिशु के मन पर संकेत का प्रभाव—बालको पर असाधारण अवस्था मे संकेत अधिक कार्य करता है। वे

जो कुछ संकेत उन्हे प्रदान किये जाते हैं, वे उन्हे सहर्ष स्वीकार भी कर लेते हैं। यदि माता कहती है—तू राजा बेटा है, अच्छे-अच्छे काम करता है, दूसरो को गाली नही देता, इम्तहान मे पास हो जाता है, सब स्थानो पर विजयी होता है इत्यादि, तो शिशु का अव्यक्त मन तुरन्त इन संकेतो को ग्रहण कर लेता है और भविष्य में ये संकेत उसे ऊँचा उठाये रहते है। इसके विपरीत यदि माता शिशु को गाली दे और कहे—"तू जन्मभर रोता फिरेगा, भीख माँगेगा, दुनिया मे लोगों का मुँह ताका करेगा, तुझसे कुछ होना जाना नहीं। तू हर जगह हारता है।" इस प्रकार के घातक संकेतो का शिशु के हृदय पर बड़ा विषैला प्रभाव पड़ता है। जो शिक्षक अपने शिष्यों को—'तू तो निरा गधा है', 'दिमाग मे निरा गोबर भरा है', 'नालायक कम्बख्त बिलकुल बुद्धू है।' इत्यादि संकेत देते हैं वे अपने शिष्यो के मार्ग में काँटे बोते है। बचपन मे दिये गये घातक संकेतो से कितने ही होनहार बालकों के जीवन अन्धकारमय हो जाते है।

स्वयं अपने आपको संकेत देना

अपने संकेतो से स्वयं प्रभावित होना ही संकेत का चमत्कार है। मनुष्य स्वयं अपना निर्माण करता है। इस बात को यों कह लीजिये कि मनुष्य जो-जो संकेत समय-समय पर अपने आपको दिया करता है, कालान्तर मे वे ही उसके भाग्य का निर्माण किया करते है।

जो मनुष्य दूसरो के विचारो से प्रभावित न होकर स्वयं अपने ही विचारो पर अपने भविष्य का निर्माण करता है वह धन्य है। उसी का जीवन सुख-शान्तिमय बनता है। दूसरो के विचारो से प्रभावित होना मानो दूसरों को अपना स्वामी बना देना है। यदि मनुष्य अपने जीवन को दूसरो को ही सौंप दे तो उसका अपना रह ही क्या जावेगा ?

अनेक मनुष्यो के मानसिक स्तर बड़े निर्बल होते है। संसार के दूसरे मनुष्य चारो ओर से भ्रांति के विचार ला-लाकर उनके मन मे डालते है। वे उन्हीं को अन्तःकरण की स्थायी वृत्ति बना लेते है। वैसे ही बन जाते है। यह परम दु:खद अवस्था है।

हम दूसरो के जिन संकेतों को स्वीकार कर लेंगे, वे ही हमारे मानसिक संस्थान की स्थायी सम्पत्ति बन जायेंगे। फिर वैसे ही विचार हमारे मन मे स्वत: उत्पन्न होंगे वैसा ही हमारा भविष्य बनेगा। इसमे दोष हमारा ही है। विचारों की यह परवशता मनुष्य को परतन्त्र बना रही है। खेद है कि आज अधिकांश मनुष्य अपने हृदय मे जो विचार रखना चाहते हैं, उनको नही रख पाते। वे स्वयं अपने शत्रु बन गये है।

तुम अपनी परीक्षा करो। तुम्हारे स्वयं अपने विषय में क्या-क्या धारणाये बन गई है ? तुमने कहाँ तक अपने आपको समझा है ? तुम्हारी आत्मा की ध्वनि तुम्हे क्या सलाह देती रहती है ? ठीक-ठीक उत्तर दो कि तुमने अपनी आत्म-प्रेरणा को धोखा तो नहीं दिया है ? तुम्हारे विश्वास, तुम्हारे मन्तव्य, तुम्हारी आकांक्षाये क्या है ? वस्तुत: तुम चाहते क्या हो ? कौन-कौन व्यक्ति तुम्हारी आलोचना करते है ? हृदय की अन्तर्ध्वनि तुम्हारे साथ कहाँ तक है ? कौन-कौन से भय तुम्हें विचलित कर रहे हैं ? तुम अपना अधिकांश समय किस प्रकार के विचारो में व्यतीत करते हो ?

उक्त प्रश्नों का उत्तर समुचित रीति से कागज पर लिख डालो। तुम सर्वप्रथम अपना अध्ययन करो। तत्पश्चात् ही कोई नया कदम उठा सकते हो। जिस मशीन से तुम्हे कार्य लेना है, उसके पुर्जे-पुर्जे से परिचित होना अनिवार्य है। आज अनेक व्यक्ति अपने जीवन का क्षय केवल अनजानेपन में रहकर ही कर रहे हैं। वे अन्धकार में पड़े है। उन्हे स्वयं अपने आपका ज्ञान नहीं, उनकी मन:शक्ति व्यर्थ के झमेलो में नष्ट हो रही है।

स्वसंकेत के लिये तैयारी—आप यह धारणा बना लीजिये कि आप जिस ओर प्रवृत्त हो रहे है, उस ओर अग्रसर होने की प्रबल शक्ति आप मे है। तभी उस बात का विचार अपने मन:क्षेत्र मे उदित हुआ। विचार उस कार्य का सूचक है। यही परिवर्द्धित, पल्लवित एवं परिपुष्ट होकर कार्य बन जायेगा। अपनी आशाओं को जीवित रखने का सतत् प्रयत्न करते रहिये। यदि आपकी महत्वाकांक्षाये प्रदीप्त रहेंगी तो आप साक्षात्कार शक्ति शीघ्र प्राप्त कर सकेंगे।

तुम्हारी अभिलाषा एवं निश्चय दोनो मिलकर कार्य मे प्रवृत्त हो तब तुम कार्योत्पादक शक्ति मे अभिवृद्धि कर सकोगे। अभिलाषा इतनी तीव्र हो कि वह दृढ संकल्प मे परिणित हो जाय। इच्छा के पर्वत सदृश दृढ निश्चय के सम्मेलन से संकेत मे विशेष सफलता मिलती है। जो यह विश्वास रखता है कि जिस ओर मे चल रहा हूँ, उसे अवश्यमेव प्राप्त कर सकूँगा, उस पर संसार विश्वास करता है। विश्वास ही वह शक्ति है जिससे हमारे संकेत क्रियाशील बनते है।

स्वसंकेत का पहला कदम—शीशे के सामने शान्त चित्त खड़े हो जाइये और अपनी प्रतिकृति को देखकर अपने आप से प्रश्न कीजिये—"क्या इस चित्र वाले व्यक्ति मे सफलता का संकेत है ? क्या इसमे विजयश्री प्राप्त करने का अभ्यास परिलक्षित होता है ?" पहला कदम यही है कि आप उत्तर मे—"इस चित्र वाले व्यक्ति के मुख मण्डल पर सफलता का सूर्य प्रकाशित है। यह प्रकाशवान अवश्य होगा। यह उन्नतिशील एवं विजयी जरूर होगा। इसके नेत्रों से आत्म तेज टपक रहा है।"

तुम्हारे मुखमण्डल से श्रद्धा, दृढ़ता प्रकाशित होनी चाहिए। ज्यो-ज्यों तुम्हारे दिव्य विचार स्थायी सम्पत्ति बनेंगे, ज्यो-ज्यो तुम अपने सम्बन्ध मे आशापूर्ण शुभ सूचक

भावो को स्थान दोगे, त्यो-त्यो तुम्हारे मुख मण्डल मे अद्भुत परिवर्तन होगा। जब हम किसी वस्तु विशेष की हार्दिक कामना करते हैं, तभी से उसकी ओर अपने विचार प्रवाह को भी खोलते है। तभी से उससे सूक्ष्म सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उसी का प्रकाश मुख मण्डल पर भी होता है।

आप सोचिये कि "मेरे मुख मण्डल से, प्रभावोत्पादकता, शक्ति, सिद्धि स्पष्ट प्रकट हो रही है। जिसको मै चाह करता हूँ, जिसकी कामना मेरे अन्तःकरण में उदित हुई है, उसकी मुझे अवश्य ही प्राप्ति होगी। जो आदर्श मैने सच्चे अन्तःकरण से निर्माण किये हैं, वह अवश्य मेरे सामने प्रकट होगा।"

यही आशासूचक दृढ भावना तुम्हारे लिखे हुए पत्रो, बोले हुए वाक्यो, वस्त्रो से प्रकट हो। यही तुम्हारे साहित्य से। तुम इस विचार मे डूबे रहो। इसी मे गोते लगाओ और प्रतिकूलता की भावना को कदापि पास न फटकने दो।

तत्पश्चात् अपने कार्यों पर दृष्टिपात करो। क्या तुम ढीले-ढाले रूप से कार्य करते हो ? क्या काम से बचने की प्रवृत्ति है ? क्या तुम अपने कार्य को बोझ समझकर करते हो ? परीक्षा करो। तुम्हारे प्रत्येक कार्य से सफलता प्रकट होनी अनिवार्य है। उत्तमता की छाप तुम्हारे प्रत्येक कार्य पर हो।

तुम्हारे ऊपर दूसरो के विचारो का जादू कदापि न चलना चाहिए। ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, प्रतिशोध, भय, क्रोधादि विकारो को मनमानी करने का अवसर न मिले। काल्पनिक शत्रुओ के विषय मे तुम न विचारो।

नित्यप्रति के जीवन-युद्ध मे जो भी देखो, उसमे आशा, उत्साह की आभा हो, तुम्हारा हृदय हरा-भरा हो, पवित्रता का निर्मल स्रोत, वहाँ प्रवाहित होता हो। जीवन का वास्तविक आनन्द जीवन की प्रशान्त अवस्था मे ही प्रकट होता है।

तुम मित्रता के वृक्ष लगाओ, जिससे तुम्हारी आकाक्षाएँ पूर्ण हो और शत्रुता की कँटिदार झाड़ियो को उखाड़कर फेंक दो। अमुक व्यक्ति मेरा शत्रु है, अमुक मेरी बुराई चाहता है, अमुक मेरा प्रतिद्वन्द्वी है—ऐसे विचार सदा-सर्वदा के लिए बहिष्कृत कर दो अन्यथा सकेत के प्रयोग मे सफलता न होगी।

सकेत की शक्ति तुम्हारी श्रद्धा का अर्थ है, बिना देखी-सुनी वस्तु पर विश्वास कर लेना तथा उसी विश्वास के बल पर निज जीवन का मार्ग निश्चय करना। यदि तुम्हे अपनी बातो में खुद विश्वास न होगा, तो क्यो कर उन्नति कर सकोगे ? केवल श्रद्धा की न्यूनता के कारण न जाने कितने व्यक्तियों का अध.पतन हो रहा है। श्रद्धा जगतजननी जगदम्बा है और विश्वास सकेत का पिता रूप है।

एकान्त में हमारे संकेत—तुम्हे अपनी आत्मा के अपूर्व सामर्थ्यों का भान हो चुका है। तुम उस गुप्त भण्डार को खोलने चले हो। तुम्हे प्रतीत हो गया है कि अनन्त अपार बल का उद्गम स्थान श्रद्धा है। शक्ति और सामर्थ्यों की अभिवृद्धि एकांत के क्षणो मे ही सम्भव है। एकांत मे मन को तीव्र करो और उसे चिन्तन करने के लिए एक विचार दो। उसी पर मन.शक्ति का तीव्र प्रवाह छोड़ दो। जितनी देर तुम्हारा मन उस एक विचार पर केन्द्रित रहेगा, उतनी देर वह तुम्हारे अव्यक्त मन की स्थायी सामग्री बनेगा।

उदाहरणस्वरूप चित्त को निम्न वाक्यो पर कुछ-कुछ क्षणो के लिए केन्द्रित करो—"अनन्त ज्ञान, अनन्त जीवन, अनन्त प्रकाश, पवित्रता एवं प्रेम का झरना मेरे अन्तर मे है। सम्पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य का मूल स्रोत अनन्त एवं अपार है। अनन्त परमात्मा मे से व्यक्ति रूप मे सामर्थ्य मुझमे प्रगट हो रही है।"

"परमात्मा की शक्तियो मे से मै अपना भाग खींच रहा हूँ। चेतन तत्व मेरे शरीर, मन और आत्मा मे अखण्ड नवीन रचना कर रहा है। मै चेतन तत्त्व को अन्तर्बाह्य परिपूर्ण देख रहा हूँ। मुझे अपनी अद्भुत शक्तियो का आदि स्रोत प्राप्त हो गया है।"

एकान्त मे आप ऐसा सोचिए कि आपके मनोरथ क्रमशः आपकी ओर आकर्षित होकर खिंचे आ रहे है। आपका विद्युत-प्रवाह दृढ़ता से आपको आगे ढकेल रहा है। आपकी मुश्किले आसान हो रही है। आप क्रमशः सिद्धि की ओर अग्रसर हो रहे है।

एकान्त स्थान आशापूर्ण शुभ-सूचक चित्रो को मनोमन्दिर मे सजाने का सबसे उत्तम समय है। शुभ-भावना को एकान्त मे अपने अव्यक्त मन मे प्रवेश कराना चाहिये। तत्पश्चात् क्रमशः उन्हे संकेत देकर दृढ बनाना चाहिए।

मनुष्य का केवल जिह्वा से ही नही किन्तु अपने मन, वचन, कर्म तीनो से ही संकेत मे विश्वास रखना चाहिए। जो संकेत वह एकान्त मे अपने आपको दे, उनमे उत्साह भरा हो, इच्छा की अग्नि प्रदीप्त हो। जैसा मनुष्य भीतर से हो, वैसा ही बाहर से अपने को प्रकट करे।

"उत्तम समय आ रहा है। मै प्रतिदिन अच्छे और अच्छे जीवन की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। मेरा 'कल' आज से सुन्दर होगा"—ऐसी भावना से नवीन प्रेरणा प्राप्त होती है।

"मेरी प्रकृत अभिलाषाओ के पीछे ऐश्वर्य, ईश्वरत्व अन्तर्निहित है। मै अपने हृदय से आनन्दमय भवन मे आदर्श का आभास देखता हूँ, उन्हीं का प्रकाश करता हूँ। मेरी मानसिक वृत्तियो, हार्दिक अभिलाषाओ को प्रकृति देवी सुनती है और उसका उपयुक्त उत्तर भी देती है।" इसी भावना मे विहार कीजिए।

संकेत के दैनिक अभ्यास—प्रत्येक दिन जब-जब तुम श्रद्धापूर्वक एकाग्र मन हो अपने आपको संकेत देते हो, कुछ न कुछ उन्नति कर लेते हो। जब तुम अपने आपसे कोई छोटा कार्य ठीक तरह करा लेते हो, तो तुम्हारी शक्ति मे वृद्धि होती है। अव्यक्त रूप से तुम्हारी शक्तियो को संकेत का शक्तिशाली अमृत प्राप्त हुआ करता है, जिससे तुम्हारी परिपुष्टि होती है।

एक ऐसा स्थान निश्चय करो, जहाँ एक विशेष समय बैठकर तुम सब संकेत दे सको। जिस प्रकार तुम भोजन ग्रहण करना नही भूलते, उसी प्रकार स्व-संकेत का मानसिक भोजन ग्रहण करने मे भूल-चूक कदापि न करो। स्मरण रहे, एक दिन भूलने से कई दिन का प्रभाव नष्ट हो जाता है। तुम्हारी श्रद्धा को भी ठेस पहुँचती है।

प्रत्येक दिन तुम अपने कार्य के किसी विशिष्ट अंग को हाथ मे लो और प्राण-पण से लगकर उसे पूर्ण कर डालो। पहले अपेक्षाकृत छोटे कार्य करते रहो, फिर क्रमश. बड़े-बड़े कार्य लेते रहो, तुम्हारी शक्ति दिन पर दिन बढ़ेगी।

प्रत्येक दिन तुम जिस व्यक्ति पर चाहो अपना प्रभाव डालने की कोशिश करते रहो। पहले साधारण व्यक्तियो पर अपनी शक्ति अजमाओ फिर ऊँचे व्यक्तियो को चुनो।

शक्ति प्रत्येक दिन बढ़ानी चाहिए। दो-एक दिन आत्मबल संग्रह करने के पश्चात् आत्म-संस्कार का कार्य छोड़ देने से एकत्रित शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

शक्ति-संग्रह का प्रथम सोपान अपेक्षाकृत कष्टप्रद हुआ करता है। प्राय: प्रत्येक उत्तम वस्तु की प्राप्ति का पहला कदम मुश्किल होता है। किन्तु एक बार जागरण होने के पश्चात् मेधावी पुरुष रुकता नही। उसका अन्तर्मन उसकी प्रचुर सहायता करता है। अन्तर्मन मे सब प्रकार के विषयो का ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है किन्तु दुर्बल श्रद्धा सहित संकेत हमारे अन्तर्मन को प्रदीप्त नही करते। निज मन मे सर्वप्रथम प्रबल और पूर्ण इच्छा उत्पन्न करो। फिर ऐसा उपक्रम करो जिससे बलवती इच्छा उत्पन्न हो। फिर ऐसा उपक्रम करो कि निरन्तर उसी प्रकार के मनोवेगो का प्रवाह चलता रहे।

कार्य प्रारम्भ करने के कुछ दिन पश्चात् तक कोई विशेष परिवर्तन प्रतीत नहीं होता क्योंकि सर्वप्रथम हमारे अन्तर्प्रदेश में उचित मनःस्थिति का निर्माण होता है। पुरानी ग्रन्थियाँ नष्ट-भ्रष्ट होती है तथा नवीन ग्रन्थियो का निर्माण होता है। अत: जिस शक्ति, उद्देश्य, कार्य को तुम प्राप्त करना चाहते हो, उसे स्पष्ट रूप से मन में स्थिर करो। उस वस्तु विशेष के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की मन में रचना करो और प्रत्येक दिन उस उद्देश्य को सुदृढ़ करते रहो, यहाँ तक कि वह मन के गहरे भाग में अंकित हो जाय। प्रतिभा का रहस्य अन्तर्मन को जाग्रत करना है।

दूसरो के अनिष्टकारी संकेत—समय-समय पर संसार के स्वार्थी मनुष्य हमारे मन मे मिथ्या विचार लाकर प्रवेश कर देते है और हम उन्हे ग्रहण कर लेते है। यही पतन का मुख्य कारण है। गुलामो की तरह तुम दूसरो के अनिष्टकारी संकेतो को ग्रहण कर लेते हो और मन· प्रदेश मे चारो ओर भ्रांति के विषैले कीटाणु फैल जाते है।

दृढ़तापूर्वक कहो "मै दूसरो के विचारो के अधीन नही हूँ, स्वयं अपने विचारो के बल पर खड़ा हूँ। मै उच्च विचार ही ग्रहण करूँगा। ससार मे जितने महत्वाकांक्षी पुरुष हुए है, उन्होने संसार की टीका-टिप्पणी की तनिक भी परवाह न की। उन्होंने अपना कार्यक्रम-अपना वातावरण स्वय बनाया। मै भी स्वयं अपने पर शासन करूँगा। मै अपने आपको सांसारिक कुटेवो से दूर रखूँगा। मै अपने आपको बन्धनो से दूर रखता हूँ। मै दूसरो के हाथ का खिलौना मात्र नही हूँ किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ। अपने जीवन का, संकल्पो का स्वामी हूँ, मैने अपने जीवनक्रम पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। दूसरो के प्रतिकूल संकेतो से मै विक्षुब्ध नही होता। दूसरे मनुष्य कुछ का कुछ कहकर मुझे पथच्युत नही कर सकते। सशय मेरी प्रगति मे बाधा उपस्थित नही कर सकते।"

यदि कोई प्रतिकूल संकेत आप को मिलता है, तो दृढ़तापूर्वक उसका सामना कीजिये। अपने मन केन्द्र मे उसे कदापि प्रवेश न होने दीजिये। यदि कोई निर्देश करता है—"आप बड़े दुबले प्रतीत होते है। बीमार जान पड़ते है। मुँह बड़ा उतरा हुआ है तो संकेतो को कदापि स्वीकार न कीजिए। उत्तर दीजिए—"मै तो शान्तिस्वरूप हूँ। मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल दुरुस्त है। आप भूल करते है। मैं दिन प्रति दिन ऊँचा उठ रहा हूँ।" ऐसा करने से भ्रान्ति के उन अनिष्टकारी विचारो का जादू तुम्हारे ऊपर न पड़ेगा। प्रत्युत वे लौटकर अनिष्टकारी संदेश देने वालो को ही हानि पहुँचायेंगे।

यदि कोई आपका मजाक करे, तो उसकी ओर से ध्यान हटा लीजिए। उसके संकेतो पर कुछ भी ध्यान न दीजिए। ऐसा करने से मजाक करने वाले को बड़ा बुरा मालूम होगा। बुरा इसलिए मालूम होगा कि उसके अनिष्टकारी संकेत पुन: उसी को क्षुब्ध करेंगे।

दूसरे के अनिष्टकारी संकेतो को अन्तःकरण में प्रवेश न होने देना, शान्ति स्थापित करने का सर्वोत्तम उपाय है। इस प्रकार तुम अनेक व्यक्तियों के व्यंग-बाणों से त्राण पा सकते हो।

तुम्हारे संकल्प इतने परिपुष्ट हों कि कोई उन्हें हिला न सके। उनकी नींव इतनी गहरी हो कि प्रतिकूल तूफान उसे उखाड़ न सके। तुम व्याख्यान दे रहे हो। कोई खड़ा होकर कुछ आक्षेप करके तुम्हें लज्जित करना चाहता है। तुम उधर ध्यान ही न दो। उसके अनिष्टकारी संकेतों को ग्रहण ही न करो। उधर से मन हटा लो। जब तुम

कर्तव्य मार्ग पर अग्रसर होगे, तो अनेक अनिष्टकारी व्यक्ति तुम्हारा विरोध करेगे। तुम उनके प्रतिकूल सकेतो को अंत.करण की शान्ति भंग न करने दो।

जब-जब तुम्हे दूसरो के प्रतिकूल सकेतो का प्रभाव पड़ता प्रतीत हो, अपने की रक्षा करो। उसे नष्ट न होने दो। दूसरो के संकेतो से प्रभावित न हो जाओ। कितने ही मानसिक निर्बल व्यक्ति दवाइयो के विज्ञापन पढ़ने से संकेत ग्रहण कर लेते हैं। वे मान बैठते है कि उनमे इधर-उधर रोग छिपे पड़े है। कितने ही बीमार पड़ जाते है, प्रतिकूल संकेत से मृत्यु तक सम्भव है। यदि विष का लेबिल लगी हुई बोतल का पानी भी पिला दिया तो केवल उस लेबिल मात्र से इतने भयंकर संकेत मिलते है कि मृत्यु सभव है। सर्प का विष मनुष्य को इतना नही मारता, जितना कि यह सकेत कि उन्हे सर्प ने काटा है और सर्प के दंश से मनुष्य को मर ही जाना चाहिये। सर्प का विष इतना विषैला नही जितना विषैला उसका सकेत।

आप प्रण कीजिए कि दूसरे स्वार्थी व्यक्ति जो कहते है, उस पर विश्वास न करेंगे, उनके छलयुक्त विचारो में न फँसेंगे। अपने मन की बागडोर स्वयं अपने हाथ मे रखेंगे, स्वयं अपना भविष्य निर्माण करेंगे अपने प्रति सच्चे रहेंगे। फालतू विचारो से परेशान न होंगे।

तुम्हारी समस्त चिन्ताएँ, समस्त भ्रांतियाँ दूसरो के प्रतिकूल सकेतो के परिणाम है। तुम जब तक अज्ञान मे हो तब तक उन से चिपटे रह सकते हो। जब तक ये अनिष्टकारी सकेत तुमसे चिपटे रहेंगे, तुम्हे अशान्त बनाये रखेंगे, चैन न लेने देंगे, तुम्हारी स्वर्ण रूपी आत्मा को विशुद्ध न होने देंगे। जब तक तुम इस मल से युक्त हो, अपने वास्तविक स्वरूप को भूले हुए हो। तुम्हारे अन्त करण की दुर्बलता, भय एव चिन्ता का एकमात्र कारण यह अज्ञान युक्त सकेत ही है। मानव समाज का एक वृहत् भाग इन दुर्बल सकेतो से मानसिक दासत्व का शिकार बन गया है। वे जैसी सकीर्ण मानसिक भूमिका मे निवास करते है वैसे ही बन जाते है।

तुम दास हो या स्वामी

ससार मे दो प्रकार के व्यक्ति है—एक वह जिनका जीवन-स्रोत दासत्व, बन्धन एव परतन्त्रता की कुत्सित विचारधारा के कारण अवरुद्ध हो गया है, जो निरन्तर डरपोक, भयभीत एव हीनता की भावना के वशीभूत होकर निजत्व को त्याग बैठे है और दूसरो के विचारो पर निर्भर रहते है। दूसरे वे जिनमे अपनापन, मौलिकता एव आत्माभिमान अवशेष है, जो पक्षी एव निस्पन्द वायु की भाँति स्वतन्त्रता के पुजारी है, स्वय अपने स्वामी है, खुद अपने शरीर के मालिक है। उनके विशाल हृदय मे भय, शका एव कायरता की अनिष्ट शकाये उत्पन्न नही होती। वे क्षण-क्षण अन्त करण की शान्ति भंग करने वाले राग, द्वेष, भय, कमहिम्मती के, स्वनिर्मित बन्धनकारी नियमो को मानस-क्षेत्र मे कदापि प्रवेश नही होने देते।

क्या तुमने कभी इस तत्व पर विचार किया है कि तुम दास हो या स्वयं अपने स्वामी ? तुम अपने को किस श्रेणी मे रखते हो ? तुम अपने हो या दूसरे के ? तुम अपनी आत्मा पर भय एवं चिन्ता का बोझ डालते हो ? तुम्हारे मन के अन्तस्थल मे भय का संस्कार तो प्रबल नही हो गया है ? क्या तुम अपने भीतर दासत्व के, क्षुद्रत्व के विचारो को आश्रय देते हो ? क्या तुम अपनी तुच्छता, दीनता, हीनता, गरीबी, मूर्खता की सशयात्मक विचारधारा मे अस्त-व्यस्त रहते हो ? क्या तुम अन्य व्यक्तियो के सहारे खड़े हो ?

तुम्हारे कितने ही दु:ख केवल भय के कारण है। मनुष्य की जीवन शक्तियो का नाश करने वाले भय महादुष्ट राक्षस है। असख्य मनुष्य आज केवल भय के अनिष्टकारी सकेतो से जीवन बर्बाद कर रहे है। भय से उत्पन्न दुष्प्रवृत्तियाँ सब प्रकार के पुरुषार्थ को नष्ट कर देती है।

भय का कारण प्रतिकूल संकेत है—भय क्या है ? आदिकाल से अनिष्टकारी सकेतो का वृहत् भण्डार। न जाने कब से हम अधोगामी सकेतो का सचय करते आ रहे है। अविश्वास, अश्रद्धा, सकोच, लज्जा, कायरता, ग्लानि आज के नही है। इनका संग्रह हमारे पूर्व पुरुषो ने दैनिक जीवन मे आने वाली अनेक आपदाओ को सहकर किया है।

किसी आती हुई आपत्ति की भावना से मन मे एक आवेग उत्पन्न होता है। हम ये सोचते है अब यह हुआ तो इसके साथ मे कृति-स्वरूप अब अमुक बात होनी चाहिए। कल्पना करके हम डर जाते है। भय जब स्वभावगत हो जाता है, तब कायरता या भीरुता कहलाता है। पुरुषो मे भीरुता भयंकर दुर्गुण है।

ससार मे तुम सर्वथा स्वच्छन्द हो। तुम्हे पूर्ण निर्भय जीवन व्यतीत करना है। किसी से भयभीत नही होना है, तुम्हारे अन्तर प्रदेश मे जो भय की ग्रन्थियाँ पड़ गई है, उनका मूलोच्छेदन करना है। केवल तुम्हारी भय की कल्पना ही तुम्हे चिन्तित करती है। जिस डर की तुम कल्पना कर रहे हो वह कभी आने वाला नही है।

भय को दूर-करने के लिए दिन मे दो-तीन बार अभय होने की भावनाओ मे प्रवेश करो। शब्दो को पूर्ण विश्वासपूर्वक अव्यक्त मन मे जमाओ।

भय से मुक्ति की भावनाएँ—"मै भय के चगुल से सदा-सर्वदा के लिए निकल गया हूँ। अब मै पूर्ण निर्भय, निडर, नि:शंक हूँ। कोई मुझे डरा नही सकता है। भय की ग्रन्थियो को मैने उखाड़ फेका है। जड़-मूल से नष्ट कर दिया है। मै अब अभ्युदय के पथ पर अग्रसर हूँ। अत मेरा चित्त पूर्ण स्थिर है। डाँवा-डोल नही होता।

ससार के भय, आघात-प्रतिघात मेरी मन की शान्ति भंग नही कर सकते।

"मै भय एवं पिशाची चिन्ता के दूषित विचारो की कल्पना को अपने अन्त.करण मे पुष्ट नही करता। मुझे भलीभाँति विदित हो गया है कि निश्चित और निर्भय व्यक्ति ही अभ्युदय के मार्ग का पथिक बन सकता है किन्तु डरपोक मनुष्य तो तनिक भी आगे नही बढ सकता।"

"मै अपने शत्रुओ की ओर से अभय हूँ। भय की कल्पना नही करता हूँ, न भविष्य की कल्पित चिन्ताओ को धारण करता हूँ। भय मेरी विचार सामर्थ्य नष्ट नहीं कर सकता।"

"मै तो पूर्ण निश्चिन्त होकर यह कहता हूँ कि जिसके अन्त:करण का भय नष्ट हो गया, उसके समस्त दु खो का अन्त सदा के लिए हो गया।"

"मुझे कल की चिन्ता नही, कोई फिक्र नही, मै उन्मुक्त हूँ, सर्वथा अपने अधीन हूँ। मेरा ससार तो आशा, श्रद्धा एव उत्साह के सुनहरे डेरो से निर्मित है, भय के पिशाचो की श्मशान भूमि नही है।

"अब मै किसी भी भय तथा चिन्ता के अधीन नही होता। भविष्य के दु.खो की कल्पना को हृदय मे स्थान नही देता। मुझे न तो मृत्यु का भय है, न किसी मनुष्य का डर। मै पीछे से अभय हूँ, आगे से अभय हूँ। मेरे अग-प्रत्यग पूर्ण परिपुष्ट है। उनमे शक्ति भरी हुई है, प्रबल प्रताप उत्साह भरा है। भय मेरी अभिवृद्धि में बाधा नही पहुँचा सकता, मै भय से अधिक ताकतवर हूँ।"

"मैने आत्म-श्रद्धा, निर्भयता, उत्साह, आशा के शुभ विचारो को अन्त.करण मे आरूढ कर दिया है। मेरी आत्म-प्रेरणा आज से जाग्रत हो गई है, मेरी सब क्रियाएँ शक्ति से भर रही है।"

"मै विशुद्ध बलवान वातावरण का विकास करता हूँ। इस स्थान का अणु-अणु निडर है। वही निडरता मेरे रोम-रोम मे प्रवेश भी कर रही है। मै निर्भयता से सश्लिष्ट साहित्य पढता हूँ, वैसा ही सृजन भी करता हूँ। मुझे परमेश्वर ने ऐसी अमोघ शक्तियाँ प्रदान की है कि ससार मे कोई मुझे हानि नही पहुँचा सकता।"

प्रत्येक रात्रि मे उपर्युक्त अभय भावना पर मन को केन्द्रित करो। इन स्वस्थ विचारो को तन्मयता के साथ मन प्रदेश मे प्रवेश दो। दो मास पश्चात् तुम्हारी भय की ग्रन्थियाँ स्वय हट जायेंगी। निद्रा मे प्रवेश करने से पूर्व मन को भय के विचारो से स्वच्छ कर लो, तत्पश्चात् उपरोक्त सकेत दो। यदि कोई अनिष्ट विचार मन मे प्रवेश हो या सस्कार जाग्रत हो उठे तो तत्काल ही उसे निर्मूल करो।

आज मै कल से बलवान एवं सामर्थ्यशाली हूँ—प्रत्येक दिन आपको कुछ न कुछ शक्ति सग्रह कर लेनी चाहिए। रात्रि मे जब तुम दिन भर के कार्यक्रम पर मनन करते हो तो कल की अपेक्षाकृत तुम्हे अधिक उन्नत जानना चाहिए। यही सकेत से कार्य निकलने की कला है। यदि तुम कल के ही स्थान पर टिके रहोगे और शक्ति संचय न करोगे तो आत्म-विकास रुक जायेगा। निद्रा मे प्रवेश होने से पूर्व जिन विचारो को तुम मन मे लाते हो, उनके वैसे ही संस्कार अंकित होते है।

प्रात.काल आप सोचिए कि "मैं कल से अधिक सामर्थ्यशाली हूँ, उन्नत हूँ, सुदृढ हूँ। कल से आज तक मैने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है। मैं उन्नति के पथ पर आरूढ हूँ। निरन्तर अग्रसर हो रहा हूँ। मेरी योग्यता व आत्म-श्रद्धा दिन प्रति दिन बढ रही है। मुझ मे परमात्मा ने अपूर्व बल दिया है। मुझे अपनी सफलता पर पूर्ण निश्चय है। मै कठिन से कठिन कार्य करने मे समर्थ हूँ। मेरे लिए कोई कार्य असम्भव नही। मै निरन्तर आगे बढता ही जा रहा हूँ। मुझे जो कार्य करना होता है, दृढता तथा तत्परता के करता हूँ। मै कभी कुमार्ग मे प्रवृत्त न होऊँगा। मुझे तो महान कार्य कर दिखाने हैं। मैं सुस्त या अकर्मण्य नही पड़ा रहता। प्रत्युत अदम्य उत्साह से अग्रसर होता हूँ। मुझे रुकना नही है, कोई मेरी वृद्धि को अवरुद्ध नही कर सकता। मै मार्ग के कटक उखाड़कर फेंकता चलूँगा। मै अब विषय-वासनाओ के जाल मे नही बँध सकता।

"मेरे हृदय मे सद्बुद्धि का, सद्प्रेरणा का राज्य है। मै अनासक्त होकर समस्त कार्यो मे अग्रसर होता हूँ। मैं सच्चे हृदय से, शुद्ध सकल्प से जीवन को महापुरुषो द्वारा बताये हुए मार्ग पर लगाता हूँ। मेरा मन पूर्ण स्थिर है। मेरा मन सुखदायक, स्फूर्तिदायक विचारो से परिपूर्ण रहता है। यही कारण है कि मै उत्कृष्ट जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। मै बुराई को त्यागकर भलाई को ग्रहण करता हूँ।

इसी प्रकार के दृढ निर्देश बना लीजिए और पूर्ण श्रद्धापूर्वक आत्मा को उसमे स्थान कराइये। प्रतिदिन के अभ्यास से तुम्हे अपूर्व लाभ होगा। तुम्हारे मन मे ऊँचा उठने की महत्त्वाकांक्षा प्रदीप्त होगी। यही तुम्हे परमार्थ की ओर ले जावेगी।

डायरी का प्रयोग कीजिये—प्रात काल से सायंकाल तक तुमने क्या-क्या किया ? किस-किस दशा मे उन्नति की ? कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण कार्य किये ? इन सबको एक डायरी मे दर्ज करते रहिये। निद्रा से पूर्व कुछ काल के लिए इन कार्यो पर तीव्र आलोचना कीजिए। यदि तुम्हारी अन्तर्ध्वनि उन कार्यो को उत्तम नही कहती तो दूसरे दिन प्रात.काल उत्कृष्ट जीवन की भावना का दृढ निश्चय कीजिए। यदि तुमने कार्य उचित किये है तो उसी प्रकार भविष्य मे करने का निश्चय डायरी मे नोट कर लीजिये।

केवल सोच लेने मात्र से कि कल हम अमुक कार्य करेंगे आप अपने कर्तव्य का पालन कर सकेंगे। लिख

लेने से संकेत और भी दृढ हो जायेगे, सत्य का संचार होगा तथा आत्म-सुधार का दृढ संकेत अकस्मात् तुम्हारे अव्यक्त मन मे प्रवेश कर जायेगा। लिखने से तुम्हारे कार्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होगे। नियमितता की अभिवृद्धि होगी तथा आत्मबल भी बढ़ेगा।

सब महापुरुष डायरी लिखने के अभ्यस्त रहे है और उन्होने समय का कंजूसों की भाँति उपयोग किया है। वे अपने कटु अनुभव तथा प्रेरणाएँ उन्ही मे लिखते रहे। उन्हे अपनी कमजोरियो के लिये आत्म-ग्लानि हुई। तत्पश्चात् प्रगतिशील जीवन का पथ ग्रहण किया।

डायरी मे निम्न प्रकार कार्य प्रारम्भ कीजिये। अपना प्रथम निश्चय मुख पृष्ठ पर लिखिये—"मै आज से दृढ निश्चय करता हूँ कि नित्य नियत समय ईश्वर की प्रार्थना करूँगा, मै दृढ निश्चय करता हूँ कि नित्य नियमित व्यायाम करूँगा, अपने कर्त्तव्य के प्रति सच्चा बना रहूँगा। परम निर्भय होकर निज-कर्त्तव्य पालन करूँगा। मै किसी भय, चिन्ता या क्लेश से डरकर अपने निश्चित कार्यक्रम से कदापि न हटूँगा। मै अपने संकल्पो पर अटल जमा रहूँगा। मेरे हृदय मे जो उत्तम प्रेरणाएँ उठती है उनको अपने जीवन मे प्रकट करूँगा।

"परमात्मा ने मुझे अतुल शक्ति से विभूषित किया है, अत. दृढ निश्चय भाव से मै अपने व्रत मे स्थिर रहूँगा। संसार के विकार मुझे सत्पथ से च्युत नही कर सकते।"

"मुझ मे अदम्य उत्साह है। मै अपनी आत्मज्योति को शुद्धता तथा पवित्रता की भावना से प्रतिदिन प्रदीप्त करता रहूँगा। मेरे हृदय मे निर्मल बुद्धि, सत्प्रेरणा, ज्ञान का प्रकाश उदय होता है। मै ऐसा दृढ हूँ और चट्टान के समान स्थिर हूँ कि सांसारिक घटनाएँ मुझे मेरे दृढ निश्चय से चलायमान नही कर सकती। मैने करुणामय परमात्मा का आश्रय लिया है। अत: अपने दृढ विश्वास से कठिन से कठिन विघ्न-बाधाओ के आने पर मै भी हटने वाला नही हूँ। आज से मै एक नवीन पथ का अनुसरण कर रहा हूँ। वह पथ सर्वथा नवीन एवं उत्कृष्ट है।"

अपने निश्चयो को लिखकर तुम अधिकाधिक कार्य में प्रविष्ट हो सकोगे। नित्य अपने संकेतो को श्रद्धापूर्वक पढ़ो, उनका मनन करो। बुरे, डरपोक विचार आकर तुम्हे अशान्त न करे। तुम्हारी डायरी तुम्हारे आत्मोद्धार की सूचक है। यह हर कदम पर तुम्हारी सहायक है। जितनी बार तुम अपने सकेतो का पालन करोगे, नव प्रेरणा प्राप्त होगी। दीर्घकाल तक शुभ सकेतो पर मन एकाग्र करने से तद्रूप हो जाता है। अत जीवन को इस दिव्य संकेतो मे डुबो दीजिए। आत्मा को इनमे तल्लीन कर दीजिए तथा कुछ काल के लिए सब कुछ विस्मृत कर दीजिए। जो मनुष्य अपने चचल, अस्थिर विचारो को वश मे कर सत्प्रेरणा प्राप्त कर रहा है, वह प्रतिदिन ज्ञान प्राप्त कर रहा है।

जगत् पिता परमात्मा ने सृष्टि मे संकीर्णता, सीमाबन्धन, दरिद्रता का स्थान नही रखा है। संकीर्णता, सीमाबन्धन, दरिद्रता संसार मे नही प्रत्युत स्वयं हमारे अन्तर्जगत मे प्रविष्ट हो गये है। स्वयं हमारे अन्त:करण मे ये विषैले कीटाणु बलात् आ घुसे है और उन्होने हमारे प्राण-तत्त्व का भयकर ह्रास किया है। पृथ्वी पर तो कोई भी मुनष्य दरिद्र, असमर्थ, क्षुद्र या संकीर्ण नही होना चाहिये। दोष स्वयं हमारा ही है। विरोधी भाव रखकर भला हम किस प्रकार उन्नत अवस्था मे पहुँच सकते है ? आत्मबल और आत्मविश्वास के आधार पर ही हम अपने जीवन को सुखी एवं समृद्धिशाली बना सकते है।

आत्महीनता की प्रवृत्ति एक रोग है

आत्महीनता से ग्रसित व्यक्ति अपने अन्त:करण मे नाना प्रकार की भ्रमात्मक त्रुटियो, न्यूनताओ, कमियो, कमजोरियो की कल्पना किया करता है। कल्पनाशक्ति का उपयोग हित तथा अहित दोनो क्षेत्रो मे संभव है। आत्महीनता का रोगी चित्त की वृत्तियो को व्याधि, दु.ख, न्यूनता तथा निर्बलता की ओर लगाता है। वह निरन्तर प्रतिकूल की धारणा से व्याकुल रहा करता है। विगत प्रतिकूल संयोग उसके स्मृति पटल पर पुन:-पुन: आते है। वह किसी विशेष स्थल पर अपने आपको असमर्थ देखता है, अन्य स्थान पर तिरस्कृत, अपमानित पाता है। अमुक ने उसे कैसे कटु वचन उच्चारण किए थे, कैसा घृणित व्यवहार किया था, उसे असंख्य कमियो की याद निरन्तर सताया करती है। व्यर्थ की चिन्ता, फिक्र, भय का बोझ डाल-डालकर अपनी आत्मा को जर्जर कर डालता है।

कमी की कटु अनुभूति काँटे की तरह अन्त.करण को बेधती है अत: हम उसे जानकर भी अनजान बनने का प्रयत्न करते रहते है। हम नही चाहते कि कमी का अनुभव हमे बार-बार विक्षुब्ध करे। अत. हम उसे भूलने के लिए अनेक विफल प्रयास किया करते है। मन का कोई भी संस्कार व्यर्थ नही जाता। हम किसी बात की तरफ से मनोवेग को बाँध नही सकते। मन मे एक बार प्रविष्ट करने के पश्चात् प्रत्येक संस्कार पत्थर की लकीर हो जाता है। वह निश्चेष्ट नही हो सकता, वरन् थोड़ा बहुत सदैव क्रियाशील रहता है। अत: हम जितनी प्रबलता से कटु अनुभवो को दबाने का उद्योग करते है, उतनी ही शक्ति से वह मन के पैंदे मे बैठ जाता है। यह संस्कार इस भाग मे दबा पड़ा रहेगा किन्तु जब मन का दबाव न्यून होगा, फौरन प्रबल हो उठेगा। यह संस्कार कभी व्यर्थ नही जावेगा वरन्, सदैव वही बैठकर चेतन मन के दैनिक कार्यों को प्रभावित किया करेगा।

परिस्थितिवश, कार्यों के परिवर्तन, समाज के व्यवहारो तथा गृहस्थी के झंझटो के कारण संभव है कि

समझना। बाल्यावस्था से ही यह आदत बच्चो को पड़ जाती है।

मान लीजिए एक विद्यार्थी अन्यो की अपेक्षा कद मे नाटा है। उसका नाटापन खिल्ली का कारण बन जाता है, बात-बात पर उसे दबना पड़ता है। उसकी सही बात भी गलत समझी जाती है। ऐसा ही बार-बार होने के कारण उसका मन बुझ जाता है। लोगो की बातो से वह अपने आपको वैसा ही मानने लगता है। अन्य व्यक्तियो के संस्कार उसके अव्यक्त मे गहरे जम जाते है। कालान्तर मे यही संस्कार आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण कर देते है। उस व्यक्ति मे अनजाने मे ही पुराने सस्कार उसके जीवन पर प्रभाव डालते रहते है।

एक और उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति काला है, उसका कालापन समाज की आँखो मे खटकता है। लोग उससे कहते है—क्या आप कोयला खाते है ? क्या आपका जन्म कोयले की खान मे हुआ है ? क्या आप कोयले का व्यापार करते है—इत्यादि इन प्रसगो को सुनते-सुनते वह थक-सा जाता है। निरन्तर प्रतिकूल सन्देशो के सस्कार उसके अव्यक्त पर भयंकर आघात पहुँचाया करते है। उसे दु:ख का इतना अनुभव होता है कि वह आत्महीनता की ग्रन्थि का रूप धारण कर छिपकर बैठता है। अपनी कमी का अनुभव, उन अप्रिय कटु क्षणो की दु:खद स्मृति वह भूलना चाहता है पर अव्यक्त मन मे ऐसे अनेक अनुभव सस्कारो के रूप मे वर्तमान रहते है। ये ही सस्कार उस व्यक्ति को अनेक विक्षिप्त जैसे व्यवहार, विवेकशून्य कार्य तथा बहानेबाजी करने को उत्तेजित करते है।

पतले-दुबले व्यक्ति इस ग्रन्थि से अधिक ग्रसित रहते है। बचपन मे पतले-दुबले होने के कारण मजबूत लड़के उनसे दुर्व्यवहार करते है। ये दुर्व्यवहार अपना संस्कार उनके मन पर अवश्य छोड़ जाते है। बात-बात मे उसे अन्य व्यक्तियो का मुख निहारना पड़ता है। कालान्तर मे बड़ा होने पर भी वे सस्कार नही छूटते तथा आत्महीनता की ग्रन्थि बन जाती है

इसी प्रकार शरीर की अन्य कमजोरियाँ, न्यूनताएँ या अभद्रतायें भी समाज की टीका-टिप्पणी का कारण बनती है—जैसे काना होना, लँगड़ा या कुरूप होना। कुछ बालको मे एक और कमी होती है जैसे देखने मे लड़के का लड़की जैसा प्रतीत होना। इस दशा मे लड़के से वैसा ही व्यवहार किया जाता है, जो विपरीत सेक्स के व्यक्ति से होता है। ऐसा बालक बहुधा यही ग्रन्थि उत्पन्न कर लेता है क्योकि स्वभावत स्त्रियो के मन मे पुरुषो की अपेक्षा आत्महीनता का भाव अधिक होता है।

जब शिशु शारीरिक शक्ति मे छोटा है तो अनेक कार्यो को सही नही कर पाता। वह अपने आप को दूसरे लोगो से मिलाकर देखता है तो अपने आप को ही कम पाता है। इसी प्रकार बचपन मे माता-पिता के अत्याचार, डाँटना, फटकारना मिलकर शिशु के बच्चे मन मे आत्महीनता की भावना-ग्रन्थि बना देते है।

दूसरा कारण—निम्न सामाजिक स्थिति—आत्महीनता की भावना-ग्रन्थि विशेषकर निम्न वातावरण मे जन्म लेने वाले युवकों मे वर्तमान रहती है। जहाँ कही समाज मे प्रतिष्ठा या श्रेणी का सम्बन्ध होता है वही ऐसे युवक को दब जाना पड़ता है। उच्च वर्ग वाले धनिको के सामने वह छाती ऊँची करके नही चल पाता। उनकी तरह वस्त्र, गृह, आमोद-प्रमोद उसे उपलब्ध नही होते। ऐसी परिस्थिति मे उस व्यक्ति को लज्जा, आत्मग्लानि अथवा किसी अन्य विशेष प्रकार के दु:ख की अनुभूति होती है, जिसे वह विस्मृत करने की चेष्टा करता है। यही कमी की दु:खानुभूति मानसिक ग्रन्थि का कारण बन जाती है। जिस बालक को बचपन मे वस्त्र नही मिले, ठीक भोजन या आभूषण नही मिले, उसमे दु:खानुभूति होना स्वाभाविक है। बड़ा हो जाने पर भी वह न्यूनता की अनुभूति अव्यक्त मन से नष्ट नही होती।

प्रसिद्ध अँग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स बड़े निर्धन गृह मे पैदा हुआ था, उसका प्रारम्भिक जीवन होटल मे नौकरी करते हुए व्यतीत हुआ था। न उसे अच्छे वस्त्र उपलब्ध हो सके थे, न आभूषण। यही इच्छाएँ उसके अव्यक्त प्रदेश मे एकत्रित हो गई, वहाँ दुर्बलता, तुच्छता, दीनता की अनुभूतियाँ दृढ़ हो गईं। ये ही भावना-ग्रन्थियाँ उसके अनेक चरित्रो मे बह निकली है। अनेक स्थलो, दृश्यो तथा स्थानो का वर्णन अन्त.स्थल की भावना-ग्रन्थि के परिणामस्वरूप है। कहते है डिकिन्स अपने कोट मे सोने के बटन लगाता था। यह भी हीनत्व की ग्रन्थि की एक प्रतिकृति थी। अन्य किसी विद्वान ने इस प्रकार का शौक नही दिखाया। स्त्रियाँ वे ही अधिक आभूषणो का व्यवहार करती है जिनके अन्त: प्रदेश मे आत्महीनता की ग्रन्थि अधिक संख्या मे प्रस्तुत रहती है।

आत्महीनता की ग्रन्थि के मूल मे कमी की दु खानुभूति अवश्य मिलती है। प्रत्येक दु.खानुभूति अन्त.करण प्रदेश मे गाड़ी की लीक की तरह एक मानसिक मार्ग बनाती है। इस लकीर मे उसी प्रकार की भावनाओ का उत्थान-पतन चला करता है।

मन मे जो विचार नित्य प्रति प्रबल होते है, वे ही हमारी अच्छी या बुरी ग्रन्थियो का निर्माण करते है। दु.ख अथवा कमी की अनुभूति से जो हीनत्व की भावना ग्रन्थि बनती है, वह बार-बार पीड़ा के विचार तथा कमी की भावना के पुनरावर्तन का परिणाम है। बार-बार वैसे ही दीन-हीन विचार मन-रूपी पृथ्वी के गर्भ-भाग मे जड़ पकड़ जाते है। फिर वे स्मृति पटल पर तो नही आते किन्तु जीवन को प्रभावित करते रहते है। सामाजिक निम्नता के विचार सदा सक्रिय रहकर हमारे मन को उद्वेलित किया करते है।

निम्न सामाजिक स्थिति के साथ अन्य ऐसे कारण हो सकते है, जिनसे मनुष्य कमी या हीनता की भावना

कुछ समय के लिए यह प्रसुप्त संस्कार फीका पड़ जाय किन्तु उसकी प्रतिकृति हमारे दैनिक जीवन पर रहेगी अवश्य। विभिन्न अवसरो पर अनुभूत शोक, हर्ष, दुःख तथा सुख, आशा और भय, राग, द्वेष, ज्ञान और अज्ञान सब मनुष्य के अन्तर्प्रदेश मे संचित रहते है। वे केवल मन की विविध भूमिकाएँ है। उसी प्रकार की घटनाएँ, प्रसगो, वर्णनो को पढ़ने, देखने या सुनने से पुराने अनुभव स्मृति-पटल पर आते है।

अव्यक्त मन मे दबी हुई पुरानी न्यूनताएँ, कमियाँ, जब अनैच्छिक रूप मे गुप्त मन से आना चाहती है, तब हमारा चेतन मन उन्हे दबाता है तथा प्रकाशित नही होने देता। पर इतने से ही गुप्त मन शान्त या निराश नहीं हो जाता। जब प्रकट मन सुप्तावस्था मे आता है तो यह गुप्तमन फिर अपना कार्य नये जोश से प्रारम्भ करता है। यदि देखा जाय तो वास्तव में गुप्त मन के महत्त्व के सम्मुख 'चेतन मन' की कोई गणना नही की जा सकती। वास्तविक मालिक तो हमारा गुप्त मन ही है। इस प्रकार मन मे दो प्रकार की वृत्तियो का द्वन्द्व चलता रहता है और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक कार्य होते है। मनुष्य के अनेक विक्षेपो, टालमटोलो, बहानेबाजियो, चिढ़ने तथा विवेकशून्य कार्यों का सर्वप्रथम सूत्रपात अचेतन जगत् में ही होता है।

अप्रिय अनुभव का संस्कार अत तक जमा हुआ देखा गया है। भूत, प्रेत आदि की भयंकर कहानियो के संस्कार बचपन से मन मे प्रविष्ट होने पर बुढ़ापे तक लगे हुए पाये जाते है। जो भय प्रारम्भ मे बैठ जाता है, वह अप्रत्यक्ष रूप मे अन्दर से ही अपना प्रभुत्व दिखलाया करता है। आत्महीन व्यक्ति के ये चिरसंचित भय के संस्कार ही उसे गुलाम बनाये रखते है। जो कुछ वह चिन्तन करता है, उसमे भय की मिथ्या भावना मिश्रित रहती है अत ऐसा व्यक्ति अप्राकृतिक लज्जा का अनुभव किया करता है। चाहे उसे कोई बड़ी से बड़ी यंत्रणा दे किन्तु वह चुप्पी धारण किए रहता है। दूसरे से हँसते-बोलते हुए उसे अधिक शर्म-सी आती है। भयभीत होना उसका मानसिक मार्ग बन जाता है। उससे और कुछ भी करा लो किन्तु बाते करने के लिए न कहो। वह हृदय खोलकर स्पष्टतापूर्वक बाते नहीं कर सकता। चार आँखे करने मे उसे डर-सा प्रतीत होता है।

दृष्टि नीची कर लेना किसी नवयौवना के भले ही सुशोभित करे किन्तु पुरुषो मे तो यह बड़ा भारी ऐब है। दृष्टि नीची करने के कारण बिना अपराध के हम अपराधी बन जाते है। कितनी ही बार तो नीची दृष्टि देखकर लोग हमे दोषी तक समझ लेते हैं ? उफ ! कैसी कारुणिक मनःस्थिति है ? उस व्यक्ति की, जो भला-चंगा होते हुए भी आत्महीनता की ग्रन्थि के कारण अपमानित होता है।

हीनता की भावना मे ग्रसित व्यक्ति जब बाजार मे निकलता है या सभा इत्यादि मे जाता है तो उसे ऐसा भय लगा रहता है कि संसार के सभी व्यक्ति उसी पर तीखी दृष्टि लगाये है। यदि दो-चार व्यक्ति खड़े होकर जरा हँस दे तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे जान-बूझकर उसी के लिए सब प्रपंच हो तथा उसका अपमान किया जा रहा हो। चाहे वह कही हो, उसे ऐसा भान होने लगता है कि संसार उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक हाव-भाव, कार्य, छोटी-मोटी बात को घूर-घूरकर देख रहा हो। जैसे पत्थर-पत्थर तथा ईंट मे सहस्रो नेत्र हो, जो उसे हड़प कर जाने पर तुले हो।

उसकी कृतियाँ निरालापन लिए हुए होती है। जिधर जायेगा अपना निरालापन अवश्य ले जायेगा। कभी-कभी वह अपनी कमी को छिपाकर दूसरो पर मिथ्या आरोप करता है। कभी अपने आपको दूसरो की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न किया करता है। यह अति-पूर्ति की प्रतिक्रिया है।

आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्मित होने के कारण—यह ग्रन्थि वास्तव मे अपने आप मे किसी विशेष कमी की अप्रिय अनुभूति से निर्मित होती है। कोई कमी, अप्रिय संयोग, कोई चिन्ता का भाव, कोई भय अचेतन मन मे पुष्ट हो जाता है। किसी अवसर पर या किसी विशेष काल मे कोई विशेष प्रकार की निर्बलता हमे अपने अन्दर बड़ी बुरी तरह अखरती है। दो-एक बार उसी की आवृत्ति होने के पश्चात् वह अनुभूति गहन हो उठती है। उसका संस्कार इतना गहरा पड़ता है कि भुलाये से नही भूला जाता। हमारे अन्तर की वृत्ति इस कटु अनुभव को ग्रहण कर लेती है तो वह मत्वस्थ होकर मन की स्थायी वृत्ति हो जाती है। ज्यो-ज्यो अंतर की अचेतन वृत्ति उस विशेष धारणा को ग्रहण करती है त्यो-त्यो भावना ग्रन्थि मन मे प्रबल होती जाती है। एक बार अन्तःदेश मे जड़ पकड़ने के पश्चात् यह भावना ग्रन्थि अव्यक्त मन मे पूर्ण रूप से वर्तमान हो जाती है। इस ग्रन्थि के अनुभवो की प्रतिक्रिया पर विचार करने से पूर्व उसके कारणो को जान लेना आवश्यक है। निम्नलिखित कारणो के अध्ययन के पश्चात् पाठको को विदित होगा कि भिन्न-भिन्न स्वरूपो मे भी कारण केवल एक ही है और वह है कमी की कटु अनुभूति।

प्रथम कारण—शारीरिक कमी—अधिकांश रोगी अपने शरीर मे किसी न किसी प्रकार की कमी का अनुभव करते है। शरीर एक प्रकार की मशीन समझिये। जिस किसी की मशीन कमजोर टूटी-फूटी होगी, वह दूसरो के मुकाबलो मे निश्चय ही अयोग्य रहेगा। आत्महीन व्यक्ति अपने शरीर की निर्बलता या कमी के कारण बड़ी लज्जा का अनुभव किया करता है। प्रायः बाल्यावस्था मे माँ-बाप बच्चो की शारीरिक कमियो, कमजोरियो तथा न्यूनताओ की ओर ध्यान नहीं देते। अतः जब बालक अपने आप को दूसरो की अपेक्षा कमजोर पाता है तो दूसरो से अकारण ही डरता तथा दबता है। दूसरे से दबने का अर्थ है अपने आप को दीन-हीन

समझना। बाल्यावस्था से ही यह आदत बच्चो को पड़ जाती है।

मान लीजिए एक विद्यार्थी अन्यो की अपेक्षा कद मे नाटा है। उसका नाटापन खिल्ली का कारण बन जाता है, बात-बात पर उसे दबना पड़ता है। उसकी सही बात भी गलत समझी जाती है। ऐसा ही बार-बार होने के कारण उसका मन बुझ जाता है। लोगो की बातो से वह अपने आपको वैसा ही मानने लगता है। अन्य व्यक्तियो के संस्कार उसके अव्यक्त मे गहरे जम जाते है। कालान्तर मे यही संस्कार आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण कर देते है। उस व्यक्ति मे अनजाने मे ही पुराने संस्कार उसके जीवन पर प्रभाव डालते रहते है।

एक और उदाहरण लीजिए। एक व्यक्ति काला है, उसका कालापन समाज की आँखो मे खटकता है। लोग उससे कहते है—क्या आप कोयला खाते है ? क्या आपका जन्म कोयले की खान मे हुआ है ? क्या आप कोयले का व्यापार करते है—इत्यादि इन प्रसगो को सुनते-सुनते वह थक-सा जाता है। निरन्तर प्रतिकूल सन्देशो के संस्कार उसके अव्यक्त पर भयकर आघात पहुँचाया करते है। उसे दु:ख का इतना अनुभव होता है कि वह आत्महीनता की ग्रन्थि का रूप धारण कर छिपकर बैठता है। अपनी कमी का अनुभव, उन अप्रिय कटु क्षणो की दु.खद स्मृति वह भूलना चाहता है पर अव्यक्त मन मे ऐसे अनेक अनुभव संस्कारो के रूप मे वर्तमान रहते है। ये ही संस्कार उस व्यक्ति को अनेक विक्षिप्त जैसे व्यवहार, विवेकशून्य कार्य तथा बहानेबाजी करने को उत्तेजित करते है।

पतले-दुबले व्यक्ति इस ग्रन्थि से अधिक ग्रसित रहते है। बचपन मे पतले-दुबले होने के कारण मजबूत लड़के उनसे दुर्व्यवहार करते है। ये दुर्व्यवहार अपना संस्कार उनके मन पर अवश्य छोड़ जाते है। बात-बात मे उसे अन्य व्यक्तियो का मुख निहारना पड़ता है। कालान्तर मे बड़ा होने पर भी वे संस्कार नही छूटते तथा आत्महीनता की ग्रन्थि बन जाती है

इसी प्रकार शरीर की अन्य कमजोरियाँ, न्यूनताएँ या अभद्रताये भी समाज की टीका-टिप्पणी का कारण बनती है—जैसे काना होना, लँगड़ा या कुरूप होना। कुछ बालको मे एक और कमी होती है जैसे देखने मे लड़के का लड़की जैसा प्रतीत होना। इस दशा मे लड़के से वैसा ही व्यवहार किया जाता है, जो विपरीत सेक्स के व्यक्ति से होता है। ऐसा बालक बहुधा यही ग्रन्थि उत्पन्न कर लेता है क्योकि स्वभावत: स्त्रियो के मन मे पुरुषो की अपेक्षा आत्महीनता का भाव अधिक होता है।

जब शिशु शारीरिक शक्ति मे छोटा है तो अनेक कार्यो को सही नही कर पाता। वह अपने आप को दूसरे लोगो से मिलाकर देखता है तो अपने आप को ही कम पाता है। इसी प्रकार बचपन मे माता-पिता के अत्याचार, डाँटना, फटकारना मिलकर शिशु के बच्चे मन मे आत्महीनता की भावना-ग्रन्थि बना देते है।

दूसरा कारण—निम्न सामाजिक स्थिति—आत्महीनता की भावना-ग्रन्थि विशेषकर निम्न वातावरण मे जन्म लेने वाले युवको मे वर्तमान रहती है। जहाँ कही समाज मे प्रतिष्ठा या श्रेणी का सम्बन्ध होता है वही ऐसे युवक को दब जाना पड़ता है। उच्च वर्ग वाले धनिको के सामने वह छाती ऊँची करके नही चल पाता। उनकी तरह वस्त्र, गृह, आमोद-प्रमोद उसे उपलब्ध नही होते। ऐसी परिस्थिति मे उस व्यक्ति को लज्जा, आत्मग्लानि अथवा किसी अन्य विशेष प्रकार के दु:ख की अनुभूति होती है, जिसे वह विस्मृत करने की चेष्टा करता है। यही कमी की दु.खानुभूति मानसिक ग्रन्थि का कारण बन जाती है। जिस बालक को बचपन मे वस्त्र नही मिले, ठीक भोजन या आभूषण नही मिले, उसमे दु.खानुभूति होना स्वाभाविक है। बड़ा हो जाने पर भी वह न्यूनता की अनुभूति अव्यक्त मन से नष्ट नही होती।

प्रसिद्ध अँग्रेजी उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स बड़े निर्धन गृह मे पैदा हुआ था, उसका प्रारम्भिक जीवन होटल मे नौकरी करते हुए व्यतीत हुआ था। न उसे अच्छे वस्त्र उपलब्ध हो सके थे, न आभूषण। यही इच्छाएँ उसके अव्यक्त प्रदेश मे एकत्रित हो गई, वहाँ दुर्बलता, तुच्छता, दीनता की अनुभूतियाँ दृढ हो गई। ये ही भावना-ग्रन्थियाँ उसके अनेक चरित्रो मे बह निकली है। अनेक स्थलो, दृश्यो तथा स्थानो का वर्णन अन्त:स्थल की भावना-ग्रन्थि के परिणामस्वरूप है। कहते है डिकिन्स अपने कोट मे सोने के बटन लगाता था। यह भी हीनत्व की ग्रन्थि की एक प्रतिकृति थी। अन्य किसी विद्वान ने इस प्रकार का शौक नही दिखाया। स्त्रियाँ वे ही अधिक आभूषणो का व्यवहार करती है जिनके अन्त: प्रदेश मे आत्महीनता की ग्रन्थि अधिक संख्या मे प्रस्तुत रहती है।

आत्महीनता की ग्रन्थि के मूल मे कमी की दु.खानुभूति अवश्य मिलती है। प्रत्येक दु:खानुभूति अन्त करण प्रदेश मे गाड़ी की लीक की तरह एक मानसिक मार्ग बनाती है। इस लकीर मे उसी प्रकार की भावनाओ का उत्थान-पतन चला करता है।

मन मे जो विचार नित्य प्रति प्रबल होते है, वे ही हमारी अच्छी या बुरी ग्रन्थियों का निर्माण करते है। दु:ख अथवा कमी की अनुभूति से जो हीनत्व की भावना ग्रन्थि बनती है, वह बार-बार पीड़ा के विचार तथा कमी की भावना के पुनरावर्तन का परिणाम है। बार-बार वैसे ही दीन-हीन विचार मन-रूपी पृथ्वी के गर्भ-भाग मे जड़ पकड़ जाते है। फिर वे स्मृति पटल पर तो नही आते किन्तु जीवन को प्रभावित करते रहते है। सामाजिक निम्नता के विचार सदा सक्रिय रहकर हमारे मन को उद्वेलित किया करते है।

निम्न सामाजिक स्थिति के साथ अन्य ऐसे कारण हो सकते है, जिनसे मनुष्य कमी या हीनता की भावना

मे प्रवेश कर सके। अनुचित सम्बन्ध के द्वारा उत्पन्न बाल-बच्चे, समाज मे ऊँची नाक नही कर पाते, अतः उनके मानसिक प्रदेश में कटु अनुभूति वर्तमान रहती है। नीच जाति, अछूत गृह या निम्न श्रेणी का व्यवसाय करने वालो मे भी यह ग्रंथि उत्पन्न हो जाती है। उनके कटु अनुभव संस्कारो के रूप मे प्रस्तुत रहते है तथा उन्हे अग्रसर नही होने देते।

कल्पना कीजिए, एक व्यक्ति को आप कहते हैं—"तू नीच, ऊँची बाते क्या जाने ? तेरे घर-बार मे भी कोई पढ़ा-लिखा पैदा हुआ था ? तुम्हारा जो काम है वही काम करो। हल, खुरपा चलाकर जिन्दगी बिताओ" इस प्रकार के कुत्सित संकेतो से हृदय संकुचित क्षुद्र, प्रेम-विहीन तथा दरिद्री बनता है। उसमे हीनता की ग्रन्थि अधिकाधिक जटिल बनती है तथा वह अंधकार, पतन तथा दरिद्रता की परिस्थितियो मे और अधिक फँसता है।

एक नवयुवक यह विचार करता है मै तुच्छ हूँ, क्षुद्र हूँ, दीन-हीन हूँ। इतने वृहत् संसार मे भला मै किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकूँगा ? किस प्रकार समृद्ध जीवन व्यतीत कर सकूँगा ?" ऐसी निषेधात्मक विचार धारा का यह परिणाम होगा कि वह वैसा ही बन जावेगा। यदि हम तंगी के, निर्बलता के, कमी के, अकर्मण्यता के विचारो को रखेगे तो इन्ही का प्रतिबिम्ब हमारी अवस्था पर पड़ेगा और आत्महीनता उत्पन्न कर देगा।

तीसरा कारण—आर्थिक कमी—निर्धनता की अनुभूति हमे दरिद्री बनाती है। गरीब मनुष्य जो सदैव फटे हाल रहता है, रूखा-सूखा खाकर जीवन को धक्के देता है, प्रायः अपने मनोमन्दिर मे ऐसा कलुषित वातावरण बनाता है, जिससे हृदय सीमाक्रान्त हो जाता है। मौलिकता का ह्रास हो उठता है। आदमी वास्तविक मनुष्यता—दया, प्रेम, सज्जनता, पवित्रता, बुद्धिमत्ता तक की रक्षा नही कर पाता।

ऋण बड़ा घातक शत्रु है। मनुष्य ऋण से दबकर जैसा-तैसा काम करके, उचित-अनुचित करने पर बाध्य होता है। उसकी आत्मा पर एक बोझ-सा बना रहता है, तब उसे अपने गौरव का, स्वाभिमान का सुरक्षित रखना भी कठिन होता है, जिससे वह अपना सिर ऊँचा करके चलता है।

अनेक उच्चतम तथा लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान ऋण के भार से इतने दबे कि उनकी आत्मा तक सकुचित हो गई। बड़ी कठिनाई से वे अपनी रक्षा कर सके। कुछ दारिद्र के भयंकर प्रहारो से सदा के लिये क्षुद्रता के गड्ढे मे विलीन हो गये, जो मनुष्य अपने आपको दुस्सह दरिद्रता के पंजे मे पाता है, वह असमय ही वृद्ध-सा दीखने लगता है। उसके मुख मण्डल से तेज उड़ जाता है। दरिद्रता उसकी सर्वोत्कृष्ट महत्वाकांक्षाओ को नष्टकर देती है और समस्त प्रतिभा को धूल-धूसरित कर देती है। यदि आप दरिद्रो के अन्तःकरण को देखे तो आपको वहाँ आत्मविश्वास तथा श्रद्धा की बेहद् कमी मिलेगी। जो मनुष्य आत्मविश्वास को तिलांजलि दे देता है, उसे क्रमशः अन्य गुण, इच्छाशक्ति, मनोबल, तर्क शक्ति भी छोड़ जाते है और उसका जीवन भारस्वरूप हो जाता है।

आधुनिक मनोविज्ञान ने एक महासत्य का दिग्दर्शन कराया है और वह यह कि मनुष्य के मन पर पड़ा हुआ कोई संस्कार निश्चेष्ट, व्यर्थ या निष्क्रिय नहीं होता। उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। बार-बार एक ही प्रकार के विचार मनःक्षेत्र मे लाने से, गम्भीर चिन्तन करते रहने से मन मे उनके संस्कार दृढ़ होते हैं। एक बार जम जाने के पश्चात् वे ऐसे स्थायी हो जाते हैं कि मस्तिष्क से बाहर नहीं होते। दुष्ट विचार, पाप के विचार, भय, उद्विग्नता, गरीबी, लाचारी के विचार जब मन मे आने लगे तो समझना चाहिए कि इच्छा-शक्ति की निर्बलता है। डरना, घबराना, हाय-हाय करना, संदेह करना मन के अव्यक्त भाग मे बैठे हुए सस्कारो के ही दोष है।

दरिद्रता वास्तव मे इतनी खराब नही है, जितने दरिद्रता के विचार। जिस व्यक्ति के मन मे यह विचार उठते है कि "मै तो दरिद्र कुटुम्ब मे उत्पन्न हुआ हूँ, गरीब लोगो से मेरी जान पहचान है, मुझे तो गरीब ही रहना पड़ेगा" वह मनुष्य अपने भावी जीवन मे भिखारी के अतिरिक्त क्या हो सकता है ? अज्ञान के कारण वह मन मे दरिद्र वातावरण रखेगा और फलतः आत्मा के पवित्र प्रकाश की शान्ति का अनुभव न कर सकेगा।

चौथा कारण—निराशावाद—कुछ व्यक्ति स्वभावतः ही निराशावादी होते है। निराशावाद सफलता का विघातक है, विध्वंसक तथा जीवन का काल है। निराशावादी सदैव संकल्प-विकल्प के भ्रमजाल मे फँसा रहता है। उदास, उद्विग्न, खिन्न, अशान्त, चिड़चिड़े, शोकातुर शक्ल के व्यक्ति मे भला कौन विश्वास करेगा ? निराशा एक प्रकार की नास्तिकता है। "जो व्यक्ति संध्या के डूबते हुए सूर्य को देखकर दुःखी होता है तथा प्रातःकाल के सुनहरी अरुणोदय से उत्फुल्ल नही होता वह नास्तिक है। जब रात के बाद दिन आता है, मरण के बाद जीवन होता है, पतझड़ के बाद बसन्त आता है, ग्रीष्म के बाद वर्षा आती है, दुःख के बाद सुख आता है तो क्या कारण है कि हम अपनी कठिनाइयों को स्थायी समझे ? हमे अपनी नास्तिकता का दण्ड रोग, शोक, विपत्ति, प्रतिहिंसा के रूप मे भोगना पड़ता है।"

आज के सभ्य कहलाने वाले जगत् मे, जिसकी स्तुति करते हुए हम नही थकते, ऐसा हिसाब लगाया जाता है कि प्रति वर्ष दस लाख आदमी निराशा के वशीभूत होकर आत्मघात कर लेते है। जितने समय मे आप अपना पत्र लिखते हैं, उतने समय मे कई व्यक्ति सुरपुर के पथिक बन जायेंगे। आत्मघात कर लेने का मानसिक स्वरूप भयंकर आत्मग्लानि है। सौ में निन्यानवे लोग केवल घोर निराशा के कारण ही आत्मघात कर लेते हैं।

निराशा से विक्षुब्ध होकर, आक्रान्त होकर, सुधबुध भूले प्राणियो को देखकर अन्य मनुष्यो को भी आत्मघात कर लेना श्रेष्ठ जान पड़ता है और कहते है कि तात्कालिक मृत्यु हो जाना उत्तम है, यह दुर्दशा तो देखी नहीं जाती।

निराशा अन्धकार है। उसमे हमे ठहरना कदापि न चाहिये। निराशा मन मे एक प्रकार की कमी की अनुभूति उत्पन्न करती है अत: आत्महीनता प्रस्तुत होना स्वाभाविक है। आत्म-पतन और निराशा का जोड़ा है।

देखा गया है कि कुटुम्ब मे केवल एक निराश और उदासीन मनुष्य के होने से समस्त कुटुम्ब मे आत्महीनता की ग्रन्थि निर्मित होती है। जो मनुष्य अपने आप को पापी, दोषी, अज्ञानी, अधम, मदमति व दरिद्र मानता है वह अपने चारो ओर वैसा ही वातावरण फैलाता है। फिर उसके सम्पर्क मे आने वाला प्रत्येक व्यक्ति क्रमश: वैसा ही बनता जाता है। अनिष्ट चिन्तन कितनी बड़ी भूल है ? संसार के असंख्य व्यक्ति इसी प्रतिकूल चिन्तन द्वारा आत्महीनता की सृष्टि करते है।

पाँचवा कारण—विघ्न-बाधाओं की कल्पनायें—स्वेट-मार्डेन ने अपनी एक पुस्तक मे आत्महीनता के सिलसिले में विघ्न-बाधाओ की कल्पना का निर्देश किया है। अनके व्यक्तियो की मानसिक भित्ति इतनी कमजोर होती है कि वे निरन्तर विघ्न-बाधाओ की कल्पना मे व्यस्त रहते है। उनका हृदय असमय में ही मुरझा जाता है, वे साहसिक कार्य करने योग्य नहीं रहते, उनकी कार्य सम्पादिका शक्ति का ह्रास हो जाता है। मन प्रारम्भ से ही निषेधात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

ऐसे व्यक्ति को चारो ओर विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ ही दृष्टिगोचर होती है, उसकी कार्य-सम्पादिका शक्ति पर एक काला पर्दा पड़ जाता है। दूसरे मनुष्य संशय के विचार ला-लाकर उसके अन्त.करण मे प्रवेश करा देते है और वह बलात् उसी के अनुसार विचार करने को विवश होता है।

पतन की ओर उन्मुख करने वाली, मानसिक जगत् मे तूफान उत्पन्न करने वाली अनिष्ट कल्पना ही है। जैसी कल्पना, वैसा ही उसका फल-मनोविज्ञान का यही अकाट्य नियम है। कुकल्पना का भयकर परिणाम कितने ही व्यक्तियो मे हीनत्व की ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है।

कुकल्पना से ग्रस्त व्यक्ति यही सोचता है कि न जाने कल कौन-सी अनर्थकारी घटना घटित होने वाली है ? न जाने कल कैसे व्यतीत होगा ? छीक आने पर वह महा अनिष्ट की बात सोचता है। प्रात काल देखी गई वस्तुओ को ले-लेकर राई का पर्वत बनाया करता है। कल्पना के बल पर वह अपना गर्हित चित्र खीचता है। वर्षों तक वह निज मन शक्ति को व्यर्थ के अनिष्ट चिन्तन मे व्यस्त रखता है। बारबार एक प्रकार की कल्पना का उद्रेक होने के कारण वह अनिष्ट चित्र अन्त करण मे इच्छा के विरुद्ध आरूढ़ हो जाता है। चिन्ता, भय, विक्षेप तथा संशय मन के गहन भाग मे जम जाते हैं। इस प्रकार मन के संग्रहालय मे प्रतिदिन कूड़ा-करकट एकत्रित हुआ करता है।

छठा कारण—लिंग सम्बन्धी न्यूनता—प्रकृति ने पुरुष को स्त्री से स्वभावत: ही साहसी एव निर्भीक बनाया है। नारी स्वभाव से प्रेममयी, करुणामयी तथा ममतामयी है। उसमे अपेक्षाकृत अधिक लज्जा तथा दुर्बलता है। वह कोमलता तथा सहानुभूति की क्रीड़ा-स्थली है।उसके हृदय मे आत्महीनता स्वभाव से ही प्रस्तुत है।

स्त्रियो मे आत्महीनता के अनेक कारण है। सर्व प्रथम उनका शारीरिक संस्थान ही इतना कोमल होता है, कि पुष्प की पंखुड़ियो के समान टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाने को तुला रहता है। शारीरिक कमी के कारण कुछ बहुत मजबूत स्त्रियो को छोड़कर शेष सभी मे हीनत्व की भावना का विद्यमान रहना स्वाभाविक-सा है। कुछ मनोवैज्ञानिको का कथन है कि मजबूत से मजबूत स्त्री मे ये ग्रन्थियाँ बनी रहती है। वे कितनी भी निर्भीकता का प्रदर्शन क्यो न करे, उनके हृदय को एक भयंकर कमी प्रज्ज्वलित किया करती है।

स्त्री तथा पुरुष दोनो ही एकाकार होकर ही महाशक्तिशाली बनते है। पुरुष के बिना स्त्री का नरम हृदय एक कमी का अनुभव किया करता है। उसे कुछ ऐसा प्रतीत होता है मानो कुछ अभाव-सा हो, कुछ अपूर्णता रह गई हो। यह अधूरापन कितनी ही स्त्रियो मे आत्महीनता की ग्रन्थि का निर्माण करता है।

कुछ मनोवैज्ञानिको का कथन है कि "मनुष्य की कमी का अनुभव मात्र आत्महीनता की ग्रन्थि उत्पन्न नहीं करता, ग्रन्थि उसी अवस्था मे उत्पन्न होती है, जब कमी का अनुभव मनुष्य को दु.खी करता है। उदाहरणार्थ, सभी स्त्रियो मे आत्महीनता की भावना ग्रन्थि का होना आवश्यक नही, यद्यपि सभी स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा अपने को सभी प्रकार नीचा पाती है।" जगल मे आखेट करने वाली चित्रागदा को अपनी कमी का ज्ञान अर्जुन से मिलने के पश्चात् हुआ था। अत: तभी से हीनता की ग्रन्थि का बीजारोपण हुआ उससे पूर्व वह उन्मुक्त वीर ललना जंगल मे भयकर कार्य करती रही थी। दु:ख का अनुभव तथा अपनी किसी विशेष कमजोरी, न्यूनता, कमी की भावना आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्माण का प्रमुख कारण है।

सातवाँ कारण-समाज की अवहेलना—समाज मे ऊँचा मुखकर चलने वाले व्यक्तियो मे प्राय: आत्महीनता की ग्रन्थि कम पाई जाती है। समाज से बहिष्कृत अथवा किसी अन्य कारण से समाज की नजर मे गिरा हुआ व्यक्ति इस ग्रन्थि से ग्रसित रहता है। भंगी, चमार, भील तथा अन्य निम्न श्रेणियो के बच्चो मे प्रारम्भ से ही कमी का, पग-पग पर अपनी निर्बलता की प्रतीति होती है,

उनका जरा-जरा सी बात पर तिरस्कार किया जाता है। गालियों की बौछार नित्य उन पर पड़ा करती है। समाज के वज्र जैसे कठोर नियन्त्रण के सम्मुख निम्न जाति वाले युवक की तमाम प्रतिज्ञा, मौलिकता, सामर्थ्य विनष्ट हो जाती है। उसे अपने घृणित कार्य के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही करने दिया जाता है। वह अपने इस कटु वातावरण से सदैव दुःखी रहता है। एक गुप्त वेदना उसके अन्त करण मे प्रदीप्त रहती है । ऐसी दुखद, आत्मग्लानि की अवस्था मे हीनत्व की ग्रन्थि मन मे बनती है।

आठवाँ कारण-आत्मग्लानि तथा पश्चाताप की अधिकता—"हमने अमुक कार्य मे बड़ी भारी गलती कर दी है, यह हमारी बड़ी भारी भूल हुई, ऐसा हमे कदापि न करना चाहिए था। अब हमे पापो का प्रायश्चित करना चाहिए। हमारे जैसे महान पापी को तो दुनिया मे मुँह तक न दिखाना चाहिए।" इस प्रकार के विचार कुछ अश तक तो उचित है किन्तु जब पश्चाताप अधिक मात्रा मे एकत्रित हो जाता है तो लाभ के स्थान पर भयकर हानि पहुँचाता है। थोड़ा पश्चाताप होना तथा भविष्य के लिए भूल सुधार हो जाना आध्यात्मिक लाभ के लिए बड़ा अच्छा है। प्रत्येक सात्विक वृत्ति वाले व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण के पश्चात् आत्मग्लानि होना स्वभाविक है। महात्मा एमरसन का विचार है कि पुरानी गलतियो को सुधारना ही अभ्युदय के मार्ग मे आगे बढ़ना है। इस प्रकार के पश्चाताप तथा प्रायश्चित उत्तम प्रकृति के व्यक्तियो को शोभा देते है।

आत्म-ग्लानि की उपयोगिता यह है कि वह हमे अपनी भूल बता दे। भविष्य मे हम पुन. वही मार्ग न ग्रहण करे, प्रत्युत अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति विजय तथा सफलता की ओर रखे—यदि अपनी गलती से हम इतना पाठ सीख ले तो पर्याप्त है, किन्तु यदि यह अधिकाधिक बढ़ता रहे तो आध्यात्मिक बल का क्षय होता है। अधिक आत्मग्लानि मन की सर्जन या उपज शक्ति को नष्टकर देती है। ऐसे व्यक्ति साहसिक कार्य करने योग्य नही रहते। उनकी महत्वाकांक्षा असमय ही मुरझा जाती है।

प्रधान कारण दुःख का अनुभव—उक्त प्रकरणो मे हमने आत्महीनता की ग्रन्थि के निर्माण के अनेक कारण दर्शाये है किन्तु इस सब मे प्रधानता केवल एक तत्व की ही है। यह महान् तत्व है—"कमी के कारण दु ख का घोर अनुभव। अधिक काल तक दु ख की भावना मन मे रहने से वह स्थायी वृत्ति हो जाती है। उसकी छाप अमिट बन जाती है। निष्फलता, निराशा, निर्धनता, निरुत्साह सब दु खानुभूति की ही सन्ताने है। अयोग्य वातावरण के कारण अन्त करण प्रदेश मे विविध भय, द्वेष, न्यूनता तथा अशान्ति के तूफान चला करते है। निर्बल कल्पनाओ के कारण दु ख का अनुभव होता है। असख्य मनुष्य इस प्रकार की निर्बल भ्रान्तियो के शिकार बने हुए है। असत् चिन्तन मे सलग्न रहकर चिन्ता, भय, शका, सन्देह और दुष्ट मनोविकारो के पजे मे फँसे हुए, व्यर्थ के सन्देहो तथा कल्पनाओ मे निरन्तर ग्रसित रहने के कारण विचार की प्रतिक्रिया भी असत् ही होती और वे विक्षिप्त से रहते है।

मनुष्य की कल्पना शक्ति मन की सर्जन-शक्ति है। कल्पना के सहारे मानस-पटल पर जो चित्र अंकित किये जाते है, उनके अनुसार ही बाह्य पटल पर निर्माण होता है जो व्यक्ति किसी काल्पनिक शत्रु की कल्पना से त्रस्त रहता है उसके मन पट पर भय के चित्र निर्मित होते है, तत्पश्चात् ये बाहर विभिन्न क्रियाओ मे स्थूल रूप मे प्रकट होते है। अनेक अज्ञानी अनिष्ट कल्पना के कारण ही भयंकर दु खानुभूति का अनुभव किया करते है और इसी मनोजनित अशान्ति के कारण सारे जीवन को शूलमय बना लेते है।

दुःखानुभूति तथा हमारी आशाएँ—आत्महीनता की ग्रन्थि के मूल मे हमने दो प्रधान तत्वो का उल्लेख यत्र-तत्र किया है। ये है भय तथा दु खानुभूति। भय जीवन का भारी शत्रु है। यह मन की स्थिरता का विनाश कर मानसिक शान्ति भग करता है। मन मे प्रचड द्वन्द्व तूफान मचाया करते है और रोगी क्षण-क्षण उद्विग्न तथा उत्तेजित होता रहता है। दूसरा कारण है, दु खानुभूति। हमारी दु.खानुभूति और मन की कोमलता, सुकुमारता का कारण एक ही प्रकार के दु ख की प्रतिक्रिया होता है, जो विभिन्न मनो पर विभिन्न प्रकार का प्रभाव डालता है।

श्री भगवान रामचन्द्रजी के वनगमन के अवसर पर प्राय सब ही दु.ख का अनुभव कर रहे थे। श्री रामचन्द्रजी की माता को भी अत्यधिक दु ख हुआ, किन्तु महाराज दशरथ उस दु ख को सहन न कर सके तथा प्राण त्याग कर दिया। दु ख उतना ही अधिक या न्यून रहता है जितना मनुष्य का मन कोमल तथा सुकुमार होता है। जितनी ही मनुष्य की आवश्यकताएँ, कल्पनाएँ तथा आशाएँ अधिक बढ़ी-चढ़ी होती है, उतनी ही दु ख की अनुभूति भी प्रबल अथवा न्यून होती है। जिस व्यक्ति ने बड़ी-बड़ी कल्पनाएँ अपने विषय मे बना रखी है, उन कल्पनाओ मे व्यवधान उपस्थित होने पर उसे उसी मात्रा मे दु खानुभूति भी अधिक होगी। जिसकी आवश्यकताएँ जितनी अधिक होगी, उनकी पूर्ति न होने से उसे उतनी ही शोक की पीड़ा होगी। अत आत्महीनता की ग्रन्थि भी उतनी जटिल बनेगी।

जितनी तीव्रता से न्यूनता की दु खानुभूति होगी, जितना ही हम अपनी कमजोरी, कुरूपता, कमी, अपूर्णता, असफलता, बेकद्री, भद्दापन, उद्विग्नता, अभाव का अनुभव करेगे, चिन्ता-युक्त मन स्थितियो मे पड़े रहेगे और मन को अधकारमय पहलुओ पर केन्द्रित रखेंगे, उतना ही बुरा है। मन को भद्दी वस्तुओ मे लिप्त रखना विरोधी कुभावनाओ मे सलग्न रखना तथा उदासीनता मे पड़े रहने से हम निरन्तर अपना विनाश किया करते है।

पश्चाताप के दुष्परिणाम—प्रसिद्ध तत्ववेत्ता स्पेनोजा पश्चाताप की आदत को एक बड़ा मानसिक रोग मानते थे। उनका विचार था कि पश्चाताप मानसिक आरोग्य का लक्षण नहीं है। यह हमें सिखलाता है कि दैव हमारे विपरीत है, हमें कभी सफलता प्राप्त न होगी, हमारे चारों ओर विघ्न-बाधाएँ खड़ी हैं। क्रमश: यह हमारी कार्य सम्पादिका शक्ति को पंगु कर डालता है। आत्मग्लानि के दो भयानक दुष्परिणाम है।

१. यह हमारी इच्छाशक्ति तथा मनोबल की निर्बलता दर्शाता है। हमारी साहसिक प्रवृत्ति का दमन करता है। हमें निराशावादी, पापी बना देता है।

२. हम अपने अव्यक्त मन या अचेतन जगत् में अपनी तुलना अन्य सबल व्यक्तियों से करते हैं, अपने आपको, अपनी कमजोरी के लिए कोसते हैं, बुरा-भला कहते हैं, निसत्व एवं निकम्मा, गया बीता ठहराते हैं। बस हमारा मन निषेधात्मक हो जाता है तथा कुछ काल पश्चात् हमारा मन अपनी कमजोरी पर सोचते-विचारते, चिन्तन करते-करते इतना निर्बल हो जाता है कि अपने आप पर, अपनी अद्भुत शक्तियों पर किसी प्रकार का विश्वास नहीं कर पाता।

अपने आपको बुरा-भला कहना, कोसना, अपशब्दों का उच्चारण करना, विकृत मानसिक प्रवृत्ति का परिचायक है। जिस प्रकार पर छिद्रान्वेषण एक रोग है, उसी प्रकार अपने आपको कोसना भी है। इससे मनुष्य के चरित्र में कोई सुधार नहीं हो सकता।

आत्महीनता से मुक्ति के उपाय

नब्बे प्रतिशत व्यक्ति किसी काल्पनिक डर से क्लान्त रहा करते हैं—''हम कुछ नहीं, कमजोर हैं, क्षुद्र हैं, दीनहीन हैं, दूसरे हमसे उत्तम हैं, बड़े हैं, सर्वगुण सम्पन्न हैं।''—ऐसी भावना ही उन्हें विदग्ध किया करती है। ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। ऐसी भय-सूचक कल्पनाएँ अन्त:करण की समस्त उत्तम योजनाओं को क्षण भर में धूल में मिला दिया करती हैं।

भय जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। यह एक ऐसा महाराक्षस है, जिसकी कल्पनामात्र से हजारों जीवन बर्बाद हो रहे हैं तथा समय से पूर्व ही काल के ग्रास बन रहे हैं। जिस प्रकार तेज आँधी, वर्षा कोमल पुष्प, पौधों, कलिकाओं को नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। उसी प्रकार भय रूपी दानव की कल्पनाएँ अबोध, अविकसित हृदयों पर अपनी काली परछाहीं डालकर सदैव के लिए उन्हें बरबाद करती है।

भय हमारी अज्ञानता का सूचक है । ज्यों-ज्यों मानव में अज्ञानता का अँधेरा बढ़ता है, त्यों-त्यों मनुष्य अपना विकृत स्वरूप देखता है। उसका वास्तविक सिंह जैसा बहादुर व्यक्तित्व अधकार के बोझ से विलीन-सा हो जाता है। अत्यन्त खेद का विषय है कि अज्ञानी जन केवल अपने तक ही दु:ख, दर्द, चिन्ता, कायरता, संकोच, लज्जा, अविश्वास के विचार सीमित नहीं रखते प्रत्युत अपने आसपास के पड़ौसियों, अपने मित्रों, यहाँ तक कि अपने बच्चों तक में वैसे ही अधोगामी संस्कार दृढ़कर देते हैं और इसका दुष्परिणाम उन बेचारों को पूरे जीवनभर भुगतना पड़ता है। कायरता तथा भय हमारे मनोबल को क्षीण करते हैं और हमारे मानसिक विकास में बाधा पहुँचाते हैं। ये हमारी तुलनात्मक शक्तियों को विकृत कर देते हैं।

अपना दृष्टिकोण बदल दीजिए—अभी तक आप मन को अप्रीतिकर, अस्वास्थ्यकर तथा चिन्ता के विचारों में लगाये रहे हैं। इस प्रकार के डरपोक विचारों द्वारा तुमने भय के वातावरण की सृष्टि करली है। विचार एक महाशक्तिशाली चुम्बक है। यह वैसी ही वस्तुएँ वायुमण्डल से आकर्षित करेगा जैसा वह स्वयं है। अत: हमें उचित है कि मन को जीवन के अप्रीतिकर पहलुओं से सदा-सर्वदा के लिए हटा लें। उधर की बातें सोचें ही नहीं। जब मनुष्य का दृष्टिकोण बदल जाता है तो यह लज्जा तथा संकोच के स्थान पर विश्वास तथा श्रद्धा से कार्य लेता है, कायरता बदलकर वीरत्व का तेज धारण कर लेता है, ग्लानि के स्थान पर भविष्य की उज्ज्वल आशा से प्रकाशित हो जाता है।

प्रिय पाठक ! तनिक सोचिए, विचार कर देखिए यदि आप उम्र भर दूसरों से डरते ही रहेंगे, स्वयं अपने आपको नहीं सम्हालेंगे, अपनी आत्मिक शक्तियों को प्रकाशित नहीं करेंगे, तो आप का ठौर-ठिकाना कहाँ रहेगा ? कौन पूछेगा ? तुम क्या कर सकोगे ?

आपको चाहिए कि फिजूल के डरों, कल्पित चिन्ताओं तथा कुविचारों को हृदय केन्द्र से सदा के लिए बहिर्गत कर दें। अपने आजू-बाजू निर्भयता तथा निश्चन्तता के वातावरण की सृष्टि करें। लोगों से कहें कि वे भी हमारी तरह किसी से भयभीत न हों। पुराने आक्रमणों, दु:खदायी प्रसंगों तथा अंधकारपूर्ण घटनाओं को सदा के लिए भूल जायँ। मन को भविष्य के दु:ख की गड़बड़ी में न पड़ने दें।

भय के विचार हमें उद्विग्न कर देते हैं। कुछ काल के लिए हम पागल से हो जाते हैं। हमें कर्तव्य का मार्ग नहीं दीखता। अन्त:करण की समस्वरता नष्ट हो जाती है। हमें अच्छा भी बुरा मालूम लगता है। हम अपनी मुसीबतों को स्वयं पैदा कर लेते हैं।

दूसरे क्या सोचते हैं ?—आप इस पचड़े में न पड़िए कि दूसरे आपके विषय में क्या विचार रखते हैं ? क्या-क्या कहते हैं तथा उन्होंने आपको कैसा समझा है ? आप यह क्यों सोचते हैं कि आपके विषय में उनके विचार उत्तम नहीं या वे आपकी आलोचना करने में संलग्न रहते हैं। आप थोड़ी देर के लिए यही सोच लें कि वे हमारे विषय में बड़ी उत्तम धारणाएँ रखते हैं, हमें

जिन बातों से डरते हो वे होने वाली नहीं हैं—प्रिय पाठक ! स्मरण रखो कि भविष्य का ज्ञान असंभव है। आज तक कोई उसे जान नहीं सका है। यदि उसका ज्ञान भी हो जाय तो क्या लाभ ? भवितव्य ही होता है। नियति का लेखा बँधा है। उसमें से हम एक अक्षर भी इधर से उधर नहीं कर सकते। फिर उसे जानकर ही क्या करेंगे ? यदि हम उसे इच्छानुसार बदल नहीं सकते, वह अतर्क्य है, शाश्वत है तो उस रहस्य को जान लेने से क्या प्रयोजन ? हाँ, हानि की अधिक संभावना है। यदि हमें यह मालूम हो जावे कि कल इतने रुपये अवश्य प्राप्त हो जायेंगे, तो संभव है कि हम आज गाँठ की पूँजी ही समाप्त कर डाले।

इसी प्रकार यदि हमें यह ज्ञात हो जाय कि हमें कल इस संसार से विदा हो जाना है तो भय, चिन्ता, उद्वेग, क्लेश से कल के स्थान पर आज ही मृत्यु हो जाय। प्रायः देखा गया है कि फाँसी का दण्ड पाने वाले कैदी केवल मृत्यु के विषम विचार द्वारा पहले से अधमरे हो जाया करते हैं।

भविष्य में क्या होने वाला है, इस तत्त्व की अनभिज्ञता जीव को इसलिए प्रदान की गई है कि जिससे भविष्य में आने वाले अनिष्ट की शंका से उस परम शूलमय घटना के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को हम खो बैठें।

उस बलि के बकरे को देखिए, जिसके सिर पर मृत्यु पल-पल नाचती रहती है यमदूत उसे हड़प जाने को तत्पर रहते हैं, बधिक पत्थर पर छुरा तेज करता है किन्तु बलि पशु अन्तिम क्षणों तक आनन्द से क्रीड़ा करता है। सत्य तो यह है कि आगम का अज्ञान परमेश्वर का परम अनुग्रह है। यदि उस पशु को यह ज्ञान हो जाय कि जरा देर में वह मृत्यु के घाट उतार दिया जावेगा, तो कदाचित् वध से पूर्व ही उसका अस्तित्व विलीन हो जाय और मृत्यु के पूर्ववर्ती दिनों के सुख को भी वह खो बैठे।

अनिष्ट की कल्पना न कीजिए—सचमुच अनिष्ट की कल्पना विषमय है। भय तथा संदेह से ही हम अपने को कष्टों तथा मुसीबतों में डालते हैं। मृत्यु का भय लोगों को खाये डालता है। मौत आयेगी, सब प्राणी मात्र को आती है। यह निश्चय है पर जिस घटना से हम नहीं बच सकते, उससे डरना भी क्यों ? जब आयेगी देखा जावेगा। जितने दिन हमें रहने को मिले हैं, उनका तो पूर्ण आनन्द उठा लें। आज का सुन्दर दिन हमें विश्व नियंता ने प्रदान किया है। आइये, उसे तो आनन्दपूर्वक प्रेम का अमृत छिड़क व्यतीत कर लें। कल क्या होगा कौन जाने ? किसे यह ज्ञान है कि 'कल' आयेगी भी या नहीं। हम आज के लिए कह सकते हैं कि हमारा अस्तित्व है, हमारे गृह, बाल-बच्चे, बन्धु-बाधव इत्यादि हैं, किन्तु कल क्या होगा यह सब कुछ सात परदों के भीतर छिपा है और जिसको कोई जानता नहीं उसकी फिक्र क्यों की जाय ?

जीवन की पुस्तक का एक पृष्ठ ही, केवल आज वाला ही सफा आपके सम्मुख खुला है। उसे देखकर आप सिर्फ आज की बात जान सकते हैं पर अन्य पृष्ठों में कौन बात छिपी है ? यह तथ्य तुरन्त प्रकाशित नहीं किया जा सकता। परमेश्वर अत्यन्त सावधानी से एक-एक पंक्ति और एक-एक पृष्ठ हमारे सामने आने देता है। यदि पूरी पुस्तक की विचारधारा, जीवन का पूरा लेखा एक बारगी ही हमें बता दिया जाय तो कदाचित् दूर के अनिष्ट की बाट देखते-देखते शायद कुछ दिन में ही हम मृत्यु के ग्रास बन जायँ।

"कल" की चिन्ता छोड़ो—यदि तुम सर्वांगपूर्ण जीवन का आनन्द लेना चाहते हो तो कल के अनिष्ट की मिथ्या चिन्ता को दूर करो। तुम अपने चारों ओर उत्कृष्ट रस भरे, जीवन के बीज बोओ। भविष्य के सुनहरे सपने देखने की आदत बनाओ। सदैव के लिए अपने मन से यह निश्चय बैठालो कि आपका कल अत्यन्त प्रकाशमय, मधुर तथा आनन्ददायक होगा। कल आप अपने को आज से भी अधिक सौभाग्यशाली पावेंगे।

आप ऐसा सोचते रहिए कि हमें कल अपने कार्यों में और अधिक सफलता प्राप्त होगी। कल मेरा मन उत्पादक शक्ति से परिपूर्ण हो जावेगा। मैं अपने जीवन में और अधिक बढ़ जाऊँगा, ऊँचा उठ जाऊँगा, उत्तरोत्तर उन्नतिशील होऊँगा, अधिकाधिक उज्ज्वल हो जाऊँगा। प्रतिदिन, प्रतिपल मेरे अन्दर कुछ न कुछ इच्छाशक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है। कल पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरी कल मुझ में दिव्यता का संचार करने वाली देवी है।

"मुझ में इतनी शक्ति है कि विघ्न-बाधाएँ डरकर स्वयं दूर भाग जायेंगी। कल मैं आज से अधिक प्रसन्न रहूँगा। मेरे मनोरथ, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ, मेरे स्वप्न खिंचकर मेरे और समीप चले आयेंगे। त्रिकाल में भी कोई मुझे हानि न पहुँचा सकेगा। संसार की कोई भी विरोधी शक्ति मेरे इष्ट मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती—ऐसी विचारधारा जब अन्तःकरण में दृढ़ता से बैठ जाती है तो मनुष्य व्यर्थ की भ्रान्तिमय कल्पनाओं से बच जाता है।

जब तुम अपने अन्दर साँस खींचो तो ऐसा ही विचार करो कि उत्कृष्ट प्राण शक्ति को खींच रहे हो। शोक, भय, दुःखों से ऊँचे उठ रहे हो। तुम्हारी आत्मा शुद्ध तथा निर्विकार बन रही है। तुम अपने जीवन को और देदीप्यमान कर रहे हो। अपने मस्तिष्क के प्रत्येक कण के साथ आध्यात्मिक सुख का दृढ़ चिन्तन करो। जब तक तुम इसे पूर्ण रूप से चित्त में गहरा न उतार लो, जब तक निरन्तर उसी का मनन करते रहो। इसे रस की तरह पान कर जाओ। जब तुममें दृढ़ता का संचार होगा तो तुम अपने आपको इसी अवस्था के साँचे में ढलता हुआ पाओगे। तुम्हारे मिथ्या संशय उड़ जायेंगे और तुम्हें अनिष्ट अधिक चिन्तित न कर सकेगा।

ऊँचा समझते है, हमारे गुणो पर दृष्टि रखते है। वे हमारे विषय मे कोई भी बुरी बात नही सोच सकते क्योंकि हम वैसे है ही नही, हम तो उन्नति के लिए जन्मे हैं और प्रत्येक दिन कुछ न कुछ उन्नति कर रहे है। सुभावनाओ को मनोमंदिर मे सजा रहे है तथा महत्त्वपूर्ण विचारो के चिन्तन मे संलग्न रहते है।

जो व्यक्ति दूसरे के विचारो, मन्तव्यो तथा टीका-टिप्पणी पर निर्भर रहता है, वह सदैव नीचे गिरता है। लोगों के हाथो का खिलौना बन जाता है। जरा-जरासी बात मे संसार के स्वार्थी पुरुष उसे नाच नचाते है। पागल बनाते है।

लोगों की हँसी की ओर ध्यान न दीजिए—सर्वोत्कृष्ट सिद्धान्त यही है कि आप लोगो की व्यर्थ आलोचना की ओर से नेत्र मूँद लो। यदि कोई तुम्हे चिढ़ाये, बुरा-भला कहे और तुम उसकी ओर ध्यान न दो, तो हँसी करने वाले को बड़ा दु:ख होता है कटु वाक्य उलटकर उसी का हृदय बेधते है।

हमे दुनिया मे निवास करना है, जहाँ हँसी उड़ाने वाले थोड़े बहुत सदैव रहेगे। आज चार है तो कल आठ हो जायँ या सभव है दो हो जायँ। जब यही संसार-चक्र है तो हमे हँसी उड़ाने वाले की धमकी से भयभीत हो विक्षुब्ध होने का कोई प्रयोजन नही। ससार ने, इस परम स्वार्थी दुनिया ने, अच्छे से अच्छे व्यक्ति की आलोचना की तथा खूब हँसी उड़ाई है। यहाँ तक कि इतने श्रेष्ठ पुरुष श्रीरामचन्द्र जी, जो एक-वचनी, एक-पत्नीव्रत धारण करने वाले थे, वे भी लोगो की हँसी का कारण बने। श्रीकृष्ण और सत्यवचनी धर्मराज युधिष्ठिर की भी हँसी उड़ाने मे लोगो ने कमी नही की। महाराज शिवाजी ने बाल्यावस्था से ही स्वतंत्रता का आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उस समय उनके घरवाले तक उनकी हँसी उड़ाते थे। नौकरी तथा दासत्व का मार्ग छोड़कर स्वतंत्र कार्य करने का निश्चय सुनकर कितने ही लोगो ने लोकमान्य तिलक की कम हँसी नही उड़ाई ? विज्ञानवेत्ताओ, तत्ववेत्ताओ तथा प्रसिद्ध व्यक्तियो के जीवन मे एक अवसर ऐसा अवश्य आया जब उनकी खूब अवहेलना की गई, किन्तु वे कर्त्तव्य पथ पर स्थिर रहे।

संसार की बंदर घुड़की—बन्दर जैसे दूर-दूर से घुड़की देकर तुम्हे डराना चाहता है किन्तु यदि तुम उसका सामना करते हो तो उलटे पाँव भागता है, उसी प्रकार की मनोवृत्ति संसार की है। दूर-दूर से लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते है किन्तु जब तुम उनका विरोध करते हो तो वे दूर भाग खड़े होते है। दूरदर्शिता से विचार करो। स्वार्थी मनुष्यो की हँसी के फन्दे मे पड़कर भय के बन्धन मे न पड़ो। जब कभी ऐसा अवसर सामने आवे तो दृढ़ निश्चय से काम लो। लोगो को हँसने दो, गला फाड़ने दो किन्तु तुम अपने अटल उद्देश्य मे प्रवृत्त रहो, जनता की मनोवृत्ति का थोथापन पहिचानो।

साहस हमेशा बाजी मारता है—साहस को देखकर भय, भयभीत होता है। आप साहस से मित्रता कर लीजिए फिर भय स्वयं दूर हो जायेगा। साहस का एक कण मिट्टी के मनुष्य मे भी नवजीवन डाल देता है।

कहाँ जटायु और कहाँ बलशाली रावण। कहाँ गगनचुम्बी एल्पस कहाँ नैपोलियन। एक बार दो पठानो ने महाराज रणजीतसिंह की हत्या के निश्चय से उनके यहाँ नौकरी की तथा बनावटी स्वामिभक्ति से उन्हे प्रसन्न कर लिया। महाराज उनके दिल की बात जान तो गये थे पर उन्हे यह मालूम न होने दिया कि वे सब कुछ समझ गए है। एक दिन महाराज शिकार के लिए गए। एकान्त मे एकाएक महाराज ने घूमकर एक पठान से कहा "मेरा गला घुटता है, अपनी कटार से घटन काट दो।" इस पर दोनो पठान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। तब महाराज ने कहा—"हम पहले से ही सब भेद जानते थे, परन्तु आज हम अपने साहस के प्रभाव को देखना चाहते थे और अब हमे वह ज्ञात हो गया।"

जरा से साहस से तुम्हारी भ्रमात्मक कल्पनाएँ काफूर हो जायेगी तथा मनुष्यरूपी-पुष्प-तरु को विध्वंस करने वाला भयरूपी कीड़ा स्वयं बाहर हो जायेगा।

जीवन का पौधा साहस की खाद माँगता है, बिना खाद के वह संसार के तेज झोके नही सहन कर सकता मगर इस खाद को आप बाजार मे जाकर नही खरीद सकते, कोई यार-दोस्त आपको उसकी सौगात नही भेज सकता, कोई जादू-मन्तर भी उसे लाकर आपके हाथ मे नही दे सकता। उसे तो स्वयं ही अपने बल से प्राप्त करना होता है।

न जाने कल क्या विपत्ति आयेगी ?—भविष्य मे क्या होगा, हमारे ग्रह शुभ है या अशुभ, हमारे भाग्य की रेखाओ की प्रगति किस ओर है ? हमारे शगुन ग्रह-नक्षत्र अच्छे है या बुरे ये ऐसे भयकर प्रश्न है, जो कितने ही व्यक्तियो की मानसिक शान्ति भग किया करते है। भविष्य मे दु:ख आने वाले है—भय की यह धारणा मन मे आते ही हाथ-पाँव निर्जीव से हो जाते है तथा हम निरुत्साह हो उठते है।

भविष्य जानने के लिए कितने ही भयभीत व्यक्ति फकीरो, ज्योतिषियो तथा मुल्लाओ के पास भटकते है। जिससे तनिक भी भविष्य के विषय मे पता चलने की आशा हुई कि उसके पीछे-पीछे लगे रहते है और खून पसीने की गहरी कमाई सहर्ष सौप दिया करते है। किसी ने उनके मन की बात कह दी कि वे फूल उठे। किसी ने कुछ भयंकर बात बता दी कि वे मुरझाकर निरुत्साह हो गए और अपने भाग्य को कोसने लगे। कमनसीबी, नाकामयाबी तथा असफलता की घातक कल्पनाओ द्वारा अपनी जीवन शक्ति को पंगु करने लगे। केवल अनिष्ट की कल्पना मात्र से वे झीकने लगते है, परेशान हो जाते है और यह मान बैठते है कि हम तुच्छ है, क्षुद्र है, हीन है। हमारे भाग्य मे तंगी, कमजोरी अकर्मण्यता ही है। हमारे पल्ले रूखी-सूखी ही बदी है।

जिन बातो से डरते हो वे होने वाली नहीं हैं—प्रिय पाठक ! स्मरण रखो कि भविष्य का ज्ञान असंभव है। आज तक कोई उसे जान नही सका है। यदि उसका ज्ञान भी हो जाय तो क्या लाभ ? भवितव्य ही होता है। नियति का लेखा बँधा है। उसमे से हम एक अक्षर भी इधर से उधर नही कर सकते। फिर उसे जानकर ही क्या करेगे ? यदि हम उसे इच्छानुसार बदल नही सकते, वह अतर्क्य है, शाश्वत है तो उस रहस्य को जान लेने से क्या प्रयोजन ? हाँ, हानि की अधिक संभावना है। यदि हमे यह मालूम हो जावे कि कल इतने रुपये अवश्य प्राप्त हो जायेगे, तो संभव है कि हम आज गाँठ की पूँजी ही समाप्त कर डाले।

इसी प्रकार यदि हमे यह ज्ञात हो जाय कि हमे कल इस संसार से विदा हो जाना है तो भय, चिन्ता, उद्वेग, क्लेश से कल के स्थान पर आज ही मृत्यु हो जाय। प्रायः देखा गया है कि फाँसी का दण्ड पाने वाले कैदी केवल मृत्यु के विषम विचार द्वारा पहले से अधमरे हो जाया करते है।

भविष्य मे क्या होने वाला है, इस तत्व की अनभिज्ञता जीव को इसलिए प्रदान की गई है कि जिससे भविष्य में आने वाले अनिष्ट की शंका से उस परम शूलमय घटना के पूर्ववर्ती दिनो के सुख को हम खो बैठे।

उस बलि के बकरे को देखिए, जिसके सिर पर मृत्यु पल-पल नाचती रहती है यमदूत उसे हड़प जाने को तत्पर रहते है, बधिक पत्थर पर छुरा तेज करता है किन्तु बलि पशु अन्तिम क्षणो तक आनन्द से क्रीड़ा करता है। सत्य तो यह है कि आगम का अज्ञान परमेश्वर का परम अनुग्रह है। यदि उस पशु को यह ज्ञान हो जाय कि जरा देर मे वह मृत्यु के घाट उतार दिया जावेगा, तो कदाचित् वध से पूर्व ही उसका अस्तित्व विलीन हो जाय और मृत्यु के पूर्ववर्ती दिनो के सुख को भी वह खो बैठे।

अनिष्ट की कल्पना न कीजिए—सचमुच अनिष्ट की कल्पना विषमय है। भय तथा संदेह से ही हम अपने को कष्टो तथा मुसीबतो मे डालते है। मृत्यु का भय लोगो को खाये डालता है। मौत आयेगी, सब प्राणी मात्र को आती है। यह निश्चय है पर जिस घटना से हम नही बच सकते, उससे डरना भी क्यो ? जब आयेगी देखा जावेगा। जितने दिन हमे रहने को मिले है, उनका तो पूर्ण आनन्द उठा ले। आज का सुन्दर दिन हमे विश्व नियता ने प्रदान किया है। आइये, उसे तो आनन्दपूर्वक प्रेम का अमृत छिड़क व्यतीत कर ले। कल क्या होगा कौन जाने ? किसे यह ज्ञान है कि 'कल' आयेगी भी या नही। हम आज के लिए कह सकते है कि हमारा अस्तित्व है, हमारे गृह, बाल-बच्चे, बन्धु-बांधव इत्यादि है, किन्तु कल क्या होगा यह सब कुछ सात परदो के भीतर छिपा है और जिसको कोई जानता नही उसकी फिक्र क्यो की जाय ?

जीवन की पुस्तक का एक पृष्ठ ही, केवल आज वाला ही सफा आपके सम्मुख खुला है। उसे देखकर आप सिर्फ आज की बात जान सकते है पर अन्य पृष्ठो मे कौन बात छिपी है ? यह तथ्य तुरन्त प्रकाशित नही किया जा सकता। परमेश्वर अत्यन्त सावधानी से एक-एक पंक्ति और एक-एक पृष्ठ हमारे सामने आने देता है। यदि पूरी पुस्तक की विचारधारा, जीवन का पूरा लेखा एक बारगी ही हमे बता दिया जाय तो कदाचित् दूर के अनिष्ट की बाट देखते-देखते शायद कुछ दिन मे ही हम मृत्यु के ग्रास बन जायँ।

"कल" की चिन्ता छोड़ो—यदि तुम सर्वांगपूर्ण जीवन का आनन्द लेना चाहते हो तो कल के अनिष्ट की मिथ्या चिन्ता को दूर करो। तुम अपने चारो ओर उत्कृष्ट रस भरे, जीवन के बीज बोओ। भविष्य के सुनहरे सपने देखने की आदत बनाओ। सदैव के लिए अपने मन से यह निश्चय बैठालो कि आपका कल अत्यन्त प्रकाशमय, मधुर तथा आनन्ददायक होगा। कल आप अपने को आज से भी अधिक सौभाग्यशाली पावेगे।

आप ऐसा सोचते रहिए कि हमे कल अपने कार्यों मे और अधिक सफलता प्राप्त होगी। कल मेरा मन उत्पादक शक्ति से परिपूर्ण हो जावेगा। मै अपने जीवन मे और अधिक बढ़ जाऊँगा, ऊँचा उठ जाऊँगा, उत्तरोत्तर उन्नतिशील होऊँगा, अधिकाधिक उज्ज्वल हो जाऊँगा। प्रतिदिन, प्रतिपल मेरे अन्दर कुछ न कुछ इच्छाशक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा है। कल पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरी कल मुझ मे दिव्यता का संचार करने वाली देवी है।

"मुझ मे इतनी शक्ति है कि विघ्न-बाधाएँ डरकर स्वयं दूर भाग जायेगी। कल मे आज से अधिक प्रसन्न रहूँगा। मेरे मनोरथ, मेरी महत्त्वाकांक्षाएँ, मेरे स्वप्न खिंचकर मेरे और समीप चले आयेगे। त्रिकाल मे भी कोई मुझे हानि न पहुँचा सकेगा। संसार की कोई भी विरोधी शक्ति मेरे इष्ट मार्ग मे बाधा नही डाल सकती—ऐसी विचारधारा जब अन्तःकरण मे दृढ़ता से बैठ जाती है तो मनुष्य व्यर्थ की भ्रान्तिमय कल्पनाओ से बच जाता है।

जब तुम अपने अन्दर साँस खीचो तो ऐसा ही विचार करो कि उत्कृष्ट प्राण शक्ति को खीच रहे हो। शोक, भय, दुःखो से ऊँचे उठ रहे हो। तुम्हारी आत्मा शुद्ध तथा निर्विकार बन रही है। तुम अपने जीवन को और देदीप्यमान कर रहे हो। अपने मस्तिष्क के प्रत्येक कण के साथ आध्यात्मिक सुख का दृढ़ चिन्तन करो। जब तक तुम इसे पूर्ण रूप से चित्त मे गहरा न उतार लो, जब तक निरन्तर उसी का मनन करते रहो। इसे रस की तरह पान कर जाओ। जब तुममे दृढ़ता का संचार होगा तो तुम अपने आपको इसी अवस्था के साँचे मे ढलता हुआ पाओगे। तुम्हारे मिथ्या संशय उड़ जायेगे और तुम्हे अनिष्ट अधिक चिन्तित न कर सकेगा।

अभय होने का अमोघ उपाय

"सैकड़ो मार्गो मे बहती हुई नदी मे क्या जहाज चल सकता है ? इसी प्रकार सैकड़ो वस्तुओ मे बिखरी हुई मनोवृत्ति कुछ भी करने मे समर्थ नही हो सकती। विचार और क्रिया के परस्पर विरुद्ध दिशा मे चलते रहने से किसी भी कार्य मे सिद्धि प्राप्त नही होती।"

हमारे दु:ख-क्लेश परस्पर विरोधी इच्छाओ के कारण उत्पन्न होते है। हमारी व्यथा को कोई दूसरा सहने वाला नही है। हम असली अवस्था मे ही नहीं है। हमारी असली अवस्था वह है, जहाँ दु:ख, अशान्ति, दर्द, शोक और मोह की आवाज बिलकुल ही नही पहुँच सकती। वहाँ तो आनन्द ही आनन्द है, प्रसन्नता ही प्रसन्नता का प्रवाह चारो ओर अखंड बहता रहता है।

हमारे मन मे जो आज निश्चय है, जो विचार है, जिनको हम अपना मान बैठे है। उनमे कितने विचार तो हमारे माता-पिता के है, कितने ही मित्र तथा सम्बन्धियो के है और कितने ही दूसरो से सुनकर ग्रहण किये हुए है। स्थिर चित्त करके अन्तर्मुख होकर अपने अन्त.पुर मे प्रवेश करो। अपने अन्त.करण को टटोलो तो तुम्हे ज्ञात होगा कि तुम दूसरो के विचारो के वशीभूत हो रहे हो। दूसरो के विचार ही तुम्हे नचा रहे है। ऐसी मानसिक अवस्था मे हृदय को कैसे शान्ति प्राप्त हो सकती है ?

जब तुम निद्रा मे प्रवेश करो तो मन को परमात्मा पर एकाग्र कर दो फिर तुम्हे अनुभव होगा कि तुम परमात्मा की गोद मे सुरक्षित खेल रहे हो, महा निर्भय और आनन्द के समुद्र मे मग्न हो रहे हो। निम्नलिखित वैदिक भावना पर अपनी समग्र बुद्धि को गढ़ा दो—

अभयं मित्रात् अभयं अमित्रात

अभयं ज्ञानात् अभयं परोक्षात्

अभयं नक्तं अभयं दिवा

नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु

— (अथर्ववेद)

अर्थात् "हम अपने मित्रो से अभय है, हम अपने शत्रुओ से अभय है, हम अपने जाने हुओं से, जो मालूम हो गये है, उनसे अभय है और जो अज्ञात रहने वाले है उनसे भी अभय हैं। रात्रि के समय हम निर्भय हैं। सब दिशाएँ हमारी मित्र हो रही है।"

इस महामन्त्र की भावना को तन्मयता के साथ अपने हृदय मे प्रवेश होने दो और फिर कुछ दिन बाद तुम देखोगे कि भय और चिन्ता काफूर हो जाती है। तुम्हारे अन्तःकरण की दुर्बलता दूर हो जाती है और तुम्हारे अन्त करण मे आशा, उत्साह विश्वास का संचार होगा। परमात्मा के राज्य मे तुम सदैव निर्भय हो और तीनो लोको में तुम्हे फिर किसका डर है ?

तुम्हारे भय स्वनिर्मित है—प्राकृतिक अवस्था मे मनुष्य पूर्ण स्वच्छन्द रहना पसन्द करता है। वह डरता नही। भयभीत होना एक अप्राकृतिक बात है। प्रकृति नहीं चाहती कि मनुष्य डरकर अपनी आत्मा पर बोझ डाले। तुम्हारे सब भय, तुम्हारे दु:ख, तुम्हारी नित्य-प्रति की चिन्ताएँ तुमने स्वय उत्पन्न कर ली है। यदि तुम चाहो तो अन्त:करण को भूत, प्रेत, पिशाचो की श्मशान भूमि बना सकते हो। इसके विपरीत यदि तुम चाहो तो अपने अन्तःकरण को निर्भयता, श्रद्धा, उत्साह के सद्‌गुणो से परिपूर्ण कर सकते हो। अनुकूलता या प्रतिकूलता उत्पन्न करने वाले तुम स्वयं ही हो। तुम्हे दूसरा कोई हानि नही पहुँचा सकता, बाल भी बाँका नहीं कर सकता। तुम चाहो तो निर्भय, परम नि:शक बन सकते हो। तुम्हारी शुभ-अशुभ वृत्तियाँ, यश-अपयश के विचार, विवेक बुद्धि ही तुम्हारा भाग्य निर्माण करती है।

भय की एक शंका मन मे प्रवेश करते ही वातावरण को संदेहपूर्ण बना देती है। हमे चारो ओर वही चीज नजर आने लगती है, जिससे हम डरते है। यदि हम भय की भावनाएँ हमेशा के लिए मनोमन्दिर से निकाल डाले तो उचित रूप से तृप्त और सुखी रह सकते है। आनन्दित रहने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि अन्त:करण भय की कल्पनाओ से सर्वथा मुक्त रहे। यदि हमे यह प्रतीत होता है कि अमुक मनुष्य ज्ञान तथा अनुभव मे हमसे श्रेष्ठतर है, तो उससे भयभीत होने के स्थान पर शिक्षा ग्रहण करने का प्रबल निश्चय ही मिथ्या भय को निकाल बाहर करेगा।

आप दिमाग मे बुरी-बुरी बाते लाते है, व्यर्थ के भयो से उद्विग्न रहते है, जो कोई बुरा-भला आपको कह देता है उसे एकदम मान बैठते है। पर हम पूछते है कि क्या इस प्रकार का ताना-बाना बुनते रहने से आपकी दीनता या हीनता दूर हो सकेगी ? क्या बाह्य दु:खों तथा इच्छाओ मे घुलते रहने से आप आत्मा के निर्भय स्वरूप को पहिचान सकेगे ? क्या क्षणभंगुर वस्तुओ पर अपनी वृत्ति स्थिर करने पर आप स्थायी शान्ति की शीतलता का अनुभव कर सकेगे ? यदि आप समझते है कि "हाँ ! हो जायेगी" तो आप भारी भूल करते है।

आप साधारण स्थिति के व्यक्ति है, पैसा पास नही है, एक के बाद एक रोग आप पर आक्रमण कर रहा है, शरीर क्षीण हो रहा है, व्यापार मे हानि हो रही है। आपका प्रिय व्यक्ति आपको रोता-बिलखिता छोड़कर चला गया है। आपके बाप-दादा को भयंकर रोग हुआ और वही आपको है, आपके अफसर आप पर अत्याचार करते है या किसी भयंकर कमी से आप खिन्न हो रहे है, चिंता सताती है, दूसरे लोग हमारे विषय मे न जाने क्या-क्या शिकायते करते होगे। हम पूछते है कि क्या यह भय का मार्ग ही इन विकट परिस्थितियो से मुक्त होने का है ? क्या आप शोक-संताप मे डूबकर इन दु खदायी

भूमिकाओं को हटाना चाहते है ? क्या भय ग्रस्त रहने, भय तथा चिन्ता के दूषित विचारो की कल्पना मे लिपटे रहने से आपके दुःखो का अन्त हो जायेगा ?

रोने से काम न चलेगा—भय तथा चिन्ता स्थायी विकार है। तनिक-सा झुकाव देखकर ये धर दबाते है। बीती हुई कटु परिस्थितियो पर आँसू बहाना, आने वाले कल को भी वैसा ही बना डालता है तो फिर क्या तुम भविष्य मे भी दूषित विकारो की कल्पना से अन्तःकरण को भूत-पिशाचो को श्मशान भूमि बनाना चाहते हो ? इसलिए उठिए, फिजूल के डर को, कल्पित दुःखो तथा चिंताओं को दूर भगा दीजिए। आइए, नए 'कल' का मानसिक चित्र आज से ही निर्माण करे और मानसिक चित्रांकन मे शोक-संताप, चिंता-निराशा तथा उदासीनता को निकट न आने दे। आइए हम आज से ही प्रतिज्ञा करे कि "हम अभय है, सब समय सदा-सर्वदा, परम निर्भय, परम निशंक है। हमे भगवान ने ऐसा बल दिया है कि कोई भी भय, चिन्ता, निराशा हमे नहीं सता सकती। हम भय को फूँक से उड़ा सकते है। भय का पिशाच हमारे निकट नही आ सकता क्योंकि हमने आत्मश्रद्धा के दीपक को अपने अन्त.करण मे सदा के लिए आलोकित कर लिया है।"

उठिए, भय से हाथ झाड़ दीजिए। रोने से काम न चलेगा। रूखी रोटी खाकर हँसिए, कूदिए और कल चुपड़ी खाने का प्रयत्न कीजिए। रोते रहकर विषम परिस्थितियो का निर्माण न कीजिए।

आत्म-परीक्षा कीजिए—गम्भीरता से अपनी आत्म-परीक्षा कीजिए। अर्थात् मन का इस प्रकार विश्लेषण कीजिए कि पुरानी सब स्मृतियाँ एक-एक कर स्मृति-पटल पर आ जायँ। खोद-खोद कर पुरानी बाते याद कीजिए। कभी आपको किसी ने सताया है ? दुःखी किया है ? मान-हानि की है ? किसी ने आप पर आक्रमण तो नही किया ? आपके माता-पिता तथा गुरुओ इत्यादि का व्यवहार आपके साथ कैसा रहा है ? इस प्रकार के बहुत-से प्रश्न अपने आप से लगाते जाइए। आपको यह मालूम करना है कि आपको कौन-कौन-सा मानसिक कष्ट है ? वह कौन-से भय से जुड़ा हुआ है ? कौन-कौन-सी भ्रान्तिमयी धारणाएँ आपके अव्यक्त मन मे गहरी प्रतिष्ठित हो गई है ?

मनो-विश्लेषण मे आप किसी योग्य मनोवेत्ता से सहायता ले सकते है। मनोविश्लेषण करने वाला आपसे बहुत-सी बाते करेगा, आपको अपने विचार निर्भयता से प्रकट करने की इजाजत देगा और गौर से आपके उत्तरो को सुनेगा। बीच-बीच मे वह आपको विश्वास दिलाता जायेगा कि आपकी गुप्त मन्त्रणाएँ दूसरे पर प्रकट न की जायेगी। उसे तो मन के अन्तिम परदे तक, मन के पेंदे तक मे से रोगी का "भय" देखना है। अतः जब तक वह भेदी न बने उसका कार्य नही चलता।

जब आप विगत स्मृतियो को अपने स्मृति पटल पर लाते है, तो कभी, किसी न किसी रूप मे अव्यक्त प्रदेश मे प्रसुप्त भय निकल आता है। यह प्रसुप्त 'भय' ही आपकी आत्महीनता की ग्रन्थि का कारण है। बस, इसी को बाहर निकाल देना है।

एक डाक्टर ने एक अजीब रोगी का वृतान्त लिखा है। एक शरीर से बलवान युवक जिसका विवाह हुए कुछ ही मास हुए थे, सदा इस बात से खिन्न रहता था कि वह अपने को दाम्पत्य-कार्यों मे बहुत निर्बल पाता है। उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर एवं रूपवती थी। वह युवक जब मनोवैज्ञानिक से मिला और जब उसका मनो विश्लेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि वह युवक बचपन मे हस्तमैथुन की आदत मे फँसा था। उसके साथियो ने सुझाया कि ऐसी आदत वाले की स्तम्भन शक्ति अत्यन्त निर्बल हो जाती है। इस प्रकार की भ्रान्तिमूलक बातो का बहुत-सा वृतान्त उसने विज्ञापनो मे भी पढ़ा था। अचेतन ज्ञानशक्ति पर इस बात का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा था, जिससे वह युवक दाम्पत्य-कार्यों मे बेतरह भयभीत हो जाता था। उसके मन मे यह कल्पना आती थी कि जैसे वह अपने आपको सब कुछ करने मे असफल पा रहा हो, जैसे उसे बड़ा बेशर्म बनना पड़ रहा हो। क्रमशः यह "भय" हीनत्व की आत्म ग्रन्थि बनकर अव्यक्त मे बैठ गया तथा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के समय निकला गया।

"भय" निर्मूल था—यदि आप हीनत्व की भावना वाले किसी रोगी की चिकित्सा कर रहे है तो कल्पित "भय" का कारण विदित हो जाने पर रोगी को यह विश्वास दीजिए कि जो लक्षण उसमें पाये जाते है, उनसे कोई गूढ़ बीमारी प्रकट नहीं होती। वह तो स्वाभाविक स्थिति है। ऐसा हो ही जाता है। जिन कारणो से रोगी डर रहा है सर्वथा निर्मूल है, व्यर्थ ही दिमाग मे प्रवेश कर गए है। इस प्रकार की बातचीत करने से, प्रोत्साहन देने से, उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शन करने से बीमारी स्वत. दूर हो जाती है।

कभी-कभी रोगी मानता नही है। उसे बार-बार निर्देश किया जाता है पर वह पुनः-पुनः निराशावादी बना रहता है। ऐसी परिस्थिति मे बहुत-से तर्क-वितर्क प्रस्तुत करने पड़ते है। अनेक वृतान्त सुनाने पड़ते है। कितने ही उदाहरण पेश करने पड़ते है, तब रोगी के मन से भ्रमात्मक भय की भावना निकल पाती है।

आत्म-संकेत का प्रयोग—जो व्यक्ति बिना किसी तर्क-वितर्क के संकेतो को ग्रहण कर लेता है, उसे मनोवैज्ञानिक चिकित्सा से बड़ा लाभ पहुँचता है। मन एक प्रकार की उर्वराभूमि की तरह है। इसमे आप आत्म-संकेत द्वारा जैसे विचार-बीज बो देंगे कालान्तर मे वे आपके कार्यों मे प्रकट होगे। अतः आप कायरता के स्थान पर आत्मविश्वास के बीज मनोभूमि मे लगाने प्रारम्भ कीजिए।

आशावाद की शुभ प्रेरणा मे गोता लगाइये। मन में से संदिग्धवृत्ति निकालकर स्थिरता तथा दृढ़ता का समावेश कीजिए। अपने कल्पित शत्रुओ के स्थान पर अपने अनन्य मित्रो की मृदुल कल्पना मे अवगाहन कीजिए। विनाश भावना की जगह आत्म-कल्याण की नई युक्तियों का निर्माण कीजिए।

आधुनिक मनोविज्ञान ने अनेक खोजो के पश्चात् यह सिद्ध कर दिया है कि आत्महीनता जन्मजात दुर्गुण नही वरन् एक प्रकार की आदत है। जिस प्रकार सिगरेट की आदत नित्य के अभ्यास से बढ जाती है, उसी प्रकार आत्महीनता की भावना भी दीर्घकाल के अभ्यास से प्राप्त होती है। अभ्यास से हम वीर, पुंगव, महान, साहसी नायक बन सकते है तथा अनुचित अभ्यास द्वारा हम डरपोक, कायर भी हो सकते है। आत्महीनता ऐसे ही अशुभ अभ्यास का परिणाम है।

जरा विचार कीजिए, यदि आप डरपोक बने रहने का अभ्यास करेगे, बात-घात मे कायरता दिखायेगे, दूसरो की विनाशकारी बातो मे आ जाया करेगे, तो क्या आप इस कर्म-भूमि मे कुछ भी कर सकेगे ? यहाँ तो पग-पग पर युद्ध करना होता है। जीवन के इस प्रलयकारी युद्ध मे कितनी ही बार आँधी तथा तूफान का वेग आता है और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे जीवन-नौका उलट कर समुद्र की लैहरो मे विलीन हो जायेगी, अब बचने का कोई मार्ग नही दृष्टिगोचर होता किन्तु फिर देखते है कि आँधी-तूफान शान्त हो गया और नौका पुन: आनन्द से चलने लगी। यदि आप जरा-जरा सी क्षुद्र कठिनाइयो को देख कर भयभीत होगे या घबरा जायेगे तो विषम परिस्थितियो का क्यो कर मुकाबला कर सकेगे ? जो मनुष्य प्रत्येक चीज से डरता है, वह नर्क की घोर यत्रणा भुगता करता है। ऐसे मनुष्य की मृत्यु जीते जी ही समझिए। दूसरे उसे यो ही हड़प जाते है।

तुम्हे दूर से अपनी कठिनाइयाँ दुर्भेद्य प्रतीत होती है। किन्तु वास्तव मे वे तुम्हारी संदिग्ध वृत्ति की छाया मात्र है। जैसा तुम्हारा अभ्यन्तर प्रदेश है, जैसी तुम्हारी भावनाएँ, वृत्तियाँ है, उन्ही के अनुसार तुम्हारा वातावरण भी है। तुम सदा अपने भावो, विचारो, सकल्पो के मेघो से आच्छादित रहते हो। जैसे मकड़ी अपने चारो ओर जाला बुनती है और निरन्तर उसी मे निवास करती है, उसी प्रकार तुम अपनी कल्पनाओ से अपना अन्त करण बसाते हो। अन्त.करण एक बस्ती है। इसमे तुमने जिस-जिस को स्थान दिया, वही इसमे बस गया है। तुम्हारी बस्ती मे कौन-कौन है ? आरोग्य, पुष्ट और आशावादी सकल्प या अनिष्ट की ओर झुकने वाली प्रवृत्तियाँ ?

आज से ही अपनी बस्ती के प्राणियो को देखो। जो अशुभ, दु ख, दुर्दैव और अनिष्टकारी है, उन्हे सर्वदा के लिए देश निकाला दे दो। आनन्द के, उत्साह के तथा साहस के संकल्पो को बस्ती में बसाओ। निष्प्रयोजन वासनाओ से मुक्त हो जाओ। मेरे जीवन की देवी उत्कृष्ट अवस्था का प्रत्यक्ष जगत मे अवश्य प्रादुर्भाव होगा—ऐसे संकल्प को लेकर मन मे गहरे उतर जाइये और मन की समस्त शक्तियाँ उसी पर केन्द्रीभूत कर दीजिए। आपको केवल उस पर 'अटल विश्वास' तथा 'आत्मश्रद्धा' रखने की आवश्यकता है। फिर आप देखेंगे कि शुभ सकल्प की शक्ति आप मे कैसा अद्भुत परिवर्तन कर दिखाती है ? संसार के बड़े-बड़े विचारको और मनीषियो ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया है और उन्नति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग यही बतलाया है कि मनुष्य अपने ऊपर विश्वास रखकर सद्विचारो का बीजारोपण करता रहे। देखिये विचार-शक्ति की महिमा को जानने वाले प्रसिद्ध विद्वान 'स्वेट मार्डन' क्या कहते है ?

"विचार कर लो मन, वचन, कर्म से इस बात को मान लो—कि अब भी हम वैसे ही मनुष्य है, जैसे कि हम होना चाहते है, जैसा कि हमारा आदर्श है। हम कमजोर नहीं, निर्बल नहीं, दरिद्र नही, वरन् शक्तियुक्त, मर्यादियुक्त और महान आत्मा है। ऐसा करने से थोड़े ही दिनो मे आपको मालूम होगा कि आपके आदर्शों की सिद्धि बड़ी शीघ्रता के साथ आपकी आत्मा मे हो रही है—उन आदर्शों से आपका चरित्र परिपुष्ट हो रहा है।

"हमे आवश्यकता है, उन सद्गुणो की जो हमे ऊँचा चढ़ावे। हमे आवश्यकता है उन सद्गुणो की जो हमारी आत्मा मे दिव्यता लावे। हमे आवश्यकता है उन सद्गुणो की जो हमारे भीतर सद्गुणो का विकास करे। हमे आवश्यकता है उन गुणो की जो हमारी निर्माण शक्ति को तेज करे और हमारी अकर्मण्यता और दु:ख-दारिद्रय का नाश करे।"

इसी प्रकार एक भारतीय विचारक श्रेष्ठ विचारो की शक्ति का विवेचन करते हुए कहते है—

जीवन-रूपी क्षेत्र मे विचार एक बीज के सदृश है। यदि काँटे का बीज बोया जायेगा तो आम कैसे उत्पन्न होगे ? ऐसे ही, जैसा विचार होगा, वैसा ही उसका फल होगा। इससे हम आम का बीज क्यो न बोये ? अपने विचारो के रचयिता, पालनकर्ता और सहारकर्ता तुम्ही हो। जिस विचार को प्रकट करना चाहो, उसे तुम प्रकट कर सकते हो, जिसे चाहो बढ़कर विकसित और पालन कर सकते हो और जिसे चाहो उसे नाश भी कर सकते हो। इसलिये विचारो के बीज बोने मे सदा सावधान रहो। दृढ विश्वास रखो कि सूर्य चाहे प्रकाश करना बन्द कर दे पर विचारो का परिणाम कभी निष्फल नही होता। इसलिये आत्म-विश्वास से कभी मत डिगो, मन को धैर्य के साथ साधन मे लगाये रहो, जिससे तुम सदैव सफलता प्राप्त करते रहो।

मनोबल बढ़ायें—कठिनाइयों पर विजय पायें

धैर्यवान पुरुष सिंह

विशेषकर यदि हम कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहते है तो उसमें अनेक आपत्तियो का मुकाबला करने के लिए हमे तैयार ही रहना चाहिए। अनेक व्यक्ति इसी डर के मारे भारी काम मे हाथ नही डालते। सम्भव है वे इस जीवन मे दु.खो से बच जाये पर वे किसी प्रकार की प्रगति, उन्नति भी नहीं कर सकते। उनका जीवन कीड़े-मकोड़ों से बढ़कर नही होता।

जिसने शरीर धारण किया है, उसको सुख-दुःख दोनों का ही अनुभव करना होगा। शरीरधारियो को केवल सुख ही सुख या केवल दुःख ही दुःख कभी भी प्राप्त नही हो सकता। जब यही बात है, शरीर धारण करने पर दु:ख-सुख दोनों का ही भोग करना है तो फिर दुःख मे अधिक उद्विग्न क्यो हुआ जाय? दुःख-सुख तो शरीर के साथ लगे रहते है। हम धैर्य धारण करके उनकी प्रगति को ही क्यो न देखते रहे ? जिन्होंने इस रहस्य को समझकर धैर्य का आश्रय ग्रहण किया है, संसार में वे ही सुखी समझे जाते हैं।

धैर्य की परीक्षा सुख की अपेक्षा दुःख में ही अधिक होती है। दु.ख की भयंकरता को देखकर विचलित होना प्राणियों का स्वभाव है। किन्तु जो ऐसे समय मे भी विचलित नही होता वही "पुरुषसिंह" धैर्यवान कहलाता है। आखिर हम अधीर होते क्यो है? इसका कारण हमारे हृदय की कमजोरी के सिवा और कुछ भी नही है। इस बात को सब कोई जानते हैं कि आज तक संसार मे ब्रह्मा से लेकर कीड़े-मकोड़ो तक सम्पूर्ण रूप से सुखी कोई नही हुआ है। सभी को कुछ न कुछ दुःख अवश्य हुए है। फिर भी मनुष्य दुःखो के आगमन से व्याकुल होता है तो उसकी कमजोरी ही कही\जा सकती है।

महापुरुषो की यह विशेषता होती कि दुःखो के आने पर वे हमारी तरह अधीर नही हो जाते । उन्हे प्रारब्ध कर्मों का भोग समझकर वे प्रसन्नतापूर्वक सहन करते है। पाण्डव दुःखों से कातर होकर वे अपने भाइयो के दास बन गये होते, मोरध्वज पुत्र शोक से दुःखी होकर मर गये होते, हरिश्चन्द्र राज्य के लोभ मे अपने वचनो से फिर गये होते, राजा शिवि ने यदि शरीर के कटने के दुःख से कातर होकर कबूतर को बाज के लिए सुपुर्द कर दिया होता तो इनका नाम अब तक कौन जानता ? वे भी असंख्य नरपतियो की भाँति काल के गाल मे चले गये होते किन्तु इनका नाम अभी तक ज्यो का त्यो जीवित है, इसका एकमात्र कारण उनका धैर्य ही है।

अपने प्रियजन के वियोग से हम अधीर हो जाते है क्योकि वह हमे छोड़कर चल दिया। इस विषय मे अधीर होने से क्या काम चलेगा ? क्या वह हमारी अधीरता को देखकर लौट आयेगा ? यदि नही तो हमारा अधीर होना व्यर्थ है। फिर हमारे अधीर होने का कोई समुचित कारण भी तो नहीं क्योकि जिसने जीवन धारण किया है, उसे मरना तो एक दिन है ही। जो जन्मा है वह मरेगा भी। सम्पूर्ण सृष्टि के पितामह ब्रह्मा है। चराचर सृष्टि उन्हीं से उत्पन्न हुई। अपनी आयु समाप्त होने पर वे भी नही रहे क्योकि वे भी भगवान विष्णु के नाभि कमल से पैदा हुए हैं। अत: महाप्रलय में वे भी विष्णु के शरीर मे विलीन हो जाते है। जब यह अटल सिद्धान्त है कि जायमान वस्तु का नाश होगा ही तो फिर हम अपने उस प्रिय का शोक क्यो करे ? उसे तो मरना ही था, आज नहीं तो कल और कल नही तो परसो। सदा कोई जीवित रहा भी है जो वह रहता ? जो जहाँ से आया था, चला गया। एक दिन हमे भी जाना है। इसलिए जो दिन शेष है, उन्हे धैर्य के साथ उस परमपिता परमात्मा के गुणो के चिन्तन मे लगावें।

शरीर को व्याधि होते ही हम विकल हो जाते हैं। विकल होने से आज तक कोई रोगमुक्त हुआ है? यह शरीर तो व्याधियों का घर है। जाति, आयु, भोग को साथ लेकर ही तो यह शरीर उत्पन्न हुआ है। पूर्व जन्म के जो भोग है, वे तो भोगने ही पड़ेगे।

हारिये मत, जीतने की ही बात सोचिये

जो वस्तु या विषय अनुकूल स्थान पा लेता है, वह बहुत शीघ्र पल्लवित तथा स्थायी हो जाता है। अन्नो के विभिन्न प्रकार होते है। किन्तु प्रत्येक अन्न हर क्षेत्र में

नही हो सकता। हर बीज को फलीभूत होने के लिए उसे अनुकूल तत्त्वो वाली भूमि की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि किसी भूमि पर गेहूँ, चना होता है तो किसी भूमि पर चावल, मक्का, ज्वार आदि। किसी बाग की भूमि आम के लिए अनुकूल होती है तो किसी की अमरूद के लिए। अनुकूल क्षेत्र, परिस्थिति पाये बिना किसी बात अथवा विषय का विकास एवं दायित्व सम्भव नही।

यदि हमारे शरीर मे रोगो के अनुकूल हानिकारक तत्त्व मौजूद न हो तो रोगो की शक्ति नही कि वे हमको आक्रान्त कर सके। इसी प्रकार यदि अनिष्ट अथवा अशुभ के अनुकूल निर्बलता हमारे मन मे न रहे तो उनका कोई प्रभाव हम पर नही पड़े। बहुत बार एक जैसी हानि अथवा अप्रियता से घिरकर दो व्यक्तियो मे से एक की दशा दयनीय हो जाती है। उसकी हिम्मत तथा हौसला समाप्त हो जाता है और वह प्रतिकूलता के समक्ष आत्म-समर्पण करके सदा को निष्क्रिय बन बैठता है, इसके प्रतिकूल दूसरा व्यक्ति उस अनिष्ट से जरा भी प्रभावित नही होता। दु.खद परिस्थिति हवा के एक गर्म झोके की तरह उसे ऊपर से छूकर निकल जाती है। न उसका साहस टूटता है और न उसे निराशा होती है। वह उसी हिम्मत तथा उत्साह से काम करता रहता है और अन्त मे विजयी होता है। इस विषय का केवल एक ही कारण होता है और वह है परिस्थितियो के योग्य मानसिक अनुकूलता। निराश व्यक्ति की मनोभूमि निर्बल होने से घटना उसको सहज ही दबा लेती है और सारी शक्ति को व्यर्थ कर निष्क्रिय बना देती है। हार न मानने वाले व्यक्ति की मन स्थिति उस अप्रियता के अनुकूल नही होती इसलिए वह उस पर प्रभाव नही डाल पाती, उसकी सारी शक्तियाँ सक्रिय तथा समर्थ बनी रहती है। फलत: न तो वह निराश होता है और न निरुत्साहित, यथावत् कार्य करता रहता है और अन्त मे प्रतिकूलता पर नियन्त्रण कर विजयी होता है। मनुष्य की बाह्य हार-जीत बहुत कुछ मानसिक हार-जीत पर निर्भर रहती है। बाहर से असफलता मिलने पर भी यदि हृदय से हारा न जाये तो कोई कारण नही कि हमारा नाम पराजितो मे लिखा जा सके। मानसिक हार-जीत के कारण बहुत-से लोग जीतकर हार जाते है और बहुत-से हारकर जीत जाते है। कितनी ही विषम परिस्थिति क्यो न आ जाये, संकट की घनी घटाये क्यं न घिर रही हो, कितना ही अन्धकार क्यो न दिखाई देता हो, मन से मत हारिये हृदय से विजय की सफलता एव निस्तार का तेजस्वी विचार कभी भी तिरोहित मत होने दीजिए। ससार का ऐसा कोई सकट नही जो आपके पैर मैदान से उखाड़ दे।

अधिकतर होता यह है कि लोग एक अश बाहर से हारते ही दस अश भीतर से हार जाते है। उनकी विचारधारा जिन्हे उनका साथ देना चाहिए था प्रतिकूलताओ के पक्ष मे हो जाती है। प्रतिकूल दिशा मे बहने लगती है। संकट के समय मे उसे सोचना तो इस प्रकार चाहिए कि यह संकट कुछ नहीं है। यह तो मानव जीवन में आते रहने वाले धूप-छाँह का खेल है। यह साधारण-सी असफलता हमारी अजेय आशा को विचलित नहीं कर सकती, मुझमे शक्ति, साहस तथा संघर्षशीलता की कमी नहीं है। मै निरन्तर पुरुषार्थ तथा धैर्य के आधार पर अपना हारा दाव जीत लूँगा। किन्तु सोचने इस प्रकार लगता है—'लीजिए काम करते ही हानि होने लगी, शायद मेरा भाग्य खराब है, समय और नक्षत्र हमारे प्रतिकूल है। जब इस प्रकार कदम-कदम पर असफलता मिलेगी तब हमारा आगे बढ़ सकना कैसे सम्भव हो सकता है ? हम पर तो दैवी कोप मालूम होता है, हममे इतनी शक्ति कहाँ कि दैव से टक्कर ले सके।' इस प्रकार की परस्पर विरोधी—अनुकूल-प्रतिकूल विचारधाराओ का परिणाम यही तो है कि एक हिम्मत से मैदान मे डटा रहता है, दूसरा मैदान छोड़ जाता है। स्वाभाविक है कि एक जीते और दूसरा हारे।

मनुष्य स्वभाव से ही अपनी दशा तथा स्थिति का स्वामी बनने के लिए बनाया गया है न कि उनका दास बनकर रहने के लिए। यदि अन्य पशु-पक्षियो की तरह ही अनुकूलता मे नाचने-कूदने और प्रतिकूलता मे भागने, रोने, चिल्लाने, घबराने, उद्विग्न होने लगे तो उसकी विशेषता ही क्या रह जाये ? उसकी बुद्धि-विवेक तथा सघर्ष शक्तिमत्ता ही क्या रह जाये ? किन्तु खेद है कि मनुष्य सारी शक्तियो तथा क्षमताओ के रहते हुए भी अपनी मानसिक निर्बलता तथा प्रतिकूल विचारधारा के कारण हार मान लेता है। इसका कारण यही समझ मे आता है कि ऐसे कायर लोग अपने मनुष्य होने का शायद ध्यान नही रखते अथवा मानवीय विभूतियो को निरुपयोगी समझते है। परिस्थितियो से हारने-जीतने की शर्म व गैरत उन्हे नहीं होती।

इतना ही क्यो, यदि एक बार दस बार भी असफलता क्यो न आये ? परिस्थितिवश मैदान छोड़ना पड़े तब भी अखाड़े से बाहर शरीर के साथ मन को भी हराकर मत जाइये। उस हार से शिक्षा लीजिए और आगे की जीत के लिए प्रयत्न कीजिए और मैदान मे पूरी तैयारी के साथ उतरिये। आप अवश्य विजयी होगे। यदि शरीर के साथ मन को भी हराकर चले गये तो आपके पास ऐसा कोई उपाय शेष न रह जायेगा, जिसके आधार पर आप आगामी विजय की तैयारी कर सके। मानसिक अनुकूलता अथवा वैचारिक स्थिति का परिस्थितियो पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस सत्य को कभी विस्मरण न करना चाहिए।

यदि हमारा मन बलवान है, हमारे विचार हमारे साथ है, हमारी भावनाये शुभ तथा सृजनात्मक है तो हम पर प्रतिकूल परिस्थिति का कोई प्रभाव नही पड़ सकता और हम उस पर अवश्य नियन्त्रण प्राप्त कर लेगे। हमे

चाहिए कि हम अपनी मनोभूमि को संघर्षों के समय पहाड़ की उस चट्टान की तरह दृढ़ तथा अपने अनुकूल बनाये रहें जिस पर आँधी, पानी का कोई प्रभाव बाहर से भले कहीं दृष्टिगोचर हो किन्तु उसका प्रवेश अन्तर में न हो सके।

आदमी की वास्तविक शक्ति

वह हार कर भी सदा विजयी ही रहा

युवक विजेता सिकन्दर राजमद, अहंकार और लोभ के वशीभूत था। उसने कुछ प्रदेश जीते तो उसकी महत्वाकांक्षाएँ अनावश्यक रूप से भड़क उठीं।

"अब मुझे विश्वविजयी बनना चाहिए। दुनिया के कोने-कोने मे मेरी विजय-दुन्दभी बजनी चाहिए। संसार के इतिहास मे मुझे विश्व का सबसे बड़ा विजेता कहलाना चाहिए।" सिकन्दर मन ही मन ये शब्द कहता रहता और दुनिया को जीतने के स्वर्णिम स्वप्न देखा करता था।

इन शब्दों में उसका राजमद बोल रहा था। कहते है कि ससार मे यौवन, धन और सौन्दर्य के मद प्रबल है, किन्तु लगता है सत्ता का मद प्रबलतम है। राजमद के प्रमाद मे महत्वाकांक्षी सिकन्दर ने समग्र पृथ्वी पर अपना राज्य स्थापित करके महान कहलाने की योजना बनाई।

बनाई क्या, वायुवेग से तुरन्त ही उसे कार्यान्वित भी करना आरम्भ कर दिया। मद और अहंकार मे आदमी अपना मनुष्यत्व खो बैठता है। प्राय: उसका विवेक शून्य हो जाता है और वह ऐसे गर्हित कार्य करता है जो उसे अर्द्धविक्षिप्त जैसा बना देते है।

सिकन्दर ने अकारण ही शान्तिप्रिय निर्बल राज्यो को सताना और जीतना आरम्भ किया। असन्तोष की परिणति अनीतिपूर्ण अत्याचार मे होना स्वाभाविक है। व्यर्थ ही किसी को सताने का मतलब विनाश होता है। सिकन्दर के अहंकार और लोभ ने उसे नियति के इस क्रूर गतिचक्र मे ला पटका।

फिर क्या था, उसने नए जोश से एक वृहत् सुसज्जित सेना तैयार की और विश्वविजय करने यूनान से निकल पड़ा।

अभी तक इतने विपुल पैमाने पर किसी राजा के पास सेना न थी। शस्त्रो के संचालन मे दक्षता की कमी और ऐक्य भाव की भी न्यूनता थी। सिकन्दर की विशाल सेना को देखकर छोटे-छोटे राज्य भयभीत हो उठे, विपुलता के आतंक से बिना युद्ध किये ही अनेक राज्यो ने उसे आत्मसमर्पण कर दिया। कुछ ने युद्ध करने की हिम्मत की किन्तु साधनो, सहयोग और सहायता की कमी के कारण वे अहकारी सिकन्दर द्वारा पराजित हुए। विजय का अभियान अग्नि की लपलपाती लपटो की भाँति उत्तरोत्तर भड़कता ही गया। उसके पद और अहकार का घड़ा जैसे लबालब भरकर उद्वेलित होने लगा।

उसे ऐसा लगने लगा मानो विश्वविजयी बनने का उसका सुनहरा स्वप्न साकार होने जा रहा था।'

आँधी और तूफान की तरह निर्विघ्न आगे बढ़कर आखिर उसकी सेना ने भारतीय सीमा पर पड़ाव डाल दिया।

यह भारत के लिए अप्रत्याशित संकट की घड़ी थी। दासता का प्रथम डंका था।

दुर्भाग्य से उन दिनो भारत मे फूट नामक विकार फैला हुआ था। उन दिनो सहयोग, राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की न्यूनता थी। सिकन्दर ने इस दुर्बलता से लाभ उठाया। फूट की विषैली बेल फैलाने मे सिकन्दर ने कूटनीति से काम लिया। तक्षशिलाधीश दम्भी अम्भीक अनेक बार महाराजा पुरु से हारकर विद्वेष-विष मे अन्धा बना हुआ था। बिना विचारे उसने सिकन्दर को पुरु के विरुद्ध आक्रमण का निमन्त्रण दे दिया।

दोनों की संयुक्त सेना, फिर कूटनीति, धोखेबाजी तथा कुछ आकस्मिक कारणो से महाराज पराजित हो गये। अचेतनावस्था मे वे सिकन्दर द्वारा बन्दी बनाये गये। महाराज पुरु को जब होश आया, तो वे सिकन्दर के सामने थे। उनके मन मे पराजय का भारी विक्षोभ था। किन्तु सिकन्दर विजय के मद मे अन्धा हो रहा था।

वह हँसा और बोला, "पोरस, बतलाओ अब तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाये ?"

आप जानते है सिकन्दर मन ही मन अपने प्रश्न के जवाब मे किस उत्तर का अनुमान कर रहा था ?

"वह सोच रहा था कि पोरस गिड़गिड़ाकर मेरे चरणो पर गिर पड़ेगा और रो-रोकर मेरे पाँव अपने गर्म आँसुओ से भिगो देगा। बार-बार दयनीय हो युद्ध करने की अशिष्टता के लिए क्षमा याचना करेगा। असहाय हो अपने प्राणो की भीख माँगेगा। वह निरुपाय-नि:सहाय होकर कहेगा कि मै आपका बन्दी हूँ, विजित दास हूँ, अब हर तरह आपके कब्जे मे हूँ। मेरी हालत वैसी ही है जैसे पिंजरे मे बन्द कैदी पक्षी की होती है। अब आप चाहे तो मुझे रखिये अथवा मार दीजिए। पूरी तरह आपके वश मे हूँ। मेरा अब कोई सहारा नही है। मै तो हर प्रकार से हार चुका हूँ। मै अपनी पराजय को स्वीकार करता हूँ और अपनी हेकड़ी के लिए लज्जित हूँ। अब मुझे प्राणदान दीजिए।"

यह सुनकर वह कहेगा कि "अच्छा सम्राट पुरु, मै तुम्हे प्राणदान देता हूँ। भविष्य मे मुझसे लड़ने का दु:साहस मत करना।" फिर वह पुरु की वीरता और रणकुशलता का भारत के अन्य शासको को दबाने मे उपयोग करेगा।

लेकिन पुरु ने सिकन्दर की आशा के विपरीत सवाल का कुछ और ही उत्तर दिया।

महाराज पुरु ने शासकोचित वीरता से भरा हुआ, यह जवाब दिया, जो आज तक हिन्दुओ मे नये प्राण और भारत के बच्चे-बच्चे मे नया उत्साह भरता है। इससे स्पष्ट था कि चाहे पुरु का शरीर हार गया हो, पर अपने मन से वह हारा नही था। उसमे मनोबल की गुप्त शक्ति विद्यमान थी।

महाराज पुरु ने स्वाभिमानपूर्वक सिर ऊँचा करके उत्तर दिया—

"सिकन्दर! मुझसे वह व्यवहार करो, जो एक राजा दूसरे राजा से करता है। तुमने मेरा शरीर बन्दी जरूर बना लिया है, पर मै पराजित नही हूँ। मेरा मन विजय से भरा हुआ है। मेरा मनोबल अभी तक उसी प्रकार उन्नत है। मुझे छोड़ दो, तो मै फिर तुमसे लड़ूँगा और आखिरी साँस तक तुमसे स्वतन्त्रता युद्ध करता रहूँगा। मेरी आत्मा अपराजित है।"

सिकन्दर निर्भीक पुरु का समुन्नत मनोबल देखकर चकित रह गया। पुरु के शब्द उसे कचोटने लगे।

वह वीरोचित उत्तर सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि उठकर बड़े आदरपूर्वक महाराज पुरु को गले से लगा लिया। यह थी मनुष्य के मनोबल की महिमा।

पुरु की वीरता और भारतवासियो की हिम्मत, पौरुष और शौर्य से सिकन्दर की सेना को बड़ी क्षति हुई थी। वह यह अनुभव कर चुका था कि यदि अब आगे बढने का उपक्रम करेगा, तो उसकी भयभीत सेना अवश्य विद्रोह कर देगी। इसलिए वह महाराज पुरु पर ऐहसान रखता हुआ चुपचाप भारतीय सीमाओ से बाहर चला गया।

इतिहास आज भी साक्षी है कि वीर शिरोमणि महाराज पुरु हारकर भी नही हारा और कूटनीतिज्ञ सिकन्दर जीतकर भी नही जीता। मनुष्य के मनोबल की शक्ति सर्वोपरि है।

सचमुच आदमी की असली ताकत उसके गुप्त मन मे रहने वाला उसका मनोबल ही है। सम्राट पुरु अपने मनोबल की ताकत के कारण ही युग-युग तक भारत के गौरव बने रहेगे। कहना न होगा जब तक पुरु जैसे मनोबली वीर भारत-भूमि पर जन्मते रहेगे, इसकी गौरव पताका युग-युग तक विश्व के आकाश मे फहराती रहेगी।

जिसका मन हार जाता है, वह बहुत कुछ होते हुए भी अन्त मे पराजित हो जाता है। जो शक्ति न होते हुए भी मन से हार नही मानता उसको दुनिया की कोई ताकत परास्त नही कर सकती।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

मुगलों के छक्के छुड़ाये

चित्तौड़ आज भी महाराणा प्रताप के मनोबल के गुणगान कर रहा है।

राजघराने मे सुख और आराम की गोद मे पले-पनपे, प्रताप ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' मन्त्र की उपासना कठोर भूमि राजस्थान में की थी। अनेक हिन्दू राजा मुगलो की अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पर प्रताप स्वाधीनता के सच्चे पुजारी थे। वे संघर्ष कर रहे थे।

मुगलो की वृहत् सेना तथा कुछ क्षुद्र बुद्धि राजपूत राजाओ की फूट के कारण चित्तौड़ मुसलमानो के हाथ मे जा चुका था। राणा उदयसिंह उदयपुर बसाकर राज्य कर रहे थे। दुर्भाग्य से वे स्वर्गवासी हुए। छोटी आयु मे ही प्रताप मेवाड़ के स्वामी हुए।

विरोध और शत्रुता का समुद्र उन पर टूट पड़ा। कठिनाइयो के झुण्ड के झुण्ड उनकी परीक्षा करने आने लगे। उन्हे जंगल की खाक छाननी पड़ी, उनकी धर्मपत्नी और बच्चो को वन मे हिंसक पशुओ के खतरे मे रहना पड़ा। भूख, प्यास और निवास की असंख्य मुसीबतो से गुजरना पड़ा। उनके चारो ओर उनके खून के प्यासे शत्रुओ का दल हिंसक चील, बाज और कौओ की तरह मँडराता रहा। थोड़े-से देशभक्त राजपूतो और सच्चा प्यार करने वाले भीलो के अतिरिक्त उनका कोई साथी न था, पर इन हिमालय सदृश परेशानियो के बावजूद प्रताप ने मुगलो की अधीनता स्वीकार न की। वे आन पर डटे रहे।

वह कौन-सी मानवीय शक्ति थी, जिसका उन्हे भरोसा था ? उन्हे कहाँ से गुप्त सहायता मिल रही थी ?

यह उनका दृढ और पूर्ण विकसित मनोबल था। इतनी मुसीबते होते हुए भी उनका मन न हारता था। उनका प्रबुद्ध मनोबल उन्हे निरन्तर सघर्ष करने को बाध्य कर रहा था। सशक्त मनोबल के कारण वह पराजित न हुए। मुगलो की विपुल सेनाएँ उन्हे परास्त न कर सकी।

प्रताप की विशेषता उनका अजय मन ही था। मनुष्य की वास्तविक शक्ति उसका मनोबल ही है। मनोबल से हीन मनुष्य को निर्जीव ही समझना चाहिए। प्रताप मानते थे कि ससार के सारे कार्य शरीर द्वारा सम्पादित होते है, किन्तु उनका सचालक मन ही हुआ करता है। मन का सहयोग पाये बिना शरीर-यन्त्र उसी प्रकार निष्क्रिय रहा करता है, जैसे विद्युत के अभाव मे सुविधा-उपकरण अथवा मशीने इत्यादि।

अपने मनोबल की ताकत लेकर वे मुगल-सैन्य-रूपी समुद्र मे कूदे।

शत्रु से लोहा लेने के लिए वे गरीब भूखे-प्यासे राजपूतो को रण-शिक्षा देने लगे। हल्दीघाटी का शौर्य प्रताप के मनोबल की गौरवपूर्ण कहानी है।

थोड़ी-सी शेर-दिल सेना के साथ वे मतवाले हाथी की तरह संग्राम-भूमि मे शत्रु सहार कर रहे थे। मानसिंह

के स्थान पर उन्हे सलीम दिखाई दे गया। फिर क्या था शत्रुओ को गाजर मूली की तरह काटते हुए वे सलीम के हाथी के पास जा पहुँचे।

चेतक ने उछलकर उन्हे सलीम के हाथी तक पहुँचा दिया। प्रताप ने निशाना ताका। कैसा खतरनाक था वह आक्रमण ? सलीम की मौत मानो भाले की शक्ल मे आ गई थी।

संयोग से वह भाला हाथी के हौदे से टकरा गया, पर पीलवान मारा गया। डरकर हड़बड़ाया-सा हाथी मुगलो की सेनाओं को रौंदता हुआ भाग निकला।

मुगल सेना की संख्या अत्यधिक थी। प्रताप हारे पर उन्होंने आजन्म स्वतन्त्रता के लिए संग्राम किया। वे अपने सीमित साधनो से ही मुगलो को सदैव तंग किये रहते। उनकी स्थिति मे कोई दूसरा कभी भी सन्तुलन स्थिर नहीं रख सकता था। उनके स्वाधीनता संग्राम मे बड़े कष्टदायक स्थल आये, उनकी धर्मपत्नी और बच्चो को बीहड़ जंगलो मे मारे-मारे फिरना पड़ा, प्राणो पर तलवार झूलती रही, पर अपने मनोबल से ही वे निरन्तर आगे बढ़ते रहे। कभी मन से उन्होंने मुगल सम्राट से हार न मानी।

मनुष्य की समस्त शक्ति उसके मन मे छिपी हुई है। इससे उसमे अपने अन्दर आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। जब आदमी अपनी गुप्त शक्तियो को पहचान लेता है और दैनिक जीवन मे उन्हे जाहिर करने लगता है, तब उसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन होने लगते है। अपने मनोबल के बल पर ही लोगो ने अपने जीवन की दिशा बदली है।

कोई बड़ा कार्य करने से पूर्व उनके मन मे यह भावना दृढ हो गई कि मै अमुक कार्य जरूर कर सकता हूँ। मुझे अपने सीमित साधनो से ही उसे प्रारम्भ कर देना चाहिए। उसमे सफलता पाने के लिए मुझमे सब कुछ मौजूद है।

आत्मविश्वास जाग्रत, होते ही उन्नति का प्रारम्भ हो जाता है। आत्मविश्वास साहस और उत्साह पैदा करता है। ये सब शक्तियाँ मिलकर मनुष्य को आगे बढ़ाती है।

जो महत्त्वाकांक्षी है, जिसमे कुछ करने की सच्ची अदम्य लगन है, कभी न हारने वाला सुदृढ मनोबल है, उसको साधारण परिस्थितियाँ तो क्या, बड़े-बड़े पर्वत तक नहीं रोक सकते।

वह अपने ध्येय का पक्का पहाड़ चीरता और समुद्र तैरता हुआ आगे ही बढ़ता जाता है। वैर, विरोध और परेशानियाँ। परिवार की समस्या, धन का अभाव, गिरा हुआ स्वास्थ्य आदि सबकी सब शिकायते मनोबल के द्वारा दूर हो जाती है।

मनोबली हिन्दू सिपाही

उन दिनो भारत मे मुसलमानो की कट्टरता और हिन्दुओ पर अत्याचार बढ़े हुए थे।

शिवाजी की अद्भुत शक्तियो की ख्याति मुसलमान बादशाह के कानो तक पड़ी। उसकी उत्कट इच्छा हुई कि इस प्रभावशाली बालक को अपने हाथ मे लेना चाहिए। उन्होंने शिवाजी के पिता शाहजी सहित उन्हे दरबार मे निमन्त्रित किया।

शाहजी प्रसन्न थे कि उन्हे राजकीय सम्मान मिलने जा रहा था। कौन पिता शाहशाही कृपा, बड़ी जागीरो और विलास से प्रसन्न नही होता।

शिवाजी से पूछा गया तो वे अड़ गये। बोले, "मै मुसलमान बादशाह को मन ही मन घृणा करता हूँ। वह गो ब्राह्मण का शत्रु है। मै उसके सामने सिर झुकाना हिन्दू धर्म की शान के विरुद्ध समझता हूँ।"

एक हिन्दू लड़के का मुसलमानो से घिरे रहना कभी भी निरापद नही हो सकता था। उन्हे पगपग पर उनसे संघर्ष करना पड़ा।

जैसे-जैसे वे बड़े हुए उन्होने मुसलमानो के क्रूर अत्याचारो के विरुद्ध अपने सीमित साधनो से ही ऊँची आवाज उठाई। हिन्दुओ को जबरदस्ती मुसलमान बनाने के कुचक्र देख उन्होंने मन ही मन प्रण किया—"चाहे मेरे पास कितने ही सीमित साधन क्यो न हो, मै हिन्दू साम्राज्य स्थापित करूँगा। हिन्दुओ मे राष्ट्रीयता और धार्मिकता के बीज बोऊँगा। मृत प्राय: हिन्दू जाति मे नव प्रेरणा का संचार करूँगा।"

एक दिन फिर ऐसा आयेगा, जब इस विशाल देश मे इतिहास की पुनरावृत्ति होगी। पहले की भाँति हिन्दू साम्राज्य स्थापित होगा। हिन्दुओ के मुल्क मे कोई म्लेच्छ न रहेगा।

सारी परिस्थितियाँ उनके विरुद्ध थी, मुसलमान शासक उनके लहू के प्यासे थे। कोई बड़ी सेना या रुपये की शक्ति उनके पास न थी।

उनके पास केवल उनका मनोबल ही था। उनका मन साहस, वीरता, हिम्मत, कष्ट, सहिष्णुता से पूर्ण था। वह मजबूत मन कठिनाइयो से कभी भी न हारने वाला था। वह अजेय था। सारी सिद्धियाँ मन की दृढ़ता पर ही आधारित है। मनोबल की सहायता से ही शिवाजी ने जीवन को तपस्यामय बनाया।

वे गाँव-गाँव हिन्दू साम्राज्य के लिए सेनाये सगठित करने लगे। हिन्दुओ को किसी सच्चे नेता की आवश्यकता थी। देश को स्वतन्त्र कराने के लिए शिवाजी मिले। बड़े मुगल साम्राज्य से टक्कर लेना एक असाधारण कार्य था। उनका मनोबल ही इन सब मे उनके साथ रहा।

एक दुर्ग के पश्चात् दूसरा, फिर तीसरा उन्होने अनेक दुर्ग फतह किये।

उनके पास साधनो की बड़ी कमी थी, पर मन मे धैर्य था। यह अन्दर की शक्ति ही उन्हे उत्तरोत्तर आगे बढ़ा रही थी।

मालव मे रोहिद नामक एक किला था। उसमे स्थित रोहिदेश्वर नामक एक मन्दिर था। उसमे बीजापुर राज्य की ओर से एक मुसलमान पुजारी नियुक्त था। शिवाजी ने हिन्दू देव स्थान को मुसलमानो से मुक्त करा कर उसे हिन्दू पुजारी के सरक्षण मे रख दिया। यह हिन्दू राज्य स्थापना का प्रथम प्रयास था। तीन वर्ष बाद उन्होने बीजापुर के 'तोरण' नामक किले पर बिना रक्तपात के अपना अधिकार कर लिया। उसकी मरम्मत कराकर उससे छ: मील दूर राजगढ़ नामक एक नया दुर्ग बनवाया।

अफजलखाँ ने शिवाजी को कैद करने की योजना बनाई। उसने एक लोहे का पिंजड़ा बनवाया, जिसमे शिवाजी को कैद कर बीजापुर ले जाने की योजना थी।

शिवाजी ने अपने अँगरखे के नीचे बिच्छू कटार छिपा ली, साथ ही जीवामहाला और सम्भाजी काबू नामक दो निपुण सैनिको को ले लिया। अफजल ने सोचा था कि अकेले मे शिवाजी का सिर उड़ा दूँगा। वह डील-डौल मे बड़ा मजबूत भी था।

बड़ी विषम अवस्था थी। शिवाजी ने अपने गुरु रामदास का स्मरण किया। तुरन्त उनका सोया हुआ मनोबल जाग उठा। नई शक्ति और साहस का सचार हुआ। उन्होने साहसपूर्वक बिच्छू कटार उसके पेट मे भोक दी। खाँ बुरी तरह घायल हुआ। दोनो स्वामी-भक्त रक्षको की सहायता से उसका वध किया।

शिवाजी अपने मनोबल के ही कारण सदा मुगलो के दाँत खट्टे करते रहे। मुगल सेना को खूब परेशान किया। शाइस्ता-खाँ को परास्त किया। एक बार वे कैद भी हो गये, किन्तु अपने मनोबल की सहायता से ही वे उसमे से भाग निकले। हर मुसीबत मे उन्होने अपने स्वावलम्बन से फतह पाई।

शिवाजी का सग्राम जीवन सघर्षो और विघ्नो से भरा रहा, पर उनका मनोबल महान था। उसी के कारण औरंगजेब जैसे शहन्शाह की समस्त कोशिशे व्यर्थ गईं। साधन और सहायता की कमी की शिकायते प्राय: वही आलसी, अनुद्योगी व्यक्ति किया करते है, जिनको कुछ करना धरना नही होता, केवल कुछ करने की कल्पना मात्र किया करते है। कुछ ठोस और स्थायी कार्य करने वालो के पास व्यर्थ की शिकायतो के लिए फालतू समय नही होता।

महाराज रणजीतसिंह का मनोबल

एक बार दो मुसलमान गुण्डे महाराज रणजीतसिंह की हत्या के लिए उनके पीछे लग गये। गुप्तचरो ने महाराज को इसकी सूचना दे दी। वे वेश बदलकर सदा उनके पीछे रहते तथा किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहते थे।

रणजीतसिंह जी निर्भय और साहसी थे। वे मामूली खतरो से कभी न डरते थे। सदा ही वे शत्रुओ के दाँत खट्टे किया करते थे। उनका उन्नत मनोबल सदा ही उन्हे ऊँचा उठाये रखता था। वे विपरीत परिस्थितियो से कभी भी विचलित नही होते थे।

"इन म्लेच्छों को छकाना चाहिए" उन्होने मन ही मन कहा।

उन्होने कहा, "हम शिकार के लिए जाना चाहते है।"

"आपके साथ कौन-कौन चलेगा, महाराज ?"

उन दोनो की ओर इशारा करते हुए रणजीतसिंह बोले, "मै अपने साथ बहुत-से आदमियो को नही ले जाना चाहता। मै सिर्फ इन नये सिपाहियो को रक्षा के लिए ले चलूँगा। आप दोनो मेरे साथ शिकार पर रक्षा के लिए चलेगे। तैयार होकर आइये।"

दोनो दुष्ट मन ही मन कह रहे थे, "जंगल मे और कोई न होगा। अकेले मे रणजीतसिंह की हत्या का अच्छा मौका मिलने वाला है।"

उन्होने चुपचाप दो तेज छुरे अपने वस्त्रो मे छिपा लिये और महाराज के साथ आखेट के लिये रवाना हो गये।

रणजीतसिंह हिरण का पीछा करते घोड़ा दौड़ाये जा रहे थे, पीछे-पीछे दोनो दुष्ट रक्षक दौड़ते चल रहे थे। काफी दूर निकल गये। एक बीहड़ जंगल आ गया।

यकायक रणजीतसिंह ने घोड़ा ठहराया। जब वे दोनो समीप आ गये, तो बोले—"मेरा गला घुट रहा है। तनिक गले के बटन ढीले कर दो।"

ऐसा कहकर उन्होने अपना गला उनमे से एक के हाथो मे थमा दिया।

यह गला घोट देने का सबसे अच्छा मौका था।

पर यह क्या !

वे गला न घोट सके। उनके तीक्ष्ण छुरे न निकले, जैसे बिजली उन्हे स्पर्श कर पगु कर गई थी।

"मेरा साँस रुक रहा है। गले के बटन ढीले करो" बड़े जोश भरे स्वर मे महाराज ने दुहराया। अब उनसे कुछ न सूझा। तुरन्त उन्होने यह अनुभव किया कि उनकी हत्या की गुप्त योजना महाराज को मालूम हो चुकी थी। वे तुरन्त महाराज के पाँवो पर गिर पड़े और क्षमा माँगी।

ऐसा था रणजीतसिंह का अद्भुत मनोबल !

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अधकार विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मनोबल आने पर मनुष्य के चरित्र मे चमत्कार जग जाते है।

पुरुषार्थरहित पुरुष आग के उस बुझे अँगारे के समान है, जो अपने कुल तथा देश को कलंकित करते

के अतिरिक्त कुछ नही कर सकता। न उसकी कोई उपयोगिता है, न उपादेयता। संसार की समस्त विभूति से वंचित अभागा जीवन बिताना तो पशुओ को भले ही शोभा दे, मनुष्य को नहीं। मनुष्य का अर्थ है, मनोबल से प्रज्ज्वलित शक्तिपुंज !

सामान्य जनता के मनोबल के चमत्कार

विश्व महायुद्ध के दौरान मे होने वाली दो-एक घटनाओं का स्मरण आता है। उन दिनो जर्मनी के तानाशाह हिटलर ने विश्वभर को आतंकित कर रखा था। उसने अपनी बड़ी-बड़ी फौजो और नए अस्त्र-शस्त्रो के कुशल प्रयोग तथा सैन्य-सचालन द्वारा समग्र विश्व मे हलचल मचा रखी थी।

उसकी योजना थी कि सारे विश्व पर जर्मनी का राज्य हो जाय। एक के बाद एक उसने यूरोप के अनेक देशो को जीता और रूस के किनारे तक बढ़ आया। किन्तु रूस को छोड़, उसने पहले इग्लैड को जीतने का लक्ष्य बनाया।

इंग्लैड पर तो जैसे तूफान टूट पड़ा। यह ठीक है कि अँग्रेज युद्ध मे पर्याप्त प्रवीण थे, पर जर्मनी से युद्ध करना, विशेषत: जब उनके पास इतनी बड़ी फौज और विजित देशो का सहयोग था एक टेढ़ी खीर थी। इंग्लैड अब गया ! तब गया !! की विषम स्थिति आ गई। किन्तु देखने की बात यह थी कि वहाँ के राजनेता और फौज के अधिकारी भले ही विचलित हो उठे हो, लेकिन जनता ने अपना मनोबल नही खोया।

इसका प्रमाण ?

इसका सबूत यह है कि जिस समय डंकर्क के मोर्चे से डरकर प्राण बचाने के लिए ब्रिटेन की लगभग तीन साढ़े तीन लाख सेना भागी थी, उस समय उसकी अधिकाश युद्ध सामग्री भी वही छूट गई थी और इंग्लैड की सेना शक्ति, साधन तथा शस्त्रविहीन हो गई थी। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि शत्रु को भ्रम मे डालने के लिए खजूर के पेड़ कोलतार से रग-रंगकर लन्दन के चारो ओर तोपो के स्थान पर लगाये गये थे।

अब प्रश्न यह था कि नि:शस्त्रता की पोल खुलने से पहले ही सेनाओं को साधन और शस्त्र सम्पन्न कर दिया जाये। यह कार्य इंग्लैड की जनता के सहयोग से ही सम्भव था।

आप पूछते है, "कैसे ?"

बात यह थी कि हार पर हार हो रही थी। सैन्य सामग्री समाप्त हो गई थी। हिटलर के हमले पर हमले हो रहे थे। ऐसी संकटकालीन परिस्थिति मे जनता के हाथ-पैर फूल जाना साधारण-सी बात थी। मामूली हालतो मे ऐसा ही होता भी आया है।

किन्तु इग्लैड की मनोधनी जनता ने अपना मनोबल नही खोया। उनका साहस बुलन्द था। वह हर नुकसान, हर भय, असंख्य विपत्तियो और दिन-रात बढ़ते खतरो की ओर से निरपेक्ष होकर अपने कार्य मे दिन और रात जुट गई। उनकी कार्य-तत्परता, उनका मानसिक सन्तुलन, उनका साहस बहुत ऊँचा था।

कैसे ?

एक बार युद्ध कुशल सैन्य-संचालन करने वाले तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री विण्टसन चर्चिल एक कारखाना देखने गये, तो किसी ने उनका अभिवादन करने तक मे समय खराब करना उचित न समझा। कोई पद-लोभी या अस्थिर अफसर इस अवज्ञा से क्रुद्ध होता, पर प्रधान मन्त्री जब कारखाना घूमकर बाहर आये तो वे खुश थे।

उन्होंने पत्रकारो को बताया कि जिस इंग्लैड की जनता का मनोबल इतना बुलन्द है और जो संकटकालीन स्थिति मे, संगीनो की छाया मे, बन्दूक, तोपो और बमो की गरज-तरज मे टूटते खंडहरो और ढहती इमारतो मे अपने कर्त्तव्यो को ठीक-ठीक समझकर पूरा करने मे इतनी ईमानदार है कि उस ग्रेट-ब्रिटेन को एक हिटलर क्या हजार हिटलर भी परास्त नही कर सकते।

और हुआ भी यही !

इस मनोबल का क्या फल हुआ ?

नतीजा यह हुआ कि कुछ संघर्षों के बाद इग्लैड ऐसी मजबूती से जमा, ऐसे साहस और मनोबल से लड़ा कि कुछ समय बाद हिटलर की हार हुई।

यह विजय किसकी थी ?

विण्टसन चर्चिल की ? फौज के कमाण्डरो की ? सैनिको की ?

नही, इसमे किसी की विजय नही थी।

तो फिर किसकी जीत थी ?

यह इंग्लैड की जनता के उन्नत मनोबल की विजय थी।

जब बहुत-से व्यक्ति किसी सत्कार्य या महान् उद्देश्य के लिए एक मन, एक तन होकर प्रयत्नशील होते है, तो उनके साथ ईश्वर की गुप्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सयुक्त मनोबल मे हजारो तोपो और एटम बमो की ताकत छिपी रहती है। मनोबल ज्ञान, दर्शन, शुभचिन्तन और सत्कर्म का संयुक्त महाबल है।

एक और उदाहरण लीजिये—

यह प्रशस्त घटना फ्रांस की है। वहाँ भी ऐसी परिस्थिति आ उपस्थित हुई थी। देश पर संकट था। जनता कुछ डरपोक मन.स्थिति में थी।

जनरल पेताँ ने मोह मे आकर मनोबल खो दिया और बिना हारे ही पराजय स्वीकार करने का प्रतीक देश का झडा झुका दिया।

मालव मे रोहिद नामक एक किला था। उसमे स्थित रोहिदेश्वर नामक एक मन्दिर था। उसमे बीजापुर राज्य की ओर से एक मुसलमान पुजारी नियुक्त था। शिवाजी ने हिन्दू देव स्थान को मुसलमानो से मुक्त करा कर उसे हिन्दू पुजारी के सरक्षण मे रख दिया। यह हिन्दू राज्य स्थापना का प्रथम प्रयास था। तीन वर्ष बाद उन्होने बीजापुर के 'तोरण' नामक किले पर बिना रक्तपात के अपना अधिकार कर लिया। उसकी मरम्मत कराकर उससे छ. मील दूर राजगढ़ नामक एक नया दुर्ग बनवाया।

अफजलखाँ ने शिवाजी को कैद करने की योजना बनाई। उसने एक लोहे का पिंजड़ा बनवाया, जिसमे शिवाजी को कैद कर बीजापुर ले जाने की योजना थी।

शिवाजी ने अपने अँगरखे के नीचे बिच्छू कटार छिपा ली, साथ ही जीवामहाला और सम्भाजी काबू नामक दो निपुण सैनिको को ले लिया। अफजल ने सोचा था कि अकेले मे शिवाजी का सिर उड़ा दूँगा। वह डील-डौल मे बड़ा मजबूत भी था।

बड़ी विषम अवस्था थी। शिवाजी ने अपने गुरु रामदास का स्मरण किया। तुरन्त उनका सोया हुआ मनोबल जाग उठा। नई शक्ति और साहस का सचार हुआ। उन्होने साहसपूर्वक बिच्छू कटार उसके पेट मे भौक दी। खाँ बुरी तरह घायल हुआ। दोनो स्वामी-भक्त रक्षको की सहायता से उसका वध किया।

शिवाजी अपने मनोबल के ही कारण सदा मुगलो के दाँत खट्टे करते रहे। मुगल सेना को खूब परेशान किया। शाइस्ता-खाँ को परास्त किया। एक बार वे कैद भी हो गये, किन्तु अपने मनोबल की सहायता से ही वे उसमे से भाग निकले। हर मुसीबत मे उन्होने अपने स्वावलम्बन से फतह पाई।

शिवाजी का संग्राम जीवन संघर्षों और विघ्नो से भरा रहा, पर उनका मनोबल महान था। उसी के कारण औरंगजेब जैसे शहन्शाह की समस्त कोशिशे व्यर्थ गई। साधन और सहायता की कमी की शिकायते प्राय वही आलसी, अनुद्योगी व्यक्ति किया करते है, जिनको कुछ करना धरना नही होता, केवल कुछ करने की कल्पना मात्र किया करते है। कुछ ठोस और स्थायी कार्य करने वालो के पास व्यर्थ की शिकायतो के लिए फालतू समय नही होता।

महाराज रणजीतसिंह का मनोबल

एक बार दो मुसलमान गुण्डे महाराज रणजीतसिंह की हत्या के लिए उनके पीछे लग गये। गुप्तचरो ने महाराज को इसकी सूचना दे दी। वे वेश बदलकर सदा उनके पीछे रहने तथा किसी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहते थे।

रणजीतसिंह जी निर्भय और साहसी थे। वे मामूली खतरो से कभी न डरते थे। सदा ही वे शत्रुओ के दाँत खट्टे किया करते थे। उनका उन्नत मनोबल सदा ही उन्हे ऊँचा उठाये रखता था। वे विपरीत परिस्थितियो से कभी भी विचलित नही होते थे।

"इन म्लेच्छो को छकाना चाहिए" उन्होने मन ही मन कहा।

उन्होने कहा, "हम शिकार के लिए जाना चाहते है।"

"आपके साथ कौन-कौन चलेगा, महाराज ?"

उन दोनो की ओर इशारा करते हुए रणजीतसिंह बोले, "मै अपने साथ बहुत-से आदमियो को नही ले जाना चाहता। मै सिर्फ इन नये सिपाहियो को रक्षा के लिए ले चलूँगा। आप दोनो मेरे साथ शिकार पर रक्षा के लिए चलेगे। तैयार होकर आइये।"

दोनो दुष्ट मन ही मन कह रहे थे, "जंगल मे और कोई न होगा। अकेले मे रणजीतसिंह की हत्या का अच्छा मौका मिलने वाला है।"

उन्होने चुपचाप दो तेज छुरे अपने वस्त्रो मे छिपा लिये और महाराज के साथ आखेट के लिये रवाना हो गये।

रणजीतसिंह हिरण का पीछा करते घोड़ा दौड़ाये जा रहे थे, पीछे-पीछे दोनो दुष्ट रक्षक दौड़ते चल रहे थे। काफी दूर निकल गये। एक बीहड़ जंगल आ गया।

यकायक रणजीतसिंह ने घोड़ा ठहराया। जब वे दोनो समीप आ गये, तो बोले—"मेरा गला घुट रहा है। तनिक गले के बटन ढीले कर दो।"

ऐसा कहकर उन्होने अपना गला उनमे से एक के हाथो मे थमा दिया।

यह गला घोट देने का सबसे अच्छा मौका था।

पर यह क्या !

वे गला न घोट सके। उनके तीक्ष्ण छुरे न निकले, जैसे बिजली उन्हे स्पर्श कर पंगु कर गई थी।

"मेरा साँस रुक रहा है। गले के बटन ढीले करो" बड़े जोश भरे स्वर मे महाराज ने दुहराया। अब उनसे कुछ न सूझा। तुरन्त उन्होने यह अनुभव किया कि उनकी हत्या की गुप्त योजना महाराज को मालूम हो चुकी थी। वे तुरन्त महाराज के पाँवो पर गिर पड़े और क्षमा माँगी।

ऐसा था रणजीतसिंह का अद्भुत मनोबल !

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अधकार विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार मनोबल आने पर मनुष्य के चरित्र मे चमत्कार जग जाते है।

पुरुषार्थरहित पुरुष आग के उस बुझे अँगारे के समान है, जो अपने कुल तथा देश को कलकित करते

के अतिरिक्त कुछ नही कर सकता। न उसकी कोई उपयोगिता है, न उपादेयता। संसार की समस्त विभूति से वंचित अभागा जीवन बिताना तो पशुओ को भले ही शोभा दे, मनुष्य को नही। मनुष्य का अर्थ है, मनोबल से प्रज्ज्वलित शक्तिपुंज !

सामान्य जनता के मनोबल के चमत्कार

विश्व महायुद्ध के दौरान मे होने वाली दो-एक घटनाओ का स्मरण आता है। उन दिनो जर्मनी के तानाशाह हिटलर ने विश्वभर को आतंकित कर रखा था। उसने अपनी बड़ी-बड़ी फौजो और नए अस्त्र-शस्त्रो के कुशल प्रयोग तथा सैन्य-संचालन द्वारा समग्र विश्व मे हलचल मचा रखी थी।

उसकी योजना थी कि सारे विश्व पर जर्मनी का राज्य हो जाय। एक के बाद एक उसने यूरोप के अनेक देशो को जीता और रूस के किनारे तक बढ़ आया। किन्तु रूस को छोड़, उसने पहले इग्लैड को जीतने का लक्ष्य बनाया।

इंग्लैड पर तो जैसे तूफान टूट पड़ा। यह ठीक है कि अंग्रेज युद्ध मे पर्याप्त प्रतीक थे, पर जर्मनी से युद्ध करना, विशेषत· जब उनके पास इतनी बड़ी फौज और विजित देशो का सहयोग था एक टेढ़ी खीर थी। इंग्लैड अब गया ! तब गया !! की विषम स्थिति आ गई। किन्तु देखने की बात यह थी कि वहाँ के राजनेता और फौज के अधिकारी भले ही विचलित हो उठे हो, लेकिन जनता ने अपना मनोबल नही खोया।

इसका प्रमाण ?

इसका सबूत यह है कि जिस समय डकर्क के मोर्चे से डरकर प्राण बचाने के लिए ब्रिटेन की लगभग तीन साढ़े तीन लाख सेना भागी थी, उस समय उसकी अधिकांश युद्ध सामग्री भी वही छूट गई थी और इंग्लैड की सेना शक्ति, साधन तथा शस्त्रविहीन हो गई थी। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि शत्रु को भ्रम मे डालने के लिए खजूर के पेड़-कोलतार से रग-रगकर लन्दन के चारो ओर तोपो के स्थान पर लगाये गये थे।

अब प्रश्न यह था कि नि.शस्त्रता की पोल खुलने से पहले ही सेनाओ को साधन और शस्त्र सम्पन्न कर दिया जाये। यह कार्य इंग्लैड की जनता के सहयोग से ही सम्भव था।

आप पूछते है, "कैसे ?"

बात यह थी कि हार पर हार हो रही थी। सैन्य सामग्री समाप्त हो गई थी। हिटलर के हमले पर हमले हो रहे थे। ऐसी संकटकालीन परिस्थिति मे जनता के हाथ-पैर फूल जाना साधारण-सी बात थी। मामूली हालतो मे ऐसा ही होता भी आया है।

किन्तु इग्लैड की मनोधनी जनता ने अपना मनोबल नही खोया। उनका साहस बुलन्द था। वह हर नुकसान, हर भय, असंख्य विपत्तियो और दिन-रात बढ़ते खतरो की ओर से निरपेक्ष होकर अपने कार्य मे दिन और रात जुट गई। उनकी कार्य-तत्परता, उनका मानसिक सन्तुलन, उनका साहस बहुत ऊँचा था।

कैसे ?

एक बार युद्ध कुशल सैन्य-सचालन करने वाले तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री विण्टसन चर्चिल एक कारखाना देखने गये, तो किसी ने उनका अभिवादन करने तक मे समय खराब करना उचित न समझा। कोई पद-लोभी या अस्थिर अफसर इस अवज्ञा से क्रुद्ध होता, पर प्रधान मन्त्री जब कारखाना घूमकर बाहर आये तो वे खुश थे।

उन्होने पत्रकारो को बताया कि जिस इंग्लैड की जनता का मनोबल इतना बुलन्द है और जो सकटकालीन स्थिति मे, संगीनो की छाया मे, बन्दूक, तोपो और बमो की गरज-तरज मे टूटते खडहरो और ढहती इमारतो मे अपने कर्त्तव्यो को ठीक-ठीक समझकर पूरा करने मे इतनी ईमानदार है कि उस ग्रेट-ब्रिटेन को एक हिटलर क्या हजार हिटलर भी परास्त नही कर सकते।

और हुआ भी यही !

इस मनोबल का क्या फल हुआ ?

नतीजा यह हुआ कि कुछ सघर्षों के बाद इग्लैड ऐसी मजबूती से जमा, ऐसे साहस और मनोबल से लड़ा कि कुछ समय बाद हिटलर की हार हुई।

यह विजय किसकी थी ?'

विण्टसन चर्चिल की ? फौज के कमाण्डरो की ? सैनिको की ?

नही, इसमे किसी की विजय नही थी।

तो फिर किसकी जीत थी ?

यह इंग्लैड की जनता के उन्नत मनोबल की विजय थी।

जब बहुत-से व्यक्ति किसी सत्कार्य या महान् उद्देश्य के लिए एक मन, एक तन होकर प्रयत्नशील होते है, तो उनके साथ ईश्वर की गुप्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सयुक्त मनोबल मे हजारो तोपो और एटम बमो की ताकत छिपी रहती है। मनोबल ज्ञान, दर्शन, शुभचिन्तन और सत्कर्म का संयुक्त महाबल है।

एक और उदाहरण लीजिये—

यह प्रशस्त घटना फ्रांस की है। वहाँ भी ऐसी परिस्थिति आ उपस्थित हुई थी। देश पर संकट था। जनता कुछ डरपोक मन.स्थिति मे थी।

जनरल पेताँ ने मोह मे आकर मनोबल खो दिया और बिना हारे ही पराजय स्वीकार करने का प्रतीक देश का झंडा झुका दिया।

फ्रांस मे समझदार लोगो ने इस पर सोच-विचार किया। उनकी स्वतन्त्र भावना और स्वाभिमान ने जोर मारा। अब उन्हे ऐसा लगा मानो जनरल पेतॉं ने अपना झंडा झुकाकर उनके देश का बड़ा अपमान किया था।

जनता ने उनके प्राण बचाने की योजना को अकल्याणकारी माना। घृणास्वरूप उसने जनरल पेतॉं का बहिष्कार कर दिया।

नया नेता कौन हो ?

उन्होंने जनरल दिगाल को नेता बनाया। पेरिस का पतन हो चुका था।

फिर भी एक बार पूरा जोर लगा कर स्वाभिमानिनी जनता ने अपनी स्वाधीनता को बनाये रखने की योजना बनाई। वे लोग सुलभ साधनो को लेकर बीहड़ जगलो तथा दुर्गम पर्वतो मे छिपकर गुरिल्ला-युद्ध करने लगे। अब स्वाधीनता की रक्षा का गुरुतम कार्य उन्होने सेना और सेना-नायको-मुट्ठीभर आदमियों पर न छोड़ स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

भूखी-प्यासी फ्रांस की जनता इस मनोबल से लड़ी कि आखिर हिटलर को लेने के देने पड़ गये। उसे अनुभव हुआ कि ये लोग मन से हार मानने वाले नही है। इनकी आत्मा स्वतन्त्र है और इसका अन्तिम फल क्या हुआ ?

सीमित साधनो वाला फ्रास स्वतन्त्र हुआ। अगणित लोगो के शहीद होने पर भी फ्रास अन्ततः स्वतन्त्र हो गया। फ्रांस की हालत एक कब्रिस्तान जैसी थी। धन और जन की बड़ी हानि हुई थी। अगणित लाशो के ढेर लगे थे। गिद्ध और कौवे मँडरा रहे थे।

पर फिर भी स्वतन्त्रता का प्रतीक उनका राष्ट्रध्वज एक बार फिर शान से फहराने लगा।

यह विजय किसने की थी ?

यह वह युग था जब सारा यूरोप बर्बर विजेता हिटलर की नाटकीय विजयो से आतंकित था। किसी शक्ति को अनायास ही उससे टक्कर लेने की हिम्मत नही थी। विकराल गति से वह बढ़ता निरीह जनता को रौंदता चला आ रहा था। हिटलर की फौजे बढ़ते-बढ़ते असावधान और बिना तैयार रूस पर टूट पड़ी। बाढ़ वाली उन्मत नदी की तरह नुकसान करती और डराती हुई प्रमुख राज-नगर मे पहुँच गई। ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे रूस सदा-सर्वदा के लिए जर्मनी का गुलाम बन जायेगा।

सयोग की भयकरता से यह स्वाभाविक था कि रूस की जनता मे अधीरता से डरकर भगदड़ मच जाती, किन्तु उनका मनोबल ऊँचा था, उन्होंने हिम्मत न हारी। वह गली-गली, सड़क-सड़क, कूँचे-कूँचे, घर-द्वार, हाट-बाट दुश्मन से जूझ पड़ी उनके पास हथियार नही थे। गोली बारूद की कमी थी। पर मनोबल साथ होने के कारण लाठी, डण्डा, भाला, बल्लम, मुँह, हाथ, प्याले, मेज, कुर्सी आदि उनके शस्त्र बन गये। वे कफन ओढ़कर लड़े। मास्को तथा लेनिनग्राड की गलियाँ खून और लाशो से पट गई। जहाँ जो मिला, जो हथियार मिले उन्ही से लड़ा। युद्ध से पीछे नही हटा।

लगभग डेढ़ करोड़ रूसी जनता स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते बलिदान हो गये। इनमे से छ: लाख वे शहीद नागरिक थे, जिन्होने अपना पूरा राशन सेना को दे दिया था और खुद भूख से तड़प-तड़प कर स्वतन्त्रता रूपी महल की नीव बन गये थे।

इसका फल क्या हुआ ?

रूस के लेनिनग्राड तथा मास्को की भूमि से हिटलर की खूनी फौजे वापिस न आई। इतिहास बताता है [illegible] से [illegible] ४५ प्रारम्भ होकर जर्मनी [illegible] पहुँचे [illegible]

शक्तियाँ भी छुपकर इनकी सहायता कर रही थीं। इस संकटकालीन स्थिति मे भारत की जनता का मनोबल सदा ऊँचा रहा। समस्त भेदभाव भूलकर सब राजनैतिक पार्टियो ने देश की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। भारत के वीरो ने वीरता के ऐसे करिश्मे दिखाये कि शत्रु के दाँत खट्टे कर दिये और उसे पीछे हटना पड़ा। इस दृढ मनोबल से संसार मे भारत का मान ऊँचा हो गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जनता का मनोबल ऊँचा रहने से सीमित साधनो से युद्ध जीते जा सकते हैं। लेकिन एक-एक व्यक्ति भी अपने वैयक्तिक जीवन मे अपने निजी मनोबल से अद्भुत साहस के कारनामे कर दिखाते हैं। मनोधनी व्यक्ति बड़ी से बड़ी आपत्तियो को जीत कर अपना मार्ग स्वयं बना लेते हैं।

एक पत्रकार का मनोबल

पैरिस के एक बलवे की एक घटना है—

दंगा बड़ी विकराल गति से फैला। फसाद करने वालो ने तोड़-फोड़ के कार्य किये, आग लगा दी। जिसे देखा, उसे मारा-पीटा और नुकसान किया। कानून की बुरी तरह अवहेलना की और ऐसा लगा, जैसे अब पूर्ववत् व्यवस्था न स्थिर रह सकेगी। सारे देश की दिलचस्पी पैरिस की ओर थी।

एक प्रसिद्ध समाचार पत्र का रिपोर्टर मैथ्यू डेजलेट इस खतरनाक दगे की रिपोर्ट लेने के लिए नियुक्त किया गया। वह बड़ा कर्त्तव्यनिष्ठ था और अनेक सकटकालीन स्थितियों मे सफलतापूर्वक खबरे देकर प्रशसित हो चुका था। उसमे उच्च कोटि का मनोबल था। अपनी दिशा मे वह बड़े साहस से कार्य करता था। उसका मन इतना सबल और सतुलित था कि खतरे से विचलित न होता था। इस दगे की रिपोर्टिंग के लिये उस जैसे मनोबल के आदमी को ही चुना गया। वह घटनास्थल पर पहुँच गया और खतरे से बचता हुआ खबरे रिपोर्ट करता रहा।

उधर स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली गई। पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से काम किया, किन्तु व्यर्थ। दगा-फसाद करने वाली बड़ी-बड़ी भीड़ो पर गोलियो की वर्षा की गई, पर निष्फल! सैकड़ो घायल हो गये, हजारो के चोटे आईं और बहुत-से मर गये।

इसी बीच उसने समाचार पत्र के प्रधान कार्यालय को अपने मित्र द्वारा यह सदेश भेज दिया कि मै दुर्घटना स्थल पर हूँ। बड़े सनसनीखेज दंगे चल रहे है। मारपीट, बलात्कार, हत्या और लूट-खसोट गुंडो का पेशा बन गया है। पुलिस भरसक कोशिश कर रही है, किन्तु स्थिति काबू से बाहर हो रही है। कभी-कभी तो गोलियो मे गुजरकर मुझे खबरे भेजनी पड़ती है और जान तक का खतरा रहता है। मौत सिर पर नाचती रहती है। बड़ा भयकर दगा है। बाद के समाचार शीघ्र ही भेजूँगा।

उधर घटनास्थल पर स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली जा रही थी। पुलिस ने शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी ओर से कुछ भी उठा न रखा। क्रुद्ध भीड़ ने पुलिस को भी पीटा और राजकीय शक्ति को जैसे पराजित कर दिया। अनेक पुलिस अधिकारी बुरी तरह घायल हुए। कुछ शहीद भी हुए। दंगा करने वालो के हौसले और भी बुलन्द हो उठे। अत: शहर पर उनका राज्य-सा हो गया। कुछ देर पश्चात् पुलिस के हाथ से मामला निकल गया। शरारती तत्वो ने पूरी शैतानियत पैदा कर दी। विवश होकर अधिकारियो को फौज की सहायता लेनी पड़ी। फौज के आने पर भी कुछ देर तक दंगा-फसाद वैसे ही चलता रहा। भीड़ ने समझा कि वे फौज को भी आतंकित कर लेंगे।

मैथ्यू डेजलेट एक साहसी पत्रकार था। वह अपने उन्नत मनोबल के कारण कर्त्तव्यपालन मे डटा था। उसे दंगे की आँखो देखी स्थिति का विस्तृत व्यापक सूक्ष्म वर्णन करना था। क्या-क्या हानि होती है? कौन-कौन कब गिरता, पड़ता या मरता है? वस्तुओ और सामान का क्या-क्या नुकसान होता है? कौन सख्त घायल होता है? कौन आखिरी दम तोड़ता है? यह सब स्वयं अपनी आँखो से देखकर लिखना ऊँचे मनोबल की अपेक्षा रखता है। मामूली अखबार नवीस क्या जमेगा? मैथ्यू डेजलेट अपने दृढ मन के कारण लगातार न्यूज रिपोर्टिंग करता रहा। उसका मनोबल इस खतरे मे एक अदृश्य कवच के समान सदा उसके साथ था।

जब डराने-डाँटने और मामूली सजाओ से स्थिति न सम्हली तो मजबूर हो फौज ने गोली चला दी। दंगाइयो को क़ाबू मे करने का यही एक मात्र उपाय था।

धाँयँ! धाँयँ!! धाँयँ!!!

पहले गोलियो के हलके फायर आकाश की तरफ किये गये।

धाँएँ! धाँएँ! धाँएँ!!!

फिर भीड़ के पाँवो मे गोलियाँ चली। अब तो लोग घायल होकर गिरने लगे। भीड़ मे खलबली मच गई। लोग जान बचाने के लिए भागने लगे। कई भागते-भागते गिरे और सदा के लिए सो गये। मैथ्यू भी घायल होकर गिर पड़ा। उसको गिरते देखकर फौजी डाक्टर उसके पास आया और कहा—

"अरे, तुम बहुत घायल हो, चलो तुम्हे अस्पताल तक पहुँचा आऊँ। तुम्हारी मरहम पट्टी की जायेगी। इस खतरनाक स्थिति से अलग करना बेहद् जरूरी है। तुम्हे घातक गोलियाँ लगी है।"

घायल मैथ्यू फिर भी लिखता रहा। उसका मन अभी तक मजबूती से कर्त्तव्य निष्ठ था। वह मन मे घायल नही हुआ था।

फ्रांस मे समझदार लोगो ने इस पर सोच-विचार किया। उनकी स्वतन्त्र भावना और स्वाभिमान ने जोर मारा। अब उन्हे ऐसा लगा मानो जनरल पेतॉं ने अपना झंडा झुकाकर उनके देश का बड़ा अपमान किया था।

जनता ने उनके प्राण बचाने की योजना को अकल्याणकारी माना। घृणास्वरूप उसने जनरल पेतॉं का बहिष्कार कर दिया।

नया नेता कौन हो ?

उन्होने जनरल दिगाल को नेता बनाया। पेरिस का पतन हो चुका था।

फिर भी एक बार पूरा जोर लगा कर स्वाभिमानिनी जनता ने अपनी स्वाधीनता को बनाये रखने की योजना बनाई। वे लोग सुलभ साधनो को लेकर बीहड़ जंगलो तथा दुर्गम पर्वतो मे छिपकर गुरिल्ला-युद्ध करने लगे। अब स्वाधीनता की रक्षा का गुरुतम कार्य उन्होने सेना और सेना-नायको-मुट्ठीभर आदमियो पर न छोड़ स्वयं अपने ऊपर ले लिया।

भूखी-प्यासी फ्रांस की जनता इस मनोबल से लड़ी कि आखिर हिटलर को लेने के देने पड़ गये। उसे अनुभव हुआ कि ये लोग मन से हार मानने वाले नही है। इनकी आत्मा स्वतन्त्र है और इसका अन्तिम फल क्या हुआ ?

सीमित साधनो वाला फ्रास स्वतन्त्र हुआ। अगणित लोगो के शहीद होने पर भी फ्रास अन्ततः स्वतन्त्र हो गया। फ्रास की हालत एक कब्रिस्तान जैसी थी। धन और जन की बड़ी हानि हुई थी। अगणित लाशो के ढेर लगे थे। गिद्ध और कौवे मँडरा रहे थे।

पर फिर भी स्वतन्त्रता का प्रतीक उनका राष्ट्रध्वज एक बार फिर शान से फहराने लगा।

यह विजय किसने की थी ?

इस शानदार विजय का कारण वह मनोबल था। जनता के मनोबल ने उन्हे फिर आजाद किया, जिनके नेता जीतने की उम्मीद छोड़ बैठे थे।

एक घटना रूस की है। वहाँ के मन के धनी लोगो ने उन्नत मनोबल का एक रोमांचकारी उदाहरण उपस्थित किया, जो इतिहास के सुनहरे पृष्ठो पर आज भी चमक रहा है।

एक रात को दो बजे।

जब रूस शान्ति की प्रगाढ़ निद्रा मे निमग्न था, हिटलर ने धोखे से रूस पर आक्रमण कर दिया। रूस को स्वप्न मे भी इस हमले की आशा न थी। वह रक्षा के लिये तैयार न था। बिना तैयारी वह कर भी क्या सकता था ? उनकी हालत बड़ी अस्त-व्यस्त हो गई। जर्मनी की फौजें रूस में घुसकर मास्को तथा लेनिन ग्रेड तक पहुँच गईं।

यह वह युग था जब सारा यूरोप बर्बर विजेता हिटलर की नाटकीय विजयो से आतंकित था। किसी शक्ति को अनायास ही उससे टक्कर लेने की हिम्मत नहीं थी। विकराल गति से वह बढ़ता निरीह जनता को रौंदता चला आ रहा था। हिटलर की फौजें बढ़ते-बढ़ते असावधान और बिना तैयार रूस पर टूट पड़ी। बाढ़ वाली उन्मत नदी की तरह नुकसान करती और डराती हुई प्रमुख राज-नगर मे पहुँच गई। ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे रूस सदा-सर्वदा के लिए जर्मनी का गुलाम बन जायेगा।

संयोग की भयंकरता से यह स्वाभाविक था कि रूस की जनता मे अधीरता से डरकर भगदड़ मच जाती, किन्तु उनका मनोबल ऊँचा था, उन्होंने हिम्मत न हारी। वह गली-गली, सड़क-सड़क, कूँचे-कूँचे, घर-द्वार, हाट-बाट दुश्मन से जूझ पड़ी उनके पास हथियार नही थे। गोली बारूद की कमी थी। पर मनोबल साथ होने के कारण लाठी, डण्डा, भाला, बल्लम, मुँह, हाथ, प्याले, मेज, कुर्सी आदि उनके शस्त्र बन गये। वे कफन ओढ़कर लड़े। मास्को तथा लेनिनग्राड की गलियाँ खून और लाशो से पट गईं। जहाँ जो मिला, जो हथियार मिले उन्ही से लड़ा। युद्ध से पीछे नही हटा।

लगभग डेढ़ करोड़ रूसी जनता स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते बलिदान हो गये। इनमे से छः लाख वे शहीद नागरिक थे, जिन्होने अपना पूरा राशन सेना को दे दिया था और खुद भूख से तड़प-तड़प कर स्वतन्त्रता रूपी महल की नीव बन गये थे।

इसका फल क्या हुआ ?

रूस के लेनिनग्राड तथा मास्को की भूमि से हिटलर की खूनी फौजे वापिस न आईं। इतिहास बताता है कि वही से हिटलर की पराजय प्रारम्भ होकर जर्मनी की बरबादी तक पहुँची।

यह विजय किसकी थी ?

रूसी फौजो की ? नही।

रूसी राजनैतिक नेताओ की ? नही, नही।

अस्त्र-शस्त्रो की ? नही, नही, नही ! सर्वथा नही!

यह विजय थी—रूस की मनोबली जनता की ! रूस की पब्लिक के महान मानसिक बल की, जो उस आपत्ति मे भी यथावत् बुलन्द और अडिग रहा। यही नही, बल्कि और अधिक बढ़ गया।

भारतीय जनता का मनोबल

विगत चीनी आक्रमण और पाकिस्तान के विश्वासघात से भारत पर यकायक दो ओर से विपत्ति आ गई थी। भारत को युद्ध की कोई ट्रेनिंग नहीं थी, युद्ध की अति आधुनिक सामग्री का भी बड़ा अभाव था। चीन और पाकिस्तान का गठबन्धन था और कुछ विदेशी

शक्तियाँ भी छुपकर इनकी सहायता कर रही थी। इस संकटकालीन स्थिति मे भारत की जनता का मनोबल सदा ऊँचा रहा। समस्त भेदभाव भूलकर सब राजनैतिक पार्टियो ने देश की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। भारत के वीरो ने वीरता के ऐसे करिश्मे दिखाये कि शत्रु के दाँत खट्टे कर दिये और उसे पीछे हटना पड़ा। इस दृढ मनोबल से संसार मे भारत का मान ऊँचा हो गया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जनता का मनोबल ऊँचा रहने से सीमित साधनो से युद्ध जीते जा सकते है। लेकिन एक-एक व्यक्ति भी अपने वैयक्तिक जीवन मे अपने निजी मनोबल से अद्भुत साहस के कारनामे कर दिखाते हैं। मनोधनी व्यक्ति बड़ी से बड़ी आपत्तियो को जीत कर अपना मार्ग स्वयं बना लेते हैं।

एक पत्रकार का मनोबल

पेरिस के एक बलवे की एक घटना है—

दंगा बड़ी विकराल गति से फैला। फसाद करने वालो ने तोड़-फोड़ के कार्य किये, आग लगा दी। जिसे देखा, उसे मारा-पीटा और नुकसान किया। कानून की बुरी तरह अवहेलना की और ऐसा लगा, जैसे अब पूर्ववत् व्यवस्था न स्थिर रह सकेगी। सारे देश की दिलचस्पी पेरिस की ओर थी।

एक प्रसिद्ध समाचार पत्र का रिपोर्टर मैथ्यू डेजलेट इस खतरनाक दंगे की रिपोर्ट लेने के लिए नियुक्त किया गया। वह बड़ा कर्त्तव्यनिष्ठ था और अनेक सकटकालीन स्थितियो मे सफलतापूर्वक खबरे देकर प्रशंसित हो चुका था। उसमे उच्च कोटि का मनोबल था। अपनी दिशा मे वह बड़े साहस से कार्य करता था। उसका मन इतना सबल और सतुलित था कि खतरे से विचलित न होता था। इस दंगे की रिपोर्टिंग के लिये उस जैसे मनोबल के आदमी को ही चुना गया। वह घटनास्थल पर पहुँच गया और खतरे से बचता हुआ खबरे रिपोर्ट करता रहा।

उधर स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली गई । पुलिस ने बड़ी सरगर्मी से काम किया, किन्तु व्यर्थ। दंगा-फसाद करने वाली बड़ी-बड़ी भीड़ो पर गोलियो की वर्षा की गई, पर निष्फल ! सैकड़ो घायल हो गये, हजारो के चोटे आईं और बहुत-से मर गये।

इसी बीच उसने समाचार पत्र के प्रधान कार्यालय को अपने मित्र द्वारा यह संदेश भेज दिया कि मै दुर्घटना स्थल पर हूँ। बड़े सनसनीखेज दंगे चल रहे है। मारपीट, बलात्कार, हत्या और लूट-खसोट गुंडो का पेशा बन गया है। पुलिस भरसक कोशिश कर रही है, किन्तु स्थिति काबू से बाहर हो रही है। कभी-कभी तो गोलियो मे गुजरकर मुझे खबरे भेजनी पड़ती है और जान तक का खतरा रहता है। मौत सिर पर नाचती रहती है। बड़ा भयंकर दंगा है। बाद के समाचार शीघ्र ही भेजूँगा।

उधर घटनास्थल पर स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली जा रही थी। पुलिस ने शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी ओर से कुछ भी उठा न रखा। क्रुद्ध भीड़ ने पुलिस को भी पीटा और राजकीय शक्ति को जैसे पराजित कर दिया। अनेक पुलिस अधिकारी बुरी तरह घायल हुए। कुछ शहीद भी हुए। दगा करने वालो के हौसले और भी बुलन्द हो उठे। अतः शहर पर उनका राज्य-सा हो गया । कुछ देर पश्चात् पुलिस के हाथ से मामला निकल गया। शरारती तत्त्वो ने पूरी शैतानियत पैदा कर दी। विवश होकर अधिकारियो को फौज की सहायता लेनी पड़ी। फौज के आने पर भी कुछ देर तक दगा-फसाद वैसे ही चलता रहा। भीड़ ने समझा कि वे फौज को भी आतंकित कर लेगे।

मैथ्यू डेजलेट एक साहसी पत्रकार था। वह अपने उन्नत मनोबल के कारण कर्त्तव्यपालन मे डटा था। उसे दगे की आँखो देखी स्थिति का विस्तृत व्यापक सूक्ष्म वर्णन करना था। क्या-क्या हानि होती है ? कौन-कौन कब गिरता, पड़ता या मरता है ? वस्तुओ और सामान का क्या-क्या नुकसान होता है ? कौन सख्त घायल होता है ? कौन आखिरी दम तोड़ता है ? यह सब स्वय अपनी आँखो से देखकर लिखना ऊँचे मनोबल की अपेक्षा रखता है। मामूली अखबार नवीस क्या जमेगा ? मैथ्यू डेजलेट अपने दृढ मन के कारण लगातार न्यूज रिपोर्टिंग करता रहा। उसका मनोबल इस खतरे मे एक अदृश्य कवच के समान सदा उसके साथ था।

जब डराने-डाँटने और मामूली सजाओ से स्थिति न सम्हली तो मजबूर हो फौज ने गोली चला दी। दंगाइयो को काबू मे करने का यही एक मात्र उपाय था।

धाँयँ ! धाँयँ !! धाँयँ !!!

पहले गोलियो के हलके फायर आकाश की तरफ किये गये।

धाँयँ ! धाँयँ ! धाँयँ !!!

फिर भीड़ के पाँवो मे गोलियाँ चली। अब तो लोग घायल होकर गिरने लगे। भीड़ मे खलबली मच गई। लोग जान बचाने के लिए भागने लगे। कई भागते-भागते गिरे और सदा के लिए सो गये। मैथ्यू भी घायल होकर गिर पड़ा। उसको गिरते देखकर फौजी डाक्टर उसके पास आया और कहा—

"अरे, तुम बहुत घायल हो, चलो तुम्हे अस्पताल तक पहुँचा आऊँ। तुम्हारी मरहम पट्टी की जायेगी। इस खतरनाक स्थिति से अलग करना बेहद् जरूरी है। तुम्हे घातक गोलियाँ लगी है।"

घायल मैथ्यू फिर भी लिखता रहा। उसका मन अभी तक मजबूती से कर्त्तव्य निष्ठ था। वह मन मे घायल नही हुआ था।

"तुम्हे हम अस्पताल ले जा रहे है, लिखना फौरन बन्द करो।"

मैथ्यू ने इसके उत्तर मे उसके हाथ मे अपना कलम थमाते हुए कहा—"अस्पताल पीछे भेजना। पहले अखबार के लिए कृपा कर मेरी रिपोर्ट पूरी कर दो। मैने जो कुछ लिखा है उसी के नीचे यह और लिख दो—"सायंकाल तीन बजकर बीस मिनट-फौज की गोलियो से तीन घायल और एक मरा।" डाक्टर ने कलम उठाकर लिखना शुरू किया। "मरा कौन ?" डाक्टर ने आश्चर्य से पूछा। मैथ्यू कुछ देर बोल न पाया। उसके घावो से रक्त बह रहा था। उसके शरीर मे कमजोरी आती जा रही थी। वह काँप-सा रहा था और नेत्र मुँदे जा रहे थे।

"मै ।" मैथ्यू ने उत्तर दिया।

और फिर तुरन्त सदैव के लिए आँखे बन्द कर ली।

डाक्टर पत्रकार के मनोबल पर चकित था।

मैथ्यू शरीर से चकनाचूर भले ही हो गया था किन्तु मन से वह आखिरी दम तक अपराजित था। अन्त समय तक वह कर्त्तव्य पर सिर्फ अपने दृढ मनोबल के कारण ही डटा रहा था। उस सनसनी खेज दंगे की खूनी स्थिति मे भी वह अपने स्थिर और सन्तुलित मन के कारण ही सन्तुलित बना रहा।

मनोबल की परीक्षा ऐसे ही खतरो के समय होती है। संकट और विपत्ति मे यही हमे शान्त, कर्तव्यनिष्ठ और सन्तुलित रखता है। क्रन्दन और कोलाहल मे मनोबल ही शान्त और स्थिर रखता है। पुण्य की ओर बढ़ाता है और पाप से कवच की भाँति रक्षा करता है।

श्री चक्रवर्ती का अद्भुत मनोबल

चक्रवर्ती अंकगणित के निर्माता का नाम अंकगणित के क्षेत्र मे विख्यात है। उन्हे अपने विषय के प्रति अगाध प्रेम था। बड़े मनोयोगपूर्वक नई-नई समस्याओ का समाधान करते थे, नवीन खोजो मे लगे रहते थे। एक बार की बात है कि उन्हे किसी फोड़े का चीरा लगवाने के लिए अस्पताल जाना पड़ा।

डाक्टर क्लोरोफार्म देकर उन्हे बेहोश करने लगा। वे बोले, "नही, नही, मुझे बेहोश करने की कोई आवश्यकता नही है।"

"चीर-फाड़ मे समय लग जाता है। भयकर पीड़ा होती है। मरीज को इस परेशानी से बचाने के लिए उसे बेहोश करने का नियम है।" डाक्टर ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा।

बस, तकलीफ की ही बात है, न ? मै चाहे किसी भी तरह अपने मन को मजबूत बना लूँ या पीड़ा के भाव से हटाकर किसी दूसरी ओर लगा लूँ।"

"तब, तो हमारा काम बन जायगा।"

"ठीक है, तो लीजिये मै अपने आप को अंकगणित के किसी पेचीदा प्रश्न मे इतना एकाग्र कर लेता हूँ कि मेरा सारा शरीर ही निष्क्रिय जैसा हो जायेगा। उसमे तनिक भी पीड़ा का अनुभव न होगा। फिर आप जैसे चाहे, चीर-फाड़ कीजिये।"

"बस, हमे तो ऐसी शारीरिक स्थिति चाहिए, जिसमे आप तनिक भी न हिले, न डुले, न चीखे चिल्लाये।"

श्री चक्रवर्ती ने अपने घर से अपनी अंकगणित मँगाई और सिद्ध योगियो की भाँति एक पेचीदा प्रश्न हल करने मे दत्तचित्त हो गये।

उनका मन पूरी एकाग्रता से सवाल हल करने मे लगा हुआ था। उधर डॉक्टर चीर-फाड़ का काम निर्विघ्न कर रहा था।

श्री चक्रवर्ती को अपने उन्नत मनोबल के कारण शरीर मे होने वाली चीर-फाड़ का तनिक भी अनुभव न हुआ।

मन की शक्ति इतनी अधिक है कि समूचा शरीर उसके वश मे रहता है। यदि मनोबल बढ़ जाय तो मन जैसे चाहे, शरीर को वैसे ही मोड़ सकता है।

एक अजीब अनुभव

पाकिस्तान से लुटे हुए दो व्यक्ति कोई पचास वर्ष पहले कोटा, राजस्थान आये। वे फटे हाल थे। हाथ मे पैसा न था, तो कोई किराये पर मकान कैसे दे ?

एक कहता, "मेरा सर्वस्व लुट गया। मेरी आलीशान इमारते थी, बड़ा कारोबार था, अनेक नौकर-चाकर थे, शहर मे बड़ी प्रतिष्ठा थी। अब सब कुछ लुट गया। मेरा बुढ़ापा कैसे बीतेगा? मेरे बच्चो का क्या होगा ? कोई मेरी सहायता करो।"

दूसरा कहता—"मेरे मित्र, मेरे भी यह सब कुछ था। अच्छा खाता-पीता आदमी था, पर मुझ मे वह *मनोबल है जिसकी वजह से मै फिर हिन्दुस्तान मे भी* वही इज्जत पैदा करूँगा, जो सिन्ध (पाकिस्तान) मे थी।"

दूसरे व्यक्ति को एक सहृदय ने मुफ्त ही अपने यहाँ एक कमरा दे दिया। उसने अखबार बेचने का व्यवसाय किया। वह सारे दिन फेरी लगाता, कमीशन पर अखबार बेचता, उसकी तन्मयता देख उसके मालिक ने कमीशन बढ़ा दिया। फिर उसने अलग से दो चार नये अखबारो की ऐजेन्सी ले ली। पुस्तक बेचने का पेशा भी चालू कर लिया, किराये पर उपन्यास भी पढ़ने को देने लगा, जमीन-जायदाद बेचने की दलाली भी शुरू कर दी। पन्द्रह साल मे आज वह शहर का एक लब्ध प्रतिष्ठित मालदार नागरिक गिना जाता है।

पहला निराशावादी व्यक्ति हृदय की गति रुकने के कारण स्वर्गवासी हो चुका है।

मजबूत मनोबल के कारण हम बड़ी-बड़ी हानि, मुसीबते, व्यापार मे हानि, सम्बन्धियो की दु:खद मृत्यु, नौकरी छूटना आदि बिना हानि के सहन कर लेते है। जिनके पास मनोबल का अभाव है, वे दिल के धक्के से, मानसिक आघात न सह सकने के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त होते है।

पहले छोटे कार्य, मामूली व्यापार, साधारण नौकरी से महान कार्य प्रारम्भ करे। इनमे सफलता पाने से उत्तरोत्तर मनोबल बढ़ता रहता है। फिर उनसे बड़े कार्य हाथ मे लेने चाहिए। सफल व्यक्तियो ने किसी विशेष दिशा मे जो अद्भुत सफलता प्राप्त की होती है, उसका कारण उनकी रुचि, इच्छा, लगन एवं श्रमशीलता का सतेज होकर अभीष्ट मार्ग मे संलग्न होना ही रहा है।

जो शक्ति किसी व्यक्ति को सफलता की चरम स्थिति मे पहुँचाती है, उत्तरोत्तर उसकी हिम्मत बढ़ती है, उसका नाम मनुष्य के मन का बल ही है।

मन मजबूती, स्थिरता, सन्तुलन और अपनी शक्तियो के प्रति पूर्ण विश्वास अर्थात् लक्ष्य प्राप्त करने के लिये निरन्तर बढ़ते चलने की दृढ़ता का यदि समुचित रीति से विकास किया जाये, तो अन्त मे अवश्य सफलता प्राप्त हो जायेगी।

जीवन एक संग्राम है, जिसमे विजय केवल उन्हे मिलती है, जो दृढ़ और उन्नत मनोबल का कवच धारण किये रहते है और जो अपने निहित पराक्रम और पौरुष की उत्कृष्टता सिद्ध करते है। शारीरिक स्वास्थ्य ठीक हो, पर मनोबल न हो, तो आदमी मानसिक आघात से, अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है।

अविकसित मनोबल के कारण हमारी योजनाएँ सफल नही होती। हमारा मन हारा रहता है, तो शरीर भी हारता है और व्यक्ति भी पराजित होता है। जिन्दगी मे मुसीबतो को परास्त करने का आधार है। व्यक्ति का मनोबल! मनुष्य मे महत्त्वाकांक्षाएँ उठे और वह उन्हे पूर्ण करने का प्रयत्न करे। पौरुष और साहस से काम ले। न हिम्मत छूटे, न धैर्य टूटे ! इससे जीवन मे आशा और उत्साह का संचार होता है। निराशा राक्षसी दूर भागती है। लक्ष्य मे सफलता मिल जाती है, तो नये काम हाथ मे लेने और उन्हे पूर्ण करने की शुभ प्रवृत्ति जागती है।

प्रत्येक सफलता मनुष्य का मनोबल (मन की ताकत) बढ़ाती है पर क्रिया क्षेत्र मे यह बात सदैव सम्भव नही है। संघर्ष करते हुए सफलता के साथ असफलता भी हो सकती है। आशा के साथ निराशा की भी उत्पत्ति हो सकती है। मनोबल की परीक्षा का यही समय होता है। आशायुक्त जीवन से निरन्तरता आती है, तो निराशा से निकम्मापन भी आ सकता है। यहाँ परिस्थिति न सम्हाले, तो मनुष्य के सारे प्रयास व्यर्थ हो सकते है।

इसलिए यह बहुत जरूरी बात है कि सफलता की आशा रखे,. पर साथ ही असफलता के समय धैर्य भी जाग्रत रखे। किसी भी अवस्था मे मनोबल क्षीण न हो, तो रुका कदम रुका नही रहता, निराशा आशा मे बदलती और हारी बाजी फिर से जीत मे बदल जाती है।

पहले छोटी इच्छाएँ कीजिये और उन्हे संकल्प का रूप दीजिये। एक संकल्प पूरा होगा, तो आपका मनोबल बढ़ेगा, उत्साह और उल्लास आयेगा। क्रमश: अपने संकल्प का स्तर बड़ा बनाइये और इस तरह अपने मनोबल को और भी ऊँचा उठाते हुए चले जाइये, पर याद रहे कि सत्संकल्प टूटना नही चाहिए, अन्यथा मन मे निराशा उत्पन्न होगी और मानसिक क्रियाशक्ति को छिन्न-भिन्न कर देगी। आप छोटा होने का विचार अपने मन से निकालकर दूर फेक दीजिये, आपके मन मे अपार सामर्थ्य है।

पराक्रम और पुरुषार्थ जीवन के अविच्छिन्न अंग बनें

प्रतिकूलताएँ वस्तुतः विकास में सहायक

अनुकूलताएँ आगे बढ़ने के लिए किन्हीं-किन्ही को ही जन्मजात प्राप्त होती है। अधिकांश तो प्रतिकूलताओ में ही आगे बढ़े और सफलता के उस शिखर पर जा चढ़े जो सामान्य व्यक्ति के लिए असम्भव प्रतीत होती है। ऐसे शूरवीरो-जीवट सम्पन्न साहसियो के समक्ष अन्ततः परिस्थितियाँ भी नत-मस्तक होती है।

बहुत समय पूर्व ग्रीस मे गुलाम प्रथा का आतंक चरम सीमा पर था। गुलामो की खरीद-बिक्री का कार्य पशुओ की भाँति चलता था। उनके साथ व्यवहार भी जानवरो की भाँति होता था। गुलामो के विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य की बातो पर ध्यान देने की तो बात ही दूर थी, यदि कोई गुलाम पढ़ने-लिखने की बात सोचता था तो इसे अपराध माना जाता था। ऐसी ही विषम, प्रतिकूल एवं आतंक भरी परिस्थितियो मे एक गुलाम के घर जन्मे एक किशोर के मन मे ललित कला सीखने की उत्कट इच्छा जाग्रत हुई। ग्रीस मे यह कानून बन चुका था कि कोई भी गुलाम स्वाधीन व्यक्ति की भाँति ललित कलाओ का अध्ययन नही कर सकता था। जबकि स्वाधीनो को हर प्रकार की सुविधा थी और उन पर किसी प्रकार की रोक-टोक न थी।'क्रियो' का किशोर हृदय इस स्थिति को देखकर रोता रहता था। डर था कि उसकी कलाकृति पकड़ी गई तो कठोर दण्ड मिलेगा। सहयोगी के नाम पर एकमात्र उसकी बहिन उसे निरन्तर प्रोत्साहित किया करती थी और कहती थी—"भैया ! डरने की आवश्यकता नही तुम्हारी कला मे शक्ति होगी तो स्थिति अवश्य बदलेगी, तुम अपनी आराधना मे लगे भर रहो।' बहिन की प्रेरणा उसमे समय-समय पर शक्ति संचार करती थी। कला देवता की आराधना के लिए बहिन ने अपने टूटे-फूटे मकान के नीचे तहखाने मे भाई के लिए सारी आवश्यक [illegible] जुटा दी। भोजन-शयन की व्यवस्था भी उसके लिए तहखाने मे ही थी। क्रियो ने अपनी समूची कलाकृति संगमरमर की एक मूर्ति बनाने मे झोक दी।

उन्हीं दिनों ग्रीस के एथेन्स नगर मे विशाल कला प्रदर्शनी आयोजित हुई। पेरी क्लीज नामक विद्वान प्रदर्शनी के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। एस्पेसिया, फीडीयस, दार्शनिक सुकरात, साफोक्लीज जैसे विद्वान भी कला की प्रदर्शनी में आमन्त्रित थे। ग्रीस के सभी प्रख्यात कलाकारो की कलाकृतियाँ वहाँ आयी थीं। एक-एक करके सभी कलाकृतियों के ऊपर से चादर हटा दी गई। सभी पर्यवेक्षको की निगाहे अन्ततः उस संगमरमर की मूर्ति पर जाकर ठहर गईं। दर्शको को ऐसा लगा जैसे मानो ललित कलाओ के देवता अपोलो ने अपने हाथो मूर्ति को गढ़ा हो। इसको बनाने वाला कौन है ? सभी का एक ही प्रश्न था। कोई उत्तर न मिला। लोग मूर्तिकार को देखने के लिए आतुर हो रहे थे। इतने मे स्थानीय आयोजक एक लड़की को पकड़कर लाये, जिसके कपड़े जरा-जीर्ण हो रहे थे और बाल बिखरे थे। रक्षको ने बताया कि यह लड़की कलाकार का नाम जानती है किन्तु बताती नही। स्थानीय कानून के अनुसार गुलाम व्यक्ति कला मे कोई रुचि नही ले सकता। लड़की की चुप्पी पर उसे जेलखाने मे डाल देने का आदेश हुआ। इतने मे एक किशोर सामने आया और 'क्रियो' नाम से अपना परिचय दिया और दृढ़ता के साथ बोला मैने 'कला को भगवान मानकर पूजा की है, आपका कानून यदि अपराध मानता है तो हम अपराधी है।'

किशोर की दृढ़ता, अल्पायु मे कला के प्रति अपार लगन और कलाकृति के अनुपम सौन्दर्य ने अध्यक्ष पेरी क्लीज को मुग्ध कर दिया। कानून की कठोरता हृदय को द्रवीभूत होने से रोक न सकी और पेरी क्लीज ने घोषणा की 'क्रियो' दण्ड का नही, सम्मान और पुरस्कार का पात्र है। हमे यह कानून बदलना होगा, जिससे कला देवता का अपमान होता हो। उस दिन से पेरी क्लीज के प्रयत्नो से कानून बदला गया। गरीबी और विपन्न परिस्थितियो मे भी किशोर कलाकार की कला के प्रति अपार लगन, ध्येय के प्रति दृढ़ निष्ठा ने न केवल उसे विश्व के मूर्धन्य

कलाकारो की श्रेणी मे पहुँचा दिया वरन् उस कानून मे भी परिवर्तन करने के लिए बाध्य किया जो अमानवीय था।

प्रसिद्ध विद्वान विलियम कॉबेट अपनी आत्म कथा मे लिखता है कि 'प्रतिकूलताएँ मनुष्य के विकास मे सबसे बड़ी सहचरी है। आज मैं जो कुछ भी बन पाया हूँ विपन्न परिस्थितियो के कारण ही सम्भव हो सका है। जीवन की अनुकूलताएँ सहज ही उपलब्ध होतीं तो मेरा विकास न हो पाता। कॉबेट के आरम्भिक दिन कितनी कठिनाइयो एवं गरीबी मे बीते, यह उसके जीवन चरित्र को पढ़ने पर पता चलता है। वह लिखता है कि "आठ वर्ष की अवस्था मे मै हल चलाया करता था। ज्ञान अर्जन के प्रति अपार रुचि थी। घर से लन्दन भाग आया तथा सेना मे भर्ती हो गया। रहने के लिए एक छोटा कमरा मिला, जिसमे चार अन्य सैनिक भी रहते थे। जो पैसा मिलता था, उससे किसी प्रकार दो समय की रोटी जुट जाती थी। मोमबत्ती और तेल खरीदने के लिए पैसा नही बचता था। अध्ययन मे गहरी रुचि थी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए मैने आधा पेट भोजन करना आरम्भ किया, जो पैसा बचता था, उससे स्याही, मोमबत्ती, कागज खरीदकर लाता था। स्थानीय लाइब्रेरी से पुस्तके अध्ययन के लिए मिल जाती थीं। कमरे मे अन्य सिपाहियो के हँसने-बोलने से मुझे निरन्तर बाधा बनी रहती थी किन्तु इसके बावजूद भी मैने अध्यवसाय का क्रम सतत् जारी रखा। समय को कभी व्यर्थ नही गँवाया। आज उसी का प्रतिफल है कि मै वर्तमान स्थिति तक पहुँच सका हूँ। जीवन के संघर्षों से मै कभी घबड़ाया नही वरन् उनको विकास का साधन माना।

प्रख्यात विचारक 'टालमेज' कहा करता था, 'युवको ! क्या तुम्हे कठिनाइयो को, संघर्षों को देखकर डर लगता है ? क्या गरीबी तुम्हारे विकास मार्ग मे बाधक है ? तुम्हारा यह सोचना गलत है। सफलताओ के शिखर पर जा चढ़ने वाले विद्वानो, समृद्धो, महापुरुषो के जीवन चरित्र का अध्ययन करो। तुम पाओगे कि उनमे से अधिकाश तुमसे भी गई-गुजरी स्थिति मे थे किन्तु उन्होने आत्मविश्वास नहीं खोया। अपने श्रम-पुरुषार्थ एवं समय के सदुपयोग द्वारा वे असामान्य स्थिति मे जा पहुँचे। देखो सुनहरा दिन तुम्हारे अभिनन्दन के लिए सफलताओ का हार लिए खड़ा है। जड़ता छोड़ो चैतन्यता अपनाओ। तुम्हारा निराशावादी चिन्तन ही विकास मे अवरोध उत्पन्न कर रहा और आगे बढ़ने से रोक रहा है। तुम गरीब नही समृद्ध हो। परमात्मा ने तुम्हे अद्भुत शरीर, विलक्षण मस्तिष्क एवं समझ की अपार पूँजी दी है, उसकी तुलना किसी भौतिक वस्तु से नही की जा सकती है। इसका सदुपयोग करो सफलताएँ तुम्हारे चरणो मे झुकेगी।

वियतनाम के राष्ट्रपिता 'होचीमिन्ह' को बचपन मे ही अपने माता-पिता से अलग होना पड़ा। बचपन से लेकर युवावस्था तक वे संघर्ष करते रहे। फ्रान्सीसी शासन का विरोध करने के अपराध मे उन्हे गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। जेल से निकलते ही वियतनाम की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने लगे। इसके लिए उन्हे जेल मे कितनी ही बार कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी पर अन्ततः अपने ध्येय मे सफल हुए। देशभक्ति के अनुपम त्याग के कारण उन्हे महात्मा गाँधी की भाँति राष्ट्रपिता का सम्मान मिला। शेक्सपियर की तुलना संस्कृत के महाकवि कालिदास से की जाती है। वह एक कसाई का बेटा था। परिवार की गाड़ी चलाने के लिए आरम्भ मे उसे भी यही धन्धा करना पड़ा पर अपने पुरुषार्थ के कारण वह अँग्रेजी का सर्वश्रेष्ठ कवि तथा नाटककार बना।

प्रसिद्ध कवि मार्कट्वेन जिस घर मे रहता था वह वस्तुतः गायो एवं घोड़ो के लिए बनायी गयी कोठरी थी, माता-पिता सहित वह उसी मे रहता था। अर्थाभाव के कारण उनके पिता ऊँची शिक्षा दिलाने की व्यवस्था न जुटा सके। स्कूली पढ़ाई छूट जाने पर भी ट्वेन ने अध्ययन बन्द नही किया। साहित्यिक अभिरुचि से उसकी प्रतिभा निखरती गई और वह विश्वविख्यात साहित्यकार बना। उसकी रचनाओ के लिए अनेको विश्वविद्यालयो ने उसे डाक्टर की उपाधि से विभूषित किया। दार्शनिक कन्फ्यूशियस जब तीन वर्ष का था, तभी पितृ-स्नेह से उसे वंचित हो जाना पड़ा। अल्पायु मे ही उसे जीविकोपार्जन जैसे कठोर कामो मे लगना पड़ा। गरीबी और तंगी की स्थिति मे बड़े परिवार का भार ढोते हुए भी उसने अपनी ज्ञान-साधना जारी रखी। दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वानो मे आज भी कन्फ्यूशियस का नाम विश्व भर मे श्रद्धापूर्वक लिया जाता है।

भूमध्य सागर मे इटली के निकट एक छोटे-से द्वीप मे जन्म लेने वाला नेपोलियन १६ वर्ष की आयु मे ही अनाथ हो गया। छोटे कद, लम्बे चेहरे, बेडौल शरीर की आकृति वाले इस बच्चे को कभी भी साथियो से प्यार-प्रोत्साहन नहीं मिला। सदा उपहास और तिरस्कार ही सहना पड़ा। बुद्धि की दृष्टि से भी यह सामान्य बच्चो की तुलना मे मन्द था। पर लगन और आत्मविश्वास की पूँजी उसके पास प्रचुर मात्रा मे थी, जिसको लेकर वह एकाकी ही बढ़ता चला गया। एक अनाथ, असहाय लड़का विश्वविजयी बना, यह उसके संकल्प, पुरुषार्थ और आत्मविश्वास का ही प्रतिफल था।

मार्जास्कलो दोवास्का नामक बालिका को अपने गुजारे के लिए एक कुलीन परिवार मे नौकरी करनी पड़ी। बच्चो की देखभाल, घर की सफाई जैसे काम करने पड़े। उसी परिवार के एक युवक ने 'मार्जा' से विवाह करने की इच्छा अपने माता-पिता से व्यक्त की। फलस्वरूप उसके माता-पिता ने 'मार्जा' को नौकरी से निकाल दिया। इस अपमान से उसकी दिशाधारा बदल गई। बालिका ने निर्वाह के लिए छोटे-छोटे काम करते रहने के साथ-साथ

अध्ययन आरम्भ किया। आगे चलकर उसने पीयो क्यूरी नामक एक युवक से विवाह कर लिया। दोनो ने मिलकर रेडियम नामक तत्त्व खोजकर विज्ञान जगत को एक अनुपम भेट प्रस्तुत की। इस बालिका को आज भी दुनिया मैडम क्यूरी के नाम से जानती है।

यो तो हिटलर को एक खूँखार अह केन्द्रित तानाशाह के रूप मे ख्याति मिली है। फिर भी उस ख्याति और जीवन मे प्राप्त सफलताओ के लिए उसे कठोर संघर्ष करना पड़ा तथा भारी मूल्य चुकाना पड़ा। बचपन मे ही माता-पिता दिवंगत हो गये। मजदूरी करके उसे अपना निर्वाह करना पड़ा। पर सामान्य से असामान्य बनने की महत्त्वाकांक्षा और तदुपरान्त प्रयास एव पुरुषार्थ के कारण वह सफल होता चला गया। रूस के लौह पुरुष स्टालिन का जन्म जार्जिया प्रान्त मे एक गरीब परिवार मे हुआ। माता-पिता गुलाम थे, इन दिनो गुलाम का पढ़ना-लिखना भी अपराध घोषित था। ऐसी विषम परिस्थितियो मे भी यह बालक अध्ययन मे जुटा रहा। अपनी देशभक्ति सिद्धान्तवादिता एवं ध्येय निष्ठा के बल पर वह रूस का भाग्य विधाता बना।

अपनी शारीरिक कुरूपता के कारण सैमुअल जॉनसन को किसी भी विद्यालय मे नौकरी नही मिल सकी। बचपन से साथ चली आ रही घोर विपन्नता ने पल्ला नही छोड़ा। नौकरी की आशा छोड़कर वह अध्ययन मे लगे रहे। मेहनत-मजदूरी करके वे अपना गुजारा करते रहे। कुछ ही समय बाद उनकी साधना ने चमत्कार दिखाया और एक विद्वान साहित्यकार के रूप मे इंग्लैण्ड में ख्याति मिली। जॉनसन का अँग्रेजी विश्व कोष आज भी एक अनुपम कृति माना जाता है। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उनकी सेवाओ के लिए उन्हे 'डाक्टर' की उपाधि प्रदान की। 'टाम काका की कुटिया' की प्रसिद्ध लेखिका हैरियट स्टो को परिवार का खर्च चलाने के लिए कठिन श्रम करना पड़ता था। गरीबी और कठिनाइयों के बीच घिरे रहकर भी उन्होने थोड़ा-थोड़ा समय निकालकर पुस्तक पूरी की। अन्तः प्रेरणा से अभिप्रेरित होकर लिखी गई उनकी यह पुस्तक अमेरिका में गुलामी प्रथा के अन्त के लिए एक वरदान साबित हुई।

ये उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण है कि सफलता के लिए परिस्थितियां का उतना महत्व नही है, जितना कि स्वयं की मन स्थिति का। आशावादी दृष्टिकोण, सकल्पों के प्रति दृढ़ता और आत्मविश्वास बना रहे, तदनुरूप प्रयास-पुरुषार्थ चल पड़े तो अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कर सकना हर किसी के लिए सम्भव है।

कठिनाइयों से डरिये मत, जूझिये

जेम्स ऐलेन ने अपनी पुस्तक 'फ्राम प्रापर्टी टू प्रास्पर्टी' की शुरूआत इन पक्तियों से की है, 'वेदना, दुःख और अपवाद जीवन की परछाइयाँ है।' ससार मे एक भी हृदय ऐसा नही मिलेगा, जिसे दुःख ने स्पर्श न किया हो। एक भी मन ऐसा नहीं होगा जिस पर कोई घाव न लगा हो, एक भी आँख ऐसी नही होगी, जिससे कभी न कभी खून के आँसू न टपके हो। संसार मे एक भी परिवार ऐसा नही है, जिसमे मृत्यु ने प्रवेश न किया हो और जो रोग व मृत्यु से त्रस्त न रहा हो, जिसने सगे-सम्बन्धियो का बिछोह न देखा हो। बिल्ली जिस प्रकार चूहे को दबोचती है, दुःख का मजबूत पंजा मनुष्य को उसी प्रकार अचानक आ दबोचता है तो क्या दुःख और विषाद से बचने का कोई मार्ग नही ? क्या विपदा की जंजीरो को तोड़ फेकने का कोई उपाय नही ? क्या स्थाई समृद्धि, शक्ति और आनन्द के स्वप्न देखना मूढ़तापूर्ण है ? नही मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि विपदा को समाप्त कर देना सम्भव है। ऐसा एक उपाय, ऐसी एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा रोग, दरिद्रता अथवा विपरीत परिस्थितियो को हमेशा के लिए समाप्त करके स्थाई समृद्धि लाई जा सकती है और मनुष्य विपदा और दरिद्रता के दोबारा लौट आने के भय से मुक्ति प्राप्त करके स्थाई आनन्द और शान्तिमय जीवन जी सकता है। ऐसे सुख और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करने का एकमात्र उपाय यह है कि मनुष्य दुःख के वास्तविक स्वरूप को भलीभाँति समझ ले।

क्या है दुःख का वास्तविक स्वरूप ? दुःख और कुछ नही सुख के अभाव का ही नाम है। प्रकाश के अभाव का नाम अन्धकार है। प्रिय परिस्थितियाँ नही होतीं तो अप्रिय की अनुभूति होती है। अनुकूलता के अभाव मे प्रतिकूलता भासती है। इन दोनों स्थितियो मे सामंजस्य स्थापित किया जा सके तो प्रत्येक परिस्थिति मे प्रसन्न और प्रफुल्ल रहा जा सकता है। प्रश्न उठता है कि यह सामंजस्य किस प्रकार स्थापित किया जाय ? उत्तर एक ही है, तथ्यो के प्रति सन्तुलित और समझपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाय। यह मान्यता बनाकर चला जाये कि दिन और रात की तरह मनुष्य के जीवन मे प्रिय और अप्रिय घटनाक्रम आते-जाते रहते है। इन उभयपक्षी अनुभूतियो से ही जीवन की सार्थकता और शोभा है। यदि एक ही प्रकार की परिस्थितियाँ सदा बनी रहे तो यहाँ सभी कुछ रूखा और नीरस लगने लगेगा। सदा दिन ही रहे, रात कभी भी न हो, सदा मिठाई ही खाने को मिले, नमकीन के दर्शन ही न हो, सबकी उम्र एक सी ही रहे, न कोई छोटा हो और न बड़ा हो, सर्दी या गर्मी की एक ऋतु रहे, दूसरी बदले हो नही तो फिर इस संसार की क्या सुन्दरता रह जायेगी ? सारी शोभा-सुषमा ही नष्ट हो जायेगी। सदा प्रिय, अनुकूल और सुखद परिस्थितियाँ ही बनी रहे, कभी अप्रिय और प्रतिकूल स्थिति न आये तो कुशलता, कर्मठता और सहकारिता की जरूरत ही न पड़ेगी। लोग आलसी, निकम्मा और नीरस जीवन जीते हुए किसी प्रकार मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहेगे।

अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण सुविधाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रश्न यह नही कि उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है ? महत्वपूर्ण तो यह है कि प्रतिकूलताओं और अनुकूलताओं के चढ़ाव-उतार से मनुष्य मे कई ऐसे सद्‌गुण उत्पन्न होते है जो उसके व्यक्तित्व की गरिमा को बढ़ाते है। प्रतिकूलताओ मे पुरुषार्थ, साहस, धैर्य, सन्तुलन, दूरदर्शिता जैसे सद्‌गुणो का विकास होता है। बल्कि कहा जाना चाहिए कि इन्ही परिस्थितियो मे ये सद्‌गुण उत्पन्न होते है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि इन प्रतिकूलताओ मे अपना सन्तुलन न खोया जाये। यदि सन्तुलन बना रहे तो जीवन के ऐसे विविध और उपयोगी अनुभव होते है, जो व्यक्तित्व की शोभा-सुषमा मे चार-चाँद लगाते है। वे अनुभव व्यक्तित्व को गुण सम्पन्न-समृद्ध बनाते है।

प्रतिकूलताओ के सम्बन्ध मे विधेयात्मक दृष्टि अपनाने की आवश्यकता और उपयोगिता बताते हुए किसी विचारक ने लिखा है, "अगर कोई व्यक्ति अपने आपको अन्धेरे कमरे मे बन्द करके यह सोचे कि प्रकाश का कोई अस्तित्व ही नही है तो यह उसकी भूल है। अन्धकार तो सिर्फ उसके छोटे कमरे मे बन्द है, बाहर उजाला ही उजाला है। बेहतर यह है कि आपने अपने इर्द-गिर्द भ्रम-भ्रांतियों की जो दीवारें खड़ी कर ली है, उन्हे गिराकर अन्धेरे बन्द कमरे मे बाहर निकले और सर्वव्यापी प्रकाश से साक्षात्कार करे।"

प्रतिकूलताओं के इस अन्धकार से निकलने के बाद जीवन का जो अनुभव होता है, उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए किसी शायर ने लिखा है—

"गर्दिशे अय्याम तेरा शुक्रिया,
हमने हर पहलू से दुनिया देख ली।"

जीवन मे एकरसता न आये, अनेक अनुभव प्राप्त हो इसके लिए परिस्थितियो का अदलना-बदलना आवश्यक है। यदि सदा अनुकूलता ही बनी रहे तो फिर ढर्रे का जीवन जीने वाले लोग गुणो की दृष्टि से पिछड़े ही पड़े रहेगे और उन्हें विकास की, परिश्रम-पुरुषार्थ की आवश्यकता ही अनुभव नही होगी। इस प्रकार के अगणित तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए सृष्टा ने इस दुनिया मे अनुकूलता और प्रतिकूलता उत्पन्न की है। अनुकूल स्थिति से लाभ उठाकर हम अपने सुविधा साधनो को बढ़ाये और प्रतिकूलताओ के पत्थर से घिसकर अपनी प्रतिभा पैनी करे, यही उचित है और उपयुक्त भी।

कई व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियो में अपना सन्तुलन खो बैठते है और वे बेहिसाब दुःखी रहने लगते है। एक बार प्रयत्न करने पर भी कष्ट दूर नही हुआ या सफलता नहीं मिली तो वे निराश होकर बैठ जाते है। कई व्यक्ति इससे भी आगे बढ़े-चढ़े होते हैं और बैठे-ठाले भविष्य मे विपत्ति आने की शंका करते रहते है। यह नही होता कि प्रस्तुत असुविधा या प्रतिकूलताओ के समाधान का पुरुषार्थ करें या उपाय सोचे। उल्टे इसके विपरीत वे चिन्ता, भय, निराशा, आशंका और उद्विग्नता जैसी उलझने खड़ी करके अपने को उसमे फँसा लेते है और खुद ही एक नई विपत्ति गढ़कर खड़ी कर लेते है। इस वैभव के अवसाद, प्रभावो और हानियो को समय रहते समझ लेना चाहिए ताकि इस दलदल मे फँसने की विपत्ति से बचा जा सके।

देखा गया है कि जिन आशंकाओ से त्रस्त होकर चिन्तित रहा जाता है उनमे से अधिकांश निराधार ही है। इस सन्दर्भ मे जर्मन वैज्ञानिको द्वारा किया गया एक सर्वेक्षण बहुत महत्वपूर्ण है। वहाँ के मनःशास्त्रियो के एक दल ने जनवरी सन् १९७९ मे चिन्तातुर लोगो की पड़ताल के लिए एक प्रश्नावली तैयार की और उसे एक प्रसिद्ध पत्रिका मे इस आग्रह के साथ प्रकाशित किया कि पाठक उसके उत्तर दे। करीब ५ हजार पाठको ने उत्तर दिये। इन उत्तरो का विश्लेषण किया गया और उनसे जो निष्कर्ष प्राप्त हुए उनके अनुसार ४० प्रतिशत व्यक्तियो की चिन्ता ऐसी समस्याओं को लेकर थी, जिनकी केवल आशका थी, वे सामने नही आई थी। ३० प्रतिशत समस्याये ऐसी थी जिनके कारण बहुत मामूली से और उन्हे थोड़ी-सी सूझबूझ से सुलझाया जा सकता था। १२ प्रतिशत व्यक्तियो की चिन्ताये स्वास्थ्य सम्बन्धी थी और वह भी ऐसी नही जो उपचार से ठीक न हो सके। १० प्रतिशत समस्याये ऐसी थी, जिनके लिए दौड़-धूप करना, दूसरो का सहयोग लेना और थोड़ी परेशानी उठाना आवश्यक प्रतीत हुआ। केवल ८ प्रतिशत चिन्ताये ही ऐसी थी, जिन्हे कुछ वजनदार कहा जा सकता था और जिन्हें पूरी तरह हल न किया जा सका तो उनके कारण कुछ हानि उठाने की सम्भावना विद्यमान थी।

यह तो हुआ चिन्ताओ का विश्लेषण। अधिकांश व्यक्ति ऐसे कारणो से चिन्तित रहते है, जो वास्तव मे कोई कारण नही होते। उनके कारणो को देखकर यही कहा जा सकता है कि उन्हे चिन्तित रहने की आदत है। हालांकि चिन्ता से किसी समस्या का, वास्तव मे यदि कोई समस्या है तो भी समाधान नही होता। देखा गया है कि चिन्ताग्रस्त रहने वाले व्यक्ति निश्चिन्त व्यक्तियो की अपेक्षा कही अधिक घाटे मे रहते है। निश्चिन्त रहने वाले, मन-मौजी और मस्त लोगो को नियत समय पर ही समस्या का सामना करना पड़ता है, जबकि चिन्तातुर लोग बहुत पहले से ही मानसिक सन्तुलन खो बैठते है और हड़बड़ी के कारण अपना अच्छा स्वास्थ्य भी गँवा बैठते है। मस्तिष्क जितना भी अधिक समस्याओ से उलझा रहेगा, उतना ही वह समस्याओ को सुलझाने मे असमर्थ हो जायेगा। क्रोधी, आवेश ग्रस्त, आक्रोश भरे हुए दिमाग एक प्रकार से विक्षिप्त जैसे हो जाते है।

इन चिन्ताओ के कारण उत्पन्न हुए विक्षेपो का कारण क्या है ? जीवन के प्रति सुलझे हुए दृष्टिकोण का

अभाव। जीवन के प्रति यदि सहज दृष्टिकोण अपनाकर चला जायेगा। अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं को दिन और रात की तरह स्वाभाविक समझा जायेगा तो कोई कारण नही है कि प्रगति पथ अवरुद्ध हो जाय। दृष्टिकोण, इच्छाओं-आकांक्षाओ के सम्बन्ध में किसी विचारक का कथन है कि आप जैसे है वैसी ही आपकी दुनिया है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आपके अभ्यन्तर की छाया है। बाहर जो कुछ है वह गौण है, क्योंकि वह सब आपकी मनःस्थिति का ही प्रतिबिम्ब है। महत्वपूर्ण तो यह है कि आप भीतर से क्या है ? भीतर से आप जो कुछ भी है, उसी के अनुरूप आपकी दुनिया ढल जायेगी। जो कुछ आप जानते है, अनुभव द्वारा प्राप्त हुआ है और जो कुछ आप भविष्य में जान सकेंगे वह भी आपके अनुभव द्वारा ही प्राप्त होगा तथा आपके व्यक्तित्व का अविच्छिन्न अंग बन जायेगा।

इसमें कोई सन्देह नही है कि जीवन और जगत के प्रति मनुष्य की अपनी दृष्टि ही उसकी दुनिया का निर्माण करती है। इसीलिये परिस्थितियाँ उतनी महत्त्वपूर्ण नही है जितनी कि मन स्थिति। इसीलिए, सौन्दर्य, हर्ष और उल्लास अथवा दुःख, विषाद और पीड़ा का अनुभव मनुष्य बाहरी कारणो से करता है। अस्तु, प्रस्तुत प्रतिकूलताओं का समाधान करने के लिए स्थिर चित्त से तन्मय होना तो उपयुक्त है किन्तु इसके लिए चिन्तित होने, निराश हो जाने से कोई बात नही बनती। चिन्ता और निराशा तो समाधान के मार्ग मे व्यवधान उत्पन्न करती है। प्रतिकूलताओं को देखकर घबड़ाना और उनके लिए चिन्तित होते रहना व्यर्थ ही नही हानिकारक भी है।

"मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है" इस सिद्धान्त को यदि जीवन का मूल मन्त्र बना लिया जाय तो इसमे सन्देह नही कि पुरुषार्थ परायण होकर अभीष्ट प्रकार की सफलता सम्पादित की जा सकती है। कहते है कि मनुष्य का भाग्य उसके हाथ एवं मस्तक की रेखाओ पर लिखा होता है। तार्किक बुद्धि इस बात को स्वीकार करती है पर थोड़ी गहराई मे चले तथा उक्त कथन का गम्भीरता से विश्लेषण करे तो यही तथ्य निकलता है कि मनुष्य को हाथ अर्थात् पुरुषार्थ का प्रतीक तथा मस्तिष्क अर्थात् बुद्धिरूपी दो ऐसी सम्पदाएँ प्राप्त है, जिनका भली-भाँति सदुपयोग करले मनचाही दिशा मे सफलताएँ अर्जित की जा सकती है।

जन्म से ही तरह-तरह की अनुकूलताएँ किन्ही-किन्ही विरलों को ही प्राप्त होती है। अधिकाश को प्रतिकूलताओ का सामना करना पड़ता तथा अपना मार्ग स्वय गढ़ना पड़ता है। कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी व्यक्ति अपना आत्मविश्वास, साहस एवं सूझ-बूझ बनाये रखे तो कोई कारण नही कि उन पर विजय न प्राप्त कर सके। निराशाजन्य मन स्थिति ही जीवन की असफलताओं का प्रमुख कारण बनती है तथा चट्टान की भाँति प्रगति के मार्ग में अवरोधक बनकर अड़ी रहती है। अस्तु प्रगति के इच्छुक व्यक्तियों को सर्वप्रथम इस अवरोध को हटाना पड़ता है।

अर्थाभाव के कारण हजारों लाखों नहीं करोड़ो लोग दिन-रात चिन्ता और निराशा की अग्नि में जलते रहते तथा उत्तुंग लहरो के बीच थपेड़े खाती नाव की भाँति अपनी जीवन नैया खेने का प्रयास करते रहते है। पर जिन्होंने निराशा के घोर क्षणों में भी आशा और पुरुषार्थ की पतवार का आश्रय लिया उनने न केवल परिस्थितियो को पराजित कर दिखाया वरन् यह भी सिद्ध कर दिया कि प्रयास करने पर मनुष्य के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। ढूँढने पर ऐसे अनुकरणीय उदाहरण असंख्यो मिल जायेंगे।

बहु प्रख्यात नोबुल पुरस्कार से अधिकाश व्यक्ति परिचित होंगे। इसके प्रवर्तक थे, अल्फ्रेड नोबल। इस तथ्य से कम ही व्यक्ति अवगत होंगे कि नोबेल ने अपना प्रारम्भिक जीवन घोर कष्टो मे बिताया। उनके पिता एक जहाज मे केबिन बॉय के रूप में काम करते थे। बाद मे उनकी रुचि विस्फोटक पदार्थों के आविष्कार मे हुई। इस कार्य मे ही उन्हे अपना जीवन गँवा देना पड़ा। अल्फ्रेड नोबेल और उनकी विधवा माँ के पास गुजारे के लिए पैतृक सम्पत्ति के नाम पर एक कौड़ी भी नहीं थी। निर्वाह के लिए नोबेल मेहनत-मजदूरी करने लगे। सामान्य व्यक्तियों की तरह सम्पन्नता अर्जित करने की चाह तो अल्फ्रेड मे भी थी पर इसके पीछे लक्ष्य महान था। आमोद-प्रमोद से भरा विलासिता युक्त जीवन बिताने को वे एक अपराध मानते थे। व्यवसायरत होकर उन्होंने सम्पत्ति तो जुटाली पर कभी भी अपव्यय मे उसका दुरुपयोग नही किया। सदा सादा जीवन उच्च विचार का ही सिद्धान्त अपनाया। समृद्धि उनकी चेरी बनी पर व्यक्तिगत उपभोग के लिए नही, लोक मगल के लिए। जब वे मरे तो वे बीस लाख पौण्ड से भी अधिक धनराशि छोड़ गये। सामान्य व्यक्तियो की भाँति आगामी पीढ़ियों को गुलछर्रे उड़ाने, मौज-मजा करने के लिए उन्होंने अपनी सम्पदा को नही छोड़ा। वे एक वसीयत बनाकर गये जो उन्हे अमर कर गई। मानव की विशिष्ट सेवा मे लगे विभिन्न क्षेत्रो के पाँच व्यक्तियो को जो पुरस्कार हर वर्ष वितरित किया जाता है, वह अल्फ्रेड नोबेल की उदारता का ही परिणाम है।

अमेरिका के प्रसिद्ध अरबपति रॉकफेलर की गणना विश्व के समृद्धतम व्यक्तियो मे होती है। पर यह कम ही व्यक्ति जानते है कि उन्होने अपना आरम्भिक जीवन घोर विपन्नता मे बिताया। अपना तथा अपनी माँ का पेट भरने के लिए वे एक पड़ौसी के मुर्गी खाने में सवा रुपया रोज पर काम करते। यह कार्य भी हफ्ते मे कुछ ही दिन मिल पाता था। अतएव मेहनत-मजदूरी का अन्य मार्ग भी ढूँढना पड़ता था। बचत करने का गुण बचपन

से ही उनमे था। थोड़ी-थोड़ी राशि बचाते हुए आगे चलकर उन्होंने स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ कर दिया। पचास वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ एवं आत्मविश्वास के सहारे वे मूर्धन्य समृद्धो की श्रेणी मे जा पहुँचे।

आज सारे विश्व के सम्पन्न और प्रसिद्ध व्यक्ति जिस कम्पनी की कारे प्रयोग मे लाते हैं तथा जो समृद्धि-प्रतिष्ठा का चिन्ह समझी जाती है, वे फोर्ड कम्पनी की ही हैं। इसके अधिष्ठाता एवं संचालक हैं, हैनरी फोर्ड। प्रतिवर्ष फोर्ड मोटर कम्पनी की गाड़ियाँ करोड़ों की संख्या मे बिकती है। हैनरी के पिता एक सामान्य किसान थे। आजीविका का एकमात्र साधन था कृषि। अर्थाभाव के कारण हैनरी की उच्च शिक्षा की व्यवस्था नही बन सकी। पढ़ने के साथ-साथ परिवार के भरण-पोषण के लिए भी स्वयं हैनरी को ही प्रयास करना पड़ता था। एक फर्म मे अन्ततः उन्हें पढ़ाई छोड़कर नौकरी करनी पड़ी, नौकरी से ही थोड़ी-थोड़ी बचत करते हुए उनने इतनी रकम एकत्रित करली कि फोर्ड मोटर कम्पनी की नीव पड़ सके। सत्तरह वर्ष के भीतर ही भीतर यह कम्पनी प्रतिवर्ष दस लाख गाड़ियाँ तैयार करके बेचने लगी। गाड़ियाँ अपनी कार्यक्षमता एवं टिकाऊपन के कारण दिनप्रतिदिन लोकप्रिय होती गयीं।

दुनिया के घर-घर मे पी जाने वाली लिप्टन चाय के निर्माता की प्रगति की कहानी उन्ही के शब्दो मे इस प्रकार है, "मैने अपना जीवन एक स्टेशनरी की दुकान मे काम करने वाले एक नौकर के रूप में आरम्भ किया। उस समय मुझे पाँच शिलिंग प्रतिदिन मिलते थे। परिवार का खर्च इससे मुश्किल से चलता था पर मैने निश्चय कर रखा था जैसे भी होगा थोड़ी बचत अवश्य करेंगे। मेरा लक्ष्य स्वतन्त्र व्यवसाय करने का. था। चाय का व्यवसाय मैने बचत की न्यूनतम राशि से आरम्भ किया। ईमानदारी और श्रमशीलता का पल्ला मैने नही छोड़ा। फिजूलखर्ची से मुझे सख्त घृणा थी। जो काम दो डालर में हो सकता था। उसके लिए कभी भी दो डालर नहीं खर्च किये। यही मेरी सफलता की कहानी है।

हिन्दुस्तान मे ऐसे व्यक्तियो की कमी नहीं है, जो अपने आरम्भिक जीवन में अत्यन्त निर्धन और अभावग्रस्त रहे पर आगे चलकर परिश्रम, पुरुषार्थ व लगन के बल पर समृद्ध बने। शापुरजी बारोचा का नाम इनमे उल्लेखनीय है। बारोचा जब छः वर्ष के थे तभी उनके पिता का निधन हो गया। पिता. की मृत्यु के चार दिन बाद ही बड़े भाई का भी देहान्त हो गया। माँ ने अपने पहले, पति का सामान आदि बेचकर किसी तरह बच्चों का पालन-पोषण किया। शापुरजी पढ़ने के साथ-साथ खाली समय मे मेहनत-मजदूरी करके माँ के ऊपर आये आर्थिक दबाव को कम करने का प्रयास करते थे। मैट्रिक पास करके उन्होने रेल्वे मे नौकरी की, बाद मे बैक मे नौकरी मिल गयी। थोड़े समय बाद वे नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र व्यवसाय के क्षेत्र मे उतर गये। अपनी सूझ-बूझ, ईमानदारी एवं परिश्रमशीलता के कारण वे निरन्तर उन्नति करते गये। सम्पत्ति तो एकत्रित की पर लोकोपयोगी कार्यों मे बिना किसी नाम अथवा यश के उद्देश्य से खर्च की। उनके एक मित्र तथा प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी पं. गणेश शंकर विद्यार्थी ने अपने एक संस्मरण मे लिखा है कि बारोचा जी मात्र एक सफल व्यवसायी ही नही थे, वरन् एक उदार व्यक्ति भी थे। उन्होने लगभग साठ लाख रुपया जनहित कार्यों मे खर्च किया।"

विशालकाय रेल इंजन से लेकर छोटी सुई तक बड़ी से बड़ी तथा छोटी से छोटी वस्तुओ के निर्माता जमशेद जी टाटा का बचपन घोर अभावो मे बीता। वे नवसारी मे जन्मे। पिता पुरोहित थे। आरम्भिक शिक्षा प्राप्ति के लिए जमशेद जी को एक सम्बन्धी का सहारा लेना पड़ा। विद्यार्थी काल में वे एक ऐसे कमरे मे रहे, जिसकी छत बारिश मे हमेशा टपकती रहती। इतना पैसा नहीं था कि अधिक पैसे वाला कमरा किराये पर ले सके। शिक्षा प्राप्ति के बाद एक कपड़े के कारखाने का उद्योग आरम्भ किया और अपनी परिश्रमशीलता, व्यवहार कुशलता के बलबूते निरन्तर आगे बढ़ते गये।

सम्पन्नता ही नहीं प्रतिभा के क्षेत्र में भी सामान्य से असामान्य स्थिति मे जा पहुँचने वालो की एक दास्तान है कि उन्होने परिस्थितियों को कभी भी अधिक महत्व नहीं दिया। हमेशा अपनी आन्तरिक क्षमताओ पर भरोसा किया। उनका भली-भाँति नियोजन करके आगे बढ़ते गये। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पत्रकार, राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं समाज सेवी बैंजामिन फ्रेंकलिन प्रेस मे टाइप धोने, मशीन की सफाई करने, झाड़ू लगाने आदि का काम करते रहे पर उस काम को भी उन्होने कभी छोटा नहीं माना और पूरे मनोयोग का परिचय देकर प्रेस का काम भी सीखते रहे। पन्द्रह व्यक्तियो का बड़ा परिवार था। दस वर्ष की आयु से ही उन्हें घर की अर्थ व्यवस्था मे हाथ बँटाने के लिए आगे आना पड़ा। प्रेस के कार्य में उन्होने प्रवीणता प्राप्त कर ली पर विज्ञान मे अधिक अभिरुचि होने के कारण सम्बन्धित पुस्तकों का खाली समय मे अध्ययन करते रहे। जिज्ञासा और मनोयोग की परिणति ही सफलता है। उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा भी उभरती चली गयी। एक साथ कई क्षेत्रो मे विशेषता हासिल करके उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि प्रतिकूलताएँ मानवी विकास मे बाधक नहीं पुरुषार्थ एवं जीवन को निखारने का एक माध्यम भर है।

अमेरिका के इतिहास मे अब्राहिम लिंकन का नाम सदा अमर रहेगा। यो तो वहाँ राष्ट्रपति कई हुए है पर जिस आदर और सम्मान के साथ लिंकन का नाम लिया जाता है, उतना अन्य किसी का नही। इसका कारण है उनकी आन्तरिक महानता। लिंकन के पिता जंगल से

लकड़ियाँ काटकर परिवार का गुजारा चलाते थे। किसी तरह काम चलाऊ अक्षर ज्ञान जितनी शिक्षा उन्हे पिता से मिल पायी। पैसे की तगी के कारण उन्हे विद्यालय मे प्रवेश लेने से वंचित रहना पड़ा। पर बालक के मन मे पढ़ने की गहरी अभिरुचि थी। लैम्प पोस्ट के उजाले में वे पढ़ते रहे तथा अपनी ज्ञान की वृद्धि करते रहे। प्रतिकूलताओं के आँगन मे ही उन्होंने अपनी प्रतिभा निखारी और आगे चलकर राजनीति मे प्रवेश लिया। कई बार हारे पर निराश नही हुए और अपनी आन्तरिक महानता के कारण वे राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर चुने गये।

शिक्षा एवं प्रतिभा के सम्बन्ध मे अधिकांश व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियो को अधिक महत्व देते तथा उन्हे ही सफलता-असफलता का कारण मानते है। सोचते है कि यदि अच्छे घर मे जन्म न हो, पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ न मिलें, उपयुक्त परिस्थितियाँ सख्य न रहे, तब तो आदमी कुछ भी नही कर सकता। जबकि सच्चाई यह है कि अन्य क्षेत्रो मे न्यूनाधिक परिस्थितियो का भले ही योगदान हो, विद्या और ज्ञान के क्षेत्र मे उनका जरा भी वश नही चलता। अनुकूल परिस्थितियाँ होते हुए भी धनवानो के बच्चे अनपढ़ और गँवार रह जाते है तथा अनुकूलताएँ व साधन न होते हुए भी कितने ही गरीब बच्चे विद्वान एव ज्ञानी बन जाते है। एक कहावत प्रसिद्ध है कि "लक्ष्मी और सरस्वती की कृपा कभी एक साथ नही होती" इस कहावत मे सच्चाई का कितना अश है? यह तो विवादास्पद हो सकता है पर यह उतना ही सुनिश्चित और ठोस सत्य है कि गरीब व्यक्ति भले ही धनवान न बने, ज्ञानवान तो बन ही सकता है। कालिदास, सूरदास, तुलसीदास से लेकर प्रेमचन्द्र, शरतचन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, जयशकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, जगन्नाथ दास रत्नाकर आदि कितने ही विद्वान एवं साहित्यकार हुए है, जिनकी पूर्व और अन्त की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय बनी रही फिर भी अपने प्रयासो के बलबूते वे संसार को कुछ दे सकने मे सफल रहे।

प्रतिकूलताओं का रोना रोते रहने की अपेक्षा यदि मनुष्य प्रयास करे तो किसी भी प्रकार की सफलता सम्पादित कर सकना कठिन नही है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, उपरोक्त उदाहरण इसी तथ्य की पुष्टि करते तथा हर मनुष्य को अपना भाग्य अपने हाथो बनाने की प्रेरणा देते है।

आत्मविश्वास क्या नहीं कर सकता?

अमेरिका का हार्टफोर्ड कनेक्टिकट हाल दर्शको से खचाखच भरा था। १९ नवम्बर, १९०१ के दिन घूँसेबाजी का एक अनोखा मैच था। प्रसिद्ध अमेरिकी घूँसेबाज टेरी मेकगवर्न का एक नये प्रतिस्पर्धी के साथ मुकाबला था। अब तक ६ खिलाड़ी उसे हराने के प्रयत्न मे स्वयं ही मात खा चुके थे. टेरी के प्रशंसक आज पुनः उसकी विजय की आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास लेकर आये थे। यह स्वाभाविक भी था—घूँसेबाजी में उसकी कुशलता और निपुणता देखते ही बनती थी। प्रतिस्पर्धी पर वह बड़ी फुर्ती एवं निर्ममता के साथ घूँसे चलाता इसलिए 'टैरिबल टेरी' के नाम से वह जनता मे विख्यात था। १८८९ टेरी की उम्र जब केवल १९ वर्ष की थी। तत्कालीन लाइटवेट चैम्पियन 'पेडलरपामर' को केवल ७५ सैकिण्डों में धराशायी कर दिया। उसके बाद १९०० में जॉर्ज डिक्सन को हराकर विश्व फेदरवेट चैंपियन का पद भी हासिल कर लिया। तब से इस पद से हटाने के लिए प्रतिस्पर्धी निरन्तर प्रयत्नशील थे।

लम्बी प्रतीक्षा के बाद रिंग मे मदमस्त हाथी के सामने खड़े एक दुबले-पतले अनजान व्यक्ति कार्बेट को देख दर्शको के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। कई सहृदय व्यक्ति कार्बेट के प्रति सहानुभूति दर्शाने लगे कि 'क्यो बेकार मे यह अभागा अपनी जान देने आ गया।' ऐसे कितने ही उद्‌गार चारो ओर सुने जा सकते थे। इन सब बातों से अनभिज्ञ कार्बेट के चेहरे पर दृढ़ विश्वास झलक रहा था।

मैच शुरू हुआ। टेरी ने अपनी आदत के अनुसार प्रारम्भ से घूँसो की बौछार शुरू कर दी। उत्साह-उमग और चुस्ती-स्फूर्ति से भरा हुआ कार्बेट टेरी का हर वार बचाये जा रहा था। एक ओर टेरी का अन्धाधुन्ध घूँसों की बौछार और दूसरी ओर कार्बेट की गजब की स्फूर्ति। स्थिति यह थी कि कोई नया दर्शक यही समझता कि कार्बेट चैम्पियन है और टेरी नौसिखिया। ऐसी स्थिति मे टेरी जैसे मॅजे खिलाड़ी का आत्मविश्वास डगमगा गया वह बौखला उठा। अब टेरी इस प्रयास मे था किसी भी तरह कार्बेट को एक घूँसा लगाकर अपना खोया विश्वास पुन: प्राप्त कर ले। लेकिन यह सम्भव न हो सका। इसी बीच पहला राउण्ड समाप्त हो गया। दूसरे राउण्ड के शुरू होते ही कार्बेट की दाहिनी मुट्ठी का जबर्दस्त घूँसा टेरी के जबड़े पर पड़ा। वह ऐसा गिरा कि फिर वह उठ नही सका। रेफरी की गिनती समाप्त हो गई।

यह तो एक उदाहरण मात्र है, जिसमे एक ने अपने आत्मविश्वास के कारण शरीर क्षमता मे असमर्थ होते हुए भी दूसरे समर्थ और बलिष्ठ व्यक्ति पर विजय पाई, जबकि दूसरा सक्षम और समर्थ होते हुए भी आत्मविश्वास खो देने से असफल रहा। आत्मविश्वास को जीवन और निराशा को मृत्यु कहा गया है। आत्मविश्वासी कठिन मे कठिन परिस्थितियो को भी अपनी इस विवशता के कारण उनसे जूझने एव अनुकूल बनाने मे समर्थ होते है। उनकी सफलता मे परिस्थितियो का, शरीरबल एवं बुद्धिबल का उतना महत्त्व नहीं होता, जितना कि स्वयं के मनोबल का।

सामान्यतः समझा यह जाता है कि साधनो के अभावो, गई-गुजरी परिस्थितियो और प्रतिकूलताओ के कारण ही मनुष्य असफल होता है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। अपनी क्षीण, निस्तेज, अनुत्साही मनोवृति के कारण ही लोग पग-पग पर ठोकरे खाते और असफलताओं का मुँह देखते है। कठिनाइयाँ, प्रतिकूलताएँ उन व्यक्तियो के लिए बाधक है, जिन्हे अपने आप पर विश्वास नही। कुछ करने लिए एक कदम बढाने से पूर्व उनका मन अनिष्ट की आशंका से डरने लगता है। सफलता मिलेगी भी कि नहीं। इसके विपरीत आत्मविश्वास और मनोबल के धनी व्यक्ति पहाड़ जैसी विपदाओं को भी पैरो तले रौंदने की हिम्मत रखते है। प्रतिकूलताओ से प्रगति क्रम में विलम्ब तो हो सकता है पर यह कहना गलत है कि सफलता ही नहीं मिलेगी। यदि प्रचण्ड इच्छाशक्ति, तत्परता और साहसिकता बनी रहे तो अभीष्ट लक्ष्य तक अवश्य पहुँचा जा सकता है।

ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जिसमें प्रतिकूलताओ के ऊपर आत्मविश्वास ने विजय पाई। आत्मविश्वास के अभाव के कारण कितने ही व्यक्ति सामान्यतः पिछड़ेपन से ग्रस्त रहते और अवनति के गर्त मे पड़े रहते है। कितने ही ऐसे होते है जो कठिनाइयो को चुनौती देते, संघर्षो का आलिंगन करते अन्ततः अभीष्ट तक पहुँचते है। अन्तराल मे छिपी क्षमताएँ उन्हे किसी के आगे हाथ पसारने, गिड़गिड़ाने, दीन-हीन बने रहने के लिए बाध्य नही करतीं। सोया आत्मविश्वास जब जागता है, छिपी क्षमताएँ जब उभरती है, उत्साह जब उमड़ता है तो वह बाहरी सहयोग को भी अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा खींच लेता है। तब वह हवाओ का रुख बदलने, दिशाओ को पलट देने, प्रतिकूलताओं को अनुकूलता मे बदल देने की सामर्थ्य रखता है। सीमित सामर्थ्यो के होते हुए भी आत्मविश्वास के बल पर कितने ही व्यक्ति सफलता के शिखर पर पहुँचे, इतिहास में ऐसे उदाहरणो की कमी नही।

नेलसन ब्रिटेन का प्रसिद्ध सेनापति था। उसने अनेक युद्धो में विजय पाई। प्रचण्ड साहस और अटूट आत्मविश्वास ही उसकी विजय के आधार थे। नील नदी के युद्ध के लिए नेलसन ने पूर्व योजना बनाई और अपने अधीनस्थ सैनिकों के सामने वह योजना रखी। इसी बीच कर्नल बेरी ने सन्देह प्रकट किया—"यदि हमारी विजय नही हुई तो संसार क्या कहेगा ?" नेलसन ने रोषपूर्ण मुद्रा में तमककर उत्तर दिया—"यदि के लिये नेलसन के पास कोई स्थान नही। मैने जो कुछ निर्णय लिया है, उसके अनुसार सभी जुट जाये। निश्चित रूप से विजय हमारी ही होगी यह बात अलग है कि हमारी विजय की कहानी कहने वाले हममे से थोड़े ही रह जाये।"

मोर्चे पर जाने से पूर्व नेलसन ने कप्तान से कहा, "कल इस समय से पूर्व या तो हमे विजय प्राप्त होगी या मेरे लिए वेस्टमिन्स्टर के गिरजे मे कब्र तैयार हो जायेगी, जहाँ मै शान्तिपूर्वक विश्राम करूँगा।" कैसे आत्मबल और आत्मविश्वास से भरे शब्द थे, जो अन्त में सत्य सिद्ध हुए। विजय नेलसन के हाथ लगी।

नैपोलियन का जीवन भी ऐसे दृढ़ संकल्प और मनोबल से भरा था। आल्पस पर्वत की सेण्ट बरनार्ड घाटी का निरीक्षण करके लौटे हुए इन्जीनियरो से नैपोलियन ने पूछा, "क्या रास्ता पार कर सकना सम्भव है?" इन्जीनियरो ने आशंका व्यक्त करते हुए कहा—"शायद, पार कर सके।" नैपोलियन ने आगे की बात नहीं सुनी तुरन्त सिपाहियो को आदेश दिया। "आगे बढ़ो !" इस दुस्साहसिक निर्णय पर इंग्लैण्ड और आस्ट्रेलिया के लोग आश्चर्य करने लगे कि यह नाटे कद का सामान्य-सा व्यक्ति साठ हजार सैनिको और हजारो मन युद्धास्त्र के साथ इतने ऊँचे आल्पस पहाड़ को भला कैसे पार कर सकेगा ?

दृढ़ इच्छाशक्ति और आत्मविश्वास के आधार पर वह आल्पस को भेदकर गन्तव्य तक पहुँचने मे सफल हुआ, अन्य कई सेनानायको के पास समर्थ सेना थी, हथियार व अन्य उपयोगी साधन थे, पर उनमें वह आत्मविश्वास नही था जिसके कारण नैपोलियन का कलेजा कठिनाइयो को देखकर वज्र बन जाता था। वह स्वयं कहा करता था—"मेरे शब्दकोष मे 'असम्भव' नामक कोई शब्द नहीं।"

जापान के एक छोटे-से राज्य पर समीपवर्ती एक बड़े राज्य ने हमला कर दिया। अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित विशाल सेना देखकर जापान का सेनापति हिम्मत हार बैठा। उसने राजा से कहा—"हमारी साधनहीन छोटी-सी सैन्य टुकड़ी इसका सामना कदाचित ही कर पायेगी। नाहक सैनिको को खत्म करने के बजाय युद्ध न करना ही ठीक है। लेकिन राजा बिना प्रयास के हार मानने के पक्ष मे नही था। सोचने लगा कि क्या किया जाये ? अचानक याद आया कि गाँव मे एक सिद्ध फकीर है शायद वही कुछ समाधान बता सके, यही सोचकर राजा स्वयं फकीर से मिलने चल पड़ा। फकीर तम्बूरा बजाने मे मस्त था। राजा ने फकीर की मस्ती तोड़ते हुए कहा कि हमारा राज्य मुसीबत मे फँस गया है। दुश्मन ने देश पर आक्रमण कर दिया है और ऐसी विकट स्थिति मे सेनापति भी निराश हो चुका है—उसने बताया कि जीत असम्भव है।

फकीर ने बिना विलम्ब किये उत्तर दिया कि "सबसे पहले तो आप सेनापति को पद से हटा दीजिये क्योंकि जिसने युद्ध से पहले ही हार की आशंका बता दी वह भला क्या जीत पायेगा ? जो स्वयं निराशावादी है वह अपने अधीनस्थ सैनिको मे कैसे उत्साह-उमंग का

संचार कर सकेगा ?" राजा ने समर्थन करते हुए कहा, बात तो ठीक है। लेकिन अब उसका स्थान कौन सम्भालेगा। यदि उसे हटा भी दिया जाता तो इतने कम समय मे दूसरा सेनापति कहाँ मिलेगा ? उसी सेनापति से काम चलाने के अतिरिक्त कोई विकल्प दिखाई नहीं देता।"

इस पर फकीर ने उन्मुक्त हँसी हँसते हुए कहा—"आप चिन्ता न करें, सेनापति का स्थान मै सम्भालूँगा।" राजा विस्मय मे पड़ गया लेकिन इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी तो नही था।

दूसरे दिन सेना ने कूच कर दिया, सेना का नेतृत्व युद्ध अनुभवो से सर्वथा अपरिचित फकीर कर रहा था। थोड़ी ही दूर वे चले होगे कि फकीर ने रुकने का संकेत किया, इस नये सेनापति के आदेश पर सेना रुक गई। सेनापति चाहे जो निर्णय ले, सभी सैनिक उसका अनुकरण करने पर मजबूर थे। युद्ध क्षेत्र अभी दूर था। बीच मे अकारण रुककर समय बरबाद करने का कोई औचित्य नजर नहीं आ रहा था। सैनिक असमंजस में पड़ गये। इसी बीच सामने के मन्दिर की ओर इशारा करते हुए फकीर ने कहा—"युद्ध से पूर्व इस मन्दिर के देवता से पूछ लेते है कि जीत होगी या हार। यदि देवता जीत के लिए कह देते है तो फिर किसी का डर नही। दुश्मन की सेना कितनी ही विकट क्यो न हो जीत निश्चित ही हमारी होगी। यदि नही, तो फिर चलने से क्या लाभ !"

सैनिकों ने कहा कि आप तो एकान्त मे देवता से पूछेगे। देवता क्या उत्तर देते है ? यह हमे कैसे पता चलेगा ?" "नहीं ! अकेले मै नही पूछूँगा। तुम सबके सामने ही मै देवता से प्रश्न करूँगा।" यह कहते हुए फकीर ने झोली से एक चमकता हुआ सिक्का निकाला और बताया कि अगर यह सिक्का चित्त गिरता है तो जीत हमारी ही होगी, यदि पट गिरेगा तो हम वापिस लौट जायेगे। फकीर ने सिक्का ऊपर उछाला, सिक्के के गिरने के साथ ही उनके भाग्य का निर्णय होना था। सब विस्फारित नेत्रो से एकटक सिक्के को देख रहे थे। सिक्के के गिरते ही सबकी आँखे चमक गयी। सिक्का चित्त गिरा था जीत सुनिश्चित थी। फकीर ने सबको उत्साहित करते हुए कहा—अब डरने की कोई बात नही, देवता का आश्वासन हमे मिल गया है।"

दोनों पक्षो की भयंकर लड़ाई के बाद जीत आपान के पक्ष में हुई। युद्धोपरान्त सैनिको ने मन्दिर के पास पहुँचकर कहा कि देवता को धन्यवाद दे दे, जिसने हमे जिताया, फकीर ने कहा देवता को धन्यवाद देने की आवश्यकता नही बल्कि अपने आपको धन्यवाद दो। तुम स्वयं ही अपनी जीत के आधार हो।"

"जीत का देवता मे कोई सम्बन्ध नही।" यह कहते हुए फकीर ने सिक्का पुनः झोली से निकालकर सैनिको के हाथ पर रख दिया। सैनिको के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा, जब उन्होने देखा कि सिक्के के दोनो ओर चित्त के निशान थे। यह और कुछ नहीं सैनिकों के सोये आत्मविश्वास को जगाने की एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भर थी जो अन्ततः जीत का कारण बनी।

ससार की महत्त्वपूर्ण सफलताओं का इतिहास आत्मविश्वास की गौरव गाथा से भरा पड़ा है। उत्कर्ष व्यक्ति का करना हो—समाज का अथवा राष्ट्र का, सर्वप्रथम आवश्यकता है अपने अन्दर सोये आत्मविश्वास रूपी देवता को जगाया जाये। अनुदान-वरदान सहज ही बरसते चले आयेगे।

उत्साह एवं सक्रियता चिरयौवन के मूल आधार

प्रगति की आकांक्षा किसे नहीं होती ? प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्थिति से असन्तुष्ट रहता है और उससे आगे बढ़कर उन्नत स्थिति को प्राप्त करना चाहता है। बहुत-से इसके लिए प्रयास भी करते है और अनेको सफल भी होते हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति वह प्राप्त नहीं कर पाते, जो प्राप्त करना चाहते है। कारण संकल्प का अभाव, प्रयत्नो मे प्रखरता की कमी और तत्परता का न होना। बहुत-से व्यक्ति युवावस्था मे बड़े जोश-खरोश के साथ अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते है, किन्तु थोड़े-से प्रयत्न करने के बाद ही निराश हो जाते है। बहुतो की स्थिति ऐसी होती है, जो प्रयत्न और संघर्ष करते-करते युवावस्था बीत जाती है और वे अपने आपको वृद्ध समझकर हार-थककर बैठ जाते।

वृद्धावस्था क्या सचमुच जीवन है सन्ध्या बेला है ? इस प्रश्न का उत्तर उनके लिए "हाँ" मे ही होता है किन्तु वास्तव मे ऐसा नही। बहुत-से व्यक्तियो ने जिसे वृद्धावस्था कहते है इस उम्र तक सामान्य जीवन बिताया और उसके बाद उनमे प्रगति के लिए ऐसी उदात्त आकाक्षा उत्पन्न हुई कि उसके बाद अपने प्रखर प्रयत्नो से उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे। सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ६० वर्ष की आयु तक एक पाठशाला मे ड्राइंग पढ़ाते थे। रिटायर होने के बाद उन्होने संस्कृत सीखी और संस्कृत भाषा के क्षेत्र मे इतना काम किया कि देखने वाले दग रह गये। वेदो का शुद्ध पाठ तैयार करने से लेकर भारतीय सस्कृति का प्रगतिशील स्वरूप प्रतिपादित करने तक के क्षेत्र मे उन्होने इतनी सफलता अर्जित की कि आज भी जहाँ संस्कृत के सम्बन्ध मे कही कोई मतभेद उठता है तो उसके समाधान और निराकरण के लिए सातवलेकर के ग्रन्थो को आधार माना जाता है।

महात्मा गाँधी ने ४५ वर्ष की अवस्था मे सामान्य जीवन जिया और इसके बाद वे एक क्रान्तिकारी सन्त के स्वरूप मे उभरकर सामने आये। दादा भाई नौरोजी ने

५० वर्ष की आयु मे अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ किया तथा ६० वर्ष की आयु मे पहली बार बम्बई कौंसिल के सदस्य चुने गये। ६१ वर्ष की अवस्था मे वे कांग्रेस के सभापति बने। गोपालकृष्ण गोखले ने ४० वर्ष की आयु में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की। लोकमान्य तिलक ने यद्यपि ३३ वर्ष की आयु मे अपना राजनैतिक जीवन आरम्भ किया था किन्तु उनकी गतिविधियाँ १९०५ मे ही अधिक सक्रिय हुईं, तब उनकी आयु ५० वर्ष थी। उसी समय उन्होंने गरम दल की स्थापना की थी।

होमरूल लीग बनाते समय श्रीमती एनीबीसण्ट की आयु ७० वर्ष की थी। उन्होंने ४० वर्ष की आयु के बाद ही सार्वजनिक क्षेत्र मे पदार्पण किया था। इसी प्रकार ४५ वर्ष की आयु के बाद राजनैतिक जीवन मे प्रवेश करने वाले पं. मोतीलाल नेहरू ५८ वर्ष की आयु मे कांग्रेस के सभापति बने। डा. राजेन्द्र प्रसाद का प्रखर और सक्रिय जीवन ४१ वर्ष की आयु के बाद ही आरम्भ हुआ।

यह तो खैर राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित उदाहरण हैं और सामान्यतः समझा जाता है कि राजनीति बूढ़ो का खेल है। इस क्षेत्र मे व्यक्ति युवावस्था मे प्रवेश करे, तभी वृद्धावस्था तक पहुँचने तक सफलता मिलती है, ऐसी धारणा है। किन्तु और क्षेत्रो मे भी ऐसे उदाहरण है, जिनसे सिद्ध होता है कि प्रगति या सफलता का आयु से कोई सम्बन्ध नही है। वह किसी भी उम्र मे पाई जा सकती है और वृद्धावस्था मे अपने क्षेत्र मे कीर्तिमान स्थापित करने वालो के तो ढेरो उदाहरण है। यूनानी नाटककार सोफोक्लीज ने ९९ वर्ष की आयु मे अपना प्रसिद्ध नाटक 'आडीपस' लिखा था। यद्यपि उन्होंने इसके पहले भी कई रचनाएँ लिखी थी, पर जिन रचनाओ ने इन्हे साहित्यिक जगत मे प्रतिष्ठित किया वे सभी अस्सी वर्ष की आयु के बाद लिखी गई थी। अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि मिल्टन ४४ वर्ष की आयु मे अन्धे हो गये थे। अन्धे होने के बाद उन्होंने सारा ध्यान साहित्य रचना पर केन्द्रित किया और पचास वर्ष की आयु मे अपनी प्रसिद्ध कृति 'पैराडाइज लास्ट' लिखी। ६२ वर्ष की आयु में उनकी एक और प्रसिद्ध कृति 'पैराडाइज रीगेंड' प्रकाशित हुई। जर्मन कवि गेटे ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'फास्ट' ७० वर्ष की आयु मे लिखी थी। ९२ वर्ष का अमेरिकी दार्शनिक जानडेवी अपने क्षेत्र मे अन्य सभी विद्वानो से अग्रणी था, उन्होंने दर्शन के क्षेत्र मे ६० वर्ष की अवस्था में ही प्रवेश किया था।

जार्ज बर्नार्ड शॉ ९३ वर्ष की आयु तक इतना अधिक लिखते थे कि वे स्वयं ४० वर्ष की आयु मे भी इतना नही लिख पाते थे। दार्शनिक बैनदितो क्रोचे ८० वर्ष की अवस्था मे भी नियमित रूप से दस घण्टे काम करते थे। ८५ वर्ष की आयु मे उन्होंने दो महत्त्वपूर्ण पुस्तके लिखी, जिनकी चर्चा विश्व साहित्य मे होती है। बर्ट्रेण्ड रसेल को ७८ वर्ष की आयु मे उस कृति पर पुरस्कार मिला जो उन्होंने ७७ वर्ष की अवस्था मे पूरी की थी। मारिस मैटर लिंक का देहान्त ८८ वर्ष की आयु मे हुआ। जिन दिनों वे मरे, उसके कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने अपनी अन्तिम पुस्तक पूरी की थी। इस पुस्तक का नाम था 'द एवार्ट ऑफ से टू आल' यह पुस्तक उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना समझी जाती है।

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध अखबार 'डेली एक्सप्रेस' के संचालक लार्ड बीवनवर्क ८० वर्ष की अवस्था मे भी दफ्तर मे जमकर बैठते और काम करते थे। दार्शनिक काण्ट को ७४ वर्ष की अवस्था मे उनकी एक रचना के आधार पर दर्शन के क्षेत्र मे प्रतिष्ठा मिली। ६० वर्ष की आयु के बाद चार वर्षो मे उन्होंने 'एन्थ्रोपोलोजी', 'मेटाफिजिक्स ऑफ ईथिक्स' और 'स्ट्राइफ ऑफ फैकल्टीज' ये तीन पुस्तके लिखी थीं, जिनने उन्हे दार्शनिक जगत मे प्रतिष्ठित किया। टैनीसन ने अपना प्रख्यात् ग्रन्थ 'क्रासिंग द बार' ८३ वर्ष की आयु मे पूरा किया। होमर ने ८८ वर्ष की आयु मे 'इलियड' अनुवाद प्रकाशित कराया था। चित्रकार टीटान ने विश्व प्रसिद्ध कलाकृति 'बैटल ऑफ लिमाण्टो' ९८ वर्ष की आयु मे पूरी की।

इंग्लैण्ड का इतिहास जिनने पढ़ा है, वे ग्लैडस्टन के नाम से अवश्य ही परिचित होगे। ग्लैडस्टन ने ४० वर्ष की आयु मे ब्रिटेन की राजनीति मे प्रवेश किया और ७० वर्ष की आयु मे राज्य का उत्तरदायित्व सम्भाला। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी मे 'होमर' पर उनने जो भाषण दिया वह अत्यन्त शोधपूर्ण माना जाता है। पर जब प्रधानमन्त्री बने, तब उनकी आयु ७९ वर्ष थी। ८५ वर्ष की आयु मे उन्होंने 'ओडेसी ऑफ हाट्स' नामक एक ग्रन्थ की रचना की। वृद्धावस्था मे भी वे चैन से नही बैठे रहे।

ग्लैडस्टन की तरह ही जार्जलायड भी ब्रिटेन के मूर्धन्य राज नेता रहे है। ७५ वर्ष की आयु मे उनकी कार्यक्षमता नौजवानो जैसी थी। चर्चिल ने दूसरे विश्व युद्ध मे जब ब्रिटेन का प्रधान मन्त्रित्व सम्भाला तो उनकी आयु ८० वर्ष थी। जनरल मेक आर्थर ७३ वर्ष की आयु मे वैसे ही सक्रिय थे जैसे कि ४५ वर्ष की आयु मे। उल्लेखनीय है कि उन्होंने ४५ वर्ष की आयु मे ही सैनिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कमान सम्भाली थी।

आठवी जर्मनी सेना का सेनापतित्व जब फलशान हिण्डैन वर्ग को सौपा गया था, तब उनकी आयु ६७ वर्ष की थी। ७८ वर्ष की आयु मे वे पार्लमेण्ट के अध्यक्ष चुने गये। नौ वर्ष तक उन्होंने यह दायित्व कुशलतापूर्वक सम्भाला और ८७ वर्ष की अवस्था मे स्वर्गवासी हुए। हैनरी फिलिप मिटेस जब फ्रांस के प्रधानमन्त्री बने, तब वे ८४ वर्ष के थे। उसी देश की

नेशनल असेम्बली के अध्यक्ष स्टवर्ड हैरियो ७१ वर्ष की आयु मे उस पद के लिए चुने गये। ८४ वर्ष की आयु मे जब उनका स्वर्गवास हुआ, तब तक वे उस पद के कर्तव्यो को बड़ी कुशलतापूर्वक निभाते रहे। दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति सिगमन ८० वर्ष की आयु में भी पूरी तरह क्रियाशील रहे।

कहा जा चुका है कि सफलता और कार्यक्षमता का आयु से कोई सम्बन्ध नही है। उत्साह, लगन और सकल्प बना रहे तो किसी भी आयु या स्थिति मे युवा रहा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने ५० वर्ष की आयु के बाद रामचरितमानस लिखना आरम्भ किया था और दो वर्ष की अवधि मे उसे समाप्त कर विश्व को उपकृत किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १० वर्ष की आयु मे अपना एक उपन्यास पूरा किया था।

यौवन अथवा सक्रियता का आयु विशेष से सम्बन्ध नही है। वह वृद्धावस्था मे भी अक्षुण्ण रह सकता है तो बचपन मे भी प्रतिभा बनकर फूट सकता है। कई बार यह सक्रियता अथवा क्षमता बचपन मे ही आश्चर्यजनक रूप से विकसित होती देखी गई है। इसे सौभाग्य कहे अथवा पूर्वजन्मो के संचित संस्कार। परन्तु संसार मे ऐसी कई विभूतियाँ हुई है, जिन्होने खेलने, खाने की उम्र मे ही अद्वितीय उपलब्धियाँ अर्जित कर दिखाईं। मुगल सम्राट अकबर १४ वर्ष की आयु मे गद्दी पर बैठा था और १८ वर्ष की आयु मे उसने बैरम खाँ को हटाकर स्वतन्त्र रूप से कार्यभार सम्भाला था। सम्राट अशोक जब सिंहासनारूढ़ हुए थे तो उनकी आयु मात्र २० वर्ष थी। छत्रपति शिवाजी ने मात्र १९ वर्ष की आयु मे तोरण का किला जीता था। इसी प्रकार महाराजा रणजीत सिंह ने भी १९ वर्ष की आयु मे ही लाहौर पर विजय प्राप्त की थी। विश्व विजय के अभियान पर निकलते समय सिकन्दर की आयु मात्र २० वर्ष थी। जूलियस सीजर ने भी २४ वर्ष की आयु मे एक भयकर डाकू गिरोह को गिरफ्तार किया था।

प्रसिद्ध साहित्यकार विक्टर ह्यूगो ने १४ साल की अवस्था तक तीन हजार से भी अधिक कविताएँ लिख डाली थी। महाकवि गेटे ने २० साल की उम्र मे अपना पहला नाटक लिखा था। सन्त ज्ञानेश्वर ने गीता पर अपनी टीका ज्ञानेश्वरी १५ वर्ष की आयु में ही लिख डाली थी। सिगमण्ड फ्रायड ने २९ वर्ष की आयु मे ही मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अपना क्रान्तिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया था।

प्रसिद्ध कवि गेटे ने १४ वर्ष की आयु मे ही अपनी प्रसिद्ध रचना 'थाट्स' इन द डिस्टेटो ऑफ जीजस क्राइस्ट इन टू हेल' पुस्तक लिखी और ख्याति अर्जित की। रूसी कवि पुश्किन ने १० वर्ष की आयु मे ही फ्रेंच भाषा मे एक कविता और एक नाटक तैयार कर लिया था।

वैज्ञानिक क्षेत्र मे कितनी ही ऐसी प्रतिभाएँ हुई है, जिन्होने छोटी उम्र में ही बड़े आविष्कार किये। एलीह्विटवी ने २८ वर्ष की आयु मे कपास ओटाने की मशीन का आविष्कार किया। चार्ल्स मार्टिन हाल ने २३ वर्ष की अवस्था मे विद्युत संश्लेषण द्वारा अल्युमिनियम तैयार करने की नई विधि पेटेण्ट कराई। सैम्युअल कोल्ट ने १६ वर्ष की आयु मे ही रिवाल्वर का मॉडल तैयार किया, जिसे बाद में धातु का बनाकर २१ वर्ष की आयु मे रिवाल्वर का आविष्कार कर दिया। एलेग्जेण्डर ग्राह्म बेल ने २० वर्ष की आयु में टेलीफोन आविष्कार के लिए प्रयत्न आरम्भ कर दिया तथा २९ वर्ष की आयु मे हो सफल टेलीफोन यन्त्र का आविष्कार कर उसे पेटेण्ट करा लिया। वायुयान के आविष्कारक 'विल्वर राइट' और 'आल्वर राइट' बीस और तीस वर्ष की आयु के बीच ही वायुयान बनाकर उसको उड़ाने का परीक्षण करने लगे थे। शक्तिचालित वायुयान उड़ाकर जब उन्होने पूरे ससार को आश्चर्यचकित कर दिया था तब आल्वट की आयु ३२ वर्ष, विल्वट की उम्र ३६ वर्ष थी। बिजली का मतदान यन्त्र पेटेण्ट कराने वाले वैज्ञानिक कोलवर्ट की आयु मात्र २१ वर्ष थी। लोगो ने जब इस किशोर को देखा तो दंग रह गये।

वृद्धावस्था मे लोगो की सी सक्रियता बरतने वाले और अल्पायु मे ही प्रौढ़-परिपक्वता का परिचय देने वाले इन उदाहरणो से सिद्ध होता है कि सफलता और प्रतिभा के विकास का आयु से कोई सम्बन्ध नही। आयु न तो कार्यक्षमता को मन्द बनाती है और न ही उसे उत्तेजित करती है। कार्यक्षमता या सफलता का आधार है सुव्यवस्थित योजना, प्रखर बुद्धि और सघन प्रयास। इस आधार पर किसी भी आयु मे सफल हुआ जा सकता है, प्रगति की जा सकती है।

साहस का शिक्षण—संकटों की पाठशाला में

शरीर और मन को अनुकूलताएँ रुचिकर लगती है। उन्हे जुटाने के लिए मनुष्य का समूचा पुरुषार्थ लगा रहता है। जीवनयापन के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाई जायँ यह उचित है, पर यह नही भूलना चाहिए कि चाहते हुए भी वह जरूरी नही कि सदा अभीष्ट प्रकार की परिस्थितियाँ बनी रहेगी। कठिनाइयाँ, प्रतिकूलताएँ भी जीवन पथ पर प्रस्तुत होती है तथा मनुष्य के धैर्य एवं जीवट की परीक्षा लेती है। अनभ्यस्त शरीर और मन को ऐसे अवसरो पर अधिक परेशानी होती है। उपस्थित कठिनाइयो, संकटो को वे व्यक्ति अभिशाप मानते है जिन्होने सतत अनुकूलताओ मे ही रहना सीखा है।

प्रायः देखा यह जाता है कि संकटो के अवसर पर अनभ्यस्त अपना मन ही अधिक समस्या खड़ा करता है। आरम्भ से ही उसे हर तरह की परिस्थितियो मे रहने के

लिए प्रशिक्षित और अभ्यस्त किया गया होता तो उपस्थिति होने वाली कठिनाइयाँ भी खेल-खिलवाड़ जैसी महसूस होतीं। पुरुषार्थ एवं जीवट को निखारने का उन्हे भी माध्यम माना जाता है तथा उतना ही उपयोगी उन्हे भी समझा जाता है, जितना कि अनुकूल परिस्थितियो को।

पर विरले होते है जो अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियो मे एक जैसे निस्पृह बने रहते हैं और अपने मन को दोनो ही में सन्तुलित बनाये रखते है। अन्यथा अधिकांश की प्रसन्नता परिस्थितियो पर अवलम्बित होती है। वे अभीष्ट तरह की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध रहने पर मोद-मनाते तथा उनके तिरोहित होते ही शोकातुर हो उठते है। थोड़े-से व्यक्ति ऐसे भी होते है, जो कठिनाइयो तथा संघर्षो को स्वयं आमन्त्रित करते है। सुविधाओ तथा ढर्रे का जीवन उन्हे नही रुचता। कठिनाइयो, संकटो से जूझे बिना उन्हे चैन नही पड़ता। वे जानते है कि उनका सामना किये बिना आन्तरिक जीवट को उभरने और सुदृढ बनने का अवसर नही मिल सकता। ऐसे व्यक्ति शूरवीर, साहसी, मनस्वी बनते है। स्वयं धन्य होते और दूसरो को प्रेरणा-प्रकाश देते है।

प्राचीनकाल की ऋषि परम्परा के शिक्षण मे ऐसी व्यवस्था रहती थी कि मनोभूमि को सबल, काया को समर्थ और सुदृढ बनाने के लिए वे सारे प्रयोग किये जायें जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति मे सहायक हो। गुरुकुलो मे ऐसा ही शिक्षण चलता था। तप और तितिक्षा का कठोर अभ्यास शिक्षार्थी से कराया जाता था ताकि भावी जीवन मे आने वाले किसी भी संकट-चुनौती का सामना करने मे वह समर्थ हो सके। गुरुकुलो मे प्रवेश लेने तथा प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्रो को अनुकूलताओं मे नही, प्रतिकूलताओ मे जीना सिखाया जाता था। उस शिक्षण प्रक्रिया का परिणाम यह होता था कि विद्यालय से निकलने वाला छात्र हर दृष्टि मे समर्थ और सक्षम होता था। जीवन मे आने वाले अवरोध उन्हे विचलित नही कर पाते थे।

परिस्थितियाँ बदली और साथ मे वह शिक्षण पद्धति भी। मनुष्य के चिन्तन मे भारी हेर-फेर आया। यह मान्यता बनती चली गयी कि अनुकूलताओ मे ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव है। फलत. आरम्भ से ही बालको को अभिभावक हर प्रकार की सुविधाएँ देने का प्रयास करते है, उन्हें तप-तितिक्षामय जीवन का अभ्यास नही कराया जाता। यही कारण है कि जब कभी भी प्रतिकूलताएँ प्रस्तुत होती है, ऐसे बालक उनका सामना करने में असमर्थ सिद्ध होते है।

कुछ विद्यालय आज भी ऐसे है जो जीवट को प्रखर बनाने का व्यावहारिक प्रशिक्षण देते है। उदाहरणार्थ 'जगल एण्ड स्नो सरवाइवल स्कूल एण्डियन एयर फोर्स' की ओर से भेजे गये वायुयान चालको को ऐसी ट्रेनिंग दी जाती है, जिससे वे हर तरह के संकटो का सामना करने मे सक्षम हो सके। हिन्दुस्तान टाइम्स मे प्रकाशित एक समाचार के अनुसार शिक्षण की प्रणाली अत्यन्त रोमांचक होती है। सामान्यतया विमानचालको को हर तरह के क्षेत्र से होकर उड़ान भरनी होती है। हिमालय की ऊँचाई पर स्थित सघन वनो अथवा हिमाच्छादित प्रदेशो अथवा मरुस्थलो से होकर भी चालको को गुजरना पड़ता है। यदि इन दुर्गम प्रदेशो मे कोई दुर्घटना घटती है तो किन-किन परिस्थितियो का सामना करना पड़ सकता है। इसका शिक्षण एवं अभ्यास चालको को कराया जाता है। इन स्थानो पर बिना किसी बाह्य सहायता के किस तरह प्रतिकूलताओ से जूझते हुए बाहर निकलना चाहिये, इसका प्रशिक्षण दिया जाता है।

पैराशूट द्वारा रंगरूट को हिमाच्छादित प्रदेश मे अज्ञात शिखर पर छोड़ दिया जाता है। साथ मे भोजन, पानी तथा अन्य आवश्यक साधन अत्यल्प मात्रा मे उसके साथ होते है। सर्दी, वर्षा, तूफान, हिमपात तथा वन्य प्राणियो जैसे संकटों का उसे सामना करना पड़ता है। अल्प साधनो के सहारे उसे प्रस्तुत होने वाले हर संकट से जूझना पड़ता है। प्रमुख समस्या सामने आती है प्रकृति विपदाओ से अपनी सुरक्षा किस प्रकार की जाय ? आहार की व्यवस्था कैसे जुटाई जाय ? थोड़ी भी असतर्कता उसे मृत्यु के मुँह मे धकेल सकती है। अस्तु उसे पूरी जागरूकता का परिचय देना पड़ता है।

प्रशिक्षण मे कितने ही प्रकार के अभ्यास कराये जाते है ? अल्प आहार मे अधिक से अधिक दिन तक कैसे जीवित रहा जा सकता है ? यह कष्टसाध्य अभ्यास हिमालय के विभिन्न क्षेत्रो मे करना पड़ता है। जल के अभाव मे कुछ दिनो तक जीवित रहने की क्षमता के विकास के लिए चालक को भीषण तापक्रम वाले रेगिस्तानी इलाको मे छोड़ दिया जाता है। थोड़ी-सी पानी की मात्रा उसके साथ होती है। उसके सहारे उसे अधिक से अधिक दिनो तक मरुप्रदेशो मे गुजारा करना पड़ता है। पैदल ही उसे तपते हुए सैकड़ो मील की दूरी तय करके सेना के पड़ाव तक पहुँचना पड़ता है।

बीहड़ जंगलो मे उसे प्रशिक्षण काल मे छोड़ दिया जाता है, यह परखने के लिए कि अविज्ञात क्षेत्रो से वह अपनी रक्षा करते हुए किस प्रकार निकल सकता है ? थोड़े-से खाद्यान्न और पानी के सहारे वह बीहड़ो मे कई दिनो तक भटकता हुआ सुरक्षित स्थान पर पहुँचने के लिए मार्ग ढूँढ़ता है। उसे कितनी बार शेर, बाघ तथा जगली हाथी जैसे हिंसक जीवों का सामना करना पड़ता है। वनो की बीहड़ता से निकलने के लिए उसे अपने मनोबल एवं साहस का पूरा-पूरा परिचय देना पड़ता है। हिमाच्छादित प्रदेश मे रहने का अभ्यास और भी अधिक कष्ट साध्य है। शून्य डिग्री से भी नीचे तापक्रम मे शरीर को रहने के लिए अभ्यस्त करना एक कठोर परीक्षा की अवधि होती है। शारीरिक एव मानसिक क्षमता को

निखारने एव समर्थ बनाने वाली शिक्षण की इन प्रक्रियाओ से होकर गुजारने के बाद शिक्षार्थी को उत्तीर्ण घोषित किया जाता है। इस अवधि मे उसकी मनोभूमि इतनी दृढ बन जाती है कि हर प्रकार के संकट, चुनौतियो का सामना वह कर सके।

यो तो कुछ असामान्य कर जाने की ललक अधिकांश व्यक्तियो मे होती है पर विरले होते है, जो अपनी विशिष्टता का प्रमाण दे पाते है। अन्यथा बहुतेरे मात्र काल्पनिक उड़ाने भरते है। अभीष्ट स्तर का साहस न जुटा पाने, पुरुषार्थ का परिचय न दे पाने के कारण कुछ कर दिखाने की मुराद उनकी कभी पूरी नही हो पाती। जैसे-तैसे वे जीवन के दिन गुजारते और अतृप्त इच्छा लिए हुए इस दुनिया से चल देते है।

कुछ ऐसे भी होते है जिन्हे खाने, कमाने के ढर्रे का जीवन नही रुचता। बिना कुछ असाधारण काम किये चैन नही पड़ता। भीतर का जीवन विशेषकर गुजरने के लिए उछाल मारता है। साधनो की प्रतिकूलता मे भी वे चल पड़ते है अपने दुस्साहस का परिचय देते है। साहस की धनी प्रतिभाएँ जिधर भी चल पड़ती है, अपने एकाकी बलबूते भी चमत्कारी स्तर की सफलताएँ अर्जित कर लेती है। उनके प्रचण्ड पुरुषार्थ के समक्ष प्रतिकूलताओ को भी नत मस्तक होना पड़ता है। उनका प्रयास उस मछली की तरह होता है, जो नदी की प्रचण्ड धारा को उल्टी दिशा मे चीरती हुई चली जाती है। रोमांचक साहसिक अभियान ऐसे ही पुरुषार्थी पूरा कर पाने मे सफल होते है।

जैकी टेरी नामक एक व्यक्ति ने इंगलिश चैनल को साइकिल द्वारा पार करने का निश्चय किया। अनेको व्यक्तियो ने तैरकर तो चैनल को पार किया था, पर साइकिल से पार करना संकटो से भरा हुआ था। थोड़ा भी सन्तुलन गड़बड़ा जाने से मृत्यु की गोद मे जा पहुँचने का खतरा था। उसने विशेष प्रकार की साइकिल बनावाई, जिसके पहिये रबर टायर के थे। साइकिल के डूबने का खतरा तो नही था, सन्तुलन बनाये रखना अत्यन्त कठिन कार्य था। टेरी को डोवर (यू. के.) नामक स्थान से कैलाइस (फ्रांस) तक पहुँचना था। साइकिल लेकर वह चल पड़ा। तीव्र प्रवाह मे वह कितनी बार गिरते-गिरते बचा पर उसने हिम्मत नही हारी। मात्र आठ घण्टे मे चैनल के दूसरे किनारे पहुँचकर एक नया और अद्भुत कीर्तिमान स्थापित किया।

अधिकाश व्यक्ति बुढ़ापे को जीवन का अभिशाप समझते है। ऐसी मान्यता है कि साहस, उमंग और उत्साह की विशेषताएँ युवावस्था तक ही रहती हैं। शरीर भी प्रायः अशक्त हो जाता है। पर इस मान्यता को झुठलाने वाले कितने ही व्यक्ति हुए है ? विलिम विलियम नामक व्यक्ति के जीवन का उत्तरार्ध पक्ष ऐसे अभियानो को पूरा करने मे खपा, जो अत्यन्त खतरनाक थे। ६१ वर्ष की आयु मे उसके मन मे विचार आया कि कुछ नये प्रकार का कार्य किया जाय। सात लकड़ी के लट्ठो से बने अस्थायी पोत से पेरु (दक्षिण अमेरिका) से समीमोआ (प्रशान्त महासागर) की यात्रा करने के लिए वह अकेला चल पड़ा। साथियो, सम्बन्धियो ने उसे इस संकट युक्त अभियान के लिए रोका, कितनो ने उसे पागल करार दिया तथा यह कहा कि 'विलिस' अपनी मृत्यु स्वयं आमन्त्रित कर रहा है। पर एक बार निश्चय कर लेने के बाद कोई उसे डिगा नही सका। साथी के नाम पर उसने मन बहलाने के लिए एक बिल्ली और एक तोते को अपने साथ ले लिया। मार्ग मे कितने ही अवरोध आये ? समुद्र की तूफानी लहरो के बीच लकड़ी के गट्ठर की नाव को डूबने से बचा लेना विशेष सूझ-बूझ और हिम्मत की बात थी। हर अवरोध को चीरते हुए उसने छः हजार सात सौ मील की लम्बी दूरी मात्र एक सौ बारह दिन मे पूरी की।

प. जर्मनी का पीटर नारमैन सत्तर वर्षीय वृद्ध अपनी गोताखोरी के कमाल के लिए प्रख्यात था। खोई वस्तुओ को समुद्र से ढूँढ़ने मे उसे विशेष दक्षता प्राप्त थी। इस आयु मे सोने-चाँदी से भरे एक अँग्रेजी पोत के समुद्र मे डूब जाने पर उसने गोताखोरी के ग्रुप का नेतृत्व किया। अपने प्रयत्नो से उसने इस विपुल सम्पदा का पता लगा लिया, जो समुद्र मे डूब गई थी। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध मे उसकी साहसिक ख्याति पूरे जर्मनी मे फैल गई। समुद्र के गर्भ मे समाई सम्पदा को ढूँढ़ने पर उसे एक बड़ी रकम पारितोषिक के रूप मे प्राप्त हुई।

गोताखोरी के इतिहास मे फ्रांसीसी गोताखोर अलैक्जैण्डर लैम्बर्ड का नाम उल्लेखनीय है। उसने अकेले ही कैनेरी द्वीप से कुछ दूर ध्वस्त हुए स्टीमर 'अल्फेन्सो' का एक सौ बासठ फीट नीचे पानी मे जाकर पता लगाया। स्टीमर मे सोने की सिल्लियाँ भरी थी। निरन्तर ग्यारह दिन तक वह प्रतिदिन तीन के हिसाब से गोता लगाता रहा। हर बार वह पाँच मिनट से लेकर दस मिनट तक पानी के भीतर रहकर सोने की ईंटो को खोजता था। इस तरह उसने अपने दुस्साहस का परिचय देकर लगभग साढ़े तीन लाख डालर से भी अधिक कीमत का सोना प्राप्त करने मे सफलता पाई।

भोजन और पानी जैसे न्यूनतम साधन तो हर व्यक्ति को जीवित रहने के लिए चाहिये। फ्रास के एक चिकित्सक डॉ. एलेन बाम्बर्ड ने अत्यन्त जोखिम भरा निर्णय लिया, अपने साथ कुछ भी खाने-पीने योग्य वस्तुएँ न लेकर उसने निश्चय किया कि प्रकृति के आँचल मे जो कुछ भी मिल जायेगा, उसके सहारे ही वह अटलांटिक महासागर पार करेगा। एक छोटी-सी नौका को लेकर वह चल पड़ा गन्तव्य की ओर। उसे कैनेरीज मे बारवेडोस तक की लम्बी दूरी तय करनी थी। पैसठ दिन तक वह समुद्री यात्रा पर रहा। समुद्र का खारा पानी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है पर वह उसी पानी का सेवन करके जीवित रहा और अन्ततः अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे सफल रहा।

शून्य डिग्री से नीचे तापक्रम पर पानी बर्फ के रूप में जमने लगता है। ऐसे अनेकों बर्फीले प्रदेश है, जहाँ वर्ष के बारहों माह बर्फ जमी रहती है। विशेष ऊँचे पहाड़ के शिखरो पर भयंकर ठण्डक पड़ती है। सामान्यतया नंगे पैर उन शिखरो पर आरोहण मुश्किल ही नहीं प्रायः असम्भव माना जाता है।जर्मनी के फ्रिट्ज सीगेल ने इस असम्भव को सम्भव कर दिखाया। सन् १९३२ के जुलाई माह मे उसने वह ऐतिहासिक चढ़ाई की। जर्मनी के 'जग्स पट्स' शिखर की ऊँचाई नौ हजार सात सौ अट्ठाइस फीट है। शरीर को गला देने वाली ठण्ड को भी उसने अपने जीवट और मनोबल के सहारे सहन किया। पैर तो जख्मी हो गये पर उसकी यात्रा रुकी नही। नंगे पैर उस उच्च शिखर पर पहुँचकर 'सीगेल' ने एक अनोखा कीर्तिमान स्थापित किया।

घुड़सवारी का वह बेमिसाल प्रदर्शन था। माउण्ट गैम्बियर आस्ट्रेलिया के एडैमलिण्ड से जॉर्डन नामक व्यक्ति को साढे चार फुट ऊँची बाड़ के ऊपर से एक पतली ऐसी कगार पर कूदना था, जहाँ मुश्किल से खड़े होने भर की जगह थी। वह एक चट्टान का किनारा था। चट्टान से फिसलने का अर्थ था—नीचे तीन सौ फुट गहरी खाई मे जा गिरना। इस रोमांचक प्रदर्शन को देखने के लिए अपार भीड़ जमा थी। ऐसा लगता था कि सबकी आँखे थम गई हो। किसी को यह विश्वास नहीं था कि जॉर्डन को इस खतरनाक काम मे सफलता मिलेगी, कमजोर मनोभूमि के दर्शको ने सीटी बजते ही अपनी आँखे बन्द कर ली। अर्जुन के लक्ष्यवेधी बाण की तरह उसने घोड़े पर बैठकर छलाँग लगा दी और ठीक उस स्थान पर गिरा जहाँ से मृत्यु का मार्ग आरम्भ होता था। घोड़े ने भी सन्तुलन बनाने के लिए अपने शरीर को चट्टान पर पहुँचते ही तिरछा कर लिया। दर्शको की हर्षध्वनि वातावरण मे गूँज उठी। यह अदम्य साहस की एक अनोखी घटना थी, जिसका रिकार्ड आज भी आस्ट्रेलिया में मौजूद है।

नंगे पैर हिमाच्छादित शिखरो पर चढ़ने वाले साधारण से व्यक्ति हेनरी ड्यूक का नाम भी दुस्साहसियो की शृंखला मे आता है। ड्यूक का वह आरोही जब बरफ से ढके आल्पस पर्वत को पार करने चलने लगा तो सत्रहवीं सदी के स्थानीय सम्राट ने उसे इस जोखिम से भरे कार्य के लिए स्पष्ट मना किया। पर उसने राजा की भी अवहेलना कर दी। अकेले ही वह हिमाच्छादित प्रदेश की यात्रा करता रहा। राजा का आदेश उल्लंघन करने के कारण वह पुनः अपनी जन्मभूमि पर नहीं लौट सका। भयंकर शीत मे बर्फ पर नगे पैर पहाड़ी इलाके से होते हुए वह पेरिस, फ्रास से रोम और फिर इटली जा पहुँचा। थोड़े दिन विश्राम लेने के बाद उसने आल्पस पर्वत पर चढ़ाई आरम्भ की। आल्पस को लाँघते हुए वह इटली से 'रिवोली' पहुँच गया। जीवन के अन्तिम दिनो तक वह रिवोली में ही रहा। साहसियो के इतिहास मे ड्यूक का नाम आज भी लिया जाता है।

एक पारसी सन्त अबुल कासिम जोनिट ने अपने जीवनकाल मे मक्का की तीस बार यात्रा की। हर बार वह पैदल चला। उसने कुल ८२ हजार ६ सौ मील की दूरी तय की। अन्तिम यात्रा विशेष कष्ट साध्य थी। यह निश्चय करके वह चला कि मक्का की अन्तिम यात्रा की अन्तिम १४ सौ मील की दूरी पूर्णतया घुटनो के बल चलकर पूरी करेगा। अपने संकल्प के प्रति वह दृढ़ था। इस प्रयास मे उसके घुटने जख्मो से भर गये पर अन्तिम क्षण तक उसने अपना संकल्प नही छोड़ा। मक्का पहुँचने में वह सफल हो गया।

गुब्बारे से उड़ान भरना आज उतना खतरनाक नही रहा जितना कि एक सदी पूर्व था। कारण है कि तब आज जितना तकनीकी ज्ञान का विकास नही हुआ था। सैण्टोस डुमोण्ट फ्रांस का पहला व्यक्ति था जिसने एक गुब्बारे का आविष्कार किया था। १९०१ मे उसने गुब्बारे से उड़ान का एक सफल प्रदर्शन किया। एफिल टावर के इर्द-गिर्द वह गुब्बारे के सहारे उड़ता रहा। इस अनोखे प्रदर्शन के लिए उसे इनाम की एक बड़ी राशि प्राप्ति हुई। पर उसने उस सम्पत्ति को समाजसेवी संस्थाओ मे वितरित कर दिया। तब से उसने समाज सेवा का एक नया मार्ग ढूँढ निकाला। वह गुब्बारे की उड़ान का जगह-जगह प्रदर्शन करता। फलस्वरूप उसे पारितोषिक मे अपार धनराशि मिलती, जिसे वह मनुष्य जाति के कल्याणकारी कार्यो मे मुक्त हस्त से लगा देता। उस सम्पत्ति से डुमोण्ट ने अनेकों गिरजाघरो का निर्माण कराया।

'दैट इज इनक्रैडीबल' पुस्तक मे एक रोमांचक घटना का उल्लेख है। ६ मार्च, १९८० को कोलोराडो नामक नगर मे एक प्रदर्शन को देखने के लिए विशाल जन-समूह एकत्रित हुआ। अर्कन्सास नदी से हजारो फुट ऊँचाई पर एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक मोटी रस्सी बाँध दी गई। एक हजार फीट लम्बी रस्सी को हाथो से पकड़कर नदी के दूसरी ओर पहुँचना था। इस रोमांचक प्रदर्शन का हीरो था डेविड किर्क। धरातल से सौ मीटर ऊँचाई पर बँधी रस्सी को किर्क ने सीढ़ी के सहारे चढ़कर पकड़ लिया। दर्शको की श्वाँस की गति डर के मारे तेज हो गई पर किर्क के लिए जैसे वह कार्य खेल का रिहर्सल हो इस ढंग से उसने अपना प्रदर्शन आरम्भ किया। थोड़ी-सी असावधानी से रस्सी छूट सकती थी, जिसके फलस्वरूप हजारो फुट गहरी नदी मे गिरने का खतरा था। इस खतरनाक प्रदर्शन मे किर्क पूर्णतया सफल रहा। एक किनारे पर कुछ ही मिनटो मे पहुँचकर डेविड ने यह सिद्ध कर दिया कि साहसियो के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। हिम्मत हो तो वह कार्य कर दिखाया जा सकता है, जो प्रायः दूसरे सामान्य व्यक्तियो के लिए असम्भव माने जाते है।

ध्रुव प्रदेशो को अगम्य माना जाता रहा है। अत्यधिक शीत से भरा हिमाच्छादित यह क्षेत्र निर्वाह के साधनो की दृष्टि से रहने योग्य नही है। इतने पर भी साहस के धनी 'एडवेचर' को ही पसन्द करने वाले लोग वहाँ जा ही पहुँचे और वहाँ रहकर अपनी पृथ्वी की गतिविधियो, भौगोलिक जानकारियो सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाये ला सकने मे सफल हुए है। ध्रुव अभियान कितने कठिन है, इनकी कल्पना करने मात्र से रोमाच हो उठता है। पर मानवी दुस्साहस तो अजेय शक्ति है। वह असम्भव को सम्भव बनाती रही है। यह मनुष्य का पराक्रम ही तो है, जिसने ध्रुवीय क्षेत्र मे जा पहुँचने, रहने और काम करने की कठिनाइयो को भी सरल बना दिया है और वैज्ञानिक अब वहाँ डेरा डालकर रह रहे है। जीव-जन्तुओ मे विद्यमान बायोलॉजिकल क्लॉक, मौसम के जीव चेतना पर प्रभाव, पृथ्वी चक्र की परिक्रमा के साथ चुम्बकीय उतार-चढ़ाव, ध्रुव स्थानो पर विद्युतीय चुम्बकीय बल आदि सम्बन्धी खोजे इन्ही साहस के धनी सकल्पवानो के बलबूते ही पाई है।

दक्षिण ध्रुव पर सबसे पहला शोधकर्ता नार्वे का रोनाल्ड एमण्डसन अपने चार साथियो सहित सन् १९०७ मे पहुँचा था। उसे रोवर स्कॉट के रूप मे एक सहयोगी भी बाद मे मिला। ८ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे फैली दस हजार फुट मोटी बर्फ की चादर से ढके, नितान्त नीरव इस स्थान पर कोई हौसले वाला ही टिक सकता है। यह दल लगातार दस वर्ष तक वही पड़ा सीमित साधनो मे निर्वाह कर विविध प्रकार के अनुसन्धान करता रहा।

उत्तरी ध्रुव क्षेत्र का पर्यवेक्षण करने के लिए सन् १९६१ मे अमेरिकी वैज्ञानिको ने अलास्का मे एक तैरती प्रयोगशाला स्थापित की। दो मील लम्बा, डेढ़ मील चौड़ा, ६० फुट मोटा एक हिमखण्ड उस क्षेत्र मे इन वैज्ञानिको ने तैरता पाया, जो अलास्का से १३० मील उत्तर मे था तथा ग्रीनलैण्ड की ओर तैरता जा रहा था। उस पर इन वैज्ञानिको ने अड्डा जमाया और ऐसी झोपड़ियाँ खड़ी की, जो ७० मील की गति से चलने वाले अन्धड़ो का दबाव बर्दाश्त कर सके। मैक्स ब्रीवर इस शोध के संचालक थे। एक अस्थाई जेनरेटर से विद्युत की व्यवस्था बनाई गई। हिमद्वीप पर इस सवारी मण्डल ने चार वर्ष तक यात्रा की। तैरते-तैरते ७५०० मील का सफर पूरा कर इस द्वीप ने अपनी यात्रा ग्रीनलैण्ड और आइसलैण्ड के बीच डेनमार्क की खाड़ी मे उत्तरी ध्रुव के समीप समाप्त की। यहाँ बर्फ गलकर धीरे-धीरे समाप्त हो गयी। शोध-सस्थान को भी इस पर से अपना डेरा उठाना पड़ा पर इस बीच वे जो जानकारी इस 'तैरते द्वीप' से लेकर आये थे, उसने भूगोल, विज्ञान, परिस्थिति तथा भूगर्भ विज्ञान को कई नयी दिशायें दी तथा पुरानी मान्यताओं मे परिवर्तन किया। ३५ वर्षीय जान्सटन को तो यह द्वीप इतना सुहावना लगा कि जब इस द्वीप को छोड़ रहे थे। यह प्रकृति की लीला जगत का हनम्म हो अवलोकन कर रहा था और गलते हिमखण्ड के साथ उसने भी हिम समाधि ले ली।

आज तो सुविधा-साधन बहुत है। इन बीस वर्षों मे विज्ञान ने जो प्रगति की है, उससे वातानुकूलित यान, आइसस्कूटर्स व ध्रुवीय परिस्थितियो के लिये ही विशेष रूप से बनाये गये। विशेष तापयुक्त मकान भी प्रयोगशालाओ को उपलब्ध है। कई दल वहाँ महीनो डेरा डाले पड़े रहते है। पर उनका बलिदान भुलाया नही जा सकता, जिन्होने इस खोज मे साधनो के बिना अकेले पुरुषार्थ कर दिखाया और जान की बाजी लगा दी।

जो अपनी सहायता करने को तत्पर हों, उन्हें कोई नहीं रोक सकता

दिन-रात की तरह अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियाँ सभी के सामने आती रहती है। सामान्य व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियो मे तो हर्ष मनाते और विपरीतताओ के आने पर खिन्न हो जाते है। प्रतिकूलताओ से जूझने के बजाय वे अपना धैर्य खोते और निराश होते देखे जाते है। परन्तु आत्मविश्वासी, निष्ठा के धनी, अध्यवसायी व्यक्ति विषम परिस्थितियो को वरदान स्वरूप समझते है, जिन्हे साधारण आदमी अभिशाप मान बैठते है। संसार मे सफलताएँ उन्ही को मिली है, जिन्होने अपनी लगन, प्रयत्नशीलता और आत्मविश्वास के सहारे कठिन से कठिन परिस्थितियो पर विजय पाई। कठिनाइयो का उन्होने उस सान के पत्थर की तरह उपयोग किया, जिसे चाकू, कैंची आदि औजारो को तेज करने मे प्रयोग किया जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियो को वे प्रखरता बढ़ाने का उपयुक्त अवसर समझते है। ऐसे सैकड़ो व्यक्तियो के उदाहरण दुनिया मे भरे पड़े है, जिन्होने न केवल विषम परिस्थितियो मे अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखा वरन् प्रकृति के अभिशापो के बावजूद भी वह कर दिखाया जो सामान्य व्यक्ति सब कुछ होने पर भी नही कर पाते।

कुछ वर्ष पूर्व एक रूसी पत्रिका ने 'गुगो पेटर्स' नामक लँगड़े विमान चालक के साहस का वर्णन प्रस्तुत किया था। गुगो बचपन मे ही अपने संगी-साथियों और घर-परिवार के लोगो से कहा करता कि वह 'पाइलेट' बनेगा। किन्तु परिस्थितियो ने उसे 'ट्रैक्टर चालक' के कार्य मे लगा दिया। लोग उसका उपहास करते तो भी वह यही कहता—"एक न एक दिन मै पायलेट अवश्य बनूँगा और ट्रैक्टर के स्थान पर हवाई जहाज चलाऊँगा।"

परन्तु कुछ ही दिनो बाद वह अचानक ट्रैक्टर के नीचे आ गया, उसकी एक टाँग बेकार हो गई, उसे कटवा देना पड़ा। पर गुगो फिर भी मुस्कराते हुए कहता कि 'गुगो परिस्थितियों से हार मानने वाला नहीं है।'

कुछ महीनो मे वह ठीक हो गया और 'कार-ड्राइविंग' सीखकर कार चलाने लगा। अधिकाश लोगो को तो पता भी नही चल पाता कि गूगो की एक टाँग कृत्रिम है। उसके मन मे 'पायलेट' बनने का बीज ज्यो का त्यो विद्यमान तो था ही—अवसर पाकर उसने हवाबाजी के क्लब मे मेकेनिक का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया और धीरे-धीरे वायुयान चालक बनने के प्रयास भी शुरू कर दिये। किन्तु डाक्टरी परीक्षण मे सफल होने मे उसकी एक टाँग बाधक हो रही थी।

पर सच्ची उत्कृष्ट अभिलाषा जहाँ भी होती है वह अपना रास्ता भी बना लेती है। गूगो ने 'चेल्याविंस्क' से मास्को मे पहुँचकर हवाबाजी के केन्द्रीय चिकित्सा आयोग के डा. ग्रिगोरी ग्राइफर से 'विमान-चालक' का कार्य करने की अनुमति भी प्राप्त करली। यह 'गूगो पेटर्स' के अडिग विश्वास, अटूट निष्ठा और अथक प्रयासो का ही परिणाम था, उसके मित्र उसे 'उड़ता होल्डर' कहकर सम्बोधित करने लगे।

यह तो उस व्यक्ति की निष्ठा एव लगन का प्रसंग है, जिसने एक टाँग के न होने पर भी विमान चालक बनने की अपनी चाह अन्तत. पूरी कर ही दिखाई। चीन के प्रसिद्ध चित्रकार 'होनेएकनान' के बचपन मे ही न तो हाथ रहे और न पाँव। सामान्यतः हाथ-पैर विहीन बालक परिवार एवं समाज की कृपा पर ही जीवित रह सकता है परन्तु होनेएकनान ने इस धारणा को निराधार सिद्ध करके दिखा दिया।

इस विकलांग पर साहसी बालक ने वर्षो तक अभ्यास करके मुँह मे पेन्सिल दबाकर चित्र बनाने मे सफलता अर्जित कर ली और लोगो को यह दिखला दिया कि मनुष्य उपलब्ध साधनो से ही बहुत कुछ कर सकता है। पेन्सिल से चित्र बनाने के उपरान्त जीभ से बुश का काम लेता है, मुँह मे रग भरकर पेन्टिग करता। इस प्रकार अपंग होकर भी होनेएकनान ने चीन के चित्रकारो मे अद्वितीय स्थान पाने का गौरव प्राप्त किया। उसने दुर्भाग्य का रोना कभी नही रोया।

ऐसा ही एक उदाहरण एक अमेरिकी सिपाही का है। अमेरिका के 'कन्सास' नगर का बहादुर सैनिक 'विलियन मैकफर्सन' युद्ध मे लड़ रहा था। युद्ध मे उसकी दोनो आँखे चली गईं। बम-विस्फोट की चपेट मे आ जाने से दोनो पैर बेकार हो गये और हाथो से भी हाथ धो बैठा। फिर भी वह साहसी सैनिक जीवन से निराश नही हुआ, वरन् यही कहता कि जब तक उसका मन स्वस्थ है, तब तक वह हर प्रकार की कठिन परिस्थितियो से संघर्ष करता रहेगा।

उसने सोचा कि हाथ-पाँव भले ही नहीं रहे, मस्तिष्क तो सही-सलामत है। उसने ज्ञान-साधना करने का निर्णय किया। इसके लिए चाहिये था गहन अध्ययन चिन्तन। आँखो की बात तो बहुत दूर थी, पुस्तक तक वह नही पकड़ पाता था। परन्तु 'जहाँ चाह वहाँ राह' वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाले मैकफर्सन ने अपना अध्ययन का निर्णय अटल रखा। सुनकर व बोलते हुए दुहराकर उसने पढ़ना सीख लिया और थोड़े ही दिनो मे इतना निपुण हो गया जितना कि एक सामान्य साक्षर मेट्रोकुलेट को आवश्यकता होती है।

सफलताओ-असफलताओ मे बाह्य परिस्थितियो का उतना योगदान नही होता, जितना स्वयं की मनःस्थिति का। सन्तुलन, धैर्य, साहस, उत्साह और जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण बना रहे तो प्रतिकूल से प्रतिकूल और गई-गुजरी परिस्थितियो मे भी आगे बढ़ने के लिए मार्ग निकाला जा सकता है। इसके विपरीत अपना दृष्टिकोण निराशावादी हो तो अनुकूलताएँ भी प्रगति मे सहायक नही हो पाती और कितने ही सफलता के स्वर्णिम अवसर देखते ही देखते निकल जाते है। किसी भी क्षेत्र मे सफलता अर्जित करने के लिए मूलतः सिद्धान्त यही है।

कितने ही व्यक्ति इस फिराक मे रहते है कि अमुक तरह की अनुकूलताएँ उपलब्ध हो तो अभीष्ट दिशा मे कदम उठाया जाय। ऐसे व्यक्तियो को प्रायः जीवनपर्यन्त निराश ही रहना पड़ता है क्योकि अपने आप ऐसा संयोग शायद ही कभी बैठ पाता है जब बाहरी परिस्थितियाँ निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रगमन मे सहयोग देने के लिए हाथ बाँधे तैयार खड़ी हो। असफलताओ का, परिस्थितियो का रोना रोते रहने वालो को उन व्यक्तियो से प्रेरणा लेनी चाहिये, जो घोर विपन्नताओ मे जन्मे। प्रकृति ने उन्हे शारीरिक दृष्टि से अक्षम बनाकर उनका उपहास किया और विपत्तियो की शृंखला मे एक कड़ी और जोड़ दी। मुक्त कण्ठ से मनोबल, संकल्प बल के धनी इन सत्साहसी व्यक्तियो की सराहना करनी होगी, जिन्होने प्रकृति प्रदत्त अभिशाप को भी वरदान मानकर गले लगाया और घोर अन्धकार मे टिमटिमाते दीपक की भाँति प्रतिकूलताओ को चीरते हुए आगे बढ़ते गये।

(अमेरिका) के अलवामा राज्य के टस्कानिया नामक स्थान मे जन्मी हेलनकेलर जब ६ माह की थी तभी कुदरत ने एक क्रूर मजाक किया। मस्तिष्क ज्वर मे यह अबोध बालिका अपनी नेत्र ज्योति और श्रवण क्षमता दोनो ही गँवा बैठी। विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे होने के कारण बहरे होने के साथ गूँगेपन का एक अतिरिक्त श्राप भी जुड़ गया। पर इस बालिका ने जीवन के प्रति आशा की ज्योति को बुझने नही दिया। सोचने-समझने योग्य होते ही वह आशावादी सपने सँजोने लगी। उसने सोचा वह समाज के ऊपर भार बनकर नही, दीन-हीन के रूप मे नही स्वावलम्बी बनकर जीयेगी। प्रतिभा संवर्धन के लिए वह दिन-रात एक कर देगी और संसार को यह बता देगी कि देखो ! शारीरिक अक्षमता विकास मे बाधक नही बन सकती।

अपने संकल्प को साकार करने मे वह तन-मन से पूरी तत्परतापूर्वक जुट पड़ी। कहावत है कि भगवान भी उन्ही की सहायता करता है, जो अपनी सहायता के लिए स्वयं सचेष्ट रहते हो। लगन, निष्ठा और असाधारण उत्साह की धनी इस गूँगी, बहरी और अन्धी बालिका के लिए ईश्वरी वरदान के रूप मे सहचरी मार्गदर्शिका बनी "कुमारी मैन्सफील्ड"। डा. होवे द्वारा आविष्कृत सांकेतिक प्रणाली के माध्यम से उन्होने 'केलर' को पढ़ना-लिखना सिखाया। धीरे-धीरे केलर का गूँगापन कुछ सीमा तक दूर हो गया। वह भावाभिव्यक्ति मे सक्षम हो गई। अनवरत् अध्यवसाय के बलबूते वह ग्रीक, लैटिन जैसी अनेको भाषाओ की विशेषज्ञ बनी। गणित और दर्शन जैसे गूढ़ विषयो में प्रवीणता हासिल कर उसने अपनी प्रखरता का परिचय दिया।

हेलन केलर की प्रतिभा को देखकर सुप्रसिद्ध साहित्यकार मार्कट्वेन ने उसे उन्नीसवी सदी का मानवीय चमत्कार कहा। जब कोई हेलन की विलक्षण प्रतिभा को देखकर आश्चर्य व्यक्त करते तो वह यही कहती है कि "मुझे अपनी प्रगति पर तनिक भी आश्चर्य नही है। यह सब आशा, लगन, उत्साह और मनोबल का चमत्कार है।"

बिलासपुर (म. प्र.) के एक युवक समीर कुमार घोष ने बी. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पैर के अँगूठे से लिखकर पास की। आठ वर्ष की आयु मे ही वह एक दुर्घटना मे दोनो हाथ गँवा बैठे। पर उन्होने हार नही मानी। पैर के अँगूठे से लिखने का अभ्यास करते रहे। बी. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण कर उन्होने यह सिद्ध कर दिया कि शरीर की अक्षमता, अपंगता सफलता मे बाधक नही बन सकती। अभी आगे उन्हे भी पढ़ने की इच्छा है। उन्होने इस वर्ष बम्बई के टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेन्स मे सामाजिक कार्य के दो वर्षीय पाठ्यक्रम मे प्रवेश लिया है।

विकलागता को चलने-फिरने, कठोर श्रम करने दुस्साहसी यात्राएँ करने मे बाधक समझा जाता है पर ब्रिटेन के एक पर्वतारोही ने इस मान्यता को झूठा सिद्ध किया, प्रकृति के अन्तराल मे बिखरे सौन्दर्य का दर्शन करने का मन कितने ही व्यक्तियो का करता है। विशाल पर्वत-शृंखलाओ मे वह सौन्दर्य प्रचुर परिमाण में बिखरा पड़ा है। पर उसका दर्शन तो दुस्साहसी व्यक्ति ही कर पाते है। जो इतनी ऊँचाई पर चढ़ने की हिम्मत सँजोते है, वे ही प्रकृति की छटा का आनन्द लेते है। पर्वतारोहण आदि मे दुहरा उद्देश्य होता है, सौन्दर्य का दिग्दर्शन और श्रेय सम्पादन। आये दिन पर्वतारोहियो की टोली इन्ही उद्देश्यो को लेकर दुर्गम शिखरो पर चढ़ने का दुस्साहस करती हैं। ब्रिटिश नागरिक नौरमन क्राउचर के मन मे भी पर्वतारोहण की उमंग उठी। इस उद्देश्य मे विकलांगता अवरोध खड़ा कर रही थी पर वे निराश नही हुए। एक ब्रिटिश पर्वतारोही टोली के साथ बैशाखी के सहारे वे भी पर्वतारोहण अभियान मे चल पड़े। कश्मीर के निकट हिमालय के नूर शिखर की चढ़ाई मे कितने ही संकटो का सामना करना पड़ा। पर सभी को पार करते हुए वे २२ हजार फुट की ऊँची चोटी पर पहुँचे। अपनी इस सफलता के बाद क्राउचर का इरादा है हिमालय के और भी उच्च शिखरो पर आरोहण करने का।

ऐसा ही एक दुस्साहसी उदाहरण प्रस्तुत किया—पैराडाइस, वाशिंगटन के नौ विकलाग पर्वतारोहियो ने। शंकर जी की बारात की भाँति इनमे से पाँच नेत्रविहीन थे, दो की कृत्रिम टाँगे थीं। एक की टाँग मुड़ी हुई थी और दो गूँगे, बहरे तथा हाथो से रहित। इन नौ विकलांगो ने पर्वतारोहण का निश्चय किया। स्थानीय व्यक्तियो ने आरम्भ में उनके इस संकल्प का मजाक उड़ाया पर मनोबल के धनी इन व्यक्तियो ने उनके परिहास की ओर ध्यान न दिया और चल पड़े अपने गन्तव्य को।

चढ़ाई शुरू हुई। लक्ष्य था साढ़े चार हजार मीटर ऊँचाई पर उपस्थित पर्वत की चोटी। कितने ही व्यक्तियो ने इनकी शारीरिक स्थिति पर दया दिखाते हुए इस संकट से भरे अभियान के लिए रोका और कितनो ने मार्ग मे आने वाले अवरोधों, चलने वाली बर्फीली आँधियो का भय दिखाया पर वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। साथ मे ब्रैल मानचित्र लेकर चल पड़े। अपंग पर्वतारोहियो की सबसे बड़ी विशेषता थी, उनमे परस्पर आपसी सद्भावना, भाव, स्नेह और सहयोग की। एक साथ चलने, एक साथ जीने-मरने के भाव भरे संकल्प के समक्ष प्रतिकूलताएँ भी नत-मस्तक हो गयी। कठिनाइयो को झेलते, अवरोधो को चीरते हुए वे निरन्तर आगे बढ़ते गये। ४ जुलाई, १९८१ को उनका आरोहण अभियान पूरा हुआ। साढ़े चार हजार मीटर ऊँचे शिखर पर अन्ततः पहुँचने मे यह दल सफल हुआ। शिखर पर पहुँचकर इन्होने झण्डा फहराया, हर्ष से एक-दूसरे के गले मिले। इस टीम के एक सदस्य २९ वर्षीय 'जस्टिन मेक्डीविट' ने अभियान की सफलता का श्रेय सामूहिक संकल्प शक्ति को दिया।

अपंग, अपाहिज, शारीरिक दृष्टि से अक्षम होते हुए भी ये व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रो से सफल और दुस्साहसी कार्य करने मे भी समर्थ हो सकते है तो कोई कारण नही कि जो शरीर से स्वस्थ और मन-मस्तिष्क से समर्थ है। अपने निर्धारित लक्ष्य मे सफल न हो सके। असफलता का कारण एक ही बनता है कि निश्चित लक्ष्य के प्रति मनोयोग-तत्परता का अभाव। परिस्थितियो को अत्यधिक महत्व वे ही देते है जिन्हे अपनी आन्तिरिक शक्ति पर विश्वास नही होता। बाह्य अनुकूलताएँ अभीष्ट मात्रा मे मिले तो प्रगति के लिए प्रयास करें यह कल्पना मात्र कल्पना ही बनकर रह जाती है। अनुकूलताओ की राह ताकते रहने की अपेक्षा ईश्वर प्रदत्त साधन शरीर और मन-मस्तिष्क के रूप मे मिले है, उनका ही भली-भाँति सदुपयोग कर लिया जाय तो किसी भी दिशा मे सफलता अर्जित कर लेना सम्भव है।

प्रचण्ड पुरुषार्थ ही एकमात्र अवलम्बन

भाग्य तो पुरुषार्थ की छाया भर है

जिस प्रकार अन्धकार हमे वस्तुस्थिति का सही ज्ञान नही होने देता है और उसके प्रभाव से बचने के लिए हमे कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अज्ञानरूपी अन्धकार से बचने के लिए, वस्तुस्थिति का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानरूपी प्रकाश की आवश्यकता होती है। अन्धेरे मे पड़ी रस्सी हमे साँप के होने की भ्रान्ति पैदा कर देती है। छोटी-छोटी झाड़ियाँ, पेड़-पौधे, रीछ, व्याघ्र तथा भूत-प्रेतो के रूप मे हमारे अन्दर भय और आशंका उत्पन्न करने का कारण बन जाते है। उसी प्रकार अज्ञान या भ्रान्ति का भय तो सबसे अधिक डरावना एवं घातक माना गया है।

वस्तुस्थिति का सही ज्ञान कराने के लिए ही अध्यात्म का सारा ढाँचा खड़ा हुआ है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य को विवेकशील बनाना है। इस संसार मे अच्छाई और बुराई दोनो विद्यमान है। यहाँ अच्छे से अच्छे एवं बुरे से बुरे विश्वास एव रीति-रिवाजो का प्रचलन है। ऐसी परिस्थिति मे हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उनके गुण-दोषो का नीर-क्षीर विवेक, बुद्धि से विश्लेषण कर औचित्य के साथ ही अपनी निष्ठा जोड़े और अनौचित्य का त्याग करे। गुण-दोष का विवेचन कर आत्मोत्कर्ष के लिए प्रयत्न करना ही वेदान्त का प्रथम सूत्र है, "**अथातोऽब्रह्म जिज्ञासा।**"

जो व्यक्ति वास्तविकता या अवास्तविकता को जानने का कष्ट नही उठाते, निश्चयात्मक रूप से मानसिक आलस के कारण उनकी मौलिकता एवं विशिष्टता नष्ट हो जाया करती है। इस दासता के बन्धन मे जकड़ा हुआ कोई समाज या राष्ट्र पतनोन्मुख ही होगा, विकासशील नही।

सैकड़ो वर्षो की पराधीनता ने हमारी बौद्धिक प्रतिभा को नष्ट कर दिया है। विदेशी आक्रमणकारियो ने जहाँ हमारी विपुल सम्पदा लूट-लूटकर अपने घर भरे है, वही हमारे मनोबल को गिराने के लिए अनेक प्रयत्न किये है। वे हमे चिरकाल तक शोषित, पतित एवं पराधीन देखना चाहते थे, फलस्वरूप उनका यह प्रयास सदैव रहा कि हम अपनी सस्कृति को हेय और उपेक्षा की दृष्टि से देखे। इसके लिए उन्होने समाज मे अन्धविश्वास मूढ़-मान्यताओ के प्रचलन के लिए भरसक प्रयत्न किये।

आर्ष ग्रन्थो मे जहाँ पग-पग पर आत्म-बोध, आत्म-निर्माण, परमार्थ एवं कर्तव्यनिष्ठा का निर्देश दिया गया, वही आक्रमणकारी इस प्रकार की भ्रान्तियाँ फैलाने का प्रयास करते रहे कि मनुष्य कुछ नही है, वह तो किसी अदृश्य शक्ति के हाथो की कठपुतली मात्र है, जो होनी है, वह होकर रहेगी। पुरुषार्थ का कोई महत्व नही।

विचारणीय प्रश्न है कि जब मानवीय पुरुषार्थ का कोई मूल्य नही रहा तो कठोर एवं साहसपूर्ण कर्म करने का झझट कौन उठावे ? हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश को विधाता के हाथ मे सौंप देने पर मनुष्य के भीतर पुरुषार्थ करने की प्रेरणा ही नष्ट हो जाती है। जहाँ वह अपने भाग्य का निर्माता कहा जाता है। अब दैव के हाथो का एक खिलौना मात्र रह गया। कर्मवादी मनुष्य अब भाग्यवादी बनकर निष्क्रियता की ओर बढ़ने लगा है।

कर्मयोग के मार्ग का अवलम्बन कर हमने ससार के अन्य देशो से विद्या, कला-कौशल और विज्ञान की होड़ मे विजय प्राप्त की थी। मानव-कल्याण की दिशा मे किये गये हमारे प्रयासो की गाथा आज भी सर्वत्र गायी जाती है। अन्याय और अत्याचार से जूझने का हममे अपूर्व उत्साह था। हमारी इन्ही गाथाओ ने हमे तेतीस करोड़ भारतवासियो को तेतीस कोटि देवता कहलाने का श्रेय दिलाया था। पर आज हम दीन-हीन अकर्मण्य, अविवेकी लोगो की तरह भाग्यवाद को ही सब कुछ मानने लगे। भाग्य ही सब कुछ है ऐसा मानकर चलने वालो को तथा अन्याय, अत्याचार और शोषण का शिकार बनना पड़ा तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

यवन शासनकाल मे बलात् धर्म-परिवर्तन किये गये। स्त्रियो की लज्जा खुले आम लूटी गई, कन्याओ का अपहरण हुआ और हमने यह कहकर संतोष की साँस ली कि उनके भाग्य मे यही लिखा था, जो होना था सो वही हुआ। यही स्वीकार किया जाना चाहिए कि आक्रमणकारियो ने अपने अन्याय से पीड़ित शोषित लोगो को विद्रोह करने पर उतारू न होने देने के लिए यह भाग्यवाद का सम्मोहन मन्त्र चलाया था। जिस प्रकार 'क्लोरोफार्म' सुंघाकर रोगी को मूर्छित कर देने पर मनचाहे ढंग से निश्चिन्ततापूर्वक उसके किसी भी अंग को काट-छाँट किया जा सकता है, उसी प्रकार इस भाग्यवादी

विचारधारा ने अन्याय और शोषण के प्रति हमें मूर्छित कर दिया। तथाकथित विद्वान और पण्डितों ने भी संस्कृत भाषा में लिखे श्लोकों के उद्धरण दे देकर तथा प्राचीन मनगढन्त कथा, उपाख्यानों को सुना-सुनाकर भोली-भाली जनता को इस भाग्यवाद की मूर्च्छना में सोते रहने के लिए विवश किया।

पुरोहित एवं आचार्यों को भी अपनी जीविका के लिए राज्याश्रित होने के कारण शासक की मर्जी को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के प्रयास में लगा रहना पड़ा। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे मनीषियों को दुर्योधन के अन्न के प्रभाव से अनीति का समर्थन करना पड़ा, तब सर्वसाधारण की तो बात ही क्या ? "अतः नृशंस शासक यदि क्रूरता का व्यवहार करते हैं, कन्याओं का बलात् अपहरण करते हैं तो उन्हें विधि के विधान से ऐसा अधिकार मिला हुआ है और इन परवशों ने अपने पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा, उसी का परिणाम तो भुगतने को मिल रहा है।" यह मान्यता भाग्यवाद की वह नशीली गोली थी, जिसने हमारे अन्दर अकर्मण्यता पैदा कर विद्रोह, प्रतिरोध की क्षमता ही नष्ट कर दी।

मुगल शासनकाल में ही भावनाशील एवं कर्तव्यनिष्ठ मनीषियों को तलवार के घाट उतारा जाता रहा वहाँ कुछ छद्म-वेषी साधु-पण्डितों को खुली छूट भी मिली हुई थी, जो "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" का प्रचार कर रहे थे। अर्थात् जो दिल्ली का राजा है, वही जगदीश्वर है, उसे सब करने की छूट है, हमें उसका विरोध नहीं करना चाहिए।

जातिवाद की मूढ़-मान्यता भी भाग्यवाद के सहारे अधिक पुष्ट हुई। भाग्य के कारण ही अमुक व्यक्ति को अमुक जाति में उत्पन्न होना पड़ा और उसे जीवनभर नीच कर्म ही करते रहना पड़े। स्त्री को "पैर की जूती" मानते रहना भाग्यवाद का ही तो चक्कर है, जबकि आर्ष ग्रन्थों में नर और नारी को समान अधिकार पाने की बात कही गई।

भाग्य को अनुकूल बनाने के लिए ग्रह-नक्षत्रों की पूजा-पाठ का विधान भी 'फलित ज्योतिष' का आधार लेकर खूब पनपा। सैकड़ों ग्रन्थ इस सम्बन्ध में लिखे गये। परन्तु विचारणीय प्रश्न है कि "करोड़ों मील दूर आकाश में स्थित ये राहु, केतु, शनि आदि ग्रह किसी व्यक्ति विशेष को क्या ईर्ष्यावश परेशान करते होंगे अथवा उनका सामान्य प्रभाव सब पर पड़ता होगा ? यह कैसे सम्भव है कि उनका प्रभाव एक ही गाँव या घर में रहने वाले अलग व्यक्तियों पर अलग-अलग पड़े और पूजा-पाठ के विधान से उनके प्रभाव को कम कर दिया जावे या बिल्कुल ही रोक दिया जावे ?" भाग्यवाद के नाम पर चल रही फलित ज्योतिष' भोली-भाली जनता को ठगने का सबसे सरल तरीका है।

यदि भाग्य ही उन्नति-अवनति का कारण रहा होता तो रूस और अमेरिका अपनी गई-गुजरी स्थिति से कैसे मुक्त होकर संसार के सर्वश्रेष्ठ एवं सम्पन्न राष्ट्र बनते और भारत जैसे धार्मिक देश देवी-देवता, ग्रह,-नक्षत्र, राहु, केतु, शनि, की पूजा करता हुआ अपनी अन्य स्थिति में पड़ा रहता। इस स्थिति पर हमें पुनः विचार करना होगा और बौद्धिक आलस्य को छोड़कर कर्मवाद का मार्ग अपनाना पड़ेगा।

"दैव" एक बहुअर्थगामी शब्द है, जिसमें सृष्टि की विधि-व्यवस्था उसके नियम-विधानों का समावेश है। व्यक्ति के स्वयं के शुभाशुभ कर्मों के संस्कार, समूह के संस्कार तथा इनकी मिश्रित प्रतिक्रियाएँ, देश-काल की सूक्ष्मताएँ इन सबका विस्तार इतना व्यापक और अनेकरूपी होता है कि सीमित मानव-बुद्धि के लिए उन सबकी सामान्य जानकारी भी सम्भव नहीं, विस्तृत विश्लेषण तो सम्भव हो ही नहीं सकता। इसीलिए दैव को 'अज्ञेय' कहा गया है। अज्ञेय वह है, जिसे पूरी तरह जाना जा सकना सर्वथा असम्भव है। दैवज्ञता का अर्थ होगा अज्ञेयज्ञ। जो स्वयं ही अपनी काट करने वाला शब्द है। संस्कृत में इसे ही "स्वतोव्याहत" कहेंगे जो स्वयं ही अपने को आहत कर रहा हो ऐसा शब्द। जो "दैवज्ञ" होने का दावा करते हैं। वे "अज्ञेय" को जानने का दावा करते हैं। तब वह अज्ञेय कैसे रहा ?

यह सही है कि विश्व-चेतना के गर्भ में विद्यमान सूक्ष्म हलचलों को पकड़कर भविष्य का आभास प्राप्त किया जा सकता है और उसकी ऐसी पूर्व सूचना दी जा सकती है, जो समय होने पर पूरी तरह सही और प्रमाणित सिद्ध हो। किन्तु यह दैवज्ञ होने का प्रमाण नहीं। घटना प्रवाह की बारीक, सूक्ष्म और विश्व-चेतना से सम्पर्क का प्रतिफल है। किन्तु इस घटना प्रवाह के नियामक घटक जड़ नहीं चेतन है। अतः उसके भावी स्वरूप के बारे में पूरी तरह निश्चिन्त नहीं रहा जा सकता है। प्रचण्ड चेतन-सत्ता में भिन्न-भिन्न घटक अपने सामूहिक पराक्रम से सामान्य प्रवाह को पूरी तरह उलट-पुलट सकते है। तब भविष्य की वह जानकारी जो विश्व-गर्भ में पल रही घटनाओं को जानकर दी गई थी, गलत सिद्ध हो सकती है। यह तो हुई सूक्ष्मदर्शियों की बात। इसका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि दैवज्ञ होना किसी के भी लिए सम्भव नहीं है।

सामान्य व्यक्ति तो ऐसी सूक्ष्म दृष्टि से भी वंचित ही रहते है। ऐसी स्थिति में उन्हें तो भविष्य के बारे में और भी कुछ मालूम नहीं हो पाता। विडम्बना यह है कि ऐसे ही लोग भविष्य जानने और बताने के लिए आतुर व्याकुल रहते है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भविष्य की योजनाएँ न बनाई जायं और विगत का लेखा-जोखा न लिया जाय। ऐसा करना तो अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु जरूरत दो

बातो की है—(१) योजना और कल्पना का भेद सदा स्मरण रखा जाए। (२) भविष्य का स्वरूप अनिश्चित है वर्तमान निश्चित है, यह स्मरण रखा जाये और अनिश्चित से बहुत अधिक समय उसे दिया जाए, जो निश्चित है, उपलब्ध है।

योजना व्यवस्थित होती है। कल्पना भी व्यवस्थित हो सकती है, पर वह तब तक कल्पना ही कहलाएगी, जब तक साधनो का विचार न कर लिया जाय और कार्य पद्धति निश्चित कर क्रम-निर्धारण न कर लिया जाय। सामान्यतः तो कल्पनाएँ अव्यवस्थित ही होती है। पर उन्हे व्यवस्थित कर लेने भर से काम चलने वाला नही। योजना की एक विशेषता यह भी है कि उसमे इच्छाओ की परस्पर पूरकता का ध्यान रखा जाता है। अभी पहलवान बनने की योजना बना ली, दूसरे दिन सगीतकार बनने की योजना तैयार होने लगी और अगले दिन दार्शनिक बनने की योजना सामने आ गई इसे योजना नही, काल्पनिक उड़ान ही कहा जायेगा। योजना बनाने पर साधनों, परिस्थितियों का गम्भीर विश्लेषण तथा कार्य पद्धति की व्यापक जानकारी आवश्यक होती है। हम जो कुछ करना चाहते है, वैसा ही अब तक जिन लोगो ने किया है, उन्हे कौन-कौन-से साधन जुटाने पड़े, किन-किन परिस्थितियों से कैसे-कैसे मुकाबला करना पड़ा और उन परिस्थितियो से वर्तमान का अन्तर कैसा और कितना है ? यह सब जानना-समझना होता है। इस सबके बाद निष्ठा, लगन की तीव्रता-तत्परता अपेक्षित होती है।

उन्नति और प्रगति की आकांक्षा छोड़ देने पर मनुष्य-जीवन का प्रयोजन ही विलुप्त हो जाता है। सकल्पो-महत्वाकाक्षाओ से रहित व्यक्ति तो पशुवत् ही हो जायेगा। उस हेतु प्रयास-पराक्रम आवश्यक है। किन्तु उनकी कल्पना और चिन्ता मे ही उलझे रहना मानसिक शक्ति का अपव्यय मात्र है। जो शक्ति आनन्द, प्रसन्नता और क्रियाशीलता बनाये रखने के लिए सौपी गई है, वह काल्पनिक उड़ानो और विभीषिकाओ मे ही डूबते-उतराते रहने और इस तरह निष्क्रियता बढ़ाते रहने का आधार बना दी जाय तो इससे बड़ी मूढ़ता और क्या होगी ?

भविष्य का ताना-बाना बुनने का अभ्यास हो जाने पर सम्भावित विफलताओ-विपत्तियों का भास भी मनः क्षेत्र मे सजीव होने लगता है। तब चिन्ता-रोग मनुष्य को अपनी लपेट मे लेता है और उसे तहस-नहस करने लगता है। यदि सोचने का क्रम ऐसा हो जाए कि कठिनाइयो की ही कल्पनाएँ सताती रहे, तो भयकर सम्भावनाओ के चित्र सामने आ-आकर दिन-रात भयभीत और परेशान करने लगेगे। स्पष्टत इससे खिन्नता, निराशा बढ़ती है और पुरुषार्थ क्षमता घटती चली जाती है। किसी कार्य को आरम्भ करते ही यदि असफलताएँ ही सामने खड़ी दिखने लगी तो फिर उत्साह शिथिल हो जाने से कार्य-सिद्धि कठिन ही मानी जानी चाहिए।

भविष्य के प्रति हताश होने या काल्पनिक उड़ाने भरने के स्थान पर एक सुनिश्चित योजना बनाकर, उस पर निरन्तर चलते रहना ही सार्थकता-सफलता का मार्ग है। भविष्य की कल्पनाओ में उलझने के पहले वर्तमान परखना-तौलना जरूरी होता है। वर्तमान मे अभावो का ही नही उपलब्धियो का भी स्मरण चिन्तन करे। यह सुर दुर्लभ मानव-जीवन बहुत मूल्यवान उपलब्धि है। हमे यह प्राप्त हुआ है, जो कल्पवृक्ष और कामधेनु की तरह फलदायी है। इन उपलब्धियो का स्मरण कर मन को प्रफुल्ल रखे तो प्रगति और उन्नति का उत्साह प्रफुल्ल मन मे ही उत्पन्न होता है। भविष्य की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ने वालो को सदा दूर के भवन ही लुभाते रहते है। उन्हे सदा वही सौन्दर्य और प्रसन्नता दिखाई देती है, जहाँ वे आज नही है। पर यह मृगतृष्णा मात्र निरर्थक दौड़-धूप और थकान का ही कारण बनती है। ऐसी दौड़ कभी भी समाप्त नही होती, क्योंकि उसका कोई लक्ष्य नही होता। निश्चित लक्ष्य के लिए की जाने वाली दौड़ वर्तमान का भली-भाँति लेखा-जोखा करने और अपनी उपलब्धियो का स्मरण कर प्रसन्न रहने से ही सम्भव हो पाती है।

भविष्य मे क्या होने वाला है, जो होना निश्चित हो उसी के लिए प्रयत्न करे, इसका अता-पता लगाना हो तो वह परिस्थितियो, आधारो और लक्ष्यो के आधार पर जानने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार की सम्भावनाएँ तथ्यपूर्ण कल्पनाओ के आधार पर ही की जा सकती है न कि ज्योतिषियो द्वारा की गई ग्रह गणना के आधार पर। ग्रह-गणित अन्तरिक्षीय व्यवस्था पर प्रकाश डालता है, उससे ऋतु परिवर्तन जैसे अनुमान लगाये जा सकते है। पृथ्वी के वातावरण पर उसका क्या प्रभाव पहुँचा, यह भी ग्रह विद्या का विषय हो सकता है। अन्तर्ग्रही हलचले व्यापक क्षेत्र पर असर डाल सकती है, पर ऐसा नही हो सकता कि हर व्यक्ति की हर स्थिति उसी से प्रभावित होती हो। फिर भविष्य मे किस व्यक्ति को किस कार्य मे, कब, कितनी सफलता-असफलता मिलेगी, इसका आकलन ज्योतिष के आधार पर करने का तो कोई तुक ही नही है। ऐसे दुर्बल आधार पर यदि भविष्य की सम्भावना सोची गई और उसके सहारे योजनाएँ बनाई गईं तो समझना चाहिए कि भ्रम-जंजाल मे उलझकर अपना अहित ही किया जा रहा है।

वस्तुतः हमे प्रारब्ध के चक्कर मे न फँसकर आशावान, उत्साही और कर्मशील बनना चाहिए। मनुष्य के कर्म ही उसका भाग्य बनाते है। भाग्य तो कर्मो का पिछलग्गू है। हम अपने भाग्य के निर्माता स्वयं है। भाग्य को पुरुषार्थ की छाया मात्र समझना अधिक उचित है। यदि कर्म ही हमारा धर्म बन जाये तो फिर हमे उन्नति के पथ पर बढ़ने से कौन रोक सकता है ? अतः भाग्यवान बनने के लिए हमे विवेकशीलता एव सच्ची निष्ठा से सदैव कर्म करते रहना चाहिए।

भाग्यवाद के नाम पर पनपती विकृतियाँ

प्राचीनकाल मे ज्योतिष का सीधा सम्बन्ध नक्षत्र विद्या से था। सुदूर स्थिति ग्रह-नक्षत्रो का ज्ञान, उनकी गति-गणना और स्थिति का वैज्ञानिक अनुसंधान अपने देश मे उस समय चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था, जबकि पृथ्वी के कई क्षेत्रो के लोग नदी, सोतो और झरनो के किनारे बैठकर जानवरो की तरह पानी पिया करते थे। जब तक ज्योतिष विशुद्ध विज्ञान का विषय रहा तब तक इस दिशा मे काफी प्रगति होती रही और लोगो मे कर्म, परिश्रम तथा पुरुषार्थ के प्रति आस्था भी बनी रही। पर न जाने किस काल मे यह मान्यता चल पड़ी कि लाखो मील दूरी पर स्थित तारे और नक्षत्र एक-एक व्यक्ति के निजी जीवन पर अपना विशिष्ट प्रभाव डालते है।

फलित-ज्योतिष, हस्तरेखा, अंक विज्ञान, आकृति विज्ञान न जाने कितनी विद्याएँ चल पड़ी, जिनके माध्यम से मनुष्य अनागत को जानने की चेष्टा करने लगा। कहा जाता है कि इन विद्याओ से भविष्य को जानकर व्यक्ति सम्भावित विपत्तियो से बच सकता है। इस मान्यता की संगति भारतीय सस्कृति के प्राण-कर्मफल के सिद्धान्त से कहाँ मेल खाती है ? प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी यह जानता और मानता है कि हम जो कर्म कर चुके है उनका ही फल आज भोग रहे है और जो आज कर रहे है उनके सत्परिणाम या दुष्परिणाम कल भोगने पड़ेगे तो भविष्य की सम्भावित घटनाएँ जानकर व्यक्ति उनसे कहाँ तक बच सकता है ? पहली बात तो यह कि उन घटनाओ को जाना ही नही जा सकता और जान भी लिया जाय तो उनके परिणामो से बच पाना असम्भव है फिर उन्हे जानने से क्या लाभ ?

लाभ तो कुछ नही होता। हाँ हानि की ही अधिक सम्भावना रहती है। एक व्यक्ति को यदि पता चल जाये कि वह कल मरने वाला है तो वह आज से ही मरने के समान हो जायेगा। वह कल मरे या न मरे पर आज उसका खाना-पीना छूट जायेगा, नीद खो जायेगी, बेचैनी, चिन्ता, उद्वेग और शोक की काली छायाएँ उसे घेर डालेगी और भले ही वह कल मरने वाला न हो पर यदि उसे भविष्य वक्ता पर पूरा विश्वास है तो वह कल की अपेक्षा आज ही मर सकता है और कल तो उसकी मृत्यु जो नही आनी हो वह भी निश्चित हो जाती है।

इस तथ्य को किसी कहानीकार ने एक कथा के माध्यम से बड़े सुन्दर ढग से समझाया है। कहा जाता है कि सृष्टि के निर्माण होने के बाद विधाता ने प्रत्येक मनुष्य को जन्म लेने पर उसका भविष्य सुना देने का नियम बनाया था। उस नियम का बराबर पालन भी किया जाता। एक बार किसी कुकर्मी व्यक्ति ने पुनर्जन्म लिया, पिछले जन्म के पापों का दुष्परिणाम उसे इस जन्म मे भोगना था अतः उसका भाग्य बड़े ही भयंकर ढंग से लिखा गया। ६० वर्ष की आयु तक उसकी किस्मत मे तमाम कठिनाइयाँ और विपत्तियाँ लिखी गई थीं। फिर उसे एक ऐसे भयंकर रोग से ग्रस्त होना बताया गया कि उसके सारे शरीर मे कीड़े पड़ जाये। चालीस वर्ष तक रोग की इन यातनाओ को सहते हुए उसके भाग्य मे सौ वर्ष की आयु पार करने के बाद मृत्यु लिखी गयी।

यह भविष्य उस व्यक्ति के जन्म लेते ही नियमानुसार सुनाया गया। एक-एक विपत्ति का वर्णन सुनकर वह व्यथित होता गया और अन्त मे जाकर वह इतना चिंतित तथा उद्विग्न हो उठा कि सौ वर्ष की उम्र जीना तो दूर रहा वह तत्क्षण ही भय के कारण मर गया। यह एक रूपक की तरह है, जिसे पढ़कर समझना चाहिए कि दूरदर्शी और करुणालय परमात्मा यदि कर्मफल दृष्टि से किसी का भाग्य निश्चित करता भी हो तो उसे जानने के कोई सूत्र नही छोड़ता। यदि इस प्रकार के सूत्र छोड़े जाते तो मनुष्य अपना सारा भविष्य पहले से ही जान लेता और यदि भाग्य मे सुख-सुविधाएँ लिखी है तो पहले से ही निश्चिन्त होकर बैठ जाता क्योकि करने से तो कुछ होना ही नही है। नियति ने पहले से ही सब कुछ निश्चित कर रखा है। फिर कुछ करने-कराने से क्या अन्तर पड़ता है और यदि भाग्य मे कष्ट, विपत्तियाँ ही है तो क्यो न पहले से ही आत्म-हत्या कर उनसे छुटकारा पा ले।

कर्मफल के इन सामान्य सिद्धान्तो से परिचित होने के बावजूद भी शिक्षित-अशिक्षित लोगो को अपना भाग्य जानने के लिए इधर-उधर भटकते हुए देखा जा सकता है। लोगो मे अपना भविष्य जानने की इतनी उत्सुकता है कि ज्योतिष आजकल एक लाभदायक व्यवसाय के रूप मे विकसित है। ज्योतिष, हस्तरेखाविद्, आकृति विज्ञानी, रमलविद् आदि भविष्य-वक्ता भोली जनता को भाग्य सितारो की चाल बताकर दोनो हाथो से अपना उल्लू सीधा करते रहते है। यही नही, तथाकथित प्रगतिशील अखबारो और पत्र-पत्रिकाओ मे भी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक तथा वार्षिक राशिफल छपते रहते है। कई लोग तो राशिफल देखने के लिए ही अखबार खरीदते है। समझ मे नही आता कि अपनी प्रगतिशीलता का ढिढोरा पीटने वाले अखबार भी इस अवसरवादिता से लाभ उठाने मे क्यो सकोच नही करते ?

अखबारो और पत्र-पत्रिकाओ की भविष्यवाणियो मे स्पष्ट रूप मे अन्तर देखा जा सकता है। यह मान भी लिया जाय कि नक्षत्र और फलित ज्योतिष विद्या सही भी है और उसका प्रभाव भी होता है तो एक-एक व्यक्ति के लिए निश्चित भविष्य रहना चाहिए और फलित ज्योतिष के गणित मे सभी ज्योतिषियो को समान निष्कर्ष पर

भविष्य विद्या की सत्यता भी इतनी ही निश्चित रहनी चाहिए। दो और दो का जोड़ कोई भी लगाये, योगफल चार ही आता है, उसी प्रकार भविष्य जानने के लिए लगाया गया हिसाब भी निश्चित परिणाम देने वाला रहे। परन्तु ऐसा नही होता। एक राशि का भविष्यफल किसी अखबार मे कुछ छपा है और किसी मे कुछ और। कोई अखबार वृश्चिक राशि के लिए यह सप्ताह शुभ तथा मंगलकारी बताता है तो कोई अखबार अशुभ और खतरे से सतर्क रहने का निर्णय देता है। हालांकि ये भविष्यवाणियाँ कभी सच सिद्ध नहीं होती फिर भी लोग प्रवि सप्ताह या प्रतिदिन इन भविष्यफलो के पृष्ठ बड़ी बेताबी से उलटते तथा पढ़ते है। यह कहाँ तक सच सिद्ध हो सकता है ? कि संसार मे केवल १२ प्रकार की घटनाये या परिस्थितियाँ ही होती हैं, जिनमे मेष, वृष आदि राशियो के लोगो को जीना पड़ता है, जबकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजी परिस्थितियाँ और घटनाएँ अलग-अलग होती हो।

इस साधारण-सी बात पर भी कोई ध्यान न देते हुए अपना भविष्य जानने के लिए सड़को पर बैठकर दस या पच्चीस पैसे मे भाग्य देखने वाले लोगो से लेकर एयरकण्डीशन होटलो मे ठहरने वाले ज्योतिषियो तक के चक्कर काटते रहते है। सच तो यह है कि ज्योतिष आज विशुद्ध व्यवसाय बन गया है और इस व्यवसाय मे लगे लोग अपने फन मे ऐसे माहिर होते हैं कि आस-पास जैसे ही ग्राहक मण्डराता दिखाई दे, वे तुरन्त उसे फाँस लेते है। लोग भी इतने आँख से अन्धे होते है कि छोटे-छोटे कार्यो से लेकर बड़े अभियानो तक के मुहूर्त ढुँढ़वाने के लिए ज्योतिषियो के आस-पास चक्कर काटते रहते है। शादी का मुहूर्त निकलवाना हो या बच्चे को स्कूल मे भर्ती करवाना हो, नया घर बनवाना हो अथवा किसी यात्रा पर निकलना हो—बिना ज्योतिषी से पूछे कोई काम करवाने की हिम्मत नही पड़ती।

साधारण पढ़े-लिखे या अशिक्षित लोग ही इस तरह की रीति-नीति अपनाते हो, ऐसी बात भी नही है। शिक्षित और प्रबुद्ध आधुनिकतावादी भी ऐसे अन्धविश्वासी व्यक्तियो की कमी नही है। फिर भी प्रायः साधारण मध्यम वर्ग के लोगो को ज्योतिषियो के चक्कर मे फँसते अधिक देखा जाता है, इसका कारण है गरीब आदमी कम से कम मध्यम वर्ग की सी सुविधाओ वाला जीवन जीने की आशा करता है और मध्यम वर्ग का व्यक्ति धनवान व्यक्ति की तरह जीना चाहता है। गरीब व्यक्ति तो फिर भी किसी तरह सन्तोष कर रह सकता है पर मध्यम वर्ग में धनवान की उत्कण्ठा इस कदर व्याप्त रहती है कि वह बिना परिश्रम और पुरुषार्थ किये ही धनवान बनने की आकांक्षा करने लगता है और इसी आकाक्षा की सम्भावना को जानने के लिए ज्योतिषियो के चक्कर मे फँसता जाता है।

जिस प्रकार सभी क्षेत्रो मे नये प्रयोग हो रहे है और नयी पद्धतियाँ चल पड़ी है, उसी प्रकार ही ज्योतिष के क्षेत्र मे भी अंक विज्ञान की नई धारा लोकप्रिय होने लगी है। अंक विज्ञानी प्रत्येक अंक की अलग-अलग संख्या निर्धारित रखता है जैसे क की १ तो ख की २। अब प्रश्नकर्ता के नाम से या प्रश्न के अक्षरो से हिसाब लगाकर उसका मूल्य निकालता है फिर उसके अनुसार भविष्यवाणी करता है। कहना नही होगा कि अंको की विशेषताएँ पहले से ही निर्धारित रहती है और उन्ही के अनुसार भविष्य बताया जाता है।

अंको की निर्धारित विशेषताओ का कोई वैज्ञानिक आधार नही होता है, वे केवल कल्पना द्वारा ही निर्धारित किये जाते है। अतः उनकी प्रामाणिकता और सत्यता का कोई आधार नही बताया जा सकता है। नयी पद्धतियों की तरह भविष्यवाणियो का यह नया ढंग भी आजकल आधुनिक लोगो मे काफी लोकप्रिय हो रहा है।

फलित ज्योतिष के पक्षपातियो का कहना है कि यह एक विशुद्ध विज्ञान है और पश्चिम मे भी बड़ा लोकप्रिय है। वस्तुतः यह तर्क फलित ज्योतिष की प्रामाणिकता को सिद्ध नही करता, वरन् हमारी मानसिक दासता का ही परिचय देता है। बहुतेरे विषयो मे हम पश्चिमी धारणाओ का हवाला देकर यह बताने की कोशिश करते है कि हम गलत नही है। हम गलत है या नही है यह इससे भले ही सिद्ध नही होता पर यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि हम तीस साल बीत जाने के बाद भी मानसिक दृष्टि से पश्चिम के ही अनुयायी है।

निस्सन्देह पश्चिम ने विज्ञान के क्षेत्र मे आशातीत प्रगति की है पर इसका तात्पर्य यह नही है कि वहाँ जो कुछ भी प्रचलित है, वह सब सत्य है। विज्ञान के क्षेत्र मे पश्चिम के लोग आगे हैं पर अन्धविश्वास के क्षेत्र मे भी वे हमसे पीछे नही है, बहुत आगे है। वहाँ ऐसे-ऐसे अन्धविश्वास प्रचलित है कि जिनकी हम कल्पना भी नही कर सकते। जैसे कहा जाता है कि पश्चिमी देशो मे अधिकांश लोग तेरह का अंक अशुभ मानते है। वहाँ के कई होटलो मे इस नम्बर का कमरा नही रखा जाता। ग्यारह, बारह के बाद सीधे चौदह की संख्या आ जाती है तो फलित ज्योतिष को लेकर भी वहाँ इसी तरह के अन्धविश्वास चलते है तो इसमे क्या आश्चर्य ? यह जरूर आश्चर्य की बात है कि हम लोग उनके सन्दर्भ देकर अपने को सही प्रमाणित करने की चेष्टा करते है।

ज्योतिष विद्या के अन्तर्गत प्रायः अज्ञात अंको और कल्पित शक्तियो का आधार लेकर निष्कर्ष निकाले जाते है। एक आकृति विज्ञान और हस्तरेखा विद्या ही ऐसी पद्धतियाँ है, जो शरीर को आधार बनाकर चलती है। हस्तरेखाओं को विधाता की लिपि समझा जाता है और

एक मर्मज्ञ कहा जाने वाला हस्तरेखा शास्त्री जो कह देता है, उसे अटल सत्य के रूप मे स्वीकार कर लिया जाता है। सब लोगों की रेखाये भी भिन्न-भिन्न होती है। इसलिये उनसे अलग-अलग परिणामो के भी निष्कर्ष निकाले जाते है तो कहा जा सकता है कि भविष्य ज्ञान के लिए हस्तरेखाएँ तो प्रामाणिक आधार है।

यहाँ हस्तरेखाओं के सम्बन्ध मे कुछ बाते जान लेनी चाहिए। हस्तरेखाएँ सभी व्यक्तियो की अलग-अलग होती है और किसी की एक-दूसरे से नही मिलती यह तो ठीक है परन्तु यह कोई भविष्य ज्ञान का स्रोत नही है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हस्तरेखाएँ मनुष्य के मनोभावो और प्रवृत्तियो का सकेत देती है, न कि उसके भविष्य का। तीव्र सकल्प शक्ति द्वारा उन्हे कभी भी बदला जा सकता है और वैसे भी सात वर्ष मे हस्तरेखाएँ अपने आप बदल जाती है, क्योंकि तब व्यक्ति की रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ काफी कुछ बदल जाती है तो हस्तरेखाओ के आधार पर भविष्य का सुनिश्चित ज्ञान कैसे सम्भव हो, सच्चाई तो यह है कि व्यक्ति का अपने जीवन के भविष्य मे झाँकना कठिन ही नही असम्भव है।

हमे अनुगृहीत होकर भाग्य के जानने के लिए इधर-उधर भटकने की अपेक्षा परिश्रम और पुरुषार्थ द्वारा अपने भाग्य का निर्माण करने में लगना चाहिए। भाग्य को जानना असम्भव है पर उसका निर्माण किया जा सकता है। यह चेतना जब प्रत्येक व्यक्ति मे जागेगी तो समाज में कर्मठता, पुरुषार्थ और लगन की भावना पैदा होगी।

पुरुषार्थ ही समृद्धि का राजमार्ग

लाल बहादुर शास्त्री ने अपने १८ माह के प्रधान मन्त्रित्व काल में वह यश-श्रेय प्राप्त कर लिया, जो संसार का कोई भी नेता नही पा सका। शास्त्री जी एक साधारण परिवार के थे। वह स्वय बढे, विकसे और बड़े बने। आत्मावलम्बन की शक्ति ही उसके जीवन मे दृढता बनकर विकसित हुई थी।

यही गुरुमन्त्र उन्होंने अपनी सन्तान को भी दिया। एक बार उनमे किसी मित्र ने प्रश्न किया—"आप अपने बच्चो को थोड़ा सहारा देते तो वे भी आज अच्छे स्थानो पर होते ?" शास्त्रीजी हँसकर बोले—"अवश्य होते, पर उनमे योग्यता न होती। जो स्वावलम्बन और आत्म-विश्वास के साथ बढ़ता है, उसकी योग्यता, दृढ़ता, कर्मठता, साहस और कर्तव्य भावना अदम्य होती है।"

उन्होंने कहा—'फूल कही भी हो वह खिलेगा ही—बगीचे में हो, जगल में हो या कमरे में, बिना खिले उसे मुक्ति नही। बगीचे का फूल है, उसकी चिन्ता, स्वयं उसे नहीं रहती। जगल का फूल इतना चिन्तामुक्त नही, उसे अपना पोषण आप जुटाना पड़ता है, अपना निखार अपने आप करना पड़ता है। कहते है कि इसीलिए खिलता भी वह मन्दगति से है। सौरभ भी धीरे-धीरे बिखेरता है किन्तु उसकी सुगन्ध बड़ी तीखी होती है। काफी दूर तक वह अपनी मंजिल तय करती है। जंगल का फूल यद्यपि अपने आकार में बहुत छोटा होता है और कई बार वह फूल खिल नही पाता है तो भी अपनी सुगन्ध मे वह दूसरे फूलो से हल्का नही पड़ता, वजनी ही होता है।

यह सिद्धान्त मनुष्य के विकास मे भी लागू है। दूसरो का सहारा लेकर बहुत ऊँचे पहुँचे हुए लोगो मे न तो साहस-दृढ़ता होती है और न वे 'गट्स' होते है, जो अपने आप विकसित हुए व्यक्ति मे स्थाई रूप से होते है। सफलता की मंजिल भले ही देर से मिले पर अपने पैरो की गई विकास यात्रा अधिक विश्वस्त होती है, मोटर रेल का सहारा लेकर बढ़ने मे जहाँ शीघ्र पहुँचना सम्भव है, वहाँ अनियमित होना, रास्ते मे टूट-फूट, लेट होना और बिगड़ जाना भी सम्भव है। पद यात्रा से अधिक विश्वस्तता सहारे की यात्राओ मे नही, भले ही उसमे कुछ अधिक सुविधा हो।

ससार मे कार्य करने के लिए स्वय का विश्वास पात्र बनना आवश्यक है। आत्मशक्तियो पर जो जितना अधिक विश्वास कर पाता है, वह उतना ही सफल और बड़ा आदमी बनता है। वाशिंगटन एक मामूली सिपाही से अमेरिका की स्वतन्त्रता का प्रतिस्थापक बना। अमेरिका के प्राय: सभी राष्ट्रपति अत्यन्त छोटी अवस्था से स्वय विकसित हुए। नैपोलियन फ्रास का एक छोटा-सा सिपाही था, वह स्वय बढ़कर सेनापति बना। एक अस्पताल मे साधारण प्यून से बढ़ते-बढ़ते राष्ट्रपति बनने वाले सनयातसेन को कोई नही भूल सकता। इन महापुरुषो ने "यस्य यावांश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिश्च तादृशी" 'जिसने अपने आप पर विश्वास किया उसने सिद्धि-सफलता पाई' कहावत को चरितार्थ किया है।

कारडिनल लिखते है—"हर व्यक्ति के जीवन मे ऐसे अवसर आते है, जिनका बुद्धिमानी से उपयोग करके मनुष्य बिना भाग्य की प्रतीक्षा किए बड़ी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है।"

नेल्सन की कहानियाँ अँग्रेज बड़े प्रेम से पढ़ते है और आत्मविश्वास की शक्ति की व्याख्या करते समय उसके उदाहरण देते है। नेल्सन कहा करता था, "अविश्वास के लिए मेरे जीवन मे कोई स्थान नही है। मै जहाँ जुट जाता हूँ, वहाँ सफलता निश्चित रहती है, जिनके पास दृढ एव अडिग आत्म-विश्वास और साहस है, वह निश्चय ही अपना भाग्य निर्माण करते है।"

बहुत-से लोग कहा करते है—'यदि मै स्वतन्त्र होता और मेरे पीछे बाल-बच्चो का झगड़ा न होता, मेरी शिक्षा इतनी होती, मुझे पूँजी मिल गई होती तो मै बहुत काम कर सकता था। परन्तु यह उनकी निर्बलता है। बड़ा काम करने के लिए न बाल-बच्चे रुकावट है और न धनाभाव। परिस्थितियाँ ससार मे न्यूनाधिक एक जैसी ही है, जिन्हे

रुकावट समझा जाता है, वे समस्याएँ ही सफल व्यक्तियो की प्रेरक बनी है। कई महामानवो ने तो जेल मे भी बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे है। सोच-समझ के साथ जीवन के प्रत्येक दिन को अमूल्य मानकर अपने मन को ऊँची अवस्था मे ले जाने को अपने आप प्रयत्न करते है। उनकी थोड़ी-सी सफलता भी चिरस्थाई, सन्तोषदायक और व्यावहारिक होती है।

अपने आप बढ़ने मे सच्चाई और ईमानदारी रहती है, मनुष्य की वह बड़ी शक्ति है, उससे उसका हृदय खुला रहता है, वह किसी भी समय अपने आपको व्यक्त कर सकता है। वह घबराता भी नही, परेशान भी नही होता। यह कष्ट तो परावलम्बियों को ही होते है। जो दूसरो के सहारे उठता है, उसे बात-बात पर गिर जाने का भी भय बना रहता है। सच्चे लोग अपने गुण, अपनी प्रतिभा और अपने सौन्दर्य के बारे मे नही सोचते। अपनी इस सरल अबोधता के कारण वे लोगो को अपनी ओर आकर्षित करते है, उनके हृदय मे विश्वास, प्रेम और प्रतिष्ठा का स्थान पाते है, यह सफलता ही किसी बड़ी से बड़ी सम्पन्नता जैसी सुखदायक होती है।

अपने भाग्य को स्वय बन जाने की राह देखना भूल ही नही, मूर्खता भी है। यह ससार इतना व्यस्त है कि लोगो को अपनी परवाह से फुरसत नही। यदि कोई थोड़ा-सा सहारा देकर आगे बढ़ा भी दे और उतनी योग्यता न हो तो फिर पश्चात्ताप, अपमान और अवनति का ही मुख देखना पड़ता है। स्वय ही मौलिक सूझ-बूझ और परिश्रम से बनाए हुए भाग्य मे इस तरह की कोई आशका नही रहती, क्योंकि वैसी स्थिति मे अयोग्य सिद्ध होने का कोई कारण नही होता। जितनी योग्यता बढ़ती चले, सफलता की मजिल उतनी प्राप्त करता चले। रास्ता सबके लिए खुला है, उस पर चलकर कितना पार कर सकता है, यह व्यक्ति की अपनी लगन, साहस और विश्वास पर निर्भर रहता है।

शास्त्रकारो ने पुरुषार्थियो की स्थान-स्थान पर वन्दना की है। कोई महाभाग लिखते है—

धीमन्तो वन्द्य चरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।

अशक्ता पौरुषं कर्त्तुं क्लीवा दैवमुपासते॥

अर्थात्—बुद्धिमान व्यक्तियों ने सदैव व्यक्ति के उत्थान के लिए पुरुपार्थ को प्रधान माना है। भाग्य और देवों के सहारे उन्नति का मार्ग खोजने वाले नपुंसक, पुरुपार्थ-विहीन व्यक्तियों की विद्वज्जन निन्दा करते है।

मनुष्य की आध्यात्मिक विभूतियाँ जाति, वर्णजन्म के आधार पर नही, उसके गुण, स्वभाव के रूप मे विद्यमान होती है, उसके बदले में सासारिक सम्पत्तियाँ आसानी से खरीदी जा सकती है। अच्छा स्वास्थ्य, ऊँची विद्या, धन-वैभव, साथियो का सहयोग, जन-सम्मान, पद, नेतृत्व, कला-कौशल, यश-वर्चस्व आदि कितनी ही सुखद सम्पदाएँ मनुष्य को प्रसन्नता प्रदान करती है और वह उन्हें पाने के लिए सचेष्ट भी रहता है। फिर भी बहुत कम लोग इन्हे प्राप्त कर सकने मे सफल होते है, अधिकांश को इनके लिए हाथ मलते हुए ही रहना पड़ता है। लोग तरह-तरह की मनोकामनाएँ करते रहते है पर यह भूल जाते है कि चाहने और कल्पना करने भर से कोई प्रयोजन पूरा नही होता, उल्टे बढ़ी-चढ़ी महत्त्वकांक्षाएँ पूरी न होने पर निराशा और खीझ ही हाथ लगती है। यह तथ्य जितनी अच्छी तरह, जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही अच्छा है कि विभूतियो के बदले ही सम्पदाएँ मिली है। गुणो के आधार पर ही किसी को सफलताओ का श्रेय उपलब्ध होता है।

लम्बी यात्रा मे घर से जाने पर बैको से ट्रेवलर चैक प्राप्त कर लिये जाते है। उन्हे कही भी बैको मे भुनाया जा सकता है और बदले मे नकद पैसा पाया जा सकता है। पैसा जेब मे हो तो बदले मे कही भी सामान या सहयोग खरीदा जा सकता है। ट्रेवलर चैक या नकदी को छोटी-सी जेब मे रखा जा सकता है। उनका दूसरो को पता नही चलता पर जब बदले मे सामान खरीदा जाता है तो उनका ढेर सबको दिखाई पड़ता है और मनचाहे उपयोग मे वह काम आता है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य के सद्गुण, उसकी ईश्वर प्रार्थना आध्यात्मिक एवं ठोस सम्पत्ति है उनके बदले मे भौतिक सुख-साधन खरीदे जा सकते है। उन्नतिशील सफल मनुष्यो मे से प्रत्येक मे कुछ सद्गुण रहते है, उनके बिना किसी के लिए भी कोई महत्त्वपूर्ण सफलता शक्य नही होती।

प्रशंसनीय सफलताएँ तो सद्गुणो पर आश्रित है ही, निन्दनीय सफलताओ के पीछे भी उन्ही का वर्चस्व काम कर रहा होता है। डाकू अपने अनैतिक आचरण के कारण जेल जाता है, नरक भुगतता है, घृणास्पद बनता है, पर उसे जो धन लूटने मे सफलता मिलती है, उसमे साहस का सद्गुण ही काम कर रहा होता है। साहस न हो तो मात्र अनैतिक आचरण अपनाने भर से डाका डालने मे सफलता नही मिल सकती। ठगो की जितनी निन्दा की जाय उतनी कम है। किन्तु मधुर भाषण करके दूसरो का विश्वास अर्जित कर लेने की कुशलता उन्हे ठगी मे सफल बनाती है। यदि उनमे यह गुण न होता तो उनका रूखा, कर्कश व्यवहार किसी से घनिष्ठता ही न बनने देता और विश्वास अर्जित किए बिना ठगी करके कुछ प्राप्त कर सकना सम्भव ही न होता। बेईमान लोग तब सफल होते है, जब लोगो पर अपने ईमानदार होने की धाक जमा लेते है। दूध मे पानी बेचने वाले यही बोर्ड लगाते और प्रचार करते है कि हमारे द्वारा बेचा गया दूध पूर्णतया शुद्ध है मिलावट सिद्ध करने वाले को ५०० रु. इनाम मिलेगा। इस प्रकार की घोषणा में ही लोग उसके पास पहुँचते और दूध खरीदते है यदि वही दुकानदार अपनी वस्तुस्थिति प्रकट कर दे और कह दे कि "हमारी दुकान पर आधा दूध आधा पानी" मिलता है, उसमे

अरारोट का आटा मिलाकर गाढ़ा बनाया जाता है तथा ऊपर जो मलाई है वह ब्लाटिंग पेपर की परतमात्र है। "तब पता चलेगा कि बेईमानी से मालदार बना जा सकता है या नही। स्पष्ट है कि वस्तुस्थिति विदित होने पर कोई भी ग्राहक उसकी दुकान पर न फटकेगा और दिवाला पिट जाएगा। ईमानदारी मे वह आकर्षण है, जिसकी आड़ लेकर भी बेईमान अपना उल्लू सीधा करते है। मधुरता और विश्वसनीयता ही वह सुदृढ़ तत्त्व है जिसका आवरण ओढ़कर ठग और धूर्त एक बार तो काठ की हाँड़ी पका ही लेते है। शौर्य और साहस का कवच पहनकर सामान्य स्तर के लोग महामानव बन सके है और इतिहास के पृष्ठ अपने चमत्कारी कर्तृत्व से गौरवान्वित कर सके है। आश्चर्य यह है कि इसी विशेषता का थोड़ा उपार्जन करके दुरात्मा व्यक्ति भी आतंक फैलाने और लूट-खसोट करने में सफलता प्राप्त कर लेते है, जिसमे कोई सद्गुण न हो—केवल भ्रष्ट आचरण ही जिसने अपना रखे हो, उसका अनैतिक एवं अपराधी कार्यों को अपनाने पर सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने की कहावत चरितार्थ होती है। अपने पाप कर्मो का उन्हे अगले ही दिन दण्ड मिल जाता है। जितने दिन छिपे बचे रहते है और जितनी सफलता कमा लेते है, उसमे उनकी सतर्कता, सूक्ष्म दृष्टि, स्फूर्ति, संतुलित मनःस्थिति संगठन क्षमता जैसे सद्गुण ही सहायक बने होते है।

क्रमबद्ध रूप से प्रगति करते चलने वाले और उन्नति के उच्च शिखर को छूने वाले व्यक्तियो को उनकी सफलताएँ, उनके सद्गुणो के कारण ही उपलब्ध हुई होती है। कहने लायक सभी आत्मिक एवं भौतिक उपलब्धियाँ किसी को भी अनायास नही मिली। उनके लिए जिन साधनो की, जिस सहयोग की, जिस परिस्थिति की आवश्यकता थी, उनका सरजाम परोक्ष रूप मे मनुष्य की सद्गुण सम्पदा ही जुटाती है। दुर्गुणो से ग्रसित व्यक्ति किसी का सच्चा और स्थायी सहयोग नही पा सकता। साधन जुटाने के लिए सूझ-बूझ, अनुभव और जोड़-तोड़ बिठाने की जरूरत होती है, उसके अभाव में साधनहीन परिस्थितियाँ ही सफलता के मार्ग मे पर्वत बनकर खड़ी हो जाती है। ओछे व्यक्तित्व के मनुष्य पर कोई विश्वास नही करता। अस्तु एकाकी और असहाय स्थिति मे पड़े-पड़े अभीष्ट दिशा में बढ़ने से रुका ही रहना पड़ता है। कठिनाइयाँ हर काम में आती है। जो चाहा सो होता ही चला गया, ऐसा अवसर तो कही किसी को भी नही मिलता। हर किसी को अपने ढग से अड़चनों से निपटना पड़ता है। यदि धैर्य, साहस, सन्तुलन और पुरुषार्थ जैसे गुण न हो तो वे अवरोध ही हिम्मत तोड़ देते और व्यक्ति हाथ-पैर फैलाकर बैठ जाता है।

प्रगति का सुनिश्चित क्रम सदा से यही रहा है कि मनुष्य सद्गुणों को अपने स्वभाव का अग बनाता है, इससे उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली बनता है, शरीर में सक्रियता और मस्तिष्क मे सजगता उभरती है। इतनी समर्थता आ जाने पर अभीष्ट दिशा मे तेजी से कदम बढ़ते है और सफलता के अवसर एक के बाद एक बढ़े-चढ़े स्वर से मिलते चलते है। यही प्रवाह अन्ततः मनुष्य को ऐतिहासिक सफलताएँ प्रदान करने की स्थिति तक पहुँचा देता है।

सद्गुणों मे सबसे प्रारम्भिक और सबसे महत्त्वपूर्ण है श्रमशीलता। निरन्तर काम मे लगे रहना, खाली न बैठना एक बहुत ही अच्छी आदत है। इससे शरीर और मस्तिष्क के कल-पुर्जे सदा गतिशील रहते और उनकी तीक्ष्णता बढ़ती रहती है। सर्वविदित है कि निकम्मे पड़े रहने पर चाकू भी जंग खा जाता है, इसके विपरीत बराबर काम मे आने वाला औजार तेज रहता है और चमकता है। वह उस्तरा अभागा है जो जंग लगने के कारण नष्ट हो गया। जिसे क्षण-क्षण बाद सिली पर घिसा जाता है और घिसते-घिसते, जिसकी पीठ मात्र रह गयी उस उस्तरे की प्रशंसा ही की जायेगी। श्रमशीलता के आधार पर ही जीवन सम्पदा का पूरा मूल्य वसूल किया जाता है। समय अनमोल है। जीवन का अर्थ है समय। वह तेजी से भागता चला जा रहा है और गया सो गया। फिर उसके लौटने की सम्भावना नही। ईश्वर ने समय के रूप मे ही जीवन दिया है। इस समय का हम चाहे तो उपयोग कर सकते है, बदले मे मनचाहे लाभ उठा सकते है और उसे आलस मे पड़े-पड़े नष्ट भी कर सकते है। व्यर्थ मे गँवाया गया समय दरिद्रता का अभिशाप देकर चला जाता है। समय को नष्ट करना अपने सुख-सौभाग्य का अपने हाथो विनाश करना है।

कठोर श्रम करने के उपरान्त बीच मे थोड़े-थोड़े समय विश्राम की आवश्यकता पड़ती है सो उचित ही है। पर उसका आनन्द तभी है, जब काम इतना पर्याप्त कर लिया हो कि थकान मिटाने की जरूरत पूरी तरह अनुभव होने लगे। भोजन का आनन्द तभी है, जब करारी भूख लगे। भरे पेट पर भी सारे दिन कुछ न कुछ खाते रहा जाय तो कुछ भी आनन्द न मिलेगा। कड़ा परिश्रम करने पर जब गहरी थकान आती है तो थोड़ा-सा विश्राम भी बहुत आनन्द देता किन्तु जिनके पास कुछ काम नही, ऐसे ही बैठे-ठाले समय गँवाते है—बार-बार विश्राम की रट लगाये रहते है, उन्हे उस सुस्ताने में भी कोई रस नही मिलता। दिन मे कड़ी मेहनत करने वालो को गहरी नीद आती है। पर जिन्हे बिस्तर पर ही पड़े रहना है, उन्हे करवटें बदलते हुए ही समय गुजारना पड़ेगा, उन्हें नीद का आनन्द नही मिलेगा। कई व्यक्ति आराम की जिन्दगी जीना चाहते है। उनकी दृष्टि से काम न करना, निठल्ले समय गुजारना ही आराम है। ऐसे लोगो के लिए समय काटना भी भारी पड़ जाता है। निरर्थक की गपशप, मटरगश्ती, ताश, शतरंज आदि के सहारे दिन गुजारते है। इसके लिए उन्हे अपने जैसे और कुछ साथी तलाश करने पड़ते है या बनाने पड़ते है। चोर अकेले ही चोरी

ही कर पाते। उन्हे एक गिरोह बनाकर चलना पड़ता है। आलसी भी दिन काटने के लिए ठलुआ लोगो की कम्पनी बनाते है। इन मन-मौजी लोगो मे अन्य निठल्ले लोग भी शामिल हो जाते है और छूत की बीमारी की तरह अन्यो मे भी यह कुटेव फैलाते है।

हम जीवित इसलिए है कि शरीर मे श्वाँस-प्रश्वाँस, आकुचन-प्रकुचन, रक्तभ्रमण, मल विसर्जन आदि क्रियाएँ निरन्तर जारी रहती है। यदि यह हलचले बन्द हो जाएँ तो मरण मे थोड़ा अन्तर है। श्रम करने का अपना आनन्द है, जिसे वह मिलने लगा समझना चाहिए जीवन रस के आस्वादन का सौभाग्य-सुअवसर उसे ठीक प्रकार मिल सका। जो इस आनन्द से वंचित रहे, समझना चाहिए कि उन्होने अपने जीवन देवता को दुलार पाने से वंचित ही रखा है।

स्वेद बिन्दुओ का मूल्य हीरे-मोतियो से बढ़कर है। परिश्रम करने का अर्थ, सफलताओ को भावभरा आमन्त्रण देना है। शरीर की कार्यक्षमता और मानसिक तीक्ष्णता मे उत्तरोत्तर वृद्धि करने वाले राजमार्ग पर चल पड़ते है। यह सोचना गलत है कि श्रम करने से शक्ति खर्च या नष्ट होती है और आराम करते रहने से स्वास्थ्य सुधरता है तथ्य इसके बिल्कुल विपरीत है। डायनेमो चलता है तो बिजली पैदा होती है। जब उसका चलना बन्द हो जाता है तो बिजली का उत्पादन भी रुक जाता है। ठीक इसी प्रकार श्रमशील मनुष्य की बलिष्ठता स्थिर रहती है और विकसित होती है। लुहार, बढ़ई आदि कठोर श्रम करने वालो की भुजाएँ, छाती, पूरी काया लोहे की ढली मालूम पड़ती है। वनवासी, आदिवासियो को न कोई बीमारी सताती है न कमजोरी। बहुमूल्य पोषक तत्त्वों वाले पदार्थ उन्हे खाने को कहाँ मिलते है ? ऐसे ही मकई, ज्वार और कन्दमूल खाकर जीवित रहते है इतने पर भी तीर से शेर को मार लेने जैसी बलिष्ठता उनमे बनी रहती है। यह श्रमशीलता का, कठोर कर्मनिष्ठा का परिणाम है, जो उन्हें सुदृढ, आरोग्य और दीर्घ जीवन के रूप मे मिलता है। आलसी लोग इन अनुदानो से सदा वचित ही रहते है।

आराम को हराम कहा गया है। हराम भी एक अपराध है। हरामी शब्द गाली की तरह है। निठल्ले लोग सचमुच गाली खाने जैसी भर्त्सना के ही योग्य है। वे अपने शरीर को गलाते है और प्रतिभाओ को कुण्ठित करते है। शरीर के साथ ही मस्तिष्क भी चलता है। हर काम मे मन, बुद्धि का संयोग करना पड़ता है। सक्रिय रहने से मस्तिष्कीय प्रखरता मे तेजी आती है। हरामखोर मनुष्यो का शरीर श्रम से अनभ्यस्त रहने के कारण अशक्त, असमर्थ बनता चला जाता है और साथ ही मस्तिष्क को क्रिया-कृत्यो के साथ जुटे रहने का अवसर न मिलने से उसके तन्तु भी जड़ताग्रस्त होते चले जाते है। यही कारण है कि आरामतलब लोगो की बुद्धि बहुत ही मोटी हो जाती है, उनके चिन्तन उथले और निर्णय बेतुके होते है। सर्वविदित है कि आलस्य की सहचरी मूर्खता भी है। दोनो जोड़ा बनाकर रहते है। उन्हे एक ही घोसले मे रहने की आदत है।

हर मनुष्य को परमात्मा ने अपार शारीरिक शक्तियाँ दी है। बुद्धि भी सबमे कुछ न कुछ होती है, संसार इतना बड़ा है कि ढूँढने से इच्छित परिस्थितियो का अम्बार मिल सकता है। यहाँ अभाव किसी वस्तु का नही, यदि कुछ सच्ची बात है तो यह है कि सब कुछ ढूँढने वाले को मिलता है। जो कुछ स्वयं करता है, वह पाता है। जो चलता है, वही लक्ष्य तक पहुँचता है। सोना-सोना चिल्लाने से पास रखा हुआ सोना भी हाथो मे नही आ जाता। उसे उठाने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ता है। सफलता के हर क्षेत्र मे यह सिद्धान्त अटल है।

प्रगति और समृद्धि का सीधा राजमार्ग पुरुषार्थ है। उद्योगी, मेहनती और कर्मठ व्यक्ति अपने प्रबल पुरुषार्थ के बल पर आगे साधना हीन कठिनाइयो मे भरी परिस्थितियो के बीच रहकर भी वे सफलताएँ प्राप्त करते है, जिन्हे साथियो को चमत्कार हुआ जैसा लगता है 'श्रम करे सफल बने' का महामन्त्र आदिकाल से सार्थक होता रहा है अनन्त तक होता रहेगा।

अवसर ढूँढ़िए, परिश्रम कीजिए महानता आपके कदम चूमेगी

जब कभी हम अपने किसी मित्र से या कोई मित्र हमसे कहे कि 'क्या बताया जाये हमको अवसर ही न मिला नही तो हम भी ससार मे कुछ करके दिखला देते'—तब निश्चय करके यह मान लेना चाहिये कि हम दोनो झूठ बोलते है। अपने शब्दो के पीछे अपनी निराशात्मक प्रवृत्ति और अपरिश्रमशीलता के साथ अपनी अयोग्यता छिपाते है। अवश्य ही हम दोनो अपने प्रति गैर-ईमानदार है। अपनी आत्मा का प्रवचन करने वाले ऐसे व्यक्ति है, जो दूसरो की तरक्की देखकर हसरत भरी आह ही भर सकते है पर कुछ कर नहीं सकते अन्यथा ससार का ऐसा कौन-सा ऐश्वर्य अथवा उपलब्धि है, जो लगन, पुरुषार्थ एवं निरन्तरता के बल पर नही पायी जा सकती। संसार की सारी उन्नतियाँ, समग्र विकास कर्मठ व्यक्ति के पसीने की बूँदे कही गई है।

जिसके हृदय मे आशा और आकांक्षा मे उत्साह की तरग है, वह संसार की हर सफलता पा सकता है। जो अपने मनोनीत क्षेत्र मे लगन एव उत्साह से डटा रहता है। एकाग्र चित्त होकर अपने लक्ष्य की ओर तिल-तिल बढ़ता रहता है। वह एक दिन हिमालय जैसे ऊँचे उद्देश्य को भी पा लेता है। जिसका संकल्प ढुलमुल है, जिसकी निरन्तरता शिथिल है। जो काम मे अपनी शक्तियो का चोर है, उसको यदि तिल जैसा उद्देश्य भी दे दिया जाये तो वह उसे भी पूरा नही कर सकता।

यह मानव जीवन का निश्चित नियम है कि जो अपना दृष्टिकोण विधेयात्मक बना लेता है वह उन्नति की ओर और जिसका विश्वास निषेधात्मक होता है, वह पतन की ओर ही अग्रसर होता है। जिस कार्यक्रम अथवा उद्देश्य के प्रति जिस मनुष्य का जैसा दृष्टिकोण होता है, जैसी भावना होती है, उसका परिणाम भी उसे तद्नुरूप ही मिलता है। मनुष्य के गुप्त मन मे निर्माणात्मक एवं ध्वसात्मक दोनो प्रकार की शक्तियाँ निहित रहती है जो कि मनुष्य की भावना एव विश्वास के अनुरूप जागकर ऊपर आ जाती है और अपने स्वरूप की तरह ही प्रेरणा देने लगती है। जो काम अविश्वास एव आशका की भावना से किया जाता है, उसकी सफलता सदिग्ध और जो प्रारम्भ विश्वास एव शकारहित स्थिति मे किया जाता है, उसका परिपाक सफलता के रूप में ही हस्तगत होता है। हमारी जगी हुई मानसिक शक्तियाँ यदि सृजनात्मक होगी तो वे हमारे उत्साह का वर्धन करेगी। हमे कार्य करने की अधिकाधिक क्षमता प्रदान करेगी और यदि वे शक्तियाँ ध्वंसात्मक होगी तो निश्चय ही हमारी उदात्त भावनाओ को शिथिल और बढ़ने की शक्ति, आशा एव उत्साह पर धूल डाल देगी। अतएव उन्नति के आकाक्षी व्यक्ति को भूलकर भी निषेधात्मक दृष्टिकोण द्वारा ध्वसक शक्तियाँ जगाने की गलती नही करनी चाहिए।

जहाँ तक अवसर न मिलने की शिकायत है सो अवसरो का भण्डार कही किसी समाज के पास नही रहता कि वह उसमे जब चाहे जिसे दे दे अथवा जिसे चाहे वंचित करदे। अवसर की खोज की जाती है, बुद्धिमत्ता तथा व्यवहार कुशलता से उसका निर्माण किया जाता है। अवसर को खोज लेना अथवा उसका निर्माण कर लेना ही तो वास्तविक पुरुषार्थ है अन्यथा पकी-पकाई रोटी खा लेना तो सब के लिये ही सुगम होता है। अवसर न कभी आता है और न कभी निकल जाता है। इस अनन्तकाल का प्रत्येक क्षण एक अवसर है। मनुष्य का प्रत्येक कदम एक उद्योग और प्रत्येक दिशा उन्नति एव विकास का क्षेत्र है। किन्तु यह सब सामान्य बाते किसी भी अदूरदर्शी अथवा अकर्मण्य के लिए सफलता के रूप मे प्रस्तुत नही हो सकती। ससार के छोटे-छोटे अणु-कण उस ही के लिये विशाल कल्पवृक्ष का रूप धारण कर सकते है जो किसी सदुद्देश्य के लिए पसीना बहाना जानता है। अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओ का बलिदान देना और हृदय की शिथिल एव विलासी प्रवृत्तियाँ त्याग करना जानता है।

ससार मे एक नही अनेको ऐसे व्यक्तियो के प्रमाण मौजूद है, जिनके पास किसी प्रकार की सुविधा-साधन, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि नही थी किन्तु उन्होने अपने पुरुषार्थ एव लगन के बल पर उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचकर दिखा दिया।

आज 'बाटा शू कम्पनी' भारत ही नही संसार के कोने-कोने मे छाई हुई है। उसके बने जूते लोग बड़े शौक तथा विश्वास के साथ पहनते और खरीदते है। इस कम्पनी का नाम उसके मालिक बाटा के नाम पर ही पड़ा है, जो प्रारम्भ मे एक साधारण मोची का लड़का था।

यह लड़का प्रारम्भ मे शहरो की सड़को के किनारे बैठकर लोगो के फटे-पुराने जूते टाँका और पालिश किया करता था, यही उसकी आजीविका का साधन था। उसके पास तरक्की करने का न तो कोई अवसर था और न उसके पास साधन ही थे। फिर भी उसने अपने जीवन मे एक महान उद्योगपति होकर दिखला दिया। उसकी इस उन्नति का रहस्य और कुछ नही केवल अपनी मेहनत, लगन और काम के प्रति श्रद्धा भर ही थी।

इस लड़के को ज्यादा काम करने के बजाय अच्छे से अच्छा काम करने की लगन थी। वह जिसका भी काम करता। उसे पराकाष्ठा तक अच्छा और सही करने की कोशिश करता था। उसने कभी भी पैसे के लिए जल्दी-जल्दी काम की बेगार नही टाली । वह ग्राहको के साथ बड़ी नम्रता एव आदर से बोलता। उनके फटे-पुराने जूते अपने महीन और मजबूत टाँको से सीकर दीर्घजीवी बना देता। पालिश लगाकर ऐसा चमका देता मानो वे नये हो। जब तक वह जूता गाँठने का काम करता रहा, उसका कोई भी ग्राहक असतुष्ट नही हुआ। वह समय पर ही काम लेता था और समय पर ही उसको करके देता था। इस प्रकार लगन तथा निश्चित समय के बल पर अपने छोटे से काम मे एक बड़प्पन का समावेश कर लिया। जिसका फल यह हुआ कि उसके पास ग्राहको की भीड़ रहने लगी। लोग अपना काम करवाने के लिये अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगे। अब लोगो का विश्वास हो गया कि बाटा के बनाए हुए जूते ही अधिक दिनो तक चल सकते है। इस प्रकार एक दिन यह स्थिति आई कि लोग जूतो की मरम्मत के लिये उस पर निर्भर रहने लगे। काम की बहुतायत हो गई। फिर भी बाटा मे जरा भी यह दुर्बलता न आई कि वह अधिक पैसे कमाने के लिए उल्टा-सीधा काम करके लोगो को जल्दी-जल्दी देने लगे क्योकि जिस सच्चाई, लगन तथा ईमानदारी के आधार पर उसको नागरिको की सद्भावना मिली थी वह उन्नति के उस आधार को त्याग देना मूर्खता समझता था।

धीरे-धीरे उसके पास इतना काम बढ़ गया कि सड़क के किनारे बैठकर उसे कर सकना असम्भव हो गया। निदान उसने एक दुकान खोलनी शुरू की। सद्भावना के कारण उसे स्थान मिलते देर न लगी क्योकि लोग स्वय ही इसके इच्छुक थे कि बाटा कही ठीक से जूते बनाने का काम शुरू करे जिससे कि अच्छे और मजबूत जूतो की समस्या हल हो जाये।

बाटा ने एक छोटी-सी दुकान मे नये जूते बनाना और जूतो की विधिवत् मरम्मत शुरू की। काम बढ़ता

गया और वाटा दिन-दिन तरक्की करता गया। उसने अपनी तरह के अनेक अन्य लड़को को भी काम पर लगाया और इस प्रकार एक छोटा-सा जूतो का कारखाना प्रारम्भ कर दिया। पैसे के सम्बन्ध मे उसे कोई कठिनाई नहीं हुई। कुछ पैसा तो उसने अपने मितव्ययता के गुण से स्वयं बचाया और बहुत-सा पैसा उसकी ईमानदारी तथा सज्जनात्मक वृत्ति के प्रमाण ने इकट्ठा कर दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे तरक्की करते हुए वह साधारण जूता टाँकने वाला लड़का एक महान उद्योगपति बन गया और उसका छोटा-सा काम एक बड़ी कम्पनी मे बदलकर संसार की सेवा कर रहा है।

देखा यह जाता है कि हजारो लोग जीवन में उन्नति करने की आकांक्षा करते है, पर पाते है कि मन्जिल उतनी ही दूर हुई जाती है जितनी कि वे आकांक्षा करते है। उन्नति चाहने वालो की सख्या हजारो लाखो नही करोड़ो मे है और प्रत्येक आने वाले दिन को आज के दिन से अच्छा बनाने की आकांक्षा रखता है पर आज का दिन जैसे ही व्यतीत होता है और कल का दिन शुरू होता है, वैसे ही लगने लगता है कि हम जहाँ के तहाँ है और जरा भी आगे नही बढ पाये। पास मे साधन हो, सामने अवसर हो तथा समर्थ लोगो का सहयोग हो तो भी लोग उन्नति से वंचित रह जाते है। इसका क्या कारण है ? उत्तर एक है—उन्नति करने के लिए आवश्यक सभी गुण भले ही व्यक्ति मे रहे हो पर परिश्रम का अभाव रहा है, प्रगति के लिए ईमानदारी से प्रयास नही किया गया है।

ससार मे जिन किन्ही गिने-चुने व्यक्तियो ने प्रगति की है। उनमे प्रतिभा थी, उनके पास ऐसी क्षमता और योग्यता थी कि वे आगे बढ़ सके। फिर भी उन्होने अपने जीवन मे ऐसे अवसरो की प्रतीक्षा नही की, जिनमे वे आगे और व्यक्ति विशेष का सहयोग अर्जित कर सके। अन्त मे उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया तथा महत्वाकाक्षी व्यक्तियो को यह दिशा निर्देश दिया कि परिश्रम प्रतिभा का पिता है, प्रतिभा हमारे पास लाख हो, योग्यता मे हम किसी से कम न हों पर अगर परिश्रम जैसी चीज हमारे पास नही है तो हम कदापि आगे नही बढ सकेगे। परिश्रम का महत्त्व समझाने के लिए उस शिला का उदाहरण हर जगह दिया जाता है, जो कुएँ पर पड़ी रही होती है तथा रस्सी की रगड़ से घिसकर निशान खा जाती है। यह इस सिद्धान्त का द्योतक है कि परिश्रम के बिना प्रतिभा का कोई सम्मान नही है। वह जारज सन्तान की तरह है, जिसकी कोई चर्चा भी सुनना पसन्द नही करता, चर्चा होती है भी तो लोग यह कहकर अवमानना कर जाते है कि खाक प्रतिभा है उसमे। यदि प्रतिभा है तो वह उसे सामने क्यो नही ला पाता ?

लौकिक हो चाहे अलौकिक जहाँ भी जो कोई विभूति, संपदा और सफलता दिखाई पड़ती है, वे परिश्रम के आधार पर ही प्राप्त की जा सकती है। सम्पत्ति हो, कीर्ति अथवा श्रद्धा हो तीनो उपलब्धियाँ केवल पुरुषार्थ के बल पर ही प्राप्त होती है। यही कारण है कि किसी की प्रतिभा का तभी परिचय मिलता है, जब वह उस दिशा मे पुरुषार्थ करता दिखाई देता है। अन्यथा संघर्ष के अभाव मे वह प्रतिभा भी अरणी मे आग की तरह दबी पड़ी रह जाती है।

इन दिनों बम्बई का वेकटेश्वर प्रेस भारत मे प्रतिष्ठित और कलात्मक छपाई के लिए प्रसिद्ध है। उसकी यह ख्याति तभी से है, जबकि बड़े-बड़े शहरो मे भी नाम मात्र को प्रेस नही थे। इस प्रेस की सम्पत्ति और विकास को आँक पाना मुश्किल है तथा आश्चर्य होता है, यह जानकर कि एकाकी व्यक्ति ने किस प्रकार इसकी इतनी गहरी नीव डाली। उससे भी ज्यादा विस्मय विमुग्ध कर देने वाली बात तो यह है कि इस प्रेस के सस्थापक मारवाड़ से रोजी-रोटी की तलाश मे बम्बई आये थे। तब न उनके पास प्रतिभा थी और न ही पैसा था। शरीर पर पहने हुए कपड़ो के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नही था। गुजारे के लिए उन्होने एक बुकसेलर के यहाँ नौकरी कर ली। दिन-रात मेहनत करके वे अपने काम मे लगे रहते तथा पुस्तके बेचते। साथ ही उन्होने अपनी मंजिल भी निर्धारित कर ली, इसे प्राप्त करने के लिए वे बड़ी मितव्ययिता बरतते और एक-एक, दो-दो पैसे इकट्ठे करते रहे। बचाये गये थोड़े बहुत पैसो से उन्होने छोटी-छोटी पुस्तके खरीद कर बेचना शुरू किया। सुबह खरीदी हुई पुस्तको को रात तक बेच लेते। कन्धे पर झोला लटकाये निरन्तर पुस्तके बेचने वाले उस युवक को लोग पहचानने लगे तथा अधिकाश उसी से पुस्तके खरीदने लगे।

इस प्रकार धीरे-धीरे वह नवयुवक एक अच्छा पुस्तक विक्रेता बन गया। अपनी दुकान मे अथक परिश्रम करते-करते इतना कमा लिया कि वह अब बड़ी पुस्तके भी बेचने लगे तथा कुछ पुस्तके छपाना भी आरम्भ कर दी। इस काम मे भी उक्त युवक ने इतना परिश्रम किया कि उनमे एक अच्छे प्रकाशक की प्रतिभा जाग उठी। निदान उन्होने अपने परिश्रम के बल पर साहस किया और धीरे-धीरे इतना विकास किया कि बम्बई का वेकटेश्वर प्रेस आज भी उनके परिश्रम तथा पुरुषार्थ की यश गाथा गा रहा है।

न केवल वेकटेश्वर प्रेस के मालिक वरन् टाटा, वाटा, बिड़ला आदि धनकुबेर कहे जाने वाले परिवारो के पुरखे न तो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न थे और नहीं धनीमानी। जहाँ से वर्तमान विकास का दौर आरम्भ हुआ उसकी नीव मे अगाध परिश्रम ही छुपा पड़ा है। जमशेदजी नौशेरवाँ टाटा को तो बचपन मे अपने पिता के साथ रोजी-रोटी की तलाश मे पैतृक निवास छोड़कर बम्बई आना पड़ा तथा वहाँ दर-दर की ठोकरे खानी पड़ी थीं। लेकिन उन्होने परिश्रम से कभी जी न चुराया और उसी

के आधार पर धीरे-धीरे उनमें प्रतिभा का विकास होता गया, जिससे उन्होंने इतने लम्बे-चौड़े कारोबार की स्थापना की। उनके वशजो ने भी इसी परिश्रम परम्परा का अनुकरण करते हुए अपने औद्योगिक क्षेत्र को आगे बढ़ाया।

यह तो हो गयी उद्योग-धन्धो और व्यवसाय, रोजगार की बात। विभिन्न विषयो के विद्वान, समाज सुधारक, शिक्षाशास्त्री, क्रान्ति के जनक तथा संस्कृत भाषा के पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को प्रारम्भ मे न तो ऐसी परिस्थितियाँ प्राप्त हुई थी कि वे निर्बाध रूप से अपनी शिक्षा चला सके और न ही कोई ज्ञान विद्या उन्हे विरासत के रूप मे मिली थी। पिता अपनी थोड़ी-बहुत योग्यता के बल पर केवल एक प्राथमिक शाला मे अध्यापक बन पाने में ही सफल हो सके। ऐसी परिस्थितियो मे यह कैसे कहा जा सकता है कि विद्वत्ता और योग्यता विद्यासागर के सामने पके हुए फल के रूप मे सामने आ गयी और उन्हे प्राप्त हुई।

विद्यासागर जी विद्यावान नही हो सकते थे यदि वे अठारह-अठारह घण्टे काम न करते और रात-रात भर जगकर पढ़ते न होते। परिस्थितियाँ तो ऐसी थी कि पैसो के अभाव मे अपने घर मे रोशनी तक का प्रबन्ध कर पाना कठिन था और वे सड़क पर लगी लालटेनो के नीचे उनकी रोशनी तले रात-रात भर पढते रहते। सोचा जा सकता है कि यदि वे ऐसा न कर पाते तो कैसे आगे बढ़ने मे कामयाब हो सकते थे।

अमेरिका के स्व. राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के पास प्रतिभा से भी अधिक परिश्रम का बल था और उसी बल के सहारे जगल से लकड़ी काट-काटकर लाते, शहर ले जाकर बेचते तथा बारह मील पैदल घूमकर किताबे लाते और पढ़कर लौटाने जैसी प्रगित साधना सम्भव हो सकी। इसके अतिरिक्त लिंकन को अपने जीवन मे जितनी बार असफलताओ का मुँह देखना पड़ा, उतनी असफलताएँ हम अपने सामान्य जीवन मे नही देख पाते होगे। लेकिन लिंकन ने हिम्मत न हारी और वे हार-हारकर भी परिश्रम करते गये। पुरुषार्थ से उन्होंने मुँह नही मोड़ा और अन्ततः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने मे सफल हुए।

प्रतिभा परिश्रम के अभाव मे पंगु और असमर्थ है। वही परिश्रम के साथ प्रतिभा हो ही यह कोई अनिवार्य नहीं है। प्रतिभा के अभाव मे भी परिश्रम और पुरुषार्थ के बल पर लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है, जबकि परिश्रम के बिना प्रतिभा कुछ भी कर पाने मे समर्थ नही है। अतएव महत्त्वाकांक्षी प्रत्येक व्यक्ति को अपने साधन पथ पर आरूढ़ होने से पहले यह देखना चाहिए कि ऊँचे चढ़ने के लिए जिस श्रम की आवश्यकता है वह श्रमशीलता हमारे व्यक्तित्व मे नहीं है तो उसका विकास करना चाहिए और यदि है तो उसमे निखार लाना चाहिए। इसी आधार पर महत्त्वाकाक्षाएँ पूरी हो सकती है अन्य और किसी आधार पर नही। यह हर व्यक्ति के ऊँचे उठने का मूल कारण रहा है और रहेगा उदाहरणो को सामने रखने का अवसर न मिलने की शिकायत करने वालो से पूछा जाये तो टाटा, बेंकटेश्वर, बिरला आदि के पास प्रारम्भ में कौन-से ऐसे साधन थे जिनके सहारे वे उत्कर्ष कर सके। निश्चय ही ये उदाहरण उनकी शिकायत रोककर उन्हे लगन, पुरुषार्थ एवं सच्चाई मे विश्वास करने का अवसर देगे और यदि उनके हृदयो मे उन्नति करने की सच्ची आकांक्षा होगी तो वे अपने पूरे तन-मन से किसी भी क्षेत्र को लेकर आगे बढ़ चलेंगे।

संसार मे जितने भी महान एवं महापुरुष हुये है, उनके पास यदि कोई साधन-सामग्री थी तो वह उनकी लगन, उत्साह और निरन्तर बढ़े चले जाने की आकांक्षा ही रही है। एक बार जिस उद्देश्य को उन्होने निश्चित कर लिया फिर जीवन भर उससे विचलित न हुए फिर चाहे उन पर विपत्तियो के पहाड़ ही क्यो न टूट पड़े हो। अपने उद्देश्य के साथ जो भी अपने जीवन को एकाकार कर देता है, वह अपने लक्ष्य को अवश्य प्राप्त कर लेता है। कोई सकट, कोई भी अवरोध उनकी गति को अवरुद्ध नही कर पाता।

यदि हम अपने कार्य की सिद्धि मे अखण्ड विश्वास लेकर चलते है, आशा एवं उत्साह को कम नही होने देते, असफलता एव अवरोधो को महत्व नहीं देते तो निश्चय ही हमारा पुरुषार्थ सफल होगा। हमारा आशावाद हमें निरन्तर आगे बढ़ाने मे सहायक होगा। लक्ष्य के प्रति हमारी पवित्र भावना, हमारे मनोबल तथा हमारी कार्य-क्षमता एवं योग्यता को निरन्तर बढ़ाती रहेगी।

जीवन का एक छोटा-सा सिद्धान्त है कि काम करने से काम की क्षमता तथा योग्यता बढ़ती है। निरन्तर के कर्तृत्व मे चमत्कार की शक्ति रहा करती है। संसार में हजारो ऐसे विद्वान हो गये है जिन्होंने शिक्षा के नाम पर विद्यालय का द्वार तक नही देखा किन्तु अपने अध्ययन एवं अध्यवसाय के बल पर वे पारगत पण्डित हुए है।

कितनी ही बड़ी आपत्ति अथवा असफलता क्यो न आ पड़े अपने मनोबल को न गिरने दीजिए अपनी आशा को मन्द मत पड़ने दीजिए—निश्चय ही अन्धकार के बाद प्रकाश की बारी आती है, असफलता के पश्चात् सफलता आयेगी ही। यदि भूल से भी आपने निराशा को एक क्षण को भी प्रश्रय दे दिया तो समझ लीजिये कि आगे का काम तो चौपट होगा या साथ ही पीछे की सफलता भी धुँधली पड़के निर्जीव हो जायेगी।

किसी भी असफलता अथवा प्रतिकूलता से हार मान बैठना जीवन का दाँव हार जाना है। एक बार हिम्मत हारने से मनुष्य का मन लँगड़ा हो जाता है, उसका उत्साह दूषित होकर मन्द पड़ जाता है। इस कायर वृत्ति को अपने पास फटकने भी न दीजिये। मनुष्यता की शोभा हार-हारकर जीतने मे है, असफल होने में है। जो संकट

एवं संघर्षों के बीच से रगड़ता हुआ जीवन मे आगे बढ़ता है, उसका जीवन परिमार्जित होकर चमक उठता है। न जाने कितने शारीरिक दोष और मानसिक मल यो ही अनायास ही रगड़-रगड़कर दूर हो जाते है। संकट एवं असफलताएँ मनुष्य को नये अनुभव और नये पाठ पढ़ाती है। इनसे डरना मनुष्य जैसे श्रेष्ठ प्राणी को शोभा नही देता।

यह हर नागरिक का कर्तव्य है कि वे अवसर तथा साधनो के अभाव की शिकायत छोड़कर अपने अन्दर निहित शक्तियो पर विश्वास करे, अपने पुरुषार्थ एवं अदम्य उत्साह को जाग्रत करे और अडिग लगन तथा सच्चाई के साथ जीवन के किसी भी नैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र मे उन्नति कर उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित कर लोगो को प्रेरणा दे, जिससे कि वे परिश्रम एवं पुरुषार्थ, सच्चाई तथा ईमानदारी, लगन तथा उत्साह का मूल्य समझकर जीवन मे इन गुणो का प्रतिपादन करे, जिससे उनका पिछड़ापन दूर हो और वे एक उन्नत मनुष्य के रूप मे हर्ष तथा प्रसन्नता के अधिकारी बने।

इस क्रम मे एक और बात ध्यान रखने योग्य है कि शारीरिक और मानसिक शक्ति काम करने मे खर्च होती है। इसकी पूर्ति के लिए जहाँ उपयुक्त आहार की, जल की, स्वच्छ वायु की आवश्यकता पड़ती है। वहाँ थकान मिटाने के लिए 'विश्राम' की भी वैसी ही जरूरत है। शरीर को और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रहने के लिए जिस जीवनी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, उसे पुनः संचय करने के लिए 'विश्राम' अभीष्ट है। खर्च हुई शक्ति को पुनः अर्जित करने का यह सर्वविदित और सुलभ तरीका है।

लगातार कठिन काम करते रहने की अपेक्षा यह अच्छा है कि बीच-बीच मे थोड़ा सुस्ता लिया जाय और फिर काम मे लगा जाय। देखने भर से ही ऐसा लगता है कि बीच वाला विश्राम वाला समय बेकार चला गया, पर असल बात ऐसी नही। थोड़ी-सी विश्रान्ति मिल जाने से अधिक उत्साह और अधिक परिश्रम के साथ काम किया जा सकता है। निरन्तर काम करते रहने की अपेक्षा यह बीच मे सुस्ताने वाली पद्धति सुविधाजनक भी रहती है और काम की मात्रा भी बढ़ा देती है।

अपनी शरीर रचना मे ऐसा प्रतीत होता है कि रक्तसचार, श्वाँस-प्रश्वाँस आदि की क्रियाएँ निरन्तर अनवरत् रूप से होती रहती है, पर वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। हर अवयव बीच-बीच में स्वल्पकालीन विश्राम लेता रहता है, तभी उसकी 'निरन्तर' चलती-सी प्रतीत होती कार्य पद्धति अक्षुण्ण बनी रहती है। हृदय को ही लीजिए, वह प्रति मिनट लगभग ७० बार धड़कता है। लेकिन रक्त फेकने के अपने क्रिया-कलाप मे वह निर्धारित व्यवस्था के अनुसार काफी विश्राम लेता रहता है। इसका लेखा-जोखा लेने पर स्पष्ट हो जाता है कि हृदय चौबीस घण्टे मे सिर्फ नौ घण्टे काम करता है और १५ घण्टे सुस्ताता है। यदि वह ऐसा न करे तो हर दिन उसे जो काम करना पड़ता है वह सम्भव ही न हो सके। उसे रोज ही इतना खून फेकना पड़ता है, जिससे रेल का एक टेकर भर जाय। वह उतनी शक्ति उत्पन्न करता है जितनी बीस टन लोहा तीन फुट तक ऊँचा उठाने वाली क्रेन के लिए आवश्यक है। इतना काम हर दिन जीवन भर करते रहने की क्षमता का एक रहस्य उसका एक मध्यावधि विश्राम को भी समझा जा सकता है।

श्री चर्चिल सदा ही बहुत परिश्रमी और अध्यवसायी रहे, पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय तो उन्हे अत्यधिक काम करना पड़ा। उन दिनो वे ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री थे। आयु सत्तर साल। युद्ध का जो असाधारण दबाव आ पड़ा, उससे उसमे १६ घण्टे काम करना आवश्यक हो गया। इसके बिना युद्ध का संचालन और अगणित सामयिक समस्याओ का समाधान इससे कम समय मे सम्भव ही न था। सत्तर वर्ष का बूढ़ा व्यक्ति यदि निरन्तर इतना काम उत्तेजित स्थिति मे करे तो उसका एक सप्ताह जिन्दा रहना ही शक्य नही। श्री. चर्चिल ने दूरदर्शिता से काम लिया। वे काम पूरी जिम्मेदारी से करते रहे, पर साथ ही शरीर की जीवनी शक्ति और मस्तिष्क को सन्तुलित रखने के लिये आवश्यक विश्राम का भी ध्यान रखे रहे।

श्री चर्चिल सबेरे ११ बजे तक अपने बिस्तर मे ही पड़े रहते और लेटे हुए ही पत्र पढ़ने, उत्तर लिखवाने, टेलीफोन करने आदि के काम निपटाते। बहुत महत्त्वपूर्ण बैठके भी वे इसी प्रकार लेटे अपने घर पर बुलाते और उनमे आवश्यक निर्णय लेते। मध्याह्न भोजन के उपरान्त वे एक घण्टा सो जाते। रात के भोजन से पहले वे एक घण्टा और सो लेते। कठिन परिश्रम करते हुए भी उनने शरीर को आवश्यक विश्राम देने का पूरा-पूरा ध्यान रखा। मस्तिष्क से काम तो निरन्तर लेते थे पर उस पर भय, चिन्ता, घबराहट, व्याकुलता आदि उद्वेगो का आतंक एक क्षण के लिए भी सवार न होने देते थे। वे जानते थे कि दस घण्टे काम करने पर दिमाग जितना थकता है उससे ज्यादा शक्ति आधा घण्टे के मानसिक उद्वेग मे नष्ट हो जाती है। सही दिमाग से जिसे सही काम लेना हो, उसे हर हालत मे मानसिक सन्तुलन को बनाये ही रखना चाहिए और बड़ी से बड़ी कठिनाई आने पर भी उद्विग्न नही होना चाहिए।

ससार का सबसे धनी व्यक्ति राकफेलर ९८ वर्ष तक जिया, उसे नितान्त गरीबी की स्थिति मे आगे बढ़ते हुए तेल सम्राट बनने मे भारी प्रयत्न, श्रम और संघर्ष करना पड़ा। इतनी मेहनत आमतौर से आदमी का कचूमर निकाल देती है और ऐसे अति व्यस्त बहुधन्धी लोग स्वल्प काल मे ही मौत के मुँह मे चले जाते हैं। पर

राकफेलर का अनोखा अकेला ही उदाहरण इस स्थिति के व्यक्ति के लिये इतना लम्बा जीवन जी सकने का है। यह सब अनायास ही नही हो गया। उसने अपनी दिनचर्या को सुनियोजित रखकर इतनी लम्बी और नीरोग जिन्दगी पाई।

राकफेलर दोपहर को आधा घण्टा नियमित रूप से सोते थे। दफ्तर मे काम करते हुये ही वे कोच पर सो जाते। इसमे किसी भी कारण व्यवधान उत्पन्न न होने देते थे। जरूरी काम आ जाने पर भी उनकी हिदायत थी कि सोने से उन्हे कोई न जगाये।

अमेरिका के प्रेसीडेण्ट रुजवेल्ट अपना अति उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य बारह वर्षो तक निबाहते रहे और उनका क्रम था कि कोई महत्वपूर्ण काम आरम्भ करने से पूर्ण आधा घण्टे नीद न आये तो आँखें मूँदकर सुस्ता लेते थे।

प्रख्यात खिलाड़ी कोनीमेक कहता था कि जब कभी दोपहर को बिना सोये उसे खेलना पड़ा तब वह हारा। पर जब उसने थोड़ी-सी नीद बीच मे लेली तो पूरी मुस्तैदी और ताजगी के साथ खेला और अच्छी तरह जीता।

गाँधीजी के जीवनक्रम मे भी यही व्यवस्था जुड़ी रही। लार्ड इर्विन से भेट करने वायसराय भवन मे वे गये। १५ मिनट पहले पहुँच गये तो उन्होने वह फालतू समय एक झपकी ले लेने मे लगाया। वैज्ञानिक एडीसन को भी ऐसी ही आदत थी। ग्रामोफोन वेकुम शक्ति आदि के कितने ही आविष्कार उसने किये। चिन्तन मे सदा व्यस्त रहे, पर समय पर मस्तिष्क को विश्राम देने वाली बात वह कभी भी नही भूला। रात को ही नही दिन को भी वह बीच-बीच मे सोकर ताजगी प्राप्त किया करता था।

विश्राम का समय बर्बादी नही है, वरन् अधिक काम करने के लिए अधिक शक्ति सचय की एक वैज्ञानिक पद्धति है। इसका उपयोग हर व्यक्ति को अपनी-अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार करना चाहिए। विशेषतया ढलती उम्र के व्यक्तियो को उसका अधिक ध्यान रखना चाहिए।

यहाँ आलस्य का प्रतिपादन नही किया जा रहा है और न प्रमाद, दीर्घसूत्रता या काम चोरी की शिक्षा दी जा रही है। वरन् यह कहा जा रहा है कि अधिक काम कर सकने की शक्ति का अनावश्यक अपव्यय न होने देने का यह उपयुक्त तरीका है, कि काम के बीच मे थोड़ा सुस्ताते हुए अपने क्रिया-कलाप को जारी रखा जाय, जिसके लिए बीच मे झपकी लेने की सुविधा नही हो वे कुछ देर तक आँखे बन्द करके शरीर को शिथिल रखते हुए नि-चेष्ट कुर्सी पर पड़े रहने से थकान मिटा सकते है। वृद्ध आदमी यदि लेटे रहकर जरूरी काम निपटा लिया करे तो उन्हे बिना थके अधिक काम कर सकने का लाभ मिल सकता है।

दिमाग को हर हालत मे हल्का रखना चाहिए। भावुक व्यक्ति बहुत करके कल्पनाओ की उड़ान मे उड़ते हुए अधिक मस्तिष्कीय शक्ति खर्च करते है। दार्शनिक, चिन्तक, बुद्धिजीवी व्यक्ति जिन्हें अपने मस्तिष्क पर नियन्त्रण करने की क्षमता नही, अत्यधिक मस्तिष्कीय तनाव के कारण कुसमय मे ही मरते है। डरपोक, शंकालु व्यक्ति चिन्ता, आशका, रोष, आवेश, शोक, वियोग की कल्पनाओ मे उलझे रहकर एक प्रकार मे मन्द आत्महत्या की राह पर चलते है और तनावजन्य रोगो के शिकार होकर बेमौत मरते है।

हमे श्रम का महत्व समझना चाहिए। मस्तिष्क से समुचित काम लेते हुए सफलताओं के शिखर पर पहुँचना चाहिए पर साथ ही यह भूल न जाना चाहिए कि अव्यवस्थित रूप से उत्तेजनात्मक स्थिति मे किया जाने वाला श्रम न सफलता प्राप्त कराने मे सहायक होता है और न स्वास्थ्य को स्थिर रखने में।

पौष्टिक आहार की महत्ता लोगो ने समझी है और "विटामिन," "टॉनिको" की ओर ध्यान दिया है, पर यह तथ्य भुला दिया गया है कि शक्ति के अनावश्यक अपव्यय की पूर्ति बिना विश्राम की उपयुक्त व्यवस्था के सभव नही। शरीर के आराम की व्यवस्था तो बहुत लोग कर लेते है। आलसी स्वभाव और जिम्मेदारी की कमी वाले व्यक्ति भी समय बिगाड़ते और मटरगश्ती करते देखे गये है। यह विश्राम नहीं है। सुस्ताने की आवश्यकता उन्हे है जो काम का महत्त्व समझते है—श्रम की गरिमा का जिन्हे ज्ञान है। उन्ही के लिए यह पक्तियाँ लिखी जा रही है। आलसी लोगो से तो क्रियाशीलता बढ़ाने की ही बात कही जा सकती है।

मस्तिष्क को विश्राम देने की लिए—हँसने, मुस्कराने, प्रफुल्लित और प्रसन्नचित्त रहने की आदत डालनी चाहिए। कठिनाइयो के सामने होने पर तो इस अभ्यास की और भी अधिक आवश्यकता है। मुसीबत के समय यदि मानसिक सन्तुलन गँवा दिया जाय और शोक, सताप मे उलझ जाया जाय तो उस आपत्ति को पार करने के लिए सही उपाय ही न सूझ पड़ेगा। घबराया हुआ व्यक्ति अपनी सोचने की मशीन को ही बिगाड़ लेता है। गलत या अधूरे निर्णय लेता है। हड़बड़ी में कुछ भी नही बनता। ऐसी दशा मे विपत्ति और भी अधिक बढ़ती चली जाती है।

कठिन समय को पार करने का उत्तम उपाय मानसिक सन्तुलन की स्थिरता ही है। इसे एक प्रकार के मस्तिष्कीय दबाव हल्का करने वाली विश्राम पद्धति ही कहना चाहिए। हँसते-हँसते मुसीबत के दिन आसानी से काटे जा सकते है। प्रसन्नचित रहने वाले हँसोड़ स्वभाव वाला अपनी आधी-आपत्ति तो अच्छे स्वभाव के द्वारा ही हल्की कर लेता है। यह कथन सर्वथा सत्य है कि जो कठिनाई से नहीं डरता उससे कठिनाई डर जाती है।

मनःसंस्थान शरीर से भी अधिक सामर्थ्य का स्रोत है। लगातार श्रम से उसे थकाया न जाय तो वह अधिक मात्रा मे और अधिक सही काम करेगा। इसी प्रकार उद्विग्नता के तनाव से उसकी रक्षा की जानी चाहिए। सन्तुलित और बिना तनाव की मानसिक स्थिति बनाये रखकर अधिक बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और तज्जनित प्रगतिशीलता का लाभ सहज ही उठाया जा सकता है।

प्रगति पथ के दो अवरोध, जिनसे बचना ही चाहिए

मानव जीवन को भगवान का सबसे बड़ा अनुदान माना गया है। कहा गया है कि देवता भी इस पृथ्वी पर जन्म लेने को तरसते हैं, क्योंकि यही कर्मभूमि है। कर्म के द्वारा ही मनुष्य को, अपवर्ग और मुक्ति की प्राप्ति होती है। कर्म ही ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने की शक्ति रखता है। संसार मे जो कुछ प्रशंसनीय है और आदरणीय है, उस सबका आधार कर्म ही होता है, वेद मे कहा गया है—

देवस्य सवितुः सर्वेकर्म कृण्वन्तु मानुषाः।
शंनो भवन्त्वप ओषधी शिवाः॥

(अथर्ववेद ६/२३/३)

अर्थात्—"जीवन, प्रेरणा और प्रकाश देने वाले परमात्मा के प्रसाद से हम सदैव अपने नियत कर्म पूरे करते रहे, जिससे अन्न-जल आदि पदार्थों का सुख प्राप्त हो सके।"

असद् भूम्याः समवत् तद् यामेति महद्यामेव्यचः।
तद् वै ततो विधुपायत प्रत्यक् कर्तारमृच्छतु॥

४/१९/६

"दुष्टता और उद्धततापूर्ण कार्य चाहे कैसे भी क्यो न हो करने वाले को संताप ही देते हैं और उसी पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं।"

मानव जन्म की सफलता और उसे सार्थक बनाने का मार्ग यही है कि मनुष्य कर्ममय जीवन व्यतीत करता रहे। अकर्मण्य जीवन संसार मे बहुत बड़ा अभिशाप माना गया है। इस प्रकार कर्म विमुख, आलसी, प्रमादी व्यक्ति को संसारी लोग तो क्या देवता भी अपने अनुग्रह का पात्र नहीं समझते और वह सदा दुर्भाग्य, भगवान की प्रतिकूलता का रोना ही रोता रहता है। 'ऋग्वेद' में स्पष्ट शब्दो में कहा गया है—

इच्छन्ति देवाः तन स्वप्नाय स्पृहयन्ति न प्रमादतन्द्राः॥

अर्थात्—'देवता लोग भी शुभ कर्म करने वाले पुरुष की कामना करते है। आलसी और प्रमादी व्यक्ति को वे अपना उपहार कभी नही देते।"

जो व्यक्ति कर्म से विमुख रहकर निकम्मा जीवन व्यतीत करते है, वे वास्तव मे बड़े अभागे है। वे उस मूर्ख की तरह है, जो अपने पैर मे आप ही कुल्हाड़ी मारते हैं अथवा एक बहुमूल्य रत्न को पाकर भी उसका मूल्य न समझकर गँवा देते है। सन्तो का वचन है कि "हीरा जन्म अमोल था, मूरख दिया गँवाय।" इसका आशय यही है कि जो व्यक्ति अपने जीवन को शुभ कर्म द्वारा सार्थक नही बनाता, उसका जन्म लेना वृथा ही हुआ। अन्य रोग तो मनुष्य के किसी एक अंग को ही थोड़े समय के लिए बेकार बनाते है, पर आलस्य रूपी रोग समस्त शरीर को ही सदा के लिए निरर्थक बना देता है। यह धन, सम्पत्ति, उद्योग-धन्धे को ही नष्ट नहीं करता वरन् मनुष्य के सद्गुणों, यश और सुनाम को भी चौपट कर डालता है। मूर्ख व्यक्ति सुख और आराम की कल्पना करके आलस्य को अपनाता है, सोचता है कि काम का बोझा हट जाने से चैन की जिन्दगी व्यतीत करेंगे, पर यह उसे ऐसा जड़ और निकम्मा बना देता है कि दूसरे तो उसकी सर्वथा उपेक्षा करने ही लगते है, कुछ समय पश्चात् स्वयं अपने को भी अपना जीवन भारस्वरूप प्रतीत होने लगता है।

आलस्य का स्वभाव पड़ जाने से मनुष्य काम को टालने का प्रयत्न करने लगता और उसके लिए तरह-तरह के बहाने ढूँढ़ने लगता है। वह उपयोगी कामो को त्यागकर बैठे-ठाले निरर्थक काम करने लगता है जैसे गप्प हाँकना, लम्बी-चौड़ी बाते बकते रहना, वे सिर-पैर की कल्पना करते रहना। ख्याली दुनिया में रहने और व्यर्थ की कल्पनाओ को ही वास्तविक समझते हुए मन के लड्डू खाया करता है। पर मन के लड्डुओं से किसी की भूख कब मिटी है ? जैसे-जैसे वह कल्पना जगत मे आगे बढ़ता जाता है, वास्तविकता से वंचित होता जाता है। वह अपनी ख्याली दुनिया मे तो अपने लिये बड़े-बड़े रंगीन स्वप्न देखता है, कभी राजा बनता है, कभी नेता, कभी बड़ा अमीर। पर असली दुनिया मे उसे जीवन व्यतीत करने को मामूली साधन भी नही मिलते। इसलिये सुख-दुःख की लहरो मे डूबता-उतराता रहता है। कभी तो वह भविष्य के लिए बड़ी-बड़ी सफलता की सुखद कल्पना करके फूलकर कुप्पा हो जाता है और कभी खाने, पहिनने, रहने का कोई साधन न देखकर घबड़ा उठता है, कभी रोग, शोक, आपत्ति का भय करके रोने लगता है। इस प्रकार कर्म को छोड़कर वह हवा मे उड़ने वाले तिनके के समान कभी आकाश मे उड़ जाता है और कभी गड्ढे मे गिर पड़ता है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं रहता, परिस्थितियाँ जिस तरफ ढकेल देती है, उसी तरफ लुढ़क जाना पड़ता है।

इस तरह के जीवन का अधिक समय तक अभ्यस्त रहने से मनुष्य की दशा दयनीय हो जाती है। मानसिक दृष्टि से उस पर जड़ता का आक्रमण हो जाता है, जिससे उत्साह और साहस का अभाव हो जाता है,

दिमाग कुन्द हो जाता है, बुद्धि मन्द पड़ जाती है और मानसिक शक्तियाँ क्षीण होने लगती है। शारीरिक दृष्टि से भी किसी तरह के व्यायाम तथा भरपूर परिश्रम के बिना हाथ-पैर कमजोर पड़ने लगते है, पाचन शक्ति घटने लगती है। जिससे रक्त निर्बल पड़ जाता है और सम्पूर्ण शरीर मे निर्बलता की अधिकता दिखाई पड़ने लगती है। ऐसी स्थिति मे तरह-तरह के रोगो का आक्रमण होना स्वाभाविक ही है और मानसिक अवसाद के साथ मिलकर उनका स्वरूप और भी भयंकर हो जाता है। आलसी स्वभाव के कारण वह पहले ही कम हिम्मत, डरपोक हो जाता है, रोगो के आक्रमण से घबड़ाकर उसका रोना-धोना, भाग्य और ईश्वर को कोसना और भी बढ जाता है। वह इस प्रकार लोगो की सहानुभूति, सहायता प्राप्त करना चाहता है, पर लोग यह देखकर कि उसने अपनी ऐसी हालत स्वयं ही बनाई है और हराम की कमाई की इच्छा रखने वाला है, उसकी उपेक्षा ही करते रहते है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भी ऐसे व्यक्ति का पतन होने लगता है, क्योंकि आलस्य तमोगुण का एक प्रधान चिह्न है। अन्य दोष-गुणो मे मानसिक, नैतिक या चारित्रिक अध:पतन तो होता है पर काम, क्रोध लोभ मे फिर भी कर्मण्यता तो बनी रहती है। अपनी असद् प्रवृत्तियो के लिए ही सही, दूषित आचरण वाला व्यक्ति उल्टा-सीधा काम, उखाड़-पछाड़ तो करता ही रहता है। पर आलसी तो जड़ बनता जाता है और इससे उसके उद्धार की आशा ही समाप्त होती चली जाती है। इस सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द के एक सेवक का किस्सा विशेष शिक्षाप्रद है। वह नौकर उनके बेरूड़ आश्रम मे कार्य करता था, पर स्वभाव से बड़ा आलसी था। इस दुर्गुण के कारण आयु का एक बड़ा भाग व्यतीत हो जाने पर भी वह बिल्कुल हीन अवस्था मे पड़ा हुआ था। वह कभी-कभी स्वामी जी से कहा करता कि 'महाराज ! आप संसार को उद्धार का, मुक्ति का मार्ग दिखलाते है, मै तो आपका तुच्छ सेवक हूँ, मुझे भी अपनी दशा सुधारने का कोई उपाय बतला दीजिये। स्वामी जी उसे उत्तर देते कि तुम आलस्य को त्याग दो ! अगर कोई अच्छा काम न बन पड़े तो चोरी, बदमाशी, ठगी ही करने लग जाओ, पर आलस्य को छोड़ दो, तो तुम्हारा उद्धार हो सकेगा !' इस कथन का तात्पर्य यही था कि दुष्प्रवृत्तियो के पंजे मे फँसे व्यक्ति मे और कुछ नही तो सजीवता तो रहती है, जिससे कोई उत्तम संयोग मिल जाने पर वह अपना सुधार करके सत्कर्म भी कर सकता है। जैसे वाल्मीकि, अंगुलिमाल, नामदेव, रसखान आदि अनेक सन्तो के उदाहरण मिलते हैं, जो आरम्भ मे कुत्सित जीवन व्यतीत करते थे और बाद मे सत्संगति पाकर अनुकरणीय चरित्र वाले बन गये। परन्तु आलसी व्यक्ति, जिसने निकम्मापन अपना लिया है और खाली दुनिया मे रहने से जिसे कर्तव्यशून्यता ने घरकर लिया है, वह किस प्रकार अपने उद्धार की आशा कर सकता है ?

आलस्य की तरह बेकारी भी मनुष्य में दोष उत्पन्न करने वाली है। जिसका दिमाग खाली रहेगा, वह कुछ न कुछ खुराफात ही सोचेगा और वैसा ही करेगा। आजकल बेकारी उद्योग-धन्धो की अव्यवस्था के कारण भी पैदा होती है, पर उसका एक कारण यह भी होता है कि लोग परिश्रम का काम न करके हल्का-फुल्का काम करना चाहते है। मेहनत-मजदूरी के बजाय कुर्सी पर बैठने के ही काम पसन्द करते है। अगर आदमी किसी प्रकार के छोटे-बड़े काम करने में बेइज्जती या छोटेपन का ख्याल न करे और जिस समय जो काम मिल जाये उसी को पूरी लगन से करे तो बेकारी की समस्या कभी पैदा नही हो सकती। आदमी के व्यक्तित्व में भी कोई कमी आती है तो खाली न होने से, यह तभी सम्भव है, जब आदमी सतत श्रमशील बना रहे कोई बड़ा न सही तो छोटा काम और ज्यादा वेतन का नही तो कम तनख्वाह वाली नौकरी करके भी मनुष्य बेकारी से अपना पीछा छुड़ा सकता है और फिर समय मे मौका आने पर वह उससे अच्छा भी काम पा सकता है।

आलस्य की तरह गन्दगी भी मनुष्य के लिए कलकस्वरूप और पतनकारी है। यह एक ऐसा दुर्गुण है कि जिससे मनुष्य निन्दा का पात्र बनता है और लोग उससे घृणा करने लगते है। गन्दगी का एक कारण तो आलस्य होता है और दूसरा लापरवाही तथा गन्दा रहने का स्वभाव। शरीर की, वस्त्रो की, मकान की सफाई करने मे समय और परिश्रम लगता ही है। जिन लोगो मे निकम्मेपन की आदत पड़ जाती है और कामचोर बन जाते है, वे आलस्यवश गन्दे बने रहते है। एक कहावत है कि "कुत्ता भी जहाँ बैठता है वहाँ पूँछ से झाड़कर बैठता है।" पर मनुष्य कहलाने वाले ऐसे प्राणियो की कमी नही जो अपने निजी घर को ही गन्दा नही रखते वरन् जहाँ बैठते है, उसे भी गन्दा करके रख देते है। ऐसे आदमी अगर धर्मशाला मे ठहरते है तो उसमे कूड़े का ढेर लगा आते है, मुसाफिर खाने मे बैठते है तो वहाँ पर थूक, पीक, नाक आदि गिरा देते है। रेल मे जाते है तो उसे पानी और छिलको से दूसरो के बैठने के नाकाबिल बना देते है। ऐसे ही लोग नालियो मे बच्चो को टट्टी बैठा देते है, गली मे ऊपर से कूड़ा फेक देते है और अपने घर की नालियो और पाखानो को ऐसा गन्दा रखते है कि किसी सभ्य व्यक्ति के लिए उनका उपयोग करना भी कठिन होता है। ऐसे लोग गन्दगी का अनुभव नही करते, न उसमे अपने लिए कोई शर्म की बात समझते है। इनमे से बहुत-से कपड़े-लत्ते के फैशन और चमक-दमक का तो बहुत शौक रखते है, पर जहाँ वे रहते है, वहाँ उनके आस-पास सफाई का ध्यान उन्हे कभी नहीं आता।

गन्दा रहना एक शारीरिक दुर्गुण ही नहीं मानसिक दृष्टि से भी हीनता का द्योतक है। जिसका शरीर गन्दा रहेगा, उसका मन भी कदाचित ही स्वच्छ रह सकेगा। जो अपनी सफाई नहीं रख सकता वह किसी दूसरे की सेवा, सहायता क्या कर सकेगा ? ऐसे व्यक्ति में आलस्य; प्रमाद, अनुत्साह, निराशा, अव्यवस्था, दीर्घ सूत्रता, पेटूपन आदि दुर्गुण भी प्रायः उत्पन्न हो जाते है। ऐसे आदमी से पुरुषार्थ और प्रगति की आशा तो की ही कैसे जा सकती है ? वह जीवन के सच्चे सुख से अपरिचित होता है केवल जिन्दगी के भार को ढोता है। उसके चारों ओर भी परमात्मा के वही-अमूल्य वरदान बिखरे होते है, जिनका उपयोग कर के अन्य लोग सुखी और समृद्ध बन जाते है, पर ऐसे निकम्मे लोग 'पानी में भी मीन पियासी' वाली कहावत के अनुसार सदा भूखे-नंगे ही बने रहेंगे। वे अपनी दुरवस्था के लिये दूसरो को दोषी समझते है, पर दरअसल उनका आलसी स्वभाव और गन्दापन ही उनके पतन और दुर्दशा का कारण होता है।

कुछ लोग गन्दगी का सम्बन्ध गरीबी से जोड़ा करते है। वे कहते है कि हमारे पास इतना पैसा, ऐसे साधन ही नहीं कि हम सफाई से रह सके। पर इस कथन में वास्तव में कुछ भी सच्चाई नहीं है। सफाई, स्वच्छता में गरीबी को बाधक कहना एक बहाना मात्र है। आप अपने चारो तरफ ध्यान देकर देखेंगे तो सैकड़ो गरीब लोगो के घरो को सदा लिपा-पुता और झाड़ा-बुहारा पायेंगे, जबकि अनेक अमीर कहलाने वालो के यहाँ घर के पदार्थ अस्त-व्यस्त पड़े रहते है और सिगरेटो के टुकड़े, पान की पीक आदि की गन्दगी फैली रहती है। शारीरिक दृष्टि से भी बहुसंख्यक गरीब नहा-धोकर स्वच्छ रहते है, जबकि अनेक विलासी धनी लोग चाहे कपड़े भले ही बढ़िया पहिन ले, स्वच्छता की निगाह में बड़े गन्दे होते है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्वच्छता और सफाई मन की स्थिति पर निर्भर है। जिनमे आलस्य न होगा वह चाहे तो प्रत्येक अवस्था में गन्दगी से बचकर रह सकता है। ऐसा मनुष्य ही अपना और दूसरो का कुछ उपकार कर सकता है। आलसी और अकर्मण्य व्यक्ति तो संसार के लिए भारस्वरूप है जो दूसरो के परिश्रम पर चैन करना चाहते है।

इन्होंने तो कभी शिकायत नहीं की

अपंगता, बीमारी, असमर्थता आदि से संकटग्रस्त, बेकारी का रोना रोने वाले लोगो से दुनिया भरी पड़ी है। इतना ही नहीं कुछ तो स्वास्थ्य शरीर जैसी मजबूत और उपयोगी वस्तु पाकर भी दुर्भाग्य का रोना रोते है। वह लज्जा की बात नहीं तो क्या है ? यदि अभावग्रस्त और अपाहिज लोग भी उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कर सकते है, तो पढ़े-लिखे स्वच्छ नवयुवक, बेकारी, बेरोजगारी और असफलता के लिए बेचैन क्यो हो ? यदि साहस करे, लगन जगाये और जहाँ हो उसी स्थिति से आगे चल पड़ने के लिए कटिबद्ध हो जाये तो संसार मे समस्या जान पड़ने जैसी कोई परिस्थिति न रहे। परमात्मा की सृष्टि मे विवशता का कोई स्थान नहीं। परिश्रम और पुरुषार्थ से प्रत्येक कठिनाई जीती जा सकती है।

एक जन्मजात रोगी, गरीब घर मे पैदा हुआ, कुरूप, काना, असहाय बालक निश्चित लक्ष्य बनाकर अध्यवसायपूर्वक उसमे रत रहा। लक्ष्य था—अँग्रेजी का शब्दकोष तैयार करना। सम्भव है कोई आशंका करे कि कोई उनका सचिव या सहयोगी रहा होगा, जिसने उसकी सहायता की हो ? ऐसी भी कोई बात नहीं। उनकी पत्नी ही रोटी पानी की जितनी सुविधा देकर सहयोग कर सकी, वही था मात्र सहयोग। कोष तैयार हो जाने के बाद जिन व्यक्तियो ने उन्हे उपेक्षित, तिरस्कृत किया था उनने ही बाद मे उनका हार्दिक सम्मान किया। वह सुप्रसिद्ध विद्वान जानसन थे। विद्वानो ने इन्हें सिर पर उठा लिया और वे अँग्रेजी भाषा के अद्वितीय विद्वान मान लिए गए। सरकार ने उनके काम के उपलक्ष मे जीवनभर के लिए बहुत बड़ी पेंशन बाँध दी। सेम्युअल जानसन देखते ही देखते नीचे से उठकर शिखर पर पहुँच गए।

कोई समान्य व्यक्ति यदि उन परिस्थितियो मे रहता तो भाग्य या दैव का रोना रोते हुए समाज पर भार बनकर रहने के सिवाय कुछ न कर पाता। वास्तव में साधनो की सुविधा से महान कार्यों का मूल्य कम हो जाता है। किन्तु विपरीत परिस्थितियाँ किसी महान कार्य का मूल्य और भी बढ़ा देती है। कोष का जितना महत्त्व है जानसन के उस धैर्य और अध्यवसाय का भी उतना ही है। विलासिता को भोगते रहने वालो का ध्यान जीवन की आदर्शता की ओर आकृष्ट नहीं हो पाता। धन की बहुलता के घमण्ड मे अपने आपको बड़ा मान बैठने वालो की नजर, ज्ञान सम्पदा की महानता को समझ नहीं पाती। ऐसे धनी व्यक्तियो से वे साधन सुविधाहीन मानव बड़े है, जिनने संस्कृति के उत्थान हेतु ज्ञान के मोती समाज को अर्पण किए है। उनके श्रम और सेवा की गाथा उनके द्वारा किए गए उच्च आदर्शों की अमरता सदा ही गाती रहेगी।

लाहौर के पद्मराज अरोरा के जन्म से ही हाथो की उँगलियाँ नहीं थी। इस अपंगहस्त पुत्र को देखकर अभिभावको को बड़ी वेदना हुई और उन्होंने लड़के को परिवार पर बोझ समझ लिया। उसके लिए वे सदा चिन्तित रहते थे। किन्तु इस बाधित पुत्र ने अभिभावको को अधिक दिनो तक चिन्ताग्रस्त नहीं रहने दिया। उसने वह करके दिखला दिया जो प्रायः पूर्ण स्वस्थ एवं सुभागी भी नहीं कर सकते। केवल एक क्षेत्र मे नहीं बल्कि अनेको क्षेत्रो मे अपने पुरुषार्थ की उल्लेखनीय छाप छोड़कर दिखला दिया कि परमात्मा ने इतना कुछ दिया कि बाधाओ में भी शिक्षा से लेकर कार्यालय और

अखाड़े मे लेकर खेल के मैदान तक मे ख्याति प्राप्त की जा सके।

अबोधावस्था तक तो वह खेलता-कूदता, मस्ती करता रहा, किन्तु चेत आते ही उसने जाना कि प्रकृति ने उसके साथ मखौल ही नही अन्याय भी किया है। अपने जैसे हस्तहीन भिखारियो एव बेकारो को देखकर वह और भी खिन्न हो जाता एव सोचता रहता है कि क्या इनके समान ही मेरे जीवन को व्यर्थ बनाने के लिए ही प्रकृति ने मेरे दोनो पहुँचे छीने लिए है। मनोभावो की धारा मे मोड़ आया और जीवन परीक्षा मे सफलता के लिए दृढ़ निश्चय, पुरुषार्थ तथा प्रयत्न की महत्ता स्थापित करने और लोगो के सम्मुख यह उदाहरण रखने कि शारीरिक अपंगता प्रगति मे बाधा नही बन सकती, वे उसी दिशा मे बढ़ने लगे। मनुष्य मे कुछ कर दिखाने की सच्ची लगन हो तो परिस्थितियाँ बाधक नही हो सकतीं। नहीं तो कुछ न करने की मृत इच्छा और लगनपूर्वक निश्चय से रहित मन वाले दो हाथ क्या चार हाथ होने पर भी कुछ नही कर सकते। विचार ठीक होते ही श्री पद्मराज अरोरा की शक्तियाँ भी अनुकूल हो उठी और उनकी उन्मुखता आपसे आप सही दिशा झाँकने लगी। शिक्षा के क्षेत्र में बी. कॉम एवं वकालत की पढ़ाई एक साथ उत्तीर्ण की। एक समय मे दोहरे कार्य मे समय का उपयोग करने का अर्थ है, शीघ्र ही लक्ष्य के समीप पहुँचना। उल्लेखनीय बात और भी है कि उनकी उँगलियाँ न रहने पर भी अक्षरो को छापकर रख देने जैसे सुन्दर सुलेख को केवल हथेली से दबाकर ही लिखते थे।

शारीरिक निर्बलता एव कमजोरी के कारण श्री पद्मराज अरोरा शारीरिक कार्यों मे प्रायः दूसरो से पीछे रह जाते है। प्रतिस्पर्धा की भावना के साथ अरोराजी ने शारीरिक निर्बलता रहने पर भी शारीरिक कार्यों मे दूसरो से आगे बढ़ने का विचार किया इस लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सयम, नियम के साथ व्यायाम का क्रम प्रारम्भ किया। प्रगति का अभिलाषी उद्योगी पुरुष जिस क्षेत्र मे भी पदार्पण करता है अपना स्थान बना ही लेता है। श्री अरोरा को भी प्रारम्भ मे कुछ सफलताएँ मिली। प्रारम्भिक सफलता से प्रोत्साहन मिलता रहता है और उनने प्रान्तीय स्तर की कुश्ती प्रतियोगिता मे द्वितीय स्थान पाया। केवल कुश्ती ही नही खेल के मैदान मे हाकी, फुटबाल मे भी विश्वविद्यालय के चैम्पियन बने। यह होता है कि एक सच्चे मनुष्य तथा पुरुषार्थी का लक्षण। ऐसे लोग ही तो समाज की शोभा और देश का गौरव बनते है।

साधारण परिस्थितियो मे भी उच्च मनोबल और साहस वाले लोग बड़ी से बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते है। पुरुषार्थी को न बाधाएँ रोकती है और न दुर्भाग्य बुरा कर सकता है। मनुष्य कठिनाई मे ही अपने भाग्य का निर्माण करता है। मनुष्य का साहस न छूटे और आशा न टूटे तो संसार इतना बड़ा है कि खोजने पर उसमे कठिनाइयो के निराकरण के योग्य उपाय कहीं न कहीं से उपलब्ध हो ही जाते है। अनेकों उत्कृष्ट सफलताएँ ऐसे ही साहसी और उद्यमी मनोबल वाले व्यक्तियो ने पाई है। दैव या भाग्य के भरोसे बैठे रहने वालो को आज तक कही भी सफलता नही मिली। सफलता तो साहसी और पुरुषार्थी की दासी है। अन्यों को वह क्यों वरण करने लगी।

बुडापेस्ट (हंगरी) मे तेरह वर्ष की उम्र तक स्जेनसी लकवे का शिकार था, जो चिकित्सा करा सकते थे, अभिभावकों ने व्यवस्था की। परिणाम कुछ न हुआ। बालक के भावी जीवन के लिए माता-पिता का चिन्तित होना ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही था। किन्तु बालक के मन मे आशा, उत्साह और प्रयत्न की लहरें हिलोरे ले रही थीं। कही उसने पढ़ा कि जल चिकित्सा से लकवे की बीमारी दूर हो सकती है। फिर क्या था उसने जल विहार आरम्भ किया और आनन्द भी लेता रहा। घण्टो पानी मे तैरता रहता फिर वाटरपोलो खेलने लगा और उसके बाद मीलो तैरने वाला तैराक बना। १९६२ मे स्जेनसी ने तिरजा नदी पर तैराकी का विश्व रिकार्ड जीता। इसके पूर्व कई छोटी-छोटी प्रतियोगिताओ मे भी सम्मिलित होता रहा, जिससे अभ्यास बढ़ता रहा। ४९ घण्टे ४० मिनट मे २३० किलोमीटर की दूरी तैरकर लोगो को आश्चर्यचकित कर, तैराकी मे आदर-सम्मान का पात्र बना। यह सफलता उसने अचानक ही नहीं निरन्तर अभ्यास से प्राप्त की थी। पिछले अभ्यासो मे जब भी उच्च सफलता मिली, उनसे अहकार मे नही डूबा क्योंकि वह जानता था कि स्वल्प सफलता मे डूब जाना अपनी सफलता का मार्ग अवरुद्ध करना है। साथ ही हर सफलता ने उसे नया उत्साह और नई प्रेरणा भी दी।

अमेरिका के श्री अब्राहम नेमेथ ने 'ब्रेल साइड रूल' नामक एक अन्ध शिक्षा प्रणाली प्रचलित की है। जिसके आधार पर आज हजारो अन्धे व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को स्वावलम्बी बनाकर जी रहे है। इतना बड़ा उपकारी कार्य करने वाले को कोई भी यही समझेगा कि वह स्वस्थ, सुभांगी और धनी रहा होगा। तभी तो इतनी महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रणाली की खोज कर सका। किन्तु श्री नेमेथ इस मान्यता के विपरीत थे। वे बिल्कुल अन्धे थे साथ ही निर्धन भी।

प्रयत्न एव पुरुषार्थ की महिमा न जानने वालो के लिए ससार मे कितनी ही बाते असम्भव और आश्चर्यजनक हो सकती है किन्तु जो उद्यमी, प्रयत्नशील और ध्येयवान व्यक्ति होते है, वे इन निरर्थक बातो मे विश्वास नही करते और मनुष्य के लिए कोई भी काम असम्भव नही मानते है। ससार मे असम्भव को कर दिखाने वालो की कमी नही रही है। अन्धे नेमेथ ने प्राचीन अविकसित एवं अपूर्ण ब्रेल पद्धति पर चलने वाले अन्ध विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की। गणित मे रुचि होने

पर भी उसका अध्ययन न कर सके, वे इसका अध्ययन कर भी कैसे सकते थे ? क्योंकि उस समय ब्रेल पद्धति में गणित की शिक्षा सुविधा भी नहीं थी। निदान उनने मनोविज्ञान मे ही एम. ए. पास किया। किन्तु गणित विषय मे उनकी जिज्ञासा कम नहीं हुई। वे ब्रेल पद्धति मे गणित की शिक्षा-सुविधा उत्पन्न करने पर निरन्तर विचार करते रहे। उनकी लगन एवं आत्मविश्वास ने उन्हें इस बात पर आश्वस्त कर रखा था कि यदि ईमानदारी से प्रयत्न किया जाय तो अन्धे छात्रों को गणित की शिक्षा देने का भी उपाय निकाला जा सकता है। शिक्षा के बाद काम की खोज करने पर भी कोई काम न मिला तब उनने और अधिक समय खराब करना ठीक नहीं समझा और तकियो के खोल सीने का काम हाथ मे लिया। योग्यता और उत्तम व्यवहार के बल पर लोगों की बड़ी गहरी सद्भावना और आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त किया।

संयोगवश फ्लोरेन्स नाम की एक अन्धी किन्तु गुणशील युक्त महिला से इनका परिचय हुआ। इनने सहर्ष विवाह स्वीकार कर लिया। फ्लोरेन्स अन्धी होने पर भी पति की सेवा मे कोई कमी नहीं रखती थी। वह नेमेथ को निरन्तर पढ़ने, अन्धो की शिक्षा प्रणाली मे विकास करने के लिए प्रोत्साहन देती रहती थी। नेमेथ को पत्नी के इस सहयोग से बड़ा उत्साह और अवलम्बन मिला। वे अपने मुख्य कार्य मे संलग्न हो गए। इसके लिए उन्होंने अन्य अनेक भाषाओ का अध्ययन आरम्भ कर दिया और जल्दी ही फ्रेंच, हिब्रू, ग्रीक और लेटिन आदि भाषाओं पर अधिकार कर लिया।

पति से आत्मिक स्नेह और आदर पाने के फलस्वरूप फ्लोरेन्स की आन्तरिक प्रसन्नता उभरी और एक आँख की ज्योति के रूप मे वह चमक उठी। एक की ज्योति मिलते ही दोनो पति-पत्नी ज्योतिमान हो उठे। फ्लोरेन्स की नेत्र ज्योति अपने से अधिक पति के काम आने लगी और उनका ध्येय आगे बढ़ गया। उसने पति को पुस्तकें पढ़कर सुनानी आरम्भ कर दीं और नेमेथ जो बोलते थे उसे लिखना भी। दोनो के परस्पर अध्यवसाय और लगन का अद्भुत चमत्कार हुआ कि अन्धो के लिए चलने वाली सरकारी शिक्षा योजना मे उल्लेखनीय सहायता मिली और उसी की मदद से अन्धो के लिए गणित की शिक्षा सम्भव हो सकी। इससे पूर्व उनने स्वयं गणित में एम. ए. किया। इस प्रकार अन्धे अब्राहम नेमेथ ने अपने परिश्रम और लगन के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि संसार में मनुष्य के लिए कोई काम असम्भव नही है यदि वह उसको करने के लिए तन, मन और धन से पूरी तरह ईमानदार है, नही तो ऐसी परिस्थिति प्राप्त दम्पति केवल भीख माँगकर भाग्य को ही कोसते रहते।

समय अमूल्य है, इसकी महत्ता समझें

परमात्मा ने मनुष्य को इस सृष्टि मे भेजा तो उसे कोई विशेष स्थूल सम्पदा नही दी लेकिन जो कुछ भी दिया वह इतना सक्षम है और इतना मूल्यवान है कि उसके माध्यम से संसार की सभी वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती है। बुद्धि, जीवन, शरीर के अतिरिक्त इन सबसे अमूल्य अनुदान जो परमात्मा ने मनुष्य को दिया है वह है समय। कहा जाता है कि "मनुष्य की साँसे गिनी हुई है" और श्वाँस-प्रश्वाँस का आवागमन निरन्तर चलता रहता है। एक श्वाँस के आने-जाने के साथ ही मनुष्य जीवन की अमूल्य निधि से एक इकाई कम हो गयी।

दूसरे शब्दो मे इसे समय भी समझा जा सकता है। जीवन एक सूक्ष्म सत्ता है। उसका कोई प्रत्यक्ष रूप पकड़ मे नहीं आता, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति को अवश्य अनुभव किया जा सकता है, जीवन की सूक्ष्म सत्ता समय के रूप में ही व्यक्त होती है। अतः हमारी उपलब्धियाँ इस पर निर्भर करती है कि हम समय का किस प्रकार, किस प्रयोजन के लिए उपयोग करते है।

जो समय का महत्व और स्वरूप समझ सका और उसके सदुपयोग के लिए समग्र जागरूकता के साथ तत्पर हो गया समझना चाहिए उसे जिन्दगी मिल गई। अन्यथा इस ओर उपेक्षा बरतने वाले-अन्यमनस्क रहने वाले, क्रमिक आत्म-हत्या ही करते चले जाते है। बहुमूल्य मणि मुक्ताओ को फटी थैली मे भरकर चलने वाले उन्हे टपकाते जाते है और घर पहुँचते-पहुँचते उस निधि को गँवाकर खाली हाथ रह जाते है। इसी प्रकार समय के साथ उपेक्षा करने वाले अपने आपके साथ एक क्रूर मजाक करते है। अपने भविष्य के साथ यह एक मर्मभेदी व्यंग्य है कि जीवन के बहुमूल्य क्षणो को ऐसे ही खोते-गँवाते चला जाय।

हम क्रमशः मर रहे है। जीवन की सम्पदा का एक-एक दाना, एक-एक क्षण के साथ समाप्त होता चला जाता है। बूँद-बूँद पानी टपकाते रहने से भरा-पूरा किन्तु फूटा घड़ा कुछ समय मे खाली हो जाता है। जीवन की रत्न सम्पदा हर साँस के साथ घटती चली जाती है। क्रमशः हमारा हर कदम मरण की ओर ही उठता है। आयु वृद्धि के साथ-साथ मरण का दिन निकट से निकटतम आता चला जाता है। जो दैवी वरदान जैसा अमूल्य था—जिसके आधार पर कुछ भी खरीदा, पाया जा सकता था, वह किस प्रकार गलता, जलता, टूटता और मिटता चला जा रहा है, इसे देखने की न इच्छा होती है न फुरसत, फलतः हमारा अनुपम अस्तित्व भूत बनता चला जाता है। इस प्रकार असामयिक मृत्यु की भयंकरता तथा कथित भूत-प्रेतो मे कम नही। जब समय के सदुपयोग और दुरुपयोग के परिणामो का तुलनात्मक

अन्तर किया जाता है, तब प्रतीत होता है कि तत्परता और उपेक्षा के बीच दीखने वाला नगण्य-सा अन्तर अन्ततः कितने भारी भिन्न परिणामो के रूपो मे सामने आता है।

लेकिन लोग इस ओर नही देखते और समय की सम्पदा को खोते चलते है। उसके परिणामस्वरूप व्यक्तित्व दीन-हीन ही बना रहता है। फिर वे गरीबी का, अशिक्षा-अज्ञान का, अयोग्यता और अक्षमता का रोना रोते है, लोग अपने जीवन मे विभिन्न अभावो की शिकायत करते है। कोई धन के अभाव मे दुःखी है तो किसी के पास ज्ञान नही, विद्या नही। उसके लिए सिर पीट रहा है। समझ मे नही आता कि यह हनुमान कब अपनी सामर्थ्य को समझेगे तथा एक छलाँग मारकर लंका पहुँच जायेगे। विश्व की सम्पदा, विश्व का ज्ञान-भण्डार तो उनकी बाट जोह रहा है। समय जैसी मूल्यवान सम्पदा का, भण्डार भरा होते हुए भी जो विनिमय कर धन ज्ञान तथा लोकहित को नही पा सकते उनसे अधिक अज्ञानी किसे कहा जाय ?

समय अमूल्य है। समय को जिसने बिना सोचे-समझे खर्च कर दिया वह जीवन पूँजी भी यो ही गँवा देता है। यह पूँजी अपने आप खर्च होती है। आप कृपण बनकर उसे सोने-चाँदी के सिक्को की तरह जोड़कर नही रख सकते। यह गतिवान है आप अपनी अन्य सम्पदाओ की तरह उस पर अधिकार जमा नही सकते। आपका उस पर स्वामित्व वही तक है कि आप उसका सदुपयोग कर ले।

अपनी इस प्राकृतिक धरोहर का अधिकाश मनुष्य समुचित सदुपयोग नही करते। बचपन मे इतना ज्ञान नही होता कि इसका मूल्य समझे। खेल-कूद तथा मित्रो व भाई-बहिनो के झुण्ड के साथ यो ही इस सम्पदा को लुटाते चलते है। एक दिन यौवन आ खड़ा होता है। यह यौवन समय के बहुमूल्य वरदान के रूप मे मिलता है। यह वह सामर्थ्य होती है, जिसे यदि अधिक समय तक स्थायी बनाया जा सके। तन से मन से बूढ़े न हो जायँ तो गिनी हुई साँसो के इस जीवन मे बहुत काम कर सकते है। इसे निर्दयता से खर्च कर देने पर बुढ़ापा अपनी कमजोर टाँगो व धुँधली आँखो से हमारा स्वागत करता है तब हम चौक पड़ते है, निराश हो जाते है। सिर पर हाथ रखकर, चिन्ताओ के सागर मे डूब जाते है। भला जब यौवन काल मे कुछ न कर पाये तो अब क्या कर सकेगे ? यह निराशा ही ले डूबती है। सच्चा व्यापारी तो वह होता है जो घाटा होने पर भी व्यापार बन्द नही करता। धैर्य तथा बुद्धिमता से पुनः अपने उखडे पाँव जमा लेता है। दो-तिहाई जीवन बीत गया तो क्या हुआ एक तिहाई तो बचा हुआ है, उसमे भी बहुत कुछ काम किया जा सकता है।

प्रकृति ने किसी को गरीब-अमीर नही बनाया। उसने तो सबको मुक्त हस्त से अपना अमूल्य वैभव लुटाया है। श्रम की सामर्थ्य तथा समय का अनुदान इन दो अस्त्रो से सुसज्जित करके उसने अपने पुत्रो को जीवन के समरागण मे मस्तक पर तिलक कर विजय श्री वरण करने के लिये ही भेजा है। लेकिन हम प्रकृति प्रदत्त इस अमूल्य वैभव से लाभ नही उठा पाते और घाटे मे ही रहते है। जो समय हमारे हाथ मे है, यदि हम किसी उपयोगी कार्य मे नही लगे हुए है तो ठीक है अन्यथा यह क्षण भी बीत गया और भूत हो गया। हमारा सारा वर्तमान भूत मे बदलता जा रहा है और यह मालूम भी नहीं पड़ता है कि हमारे हाथ से कितनी बहुमूल्य सम्पदा खो गयी ? पास से पैसा खर्च होता है या कही गिर जाता है तो मालूम भी होता है और उसका पश्चाताप होता है। लेकिन समय-सम्पदा जब हमारे हाथ से जाती है तो हमे न पता चलता है और न ही उसका कोई रंज-गम होता है।

वर्तमान क्रमशः भूत मे बदल रहा है। भूत के सम्बन्ध मे कहते है कि वह बड़ा डरावना होता है कहते है कि मरने के बाद अशांत व्यक्ति भूत बनता है। मरने के बाद किसकी क्या स्थिति होती है, कौन क्यो और कैसे भूत बनता है और वह कैसा होता है ? यह सब कुछ तो अभी रहस्य के गर्भ मे है। लेकिन समय जो वर्तमान भूत मे बदलता जा रहा है, वह निश्चित रूप से भयावह दुष्परिणाम उपस्थित करने वाला सिद्ध होता है।

देखना यह है कि हमारा समय नष्ट कहाँ हो रहा है ? इस समय तो लोग चौबीसो घण्टे व्यस्त रहते है। एक अजीब-सी व्यस्तता चारो ओर दिखाई देती है, जिस भी व्यक्ति से किसी कार्य के लिए कहिए "समय नही है" यही एक उत्तर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राप्त होता है। अधिकतर शुभ कार्यों के करने के लिए तो किसी के पास समय है अथवा नही। क्या मनुष्य के पास वास्तव मे समय नही रह गया है ? क्या वह इतना व्यस्त हो गया है ? यह एक ज्वलन्त प्रश्न है इस पर विचार किया जाना चाहिए। दिन मे २४ घण्टे होते है। एक वयस्क के लिए ६-७ घण्टे सोना पर्याप्त है। ८ घण्टे कार्यालय, फैक्टरी अथवा व्यवसाय के लिए रख लीजिए। शेष आपके पास ९-१० घण्टे बचते है। प्रातः एक घण्टे का समय शौच, भोजन स्नानादि के लिए रख लीजिए और एक घण्टे सायकाल त्रिविध कार्यो के लिए रख ले। इस प्रकार लगभग ८ घण्टे नित्य बचते है। इसमे यदि २ घण्टे हम मनोरजन, भोजन, मार्ग मे आने-जाने का समय निकाल ले तो ६ घण्टे दैनिक हमारे पास रह जाते है। रविवार और अन्य दिनो की छुट्टियाँ इसके अतिरिक्त होगी। अपने आवश्यक कार्यक्रमो के लिए उदारता मे समय देने पर भी आपके पास ६ घण्टे शेष रह ही जाते है। हम इनका क्या उपयोग करते है ? यदि उपयोग नही करते तो वर्ष मे हम २१९० घण्टे अर्थात् ३ महीने ६ घण्टे बरबाद कर देते है। यह समय किसी

भी राष्ट्र एवं किसी भी व्यक्ति के लिए अमूल्य निधि है। जीवन-पर्यन्त हमारा कितना समय बरबाद होता है ? हम इसका सहज ही अनुमान लगा सकते है। अर्थात् चौथा समय व्यर्थ कार्यों मे खर्च कर देते है ?

हमारा समय कहाँ और कैसे नष्ट होता है ? यह विचारणीय है। इस प्रकार से समय नष्ट होने का मूल कारण यह है कि हम इसकी उपयोगिता के बारे मे जागरूक नहीं है। अधिकतर हमारा समय आलस्य, प्रमाद, लापरवाही मे जाता है। हमारा जीवन-क्रम अव्यवस्थित है। किसी भी कार्य का समय निर्धारित नही है। यहाँ तक कि लोग समय से कार्यालय भी नही पहुँचते। "हिन्दुस्तानी आदमी" और "हिन्दुस्तानी समय" बहुत प्रचलित शब्द हो गये है। गेटे का कहना था कि "काल बेहद् लम्बा है।"

समय नष्ट होने का एक कारण यह भी है कि—हम अपने काम मे रुचि नही लेते, काम को टालने की एक आदत-सी बन गई है। इससे कितने ही काम तो शुरू ही नही हो पाते, कितने ही काम अधूरे रह जाते है। जब अधूरे कामो का अम्बार हमारे सामने लग जाता है तो हम सोच-सोचकर ही परेशान हो जाते है। न तो फिर हम अधूरे कामो को ही पूरा कर पाते है और न ही नये कार्य को ही प्रारम्भ कर पाते है। यदि हम अपने कार्यों मे रुचि ले और धैर्य तथा लगन से काम करे, तो सभी कार्य पूरे हो जाते है।

बहुत-से लोग समय का मूल्य और महत्त्व समझते है। परन्तु उसके सदुपयोग की ओर कोई ध्यान नही देते। समय खराब न करने पर भी वे कोई काम निर्धारित समय पर करना आवश्यक नही समझते। इस वक्त इस काम पर जुटे हुए है तो उस वक्त उस काम पर। दूसरे दिन उनका यह क्रम टूट जाता है और वे इस वक्त उस काम को उस वक्त इस काम को करने लग जाते है।

इस प्रकार की अनियमितता बहुधा विद्यार्थी, अध्ययनशील तथा लिखा-पढ़ी का काम करने वाले किया करते है। अशिक्षित व्यक्ति के जीवन में अव्यवस्था हो तो एक बात भी है पर शिक्षा के प्रकाश मे आगे बढ़ने वाले का अव्यवस्थित होना वस्तुतः खेदजनक है। इसी प्रकार बहुत-से अध्ययनशील व्यक्ति अपना समय तो खराब नहीं करते किन्तु उनका अध्ययन क्रम निश्चित एव निर्धारित नही होता। वे कभी किसी एक विषय के ग्रन्थ को पढ़ते और पूरा किये बिना ही दूसरा शुरू कर देते है। कभी-कभी एक ग्रन्थ को कल के लिये अधूरा छोड़कर उसके लिए निश्चित समय पर दूसरा ग्रन्थ प्रारम्भ कर देते है। बहुधा यह भी देखने मे आता है कि अनियमित अध्ययनशील पुस्तको के समय मे समाचार-पत्र और समाचार-पत्रो के समय में साहित्यिक पत्रिकाएँ पढ़ रहे है। इसमे सन्देह नही कि वे अपना समय बिना पढ़े व्यय नही करते किन्तु उस कार्य मे क्रम को स्थान नही देते। इस कमी के कारण अध्ययन से जितना लाभ होना चाहिये उतना नहीं हो पाता।

कार्यालयो मे लिखा-पढ़ी का काम करने वाले अनेक परिश्रमी बाबू लोग अपनी इसी असामयिकता के कारण अच्छे कर्मचारियो की सूची में नही आ पाते। वे पूरे समय काम मे जुटे रहते है और कभी-कभी निर्धारित समय से अधिक समय तक भी। तब भी वे अपने उच्च अधिकारी की प्रियपात्रो की सूची मे नही आ पाते। क्रम के साथ काम तथा फाइलो को उपयुक्त समय मे न देने से उनका आवश्यक काम कभी-कभी पड़ा रहता है और गौण काम पूरा हो जाता है। इसी अव्यवस्था के कारण वे बहुत-से तात्कालिक कामो को भूल जाते है। इसलिये उनकी कार्य-कुशलता के अंक कम हो जाते है। पत्र लिखने के समय फाइलो का अध्ययन और फाइल पढ़ने के समय टाइप पर बैठ जाने से न तो उनका कोई काम समय पर हो पाता है और न कुशलतापूर्वक। इस प्रकार असमय पूरा हुआ काम अधूरे की श्रेणी मे ही गिना जाता है। क्रम एव सामयिकता से करने पर काम भी कुशलतापूर्वक होता है और आवश्यकता से अधिक समय भी नही लगता।

इस प्रकार के अव्यवस्थित कार्यकर्त्ता समय की पाबन्दी को एक बन्धन मानते है। उनकी अक्रमिक बुद्धि का तर्क होता है कि समय के साथ अपने को अथवा काम को बाँध देने से मनुष्य उसका इतना अभ्यस्त हो जाता है कि यदि कभी संयोग, विवशता अथवा परिस्थितिवश उसे व्यवधान स्वीकार करना पड़ता है तो बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। प्रातःकाल पढ़ने अथवा व्यायाम करने वालो को यदि दो-चार दिन के लिए बाहर यात्रा पर जाना पड़ जाये तो निर्धारित कार्यक्रम मे व्यवधान पड़ जाने से उसकी अभ्यस्त वृत्तियाँ विद्रोह करेगी, जिससे यात्रा अथवा प्रवास के समय पर उसे बड़ी भ्रान्ति, क्लान्ति एवं व्यग्रता रहेगी।

सुख-शान्ति, सन्तोष, सफलता एवं स्वास्थ्य आदि के पारितोषिक असामयिक जीवनक्रम वालो से कोसो दूर रहा करते है। जिन्दगी जीने के लिये मिली है, खो डालने के लिये नही। समय-व्यवस्था के अभाव मे इस सुर दुर्लभ मानव-जीवन को न तो ठीक से जिया जा सकता है और न इसका कोई लाभ ही उठाया जा सकता है। यह सम्भव तभी हो सकता है, जब जीवन का प्रत्येक क्षण किसी निश्चित कर्तव्य के लिए निर्धारित एवं जागरूक रहे।

असमय सोने-जागने, खाने-पीने और काम करने वाले आजीवन आरोग्य के दर्शन नहीं कर सकते। वे सदा-सर्वदा शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक किसी न किसी व्याधि से पीड़ित रहेगे उनकी शक्तियो मे मे कुछ को तो उनकी अव्यवस्था नष्ट कर देगी और शेष को व्याधियाँ शोषण कर लेगी।

समय पर काम करने वालो की सारी शक्तियाँ उपयोग में आने पर भी अक्षय बनी रहती है। समय पर काम करने का अभ्यास एक सजग प्रहरी की तरह ही होता है, जो किसी भी परिस्थिति मे मनुष्य को अपने कर्तव्य का विस्मरण नही होने देता। समय आते ही सिद्ध किया हुआ अभ्यास उसे निश्चित कार्य की याद दिला देता है और प्रेरणापूर्वक उसमे लगा भी देता है । समय आते ही •उक्त कार्य-योग्य शक्तियो मे जागरण एवं सक्रियता आ जाती है, जिसमे मनुष्य निरालस्य रूप से अपने काम मे लगकर उसे निर्धारित समय मे ही पूरा कर लेता है। कार्य एव कर्तव्यो की पूर्णता ही जीवन की पूर्णता है, जो कि बिना समय सयम एवं व्यवस्थित और नियमित क्रियाशीलता के प्राप्त नही हो सकती।

समय निर्धारित कर लेने के बाद भी नियत समय पर कार्य न करने और बाद मे उस काम को हाथ मे लेने से वह काम हो तो जाता है—पर उसमे कोई उत्साह नही रहता है। पहली बार नियत कर लेने के बाद उसी समय वह कार्य सम्पन्न करने से कार्य मे जो उत्साह होता है, उससे काम बड़ी कुशलता के साथ सम्पन्न होता है। किसी काम को करने के ठीक समय पर शरीर उसी काम के योग्य यन्त्र जैसा बन जाता है और यदि उस समय मे दूसरा काम किया जाता है तो वह काम लकड़ी काटने वाली मशीन से कपड़े काटने जैसा हो जाता है। कहने का अर्थ यह है कि न उस काम को दक्षतापूर्वक किया जा सकता है और न ही चालू काम मे मन भली-भाँति लगता है। फलस्वरूप समय तो नष्ट होता ही है हमारी शक्तियो का भी क्षय होने लगता है।

समय-सम्पदा का सदुपयोग महत्त्वपूर्ण सयम है। क्रम एव समय से काम न करने वालो या समय को यो ही व्यर्थ के कार्यो मे नष्ट करने वालो का शरीर यन्त्र अस्त-व्यस्त प्रयोग, आलस्य और प्रमाद के कारण शीघ्र ही निर्बल तथा निस्तेज हो जाता है। थोड़े समय बाद ही वह किसी भी कार्य के योग्य नही रह जाता।

जीवन का एक-एक क्षण उपयोगी है। संसार मे जितने भी महापुरुष हुए है, वे प्रत्येक क्षण का उपयोग करके ही महान बने है। जिन्हे भी महान बनने की आकांक्षा हो या जो भी जन्म सिद्ध अधिकार सफलता को प्राप्त करना चाहते हो वे समय-सम्पदा का अपव्यय न करते हुए उसका सदुपयोग करें।

सफलता का एक ही आधार—समय का सुनियोजन

जापान का एक विशाल कारखाना अपनी पूरी गति से चल रहा था। मशीनो के पहिये अविराम गति से घूम रहे थे। खलासी, ऑयलमैन, मशीन मैन, मिस्री, पैकर और इन्जीनियर सभी बड़ी तन्मयता से अपने काम मे लगे हुए थे। उसी समय कारखाने का मैनेजर भारत से आये हुए एक औद्योगिक प्रतिष्ठान के निर्देशक को अपना कारखाना दिखा रहा था। वह बारी-बारी से प्रत्येक मशीन के पास ले जाता और बतलाता कि वह मशीन क्या कार्य करती है ? किस ढंग से उत्पादन होता है और श्रमिकों की कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए क्या-क्या व्यवस्थाएँ की जा रही है ? मैनेजर, निर्देशक को कारखाने के सभी विभागो मे निरीक्षण के लिए ले गया। उसने देखा कि प्रत्येक कर्मचारी अपनी ड्यूटी की पाबन्दी बड़ी ईमानदारी से दे रहा है। कर्मचारी एक क्षण को अतिथि की ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कान बिखेकर स्वागत करते और अपने हाथो मे ढिलाई न आने देते।

सारे कारखाने का निरीक्षण करने के पश्चात् वह व्यवस्थापकीय कार्यालय मे गये और मैनेजर की कुर्सी के पास बैठ गये। पर वह निर्देशक मन ही मन अपने को अपमानित अनुभव कर रहे थे। आखिर वह पूछ ही बैठे—"मै आपके साथ पूरे कारखाने मे घूमा पर किसी भी कर्मचारी ने एक मिनट को भी मशीन बन्द करके बात तक न की। इसका क्या कारण है ? कम से कम शिष्टाचार के नाते दूसरे देश से आने वाले अतिथि से कुछ क्षण बात तो करनी ही चाहिए थी।"

क्षमा कीजिए। आपने श्रमिको के कर्म कौशल को दूसरी दृष्टि से देखा है। द्वितीय महायुद्ध की मार से इस देश की जितनी क्षति हुई है, वह ससार के किसी राष्ट्र से छिपी नही है। राष्ट्रोत्थान की योजनाओ की पूर्ति हेतु लगन से कार्य न किया जायेगा तो हम लक्ष्य से काफी पीछे रह जायेगे। यहाँ के श्रमिक की यह विशेषता है कि उनके कार्य का कोई निरीक्षण करे या न करे वह आठ घण्टे के समय को भगवान की उपासना का समय मानते है। प्रत्येक श्रमिक के हृदय मे देश के लिए एक कसक है, एक वेदना है।

"बात यह है कि इस कारखाने की एक शिफ्ट मे पाँच हजार श्रमिक कार्य करते है। यदि एक-एक मिनट को भी सब मशीने बन्द कर दे तो आप जानते है, पाँच हजार मिनट काम बन्द होता है। पाँच हजार मिनट यानी तिरासी घण्टे बीस मिनट। इतने समय की बरबादी से उत्पादन पर कितना प्रभाव पड़ सकता है ? इसका अनुमान आप सहज ही लगा सकते है। यहाँ ऐसा भी नहीं है कि आपको देखकर श्रमिक तेजी से हाथ चलाने लगे हो और जब आप आगे बढ़ जायें तो काम बन्द करके बाते करने लगे। यह तो आपने अनुभव किया होगा कि कारखाने के सारे कर्मचारी आपको अपने बीच पाकर कितने प्रसन्न थे ? आपके स्वागत मे उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान बिखेर दी थी।"

निर्देशक के मन मे जो अपमान की भावना थी, वह मैनेजर के सुलझे हुए उत्तर से तिरोहित हो गई थी।

इस घटना के आलोक में जब हम राष्ट्र के सन्दर्भ को लेकर आत्म-निरीक्षण करते हैं तो हम पाते है कि समय की अपव्ययता ने ही योजनाओ के लक्ष्यो को पूर्ण नहीं होने दिया। यदि उत्पादन कार्य मे श्रमिक, कार्यालय मे कार्यरत बाबू, विद्युत गृह, बाँध और निर्माण के कार्यों मे लगे हुए छोटे-बड़े सभी कर्मचारी समय की कीमत जान जायें तो अपने लक्ष्य को समय से पूर्व ही पूर्ण कर सकते है।

घटना डालमिया नगर के कागज के कारखाने की है। कारखाने का विशाल फाटक खुल चुका था। साढ़े छः का सायरन बजने वाला था। एक साठ वर्षीय वृद्ध जर्मन इन्जीनियर कुछ गुनगुनाता हुआ साईकिल से फाटक पर पहुँचा। दरवान ने सलामी दी। उसकी साइकिल कुछ धीमी हुई और फिर उसी गति से आगे बढ गई। तीन मिनट बाद सायरन बजा। यह चीफ इन्जीनियर मिस्टर लेज थे। उन्होने जितने वर्ष उस कारखाने को अपनी सेवाएँ प्रदान कीं, किसी भी श्रमिक ने इन्हे एक मिनट भी देरी से आते न देखा। मिस्टर लेज के अधीन तीस इन्जीनियर और हजारो श्रमिक और तकनीकी विशेषज्ञ कार्य करते थे। यदि मिस्टर लेज चाहते तो साढ़े छः बजे क्या दस बजे कारखाने मे आते उनसे कहने वाला कौन था ? पर वह जर्मन इन्जीनियर समय के मामले मे कारखाने के खलासियों से लेकर इन्जीनियरो तक को अपना अधिकारी मानता था। वह अच्छी तरह जानता था कि यदि मै ही समय से कारखाने न जाऊँगा तो संस्थान के हजारो कर्मचारी मेरा अनुकरण कर कार्य की उपेक्षा करेंगे, जिसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा।

रूस के औद्योगिक प्रतिष्ठानो की कुछ ऐसी विशेषताएँ है, जिन्हे भुलाया नही जा सकता। वहाँ कामचोर या समयचोर श्रमिको की उन्ही के साथी भर्त्सना करते है। कभी-कभी तो ऐसे कर्मचारियो की पीठ पर कागज का लेवल लगा दिया जाता है, जिस पर लिखा रहता है—"यह काम चोर है, यह समय चोर है।" यदि इसका भी प्रभाव नहीं पड़ता तो उसका व्यंग्य चित्र कारखाने के फाटक पर लगा दिया जाता है।

कारखानों मे काम का समय आठ घण्टे निर्धारित रहता है। यदि श्रमिक वर्ग ईमानदारी से कार्य करे तो हमारे देश मे भी जापान और पश्चिम जर्मनी की तरह महान औद्योगिक प्रगति हो सकती है और उत्पादन क्षमता को इतना बढ़ाया जा सकता है कि यहाँ का उत्पादित माल विदेशो को भेजकर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाये।

सामाजिक, औद्योगिक और राजनीतिक क्षेत्र की तरह व्यक्तिगत जीवन मे भी हम समय के रोग को पहचानने में असमर्थ रहे हैं। अस्पताल, न्यायालय मे और कारागृह की यदि जाँच की जाय तो पता चलेगा कि अवकाश के समय का दुरुपयोग करने वाले अधिकतर व्यक्तियो को ही वहाँ शरण लेनी पड़ी है। हमारा कितना समय ताश, शतरंज, मजाक और गपशप के नाम पर आये दिन खर्च होता रहता हैं यदि उसके मूल्य को पहचानने की कोशिश की होती तो जीवन की दिशा बदल जाती।

यदि अवकाश के समय के सदुपयोग की कोई योजना हमारे पास हो तो व्यक्तिगत उत्थान से लेकर मानव जाति के कल्याण तक के अनेक कार्यों का सम्पादन किया जा सकता है। ग्रेगर मेण्डेल ने पुरुषानुक्रम सम्बन्धी सिद्धान्त, अध्यापक ग्रेल ने टेलीफोन का आविष्कार, पादरी प्रीस्टल ने ऑक्सीजन की खोज और अमेरिका के खेतिहर क्लाइड टोम ने ज्योति विद्या की चर्चा करके, प्लूटो नामक ग्रह का आविष्कार अवकाश के क्षणो मे ही किया था। डाक्टर होम्स की प्रसिद्ध रचना 'दी आटोक्रेट एट दि ब्रेक फास्ट टेबल' अवकाश के समय ही बैठकर लिखी गई थी।

अवकाश के समय किये गये प्रत्येक कार्य का उद्देश्य धन कमाना नही होता। अतः उसका पुरस्कार आत्मसन्तोष और मनोविनोद ही होता है। यह तो निश्चित है कि कोई मनुष्य निरन्तर काम-धन्धे मे फँसा नही रह सकता। अवकाश के समय कार्य के चुनाव तथा उसे इच्छानुसार करने की स्वतन्त्रता होती है। इन्ही क्षणो मे व्यक्ति के चरित्र का निर्माण होता है या बिगड़ता है क्योकि कार्य की व्यस्तता मे चरित्र के बिगड़ने की उतनी सम्भावना नही रहती, जितनी अवकाश के समय को बिताने के तौर-तरीके पर। इसलिए उस समय का उपयोग स्वाध्याय, बागवानी, पुस्तकालय और विद्यालय सचालन तथा जीवन शक्ति बनाये रखने वाले खेलो के लिए किया जा सकता है।

ध्यान रहे कि समय ईश्वर प्रदत्त ऐसी सीमित और मूल्यवान सम्पदा है, जिसका महत्व प्रत्येक व्यक्ति को जानना ही चाहिए। समय और सरिता का प्रवाह किसी की प्रतीक्षा नही करते। एक-एक साँस लेकर हम जीवन-यात्रा को पूर्ण करते चलते है। मृत्यु के निकट बढ़ते जाते है फिर क्यो न अपनी जीविका के कार्य को पूर्ण तन्मयता और ईमानदारी के साथ सम्पन्न करें।

साहसी जीतता है

हम न तो डरपोक बनें, न कायर कहलाएँ

डर से बढ़कर त्रासदायक वस्तु इस संसार में दूसरी नहीं। यह व्यथा जिस मनुष्य पर आक्रमण करती है, उसे दीन बनाकर ही छोड़ती है। कायरता उसकी नस-नस में घुस जाती है और फिर जो कुछ क्षमता एवं प्रतिभा का ईश्वर प्रदत्त तत्त्व होता है, उसे चूँसकर मनुष्य को खोखला कर देती है।

इस संसार में वस्तुतः भय का कोई कारण नहीं। असफलता एवं कठिनाई मंजिल पर पड़े रोड़ों की तरह पग-पग पर मिलने वाली चीजें हैं। यदि सफलता इतनी सरल होती है कि उसे प्राप्त करने में कोई बाधा न आवे, पग-पग पर सफलता मिलती चले, असफल होने का अवसर ही न रहे, तो जीवन-पथ का सारा आनन्द ही नष्ट हो जाता। पराक्रम, पुरुषार्थ, प्रतिभा और अध्यवसाय के विकसित होने का कोई अवसर ही न रह जाता। सफलता पाने पर जो प्रसन्नता होती है, वह भी न रहती, क्योंकि सस्ती चीजें भले ही वे महत्त्वपूर्ण ही क्यों न हों, अपना गौरव और आकर्षण खो बैठती हैं। समुद्र की तली में पाए जाने के कारण ही मोती—'मोती' है। यदि वह मटर की तरह बेलों पर फलने लगता तो फिर शायद कोई मोती को बटोरना भी पसन्द न करता।

मनुष्य के पौरुष को कीर्तिवान बनाने के लिए कठिनाइयाँ आती हैं। किसी आदमी के शौर्य का इतिहास उतना ही बड़ा होता है, जितना कि उसे कठिनाइयों से संघर्ष करना पड़ा। धैर्य की परीक्षा के लिए कठिनाइयों के अतिरिक्त और अवसर ही कब आ सकता है ? साहस जैसा महान् मानवीय सद्गुण संघर्षों की खराद पर घिसे जाने के उपरान्त ही चमकता है। यदि उपलब्धियों का मार्ग सरल और निष्कंटक हो, हर कोई जो चाहे वही आसानी से मिल जाया करे तो यहाँ सब कुछ नीरस, उपेक्षित और महत्त्वहीन बन जायेगा। न प्रतिभा की आवश्यकता रहेगी और न उसके निखार का अवसर आयेगा। तब शायद सफलता पाने की इच्छा को भी छोड़कर लोग निकम्मे आदमियों की तरह उदासीन जीवन जीने लगें।

असफलता और कठिनाइयों की रचना करने में ईश्वर ने मनुष्य की आन्तरिक प्रगति का पथ ही प्रशस्त किया है। इस रचना के पीछे उसकी अतुलित अनुकम्पा ही ओत-प्रोत है। वस्तुस्थिति न समझकर हम छोटी-छोटी असफलताओं और कठिनाइयों को देखा करें, घबराएँ, हिम्मत हारें और निराश हो बैठें तो यह मानसिक दुर्बलता ही मानी जायेगी। हर कदम पर सफलता सम्भव नहीं। किसान हजार बीज बोता है, तब सौ फलते हैं। यही इस सृष्टि का नियम है। हमारी हजार चेष्टाओं में सौ फलवती होती हैं। सफलता का मूल्यांकन करने से पूर्व हमें भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि हर कदम पर विजय-वैजयन्ती ही मिलते जाना सम्भव नहीं। हमें अपने पराक्रम में असफलताओं का भी स्थान रखना चाहिए और उनका भी एक अतिथि की तरह स्वागत करने को तैयार रहना चाहिए।

हर असफलता के बाद हम दूनी हिम्मत के साथ आगे बढ़ें, यह पुरुषार्थ की चुनौती है। जो एक ही ठोकर में निराश हो बैठा, जिसका आशादीप एक ही फूँक में बुझ गया, उस दुर्बल-मन व्यक्ति ने न जीवन का स्वरूप समझा और न संसार का। यहाँ पग-पग पर संघर्ष करना होता है। कदम-कदम पर साहस, धैर्य और पुरुषार्थ की परीक्षा देनी होती है। जो उस मूल्य को चुकाने के लिए तैयार न हों उन्हें सफलता जैसे वरदान की आशा भी न करनी चाहिये।

अग्रगामी व्यक्तियों का उपहास पिछड़े हुए लोग आमतौर से करते रहते हैं। जो आगे बढ़ता है उसको पीछे धकेलने वाले अनेकों खड़े हो जाते हैं। सफलता के साथ-साथ ईर्ष्या जन्मती है। गिरे हुए की निन्दा की जाती है और उठने वाले से शत्रुता। इस बेवकूफ दुनिया का ऐसा ही अटपटा रिवाज मुद्दतों से चला आता है।

शिकायतें करना बेकार है, कठिनाइयों को सोचते हुए दु:खी रहने से क्या लाभ ? असफलता मिली तो इसका यह अर्थ नहीं कि भविष्य के लिए सफलता का द्वार बन्द हो गया। असफलताओं से लड़ते हुए हम आगे बढ़ते रहे तो कल न सही, परसों विजयश्री को प्राप्त कर ही लेंगे। आज जो कठिनाई सामने हैं, उससे लड़ें और भविष्य के लिए आशा भरे उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करें, यही हमारे लिए उचित है। आज की या आगामी

रूप की सम्भावित और असम्भावित कठिनाइयों की अशुभ कल्पनाओं से सिर दर्द उत्पन्न होने पर किन्तु वह दुख होने के लेने के देने पड़ने लगे। हर सम्भावना व्यक्ति उसे अपने लिए सच्चा की बात ही समझेगा।

लोग मौत से डरते रहते हैं, पर सच तो यह है कि नये वस्त्र पहनने की तरह यह एक हर्षोत्सव मात्र है। मौत से डरने की कोई बात नहीं। शूरवीर आदर्शों के लिए मरने को एक दैवी वरदान से कम सौभाग्य नहीं मानते। कायर उनसे कल्पनालोक से डर-डर कांपते हैं, यह डर वास्तविक नहीं, वस्तुतः उनकी भीतरी दुर्बलता का ही खेल है। डर की व्यथा जिसके पीछे पड़ी है, उसे उसकी अशुभ कल्पनाएँ ही निरन्तर एक से एक भयानक रूप बनाकर डराया करती हैं। चाहे उन कुकल्पनाओं में से एक भी कभी सामने न आये, पर डरपोक आदमी तब तक हजारों बार उनका त्रास सहकर अपना प्राण सुखा चुका होता है। डरपोक से बढ़कर मनुष्य की निन्दा एवं भर्त्सना और किसी प्रकार नहीं हो सकती। हमें कायर नहीं, शूर बनना चाहिये। जीवन-संघर्ष में हमें पग-पग पर मुदित और आशान्वित हुए आगे बढ़ना चाहिए।

कायरता छोड़िये, साहस अपनाइए

मनुष्य का सबसे प्रथम गुण साहस है क्योंकि यही अन्य सब गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। साहस ही जीवन की विशेषताओं को व्यक्त होने का अवसर देता है। मनुष्य में सभी गुण हों—वह विद्वान हो, पण्डित हो, शक्तिशाली हो, धनवान हो, सद्गुण सम्पन्न हो लेकिन उसमें साहस न हो तो वह अपनी विशेषताओं का, योग्यताओं का कोई उपयोग नहीं कर सकता है। एडमस्मिथ के शब्दों में, "साहस के अभाव में संसार से अनेकों प्रतिभाएँ खो जाती हैं। प्रत्येक दिन ऐसे अनेकों व्यक्तियों को काल की गोद में सौंपता रहता है, जो योग्य और सम्पन्न होते हुए भी साहस के अभाव में प्रारम्भिक प्रयास भी तो नहीं कर सके, सफलता के लिए।"

सर्व सुसज्जित सेना का यदि नायक न हो तो वह भली प्रकार दुश्मन से लड़ न सकेगी। उसे अस्त-व्यस्त होकर पराजय का सामना करना पड़ेगा। साहस ही मनुष्य के व्यक्तित्व का नायक है। जो उसकी समस्त शक्तियों का प्रतिनिधित्व कर उन्हें उपयोगी दिशा में लगाता है। सद्गुणों को सामाजिक जीवन में व्यक्त करने के लिए, सुउद्देश्य को पूर्ण करने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। बलिष्ठ शरीर, बुद्धि, पाण्डित्य आदि सभी तो असफल हो जाते हैं, जीवन के समरांगण में यदि साहस के द्वारा इनका नेतृत्व न हो।

साहस व्यक्ति को निर्भय बनाता है और जहाँ निर्भयता होती है, वहीं जीवन अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति कर सकता है। निर्भयता से ही आत्मविश्वास उत्पन्न होता है और इसी से मनुष्य को जीवन-नैय्या संसार-सागर से उत्तम होने में पार होती है। साहसहीन व्यक्ति तो अपने आप ही डूब जाता है। साहस की शक्ति अजेय और अमोघ होती है। यह संसार की समस्त शक्तियों से भी शक्तिशाली है।

साहस ही किसी काम की पूर्ति करने के लिए प्रारम्भिक कदम उठाने की प्रेरणा देता है और काम का प्रारम्भ ही उसकी आधी सफलता है। शेष आधी प्रयत्न से मिल जाती है। जब कार्य को पहले ही असम्भव, कठिन मान लिया जाता है तो वह शुरू भी नहीं होता। जैसे-तैसे शुरू भी हो जाय तो वह अधूरा ही छूट जाता है। साहस सफलता का स्वागत, संकल्प लेकर करता है।

हममें से अधिकांश लोग किसी कार्य की शुरूआत इसलिए नहीं करते क्योंकि हममें आने वाले खतरों को उठाने का साहस नहीं होता। हम दूसरों की आलोचना, विरोध से डरते हैं। असफलता या लोक-निन्दा का भय हमें कार्य की शुरूआत में ही निरोध कर देते हैं। लेकिन इसी कारणवश हम दीन-हीन जीवन व्यतीत करते हैं। संसार की जो जातियाँ साहस पर ही जीती हैं, वे ही सबकी अगुआ भी बन जाती हैं।

साहस के अभाव में अवसर हम जीने का वही रास्ता अपनाते हैं, जो सरल और बिना किसी झंझट का होता है और इसी कारण कुछ नया न सोचना पड़े, कुछ नया करना न पड़े, हम अपनी चलती आ रही 'लकीर के फकीर' बने रहते हैं। लेकिन प्रगति और विकास तो नित नया परिवर्तित मार्ग चाहते हैं। संसार में चल रहे परिवर्तन क्रम को अपनाना पड़ता है। बिना इसके हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। लेकिन परम्पराओं के घेरे से निकलकर नवीनता का मार्ग ग्रहण करना भी साहस पर ही निर्भर करता है क्योंकि इसमें अपने ही बलबूते पर आगे बढ़ना होता है। साथ ही उन सामान्यतया पुरातन-पन्थियों के जिनकी संख्या अधिक होती है, विरोध का सामना भी करना पड़ता है।

राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। समाज की अव्यवस्था दूर करने, जागरिकता पैदा करने, किसी बुरे व्यसन, कुप्रथा को रोकने के लिए, व्यवसाय संस्थानों को विकसित करने के लिए दूसरों की गालियाँ खानी पड़ती हैं। विरोध सहने पड़ते हैं, कई बार बुरा बनना पड़ता है, कई बार जान-माल की भारी क्षति उठानी पड़ती है। साहसी व्यक्ति ही इनमें आगे बढ़ता है और सफल होने तक स्थिर रह सकता है। साधारण लोग तब तक ही अनुकूल रहते हैं, जब तक आप उनके स्वर में स्वर मिलाकर गाते हैं। लेकिन ज्यों ही आप कुछ नई बात कहेंगे, कोई नया रास्ता अपनायेंगे, तभी आपका विरोध होने लगेगा। आपको सब तरह से भला-बुरा कहेंगे।

आप साहस के साथ ही इनका सामना कर सकते है। यदि आपने थोड़ी भी कमजोरी दिखाई तो सड़े-गले पुराने संस्कार और रूढ़ियाँ पुनः आप पर हावी हो जायेगी।

यदि सम्मानयुक्त जीवन जीना है तो साहसी बनना पड़ेगा। समृद्ध लोगो के बीच गरीबी मे भी मस्त रहना साहस है। धोखेबाजी, दगाबाजी से धनवान न होकर गरीब रहना भी साहस है। यदि किसी गलत बात के बहुत लोग भी समर्थक हो तो उसको गलत कहना, सचाई को प्रकट करना भी साहस है। गलत परम्पराओ, रूढ़िवादी, अन्धविश्वासो को न मानकर सचाई का मार्ग अपनाना भी साहस है। न्याय के पक्ष पर कायम रहना भी साहस है। इस तरह जीवन के अनेको क्षेत्रो मे नित्य साहस की आवश्यकता है। लोगो के विरोध करने पर, कीचड़ उछालने पर, हानि पहुँचाने पर भी किसी उत्कृष्ट लक्ष्य पर दृढ और स्थिर रहना साहस है। किसी महान् कार्य पवित्र लक्ष्य की पूर्ति मे साहस करके आगे बढ़ने पर यदि मृत्यु का भी सामना करना पड़े तो वह जीवन की सर्वोत्कृष्ट सफलता ही होगी।

कठिनाइयों से लड़ें और अपना साहस बढ़ायें

शरीरधारी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे सुख और दुःख दोनो के बीच से गुजरना पड़ता है। शरीर सुख और दुःख दोनो को भोगने के लिए मिलता है। जीव ने पूर्व-जन्म में जिस प्रकार के कर्म किये होते है, उसी के अनुसार उसे शरीर मिलता है और उसी के अनुसार सुख-दुःख देने वाली परिस्थितियाँ। शरीर पूर्व प्रारब्ध पूरा करने का एक सयोग है। इसीलिये मनुष्य को चाहिए कि वह सुख-दुःख की परिस्थितियो मे समभाव बनाये रखे।

इस बोध के पाते ही हम शरीरधारी है, मनुष्य को निश्चय कर लेना चाहिए कि उसे सुख-दुःख दोनो का भोग करना है और अपने इस बोधजन्य निश्चय के अनुसार हर समय उद्यत भी रहना चाहिये। जब शरीर धारण किया है तो दुःख-सुख दोनो का ही भोग करना होगा। शरीरधारियो मे से किसी के लिए भी केवल सुख अथवा दुःख भोगने का कोई विधान नही है। इस अटल नियम के होते हुए भी और जानते हुए भी यदि मनुष्य दुःख के अवसरों पर अधिक व्याकुल, उद्विग्न हो उठता है तो इसे उसका दुर्भाग्य ही कहा जायेगा। दुःख और सुख शरीर के साथ लगी रहने वाली दो छायाएँ है। उन्हे अपने पास से दूर नही किया जा सकता। ऐसी दशा मे उत्तम यही है कि सुख और दुःख दोनो योगों में तटस्थ रहकर अपना यथायोग्य कर्तव्य करते रहा जाये। जो इस मर्म के अनुयायी रहकर ससार मे बर्तते है, वे प्रायः सुखी ही रहते है।

इस दार्शनिक विवेचन से हटकर यदि व्यवहार क्षेत्र मे भी आकर विचार किया जाये तो भी पता चलेगा कि दुःख, कष्ट अथवा आपत्ति के समय व्याकुल होना अथवा धीरज खो देना व्यर्थ है। रोने, चिल्लाने अथवा व्याकुल होने से आज तक किसका दुःख दूर हुआ है ? अधैर्य, दुःख-कष्ट का उपचार नही बल्कि उसको बढ़ाने वाला सिद्ध होता है। एक तो दुःख का कारण स्वयं ही उपस्थित है, उस पर यदि धैर्य, साहस, आशा, सहनशीलता और सक्रियता को छोड़कर व्याकुलता, व्यग्रता और कातरता का आश्रय लिया तो परिस्थिति और भी गम्भीर हो जायेगी।

काली रात मे घटा घिर आने के समान अन्धकार और भी सघन तथा गम्भीर हो जायेगा। इसके विपरीत धैर्य और साहस को बनाये रहने से बुद्धि और विवेक का दीप जलता रहता है। जिसके प्रकाश मे उपाय और उपचार दृष्टिगोचर होते रहते है। यही कारण है जो किसी आपत्ति के समय कोई अधैर्यवान तो बुरी तरह हानि की चपेट मे आ जाता है और धैर्यवान आपत्ति का आक्रमण विफल कर साफ निकल जाता है। जहाँ अधैर्यवान आपत्ति को अपना बहुत कुछ दे देता है, वहाँ धीर, गम्भीर पुरुष कुछ देना तो दूर उल्टे उससे न जाने कितने अनुभव लूट ले जाता है।

यदि दुःख, संकट और आपत्ति के संयोग की प्रतिक्रिया अधैर्य ही होती है तो ससार मे सबको ही उस स्थिति मे घबराना और व्याकुल होना चाहिए। किन्तु ऐसा होता कदापि नही। जहाँ बहुत-से लोग दुःख का कारण आने पर बुरी तरह व्याकुल और उद्विग्न हो उठते हैं, वहाँ बहुत-से लोग अपने स्वभाव मे स्थित रहते है। उनकी शान्ति और सन्तुलन अक्षुण्ण बना रहता है। इस अन्तर का कारण और कुछ नही, केवल यह होता है कि एक हृदय से निर्बल होता है और दूसरा नही। एक विनाश का विश्वासी होने से सोचता है कि अब मै नष्ट हो जाऊँगा, मेरा सब कुछ बरबाद हो जायेगा। यह सकट अथवा विपत्ति हमे मिटा देगी। कैसे क्या करे, जो इ भयकर परिस्थिति से बचे ?

दूसरा जीवन और सृजन मे विश्वास रखने वा होने से सोचता है कि आपत्तियाँ अस्थायी होती है, दुः क्षणिक होते है। परमात्मा का अश होने से मनुष्य-आन स्वरूप है। दुःख अथवा सकट के कारण मेरा कुछ न बिगाड़ सकते। मै एक जीवन्त पुरुष हूँ, मुझे प्रभु ने बु और विवेक दिया है, धैर्य और साहस दिया है। मै उस बल पर मुझे परास्त करने का संकट अथवा आपत्ति इरादे को चूर-चूर कर दूँगा। अपनी इन्ही मनो-नीतियो अनुसार निर्बल अथवा सबल पाकर एक दुःख में डू जाता है और दूसरा उससे पार उतर जाता है।

संसार में संकट और आपत्ति सभी पर आती है इसमे कोई भी नही बचता। संसार मे जिसे भी देखिए

सुख-दुःख से द्वन्द्व करता हुआ यात्रा पर बढ़ा चला जा रहा है, तब हम ही क्यों दुःख का रोना लेकर बैठे रहे। सुख-दुःखमय इस संसार में सामान्य पुरुष तो क्या बड़े-बड़े सम्राटों, श्रीमन्तों और महान् पुरुषों को भी संकटों का सामना करना पड़ा। शिवि, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, नल, पाण्डव, प्रभृति न जाने कितने ऐतिहासिक पुरुषों को अपार संकट उठाने पड़े। हजारों साल बाद आज भी जो उनका नाम अमर है, इसका कारण यही है कि उन लोगों ने सारे संकटों को सहर्ष स्वीकार किया, अपने धैर्य और विवेक की परीक्षा दी, पूरी तरह उत्तीर्ण हुए और समय की शिला पर अपना-नाम खोदकर अमर हो गये। ऐसे धैर्यवान पुरुष सिंह ही वास्तविक सुख, यश, कीर्ति और पूजा-प्रतिष्ठा के अधिकारी होते है और ऐसे पुरुष ही संसार पथ पर अपने आदर्श पद-चिन्हों को छोड़कर जाते है, जिनका अनुसरण कर लाखों लोग भवसागर से पार हो जाते है।

अपने ऊपर आपत्ति व संकट को आया देखकर धैर्य खोना कायरता है। जब संसार के कोई दूसरे लोग दुःख मे धैर्य रख सकते है, हँसते-खेलते हुए आपत्तियों को पारकर सकते है, तो हम ही क्यो उन्हे देखकर रोने-चिल्लाने लगे। जबकि परमपिता परमात्मा ने हमे भी साहस, आशा और धैर्य के साथ बुद्धि एवं विवेक का सम्बल उनकी तरह दे रखा है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ संसार के सिंह पुरुष अन्धकार आते ही अपने गुणों को प्रदीप्त प्रज्ज्वलित कर लेते है, वहाँ कायर पुरुष घबराकर उनको प्रदीप्त करना ही भूल जाते है।

शरीरधारियो के लिये सुख-दु.ख का भोग अनिवार्य है। यह रोकर भोगा जाये अथवा हँसकर। जब यह भोग भोगना ही है, तो बुद्धिमानी इसी बात मे है कि हर परिस्थिति को हँसी-खुशी से भोगा जाये। हँस-हँसकर भोगने वाले धीर पुरुषो के लिये दु.ख एक शोभा बन जाता है। लोग उन्हे प्रतिकूलता मे अविचलित देखकर उनकी सराहना करते है। उनके ज्ञान तथा विश्वास मे निष्ठा लाते है। अपने जीवन मे उनके उस चरित्र को आदर्श के समान अगीकार करते है। अपने दुःख मे अविचलित रहने वाला श्रेष्ठ पुरुष दूसरो का दुःख भी कम कर देता है। यदि हँस-हँसकर अपने दुःख को साहसपूर्वक भोगने वाला उसे अपनी शोभा बना लेता है तो रोने-चिल्लाने वाला कापुरुष उससे अपनी कुरूपता बढ़ा लेता है। किसी अभाव अथवा व्याधि से घिरा धीर-पुरुष अपना और अपने भगवान का भरोसा लिये उन काली घड़ियो को स्थिर भाव से काटता है तो कोई कापुरुष बुरी तरह रोता-चिल्लाता और निराश होकर दूसरो से सहायता के लिये रिरियाता, अपने भाग्य और भगवान को कोसता है, गाली देता है। इन दोनों की तस्वीर देखने से स्पष्ट विदित हो जाता है कि उनमे से एक मनोधनी है और दूसरा दरिद्री। दु ख मे स्थिर और गम्भीर रहने वालो के प्रति जहाँ लोगो की श्रद्धा जाग उठती है, वहाँ रोने-चिल्लाने और प्रलाप करने वालो के प्रति सहानुभूति की अपेक्षा दयनीय भाव ही उत्पन्न होता है।

बहुत बार तो अतिशयता होने पर घृणा तक होने लगती है। इस प्रकार दूसरो का घृणापात्र होकर रहना मनुष्य जैसे प्राणी को जरा भी शोभा नहीं देता। उसकी शोभा तो इसी मे है कि प्रतिकूल परिस्थितियो के अवसर पर शान्त, धीर और गम्भीर रहकर उनको बदलने का प्रयत्न किया जाये। रोने-चिल्लाने अथवा कलपने से दुःख का भोग क्षमा तो किया नही जा सकता, तो इस प्रकार की दीनता से लाभ क्या है ? शरीर की नियुक्ति ही जब प्रारब्ध भोग करने के लिये हुई है, तब उसे उचित रूप से भोगने मे ही सुन्दरता है और कल्याण भी।

विवेक की बात तो यह है कि सकट, आपत्ति अथवा दुःख पाने पर प्रसन्न होना चाहिये। इसलिये कि यही वह विधान है, जिसके द्वारा मनुष्य का प्रारब्ध भोग पूरा होता है। उसके पूर्व कर्मो का परिपाक होता है। एक-एक संकट, एक-एक प्रारब्ध को व्यर्थ करता जाता है, जिसके अनुसार भव-बन्धन की लम्बी शृंखला की एक-एक कड़ी टूटती जाती है। दुःख का संयोग आते ही मनुष्य को उसका उपचार तो करना चाहिए, पर साथ ही यह सोचकर प्रसन्न भी कम नही होना चाहिए कि उसके प्रारब्ध भोग की एक किश्त उतर गई।

आत्मा का भार भविष्य का अन्धकार कुछ कम हो गया और प्रकाश का लक्ष्य कुछ समीप आ गया है। ऐसे उपकारी संकटों को देखकर रोना-चिल्लाना वैसी ही मूर्खता है, जैसी कि किसी विषाक्त फोड़े का आपरेशन करने के लिये आए डाक्टर को देखकर भयभीत होने की मूर्खता। दुःख के बाद सुख और संकट के बाद सुविधा, प्रकृति का यह अटल नियम है। इस आधार पर भी दुःख देखकर प्रसन्न ही होना चाहिये। दुःख और संकट उस सुख-सम्पत्ति की पूर्व भूमिका होते है, जो निकट भविष्य में मिलनी होती है। बादल और बिजली को देखकर भयभीत होने वाले बाल-बौद्धिक लोग कुछ ही देर मे होने वाली प्राण-दायक और धन-धान्य की विधायक वर्षा को नही देख पाते। संकट सुख और कल्याण के अग्रदूत होते है। उनको देखकर भयभीत न होना चाहिये, बल्कि सहर्ष उनका स्वागत करना चाहिये।

विश्वास रखिये दुःख का अपना कोई मूल अस्तित्व नही होता। इसका अस्तित्व मनुष्य का मानसिक स्तर ही होता है। यदि मानसिक स्तर योग्य और अनुकूल है, तो दु ख की अनुभूति या तो होगी ही नही और यदि होगी भी तो बहुत क्षीण। तथापि यदि आपको दुःख की अनुभूति सत्य प्रतीत होती है, तब भी उसका अमोघ उपाय यह है कि उसके विरुद्ध अपनी आशा, साहस और उत्साह के प्रदीप जलाये रखा जाए। अन्धकार का तिरोधान और प्रकाश का अस्तित्व बहुत-से अकारण भयो को दूर कर देता है।

आशा, विश्वास और परिवर्तन के अटल विधान मे आस्था रखने के साथ ही साथ समय रूपी महान्

चिकित्सक मे विश्वास रखिये। समय बड़ा बलवान और उपचारक होता है। वह धैर्य रखने पर मनुष्य के बड़े-बड़े संकटो को ऐसे टाल देता है, जैसे वह आया ही न था। संकट तथा दुःख देखकर भयभीत होना कापुरुषता है। आप ईश्वर के अंश है, आनन्दस्वरूप है। आपको तो धैर्य, साहस, आशा, विश्वास और पुरुषार्थ के आधार पर संकट और विपत्तियो की अवहेलना करते हुए सिंह पुरुषो की तरह ही जीवन व्यतीत करना चाहिये।

दृढ़ भावनाओं से जीवन-निर्माण

मनुष्य का निर्माण उसकी भावनाओ की पृष्ठभूमि पर होता है। जैसा वह सोचता, समझता और विचार करता है, प्रायः वैसा ही बन जाता है। भलाई की भावना लोगो को उच्चस्तर की ओर, महानता की ओर अग्रसर करती है। अनिष्टकारी, दीन और निकृष्ट भावनाओ से मनुष्य का जीवन दुःखी, उदासीन तथा पतनोन्मुख होता है क्योंकि भीतरी भावनाओ के अनुरूप ही बाहरी क्रिया-कलाप होते है और वैसे ही परिणाम भी उत्पन्न होते है। काम से अधिक उस भावना का महत्त्व होता है, जो उस क्रिया का संचालन करती है। जो काम शुद्ध हृदय से होता है, देखने मे वह छोटा भले ही हो परन्तु उसका फल बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होता है। बड़े से बड़ा काम भी अगर हीन आदर्श लेकर किया जाय तो उसकी बड़ी कीमत नही हो सकती।

बुराइयो के प्रति लोगो मे जिस तरह आकर्षण होता है, उसी तरह यदि ऐसा दृढ भाव हो जाए कि हमे अमुक शुभ-कर्म अपने जीवन मे पूरा करना ही है तो उस कार्य की सफलता असंदिग्ध हो जायेगी। यदि सिनेमा न देखने की, बीड़ी-सिगरेट न पीने का, जुआ न खेलने का, माँस-मदिरा न सेवन करने का व्रत ठाना जाय तो उस व्रत का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाये, तो इन दुर्गुणो के कारण मलिन होने वाले स्वभाव मे स्वच्छता आयेगी, स्वास्थ्य ठीक रहेगा, मानसिक सन्तुलन बना रहेगा। यह लाभ मिल सकते है किन्तु उन्हे सत्संकल्पो द्वारा ही प्राप्त किया जाता है।

झूठ बोलना अब लोग व्यावहारिक समझने लगे है, इसी कारण से सात्विक-जीवन के अनेक उद्देश्य इच्छा रखते हुए भी पूरे नहीं हो पाते। बीड़ी पीना स्वास्थ्य और आर्थिक अपव्यय की दृष्टि से नितान्त हानिकारक है, यह हर बीड़ी पीने वाला समझता है और उसके अनौचित्य तथा दुष्परिणामो से प्रभावित होकर धूम्रपान न करने की शपथ भी लेता है किन्तु दृढ भावना के अभाव मे वह प्रतिज्ञा निभ नही पाती, पूरी नही हो पाती। सत्य के लिए श्रद्धा होती और उद्देश्य मे कुछ सबलता रही होती तो यह कार्य ऐसे नही है, जिन्हे करने पर मनुष्य को कुछ हानि होती। उल्टे इसमे फायदा ही है। पर लोगो का मनोबल इतना दुर्बल होता है कि वे संकल्प कर लेने के बाद देर तक उसमे टिक नहीं पाते। शपथ या संकल्प की विजय दृढ़-निश्चय और सुदृढ भावना से होती है।

महापुरुषो की सफलता मे उनकी दृढ़-भावना, उच्चतम उद्देश्य के लिये अन्यतम कष्ट, सहिष्णुता ही प्रधान कारण होती है। महाराणा प्रताप ने सौगन्ध खाई थी कि मेवाड़ को वापस न लेने तक वे राजसी-जीवन को धारण नही करेगे। महात्मा गाँधी का स्वतन्त्रता-आन्दोलन उनके दृढ़-निश्चय का प्रतीक था। महर्षि दयानन्द के हृदय मे अपने धर्म, संस्कृति के उत्थान की प्रबल भावना थी—तभी इन महापुरुषो ने अपने लक्ष्य को पूरा भी किया। हवा के झोंके मे बुझ जाने वाला दीपक नही, निरन्तर संकल्पशील सूर्य ही संसार को प्रकाश दे पाता है। जीवन मे किसी सद्उद्देश्य की सफलता के लिये दृढ़-निश्चय होना परमावश्यक है।

दृढ़-भावना रचनात्मक प्रवृत्तियो का विकास करती है। उससे सफलता के अनेको नये-नये मार्ग स्वतः सूझ पड़ते है, जिन्हे सामान्य श्रेणी के व्यक्ति बड़े कौतूहल से देखते है। जीवन में जो कुछ करना है, उसके लिये यदि मनुष्य का साहस जाग जाये, तो शायद ही कोई बाधा उसे उसके निश्चय से हटा सके। विद्यावाँकुरे ईश्वर चन्द्र विद्यासागर अत्यन्त निर्धन परिवार के थे। मुश्किल से फीस और किताबो के पैसे जुटा पाते थे, किन्तु विद्याध्ययन की जो उनमे उत्कट चाह थी उससे उनकी वह मनोकामना भी पूरी हुई। विद्यासागर चौराहे की लालटेन के प्रकाश मे बैठकर अपना पाठ याद किया करते थे। अपने अदम्य उत्साह और परिस्थितियो से संघर्ष करने की शक्ति के बल पर ही वे सिद्ध मनोरथ हो सके।

मनुष्य के अनेक कर्मों मे भावना का सम्मिश्रित होना अनिवार्य है। दृढ़-भावना और कार्य करने की क्षमता के संयोग से ही पूर्ण सफलता सम्भव है। वृक्ष दो तरह से जीवन तत्त्व ग्रहण करता है। जड़े पृथ्वी से रस खीचती है और पत्तियाँ सूक्ष्म आकाश से प्राण-शक्ति का अवगाहन करती है। इन दोनो क्रियाओ के साथ-साथ चलते रहने के कारण ही वृक्ष फल-फूल पैदा करने मे सफल हो पाता है। मनुष्य का जीवन भी हरा-भरा, सुखी-सम्पन्न बना रहे, इसके लिए उसमे कर्म और भावना का सम्मिश्रण होना जरूरी है। भावना के अभाव मे वे क्रियाएँ पूरी नही हो सकती जो समृद्धि और सम्पन्नता के लिये आवश्यक है। चाहे अपना उद्देश्य आध्यात्मिक हो, चाहे भौतिक भावनाओ मे दृढ़ता हो तभी कुछ काम बन सकेगा, कुछ सफलता मिल सकेगी।

मनुष्य की असलियत का सम्बोधन उसकी आन्तरिक भावनाएँ कराती है। भावनाओ का प्रभाव बाह्य शरीर पर भी लक्षित हुये बिना नही रहता। पापी, कुकर्मी तथा आततायी पुरुषो की मुखाकृति ही बतला देती है कि वह कैसा आदमी है ? गम्भीर व्यक्तियो को देखने से ही उनके प्रभाव का पता चला जाता है। मनुष्य की निकृष्टता

या उत्कृष्टता के भाव उसकी प्रत्येक क्रिया, रहन-सहन व बोल-चाल से परिलक्षित होते है। इन्हीं के आधार पर औरो से मान-सम्मान, मैत्री, आत्मीयता आदि की प्राप्ति होती है। जिनकी भावनाएँ भौड़ी और कुरूप होती है, उनसे लोग घृणा करते है। जिनकी भावनाएँ ऊँची होती है, दृढ और रचनात्मक होती है, उनकी समीपता से लोगो को प्रेरणा मिलती है।

कर्त्ता की भावना जब लक्ष्यवान होती है तो वह भीतर ही भीतर प्राण व शक्ति का संचार करती है, इससे उसे अनेक अनुभव और ज्ञातव्य प्राप्त होते है। इन्हे वह चुपचाप धारण करता है, पोषण करता है, पर व्यक्त नही करता। इसी शक्ति द्वारा प्राणो का जो विस्तार होता है उसे ही निष्ठा कहते है। यह चरित्र निर्माण की मूल आवश्यकता है। वहाँ पल-पल, छिन-छिन बदलते रहने वाले इन्द्रियो के आदेश कामयाब नही होते। थोड़ी-थोड़ी दूर पर जो प्रलोभन भरे प्रश्न आते है, उनका हल स्वतः होता है और बाधाएँ उस दृढता से टकराकर चकनाचूर हो जाती है। दृढता का स्वभाव है, गम्भीरता की ओर प्रेरित करना। इसी से मनुष्य के जीवन मे आत्म-निर्भरता, सत्यता, कष्ट, सहिष्णुता एवं देवत्व की जाग्रति होती है। मनुष्य के चारित्रिक विकास मे भी उसकी भावना ही मुख्य है।

मनुष्य के जीवन मे इस प्रकार भावनाओ की गहराई न रहे तो उसका चारित्रिक पतन हो सकता है। शील और सदाचार का अविचलित अविच्छिन्न योग न रहे तो वे सभी भाव-संस्पर्श उसके लिये घातक ही सिद्ध होंगे अर्थात् उसके जीवन मे सद्प्रवृत्तियो का भाग नष्ट हो जायेगा और कुविचार एवं कुचेष्टाएँ बढने लगेगी। ऐसी स्थिति मे मनुष्य का जीवन बरबाद और निरर्थक हो जाता है, जिस तरह हरे पेड़ को काट देने पर सूर्य का ताप उसे सुखा देता है। इस प्रकार उत्पन्न हुई चारित्रिक दुर्बलता लोगो को विषय-सुख और भोगो की ओर प्रेरित करेगी, परिणामस्वरूप जीवन के सात्विक लक्ष्य पूर्ण न होंगे और सफलता की पुष्टि का मार्ग बन्द हो जायेगा। दुर्बल तथा क्षीण चित्त के लिये ज्ञान का भी कुछ लाभ नही है। वह ज्ञान पूर्णतया लौकिक कामनाओ मे ही लगा रहेगा। अतः बुरे परिणाम पैदा होने मे कोई सन्देह न रहेगा।

भावनाएँ मनुष्य का जीवन होती है। इनके बिना उसमे किसी रस या उल्लास का आनन्द मनुष्य को नही मिलता। वह केवल प्रगल्भ विचारो के ही आस-पास चक्कर काटता रहता है, जिससे मनुष्य का जीवन केवल सासारिक ही बना रहता है। इसीलिये अब जीवन-निर्माण मे तब की अपेक्षा अधिक सतर्कता की आवश्यकता है। सत्पथ पर चलते हुए भी मनुष्य धोखा खा सकता है, पथ-भ्रष्ट हो सकता है। अतः अपने जीवन-लक्ष्य का निर्धारण हमे पूरी सावधानी के साथ करना चाहिये और आध्यात्मिक जीवन की आवश्यकता को स्वीकार कर लेने के बाद दृढतापूर्वक, मनोयोगपूर्वक उसमे लगा रहना चाहिए। आपकी भावनाएँ दृढ बनी रहेगी, निश्चय बलवान बना रहेगा, तो अनेक कठिनाइयो मे भी आप निर्भयतापूर्वक अपने जीवन लक्ष्य की ओर बढते रहेंगे। मनुष्य का पौरुष दृढ निश्चय मे है। सुदृढ भावनाओ वाले व्यक्ति ही आत्मजयी होते है।

साहसी बनिये—आप जरूर सफल होंगे

उद्यम और विकास के पथ पर चलते हुए अनेको बाधाओ का आना स्वाभाविक है। कार्य छोटा हो या बड़ा, आध्यात्मिक हो अथवा सांसारिक, मुसीबते और कठिनाइयाँ आयेगी ही। इनसे बचकर सफलता की मंजिल तक पहुँचना असम्भव है। रास्ते की इन रुकावटो का सामना करना वीरोचित कार्य है। जो संघर्षों से कतराता नही वह सर्वोपरि साहसी है। वे कायर और कापुरुष होते है, जो विघ्नो से हार मानकर उद्यम करना छोड़ देते है। इससे किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नही की जाती, सफलता का व्यापक और विशिष्ट लक्षण उत्साह है मानवीय विकास की अधिकांश सम्भावना साहस, शौर्य और पराक्रम पर सन्निहित है।

आपका स्वास्थ्य खराब हो चुका है, पाचन-सस्थान बिल्कुल विकृत हो चुका है, मिर्च-मसालो के अधिक सेवन से पेट मे गड़बड़ी बनी रहती है, खट्टी डकारे आती है, जी मिचलाया करता है। किसी चिकित्सक ने आपको सलाह दी कि आप कुछ दिन शाकाहार कर लीजिये। आप उसके महत्व को भी भली-भाँति समझ चुके है। प्रारम्भ मे स्वास्थ्य सुधारने की प्रबल आकांक्षा उठी थी, उसी से प्रेरित होकर आपने शाकाहार आरम्भ कर दिया। अभी तीन दिन ही हुये थे कि आपका मन तरह-तरह के भोजन-पकवानो, मेवा-मिष्ठानो की ओर दौड़ने लगा, शाक ग्रहण करते समय कुछ रूखा लगता है सो आपका ध्यान बार-बार स्वादयुक्त भोजन की ओर दौड़ा-दौड़ा जाता है। आप हार मानने लगते है बाजार से चुपचाप कुछ खा आते है, तो जिह्वा-इन्द्रिय जीत जाती है और फिर उसी पूर्व-जीवन के क्रम पर आ जाने को विवश कर देती है। यह पट-परिवर्तन एक क्षणिक विग्रह के कारण हुआ। निश्चयात्मक बुद्धि के अभाव मे आप स्वास्थ्य सुधारने के लक्ष्य से गिर गए, फलस्वरूप असफलता आपके हाथ लगी। यदि आपने जिस तत्परता से कार्य शुरू किया था, उसी उत्साह से शाकाहार पर निर्भर रहने, रूखा भोजन करते रहने के साहस पर अडिग बने रहते तो आपका स्वास्थ्य अच्छा हो जाता।

मनुष्य का एक सामान्य जीवनक्रम बना होता है। खाना-पीना, सोना, चलना, उठना-बैठना, रोग-शोक, चोट-मोच के क्षण सभी के जीवन मे एक से आते है।

इसका सामान्य ज्ञान भी सभी को होता है, किन्तु जीवन की एक दूसरी दिशा होती है, कष्ट और कठिनाइयो की दिशा। इससे जीवन का सही मूल्यांकन होता है। नई-नई अनुभूतियाँ प्राप्त होती है, किन्तु यह तभी सम्भव है, जब मनुष्य सामान्य जीवनक्रम को त्यागकर और कष्ट, कठिनाइयो के अनुभवपूर्ण पथ पर चलने का साहस करते है। कूप-मण्डूक के समान एक-सी स्थिति पर सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति क्या तो सफलता प्राप्त कर सकेगे क्या ही महानता की उच्चतम अनुभूतियाँ प्राप्त कर सकेगे ? भयभीत बने रहने से जीवन का सच्चा या व्यावहारिक ज्ञान पाना कठिन है।

नैपोलियन बोनापार्ट कहा करता था, "भय से आत्म-सम्मान नष्ट हो जाता है।" यह नीति सम्मत बात है कि साहसी मनुष्य अकेला ही सैकड़ो को मात दे सकता है। जो परिस्थितियो और आलोचनाओ से घबराकर अपने कर्त्तव्य से गिरते नही, अन्त मे विजय उन्ही की होती है। कार्य का शुभ आरम्भ करने से पूर्व और एक बार दृढ़तापूर्वक विचार कर कीजिये कि आप विफल नही होगे, फिर अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को उसी पर जुटा दीजिए। आप विश्वास कीजिये आपका निश्चय ही अन्त तक साहस देता रहेगा। आत्मशक्ति लेकर निश्चित मार्ग पर चल निकलिए, रुकिए नही। यह मत देखिये कि आपका साथी पीछे जा रहा है। युद्ध मे लड़ने वाले सिपाही, मरने वालो की तादाद नही गिनते। ऐसा करे तो आगे से गोली लग जाने का खतरा बना रहेगा। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये चलते ही रहिए, क्षेत्र से बाहर न जाइए तो आप अन्त मे अपने निश्चय को अवश्य पालेगे।

संसार मे कुछ कार्य इतने महान् व आवश्यक माने जाते है, जिनके लिये दूसरी सभी वस्तुओ को उत्सर्ग कर देना पड़ता है। देश की रक्षा के लिये माताएँ अपने पुत्रो, पत्नियाँ, अपने पतियो को बिना परिणाम की बात सोचे लड़ाई के मैदान मे भेज देती है। वैज्ञानिक अपने देश की शक्ति बढ़ाने के लिये अपने जीवन को खतरे में डालकर महत्त्वपूर्ण प्रयोग करते रहते है। मानवता की प्रतिस्थापना के लिये गौतम बुद्ध का त्याग—देवत्व के विकास के लिये महर्षि दधीचि का अस्थिदान, ये ऐसे विशिष्ट कार्य है, जिनमे छोटे-बड़े दूसरे हितो का ध्यान नही दिया गया। तभी किसी महान् संकल्प की पूर्ति हो पाई है। विश्वहित की कामना से अपने सुखों का त्याग सर्वोपरि साहस का परिचायक है। इससे व्यक्ति की महानता का परिचय मिलता है। मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी का दूसरा नाम निर्भयता है।

उत्साह में कमी का एक महत्त्वपूर्ण कारण अपनी प्रतिष्ठा के प्रति भ्रान्तिपूर्ण संकल्पना होती है। यह भाव पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे अधिक पाया जाता है। आत्म प्रतिष्ठा, आदर व सम्मान प्राप्त करने की लालसा मनुष्य को अपने लक्ष्य से गिरा देती है क्योंकि इससे अन्तर्चेतना कई क्षेत्रो मे विभक्त हो जाती है। यश की कामना से किये हुए कर्त्तव्य मे औचित्य का भान नहीं रहता, इससे बाद मे पश्चाताप और प्रायश्चित ही भोगना पड़ता है। आत्म-सम्मान का अर्थ है, आप अपने सिद्धान्तों को बलपूर्वक किसी पर थोपना चाहते है। इस महत्त्वाकांक्षा का जीवन-लक्ष्य से संघर्ष हो जाता है, फलतः मूल उद्देश्य अस्त-व्यस्त हो जाता है और दीनता का उदय हो जाता है। वह विचारो की दीनता सारे उत्साह पर पानी फेर देती है। इसलिए कर्तव्य करते हुए भी फल की कामना न करने को ही भारतीय संस्कृति मे जीवन साफल्य का साधन माना जाता है। इसमे सन्देह नही है कि सुख व समृद्धि का कारण उत्साह है किन्तु यह ध्यान बना रहे कि आप केवल सम्मान के भाव से प्रभावित नहीं हो रहे है, तभी वास्तविक सफलता तक पहुँच पायेगे।

साहस मे कमी का एक कारण, "आत्म निर्भरता का अभाव" भी है। अपने ऊपर विश्वास करना, अपनी शक्तियो पर विश्वास करना एक ऐसा सद्गुण है, जिस पर विचार, योग्यता और साहस उत्पन्न होता है। जो प्रत्येक कार्य मे दूसरो का मुँह ताकते है, वे जीवन मे कोई महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त नही, कर सकते किन्तु जो यह मानते है कि कोई भी कार्य उनकी शक्ति से परे नही उनमे अदम्य उत्साह भर जाता है, जिसके सहारे वे बड़े-बड़े कार्य तक हँसी-खुशी पूरा कर लेते है। कहावत है "परमात्मा उन्ही की मदद करता है जो अपनी मदद आप करते है।" दूसरो पर निर्भर होना मनुष्य की हीनता का बोधक है। इससे अपना बल घटता है, इच्छाओ की पूर्ति मे अनेको विघ्न-बाधाएँ आ उपस्थित होती है। सफलता का अच्छा और सीधा पथ यह है कि अपनी शक्तियो पर विश्वास करना सीखे। मनुष्य की प्रतिष्ठा, स्वाधीनता और निर्भयता इसी बात मे है।

संसार मे हर किसी को एक-सी परिस्थितियाँ उपलब्ध नही है। सभी मिल मालिक बनना चाहे तो फिर मजदूर रहना कौन स्वीकार करेगा ? जो जिम्मेदारी मिले उसे ही सम्मानपूर्वक निबाहना मनुष्य का सर्वोत्तम कर्त्तव्य है। अपनी जिम्मेदारियाँ दूसरो पर टालने से आत्मिक विकास नहीं हो पाता। दिन-दिन बुरी परिस्थितियो की ओर खिंचते हुए चले जाते है। ऐसी स्थिति मे किसी प्रकार की सफलता की आशा नही की जा सकती। हर परिस्थिति से संघर्ष करने वाले व्यक्ति ही सफल और मुक्तिपथगामी हुए है। परिस्थितियो से टकराने से ही मनुष्य की अन्तःप्रतिभा जाग्रत होती है। सोई शक्तियो का विकास होता है। इस जागृत शक्ति को जिस दिशा मे लगा देते है, वही सफलता के दर्शन होने लगते है। जो निर्भयतापूर्वक अच्छी-बुरी हर एक स्थिति मे अनुकूलता प्राप्त कर सकता है उन्नति, सफलता और आनन्द की उपलब्धि उसी को होती है।

जीवन के उतार-चढ़ावों पर उद्विग्न न हों

ज़रा-ज़रा-सी बात पर दुःखी होना बहुत-से लोगो का स्वभाव होता है। यह स्वभाव किसी प्रकार भी वांछनीय नही माना जा सकता। मनुष्य आनन्दस्वरूप है, उसको दुःखी होना क्या ? उसे तो हर समय प्रसन्न, आनन्दित तथा उत्साहित ही रहना चाहिए। यही उसके लिए वांछनीय है और यही जीवन की विशेषता है। इस स्वभाव के अतिरिक्त लोग तब तो अवश्य ही दुःखी रहने लगते है, जब वे किसी उच्च स्थिति से नीचे उतर आते है। इस दशा मे वे अपने दुःखावेग पर नियन्त्रण नही कर पाते और फूल जैसे जीवन मे ज्वाला का समावेश कर लेते है, जबकि उस उतार की स्थिति मे भी दुःख-शोक की उपासना करना अनुचित है।

उतार की स्थिति मे दुःखो का होना तभी ठीक है, जब वह उतार पतन के रूप मे घटित हुआ हो और यदि उसका घटना नियत के नियम के 'परिवर्तन' ईश्वर की इच्छा, प्रारब्ध अथवा दुष्टो की दुरभि-सधियो के कारण हुआ हो, तो कदापि दुःखी न होना चाहिए। तब तो दुःख के स्थान पर सावधानी को ही आश्रित करना चाहिये। पतन के रूप मे उतार का घटित होना अवश्य खेद और दुःख की बात है। उदाहरण के लिये किसी परीक्षा को ले लीजिए, यदि परीक्षार्थी ने अपने अध्ययन, अध्यवसाय और परिश्रम मे कोताही रखी है, समय पर नही जागा, आवश्यक पाठ आत्म-सात नही किये, गुरुओ के निर्देश और परामर्शो पर ध्यान नही दिया, अपना उत्तरदायित्व अनुभव नही किया और असावधानी तथा लापरवाही बरती है, तो उसका फेल हो जाना खेद, दुःख व आत्महीनता का विषय है। उसे अपने उस किए का दुःख रूपी दण्ड मिलना ही चाहिए। वह इसी योग्य था। उसके साथ न किसी को सहानुभूति होनी चाहिए और न उसे सान्त्वना और आश्वासन का सहयोग ही मिलना चाहिए।

किन्तु उस पुरुषार्थी विद्यार्थी को दुःख से अभिभूत होना उचित नही, जिसने पूरी मेहनत की है और पास होने की सारी शर्तो का निर्वाह किया है। बात अवश्य कुछ उल्टी लगती है कि जिसने परिश्रम नही किया, वह तो अनुत्तीर्ण होने पर दुःखी हो और जिसने खून-पसीना एक करके तैयारी की, वह असफल हो जाने पर दुःखी न हो। किन्तु हितकर नीति यही है कि योग्य विद्यार्थी को असफलता पर दुःखी नही होना चाहिए। इसलिए कि उसके सामने उसका उज्ज्वल भविष्य होता है। दुःख और शोक से अभिभूत हो जाने पर वह निराशा के परदे मे छिप सकता है।

अयोग्य विद्यार्थी का न तो कोई वर्तमान होता है और न भविष्य। वह निकम्मा चाहे दुःखी हो, चाहे प्रसन्न कोई अन्तर नही पड़ता। इस प्रकार पतन द्वारा पाई असफलता तो दुःख का हेतु है, किन्तु पुरुषार्थ से अलंकृत प्रयत्न की असफलता दुःख-खेद का नही, चिन्तन-मनन और अनुभव का विषय है। आशा, उत्साह, साहस और धैर्य की परीक्षा का प्रसंग है। प्रयत्न की असफलता स्वयं एक परीक्षा है। मनुष्य को उसे स्वीकार करना और उत्तीर्ण करना ही चाहिए।

प्रायः आर्थिक उतार लोगो को बहुत दुःखी बना देता है। जिसका लम्बा-चौड़ा व्यापार चलता हो। लाखो रुपये वर्ष की आमदनी होती हो, सहसा उसका रोजगार ठप्प हो जाए, कोई लम्बा घाटा पड़ जाए, हैसियत बिगड़ जाए और वह असाधारण से साधारण स्थिति मे आ गिरे तो वह अवश्य ही दुःखी और शोकग्रस्त रहने लगेगा। फिर भी इस आर्थिक उतार का शोक करना उचित नही। क्योकि शोक करने से स्थिति में सुधार नही हो सकता है। यदि शोक करने और दुःखी रहने से स्थिति मे सुधार की आशा हो तो एक बार शोक करना और दुःखी रहना उस स्थिति मे किसी हद तक उचित कहा जा सकता है। किन्तु यह सभी अच्छी तरह से जानते है कि विपन्नता का उपचार दुःखी रहना नहीं, बल्कि उत्साहपूर्वक पुरुषार्थ करना ही है तथापि लोग उल्टा आचरण करते है यह कम खेद की बात नही है।

सम्पन्नता से विपन्नता मे आ जाने पर लोग क्यो दुःखी रहते है ? इसके अनेक कारण होते है। इसका एक कारण तो है अपनी वर्तमान स्थिति से विगत स्थिति की तुलना करना। दूसरा कारण है, दूसरो की सम्पन्न स्थिति को सामने रखकर अपनी स्थिति देखना। तीसरा कारण है, सामाजिक अप्रतिष्ठा की आशंका करना। चौथा कारण है, लज्जा और आत्महीनता का भाव रखना और पाँचवाँ कारण है, विगत वैभव का व्यामोह। यह और इसी प्रकार के अन्य कारणोवश लोग अपने आर्थिक उतार पर दुःखी और शोकग्रस्त रहा करते है। किन्तु यदि इन कारणो पर गहराई से विचार किया जाए तो पता चलेगा कि इन कारणो को सामने रखकर अपनी विपन्नता पर शोक करना बड़ी हल्की और निरर्थक बात है। इनमें से कोई कारण तो ऐसा नहीं, जिसे शोक का उचित सम्पादक माना जा सके।

अपनी वर्तमान स्थिति से विगत स्थिति की तुलना करने से क्या लाभ ? अतीतकाल की वह स्थिति जो वैभवपूर्ण थी, आज लौटकर नहीं आ सकती। हाँ उसकी तरह की स्थिति वर्तमान मे बनाई अवश्य जा सकती है। किन्तु यह सम्भव तभी होगा, जब अतीत का रोना छोड़कर वर्तमान के अनुरूप साधनो का सहारा लेकर परिश्रम और पुरुषार्थ किया जाये। केवल अतीत की याद कर-करके दुःखी होने से कोई काम न बनेगा। जब मनुष्य अपने वैभवपूर्ण अतीत का चिन्तन करके इस प्रकार सोचता रहता है तो उसके हृदय मे एक हूक उठती रहती

है—एस समय ऐसा था कि हमारा कारोबार जोरो से चलता था। लाखो रुपयो की आय थी। हजारो आदमी अधीनता मे काम करते थे। बड़ी-सी कोठी और कई हवेलियाँ थी। मोटरकार पर चलते थे। मनमाने ढग से रहते और व्यय करते थे। लेकिन आज यह हाल है कि कारोबार बन्द हो गया है। आय का मार्ग नही रह गया। दूसरो की मातहती की नौबत आ गई है, कोठियाँ और हवेलियाँ बिक गईं। मोटरकार चली गईं। हम एक गरीब आदमी बन गए। अब तो यह जीवन ही बेकार है। इस प्रकार का चिन्तन करना अपने जीवन मे निराशा और दुःख को पाल लेना है।

यदि अतीत का चिन्तन ही करना है, तो इस प्रकार करना चाहिए। हमने इस-इस प्रकार से अमुक-अमुक काम किये थे। जिससे इस-इस तरह की उन्नति हुई थी। उन्नति के इस मार्ग मे इस-इस तरह के विघ्न आए थे, जिनको हमने इस नीति द्वारा दूर किया था। इस प्रकार का चिन्तन करने से मनुष्य का सफल स्वरूप ही सामने आता है और वह आगे उन्नति करने के लिए प्रेरणा पाता है। विचारो का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बड़ा गहरा पड़ता है। जो व्यक्ति अपनी अवनति और अनिश्चित भविष्य के विषय मे ही सोचता रहता है, उसका जीवन-चक्र प्रायः उसी प्रकार से घूमने लगता है। इसके विपरीत जो अपनी उन्नति और विकास का चिन्तन किया करता है, उसका भविष्य उज्ज्वल और भाग्य अनुकूलतापूर्वक निर्मित होता है।

मनुष्य की चिन्तन क्रिया बड़ी महत्वपूर्ण होती है। चिन्तन को यदि उपासना की संज्ञा दे दी जाए, तब भी अनुचित न होगा। जो लोग उपासना करते हैं, उन्हे अनुभव होगा कि जब वे अपना ध्यान परमात्मा मे लगाते हैं, तो अपने अन्दर एक विशेष प्रकार का प्रकाश और पुलक पाते है। उन्हें ऐसा लगता है, मानो परमात्मा की करुणा उनकी ओर आकर्षित हो रही है। यह कल्याणकारी अनुभव उस उपासना, उस चिन्तन अथवा उन विचारो का ही फल होता है, जिनके अन्तर्गत कल्याण का विश्वास प्रवाहित होता रहता है।

इस प्रकार जिस प्रकार का विश्वास और जिस प्रकार का विचार लेकर मनुष्य अपने भविष्य के प्रति उपासना करता है, उसी प्रकार के तत्व उसकी जीवन परिधि मे सजग तथा सक्रिय हो उठते हैं। अतएव मनुष्य को सदैव ही कल्याणकारी चिन्तन ही करना चाहिये। निराशापूर्ण चिन्तन जीवन के उत्थान और विश्वास के लिए अच्छा नहीं होता।

दुःख मनाने से दुःख के कारणों का निवारण नही हो सकता। दुःख के कारण उद्विग्न और मलीन रहने के कारण मन शक्तियाँ नष्ट होती है। अधोगत व्यक्ति के भौतिक साधन प्रायः नगण्य हो जाते हैं। उस स्थिति मे उसके पास मनोबल के सिवाय अन्य कोई साधन नहीं रह जाता। मनोबल का साधन कुछ कम बड़ा साधन नहीं होता। मनोबल के बने रहने पर मनुष्य मे प्रसन्नता, विश्वास और उत्साह बना रहता है। इन गुणो को साथ लेकर जब किसी स्थान पर व्यवहार किया जाता है, तो दूसरो पर उसके धैर्य, सहिष्णुता और साहस का प्रभाव पड़ता है। लोग उसे एक असामान्य व्यक्ति मानने लगते है। उन्हे विश्वास रहता है कि इसको दिया हुआ सहयोग सार्थक होगा। यह परिस्थितियो से हार न मानने वाला दृढ पुरुष है। इस प्रतिक्रिया से लोग उस व्यक्ति की ओर स्वतः आकर्षित हो उठते है—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उपासक की ओर परमात्मा की करुणा आकर्षित हो उठती है।

विगत वैभव का सोच करना किसी प्रकार भी उचित नहीं ? क्योंकि अतीत का चिन्तन न तो वर्तमान मे कोई सहायता करता है और न भविष्य का निर्माण। बल्कि वह उस व्यामोह को और भी सघन तथा दृढ़ बना देता है, जिसके अधीन मनुष्य विगत वैभव का सोच किया करते है। उत्थान अथवा अवनति के माया जाल से बचने के लिए आवश्यक है कि उनके प्रति व्यामोह के अन्धकार से बचे रहा जाय। इस सत्य मे तर्क की जरा भी गुंजाइश नहीं है कि संसार परिवर्तन के चक्र से बँधा हुआ घूम रहा है। यहाँ पर कोई भी सदैव एक जैसी स्थिति के प्रति आश्वस्त रहने का अधिकार नही रखता। उसे परिवर्तन का अटूट नियम सहन ही करना पड़ेगा। यह सोचकर इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि पहले गरीब थे, फिर अमीरी आई और अब उसी चक्र के अनुसार पुनः गरीबी आ गई है। पुनरपि यह निश्चित है कि यदि पूर्ववत् पुरुषार्थ का प्रमाण दिया जाय तो सम्पन्नता निश्चित है। इस सहज सयोग मे रहते हुए सम्पन्नता, विपन्नता से विचलित होना किसी प्रकार भी बुद्धिसगत नही है।

किन्ही विगतमान चीजो के प्रति दुःख होने का कारण यह है कि व्यामोह के वशीभूत मनुष्य उनसे अपना आत्मभाव स्थापित कर लेता है। सोचने की बात है कि जब यह संसार ही हमारा नहीं है, यह शरीर तक हमारा नही है, तो यहाँ की किसी चीज के साथ आत्म-भाव स्थापित कर लेने में क्या बुद्धिमत्ता है ? एक दिन जब मनुष्य खुद ही सबको छोड़कर चला जाता है, तो यदि कोई चीज उसे छोड़कर चली जाती है, तो इसमें दुःख की क्या बात है ? यह संसार और उसकी, दृश्यमान अथवा अदृश्यमान सारी चीजे एकमात्र परमानन्द की हैं। उसके सिवाय किसी भी व्यक्ति का यहाँ की किसी चीज पर अधिकार नहीं है, जिसे जो कुछ मिलता है, वह सब परमात्मा का दिया होता है।

मनुष्य की बुद्धिमानी इसी में है कि वह इस सत्य को स्वीकार करे और इस बात के लिये सदैव तैयार रहना चाहिये कि परिवर्तन के नियम के अन्तर्गत उससे

कोई भी चीज किसी भी समय ली जा सकती है। इस सत्य मे विश्वास रखने वाले को व्यामोह का कोई दोष नही लगने पाता और वह सम्पत्ति तथा विपत्ति मे सदा समभाव रहता है।

उसी व्यामोह के जाल से बचने के लिए ही गीता मे भगवान ने अनासक्तिपूर्वक जीवनक्रम चलाने का निर्देश किया है। उत्साहपूर्वक अपना कर्त्तव्य करते हुए इस बात के लिए सदा तैयार रहना चाहिये कि इस परिवर्तनशील जगत मे कुछ भी अपना नही है। सम्पन्नता अथवा विपन्नता जो भी प्राप्त हो रही है, किसी समय भी बदल सकती है। यह अनासक्त भाव मानव-जीवन मे सुख-शान्ति का बड़ा महत्वपूर्ण विधायक है। मानव-जीवन आनन्द रूप है। दु:खो, सन्तापो तथा आवेगो से इसे अशान्त रखना अन्याय है। ऊर्ध्व स्थिति से अधोस्थिति मे आकर अथवा विपन्नता से सम्पन्नता मे पहुँचकर किन्ही अतिरिक्त अथवा अन्यथा भाव से आन्दोलित नही होना चाहिये। सम्पन्नता की स्थिति मे अभिभूत रहना और विपन्नता मे दुःखी होना, दोनो भाव ही जीवन मे अशाति के कारण है।

विगत वैभव के प्रति व्यामोह के कारण वर्तमान जीवन तो अशान्त रहता है, साथ ही मलीन चिन्तन के कारण भविष्य भी प्रभावित होता है। अनासक्त भाव से, परिवर्तन मे विश्वास रखते हुए उत्साहपूर्वक अपना कर्तव्य करते हुए जो स्थिति प्राप्त हो उसे मित्र की भाँति स्वीकार करने से जीवन मे अशान्ति और असुख की सम्भावना नही रहती।

परिस्थितियों के दास नहीं स्वामी बनें

एक परिस्थिति आई, खिल उठे। प्रसनता और हर्ष से भर गये। दूसरी परिस्थिति आई, मुरझा गये। दुःख और खेद से आठ-आठ आँसू रोने लगे। पहली परिस्थिति की सजातीय किसी अन्य परिस्थिति का आगमन हुआ फिर हँस उठे और दूसरी परिस्थिति जैसी कोई परिस्थिति फिर आई तो पुनः रोने लगे। ऐसी परिस्थिति के प्रेरणा पात्र, अपने मे और किसी के द्वारा सचालित एक कठपुतली मे कोई अन्तर बतला सकते है ? नि:सन्देह ऐसे व्यक्तियो और कठपुतली मे कोई अन्तर ही नही होता। कठपुतली किसी मनुष्य द्वारा संचालित होती है और ऐसे व्यक्ति परिस्थितियो के अधीन नाचा करते हैं। जिस मनुष्य का अपना अस्तित्व, व्यक्तित्व, हर्ष और विषाद् अपने वश मे नही होता वह एक कठपुतली से अधिक कुछ नही होता।

मनुष्य का अपना एक अस्तित्व और अपना एक व्यक्तित्व होता है। उसका सचालन उसकी अपनी शुद्ध आत्मा के द्वारा होना चाहिए। परिस्थितियो का दास होकर चलना मनुष्य जैसे प्राणियो के लिये अशोभनीय है। मनुष्य पर परमात्मा की विशेष कृपा है। उसने उसे अनेक प्रकार की प्रतिभाओ, योग्यताओ, कलाओ तथा क्षमताओ से सम्पन्न बनाया है। उसके हर्ष, विषाद और सुख-दु:ख का स्वामी परिस्थितियो को नही बल्कि उसे स्वयं ही होना चाहिए। परमात्मा ने मनुष्य को पराधीन नही बल्कि स्वाधीन बनाकर भेजा है। वह अपने आनन्द का स्वयं ही स्वामी है। आनन्द के लिये दूसरे पर निर्भर रहने की कोई विवशता उसके सामने नही है। मनुष्य को अपने इस स्वामित्व को अनुभव करना ही चाहिए और उसी के अनुसार अपना आचरण भी।

कोई कारण उपस्थित होने पर उससे अद्भुत आवेग, उद्वेग, हर्ष अथवा विषादादिक विकारो मे बह जाना परिस्थितियो की दासता है और उन पर विजय पा लेना स्वामित्व है। दुःख का एक कारण उपस्थित है—गरीबी। नि:सन्देह गरीबी एक दुःखदायी स्थिति है। किसी उपचार के लिए पैसा चाहिए किन्तु वह नही है। किसी विशेष अवसर के लिए खर्चा चाहिए , लेकिन हाथ तंग है। किसी घटना पर नियन्त्रण करने के लिये धन चाहिए, लेकिन विवशता है। ऐसी दशा मे दुःख अथवा क्षोभ होना आश्चर्यजनक नही है किन्तु तभी तक जब तक कि उसके प्रवाह मे बह जाया न जाये। जो उसके प्रवाह मे बहकर रोते-झीकते रहते है अथवा उसके उपचार रूपी किसी गलत मार्ग को सोचने अथवा उस पर चलने लगते है, वे परिस्थितियो के दास ही कहे जायेगे किन्तु जो अपने उस अभाव से प्रेरणा और उत्साह ग्रहण कर यह हौसला करते है कि यह दुःखदायी परिस्थिति न तो हमे रुला सकती है और न हमारी नैतिकता हिला सकती है। साथ ही अपने हौसले को सार्थक करने मे तत्पर हो उठते है, वे परिस्थितियो के स्वामी होते है। ऐसे वीर पुरुषो के सामने परिस्थितियो को झुकना ही पड़ता है। जो परिस्थितियो से हार न मानकर उन्हे परास्त करने का उत्साह रखते है, वे सदैव प्रसन्न और आनन्दित रहते है। प्रसन्न पुरुष ही वास्तव मे पुरुष है, बाकी सब अन्यथा व्यक्ति होते है।

अनेक बार लोग संयम, नियम और अनुष्ठानो का कार्यक्रम चलाते है, व्रतो का निर्वाह करते है। लेकिन जब कभी उनके सामने कोई ऐसी परिस्थिति आ जाती है, जो नियम अथवा समय के प्रतिकूल होती है तो वे दृढ़ता नही दिखला पाते हैं। कोई न कोई बहाना लेकर फिसल जाते है। परिस्थितियो के अनुकूल विनमन कर जाने वाले ढील-पोले लोग परिस्थितियो के दास ही होते है। जैसे किसी ने नियम बनाया है कि वह चाय नहीं पियेगा। अपनी ओर से वह इस नियम का निर्वाह भी करता है। घर पर चाय बनती है। सब लोग पीते है। उससे भी पीने को कहते है लेकिन वह अपने व्रत का पालन करता है। कहने पर भी चाय नही पीता है। लेकिन घर वालो का वह अनुरोध और चाय का दौर एक सामान्य स्थिति होती है, परिस्थिति नहीं। जिस पर उस संयमी को विजयी माना

जाए। चाय के सम्बन्ध मे यह स्थिति परिस्थिति तब बन जाती है, जब किन्ही अतिथियों, सम्बन्धियों, मित्रो अथवा सम्पर्कों के बीच किसी विशेष अवसर अथवा उत्सव पर उससे पीने का अनुरोध किया जाये, ऐसे अवसर पर यदि संयमी उस परिस्थिति को पार कर अपने नियम की रक्षा कर लेता है, तो उसे परिस्थितिजयी माना जायेगा और यदि किन्ही कारणो अथवा दुर्बलताओ से प्रेरित होकर, वह अपना नियम तोड़ देता है, तो उसे परिस्थिति का दास ही कहा जायेगा। बहुत बार किन्ही हित-अनहितो को ध्यान मे रखकर परिस्थिति के अनुसार आचरण करना होता है। उस सामंजस्य को एक-आध बार स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु जब यह सामजस्य क्षिप्र तथा सरल बन जाता है, तो उस सयमी को परिस्थिति का दास ही कहा जायेगा। परिस्थितियो की ऐसी दासता अशोभनीय है। दुर्बलता का लक्षण है।

इसी प्रकार शोक, मोह अथवा दुःख-तकलीफ के अवसर पर भी परिस्थितियो की दासता अथवा स्वामित्व की परीक्षा हो जाती है। कोई घटना ऐसी हो जाती है, जो सामान्यतः रोने-बिलखने और निराश हो जाने को विवश करती है। बहुधा अन्य लोग वैसा करने भी लगते है। यदि कोई व्यक्ति अन्यो के साथ ही उस सामान्यता मे शामिल हो जाता है तो उसे परिस्थिति का दास ही मानना पड़ेगा और यदि वह उस शोकाकुल परिस्थिति मे अपनी मानसिक शांति, मस्तिष्क का सन्तुलन, क्रियाओं की सामान्यता और आशा, उत्साह, साहस आदि को बनाये रहता है, तो उसे उनका स्वामी कहा जायेगा। ऐसे ही साहसी और सन्तुलित लोग, जो परिस्थितियो का दबाव अस्वीकार करते हुए अपने सामान्य पथ पर यथावत् चलते रहते है, वे जीवन मे न तो पराजित होते है और न उनका कुशल क्षेम ही कुण्ठित होता है। परिस्थितियो से टक्कर लेकर बढ़ने और अपना अस्तित्व तथा व्यक्तित्व बनाये रखने वाले कठिनाइयों और आपत्तियो से भरे संसार मे कभी हारते नही।

सामान्यतः लोग किसी प्रियजन के बिछोह और अर्थाभाव से अधिक विचलित होते है। किसी प्रियजन का बिछोह पाकर लोग बेतहाशा शोक-विह्वल हो जाते है, उन्हे अपना जीवन निराश और निस्सार दीखने लगता है। बहुत बार तो लोग शोकातिरेक मे सामान्य जीवनक्रम से भी उदासीन हो जाते है। काम-काज त्याग देते है। अपनी स्थिति को दयनीय और दुःखपूर्ण बना लेते है। जीवन सम्बन्धी अपनी-अपनी सारी अभिरुचियाँ नष्ट कर डालते है। बहुत-से लोग इस शोकानुभूति को यहाँ तक बढ़ा ले जाते है कि सनकी, पागल और विक्षिप्त तक हो जाते है। बहुत बार तो शोक, खेद, निराशा और निरुत्साह की सम्मिलित प्रतिक्रिया से प्रेरित तथा प्रवाहित होकर आत्म-हत्या का पाप तक कर डालते है। क्या उनकी इस हैवत को किसी प्रकार भी बुद्धि सम्मत माना जा सकता है ? कदापि नहीं। ऐसे लोग परिस्थितियो के निकृष्टतम दास होने के साथ-साथ निन्दा और आलोचना के पात्र होते है।

यह संसार नश्वर है। यहाँ की हर चीज आने-जाने वाली है। जो आया है वह जाएगा, जो मिला वह बिछुड़ेगा, जो खिला है वह मुरझाएगा, जो जला है वह बुझेगा, यह अटल नियम है। ऐसी दशा मे किसी बिछोह-वियोग से अनुचित रूप से अभिभूत हो जाना मानसिक दुर्बलता के सिवाय और क्या हो सकता है ? परिस्थितियो की ऐसी दासता निश्चित रूप से मनुष्य को बरबाद कर देती है। बिछोह होना था हो गया। उसके लिए योग्य शोक भी कर लिया जाए तो भी कोई बात नही। किन्तु इस अटल नियम के प्रति निष्ठा न रखकर अपने को शोक के हाथो बेच देना नितान्त रूप से अवांछनीय है। इस विक्रय से न तो गया हुआ वापस आएगा और न वह नियम भविष्य के लिये अपवाद ही होगा। होगा केवल यह कि मनुष्य का अपना सारा अस्तित्व, व्यक्तित्व तथा आशापूर्ण भविष्य नष्ट-भ्रष्ट होकर समाप्त हो जाएगा।

व्यापार मे घाटा हो गया। अर्थाघात का धक्का लगा। काम-काज ठप्प हो गया। चलती हुई गाड़ी रुक गई। निराशा की बदली छा गई। ठीक है ऐसा होना अस्वाभाविक नही है। किसी हद तक दुःख हो सकता है। खेद मनाया जा सकता है तथापि यह कभी न मान बैठना चाहिए कि अब जीवन मे कोई सार अथवा सम्भावना नही रह गई है। ऐसा विचार ही विनाश का बीज होता है। संसार की सारी घटनाएँ अस्थायी तथा अचिरंजीवी होती है। उनका प्रभाव कुछ ही समय रहकर समाप्त हो जाता है। हाँ स्थायित्व उनमे तब आता है, जब मनुष्य पूर्ण निराश तथा निरुत्साह होकर अपने विनाश का विश्वास उनके साथ जोड़ देता है।

प्रायः लोग यही भूल कर बैठते है। घाटा होने पर और व्यापार के प्रसन्न प्रवाह मे व्याघात आते ही घबड़ा जाते है। सोचने लगते है अब मै दरिद्री हो जाऊँगा। मेरा कारोबार समाप्त हो जाएगा। मेरा घर, मकान रहन चला जाएगा। समाज मे मेरी प्रतिष्ठा चली जाएगी, मेरे परिवार का पतन हो जाएगा। इन्ही सब वितर्कों से अभिभूत होकर लोग निराश होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते है। परिस्थितियो को समर्पण कर देते है, जिसके फलस्वरूप उन्हे अपनी कल्पना के अनुसार अधोगति मे पड़ना पड़ता है।

न जाने लोग ऐसे समय मे यह क्यो नही सोचते कि यह सब हो कैसे जायेगा ? जब उसका शरीर, मन, मस्तिष्क आदि सब सुरक्षित है। ससार मे व्यापार, व्यवसाय का दौर चल रहा है। सम्पति समाज की समाज मे बनी हुई है, तब क्या कारण है कि अब उनकी उन्नति की सारी सम्भावनाएँ समाप्त हो गई हो। बात दरअसल यह होती है कि मनुष्य परिस्थिति के वशीभूत होकर घटना के अनुसार ही सोचने और चलने लगता है।

इसी कारण उसे चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगता है।

उसे चाहिये कि वह गये हुए का सोच छोड़कर, उसके पास जो शेष है, उसका सहारा लेकर पुनः उन्नति के प्रयत्न मे संलग्न हो जाये। किन्ही कारणो से कोई सर्वथा साधन अथवा सम्बलहीन हो जाए यह कुछ भी सम्भव नही है। यदि उसे बाह्य सम्बल नही रहे है तो उसे अपने आन्तरिक सम्बल पर निर्भर हो जाना चाहिए। धन अथवा मौलिक साधनो को ही जीवन का सम्बल मानना भारी भूल है। वास्तविक सम्बल तो मनुष्य के हृदय तथा आत्मा मे निवास करते है। जिनको आशा, उत्साह, दृढ़ता, तत्परता, साहस के नाम से पुकारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के पास और भी ऐसे सम्बल होते है, जिन्हे धन तथा मौद्रिक साधनो का स्रोत कहा जा सकता है। वह है योग्यता, अनुभव, उद्योग, पुरुषार्थ तथा परिश्रम। यही गुण तो मनुष्य की सच्ची पूँजी होते हैं। आर्थिक पूँजी के अभाव मे निराश होने के स्थान पर इस सशक्त तथा सार्थक पूँजी का अवलम्बन लेते ही पुनः आशा के द्वार खुलने लगते है।

मनुष्य की असली पूँजी तो उसकी योग्यता, अनुभव तत्परता, उद्योग तथा पुरुषार्थ ही है। वित्तीय पूँजी तो नकली पूँजी है। यदि किसी में वास्तविक पूँजी का अभाव हो और उसके सामने धन का ढेर लगा दिया जाए तो क्या वह उसका उपयोग कर कोई योग्य उन्नति कर सकता है ? कदापि नही। अयोग्य तथा अनुभवहीन आदमी के लिये धन का कोई सार्थक उपयोग नही। किन्तु यदि मनुष्य अपनी वास्तविक पूँजी पर निर्भर रहता है तो वह बिना धन के भी व्यापार तथा व्यवसाय चला सकता है। जीवन मे उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। अस्तु, मनुष्य को आर्थिक क्षति से अभिभूत होकर निराश न हो जाना चाहिये, उसे चाहिये कि वह अपनी असली पूँजी को सँभाले, उसी के आधार पर मैदान मे फिर आये और ठीक उसी प्रकार संघर्ष करके अपनी धन सम्बन्धी स्थिति को ठीक करे जिस प्रकार उसने पूर्व मे अपने व्यापार को बढ़ाया था। आर्थिक पूँजी के मातहत रहने वाले व्यवसायी निश्चय ही असफल होते है।

क्षति अथवा विछोह की परिस्थिति से पराजित हो जाने वालो मे प्रायः दो दुर्बलताएँ होती है—वे है लोभ और मोह। लोभ प्रधान व्यक्ति जरा-सी क्षति होते ही रोने-चिल्लाने लगते है। उन्हे सौ का एक सौ एक होना तो स्वीकार होता है लेकिन सौ का निन्यानवे होना उन्हे असहनीय होता है। यह कितना गलत सिद्धान्त है। जो चीज बढ़ सकती है, वह घट भी सकती है। अस्तु बुद्धिमानी इसी बात मे है कि इन दोनो दशाओ को समान रूप से स्वीकृत किया जाये। इसी प्रकार मोह प्रधान व्यक्ति सदैव यही चाहते रहते है कि उनसे सम्बन्धित हर वस्तु चिरस्थायी रहे। जो कुछ मिल गया है वह सदा ही बना रहे। आवागमन का ईश्वरीय नियम उनके लिये अपवाद हो जाए। यह एक अयोग्य तथा नास्तिकतापूर्ण वांछा है। जो कभी पूर्ण नही हो सकती। अस्तु, मनुष्य को इस आवागमन के चक्र को स्वीकार कर उसके विषय मे तटस्थ भाव ही रखना चाहिये।

अपनी तटस्थता तथा प्रसन्नता को परिस्थिति के अधीन रखने वाले उसके दास होते है। ऐसे दास प्रवृत्ति के लोग जीवन मे कभी सुखी नही रह सकते। सुख-शान्ति और आनन्द का अधिकार उन्ही का है, जो परिस्थितियो के दास न बनकर उनके स्वामी बने रहते है और किसी भी दशा मे मानवीय गुणो तथा विशेषताओ को प्रभावित नही होने देते।

आपत्तियाँ आयें तो उनसे डरिये मत

आमतौर से कुछ लोग अपने सुख-दुःख का कारण बाह्य परिस्थितियो को बतलाते है। किन्तु यह उनका भ्रम मात्र है। ससार का घटनाचक्र एक गति से चल रहा है। उसकी गतिमत्ता से उत्पन्न होने वाली कोई भी परिस्थिति अपने मे अच्छी बुरी नही होती। मनुष्य का मस्तिष्क, उसकी विचारधारा ही परिस्थितियो को अच्छा-बुरा बनाती है। एक ही तरह की परिस्थिति से एक जहाँ लाभ उठा लेता है, वहाँ दूसरा व्यक्ति उनसे कुचलकर नष्ट हो जाता है। परिस्थितियाँ अपना कोई प्रभाव रखती है या नही यह समझने के लिये महात्मा जेम्स ऐलन का निम्नलिखित संस्मरण एक उत्तम उदाहरण है। उन्होने लिखा है—

'मेरे परिचय क्षेत्र मे दो ऐसे व्यक्ति रहे है, जिनकी जीवनभर की कमाई एक साथ ही नष्ट हो गई। एक दिन प्रातःकाल उन्होने समाचार-पत्र मे पढ़ा कि जिस बैक मे उनका रुपया जमा था वह दिवालिया हो गया है। यह समाचार पढ़ते ही एक व्यक्ति इतना दुःखी और निराश हुआ कि उसका मस्तिष्क विकृत हो गया, वह बिल्कुल पागल हो गया। किन्तु दूसरे व्यक्ति ने जब यह समाचार पढ़ा तो एक गम्भीर मुस्कान के साथ शान्तिपूर्वक कहा—"ठीक ही हुआ—परमात्मा जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। मेरी अब तक की कमाई का पैसा तो मेरे हाथ से निकल ही गया, अब वह शोक करने से तो वापस मिल नही सकता—हाँ परिश्रम करने से पुनः मिल सकता है। मेरा पैसा ही तो गया, हाथ-पैर और हौसला तो नही गया। मै फिर कमा लूँगा।"

ऐसा सोचकर वह व्यक्ति पुनः नवीन उत्साह और दृढ़ आत्मविश्वास के साथ काम मे जुट गया, जिसके फलस्वरूप कुछ ही दिनो मे वह पुन. धनवान हो गया। किन्तु दूसरा व्यक्ति अपने गये हुए धन के लिए रोता और छाती पीटता हुआ शोक करता रहा। वह केवल परिस्थिति को कोसता, भाग्य को दोष देता और बैक को बुरा-भला कहता रहा। उसने उद्योग का सहारा न लेकर निराशा का पल्ला पकड़ा, जिससे वह दिन-दिन दयनीय

होता हुआ विपत्ति का शिकार बन गया। यदि वास्तविक रूप मे इस पर विचार किया जाये तो पता चलेगा कि वह विपत्ति का नही, वास्तव मे अपनी मानसिक दुर्बलता और निराशापूर्ण विचारो का ही शिकार बना।

धन नाश के समाचार पर जहाँ पर एक ने साहस का सहारा लिया, वहाँ दूसरे ने निराशा की दासता स्वीकार की और एक ही परिस्थिति मे अपने-अपने मनोभावो के अनुरूप उन दोनो को उसका फल मिला। यदि परिस्थितियो मे दुःख-सुख देने की शक्ति होती तो एक ही परिस्थितिग्रस्त उन दोनो व्यक्तियो की एक ही दशा होनी चाहिये थी। या तो दोनो दुःख से पागल हो जाते अथवा दोनो उत्साहपूर्ण उद्योगी। उन दोनो की विपरीत दशाओ से स्पष्ट सिद्ध होता है कि किसी भी परिस्थिति अथवा उलटफेर मे सुख-दुःख देने की शक्ति नही होती बल्कि यह मनुष्य की अपनी मानसिक स्थिति है जो किसी भी परिस्थिति को अच्छा या बुरा बना लेती है।

संसार मे मनुष्य के पास आशा, उत्साह और उद्योग का इतना शक्तिशाली सम्बल है, जिसके बल पर वह बड़ी से बड़ी प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बना सकता है। जो आशान्वित है, उत्साही है और उद्योगी है अमंगल अथवा अनिष्ट उसके मार्ग मे कभी नही आते और यदि संयोग अथवा भवितव्यतावश ऐसा अवसर आ भी जाता है तो पुरुषार्थी व्यक्ति उससे भयभीत नही होते। अखण्ड आत्मविश्वास के साथ उससे टक्कर लेते है और उसे पराजित करते है। इसके विपरीत जो प्रतिकूलता की छाया देखते ही काँपने और रोने लगते है। उनको वह साधारण-सी प्रतिकूलता भी भयानक प्रेत की तरह लग जाती है और अन्त मे विनष्ट करके ही मानती है। लाख अवरोध आये, प्रतिकूलतायें घेरे, परिस्थितियाँ बदले, अभाव और आपत्ति क्यो न टूट पड़े, मनुष्य को कभी निराश नही होना चाहिए। धैर्य और साहस ससार की हर आपत्ति का अमोघ उपचार है।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कर्तव्य पथ पर सावधानी के साथ चले। अपनी ओर से सघर्ष, संकट अथवा आपत्ति का कोई कारण उपस्थित न होने दे। तब भी यदि कोई ऐसी स्थिति आ जाती है तो चिन्ता मत कीजिये। दूसरे के द्वारा प्रेरित आपत्ति आप पर एक अन्याय है और अन्यायपूर्ण आक्रमण कभी सफल नही होता। यदि आप अपने कर्तव्य पथ और व्यवहार के प्रति ईमानदार है तो अन्याय प्रेरित आपत्ति को देखकर आप मे एक तेजस्विता जागेगी, आपकी शक्ति बढ़ेगी और आगे बढ़कर उसका सामना करने का उत्साह होगा। सत्य आपकी सहायता करेगा, साहस साथ देगा और विजय श्री आपका वरण करेगी।

ससार मे संकट असम्भाव्य नही। अनुत्तरदायी और अनुचित व्यक्तियो के अकर्त्तव्यो से जन्मी हुई आपत्तियाँ संसार मे भरी पड़ी है। उनमे से कोई भी किसी पर किसी समय आ सकती है। अपनी ओर से आपत्ति को जन्म न देना और पर-प्रेरित संकट से टक्कर लेना मनुष्यता का एक उदात्त लक्षण है।

संसार मे बड़े संकटो से टक्कर लेने के लिये मनुष्य को हर समय तैयार रहना चाहिये। क्या अच्छे और क्या बुरे ? संकट हर मनुष्य पर आ सकता है। किन्तु जिसके पास चरित्र का बल है, विचारो का तेज और आत्मिक आलोक है, वह संकट काल से उसी प्रकार हँसता हुआ बाहर निकल आयेगा जैसे ग्रहण से उमड़ होकर पूर्णिमा का चन्द्रमा। जो चरित्रहीन है, कलुषित है, आत्महत्यारा है, वह सकट का झोका लगते ही स्खलित नक्षत्र की भाँति टूटकर गिर पड़ेगा।

आपत्तियों से डरिये नहीं, लड़िये

परिवर्तन संसार का स्वाभाविक गुण है। यह एक रस कदापि नहीं रह सकता। ऋतुओं का परिवर्तन, रात-दिन, धूप-छाँह की अदल-बदल यही प्रकट करते है कि संसार की शोभा भी इसके परिवर्तनशील होने मे है। हर परिवर्तन एक नवीन जिन्दगी लेकर आता है। जब संसार ग्रीष्म मे तपकर व्याकुल हो उठता है, तब बरसात उसका ताप दूर करके एक नव-जीवन, 'नये सुख' का संचार करती है। बरसात से जब नदियाँ बढ़ जाती है, रास्ते बन्द हो जाते है, पानी गँदला हो जाता है, कीड़े-मकोड़े बढ़ जाते है, तब इनका निवारण करने के लिये शरद् ऋतु आती है और बरसात से ऊबा हुआ मनुष्य पुनः एक नवीन जीवन का अनुभव करता है। इसी प्रकार जब जाड़ा प्राण लेवा बन जाता है, तब पुन. शीत-रहित ऋतु का आगमन होता है। आशय यह है कि एक-सी स्थिति में रहते संसार के प्राणी ऊबकर विरक्त न होने लगे, इसलिये परमात्मा ने ससार मे परिवर्तन का एक अनिवार्य नियम बना दिया है।

ससार का एक अंग होने से मनुष्य का जीवन भी परिवर्तनशील है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि का परिवर्तन, तृषा-तृप्ति, काम, आराम, निद्रा, जागरण तथा जीवन-मरण के अनेक परिवर्तन मानव-जीवन से जुड़े हुए है। इसी प्रकार सफलता-असफलता तथा सुख-दुःख भी इसी परिवर्तनशील मानव जीवन के एक अभिन्न अग है।

परिवर्तन जीवन का चिन्ह है। अपरिवर्तन जड़ता का लक्षण है। जो जीवित है, उसमे परिवर्तन आयेगा ही, इस परिवर्तन मे ही रुचि का भाव रहता है। एकरसता हर क्षेत्र में ऊब और अरुचि उत्पन्न कर देती है।

कठिनाइयो का आगमन भी इसी परिवर्तनशीलता के ही अन्तर्गत हुआ करता है मानव-जीवन सघर्षपूर्ण प्रक्रिया है। अधिकतर लोग सघर्ष को बुरा मानते है, उससे बचने का प्रयत्न करते है। किन्तु यह सघर्ष ही मनुष्य जीवन के विकास एव सफलता का कारण है। यदि सघर्ष न हो तो

कोई शक्तिशाली, विद्वान, पुरुषार्थी अथवा परिश्रमी बनने का प्रयत्न ही न करे। स्पर्धारूपी संघर्ष ही मनुष्य को एक-दूसरे से ऊँचा कलाकार, कार्यकर्ता तथा शिल्पकार बनने की प्रेरणा देता है। यदि मनुष्य को बिना श्रम किये भोजन मिल जाया करे, प्रकृति की कठोरता से संघर्ष किये बिना ही यदि उसकी आवश्यकताएँ पूरी हो जाया करतीं, तो मनुष्य कितना काहिल और निकम्मा होता, इसका अनुमान लगा सकना कठिन है ?

प्राकृतिक कठोरताओ के संघर्ष से ही प्रेरित होकर मनुष्य ने जीवन मे सुख-सुविधाओ के रूप में बड़ी-बड़ी सभ्यताओ एवं संस्कृतियों का निर्माण कर डाला है। प्रकृति से छिड़े हुए संघर्ष ने ही संसार मे आश्चर्यचकित कर देने वाले शिल्पों को जन्म दिया है। संघर्ष संसार की न केवल स्वाभाविक प्रक्रिया है, बल्कि परिवर्तन की तरह यह आवश्यक भी है। इसके बिना मनुष्य का विकास रुक जाता और भौचक्की कर देने वाली विज्ञान एवं ज्ञान की प्रगति न होती।

किन्तु कितना आश्चर्य है कि मानव-विकास की इस अनिवार्य आवश्यकता से न जाने मनुष्य क्यो डरता है ? परिवर्तन से डरना और संघर्ष से कतराना मनुष्य की बहुत बड़ी कायरता है।

मनुष्य जब तक जीवित है, उसे परिवर्तनपूर्ण उतार-चढ़ाव और बनने-बिगड़ने वाली अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियो का सामना करना ही होगा। दुःख-सुख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता, सुविधा एवं कठिनाइयो के बीच से गुजरना ही होगा। लाख चाहने और प्रयत्न करने पर भी वह इनको आने से नही रोक सकता। यह आयेंगी ही और मनुष्य को इनसे जूझना ही होगा।

यह बात दूसरी है कि कोई कायर इनकी मार खाकर रोता-चिल्लाता हुआ इनको पार करता है और कोई साहसी अपने आत्म-बल एवं पुरुषार्थ के सम्बल का सहारा लेकर या तो इनको अपने अनुकूल बना लेता है या इनका मुख मोड़ देता है।

रोना-धोना, शोक, चिन्ता और विषाद करने से कोई परिस्थिति नहीं बदलती, कोई कठिनाई दूर नही होती। बल्कि वे कमजोर मनोभूमि पाकर और भी विकराल रूप मे अपना ताण्डव करती हुई कायर के भय से मनोरंजन किया करती है। जहाँ उनके ठहरने का समय एक दिन, दो-दिन होता है, वहाँ वे महीनो, वर्षों के लिये अपना टिकासर लगा देती है। रोना-झीकना, भयभीत होना अथवा भागना एक प्रकार से कठिनाइयों एव आपत्तियो के प्रति आत्ममर्पण करना है और किसी शत्रु के सम्मुख आत्मसमर्पण करने का जो फल होता है, वही उसे भोगना पड़ता है। ऐसे दुर्बल व्यक्ति का आत्मसमर्पण पाकर आपत्तियाँ उसका सर्वस्व हरण कर लेती हैं। उसकी मानसिक शक्तियो, आत्मिक बल, प्रसन्नता, आशा, उल्लास आदि सम्पत्तियो को हड़प कर नितान्त दरिद्री बना देती है।

परिवर्तन के नियम और संघर्ष में प्रबलता के कारण जब जीवन मे कठिनाइयाँ, परेशानियो और आपत्तियों का आना अनिवार्य ही है, तब रोने-धोने, भागने, भयभीत होने के स्थान पर उनसे लड़ना और टकराना ही उचित मालूम होता है।

बिना कठिनाइयों के मनुष्य का पुरुषार्थ नही खिलता, उसके आत्म-बल का विकास नही होता, उसके साहस और परिश्रम के पंख नहीं लगते, उसकी कार्यक्षमता का विकास नही होता। यदि कठिनाइयाँ न आवे तो मनुष्य साधारण रूप से रेलगाड़ी के पहिये की तरह निरुत्साह के साथ लुढ़कता चला जाये। उसकी अलौकिक शक्तियो, उसकी दिव्य क्षमताओ, उसकी अद्भुत बुद्धि और शक्तिशाली विवेक के चमत्कारो को देखने का अवसर ही न मिले। उसकी सारी विलक्षणताएँ, अद्भुत कलाएँ और विस्मयकारक योग्यताएँ धरती के गर्भ मे पड़े रत्नो की तरह ही पड़ी-पड़ी निरुपयोगी हो जातीं।

निःसन्देह यह आपत्तियो तथा कठिनाइयो की कृपा है जोकि मनुष्य अपनी शक्तियो तथा अपने स्वरूप को पहचान सका है। कठिनाइयाँ ही मनुष्य के मस्तिष्क को जगाती, उसकी आत्मा को प्रबुद्ध करती और उसको विकास के पथ पर अग्रसर करती है। मनुष्य को आपत्तियो से घृणा नही बल्कि प्रेम करना चाहिये उनका आभार मानना चाहिये।

मनुष्य के ज्ञानवर्धन मे कठिनाइयो का बहुत हाथ है। आपत्ति के समय ही मनुष्य को ठोस अनुभव होते है। आपत्तिकाल मे ही उसे अपने-परायो की, मनुष्यता एवं पशुता की परख होती है। कठिनाइयाँ तथा आपत्तियाँ ही संसार के वास्तविक रूप को उसके सामने प्रकट करती है। कठिनाइयाँ ही मनुष्य को अपने प्रति बहुत-से भ्रमो को दूर कर देती है। आपत्ति के बीच अपनी दशा देखकर ही मनुष्य ठीक-ठीक समझ पाता है कि वह कितने पानी मे है ? बड़े-बड़े साहसी अपने को कायर तथा कमजोर समझने वाले देखते है कि उनमे तो काफी साहस है। इस प्रकार कठिनाइयाँ मनुष्य के लिये हर प्रकार से सहायक तथा उपयोगी ही होती है।

किन्तु किसके लिये ? क्या उनके लिये जो उनको देखते ही दुम-दबाकर भागते या रोते-चिल्लाते है। क्या आपत्तियों मे जिनकी बुद्धि विकल एवं भ्रष्ट हो जाती है, मन का सारा साहस कूच कर जाता है ? क्या उनके लिये जो भीरु है, सुकुमार है, असहिष्णु अथवा सुखलिप्सु है ? नही, कठिनाइयो का सहन कर सकना निर्बल हृदय व्यक्ति के वश की बात नही है और जो उनको सहन नहीं कर सकता, वह सिद्धि पाना तो दूर उनसे लाभ उठाना तो क्या, उल्टे उनमे जलकर भस्म ही हो जायेगा। आपत्तियों का झंझावात जहाँ नरसिंहो को झकझोर कर उनका प्रमाद दूर करके पुरुषार्थ के लिये खड़ा कर देता

है, वहाँ शृगाल-शशाको को भयभीत करके जीवन-रण मे परास्त कर देता है।

आपत्तियाँ संसार का स्वाभाविक धर्म है। वे आती है और सदा आती रहेगी। उनसे न तो भयभीत होइये और न भागने की कोशिश करिये, बल्कि अपने पूरे आत्म-बल, साहस और शूरता से उनका सामना कीजिये, उन पर विजय प्राप्त करके ही जीवन से बड़े-से-बड़ा लाभ उठाया जा सकता है।

साहस का देवता और उसकी उपासना

भगवान ने मनुष्य को अगणित शक्तियो का भाण्डागार बनाकर इस धरती पर इसलिये भेजा है कि वह उन क्षमताओ का उपयोग करके अपने लिए सुख-शान्ति, समृद्धि और प्रगति के साधन उपलब्ध करे और दूसरो के लिए मार्गदर्शन एवं सहयोग के सरंजाम जुटाये। मानव जीवन की सफलता इन शक्तियो को पहचानने, उन्हे विकसित एवं उपयुक्त दिशा मे प्रयोग कर सकने पर निर्भर है।

जो अपनी इन शक्तियो को जानते नही और अभिवर्द्धन एवं प्रयोग की व्यवस्था नही बनाते वे इस संसार मे दीन-दुःखी, दरिद्र, असहाय और उपेक्षित बने हुए अभाव एवं तिरस्कार का दण्ड पाते रहते है। इस आत्म-विस्मृति की दुःखदायी प्रतिक्रिया का नाम नरक है। अपने आपे को भूलकर अपनी क्षमताओ की उपेक्षा कर, अपने साहस को त्यागकर हम स्वयं अपने लिए नरक का सृजन करते है। मनुष्य अभाव-ग्रस्त और दीन-दुःखी जीवनयापन करने के लिए पैदा नही किया गया। अभाव और क्लेश अपने आपे को ठीक तरह न समझने और उसका समुचित प्रयोग न कर सकने का परिणाम मात्र है। अपनी उपेक्षा करना एक बहुत भारी अपराध है। नियति इसे सहन नही करती, इस प्रकार के अपराधी दुर्भाग्य के कुचक्र मे पिसते हुए निरन्तर काँपते देखे जा सकते है।

अध्यात्म की प्रथम शिक्षा अपनी महत्ता को समझना, अपनी शक्तियो को ढूँढ निकालना और उनके सदुपयोग मे जुट जाना है। इस साधना मे प्रवृत्त व्यक्तियो के ऊपर ऋद्धि-सिद्धि छाया किये खड़ी रहती है और उस पर चँवर डुलाती देखी गई है।

उच्च स्तर के लोग अपनी क्षमताओं को समझते और विकसित तो करते ही है साथ ही इतना साहस और करते है कि अपनी विभूतियो के उपयोग का क्षेत्र लोभ-मोह एव वासना-तृष्णा तक सीमित न रखकर, उनका प्रयोग क्षेत्र उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता के लिए व्यापक बना देते है। ऐसे ही व्यक्ति आत्म-कल्याण का, शाश्वत शान्ति का और जीवन-लक्ष्य की पूर्ति का प्रयोजन पूरा करते है। इन्हे इतिहास महामानव के रूप मे स्मरण रखता है।

सामान्य सफलता से भी यह मूल्य कीमती है कि उनके लिए प्रबल पुरुषार्थ किया जाए। कृषि, व्यवसाय, शिल्प, अध्ययन, नौकरी, कला, कौशल कोई भी दिशा क्यो न हो प्रगति के लिए कठोर श्रम एवं तन्मयतापूर्ण अध्यवसाय हर हालत में चाहिए। कोई विद्वान, कलाकार, धनी, नेता एवं शीर्षस्थ व्यक्ति ऐसा न मिलेगा जिसे पुरुषार्थ की कसौटी पर कसकर खरा सिद्ध न होना पड़ा हो।

साहस के देवता की प्रथम साधना शारीरिक श्रम से प्रसन्नता अनुभव करने के साथ आरम्भ करनी होती है। आलस्य हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। दरिद्रता और अस्वस्थता उसी के अभिशाप है। शरीर को आरामतलब बना लेना, बैठे-ठाले रहने मे सन्तोष करना, मेहनत से जी चुराना, समय काटने के लिए मटरगश्ती करना, तथाकथित यार-दोस्तो मे गप-शप लड़ाते रहना, ऐसे दुर्गुण है जो जहाँ भी रहेगे वहाँ दरिद्रता आकर रहेगी। पूर्व उपार्जित पूँजी धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगी। मौका पाकर साथी और कर्मचारी अनुचित लाभ उठाने को उत्सुक होगे और जो मुट्ठी मे है, उसको सुरक्षित रख सकना भी सम्भव न रहेगा। यह विचार सही नहीं है कि जो अमीर होते है, वे मौज करते है, जो गरीब है, उन्ही को श्रम करना पड़ता है।' सचाई यह है कि जो श्रमशील है, वे ही अमीर बनते है और जो आरामतलबी के शिकार है वे क्रमश: गरीबी के गर्त मे चले जाते है।

प्रगति किसी भी दिशा मे करनी हो, सफलता किसी भी क्षेत्र मे पानी हो, उसके लिये कठोर श्रम से ही काम चलेगा। चालाकी और बेईमानी के सहारे कई व्यक्ति बिना श्रम के भी सफलताएँ पाते देखे जाते है, पर यह पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि उन उपलब्धियो की जड़े खोखली होती है। उनके विदा होते इतने भी देर नही लगती जितनी बादल की छाँह को। टिकाऊपन केवल परिश्रम के उपार्जन मे है। धन ही नहीं स्वास्थ्य भी श्रम पर ही टिका हुआ है। यह गाँठ बाँध रखनी चाहिए कि नीरोग एव परिपुष्ट वे रहेगे जिनका शरीर कठोर श्रम में निरत रहेगा, जिन्होने हाथ-पैर चलाने मे आना-कानी की, उन्हे अस्वस्थता की विविध-विधि पीड़ाएँ सहने के लिए विवश होना पड़ेगा। शरीर और धन उनका पुष्ट रहेगा, जो समय को श्रमशीलता के साथ जोड़े रहेगे। गहरी नींद और कड़ी भूख का आनन्द उन्हे मिलेगा। जो मेहनत-मशक्कत से अपने आपको थककर चूर करने मे उत्साह एवं आनन्द अनुभव करते होगे। हमारा साहसिक प्रथम चरण यही हो सकता है कि आलस्य को मार भगावे। एक क्षण भी बेकार बरबाद न करे और निरन्तर क्रमबद्ध कार्य मे व्यस्त रहने की आदत डालें।

साहस के देवता की साधना का दूसरा चरण है, मन की अस्त-व्यस्तता दूर करना। देखा गया है कि कितने लोगो का मन बड़ा चंचल रहता है। अनर्गल और अनावश्यक विचार मस्तिष्क मे घुमड़ते रहते है। जिन बातो का अपने से सीधा सम्बन्ध नहीं, उन निरर्थक और अनर्गल बातो को सोचते रहते है और चिन्तन की एक बहुत बड़ी शक्ति का महत्वपूर्ण अंश यो ही निरर्थक खर्च हो जाता है। अपने स्वभाव मे जिन अनावश्यक आदतो की घुसपैठ है, उन्हे हटाने के लिए क्या-क्या किया जाय ? जो सद्गुण एवं सत्प्रवृत्तियाँ अपने मे नहीं है, उनका अभ्यास अभिवर्धन कैसे किया जाय ? इन प्रश्नो पर कभी सोचने का प्रयत्न नही किया जाता। अपना व्यक्तिगत जीवनक्रम कितना अस्त-व्यस्त है और पारिवारिक ढाँचे को सुधारने, बदलने के लिए क्या-क्या किया जाना चाहिए ? जिन कारणो ने अपने प्रगति पथ को अवरुद्ध कर रखा है, उन्हे कैसे व्यवस्थित किया जाय ? यदि इन प्रश्नो पर हम अपनी शक्ति को लगाये, जीवन जीने की कला, समस्याओ के समाधान तथा उत्कर्ष की दिशा मे होने वाले प्रयोगो एवं अनुभवो को पढ़े, सुनें, समझे उन पर चिन्तन करे तो हमारा मस्तिष्क हमारे लिए कल्पवृक्ष का काम कर सकता है। पर उसका अधिकांश भाग तो अनर्गल चिन्तन मे ही नष्ट हो जाता है। तृष्णा, वासना, लोभ-मोह, शौक-मौज, द्वेष, दुर्गुणो के द्वारा उत्पन्न की हुई इतनी ज्यादा गुत्थियाँ सामने होती है कि उनका हल ढूँढ़ना ही मस्तिष्कीय विचारणा के लिए कठिन पड़ता है। ऐसी दशा मे बौद्धिक चेतना की ज्ञानवृद्धि एव सत्प्रवृत्तियो के अभिवर्द्धन मे कैसे लगा जाय ? इसी कुचक्र मे पड़े हुए हम अपनी मानसिक क्षमताओ को नष्ट-भ्रष्ट करते रहते है और खाली हाथ इस संसार से उठ जाते है। यदि इस कुचक्र को तोड़ने की मनस्विता का परिचय दिया जा सके तो समझना चाहिए कि हमने साहस के देवता की पूजा का दूसरा चरण पूरा कर लिया। शरीर और मन को व्यवस्थित और सत्प्रवृत्तियो का अनुगामी बनाने के लिये जो अपने आप से संघर्ष करना पड़ता है, वही गीता मे वर्णित महाभारत है। इसमे विजय प्राप्त कर लेना एक ऐसा पुरुषार्थ है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति की महत्ता और उपयोगिता मे आशाजनक अभिवृद्धि होती है और वह साधारण परिस्थितियो मे रहते हुए भी अपने आप को बहुत समुन्नत एव सन्तुष्ट अनुभव करने लगता है।

साहस के देवता की पूजा का अन्तिम एवं उत्कृष्ट चरण है, अपने सकीर्ण स्वार्थो की परिधि से बाहर निकलकर परमार्थ के पुण्य-प्रयोजनो मे अपनी विचारणा एव उपलब्धियो को नियोजित कर सकना। अपनी तुच्छता एव सकीर्णता को रौंदता हुआ विश्व मानव की सेवा साधना की ओर जो जितने कदम बढ़ा सका, समझना चाहिए कि उसने उतने ही बड़े शौर्य का परिचय दे दिया है। शारीरिक और मानसिक वीरताये कई लोग बड़ी आसानी से दिखा सकते है, पर आध्यात्मिक वीरता जिसका अर्थ है—स्वार्थपरता की संकीर्ण परिधि से बाहर निकलकर परमार्थ के लिए, लोकमंगल के लिए , आवश्यक त्याग, बलिदान का परिचय देना, निःसन्देह बहुत ही कठिन है। उसे केवल उदात्त, उदार, वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रवृत्ति वाले लोग ही कार्यान्वित कर सकते है। आदर्शवाद की लम्बी-चौड़ी बाते बखानना किसी के लिए भी सरल है, पर जो उसे अपने जीवनक्रम मे उतार सके, सचाई और हिम्मत का धनी उसी को कहा जायेगा। ऐसे व्यक्ति कम ही होते है पर जो होते है वे अपने समय की प्रकाशवान विभूति माने जाते है।

व्यक्ति वस्तुतः तुच्छ एवं महान् है उसकी परीक्षा एक ही कसौटी पर होती है कि उसने अपनी प्रतिभा का लाभ अपने या अपने स्त्री-बच्चो के लिए सुरक्षित रखा अथवा ईश्वर प्रदत्त इन विभूतियो को ईश्वरीय प्रयोजन के लिए, लोकमंगल के लिए लगाने का दुस्साहस कर डाला। दुस्साहस शब्द का प्रयोग इसलिए किया जा रहा है कि इन दिनों लोगो की मनोदृष्टि बेतरह स्वार्थपरता मे जकड़ी हुई है। हर कोई केवल अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति मे ही संलग्न है। धन, रूप, यश, भोग और पद से अधिक और किसी को कुछ नही चाहिए। पूजा-पाठ की आड़ मे भी इन भौतिक प्रयोजन की पूर्ति ही छिपी रहती है। राम, रहीम का पल्ला भी इसीलिये पकड़ा जाता है कि सांसारिक सुख-साधनो का वह लाभ मिल जाय जो अपने पुरुषार्थ से प्राप्त नही किया जा सका। ऐसे जमाने मे जिसमे तृष्णा और वासना की पूर्ति से आगे की बात किसी को सुहाती ही नही—इस प्रकार का साहस दिखा सकना जिसमे अपने लिए असुविधा और दूसरो के लिए सुविधा उत्पन्न होती हो, निस्सन्देह बहुत बड़ी हिम्मत का काम है। ऐसे साहस का उच्चारण ही नही प्रयोग जो कर सके उन्हे धारा का प्रवाह चीरते हुए उल्टी दिशा मे चल सकने वाले राजा की तरह ही प्रबल पुरुषार्थी माना जायेगा। प्राचीनकाल मे ऐसे नर-रत्न घर-घर मे पाये जाते थे, जो तुच्छ स्वार्थो को कुचलकर आदर्शवादिता के लिए अपना जीवनक्रम सँजाये। पर आज तो वह इतिहास पुराणो की चर्चा रह गई है। एक-दूसरे को बहकाने के लिए इस तरह की लम्बी-चौड़ी कथा, चर्चा परस्पर करते तो देखे, सुने जाते है, पर जो व्यवहार मे भी उन सिद्धान्तो को ला सके, दीख नही पड़ते। स्वार्थपरता और संकीर्णता की कीचड़ मे जहाँ कीड़े कुलबुला रहे है, वहाँ कमल पुष्पो का खिलना एक अचरज ही कहा जायेगा। ऐसा अचरज केवल साहसी और दुस्साहसी कर सकते है।

विपत्तियों को कैसे जीता जाय ?

उन्नति और विकास का मार्ग कठिनाइयो के ककरीले पथ से ही जाता है। जो व्यक्ति जीवन मे कठिनाइयो से घबराता है, उसे उन्नति की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। उन्नति का अर्थ ही ऊँचाई है, जिस पर

चढ़ने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है। समतल पर चलने की अपेक्षा कहीं अधिक पसीना बहाना पड़ता है। पतन की ओर चलने मे मनुष्य को न तो कोई विशेष श्रम करना पड़ता है और न उसे अधिक विलम्ब लगता है। यदि दो आदमियो मे से एक को निम्नगामी और दूसरे को ऊर्ध्वगामी मार्ग पर चलाया जाये तो जहाँ एक निश्चित दूरी पर पहुँचने के लिए निम्नगामी को एक दिन लगेगा वहाँ ऊर्ध्वगामी को चार दिन लग जायेगे। जहाँ निम्नगामी को कोई परिश्रम न करना होगा, वहाँ ऊर्ध्वगामी पसीना-पसीना हो जायेगा।

उन्नत मार्ग मे कठिनाइयाँ स्वाभाविक है। यदि ऐसा न होता तो संसार मे सभी महान् बन सकते, कोई साधारण, सामान्य अथवा पतित होता ही नही, कठिनाइयो पर विजय पाना ही उन्नतिशीलता है।

मनुष्य एक देव है और पशु भी किन्तु इन दोनो मे जो अन्तर है, वह यह कि मनुष्य एक प्रगतिशील तथा उन्नतिप्रिय प्राणी है, जबकि पशु आदि से अन्त तक प्राकृत अवस्था मे रहता है। प्रगति क्या है ? उन्नति किसे कहते है ? इस विषय मे वह कुछ भी नही जानता। वह जिस अवस्था मे उत्पन्न होता है, अन्तिम दिन तक उसी अवस्था मे रहता है। कठिनाइयो को समझने, उनसे लड़ने और बचने के विषय मे विचार करने की बुद्धि उसमे नही होती। अपनी भयवृत्ति की प्रेरणा से ही वह किसी संकट का अनुमान कर पाता है और उसी की प्रेरणा से बचाव के लिये भागता, छिपता या लड़ता-मरता है। जिस समय उसकी यह भयवृत्ति उसको भागने की प्रेरणा देती है, वह भाग खड़ा होता है और जिस समय लड़ने-मरने की प्रेरणा देती है, लड़ने-मरने लगता है। उसका यह काम बुद्धिसंगत नही होता। वह धैर्यपूर्वक विचार करके अपना कर्तव्य नही कर पाता। संकट से भागने अथवा लड़ने मे उसकी कायरता अथवा वीरता का समावेश नही होता। वह भागता है तो भय की प्रेरणा से और लड़ता है, तो भी उसी की प्रेरणा से।

मनुष्य की विशेषता है, बुद्धिपूर्वक निश्चय करके कोई कर्तव्य करना। जो आवेगो, आवेशो और प्रकृत प्रवृत्तियो से प्रेरित होकर कोई काम करता है, उसे मनुष्य के रूप मे होने पर भी पशुओ की कोटि मे ही मानना चाहिए। बाहर से मनुष्य दीखने पर भी अन्दर से वह पशु ही है।

उन्नति की कामना मनुष्य की दिव्य विशेषता है। अपने को मनुष्य मानने वाले प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह जीवन मे अधिक उन्नति करने का प्रयत्न करे।

जैसा कि निश्चित है, उन्नति का मार्ग कठिनाइयो के बीच से जाता है। अतएव प्रत्येक उन्नतिकाक्षी व्यक्ति को कठिनाइयो को समझने और उनसे लड़ने की क्षमता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

कठिनाइयाँ क्या है ? कठिनाइयाँ जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ हैं, जो ध्येय-पथ पर चलते हुए व्यक्ति के लिए गतिरोध उत्पन्न करती हैं। यहाँ परिस्थितियाँ मनुष्यजन्य तथा निसर्गजन्य दोनो प्रकार की हो सकती है। मनुष्यजन्य परिस्थितियाँ उन अवरोधो को कह सकते है, जो एक मनुष्य दूसरे के मार्ग मे स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष अथवा अहंकार से प्रेरित होकर छल-कपट, वंचना, प्रतारणा आदि विश्वासघात, अपवाद, निरोध अथवा विवाद आदि के रूप मे उपस्थित करता है। निसर्गजन्य अवरोध आकस्मिक आधि-व्याधि अथवा दुर्घटनाओ को कह सकते है। इस प्रकार के गतिरोध किसी भी मनुष्य के जीवन मे किसी भी समय सम्भाव्य है। अतएव इनका सामना करने के लिये मनुष्य को प्रत्येक क्षण प्रस्तुत रहना चाहिए।

संकट हजार प्रकार के हो सकते है। कौन-सा संकट किस समय उपस्थित हो सकता है, इसका पूर्वाभास सदैव सम्भव नही और न यही सम्भव है कि हर संकट का सामना करने के लिए कोई उनके अनुरूप हर प्रकार का प्रबन्ध पहले से करके रख ले। अस्तु कोई न कोई एक ऐसा उपाय निकालना ही बुद्धिमानी होगी, जो किसी भी प्रकार के संकट का सफल और सदा सहायक उपचार हो और यह एकमात्र सर्वतोमुखी उपचार मनुष्य का अपना दृष्टिकोण ही है।

मनुष्य के दृष्टिकोण से ही मित्र-शत्रु और शत्रु-मित्र दीखने लगता है। यह मनुष्य के दृष्टिकोण का ही फल है कि कभी अच्छी बात बुरी और बुरी बात अच्छी लगने लगती है। यह मनुष्य का दृष्टिकोण ही मानना चाहिए कि कभी वह साधारण घटना मे ही घबरा उठता है और कभी बड़े-बड़े संकटो मे हँसता रहता है। अच्छाई, बुराई, शत्रुता-मित्रता, सम्पत्ति-विपत्ति, कठिनता-सरलता, प्रतिकूलता-अनुकूलता आदि सारे द्वन्द्व मनुष्य के अपने दृष्टिकोण के ही प्रतिबिम्ब है। वैसे इनका कोई अपना स्वरूप नही होता। यदि मनुष्य अपने मे समता का दृष्टिकोण विकसित करले तो सारी विषमताएँ आप से आप ही नष्ट हो जाये।

जीवन मे अनेक ऐसे अवसर आते रहते है, जब मनुष्य का चित्त बहुत खिन्न हो जाता है। कार्यों मे निरुत्साह और हृदय मे विषाद छा जाता है। चारो ओर निराशा और प्रतिकूलता ही दृष्टिगोचर होने लगती है। इस प्रकार की स्थिति किसी भी उन्नतिकाक्षी व्यक्ति के लिये हानिकारक है। इस प्रकार के प्रतिगामी वातावरण मे समय और सामर्थ्य दोनो की क्षति होती है। हर कदम पर आगे बढ़ने वाले को प्रत्येक क्षण प्रफुल्ल, प्रसन्न और उत्साहित रहना बहुत आवश्यक है।

संसार मे जो भी विषमताएँ दिखाई देती हैं, वह सब हमारे दृष्टिकोण का ही प्रतिफल है। अँधेरे मे बैठकर सारी दुनिया अँधेरी और उजेले मे रहकर देखने से उजेली मालूम होती है। यदि शत्रु के प्रति हमारा दृष्टिकोण

बदलकर मित्रतापूर्ण हो जाये तो शत्रु को देखकर हमे जो ईर्ष्या, द्वेष अथवा घृणा होती है वह बदल जाय, जिसके फलस्वरूप हमारे हृदय की प्रसन्नता अक्षुण्ण बनी रहे और उसके अभाव मे होने वाली हानि से हम बच जायें।

यही बात परिस्थितियो और कठिनाइयो के विषय मे भी लागू होती है। कठिनाइयों को जब हम अपना विरोधी मानकर उनके प्रति अपना दृष्टिकोण भिन्नतापूर्ण बना लेते है, तो उनके उपस्थित होते ही हम क्षुब्ध और अधीर हो उठते है, जिससे हमारा मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और हम उनका हल निकाल सकने में असमर्थ हो जाते है। हल के अभाव मे ही कठिनाइयाँ गतिरोध बनकर हमारा पथ अवरुद्ध कर लेती है।

यदि कठिनाइयो के प्रति हम अपना दृष्टिकोण सौम्य रखे; उन्हे सावधान, सचेत और अधिक गतिशील बनाने वाला देवदूत समझे तो उनके आने पर हम लाभ ही उठा सकते है।

समतापूर्ण दृष्टि मनुष्य का सबसे बड़ा हित साधक है। इसकी उपलब्धि मनुष्य को तब ही होती है, जब वह संसार की प्रत्येक कार्य विधि को ईश्वर की इच्छा मानता है। अनुकूलताओ से घृणा करने वाला मनुष्य जीवन मे कभी उन्नति नही कर सकता। संसार मे एकमात्र अनुकूलताओ की आशा लेकर चलने वाले मनुष्य को विफलताओ की मरुभूमि मे भटकना ही पड़ेगा। अपने सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क से जो अनुकूलताओ का ही उपासक बना रहता है और प्रतिकूलताओ के लिए जरा भी स्थान नही रखता, उसे यदा सम्भाव्य प्रतिकूलताओ के अवसर पर विचलित, अस्त-व्यस्त हो जाने के लिए सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए। अनुकूलता मे प्रसन्न और प्रतिकूलता मे रोने वाले व्यक्ति भूले की तरह आगे-पीछे जाते हुए एक ही स्थान पर रहते है न वे आगे बढ़ पाते है और न उन्नति कर पाते है।

ससार के प्रत्येक घटनाक्रम मे ईश्वरीय आदेश का दृष्टिकोण रखकर ही अपना कर्त्तव्य करते रहना चाहिये।

ऐसी दशा मे उसे खिन्न और हतोत्साह होने का कोई अवसर न होगा। खिन्नताओ, व्यग्रताओ, भयो और विषादो से मुक्त रहकर, जो प्रत्येक परिस्थिति मे परिपूर्ण रहकर कार्य करता है वह अवश्य उन्नति के शिखर पर पहुँचता और यह अहैतुक प्रसन्नता का दृष्टिकोण, ईश्वर मे अडिग विश्वास और संसार के प्रत्येक क्रिया-कलाप को उसकी ही इच्छा समझने से उपलब्ध हो सकता है।

कठिनाइयाँ क्या हैं ?

सृष्टि संचालन के सार्वभौम नियमो के अनुसार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे परिवर्तन होते रहना एक स्वाभाविक बात है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होता है। वर्षा के बाद शरद और इसके पश्चात् ग्रीष्म ऋतु का आना भी निश्चय प्रायः ही होता है। सूर्य, चन्द्र एवं अन्य ग्रह भी एक नियमबद्ध गति मे चलते है। इसी तरह मानव जीवन भी इन सार्वभौम नियमो के अन्तर्गत सदैव एक-सा नही रहता। मनुष्य की इच्छा हो या न हो, जीवन मे भी परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आती ही रहती है। आज उतार है तो कल चढ़ाव। चढ़े हुए गिरते है और गिरे हुए उठते है। आज अँगुली के इशारे पर चलने वाले अनेको अनुयायी हैं तो कल सुख-दुःख की पूछने वाला एक भी नहीं रहता। रंक कहाने वाला एक दिन धनपति बन जाता है, तो धनवान निर्धन बन जाता है। जीवन मे इस तरह की परिवर्तनशील परिस्थितियाँ आते-जाते रहना नियतिचक्र का स्वाभाविक नियम है। इनसे बचा नहीं जा सकता, इन्हे टाला नही जा सकता।

एकांगी विचार प्रेरित मनुष्य इस नियति के विधान को नही समझ पाता। वह अपनी इच्छा, कामना के अनुकूल परिस्थितियो मे ही सुख अनुभव करता है तो विपरीत परिस्थितियो मे दुःखी हो जाता है। अधिकांश व्यक्ति सुख, सुविधा, सम्पन्नता, लाभ, उन्नति आदि मे प्रसन्न और सुखी रहते है, दुःख, कठिनाई, हानि आदि मे दुःखी और उद्विग्न हो जाते है। किन्तु यह मनुष्य के एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है और इसी के कारण कठिनाई, मुसीबत, कष्ट आदि शब्दो की रचना हुई। वस्तुतः परिवर्तन मानव जीवन मे उतना ही महत्त्वपूर्ण, सहज और स्वाभाविक है, जितना रात और दिन का होना, ऋतुओ का बदलना, आकाश मे ग्रह-नक्षत्रो का विभिन्न स्थितियो मे गतिशील रहना। किन्तु केवल सुख, लाभ, अनुकूल परिस्थितियो की ही चाह के एकांगी दृष्टिकोण के फलस्वरूप मनुष्य दुःख, कठिनाई और विपरीतताओ मे रोता है। दूसरों को अथवा ईश्वर को अपनी विपरीतताओ के लिए कोसता है। शिकायत करता है इनसे बचने के लिए असफल प्रयत्न करता है। किन्तु इससे तो उसकी समस्याएँ बढ़ती ही जाती है, घटती नहीं। वस्तुतः कठिनाइयाँ जीवन का एक आवश्यक नियम है, जिसे स्वीकार करने मे ही लाभ है।

कठिनाइयाँ जीवन की एक सहज स्वाभाविक स्थिति है, जिन्हे स्वीकार करके मनुष्य अपने लिए उपयोगी बना सकता है और कठिनाइयो को जीवन का विरोधी भाव, मानकर उनमे दुःखी और परेशान होकर मनुष्य अपनी ही हानि भी कर लेता है। कठिनाइयो मे रोना, हार मान लेना, निराश और अवसाद से ग्रस्त होना अपने विश्वास के मार्ग को छोड़ बैठना ही है। वस्तुतः कठिनाइयाँ इतनी भयंकर और कष्टदायक नही है जितना बहुत-से लोग समझते है। जिन कठिनाइयो मे कई व्यक्ति रोते है, हार बैठते है, मानसिक क्लेश अनुभव करते है, उन्ही कठिनाइयो मे दूसरे व्यक्ति नवीन प्रेरणा, नव उत्साह पाकर सफलता का वरण करते है। इस तरह कठिनाइयाँ अपने आप मे कुछ नही है वरन् मन की स्थिति से ही उनका स्वरूप बनता है। सब ओर कठिनाइयाँ सापेक्ष है।

सबल मन वाला व्यक्ति बड़ी से बड़ी कठिनाई को भी स्वीकार करके आगे बढ़ता है, तो निर्बल मन वाला सामान्य-सी कठिनाई मे भी निश्चेष्ट हो जाता है। निर्बल मन तो अपनी कल्पनाजन्य कठिनाइयो मे ही अशान्त हो जाता है।

नियति के नियम अजेय एवं अपरिवर्तनीय है। मानव-जीवन मे होने वाले परिवर्तन भी इसी के अन्तर्गत होने से ध्रुव सत्य है। जीवन मे आने वाली कठिनाइयो की जड़ मे भी यही है। इस तथ्य को हृदयंगम कर कठिनाइयो मे भी सन्तुष्ट, सन्तुलित रहने वालो की जीवन-यात्रा सहज-गति मे चलती रहती है। अनेको विपरीतताएँ भी उनका मार्ग नही रोक पाती। छोटी-बड़ी कठिनाइयाँ उनके लिए इसी तरह महत्त्व रखती है, जैसे रात और दिन, सर्दी और गर्मी।

परीक्षा की कसौटी पर प्रतिष्ठित हुए बिना कोई भी वस्तु उत्कृष्टता प्राप्त नही कर सकती, न उसका कोई मूल्य ही होता है। सोना भीषण अग्नि मे तपकर ही शुद्ध और उपयोगी होता है। कड़ी धूप मे तपने पर ही खेतो मे खड़ी फसल पकती है। आग की भयानक गोद मे पिघलकर ही लोहा साँचे मे ढलने के उपयुक्त बनता है। जन-जन द्वारा पूजी जाने वाली मूर्ति पर पैनी छैनी की असंख्यो चोटे पड़ती है। परीक्षा की अग्नि मे तपकर ही वस्तु शक्तिशाली, सौन्दर्ययुक्त और उपयोगी बनती है। मनुष्य भी कठिनाइयो मे तपकर उत्कृष्ट, सौन्दर्ययुक्त, प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण बनता है। जीवन को अधिक उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए मनुष्य को उतनी ही अधिक कठिनाइयो और परेशानियो मे से गुजरना पड़ेगा। वस्तुतः कठिनाइयाँ, दुःख, परेशानियाँ जीवन की कसौटी है, जिनमे मनुष्य के व्यक्तित्व का रूप निखरता है।

कठिनाइयाँ मनुष्य के विकास मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन्हे खुले हृदय से स्वीकार करके मानसिक विकास प्राप्त किया जा सकता है। कठिनाइयो मे खुलकर खेलने से इच्छाशक्ति प्रबल होती है और बड़े-बड़े काम करने की क्षमता प्राप्त होती है। कठिनाइयो मे मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ एकत्रित और संगठित होकर काम करती है। जीवन की कोई भी साधना कठिनाइयो मे होकर निकलने पर ही पूर्ण होती है। कठिनाइयो मे ही जीवन दर्शन की परीक्षा होती है।

कठिनाइयाँ दुधारी तलवार है, जो व्यक्ति इन से घबराकर गिर पड़ा वह हार बैठा। वह अपने जीवन की सम्भावनाओ को नष्ट कर देता है। इसके विपरीत जिसने कठिनाइयो को साधकर उनसे समझौता, समन्वय कर लिया वह व्यक्ति कठिनाइयों को ही अपनी सफलता, उत्कृष्टता का साधन बना लेता है। कठिनाइयाँ एक ओर जीवन मे कसौटी बनकर सुधार, नव-निर्माण, उत्थान की प्रेरणा देने मे, उत्साह और मनोबल को ऊँचा उठाने मे सहायक होती है, तो दूसरी ओर मनुष्य को अकर्मण्य, निरुत्साह बना देती है। जीवन की आशा-उमंगो को धराशायी कर देती है। दोनो ही स्थितियो का उत्तरदायी मनुष्य स्वयं ही होता है। इसमें कठिनाइयों का कोई दोष या गुण नहीं है। जब मनुष्य कठिनाइयो की यथार्थता को नही समझता, उन्हे जीवन का स्वाभाविक अंग मानकर सहर्ष स्वीकार नहीं करता तो ये ही कठिनाइयाँ अपार दुःख, अशान्ति, क्लेश का कारण बन जाती है भय और घबराहट पैदा हो जाते है। इससे मनुष्य का मानसिक सन्तुलन संगठन बिखर जाता है और अन्तर्द्वन्द्व पैदा हो जाते है। जब किसी राष्ट्र की आन्तरिक शक्तियाँ विघटित होकर उनमे अन्तर्द्वन्द्व-गृहयुद्ध पैदा हो तो उसका पतन होना स्वाभाविक ही है। उस पर बाह्य आक्रमण भी होने लगते है। इसी तरह अन्तर्द्वन्द्व से मानसिक शक्तियाँ नष्ट होने लगती है। फिर सामान्य-सी कठिनाइयाँ भी मनुष्य की आशा, उमग धैर्य को घायल कर उसे निराशा, हीनता, अवसाद की ओर धकेलती है। मनुष्य की बड़ी-बड़ी आशाये, उमंगे, अभिलाषाये इस स्थिति मे कठिनाइयों की चट्टान से टकराकर टूट-फूट जाती है, छिन्न-भिन्न हो जाती है।

इस तरह मनुष्य चाहे तो कठिनाइयो को वरदान बना सकता है और अभिशाप भी। आवश्यकता इस बात की है कि वह बार-बार प्रयत्न करके कठिनाइयो की कसौटी मे सफल होने के प्रयास न छोड़े, अपनी साधना जारी रखे।

जीवन मे आने वाली कठिनाइयो का समाधान मनुष्य कैसे करता है ? इसका प्रभाव उसके साथ-साथ समाज और वातावरण पर काफी पड़ता है। जो मनुष्य कठिनाइयों का खुले दिल से स्वागत करता है, उनके साथ खेलता है वह स्वय तो उनसे मिलने वाले लाभ प्राप्त करता ही है किन्तु दूसरो के लिये भी प्रेरणा और आदर्श बन जाता है। एक कायर सैनिक को रण से भागता देखकर कई सैनिक भाग निकलते है। इसके विपरीत एक योद्धा जो अपने कर्त्तव्य को सामने रखकर कठिनाइयो मे भी लड़ता है, उसे देखकर अन्य सैनिक भी प्रेरणा और उत्साह प्राप्त कर लड़ते रहते है। उनमे वीरता के भाव जाग्रत होते है।

कठिनाइयो मे निर्द्वन्द्व होकर आगे बढ़ने वालो की समाज के लिए बहुत बड़ी देन होती है। वे समाज के प्रेरणा-केन्द्र बन जाते है। उनके पद-चिन्हो पर दूसरे भी चलते है। मेजिनी ने जब इटली का स्वतन्त्रता आन्दोलन चलाया तो उसके केवल पाँच ही साथी थे। पाँच से बढ़कर दस और दस से बीस, इस तरह उनकी संख्या बढ़ती ही गई। इसी तरह लोकमान्य तिलक ने भारत को स्वतन्त्रता के मंत्र की दीक्षा दी, गाँधीजी ने स्वाधीनता आन्दोलन चलाया तो असख्यो भारतीयो ने अपने आपको सहर्ष कठिनाइयो की आग मे डाल दिया।

यदि सबसे बड़ी कोई सहायता है तो यह है, कठिनाई के वक्त किसी की मदद करना और उसका एकमात्र सच्चा उपाय है, उससे भी अधिक कठिनाइयो मे पड़कर उसके समक्ष सन्तोष, सन्तुलन, धैर्य, शान्ति का आचरण करना। अन्य सभी भौतिक, बाह्य, धन आदि की सहायताएँ सामयिक होती है और उनसे गलत लाभ उठाकर मनुष्य पतित भी हो सकता है। किन्तु कठिनाइयो में अपने आपको डालकर दूसरो को बल देना सच्ची सहायता है। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को उसकी इच्छानुसार अपनी सेनाएँ, भौतिक सहायता प्रचुर मात्रा मे दी किन्तु अर्जुन के लिये निःशस्त्र होकर केवल सारथी का काम करना स्वीकार किया। अपने जीवन की परवाह किए बिना अपने आपको निम्न परिस्थितियो, कठिनाइयो मे डालकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक आध्यात्मिक बल और मानसिक शक्ति प्रदान की। यदि किसी सहायता से कोई व्यक्ति परावलम्बन-सीखता है, तो वह अच्छी सहायता नही, इससे उसका पतन होना सम्भव है। सच्ची सहायता वह है, जो मानसिक शक्ति की अभिवृद्धि करे।

विपत्ति से बढ़कर हितैषी नहीं

किन्ही सफल व्यक्तियो और महापुरुषो के जीवन वृत पर दृष्टि दौड़ाये तो एक बात सामान्य रूप से दिखाई देगी और वह यह कि उनमे से प्रायः प्रत्येक का जीवन संघर्षो ने पाला, कठिनाइयो, आपदाओ और विपत्तियो ने सँवारा। मुसीबतो ने ही उनकी आत्म-शक्ति को जगाया, उद्वेलित किया और वह पथ-प्रशस्त किया जो साधारण व्यक्तियो के लिए अचरज प्रतीत होता है।

राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, ईसा, सुकरात, टालस्टाय, गान्धी, शिवाजी, महाराणा प्रताप किसी व्यक्ति को उदाहरण बनाइये, एक भी महापुरुष ऐसा न मिलेगा जिसने वैभव, विलास के बीच महापौरुष सार्थक किया हो। राकफेलर, हेनरी फोर्ड, मार्सेल बोजाक आदि प्रसिद्ध उद्योगपतियों ने भी असाधारण सफलताएँ परिस्थितियो से लड़ते और टक्कर खाते हुए ही पाई है।

साधारण व्यक्ति कठिनाइयो और प्रतिकूल परिस्थितियो से बचना चाहते है, इसलिये घिसावट और टकराव से जो प्रेरणादायी शक्ति उत्पन्न होनी चाहिए थी, हिम्मत, साहस और पुरुषार्थ जाग्रत होना चाहिये, वह नही हो पाता। मनुष्य कठिनाइयों से बचता है वैसे ही बड़ी सफलताएँ उससे बचती है।

मुसीबते दरअसल बोझ नही, संकेत है, जो आत्मविश्वास की दिशा निर्देश करती है। इन संकेतो को समझना और उनसे लाभ उठाना ही मनुष्य की बुद्धिमानी है। यदि इतनी कला मनुष्य को आ जाय तो कठिनाई से बड़ा देवता या हितैषी नही विपत्ति से बढ़कर हितैषी नही।

बीमारी और शरीर कष्ट को आप बुरा मानते है, पर आप कही यह जान ले कि प्रकृति आपको असंयम से सावधान कर रही है और आपके शरीर मे घुस गये बुरे तत्त्वो को निकाल रही है तो आपकी आधी घबराहट तत्काल दूर हो जाये।

यही तो वह अवसर होता है, जब अपने आत्मीयजनों की पहचान होती है। जो अपना है। जिसके प्रति हमे अपने दायित्वो का परिपालन करना है, वे व्यक्ति ऐसे समय सिमटकर आपके समीप आ जाते है। आत्मीयता जाग उठती है और वर्षो का मनोमालिन्य दूर हो जाता है। दाम्पत्य जीवनो मे अक्सर वैमनस्य और गुबार भर जाते है। अपने साथी की पीड़ा मे, बीमारी मे वह कैसे दूर हो जाते है ? यह हर गृहस्थ अनुभव करता है। आत्मीयता को सजग करने वाली, बिछुड़ो के हृदय जोड़ने वाली, शरीर का गर्द-गुबार निकाल फेंकने वाली और भविष्य के लिये "स्वस्थ जीवन अपनाओ" शिक्षा देने वाली बीमारी को फिर क्या आप बुरा कहेगे ?

आप रह-रहकर बीमार होते है तो देखिये कहीं आपकी आदते तो खराब नहीं हो रही। आपने आहार-विहार के असंयम को तो नही अपना रखा। तम्बाकू, सिगरेट, शराब आदि किसी दुर्व्यसन के आदी तो नहीं हो गये, किसी मादक द्रव्य ने तो कहीं यह विकृति नही ला दी। जरूर कोई इन्ही मे से कारण होगा। उसे मिटाने का संकेत ग्रहण कर सके तो विश्वास कीजिए वह बीमारी आपके लिये वरदान ही होगी।

अपनी स्वास्थ्य संरक्षण की भावना जगाइये, संकल्प कीजिये आगे आप बलवान बनेगे। स्वस्थ, सुडौल शरीर बनायेगे। दीर्घजीवन प्राप्त करेगे। बीमारी का इशारा इन्हीं की ओर था। यदि नही समझ पाये तो आपकी भूल थी। समझ गये तो अपनी जीवन दिशा बदलकर देखिये ! लाभ होता है या नही।

आप नही आपके घर का कोई सदस्य, आपकी धर्मपत्नी, बच्चा, भाई, पिता बीमार है तो क्या आपको निराश होना चाहिये ? नही, इससे अच्छा सेवा का, परिजनो का हृदय जीतने का और अच्छा अवसर न मिलेगा। आप उनकी एक बार हृदय से सेवा कर देखिये आपके जीवन मे वही बीमारी वरदान लाती है या नही। दाम्पत्य जीवन मे प्रगाढ़ मैत्री, बच्चो मे आज्ञापालन की भावना, भाई का प्रेम, सहयोग और पिता का स्नेह दिलाती है या नही ?

चलिये आपकी आर्थिक कठिनाइयो पर भी सोचे। धन की तंगी से, कर्ज से, आजीविका की समस्या से आप घबराये बैठे है पर आपको पता नही वह विपत्ति आपका सौभाग्य द्वार खोलने आई है, केवल समझने की देर है।

आर्थिक तंगी के अवसर पर देखा गया है कि मानसिक क्रियाशीलता सजग हो उठती है। भले ही वह बेचैनी और घबराहट के रूप मे व्यक्त होती हो पर इतना निश्चित है, आदमी के दिमाग मे हलचल पैदा

होती है। चाहे तो इस सजगता को विधिवत् विचार का रूप देकर सोचे कि ऐसे गाढ़े समय आप कोई अन्य नौकरी या धन्धा कर सकते है क्या ? कही से पूँजी उपलब्ध कर कोई उद्योग चला सकते है क्या ? अपने घर मे जेवर पड़ा है, जमीन है, पुराना मकान पड़ा है। इनमें से कोई ऐसी वस्तु है क्या जो आपको पूँजी देकर कर्ज से से बचा सकती हो ? केवल धन्धा अपने लिये निकाल सके तो आप विश्वास कीजिये ऐसी परिस्थितिजन्य कठिनाइयों से ही बड़े-बड़े पूँजीपति पैदा हुये है।

ऋण का बोझ सवार है ? मन स्थिति सचमुच बहुत दु.खद होती है। नौकरी मे पैसा बचता नही, तो क्या यह सम्भव नही मोमबत्ती, रबड़ की मोहर, लिफाफा, सिलाई, साबुन, चर्खा आदि से आप कोई सहायक आजीविका की व्यवस्था कर ले और उस ऋण को धीरे-धीरे पटा डाले। अच्छा तो यह हो कि जेवर-जाकड़े का मोह त्यागकर आप उसे एकमुश्त चुका डाले। यह भी देखेंगे कि दुबारा कर्ज लेने से आप बचेंगे ही। फिजूल खर्ची से भी बचेंगे और बेकार के भोज, उत्सव, रंग-रेली मनाने की जो आदते पड़ गई थी उनसे भी बचेगे। भविष्य मे बजट बनाकर चलेंगे। सावधानी से खर्च करेंगे। इतनी सारी सूझ-समझ और योग्यता कब आई ? जब ऋण या आर्थिक घाटे की विपत्ति आई।

कई बार परिस्थितियाँ अपनी नही औरो की बनाई हुई भी होती है। संसार मे फूहड़ और राह चलते रोड़ा अटकाने वाले भी कम नही। मान लीजिये कोई ऐसा व्यक्ति आपको परेशान कर रहा है, तो बड़ा अच्छा अवसर है अपना शौर्य, साहस जगाने का। शक्ति और संगठन बनाने का इससे सुन्दर अवसर कब आता ? धन्यवाद दीजिये इस विपत्ति को जिसने आप मे यह वीरोचित गुण जगा दिये।

बच्चा कहना नही मानता, धर्मपत्नी सहयोग नहीं करती, भाई खिन्न रहते है, तो आप कुछ अपने आप भी विचार कर डालिये। आपको मालूम न होगा, महात्मा गाँधीजी की पूर्व मे कस्तूरबा से नही पटती थी, पर आत्मचिन्तन के द्वारा बापू ने अपने आपको सुधारा तो कस्तूरबा स्वयमेव उनकी सच्ची सहचरी बन गई। दाम्पत्य जीवन मे वह आनन्द आया कि मृत्युपर्यन्त कोई मनोमालिन्य न आया। सुकरात को दार्शनिक बना देने मे उसकी धर्मपत्नी की कर्कशता ही थी। ऐसे अवसर मनुष्य को जीवन-दर्शन की गहराइयों तक पहुँचा सकते हैं, साथ ही पारिवारिक प्रेम, ईमानदारी, सद्व्यवहार, स्नेह, प्रेम, आत्मीयता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता की आवश्यकता और उपयोगिता का पाठ सिखा सकते हैं। मनुष्य जीवन की गहराइयों का ज्ञान उपलब्ध करा सकते हैं।

परीक्षा में असफल बोपदेव आचार्य बोपदेव बने। स्वयं पाण्डित्य उनके पैरों गिरा क्योंकि उन्होंने घबराकर अपनी सारी बौद्धिक लगन उधर लगा दी। यह पाठ आपके लिये वैसा ही है ! हारे हुये मनुष्यो के अनेक जीवन चरित्र आप पढ़ सकते है, जिनको कठिनाइयो में ही पाथेय मिला है।

यद आप मानसिक सन्तुलन न खोये, विचारशक्ति को जगाकर सूझ-बूझ से काम ले तो इसमे किंचित सन्देह नही कि विपत्तियाँ मनुष्य को परिश्रमी, उद्योगी, सन्तोषी, सहिष्णु और शक्तिशाली बनाती है। उनसे लाभ उठाने का दृष्टिकोण समझ मे आ जाय तो मुसीबत मनुष्य जीवन के लिये वरदान ही होती है।

जीवन में कठिनाइयाँ भी आवश्यक हैं

किसी भी महापुरुष का जीवन उठाकर देख लीजिये, वह कठिनाइयो का एक जीता-जागता इतिहास मिलेगा। किसी सदुद्देश्य के लिये जीवनभर कठिनाइयों मे जूझते रहना ही महापुरुष होना है। कठिनाइयो से गुजरे बिना कोई भी लक्ष्य को नही पा सकता। विद्वानो का कहना है कि जिस उद्देश्य का मार्ग कठिनाइयो के बीच से नही जाता, उसकी उच्चता मे सन्देह करना चाहिए।

अपने व्यक्तित्व को पूर्णता की चरमावधि पर पहुँचाने के लिए ही भारतीय ऋषि-मुनियो ने तपस्या का कष्टसाध्य जीवन अपनाया। घर की सुख-सुविधाओ को छोड़कर अरण्य-आश्रमो का कठिन जीवन स्वीकार किया। भारतीय राजा, महाराजाओ की यह परम्परा रही है कि वे जीवन का एक भाग तपस्यापूर्ण कार्यक्रम मे लगाया करते थे। यही नही भारत के हर आर्य गृहस्थ का धार्मिक कर्त्तव्य रहा है कि वह जीवन का अन्तिम चरण सुख-सुविधाओ को त्यागकर कठिन परिस्थितियों मे व्यतीत करने के लिए वानप्रस्थ तथा संन्यास ग्रहण किया करते थे। भारतीय आश्रम धर्म के निर्माण मे एक उद्देश्य यह भी रहा है कि घर-गृहस्थी मे सुख-सुविधाओं के बीच रहते-रहते मनुष्य के व्यक्तित्व में जो निस्तेजता और ढीलापन आ जाता है, वह संन्यस्त जीवन की कठोरता से दूर हो जाये और व्यक्ति अपने परलोक साधना के योग्य हो सके। कठिनाइयाँ मनुष्य को चमकाने और उसे तेजवान बनाने के लिए ही आती है। कठिनाइयों का जीवन मे वही महत्व है, जो उद्योग मे श्रम का और भोजन मे रस का।

जीवन को अधिकाधिक कठोर और कर्मठ बनाने मे कठिनाइयो की जिस प्रकार आवश्यकता है, उसी प्रकार चरित्र-निर्माण के लिये भी कठिनाइयो की उपयोगिता है। मनुष्य का सहज स्वभाव है कि उसे जितनी ही अधिक छूट मिलती है, सुख-सुविधाएँ प्राप्त होती है, वह उतना ही निकम्मा और आलसी बनता जाता है। एक प्रमादपूर्ण जीवन ससार की सारी बुराइयों और व्यसनो का जन्मदाता है। खाली और निठल्ला बैठा हुआ व्यक्ति सिवाय

मुरझाया करने के और क्या कर सकता है ? यही कारण है कि उत्तराधिकार मे सम्पत्ति पाये हुए व्यक्ति अधिकतर व्यसनी और विलासी हो जाते हैं।

किन्तु जो कठिनाइयो से जूझ रहा है, परिस्थितियो से टक्कर ले रहा है, असुविधाओ को चुनौती दे रहा है, उसे संसार की फिजूल बातों के लिए अवकाश कहाँ ? उसके लिये एक-एक क्षण का मूल्य है, जीवन की एक-एक बूँद का महत्त्व है। जिस प्रकार मोर्चे पर डटे हुए सैनिको की साहस और उत्साह की वृत्तियो के अतिरिक्त अन्य सारी वृत्तियाँ सो जाती है, उसी प्रकार कठिनाइयो के मोर्चे पर अड़े हुये व्यक्ति की समस्त प्रमादपूर्ण वृत्तियाँ सो जाती है।

कष्ट और कठिनाइयो का अनुभव पाया हुआ व्यक्ति दूसरे के दुःख-दर्द को ठीक-ठीक समझ लेता है और सामर्थ्य भर सहायता करने की कोशिश करता है। उसमे सहनुभूति, सौहार्द्र, सहयोग तथा संवेदना जैसे दैवी गुण आ जाते है। कष्ट पाया हुआ व्यक्ति दूसरे को सताने और दुःख देने से डरता है। कष्ट और कठिनाइयाँ मनुष्य के अहंकार को नष्ट करके उसमे विनम्रता, श्रद्धा और भक्ति के भाव भर देती हैं। कठिनाइयों की कृपा से ऐसे अनेक गुण पाकर मनुष्य का चरित्र चमक उठता है और वह मनुष्यता से देवत्व की ओर आगे बढ़ने लगता है।

कठिनाइयाँ मनुष्य को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाती है। कठिनाइयो से निकलने के लिये मनुष्य को जो श्रम करना पड़ता है, वह स्वास्थ्य के लिये अनमोल रसायन सिद्ध होता है। जो परिश्रम करेगा वह स्वस्थ रहेगा ही इस तथ्य में किसी भी तर्क-वितर्क की गुंजाइश नहीं है।

कठिनाई से उपार्जित सुख-साधनों मे जितना सन्तोष होता है, उतना सहज उपलब्ध साधनों मे नहीं। परिश्रमपूर्ण कमाई से दो रुपये पाकर एक मजदूर जितना प्रसन्न और सन्तुष्ट होता है, उतना ब्याज के दो हजार रुपये पाकर एक साहूकार नहीं।

कठिनाइयाँ मनुष्य जीवन के लिये वरदान रूप ही होती हैं। किन्तु इन अमोघ वरदानो का लाभ वही उठा सकता है, जो इनको सँभालने और वहन कर सकने की सामर्थ्य रखता है, अन्यथा यह बोझ बनकर मनुष्य को कुचल भी देती है। जो परिश्रमी है, पुरुषार्थी है, साहसी और उत्साही है वह इनको फलीभूत करके संसार की अनेक विभूतियों को उपलब्ध कर लेता है। जो आलसी, प्रमादी, कायर और अकर्मण्य है वह इनकी चपेट में आकर जीवन की समस्त सुख-शान्ति से हाथ धो बैठता है। कठिनाइयो का मूल्य बहुत कुछ पा लेता है और जो इनसे हार बैठता है, उसे बहुत कुछ चुकाना पड़ता है।

कष्ट और कठिनाइयों को जो व्यक्ति विवेक और पुरुषार्थ की कसौटी समझकर परीक्षा देने में नहीं हिचकते, वे जीवन की वास्तविक सुख-शान्ति को प्राप्त कर लेते है। किन्तु जो कायर है, क्लीव है, आत्मबल से हीन है, वे इस परीक्षाग्नि को देख डर जाते हैं; जिसके फलस्वरूप 'हाय-हाय' करते हुये जीवन के दिन पूरे करते है। न उन्हे कभी शान्ति मिलती है और न सुख। सुखो का वास्तविक सूर्य दुःखो के घने बादलो के पीछे ही रहता है। जो इन बादलो को पार कर सकता है, वही उसके दर्शन पाता है और जो दुःखो के गम्भीर बादलो की गड़गड़ाहट से भयभीत होकर दूर खड़ा रहता है। वह जीवन भर सुख-सूर्य के दर्शन नहीं कर सकता। वास्तविक सुख को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है संसार के दुःखो का झूँठा परदाफास किया जावे। शीतलता का सुख लेने के लिये गर्मी को सहन करना ही होगा।

केवल मात्र सुख-सुविधाओ से भरा जीवन अधूरा है। जब तक मनुष्य दुःखो का अनुभव नही करता, कष्टो को नहीं सहता वह अपूर्ण ही रहता है। मनुष्य की पूर्णता के लिये दुःख, तकलीफो का होना आवश्यक है। दुःखों की आग मे तपे बिना मनुष्य के मानसिक मल दूर नही होते और जब तक मल दूर नही होते मनुष्य अपने वास्तविक रूप मे नही आ पाता।

इसके अतिरिक्त कष्ट-क्लेशो का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग यह है कि उनके आगमन पर गरीब को बड़ी तीव्रता से ईश्वर की याद आती है। दुःख की तीव्रता मनुष्य में ईश्वरीय अनुभूति उत्पन्न कर उसके समीप पहुँचा देती है। कष्ट और क्लेशो के रूप मे मनुष्य अपने संचित कर्मफलो को भोगता हुआ शनैः-शनैः परलोक का पथ-प्रशस्त किया करता है। जहाँ दुःख की अनुभूति नहीं वहाँ ईश्वर की अनुभूति असम्भव है। यही कारण है कि भक्तो ने ईश्वर के समीप रहने के साधन रूप दुःख को सहर्ष स्वीकार किया है।

कष्ट और कठिनाइयो को दुःखमूलक मानकर जो इनसे भागता है, उसे यह दुःख रूप में ही लग जाती है और जो बुद्धिमान इन्हे सुखमूलक मानकर इनका स्वागत करता है उसे यह देवदूतों के समान वरदायिनी होती है।

कठिनाइयाँ आपकी सहायक भी तो हैं

जीवन मार्ग पर चलते हुये पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जीवन-यापन के पर्याप्त साधनों का अभाव, परिजनो की वह व्यवस्थायें न जुटा पाना, जिनकी वे हमसे अपेक्षा रखते हैं। दूसरे लोगों के विद्वेष व उपहास भरे व्यंग्य आदि अनेकों कठिनाइयाँ हैं जो मनुष्य को उसके लक्ष्य से विचलित करती रहती हैं। इनसे भी बढ़कर अपना निज का आलस्य, मिथ्याभिमान, काम, क्रोध, भय व प्रलोभन ये भी वैसी ही कठिनाइयाँ हैं जैसी औरों द्वारा उत्पन्न की गईं। इनके आते ही व्यक्ति का उत्साह घट जाता है और जिस लक्ष्य की ओर वह बढ़ा

था उसे बीच मे ही अधूरा छोड़ देता है और यह मान लेता है कि उसके वश की बात नही।

किन्तु यह बात जानने की है कि कठिनाइयाँ मनुष्य की बाधक बनकर नही आती है वरन् उसके लक्ष्य को आसान बनाने के लिये ही आती है। किसी शायर ने इसी की भावाभिव्यक्ति करते हुये लिखा है—

रंज से खूंगर हुआ इंसाँ तो मिट जाता है रंज।

मुश्किलें मुझ पर पड़ी इतनी कि आसाँ हो गईं॥

निरन्तर सफलता से तो संसार का केवल एक पक्ष समझ मे आता है। कठिनाइयाँ हमे दूसरे भाग का भी बोध करा देती है। वे हमे यथार्थ मे जीवन जीने की कला सिखा देती है। इनके बिना किसी भी प्रयोजन की सिद्धि, चाहे वह आध्यात्मिक हो अथवा सांसारिक, सम्भव न होगी।

सुख और दुःख संसार रथ के दो पहिये है। एक का अस्तित्व दूसरे पर टिका है। एक दिन है तो दूसरा रात। एक शरीर है दूसरा प्राण। दोनो के मध्य से ही जीवन की सरिता का प्रवाह बहता है। यदि अन्धकार न हो तो फिर प्रकाश की महत्ता ही क्या रहेगी ? तात्पर्य यह है कि जीवन को क्रियाशील बनाये रखने के लिये दोनो ही आवश्यक है। इनसे बचा भी नही जा सकता। जब तक शरीर है, तब तक सुख-दुःख का निवारण नही हो सकता।

सुख प्राप्ति के मार्ग मे जो परिस्थितियाँ बाधा उत्पन्न करती है, उन्हे कठिनाइयाँ मानते है। धन-क्षय, शारीरिक व्याधियाँ, अप्रिय पुरुषो का संग, प्रियजनो से बिछोह इन्हे ही मोटेतौर पर कठिनाइयाँ मानते है। आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति मे मनोविकारो व स्वभावजन्य कुकृत्यो को कठिनाई माना जाता है। इन्ही के कारण मनुष्य दुःखी रहता है। किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यही परिस्थितियाँ महान् परिणामो की जननी है। उपनिषद्कार ने लिखा है **"दिवमारोहत तपसा तपस्वी"**। तप से ही आत्मोत्थान सम्भव है। तप का अर्थ कड़कती धूप मे बैठकर जप-ध्यान करना, गहन शीत मे स्नान करना अथवा शारीरिक तितीक्षा नही। इसका सर्वमान्य अर्थ यही है कि मनुष्य मार्ग मे आई हुई कठिनाइयो से निरन्तर संघर्ष करे। इनसे लड़ते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति करे। हीरा बिना रगड़ खाये चमकता नही। मनुष्य बिना परीक्षा दिये पूर्णता प्राप्त नही कर सकता। कठिनाइयाँ और कुछ नही, वे एक कसौटी मात्र है जो आगे के लिए सचेष्ट करती है।

कोई विद्यार्थी यह कहे कि छमाही परीक्षा से न तो मै उत्तीर्ण होता हूँ न ही अनुत्तीर्ण, फिर क्यों कलम, दवात, कापी और कागजो मे व्यर्थ खर्च करूँ ? कई बीमारी आदि का बहाना बनाकर उसे टाल भी देते है। किन्तु चतुर अध्यापक उन्हे ऐसा करने से रोकते है और उन्हे बताते है कि यदि परीक्षा न दी तो यह कैसे अनुमान लगा पायेंगे कि वार्षिक परीक्षा मे किन-किन विषयों मे कितना परिश्रम करना है पहली स्थिति मे तो फेल होने की ही अधिक आशंका रहती है। ऐसे विद्यार्थियो की तरह अपने लिये भी यह उचित है कि अपनी प्रगति के लिये कठिनाइयो को जीवन का आवश्यक अंग मान ले।

बिना विपत्ति की ठोकर लगे विवेक की आँखे नहीं खुलती। सच्चे ज्ञान की कसौटी यह है कि उसे कठिनाइयो मे प्राप्त किया गया हो। प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री प्रेमचन्द ने लिखा है, "विपत्तियो से बढ़कर तजुर्बा दिलाने वाला विद्यालय आज तक नही खुला। कठिनाइयाँ मनुष्य के विकास का साधन है। जिस तरह आग की तेज भट्टी मे तपाने पर सोने का रंग निखर आता है, वैसे ही सच्चे व्यक्ति का जीवन कठिनाइयो की आग से परिपक्व बनता है। महात्मा गाँधी, बुद्ध, ईसा आदि महापुरुष पग-पग पर कठिनाइयो से लड़े थे। तब महान सामाजिक व राजनैतिक क्रान्तियो का उन्नयन कर सके थे।

विपत्ति मे मानसिक शक्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती है। इससे मनुष्य को सत्य-असत्य, अपने-पराये का यथार्थ ज्ञान होता है। आत्मीय स्वजनो की पहचान भी ठीक समय आ पड़ने पर ही होती है—

कहि रहीम सम्पति सगे बनत बहुत बहुरीति।

विपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत॥

सच्चे मित्र की, आत्मीय की पहिचान कठिनाइयो मे होती है। इसे और भी स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त करते हुये कवि ने लिखा है—

रहिमन विपदा हू भली जो थोड़े दिन होय।

हित अनहित या जगत मे जानि पड़े सब कोय॥

अपना हितैषी कौन है ? और कौन कपटपूर्वक धूर्तता का, धोखेबाजी का व्यवहार कर रहा है, इसकी परीक्षा मुसीबत पड़ने पर ही होती है। सुखी जीवन के तो हजार साथी होते है, पर मुसीबत पड़ने पर कोई सच्चा सगा ही काम देगा।

सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति की सच्ची परीक्षा कठिनाइयो मे ही होती है। ऐसे अवसरो पर बहुधा लोगो को यह कहते सुना जाता है कि उन पर परमात्मा रूठा है। उनके दुर्दिन चल रहे है। पर स्थिति ठीक इसके विपरीत है। महात्मा स्वेट मार्डेन ने लिखा है, "जितने दुःख, जितनी विपत्तियाँ हमे प्राप्त होती है, उनका कारण यह है कि अनन्त ऐश्वर्यशाली एवं सर्वशक्तिमान परमात्मा से हम अलगाव का भाव बनाये है।" कठिनाइयाँ वह वरदान है, जिन्हे देकर परमात्मा हमे अपने पास बुलाना, अपनी पवित्र गोद मे बिठाना चाहता है। सच्चे अध्यात्मवादो की पहिचान मुसीबतो मे होती है। मुसीबतो

मे तपे बिना व्यक्ति अपने आपको ब्रह्मवादी घोषित करने का अधिकार नही पाता है। सच्चा ईश्वरवादी वह है जो कहता है। "मालिक मुझे सुख नहीं दुःख दे, ताकि तुम से विलग न होऊँ।"

विपत्ति वह खराद है, जिससे परमात्मा अपने रत्नो की चमक बढ़ाता है। इसलिये आप देखिये कि आपके जीवन मे भी कठिनाइयाँ हैं अथवा नही। आप अध्यात्मवादी है आपके जीवन मे निरी कठिनाइयाँ बाघ की भाँति मुँह बाये है। आप इनसे विचलित तो नही हो रहे। यदि आपके पाँव लड़खड़ाते है, तो सम्हलकर खड़े होइये। धर्म और अध्यवसाय का अवलम्बन लीजिये। जिसे धीरज है, जो परिश्रम से पाँव पीछे हटाना नही जानता, सफलता की देवी उसी के गले विजय-माला पहनाती है। धैर्य प्रारम्भ मे कड़ुआ भले लगे किन्तु उसका फल मधुर होता है।

आत्म-निर्भर बनने का और अपने आत्म-विश्वास जाग्रत करने का, एक ही गुरु-मन्त्र है कि आप अपने जीवन मे कठिनाइयो को आने दीजिये, दूसरो के दुःख, तकलीफ और मुसीबतो मे हाथ बँटाइये। दूसरो की सहायता कीजिए और परमात्मा आपकी सहायता करेगा। दूसरो के दुःखो को समझिये और अनुभव कीजिए कि आप असंख्यो से सुखी है, ऐसा दृष्टिकोण बना लेने से कठिनाई और दुःख की परिस्थितियाँ टल जायेगी और अपने पीछे सफलता की राह बना जायेगी। किसी कवि ने कहा—

गम राह नहीं कि साथ दीजे।

दुःख बोझ नही कि बाँट लीजे।।

कठिनाइयाँ छोटे मनुष्यो को निस्तेज, निष्प्राण बना सकती है किन्तु महान् वे है, जो दु:खो की छाया मे पलते है। औरो के दु:खो, मुसीबतो मे हाथ बँटाते है। पुरुषार्थ भी इसी का नाम है कि व्यक्ति परिस्थितियो से संघर्ष करे। स्वयं उनके वश न हो वरन् उन्हे वशवर्ती करे।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक **एल्फ्रेड एडलर** का मत है कि भयभीत और हीन भावनाओं के व्यक्ति वे होते है, जिनके जीवन में कभी कठिनाइयाँ नही आई होती अथवा जो कठिनाइयो से कतराते या बचते रहते है। ऐसे व्यक्तियो का मानसिक विकास रुक जाता है। ऐसे व्यक्ति छोटे-छोटे कार्यों मे भी सफलता नही पाते। कठिनाइयाँ अपने आप मे उतनी भयावह नही होती जितनी उनकी भयोत्पादक कल्पना। जब कभी किसी कठिनाई का आभास हो, आत्म-विश्वास जगाइये, निश्चय ही उससे आपको हितकर परिणाम प्राप्त होगें।

पूर्वकाल मे दार्शनिक व्यवस्था ऐसी बनाई गई थी, जिसमे अनिवार्य रूप से छोटे-बड़े बालको को गुरुकुलो मे रखकर अक्षर ज्ञान कम और व्यावहारिक जीवन मे कठिनाइयो का अधिक पाठ पढ़ाने का क्रम रखा जाता था। जब तक यह पद्धति चलती रही, इस देश में साहसी, पुरुषार्थी, चरित्रवान और प्रतिभाशाली नररत्नो की कमी नही रही। किन्तु जब से कठिन परिस्थितियों मे रहकर जीवन बिताने का ह्रास हुआ, तब से निर्बल, निस्तेज और दुराचारी व्यक्तियो का ही बाहुल्य होता चला जा रहा है।

इन परिस्थितियो के रहते हुए किसी समाज, राष्ट्र का उत्थान सम्भव नही। कठिनाइयो से न जूझने का अर्थ यह है कि व्यक्ति सत्य की अवहेलना कर रहा है और मिथ्याचार को प्रोत्साहन दे रहा है। साहस, सदाचार आदि नैतिक सद्गुण कठिनाइयो से विमुख होते ही पलायन कर जाते है, तब फिर व्यक्तित्व के विकास का मार्ग अवरुद्ध होना ही निश्चित मानिये। एक व्यक्ति ने अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के लिये साधना, उपासना का क्रम बनाया। पड़ौस वालो ने देखा तो लगे उपहास करने। बस उसका उत्साह ढीला पड़ गया। ऐसी अवस्था मे सत्य की खोज करना एवं अपनी दुर्बलताओ से जूझना कहाँ बन पड़ेगा ? पर दूसरे वे होते है, जो यह मानते है कि उपहास करने वाले व्यक्ति हमे बुराइयों से सावधान रखने वाले पहरुए है। जो लोग उपहास और अवरोध की परवाह न करते हुये अपने रास्ते पर चलते रहते है, वे स्वय सफलता प्राप्त करते है और दूसरो के लिये प्रेरणा का स्रोत भी बनते है। ऐसे ही व्यक्ति समाज का उत्थान कर सकते है। उन्ही से आध्यात्मिक प्रगति की आशा की जा सकती है।

जीवन के विभिन्न व्यवसायो मे चाहे वह लौकिक हो अथवा आत्मा-परमात्मा की भक्ति से सम्बन्ध रखने वाले हो सबमे कठिनाइयो के मार्ग से ही गुजरना पड़ेगा। शरीर मिला है तो रोग, शोक, बीमारी आदि आयेगी ही। जीवनयापन के लिये कोई भी उद्योग करे, उसमे सब ओर लाभ ही लाभ हो यह सम्भव नही। सुख-सुविधाओ की सामान्य इच्छा सभी को होती है फिर सारी सुख-सुविधाएँ आपको ही मिल जायेगी इसकी कोई गारण्टी नही है। अतएव आप ऐसे समय मे भी संतोष और धैर्य की वृत्ति बनाये रहे और अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति मे लगे रहे तो आपका जीवन सफल माना जायेगा।

दुःख और कठिनाइयो मे ही सच्चे हृदय से परमात्मा की याद आती है। सुख-सुविधाओ मे तो भोग और तृप्ति की भावना बनी रहती है। परमात्मा की याद तब आती है, जब व्यक्ति असहाय-सा चारो ओर से अपने आपको कठिनाइयो से घिरा पाता है। इसलिये उचित यही है कि विपत्तियो का सच्चे हृदय से स्वागत करे। परमात्मा से माँगने लायक एक ही वरदान है कि वह कष्ट दे, मुसीबतें दे ताकि मनुष्य अपने लक्ष्य के प्रति सावधान व सजग बना रहे। कृष्ण के समक्ष अपनी इच्छा व्यक्त करते हुये कुन्ती ने ऐसी ही कामना की थी—

विपदः सन्तु नः शाश्वत तत्र जगद्गुरो।

भवतो दर्शनम् यत्स्याद पुनर्भव दर्शनम्।।

"जगद्गुरो ! हमारे जीवन मे सदैव पग-पग पर विपत्तियाँ आती रहे, क्योकि विपत्तियों मे ही निश्चित रूप से आपके दर्शन हुआ करते है और आपके दर्शन हो जाने पर फिर जन्म-मृत्यु के चक्कर मे नही आना पड़ता।" अपने अन्तःकरण की कुन्ती भी यदि ऐसी कामना करने लगे तो लक्ष्य प्राप्ति की आधी सफलता आप पा गये समझिये। पूर्णता की प्राप्ति कराने मे कठिनाइयाँ आपकी बाधक नहीं, सहायक ही होती हैं। उनके होने से ही तो संघर्ष करने का पौरुष प्रकट होता है और सुविकसित व्यक्तित्व के द्वारा किया हुआ प्रबल पुरुषार्थ कभी निरर्थक नही जाता। उससे लक्ष्य प्राप्ति की दिशा मे निरन्तर प्रगति ही होती जाती है।

दुःख से डरिये नहीं, उसका सामना कीजिये

एक ओर मनुष्य ज्यो-ज्यो सभ्यता की ओर बढ़ता और सुख-सुविधा के साधन जुटाता गया, त्यो-त्यो उसमे कष्ट सहन करने की क्षमता कम और दुःख अनुभूत करने की दुर्बलता अधिक बढ़ती गई है। जहाँ दुःखानुभूति की वृद्धि हुई है, वहाँ इससे यह लाभ भी हुआ है कि मानव मस्तिष्क सुख की अधिकाधिक खोज करता हुआ परमानन्द तक पहुँच गया है।

सामान्यतः जन साधारण उस परमानन्द तक नही पहुँच सकते, फिर भी दिन प्रतिदिन सिर पर खड़े हुये दुःखों से बचाव करने का उपाय तो करना ही होगा। किसी बात का निराकरण करने के लिये उसके मूल को समझना होगा। जिस प्रकार किसी रोग के उपचार के लिये वैद्य को सबसे पहले रोग का निदान करके उसके उत्पन्न होने के कारण को खोजना और समझना पड़ता है, उसी प्रकार दुःख के निराकरण के लिये, उसके स्वरूप और कारण को समझना होगा।

दुःख क्या है ? उसकी उत्पत्ति कैसे होती है ? उससे क्या अहित है ? और उसका निराकरण किस प्रकार हो सकता है ? इन सब बातो पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

आकाश की भाँति दुःख भी कोई स्थूल वस्तु नही है, वह भी एक निराकार अनुभूति मात्र है। यह अनुभूति जितनी तीव्र होगी, दुःख का अनुभव भी उतना ही प्रचण्ड होगा। दुःख यदि असुविधापूर्ण परिस्थिति विशेष पर निर्भर होता तो अधिक सुविधाओं वाले हर व्यक्ति को सुखी होना चाहिये और असुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले को दुःख से दबकर मर जाना चाहिये। संसार मे सुख-सुविधाओ के साधन उतने नहीं हैं जितनी कि जनसख्या। इस अनुपात से तो यदि दुःख का कारण असुविधापूर्ण परिस्थितियाँ ही होतीं, तो संसार का दो-तिहाई जन समुदाय हर समय रोता, कलपता ही दृष्टिगोचर होता। किन्तु होता ऐसा नहीं। जहाँ सुविधा-सम्पन्न व्यक्ति प्रसन्न दीखते है, वहाँ असुविधाग्रस्त व्यक्ति भी और जहाँ असुविधाग्रस्त लोग व्यग्र एवं विकल होते देखे जाते हैं, तो वहाँ सुविधा-सम्पन्न व्यक्ति भी कम परेशान नहीं होते। इस न्याय से तो यही सिद्धान्त निकलता है कि सुख-दुःख का अस्तित्व सुविधापूर्ण परिस्थितियो पर निर्भर नहीं है, बल्कि इनका कोई अन्य कारण है।

दुःख-सुख का मूल बाह्य परिस्थितियो मे नहीं, मनुष्य की अपनी मनःस्थिति में है और उनकी न्यूनाधिक का होना उसकी सवेदनशीलता की तीव्रता पर निर्भर करता है। हर समय देखा जा सकता है कि एक ही समान परिस्थिति मे रहने वाले दो व्यक्तियो मे से एक दुःखी दीखता है और दूसरा प्रसन्न। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि किसी एक ही परिस्थिति मे एक व्यक्ति कभी प्रसन्न और कभी खिन्न होने लगता है।

एक समय ऐसा भी था जब संसार मे किसी प्रकार की सुविधा का कोई छोटा-मोटा साधन भी नहीं था। मनुष्य प्राकृतिक साधनो पर निर्भर रहकर भी प्रसन्न रहा करता था। यदि असुविधाएँ ही दुःख का कारण होती तो उस समय से अब तक मनुष्य को जीवित न रहना चाहिये था। आज भी देखा जा सकता है कि मनुष्य की अपेक्षा पशु-पक्षियो के पास साधनो की कमी ही नही पूर्णरूपेण अभाव है तब भी वे मनुष्यो से अधिक प्रसन्न दीखते है। मनुष्य की भाँति कोई भी पशु-पक्षी रोते, कलपते नजर नही आते। वे एक नैसर्गिक जीवनयापन करते हुए भी प्रमुदित एवं प्रसन्न रहते है।

पशु-पक्षी ही क्यो सभ्य मानव संसार को ही ले लिया जाये। आज ऐसे देश, द्वीप और भूखण्ड हैं, जिनके निवासियो को सुख-सुविधाओ के साधन नही के बराबर ही उपलब्ध है। कोई जातियाँ रेगिस्तान के बीच रहती है, कोई पानी के नीचे तो कोई बर्फ से घिरी हुई रह गईं, किन्तु वे भी हँसती-खेलती और प्रसन्न होती है। एक किसान और साहूकार की ही तुलना कर ली जाये कि जिस कड़ाके की सर्दी मे किसान अपने खेत मे गाता हुआ हल जोतता है, उसी सर्दी मे कोई अमीर आदमी लिहाफ मे लिपटा हुआ अँगीठियो के बीच भी कष्ट अनुभव करता है। किसी एक ही व्यक्ति को ले लीजिये कि जाड़ो मे जो प्रातःकाल लिहाफ से मुँह नहीं निकालता वही अपने किसी प्रियजन को लेने के लिये प्रसन्नतापूर्वक दौड़ा-दौड़ा स्टेशन जाता है।

इनके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति पाये जाते है, जो सुख-सुविधाओ को त्यागकर असुविधापूर्ण जीवन अपनाकर प्रसन्न रहते है। साधक तथा तपस्वी सब इसी श्रेणी के व्यक्ति है। यदि साग्रह अपनाया हुआ उनका असुविधापूर्ण जीवन दुःख का कारण होता, तो प्रथम तो वे उसे अपनाने की गलती ही नहीं करते अन्यथा पहले से अधिक प्रसन्न, स्वस्थ और तेजवान दीखने के स्थान पर दुर्बल, असन्तुष्ट, खिन्न एवं दीन-हीन दीखते।

इस प्रकार हम देख सकते है कि दुःख-सुख का कारण बाह्य परिस्थितियाँ नही बल्कि मनुष्य की मनःस्थिति ही है।

जिसका मन बलवान है, जिसकी बुद्धि ठीक-ठीक क्रियाशील है और जिसकी संवेदनशीलता छुई-मुई की तरह सुकुमार नहीं है, वह मनुष्य अपेक्षाकृत दुःख का अनुभव कम ही करेगा। जिस विवेकशील ने दुःख के अस्तित्व मे विश्वास नही किया हुआ है, जो कष्टों और आपत्तियो को उद्‌बोधन, सतर्कता, सावधानी और कर्मठता का हेतु मानता है, वह सुखो से अधिक दुःखों से लाभ उठाता है।

सुख-सुविधापूर्ण परिस्थितियो मे मनुष्य प्रायः निकम्मा, आलसी और सुकुमार हो जाता है, जिससे मन, बुद्धि के साथ उसकी सारी इन्द्रियाँ निस्तेज तथा निर्जीव हो जाती है। उन पर उसी प्रकार विकारो का मोर्चा लग जाता है, जिस प्रकार बेकार पड़ी हुई मशीन पर। चलती हुई मशीन के सारे पुरजे जिस प्रकार चमकदार और चिकने बने रहते है, ठीक उसी प्रकार संघर्षरत मनुष्यो की सारी क्षमताएँ एवं अवयव तेजस्वी बने रहते है।

आपत्तिकाल मे जो मनुष्य दुःख से दबकर निश्चेष्ट हो जाता है, उसके सम्पूर्ण जीवन को एक छोटी-सी विपत्ति भी अमरबेलि की तरह घेरकर सुखा देती है और जो दुःख को एक चुनौती की तरह स्वीकार करता है, वह एक बीज की तरह धरती का पर्त चीरकर पल्लवित हो उठता है।

"ससार दुःखों का सागर है"—यह उक्ति केवल उन्हीं पर चरितार्थ होती है, जो दुःखो से भयभीत और प्रत्येक क्षण सुख के लिये लालायित रहते है। सुख-सुविधा की अतिशय चाह भी दुःख का एक विशेष कारण है। इस निरन्तर परिवर्तनशील और द्वन्द्व प्रधान जगत मे जो सदा अपने मनोनुकूल परिस्थितियो की अपेक्षा करता है, उसके लिये संसार की लघु से लघु प्रतिकूलता भी एक बड़ा दुःख बन जाती है। हम क्यों चाहते है कि हमे केवल शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर ही प्राप्त होती रहे, गर्म वायु का कोई झोका हमारे पास होकर न निकले ? ऐसा किस प्रकार सम्भव हो सकता है ? जब संसार मे दोनो प्रकार की वायु चलती है तो क्रम से वे हमारे पास आयेगी ही। यदि हम छाँह की कामना करते है तो धूप सहन ही करनी होगी।

इसके अतिरिक्त, यदि यह सम्भाव्य भी मान लिया जाये कि मनुष्य के मनोनुकूल परिस्थितियाँ संचित की जा सकती है और किसी प्रकार दुःख को पास भी नही आने दिया जा सकता है, तब भी कुछ ही समय में एकरसता के कारण सुख-सुविधा की व्यवस्था भी दुःखदायी बन जायेगी। एक जैसी स्थिति मे रहते-रहते मनुष्य का मन ऊब उठता है और तब वह प्रिय वातावरण मे भी नीरसता अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार वियोग, सयोग-सुख का उद्दीपक है, उसी प्रकार सुखानुभूति को पुलकपूर्ण बनाये रहने के लिये दुःख का पुट भी आवश्यक है। कोई वस्तु किसी को कितनी ही प्रिय क्यो न हो यदि वह उसे निरन्तर ही खाने-पीने को दी जाती रहे तो शीघ्र ही उस व्यक्ति को अपनी वह प्रिय वस्तु भी अरुचिकर लगने लगेगी।

विश्वास रखिये कि दुःख का कोई अपना अस्तित्व नही है यह आपकी मनोदशा का विकृत स्वरूप है ! दुःख की दशा रोना नही मुस्काना ही है ! दुःख को देखकर मुस्कराइये, इसे नियति का छल समझकर हँसिये !

यदि आप दुःख की दशा मे हाथ-पैर छोड़कर बैठ जायेगे उसके प्रति आत्मसमर्पण कर देंगे तो यह काल्पनिक प्रेत आपको विनष्ट कर देगा। दुःखी होने वाला व्यक्ति न कभी स्वस्थ रह सकता और न सुखी, न वह कोई उन्नति कर सकता है और न विकास। दुःखशील प्रवृत्ति के व्यक्ति के मन-मस्तिष्क निष्क्रिय और आत्मा निस्तेज होकर पतित हो जाती है।

विपत्तियों से डरकर नहीं लड़कर ही हम बढ़ सकते हैं

किसी विपत्ति को भयावह परिस्थिति समझना भूल है। विपत्ति वास्तव मे संघर्ष के लिए सक्षम बनाने वाले अभ्यास की तरह एक शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक व्यायाम ही है। शारीरिक व्यायाम अथवा मानसिक साधना भी एक कष्ट अथवा कठिनाई ही है। उस कठिनाई को बार-बार पार करने अथवा कष्ट सहने से मनुष्य का तन, मन पुष्ट होता है। अन्तर केवल इतना है कि व्यायाम का कष्ट स्वामंत्रित होता है और विपत्ति अनाहूत।

मनुष्य व्यायाम की कठिनाई सहता है पुष्ट होने के लिये। किन्तु उक्त कठिनाई तभी पुष्टता प्रदान कर पाती है जब मनुष्य उसे उत्साह तथा हर्षपूर्वक उठाता है। उसी प्रकार विपत्ति भी साहस तथा हर्षपूर्वक सहन करने पर ही बल प्रदान करती है, नही तो जिस प्रकार उत्साह एवं हर्षहीन व्यायाम पुष्ट करने के स्थान पर निर्बल बनाता है, उसी प्रकार विपत्ति भी निराशा की स्थिति मे अधिकाधिक कंटकित बनकर तन, मन को जर्जर कर देती है।

योद्धा शस्त्राभ्यास मे चोट पर चोट खाकर आगामी युद्ध के लिये सक्षम बनता है। कृत्रिम कठिनाइयों मे अपने को डालकर ही सिपाही बीहड़ तथा पर्वतो की कष्टकर परिस्थितियो मे मोर्चा जमाने योग्य हो जाता है। पहलवान प्रारम्भ मे बार-बार पटकें खाकर कुश्ती मे दक्ष हो पाता है। बार-बार चोट खाकर निर्बल बलवान बनता है, ठोकर खाने के बाद ही बुद्धि सचेत होती है। बार-बार कठिनाइयो में पड़कर ही मनुष्य जीवन का सच्चा पाठ सीखता है। चोट खाकर ही लोहा फौलाद बन जाता है। खराद पर ही हीरा चमकता है और तपकर ही सोना

कुन्दन बनता है। विपत्तियाँ मनुष्य को खरादने तथा उजालने आती है। उन्हे दुर्भाग्य अथवा प्राण लेवा परिस्थिति समझकर निराश अथवा हतोत्साह बैठ रहना भारी भूल है।

विपत्ति मानवीय शक्ति की परीक्षा है। कोई विपत्ति अथवा कठिनाई आने पर ही अपने धैर्य एवं स्थैर्य के अनुसार ही मनुष्य समझ पाता है कि उसमे कितनी शक्ति है, कितना दमखम है ? विपत्ति अथवा प्रतिकूलता आने पर अनेक भ्रमो का भेद खुल जाता है। मनुष्य को पता चल जाता है कि वह कितने पानी मे है ? उसके शरीर मे कितनी जान है, उसके हृदय मे कितनी गहराई और पाँवो मे कितनी स्तम्भता है ? जब तक परिस्थितियाँ अनुकूल बनी रहती हैं, सुख एवं सौख्य का आगमन होता रहता है, मनुष्य अपने को न जाने क्या समझता रहता है ? किन्तु वास्तव मे वह क्या है ? उसमे पुरुषार्थ की कितनी मात्रा है, धैर्य का कितना घन है, सहिष्णुता की कितनी सम्पत्ति है ? ठीक-ठीक तभी समझ पाता है, जब उसका सामना किसी विपत्ति, कठिनाई अथवा प्रतिकूलता से हो जाता है ? उसे अपनी कमियो तथा दुर्बलताओ का पता चल जाता है। वह अपने सही स्वरूप तथा यथार्थ चित्र से परिचित हो जाता है। विपत्ति परीक्षा की तरह आकर मनुष्य को उसकी योग्यता से अवगत कराती है और इस बात की चेतावनी देती है कि वह अपना सुधार करे, अपनी दुर्बलता दूर करे अन्यथा आने वाली किसी आपत्ति के सम्मुख उसे घुटने टेकने पर मजबूर होना पड़ सकता है। इन मानों मे विपत्तियाँ मनुष्य की शत्रु नही मित्र ही होती है। मिटाने वाली नही, बनाने वाली ही मानी जा सकती हैं।

इस विविधता एवं वैचित्र्यपूर्ण संसार मे प्रतिकूलताएँ सदा सम्भाव्य हैं। विपत्ति किसी भी समय आकर मनुष्य को ललकार सकती है, उसे संघर्ष के लिये, पुरुषार्थ की परीक्षा के लिये आमन्त्रित कर सकती है। वह इस बात का परिचय देने के लिये चुनौती दे सकती है कि आप संसार-समर के योग्य है अथवा नहीं, आप मे वह गुण है या नही जो एक जीवन योद्धा मे होना चाहिये। यदि विपत्ति को अपनी योग्यता का परिचय दे दिया गया, उसके दिये हुये द्वन्द्व को हर्षपूर्वक स्वीकार किया गया, उससे बढ़कर दो हाथ किये गये तो वह शीघ्र ही आत्म-समर्पण करके, आपके सुनहले भविष्य के द्वार खोल देगी, नहीं तो वह जिस प्रकार निर्बलो, कायरो अधीरो का आखेट कर डालती है, आपको भी क्षमा नहीं करेगी।

विपत्ति से मोर्चा लेने, उसे परास्त करने के अनेक उपाय है। पहले तो विपत्ति को विपत्ति अथवा भयावह परिस्थिति मानिये ही नही। अपनी शक्ति की तुलना मे उसे हीन एवं हेय समझिये। ऐसी भावना रहने से आपसे आत्मविश्वास आपके पास बना रहेगा। उसका अंकन अनावश्यक रूप से अधिक न होगा। कठिनाई की अपेक्षा अपने को अधिक कठोर समझने से आपकी प्रसुप्त शक्तियाँ सजग होकर आपकी सहायता के लिये खड़ी हो जायेगी। अपनी धारणा के अनुसार आपका धैर्य चट्टान की तरह अडिग रहेगा। सम्मुख आये हुए विपक्षी को अपने से अधिक शक्तिशाली मान लेने से आपकी बहुत कुछ शक्ति स्वभावतः उसके पास चली जायेगी और अपने विश्वास के अनुसार आप निर्बल न होते हुये भी निर्बल हो जायेगे। अपनी क्षमताओ में शंका और प्रतिद्वन्द्वी की सामर्थ्य मे विश्वास पर-पक्ष को ही लाभ देता है। अपनी सामर्थ्य मे विश्वास रखिये और समझ लीजिये कि विपत्ति कितनी ही बड़ी क्यो न हो मानवीय शक्ति की तुलना मे छोटी ही होती है। यदि आपने अपने धैर्य, साहस तथा आत्मविश्वास को बनाये रखा तो निश्चय ही आई हुई विपत्ति के दूर होने मे कोई देर न लगेगी। थोड़े से संघर्ष से ही आप मैदान मे वीर बनेगे और फिर भविष्य की आशा-ऊषा पहले से भी अधिक चमकती-दमकती आपके सम्मुख उदय होगी। आपकी शक्ति बढ़ेगी, आपकी हिम्मत दुगनी होगी और आप एक नये अनुभव के साथ आगे बढ़ेगे।

विपत्ति के आने से पूर्व आप चिन्ता कर सकते है। उससे बचने, उसका रास्ता काट जाने का प्रयत्न कर सकते है। यह दूरदर्शिता एवं बुद्धिमानी हो सकती है। विपत्ति को टालने का पूर्व प्रयास कायरता नही चतुरता ही होगी। किन्तु उसके आ जाने पर, सिर पर गरजने लगने पर, अंगद के पैर की तरह अडिग हो जाइये। उससे भागने अथवा कतराने की कायरता मत करिये क्योंकि ऐसा करने से आई हुई विपत्ति टलेगी नही। भागने पर वह आपको देर तक, दूर तक मारेगी-खदेड़ेगी। आपका सारा साहस एवं पुरुषार्थ छीन लेगी और पूरी तरह से अशक्त बनाकर किसी योग्य न रखेगी।

विपत्ति मे पड़कर विपत्ति के स्वरूप अथवा उसके सम्भावित परिणामो पर अपने चिन्तन को केन्द्रित मत करिये। यह गलत तरीका है। अनेक लोग इस गलत तरीके को अपना लेने से ही बरबाद हो जाते है। विपत्ति के अवसर पर निराशापूर्वक चिन्तन हानिकारक है। "मैं संकट मे फँस गया हूँ अब मेरा उद्धार कैसे होगा ? बड़ी भारी विपत्ति मेरे सिर पर आ पड़ी है। इससे बच सकना कठिन है। मेरे पास इतनी शक्ति एवं साधन नहीं है, जिनके बल पर मै इसका सामना कर सकूँ। यह मुझे मिटा ही डालेगी।" आदि-आदि भावनाएँ करना विपत्ति को बढ़ावा देना है। आपकी बुद्धि विपत्ति की भयंकरता का चिन्तन करने से निर्बल हो जायेगी। उसमे प्रत्युत्पन्नता का गुण न रहने पायेगा, जिससे आप न तो ठीक से उपस्थित परिस्थिति को समझ पायेगे और न उससे बचने का उपाय सोच पायेगे। ऐसी स्थिति में आपकी समस्याएँ सुलझने के बजाय उलझती जायेगी, आपके प्रश्न पहेली

बनते जायेंगे और जल्दी ही वे आपके समाधान से परे होकर आपको पछाड़ देंगे।

विपत्ति आने पर चिन्ता करिये किन्तु उसकी भयंकरता की नहीं बल्कि उससे बच निकलने के उपाय की। विपत्ति को अपना अप्रिय नृत्य करने दीजिये और आप तटस्थ भाव से बिना प्रभावित हुये उसके समाधान के उपाय सोचते रहिये। ऐसा करने से आपकी बुद्धि सन्तुलित और चित्त शान्त रहेगा। तब आप अवश्य ही कोई ऐसी युक्ति सोच निकालेंगे जो आपको कठिनाई से निकल सकने मे सहायता दे सके। व्यग्रता अथवा व्यस्तता आपकी विपत्ति को अधिक चिरस्थायी एवं कठिन ही बना देगी।

विपत्ति से पराभूत न होना उससे बचने का एक बड़ा योग्य उपाय है। मनुष्य वास्तव मे विपत्ति से नहीं, उससे होने वाले कष्ट से डरता है। उसके होने वाले अप्रिय परिणामो से भयभीत होता है। यदि आप उदासीन होकर अपने अन्तःकरण को प्रभाव शून्य बना ले, तो कोई भी कठिनाई आपको ग्रस्त नहीं कर सकती। इस उपाय मे दार्शनिक दृष्टिकोण अथवा दूसरो के उदाहरण भी सहायक हो सकते हैं। आप यह सोचकर विपत्तियो के प्रभाव से उपराम रह सकते है कि विपत्तियो का आगमन संसार की सहज प्रक्रिया है। विपत्ति और सम्पत्ति का विरोधी चक्र तो संसार मे चलता ही रहता है। कल यदि मेरे जीवन मे सुविधाओ का अवसर था तो आज कठिनाइयाँ आ गई है और आज जब विपत्ति का योग है, तो कल सम्पत्ति का संयोग हो सकता है। केवल सुख-सौख्य की कामना करते रहना प्रकृति के विधान का विरोध है, उसके प्रति अश्रद्धा एव असहमति है। सम्पत्ति, विपत्ति मे और विपत्ति, सम्पत्ति मे बदलती ही रहती है। सम्पत्ति के समय हर्ष-विभोर हो उठना और विपत्ति काल में शोकाकुल बने रहना, मानसिक दरिद्रता का द्योतक है, जो किसी भी मनुष्य, किसी भी कर्मवीर पुरुष के योग्य नहीं है। मनुष्य की शोभा रोने मे नही आपत्ति के प्रति उदासीन रहकर उसे दूर करने के लिये प्रबल पुरुषार्थ करने मे है। मनुष्य जीवन मे सुख एव दुःख ईश्वरीय इच्छा के अनुसार आते है। दोनो को प्रभु का प्रसाद समझकर समान रूप से स्वीकार करना चाहिये। अपरिहार्य जैसी आपत्ति मे इस प्रकार कुछ ऊँचा उठकर सोचने-समझने से विपत्तियाँ आपको पराभूत न कर सकेगी। आपका आत्मविश्वास, आत्मबल तथा सहनशक्ति सुरक्षित बनी रहेगी। आप उपाय के प्रति सम्पूर्ण श्रद्धा से सक्रिय बने रहेंगे। आपको दैवी शक्ति, दैवी प्रेरणा तथा दैवी सहायता प्राप्त होगी। जो कि आपके दुर्दिनो को सुदिनो मे बदल देगी।

विपत्तियो पर विजय पाने का साहस संचित करने के लिये आप मनु से लेकर महात्मा गाँधी तक अनेक महापुरुषों के उदाहरण अपने सामने रख सकते है। पाण्डवों, नल तथा हरिश्चन्द्र जैसे आदर्श पुरुषों का जीवन आपको धैर्य की शिक्षा दे सकता है। आप उनके उदाहरणो से सम्बल लेकर साहसपूर्वक विपत्तियों से संघर्ष कर सकते है और इस बात के स्वयं प्रमाण बन सकते है कि विपत्तियो से डरने वाला नही, उससे टक्कर लेने वाला ही उन पर विजय प्राप्त कर सकता है।

कठिन से कठिन संकट आ जाने पर भी विचलित न होइये। शक्ति, साधन एवं सम्पूर्ण बुद्धि भर उसका सामना करिये। भरसक संघर्ष कीजिये और सोच लीजिये कि यह शरीर नाशवान है। सदा रहने वाला नही है। एक दिन इसे नष्ट ही होना है। इसके छूटने का बहाना पूर्व निश्चित है और यदि इसको इस सकट पर ही बलिदान होना है, तब कायरता अथवा अधीरता का कलंक क्यो लिया जाये, क्यो न संघर्ष करते-करते एक वीर बलिदानी का श्रेय प्राप्त किया जाये ? साहसिक अन्त, मृत्यु मनुष्य को भी अनन्तता प्रदान कर देती है।

विपत्तियो से न तो कभी घबराइये और न निराश होइये। कभी मत सोचिये कि जो विपत्ति आप पर आई है वह सदा रहने वाली है। मनुष्य कल का निर्णय स्वयं नही कर सकता, वह केवल अपने पुरुषार्थ के आधार पर उसका अनुमान लगा सकता है। मनुष्य जीवन का प्रत्येक नया दिन एक परिवर्तन, एक नई सम्भावना लेकर ही आता है। कौन कह सकता है कि आने वाला कल आपके लिये मनभावन उपहार लेकर नही आ रहा है। आज की आपत्ति मे कल के प्रति निराश क्यो हुआ जाये ? क्यो न यह विश्वास रखा जाये कि हमारा आज ही केवल सापद है, हमारा कल निरापद एवं निर्विघ्न है। क्यो न आज के कंटको को सहन कर कल के फूलो का स्वागत करने के लिये सुरक्षित एवं आशान्वित रहा जाये ? इस प्रकार के आशान्वित विचार आपको नित्य नया साहस, उत्साह तथा शक्ति प्रदान करते रहेंगे, जिससे आप बड़ी से बड़ी विपत्ति पर सहज ही विजय प्राप्त कर सकते है।

विपत्ति से बचने का उपाय उससे भागना नहीं, उससे टक्कर लेना ही है। अपने आत्म-विश्वास, साहस, धैर्य तथा सहन-शक्ति के दीपक जलाये रहिये अपने उज्ज्वल भविष्य की ओर देखते रहिये, बड़ी से बड़ी विपत्ति आपका बाल भी बाँका नही कर सकेगी। आप विजयी होगे और सफलता के सुन्दर हस्त आपका अभिषेक करेंगे।

अडिग निष्ठा के साथ कार्यक्षेत्र में उतरें

भाग्य के भरोसे अथवा संयोग की प्रतीक्षा मे बैठे-बैठे समय बरबाद करने वाले जीवन मे कभी सफलता

प्राप्त नही कर सकते। सफलता परिश्रमपूर्ण तत्परता का ही फल है।

भाग्य के भरोसे अथवा संयोग की राह देखते रहने वाले स्वभाव से आलसी एवं दीर्घसूत्री हो जाते है। वे यह नही समझ पाते कि भाग्य पुरुषार्थ से बनता है और सयोग कार्यक्षेत्र मे उतरने पर ही प्राप्त होता है। जो कार्यक्षेत्र से दूर बैठा-बैठा अलसाता रहेगा, उसके पास सयोग आ जाने की सूचना देने के लिये कोई नही आएगा। लोगो को अपनी व्यस्तता मे इतना बेकार समय कहाँ जो किसी व्यक्ति को बतलाने के लिये उसके पास चलकर जाये कि भाई अब उठो, आप जिस संयोग अथवा अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे वह आ गया है। फिर चाहे वह किसी का मित्र ही क्यो न हो ?

यदि एक बार यह भी मान लिया जाये कि समाज मे आपके ऐसे हितैषी भी है, जो किसी अवसर अथवा संयोग की सूचना देने मे अपना समय खराब करने की उदारता बरत सकते है। तब भी तो जब तक वह सूचना देने के लिये आयेगा और आप तैयार होकर चलेगे, तब तक वह संयोग अथवा अवसर आगे निकल चुकेगा और आप सिर्फ उसकी पीठ ही देख सकेगे।

ऐसा होने पर भी कि आपका कोई हितैषी मित्र जो कि दीर्घ-दृष्टि वाला है और आपकी सफलता हृदय से चाहता है, किसी अवसर की सूचना इतने पूर्व दे गया है जितने मे आप तैयार होकर यथा समय, यथा स्थान पहुँच सके। यदि आप आलसी एव दीर्घ-सूत्री है तब भी उस अवसर का उपयोग नही कर पायेगे। आपका आलस्य दीर्घ-सूत्रता का सहारा पाकर उस बीच के थोड़े समय को भी बहुत समझ लेगा और निश्चिन्तता से पड़े रहने को मजबूर कर देगा। आप जल्दी न कर पायेगे और यथा स्थान पहुँचकर देखेगे कि आपको देर हो गई है। अवसर आपकी पहुँच के बाहर जा चुका है ! तत्परता के अभाव मे आपने अपनी हानि ही की और उस मित्र को भी यह सोचने पर विवश किया कि आपको समय खराब करके सूचना देने जाना बेकार है और जिसका उसे हार्दिक दुःख होगा।

इस प्रकार अवसर खोते-खोते मनुष्य के मस्तिष्क से अवसरो की महत्ता निकल जाएगी और तब वह अधिक भाग्यवादी बनकर सदा के लिये असफलता मे विश्वास करने लगेगा।

जिससे प्रमाद, आलस्य एवं दीर्घसूत्रता के दोष से अपनी तत्परता तथा कार्यक्षमता को शिथिल कर लिया है। यदि वह किसी समय जाकर अवसर को घेर भी लेता है तब भी वह अवसर बिगड़ैल घोड़े की तरह कमजोर हाथो से छूटकर जा सकता है। अवसर मिल जाने पर भी तो पुरुषार्थ के अनभ्यस्त लोग उसका लाभ नही उठा पाते।

सफलता चाहिए तो उद्योग, पुरुषार्थ तथा तत्परता के गुणो का विकास करना ही होगा। यह परिश्रमपूर्ण उद्योग घर बैठे-बैठे प्रतीक्षा करने से जाग्रत नही हो सकते इसके लिए कार्यक्षेत्र मे उतरकर सघर्ष करना होगा। अभ्यास करना होगा। जो मनुष्य तत्परतापूर्वक कार्यक्षेत्र मे डटा रहता है, उसके लिये संयोगो एवं अवसरो की कमी नही रहती क्योंकि कार्यक्षेत्र ही एकमात्र उनके आवागमन का स्थान होता है, जहाँ वे हर समय आते और जाते रहते है। जिस वस्तु का जहाँ मिलना सम्भव है वह वही मिलेगी, अन्यत्र बैठकर उसकी प्रतीक्षा करना अथवा खोजना अपनी अज्ञता का परिचय देना है।

अनेक लोगो की तत्परता एव उद्योगशीलता साहस के अभाव मे अनुपयोगी हो जाया करती है। उनमे परिश्रम करने की प्रवृत्ति तो होती है किन्तु आगे बढ़ने का नया और ऊँचा काम हाथ मे लेने का साहस नही होता, निदान कोल्हू के बैल की तरह उसकी सारी जिन्दगी यथा स्थान चक्कर काटते-काटते समाप्त हो जाती है और उनके हाथ मे उतना ही कुछ जीवन के अन्तिम क्षण मे रह जाता है जो जीवन के प्रारम्भ मे था।

सफलता तो आगे बढ़ने, कुछ नया करने अथवा पुराने को ऊँचा उठाने से ही मिलती है ? एक ही स्थान पर एक ही ढर्रे पर लुढ़कते रहने से सारा परिश्रम, सारी तत्परता उसी सीमित दायरे मे समाप्त हो जाती है और प्रगति के नाम पर शून्य ही हाथ रहता है।

जिसमे आगे बढ़ने, कुछ नया करने अथवा ढर्रा बदलने का साहस नही है। अच्छा है कि वह प्रगति एवं उन्नति की आकांक्षा न करे। यदि वह ऐसा नहीं करता तो इसका कोई निश्चय नही कि उसकी अनाधिकार आकाक्षा उसके लिए एक अनुताप नही बन जायेगी।

यदि उन्नति की आकांक्षा है तो साहस संचय कीजिये और आगे बढ़िये, जो कुछ है भी वह जा सकता है, इस अनिष्ट आशंका को दूर भगाइये। ससार में कुछ खोकर ही कुछ पाया जा सकता है। खतरा पार करके ही विजय मिल सकती है। बीज गलाकर ही फसल प्राप्त हो सकती है। बिना साहस किए और खतरा मोल लिए न तो कोई आज तक आगे बढ़ पाया है और न आगे ही उन्नति कर सकेगा। उन्नति एवं प्रगति के इस नियम को प्रकृति किसी के लिए अपवाद बनाकर ईश्वरीय विधान मे व्यवधान डालने का साहस नही कर सकती।

साहस सचय करने के लिए कही जाना नहीं होता। वह मनुष्य की अपनी आत्मा मे निवास करता हुआ इस बात की प्रतीक्षा किया करता है कि कब हमारा स्वामी पैर आगे बढ़ाये और कब मै उठकर अपना अस्तित्व प्रकट कर दूँ।

प्रगति पथ पर अपना कदम बढ़ाइए, आपका साहस साथ देगा। इस सत्य को, यद्यपि प्रमाण की आवश्यकता नही, तथापि यदि आप चाहते है, तो किसी ऐसे अवसर की याद कर लीजिए जिसकी सम्भावना से आप भयभीत हो रहे थे किन्तु जब वह आ ही गया तो आपने उसका डटकर मुकाबला किया था। यह क्या बात थी ? उस

संयोग का सामना करने का इरादा करते, कदम बढ़ाते ही आपका साहस आपके साथ हो लिया था ? यही साहसहीनता एवं आशंका, आपको तब भी तो रही होगी जब आप पहले-पहल अपनी वर्तमान स्थिति मे उतरने के लिए बढ़ने लगे थे, किन्तु जब आप उसमे उतर ही गए तो आपकी सारी आशंका, सारा भय जाता रहा। आपके साहस ने आपका साथ दिया और आप निःशंक होकर अपना काम कर रहे। भय अथवा आशंका अनागत के प्रति होती है। समागत के प्रति नहीं और साहस का जागरण आगे बढ़ने पर ही होता है, ठिठकने अथवा पीछे हटने से नही। यह एक स्वाभाविक नियम है। इसे अपनी दुर्बलता, अयोग्यता अथवा साहसहीनता समझकर आगे बढ़ने से कदापि न रुकिये। प्रयत्न से जगाया हुआ एक बार का साहस फिर जल्दी सोता नही। यदि उसको निष्क्रियता की अफीम न खिला दी जाए। जो उन्नति चाहता है, प्रगति का आकांक्षी है वह जागे हुए साहस को सुलाने के लिए निष्क्रियता को प्रश्रय ही क्यो देगा ? आप यदि उन्ही प्रगतिकांक्षियो मे है तो कदम बढ़ाइये, साहस को जागने का अवसर दीजिए, आगे बढ़िए और आप अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे।

और सब कुछ होते हुए अनेक लोग अदृढ़ता एवं अनिश्चय के कारण आगे नही बढ़ पाते। कभी-कभी तो उनकी यह दुर्बलता इस अभियान के रूप में आड़े आ जाती है कि ऊँह ! जल्दी क्या है ? मुझमे किसी बात की कमी नही, जब जो कुछ चाहेगे कर डालेगे ! मनुष्य का यह अति विश्वास भी उसे बहुधा कुछ करने नही देता। वह अपनी क्षमताओ के अभिमान मे न हुए काम को भी हुआ ही समझता है। ऐसे अति विश्वासी लोग ढुलमुल हुआ करते है। एक काम को पूरा न करके बहुत कुछ एक साथ कर डालने के इरादे से दूसरा काम उठा लेते है और इस प्रकार उनका कोई कार्य पूरा नही हो पाता और वे प्रायः असफल ही रह जाते है।

अनेक लोग इस प्रकार ऊहापोही होते है कि "यह करूँ अथवा वह" करने मे ही अवसर एवं समय गँवा दिया करते है। इसके अतिरिक्त अनेक लोग तो बहुत ही कमजोर होते है। काम प्रारम्भ किया, कदम बढ़ाया किन्तु जरा-सी कठिनाई आते ही पीछे हट जाते है। कमजोर निश्चय वाले लोग अनेक बार दूसरो के परामर्श पर ही निर्भर रहा करते है, जिसने जो बतला दिया उसी को करने के लिए चल पड़े। विचार-वैचित्र्य होने से हर आदमी—अपनी तरह से ही परामर्श देगा, तब ऐसी दशा मे हर एक का परामर्श मानते रहने से कोई काम पूरा ही नहीं हो पाएगा। एकनिष्ठा के अभाव मे सफलता की आशा करना दिन मे स्वप्न देखने के समान ही है।

इस प्रकार के अनिश्चयी स्वभाव वाले लोग परावलम्बी ही होते है, उन्हे अपनी बुद्धि मे न तो विश्वास होता है और न अपने निर्णय मे पूरी आस्था। अनिश्चय एवं एकनिष्ठा के अभाव मे आदमी अस्त-व्यस्त हाथ-पैर मारता हुआ अपनी सारी शक्ति को बिखेर देता है, जबकि किसी सफलता के लिये शक्तियो का संगठित एवं एकाग्र होना बहुत आवश्यक है।

सफलता पानी है तो दृढ़ निश्चयी बनिए। एक बार विवेकपूर्वक जो निश्चय कर लीजिए, उसे पूरा करने मे अपनी सारी शक्तियाँ संगठित रूप से नियोजित कर दीजिए। निश्चय करने से पूर्व अपने हितैषियो, मित्रो एवं शुभचिन्तको से परामर्श कर लेना ठीक हो सकता है किन्तु निश्चय हो जाने के बाद किसी के कहने से उसे बदलना अदृढ़ता का द्योतक होगा। अपनी क्षमताओ एवं योग्यता के अनुरूप जो काम उठाइए उसे पूरा करके ही मानिए। आपकी दृढ़ता निश्चय ही अपना कार्य सफल करेगी और आत्मविश्वास, योग्यता एवं सफलता मे वृद्धि करेगी। जब दूसरे काम मे भी यही अड़चने, यही कठिनाइयाँ आ सकती है, तब उनके डर से करते हुए काम को छोड़कर नये सिरे से नया काम शुरू करने मे कोई बुद्धिमानी नही है।

इस प्रकार निरालस्य होकर साहसपूर्वक तत्परता के साथ अडिग उद्योग करते हुए इस सिद्धान्त मे आस्था रखिए कि पुरुषार्थ मेरा अधिकार है और फल परमात्मा का। आप अवश्य उन्नति करेगे और जीवन मे मनोवांछित सफलता के अधिकारी बनेगे।

महान वे बनते हैं जो कठिनाइयों से डरते नहीं

उन निर्बलमना व्यक्तियो को महानता के लक्ष्य प्राप्त कर सकने की आशा नहीं करनी चाहिए, जो असफलताओ, बाधाओ, विरोधो एवं कठिनाइयो से डरते, घबराते हो। यह स्थितियाँ उस पथ के उपहार है, जो पथिक को स्वीकार ही करने होते है।

महानता इस जीवन मे ही मिल जाए यह आवश्यक नही। प्रायः होता यही है कि महानता के मार्गगामियो को अपने जीवनकाल में तिरस्कार, उपेक्षा, आलोचना और विरोधो को सहन करना पड़ता है किन्तु जब वे अपना कर्तव्य पूरा कर संसार से चले जाते है, तब लोग उनकी महानता स्वीकार करते, जीवनगाथा कहते, लिखते और पढ़ते है। उनकी पूजा करते और उन्हे जीवन का आदर्श बनाते है।

ईसामसीह का पूरा जीवन कठिनाइयो, कष्टों, विरोधो, तिरस्कार तथा अत्याचार के बीच बीता। किन्तु वे अपने ध्येय पर डटे रहे। प्राण दे दिए किन्तु व्रत का त्याग नही किया। ईसा प्रेम, दया क्षमा का संदेश संसार को देने चले थे। कितना महान् और कल्याणकारी लक्ष्य था ? उसमे उनका किसी प्रकार का कोई स्वार्थ नहीं था ? वे मनुष्य के बीच फैले द्वेष, घृणा, आक्रोश तथा

संघर्ष से द्रवित हो उठे थे। वे नही चाहते थे कि मनुष्य, जो कि परमपिता परमात्मा के पुत्र है, इस प्रकार की दूषित प्रवृत्तियो के शिकार बन दुःखी, संतप्त तथा त्रस्त जीवन बिताये। यदि वह अपना अज्ञान दूर कर दे, सद्प्रवृत्तियो का मूल्य एवं महत्त्व समझे। प्रेम, दया, करुणा और क्षमा के दिव्य गुणो की शीतलता अनुभव करे, तो निश्चय ही अन्त मे पिता के स्वर्गीय राज्य मे स्थान पायेंगे। जीवन मे भी सुख-शान्ति के लिये कलपते न रहे। उन्होने उस दिव्य अनुभूति को अनुभूत किया था इसलिये विश्वास था कि प्रयत्नपूर्वक यदि भ्रम मे भटकती मनुष्य जाति का अज्ञान दूर किया जा सके, संदेश दिया जा सके तो सभी मनुष्य उस स्वर्गीय अनुभूति को प्राप्त करके उसका सुख अनुभव कर सकेगे।

इसी आशा-विश्वास के साथ वे अपना शीतल सन्देश लेकर मानवता की सेवा करने के लिए उतरे थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि हमारे मनुष्य भाई भी उस स्वर्गीय शाति को पाये, जो उन्हे मिली थी। ईसा का यह विचार कितना महान, निःस्पृह, निर्विकार एवं निःस्वार्थ था। इसमे कितना उपकार और मनुष्यो के प्रति मंगल भावना भरी हुई थी। किन्तु मनुष्यों ने उस आलोकदाता के साथ क्या व्यवहार किया ? इतना कष्ट, इतना क्लेश, तिरस्कार एवं त्रास कि उन्हे अनेक बार एकान्त मे बैठकर रोना पड़ा, इसलिये नही कि उनको कष्ट दिया जा रहा है, बल्कि इसलिये कि आखिर मनुष्य जाति अपना हित सुनना-समझना क्यो नही चाहती ? यदि ईसा के स्थान पर कोई दुर्बल-मना व्यक्ति होता, तो वह यह कहकर अपना रास्ता लेता कि जब मूर्ख मनुष्य अपने कल्याण की बात सुनना-समझना ही नही चाहते तब मेरी क्या गर्ज पड़ी है, जो इन्हे समझाने की कोशिश करूँ और बदले मे पत्थर खाऊँ।

किन्तु संसार के सच्चे हितैषी इस प्रकार कहाँ सोच पाते है ? वे एक बार अपने निर्विकार मनोमुकुर मे जिस सत्य के दर्शन कर लेते है, उसका आलोक संसार को देने के लिए आजीवन प्रयत्न करते रहते है। वे विरोध अथवा तिरस्कार की परवाह नही करते क्योकि उन्हे पता रहता है कि लोग जो कुछ प्रतिकूल कर रहे है, अज्ञानवश ही कर रहे है। यदि उनमे यह अज्ञान न होता तो उन्हे आलोक देने की आवश्यकता ही क्यो होती और क्यो मेरी आत्मा मुझे इस कठोर कर्त्तव्य के लिये कहती ? साथ ही यह विश्वास भी होता है कि मनुष्यो का यह अज्ञान आज नही तो कल अवश्य दूर हो जायेगा। मुझे 'आज ही' की जिद के साथ अपने कर्त्तव्य को बोझिल नहीं बना लेना चाहिये। मनुष्य, मनुष्य है वे एक दिन समझेंगे और सत्य के दर्शन करेंगे।

ईसा को सफलता की कोई जल्दी न थी, उन्हे चिन्ता थी अपने कर्त्तव्य पालन की। वे लगन और धैर्यपूर्वक अपने कर्त्तव्य मे लगे रहे और उसकी पूर्ति मे ही अपने प्राणो को उत्सर्ग कर दिया। ईसा जीवन भर अपने ध्येय मे असफल रहे। किन्तु एक क्षण को भी विचलित न हुए। आज यह उनके धैर्य एवं निःस्वार्थ प्रयास का ही सत्फल है कि आधे से अधिक संसार उनका अनुयायी है। वह ईसा जिन पर जीवनकाल मे पत्थर मारे गये, बड़े से बड़ा त्रास दिया गया, यहाँ तक कि जीवित क्रूस पर लटकाकर मार डाला गया। जीवनोपरान्त ईश्वर के समान पूजे और माने गये। आज उनका नाम संसार मे महानतम व्यक्तियो मे है।

महानता कोई सुख नही है, जैसा कि लोग समझते है। यह मनुष्य की जीवनकालीन सेवाओ, लोकमंगल की कामनाओ, प्रयत्नो, कष्टो, बलिदानो और ध्येयधीरता का प्रमाण-पत्र है, जो प्रायः उसके दिवंगत हो जाने के बाद संसार द्वारा घोषित किया जाता है। जीवनकाल मे ही सफलता का हठ लेकर चलने वालों को यही उपयुक्त है कि वे या तो अपना कदम पीछे हटा ले अथवा अपनी मनोवृत्ति मे सुधार कर ले।

महान् उद्देश्यो मे सफलता जीवनकाल मे नहीं मिलती, ऐसा नैसर्गिक नियम नही है। वह जीवनकाल मे भी मिल सकती है। भगवान बुद्ध, महावीर, विवेकानन्द और महात्मा गाँधी प्रभृति सत्पुरुष इसके उदाहरण हैं। किन्तु महान् पथ पर चरण रखने वालो को सफलता-असफलता और उसके आगमन की चिन्ता से मुक्त रहकर ही अपने कर्त्तव्य मे लगा रहना चाहिए। उसे जब आना है आ जायेगी। उसके विषय मे सोचना और चिन्ता करना क्या ?

श्रेय-पथ पर आने वाली कठिनाइयो से घबराकर निराश, हताश, निरुद्योगी हो जाने वाले अपने लक्ष्य को नहीं पा सकते, ससार मे ऐसे न जाने कितने कम-हिम्मत व्यक्ति हुए होंगे और आज भी होगे, जो किसी लक्ष्य को पाने का इरादा लेकर चले होगे किन्तु चार-छः कदम चलने पर कठिनाइयो का सामना होते ही पीछे हटकर बैठ रहे होगे। ऐसे लोगो के उदाहरण तो नही बताये जा सकते क्योकि साहसहीन व्यक्तियो का अकन न तो समय के स्मरण-पट पर होता है और न वे स्वयं अपना प्रकाश करते है। महान् उद्देश्य को लेकर न चलना उतनी लज्जा की बात नही होती जितनी कि चलने के बाद कठिनाइयो के भय से रुक जाना अथवा पीछे हट जाना। समय के स्मृति-पट पर वे ही पुरुषार्थी व्यक्ति अकित होते और लोक प्रेरणा के लिए उदाहरण बनते हैं, जो अपने श्रेय-पथ की बाधाओ, विघ्नो तथा कठिनाइयो से तिल-तिलकर जूझते हुए बढ़ते रहते है। अपनी इस शक्ति तथा साहस को सुरक्षित रखने के लिए वे इनकी शत्रु निराशा एवं निरुत्साह को स्वप्न मे भी पास फटकने नही देते। ऐसे ध्येय-धीर, मनस्वी, वीर पुरुष पहाड़ जैसी असफलता की उपेक्षाकर कण जैसी सफलता पर नजर रखकर उत्साह एवं सक्रियता की जननी प्रसन्नता को विनष्ट नही होने देते। उनकी गणना के विषय बढ़े हुए

कदम होते हैं, रुके अथवा परिस्थितियों द्वारा पकड़कर पीछे हटाये हुए नहीं। लड़ाई के मैदान मे कभी-कभी रुकना और पीछे भी हटना होता है। भय अथवा कायरता के वशीभूत होकर भागने के लिए नहीं बल्कि सँभलने, समझने और फिर तेजी से आगे बढ़ने के लिए। अब्राहम लिंकन को एक सौ आठ बार असफलता का मुख देखना पड़ा। हुमायूँ इक्कीस बार लड़ाई मे हारा। प्रताप को जीवन भर लड़ना पड़ा और सुभाष की असफलता संसार की बड़ी सफलताओ के साथ लिखी गई। किन्तु क्या इन ऐतिहासिक पुरुषो ने कभी निराश अथवा हतोत्साह होकर हार मानी। यदि इनमे यह दुर्बलता रही होती तो आज उनका नाम इतिहास मे न होता। सफलता-असफलता की सुखद अथवा दुःखद भावना से परे कर्मठ कर्तव्यवादी ही महानता के शिखर पर चढ़कर अपने लक्ष्य की उपलब्धि किया करते है।

सफलता के लिए साधनो की नहीं साहस एवं संलग्नता की आवश्यकता होती है। अमेरिका के महान प्रेसीडेण्ट विल्सन को आज कौन नही जानता ? अमेरिका मे गुलामी-प्रथा का विरोध करने वाले इस महापुरुष का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उन्होने अपना जीवन विवरण देते हुए लिखा है—

"मै एक अत्यन्त गरीब घर मे पैदा हुआ था। घर मे इतनी गरीबी थी कि दो-दो, तीन-तीन दिन भोजन के दर्शन नही होते थे। जब कभी अबोधावस्था मे भूख से व्याकुल होकर किसी से रोटी माँगता था, तो वह भी नही मिलती थी। दस वर्ष की आयु मे रोटी की तलाश मे घर छोड़कर भागना पड़ा। अनेक मासो तक दर-दर की ठोकरे खाने के बाद एक साधारण-सी नौकरी मिली, जिसमे वेतन तो बहुत कम था किन्तु वर्ष मे एक माह की छुट्टी मिलती थी। ग्यारह वर्ष तक उस नौकरी को करता रहा। वर्ष में एक माह की छुट्टी का अवकाश मै पढ़ने मे लगाया करता था। इस प्रकार ग्यारह वर्ष की नौकरी मे मुझे केवल ग्यारह माह पढ़ने के लिये मिले, जिनका मैने परिश्रमपूर्वक इतना उपयोग किया कि अच्छी-खासी योग्यता प्राप्त कर ली। अपने कर्तव्य कार्य को मैने किस तत्परता से किया इसका प्रमाण यह है कि मालिक ने काम खत्म होने पर मुझे दो सौ रुपये मूल्य के जानवर इनाम मे दिये, जिन्हे बेचकर मैने वह धनराशि धरोहर के समान आगे के लिये सुरक्षित रख ली। मेरी इच्छा जीवन मे तरक्की करने की थी। इसलिए मै जी तोड़कर मेहनत करता और मजदूरी का एक-एक पैसा बचा लेने की कोशिश करता।"

"इक्कीस वर्ष की आयु तक मैने बीस रुपये मासिक पर खेत जोतने, लकड़ी काटने, चीरने और ढोने का काम किया, जिसमे मुझे सूर्योदय से एक पहर रात गये तक काम करना पड़ता था किन्तु मैने निराशा अथवा उत्साहहीनता को पास न आने दिया। इस बीच अवकाश के समय मे मै बराबर अध्ययन करता रहा और आगे उन्नति की युक्ति पर बराबर सोचता रहा, जिससे मैं इस जी तोड़ मेहनत की नौकरी के समय मे भी एक हजार पुस्तके पढ़ सका। अपने बढ़ाये हुए ज्ञान और बचायी हुई पूँजी को लेकर आगे बढ़ा और कोई स्वतन्त्र काम करने के विचार से सौ मील की दूरी पर नाटिक नामक कस्बे मे मोची का काम सीखने गया। वहीं मैने काम सीखकर अपना काम जमाया। मेरी उपार्जित दक्षता एवं शिक्षा ने मेरा साथ दिया और मै शीघ्र अपने ईमानदार इरादो, विचारो तथा कर्मों से इतना लोकप्रिय हो गया कि वही विधान सभा के निर्वाचन मे बहुमत पा सकने मे सफलता प्राप्त की जोकि बढ़ती-बढ़ती अमेरिका के सम्मानित एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पद तक जा पहुँची।"

अन्त मे उन्होंने अपने जीवन का उदाहरण देते हुए कहा कि जो लोग उन्नति के लिए साधनो की कमी की शिकायत करते हैं, वे वास्तव मे उन्नति चाहते नहीं और अपनी साहसहीनता के साथ अकर्मण्यता का परिचय देते है।

हम किसी से क्यों डरें ?

परमात्मा ने अनेक विभूतियो से सुसज्जित कर मनुष्य को इस धरती पर भेजा है। जिन मंगलकारी उपहारो को लेकर वह इस वसुन्धरा मे अवतीर्ण होता है, वे इतने है कि एक-एक की खोज और गणना करने बैठे तो अतुल श्रम व समय लगाना पड़े। भावनाओ को व्यक्त करने के लिए जैसी बुद्धि व वाणी उसे मिली है, संसार के किसी अन्य जीव-जन्तु को उपलब्ध नहीं। संसार की मशीने एक ही शरीर के सम्मुख हतप्रभ हैं। खाने, पीने, चलने, फिरने की स्वचालित मशीन और कोई भी ऐसी नही जैसी मनुष्य को प्राप्त है। पारस्परिक प्रेम और स्नेह, त्याग और आत्मोत्सर्ग, सौजन्य और सौहार्द्र, संगठन और सहानुभूति के बल पर वह चाहें तो इस धरती पर स्वर्ग उतारकर रख दे। इनसे भी बढ़कर श्रेष्ठ व अनुपम वस्तु उसे मिली है, वह है आत्मिक बल की अनुपम सम्पदा। इसे प्राप्त कर मनुष्य सचमुच देवता बन जाता है।

किन्तु कार्य-जगत् मे जब हम इन उपहारो मे से एक को भी अधिकतर जीवनो मे फलित नही देखते तो बड़ा आश्चर्य होता है। इन महत्वपूर्ण अनुदानो का स्वामी होकर भी उसकी दीनता, हीनता देखकर बड़ी निराशा होती है। लगता है कि उसने इनका दुरुपयोग कर लिया। बजाय सुखी व समुन्नत जीवन बिताने के बेचारा क्लेश और क्लान्त परिस्थितियो में पड़ा। किसी प्रकार जीवन के दिन पूरे करता रहता है। इसका एक प्रबल कारण है, भय। भय से बढ़कर अनिष्टकारी दूसरा कोई मनोविकार नहीं। यह ऐसा महान् घातक शत्रु है, जो व्यक्ति की विकास-विजय को पराजय मे, आशा को निराशा मे, उन्नति को अवनति मे क्षण भर मे बदलकर रख देता है।

भय के दो रूप है—एक क्रियात्मक, दूसरा भावनात्मक। पहला कर्त्ता और परिस्थिति के स्थूल संयोग या सघर्ष की आशंका से होता है। रात के अन्धकार मे डर जाना। चोर-बदमाश आदि किसी आततायी के आक्रमण आदि की आशंका को इस कोटि में माना जाता है। इससे शारीरिक, आर्थिक व व्यावसायिक क्षति सम्भव है। किन्तु दूसरी प्रकार का भय जो मनुष्य को देर तक उत्पीड़ित करता, घुलाता रहता है वह है मन का भय। इनके पीछे भी आधार क्रियात्मक हो सकते हैं, किन्तु ऐसे भय अधिकांश निराधार ही होते हैं। पहले से उतना नुकसान नही होता, क्योंकि वे घटना के अनन्तर ही समाप्त हो जाते है। किन्तु निरन्तर शारीरिक व मानसिक शक्तियो का शोषण करने वाला तो यह मन का भय ही होता है।

भयभीत होने का अर्थ है—आत्मबल की कमी, आत्मविश्वास की न्यूनता। आने वाली कठिनाई या दुर्घटना से आतंकित होने का ही अर्थ होता है कि उससे लड़ने, जूझने और संघर्ष का साहस नही है। यह मनुष्य का एक बड़ा दुर्गुण है कि वह बिना जाने-पहचाने केवल कागजी कस से, कपोल कल्पित. मान्यताओ से, भयभीत रहे। भय की परिस्थिति के मूल तक पहुँचकर देखे तो वास्तविकता कुछ भी न निकलेगी। मानसिक दुर्बलताओ के अतिरिक्त भय का और कोई कारण नहीं। यदि कुछ हो भी तो उसे अपने सुदृढ मनोबल के द्वारा, विवेक और बुद्धि के माध्यम से सुलझाया जाना सम्भव है।

एक आदमी अँधेरे मे पाँव धरता है तो आगे भूत खड़ा दिखाई देता है। बेचारा डर जाता है। होठ सूख जाते है। छाती धोकने लगती है, धैर्य छूटा कि भूत सवार हुआ। फिर जैसी कल्पना करते जाते है, भूत वैसी ही क्रियाएँ करने लगता है। पर एक दूसरा व्यक्ति थोड़ी हिम्मत बाँधता है, सारा साहस बटोकर कर आगे बढ़ता है, सोचता है देखे यह भूत भी क्या बला है ? आगे बढ़ता है तो हवा के कारण हिलती-डुलती झाड़ी के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नही देता। तब उसे पता चल जाता है कि भूत और कुछ नही अपना ही मानस पुत्र है, अपनी ही कल्पना की तस्वीर है। डर जाने के अस्सी फीसदी कारण ऐसे ही होते है। कई बार ऐसे समय आ सकते है, जब कोई हिंसक जीव या आततायी पुरुष द्वारा ऐसी घटना उपस्थित हो। पर यदि वहाँ भी मनुष्य साहस और शौर्य से काम ले तो उन्हे भी पार कर सकता है। कहावत है, "हिम्मतीं मरदे तो मददे खुदा।" अनेको ऐसी घटनाएँ घटित हुई हैं, जब छोटे-छोटे बालको ने खूँख्वार हिंसक जानवरो का मुकाबला करके उनसे अपनी आत्म-रक्षा की है। भयभीत होने का तो एक ही अर्थ है, अपने प्रतिद्वन्द्वी के आक्रमण के सामने सिर झुका देना। डर जाना, जान-बूझकर अपने आपको आपत्तियो के जाल मे फँसा देना है।

छोटे-छोटे जीव-जन्तु, पशु-पक्षी घोर जंगलों में भी निर्भय विचरण करते रहते हैं। अनेकों भयदायक परिस्थितियाँ होते हुए भी उन्हें इस तरह निर्भीक घूमते देखते हैं, तो मनुष्य की क्षमता पर, शारीरिक व मानसिक शक्ति पर सन्देह होने लगता है।

भय मनुष्य की योग्यता कुण्ठित कर देने का प्रमुख कारण है। मानवीय योग्यताओ को देखते हुए भी यह आशा की जाती है कि लोग दिन-प्रतिदिन उन्नति की ओर, विकास की ओर बढ़ते चले जाये। आज जिस स्थिति मे हैं कल उससे बेहतर स्थिति में हो।आज की अपेक्षा कल कुछ अधिक धनवान, बलवान, गुणी एवं शिक्षित हो। किन्तु इस तरह भयभीत रहकर अपनी विकास गति को शिथिल एवं लुंज-पुंज कर डालने की बात उपहासास्पद-सी लगती है। यह सब इसलिये होता है कि हम आने वाली घटनाओ तथा परिस्थितियो को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और अपनी शक्तियो को उनसे कमजोर मानते है। इससे पराक्रम तथा कर्त्तव्य-निष्ठा का ह्रास होता है। जिस कर्म के किए जाने की यथार्थ आवश्यकता थी, वह नहीं हो पाता। कई बार तो उसके स्थान पर अनुचित कार्य तक होते देखे जाते हैं। डरपोक मन, कायरता और सशंकित रहने की विनाशक वृत्तियो के रहते कोई महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा कर पाने मे समर्थ नही हो सकता। सफलता प्राप्त करना हो तो भय-रहित होकर उस कार्य मे जुटना पड़ेगा अन्यथा मानसिक चेष्टाओ में वह एकाग्रता, लगन एव तत्परता न बन पड़ेगी जिनकी कार्यपूर्ति के लिये आवश्यकता अनुभव की गई थी। छिन्न-भिन्न एवं दुर्बल मनोबल से कोई कार्य पूरे नही होते। इसलिए पहले साहस का अनुसरण करना होता है।

इस स्थिति पर जितनी जल्दी नियन्त्रण किया जा सके करना चाहिये। लगातार भय की स्थिति में आत्महीनता और दीनता के भावो का उदय होता है। मनुष्य दिन-दिन मानसिक दुर्बलता से ग्रसित होता चला जाता है। इससे बचने का एक ही उपाय है कि जब कभी ऐसा अवसर, ऐसी परिस्थिति आये जो भयोत्पादक हो, उसे ललकारकर सघर्ष किया जाये। भय केवल एक हीन कल्पनामात्र है। इसलिये आत्मबल संवर्द्धित करने वाले कार्यक्रमो को अपने जीवन मे धारण करने से इससे सहज ही बचा जा सकता है।

आत्म-सुधार के क्षेत्र की सबसे बड़ी बाधा भी यही है। अविचारी लोगो द्वारा उपहास करने की क्षुद्रता से डरकर लोग संकोच मे पड़ जाते है। आत्म-शोधन एवं आत्मविकास के इच्छुको को बहुधा लोक निन्दा एव जग-हँसाई के भय से अपना रास्ता छोड़ने को मजबूर होना पड़ता है। उन बेचारो ने कभी किसी को ऐसा साहस करते देखा, सुना नही होता। पुराने ढर्रे पर ही सबको चलते देखा होता है, इसलिये उन्हे हर नवीनता, चाहे वह कितनी ही हितकर अथवा श्रेयस्कर ही क्यो न

हो अटपटी ही लगती है। स्थिति उस समय और भी कठिन हो जाती है, जब आस-पास आसुरी प्रवृत्ति के लोगो का बाहुल्य हो। ऐसे व्यक्तियो के द्वारा उपहास किये जाने से निरुत्साहित होकर प्रायः आत्म-सुधार के इच्छुक अपना सही रास्ता छोड़े देते हैं। प्रगति-पथ पर बढ़ते हुए कदम बिना मंजिल तक पहुँचे बीच मे ही रुक जाते हैं।

भय सफलता का सबसे बड़ा बाधक है। साहसी और हिम्मतवान व्यक्ति हजार कठिनाइयों मे भी विचलित नहीं होता। जीवन के किसी भी क्षेत्र मे व्यवस्था एवं क्रम बनाये रखने के लिए सुदृढ मनोबल एवं साहसी होने की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके अभाव मे पग-पग पर भय उत्पादक परिस्थितियाँ रास्ता रोकती और पीछे लौटने को मजबूर कर देती है। विकास की गाड़ी रुके नहीं—सफलता की मंजिल तक पहुँचने मे संदेह न रहे—इसके लिये भयभीरुता छोड़नी पड़ेगी। परिस्थितियो से संघर्ष करने की हिम्मत करनी पड़ेगी। तभी किसी महत्वपूर्ण निष्कर्ष तक पहुँचना सम्भव हो सकेगा।

हम किसी से भी न डरें

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने जब भारत की स्वतन्त्रता का नारा लगाया, "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेगे" तब उनके साथ कुछ गिने-चुने व्यक्ति ही थे और दूसरी ओर संसार प्रसिद्ध ब्रिटिश शासन। किन्तु लोकमान्य का स्वर अनेको का स्वर बना और एक दिन उस शक्तिशाली सता को उखाड़ फेंका गया। भारत स्वतन्त्र हुआ। जोसेफ मेजनी ने भी इसी तरह इटली की स्वतन्त्रता का सकल्प किया और उस समय की तानाशाही, साम्राज्यवाद के विरुद्ध आन्दोलन उठाया, जिसके लिये मौत की सजा निश्चित थी। किन्तु मेजिनी का प्रेरणा मन्त्र बना और इटली स्वतन्त्र हुआ। महर्षि दयानन्द ने सामाजिक रूढ़ियो के विरुद्ध आवाज उठाई, धार्मिक अन्ध-परम्पराओ पर आघात किया और इसके लिये उन्हे कई बार विष दिया गया और इसी से उनकी अन्त मे मृत्यु भी हुई। ईसा मसीह को अपने सुधार कार्य के लिये सूली पर चढ़ाया गया। इस तरह के असंख्यो उदाहरण है, जिनमे मनुष्य ने असम्भव से टक्कर ली और उसे सम्भव बनाया। मौत, पीड़ा, कष्टयुक्त यन्त्रणाओ को भी स्वीकार करके सत्य की आवाज लगाई और उनकी आवाज अनेको की आवाज बन गई।

मनुष्य जितना निर्भय होगा उतना ही वह महान् कार्यो का सूत्रपात करेगा। निर्भयता उत्कृष्ट मानसिक स्थिति का परिणाम है। यह एक नैतिक सद्गुण है जो बड़े तप और त्याग से प्राप्त होता है। मन का जितना विकास होता जायेगा, उसी अनुपात से निर्भयता की उपलब्धि होगी। उत्कृष्ट आदर्श सिद्धान्तों की रक्षा के लिये जितना उत्सर्ग, त्याग, कष्ट-सहिष्णुता होगी, उसी के अनुसार निर्भयता प्राप्त होती जायेगी।

निर्भयता तीन प्रकार की होती है। विज्ञ निर्भयता, विवेकी निर्भयता और ईश्वरनिष्ठ निर्भयता।

विज्ञ निर्भयता—जीवन पथ पर आने वाले विभिन्न खतरो, विघ्न आदि की जानकारी, उनका परिचय प्राप्त कर मनुष्य जब उनके समाधान, इलाज का मार्ग जान लेता है, तो उनके सम्बन्ध मे निर्भय हो जाता है। किन्तु जिन खतरो के विषय मे वह जानता नही उनका भय सदैव बना रहता है। सर्पो के सम्बन्ध मे जानने वाले उनके साथ उसी तरह खेल सकते है, जैसे बच्चा खिलौने के साथ। ऐसे लोगो के मन से सर्पों का भय दूर हो जाता है। किन्तु सिंह को देखकर वे भय से पीले पड़ जाते है। इसी तरह सरकस के खेल मे इशारे पर सिंह को नचाने वाला कलाकार सर्प को देखकर भयभीत हो सकता है। इस तरह की निर्भयता मर्यादित है। जिन खतरो के बारे में मनुष्य जानकारी हासिल कर लेता है, उनसे निर्भय हो जाता है। किन्तु अन्य से नही।

विवेकी निर्भयता—इसमे परिपक्व विवेक से बुद्धि नियन्त्रित और शान्त रहती है। मन की वृत्तियो पर शासन होता है। भयावह परिस्थितियो मे बुद्धि अशान्त, असन्तुलित नही होती। भय, शोक, चिन्ता आदि मानसिक वृत्तियाँ मनुष्य पर हावी नही हो पाती। ऐसी स्थिति मे उन परिस्थितियो से बचाव के प्रयत्न सूझने की सम्भावना रहती है और मनुष्य बच जाता है। जिन परिस्थितियो मे एक साधारण मनुष्य असन्तुलित हो उनसे हार बैठता है, निर्दिष्ट पथ से भटक जाता है, उन्ही मे एक विवेकशील व्यक्ति अपना मार्ग निकालकर आगे बढ़ जाता है। इससे मनुष्य अनावश्यक और ऊट-पटांग साहस भी नही करता। अतः फिजूल के खतरो मे पड़ता भी नही।

ईश्वरनिष्ठ निर्भयता—इसके लिये किसी बाह्य सहायता, साधनो की आवश्यकता नही होती। जीवन मे ईश्वर के प्रति उसकी सर्वव्यापकता, सर्वशक्ति सम्पन्नता आदि के प्रति दृढ़निष्ठा, गहरी आस्था, अडिग विश्वास जितना बढ़ेगा उतना ही मनुष्य निर्भर होता जायेगा। ईश्वरनिष्ठ निर्भीकता के आधार पर ही संसार के अधिकाश महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्ण हुये है। यह मनुष्य को पूर्ण निर्भय बनाती है किन्तु यह दीर्घकालीन अभ्यास, पुरुषार्थ और भक्ति से ही प्राप्त होती है। अपने साधनो, चातुर्य आदि पर निर्भय व्यक्ति शत्रु से भी मिलने मे बड़ी सावधानी बरतते है किन्तु ईश्वरनिष्ठ तो सभी से सीधा व्यवहार रखता है। दिखावट, बनावट की कोई जगह नही रहती। ईश्वर पर अनन्य निष्ठा से मनुष्य पूर्ण रूपेण निर्भय बन जाता है क्योकि वह अनन्त, व्यापक, निर्विकारी सत्य से परिचय कर लेता है।

निर्भयता मनुष्य की प्रगति और विकास का मार्ग खोल देती है। मनुष्य का विकास और प्रगति इस बात

पर निर्भर रहती है कि वह जीवन मे आने वाली उलझनो, कठिनाइयो का समाधान किस तरह करता है ? निर्भीकता इन परिस्थितियो मे महान् शक्ति, उत्साह, आशा, प्रेरणा की स्रोत बन जाती है। कठिनाई, उलझनो, अवरोध के बीहड पथ मे यदि मनुष्य का कोई सहारा साथी है तो वह है निर्भीकता। निर्भीकता ही उसके पैरो को गति देती है, हृदय मे उत्साह, प्रसन्नता पैदा करती है। नेत्रो मे आशा की चमक पैदाकर देती है। इतना ही नही एक की निर्भीकता अनेको का प्रेरणासूत्र बन जाती है।

यूरोप मे जहाँ पादरियो और उनकी अन्ध परम्पराओ का खण्डन करने पर जीवित जला देने की सजा थी, 'लूथर' नाम के एक निर्भीक सत्यान्वेषी ने पादरियो के अधार्मिक कृत्य और स्वर्ग के टिकट बेचने आदि के खिलाफ आवाज उठाई। इस पर उसे पोप का कोपभाजन बनना पड़ा। न्यायालय मे उसे क्षमा माँगने को कहा गया किन्तु निर्भीक लूथर ने अपने सत्य पर अटल रहकर क्षमा माँगने से इन्कार कर दिया। उसे मरवाने का प्रयत्न किया गया। किन्तु लूथर बच गया लूथर के निर्भीक विचार असंख्य लोगो के विचार बन गये और प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रसार हुआ। धार्मिक अन्ध विश्वास के प्रति लोग सतर्क हो गये।

निर्भीकता का भाव संक्रामक होता है। नैपोलियन बोनापार्ट जब अपनी सेना के बीच रहता था तो उसकी सेना अजेय रहती थी। प्रत्येक सिपाही अपने आपको नैपोलियन के समान ही शक्तिशाली समझता था। नैपोलियन की सफलता का आधार निर्भीकता थी। वह विश्वासपूर्वक कहता था "वह गोली अभी नही बनी जो नैपोलियन को मारेगी।"

निर्भयता, व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। आगामी पीढ़ियो के लिये बहुत बड़ी धरोहर है। महात्मा गाँधी ने लिखा है, "सचमुच वह राष्ट्र महान् है, जहाँ के लोग मौत के तकिए पर अपना सिर रखकर सोते है।" जिसने मौत का डर तोड़ दिया उसे कोई डर नही।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप

परमात्मा सरल, दयालु और भक्त-वत्सल तो है पर वह शौर्य, वीर्य सयुक्त भी है। सृष्टि संचालन की सूक्ष्म गतिविधियो पर ध्यान जमाकर देखा जाये तो पता चलेगा कि वह कितना निर्भीक है ? विश्व की व्यवस्था के लिये वह कठोर से कठोर काम भी निडर और निशंक होकर किया करता है।

माता, बूढ़ा बाप, प्यारे भाई-बहिन हाथ-हाथ कर चिल्लाते रह जाते है और वह अच्छे, स्वस्थ, सुन्दर, जवान बेटे को क्षणभर मे उठाकर ले जाता है। तूफान आता है तो सहस्रो प्राणियो को वह क्षणभर मे तहस-नहस कर डालता है। भूचाल के प्रकोप सैकड़ो मील तक के ऐश्वर्यशाली नगरो, भवनो, अट्टालिकाओ को क्षार-क्षार कर धूल-धूसरित बनाकर रख देते है। पिछले दिनो समुद्र का तूफान मचल उठा और जब वह शान्त हुआ तो पता चला कि सागर के प्रकोष्ठ मे बसे हुए मद्रास के समीप धनुष्कोटि मे केवल एक बतख और एक गाय बची है।

वह जब चाहता है एक देश को दूसरे देश से लड़ा देता है। लाशो से जमीने पट जाती है, देखने वालो के दिल दहल जाते है पर वह यह दृश्य देखकर भी विदीर्ण नही होता। भेड़िया बकरे को, शेर-बैल को पकड़कर फाड़ डालता है और वह चुपचाप इस विश्व व्यवस्था को देखकर हँसा करता है। वह सर्व शक्तिमान परमात्मा शक्ति का ही खेल किया करता है, इसी मे उसे आनन्द मिलता है तभी तो वह अर्जुन से कहते हैं—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।।

—गीता २/२-३

अर्थात् हे अर्जुन ! तुझे इस विषम स्थल पर यह अज्ञान किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्योकि यह न तो श्रेष्ठ पुरुषो द्वारा आचरण किया गया है, न स्वर्ग और कीर्ति को देने वाला है इसलिए तू नपुंसकता को मत प्राप्त हो, यह तेरे योग्य नही है। हे परतप ! तू हृदय की दुर्बलता का परित्याग कर और युद्ध के लिये तैयार हो जा।"

मनुष्य-जीवन मे कई बार ऐसी विषम परिस्थितियाँ आती है, तब वह एक निर्णय सरलता से नही कर पाता। श्रेय के लिये, शक्ति प्राप्ति के लिये, विजय और सफलता के लिये वह कोई उद्योग करना चाहता है पर सांसारिक मोह, माया, आत्मिक दुर्बलता, निराशा और असफलता का भय उसे वह कार्य न करने से रोकता है। यह निराशा, उद्योगहीनता और विमुखता ही मनुष्य जीवन की दुर्बलता है, जो मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकती है। सामान्यजन इन्ही मे फँसकर अपने विशाल जीवन का एक छोटा-सा वृत्त बनाकर रह जाते है और अपरिमित आनन्द, उल्लास, सफलता और यश से वंचित रह जाते है।

सफलता का द्वार उन लोगो के लिये है जो आशा, उत्साह, हिम्मत और शक्तिपूर्वक द्वार पर बैठी हुई दुर्बलता की सिंहनी को पछाड़ सकते है। जिनके मन मे उत्साह नही, आशा नही और सघर्षो से लड़ने की चाह नही उनके लिये संसार मे सर्वत्र डर ही डर, असफलता ही असफलता है।

अर्जुन चाहता तो था कि मेरा राज्य मुझे मिल जाये। शक्तिशाली दुर्योधन उसे दबाये हुए था। वह

खुलकर शत्रुता वरत रहा था, पर अर्जुन था कि उन प्रतीक दुर्बलताओं को अपना सगा-सहचर सम्बन्धी मान रहा था, उन्हे मारने के लिये शस्त्र उठाने से डर रहा था। लेकिन इससे उसे राज्य मिलने वाला नहीं था। भगवान कृष्ण ने उससे कहा—अर्जुन तू युद्ध कर, इन दुर्बलताओं को परास्त कर, यह मत सोच कि यह सब मेरे द्वारा हो रहा है, वरन् ईश्वर की इच्छा मानकर तू इन बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष कर, तेरे न मारने पर भी इनका अन्त होगा ही इसलिये पाप-पुण्य के डर से मत हिचक तू वीरोचित कर्म कर।

मनुष्य जीवन मे भगवान कृष्ण की यह प्रेरणाएँ धारण कर उसे कीर्तिवान बनाया जा सकता है पर यह केवल हिम्मत वालो के लिये सम्भव है। आत्म-साधना के लिये मोह, ममता, अहंता का परित्याग करना ही होता है। शैक्षणिक योग्यता का प्रमाण-पत्र पाने के लिये असफल होने का भय छोड़ना ही पड़ता है। पूँजी कहीं डूब न जाय।" इस डर को निकालकर कोई व्यक्ति जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता, तब तक वह धनवान और उद्योगपति नही हो सकता। यश, लक्ष्मी, सफलता और सिद्धियाँ साहसी व्यक्तियो को मिला करती है। जो लोग प्रारम्भ की छोटी-छोटी उलझनो से ही नहीं निबट सकते। ऐसे नपुसंक व्यक्तियो के लिए आध्यात्मिक सफलता का मार्ग उतना ही कठिन है, जितना एक बच्चे के लिये हिंसक जन्तुओ वाले वन में प्रवेश करना।

घर मे जेवर रखा रहता है और भी सैकड़ो वस्तुएँ होती है, जिन्हे बेचकर कोई उद्योग प्रारम्भ किया जा सकता है, पर कमजोर मन उतना भी करने से डरता है। केवल इच्छाएँ बड़ी भारी बना ली जाती है। बहुत धनैश्वर्य की कल्पना तो होती है पर खतरे का सामना करने को कोई तैयार नहीं होता। परीक्षा के बिना पदोन्नति रुकी पड़ी रहती है पर बड़ी उम्र हो जाने, घर से समय नही मिलने, ऐसी बहानेबाजी करने से वह परिस्थितियाँ ज्यो की त्यो पड़ी रहती हैं। सामाजिक जीवन मे तप, त्याग, आत्मानुशासन, साहस और संघर्ष द्वारा नेतृत्व, पद, प्रतिष्ठा के सैकड़ों अवसर आते है पर लोग यह सब करने को तैयार नही होते। केवल बैठे-बैठाये इच्छापूर्ति की कल्पना किया करते है। ऐसे कायर-कापुरुष व्यक्तियो को आज तक न कभी सफलता मिली है और न आगे मिल सकती है।

वीर-भोग्या वसुन्धरा, धरती वीरो के भोग के लिये बनी है। परमात्मा किसी को न कुछ दे सकता है न किसी से कुछ लेता है, वह द्रष्टा मात्र ही है, उसकी सृष्टि का आनन्द और लोग उठाते है। यह कहना चाहिये कि वह स्वयम् ही वीरता के रूप में सांसारिक सुखैश्वर्यों का भोग करता है।

यह जीवन-संग्राम है। इसमे जो युद्ध की सी तत्परता व्यक्त नही करता वह हार जाता है पर जो प्रयत्न और पुरुषार्थ का गाण्डीव उठाकर रणोद्यत हो जाता है, वही अन्त मे विजय पाता है।

इन्द्रियो को मारना पड़े तो मारना चाहिए, भीतर से यह अपने सगे-सम्बन्धी जैसी लगती है पर हैं पक्की शत्रु। इनका दमन करना चाहिये। भय, निराशा, निर्बलता, अस्वस्थता, क्षणिक सुखो की आसक्ति, आलस्य, अनुत्साह, असफलता का भय यह दुर्बलताएँ ही मनुष्य की शत्रु हैं, इनसे डरना नही, लड़ना चाहिए। लड़ने वाला ही अन्ततः विजेता होता है।

समान गुणो से प्रेम इस संसार का अटल नियम है। चोर की दोस्ती चोर से होती है, जुआरी, जुआरी के पास बैठता है। खिलाड़ी की खिलाड़ी और पण्डितो की मित्रता पण्डितो से होती है। परमात्मा का भी नियम ऐसा ही है वह स्वयं वीर है, बलयुक्त, शक्तिमान है। इसलिये वह अपने पुत्र-मनुष्य को भी इन गुणो से युक्त देखना चाहता है। जिस मनुष्य मे इतनी हिम्मत होती है कि वह संसार की उथल-पुथल, तूफानो की भड़क और बिजली की तड़क मे भी घबराये नही, जो घमासान जीवन-संग्राम मे एक योद्धा की तरह तटस्थ होकर लड़ता है, वही उसका अनुग्रह प्राप्त करता है, उसी को यश और सम्मान भी इस संसार मे मिलता है। भौतिक सफलताएँ तो उसकी चरणदासी होती है, उनकी कौन परवाह करता है ?

हम धैर्य और साहस के साथ ही आगे बढ़ें

जीवन का कोई क्षेत्र भी क्यो न हो, उसमे सफलता प्राप्त करने के लिए क्रमिक प्रयत्न करना होता है। एक साथ सहसा छलाँग लगाकर कोई भी सफलता के उच्च-शिखर पर नही पहुँच सकता और न पहुँचा ही जा सकता। प्रत्येक बात की एक विधि और एक क्रम होता है, उसी के अनुसार चलने से सफलता सम्भव हो सकती है। क्रम का उल्लंघन करने से लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। शक्ति का अपव्यय होता है, निराशा की वेदना सहन करनी पड़ती है और उत्साहो मे प्रशमन आता है, जीवन गति अस्त-व्यस्त होकर बोझिल बन जाती है।

उदाहरण के लिए शिक्षा को ले लीजिए, विद्यार्थी पढ़ता है, मानिए एम. ए. की ऊँची उपाधि पाने के लिए। उसका लक्ष्य एम. ए. पास करना होता है। उसको वर्णमाला से शुभारम्भ कराया जाता है। धीरे-धीरे वह क्रमपूर्वक आगे बढ़ता है। चतुर अध्यापक उसके उस क्रम-विकास पर बड़ी पारखी दृष्टि रखते है और यह देखते है कि विद्यार्थी पाठो का नियमित क्रम छोड़कर अक्रमिक तो नहीं होता जा रहा है। कही वह पहले पाठ मे कच्चा होने पर भी अगले पाठ पर तो नही जा रहा

है। यदि ऐसा होता है तो वह उसको रोक देता है। पिछला पाठ पक्का करने को विवश करता है। विकास की यही पद्धति है। पिछले पाठो के आधारो पर ही अगले पाठ स्थिर होते है।

यदि पहले पत्थर कमजोर होगे तो सारा निर्माण निर्बल होता चला जायेगा। पिछला पाठ तो कच्चा छूट ही जायेगा, अगला पाठ भी आधार-भूमि न होने से हृदयंगम नही किया जा सकता। निदान विद्यार्थी न इधर का रह जायेगा और न उधर का। देखने मे शिक्षा पाता हुआ भी अशिक्षित जैसा ही रह जायेगा। जो ज्ञान पूरा और पक्का नही होता, वह न होने के समान ही है। बल्कि अधूरे और कच्चे ज्ञान से लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक होती है।

इसी क्रमिकता का महत्व जानने वाले अध्यापक ही नही बहुत-से बुद्धिमान अभिभावक भी विद्यालय मे पता लगाकर और शिफारिश करके अपने बच्चे को अगली कक्षा मे चढ़ाने के लिए रुकवाकर पिछली कक्षा का ज्ञान पूरा करने के लिए उसी मे रहने देते है। वे जानते है कि यदि बच्चा पिछली कक्षा का ज्ञान पूरा किये बिना अगली श्रेणी में जायेगा तो उसका आधार निर्बल होता चला जायेगा और इस प्रकार उसकी शिक्षा असफल हो जायेगी। क्रमिक विकास ही जीवन का सच्चा एव सार्थक विकास होता है। इसकी उपेक्षा करने वालो को सफलता के नाम पर शून्य ही हाथ आता है।

बात को और अधिक सरलता से समझने के लिये एक-आध और उदाहरण ले लीजिए। व्यापार का क्षेत्र ले लीजिए। यह जो बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे दिखलाई देते है, यह सहसा यो ही इसी विशाल रूप मे स्थापित नही हो गये। प्रारम्भ मे इनका आकार बहुत छोटा रहा है और काम भी थोड़ा रहा है। इनके संचालको ने धैर्यपूर्वक छोटी-छोटी मशीनो, साधनो और आदमियो से इन्हे शुरू किया था। थोड़ा-थोड़ा माल बनाया था और क्रम-क्रम से बाजार बनाया था।

यदि इनको सहसा ही यो ही विशाल रूप मे खड़ा करके चलाने का प्रयत्न किया जाता तो न तो इनका सुचारु संचालन हो पाता और न नियन्त्रण। एक भयानक फैलाव और अस्त-व्यस्तता फैल जाती और तब उसको व्यस्थित रूप दे सकना असम्भव हो जाता। सारे काम बिगड़ जाते और उद्योग असफल हो जाता। उद्योग के क्षेत्र मे बहुत-से उतावले आज भी इसी अक्रमिकता के कारण नित्य असफल होते देखे जाते है।

ऊपर छत पर चढ़ने का इच्छुक ऐसा कौन-सा व्यक्ति होगा, जो नसेनी के डण्डो पर क्रम-क्रम से पाँव रखकर न चढ़ता हुआ, उनका उल्लंघन करके एक साथ ऊपर चढ़ जाने का प्रयत्न करेगा। वह जानता है ऊपर चढ़ने का नियम ही एक-एक डण्डे पर पैर रखकर चढ़ने का है। जो ऐसा न करके इस नियम का व्यतिक्रम करता है और सहसा छलाँग लगाने का उपक्रम करता है, वह निश्चय ही नीचे गिरकर अपने हाथ-पैर तोड़ लेने की तैयारी करता है। विकास में क्रमबद्ध प्रगति का नियम अनिवार्य है। उसका व्यतिक्रम करके लक्ष्य की प्राप्ति कर सकना सम्भव नही।

यह नियम जब साधारण भौतिक उपलब्धियो मे अनिवार्य है तो आध्यात्मिक प्रगति तो और भी कठिन तथा नियमसाध्य है। इस क्षेत्र मे प्रगति करने के लिए तो और भी धैर्य, सावधानी तथा क्रमबद्धता का विचार रखना होगा। उच्च-कोटि की आध्यात्मिक कक्षाओ मे क्रमिक विकास करते हुए ही आगे बढ़ा जा सकता है। उतावली करने से जरा भी काम न चलेगा। अध्यात्म की आत्मिक कक्षा का तीसरा नम्बर है। पहली दो कक्षाएँ शरीर और मन की है।

इन दोनो को पहले क्रमपूर्वक उत्तीर्ण करना होगा, उसके बाद आत्मा की आध्यात्मिक कक्षा मे प्रवेश सम्भव होगा। जो यह चाहता है कि शरीर और मन के क्षेत्रो की उपेक्षा करके आत्मा के आध्यात्मिक क्षेत्र मे शीघ्र से पहुँच जाये तो वह अनहोनी बात चाहता है। उसकी यह असंगत इच्छा पूरी नही हो सकती। उच्च-कोटि की आध्यात्मिक कक्षा मे पहुँचने के लिये की जाने वाली साधना का प्रारम्भ शरीर क्षेत्र से ही करना होगा।

शरीर और मन का क्षेत्र जब तक आध्यात्मिक साधना के अनुरूप न सुधारा जायेगा, तब तक ईश्वर दर्शन, आत्म-साक्षात्कार, समाधि, कुण्डलिनी जागरण आदि की सिद्धिमूलक बात सोचना व्यर्थ होगा। योगशास्त्र के अध्येता अच्छी तरह जानते है कि योग का प्रतिपादन करने वाले आचार्यो ने योग के जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये है, उनमे क्रमिक विकास के नियमो को प्रधानता दी है। उदाहरण के लिये, पातजलि और हठयोग ले लीजिए। यह दोनो योग बड़े शक्तिशाली और उच्च-कोटि के है। महर्षि पातजलि ने योग के जो आठ अङ्ग प्रतिपादित किये है, उनका क्रम इस प्रकार रखा है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम और फिर प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमे यम आदि पहले चार अंङ्ग शरीर-शोधन से सम्बन्धित है और बाद के प्रत्याहार आदि मन के शोधन से सम्बन्धित है।

इसी प्रकार हठ-योग मे भी साधना का जो क्रम रखा गया है, वह इस प्रकार है—नेति, धौति, वस्ति, न्यौली, बज्रोली, कपाल-भाति। प्रथम षट्—कर्म और तदुपरान्त षट्-चक्र वेधन और कुण्डलिनी जागरण आदि का क्रम आता है। स्पष्टतया पूर्व के षट्-कर्म बाह्य-जीवन के परिशोधन के लिए है और बाद की साधना मानसिक श्रेणी की है। योग-साधना मे इस अनिवार्य क्रम का व्यतिक्रम करने वाले साधको को न केवल असफल ही होना पड़ता है बल्कि बहुत बार तो वे अस्त-व्यस्त मनोदशा वाले हो जाते हैं।

यह बात मान लेने मे जरा भी संकोच नही होना चाहिए कि आज हम सबका बाह्य जीवन बड़ा ही अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित एवं अवांछनीय दशा मे चल रहा है। यही कारण है कि जीवन-क्षेत्रो मे बहुधा असफलता का ही सामना करना पड़ रहा है। उन्नति और प्रगति के नाम पर हम कुछ कदम भी आगे नहीं बढ़ा पा रहे हैं। व्यावहारिक जीवन की अव्यवस्था एवं अस्त-व्यस्तता हमारी हर साधना को निष्फल बनाती चली जा रही है। हम आध्यात्मिक साधना करते, पूरे समय प्रयत्न भी करते, परिश्रम एवं प्रसार से भी मुँह नही मोड़ते, तब भी देखते यही है, जहाँ के तहाँ पड़े हुए है, जरा भी आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं।

इस असफलता का क्या कारण है ? यही कि हम अपना बाह्य जीवन ठीक न करके अक्रमिक रूप से साधना मे जुट पड़ते है। "साधना द्वारा आत्म-बल प्राप्त कर जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकने की स्थिति में पहुँच सकना तभी सम्भव है, जब प्रारम्भिक भूमिका के रूप मे बाह्य-जीवन को संतुलित, व्यवस्थित एवं शुद्ध बनाया जाय।" इस नियम की ओर जरा भी ध्यान नहीं देते।

जो विद्यार्थी चतुर होते हैं और चाहते हैं कि निश्चित रूप से अच्छी श्रेणी मे उत्तीर्ण हो, वे परीक्षा का प्रश्न-पत्र पाते ही सबसे पहले उन्हीं प्रश्नो को उठाते हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक सरल और उनके अधिकार के होते हैं और हल पहले उन्ही को करते है परीक्षा मे पास होने का यही उचित और सरल नियम है। इसके विपरीत जो विद्यार्थी उतावले अथवा अचतुर होते है, वे ऐसी खोज-बीन नहीं करते। प्रश्न-पत्र पाते ही सहसा पहले प्रश्न से ही उत्तर लिखने मे लग जाते है। निदान कठिन-कठिन प्रश्नो मे लगे-लगे सारा समय खो देते हैं और तब वे सरल प्रश्न भी नहीं कर पाते, जिनको वे अधिकारपूर्वक आसानी से कर सकते थे। फल यह होता है कि वे उत्तीर्ण होने लायक अंको से भी वंचित रह जाते है। यही बात उतावले साधको के विषय मे भी होती है। वे तन, मन की सरल साधना छोड़कर कठिनतर आत्मिक साधना में प्रवृत्त हो जाते है और सोचते है कि आत्म-विकास हो जाने पर शरीर और मन का सुधार तो आप ही आप हो जायेगा। यह विश्वास गलत तथा भ्रमपूर्ण है। आत्म-विकास का क्रम शरीर, मन और तत्पश्चात् आत्मा है, न कि आत्मा, मन और तन। उल्टे मार्ग पर चलकर आज तक क्या कोई लक्ष्य पर पहुँच सका है ?

सहसा आत्म-परिष्कार मे लगने से पूर्व शरीर और मन को सुसंतुलित एवं परिष्कृत करना चाहिए, क्योंकि सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तियो को जाग्रत करके अलौकिक सिद्धि पाने की अपेक्षा; यह अधिक सरल एवं सुकर है। यह ठीक भी है और नियमानुकूल भी। जो तन, मन ही वश में न कर पाया, वह आत्मा पर क्या अधिकार कर पायेगा ? सरल कार्यों मे सफलता प्राप्त करने के उपरान्त ही कठिन कार्यों का भार उठा सकना सम्भव होता है। पहले सरल प्रश्न करिये और तब कठिन प्रश्न हाथ मे लीजिए, तभी उत्तीर्ण होने लायक अंक पा सकेंगे, अन्यथा नही।

यदि अध्यात्म की उच्च कक्षा मे पहुँचने की सच्ची जिज्ञासा है, यो ही खिलवाड़ के रूप मे साधना का आश्रय नही ले रहे हैं, तो उसका शुभारम्भ शरीर क्षेत्र से करिये। अपना आहार-विहार, रहन-सहन, शयन-जागरण, श्रम, संयम, ब्रह्मचर्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखिये। अपनी दिनचर्या तथा जीवन-गति अधिकाधिक प्रकृति के अनुकूल बनाइये। आरोग्य और जीवन अवधि को दीर्घ तथा सुनिश्चित करिए। रोगो और व्याधियो की सम्भावना से मुक्त एवं निश्चिन्त बनिये और तब इस प्रकार, शरीर गति पर पूरा नियन्त्रण करने के बाद मन का परिष्कार करिए। उसे अधिकाधिक प्रसन्न स्वभाव वाला बनाइए, प्रयत्नपूर्वक उसके मल-विक्षेप आदि विकार निकाल डालिये। उसमे सद्विचारो, सद्भावनाओ एवं सदाशयता का समावेश कीजिए और इन तन, मन के दोनो साधनो को आपस में अनुकूलतापूर्वक जोड़कर सत्कर्मों के साथ आत्मा की आध्यात्मिक साधना की ओर अग्रसर होइये। तभी सफलता की आशा की जा सकती है, अन्यथा नहीं। जो निश्चित क्रम व्यवस्था को बिगाड़ कर छलाँग लगाने का प्रयत्न किया करते है, वे बहुधा असफल ही होते है। उतावले अथवा अक्रमिक व्यक्ति अव्यवस्थित साधनों के फलस्वरूप बहुत बार अपना व्यावहारिक जीवन भी बिगाड़ लेते है, आध्यात्मिक उन्नति की तो बात ही क्या ? अस्तु क्रमपूर्वक सावधानी से आगे की ओर बढ़िये। आप अवश्य सफल होंगे, सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जीवन से भागो नहीं, समझदारी से जियो

हमारे सामने विस्तृत संसार फैला है। उसमे फूल है, काँटे भी है। पहाड़ हैं, गहरे समुद्र भी। मैदान है और ऊबड़-खाबड़ घाटियाँ भी। विविधतापूर्ण संसार मे हर वस्तु का विरोधी भाव विद्यमान है। गुण है तो दुर्गुण भी, अच्छाइयाँ भी है, उनके बिना भलाई की कल्पना की ही नहीं जा सकती थी।

माना बुराइयाँ अधिक हैं, पर क्या उनसे भागकर संसार की शेष बहुत-सी शानदार, सन्तोषप्रद और श्रेयस्कर परिस्थितियो से मुँह मोड़ लेना चाहिये ? मनुष्य जीवन जैसी पुरुषार्थी विभूति को कलङ्कित करना चाहिए ?

सन्त कन्फ्युशस बड़े सबेरे एक बार पद-यात्रा कर रहे थे। यात्रा करते-करते वे निर्जन स्थान में पहुँचे जहाँ एक-दूसरे महात्मा पेड़ की छाया मे लेटे विश्राम कर रहे थे। कन्फ्युशस ने पूछा—'महात्मन् ! हरी-भरी बस्ती को छोड़कर आप यहाँ निर्जन एकान्त में क्यो पड़े है ?'

संन्यासी ने उत्तर दिया—भद्र, इस राज्य का राजा बड़ा दुष्ट है, वह स्वयं तो अकर्मण्य और अत्याचारी है ही, उसके राज्य मे बहुत-से लोग स्वेच्छाचारी, अनुशासनविहीन, कुटिल, कलह करने वाले, अत्याचारी और बुरे हो गये है। ऐसी स्थिति मे मेरी तरह हर शान्ति-प्रेमी, सद्‌गुणो और आत्मा की शान्ति पर विश्वास रखने वाले के लिए समाज मे रहना मुश्किल हो गया है। आप भी क्यो नही यही आकर शान्त और एकान्त प्रकृति का आनन्द लूटते। अत्याचारो के कारण पैदा हुई निराशा से बचने का क्या यह सर्वोत्तम उपाय नही ?

कन्फ्युशस मुस्कराये और कहने लगे—"क्या आपका मतलब यह है कि थोड़े-से बुरे आदमियो के कारण अच्छाइयो की रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य नही है ? थोड़े व्यक्तियो के कर्तव्यच्युत हो जाने से क्या भावनाशील व्यक्तियो को भी अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ लेना चाहिये ? यदि बुराई आगे बढ़ने से हार नही मान सकती तो क्या भलाई की शक्ति को प्रयत्न किये बिना आत्मघात कर लेना चाहिये ?"

संन्यासी ने कहा—"सो तो ठीक है, मगर इतने झंझटो की अपेक्षा बुराई से स्वयं हट जाना बेहतर है। हम यहाँ उसी का रसास्वादन कर रहे है।"

कन्फ्युशस ने कहा—"भगवन् ! आप भूल रहे है कि झंझटो से भरा जीवन आपके जीवन का आधार है। यहाँ रहकर भी आप समाज की कमाई पर जीवित है, उसी की कृपा से पल रहे है। आप भूल रहे है कि जिन्हे आप झझट, कष्ट और कठिनाइयाँ मान रहे है, वे तो नावे है, असम्भव को पार करने मे सहायता देती है। रही बात बुराइयो की। हम उनसे भागे क्यो ? खुद बुराई ही क्यो न भागे ? हमारे भागने का मतलब तो यह है कि सद्‌गुण और सज्जन, दुर्गुण और दुर्जनो से दुर्बल है। सत्य, असत्य की अपेक्षा निर्बल है, जीवन ने नही मृत्यु ने जीवन पर अधिकार किया हुआ है।"

महात्मा जी हार मानने वाले न थे—अपनी बात को पुष्ट करते हुये कहने लगे—"हम यहाँ सद्‌गुणो की ही रक्षा तो कर रहे है—बुराइयो की ओर आँख न कर, क्या मै भलाई को उसके ग्रास से नहीं बचा रहा हूँ ?"

असम्भव महात्मा जी !—कन्फ्युशस ने पुकारा—"हर वस्तु एकान्त मे नष्ट होती है और समूह मे बहुगुणित होती है। सद्‌गुणो के बारे मे भी ठीक यही बात है। यदि आप समाज मे रहकर अपने सद्‌गुणो का प्रकाश करते और, उनमे अपनी निष्ठा व्यक्त करते तो उसका प्रतिफल भी देखने को अवश्य मिलता। लोग तो बुद्धिमानो की निष्ठा का अनुसरण करते हैं, आप में वह प्रकाश स्पष्ट हुआ होता, तो निश्चय ही बुराई की मात्रा घटती और अच्छाई का विकास होता।"

आज की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है। यदि लोग जंगलो की ओर नही भाग रहे तो भी बुराइयो से उसी तरह दुबक रहे है, जैसे कोई माया-मोह से डरकर जंगल मे भाग जाय। आज वस्तुतः डरने और छिपने का समय नही—सद्‌गुणों के प्रकाश और विकास की वेला आई है, यह समझने-सोचने का अवसर सच्चे अर्थो मे आज ही सामने आया है कि दुःखो और झंझटो का कारण क्या है ? सुख-सन्तोष और भलाई को सम्मानित और सुपूजित किस तरह किया जा सकता है ?

बुराइयो का कारण है, इच्छाओ का विद्रूप। नासमझदारी की इच्छा जहाँ भी पैदा होगी वहीं बुराई पैदा होगी। इसलिए संसार में सुव्यवस्था और सद्‌गुणो को बनाये रखने के लिए समझदारी का जीवन जीना आवश्यक है। इच्छाओ की विकृति निराशा और अत्याचार के रूप मे जन्म लेती है। निराशा से घिरा हुआ व्यक्ति संसार मे किसी काम का नहीं रहता। मस्तिष्क लँगड़ा हो जाता है। जीवन मे सिवाय चिन्ता, क्षोभ और उद्विग्नता के कुछ भी नहीं रहता। व्यक्ति का हृदय दग्ध हो जाता है, उसमे हीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है। आत्मविश्वास कुण्ठित हो जाता है। कायरता आ जाती है, वही व्यक्ति चारो तरफ से अपने वातावरण को विषैला बना लेता है। वह समझता है कि जीवित रहना निष्प्रयोजन है। संसार से भागने की समस्या निराश-जनो को ही मापती है। कर्तव्य क्षेत्र से ऐसे ही व्यक्ति दुम दबाकर भागते है। यह बात सद्‌गुणी व्यक्ति मे निराशा और दुर्गुणी मे अत्याचार के कारण बनती है, दोनो ही स्थितियो मे अपनी सुख-शान्ति और समाज की व्यवस्था का एक ही मार्ग रह जाता है और वह यही है कि संसार मे समझदारी से जिया जाय। करने से पहले उसके दूरवर्ती परिणाम पर विचार कर लिया जाय।

शोधा हुआ विष उपयोगी हो जाता है, फिर शोधी हुई जिन्दगी के आनन्द का कहना ही क्या ? सुख का एक द्वार बन्द हो जाने पर दूसरा खोला जा सकता है। बन्द दरवाजे की ओर दृष्टि किए निराश अवस्था मे क्यो पड़ा रहा जाय ? जीतने के लिये बाधाएँ न होती, पार करने के लिए सीमाये और रास्ते न होते तो मनुष्य जीवन मे क्रियाशीलता का आनन्द ही क्या रह जाता ? मील के पत्थर की तरह एक स्थिति मे गढ़े रहने मे भी कहीं मनुष्य जीवन की शोभा है ? उसकी शान, खराब हुए को निरन्तर सुधारने, अस्वच्छ और सुथरा बनाने, टूटे को जोड़ने और बुरे को भलाई मे परिवर्तित करने मे है। यही एक विशेषता तो मनुष्य को भगवान की श्रेणी मे पहुँचाती है। उसका निरन्तर अभ्यास कर सामाजिक जीवन मे ईश्वरीय शक्ति के विकास का क्रम क्यो न हम निरन्तर चलते रहने दें।

एक स्त्री एकान्त मे शीशे मे अपना मुँह देखती है, उसमे जो बुराई दिखाई देती है, उसके कारण न वह शीशा तोड़ती है और न मुँह को ही खरोंच डालती है। वह बड़े यत्न से उस खराबी को साफ करती है और

फिर दूसरे साधनो से अपने मुख को सुन्दर और आकर्षक बनाती है। हमारे समाज की स्थिति भी ऐसी ही है। आवश्यकता पैदा और बढ़ी हुई बुराई से खीझने और असन्तुष्ट होने की नही, इस बात की चतुराई बरतने की है कि हम उस बुराई को किस तरह साफ कर लेते है और समाज मे उज्ज्वल चरित्र की, नैतिकता और सत्यता की प्रतिष्ठा कर लेते है ?

प्रत्येक देश और जाति का अपना निहितार्थ होता है। अपनी समस्याएँ होती है। हर समाज मे उसी तरह कुछ बुराइयाँ होती है, अड़चने और बाधाएँ होती है। उस अर्थ को पूर्ण करना पड़ता है, निरन्तर प्रयास द्वारा। प्रयास से ही देश के चरित्र की सृष्टि होती है। रचनात्मक शक्तियो को बल मिलता है। कठिन बाधाओ और बुराइयो को दूर करने का पथ ही स्वास्थ्य और सम्पदा का पथ है। मनुष्य दुर्गम को सुगम और बुरे को भला बनाने आया है। उसके समाधान में ही देश और समाज का हित सन्निहित है। जिन्होने समाधान करने मे भूल की, उनका विनाश हुआ और जिन्होंने उन समस्याओ से मुँह मोड़ा उनकी दुर्गति हुई।

जब तक जीवन है, शरीर मे प्राण है, साँस चलती है, बाधाओ और बुराइयो से सघर्ष करने मे ही सच्ची जीवन क्रिया है। जहाँ, जिस समाज मे यह उत्कंठा, यह प्रयास और बुराई से भलाई की ओर अग्रसर होने की अभिभावना रहती है, वही विश्व के सिरमौर सिद्ध होते है। औरों के लिए प्रकाश बनते है, उनकी सन्तुष्टि तो अपने इसी प्रयत्न में ही हो जाती है।

चलते रहो-चलते रहो

ऐतरेय ब्राह्मण मे इन्द्र और रोहिताश्व का एक प्रसग आता है। उसमे इन्द्र रोहिताश्व को जीवन की सफलता का रहस्य बतलाते हुये कहते है—

"हे रोहित ! जो पुरुष अपने आपको श्रम से थका नहीं डालता, उसे लक्ष्मी प्राप्त नही होती।"

"बैठे हुए मनुष्य को पाप दबा लेता है। मेरा स्नेह और मित्रता वही पाता है, जो निरन्तर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।"

"जो मनुष्य चलता है उसकी जघाओ मे फूल खिलते है। उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलने वाले का पाप थक कर सो जाता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।

"बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।"

"सोने वाले का नाम कलि है, अँगड़ाई लेने वाला द्वापर है। उठकर खड़े होने वाला त्रेता है और चलने वाला कृत-युग है। इसलिये चलते रहो, चलते रहो।"

"चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है। चलता हुआ ही फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ, कभी आलस्य नहीं करता। इसलिये चलते रहो।"

रोहित और इन्द्र के इस प्रसंग मे गतिशीलता का महत्त्व बतलाया गया है। गति जीवन का पर्यायी है, जो गतिशील है, वह जीवित है, जो स्थिर है वह मृतक ही माना जायेगा। जो जीवन मे उन्नति, विकास और श्रेय का आकांक्षी है, उसे निरन्तर गतिशील रहना चाहिये। आलस्य, प्रमाद अथवा अकर्मण्यता मनुष्य के सौभाग्य के शत्रु है।

इन्द्र ने जो उपदेश रोहित को दिये है उनकी विवेचना करने और भावार्थ पर विचार करने से यही पता चलता है कि मनुष्य का सारा सौभाग्य उसकी गतिशीलता पर ही निर्भर रहता है। इस गतिशीलता का अर्थ केवल चलते रहने से नही है। इसका तात्पर्य व्यापक है और इसके अन्तर्गत सारे पुरुषार्थ, सारे उद्योग और सारे कर्तृत्व का भाव आ जाता है।

इन्द्र कहते है कि जो पुरुष अपने आपको श्रम से थका नही डालता, उसे लक्ष्मी प्राप्त नही होती। कितनी सरल और सार्थक बात है कि यद्यपि संसार मे चारों ओर श्री और श्रेय फैले पड़े है तथापि कहीं भी कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ पर इनका कोई भण्डार एक स्थान पर रखा हो, जिससे मनुष्य जब चाहे जाकर अपनी वांछित लक्ष्मी अथवा श्रेय उठा लाये। श्री और श्रेय पसीने के मूल्य पर, परिश्रम के उपलक्ष मे मिलते है। वह भी केवल साधारण परिश्रम के बल पर नही। उसके लिये अपने को परिश्रम से थका डालना पड़ेगा।

रोहित एक राजकुमार था। उसके पिता के राजकोष मे अपरिमित लक्ष्मी थी, जिसका वह अधिकारी था। तब इन्द्र को उसे इतने कड़े श्रम का उपदेश देने की क्या आवश्यकता पड़ गई ? यह विचारणीय बात है। बात यह है कि इन्द्र यह जानते थे कि जो अपनी पैतृकता अथवा किसी संयोग से पाई लक्ष्मी पर निर्भर हो जाता है, वह आलसी और अकर्मण्य बन जाता है। यहाँ पर महात्मा इन्द्र ने रोहित को धनवान बनने और जीविका चलाने के लिए श्रम का उपदेश नही दिया है। यहाँ पर रोहित को उस पुरुषार्थ का उपदेश दिया गया है, जिसका सम्बन्ध आध्यात्मिक उन्नति से है।

आध्यात्मिक क्षेत्र की सफलता अखण्ड-पुरुषार्थ और कठोर कर्मण्यता पर निर्भर है। उसमें जिन साधनो, नियमो और संयमो का पालन अपेक्षित है, वह किसी आलसी के वश की बात नही होती है। उनका निर्वाह तो कठिन परिश्रम और स्वावलम्बन पर निर्भर व्यक्ति ही कर सकता है। आध्यात्मिक पुरुषार्थ का अभ्यास भी भौतिक पुरुषार्थ

के स्रोत से ही निकलता है। जो अपने दैनिक जीवन मे पुरुषार्थ और परिश्रम नही कर सकता, उसका अध्यात्म क्षेत्र मे पुरुषार्थ बन सकना सम्भव नही।

साथ ही रोहित के माध्यम से पुरुषार्थ एवं परिश्रम का यह उपदेश समाज को भी दिया गया है। इन्द्र का स्पष्ट उपदेश है कि यदि किसी तरह धन-सम्पत्ति अनायास भी मिल जाय तब भी उसे श्री एवं श्रेय प्राप्त करने के लिए कड़ा परिश्रम करना ही चाहिये क्योंकि आत्म-अर्जित श्री मे जो सौन्दर्य एवं सन्तोष होता है, वह अनायास प्राप्त हो गये मे नही। फिर जो सम्पत्ति किसी को यो ही मिल गई है, पता नही किन संस्कारो से दूषित अथवा भूषित है और उसका प्रभाव अपने संस्कारो पर क्या पड़े ? आत्म-अर्जित श्री मे ऐसा संशय नही होता। वहाँ विश्वास ही होता है और जीवन पर अनुकूल प्रभाव डालती है। यह नितान्त आवश्यक है क्योंकि अर्थ के पुरुषार्थ के बाद मोक्ष के पुरुषार्थ की ओर भी तो जाना होता है।

इन्द्र ने दूसरी बात कही है—"बैठे हुए मनुष्य को पाप दबा लेता है। मेरा स्नेह और मित्रता वही पाता है, जो निरन्तर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।" इसमे श्रम के सम्बन्ध मे एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्घाटन किया गया है। 'बैठे हुए मनुष्य को पाप दबा लेता है।' अर्थात् जो कुछ करता नही, आलस्य और प्रमाद मे पड़ा रहता है, उसका मानसिक पतन हो जाता है। खाली मस्तिष्क शैतान का घर कहा गया है। जब मनुष्य किसी काम मे व्यस्त रहता है, तब उसका शरीर ही नही मन और मस्तिष्क भी उसी मे सलग्न रहते है। काम के सम्बन्ध मे ही विचार आते है और काम मे ही अभिरुचि रहती है।

बेकार के विचार और बेकार की कल्पनाओ से वह मुक्त रहता है। लेकिन जब मनुष्य खाली रहता है, तो उसका मन, मस्तिष्क भी खाली रहता है। लेकिन वे निष्क्रिय कभी नही होते। काम के अभाव मे भी वे सक्रिय रहते है। ऐसी स्थिति मे वे कुविचार आ-आकर मन-मस्तिष्क में जमा होते रहते है। इधर शरीर के कुछ करने से इन्द्रियाँ आजाद होती है। उन पर जब किसी काम का भार नही होता, तो वे विषयों की ओर भागने लगती है। इस प्रकार एक जैसी स्थिति मे होने से इन्द्रियों और मन-मस्तिष्क के बीच सन्धि हो जाती है और तीनो मिलकर मनुष्य को पापो की ओर खीच ले जाते हैं। अस्तु अकर्मण्य का पापी हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही।

इन्द्र आगे कहते है, मेरा स्नेह और मित्रता उन्हे ही मिलती है, जो निरन्तर चलते रहते है अर्थात् सक्रिय रहते है—कुछ काम करते रहते है। इन्द्र देवता है—जो स्वय शहादत देते है कि मेरी अर्थात् देवो की कृपा उन्हे ही मिलती है, जो निरन्तर कर्मशील रहते है। अर्थात् देवता उनसे ही प्रसन्न होते है, जो निरन्तर काम करते रहते हैं। पहली बात तो यह है कि श्रमशील और परिश्रमी से सभी स्वभावतः प्रसन्न रहते है। फिर कर्मठ व्यक्ति पापात्मा नहीं होता। पापरहित व्यक्ति से देवता प्रसन्न होने के लिये विवश है। उन्हे अनिवार्य रूप से प्रसन्न होना ही होता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध आदि जितने भी मूल और तद्जन्य पाप होते है, मनुष्य कार्यकाल मे बिल्कुल भूला रहता है। इन्हीं को क्यो, सच्चा कार्यकर्ता तो काम मे अपने तक को भूल जाता है। ऐसी निर्विकल्प समाधि की स्थिति मे पापो के आने का कोई प्रश्न ही नहीं होता। सच्चा कर्मयोगी वास्तव मे एक योगी होता है। देवताओ का उसका मित्र होना स्वाभाविक है। अस्तु निर्देश दिया गया है कि निरन्तर चलते रहो-सदैव कार्य मे व्यस्त रहो, बेकार मत बैठो।

इन्द्र ने आगे कहा है—"जो चलता है, उसकी जघाओं मे फूल खिलते हैं। आत्मा-विभूषित होकर फल लाती है।" सुन्दरता और प्रसन्नता श्रम के प्रतीक है। यह दोनो विशेषताएँ श्रम के अधीन है। श्रम करने से स्वास्थ्य मिलता है और स्वस्थ मनुष्य ही प्रसन्न रह सकता है और सच्चा सौन्दर्य भी स्वास्थ्य ही होता है। श्रम करने से रक्त तपता है, जो शरीर के सारे रोगो के कीटाणुओ को मार देता है। श्रम करने से जो पसीना बहता है, वह वास्तव मे शरीर का विष और विकार ही होता है, जो वह बहकर बाहर हो जाता है। श्रम करने से क्षुधा तीव्र होती है, भोजन पूरी तरह अनुकूलता के साथ पचता है। गहरी निद्रा आती है। अवयव स्वस्थ और सुदृढ़ बनते है। इससे अधिक आरोग्य तथा स्वास्थ्य के लिए कुछ और नही चाहिये।

जंघाएँ आधार अथवा नीव की प्रतीक है। मनुष्य जीवन का आधार श्रम के सिवाय और कुछ नही। श्रम से ही धन मिलता है। श्रम से ही अन्न और वस्त्र। श्रम से ही विद्या मिलती है और श्रम से ही सम्मान। जिसके जीवन का आधार ही खोखला होगा, वह कितने दिन खड़ा रह सकता है। हवा का एक झोका ही उसे गिरा देगा। जीवन की स्तम्भता श्रम पर ही निर्भर है, इसीलिए निरन्तर चलते रहने अर्थात् सक्रिय रहने को कहा गया है।

'चलते रहने वाले की आत्मा विभूषित होकर फल लाती है'—इसका तात्पर्य इस सिद्धान्त वाक्य की ओर सकेत करता है कि स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ आत्मा का निवास होता है। जब शरीर और मन-मस्तिष्क स्वस्थ होगे तो आत्मा का स्वस्थ होना स्वाभाविक है। जिसकी आत्मा स्वस्थ एव पुष्ट होती है, उसे ही आध्यात्मिक लाभ होता है। स्वस्थ आत्मा वाला व्यक्ति ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्पादन करने मे समर्थ हो सकता है। विभूषित अथवा जागरूक आत्मा वाला वैसा किये बिना रह ही नही सकता और जब वह पुरुषार्थ करेगा,

परमार्थ पथ पर चलेगा, तो परम फलो को पायेगा ही, इसमे सन्देह नही। इसीलिए निरन्तर चलते रहने, पुरुषार्थ करते रहने का उपदेश किया गया है।

फिर कहा है—बैठे, उठे और चलने वाले का सौभाग्य क्रम से बैठा रहता है, खड़ा हो जाता है और चल पड़ता है—मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। सौभाग्य क्या है ? कर्म फलो का उदय, उनका भोग। कर्म कौन करता है ? मनुष्य। अस्तु भाग्य का निर्माता स्वयं मनुष्य को ही माना जायेगा। जो बैठा है। अर्थात् अकर्मण्य बना हुआ है, उसकी सौभाग्य-लिपि किस प्रकार निर्मित हो सकती है ? हाँ जो उठ पड़ा है अथवा कर्म करने को उद्यत हो गया है, उसकी भाग्य-लिपि की तैयारी विधाता के घर होने लगती है और जब इधर मनुष्य चल पड़ता है अर्थात् पुरुषार्थ करने लगता है तो उधर दैवी लेखक की लेखिनी भी चलने लगती है और भाग्य-लिपि तैयार होने लगती है। इसलिये बैठने का निषेध कर चलने का आदेश दिया गया है।

अन्त मे सोने, अँगड़ाई लेने, खड़े होने और चलने वाले को क्रम से कलियुग, द्वापर, त्रेता और कृतयुग अर्थात् सतयुग बतलाया गया है। युग और कुछ नही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र अथवा संसार की परिस्थिति-दशाओ का ही नाम है। जो सोता रहता है अथवा जब जहाँ सुषुप्ति होती है, वहाँ अचेतनता और अन्धकार होता है, वहाँ पाप, ताप और परिताप से भरा कलियुग रहता है। जब जिस समय लोग जागकर चेतना मे आने लगते है, अर्थात् कलि के स्थान पर द्वापर अर्थात् सुन्दर समय आने लगता है, लोग उठकर खड़ हो जाते है। जब वे पुरुषार्थ के लिए उद्यत होते है, उसकी तैयारी करते है तो त्रेता अर्थात् उत्कृष्ट समय आ जाता है और जब लोग पूरी तरह से चलने लगते है अर्थात् अपने कर्तव्यो मे सलग्न हो जाते है तो सुन्दरतम् समय अर्थात् सतयुग आ जाता है। कर्त्तव्यो की महिमा के कारण ही सतयुग को कृतयुग भी कहा जाता है।

इन्द्र के इस सब कथन का सारांश यही है कि यदि मनुष्य सुख-शान्ति, उन्नति और अभ्युदय चाहता है, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के फल चाहता है तो उसे निरन्तर अनुकूल श्रम करते रहना चाहिये। इसके सिवाय सफलता तथा सार्थकता का कोई और उपाय नही है।

इसमे सन्देह नही कि चाहे व्यक्तिगत जीवन को देखें और चाहे सामाजिक को, कर्मण्यता का महत्त्व सर्वाधिक है। व्यक्ति और समष्टि दोनो की प्रगति उपयोगी कार्यक्षमता पर ही निर्भर है। यदि किसी राष्ट्र के निवासी अधिकाश मे आलसी और प्रमादी हो तो वह निश्चय ही अवनति की दशा मे पडा रहेगा और अन्य देशो की दृष्टि मे उसका कुछ भी सम्मान या महत्त्व न होगा। यही बात व्यक्ति के सम्बन्ध मे भी है, निठल्ले और निकम्मे मनुष्य का सम्मान गैर तो क्या घर के भी नहीं करते, उल्टा उसे जली-कटी बाते सुनाते रहते है। कहावत है कि दुधारू गाय की दो लाते भी मनुष्य सह लेता है। जो मनुष्य परिश्रमी है, मेहनत द्वारा उपार्जन करके चार लोगो का पेट भरता है, उसकी सब कोई प्रशंसा करेगा ही। इसीलिये उपरोक्त आख्यान मे जीवन के गतिशील रहने को इतना अधिक महत्त्व दिया है। यहाँ गतिशीलता का आशय कर्मण्यता से ही है।

एक बात और स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि वर्तमान समय मे समाज मे एक प्रकार की विपरीत आर्थिक-व्यवस्था चल रही है। आजकल बहुसंख्यक व्यक्ति ऐसे भी है, जो तनिक भी शारीरिक श्रम नही करते, अपना अधिकांश समय ऐश आराम या व्यर्थ के मनोरंजन मे निकाल देते है और फिर भी वे समाज मे सम्मान का दर्जा प्राप्त कर लेते है। ऐसे व्यक्ति ब्याज, भाड़ा, कम्पनी-शेयर्स आदि की आमदनी से घर बैठे हजारो, लाखो रुपया पा जाते है और आलसी जीवन बिताकर भी सब प्रकार के सुखोपभोग के अधिकारी बने रहते है। यह एक अत्यन्त ही अस्वाभाविक और अनुचित स्थिति है और इसी के कारण संसार मे अनगिनती दोषो, बुराइयो, पापो की वृद्धि हुई है। ऐसे अकर्मण्य अमीरो को देखकर लोगो को 'पसीने की कमाई' की यथार्थता मे सन्देह होने लगता है और वे भी कोई ऐसी ही तरकीब ढूँढने लगते है, जिससे बिना मेहनत किये ही बहुत-सा रुपया मिल जाय। सट्टा, फाटका, जुआ, लाटरी आदि ऐसी ही मनोवृत्ति की उपज होते हैं। जिन लोगो के पास इनके लायक भी साधन नही होते वे जालसाजी, ठगी, धोखाधड़ी, विश्वासघात आदि से काम लेते है। जो लोग दुष्ट और गुण्डा प्रकृति के तथा दुस्साहसी भी होते है, वे चोरी, डकैती, जेबकटी का रास्ता अख्तियार करते है। सारांश यही है कि इन्द्र और रोहित के उपाख्यान मे जिस गतिशीलता तथा चलते रहने की प्रेरणा दी गई है, उससे ऐसे लोगो की "गतिशीलता" बिल्कुल उल्टी तथा व्यक्ति और समाज के लिये पतनकारी ही होती है।

अगर अपना और समाज का हित चाहते है तो हमको निश्चय ही सच्ची गतिशीलता को अपनाना चाहिये और श्रम, उद्यम तथा साहस के साथ कार्य मे लगा रहना चाहिये। इसमे तनिक भी सन्देह नही कि परिश्रमी और उद्योगी मनुष्य कभी दुर्दशा को प्राप्त नही हो सकता। चाहे वह ब्याजखोरो, सट्टेबाजो और ब्लैक मार्केट वालो की तरह हराम की अनाप-शनाप कमाई न कर सके, पर वह जो कुछ भी कमायेगा और खायेगा वह सदैव उसकी शारीरिक और मानसिक प्रगति मे सहायक होगा, जबकि हराम अथवा पाप की कमाई का अन्तिम परिणाम जैसा का तैसा ही होता है। इसलिये मनुष्य को सदा ईमानदारी और पसीने की कमाई के मार्ग का ही निर्भय होकर अनुगमन करना चाहिये।

साहस का यह अभाव ही आत्महीनता

भारतीय प्रशासनिक सेवा आयोग दिल्ली के इन्टरव्यू मे एक उम्मीदवार से पूछा गया कि भारत कब स्वतत्र हुआ ? युवक मैसूर के कॉलेज का कुशाग्र बुद्धि छात्र था पर यहाँ आकर ऐसा घबड़ा गया कि उससे बोलते भी नही बना था। बड़ी कठिनाई से उसने दो-तीन बार उन्नीस सौ-उन्नीस सौ कहा और जब सदस्यों को मुस्कराते देखा तो रही सही हिम्मत टूट गयी और आगे तेरह करके चुप रह गया। बहुत आश्वस्त करने पर भी वह प्रश्नो के सही उत्तर न दे पाया, जबकि लिखित परीक्षा मे उसे सर्वश्रेष्ठ अक मिले थे।

दिल्ली की ही एक और घटना नेताजी नगर की है। एक जालसाज ने तेजसिंह नामक व्यक्ति को पुलिस का दारोगा बनकर ठग लिया। तेजसिंह गुरुद्वारे के लिये चला था, सर्राफे मे भी कुछ काम था सो वह ८०० रुपये और पत्नी का कोई जेवर भी लिए था। रास्ते मे तथाकथित थानेदार मिल गया, उसे देखते ही तेजसिंह बुरी तरह घबड़ा गया। इस स्थिति का जालसाज ने लाभ उठाया। उसने कहा—दिखाओ तुम्हारे पास क्या है ? लगता है अफीम लिए हो ? तेजसिंह ने घबराहट मे थैला ही उसके हाथ मे दे दिया। जालसाज थैला लेकर चलता बना और घबड़ाया हुआ तेजसिंह तब तक कुछ नही बोल पाया जब तक कि वह आँखो से ओझल नही हो गया। उसी दिन किसी और को ठगते हुए वह जालसाज पकड़ा गया तब यह रहस्य खुला।

साधारण-सी विपरीत परिस्थिति में इतना भयभीत हो जाना कि मानसिक सतुलन भी स्थिर न रह पाये आत्महीनता का ही प्रतीक है। जब हम जानते है कि हमारे गलत उत्तर दे देने से भी कोई सजा हो जाने वाली नही, अधिक से अधिक नौकरी ही नही मिलेगी तो उसमे घबड़ाने जैसी कोई बात नही थी। पुलिस मान लीजिये पकड़ ही लेती तो उससे क्या हो जाता ? महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, पटेल, पंत, यह सब तो निरपराध जेल गए थे और हौसले के साथ सत्याग्रह के लिए गये थे। भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु और रामप्रसाद को तो फाँसी भी लग गई थी तो उनमे भय या विषाद नाम की थोड़ी भी झलक दिखाई न दी थी फिर भी आज की पीढ़ी मे इस तरह साहस की कमी क्यो ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

लन्दन से मनोविज्ञान सम्बन्धी एक मासिक-पत्र "साइकोलॉजिस्ट" छपता है। दिसम्बर १९६५ के अंक मे एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा (साइकोथेरेपिस्ट) का लेख छपा है उसमे इस तरह के कुछ और विचित्र उदाहरण दिये है, जो यह बताते है कि इस तरह की घटनाएँ अपनी ही आत्महीनता के कारण होती है, घटनाएँ यह है—

(१) एक व्यक्ति मेरे पास आया उसने बताया कि मै अपने घर से बाहर निकलता हूँ तो कुछ ही दूर जा पाता हूँ और मुझे अकारण ऐसा भय हो जाता है कि कोई दुर्घटना हो जायेगी और मै मर जाऊँगा।"

(२) एक और व्यक्ति ने बताया मै जब कोई वस्तु खरीदने किसी दुकान पर जाता हूँ और कोई मुझे देखने लगता है तो मुझे ऐसा लगता है कि यह लोग मुझे पागल न समझते हों। इसी हड़बड़ी मे जो कुछ अच्छा-बुरा दिखा खरीदा और वहाँ से चटपट भाग निकलता हूँ। बाद मे पता चलता है कि वस्तु खराब और अनावश्यक ले आया।

(३) एक व्यक्ति ने बताया कि मुझे बस या रेल देखते ही परेशानी हो जाती है कि यदि टट्टी-पेशाब लगी तो क्या करूँगा ? मुझे यही बात बार-बार ध्यान में आती है और नही लगी होती तो भी टट्टी या पेशाब को जाना पड़ता है।

लेखक अन्त मे निष्कर्ष देते हुए लिखता है—ऐसी आशंकाएँ और भय जिनके कोई उपयुक्त हल नहीं मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत कमजोरी है, इसे ही आत्महीनता कहते है। यह कहना अनुपयुक्त है कि केवल पिछड़े परिवारो में जन्म लेने से ही लोगो मे ऐसी हीन मनोवृत्ति पनप जाती है। संत रैदास चमार थे, दादू भाई छीपी थे, तुर्की का कमाल पाशा एक साधारण लोहार था, राष्ट्रपति जानसन प्रारम्भ मे बूट पालिश करते थे, बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति अब्दुल भाई करीम पहले गुब्बारे बेचते थे और ऐसे ही साधारण व्यक्तियो के मुहल्ले मे रहते थे पर उनकी अपनी व्यक्तिगत दृढ़ता, साहस और सूझ-बूझ के भाव ने उन्हे आगे बढ़ा दिया। जो नहीं बढ़ पाते उनके लिये तो यही कहा जा सकता है कि उनकी गतिविधियाँ, कर्मकलाप, विचार-चिन्तन, ओछी और ओधी बातो तक ही सीमित रहते है। ऐसी बाते करने और सोचने से जो दूसरो की दृष्टि मे हीन और पाप हो, उनको करना ही मनुष्य को इस कदर कायर और आत्महीन बनाता है। दृढ़चरित्र, नेक, ईमानदार लोग ही सच्चाई से संघर्ष कर सकते है। वही हिम्मती हो सकते हैं। इसलिये जीवन मे सफलता के लिये आत्महीनता के पाप से बचना आवश्यक है। अपने चरित्र को दृढ़ बनाकर ही हम इन बुराइयों से बच सकते है।

अपने स्वभाव की छोटी-छोटी बुराइयाँ बाद मे मन को कमजोर कर देती है और तब पढ़े-लिखे लोग भी ऐसा ही सोचते और करते है जैसे कुछ उदाहरण ऊपर दिये है। भय और अपने आप को भीतर से गिरा हुआ, ओछा, पापी-सा अनुभव करते-करते मन मे एक प्रकार की गाँठ-सी पड़ जाती है, तब मनुष्य उतनी ही बाते सोचता रहता है। उसके विकास का क्षेत्र सीमित पड़ जाता है। यही वृत्ति अपराध के लिये उकसाती है। जीवन की छोटी-छोटी बुराइयाँ ही बड़े अपराधो के रूप मे

फलती-फूलती है। उनसे स्वयं को और समाज को बचाने का एक ही उपाय है, वह यह कि हमारे चरित्र मे दृढ़ता आये और दूसरे लोग भी चरित्रवान बने। पुण्यात्मा ही साहसी हो सकता है और वही जीवन मे कोई सफलता प्राप्त कर सकता है।

भय का कारण और निवारण

डर का सबसे बड़ा कारण है अज्ञान। जिसे हम ठीक तरह नही जानते उससे प्रायः डरा करते है। सृष्टि के आरम्भ मे आदिम मनुष्य सूर्य, चन्द्र, समुद्र, बादल, बिजली, पर्वत, आँधी, आग, सर्प का स्वरूप ठीक तरह समझ न पाया था, इसलिए चेतना विकास के प्रथम चरण मे उनकी स्थिति, शक्ति और मर्यादा की समुचित जानकारी न थी, फलस्वरूप उनसे डर लगा। देवता के रूप मे उन्हे कल्पित किया गया और अनेक पूजा-विधानो से उन्हे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया ताकि वे अपना कोई अहित न करे। मृत्यु के उपरान्त का जीवन अभी भी रहस्यमय है पर पूर्वकाल मे वह और भी रहस्यमय बना हुआ था। इस अज्ञान ने प्रत्येक मृतक को भूत-प्रेत की मान्यता प्रदान कर दी और आकस्मिक दुर्घटनाओ, विपत्तियो एव बीमारियो का मूल कारण विदित न होने से उन्हे भूत की करतूत समझ लिया गया। प्राग ऐतिहासिक काल मे मनुष्य की मनोभूमि का अधिकाश भाग इन देवताओ और भूतो का सन्तोष समाधान करने मे ही व्यतीत होता था।

ज्ञान का जैसे-जैसे विकास हुआ वे भय छूट गए। बीमार होते ही भूत को बलि चढ़ाने की तैयारी ही जिनके मस्तिष्क मे एकमात्र उपाय सूझता हो, ऐसे लोग अब बहुत थोड़े है, जो है वे सभ्य समाज मे उपाहासास्पद माने जाते है। इसी प्रकार अलग-अलग मत्ता वाले, एक-दूसरे से लड़ने-झगड़ने और ईर्ष्या करने वाले देवताओ के स्थान पर अब इन्हे एक ही ईश्वरीय शक्ति के विभिन्न काम माना जाने लगा है। ग्रह-नक्षत्रो की विद्या की सही जानकारी जैसे-जैसे बढ़ रही है वैसे-वैसे शनि और राहु की अनिष्टकर ग्रहदिशा का आतंक समाप्त होता चला जा रहा है।

अधिकाश भय अवास्तविक होते है। साँप से आमतौर से लोग डरा करते है पर सही बात यह है कि केवल सत्तरह प्रतिशत साँप ही ऐसे होते है, जिनमे मारक विष रहता है। यह वास्तविकता जिन्हे विदित होती है, जो साँपो के स्वभाव की गहरी जानकारी रखते है, वे उनसे जरा भी नहीं डरते, वरन् कई बार तो उनसे अपना मनोरंजन लाभ भी करते है। सरकस के कर्मचारी खूँखार जानवरो के बारे मे अधिक जानकारी होने के कारण उनसे डरना तो दूर उल्टा अचरज भरे काम कराते रहते हैं। घने जंगलो मे सिंह, व्याघ्रो के बीच निवास करने वाले आदिवासी उनसे जरा भी नही डरते बल्कि आँख-मिचौनी खेलते रहते है, जबकि सामान्य लोगो को सिंह, व्याघ्र की बात सुनने से भी डर लगने लगता है।

अजनबी आदमी को देखकर तरह-तरह की आशंकाएँ मन मे उठती है पर जब उसका पूरा परिचय हो जाता है तो पूर्व आशंका मित्रता मे बदल जाती है। अन्धेरे मे जाते हुए डर केवल इसलिए लगता है कि वहाँ क्या कुछ होगा, इसकी जानकारी न होने से चित्त मे अनेक तरह की डरावनी बाते उठती है। नदी मे थोड़ा पानी होने पर भी अनजान आदमी उसमे प्रवेश करते दुर्घटना से सशंकित रहता है। सही जानकारी होने पर डर सहज ही दूर होता है। प्रकाश मे तो सुनसान मे जाते हुए और नदी के उथले पानी का सही पता लगाते हुए, उसमे प्रवेश करते हुए किसी को कोई झिझक नही होती।

इस संसार मे लगभग सारे डर अज्ञानमूलक हैं। हानि, घाटा, दुर्घटना, असफलता, आक्रमण, दुर्भाग्य, ग्रह-दशा, भूत आदि की आशंका से जितना डरा जाता है। वस्तुतः उसका सौवाँ भाग भी वास्तविक नही होता। अज्ञान ही कायरता या भीरुता का रूप धारण कर मनुष्य को भयभीत करता रहता है। जिसे जितना वास्तविक ज्ञान है, वह उतना ही निर्भय रहेगा। तत्त्वज्ञानी की पहचान यह है कि वह पूर्णतया निर्भर हो। ज्ञान की उपासना को अध्यात्म मार्ग का प्रथम सोपान इसीलिए माना गया है कि उसके आधार पर मनुष्य सब प्रकार के भय और संशयो से छुटकारा पाकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर अपनी मानसिक शक्तियो को लगा सकने मे समर्थ होता है। वह अज्ञानी जिसे अनेक प्रकार के भय सताते रहते है, अपनी मानसिक क्षमता का अधिकाश भाग उसी गोरख-धन्धे मे खो बैठता है फिर आत्म-कल्याण जैसे श्रेष्ठ कार्य के लिए उसके पास मनोबल बचेगा ही कैसे ?

ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होने से मनुष्य ससार की हर वस्तु का स्वरूप समझ जाता है, तब उसे उनमे डरने लायक कुछ भी कारण दिखाई नही पड़ता। निर्भीक लोग उन परिस्थितियो मे भी हँसते, प्रसन्नचित्त रहते और मानसिक सन्तुलन बनाये रहते देखे जाते है, जिनमे कि साधारण मनुष्य आशंकाओ और कुकल्पनाओ से भयभीत होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन जाते है। ससार के महापुरुष एव राजनेता अगणित महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वो और अशुभ सभावनाओ से घिरे रहते है। समस्याओ का हल वे सोचते है और जो सम्भव है वह करते है पर यह होता तभी है, जब मानसिक सन्तुलन को सही रखने की, उत्तेजित न होने की क्षमता विद्यमान हो। श्रेष्ठ और निकृष्ट व्यक्तियो मे धैर्य और अधीरता का ही अन्तर रहता है। जिसने इस संसार को एक नाटक मात्र समझ लिया है, वह अपना सर्वोत्कृष्ट अभिनय करने मात्र का ध्यान रखता है। जैसी परिस्थितियाँ आती हैं, उनके अनुरूप परिवर्तन करने और ढलने की क्षमता जिनने सम्पादित कर ली वे ससार को, समस्त परिजनो को एक क्रीड़ा-कौतुक मात्र

समझते है। डरना उन्हें मानवीय दुर्बलता और अज्ञान का एक उपहासास्पद कारण प्रतीत होता है। जो डरते है वे कर कुछ नही पाते। डर के मारे अधमरे बने रहने वाले, आशंकाओ और संशयों से उद्विग्न रहने वाले व्यक्ति तो अर्धमूर्छित, अर्ध-स्थितियो मे पड़े हुए निकृष्ट और असफल जीवन ही किसी प्रकार पूरा करते है।

जिसे अपनी शक्ति का सही ज्ञान होता है वह उतने बड़े कदम उठाता है, जो अपनी सामर्थ्य और मर्यादा के अन्तर्गत हो। शेखचिल्ली इसलिए असफल हुआ कि वह अपना अर्थ-व्यवस्था के क्रमिक विकास और योजनाओ की पूर्ति मे लगने वाले समय और श्रम के बारे मे भ्रम-ग्रस्त बना रहा। किस असफलता के लिए कितनी तैयारी, मेहनत और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, यह जानकर कोई व्यक्ति अपनी गतिविधियो को निर्धारित करे तो उसे कदाचित ही कभी असफलता का मुँह देखना पड़े।

बड़े से बड़ा भय मृत्यु का होता है, पर यदि उसे वस्त्र परिवर्तन जैसी जीव के लिए भूतकाल मे करोड़ो बार घटित हुई एक सामान्य प्रक्रिया मान लिया जाय तो मरने का अवसर आने पर भी मनुष्य अपना साहस बनाये रह सकता है। मृत्यु के संघर्ष मे भी देर तक लड़ सकता है। कम से कम शान्तचित्त से ईश्वर का नाम लेते हुए तो मर ही सकता है अन्यथा मृत्यु का स्वरूप ही ठीक तरह समझ मे न आने से ही त्रास मिलता है तथा मृत्युदण्ड की आज्ञा सुनकर फाँसी लगने के दिन तक खुशी से सत्तरह पौण्ड वजन बढ़ा लेने वाले क्रान्तिकारियो के उदाहरण सुनने को क्यो मिलते ?

उचित-अनुचित का विवेक जाग्रत होने पर भी मनुष्य निश्चिन्त हो सकता है। उसके सामने लक्ष्य और मार्ग स्पष्ट रहने से न तो उलझन रहती है और न परेशानी। हवा मे उड़ते हुए पत्ते की तरह जो चारो ओर मन डुलाता है, उसे सफलता-असफलता का भय बना ही रहता है। सच्ची निर्भयता उसे मिलती है, जिसके सामने अपना कर्तव्य ही प्रधान है। परिणाम को अधिक महत्व देने वाला व्यक्ति असफलता को न तो अधिक महत्व देता और न उससे डरता है।

ईश्वर विश्वास निर्भयता का सर्वोपरि उपाय है। पुलिस गारद के पहरे से रहने वाले को जब आक्रमणकारी शत्रुओ से निश्चिन्तता मिल जाती है, सुरक्षा अनुभव होती है, तो सर्व शक्तिमान परमात्मा को अपना साथी-सहचर बना लेने वाले के लिए डरने की गुंजाइश कहाँ रह जाती है ? जिसने धर्म को अपना आधार बना लिया, उसका भविष्य अन्धकारमय हो ही नहीं सकता। फिर किसी से भी डरने की ऐसे व्यक्ति के लिए बात ही क्या रह जाती है ?

मन को दुर्बल न बनने दें

सिद्धि का आधार शक्ति माना गया है। शक्ति और साहस एक वस्तु के दो पहलू ही है, संसार का कोई भी उद्योग कोई भी पुरुषार्थ और कोई भी कार्य, शक्ति के बिना नहीं किया जा सकता। कोई बड़ा ही नही एक साधारण और सामान्य काम मे भी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। नि:शक्त मनुष्य संसार में कुछ भी नहीं कर सकता।

संसार मे प्रधानतः दो शक्तियाँ काम करती हैं—एक शारीरिक बल, दूसरा मानसिक बल। आगे की अन्य शक्तियाँ—जैसे बौद्धिक बल, आध्यात्मिक अथवा आत्मिक बल भी पूर्वोक्त दो बलों के आधार पर ही पाये और विकसित किये जाते है।

शारीरिक बल और मानसिक बल मे भी मानसिक बल की प्रधानता है। शारीरिक बल का अपने-आप मे कोई अधिक महत्व नहीं है। मनोबल का सहयोग पाए बिना शारीरिक बल निकम्मा बना रहता है। बहुत बार देखा जा सकता है कि शारीरिक बल कम होने पर भी लोग मनोबल के आधार पर बहुत से काम कर जाते है। शरीर-बल प्रधान सैनिको से परास्त हो जाते है। जंगल मे शेर की तुलना मे हाथी, गैंडे, सूअर आदि बहुत-से जानवर शरीर-बल मे बहुत अधिक होते है, किन्तु मनोबल की कमी के कारण शेर से डरते और उसका आतंक मानते रहते है। वास्तविक बल मनोबल ही होता है—शारीरिक बल तो मात्र यान्त्रिक बल ही होता है।

शरीर मे क्षमता होते हुए भी जब मनुष्य का मन असहयोगी हो जाता है तो वह जरा देर भी काम नही कर सकता। मन मे उत्साह और सहयोग होने पर यदि एक बार शरीर थका भी हो तो भी मनुष्य बहुत देर तक काम करता रहता है। शरीर की सारी क्रियाएँ मन की सहायता से ही सम्पादित होती है।

बौद्धिक बल उत्पन्न करने के लिये भी मानसिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। मनुष्य की बुद्धि का विकास, अध्ययन, अनुभव और विषय मे गहरे पैठने से होता है। जिसका मन निर्बल है, असहयोगी या उत्साहहीन है, वह न तो अध्ययन का परिश्रम कर सकता है और न उत्साहपूर्वक किसी विषय मे गहरे पैठ सकता है। यदि वह यह सब करेगा भी तो भी मानसिक सहयोग के अभाव मे कुछ लाभ नही उठा सकता।

न जाने कितने उत्साह अथवा अभिरुचि से रहित मन वाले लोग वर्षों पढ़ते रहते है, नौकरी और व्यापार करते है, किन्तु प्रगति के नाम पर एक कदम भी आगे नही बढ़ पाते। पूरी सिद्धि तो उनके लिए असम्भव होती है। मन का असहयोगी, विद्रोही, निरुत्साही, चंचल आदि होना उसकी निर्बलता के ही लक्षण होते है।

जिन मनुष्यो के मन बलवान और सतेज होते है, वे कम समय मे ही पर्याप्त विकास कर लेते है। जो काम हाथ मे लेते है, उत्साह और अभिरुचि से करते है। इस गुण के कारण उनकी ग्राहकता भी बढ़ी-चढ़ी रहती है। क्रम-क्रम से ज्ञान और गुणो को हृदयंगम करते चले जाते हैं। मनोबली लोगो का आत्म-विश्वास बड़ा प्रबल होता है। उनको संसार का कोई काम कठिन और दुसह मालूम ही नहीं होता। आत्मविश्वास के कारण वे अपने को हर काम के योग्य समझा करते है। जो भी काम उन्हे सौप दिया जाता है, उसे पूरा करके दिखलाते है।

आध्यात्मिक विकास तो मनोबल के अभाव मे असम्भव है। आध्यात्मिक विकास के लिये वृत्तियो और इन्द्रियो पर नियन्त्रण करना होता है। वृत्तियाँ तथा इन्द्रियाँ मन के अधीन होती है। यदि मन बलवान और स्वस्थ है तो उसकी सहायता से वृत्तियो और इन्द्रियो को वश मे किया जा सकता है। यदि मन कमजोर और अस्वस्थ है तो मनुष्य की वृत्तियाँ और इन्द्रियाँ शासनहीन हो जायेगी। वे अपनी सत्ता स्वतन्त्र कर लेगी। तब किसी दशा मे भी उन्हे वशवर्ती नही किया जा सकता।

आध्यात्मिक विकास के लिये अनेक तरह के नियम, संयम और व्रतो का निर्वाह करना पड़ता है। बहुत-सी साधनाओ मे उतरना पड़ता है। साधन और संयम का यह कार्यक्रम केवल शारीरिक बल के आधार पर नही किया जा सकता। इसके लिए मनोबल की आवश्यकता होती है। जिसका मन शक्तिशाली और अनुकूल होता है, वह किसी भी विकार, वेग अथवा उद्वेग पर आसानी से नियन्त्रण कर सकता है। जिसका शरीर शक्तिशाली हो पर मन निर्बल हो तो ऐसे आदमी की आसुरी प्रवृत्तियाँ बड़ी प्रबल रहती है। वह तो अपने वेगो और विकारों को जरा देर भी नही रोक सकता। ससार के सारे शासन, अनुशासन, नियम और सयम मनोबल के आधार पर सफल बनाये जा सकते है, शारीरिक बल के आधार पर नही। किसी भी क्षेत्र की सफलता के लिये मानसिक बल की अनिवार्य आवश्यकता है। उसे जाग्रत और विकसित करते ही रहना चाहिये।

निर्बल मन वाले कोई बड़ा काम तो दूर सामान्यतम कामो मे भी घबरा जाते है। कोई भी प्रसंग उपस्थित होते ही वे भय, आशंका और सन्देह के वशीभूत हो जाते है, फिर चाहे उसे उस प्रसग मे भय, आशंका अथवा सन्देह का कारण हो या न हो। वास्तविकता यह है कि भय का कारण प्रसग अथवा परिस्थितियो मे नही होता, उसकी जड़ मनुष्य के अपने निर्बल मन मे ही होती है। भय, आशका, कायरता आदि दोषो का जन्म मनुष्य के हृदय से ही होता है। इनका हेतु वह मानसिक कमजोरी ही होती है, जो किन्ही भूलो से पैदा हो जाती है।

यदि भय और आशंकाओ का सम्बन्ध मनुष्य की हृदय-स्थिति से न होता और उनका निवास प्रसंग अथवा परिस्थितियो मे होता तो वह उस स्थिति मे सभी मनुष्यो पर समान रूप से प्रतिक्रियान्वित होना चाहिये। जब ऐसा होता नही, किसी भयानक परिस्थिति को देखकर जहाँ कोई एक बुरी तरह डरकर, घबराकर भागने का रास्ता खोजने लगता है, वहाँ कोई दूसरा उसी परिस्थिति मे अपने सन्तुलन और साहस के आधार पर वीरतापूर्वक उसका सामना करने के लिये उत्साहित हो उठता है। यह अन्तर परिस्थिति से उठता है। यह अन्तर परिस्थिति का नहीं केवल मनःस्थिति का होता है, जिसका मन निर्बल और कायर होगा, उसका घबरा जाना स्वाभाविक है। जिसका मनोबल बढ़ा-चढ़ा होगा, उसके मन में भय अथवा पलायन का भाव ही न आयेगा। वह तो ताल ठोककर टक्कर लेने को उद्यत हो उठेगा।

मनुष्य की सारी बाह्य क्रियाओ की जड़ उसके मन मे ही होती है। मनुष्य की शारीरिक क्रियाओ का संचालक मन ही होता है। मन स्वस्थ, बलवान और सन्तुलित होगा, क्रियाएँ भी सुन्दर, सतेज और व्यवस्थित होगी। मन निर्बल और अस्थिर होगा, तो क्रिया-कलाप भी सारहीन और अस्त-व्यस्त होगा।

कारण कोई भी रहे हो, किन्तु जिनके मन क्षीण, निर्बल और निस्तेज हो जाते है, उनका सारा जीवन भय, आशंकाओ, कट्टरता और सन्देहो से भरा रहता है। मनोहीन मनुष्य हर बात में भयानक घटनाओ, सम्भावनाओ और परिणामो की कल्पना किया करते है। उन्हे सब ओर, सब जगह अमगल और अकल्याण ही दिखाई देता है। जिस प्रकार कायर और भीरु सिपाही को मोर्चे पर सिवाय मौत के और कुछ दिखाई नही देता, जबकि वहाँ पर विजय, यश और प्रतिष्ठा की भी सम्भावना होती है, उसी प्रकार निर्बल मन वाले को सब जगह असफलता और आशंका ही दीखती रहती है, जबकि सभी क्षेत्रो और कार्यों मे दूसरे लोग सफल और कृत-कृत्य होते रहते है।

निर्बल मन वालो की विचारधारा प्रतिगामिनी हो जाती है। ऐसा मनुष्य यदि एक सफल और एक असफल आदमी को एक साथ देखता है तो भी वह असफल व्यक्ति की स्थिति से प्रभावित होता है। वह सोचता है यदि मै भी इस काम को करूँ, तो असफल हो जाऊँगा। उसका विश्वास उस सफल व्यक्ति पर नही जाता और न अपने लिये उसे उदाहरण ही बना पाता है। कायर व्यक्ति जिस प्रकार मैदान छोड़कर भागने वालो को अपना आदर्श बनाता है, मोर्चे पर डटने वालो को नही, उसी प्रकार मनोहीन व्यक्ति भी असफल, अकर्मण्य और अग्राह्य उदाहरणो को अपना आदर्श बनाता है।

निर्बल मन वाला व्यक्ति स्वभावतः निराशावादी होता है। उसे पग-पग पर अनर्थ ही दिखाई देता है। साधारण-सी बीमारी जैसे सर्दी-जुकाम, खाँसी या बुखार आ जाने पर बुरी तरह घबरा उठता है। सोचने लगता है कहीं सर्दी बढ़कर निमोनिया न बन जाये। कही ऐसा न हो कि

खाँसी-बुखार मिलकर हमे यक्ष्मा कर दे। जरा-सी चोट लग जाने पर उसे ऐसा लगता है मानो उसकी हड्डी टूट गयी है, किसी ऐसे अंग मे चोट आ गई है जिससे उसकी मृत्यु हो सकती है। नौकरी मे जरा-सी भूल हो जाने पर ऐसा घबरा जाता है, जैसे उसकी बरखास्तगी का फरमान आने वाला हो। व्यापार मे जरा-सा घाटा आते ही उसे अपना घर-मकान नीलाम होता दिखाई देता है। निराशा के दोष के कारण उसे अनर्थ के सिवाय यह विचार कदाचित ही आता है कि मनुष्य की जीवनी शक्ति बड़ी बलवती होती है। यह जरा-सी बीमारी मेरा क्या बिगाड़ सकती है ? मै इसे उपचार, आहार-विहार और नियम, संयम पर जड़-मूल से नष्ट कर दूँगा।

नौकरी मे भूल हो जाने पर वह यह नहीं सोच पाता कि धोखे से गलती हो गई, आगे के लिये सावधान रहूँगा। आवश्यकता होगी तो अपनी गलती के लिये क्षमा माँगकर सारी स्थिति सुधार लूँगा। व्यापारिक घाटे के प्रसंग मे वह इस प्रकार सोच सकने से वंचित रहता है कि व्यापार मे हानि-लाभ तो चलता ही रहता है। आज यदि हानि हो गई तो आगे लाभ भी होगा। मै परिश्रम, पुरुषार्थ, सावधानी और साख के बल पर सारी कमी पूरी कर लूँगा। इस प्रकार अपनी निराश भावना के कारण मनोहीन व्यक्ति प्रकाश के स्थान पर अन्धकार ही देख सकता है।

मानसिक दौर्बल्य अथवा मनोहीनता मानव-जीवन के लिये भयानक अभिशाप है। अदम्य शारीरिक शक्ति और प्रचुर साधन होने पर भी मनोहीन व्यक्ति जीवन मे असफल ही रह जाता है। जबकि मनोबली व्यक्ति सामान्य शारीरिक क्षमता और साधनो की कमी मे भी अपने साहस, उत्साह और संलग्नता के बल पर क्षमता और साधनो की वृद्धि कर लेते है और संसार के सफल व्यक्तियो की पंक्ति मे अपना स्थान बना लेते है।

यदि किन्ही कारणो से कोई मानसिक दौर्बल्य का बन्दी बन गया है, तो ऐसा नही कि उसका यह अभिशाप दूर नही हो सकता। अवश्य ही दूर हो सकता है। प्रयत्न द्वारा संसार का हर काम सम्भव हो जाता है। यदि कोई अपने मे मनोबल की कमी पाता है, तो उसे चाहिये कि वह धीरे-धीरे उन कामो मे पड़ना आरम्भ करे, जिनसे उसे भय लगता है और अपनी सारी प्राप्त एवं प्रबुद्ध शक्ति को लगाकर पुरुषार्थ करे। असफल होने पर जरा भी निराश न हो और बार-बार प्रयत्न करते चले। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा उसका मनोबल बढ़ने लगेगा और एक दिन वह सुयोग्य बन जायेगा।

मोटर, रेल और हवाई-जहाज चलाना सीखने वाले आरम्भ मे डरते है किन्तु तब भी वे लगनपूर्वक उस काम मे लगे ही रहते है। धीरे-धीरे उनका मनोबल बढ़ता जाता है, एक दिन वे इतने आत्मविश्वासी हो जाते है कि बिना किसी शंका के दुरुह स्थानो पर भी अपना यान चलाते चले जाते है।

मनोबल मनुष्य का प्रधान बल है। इसकी वृद्धि किए बिना क्या जीवन के, क्या सामाजिक, क्या आर्थिक और क्या आध्यात्मिक किसी भी क्षेत्र मे सफलता नहीं मिल सकती ? अस्तु, इस प्रधान बल को निरन्तर बढ़ाते ही रहना चाहिये। मनोबल की प्राप्ति से ही साहस की सिद्धि और अकारण भय से निवृत्ति सम्भव है।

मनस्विता के क्षेत्र में चिन्तन की भूमिका

चिन्तन-क्रम व्यवस्थित हो

जीवन एक लम्बा पथ है, जिसमे कितने ही प्रकार के झझावात आते रहते हैं। कभी ससार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ अवरोध खड़ा करती है तो कभी स्वयं की आकांक्षाएँ । ऐसे मे सन्तुलित दृष्टि न हो तो भटकाव ही हाथ लगता है। असफलताओ के प्रस्तुत होते ही असन्तोष बढ़ता जाता है तथा मनुष्य अनावश्यक रूप से भी चिन्तित रहने लगता है। सन्तुलन के अभाव मे चिन्ता-आदत मे शुमार होकर अनेको प्रकार की समस्याओ को जन्म देती है। अधिकांश कारण इनके निराधार ही होते हैं।

चिन्ता किस प्रकार उत्पन्न होती है ? इस सम्बन्ध मे प्रख्यात मनोवैज्ञानिक मैकडूगल लिखते है कि "मनुष्य की इच्छाओ की आपूर्ति मे जब अड़चने आती है तो उसका विश्वास, आशंका और निराशा मे परिवर्तित हो जाता है, पर वह आयी अड़चनो तथा विफलताओ से पूर्णतः निराश नही हो जाता, इसलिए उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ अपनी पूर्ति और अभिव्यक्ति का प्रयास करती रहती है। सामाजिक परिस्थितियाँ तथा मर्यादाये मनुष्य के लिए सबसे बड़ी अवरोध बनकर सामने आती है तथा इच्छाओ की पूर्ति मे बाधक बनती है, जिससे उसके मन मे आतरिक सघर्षों के लिए मंच तैयार हो जाता है। इसी मे से असन्तोष और चिन्ता का सूत्रपात होता है, अनावश्यक चिन्ता उत्पत्ति के अधिकांश कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं।"

एक सीमा तक चिन्ता की प्रवृत्ति भी उपयोगी है, पर जब वह मर्यादा सीमा का उल्लंघन कर जाती है तो मानसिक सन्तुलन के लिए संकट पैदा करती है। व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन से जुड़े कर्त्तव्यो के निर्वाह की चिन्ता हर व्यक्ति को होनी चाहिए। बच्चो के स्वास्थ्य, शिक्षण एवं विकास की, उन्हे आवश्यक सुविधाये जुटाने की चिन्ता अभिभावक न करे, अपनी मस्ती मे डूबे रहे, भविष्य की उपेक्षा करके वर्तमान मे तैयारी न करे तो भला उनके उज्ज्वल भविष्य की आशा कैसे की जा सकती है ? विद्यार्थी खेलकूद मे ही समय गँवाता रहे—आने वाली परीक्षा की तैयारी न करे तो उसके भविष्य का अन्धकारमय होना सुनिश्चित है।

'जो होगा सो देखा जायेगा', किसान यह नीति अपनाकर फसलो की देख-रेख करना छोड़ दे, निराई-गुड़ाई करने की व्यवस्था न बनाये, खाद-पानी देना बन्द कर दे तो फसल के चौपट होते देर न लगेगी। व्यवसाय मे व्यापारी बाजार भाव के उतार-चढ़ाव के प्रति सतर्क न रहे तो उसकी पूँजी के डूबते देरी न लगेगी। सीमा प्रहरी रातो-दिन पूरी मुस्तैदी के साथ सीमा पर डटे चहल-कदमी करते है। सुरक्षा की चिन्ता वे न करे तो दुश्मन-घुसपैठियो से देश को खतरा उत्पन्न हो सकता है। मनीषी, विचारक, समाज सुधारक, देशभक्त, महापुरुष का अधिकाश समय विधेयात्मक चिन्तन मे व्यतीत होता है। उन्हे देश, समाज, संस्कृति ही नही समस्त मानव जाति के उत्थान की चिन्ता होती है। सार्वजनीन तथा सर्वतोमुखी प्रगति के लिए वे योजना बनाते और चलाते है। यह विधेयात्मक चिन्ता ही है, जिसकी परिणति रचनात्मक उपलब्धियो के रूप मे होती है।

मानव जीवन वस्तुतः अनगढ़ है। पर प्रवृत्तियो के कुसंस्कार उसे पतन की ओर ढकेलने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते है। उनकी अभिप्रेरणा से प्रभावित होकर इन्द्रियो को मनमानी बरतने की खुली छूट दे दी जाय तो सचमुच ही मनुष्य पशुओ की श्रेणी मे जा बैठेगे, पर यह आत्म-गरिमा को सुरक्षित रखने की चिन्ता ही है जो मनुष्य को पतन के प्रवाह मे बहने से रोकती है। मानवी काया मे नरपशु भी होते है, जिनका कुछ भी आदर्श नहीं होता, परन्तु जिनमे भी महानता के बीज होते है, वे उस प्रवाह मे बहने से इन्कार कर देते है। सुरक्षा प्रहरी की तरह वह स्वयं की प्रवृत्तियो के प्रति विशेष जागरूक होते है। हर विचार का, मन मे आये संवेगो का वे बारीकी से परीक्षण करते है तथा सदैव उपयोगी चिन्तन मे अपने को नियोजित करते है।

चिन्ता करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। एक सीमा तक वह मानवी विकास मे सहायक भी है। पशुओ का जीवन तो प्रवृत्ति तथा प्रकृति प्रेरणा से संचालित होता है। शिश्नोदर जीवन वे जीते तथा उसी मे आनन्द अनुभव करते है किन्तु मनुष्य की स्थिति भिन्न है। मात्र इन्द्रियो की परितृप्ति से उसे सन्तोष नही हो सकता, होना भी नही चाहिए क्योकि उसके ध्येय उच्च है। उनकी प्राप्ति के लिए उसे स्वेच्छापूर्वक संघर्ष का मार्ग वरण

करना पड़ता है। यह मनुष्य के लिए गौरवमय बात भी है कि वह अपनी यथास्थिति पर सन्तुष्ट न रहे।

प्रख्यात यूनानी दार्शनिक सुकरात कहा करता था कि 'एक असन्तुष्ट मनुष्य सन्तुष्ट पशु से कहीं अच्छा है।' सचमुच ही मनुष्य पशुओ की तरह शिश्नोदर जीवन की तृप्ति मे ही सन्तुष्ट हो जाय तो उसका विकास अवरुद्ध हो जायेगा। मानव संस्कृति का इतिहास वस्तुत: निषेधो और संघर्षो की एक ऐसी गाथा है, जो असन्तोष से शुरू हुई पर प्रगति की एक प्रमुख आधार भी बनी। अपनी गयी-गुजरी स्थिति से उबरने की चिन्ता मानव को न हुई होती तो आज की प्रगतिशील स्थिति तक पहुँचना सम्भव न हो पाता।

जिस समाज मे मनुष्य रहता है, उसमे अगणित प्रकार के लोग है। चाहते हुए भी सबको एक जैसा नही बनाया जा सकता। अपने आपे को बदलना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन पड़ता है। दूसरो की अभिरुचियाँ बदल देना और भी कठिन है। सभी अपनी मनमर्जी के अनुकूल ढल जाँय—यह एक ऐसी हवाई कल्पना है, जो कभी पूरी नही होती। जो ऐसी कल्पना करते अथवा सोचते है, वे वास्तविकता से सर्वथा अपरिचित है। व्यक्ति तथा समाज की अधिकाश समस्याएँ भी इसीलिए उत्पन्न होती है कि मनुष्य सामाजिक मनोविज्ञान को समझ नही पाता। अनावश्यक रूप से चिन्तित तथा खिन्न होने का कारण भी यही है कि मनुष्य अपनी कल्पना के अनुरूप समाज और संसार को देखना चाहता है, इस चाह की आपूर्ति कभी नही हो पाती।

विभिन्न प्रकृतियो एवं अभिरुचियो वाले व्यक्तियो से युक्त समाज से जो जितना अधिक तालमेल बिठा लेता है, वह जीवन में उतना ही सफल रहता है। तालमेल बिठाने का अर्थ यह कदापि नही है कि अनौचित्य से समझौता किया जाय वरन् यह है कि अच्छाई का जितना अश जहाँ दिखाई दे उतने अंश से सामजस्य स्थापित किया जाय। व्यक्तियो की बुराइयो को सुधारने के लिए प्रयत्न तो किया जाय, पर यदि नही दूर होती तो उनकी उपेक्षा की जाय। समाज मे यदि प्रसन्नतापूर्वक रहना है तो सामंजस्य की प्रवृत्ति विकसित करनी होगी। दूसरो को बदलने की अपेक्षा अपने को बदलना सुगम और हितकर है।

ध्यान यह रखा जाना चाहिए कि चिन्ता को इस सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाय, जिससे कि मनोबल और मानसिक सन्तुलन को ही खतरा उत्पन्न होने लगे। मनोबल एवं मन.सन्तुलन को किसी भी कीमत पर नहीं गँवाया जाना चाहिए। चिन्ता को उतना ही महत्व दिया जाय जितना कि वह कर्त्तव्य निर्वाह मे सहायक है। मनस्वियो की रीति-नीति ऐसी ही होनी चाहिए।

न आत्म-विश्वास खोयें, न भयाक्रान्त रहें

अपने ऊपर से विश्वास खो बैठने की मन स्थिति को 'आत्महीनता' (इन्फीरियॉरिटी कॉम्पलेक्स) कहते है। इसमे कोई मस्तिष्कीय विकृति नही होती। इसे कोई रोग भी नहीं कहा जा सकता। यह किसी कारण से आरम्भ होते-होते आत्म-विश्वास गँवा बैठने की आदत भर है।

इस आदत का प्रमुख लक्षण अपने आपको तुच्छ, हीन, असमर्थ, उपेक्षित एव पराजित मानना है। ऐसी दशा मे व्यक्ति दूसरो से शर्माता है और उनसे पीछा छुड़ाने की मन होता है। कहीं ऐसी जगह छुपने का मन करता है, जहाँ दूसरे लोग देखें नही। देखें तो वार्तालाप न करें। उसे एक प्रकार का डर-सा लगता है। यह डर किस बात का ? कोई मारेगा या त्रास देगा ऐसा भय तो नहीं होता ? पर इतना जरूर होता है कि अपने ऊपर से भरोसा उठ जाता है और लगता है कि दूसरो से सम्बन्ध साधने पर या तो निन्दा होगी या कुछ ऐसा बन पड़ेगा, जिसका अर्थ होता है पराजित या अपमानित होना।

वस्तुत: ऐसी कोई बात नही होती कि दूसरे लोग बुरा इरादा रखते हो। द्वेष मानते हो या गिराने, डराने के लिए मिले हो पर दूसरो के साथ मिलने-जुलने, आत्मीयता विकसित करने की सामर्थ्य भीतर से टूट जाती है तो मन की बात किसी के सामने प्रकट करने की हिम्मत नही रहती। हौसला पस्त हो जाता है और मिलने पर यही डर बना रहता है कि न जाने कोई क्या पूछ बैठे ? उसका उत्तर अपने से बने या नही ? कुछ उत्तर दिया जाय तो उपहास या विरोध तो न होने लगे ?

यो अकारण कोई किसी से लड़ता नही और न तिरस्कार की दृष्टि से मिलता-जुलता ही है। सभी को विचारो का आदान-प्रदान करने की अपनी कहने दूसरे की सुनने की इच्छा होती है क्योंकि वह मनोरंजन का सुगम और अच्छा तरीका है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि सामने वाले भी मिलनसार हो। वह अकारण दोषी की तरह झेपता-झिझकता न हो। अन्यथा उपेक्षा दिखाने पर, दबे-दबे, धीमे-धीमे शब्दो मे कुछ उत्तर देने मे अपनी ओर से वार्तालाप न करने से दूसरा आदमी भी खीझता नही तो कम से कम इतना तो करता ही है कि लोकाचार की सामान्य वार्ता करने के उपरान्त अपना मुख मोड़ ले और किसी से बात करने लगे। यह स्वाभाविक भी है, पर वह झेपू व्यक्ति इसे भी अपनी उपेक्षा या पराजय मानता है और इस मिलन पर कोई प्रसन्नता व्यक्त नही करता।

देहाती परम्परा के अनुसार नव वधुओ को कई दिन तक घूँघट निकालकर चुपचाप किसी कोने मे पीठ फेर कर बैठा रहना पड़ता है। कुछ कहना हो तो इतने धीमे शब्दो मे, अति संक्षेप में या इशारे से अपनी बात कहनी

है। पुरातन पंथी वृद्धाएँ इस संकोचशीलता को सराहती भी है और ऊँचे कुल-खानदान की बात कर उसे सराहती है। कई पुरुष भी ऐसी ही मन.स्थिति के होते है, संकोचशील या डरपोक। इससे सर्वत्र अजनवी वातावरण ही दिखते और परिचित भी अपरिचित जैसे लगते है और खुलकर वार्तालाप करते हुए उन्हे संकोच सताता है। अपनी व्यथा एवं समस्या तक मुँह खोलकर कह नही पाते फिर दूसरो का परामर्श या समाधान प्राप्त करने का तो प्रश्न ही नही उठता।

आमतौर से अशिक्षित महिलाओ में यह दोष उन क्षेत्रो मे अधिक पाया जाता है, जहाँ घूँघट-पर्दे का रिवाज अधिक होता है। वे घुटती रहती है, पर अपनी कठिनाइयो को कह नही पाती। लगाये गये दोषारोपणो को भी निर्दोष होते हुए सुनती रहती है। उत्पीड़न-शोषण भी सहती है, पर आँसू बहाने के और चुप रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह पाती। चुप रहना भी अर्ध स्वीकृति मानी जाती है जहाँ दोषारोपण पर सर्वथा चुप रहना—शालीनता का चिन्ह माना जाता है। वहाँ उससे यह भी प्रकट होता है कि आक्षेप सही है अन्यथा सफाई क्यो नही दी गई। ऐसी महिलाओ पर गुण्डे-बदमाश भी घात लगाते और छेड़खानी करने मे नही चूकते क्योंकि उन्हे यह भय नहीं रहता कि विरोध का सामना करना पड़ेगा। असहाय भेड़-बकरियो की तरह हर कोई उन्हे सताने को बैठा रहता है।

ठीक यही बात पुरुषो के सम्बन्ध मे भी है। कोई चापलूस उन्हे आध्यात्मिक, दार्शनिक, सज्जन, गम्भीर आदि भी कह सकते है, पर असल मे उन्हे मूर्ख, प्रतिभाहीन और अयोग्य ही समझा जाता है। निरर्थक वाचालता अपनाने वाले भी अपना मूल्य महत्वपूर्ण व्यक्तियो की आँखो मे गिरा लेते है पर यह भी स्पष्ट है कि डरपोक और अनावश्यक संकोचशील अपनी योग्यता मे कमी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते है और जहाँ जाते है, वही घाटा उठाते है। असामाजिक, गैर मिलनसार व्यक्तियो से कोई प्रसन्न नही रहता। उन पर दुराव या दोष लगता है और चाहते हुए भी कुछ परामर्श या सहयोग दे सकने की स्थिति तक नही पहुँच पाता। इस प्रकार यह आदत मनुष्य को पग-पग पर नीचा दिखाने वाली ही सिद्ध होती है। ऐसे लोग जीवन मे कभी महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित नही कर सकते। भले ही वे भाग्य को, समय को या सम्बन्धियो को इसके लिए दोषी ठहराते रहे। अस्तु जिन्हे भी इस व्यथा ने घेर लिया हो, उन्हे इसके दुष्परिणाम समझने चाहिए और धीरे-धीरे मिलनसारी की, वार्तालाप की और हँसने-हँसाने की आदत डालनी चाहिए। अपनी कहने और दूसरे की सुनने वाले सहज ही अपने मित्र बढ़ा लेते है और शत्रुता की लकीरो को धोकर सहज ही साफ कर देते है।

उससे अगला चरण है—भयाक्रान्त रहने का। इसकी मानसिक रोगो मे भी गणना होती है और उपचार के लिए चिकित्सको, मनोविज्ञानियो एवं भूत झाड़ने वाले ओझाओं का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। इस भयाक्रान्त मन:स्थिति को चिकित्सको की भाषा मे 'फोबिया' कहते है। सनक की तुलना अधिक कष्टप्रद मानते है। सनकी व्यक्ति कल्पना करता है और बिना प्रमाण की, खोजबीन की आवश्यकता समझे, अशुभ मान्यताये गढ लेता है और उसी दुराग्रह के कारण अपना और दूसरो का अनर्थ करता है। उन पर किसी के समझाने का भी असर नही पड़ता। ऐसे लोगो की अर्ध-विक्षिप्तो मे गणना होती है। सनकी लोग उन्मादियो की तरह बिना आगा-पीछा सोचे कुछ भी भला-बुरा कर सकते है। वे किसी की बात पर ऐसा भरोसा भी कर सकते है जैसा कि अन्ध-विश्वासी करते है। आवेश उतरने पर उन्हे पछताते, सिर धुनते देखा गया है।

'फोबिया' भयाक्रान्त मन स्थिति के रोगी हर समय डरते-रहते है और कारण न होने पर भी कल्पना के सहारे गढ लेते है। ऐसे लोग वयस्क होते हुए भी अन्धेरे मे उठकर पेशाब तक नही जा सकते। चूहो की खट-खट उन्हे चोरो की सेंध लगाने जैसी प्रतीत होती है। झुरमुट या पेड़ की हिलती डालियाँ भूत-चुड़ैलो जैसी लगती है। ऐसे लोग ज्योतिषियो के चंगुल मे आसानी से फँस जाते है। डर का लाभ उठाकर ग्रह शान्ति करने वाले या भूत भगाने वाले उनकी उलटे उस्तरे से हजामत बनाते रहते है।

भयाक्रान्त के मन मे निरन्तर आक्रमण, प्रतिशोध और विश्वासघात छाया रहता है। वे अकारण अपना जीवन भार बना लेते है और मित्रो पर भी शत्रुओ जैसे आरोप लगाते है। भविष्य उन्हे कठिनाइयो और विपत्तियो से भरा हुआ दीखता है।

इस मन स्थिति को अपने भीतर विवेकशीलता, यथार्थवादिता, साहसिकता अपनाकर दूर किया जा सकता है। यह कार्य भले ही स्वयं कर लिया जाय या किसी विचारशील का आश्वासन, प्रोत्साहन उपलब्ध कर लिया जाय।

आत्म-विश्वास ही सफलता का मूल-मन्त्र

स्वामी रामतीर्थ कहते थे—"धरती को हिलाने के लिए धरती से बाहर खड़े होने की आवश्यकता नही है, आवश्यकता है आत्मा की शक्ति को जानने-जगाने की।" इस उक्ति मे आत्मा की शक्ति की उस महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, जिसका दूसरा नाम आत्म-विश्वास है। जिसका साक्षात्कार करके कोई भी व्यक्ति अपने परिवार मे तथा अपने मे आशातीत परिवर्तन

कर सकता है। विवेकानन्द, बुद्ध, ईसा, सुकरात और गाँधी की प्रचण्ड आत्म-शक्ति ने युग के प्रवाह को मोड़ दिया। अभी हाल के स्वतन्त्रता सग्राम मे महात्मा गाँधी ने सशक्त ब्रिटिश साम्राज्य की नींव उखाड़ दी। उन्होंने अपनी दृढ संकल्प शक्ति तथा आत्म-विश्वास के सहारे अँग्रेजो को भारत छोड़ने पर विवश किया। स्वामी विवेकानन्द एवं रामतीर्थ जब संन्यासी का वेश धारणकर अमेरिका गये तो उपहास के पात्र बने किन्तु बाद मे उन्होंने आत्म-विश्वास के सहारे विश्व को जो कुछ दिया वह अद्वितीय है।

आत्म-विश्वास के समक्ष विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति झुकती रहेगी। इसी आत्म-विश्वास के सहारे आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य उत्पन्न होता है तथा अजस्र शक्ति के स्रोत का द्वार खुल जाता है। कठिन परिस्थितियो एवं हजारो विपत्तियो के बीच भी मनुष्य आत्म-विश्वास के सहारे आगे बढ़ता जाता है तथा अपनी मजिल पर पहुँचकर रहता है।

मानव जाति की उन्नति के इतिहास मे महापुरुषो के आत्म-विश्वास का असीम योगदान रहा है। भौतिक दृष्टि से तात्कालिक असफलताओ को शिरोधार्य करते हुए भी उन्होंने विश्वास न छोड़ा और अभीष्ट सफलता प्राप्त की। आत्म-विश्वास का जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। लौकिक एवं अलौकिक सफलताओ का आधार यही है। उसके सहारे ही निराशा मे आशा की झलक दीखती है। दुःख मे भी सुख का आभास होता है। इससे बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न किए जा सकते है, किए गये है। चीन की दीवार, मिस्र के पिरामिड, पनामा नहर एवं दुर्गम पर्वतो पर विनिर्मित सड़के व भवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं।

वस्तुतः समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियो का आधार आत्म-विश्वास ही है। इसके अभाव मे अन्य सारी शक्तियाँ सुप्तावस्था मे पड़ी रहती है। जैसे ही आत्म-विश्वास जाग्रत होता है, अन्य शक्तियाँ भी उठ खड़ी होती है और आत्म-विश्वास के सहारे असभव समझे जाने वाले कार्य भी आसानी से पूरे हो जाते है।

वैयक्तिक जीवन मे भी आत्म-विश्वास ही सपूर्ण सफलताओ का आधार है। विश्वास के अभाव मे ही श्रेष्ठतम उपलब्धियो से लोग वंचित रह जाते है। असफलताओ का कारण है, अपनी क्षमता को न पहचान पाना और अपने को अयोग्य समझना। जब तक अपने को अयोग्य, हीन, असमर्थ समझा जायेगा, तब तक सौभाग्य एवं सफलता का द्वार बन्द ही रहेगा।

व्यक्ति जब अपने अन्दर छिपी हुई शक्तियो के स्रोत को जान लेता है, तो वह भी देव तुल्य बन जाता है। विश्वास के जाग्रत होते ही आत्मा मे छुपी हुई शक्तियाँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। हमारे अन्दर के श्रेष्ठ विचार महत्वपूर्ण कार्य के रूप मे परिणित हो जाते हैं। इसके विपरीत अपने प्रति अविश्वास से तो शक्ति के स्रोत सूख जाते है और लोग भण्डार के होते हुए भी दीन तथा दरिद्र ही बने रहते है।

अपने विषय मे जैसी मान्यता बनायी जाती है, इसके द्वारा भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है। जो व्यक्ति अपने को मिट्टी समझता है, अवश्य कुचला जाता है। धूल पर सभी पाँव रखते है किन्तु अंगारो पर कोई नही रखता। जो व्यक्ति कठिनतम कार्यों को भी अपने करने योग्य समझते है, अपनी शक्ति पर विश्वास करते है, वे चारो ओर अपने अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेते है। जिस क्षण व्यक्ति दृढ़तापूर्वक किसी कार्य को करने का निश्चय कर लेता है, तो समझना चाहिए कि आधा कार्य पहले ही पूर्ण हो गया। दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति शेखचिल्ली के समान कोरी कल्पनाये मात्र किया करते है किन्तु मनस्वी व्यक्ति अपने संकल्पो को कार्यरूप मे परिणित कर दिखाते है।

विराट् वृक्ष की शक्ति छोटे-से बीज मे छिपी रहती है। यही बीज खेत मे पड़कर उपयोगी खाद-पानी प्राप्त करके बड़े वृक्ष के रूप मे प्रस्फुटित होता है, उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर भी समस्त संभावनाये एवं शक्तियाँ बीज रूप मे छिपी हुई है, जिनको विवेक के जल से अभिसिंचित कर तथा श्रेष्ठ विचारो की उर्वरा खाद देकर जाग्रत किया जा सकता है। यदि व्यक्ति अपने अन्दर की अमूल्य शक्ति एवं सामर्थ्य को जान लेने मे सफल हो जाय तो वह सामान्य से असामान्य और असामान्य से महान् हो सकता है।

मनुष्यो की संगठित शक्ति यदि श्रेष्ठ मार्ग पर चल पड़े तो विश्व का काया-कल्प ही हो सकता है। शक्ति के उदित होते ही असम्भव समझे जाने वाले कार्य भी सम्भव हो जाते है। जिनको पूर्ण हुए देखकर आश्चर्य का ठिकाना नही रहता।

मानव जीवन ईश्वर का दिया हुआ सर्वोपरि उपहार है। इसका महत्व एव गरिमा तभी है, जब व्यक्ति इन पगु विचारो को अपने मन मे स्थान न दे। उनसे शक्ति का प्रवाह बन्द हो जाता है। ईश्वरीय अनुदान एवं दी हुई शक्ति का महत्व जीवन के सदुपयोग मे है। अपने को उठाना तथा दूसरो को भी उठाने मे सहयोग करने मे ही मानव जीवन की सार्थकता है।

जब तक हम किसी कार्य मे अपनी समस्त शक्तियाँ लगा नही पाते, मन एकाग्र नही करते, तब तक वह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। कार्य जितना कठिन होता है, उसके लिए उतने ही दृढ विश्वास एवं योगी की तरह तन्मय होकर निरन्तर प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। ईश्वरीय सत्ता भी उन्ही की सहायता करती है, जो स्वय प्रयत्नशील है।

आत्म-विश्वास, सतत परिश्रम एव दृढ निश्चय के समक्ष कुछ भी असम्भव नही है। इन्ही गुणो के प्रकाश मे ऐतिहासिक कार्य ससार मे सम्पन्न हुए है। विद्वानो,

महापुरुषों, धर्म-प्रवर्तकों, योद्धाओं, सृजेताओं, शोधकर्त्ताओं के ज्वलन्त उदाहरण इस बात के साक्षी है कि उन्होंने आत्म-विश्वास के आधार पर क्या नहीं कर दिखाया ?

छोटी-छोटी बैटरियो की शक्ति शीघ्र ही समाप्त हो जाती है किन्तु जिन बत्तियो का सम्बन्ध पावर हाउस से होता है, वह निरन्तर जलती रहती हैं। आत्म-विश्वास वह सम्पर्क माध्यम है, जिसके सहारे अकूत शक्ति के भण्डार परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने विचारो को कार्यरूप मे परिणित करे। स्वार्थ से दूर रहकर अपनी दृष्टि का विकास करे। सद्गुणो को धारण कर इसी जीवन मे गौरवान्वित एवं सम्मानास्पद बना जा सकता है।

श्रेष्ठ मार्ग पर नियोजित व्यक्तियो की शक्तियाँ श्रेयस्कर परिणाम उपस्थित करती है, जिसे लोग भाग्य चमत्कार समझते है। वास्तव मे वे व्यक्ति की दृढ़ निष्ठा एवं आत्म-विश्वास का परिणाम ही होती है।

प्रतिकूलताओं से जूझें, सन्तुलन बनाये रखें

जीवन जीते समय खिलाड़ी द्वारा खेले जाने जैसी मन.स्थिति होनी चाहिए। आये दिन घटित होने वाले घटनाक्रमो को संसार मे निरन्तर चलने वाली अनुकूल-प्रतिकूल लहरो मे से एक मानना चाहिए। समुद्र मे ज्वार-भाटे आते रहते है, तालाबो मे लहरे उठती रहती हैं, पर इससे उनके अन्तराल मे स्थिरता ही बनी रहती है, कोई विक्षेप नही होता। उसी प्रकार समय-समय पर आती-जाती रहने वाली अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओ के सम्बन्ध मे भी मन को संयमित-संतुलित बनाये रहना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब बदलती परिस्थितियो की क्रमबद्धता को सामान्य माना जाये, उन्हे असामान्य होने का महत्व न दिया जाये।

मनोवैज्ञानिक जैम्स का कथन है कि "यह सम्भव नही कि सदा अनुकूलता ही बनी रहे, कभी प्रतिकूलता न आये।" दिनमान की कितनी ही महत्ता क्यो न हो, पर उसका भी संध्याकाल मे अवसान होता ही है। दिन के समय जो प्रकाश था, ऊष्मा का जैसा प्रवाह था, उस सबका रात्रि का आगमन होते ही अन्त हो जाता है। परिस्थिति सर्वथा विपरीत बन जाती है, सघन अन्धकार छा जाता है—इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता। अन्धकार से कितना ही डरा जाय और कोसा जाय वह नियतिक्रम के अनुरूप आता ही है। उस आगमन को रोकने के लिए सिर खपाने की अपेक्षा यही उचित है कि अपनी गतिविधियो मे ऐसा हेर-फेर कर लिया जाय जो परिवर्तित परिस्थितियो के साथ तालमेल बिठा सके।

रात्रि को आमतौर से सभी सो जाते है, इस विवशता के पीछे एक लाभ भी है कि दिनभर के किए हुए श्रम की थकान मिटती है। दूसरे दिन नई स्फूर्ति के साथ काम करने का अवसर मिलता है। दिन छिपने पर सभी घर लौट आते है और परिवार के साथ रहने, मौज मनाने का अवसर प्राप्त करते है। रात्रि निरर्थक, असुविधाजनक और डरावनी प्रतीत होती है, तो भी विचार करने पर प्रतीत होता है कि उसकी भी अपनी उपयोगिता और आवश्यकता थी। प्रकृति ने इसी आधार पर उसका अहर्निश चलते रहने वाला चक्र घुमाया है।

ऋतु परिवर्तन मे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्नता रहती है। वर्षा के दिनो वाली स्थिति सर्दी मे नही रहती, जो दृश्य सर्दी के दिनो मे दृष्टिगोचर होता है वह गर्मी मे नहीं रहता। बसन्त और शरद की परिस्थितियाँ अपने ढंग की अनोखी है। उस समय जैसी परिस्थितियाँ अन्य किसी ऋतु के साथ नही बनती। हो सकता है किसी को कोई ऋतु अनुकूल पड़ती हो किसी को प्रतिकूल। बुवाई के दिनो मे वर्षा उपयोगी लगती है और कटाई के दिनो गरम मौसम सुहाता है। कुम्हार पूरे साल सूखा पसद करता है और माली का उद्यान तब उमँगता है, जब बदली छाई रहे, बूँदाबाँदी होती रहे। भावुको की उमंग बसन्त मे इतराती है। काँस फूलने से शरद मे समूचा क्षेत्र सुहावना लगता है। यह पसदगियाँ किन्ही को कितनी ही प्रिय क्यो न लगती हो, पर उनका सदा बने रहना सम्भव नही। थोड़े-थोड़े समय के लिए ये अपनी छटा दिखाती है और फिर दूसरे दौर मे बदल जाती है। उन्हे इस बात की परवाह नही रहती कि उनका आगमन-पलायन किनको प्रिय लगता है और किनको अप्रिय ? नियति का क्रम नही बदला जा सकता, अपने को ही उस परिवर्तन के अनुरूप ढालना-बदलना पड़ता है।

खेल-खिलाड़ी निरन्तर हारते-जीतते रहते है। ताश-शतरज मे भी हार-जीत होती रहती है, किन्तु खेलने वाले उसकी परवाह नही करते। चेहरे पर शिकन तक नही आने देते, जो इतना कर पाते है, उन्ही को खेल का आनन्द आता है। जो हर हार पर उदास होते है और जीत पर इतराते है, उनका खिलाड़ी होना व्यर्थ है।

मध्यवर्ती सन्तुलन स्वाभाविक स्थिति है। तापमान बढ़ जाने से ज्वर माना जाता है। शरीर ठण्डा रहे तो वह भी शीत प्रकोप माना और चिन्ताजनक समझा जाता है। रक्तचाप बढ़ने की ही तरह उसका घटना भी रुग्णता का चिन्ह है। किसी अनुकूलता से लाभान्वित होने पर हर्षातिरेक मे उछलने लगना भी असगत है और असफलता की प्रतिकूलता का सामना करने पर विषाद मे डूब जाना और सिर धुनना भी अविकसित-अनगढ़ व्यक्तित्व का चिन्ह है। इन असंतुलनो से बचा ही जाना चाहिए।

सभी व्यक्ति इच्छानुकूल आचरण करेगे—यह आशा रखना व्यर्थ है। सभी अपना स्वतत्र व्यक्तित्व रखते है। जन्म-जन्मान्तरो के सचित भले-बुरे सस्कार साथ लेकर

आते है। पलने और विकसित होने की परिस्थितियो मे भिन्नता रहती है। किसी पेड़ के पत्तो का गठन आपस मे मिलता-जुलता है, पर उनमे भिन्नता अवश्य रहती है। हर आदमी के अँगूठे के निशानो मे अन्तर होता है। एक आकृति-प्रकृति के दो मनुष्य कहीं नही देखे गये। भिन्नता ही इस संसार की विशेषता है। उसके आधार पर बहुत तरह से सोचने और स्थिति के अनुरूप बदलने, व्यवहार करने की कुशलता आती है। मनुष्य बहुज्ञ, बहुश्रुत, बहुकौशल सम्पन्न इसी आधार पर बनता है। उतार-चढ़ावो का सामना करते रहने से ही व्यावहारिकता मे निखार आता है।

हल्के बर्तन चूल्हे पर चढ़ते ही आग-बबूला हो जाते है और उसमे डाले गये पदार्थ उफनने लगते है, पर भारी-भरकम बर्तनो मे जो पकता है, उसकी गति तो धीमी होती है, पर परिपाक उन्ही मे ठीक से बन पड़ता है। हमे बबूले की तरह फूलना, फुदकना और इतराना नही चाहिए—ऐसी रीति-नीति स्थिर नहीं रहती, वह कुछ क्षण मे टूट-फूट जाती है। प्रवाह झरने जैसा होना चाहिए जो नियत क्रम से नियत दिशा मे प्रवाहमान रहे। तभी वह अपने स्वरूप को सही बनाये रह सकता है, सही रीति-नीति से सही काम कर सकता है।

चचलता, व्यग्रता की मन.स्थिति मे सही निर्धारण और सही प्रयास करते-धरते नही बन पड़ता। असंतुष्ट और उद्विग्न व्यक्ति जो सोचता है, एकपक्षीय होता है और जो करता है, उसमे हड़बड़ी का समावेश रहता है। ऐसी मन स्थिति मे किये गये निर्धारण या प्रयास प्राय: असफल ही होते है, उन्हे यशस्वी बनने का अवसर नही मिलता।

आवेश या अवसाद दोनो ही व्यक्ति को लड़खड़ाती स्थिति मे धकेल देते है। ऐसी दशा मे निर्धारित कार्यों को पूरा कर सकना, साथियो के साथ उपयुक्त तालमेल बिठाये रह सकना कठिन जान पड़ता है। प्रतिकूलताये बाह्य परिस्थितियो के कारण जितनी आती है, उससे कही अधिक निज का असन्तुलन काम को बिगाड़ता है। व्यक्ति को उपहासास्पद, अस्थिर, अप्रामाणिक बनाता है।

सबसे बड़ी बात यह है कि उत्तेजना शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती है। आक्रोश मे भरे हुए उद्विग्न व्यक्ति न चैन से रहते है, न दूसरो को रहने देते है। रक्त उबलता रहता है, विचार क्षेत्र मे तूफान उठता रहता है। फलत: जो व्यवस्थित था, वह भी यथास्थान नही रह पाता। पाचन तन्त्र बिगड़ता है, रक्त प्रवाह मे व्यतिरेक उत्पन्न होता है। असंतुलित मस्तिष्क अनिद्रा, अर्द्ध-विक्षिप्तता जैसे रोगो से घिरकर स्वास्थ्य सन्तुलन को गड़बड़ाता है। हमे हँसती-हँसाती स्थिति मे ही रहना चाहिए एव हर परिस्थिति के लिए स्वयं को तैयार रखना चाहिए।

स्वयं को दुर्भाग्यग्रस्त मत मानिए

प्रकृति के नियमो मे एक रहस्य बड़ा ही विचित्र, अद्भुत एवं रहस्यपूर्ण है। वह यह है कि हर विपत्ति के बाद उसकी विरोधी सुविधा प्राप्त होती है। जब मनुष्य बीमारी से उठता है, तो बड़े जोरो की भूख लगती है। निरोगता शक्ति बड़ी तीव्रता से जाग्रत होती है और जितनी थकान बीमारी के दिनों आई थी, वह तेजी के साथ पूरी हो जाती है। ग्रीष्म की जलन को चुनौती देती हुई वर्षा की मेघमालाये आती हैं और धरती को शीतल, शान्तिमय हरियाली से ढक देती हैं। हाथ-पैरो को अकड़ा देने वाली ठण्ड जब उग्र रूप से अपना जौहर दिखा चुकती है तो उसकी प्रतिक्रिया से एक ऐसा मौसम आता है, जिसके द्वारा यह शीत सर्वथा नष्ट हो जाता है। रात्रि के बाद दिन का आना सुनिश्चित है, अन्धकार के बाद प्रकाश का दर्शन भी अवश्य ही होता है। मृत्यु के बाद जन्म भी होता ही है। रोग, घाटा, शोक आदि विपत्तियाँ चिरस्थायी नही है, वे आँधी की तरह आती है और तूफान की तरह चली जाती है। उनके चले जाने के पश्चात् एक दैवी प्रतिक्रिया होती है, जिसके द्वारा उस क्षति की पूर्ति के लिए ऐसा विचित्र मार्ग निकल आता है, जिस बड़ी तेजी से उस क्षति की किसी न किसी प्रकार पूर्ति हो जाती है, जो आपत्ति के कारण हुई थी।

एक बार नष्ट हुई वस्तु फिर ज्यो की त्यो उसी रूप मे नही आ सकती यह सत्य है, परन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य को सुसम्पन्न, सुखी बनाने वाले और भी कितने ही साधन है और उन नये साधनो मे से कई एक उस क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्राप्त होते है—हो सकते है। जब घास को हम बार-बार हरी होते हुए देखते है, जब अन्धकार को हम बार-बार नष्ट होते देखते है, जब रोगियो को पुनः आरोग्य लाभ करते देखते है तो कोई कारण नही कि विपत्ति के बाद पुनः सम्पत्ति प्राप्त होने की आशा न की जाय। जो उज्ज्वल भविष्य की आशा नही करता, जिसे यह विश्वास नहीं कि मुझे पुनः अच्छी स्थिति प्राप्त होगी—वह नास्तिक है। जिसे ईश्वर की दयालुता पर विश्वास न होगा, वही ऐसा सोच सकता है कि मेरा भविष्य सदा के लिए अन्धकार मे पड़ गया। जो पर्वत को राई कर सकता है उसकी शक्ति पर यह भी भरोसा करना चाहिए कि वह राई को पर्वत भी कर सकता है, जो आज रो रहा है, उसे यह न सोचना चाहिए कि उसे सदा ही रोता रहना पड़ेगा। निराशा परमात्मा के परमप्रिय पुत्र को किसी प्रकार शोभा नहीं देती।

जब किसी की एक टाँग टूट जाती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि एक टाँग से चलना तो दूर, खड़ा रहना भी मुश्किल है—अब उससे किसी प्रकार चला-फिरा न जा सकेगा। पर जब अधीरता छोड़कर विवेक से काम लिया जाता है तो कामचलाऊ तरकीब

निकल आती है। लकड़ी का पैर लगाकर वह लँगड़ा आदमी अपना काम करने लगता है—इसी प्रकार अन्य कोई अंग-भंग हो जाने पर भी उसकी क्षतिपूर्ति किसी अन्य प्रकार से हो जाती है और फिर कुछ दिन बाद उस अभाव का खटकना बन्द हो जाता है।

'मैं पहले इतनी अच्छी दशा मे था, अब इतनी खराब दशा मे आ गया'—यह सोचकर रोते रहना और अपने चित्त को क्लेशान्वित बनाये रहना कोई लाभदायक तरीका नही। इससे लाभ कुछ नही होता, हानि अधिक होती है। दुर्भाग्य का रोना रोने से, अपने भाग्य को कोसने से मन मे एक प्रकार की आत्महीनता का भाव उत्पन्न होता है। मेरे ऊपर ईश्वर का कोप है, देवता रूठ गये है, भाग्य फूट गया है—इस प्रकार का भाव मन मे आने से मस्तिष्क की शिरायें शिथिल हो जाती हैं। शरीर की नाड़ियाँ ढीली पड़ जाती है, आशा और प्रसन्नता की कमी के कारण नेत्रो की चमक मन्द पड़ जाती है। निराश व्यक्ति चाहे किसी भी आयु का क्यो न हो, उसमे बूढ़ो के से लक्षण प्रकट होने लगते है, मुँह लटक जाता है, चेहरे पर रूखापन और उदासी छाई रहती है, निराशा और नीरसता उसकी हर एक चेष्टा से टपकती है। इससे आदमी अपने शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के स्वास्थ्य को खो बैठते है। मन्दाग्नि, दस्त साफ न होना, दाँत का दर्द, मुँह के छाले या सोते समय मुँह से लार बहना, सिर दर्द, जुकाम, बाल पकना, नीद कम आना, डरावने स्वप्न दीखना, पेशाब मे पीलापन व गदलापन, मुँह या बगलो से अधिक बदबू आना, हाथ-पैरो मे हड़-फूटन, दृष्टि कम होना, कान मे सनसन होना—जैसे रोगो के उपद्रव आये दिन खड़े रहते है। निराशा के कारण शरीर की अग्नि मन्द हो जाती है, अग्नि की मन्दता से उपरोक्त प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते है। शनैः-शनैः स्वास्थ्य को घुलाता हुआ वह व्यक्ति अल्पायु मे ही मृत्यु के मुख मे चला जाता है।

जो व्यक्ति अपने आपको दुर्भाग्यग्रस्त मान लेते है, उनमे मानसिक शिथिलता भी आ जाती है। कपाल की भूरी मज्जा कुम्हला जाती है, उसमे से चिकनाई कम हो जाती है; विचार शक्तियो का सचालन करने वाले नाड़ी तन्तु कठोर और शुष्क हो जाते है, उनमे से जो विद्युत धारा बहा करती है, उसका प्रवाह नाममात्र का रह जाता है। स्फुरण, कम्पन, सकुचन, प्रसारण सरीखी वे क्रियाये जिनके द्वारा मानसिक शक्तियो मे स्थिरता एवं वृद्धि होती है, बहुत ही धीमी पड़ जाती है। फल यह होता है कि अच्छा-भला मस्तिष्क कुछ ही दिन मे अपना काम छोड़ बैठता है, उसकी क्रियाशक्ति लुप्त हो जाती है।

कहते है कि विपत्ति अकेली नही आती, वह अपने साथ और भी अनेक विपत्तियो का जंजाल लाती है। एक के बाद दूसरी आपत्ति सिर पर चढ़ती है—यह बात असत्य नही है। निस्सदेह एक कष्ट के बाद दूसरे कष्टो का भी सामना करना पड़ता है। इसका कारण यह है कि विपत्ति के कारण मनुष्य निराश, दु:खी और शिथिल हो जाता है। भूतकाल का स्मरण करने, रोने-धोने और भविष्य का अन्धकारमय कल्पना चित्र तैयार करने मे ही उसका मस्तिष्क लगा रहता है। समय और शक्ति का अधिकाश भाग इसी कार्य मे नष्ट होता रहता है। जिससे पुन: सुस्थिति प्राप्त करने की दिशा मे सोचने और साहसपूर्ण, मजबूत कदम उठाने की व्यवस्था नही बनती। उधर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट होने लगता है। एक ओर स्वभाव के बिगड़ जाने के कारण विरोधी बढ़ जाते है और मित्रो मे कमी हो जाती है। सब ओर असावधानी पर असावधानी होने लगती है। दुष्टता की सत्ता का ऐसे ही अवसरो पर दाँव लगता है, मौका देखकर उनके बाण भी चलने लगते है। निर्बल एवं अव्यवस्थित-मनोस्थिति का होना मानो विपत्तियो को खुला निमन्त्रण देना है। मरे हुए पशु की लाश पड़ी देखकर दूर आकाश मे उड़ते हुए चील-कौवे उसके ऊपर टूट पड़ते है। इसी प्रकार निराशा से शिथिल और चतुर्मुखी अव्यवस्था से ग्रस्त उस अर्धमृत मनुष्य पर आपत्ति और कष्टो के चील-कौए टूट पड़ते है और इस उक्ति को चरितार्थ करते है कि विपत्ति अकेली नही आती।

आकस्मिक विपत्ति का सिर पर आ पड़ना मनुष्य के लिए सचमुच बड़ा दु:खदायी है। इससे उसकी बड़ी हानि होती है किन्तु उस विपत्ति की हानि से अनेको गुनी हानि करने वाला एक और कारण है वह है—'विपत्ति की घबराहट।' विपत्ति कही जाने वाली घटना—चाहे वह कैसी ही बड़ी क्यो न हो किसी का अत्यधिक अनिष्ट नही कर सकती, वह अधिक समय ठहरती भी नही, एक प्रहार करके चली जाती है परन्तु 'विपत्ति की घबराहट' ऐसी दुष्टा-पिशाचिनी है कि वह जिसके पीछे पड़ती है उसके गले से खून की प्यासी जौक की तरह चिपक जाती है और जब तक उस मनुष्य को पूर्णतया नि:सत्व नही कर देती तब तक उसका पीछा नही छोड़ती। विपत्ति के पश्चात् आने वाले अनेकानेक जंजाल इस घबराहट के कारण ही आते है। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुस्थिति का सत्यानाश करके वह मनुष्य की जीवन शक्ति को चूस जाती है।

आकस्मिक विपत्तियो से मनुष्य नही बच सकता। राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, प्रताप, शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह जैसी आत्माओ को विपत्ति ने नहीं छोड़ा तो अन्य कोई उसकी चपेटो से बच जायेगा—ऐसी आशा न करनी चाहिए। इस सृष्टि का विधि-विधान कुछ ऐसा ही है कि हानि-लाभ का चक्र हर एक के ऊपर चलता रहता है, फिर भी सृष्टि का क्रम रुकता नही। प्रतिकूलताये आती है, जाती है। उनसे न घबराकर सामंजस्यपूर्ण जीवन जीना ही बुद्धिमत्ता है।

प्रतिकूलताएँ कभी बाधक नहीं बनतीं

अल्फ्रेड एडलर के अनुसार मानवी व्यक्तित्व विकास में कठिनाइयो, प्रतिकूल परिस्थितियो का होना आवश्यक है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक—'ह्वाट लाइफ शुड मीन टू यू' मे उन्होने लिखा है कि—"यदि हम किसी एक ऐसे व्यक्ति अथवा मानव समाज के विषय मे यह कल्पना करे कि वे इस स्थिति मे पहुँच गये है, जहाँ अब कोई कठिनाइयाँ नही रही तो हमारे विचार से ऐसे वातावरण मे मनुष्य का विकास रुक जायेगा और जीवन आकर्षणहीन रह जायेगा। ऐसी स्थिति मे भविष्य मे प्रतीक्षा योग्य उत्साहवर्धक कोई बात नही रह जायेगी। सब कुछ पूर्व निश्चित होने से तत्परता का, प्रयास का स्थान जड़ता ले लेगी। ऐसी दशा मे न तो ज्ञान का विकास होगा और न ही विज्ञान का। कला और धर्म जो अप्राप्य ध्येयो की कल्पना हमारे सामने रखकर हमे प्रफुल्लित रखते है, सब अर्थहीन हो जायेगे। वस्तुतः हम सौभाग्यशाली है कि हमारा जीवन कष्ट-कठिनाइयो से भरा है, उतना सरल नही है।'

बहुत-से लोग कठिनाइयो से बचने के लिए दूसरो को अपनी ओर आकृष्ट करने और अपना काम बनाने के अनेकानेक तरीके अपनाते है, पर प्राय. देखा यही जाता है कि अन्ततः उन्हे निराशा ही हाथ लगती है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिक ग्रीनवी ने अपनी पुस्तक 'सुपर पर्सनलिटी' मे लिखा है कि 'यह मान्यता सही नही है कि लोगो को प्रभावित करने के लिए आकर्षक शरीर सरचना, बढ़ी-चढ़ी विद्वता, प्रचुर सम्पदा, ठाठ-बाट की साज-सज्जा या किसी विशेष प्रकार की कला-कुशलता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। यह विशेषताएँ दूसरो का ध्यान भर आकर्षित करती है, बहुत हुआ तो कोई इनसे किसी प्रकार लाभान्वित होने के लिए पीछे लग सकता है, पर जब वैसा कुछ हाथ लगते दीखता नही, तो निराश होते ही मुँह मोड़ लिया जाता है। वैभव से अपना ही स्वार्थ सिद्ध हो सकता है, दूसरे जिन्हे उनसे कोई लाभ मिलने वाला नही है—देर तक आकर्षित नही रह सकते।'

वस्तुतः जिसका दूसरो पर प्रभाव पड़ता है, वे *सद्गुणो एव सत्प्रवृत्तियो से युक्त विभूतियाँ होती है।* उन्हे जहाँ भी पाया जाता है, उनके प्रति अन्तःकरण मे सहज श्रद्धा उमड़ पड़ती है। सज्जनता, नम्रता, उदारता और शिष्टता का अर्थ है—परिपक्व व्यक्तित्व। खिला हुआ फूल अपनी सुन्दरता और सुगन्ध से दर्शको को सहज प्रसन्नता प्रदान करता है। सद्गुणो की विभूतियो से भरे-पूरे व्यक्ति भी इसी प्रकार सहज श्रद्धा के पात्र बनते है। सही तरीके से प्राप्त की गई सफलता सर्वत्र सराही जाती है क्योकि इनसे प्राप्त करने वाले की लगन और तत्परता का परिचय मिलता है। इनकी शालीनता देखकर भी यही अनुमान लगता है कि यहाँ आत्म-परिष्कार के लिए दूरदर्शिता से भरी-पूरी सतत साधना की गई है।

विभिन्न स्तर की सफलताओ मे सर्वोपरि है—सामान्य स्तर के अनगढ़ व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बना सकना है। मूर्तिकार पत्थर को गढ़ते और प्रतिमा बनाते है, चित्रकार कागज और कलम की सहायता से हृदयग्राही चित्र विनिर्मित करते है। वादक बंसरी से राग-रागनियो की स्वर लहरी बहाते है। *कलाकारिता के क्षेत्र मे सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावोत्पादक कला* है, पेट-प्रजनन भर मे व्यतीत होते रहने वाले जीवन को उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श गतिविधियो का अभ्यस्त कर लेना। इस सफलता के श्रेयाधिकारियो को जन-जन का सहज सम्मान मिलना ही चाहिए।

पेड़ की शीतल छाया और सुषमा मे बैठने वालो को ही नही, उसे देखने वालो को भी प्रसन्नता होती है और शान्ति मिलती है। इसी प्रकार सहृदयता, नीतिमत्ता, साहसिकता, सज्जनता, नम्रता, उदारता, सुरुचि, सुव्यवस्था जैसे सद्गुणो का जहाँ भी विस्तार दीखता है वहाँ सम्पर्क मे आने वाले हर किसी की सहज श्रद्धा उमगने लगती है।

एल० एच० स्नीडर अपने ग्रन्थ 'बिहेवियोरल साइकॉलाजी' मे लिखते है कि "विचारो और कार्यों का स्तर सुनिश्चित होना चाहिए, तभी उन्हे निजी पुरुषार्थ का, उपलब्ध साधनो का परिपोषण मिलेगा और सफलता का द्वार खुलेगा। दूसरो का समर्थन-सहयोग भी प्रायः उन्ही को मिलता है, जिन्हे दृढ़ निश्चयी और प्रयास मे समग्र तत्परता जुटा सकने वाला समझा जाता है।

चंचल, उथले और अधूरे मन से किये जाने वाले काम ही प्राय. असफल होते है। ऐसा क्यो होता है ? अस्थिरता का कारण क्या है ? यह खोजने पर प्रतीत होता है कि सैद्धांतिक अपरिपक्वता ही चंचलता का प्रमुख कारण है। दृढ़ता उन निर्णयो मे नही हो सकती जो उथली स्वार्थ पूर्ति पर अवलम्बित है। लाभ की न्यूनाधिकता का प्रसंग सामने आते ही मन डगमगाने लगता है और एक काम को छोड़कर दूसरे को अपनाने लगता है।

आदर्शवादिता का आधार लोभ या लाभ नहीं, आत्म-सतोष एवं आत्म-कल्याण होता है। ऐसी दशा मे एक बार पकड़े हुए काम को इसलिए छोड़ने की *आवश्यकता नहीं* पड़ती कि उसे हटाकर दूसरा करने लगे तो अधिक लाभ मिलेगा। कोई काम न तो छोटा है न बड़ा, हर कार्य की गरिमा उसके पीछे काम करने वाली निष्ठा के साथ जुड़ी होती है। इस प्रकार छोटे दीखने वाले काम भी सन्निहित सदाशयता को सुविस्तृत करने मे सहायक हो सकते है और बड़े दीखने वाले काम भी अन्तःक्षेत्र की निकृष्टता से प्रेरित होने पर सदाशयता के सवर्धन मे सर्वथा निष्फल रह सकते है। उच्चस्तरीय सिद्धांत अपनाकर किसी काम मे हाथ डालने पर उसने आत्म-सतोष का रसास्वादन होता है। फिर प्रतिक्रिया मे शिथिलता रहने पर भी उत्साह गिरने या मनोयोग घटने जैसी कोई बात नहीं होती।

आत्म-विश्वास और आत्मानुशासन ही उच्चस्तरीय कामो मे अन्त तक निष्ठा बनाये रहने में समर्थ होते है। आत्म-विश्वास श्रेष्ठ कामो की सफलता मे ही सुनिश्चित रह सकता है। ओछे और खोटे काम अन्त.करण मे ऐसा विश्वास जगने ही नही देते कि कार्य की सफलता एवं उपयोगिता मिल ही जायेगी या मिलने पर सराही ही जायेगी। यही कारण है कि ओछे मनोरथो से प्रेरित कार्य सदा कर्त्ता को अविश्वासी बनाये रहते है। उस अस्थिरता मे पूरे मनोयोग से काम नहीं हो पाता और न केवल सफलता संदिग्ध रहती है वरन् उसमे उदासी, निराशा एवं ऊब तक उत्पन्न हो सकती है। आये दिन काम बदलते रहने वालो मे अधिकांश आदर्शविहीन ही होते है। जिन्हे परिस्थितियो ने काम बदलने के लिए विवश-बाधित कर दिया, ऐसे अपवाद तो कम ही देखने को मिलते है।

दरबारी-बगीचो मे लगे कोमल पौधे तनिक-सी गर्मी-सर्दी पाते ही हिचकियाँ भरने लगते और दम तोड़ने लगते है। छुई-मुई किसी की उँगली छू जाने से ही सकुचाती, सिकुड़ती और मुरझाई दीखती है। किन्तु पर्वतो और रेगिस्तानो मे उगने वाले पौधे ऋतु प्रभावो की कठोरता को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे रहते हैं।

इसके विपरीत जिन्हे अभावो, प्रतिकूलताओ का सामना करना पड़ता है,वे अपने भीतर ऐसी क्षमता विकसित करते है, जो आगत कठिनाइयो का सामना करते हुए अस्तित्व की रक्षा कर सकने मे समर्थ हो सके। हिमाच्छादित पर्वतो पर उगने वाले पेड़ो को उस तरह पाला नही मारता जैसे कि मध्यम ताप वाले प्रदेशो मे तनिक-सी ठंड बढ़ते ही उनका सिकुड़ना-सूखना आरम्भ हो जाता है। रेगिस्तानी सूखे इलाको की तपती बालू और पानी की कमी मे भी कैक्टस आदि पौधे भली प्रकार हरे-भरे बने रहते हैं। उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले 'एस्किमो' बर्फ की मोटी परतो पर ही समूचा जीवन-यापन करते है। कठोर श्रम से आहार प्राप्त करने वाले वनवासी स्थिति के अनुरूप सुदृढ भी रहते है और अभ्यस्त तथा प्रसन्न भी।

कठिनाइयो से, प्रतिकूलताओ से घिरे होने पर भी जीवन का वास्तविक प्रयोजन समझने वाले व्यक्ति कभी निराश नही होते, वे हर प्रकार की परिस्थितियो मे अपने लक्ष्य से ही प्रेरणा प्राप्त करते तथा श्रेष्ठता के पथ पर क्रमश. आगे बढ़ते जाते है। वे संसार को संतुलित दृष्टि से देखते है व जीवन नौका खेते हुए इस सागर को पार कर जाते है।

दृष्टिकोण बदला तो सब कुछ बदल गया

यह ससार जिन तत्वो से बना है, उनमे भलाई-बुराई, नेकी-वदी, कुरूपता-सुन्दरता, अनुकूलता-प्रतिकूलता के परस्पर विरोधी स्तरो का समावेश है। इन दोनों ही परिस्थितियो से कोई बच नही सकता। समुद्र की बनावट ही ऐसी है कि उसमे ज्वार-भाटे आते रहते और हर वस्तु हिलती रहती है। परमाणुओ से लेकर सौर मण्डल और ब्रह्माण्ड मे कही स्थिरता नही। सर्वत्र हलचल की धूम है, इतना ही नही उसके साथ ही प्रिय-अप्रिय भी जुड़ा है। यदि अपने चिन्तन को मात्र अप्रिय निषेधात्मक पक्ष के साथ जोड़ा जाय तो दु:खदायी घटनाये ही स्मरण रहेगी और उन्ही का स्मरण बाद मे भी बना रहेगा। जो प्रिय एवं अनुकूल है, वह सरसरी नजर से देखने पर आँखो के आगे से निकल जायेगा, उसकी विशेषता और स्थिति भी अनुभव मे न आ सकेगी। निषेधात्मक चिन्तन के कारण जो श्रेष्ठ है, वह भी निकृष्ट प्रतीत होगा। रंगीन काँच का चश्मा पहन लेने पर सभी वस्तुएँ उसी रंग मे रंगी हुई दिखाई पड़ती है।

यदि अपना चुनाव अशुभ के पक्ष मे हो तो असंख्य लोगो मे असंख्यो प्रकार की बुराइयाँ दीख पड़ेगी। अपने साथ किसने क्या और कैसा दुर्व्यवहार किया है ? यदि इसकी स्मृति दौड़ाई जाय तो प्रतीत होगा कि संसार मे दानव स्तर के लोग ही रहते है और अनीतिपूर्ण अनाचार करने मे ही निरत रहते है। अपने को कब, कितने दु:ख भुगतने पड़े और दूसरो मे से किसको कितने दु:ख दिये ? इसकी गणना करने पर प्रतीत होगा है कि यह संसार सचमुच ही नरक है—भवसागर है। यहाँ से जितनी जल्दी, जिस प्रकार भी सम्भव हो छुटकारा पाना चाहिए। ऐसी मन:स्थिति मे जीवन भार रूप बन जाता है और उसका प्रभाव उद्विग्न-अशान्त बने रहने के रूप मे ही सामने आता है। यहाँ तक कि इस ऊबड़-खाबड़ दुनिया को बनाने वाले के प्रति भी आक्रोश उत्पन्न होता और भरपेट गाली देने को मन करता है। प्रतिकूलताएँ ही सर्वत्र छाई देखकर मनुष्य नास्तिक स्तर का बन जाता है, उसे कोई भी विश्वसनीय नही जँचता, सबके प्रति अविश्वास रहता है।

इसके विपरीत एक दूसरा दृष्टिकोण भी है, उसके अनुरूप अपनी दृष्टि बदल लेने पर समूचा दृश्य ही बदल जाता है और सुन्दरता, सज्जनता एवं सदाशयता का माहौल इतना बड़ा दीखता है, जिसे देखते हुए लगता है कि भलाई की भी कही कमी नही। ईश्वर ने ऐसी अद्भुत विशेषताओ वाला शरीर दिया, साथ ही जादू की पिटारी जैसा मन:संस्थान भी। अभिभावको और कुटुम्बियो की दुलार भरी उदारता की एक घटना का स्मरण किया जाय तो प्रतीत होगा कि वे औरों के लिए कैसे भी क्यो न हो, अपने लिए तो देवतातुल्य ही रहे है। मित्र, सहपाठियो का स्नेह-सौजन्य, अध्यापको का ज्ञानदान ऐसे पक्ष है, जिनकी उपलब्धि बिना वह स्थिति न आ पाती जो आज है।

पत्नी का सौजन्य और सेवाभाव यदि उदार दृष्टि से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वह किसी भी प्रकार ऐसा

नही है, जिसे देवोपम न माना जाय। घर को खुशी और किलकारियो से भर देने वाले बच्चो को, परिवार के अन्यान्य आश्रितजनो को सभी की सद्भावना मिलती है। समाज का ऐसा सुगठन है जिसमें आजीविका के साधन सहज ही उपलब्ध हो जाते है। दैनिक उपयोग की इतनी, इतने प्रकार की वस्तुये मिलती रहती है, जिनके सहारे प्रसन्नता और तृप्ति ही मिलती रहती है।

प्रकृति की ओर दृष्टि उठाकर देखा जाय तो चलते-फिरते खिलौनो जैसे पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, सरिता-सरोवर, पहाड़-वन, सूर्य-चन्द्र और तारागण, बादलो वाला आकाश, वृक्ष-वनस्पतियाँ सभी कुछ ऐसा है, जिसका मनोरम सौन्दर्य देखते-देखते मन नही भरता।

सत्प्रयोजनों मे सलग्न, चरित्रवान, उदारमना मनीषियो की खोज की जाय तो उनकी गाथाओ से इतिहास भरा पड़ा मिलेगा। आज भी उनकी कमी नही है। संख्या भले ही कम हो और वे निकट नही दूर रहते हो, किन्तु उनका अस्तित्व इतना अवश्य है कि प्रसन्नता व्यक्त की जा सके और सन्तोष की साँस ली जा सके।

तथ्य एक ही है कि अपना दृष्टिकोण किस स्तर का है ? उद्यान मे भौरे को सुगन्ध की मस्ती और मधुमक्खियो को शहद की मंजूषाएँ लटकती दीखती है, पर गुबरीला कीड़ा पौधो की जड़ो मे लगे हुए सड़े गोबर तक जा पहुँचता है और सर्वत्र दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध पाता है। एक बार गुरु ने दुर्योधन और युधिष्ठिर को एक ही गाँव मे भले और बुरे लोगो की सूची बना लेने के लिए भेजा। दुर्योधन को सभी दुष्ट और युधिष्ठिर को सभी सज्जन दीखे। वहाँ थे दोनो ही प्रकार के लोग, पर अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उनने उसी नजर से देखा तो उन्हे बहुलता अपनी खोजबीन के अनुरूप ही दिखाई दी।

संसार मे बुराइयाँ न हो सो बात नही है, पर वे ऐसी है कि उन्हे सुधारने के माध्यम से हम अपना पुरुषार्थ जगा सके, प्रगतिशीलता परिचय दे सके। अनीति न हो तो संघर्ष किससे किया जाय ? शौर्य-साहस प्रकट कर सकने का अवसर किस प्रकार आये ?

दुष्टता की उपेक्षा की जाय या उसे सहते रहा जाय, बढ़ने दिया जाय यह कोई नही कहता। उन्हे सुधारने-बदलने के लिए भी भरपूर प्रयास करना चाहिए, पर इसमे खीजने की, असन्तुलित होने की आवश्यकता नही है। डाक्टर को सारे दिन उन्ही के बीच रहना पड़ता है, जिनने असंयम बरतकर अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लिया है। वे उनके घाव धोते, मरहम लगाते और आवश्यकतानुसार चीर-फाड़ भी करते है। वे रोग को मारते और रोगी को बचाते है, इस रीति-नीति को अपनाकर कुरूपता को सुन्दरता और दुष्टता को सज्जनता मे बदला जा सकता है। प्रेम-सौजन्य से काम न चलता हो तो आवश्यकतानुसार दण्ड नीति भी अपनाई जा सकती है और प्रताड़ना का प्रयोग भी किया जा सकता है, पर इसमें भी अपनी सुधार-परायण सज्जनता की भाव संवेदना का ही अनुभव प्रयुक्त किया जा सकता है।

फिर अपनी निज की सद्भावना ही अपने लिए कम आनन्ददायक नही होती। वस्तुतः मनुष्य उद्विग्न अपने दृष्टिकोण के कारण ही होता है। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, छिद्रान्वेषण, असन्तोष, असंयम आदि के कारण ही ऐसी मनःस्थिति बनती है, जिसमे खीज, खिन्नता और विद्वेष से मन भरा रहता है। कभी स्वल्प कारण होने पर भी तिल का ताड़ बनता है और चिन्ता, भय, निराशा, आशंका, अविश्वास आदि मनोविकारो का समूह चढ़ दौड़ता है और स्थिति ऐसी पैदा कर देता है, जिसमे चैन से रहना और सम्पर्क वालो को चैन से रहने देना बन ही नही पड़ता।

स्मरण रखने योग्य यह है कि अन्धकार कितना ही विस्तृत क्यो न हो, पर वह प्रकाश से अधिक मात्रा मे नही हो सकता। ससार मे अशुभ कितना ही क्यों न हो, पर वह शुभ से अधिक नही है। गन्दगी और स्वच्छता का अनुपात लगाया जाय तो स्वच्छता ही अधिक मिलेगी। यदि ऐसा न होता तो आत्मा इस संसार मे आने और रहने की इच्छा न करती। कठिनाई अपना दृष्टिकोण उलझा लेने भर की है और वह ऐसा नही है, जिसे सुधारा-बदला न जा सके।

सफलता आपका जन्म-सिद्ध अधिकार है

मनुष्य की असफलता के कारणो मे एक कारण अयोग्यता भी है। जिसने किसी काम को करने का सही ढंग सीखने मे प्रमाद किया है, उसकी रीति-नीति के सम्बन्ध मे ज्ञान अर्जित का कष्ट नही उठाया है, वह उस काम को ठीक से अन्जाम दे सकने की आशा अपने से नही रख सकता। यदि वह हठ अथवा लोभ के वशीभूत उस काम को हाथ मे ले भी लेगा तो दूसरो के साथ अपनी दृष्टि मे भी उपहासास्पद बन जायेगा। किसी काम को सफलतापूर्वक करने के लिए तत्सम्बन्धी योग्यता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

योग्यता किसी दैवी वरदान के रूप मे नही मिलती। वह एक ऐसा सुफल है, जिसकी प्राप्ति परिश्रम एव पुरुषार्थ के पुरस्कार स्वरूप ही होती है। जो आलसी है, अकर्मण्य है, काम करने मे जिनका जी नही लगता, परिश्रम के नाम से जिनको पसीना आ जाता है, वे किसी विषय मे समुचित योग्यता प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी आशा दिवास्वप्न के समान ही मिथ्या सिद्ध होगी। योग्यता की उपलब्धि, परिश्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा ही सम्भव है।

किसी विषय में सफलता हस्तगत करने के लिए, उस विषय की पर्याप्त योग्यता का होना आवश्यक है और योग्यता की उपलब्धि परिश्रम एवं पुरुषार्थ पर निर्भर

है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सफलता का मूलभूत हेतु परिश्रम ही है।

जिनको संसार में कुछ सराहनीय दिखाने की इच्छा है अथवा जो चाहते है कि सफलतायें उनके जीवन का शृंगार करें उन्हें चाहिए कि वे पूरे तन-मन और पूरी सच्चाई के साथ अपने में परिश्रम तथा पुरुषार्थ का स्वभाव विकसित करें। एक बार ध्येयपूर्वक परिश्रमी स्वभाव का विकास कर लेने पर फिर यह ऐसा सहज स्वभाव बन जाता है कि किसी के लिए अकर्मण्य रहकर कुछ क्षण बिता सकना ही पहाड़ हो जाता है।

कर्मण्य स्वभाव वाला व्यक्ति इतना कर्मशील बन जाता है कि यदि विवशतावश उसे एक-आध दिन निकम्मा होकर बैठना पड़े तो उसके लिए वह समय कारावास की दुःखदायी स्थिति से कम नही बैठ सकता। परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति एक क्षण के लिए भी बेकार नहीं बैठ सकता। उसे काम करने की आवश्यकता उसी प्रकार अनुभव होती है, जिस प्रकार भूख लगने पर खाने की आवश्यकता। भूख लगने पर जब तक कुछ खा न लिया जाय तब तक चैन नही पड़ता, उसी प्रकार परिश्रमी स्वभाव वाला व्यक्ति काम के अभाव मे तब तक बेचैन बना रहता है, जब तक कि उसे मनमाना काम करने के लिए नहीं मिल जाता। जिसने अपने स्वभाव को इस सीमा तक परिश्रमी एव पुरुषार्थी बना लिया है, मानना होगा कि उसने अपने भाग्य का निर्माण कर लिया है और सफलता की जयमाल लेकर विचरण करने वाले देवदूतों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता उपलब्ध कर ली है।

जिन सुविधाजनक परिस्थितियो को प्रारब्ध की संज्ञा दी जाती है, जिन साधनो और उपादानो को मानव जीवन की सफलता का सहायक माना जाता है और जो सौभाग्य फलो के रूप में जन-जन को स्पृहणीय होते है, वे सब परिश्रम एवं पुरुषार्थ के पुरस्कार के सिवाय और कुछ नहीं होते। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है—इस सूक्ति वाक्य को कर्मठ व्यक्तियों ने पुरुषार्थ द्वारा, असभव को संभव सिद्ध करके, विचारकों को, संसार के सम्मुख एक सिद्ध मंत्र के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए विवश कर दिया।

सुख-दु ख, हानि-लाभ, सफलता-असफलता दैवाधीन है, इनमें मनुष्य की गति नही है। इस प्रकार की भावना आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र मे भले ही अर्थ रखती हो किन्तु भौतिक धरातल पर इसका अधिक महत्त्व नही माना जा सकता। यदि इस दार्शनिक भावना को देश, काल और परिस्थितियों का विचार किए बिना सामान्य जीवन क्रम मे प्रवृत्त कर दिया जाय तो निश्चय ही संसार का विकास अवरुद्ध हो जाय और इस कर्म-लोक मे अकर्मण्यता का साम्राज्य स्थापित होते देर न लगे। लोग असमय मे अकारण ही उक्त भावना का बहाना लेकर कधा डाल दे और तब सारे ससार का यह सक्रिय स्वरूप वैसे ही समाप्त हो जाय जैसे पक्षाघात का आक्रमण होने पर चलते-फिरते मनुष्य की गति स्थगित हो जाती है।

कभी-कभी देखा जाता है कि प्रयत्न करने पर भी कुछ लोग वांछित सफलता प्राप्त नही कर पाते और तब दृष्टिकोण मे इस भ्रम की सभावना हो उठती है कि प्रयत्न और पुरुषार्थ व्यर्थ है, मनुष्य का भाग्य ही प्रबल होता है। किन्तु यह भ्रम सर्वथा भ्रम ही है, सत्य का इससे दूर का भी सम्बन्ध नही होता। ऐसे प्रयत्नशील व्यक्ति की असफलता को लेकर भाग्यवाद मे आस्था की स्थापना करने लगना मानसिक निर्बलता का लक्षण है। निश्चय ही उस असफल व्यक्ति के प्रयत्न मे कुछ न कुछ खोट अथवा कमी रही होगी, जिससे कि उसे उस समय असफलता का मुँह देखना पड़ा। यदि प्रयत्न पूरा और सावधानी के साथ किया जाय तो किसी के सम्मुख असफलता के आने का अवसर ही शेष नही रह जाता। पूरा और सुचारु प्रयत्न सफलता की एक ऐसी गारण्टी है जो कभी असिद्ध नही हो सकता।

किसी एक प्रयत्न से कोई निश्चित सफलता मिल ही जाये, यह आवश्यक नही। सफलता के लिए कभी-कभी प्रयत्नो की परम्परा लगा देनी होती है। परिश्रम एवं पुरुषार्थ के रूप मे उसका उतना मूल्य चुका ही देना होता है, जितना चुकाना उसके लिए अनिवार्य है। एक बार असफलता का सामना हो जाने पर किसी को असफल मान लेना उसके साथ अन्याय करने के समान है। ससार मे लिकन जैसे हजारो व्यक्ति हुए है जिन्होने सैकड़ो बार असफल होकर भी अन्त मे अभीष्ट सफलता का वरण कर ही लिया। सच्चा पुरुषार्थी वास्तव मे वही है जो बार-बार असफलता को देखकर भी अपने प्रयत्न मे शिथिलता न आने दे और हर असफलता के बाद एक नये उत्साह से सफलता के लिए निरन्तर उद्योग करता रहे। जो पत्थर एक आघात से नही टूटता उसे बार-बार के आघात से तोड़ा ही जा सकता है।

असफलता को अगीकार करने का अर्थ है—निराशा को निमत्रण देना। निराशा के दुष्परिणामो के विषय मे अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। निराशा की भावना को यदि नागपाश की भाँति कह दिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा। निराशा मनुष्य की क्रियाशीलता पर सर्प की भाँति लिपटकर न केवल उसकी गति ही अवरुद्ध कर देती है प्रत्युत अपने विषैले प्रभाव से उसके जीवन तत्त्व को भी नष्ट कर देती है।

यह अधिक अस्वाभाविक नही है कि असफलता की स्थिति मे कभी-कभी निराशा मनुष्य के विचारो पर अपनी काली छाया डालने का साहस कर ही जाती है। किन्तु उस छाया को देर तक ठहरने न देना चाहिए। यदि यह गलती की जायेगी, तो सच मानिये आपके वर्तमान पर ही नही भविष्य पर भी उसका दूरगामी कुप्रभाव पड़े बिना रह न सकेगा। वे सारे स्वप्न, सारी

स्वर्ण-कल्पनाये जिनको मूर्तिमान करने की आकांक्षा लेकर आपने कर्म क्षेत्र मे कदम बढ़ाया है, साहस धूमिल पड़ जायेगी। आपका आत्म-विश्वास, उत्साह और साहस धीरे-धीरे साथ छोड़ने लगेगा, विचारो के माध्यम से जीवन-क्षितिज पर अन्धकार घनीभूत हो उठेगा और तब कुण्ठा और कायरता के सिवाय आपके पास कुछ भी तो शेष न बचेगा। इसीलिए बुद्धिमानी इसी मे है कि असफलता के साथ निराशा को जोड़कर ऐसी हानि न की जाये जो कभी भी पूरी न हो सके।

इस अनुभव सिद्ध सत्य को स्वीकार कर लेने मे सब प्रकार से हित ही हित है कि निरन्तर काम मे जुटा रहना निराशा का सर्वश्रेष्ठ और सृजनात्मक उपचार है। काम मे संलग्न रहने से मन की सारी वृत्तियाँ एकाग्रता के साथ उस काम की ओर ही प्रवृत्त रहती है। विचारो का प्रवाह कार्य के साथ चलता रहता है। इस संलग्नता के कारण विचारो मे ऐसा कोई स्थान रिक्त नही रहता, जहाँ आकर निराशा अपना अधिकार जमा सके। जहाँ अकर्मण्यता की स्थिति मे निराशा के विचार मस्तिष्क को घेरने लगते है, वहाँ इसके विपरीत सक्रियता की स्थिति मे सृजनता के कारण आशापूर्ण विचारो का उदय होता चलता है।

जीवन मे सफलता की आशा रखने वालो को चाहिए कि सामयिक असफलता को चुनौती की भाँति स्वीकार करे और अपनी सृजन शक्ति के बल पर असफलता की पोषक निराशा को पास न फटकने दे। जिसने निराशा से दूर रहकर असफलता को सफलता मे बदल देने का दृढ निश्चय किया होता है, उसने मानो दूर तक अपनी मंजिल का मार्ग निरापद बना लिया होता है।

सफलता के मार्ग मे कठिनाइयो का आना असभव नही, उनका आना स्वाभाविक है। जिस मार्ग मे कठिनाई नही, जिस पर विरोध अथवा अवरोध की संभावना नही वह मार्ग किसी महान् ध्येय की ओर जा रहा है—ऐसा मान लेने मे जल्दी नही करनी चाहिए। आज तक के प्रत्येक महापुरुष का जीवन बतलाता है कि महानता की ओर जाने वाला आज तक ऐसा कोई मार्ग अन्वेषण नही किया जा सका, जिस पर कठिनाइयो का सामना न करना पड़े। बीच-बीच मे आने वाली कठिनाइयाँ इस बात की साक्षी है कि अमुक मार्ग किसी असामान्य ध्येय की ओर जाता है।

अपने ध्येय मार्ग पर विघ्न-बाधाओ को देखकर अनेक लोग हतोत्साहित हो उठते है। ऐसे व्यक्तियो को यह मान लेने मे संकोच न करना चाहिए कि किसी महान् सफलता को वरण करने की उनकी आकांक्षा परिपक्व नहीं है। इस प्रकार की आकांक्षा जिनके हृदय मे लगन बनकर लगी होती है वे हँसते-खेलते विघ्न-बाधाओ से टक्कर लेते हुए साहसपूर्वक अपने ध्येय मार्ग पर बढ़ते चले जाते है। मार्ग की कठिनाइयों से टकराने मे जिस आत्मिक-आनन्द की उपलब्धि होती है, उसे पाने के अधिकारी ऐसे पुरुषार्थी पुरुषो के सिवाय और कौन हो सकता है?

ध्येय मार्ग का कोई भी सच्चा पथिक इस सत्य के समर्थन मे उत्साह प्रकट किए बिना नही रह सकता कि मार्ग मे यदि कठिनाइयो से टकराने का अवसर न मिले तो असहनीय नीरसता का समावेश हो जाये और वह नीरसता लक्ष्य पर पहुँचकर दूर नही हो सकती। उस नीरसता के साथ मंजिल पर पहुँचने पर कौन-सी नवीनता, कौन-सा संतोष और कौन-सा हर्ष उपलब्ध हो सकता है ? यह मार्ग की बाधाएँ दूर करने मे किये गये संघर्ष की ही विशेषता है, जो मंजिल पर पहुँचकर विश्राम संतोष और आनन्द के रूप मे अनुभव होती है। प्रगति का वास्तविक आनन्द इसी मे है कि कठिनाइयो का संयोग आता रहे और उन पर विजय प्राप्त की जाती रहे। हलचल के बिना जीवन सूना और नीरस हो जाता है।

कठिनाइयो से भय मानना अंतर मे छिपी कायरता का द्योतक है। अपनी इस कायरता के कारण ही मार्ग मे आई कठिनाई पहाड़ के समान दुरूह मालूम होती है। किन्तु जब उस कठिनाई को दूर करने के लिए साहसपूर्वक जुट पड़ा जाता है तो यह विदित होते देर नही लगती कि जिस कठिनाई को हम पर्वत के समान दुर्गम समझ रहे थे, वह उस बादल के समान ही हीन अस्तित्व थी, जो थोड़ी हवा लगने पर टुकड़े-टुकड़े होकर छितरा जाता है।

सफलता को आसान समझकर उसकी कामना करने वाले व्यक्ति प्रौढ़ बुद्धि के नही माने जा सकते। सफलता की उपलब्धि सरलता से नही, कठोर संघर्ष से सम्भव होती है। अध्ययन, अध्यवसाय एवं अनुभव की साधना किए बिना अभीष्ट सफलता को पा सकने की कल्पना भी नही की जा सकती। अपने को योग्य बनाकर पूरे संकल्प के साथ लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा। मार्ग मे आने वाली बाधाओ का, यह मानकर स्वागत करना होगा कि वे हमारे साहस, निश्चय और संकल्प की परीक्षा लेने आयी है। कठिनाइयो को देखकर भयभीत होने के स्थान पर उन्हे दूर करने के लिए जी-जान से जुट जाना होगा। इस प्रकार पूरे मनोयोग और साहस के साथ लक्ष्य की ओर अभियान करने पर सफलता की आशा की जा सकती है। इसमे संदेह नही कि ऐसा अदम्य उद्योग और उत्साह की क्षमता प्रकट करने वाले पुरुषार्थी पुरुषो के गले मे जयमाल पड़ती ही है और वे समाज द्वारा अभिवंदित होकर उन्नति के उच्च सिंहासन पर अभिषेक के अधिकारी बनते है।

सफलता की सिद्धि मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। जो व्यक्ति अपने इस अधिकार की उपेक्षा करके यथा-तथा जी लेने मे ही संतोष मानते है, वे इस महामूल्य मानव-जीवन का अवमूल्यन कर एक ऐसे सुअवसर को खो देते है, जिसका दुबारा मिल सकना संदिग्ध है।

●

व्यवस्था-बुद्धि की महिमा और गरिमा

क्षमता का अभाव कहीं भी है नहीं

साधनो और परिस्थितियो का अपना मूल्य और महत्व तो है ही। उनकी न्यूनाधिकता से होने वाली असुविधाओ को भी नकारा नहीं जा सकता। उतने पर भी यह मानकर चलना होगा कि जो कुछ उपलब्ध है, इसका सदुपयोग कर पाना इतना बड़ा कौशल है कि उतने से भी आवश्यकताओ को पूरा करना और प्रगति पथ पर आगे बढ़ चलना संभव हो सकता है। सृष्टा ने किसी मे भी इतनी कम क्षमता नही रहने दी है कि उसे निर्वाह साधनो एवं प्रगति पथ पर बढ़ चलने मे प्रतिरोध जैसा दृष्टिगोचर हो। अभावग्रस्त और कठिन परिस्थितियो मे भी लोगो को जीवन साधन ढूँढ़ निकालने मे समर्थ पाया गया है। उत्तरी ध्रुव की परिस्थितियाँ अत्यन्त विकट है। शून्य तापमान से कम वाली कड़ाके की सर्दी, वनस्पतियो का अभाव, किन्ही उपयोगी साधनो का दृष्टिगोचर न होना, चुम्बकीय तूफान जैसी विकट परिस्थितियो मे भी वहाँ के निवासी "एस्किमो" कहलाने वाले मनुष्यो ने आवास, निर्वाह, आहार, जल, प्रकाश, आवागमन एव पारस्परिक सहयोग से मिलने वाली सुविधाओ का तारतम्य बिठा लिया है।

सघन वनो मे वन-मानुषो की तरह रहने वाले विभिन्न क्षेत्रो के आदिवासी सभ्यताजन्य सुविधाओ से अपरिचित होते हुए भी कही आस-पास उपलब्ध हो सकने वाले साधनो के आधार पर सहस्रो वर्षो से काम चलाते आ रहे है और अस्तित्व बनाए हुए है। समुद्रो के बीच पाये जाने वाले छोटे-छोटे द्वापुओ पर भी मनुष्य रहते और फलते-फूलते देखे गये है, जबकि उन्हे उस क्षेत्र मे आदिम कालीन न्यूनतम सुविधाएँ ही उपलब्ध है। कहीं-कही ऋतु विपर्यय भी कम हैरान करने वाला नही होता। फिर भी उन क्षेत्रो के मनुष्य एव प्राणी अपनी सुरक्षा और वंश वृद्धि करते रहने मे समर्थ पाए गए है। स्पष्ट है कि प्राणि समुदाय सहित मनुष्यो मे वह जन्मजात क्षमता विद्यमान है, जिसके सहारे उन्हे प्रतिकूलताओ पर विजय प्राप्त करते रहने का श्रेय मिलता रहा है।

मिट्टी और पानी मे घुले रहने वाले सूक्ष्मजीवों, अपने निर्वाह और सुख-साधनो की व्यवस्था उन्ही अति कठिन दीखने वाली परिस्थितियो मे जुटा लेते है। परिस्थितियो को अनुकूल बनाने हेतु सृष्टा ने हर किसी को क्षमता प्रदान की है। मनुष्य अपने दृष्टिकोण से उन सामान्य प्राणियो की क्षमताओ को सामान्य समझकर हेय मान सकता है, पर और किसी को उन्ही परिस्थितियो मे रहने का अवसर मिले, तो वह अनुभव करेगा कि मनुष्य को अपनी परिस्थितियो से निपटने के लिए जो विशेषताएँ मिली हुई है, उनकी तुलना मे उन प्राणियो को मिला अनुदान किसी भी प्रकार कम नही है। हवा मे तैरते दिखने वाले बैक्टीरिया एवं वायरस स्तर के जीवो का भी अपना संसार है, वे प्राणियो के शरीरो और वृक्षो के कलेवरो मे चाहे जहाँ पहुँच जाते है। अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हर जगह पर प्राप्त कर लेते है। परिवर्तन की नियतिस्वरूप तो उनकी स्थिति भी बदलती रहती है, पर अस्तित्व को चुनौती देने वाला कभी कोई सम्बन्ध उनके आड़े नही आता। अनादि काल से उनकी प्रजातियाँ विद्यमान है।

शरीर से छोटे घटको, जीव कणो की भी अपनी सत्ता है। वे जल्दी-जल्दी जन्मते-मरते तो रहते है, पर उनका व्यवस्थाक्रम ऐसा सुनियोजित है-जिसकी तुलना मे चलते-फिरते दृश्यमान प्राणियो मे से किसी के भी क्रिया-कलाप को उतना सुव्यवस्थित एव अनुशासित होने का श्रेय नही मिल सकता। यह धरती के प्राणियो मे से कुछ की बात हुई। अंतरिक्ष मे विद्यमान ग्रह-उपग्रहो और नीहारिकाओ का अपना एक अनोखा संसार है, जिसमे महाछिद्रो, महासागरो, महामेघो और महान ऊर्जा स्रोतो का अपना ससार विद्यमान है। मनुष्यो की तरह वे वार्तालाप आदि मे समर्थ नही, पर उनके बीच विद्यमान अनुशासन और तारतम्य ऐसा है कि वे एक विराट वृक्ष के अविच्छिन्न घटको की तरह आदान-प्रदान का सुनियोजित क्रम चला रहे है। इसी अनुबन्ध के परिपालन पर उनकी सत्ता और गतिविधियो की सुनियोजित शृंखला अनादि काल से चलती आ रही है और अनन्त काल तक चलती रहेगी। पदार्थ जगत से प्रत्येक अणु-परमाणु में वह व्यवस्था चक्र अपने-अपने ढग से काम करता पाया जा सकता है। आणविक सरचना, उनकी मध्यवर्ती नाभिकीय ऊर्जा तथा परिभ्रमण की गति कक्षा का निर्धारण भी ऐसा है, जिसे देखते हुए सौर मण्डल से लेकर विश्व ब्रह्माण्ड की संरचना तक मे काम करने वाले व्यवस्थाक्रम को

सर्वत्र एक जैसा विद्यमान समझा जा सकता है। यहाँ सब सुव्यवस्थित और सुनियोजित है। **"अणोरणीयान महतो पर महीयान"** वाली प्रकृति विस्तार के प्रत्येक घटक मे, इसी आधार पर समस्वरता विद्यमान है।

सृष्टिक्रम के पीछे विद्यमान इस सुनियोजन को यदि समझा जा सके, तो सहज ही जाना जा सकेगा कि मनुष्य की मौलिक सत्ता कितनी प्रबल और प्रखर होनी चाहिए। कारण कि उसे दुहरा अतिरिक्त अनुदान उपलब्ध है। उसकी शरीर संरचना अन्य प्राणियो की तुलना मे अनेक गुनी विशेष है। इतने सुनियोजित हाथ किसी भी प्राणी को मिले हुए नही है। यदि इस संरचना मे कमी रही होती, तो कला-कौशल, संगीत, वादन, मूर्तिकला, चित्रकला, वैज्ञानिक विशेषज्ञता मे से एक को भी प्रदर्शित कर सकना, उसके लिए संभव न रहा होता। उसके हाथो ने अनेको यंत्र उपकरणो का आविष्कार किया और उनके कुशल संचालन मे प्रवीणता प्राप्त की। खड़े होकर चलने वाली रीढ़ और लम्बी, ऊँची-नीची यात्राएँ कर सकने मे समर्थ पैर भी किसे मिले है। अन्य ज्ञानेन्द्रियो के सम्बन्ध मे भी यही बात है, उनकी अपनी विलक्षणता और आन्तरिक क्षमता है। मानवी उपलब्धियो मे से प्राय: सभी उसी कारण बन पड़ी कि उसे अनुपम स्तर का शरीर ससाधन मिला हुआ है।

मन-मस्तिष्क की क्षमता तो और भी अधिक विलक्षण है। उसमे सोचने की, अनुकरण करने की, स्मृतियाँ धारण करने की, अनुभवो की, सुसंस्कारो की एक से बढ़कर एक विशेषताएँ उपलब्ध है। कल्पना शक्ति, बौद्धिक प्रखरता एवं निष्कर्ष निर्धारण इस स्तर का पाया जाता है, जिसकी उपमा अन्यत्र कही भी नही मिलती। यदि मानसिक विलक्षणताओ से वह सम्पन्न न रहा होता, तो एक से एक विशेषताओ से भरे-पूरे प्राणि जगत मे उसकी गणना मुकुटमणि स्तर पर न हुई होती ? गज, ग्राह, सिंह, व्याघ्र जैसे जीव ही उसे पछाड़ देने के लिए पर्याप्त थे। वह पक्षियो की तरह उड़ने-जलचरो की तरह तैरने मे भी कहाँ समर्थ है ? घोड़े और चीते जैसी दौड़ने की क्षमता उसमे कहाँ है ? पौधों के भीतर घुसकर अपनी दुनिया बसाने और चलाते रहने वाले कृमि-कीटकों जितनी क्षमता भी उसमे कहाँ है ? यहाँ तक कि मक्खी-मच्छरों जैसे अल्पजीवियो की वंशवृद्धि की क्षमता को देखते हुए भी उसे अपने को बहुत पिछड़ा हुआ अनुभव करना होगा। इतना सब होने पर वह जिस कारण सृष्टि का मुकुटमणि कहला सका, वह उसकी मानसिक विलक्षणता का ही फल है। उसी ने इस अनगढ धरातल को कला-कौशल और शोभा-सज्जा से सज्जित बनाकर रख दिया है।

सृष्टा ने यो किसी को भी असमर्थ नहीं छोड़ा है। क्या जड़ पदार्थ और क्या वनस्पतियाँ-प्राणी जगत, सभी को अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप प्रचुर मात्रा मे क्षमता एवं दक्षता प्रदान की है। फिर सृष्टा का युवराज ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते उसके कंधो पर तो यह दायित्व और लदा है कि सम्बद्ध पदार्थों को सुनियोजित और प्राणियो को समुन्नत बनाए रखे। सृष्टा ने अपना कार्यभार हल्का करने के लिए मनुष्य को सहयोगी के रूप में रचकर योजनाबद्ध रूप से निरूपित किया है। इन परिस्थितियो मे उसे अधिक भारी दायित्वो का निर्वाह कर सकने वाला सिद्ध होकर, अपनी वरीयता की सार्थकता सिद्ध करनी चाहिए। उसका चिन्तन, कौशल एव क्रिया-कलाप ऐसे होने चाहिए, जो इस सुव्यवस्था को अधिक सक्षम रख सके।

मनुष्य साधारण प्राणियो के बीच रहते हुए उन्ही के जैसा व्यवहार न अपना ले, तत्वदर्शियो ने उसके लिए अतिरिक्त प्रकाश प्रेरणा का निर्धारण किया है। इसी को आत्मबोध, दिशा निर्धारण एवं कर्तव्य पालन की दिशा धारा अपनाने वाला, उत्कृष्टता बनाए रखने वाला तत्वज्ञान कहा गया है। उसी को अध्यात्म कहते है। धर्म धारणा भी यही है।

छोटे बच्चे अक्सर गड़बड़ाते और लड़खड़ाते रहते है। उनकी चेष्टाएँ अटपटी होती है। जो बोलते है वह भी असम्बद्ध होता है। फिर व्यवस्था की दृष्टि से और भी अधिक पिछड़े हुए है। आवश्यकताओ की पूर्ति प्रकट कर सकने मे समर्थ नही होते। सर्दी-गर्मी से बच सकने की विद्या तक उन्हे नही आती। मल-मूत्र तक को यथास्थान त्यागने और उस गन्दगी को दूर हटाने की युक्तियाँ तक उनसे नही बन पड़ती। ऐसी दशा मे मनुष्य-जन्म प्राप्त कर लेने पर भी बचपन मे स्थिति ऐसी ही बनी रहती है, जिसे अपगो और अनगढ़ो के स्तर का कहा जा सके। यह स्थिति कई वर्ष तक बनी रहती है और अभिभावको के निरन्तर सहयोग से धीरे-धीरे सुधार-परिष्कार की दिशा मे चल पड़ती है। प्रौढ़ता तो किशोरावस्था तक को पारकर लेने के उपरान्त ही दृष्टिगोचर होती है।

यह प्रत्यक्ष कलेवर का प्रगतिक्रम हुआ। अब चेतना क्षेत्र के अनगढ़पन को सुसस्कृत बनाने का प्रश्न सामने आता है। उसे सम्पन्न कर सकने मे यह तत्वदर्शन ही समर्थ है, जिसे शालीनता का पक्षधर अनुशासन कहा जाता है। नागरिकशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान शास्त्र मिलकर इसी की पूर्ति करते है। अध्यात्म और धर्म के विशालकाय ढाँचे को खड़ा करने वाले भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए आवश्यक ताना-बाना बुनते रहे है। आस्तिकता, धार्मिकता के नाम पर चेतना को इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाता है कि वह अनुशासन मे तत्परतापूर्वक उसी तरह बँधा रहे, जैसे कि पदार्थ जगत और प्राणि जगत प्रकृति प्रेरणा के अनुबंधो मे विवश होकर जकड़ा हुआ है।

मनुष्य को स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र रूप से क्रिया-निर्धारणों की छूट है। यह सुविधा किसी और घटक

को नहीं मिली। ऐसी दशा मे उसका यह निजी उत्तरदायित्व बनता है कि अपने को स्वयमेव नियति की अनुशासन व्यवस्था मे बाँधे रहे। संयम इसी का नाम है। मानवी मर्यादाओ और वर्जनाओ के विधि-निषेध के अन्तर्गत उसे यह प्रशिक्षण दिया गया है कि अन्त:प्रकाश के आधार पर राजमार्ग को अपनाए रहे, भटकावो मे न भटक पाए। धर्म-धारणा के आधार पर मनुष्य को अपने चिन्तन-चरित्र, व्यवहार को शालीनता के अनुबंधो मे बँधे रहने के लिए कहा गया है।

इसके बाद उस तत्वज्ञान का आरम्भ होता है, जिसे सेवा-साधना के नाम से जाना जाता है। इसका विस्तार तो बहुत लम्बा है, पर संक्षेप मे इसे चिन्तन-उपक्रम एवं साधना का सुनियोजन कहा जा सकता है। यदि इस दिशा मे सही निर्धारण के साथ चल सकना संभव हो तो मानना चाहिए कि पुण्य-परमार्थ का, सेवा-साधना का वह प्रकाश अपनाया गया, जो जीवन-लक्ष्य की पूर्ति में पूर्णतया समर्थ है।

शारीरिक और मानसिक कायाकल्प कैसे सम्भव हो

सामर्थ्य का होना एक बात है और उसका सुनियोजन कर सकना सर्वथा दूसरी। माचिस की तीलियो में अग्नि प्रज्ज्वलन की प्रचण्ड क्षमता विद्यमान रहती है, फिर भी उसे जला सकना किसी बुद्धिमान प्राणी के लिए ही संभव है। कृषि कार्य और पशुपालन ऐसे काम है, जिन्हें मामूली मजदूर और ग्वाले भी करते रहते हैं। पर उससे अतिरिक्त लाभ उठाना उन्ही से बन पड़ता है, जो अपने विशेष ज्ञान, अतिरिक्त तत्परता एवं मनोयोग और तन्मयता का परिचय दे पाते हैं, इस विशेष विनियोग के बिना खेत मुश्किल से अपनी लागत की भरपाई कर पाते है। पशुओं के झुण्ड भी अनाड़ी ग्वालो के हाथ किसी प्रकार दिन गुजारते है। वे न समर्थ बन पाते है और न पालने वाले को ही कुछ यश या श्रेय दे पाते है। व्यवस्था के अभाव मे समस्त साधनो के रहते हुए भी प्रगति कर सकना तो दूर, यथास्थान बने रहना भी कठिन पड़ता है। प्रगति की तरह अवनति भी पग-पग पर विद्यमान रहती है। जो प्रगति कर सकने मे समर्थ नही, अवनति उनके पल्ले बँधे बिना रहेगी नही। यथास्थिति बनी रहने का इस संसार मे कोई विधान है नहीं। सूरज या तो ऊपर चढ़ता जाता है अथवा उसका गिरना आरम्भ हो जाता है और उस क्रम के चलते रहने से उसे अस्ताचल मे डूब मरना पड़ता है। उसी चढ़ाव-उतार के क्रम को दूसरे शब्दों मे प्रगति और अवनति कहते हैं।

कौशल अनेकानेक है। कला की दिशाधाराएँ अगणित है। सुयोग और कुयोग का सिलसिला भी चलता है। अन्धकार और प्रकाश की तरह सम्पन्नता-विपन्नता का क्रम भी परिस्थितियो पर निर्भर रहता है। पर जिस सद्गुण में अधिक उत्पादन क्षमता है, उसका नाम है सुव्यवस्था—उपलब्धियों का सुनियोजित प्रबन्ध कर सकने की क्षमता। भौतिक प्रगति के क्षेत्र मे यदि इसे सर्वोत्तम स्तर की प्राथमिकता दी जाय, तो कुछ भी अनुचित न होगा। सुनियोजित ही है जिनके कारण कम योग्यता और अभावग्रस्तता के बीच रहते हुए भी व्यक्ति न केवल प्रसन्न रह सकता है, वरन् समुन्नत भी बन सकता है।

सुदृढ स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य का भण्डार हर काय-कलेवर मे विद्यमान है। विषाणुओ को परास्त करने की क्षमता रक्त के श्वेत कणो मे इतनी भरी पड़ी है, जिसे अजेय कहा जा सके। पेट के अपने रासायनिक घटक इस उच्चकोटि के है कि वे भुने सत्तू जैसे शक्तिहीन कहे जाने वाले पदार्थ खाकर भी अपने बलबूते पूर्ण भोजन की आवश्यकता पूरी करते रह सकते है। फिर भी अस्वस्थता क्यों आ घेरती है ? अकालमृत्यु क्यो मरना पड़ता है ? इसके उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि आरोग्य के नियमो की अवहेलना ही कुछ अपवादो को छोड़कर प्रधान कारण है। यदि आरोग्य के अनुबन्धो मे बँधकर आहार-विहार को सुव्यवस्थित रखा जा सके तो अन्य प्राणियो की तरह मनुष्य भी निरोग रह सकता है और दुर्घटनाओ के व्यवधानो को छोड़कर परिपूर्ण आयु तक जीवित रह सकता है। हमी है जो शरीरचर्या के साथ अस्त-व्यस्तता अपनाकर खिलवाड़ करते है और दुर्बलता को आग्रहपूर्वक आमंत्रित करके उसके मुँह मे हठपूर्वक जा घुसते है।

देव उद्यान की तरह हरा-भरा, फूला-फला, शोभा-सुषमा से भरा-पूरा सुगंधित एवं समृद्ध है यह अपना संसार-अपना भूलोक। इसे रंगमंच की तरह किसी ने चित्र-विचित्र और मणि-मुक्तकों से सुसज्जित इस स्तर का बनाया है कि इसके कण-कण को निहारते हुए हर घड़ी आनन्द विभोर रहा जा सके। प्रकृति की अपनी शोभा है। उमड़ते बादल, झिलमिलाते सितारे, चहकते पक्षी, हरियाली बिछे मखमली फर्श, सरिता-सरोवरो की हिलोरें किसका मन पुलकन से नही भर सकती ? जहाँ सूर्य रोशनी-गर्मी और चन्द्रमा शांति-शीतलता बरसाने के लिए अपनी-अपनी ड्यूटी देते हों, जहाँ पवन पंखा चलाता है, जहाँ निद्रा की परी अपनी गोदी मे सुलाने के लिए रात्रि होते-होते दौड़ आती हो, जहाँ की वनस्पतियाँ नन्हे-मुन्ने शिशुओं की तरह खिलती-खिलाती है, प्राणीगण सहकार के लिए बढ़कर खड़े रहते है, वहाँ किसी को असुविधा, हैरानी और विपन्नता से खिन्न रहने की क्या और क्यो आवश्यकता पड़ेगी ? इतने पर भी किसी का मन खिन्न-विपन्न रहता है, तो समझना चाहिए कि खोट परिस्थितियो का नहीं, मन:स्थिति मे ही कहीं से, आँख मे आ पड़ने वाली धूल-किरकिरी की भाँति घुस पड़ी है। दृष्टिकोण को गड़बड़ाने से ही झाड़ी का भूत, रस्सी का साँप दिख पड़ा है। अस्त-व्यस्त मन ही इस सुरम्य उद्यान को जलते-जलाते मरघट जैसा बना देते है और

कुकल्पनाओ के भूत-पलीत यहाँ नंगे होकर नाचते, डरने-डराने का खेल खेलते है। यह संसार दर्पण भर है, जिसमे अपने प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त और कुछ मिलता नही। इसे विशाल आकार वाला गुम्बद भी कह सकते है। जिसमे भय की प्रतिध्वनि गूँजती और मीठे-कड़वे शब्द कह-कहकर हँसाती-रुलाती रहती है।

मन को यदि दिशाविहीन घोड़े की तरह किधर भी बेहिसाब दौड़ पड़ने से रोका जा सके, तो वह शत्रु न रहकर मित्र भी बन सकता है। आरोपित विषमताओ के स्थान पर सम्भावनाओ का अम्बार लगा सकता है। छिद्रान्वेषण यदि हट सके, तो गुण-ग्राहकता के उदय होते ही यह सब कुछ शुभ, सुन्दर और सहयोग मे निरत ही देखा जा सकेगा। यह अपना मन ही है जो रंगीन चश्मा पहन-पहनकर अपनी दृष्टि मे स्वयं इच्छित रंग का आरोपण कर लेता है। चश्मा उतरे तो यथार्थता दीखे। नरक जैसे डरावने भ्रम-जंजाल अनगढ़ मन ही बुनता है और उनमे अपने आप को फँसाकर रोता-कलपता रहता है।

यहाँ यह नही कहा जा रहा है कि विपन्नताओ के पीछे सारा खोट-कसूर अपना ही होता है, दूसरे कोई उसमे दोषी नही होते, विपरीत परिस्थितियो की उनमे कोई साझीदारी नही होती। स्पष्ट है कि संसार गुण-दोषो का बना हुआ है। यहाँ प्रकाश भी है और अंधकार भी। सर्दी और गर्मी की तरह अनुकूलताएँ और प्रतिकूलताएँ भी आती-जाती रहती है। उन सबको सुधार या बदल सकना अपने वश की बात नही। सब कुछ अपनी इच्छा के अनुरूप ही बनकर रहे, यह संभव नही। दूसरो को अपने से सहमत करने के लिए एक सीमा तक ही समझाया या दबाया जा सकता है। ऐसी सर्वशक्तिमान सत्ता किसी के पास नही है कि जो कहना न माने, उसे तोप के गोले से उड़ा दिया जाय। यहाँ तालमेल बिठाकर चलना ही एक सरल और संभव तरीका है। अनौचित्य के प्रति असहयोग या अधिक से अधिक विरोध प्रदर्शन कर सकते है। पुलिस, जेल तक की नौबत दैनिक व्यवहार मे नहीं आती। हर काम मे लड़ाई भी नही ठानी जा सकती है। संघर्ष सिद्धान्ततः तो अच्छा है, पर उसके आक्रमण-प्रत्याक्रमण का सिलसिला चल पड़ता है, जो कई समस्याएँ उत्पन्न करने के अतिरिक्त भारी भी पड़ता है। उससे भी यह निश्चित नही होता कि जैसा चाहा गया, वैसा ही प्रतिफल निकलेगा। वस्तुस्थिति को समझते हुए बुद्धिमानी उसी मे रहती है कि तालमेल बिठाये रखा जाय और विचार-विनिमय द्वारा पूरे या आंशिक समाधान का कोई स्वरूप बनाया जाय, इसी मे व्यावहारिकता भी है और बुद्धिमत्ता भी।

विग्रहो के पीछे दूसरो की खोट भी हो सकती है, पर अपने पक्ष की कमी इतनी तो रह ही जाती है कि तालमेल बिठाने की सोचना छोड़कर, मात्र अड़ या डट जाने को ही प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया गया। दुनिया का काम ऐसे नही चलता। परिवार के सदस्यो के बीच उसी प्रकार की तना-तनी रहे तो विघटन निश्चित है। मित्रो के बीच साधारण से मतभेदो को लेकर शत्रुता चल पड़ती है और एक-दूसरे के लिये सहयोग का मार्ग छोड़कर संकट खड़ा करने पर उतर आते हैं। सभी प्रयास निष्फल हो जाने पर ही ऐसी स्थिति आने देनी चाहिए। साथ ही यह भी समझ लेना चाहिए कि उसमे लाभ कम और घाटा अधिक है।

गड्ढो वाली ऊबड़-खाबड़ सड़क पर मोटर जैसे वाहन तभी चल पाते है, जब उनके स्प्रिंग लचकदार हो। ताली दोनो हाथ से बजती है। एक हाथ तैयार न हो तो दूसरा चाहते हुए भी टकरा नही सकता। अनिवार्य संकट आ खड़ा होने पर तो दो देशो की सेना भी एक-दूसरे के सामने डट जाती है। पर यह नीति बड़े क्षेत्रो मे ही अपनाई जाती है। सामान्य जीवन मे तो आये दिन सुलह-सफाई की नीति अपनाकर ही चलना पड़ता है। अन्यथा उलझते-उलझाते रहने पर कोई सृजनात्मक प्रयास बन पड़ना और प्रगति की दिशा मे आगे बढ़ सकना संभव नहीं हो सकेगा। विग्रहो को इसी नीति के अनुसार टाला जाय। सुधार दूसरो मे बन ही पड़ेगा यह अनिश्चित मानकर, अपनी भूलो को सुधारते रहने का एकपक्षीय फैसला करना चाहिए।

मन को खिन्न करने वाले प्रसंगो की यथासंभव उपेक्षा करनी चाहिए और वह सोच खोजनी चाहिए, जिसके आधार पर मनोबल बनाये रहने वाली स्थिति बनी रहे। भूतकाल की अनुपयुक्तताओ को भूलकर, हमे उज्ज्वल भविष्य की संरचना पर ही ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। जो उपलब्ध है, उस पर संतोष किया जाय और आगे अधिक प्राप्त करने के लिए आतुर-व्याकुल होने की अपेक्षा, उस दिशा मे योजनाबद्ध रीति से, क्रमिक गति से आगे बढ़ा जाय।

अमीरो के साथ तुलना करने पर अपनी स्थिति गरीब जैसी प्रतीत होती है और गरीबो के साथ माप करने पर आज की स्थिति कही अच्छी प्रतीत होती है। सन्तोष का सुख पाने के लिए यही नीति अपनानी चाहिए। प्रयत्न अच्छे से अच्छे के तो किये जायें, पर बुरे से बुरा फल पाने के लिए भी तैयार रहा जाय। असफलता का प्रभाव इतना न पड़ने दिया जाय कि वह निराशा बनकर उभर आये और भविष्य की आशा को ही धूमिल कर दे। हमे खिलाड़ियो की तरह जीवन का खेल खेलना चाहिए। जिसमे हार और जीत को हल्के मन से लिया जाता है और हर स्थिति में उत्साह बनाये रखा जाता है। हँसती-हँसाती फूल की जिन्दगी ही सफल और सुखद मानी जाती है। क्षति और पराजय को भूलकर भावी उपक्रम बनाने और जिस स्थिति मे है, उससे अधिक प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत होना चाहिए।

गड़बड़ाती हुई मशीन को ठीक करने से पहले मिस्त्री वह जाँच-पड़ताल करता है कि कहाँ क्या नुक्स आ जाने से मशीन बन्द हुई है। ठीक करने का क्रिया-कलाप इसके बाद ही चलता है। चिकित्सक रोग का कारण जाँचता और इसके बाद इलाज आरम्भ करता है। सब कुछ ठीक-ठाक रहने पर भी यह देखभाल होती रहती है कि अगले दिनो किसी अड़चन की आशंकाएँ तो नहीं ? कारण भूतकाल मे छिपे मिलते है, गड़बड़ी वर्तमान मे दीख पड़ती है, आशंका का अनुमान भविष्य के संदर्भ मे लगाया जाता है। सड़क पार करते समय सामने ही नही, दोनो ओर देखकर भी चला जाता है। ठीक इसी प्रकार शरीर और मन की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध मे पिछली गल्तियाँ, अब की आदतो और अगले दिनो की घटित हो सकने वाली आशंकाओ को ध्यान मे रखते हुए यह निर्णय करना पड़ता है, कि किस सुधार परिवर्तन की आवश्यकता है। उसे किस प्रकार कार्य रूप मे परिणित किया जाना चाहिए।

व्यवस्था बुद्धि उसी को कहते है, जिसमे मात्र तात्कालिक स्थिति को ही नही, उससे जुड़े हुए भूतकालीन तथ्यों पर भी ध्यान दिया जाता है और उनमे जो हेरफेर करना हो, उसे करने के लिए बिना समय गँवाये कदम उठाया जाता है। भविष्य को और भी अधिक अच्छा बनाने के लिए यह निर्धारण भी किया जाता है कि अधिक महत्वपूर्ण को पाने के लिए क्या मूल्य चुकाना पड़ेगा और उसे जुटाने के लिए क्या तारतम्य बिठाना पड़ेगा ? इस प्रकार के समग्र चिन्तन को ही व्यवस्था कहते है, भले ही वह किसी भी प्रयोजन के लिये अपनाई गई है। शारीरिक और मानसिक स्वस्थता, समर्थता का महत्वपूर्ण आधार है। इसलिए उसकी रखवाली और प्रगति के लिए उसी प्रकार सतर्क रहना चाहिए, जैसा कि कोई अनेक दिशाधाराओ वाले उद्योग-व्यवसाय को चलाने, समस्याओ का हल निकालने के लिए रहता है।

घर में रोज बुहारी लगायी जाती है। उपयोग मे आने वाली वस्तुओं को सही स्थिति मे रखने के लिये उन्हे प्रतिदिन झाड़ा, पोछा जाता है। शरीर और मन चूँकि जीवन का समूचा भार वहन करते है, उसके लिए उनमे उत्पन्न होते रहने वाली गड़बड़ियो को बिना आलस्य किए सुधारते रहना आवश्यक है। घोड़े से लम्बी अवधि तक काम लेना हो, तो उसके चारे-दाने का प्रबन्ध तो करना ही पड़ता है, साथ ही उसे सर्दी-गर्मी, गन्दगी से बचाने की भी सतर्कता रखनी होती है। शरीर और मन की दोनो साधना दो हाथो या पैरो की तरह है। इनके गड़बड़ा जाने पर अपनी समूची क्षमताएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। प्रगति करना तो दूर यथास्थिति बनाये रहना और अवगति से बचना तक कठिन हो जाता है। अन्यान्य जिम्मेदारियो का वहन करते हुए जिस प्रकार जीवनचर्या चलाई जाती है, उसी में एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी जुड़ा रहना चाहिए कि आरोग्य की स्थिति ठीक है या नहीं ? भूख, नींद और मल-विसर्जन के तीन कार्य यथावत् हो रहे हैं या नहीं ? मन-उत्साह, साहस और उल्लास की तीनो विशेषताओ को अपने स्थान पर ठीक से रखे हुए हैं या नहीं ? यदि नही तो उपेक्षा मे समय गँवाने की अपेक्षा तुरन्त उसके उपचार मे लगना चाहिए।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि चिकित्सको की सहायता से किसी भी रोग मे नगण्य जितना ही सुधार होता है। सुधार तो अपने निज का आहार-विहार व्यवस्थित करने के रूप मे करना पड़ता है। नियमितता अपनाना, संयम बरतना और स्वच्छता के लिए स्फूर्ति बनाये रहना ऐसा प्रयास है कि जिसके आधार पर खोये स्वास्थ्य को फिर से पाया जा सकता है। अच्छा हो तो उसे और भी अधिक अच्छा बनाया जा सकता है।

मन के सम्बन्ध मे भी यही बात है। दूसरो की ओर से जो अवांछनीयता बरती गई है, उसका प्रतिशोध लेने की अपेक्षा यह सोचना चाहिए कि अपनी ढाल कैसे मजबूत की जाय, जिस पर किसी आक्रमणकारी का प्रहार कारगर न हो सके। इसी प्रकार अपने संतुलन को बनाये रहकर यह सोचना चाहिए कि अगणित असुविधाओ से निपटने का क्या उपाय हो सकता है और उसे वर्तमान परिस्थितियो मे किस आधार पर, किस सीमा तक निरस्त किया जा सकता है ? इतने पर भी यदि कुछ संकट आ ही खड़ा हो तो इतना धैर्य और साहस सँजोये रहना चाहिए कि आगत आपदा से हँसते-हँसते किसी प्रकार निपट लेने का उपक्रम बन सके। अपनी स्थिति सुधार लेना बाहर की अनेको प्रतिकूलताओ को अनुकूलता मे बदल लेने का गुरुमंत्र है।

बुद्धि की तीक्ष्णता और सक्रियता को पैनी रखें

अगणित विशेषताओ से युक्त मानवी काय-कलेवर की उपलब्धि, ईश्वर की देन है। इसे सँजोना, संभालना उपलब्धकर्ता का अपना काम है। कोई चाहे तो निर्वस्त्र रहकर पागलों की तरह उपहासास्पद स्थिति मे भी बना रह सकता है। किसी मे सऊर हो तो उसी काया को परिधान-आच्छादनो मे शृंगारित-सुसज्जित करके मन-मोहक बनाया जा सकता है। यह अपनी मर्जी और सम्मान का विषय है। भगवान ने मानव की बुद्धिमत्ता और पात्रता को इसी कसौटी पर परखा है कि वह दिये गये अनुदान का उपयोग करने मे अपनी कुशलता और प्रगतिशीलता का परिचय दे सकता है या नही ? प्रभावी प्रगति या अवगति की सम्भावना इसी कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त बन पड़ती है।

आलस्य मनुष्य का प्रथम शत्रु है। शरीर को वह सजीव होते हुए भी निर्जीव स्तर का बनाकर रख देता है। जब स्फूर्ति, उत्साह और परिश्रम को अपनाया ही न

जायेगा, तो काया स्वयं ही दौड़ती और कुछ उपयोगी करती रह सके, ऐसा कहाँ बन पड़ेगा ? सभी व्यक्ति न अपनी कमी खोज पाते है और न उसमे सुधार करने का कुछ प्रयास करते है। फलत: दिन ज्यो-त्यो करके गुजरते रहते है, शरीर-यात्रा किसी प्रकार चलती रहती है, किन्तु निरन्तर श्रमरत न रहने की कुटेव उनके लिए कोई ऐसी उपलब्धि नही बुला सकती, जिसके आधार पर समुन्नत कहलाने का श्रेय मिल सके। जब आलस्य शरीर से आगे बढ़कर मन तक पर सवार हो जाता है, तब उसे प्रमाद कहते है। प्रमादी को न अवगति अखरती है और न उन्नति के लिए उमंग उठती है। यथास्थिति बने रहने में ही उसका चिन्तन सिकुड़ जाता है। न उसे सीखने की इच्छा होती है और न ऐसी योजना बनाने की, जिसके आधार पर आज की तुलना मे आने वाला अगला कल अधिक समर्थ और समुन्नत बन सके। ऐसे लोगो को जब कभी दीनता-हीनता का आभास होता है, तो किन्ही अन्य को कारण मानकर उसी पर दोषारोपण करने लगते है। भाग्य, विधि-विधान, ईश्वर की इच्छा, समय का फेर, ग्रह-नक्षत्र द्वारा उत्पन्न किये गये अवरोधो की बात सोचकर संतोष कर लिया जाता है। बहुत हुआ तो शासन, समाज, वातावरण, कलियुग या किन्ही व्यक्ति को दोषी मानकर उसके प्रति वैर-भाव जमा लिया जाता है। आलसी और प्रमादी प्राय: इसी अवसाद एवं अचिन्त्य चिन्तन मे घिरे रहकर किसी प्रकार जिंदगी के दिन पूरे कर लेते है।

इसके बाद विकृत मस्तिष्क के लोगो की बड़ी संख्या सामने आती है। उन पर दुर्भाग्य या आक्रोश छाया रहता है। असंतोषजन्य खीझ, जीवनक्रम को असाधारण रूप से प्रभावित करती है। शत्रुओ की संख्या अनायास ही बढ़ती है। या तो अपनी ओर से उन पर आक्रमणो की तैयारी की जाती है, या फिर वे किसी प्रसंग पर चिढ़कर कुछ छेड़खानी आरम्भ करते है। आक्रमण-प्रत्याक्रमण का कुचक्र चल पड़ता है। विचारणा इसी जंजाल मे उलझ जाती है। योजनाएँ इसी परिधि मे बनती रहती है। ऐसी दशा मे यह सोचने या सूझने की गुंजायश ही नही रहती कि प्रगति के लिए क्या किया जा सकता है और उसे किस प्रकार सम्पन्न करना चाहिए। घृणा और आक्रोश, कितनो की ही बहुमूल्य शक्तियो को विघटन और विनाश खड़ा करने या उससे बचने में ही उलझाये रहता है।

ऐसा ही एक और भी भारी व्यवधान है, जो मनुष्य की आधी से अधिक शक्तियो का अपहरण कर लेता है। उसका नाम है लिप्सा-लालसा, जो कभी तृप्त होने का नाम नही लेती। कामुकता का यौनाचार स्वरूप तो स्वल्प है। उससे तो कुछ क्षणो मे ही तृप्ति मिल जाती है, पर उसका चिन्तनपरक अश्लील कलेवर ऐसा ही है, जो मस्तिष्क पर कल्पनाओं के रूप मे समय-कुसमय छाया ही रहता है और महत्त्वपूर्ण चिन्तन को कुछ करने के लिए अवकाश ही नही देता। धन की ललक भी ऐसी ही है। उसका कितना ही संग्रह क्यो न बन पड़े, पर तृष्णा कितना ही मिलने पर भी बलवती बनी रहती है। ठीक उसी प्रकार महत्त्वाकांक्षाओ का समुच्चय है, जो बड़प्पन प्रदर्शन, अधिक अधिकार के द्वारा अपने को अधिक प्रतापी बनाने के लिए, उद्वेग स्तर पर छाई रहती है। न दिन मे चैन पड़ता है न रात मे। चुनाव के दिनो मे प्रत्याशियो को किस प्रकार पापड़ बेलने पड़ते है, इसे सभी ने देखा होगा।

यह आवेशग्रस्त मन:स्थितियाँ है। वे चिन्ता, निराशा, आशंका, भय, क्रोध, आवेश, तनाव आदि के रूप मे है तो कितने ही प्रकार की, पर उनमे से चार प्रमुख है। (१) वैर भावना, (२) कामुकता, (३) तृष्णा, (४) बड़प्पन की असीम महत्त्वाकांक्षा। इनका अनुपात जितना बढ़ा-चढ़ा होगा, मनुष्य उसी अनुपात में नशेबाजी जैसी खुमारी से ग्रस्त रहेगा। मन पर बुखार चढ़ा रहेगा और शरीर ऐसा अशक्त दीख पड़ेगा, मानो लंघन मे पड़ा हुआ रोगी हो। आलसी-प्रमादी, पक्षाघात पीड़ित अपंगो की तरह, एक प्रकार से किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि की दृष्टि से अशक्त-असमर्थ ही माने जाते है। उस पर भी, यदि उन पर स्वार्थ, लोलुपता, कामुकता, बेतुकी महत्त्वाकांक्षाओ की तिजारी चढ़ बैठे, तो समझना चाहिए कि दुहरा संकट सवार हो गया। वे अपने जीवनक्रम को ही सुव्यवस्थित न रख सकेंगे, फिर उच्चस्तरीय प्रगति की योजना बनाना तथा लोकमंगल के क्षेत्र मे प्रवेश करके, कोई कहने लायक श्रेय साधन अर्जित कर सकना तो और भी अधिक कठिन पड़ेगा। इन आधि-व्याधियो से छुटकारा पाने का उपाय एक ही है कि जो अवसाद-आवेश शरीर और मन पर छाये रहते हैं, उन्हें उतार फेंका जाय और सन्तुलन इस प्रकार बनाया जाय कि गहराई मे उतर सकना, गम्भीरतापूर्वक विचार कर सकना, समस्याओ का समाधान खोज सकना संभव हो सके। प्रगति का मार्ग ऐसी ही मन:स्थिति मे खोजा और अपनाया जा सकता है।

शारीरिक, मानसिक विशेषताओ वाले स्रष्टा के अनुदानो का सही प्रकार सही उपयोग बन सके, इसके लिए चिन्तन को सदा हल्का-फुल्का बनाये रखने की आवश्यकता है। उसे सदातीक्ष्ण बनाने और क्रियाशील रखने की आवश्यकता है। संयम अपनाने, सूझ-बूझ उभारने और दूरवर्ती परिणामो को ध्यान मे रखते हुए जागरूकता बनाये रहने की आवश्यकता है। इसी मन:स्थिति को प्रतिभा कहते है। प्रस्तुत आधारो के अनेक पक्षो पर विचार करने के साथ ही, अपनी तथा दूसरो की गतिविधियो का निर्धारण सुव्यवस्था के आधार पर बनाये रहना, प्रतिभावानो के लिए ही संभव होता है। प्रमादी तो आरम्भ का कुछ कार्य करते और शेष को फिर कभी के लिए, किसी और की ओर खिसका देने के लिए अधूरा छोड़ देते है। फलत: वह आरम्भ किया गया थोड़ा सा काम भी उपहास और तिरस्कार का निमित्त बनता है। जिम्मेदार व्यक्ति जिस

कार्य को भी हाथ मे लेते है, उसे पूरी तरह सँजोते है और आरम्भ का उत्साह अंत तक बनाये रहकर, समग्रता का, कुशलता का प्रमाण देकर अपनी जिम्मेदारी का परिचय देते है।

प्रतिभा निखारने के लिए जिस सूक्ष्म दृष्टि को अपनाना पड़ता है, उसका आरंभिक अभ्यास निरन्तर बनी रहने वाली दो समस्याओ के साथ जोड़ा जाना चाहिए। शरीर से लम्बे समय तक महत्वपूर्ण काम लेने है, इसलिए इस मशीन को इस प्रकार चलाया जाय कि उसमे न कहीं अड़चन खड़ी हो और न गतिशीलता मे न्यूनता ही पड़े। इसके लिए इतनी सतर्कता भर से काम चल जाता है कि उसके आहार, विश्राम एवं क्रिया-कलाप को सही संतुलित रखा जाय। स्वस्थता की गारण्टी इन तीन प्रयोजनों को सही रखने तक से चल जाती है। प्रतिभा का प्रथम चरण, स्वास्थ्य संरक्षण की सफलता को महत्व देकर जगाया जा सकता है। अगली सीढ़ी है—चिन्तन को गड़बड़ाने न देना। अवसादग्रस्त या उत्तेजित न होकर, शान्त चित्त रहने पर ही सही निष्कर्ष निकालना और निर्धारण करना संभव होता है। जब तक कार्य की सुसंतुलित रूपरेखा न बने, तब तक उसको उस रूप मे सम्पन्न नही किया जा सकता कि करने वाले की गरिमा एवं दक्षता बढ़ी-चढ़ी समझी जा सके। अच्छी तरह किये गये काम ही सफल होते तथा अपनी विशिष्टता का परिचय देकर प्रशंसा का पात्र बनते है।

शरीर और मन की व्यवस्था बना लेना, बाह्य जीवन या बाह्य ससार की सफलता का पूर्वार्ध पूरा कर लेना है। यह दोनो हर घड़ी साथ रहते है। अवसर मिलते ही इन्हे टटोलने और सुधारने के क्रम निर्धारित किए जाते रह सकते हैं। अनुशासन की साधना और गतिविधियो का निर्धारण, इन दो माध्यमो के सहारे बुद्धि की तीव्रता विकसित की जाती रहे, तो समझना चाहिए कि उसकी तीक्ष्णता कुछ ही समय मे इतनी बढ़ी-चढ़ी स्थिति अपना लेगी, जिसके सहारे उलझनो को सुलझाना और श्रेयस्कर दिशाधारा अपना सकना संभव हो सके।

नित्य कर्म तथा दैनिक क्रिया-कलाप से जोड़ने वाली वस्तुओं को साफ-सुथरा, सुनियोजित, व्यवस्थित रखना तीसरा काम है, जिसके सहारे सुव्यवस्थित बुद्धि के विकसित होने का प्रमाण मिलता है। कपड़ो का साफ-सुथरा होना तथा करीने से पहना जाना इस बात का प्रमाण है कि व्यवस्था बुद्धि ठीक तरह काम करने की दिशा मे चल पड़ी है। कलम, कागज, पुस्तके, हजामत बनाने के सामान, जूते-चप्पल, विस्तर, बर्तन, साबुन आदि ऐसी अनेक वस्तुऍं होती है, जो दैनिक जीवन मे आमतौर से काम आ रही है। इनकी स्थिति अस्त-व्यस्त न रहे, तो देखने वालो के जागरूकता के स्तर पर पता चलता है। इसके एक कदम आगे घर ,दफ्तर, फर्नीचर आदि का नम्बर आता है। उन्हे टूटी-फूटी स्थिति मे नही रहना चाहिए, अस्त-व्यस्त भी नही। सही जगह पर सही रीति से रखी हुई वस्तु सज्जा कहलाती है। यदि उसी को अस्त-व्यस्त ढंग से बिखरा दिया जाय तो फिर समझना चाहिए कि वस्तुतः वे अपनी मूक भाषा मे हर दर्शक के कान मे चुगली करती है "जो हमारी और हम जैसी सदा काम आने वाली वस्तुओ की साज-सँभाल नही कर सकता, उसकी जिम्मेदारी, तत्परता और सफलता पर विश्वास कोई किस प्रकार कर सकता है ?''

गन्दगी और टूट-फूट पर हर घड़ी ध्यान रखा जाना चाहिए। वस्तुऍं साफ करने तथा सही स्थिति मे रखने के लिये तुरन्त प्रयत्न होना चाहिए। ऐसे काम प्रायः नौकरो पर या घर के दूसरे लोगो पर छोड़ दिए जाते है। समय काटने के नाम पर यह सब होता रहता है। ऐसी टाल-मटोल करने वाले, अपने स्वभाव और कौशल मे जो तीक्ष्णता का समावेश कर सकते थे, उस लाभ का अनुमान लगाना भूल जाते है। प्रश्न यह नही कि दूसरो के कधो पर खिसकाया गया काम कम महत्व का था या अधिक मूल्यवान। दूसरो की ओर खिसकाये गये काम के सम्बन्ध मे यह आशा नही की जा सकती कि वह सही समय पर सही रीति से सम्पन्न हो जायेगा। जो अनख, आलस्य स्वयं अपनाया गया है, उसे सहयोगी लोग क्यो न अपनायेगे ? इस प्रकार व्यवस्थाओ के अनेक छोटे-मोटे कामो मे औरो को फँसाने और स्वयं निश्चित हो जाने की आदत ऐसी है, जो प्रतिभा के विकास एव व्यवस्था बुद्धि के परिष्कार मे बहुत बड़ी अड़चन उत्पन्न करती रहती है।

सूझ-बूझ का सुनियोजित विस्तार हो

विकास की दिशा मे अग्रसर होने की प्रमुख पहचान यह है कि हर व्यक्ति अपने वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध मे व्यापक विचार करे। संभावित कठिनाइयो का अनुमान लगाये और उनके निराकरण का समय रहते उपाय-उपचार सोचे। भविष्य को अधिक उज्ज्वल बनाने के लिए ऐसी रूपरेखा बनाए, जो वर्तमान परिस्थितियो और उपलब्ध साधनो के सहारे अग्रगामी बनायी जा सके। वर्तमान को भविष्य के साथ जोड़ते हुए ही सुनिश्चित कदम बढ़ाने के निर्णय तक पहुँचना चाहिए।

प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने के अतिरिक्त देखना यह भी चाहिए कि हाथ मे लिए हुए काम क्या है ? उन पर तत्परता और तन्मयता केन्द्रित करने से ही यह संभव है कि बुद्धि की तीक्ष्णता, व्यवहार की कुशलता का अभ्यास बढ़े। हाथ मे आये कार्यों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करते रहने से जहाँ अपना साहस बढ़ता है, वहाँ दूसरी ओर कर्त्ता की वरिष्ठता पर विश्वास होता है और उस उत्साह मे अन्य लोग अधिक सहयोग देने या लेने के लिए लालायित रहने लगते है। यह उज्ज्वल भविष्य की ओर इंगित करने वाले अच्छे लक्षण है।

प्रतिभाशाली कहे जाने वालो मे से प्रत्येक मे व्यवस्था बुद्धि होती है। व्यवस्था तब बनती है, जब कार्य से सम्बन्धित समयगत आवश्यकता के तथा भावी संभावनाओ के सम्बन्ध मे जागरूकता बरती जाय और अधिक सही कल्पना कर सकने की क्षमता विकसित की जाय। साथ ही यह भी सूझ पड़े कि समस्याओ से निपटना और आवश्यकताओ को जुटाना किस प्रकार संभव हो सकता है ? भूतकाल के अनुभवो से लाभ उठाया जा सकता है, पर ऐसा नही हो सकता है कि किसी समय की, किसी की क्रियापद्धति का अनुकरण मात्र करके काम चला लिया जाय। परिस्थितियाँ बदलती रहती है, साथ ही हर किसी की शैली एवं विशेषता भी अपनी होती है। एक व्यक्ति जिस प्रकार, जिस राह से आगे बढ़ा हो, उसी का अनुकरण करके वैसी सफलता दूसरे भी प्राप्त कर लेगे, यह आवश्यक नही। होना यही चाहिए कि आज की अपनी परिस्थितियो के अनुरूप कदम बढ़ाये जाये। इसके लिए प्रत्युत्पन्नमति और सामयिक सूझ-बूझ की आवश्यकता पड़ती है।

अनुपयुक्त साथियो का चयन भी असफलता का ही निमित्त कारण बनता है। साधन थोड़े हो, हर्ज नही। साथी कम हो, तो भी काम चल जाता है, किन्तु उनका स्तर सदा ऊँचा ही रखना चाहिए। उनका मिल सकना अपनी चयन सम्बन्धी सूझ-बूझ पर निर्भर है। घटिया दृष्टि मे यही प्रमुख दोष होता है कि घटिया व्यक्तियो की ओर आकर्षित हो जाती है। उन्हे अपेक्षाकृत सस्ता देखकर ललचाती है। अन्तत: उनके सहारे जो कुछ बन पड़ता है, वह भी घटिया होता है और उनके द्वारा किया गया काम भी गये-गुजरे स्तर का होता है। इसलिए उपयुक्त कार्य के लिए उपयुक्त साथी चुनने चाहिए। यदि वैसा कुछ कर सकना संभव न हो, तो अधिक अच्छा यह है कि उतावली मे निजी कार्य हाथ मे लेने की अपेक्षा, किसी व्यवस्था बुद्धि वाले तंत्र के साथ सहायक बनकर काम किया जाय। इसमे भले ही श्रेय कम मिले, वेतन सीमित होने से महत्त्वाकांक्षा भी बड़ी न सधे, पर अनुभव तथा सूझ-बूझ का बढ़ना तो निश्चित ही है।

उथले दृष्टिकोण वाले मात्र इतना ही कर पाते है कि जो प्रयोजन सामने है, उतने भर की ही बात सोचे। उसके साथ जुड़ने वाले अनेक पक्षो के सम्बन्ध मे वे विचार नही कर पाते। पहले से यदि सम्बद्ध विषयो पर विस्तारपूर्वक विचार नही किया गया है, तो अनभ्यस्त परिस्थिति सामने आते ही किंकर्तव्यविमूढ़, हक्का-बक्का रह जाना पड़ता है। उस स्थिति को ताड़कर धूर्त लोग अनुचित लाभ उठाते हैं, गिरे मे दो लात लगाने का मजा लूटते है।

विकसित व्यक्ति की पहचान यह है कि वह अपनी ही नहीं, साथियो की प्रस्तुत या भावी समस्याओ के सम्बन्ध मे समय रहते विस्तृत विचार करे और किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचे। इतना ही नही इसकी पूर्व तैयारी मे भी लगा रहे।

मार वही खाते हैं, जो व्यापक जानकारी और अभीष्ट अनुभव एकत्र करने मे उपेक्षा बरतते रहते है। बहुज्ञ, दूरदर्शी, वस्तुस्थिति की गहराई तक पहुँचने वाले लोग, उलझनो को व्यावहारिक स्तर पर सुलझाने का प्रयत्न करते है। आवेशग्रस्त, आतुर या चिन्ता मे डूबते-उतराते रहने वाले लोग, अव्यवस्थित चित्त मे प्राय: कुछ ऐसा कर बैठते है, जिससे कठिनाइयाँ हल होने के स्थान पर और भी अधिक बढ़ जाती है। मानसिक सतुलन बनाये रहने पर ही कोई छोटी से लेकर बड़ी व्यवस्थाएँ बना सकने मे समर्थ हो सकता है।

युद्ध मोर्चे पर कितने ही सैनिक मरते और घायल होते रहते है। उनमे सेनापति के कोई निकटवर्ती या घनिष्ठ भी हो सकते है। उनका शोक मनाने वाला सेनापति क्षण-क्षण मे बदलती रणनीति को सही रूप मे सम्हाल ही न सकेगा और स्वयं को तथा समूची सेना को खतरे मे डालेगा। हानि हो या लाभ, दोनो ही परिस्थितियो मे जो आवेशग्रस्त नहीं होते, उन्ही के लिए यह संभव है कि वर्तमान का निरीक्षण और भविष्य का निर्धारण सही रूप मे कर सके। व्यवस्था के लिए मानसिक संतुलन बनाये रहने मे समर्थ होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

हर कार्य मे विचार-विनिमय की, सहयोग और आदान-प्रदान की आवश्यकता पड़ती है। यह मनुष्यो मे ही एक-दूसरे के बीच चलता है। सभी की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न होती है। स्वभाव सर्वथा एक जैसे ही हो यह आवश्यक नही। आपसी तालमेल बिठाने, कमियो को निबाहने और सहयोग के लिए आकर्षित करने की नीति ही सदैव काम देती है। समझदार उसे कहा जाता है, जो टूटे को बनाने और रूठे को मनाने का प्रयत्न करता है। वैमनस्य मे अपनी और पराये की हानि ही हानि है, जबकि स्नेह-सद्भाव बने रहने मे हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है। इस तथ्य को उन्हे तो समझना ही चाहिए, जो किन्ही व्यवस्थाओ को बनाये रहने का दायित्व सँभालते है।

शतरंज का खेल-खेलने वाले को अनेक गोटियो की चाल पर एक साथ नजर रखनी पड़ती है। जो एकाध पर ही ध्यान रखते और बाकी के सम्बन्ध मे कुछ सोचते नही, वे मात खाते है। प्रत्येक कार्य शतरज की तरह है। उसके हर पक्ष पर ध्यान रखना पड़ता है। कल्पना शक्ति का इतना विकास करना होता है कि सम्बन्धित सभी उतार-चढ़ावो पर पूरा ध्यान रहे।

नया कारखाना जमाना हो या बीमार फैक्टरी को नये हेरफेर के साथ नये स्तर पर नया मोड़ देना हो, तो उस निमित्त प्रखर कल्पना शक्ति द्वारा सम्बन्धित सभी पक्षो पर समुचित ध्यान देना होता है और तद्नुरूप जो

परिवर्तन किया जाना हो, उसका सरंजाम आद्योपान्त जुटाना होता है। यदि इसमे एक-दो छोटी-मोटी भूले भी रह जाये, तो उन्ही के कारण काम रुका पड़ा रहता है और ढेरो समय बर्बाद होता तथा ढेरो घाटा पड़ता है। कारखानेदारो को अपनी व्यवस्था के सभी पक्षो पर समग्र ध्यान देना पड़ता है। इतना सोचने से ही काम नही चल जाता कि उत्पादन कार्य होता रहे, वरन् कच्चा माल खरीदने, बने माल को बेचने के लिए विक्रेता और ग्राहक जुटाने की समूची प्रक्रिया ध्यान मे रखनी पड़ती है। सोचना यह भी होता है कि बाजार मे माल का स्तर या मूल्य टिक सकेगा या नही ? उधार देन-लेन को भी समय पर निपटाना पड़ता है। जिनकी इतनी विस्तृत और पैनी सूझ-बूझ है, व्यवस्था करना, कारखानो को चलाना उन्ही के लिए संभव है। जो एक ही काम को पकड़कर रह जाते है, वे कारखानेदार नही बन सकते, मात्र कर्मचारी भर रहकर दिन गुजारते है।

इमारते बनाने वाले कारीगर जिन्दगी भर उसी मजूरी मे लगे रहते है। पर जिनका दिमाग चलता है, वे निर्माण कार्य से सम्बन्धित सभी पक्षो को समझ लेते है। उसी अनुभव के आधार पर छोटे ठेके लेने लगते है और बड़े ठेकेदार बन जाते है। एक ही योग्यता वाले दो व्यक्तियो मे से एक का जहाँ का तहाँ बना रहना और दूसरे का कही से कही जा पहुँचना, यह सुनियोजित कल्पना शक्ति के होने न होने का चमत्कार भर है।

आयोजनो, समारोहो, उत्सवो, प्रीतिभोजो मे भी ऐसा ही बहुमुखी और भारी उतार-चढ़ाव वाला झंझट जुड़ा रहता है। जो सम्बन्धित पक्षो की समग्र कल्पना कर सकते है और उन्हे जुटाने के लिए आवश्यक आधार खड़ा कर लेते है, उन्ही को सफलता का श्रेय मिलता है। घटिया लोग थोड़ा सोचते और बहुत कुछ बिना सोचे छोड़ देते है, फलत· थोड़ी सी गलतियाँ सारा मजा किरकिरा कर देती है। नब्बे प्रतिशत किया गया परिश्रम, दस प्रतिशत रही हुई भूलो के कारण अपयश का निमित्त कारण बनता है। इसलिए अपेक्षा की जाती है कि व्यवस्थापक जन, सौपे गये कार्य से जुड़ी हुई गतिविधियो को आदि से अन्त तक सही कल्पना कर सकने की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए।

साहित्यकार अपनी संरचना का पहले आद्योपान्त खाका खड़ा करते हैं। उसे बार-बार सुधारते और अधिक ऊँचे स्तर तक पहुँचाने के लिए भरपूर प्रयत्न करते है। जो ऐसा नही कर पाते, उनकी रचनाएँ दोषपूर्ण रह जाती है। चित्रकारो, मूर्तिकारो, अभिनेता आदि कलाकारो के सम्बन्ध मे भी यही बात है।

पदो मे गवर्नर का पद सबसे बड़ा माना जाता है। इसका अर्थ भी 'मैनेजर' से मिलता-जुलता है। जो इस कला मे जितना प्रवीण है, वह अपने कार्यक्षेत्र मे उतनी ही अधिक सफलता प्राप्त करेगा और यशस्वी बनेगा। इस विशेषता के अभाव मे ही, साधन-सम्पन्न होते हुए भी लोग घाटा उठाते और असफल रहते देखे गये है। नेताओ मे यही गुण होता है कि वे न केवल अपने निजी काम सभालते है, वरन् सुनिश्चित क्षेत्र मे उन्हे जिन गतिविधियो को अग्रगामी बनाना है, उसके लिए दौड़-धूप करते और मानसिक ताना-बाना बुनते है। चुनाव जीतने की रणनीति ऐसे ही कौशलो पर, जोड़-तोड़ो पर निर्भर रहती है। किसानो से लेकर शिल्पियो तक मे से जिन्हे अधिक सफलता मिलती है और जो अधिक सम्मान पाते है, ऊँचा उठते है, उन्हे उनकी विकसित सूझ-बूझ ही काम देती है।

शारीरिक दृष्टि से आलसी और मानसिक दृष्टि से प्रमादी भी निकम्मो जैसी भूमिका ही निभाते है। पूर्व तैयारी न कर पाने पर, समय पर भाग-दौड़ भी बहुत करते है और आधा-अधूरा ही काम बन पड़ने के कारण घाटे मे भी रहते है। जो विद्यार्थी अपनी पढ़ाई मे सोते है, अस्त-व्यस्तता बरतते है, उन्हे फेल होते ही देखा गया है। खिलाड़ियो को भी इन्ही कमियो के कारण असफलता का मुँह देखना पड़ता है।

जिन्दगी जीना अपने आप मे एक बहुत बड़ा व्यवसाय है। सूक्ष्मदर्शी, क्रिया-कुशल, सुव्यवस्था का आश्रय लेने वाले ही अपने आयुष्य का ठीक तरह उपयोग कर पाते है। समय, श्रम, चिन्तन और कौशल को सही दिशा मे, सही योजना बनाकर जो जीवन पद्धति का निर्धारण करते है, उन्ही सूझ-बूझ के धनियो को महामानव बनने का श्रेय मिलता है। दीर्घसूत्री लोग तो हाथ मलते हुए ही रह जाते है।

अपनों को उत्कृष्टता के ढाँचे में भी ढाला जाय

समाज को अनेक वस्तुओ की आवश्यकता रहती है और उसकी पूर्ति के लिए बहुमुखी चेष्टाएँ होती रहती है। इस प्रयास मे इतना और जुड़ना चाहिए कि परिष्कृत व्यक्तित्वो का निर्माण सर्वोपरि है। उन्ही के पास वैयक्तिक और सामूहिक प्रयोजनो को पूरा कर सकने की क्षमता एवं साहसिकता होती है। शेष लोग तो खर्चने और बर्बाद करने मे ही लगे रहते है। वे उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष खड़ा करने मे ही अपने स्वभाव और प्रयास को निरर्थक करते रहते है। इनके द्वारा खोदी गयी खाई को भी वे प्रतिभाएँ ही भरती है, जिनका व्यक्तित्व उस स्तर की विशेषता से सम्पन्न होता है। इन्ही का उपार्जन देश-समाज की महती आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रमुख उपाय है।

प्रगति किसी भी क्षेत्र मे ही क्यों न हो, उसे प्रतिभाशाली लोग ही सम्पन्न करते है, यहाँ तक कि हेय दुरभिसंधियाँ रच सकना भी उन्ही से बन पड़ता है, फिर

श्रेष्ठता की दिशा मे बढ़ सकना तो उनके बिना बन ही कैसे पड़े ? सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रसंग यही है। इतिहास मे जिनने भी कुछ अविस्मरणीय काम किये है, उन सभी मे ऐसी प्रतिभा विद्यमान थी, जिसमे सज्जनता का समुचित समावेश रहा। इसी प्रयोजन मे अभिभावको और अध्यापको की सबसे बड़ी भूमिका रहती है। क्योंकि उठती उम्र उन्ही के संरक्षण मे गुजरती है। हरी लकड़ी को किसी भी दिशा मे मोड़ा जा सकता है। गीली मिट्टी से किसी भी प्रकार के बर्तन या खिलौने बन सकते है, किन्तु सूखी लकड़ी या मिट्टी, जैसी भी कुछ है, वैसी ही बनी रहती है। टूट जाती है पर बदलती नही। यही बात मनुष्यो के सम्बन्ध मे भी लागू होती है। तरुण हो जाने के उपरान्त प्रायः कम ही लोग सुधर पाते है।

परिवार की तरह विद्यालय भी सामूहिकता के साथ जुड़े हुए सद्गुणो के विकास का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकाल मे बालको को गुरुकुलो मे पढ़ने के लिये इसी दृष्टि से भेजा जाता था कि वहाँ की पारिवारिकता उच्च कोटि की रहने से, उसमे रहकर छात्रो के व्यक्तित्व-विकास का समुचित आधार मिल सके। वहाँ अभिभावक की भूमिका अध्यापक निभाते थे। माता का दुलार, संरक्षण एव समर्थन उन्हे गुरु पत्नी से मिल जाता था। ऐसी दशा मे छात्रो को घर छोड़ने का अभाव खटकता नही था।

इन दिनो शिक्षा प्रणाली की उस समग्रता मे बहुत कुछ कमी रह जाती है। सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा करके, किसी प्रकार पास होना ही एकमात्र लक्ष्य रह जाता है। अध्यापक और छात्र इतने भर से ही अपने स्कूली कर्त्तव्य की पूर्ति मान लेते है। जबकि होना यह चाहिए कि अभिभावको की कमियो को अध्यापक पूरा करे। इतना ही नही, सद्भाव भरा सम्बन्ध दोनों पक्षो मे इस स्तर का बना रहे कि व्यक्तित्व विकास सम्बन्धी परामर्श अध्यापको द्वारा दिये जाने पर छात्र उसे अपना सके।

पाठ्य-पुस्तको की पढाई आवश्यक तो है, पर समझना चाहिए कि इतना ही पर्याप्त नही। उठती आयु ही, प्रवृत्तियों को अपनाने की अवधि होती है। बड़े होने पर तो जो आदतें अपना ली जाती है, वे ही परिपक्व होती रहती है। उनमे सुधार करना कठिन पड़ता है। बचपन और किशोरावस्था में शरीर यात्रा के उपरान्त का अधिकांश समय स्कूली परिसर मे ही बीतता है। वहाँ अध्यापक वर्ग आमतौर से अभिभावकों की तुलना मे अधिक योग्य भी होता है। इसलिए आशा की जाती है कि उनके सम्पर्क में शिक्षार्थी न केवल पढाई अच्छी तरह पूरी करेंगे, वरन् उन सद्गुणों का अभ्यास भी करेंगे, जो घर की तुलना में स्कूलों के सहकारी वातावरण में अधिक अच्छी तरह उपलब्ध हो सकता है। अध्यापक यदि इस ओर भी ध्यान दें और सच्चे मन से प्रयत्न करें, तो अभिभावको की कमी को इन विद्या मंदिरो से पूरा किया जा सकता है। शिक्षा की समग्रता इसी प्रकार बनती है। अन्यथा उसे मात्र पढ़ाई का शिल्प-शिक्षण भर कहा जा सकता है।

कारीगरो के साथ रहकर श्रमिक जिस प्रकार उस विषय की योग्यता प्राप्त कर लेते है, यदि उतना ही स्कूलो मे भी बन पड़ा, तो समझना चाहिए कि गुरु-शिष्य परम्परा की गरिमा समाप्त हो गयी है। पढ़ाई तो घर रहकर भी की जा सकती है। ट्यूटर लगाकर या पत्राचार उपक्रम के सहारे भी पूरी की जा सकती है। स्कूलो की उपयोगिता तभी बनती है, जब वहाँ छात्रो को अपने व्यक्तित्व विकास का भी समुचित अवसर मिलता रहे। यह कार्य पढ़ाई जारी रहने के साथ भी चलता रह सकता है। इसके लिए छात्रो की उत्सुक जिज्ञासा और अध्यापको की गुरु-गरिमा को सजीव-सक्रिय बनाये रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। भले ही इसके लिए सरकारी अनिवार्यता न हो, पर उस पर कोई रोक भी तो नही है। अच्छाई सीखने और सिखाने के प्रयत्न तो सदा सराहे ही जाते है। इसमे छात्रो का हित होता है, अध्यापक की गरिमा बढ़ती है, अभिभावक इस सुयोग के लिए कृतज्ञ रहते है। समाज यह अनुभव करता है कि राष्ट्र को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने की महती सेवा-साधना शिक्षण तंत्र द्वारा सम्पन्न की गयी।

कारखानो मे मशीने, श्रमिक और अफसर काम करते है। उनके हर पक्ष की साज-सँभाल किये रहने वाले को ही मैनेजर कहते है। वह यह भी प्रयत्न करते है कि बने माल को खपाने के लिए ग्राहको को सतुष्ट रखने की व्यवस्था भी बनी रहे। कर्मचारियो को कर्तव्यनिष्ठ तथा कार्य कुशल बनाये रखना भी उनका दायित्व होता है। उसकी प्रतिष्ठा एवं पदोन्नति भी इसी पर निर्भर है। यही बात परिवार सचालन एवं स्कूली अध्ययन-अध्यापन पर लागू होती है। उस तंत्र का सुसंचालन ही उसकी सर्वतोमुखी सफलता का आधार है। प्रबन्धक बुद्धि यो आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक कार्यों मे भी इतनी ही अभीष्ट समझी जाती है, पर तब उसकी जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है, जब मनुष्य को अधिक शिष्ट, सभ्य और आदर्शवादी बनाने का लक्ष्य सामने हो। सरकस के प्रशिक्षकों को इसलिए अधिक सराहा जाता है कि वे अनगढ़ ही नहीं, खूँखार जानवरों को भी कलाकारों जैसे कौतुक करने के लिए अभ्यस्त बना लेते है। पारिवारिक वातावरण एवं स्कूल परिकर की सार्थकता-प्रतिष्ठा तब ही है, जबकि अनगढ़ स्तर के समुदाय को सुसंस्कारी बनाने में इस स्तर तक सफल हो सकें कि उनके माध्यम से प्रतिभाओं का निर्माण हो।

अभिभावक बच्चों को हँसाने, खिलाने, सजाने जैसे कृत्यों में ही लगे रहते है। उन्हें यह नहीं सूझता कि आँगन में खेलने वाले बालकों को यदि सुसंस्कारिता से

साँचे मे ढाला जा सके, तो वे अपनी गरिमा बढ़ाने और दूसरों की असाधारण सेवा-साधना कर सकने मे समर्थ हो सकते है। इसके लिए केवल हँसाने-खिलाने के कौतुक काम नही देते, वरन् उनकी प्रवृत्तियो का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करते हुए, उनमे उत्कृष्टता के बीज सावधानीपूर्वक बोये जाने चाहिए। यह कार्य उथली दृष्टि से नही हो जाता, वरन् उसी प्रकार करना होता है, जिस प्रकार स्वर्णकार सोने की डली को अपने हस्त कौशल के सहारे आकर्षक आभूषणो के रूप मे गढ़कर यशस्वी एवं लाभान्वित होता है। बालको के सम्बन्ध मे भी यही नीति अपनायी जानी चाहिए।

अध्यापको का काम भी इससे कम गंभीर एवं कम जटिल नही है। मोटेतौर पर, निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करा देना ही उनका काम माना जाता है। छात्र भी उतने से ही सतुष्ट हो जाते है और अभिभावक इससे अधिक आशा-अपेक्षा नही करते। यह शिथिलता, उपेक्षा एवं अपूर्णता तीनो ही पक्षो पर लांछन लगाती है और छात्र के भविष्य तथा समाज के प्रति कर्त्तव्य पालन मे एक बाधा बनकर अड़ी रहती है। अच्छे डिवीजन से पास होने और अच्छी-अच्छी नौकरी पा लेने भर से उसकी उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकती। कमाई की दृष्टि से तो कई बहुत कम पढ़े व्यवसायी भी उनसे कहीं अधिक कमा लेते है। शिक्षा की सार्थकता तब बनती है, जब उसकी छत्र-छाया मे अधिक सुसंस्कृत, अधिक प्रतिभावान एवं अधिक क्रिया-कुशल व्यक्तित्व का निर्माण हो। इसके लिए उपयुक्त वातावरण बनाना अध्यापक तंत्र का कर्तव्य है।

सामूहिक उपदेश देने भर से बात नही बनती, वरन् यह भी आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक छात्र की मन स्थिति एवं रुझान, प्रवाह पर भी ध्यान दिया जाय। उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध सूत्र जोड़ा जाय और परिस्थितियो के अनुरूप, ऐसा ज्ञान देते रहा जाय, जिससे भटकाव से बचना और प्रगति पथ पर सही रूप से चल सकना संभव हो सके। इसके लिये मार्गदर्शक का निज का व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए, जो न केवल ज्ञान की दृष्टि से वरन् चरित्र की दृष्टि से भी प्रभाव छोड़ने मे समर्थ हो। जिन विद्यालयो के छात्र न केवल बुद्धिमान वरन् चरित्रनिष्ठ एवं समाजनिष्ठ बनकर निकले, समझना चाहिए कि शिक्षा को सार्थक करने वाली विशिष्टता बन पड़ी। हर शिक्षक, हर विद्यालय इन विशेषताओ को उत्पन्न करने के लिए प्राण-प्रण से प्रयत्न करे तभी उसका गौरव है।

उद्योग व्यवसाय के क्षेत्र में भी कारखानो, दफ्तरो के अन्तर्गत बड़ी जनसंख्या काम करती है। यदि वहाँ श्रमिको को रोटी और मालिको को रोजी भर मिल सकी तो समझना चाहिए कि यहाँ शरीर रक्षा मे काम आने वाले निर्वाह भर की व्यवस्था है। इतना ही पर्याप्त नही, होना यह भी चाहिए कि जितने व्यक्ति जिस परिकर मे काम करते हैं, उन्हे जीवन के हर क्षेत्र मे कर्त्तव्य-परायण होने की शिक्षा-प्रेरणा भी मिलती रहे। वे न केवल कारखाने के प्रति निष्ठावान रहें, वरन् अपने निजी जीवन मे भी क्रिया-कुशल, सुव्यवस्थित एवं नीतिवान बनकर रहे। राष्ट्रीय प्रगति का वास्तविक आधार उत्पादन भर बढ़ा लेना नही है, वरन् यह भी है कि नागरिको मे आदर्शवाद के प्रति निष्ठा और समाज मे सद्भाव बनाये रहने वाली शालीनता अपनाये रहने की लोक रुचि समुन्नत स्तर की बनी रहे। ऐसा प्रशिक्षण एवं वातावरण भी उन सभी परिसरो मे होना चाहिए, जहाँ अनेक लोग एकत्रित होते है। भले ही वे रोटी पाने के लिये आते हों, पर उन्हे वहाँ से वेतनो के अतिरिक्त ऐसा उत्साह भी साथ लेकर लौटना चाहिए, जो निजी जीवन को मानवी मर्यादाओ के अनुरूप विकसित कर सके और अपने सम्बद्ध क्षेत्र मे श्रेष्ठता की छाप छोड़ सके। जहाँ प्रत्यक्ष प्रयोजनो के लिये कार्यक्रम बनते है, वही एक कड़ी यह भी जुड़ी रहनी चाहिए कि बिना किसी दबाव के जुड़े हुए घटक सिद्धान्तवादी और कर्तव्य-परायण बन सकें। इस व्यवस्था के बन पड़ने पर वे दफ्तर एवं कारखाने सराहने योग्य बन सकते है, जहाँ अभीष्ट उत्पादन ही नहीं होता, वरन् लोगो को चरित्रो को उत्कृष्टता के ढाँचे मे ढाला जाता है।

कामगार अधिक सुविधा चाहते है और मालिक अपने लाभांश अथवा निर्धारण की पूर्ति भर से संतुष्ट हो जाते है। होना यह भी चाहिए कि जैसे सेना मे युद्ध कौशल की तरह ही अनुशासन, देशभक्ति एवं कर्त्तव्य पालन सिखाने के लिए प्रयत्न किया जाता है, वैसा ही व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रेरणा उन सभी संस्थाओ मे संचालित हो, जो छात्रो या व्यक्तियो को अपने साथ जोड़कर रखती है।

महत्त्वाकांक्षा व्यवस्था बुद्धि की

मनुष्य स्वभावतः महत्त्वाकांक्षी है। सुखोपभोग की इच्छा हर प्राणी में पायी जाती है। इसी हेतु वह अनेक प्रकार के क्रियाकलापों मे संलग्न रहता पाया जाता है। घटिया स्तर के व्यक्ति मात्र शरीरचर्या तक सीमित रहते है। वे अच्छा खाने, अच्छा पहनने, मनोरंजक दृश्य देखने, कामुकता की ललक सँजोने मे लगे रहते है। शृगार सज्जा इसी के अन्तर्गत आती है। इसके एक कदम आगे बढ़ने पर महत्त्वाकांक्षी के मन को उल्लसित करने वाले पक्ष सामने आ खड़े होते है। ठाट-बाट, सम्पत्ति संग्रह, पदवीधारी, सत्ताधारी होने की इच्छाएँ मन क्षेत्र मे ही उठती है। दूसरो से अधिक समर्थ-सम्पन्न होने की अभिलाषा से प्रेरित होकर लोग अनेक प्रतिस्पर्धा मे उतरते है और विजयी होने पर गर्व जताते है। चुनाव जीतने मे लोकसेवा की भावना कम और अपने को विशिष्ट सिद्ध करने की आकांक्षा अधिक होती है। अखबारो मे नाम

छपाने, समारोहो मे प्रमुख पद पर आसीन होने, तीर्थ यात्रा आदि के माध्यम से लोगो की दृष्टि मे धर्मात्मा जँचने जैसे ताने-बाने इसीलिए बुने जाते है। विवाह-शादियो, प्रीतिभोजो मे खर्चीली धूम-धाम खड़ी करने मे भी अपनी सम्पन्नता का विज्ञापन करने का भाव ही प्रधान होता है। निर्वाह के साधन तो सरलतापूर्वक कम समय और कम परिश्रम मे भी जुट सकते है, पर निरन्तर व्यस्तता से ग्रसित रहने का प्रमुख कारण एक ही पाया जाता है-दूसरो की तुलना मे अपनी विशिष्टता सिद्ध करना। इसी का सरजाम जुटाने मे जीवन का अधिकांश समय, श्रम एवं कौशल खप जाता है।

यह भुला दिया जाता है कि संसार मे एक से एक बढ़कर बड़े आदमी भरे पड़े है। उनकी तुलना मे भरपूर प्रयत्न करने पर भी कदाचित् अपनी बढ़ी-चढ़ी सफलता भी नगण्य समझी जा सके। फिर उत्साह तभी तक रहता है जब तक इच्छित वस्तु या स्थिति प्राप्त नही हो जाती। उपलब्धि के कुछ क्षण ही पानी के बबूले जैसा उत्साह प्रदान करते है। इसके बाद तो जो मिलता है, उसका बोझ और दायित्व वहन करते रहना ही कठिन पड़ जाता है। विवाह से पूर्व जोड़ीदार के सम्बन्ध मे परी लोक जैसी कल्पनाएँ मस्तिष्क मे ज्वार-भाटे की तरह उठती रहती है। पर जब कुछ ही दिन मे गृहस्थी की भारी-भरकम गाड़ी खीचने की बारी आती है, तब पता चलता है कि ललक ने सुविधा कम और झंझट बहुत भारी लाद दिया। जो पाया है, उसे बनाये रहना भी कठिन होता है। ईर्ष्यालु उठ खड़े होते है और छीनने या नीचा दिखाने की दुरभिसंधियाँ रचने लगते है। फिर जो हर्ष या यश मिला था, वह भी थोड़े ही समय स्थिर रहता है। व्यस्तताग्रस्त दूसरे लोग तो उसे कब तक स्मरण रखे रहेगे। स्वयं अपने को ही अपनी पिछली बाते याद नही रहती।

इन सब तथ्यो का गम्भीर विवेचन करने वाले तत्त्वदर्शियो ने क्षुद्र महत्त्वाकांक्षाओ को हेय माना है। उनकी उपमा बाल कौतुक से दी है और कहा है कि जीवन को सार्थक बनाने वाले विचारशीलो को इस क्षुद्रता भरी भूल-भुलैया से बचना चाहिए। शक्ति गँवाने और बदले मे मिथ्या अहंकार सिर पर लाद लेने मे कोई बुद्धिमानी नही है। आकाक्षा से शक्ति उत्पन्न होती है और प्रयास मे निरत रहने का उत्साह उभरता है। इस तथ्य को प्रगति की प्रारम्भिक स्थिति के अनुरूप मानते हुए भी, यह देखना चाहिए कि क्या इनकी अपेक्षा, ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्धारणो का चयन किया जा सकता है, जो आत्म-सतोष के साथ-साथ चिरकाल तक टिकने वाला श्रद्धा भरा लोक सम्मान प्रदान कर सके ? इस प्रकार का चयन न कर पाने मे ही लोग अजगर को खिलौना मानकर उसकी ओर लपकते और लाभ के स्थान पर भारी घाटे मे रहते है।

उच्चस्तरीय महत्त्वाकांक्षा एक ही हो कि अपने को इस स्तर तक सुविकसित बनाया जाय कि दूसरो का मार्गदर्शन कर सकना संभव हो सके। यही सच्चा नेतृत्व है। अभिनेता स्तर के नेता क्षणिक उथली और सस्ती वाहवाही लूटकर अपना मन बहलाते है। इसके लिए जो प्रपंच रचने पड़ते है, उसी मे अपनी बहुमूल्य क्षमता खप जाती है। यदि उसका सदुपयोग हुआ होता, तो अपना और दूसरो का कल्याण कर सकने का ऐसा सुयोग बन पड़ता, जिसका अनुकरण, अभिनन्दन करते हुए लोग अपने को धन्य मानते रहते।

सेवा का प्रत्यक्ष पक्ष दीन-दुखियो की सेवा करना, पिछड़ो को ऊँचा उठाना, पीड़ितो की व्यथा पूछना, अभावग्रस्तो के लिए साधन जुटाना है। यह सभी कार्य उचित है और दया-धर्म की अभिवृद्धि करते है। अपने निर्वाह की तरह दुखियारो को भी अपने सुख-साधनो मे सहभागी बनाना मानवोचित कर्तव्य है। इसका निर्वाह हर सद्गृहस्थ को करना चाहिए।

इससे ऊँची दूसरी सेवासाधना है, जिसे धर्म धारणा कहा जाता है। इसका स्वरूप है, अव्यवस्था को व्यवस्था में और अनगढ़ता को सुसंस्कारिता मे बदलने वाले मार्गदर्शन हेतु कटिबद्ध होना। यही सच्ची सेवा है। इसी पर वैयक्तिक और सामूहिक प्रगति का आधार बनता है। लोग अभावो से जितने पीड़ित है, उसकी अपेक्षा कही अधिक इसलिए दुखी है कि वे प्रगति और शान्ति का मार्ग ढूँढ़ने और अपनाने का सुयोग प्राप्त न कर सके। इस अभाव की पूर्ति कर सकने वाले ही भौतिक एव आध्यात्मिक अभ्युदय का राजमार्ग विनिर्मित करते है। साधु-ब्राह्मण, पुरोहित और लोक सेवी इसीलिए जन-जन के श्रद्धा भाजन बनते है कि उनने अपने जीवन भर, सर्व साधारण को अधिक उत्कर्ष के मार्ग पर चलाने का प्रयत्न किया और उसमे तत्परता बरतने के कारण सफलता भी पायी। ऐसे मार्गदर्शको को ऋषिकल्प माना जाता है और उनकी गणना भूसुरो मे, धरती के देवताओ मे होती है।

किसी समय इसी समुदाय की बहुलता थी, फलत. सतयुगी वातावरण बना रहा। स्वल्प साधनो मे ही लोग हिल-मिलकर रहते मिल-बाँटकर खाते, स्नेह-सौजन्य बरतते एवं परिस्थितियो को स्वर्गोपम बनाते थे। यह भावना, विचारणा और क्रिया-कलाप का स्तर ऊँचा उठाने की ही परिणति थी कि मनुष्य मे देवत्व की झलक-झाँकी का आभास मिलता रहा। आज की विषम परिस्थितियो मे ऐसे मार्गदर्शको की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है। उन्ही के अभाव मे सर्वत्र समस्याओ और विपत्तियो का सामना करना पड़ रहा है। अच्छा होता, मनीषी वर्ग की प्रतिभाएँ अपनी लेखनी, वाणी और आदर्शवादी जीवनचर्या के आधार पर पुरातन ब्राह्मण धर्म का परिपालन करती और पिछड़ेपन को सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता मे परिवर्तित कर सकती। इस समूची प्रक्रिया को सुसस्कारिता का

अभिवर्धन कह सकते है। धर्म और अध्यात्म का यही वास्तविक क्षेत्र भी है।

इस क्षेत्र मे प्रवेश करने वालो को लोभ, लिप्सा और पारिवारिक मोह पर अंकुश रखने की तरह ही लोकेषणा से भी बचना चाहिए। नेता कहलाने के प्रलोभन में, तथाकथित लोकसेवी आपस मे बुरी तरह टकराते देखे गये हैं। इससे उस समूचे तंत्र के प्रति अश्रद्धा फैलती है, जिसकी सेवा करने की दुहाई उन लोगो द्वारा दी जाती है। सार्वजनिक संस्थाएँ प्राय: इसी एक चट्टान से टकराकर टूटती और डूबती रही है, क्योंकि कितने ही महत्त्वाकांक्षी अपनी वरिष्ठता के लिए, अन्य साथियो को नीचे गिराने के लिए मल्लयुद्ध करते रहे। इस खतरे को ध्यान मे रखते हुए लोकसेवा क्षेत्र मे प्रवेश करने से पूर्व ही अपने आपको अति विनम्र बना लेना चाहिए। बड़प्पन का श्रम दूसरे साथियो को देने और स्वयं को अकिंचन स्वयं सेवक मानते हुए परम पुरुषार्थ करने मे निरत रहने की मन स्थिति परिपक्व कर लेनी चाहिए। ऐसे लोग किसी भी पंक्ति मे गिने जाते रहे, पर वे सबके मन.मस्तिष्क मे राजहंस की तरह सम्मान पाते रहेगे।

लौकिक क्षेत्र मे व्यवस्थापक का पद सर्वोच्च है। अपना काम तो किसी प्रकार सभी निपटाते है, पर महत्वपूर्ण वे है, जो सम्बद्ध तंत्र के हर पक्ष पर ध्यान रखते और उसकी व्यवस्था बनाते है। सरकारी काम-काज मे जनरल मैनेजर का पद सर्वोपरि होता है अँग्रेजी राज मे भारत का सर्वोच्च अधिकारी गवर्नर जनरल कहा जाता था। गवर्नर का अर्थ है, ''व्यवस्थापक'' जो व्यवस्थित रहता और व्यवस्था बनाना जानता है। समझना चाहिए कि उसकी गरिमा एव उपयोगिता ऊँचे दर्जे की है। कारखानो को, व्यवसायो को, समुदायो को, योजनाओ को ऐसे ही लोग सफल बनाते है।

जिन्हे छोटे या बड़े परिवार की सुव्यवस्था बनाकर सफलता के किनारे पर पहुँचने की महत्वाकांक्षा हो, उन्हे सर्वप्रथम अपने आपको व्यवस्थित करना चाहिए। वाणी की मधुरता इस संदर्भ मं प्रथम गुण है। मीठा बोलने वाले विरोधी, प्रतिस्पर्धी का भी मन जीत लेते है, जबकि कटुवादी, कर्कश प्रकृति के अशिष्ट व्यक्ति बिना कुछ हानि पहुँचाए, सम्पर्क में आने वालो के मन मे अश्रद्धा उत्पन्न करते रहते है। उनके मित्र कम और शत्रु अधिक होते है। अधिकतर तो लोग उनसे बचते ही रहते है।

मधुर बोलने का अर्थ चापलूसी नही है और न यह है कि ऐसा कुछ कहा जाय, जो वास्तविक नही है। जो सहयोग अपने से न बन पड़े, उसके लिए झूठे आश्वासन देते समय तो अच्छा लगता है, पर पीछे जब उपेक्षा बरतती देखी जाती है, तो फिर मिथ्याचारी होने का लाछन लगता है। अस्तु, मधुरता के साथ स्पष्टवादिता भी जुड़ी रहनी चाहिए। यह शिष्ट भाषा मे शालीनता का निर्वाह करते हुए, हँसते-मुस्कराते अपनी विवशता स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा जा सकता है कि दूसरा बुरा माने बिना वस्तुस्थिति को समझ ले। वाणी की सुसंस्कारिता का स्वरूप इसी प्रकार बनता है।

अपने समय का नियोजन व्यवस्थापक की दूसरी विशेषता है। जो समय का विभाजन ठीक तरह नहीं कर पाता, अस्त-व्यस्तता के बीच अपनी दिनचर्या गुजारता है, उसके लिए दूसरे साथियो को वैसा उपदेश देने पर उचित प्रभाव नही पड़ता। अनुशासन के अनेक पक्ष है। उन्हे नियमितता भी कह सकते है और लगन या जिम्मेदारी का निर्वाह भी। इसी प्रकार स्वयं व्यवस्थित रहने वाले के साथी भी, संचालक की प्रकृति, मनोरथ, मर्जी, अपेक्षा सभी समझ जाते है और तद्नुरूप आचरण स्वेच्छापूर्वक करने लगते है।

उचित रीति से काम न होना या व्यवहार मे गैर जिम्मेदारी बरते जाने पर अप्रसन्नता होना स्वाभाविक है। पर उसे इस प्रकार व्यक्त नही करना चाहिए कि गलती करने वाला शरमाकर उसे सुधारने की अपेक्षा, कटुता को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना ले और अधिक उद्दण्डता पर उतरे। इसमे तो दूनी हानि है। अच्छा हो उसके पिछले अच्छे कार्यों की कुछ चर्चा करते हुए इस प्रकार की भूल किये जाने पर आश्चर्य भर प्रकट किया जाय और उसे शरमाने, सुधरने का अवसर दिया जाय। यह नीति ऐसी है, जिससे वर्तमान गलती की क्षतिपूर्ति करने का अवसर मिल जाता है।

अति घनिष्ठता और अति शत्रुता के दोनो ही अतिवाद किसी व्यवस्थापक के स्वभाव मे नहीं होने चाहिए। मध्यवर्ती व्यवहार से ही वास्तविकता निभती है। अवांछनीय दबाव डालने की स्थिति तभी आती है, जब मध्यवर्ती सौजन्य से हटकर व्यवहार मे अतिवाद का छिछोरापन भर लिया जाय। इस भूल को न करने पर अनेको असमंजस भरे क्षण आने से सहज बचा जा सकता है। स्वयं और साथियो के तनाव मुक्त रहने, रखने की आदत बनाना ही बड़प्पन है। तनिक-सी प्रतिकूलता मे खिन्न-उद्विग्न हो जाने और तनिक सी सफलता मे शेखी बघारने लगने की आदते बहुत बुरी है। गम्भीर लोग आमतौर से हर स्थिति मे सतुलन बनाए रखते है। मुस्कराते रहने की मुद्रा बनाए रहते है। ऐसे संतुलित मन.स्थिति मे ही प्रतिकूलता से निपटने और अनुकूलता लाने के लिए नया प्रयत्न करने की सूझ उभरती है। आवेशग्रस्त तो आपा खो बैठने पर दुहरी मुसीबत खड़ी कर लेते है।

कमजोरियो और खराबियो को सहन न करने की नीति अपनायी जानी चाहिए। उनके बारे मे अपनी सहमति वाली प्रतिक्रिया व्यक्त करने मे चूकना नही चाहिए। गलतियो के प्रति आरम्भिक उपेक्षा बरतने पर, उन्हे दूसरे लोग अपना अधिकार मानने लगते है और अभ्यस्त हो जाने पर उन्हे छोड़ने मे अपने साथ अन्याय हुआ समझने

लगते है। ऐसे उदाहरण भी देने लगते है कि अमुक की गलतियाँ सहन की गईं और हमे धमकाया गया। ऐसे अवसर नही आने पाये, इसलिये उत्साहीजनो की प्रशंसा करने और लापरवाही बरतने वालो को टोकने का क्रम जारी रहना चाहिए। इस सुधार-परिष्कार का क्रम समय के अनुरूप बनाए रखना हर व्यवस्थापक के लिए आवश्यक होता है। यो अपमान, सौहार्द्र, सौजन्य हर किसी के साथ बरते जाने का उपक्रम रहना चाहिए। इससे पिछली कहा-सुनी को लोग भुला देते है और सद्भावना की छाप बनाए रहने पर वफादार बने रहते है।

मनुष्यो के बीच खाई प्राय: गलतफहमियो के कारण खुदती है। वास्तविक कारण कम और काल्पनिक भ्रम अधिक गड़बड़ी फैलाते है। इसलिए होना यह चाहिए कि जहाँ भी जिनके बीच भी जब गलतफहमी पनप रही हो, तभी उसे आमने-सामने या बिचौलियो की मारफत निरस्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। गलतफहमियाँ पैदा न होने पाये, न पनपे, न बढ़े, इसके लिये हर व्यवस्था बुद्धि को, सम्पर्क के लोगो को वस्तुस्थिति से अवगत कराते रहने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिक जिम्मेदारी और अधिक वफादारी रखे रहने पर व्यक्ति किस प्रकार आगे बढ़ता और नफे मे रहता है, यह तथ्य यदि परिवार के लोगों को हृदयंगम कराया जाता है, तो वे भटकाने वालो के चंगुल मे फँसने से बचे रहते है।

प्रतिकूलताएँ आती है और प्रतिकूल व्यवहार लोग करते ही रहते है। इतने पर भी उनसे अपने चिन्तन को प्रभावित नही होने देना चाहिए। अपना चिन्तन सदा सकारात्मक रहना चाहिए। सोचना यही चाहिए कि बिगड़ी को बनाया कैसे जाय ? क्षति की पूर्ति कैसे हो ? खाई किस प्रकार पटे ? खोया सद्भाव कैसे वापिस लौटे ? इसके लिये धैर्य रखना और समय पर उचित उपक्रम अपनाया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नही कि अनीति के आगे झुका और तुष्टिकरण की नीति अपनाकर अवांछनीय तत्वो का हौसला बढ़ाया जाय। वरन् यह है कि विद्वेष के कारण अपना चिन्तन नकारात्मक-निषेधात्मक एवं आक्रमक न होने लगे। ईर्ष्या, प्रतिशोध, प्रत्याकरण की नीति अपनाने मे बहादुरी तो अवश्य प्रतीत होती है, पर उसके कारण एक ऐसा कुचक्र चल पड़ता है, जिसमे शक्ति का अपव्यय ही होता है और जो किया जा सकता था, वह न बन पड़ने के कारण अन्तत: विजयी होने पर भी पराजित होने जैसा प्रतिफल सामने आता है। व्यवस्थापक को पहले अपनी व्यवस्था बनानी चाहिए, ताकि दूसरे व्यक्तियो तथा कार्यों को भी ठीक तरह सम्हाल सकना संभव हो सके। यही व्यवस्था बुद्धि की सच्ची परख है।

●

प्रबन्ध-व्यवस्था—एक विभूति, एक कौशल

इस अभाव की पूर्ति करनी ही होगी

घड़ी जैसी अनेक पुर्जो वाली मशीन तभी ठीक प्रकार बन और चल पाई है, जब उनके सभी घटको का निर्माण ठीक तरह किया गया हो, उनकी गतिविधियो के बीच संतुलन बिठाया गया हो। इस व्यवस्था के बिना उस निर्माण मे लगा हुआ धन और श्रम व्यर्थ ही चला जाता है। घड़ी निकम्मी पड़ी रहती है। यही बात अन्य छोटी-बड़ी मशीनो पर पूरी तरह लागू होती है। उसके निर्माता तभी अच्छा लाभ और यश कमा पाते है, जब उनके पुर्जे संतुलित रीति से बने और फिट किए गये हो।

स्रष्टा की महिमा इसीलिए भूरि-भूरि प्रशंसा के योग्य है कि उसमे व्यवस्था-क्रम का आश्चर्यजनक सुनियोजन हुआ है। उसमे कमी या गड़बड़ी रहती तो अनियंत्रित, स्वेच्छाचारी ग्रह-गोलक आपस मे टकराते और टूट-फूटकर नष्ट होते रहते। प्राणियो और वनस्पतियो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। वे इसीलिए एक व्यवस्था के अनुरूप उगते, बढ़ते और परिवर्धित होते रहते है। यहाँ तक कि खुली आँखो से न दीख पड़ने वाले अणु-परमाणु तक अपने छोटे कलेवर मे विशाल सौर मण्डल जैसी गतिविधियो के अनुकरण का उदाहरण प्रस्तुत करते रहते हैं। यदि इस विशाल ब्रह्माण्ड व्यवस्था मे कही भी असन्तुलन रहा होता, तो यह समूचा पसारा कूड़े-करकट की तरह दीख पड़ता और उस व्यवस्था के बीच टूट-फूट का परिचय मिलता रहता। किसी भी वस्तु को अपना काम कर सकना असम्भव हो जाता। सृष्टा की अनेक महिमाओ मे उसके सुनियोजन का कौशल नितान्त प्रत्यक्ष और सर्वत्र आश्चर्य भरा दीख पड़ता है। सृष्टि का सौन्दर्य और उपयोग इसी व्यवस्था कौशल के आधार पर गतिशील हो रहा है।

शरीरो की सरचना और मन:सस्थान की बनावट मे भी चकित करने वाला ताल-मेल देखा जाता है। जहाँ भी गड़बड़ी खड़ी हुई, वहाँ विग्रह-विद्रोह खड़े हो जाते है और आधि-व्याधियों का दौर चल पड़ता है। परिवार तत्र जीवित प्राणियो का एक छोटा-सा तंत्र है। यदि उसके सभी नियमोपनियम टीक तरह से पलते रहे तो समझना चाहिए कि अपने छोटे घर-घरोदो के आँगन मे स्वर्ग जैसा आनन्द मचलता-इठलाता देखा जा सकेगा। यदि पारस्परिक व्यवहार और क्रम-व्यवस्था मे अनियमितता घुस पड़े तो समझना चाहिए कि यहाँ देवासुर संग्राम का उदय हुआ। एक-दूसरे की टाँग खीचने का सिलसिला शुरू हुआ और यह समूचा परिवार नरक रूप मे परिणत हुआ। यहाँ परस्पर विरोधी परिस्थितियो के उत्पन्न होने का एकमात्र कारण यह है कि व्यवस्था बुद्धि अपनी जगह पर से हट गई है और मनमानी उच्छृंखलता ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है।

व्यवसाय पूरी तरह व्यवस्था बुद्धि की अपेक्षा करते है। उसमे गड़बड़ी रहे तो पड़ोसी जिस काम मे अच्छा-खासा लाभ उठाते है, वहाँ लापरवाही और गैर जिम्मेदारी के बीच चलने वाले व्यवसाय घाटा उठाते और अन्ततः दिवालिया बनते देखे गये है। यही बात प्रगति के हर क्षेत्र मे लागू होती है। व्यवस्था की पल-पल पर क्षण-क्षण पर आवश्यकता पड़ती है। इसमे जहाँ जितनी कमी या विद्रूपता पाई जायेगी, वहाँ उतना ही असन्तोष छाया मिलेगा। गड़बड़ियो का दोषारोपण एक-दूसरे पर मढ़ रहा होगा। कुल मिलाकर वह तत्र लड़खड़ा जाएगा और उपहास, लांछन और भर्त्सना का भाजन बनेगा

हर छोटे-बड़े काम को करने से पहले उसकी सही योजना बनानी पड़ती है और सफलतापूर्वक कार्यान्वित करनी पड़ती है। यदि ऐसा न हो तो समझना चाहिए कि घर-आँगन का साफ-सुथरा रखना, ठीक तरह रसोई बनाना, खाना, नियत आजीविका मे खर्च चला सकना तक कठिन पड़ जायेगा। ऐसा ही प्रमाद बरतने पर अच्छी आमदनी वाले भी तंगी सहते और कर्जदार रहते है।

योजनाक्रम को योजनाबद्ध रीति से चला सकना अपने ढंग का अति महत्वपूर्ण कला-कौशल है। जिन्हे यह आता है, वे गई-गुजरी परिस्थितियो एवं कठिनाइयो के बीच रहते हुए भी प्रगति का मार्ग ढूँढ निकालते है और उस पर समझदारी के साथ चलते हुए उन्नति के उस शिखर तक जा पहुँचते है, जिसमे सफलता, प्रसन्नता और प्रतिष्ठा का भरा-पूरा वातावरण रहता है।

बुद्धिमत्ता की जाँच-परख के अनेको आधार है। उसके आधार पर अपने-अपने काम में सभी लोग सफलता पाते और लाभ उठाते हैं। किन्तु उन सभी सन्दर्भों मे सबसे प्रमुख गिनी जाने योग्य विभूति सुव्यवस्था की है, जो इस सम्बन्ध मे कुशल है, समझना चाहिए कि उसके

लिए पग-पग पर श्रेय प्राप्त करते चलना कुछ कठिन नही रह गया। इसके विपरीत जो जितना अस्त-व्यस्त, गैर जिम्मेदार और लापरवाह है, उसे उतना ही निकम्मा समझा जायेगा। भले ही उसके पास सम्पदा, शिक्षा, सुन्दरता जैसी विभूतियाँ कितनी ही क्यो न हो ? अकेली सुव्यवस्था ही है, जो अनेको गुत्थियो को सुलझाती है और अवरोधो के भँवरो से नाव को बाहर निकाल लेती है।

विकास प्रयोजनो के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनती है। काम-काज चलाने के लिए बजट बनते है। भवन बनाने के पूर्व आर्कीटेक्ट के उस नक्शे की आवश्यकता पड़ती है, जिसके अनुसार साधन जुटाने, पूँजी की व्यवस्था करने आदि की आवश्यकता पड़ती है। यदि इसकी उपेक्षा की जाय, तो जो बन पड़ेगा, वह कुरूप तो होगा ही, साथ ही ऐसी त्रुटियाँ भी बनी रहेगी, जो निर्माणकर्त्ता के लिए सदा सिर दर्द बनी रहे।

अधिकारी गणो मे सभी की उपयोगिता और प्रतिष्ठा है, किन्तु यदि उन सब मे सर्वोपरि दायित्व का पद देखा जाय तो वह व्यवस्थापक का ही मिलेगा। सरकारी तंत्र मे इसे मैनेजर, कन्ट्रोलर, सुपरिन्टेण्डेण्ट आदि नामो से जाना जाता है क्योकि उसी की समझदारी और नासमझी के आधार पर काम बनते-बिगड़ते रहते है। जो मार्गदर्शन कर सकता है, जिसमे किसी कार्य के साथ जुड़े हुए अनेकानेक प्रश्नो को समय रहते समझ लेने और तद्नुरूप समाधान निकालने की क्षमता है, समझना चाहिए कि वही अपने उपक्रम का मेरुदण्ड है। ऐसे व्यक्ति जहाँ भी दायित्व सम्भालते है, वही सफलता के चार-चाँद लगा देते है। साथियो की तुलना मे दस कदम आगे ही रहते है। ऐसे ही लोगो को सेना का सेनापति और कारोबार का मैनेजर बनाया जाता है। यदि उनकी समझदारी अनुभवो पर सही आकलन कर सकने की क्षमता पर आधारित रही तो समझना चाहिए कि सफलता की आधी मंजिल पार हो गयी। महत्त्वपूर्ण काम कर गुजरने वालो मे से प्रत्येक को दूरदर्शिता, व्यवहार कुशलता और प्रबन्ध शक्ति का परिचय देना पड़ा है। इसके बिना भटकने, खीजने, घाटा उठाने और अपयश बटोरने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नही लगता। यदि किसी तंत्र के सुसचालन का सौभाग्य उपलब्ध नही हुआ, वह किसी प्रकार लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते चलता तो रहेगा, पर दबाव बढ़ जाने पर जो हाथ मे है, वह भी गँवा बैठेगा और सर्वसाधारण की दृष्टि मे अयोग्य, अनाड़ी या उपहासास्पद ही बनकर रहेगा।

सस्थाएँ इसी आधार पर ही चलती है। कुशल संयोजक उन्हे उन्नति के शिखर पर पहुँचा देते है। अयोग्य के उस स्थान पर जा विराजने से पतन का सिलसिला चल पड़ता है और किये-कराये को चौपट करके रख देता है। सद्गुणो मे यदि प्रमुखता देने योग्य किसी को गिना जाय तो प्रथम स्थान व्यवस्था बुद्धि को ही देना पड़ेगा। वह विभिन्न प्रकृति के लोगो को एक धागे मे बाँधकर रखने मे सफल होती है। वही सकट की पूर्व सूचना देती है और साथ ही यह काम भी उसी का है कि समय रहते ऐसे उपाय खोज ले, जिसमे आशंकाएँ निरस्त होती चले और सुसंभावना समय-समय पर सामने आती रहे। सूत्र-सचालन के कार्य व्यवस्था बुद्धि वालो के हाथ जाकर, ही श्रेय प्राप्त करते और दूसरो के लिए उदाहरण बनते है।

प्रश्न यह उठता है कि क्या हर किसी के लिए इस महान् विभूति का सम्पादन कर सकना संभव है ? इसके उत्तर मे एक ही बात कही जा सकती है, मानसिक संरचना की दृष्टि से प्राय: सभी मनुष्य समान स्थिति के होते है। जन्मजात रूप से विशिष्ट प्रतिभा का चमत्कार जब कभी अपवाद रूप मे देखा जाता है। प्रगतिशीलता किसी भी स्तर की क्यो न हो, वह अपने ही लगन भरे प्रयत्नो से प्राप्त करनी पड़ती है। जन्म से कोई डाक्टर, वकील, प्रोफेसर, इंजीनियर आदि की विशेषता साथ लिए पैदा नही होता। इन्हे अर्जित करने के लिए सिखाने वाले विद्यालयो मे भर्ती होना पड़ता और व्यावहारिक अनुभव सिखाने वाले के मार्गदर्शन मे तब तक अनुभव अर्जित करना पड़ता है, जब तक कि उस विषय मे कुशलता उपलब्ध न कर ली जाय। इसमे सिखाने वालो का जितना श्रेय है, उससे अधिक सीखने वाले की दिलचस्पी, लगन और मेहनत का है। यदि ऐसा न होता तो एक ही विद्यालय मे, एक ही शिक्षण क्रम के अन्तर्गत रहने वाले छात्रो मे से कुछ उत्तीर्ण और कुछ अनुत्तीर्ण क्यो हो जाते ? प्रतिस्पर्द्धाओ मे प्राय वे ही उत्तीर्ण होते है, जो निर्धारित विषय की परिपूर्ण तैयारी मे जुटे रहते है। नकल-टीप के आधार पर, धन, रिश्वत आदि के सहारे जो किसी प्रकार उत्तीर्ण भी हो जाते है, उन्हे तब भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, जब सौपे हुए कार्य को ठीक प्रकार से नही कर पाते और अक्षमता के कारण पदोन्नति की दिशा मे आगे बढ़ ही नही पाते।

मस्तिष्कीय संरचना ऐसी है, जिसे काम देने और उत्साह भरे साहस के आधार पर विकसित होने का अवसर दिया जाय तो वह आशातीत गति से बढ़ता है, पर यदि उसका उपयोग न किया जाय तो सीलन मे पड़े रहने वाले चाकू की तरह उसकी धार भोथरी हो जाती है और जग चढ़कर निकम्मे स्तर का बना देती है। इच्छाशक्ति की महत्ता गाते-गाते मनोवैज्ञानिक थकते नही। संकल्प को प्रगति का मूलभूत आधार माना गया है। दिलचस्पी लेने वाले सम्पर्क परिकर से ही इतना कुछ सीख लेते है, जितना कि उपेक्षा वृत्ति वाले हजार कोशिश करने पर भी सीख नही पाते।

संसार मे असख्यो व्यक्ति ऐसे हुए है, जिन्हे किसी प्रकार सागोपाग प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर नही

मिला। सहायता करने वालो का भी कोई संयोग न बैठ सका, पर अपनी प्रबल उत्कण्ठा के बल पर उपलब्ध साधनो का टूटा-फूटा आश्रय लेकर ही आगे बढ़ते रहे। उत्कण्ठा का चुम्बकत्व अभीष्ट स्तर का आकर्षण बनाये रखता है और जहाँ-जहाँ से अपनी बिरादरी के बिखरे कणो को समेट-बटोरकर अपने ज्ञान भण्डार मे भर लेता है। वैज्ञानिक आविष्कारको मे से कितने ही ऐसे हुए है जिन्हे अपनी कल्पना, दिलचस्पी और मेहनत के आधार पर अनेको प्रयोगो का त्याग करना पड़ा और अनेको बार असफलता प्राप्त करने के उपरान्त भी निराश न होने तथा सतत प्रयास करते-करते शानदार सफलता मिली। जेल के एक कैदी से लेखक को यह जानने का अवसर मिला कि उसने बचे हुए समय का उपयोग लोहे के तसले को सलेट बनाकर ककड़ो से पेन्सिल का काम लेते हुए साथियो मे से जो कुछ जानते थे, उनसे पूछ-पूछकर अँग्रेजी पढ़ना-लिखना सीख लिया। एक पुराना अखबार कहीं से हाथ लग जाने पर उसी से पाठ्य पुस्तक का प्रयोजन पूरा कर लिया। विदेशो मे दिन भर मजदूरी करने वाले श्रमिको मे से कितने ही ऐसे होते है जो रात्रि पाठशालाओ मे दो घण्टे समय लगाते हुए धीरे-धीरे इच्छित भाषा के विद्वान, पदवीधारी बन जाते है। कोई प्रयत्नशील प्रकृति का व्यक्ति यह शिकायत करते नही सुना गया कि उसे इसलिए पिछड़ना पड़ा कि परिस्थितियाँ अनुकूल नही थीं। उदारचेत्ताओ ने आगे बढ़कर उस पर अनुदान नही बरसाये। स्मरण रखने योग्य तथ्य यह है कि मनुष्य को परावलम्बी स्तर का प्रकृति ने नहीं बनाया है। उसके पास एक ऐसा व्यक्तित्व जन्मजात रूप से विद्यमान है जो यदि चाहे तो अपने सकल्प, साहस और श्रम के बल पर ऐसे काम कर सकता है, जिनके सम्बन्ध मे साधन सम्पन्नो को भी आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है। वर्ल्ड रिकार्ड की गिनीज बुक मे ऐसे अनेको उदाहरण अंकित है, जिनने सर्वथा विपरीत परिस्थितियो मे से भी अपने सीमित साधनो के सहारे चकित कर देने वाली सफलताएँ अर्जित कर दिखाई। छोटे-से बड़े बनने वालों मे प्राय. प्रत्येक मे अपनी प्रचण्ड इच्छाशक्ति के सहारे आगे बढ़ने का साहस उभरा है। साहस ने शक्ति दी है और उसे सुनियोजित करके सामान्य से असामान्य बनने का अवसर मिला है।

प्रबन्ध कर सकने की क्षमता अर्जित कर लेना भी सभावित प्रगति प्रक्रिया से भिन्न नही है। सतर्कतापूर्वक ध्यान देने, बारीकी से साधनो को समझने और अवसर मिलते ही अभ्यास करने लगने से कितने ही व्यक्ति उन कार्यो को सफलतापूर्वक करने लगे, जिनके लिए वे आरम्भ से नौकरी भर करते थे और परिश्रम के बदले सीमित पैसे प्राप्त करते थे। साथी जन्म भर मजदूरी ही करते रहे, पर जिन्होने बारीकी से दृष्टि गढ़ाई और सीखने मे इच्छाशक्ति नियोजित की उनकी क्षमता सहज ही बढ़ती चली गई और एक दिन ऐसा आया कि वे उस रास्ते चलते हुए सीखे हुए कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न बना गये। 'मजदूर स्तर के व्यक्ति कारखानेदार बने और फलता-फूलता व्यवसाय चला सकने मे समर्थ हुए।' पिछड़ेपन को अपने साथ आजीवन लादे रहने वालो मे से अधिकांश ऐसे होते है, जो यथास्थिति से संतुष्ट रहते और आगे बढ़ने की उमंग को विकसित ही नही होने देते। प्रबन्ध शक्ति का विकास भी इसका अपवाद नही है। कोई यदि उस सन्दर्भ मे दिलचस्पी ही न ले, उत्सुकता ही न प्रकट करे, चिन्तन-मनन के तत्र को प्रसुप्त स्थिति मे ही पड़ा रहने दे, आस-पास की परिस्थितियो पर नजर ही न डाले और उनसे कुछ अनुभव सचित ही न करे, तो फिर मस्तिष्कीय क्षमता अपने आप कहाँ विकसित होने वाली है।

मनुष्यो मे से अनेको ऐसे होते है, जो देखने मे चलते-फिरते, काम करते और बोलते-चालते दीखते है। उन्हे साधारणतया जाग्रत ही कहा जायेगा, पर वस्तुत. उनकी सूक्ष्म दृष्टि सोई हुई रहती है। वे घटनाओ को देखते तो है, पर उनके साथ जुड़े हुए कारणो को समझने पर ध्यान नही देते। ऐसे लोग जिस-तिस प्रकार जिन्दगी के दिन ही पूरे कर पाते है। व्यक्तित्व का विकास न होने से, सूक्ष्म दृष्टि मे उभार न आने से वे नर-वानरो की तरह पेट और प्रजनन के कोल्हू मे ही पिलते रहते है। प्रगति उन्हे देखकर मुँह मोड़ लेती है।

इर्द-गिर्द के वातावरण का भी जन-साधारण पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। अनुकरण प्रिय प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य वही सीखता है, जो उनके समीपवर्ती वातावरण मे होता देखा जाता है। बच्चे परिवार मे बोली जाने वाली भाषा को अनायास ही सीख लेते और आहार-विहार की, आचार-विचार की शैली अपना लेते है, जो उनके निकटवर्ती लोगो के द्वारा प्रयुक्त की जाती है। लम्बे समय से हम लोग सामन्तशाही के उत्पीड़न मे रहते-रहते न केवल आर्थिक-सामाजिक त्रास सहते रहे है वरन् चिन्तन और चरित्र की उत्कृष्टता भी गवाँ बैठे है और फूहड़पन की रीति-नीति अपनाए रहने के अभ्यस्त हो गये है। ऐसा कुछ प्रकाश पुज समीप मे उगता नही जो शालीनता और जागरूकता की समन्वित शिक्षा देकर प्रगतिशीलता अपनाने के लिए प्रेरित कर सके। ऐसी दशा मे ऐसी पुस्तको का सहारा लेना ही अनिवार्य हो जाता है, जो अधिक सभ्य, सुसंस्कृत बनाने मे अधिक कर्त्तव्य परायण और सुव्यवस्थित बनाने का मार्गदर्शन कर सके। ऐसे घटनाक्रमो, व्यक्तियो एव प्रगतिशीलो को मस्तिष्क मे प्रवेश करा सके जो अनुकरणीय हो। ऊँचा उठने, आगे बढ़ने के उदाहरण प्रस्तुत कर सके। जो वस्तु प्रत्यक्ष सामने उपस्थित नही होती, उसकी जानकारी कराने के लिए चित्रो, मॉडलो का अवलम्बन करना पड़ता है। सभी आवश्यक वस्तुएँ लाईं और प्रत्यक्ष दिखाई नहीं जा सकती। उस अभाव की पूर्ति के लिए साहित्य, संगीत, चित्रकला, प्रतिमा आदि का आश्रय लेना पड़ता है। इन

दिनों जबकि निकटवर्ती लोगों में सुविकसित अनुकरणीय व्यक्तित्वों का अभाव है, तो उसकी पूर्ति के लिए आदर्शवादियों द्वारा अपनाई गई रीति-नीति, विचार शैली, कार्य पद्धति को विस्तारपूर्वक समझाने वाले साहित्य का आश्रय लिए बिना और कोई चारा नहीं रह जाता। सीखने और सिखाने के लिए इसी शैली का प्रयोग चिरकाल से होता आया है। अब भी उसी को खोजने, बनाने एवं प्रयोग में लाने की आवश्यकता है।

व्यावहारिक जीवन के उतार-चढ़ावों और प्रगति, प्रयत्नों के सम्बन्ध में वस्तुतः हमारे स्कूली पाठ्यक्रम में सुविस्तृत समावेश होना चाहिए था, क्योंकि राष्ट्र की वास्तविक समर्थता और सम्पन्नता उसके सुविकसित नागरिकों के गुण, कर्म, स्वभाव पर ही निर्भर है। यदि उसमें कमी रह गई तो समझना चाहिए कि पैसा बढ़ जाने पर भी सर्वतोमुखी प्रगति में कमी ही रह गई। यदि पाठ्य पुस्तकों में उसकी कमी है तो भी उस प्रसंग को अनदेखा नहीं किया जा सकता। बालकों से लेकर बड़ों तक को एक ही शिक्षण को प्रमुखता से मिलने की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे वे निजी जीवन में सच्चे अर्थों में सुयोग्य-समुन्नत बन सकें और सामूहिक जीवन के हर पक्ष को सुव्यवस्थित बनाने में अपने समीपवर्ती क्षेत्र में भाव भरी भूमिका निभा सकें।

इस प्रयोजन के लिए लोक शिक्षण की जो विधाएँ जहाँ उपलब्ध हों, वहाँ उनका प्रयोग करना चाहिए। लोगों को एकत्रित करने के लिए ऐसे आयोजन किए जा सकते हैं जो चलती-फिरती व्यक्तित्व विकास की आवश्यकता पूरी करते रह सकें। कुछ आयोजन परम्परागत रूप से भी सम्पन्न होते रहते हैं, जिनमें जनसमुदाय अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वतः ही एक स्थान विशेष पर अनायास ही पूर्व प्रचलन के अनुसार एकत्रित होता रहता है। ऐसे अवसरों को चूका नहीं जाना चाहिए। उनमें मात्र मनोरंजन या परम्परागत चिह्न पूजा ही नहीं चलती रहनी चाहिए वरन् व्यक्तित्व विकास की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को पूरा कर सकने वाले लोक शिक्षण को जोड़ने के लिए नये सिरे से नये प्रयत्न करने चाहिए।

अपने को इंजन स्तर का बनाया जाय

रेलगाड़ी में अधिक महत्त्व इंजन का होता है। उसे अति सावधानी के साथ कुशल निर्माताओं, समुन्नत प्रतिभाओं द्वारा बनाया जाता है। कारण कि पूरी रेलगाड़ी का वजन खींचने और अभीष्ट गति से घसीटते ले चलने की जिम्मेदारी उसी की होती है। इंजन गड़बड़ाने लगे तो समझना चाहिए कि रेलगाड़ी का नियत लक्ष्य तथा नियत समय में पहुँच सकना कठिन पड़ेगा। इसके विपरीत कमजोर डिब्बों को भी बलिष्ठ इंजन अपने बलबूते खींचता चला जाता है। ठीक यही उदाहरण प्रायः सभी सामूहिक क्रिया-कलापों पर लागू होता है।

जीवन का थोड़ा-सा अंश ही ऐसा होता है, जो नितान्त एकाकीपन के रहते हुए भी गुजारा जाता है। ऐसे समय नित्य कर्म, शयन, विश्राम जैसे ही होते हैं, पर उनकी गणना महत्त्वपूर्ण कामों में नहीं होती। औसत व्यक्ति को अपना अधिकांश जीवन अधिक मिल-जुलकर किये जाने वाले कार्यों का भागीदार रहते हुए ही व्यतीत करना पड़ता है। इसमें यों सभी घटकों को अपने-अपने जिम्मे के कार्य सही रीति से करने की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी यह आवश्यकता तो बनी ही रहती है कि सबका समन्वय करने, तालमेल बिठाने का कार्य कोई रेल के इंजन जैसी क्षमता सम्पन्न करती रहे। उसकी योग्यताएँ, निर्धारणाएँ यदि ठीक तरह चलती रहें तो ही किसी सामूहिक कार्य के सुनियोजित रूप में सम्पन्न होने की आशा करनी चाहिए। अनुभवहीन, अविकसित मानस वाला संचालक तो अपने साथी-सहयोगियों के श्रम को भी अस्त-व्यस्त कर देता है। इसलिए लोक नेतृत्व करने की क्षमता को अन्य बड़े महत्त्वपूर्ण कार्यों में सम्मिलित किया गया है। डॉक्टर, इंजीनियर, आर्कीटेक्ट, चार्टर्ड एकाउन्टेंट आदि का लम्बा शिक्षण काल इस आधार पर बनता है कि वे अपने दायित्वों के प्रति अधिक जागरूक, अधिक प्रवीण, परिष्कृत सिद्ध हो सकें। प्रबंधन का कार्य भी इसमें कम महत्व का नहीं है। वह साधारण श्रमिकों की तरह का ढर्रे का काम भारवाही पशुओं की तरह नहीं निपटता, वरन् सम्बन्धित परिकर के हर छोटे-बड़े विभाग पर पैनी दृष्टि रखता है और जहाँ कहीं गड़बड़ी की आशंका लगती है, वहाँ समय के पूर्व ही सचेत होकर समाधान निकालता और दुर्घटना घटित होने से बचा लेता है।

गड़बड़ियों को न होने देने, होने पर उसे फुर्ती से सँभाल लेने का कौशल संचालक द्वारा प्रयुक्त होने की आशा की जाती है। इस प्रकार सूझबूझ न होने पर किसी को कुशल प्रबन्धन का श्रेय नहीं मिल सकता। भले ही वह शिक्षा की दृष्टि से कितनी ही बड़ी डिग्री क्यों न हासिल किये हुए हो।

व्यवस्था में एक और विशेषता भी सचित करनी चाहिए कि वर्तमान की गतिविधियाँ, भविष्य को उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से सही रीति-नीति अपनाये हुए हैं या नहीं। ध्यान आज का ही नहीं अगले कल का भी रखना पड़ता है। बड़े व्यवसायों और कारखानों के मैनेजर यह ध्यान रखते हैं कि वर्तमान के विनिर्मित निर्माण की कल खपत कहाँ और कैसे होगी ? कल जिस सामग्री की आवश्यकता पड़ेगी, उसका संचय समय रहते कर लिया गया है या नहीं। पूँजीवादी रुकते नहीं रहे हैं। यदि ऐसी कुछ आशंका हो तो उसका विकल्प पहले से ही तैयार रखना पड़ता है जिसमें इस प्रकार की सुविस्तृत सूझबूझ न हो वह व्यवस्था के पद को तो सार्थक बना ही नहीं सकता। लाभ उठाना और घाटा दे बैठना तो कई बार परिस्थितिवश ही बन पड़ता है। सम्पन्न तो कोई

उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति के आधार पर भी हो सकता है, किन्तु प्रबन्ध की क्षमता तो पूरी तरह अपने द्वारा ही अर्जित करनी पड़ती है। विधाता को उतना ही श्रेय मिलता है जितनी कि नियामक की मनुहार की जाती है। बच्चे जनने की क्षमता तो हर वर्ग के मादा प्राणियों में होती है। उत्पादन तो अनायास भी हो सकता है, पर उसे सुनियोजित करना, समुन्नत करना विशेष प्रकार का कौशल है, उसके जानकारों को ही उत्पादकों की तुलना में अधिक श्रेय मिलता है। यही कारण है कि उद्योगपतियों के स्वामित्व वाले लाभों की अपेक्षा प्रबन्धकों को ही अधिक श्रेय जाता है। राजा की सफलता-असफलता बहुत कुछ उसके मंत्रियों पर ही निर्भर रहती है। स्कूल तो असंख्यों खुले होते है, पर उनमे से सफलता का श्रेय उन्हीं को मिलता है, जिनके संचालक अपनी प्रतिभा, लगन और सूझ-बूझ का बढ़-चढ़कर परिचय देते है। सेना मे अनेकों सैनिक होते है। वे अनुशासन भी पालते है और देश-भक्ति तथा दक्षता का परिचय भी देते है, किन्तु मोर्चा जीतने-हारने का यश-अपयश सेनापति को ही जाता है। तनिक-सी भूल कर बैठने पर उसे अनर्थ करने वाले जैसा दण्ड भुगतना ही पड़ता है। सिपाही का प्रमाद छोटी प्रताड़ना से भी सँभल जाता है, पर सेनापति को क्षमा कैसे किया जाय, जिसने संचालक जैसा भारी-भरकम उत्तरदायित्व स्वीकार करने पर भी गहरी सूझ-बूझ का परिचय देने मे भूल की। ऐसी रणनीति न बना सका जिसके सही होने पर पराजय की आशंका नही के बराबर ही रह जाती। मजबूत इंजन तो टूटे डिब्बो को भी खीच ले जाता है। यह प्रतिपादन गलत नहीं है। उच्च अधिकारियों को अधिक वेतन और अधिक सम्मान इसी बात का मिलता है कि वे सामान्य लोगो की अपेक्षा किसी भी समस्या के साथ जुड़े हुए असंख्य पहलुओं पर एक ही समय मे विचार कर लेने और सही निष्कर्ष पर पहुँचने की क्षमता मे सम्पन्न होते है। यदि वे भी अविकसित मानस वाले जन साधारण जैसा आचरण करने लगें और अपनी जिम्मेदारी को ठीक तरह न निभा सकने का दोष जिस-तिस पर थोपने की प्रवंचना करे, तो भी उन्हें क्षम्य नही समझा जाता है। प्रबंधक से सर्वज्ञ और सर्व समर्थ जैसी आशा की जाती है। यदि किसी के कंधे पर यह भार आ पड़ा है तो उसका कर्तव्य है कि उस पद के अनुरूप दक्षता मे यदि कही कुछ कमी है, तो उसे जल्दी से जल्दी पूरा कर लेने का प्रयत्न करे। ग्रुप लीडर होने का अर्थ ही यह है कि उसने भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगो के बीच तालमेल बिठाने की क्षमता से सम्पन्न होने को आश्वस्त किया है। यह एक ऐसा आश्वासन है, जिसके उपयुक्त सिद्ध होने के लिए अपनी समूची तत्परता और तन्मयता दाँव पर लगाने की आवश्यकता पड़ती है। प्रहरी ही निद्राग्रस्त होकर रखवाली की जिम्मेदारी को भुला बैठे तो उस असावधानी की स्थिति मे हुई चोरी के लिए सोने वाले उस प्रहरी की ही खीचतान होगी और आगे से उसे कोई जिम्मेदारी का काम न मिल पायेगा।

संयोजन तो अन्य सहायक भी कर सकते है, पर संचालन का कार्य तो एक को ही करना पड़ता है। यदि मण्डल के कई सदस्य है तो भी जो प्रमुख है, उसी पर यह जिम्मेदारी आती है कि साथियो में सही कार्यों पर सहमत होने की विशेषता का अभिवर्धन करे अन्यथा संयुक्त नेतृत्व के बीच अहमन्यता के दुर्गुण कुछ विशेष कारण न होने पर भी अपनी हेटी न होने देने की प्रमुखता को सबसे ऊपर मानने वाले परस्पर झगड़े बिना न रहेंगे और उस विग्रह का दुष्परिणाम समूचे कार्य तंत्र के लड़खड़ा जाने के रूप मे सामने आयेगा।

हर किसी को प्रबंधक बनने की क्षमता का विकास करना चाहिए। भले ही उसे किसी मिल, कारखाने, पार्टी, फैक्टरी, स्कूल आदि मे प्रबन्धक के पद पर नियुक्त होने का अवसर न आये क्योंकि जीवन की अधिकांश प्रक्रिया पारस्परिक आदान-प्रदान, सहयोग पर निर्भर है। सद्भाव अर्जित किये बिना, तालमेल बिठाये बिना प्रगति पथ पर एक कदम भी नही चला जा सकता। अपने छोटे-से व्यवसाय मे कर्मचारी बनकर रहने मे पग-पग पर सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। उपेक्षा की स्थिति बनी रहने मे घाटा ही घाटा है। फिर यदि किसी से सहयोग की अपेक्षा होती है, तो उस पर दबाव डालने की अपेक्षा यह अधिक सरल है कि अपनी योग्यता को इस रूप मे प्रस्तुत करे कि सम्बन्धित व्यक्तियो को यह आशा बँधे कि इनके साथ सद्भाव बनाये रहने मे हमें ही लाभ है। यह कार्य मिथ्या शेखीखोरी के आधार पर बन नही पड़ता, क्योंकि बनावट, अत्युक्ति प्रकट करते-करते ऐसे अनेकों संदेह के क्षेत्र छोड़ देती है, जिस पर झाँककर किसी का बढ़बोलापन आँका जा सके। कुछ समय बाद तो अत्युक्तियो से घुला हुआ झूठ प्रकट होकर ही रहता है। तब फिर प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाने पर साधारण कथन भी संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगता है। इसके बाद बचने, दूर रहने की बारी आ जाती है। इस झंझट मे पड़ने की अपेक्षा यही उपयुक्त है कि अपनी कार्य शैली मे व्यवस्था तत्त्व का समुचित समावेश होने की बात अपने क्रिया-कलापो मे ही प्रकट होने दी जाय।

घर-परिवार भी एक पाठशाला, सहकारी समिति या फैक्ट्री के समतुल्य है। उसमे भिन्न-भिन्न स्तर के सदस्य रहते है। आवश्यक नहीं कि उनमे सभी समझदार हो। उनमें से कुछ सस्कारवश उद्दण्ड या अनगढ़ भी हो सकते है। इनमे से किसी को भी घर से बाहर निकाल बाहर नही किया जा सकता। बात तभी बनती है कि अन्यो का स्वभाव, दृष्टिकोण समझते हुए उनके साथ इस प्रकार तालमेल बिठाया जाय कि कम से कम हानि पहुँचाये और जितना कुछ बन पड़े उतना सहयोग करते रहने मे किसी प्रकार की बाधा न पड़े। डराने-धमकाने की

आवश्यकता तो विवशता की स्थिति सामने आ जाने पर ही अपनानी चाहिए। प्रयत्न यही रखना चाहिए कि जिनके साथ इच्छा या अनिच्छा से रहना ही पड़ेगा, उनके साथ मनोमालिन्य जैसी स्थिति न बनने दी जाय। दूसरी ओर से उपेक्षा बरती जा रही हो तो भी अपनी ओर से सज्जनता भरा व्यवहार करते रहने की नीति अपनाये रहने में ही लाभ है। सबको अपनी इच्छा के अनुरूप नहीं बनाया जा सकता, पर इतना तो हो ही सकता है, विग्रह को टालते रहने और निरर्थक बातों में अपना समय और चिन्तन नष्ट होने देने की हानि से बचा जाता रहे।

किसी तंत्र में नियमित रूप से व्यवस्था का दायित्व न सौंपे जाने पर भी प्रतिभावान प्रतीक्षा करते नहीं बैठे रहते और न इस प्रकार की हीनता मन में आने देते है कि हमसे आग्रह नहीं किया गया। अपनी विशिष्टता का परिचय देने की दृष्टि से ही सही, अवसर पर छोटे कार्य सामने दीख पड़ने पर उनमें आत्मीयता की सेवा, भावना से सहयोग आरम्भ कर देना चाहिए । छोटे कार्यों को सही ढंग से निपटाने की योग्यता का आभास मिलने पर लोगों को स्तर पहचानने का अवसर मिलता है और फिर आग्रहपूर्वक अन्य कार्यों में हाथ बँटाये जाने की आशा करने लगते है। योग्यता से अपने स्तर के अवसर देर-सबेर में प्राप्त कर लेता है। लोकनायकों को इसी प्रकार अपनी विशेषता का परिचय देने और क्रमशः अधिक ऊँचे काम कर दिखाने के अवसर मिलते रहे है। यदि यह नीति न अपनाई जाय तो गुमसुम रहने वाले व्यक्ति को प्रायः अयोग्य ही गिना जाने लगता है। अपने व्यवहार एवं वाक् कौशल से ही यह प्रकट किया जा सकता है कि अपने में बड़े दायित्व संभालने की क्षमता है। ऐसे लोगों की सर्वत्र माँग है। वैसे लोग न मिलने पर अधिकांश लोग अपने को किसी बड़ी कमी से घिरा अनुभव करते है, पर कभी यह पता चलता है कि सम्पर्क क्षेत्र में अमुक व्यक्ति स्वभावतः व्यवस्थित रहने और दूसरों के कार्यों में उत्साहपूर्वक रस लेकर सहायता करने के स्वभाव वाला है, तो उसे हर दिशा से आमन्त्रण मिलता है। एक के बाद दूसरे बड़े काम सौंपे जाने लगते है। प्रगतिशीलता का यही क्रम है, जो सदा-सर्वदा बना और चलता रहा है।

परिचय का आरम्भ किसी की निकटता के उपरान्त ही होता है। पहली दृष्टि से व्यक्ति के शरीर, वस्त्र एवं शिष्टाचार के बरते जाने पर यह जानकारी मिलती है कि आगन्तुक का स्तर एवं महत्व क्या है ? प्रत्युत्तर भी उसी के अनुकूल मिलने लगता है। गुम्बज की प्रतिध्वनि की तरह ही हमारे व्यक्तित्त्व की प्रतिक्रिया होती है और दूसरों पर छाप पड़ती है। सम्पन्नता के प्राथमिक सिद्धान्तों से परिचित व्यक्ति अपने स्वभाव को ऐसे ढाँचे में ढालता है कि परखने में सहानुभूति का प्रत्युत्तर देने लगे। इस संदर्भ में साफ-सुथरापन और वाणी की सज्जनता का समावेश अत्यधिक आवश्यक है। इन्हीं छोटी-छोटी आदतों का समन्वय, शिष्टाचार बन जाता है और बरतने वाले का मूल्य बढ़ता है।

खर्चीली सज-धज किसी का मान बढ़ाती नहीं, वरन् उसे धारण करने वाले को अधिक बचकाना एवं नट, अभिनेता स्तर का उपहासास्पद ही बनाती है। स्वच्छता और सादगी किसी का बड़प्पन प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। दूसरों पर रौब जमाने के लिए अपना बड़प्पन प्रदर्शित करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए कई लोग अपनी सजधज, ऐंठ, अकड़, दूसरों की उपेक्षा, अपनी व्यस्तता आदि को अनावश्यक ओढ़ते है और आशा करते है कि अन्य लोग अपने प्रभाव में आक्रान्त दब जायेंगे और जैसा कहेंगे वैसा करने लगेंगे। यह मान्यता आदि से अन्त तक गलत है। कारण कि अहंकार में दूसरों का अपमान जुड़ा होता है। जिसकी गंध किसी भी विचारशील मनःस्थिति वाले को सहज लग जाती है और उसकी प्रतिक्रिया विरोध, तिरस्कार में होती है। फलतः प्रतिष्ठा बढ़ने की अपेक्षा तो पूरी नहीं होती, उलटे सहानुभूति की मात्रा घटती चली जाती है। अन्तर्विरोध बढ़ जाने या बने रहने पर खिचाई बढ़ती है, खाई चौड़ी होती है और संघर्ष जैसी मनःस्थिति बन जाती है। ऐसे वातावण में तालमेल बैठ नहीं पाता और दिशा भिन्नता बन पड़ने में कटुता, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिशोध जैसे तत्व उभर पड़ते है। गड़बड़ी के कारणों को समझना और समझाना कठिन हो जाता है। काम बनता नहीं बिगड़ता है। इसलिए अपनी मुद्रा परिधान से लेकर व्यवहार तक में नम्रता ही रहनी चाहिए। सादगी और सज्जनता यह दो गुण ऐसे है, जिन्हें अपनाकर कोई प्रबंधक लाभ में ही नहीं रहता, वरन् उलझनों को हँसते-हँसाते, भाई-चारे के वातावरण में ही सम्पन्न कर लेता है। अच्छा होता इस स्तर का स्वभाव ही बन जाता और अभ्यास में उतर जाता, पर यदि ऐसा स्तर इसके पूर्व नहीं बन पड़ा है तो समय की आवश्यकता और कार्य की सुव्यवस्था को ध्यान में रखते हुए उसे प्रयत्नपूर्वक अर्जित कर लेना चाहिए। स्मरण रहे कि बड़प्पन का रौब जमाकर जितना काम कराया जा सकता है, उसकी तुलना में नम्रता और सद्भाव का परिचय देकर कहीं अधिक और कहीं अच्छी तरह बात बनाई जा सकती है।

अनगढ़ व्यक्ति के लिए सिर्फ समय का दबाव ही प्रेरणा का स्रोत बन पड़ता है। वे उतना ही करते है जितना कि तात्कालिक आवश्यकता उन्हें बाधित करती है। ऐसी दशा में मानसिक विकास सीमाबद्ध हो जाता है। कुली, मजदूर उतना ही कर पाते है जितनी कि अनिवार्यता होती है। इसके आगे की, पीछे की सोच सकना और कार्य को अधिक सुरुचि रूप से सम्पन्न करने की आवश्यकता बनी रहती है, उसके सम्बन्ध में उनका ध्यान ही नहीं जाता। ऐसी दशा में यह बन ही नहीं पड़ता जिसे देखकर सम्बन्धित व्यक्तियों को उसकी

विशेषता का भान हो और बदले मे सहानुभूतिजन्य लाभ एवं गौरव प्राप्त हो। यथास्थिति बने रहने का प्रमुख कारण एक ही है कि विषय से संबंधित अन्य अनेकानेक बातो की ओर ध्यान न जाना, एक सीमित परिधि मे ही सोचते और करते रहना। यह मानसिकता किसी की भी उन्नति मे बाधक हो सकती है और प्रबन्धक का स्तर प्राप्त करने की तो प्रमुख अड़चन समझी जाती है।

एक ही दृष्टि मे तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग प्रस्तुत खामियो को खोज लेते है। उसके क्या कारण हो सकते है, इसकी कल्पना बिना समय गँवाये कर लेते है। साथ ही यह उपाय भी सूझता रहता है कि खामियो को किस प्रकार जल्दी से जल्दी और अच्छी तरह कितना जल्दी और सुविधापूर्वक ठीक कराया जा सकता है। न केवल खामियो को ठीक करना वरन् अधिक प्रगति और अधिक सफलता के लिए जिन नये सुधारो, परिवर्तनो की आवश्यकता है, उसका ताना-बाना भी साथ ही बुनते रहते है। इस प्रकार मस्तिष्क एक होते हुए भी एक ही समय मे अनेक प्रकार सोच सकने और सुव्यवस्था मे बाधक सभी तथ्यो को सुधारने लग जाते है। प्रगति अनायास ही नही आती। उसके लिए प्रतिस्पर्द्धा के क्षेत्र मे क्या हो रहा है, क्या होने वाला है, इसकी भी सुविस्तृत जानकारियाँ संग्रहीत करते है और इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हमारे लिए अधिक श्रेय प्राप्त करने के लिए क्या करना सभव और आवश्यक है। मस्तिष्क को बेकार बाते सोचते रहने; काम मे अनावश्यक विलम्ब लगाने वाले ही प्राय: पिछड़ते है। जागरूक, सावधान, प्रत्युत्पन्नमति को चुस्त-दुरुस्त रहने और रखने वाले लोग ही इस योग्य समझे जाते है कि ये किसी तंत्र की सुव्यवस्था ठीक प्रकार चला सकेगे। यदि इस प्रकार के मानसिक विकास मे कुछ कमी पाई जाय तो उसे तत्परतापूर्वक सुधार लेना ही प्रबंधक पद की गरिमा के अनुरूप है।

सुव्यवस्था और सुनियोजन

बुद्धिमत्ता बढ़ाने वाले खेलो मे शतरज का ऊँचा स्थान है। कारण कि उसमे एक ही समय मे एक ही साथ अनेक सभावनाओ और पराजयो पर ध्यान रखना पड़ता है। किसी एक ओर से असावधानी रखी जाय तो घाटे मे रहने और बाजी हार जाने की स्थिति बन जाती है। प्रबुद्ध लोगो को अन्यान्य प्रयत्नो मे अपनी मानसिक क्षमता इतनी विकसित करनी पड़ती है कि एक ही समय मे संबधित कार्य से जुड़ी हुई अनेकानेक दिशाओ के सबध मे गहराई से समझने और बिना समय हल निकालने की कुशलता का परिचय दिया जा सके। प्रबंधक स्तर के हर व्यक्ति को अनिवार्य रूप से यह दक्षता अर्जित करनी पड़ती है अन्यथा दीर्घसूत्री, प्रमादी रहते एक काम ठीक किया जाता है, उतने ही समय मे दस नई समस्याएँ और उठ खड़ी होती है और उनका परिचय विलम्ब से प्राप्त करने अथवा सुधार मे विलम्ब करने पर करा-धरा मिट्टी हो जाता है।

साधारण कामकाजी जीवन तक इतना सरल नही है कि उसे अभ्यस्त ढर्रे की समझ के सहारे भली प्रकार संभाला-सँजोया जा सके। एक ही समय मे आर्थिक प्रबंध, बाजार की खरीद, घर के किसी सदस्य की बीमारी, अतिथि का आगमन, शोक समाचार, साथियो से विग्रह, नए अन्तर्द्वन्द्वो की संभावना जैसी कितनी ही बाते सामने आ खड़ी हो सकती है। उन सबका क्रमबद्ध और यथावत् समाधान सोचना पड़ता है। यदि इनमे से एक को भी अनदेखा कर दिया जाय तो उसकी प्रतिक्रिया इतनी बुरी होती है कि अन्य प्रसंगो को सभाल लेना भी सतोषप्रद नही होता। जब सामान्य घर-गृहस्थी की दैनिक परिस्थितियो के संबध मे इतनी उलझने बनी रहती है, तो किसी बड़े दफ्तर, कारखाने, व्यवसाय, समुदाय आदि के संबंध मे अधिक कठिनाइयो का उसी अनुपात मे आना स्वाभाविक है। इस आगमन को अप्रत्याशित कहकर और 'जो बन पड़ा सो किया' कहकर उस क्षति की पूर्ति नही की जा सकती जो एकत्रित तत्परता और दूरदर्शिता के सहारे कम से कम कष्टदायक हो सकती और सुधार मे किये गये समग्र प्रयास को यशस्वी बना सकती थी। इसके लिए आगे-पीछे की, दाये-बाये की सभी दिशाओ मे सोचना पड़ता है। सही निष्कर्ष निकालते हुए उसका अविलम्ब समाधान करना होता है। जो यह कर सकते है, उन्ही को प्रबधक का पद शोभा देता है अन्यथा रोते-झीकते, यश-अपयश के थपेडे खाते किसी प्रकार समय गुजारते हुए तो सभी देखे जाते है। कोयले की खान मे हीरा ढूँढ निकालना कठिन किन्तु संभव कार्य है। इसी प्रकार प्रबधक की, प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति की अपनी गरिमा है। वह स्वय तो अपना अनुभव, स्तर और वर्चस्व तो निरंतर बढ़ाता ही चलता है, साथ ही जिस दायित्व को पूरा करने का जिम्मा उसने लिया था, उसे भी अधिकाधिक समुन्नत बनाकर अपनी प्रखरता से संबद्ध लोगो को चमत्कृत करता है।

यह गुण जन्मजात नही है। प्रयत्नपूर्वक सीखना पड़ता है। प्रबन्ध विद्या की पुस्तके भी इस संबंध मे कुछ तो सहायता देती ही है; पर असली प्रयोजन अनुभव सम्पदा के आधार पर ही सम्पन्न होते है। अपने या दूसरो के काम मे हाथ बँटाने एव उसे अधिक सांगोपांग बनाने के सहयोग मे जहाँ दूसरो को प्रसन्नता होती है, वहाँ अपनी विशिष्टता मे भी चार चाँद लगते है। प्रबध संबंधी कार्यों मे आगे बढ़कर रुचि लेना, अपने और साथियो के कामो को सुनियोजित करने मे योगदान देना जिनका स्वभाव बन गया है, वे श्रम अधिक करना पड़ने की शिकायत भी नही करते, क्योकि अपना या पराया काम सुनियोजित हो जाने पर जो प्रसन्नता होती है, वह अतिरिक्त समय लगने या/श्रम करने की क्षति की पूरी

तरह भरपाई कर देती है। सच पूछा जाय तो इस प्रकार की तत्परता बरतने वाले आत्म-सतोष और जन सम्मान पाने के कारण अपेक्षाकृत लाभ मे रहते है योग्यता की अभिवृद्धि का एक ही तरीका है कि उलझन भरे कार्यों से बचने की अपेक्षा दौड़कर उन्हे हाथ लगाया जाय और समग्र कौशल नियोजित करके उसे सुसम्पन्न करके दिखाया जाय।

इस प्रगतिक्रम मे एक बड़ी बाधा मानसिक तनाव ग्रस्तता की होती है। यह मानसिक बीमारी इन दिनो बहुत लोगो को ग्रसित कर रही देखी जाती है। साथियो का इच्छानुवर्ती न होना, काम को समेटने का प्रयत्न करने पर भी काबू मे न आना, निर्दोष होते हुए भी विद्वेषियो द्वारा लांछन लगाया जाना, काम मे देर लगने या असफल रहने पर खीझने लगना जैसे कारण प्राय: मानसिक तनाव के कारण होते है। सिर गरम हो जाता है। चेहरे पर खीज चढ़ी दीखती है। सोचे का तंत्र ठप्प हो गया जैसा लगता है। प्रयत्न करने पर भी कुछ करते-धरते नही बनता। इसी से मिलते-जुलते लक्षण तनाव की स्थिति मे दीख पड़ते है। कई बार तो तन्द्रा सताने लगती है, रक्तचाप बढ़ जाता है और बेचैनी तथा उदासी की स्थिति बन जाती है। स्थिति अर्ध-विक्षिप्तता की समझी जा सकती है, जिसके रहते आवश्यक कामो को निपटाना तो दूर सामान्य मन स्थिति को बनाये रहना तक कठिन हो जाता है।

यह बुरी व्यथा तो है, पर आकस्मिक नही है और न किसी के द्वारा बाहर से थोपी गई। इसका इलाज करने मे दवा-दारू भी क्षणिक प्रभाव दिखाते है। समुचित चिकित्सा तो अपने आप मे समझदारी बढ़ाने पर ही सभव है।

समुद्र मे ज्वार-भाटे आते रहते है। धूप-छाया का सयोग बना ही रहता है। कोई व्यापारी ऐसा नही जिसे कभी हानि, कभी लाभ की परस्पर विरोधी मान्यताओ का सामना न करना पड़ता हो। शत्रु तो मित्र कदाचित ही बनते है, पर मित्रों का शत्रु बन जाना तनिक से कारण पर होता रहता है। सर्दी-गर्मी की ऋतुओ का आगमन कैसे रुके ? ससार भी उल्टे-सीधे धागो से बुना हुआ है और उसमे प्रसन्नतादायक ही नही अप्रसन्नता अनुभव कराने वाले अवसर भी आते रहते है। सदा सुखद स्थिति ही बनी रहे, यह प्रकृति सरचना की क्रम व्यवस्था मे शक्य ही नही। ऐसे अनेक लोग है जो हर हालत में सन्तुलन बनाये रहते है और प्रतिकूलताओ से जूझते समय असतुलित नही होते वरन् धैर्यपूर्वक अधिक सावधानी सँजोते है और उलझन से निपटने का प्रयत्न करते है। वे जानते है कि प्रतिकूलता की आग मे अधीरता का ईंधन डाला गया तो उससे लाभ तो कुछ न होगा, उलटे जटिलताएँ बढ़ती जायेगी। आवेशग्रस्त मन स्थिति मे किये गये निर्णय प्राय गलत ही होते है। उनके कारण हैरानी घटती नही वरन् और भी अधिक बढ़ जाती है। इस तथ्य को यदि अच्छी तरह समझ लिया जाय तो आधी हैरानी दूर हो जाती है। मात्र मन:स्थिति से ही निपटना पड़ता है, जो विवेकशीलो के लिए बहुत भारी नही पड़ता, अधिक भारी पड़ती है, अपनी मानसिक आवेशग्रस्तता जो अदूरदर्शियो मे छोटी प्रतिकूलता देखते हुए भड़क उठती है और मानसिक दृष्टि से मनुष्य को अपंग जैसी स्थिति तक पहुँचा देती है।

धैर्य खो बैठना यो हर किसी के लिए बहुत बुरा है। संतुलन गँवा बैठने से बढ़कर और कोई विपत्ति नहीं। तनाव उत्पन्न कर लेना बाहरी घटनाक्रमो से अपने आपको दण्ड देना है। हो सकता है कि ऐसी विपन्नता बिना बुलाये चढ़ दौड़े, पर समझ यह भी लेना चाहिए कि यदि मनोबल बनाये रखा जाय तो हर स्थिति मे अपने को सुस्थिर बनाये रखा जा सकता है। सेनापतियो के सामने क्षण-क्षण मे उतार-चढ़ाव आते रहते है। भले-बुरे समाचार मिलते रहते है। बड़े आपरेशन करने वाले सर्जन भी मरणासन्न रोगियो से घिरे रहते है, फिर भी वे भावुकता का अतिरेक नही होने देते और जो करना है उसी पर समग्र एकाग्रता के साथ ध्यान रखते है। डॉक्टर आपरेशन के समय भावुकता के प्रवाह मे बहने लगें और सेनापति युद्ध मोर्चे मे अप्रिय समाचार पाकर हड़बड़ाने लगे तो उसके अगले क्रियाकलाप एक प्रकार से गड़बड़ा ही जायेगे। समूह मे अनेक प्रकृति के लोग सम्मिलित होते है। उनमे से जो उद्दण्डता दिखाने लगे, प्रबन्ध उन्हीं का करना चाहिए, न कि संचालक अपना ही संतुलन गँवा बैठे और ऐसा कुछ कहने और करने लगे जिससे छोटी बात बढ़कर बतंगड़ उत्पन्न हो जाय।

उत्तेजित मनुष्य असंतुलित हो जाता है। आवेश की स्थिति मे वह सामयिक वस्तुस्थिति का ठीक से जायजा नही ले पाता और न सही सोच पाता है कि हानि से बचने और लाभ की स्थिति बनाये रखने के लिए उसे क्या कदम उठाने की आवश्यकता है। उत्तेजना एक छूत की बीमारी है, जो एक स्थान से उछलकर निहित स्वार्थो के ऊपर सवार हो जाती है। परिणाम सोच सकने की दूरदर्शिता उनके हाथ भी नही रहती और उपद्रव ही उन्हे सूझ पड़ता है। ऐसी स्थिति मे उजड्डो को तो यत्किंचित ही हानि होती है, क्योंकि उनकी अपनी कोई हैसियत नही किन्तु बदनाम और परेशान वह तंत्र होता है, जिसे आगे भी उसका काम चलाते रहना है। इसलिए प्रबंधक का मनोबल, सतुलन हर हालत मे बना ही रहता है। ऐसी स्थिति मे विरोधियो से निपटते चलना और समाधान ढूँढ निकलना सरल हो जाता है।

स्नेह, सहयोग और सद्भाव के वातावरण मे हर किसी को प्रसन्नता रहती है और उत्साह उभरता है। ऐसी मनोदशा मे मनुष्य साधारण रीति से काम-काज निपटाने की अपेक्षा सहज ही कई गुना काम कर लेते है। काम

की उत्तमता और मात्रा को जो प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते है, उन्हें ध्यान रहता है कि त्रुटियाँ न रहने पाये और लोग अनगढ़-फूहड़ कहकर उँगली न उठायें, गैर जिम्मेदारी और लापरवाही का लांछन न लगे। ऐसा वातावरण यदि अपने परिकर मे बनाकर रखा जा सके तो समझना चाहिए कि प्रबंधक की सफलता सुनिश्चित हो गयी।

हर व्यक्ति हर विषय का जानकार या प्रवीण-पारंगत नहीं होता। सीखने से ही समझदारी और कुशलता बढ़ती है। जिसे जिस काम का उत्तरदायित्व सौंपा गया है या सौंपा जाना है, उसे अनायास ही काम सौंपने की अपेक्षा यह कहीं अधिक उत्तम है कि सौंपे गये काम से संबंधित उतार-चढ़ावो मे उसे अवगत-अभ्यस्त करा दिया जाय। यह कार्य उनके द्वारा सम्पन्न होने चाहिए जो तद्विषयक अनुभव सफलतापूर्वक अर्जित कर चुके है। मात्र बौद्धिक ही नही, व्यावहारिक अभ्यास उचित समय तक कर लेने के उपरान्त ही कोई इस योग्य होता है कि सौंपी गई जिम्मेदारी ठीक प्रकार पूरी कर सके। अजनबी काम में गैर जानकार व्यक्ति को बिना आद्योपान्त उतार-चढ़ाव समझाये काम मे लगा देने मे अपयश और घाटा उठाना पड़ता है। इसलिए हर कर्मचारी को आरम्भ मे ही नही बीच-बीच मे भी बढ़ते काम के स्तर एवं दायित्व के संबंध मे जागरूक कराते चलना चाहिए। कुछ लोग अपनी अकल से, अपनी उमग से, सूझबूझ से ही अपने काम की स्थिति एवं मात्रा बढ़ाते चलते है, पर अधिकांश ऐसे होते है जिन्हें बताना, सुझाना ही नहीं जरूरत पड़ने पर स्वय कर दिखाने की भी आवश्यकता पड़ती है, तब बात गले उतरती है। दूसरो के द्वारा सम्पन्न किये गये बढ़िया कार्यो के नमूने भी सामने प्रस्तुत करते रहने पर तब कहीं किन्ही-किन्ही की उनीदी आदत, वस्तुस्थिति समझने मे समर्थ हो पाती है। मात्र कह देने, सुझा देने भर से कइयो की मंद गति तद्नुरूप कदम बढ़ा सकने मे समर्थ नहीं हो पाती। ऐसी दशा मे उनकी विवशता समझते हुए जो भूल रहती है उन्हे न होने देने के उपाय बिना खीजे बताते रहने चाहिए। छोटे बच्चों के साथ भी यही करना पड़ता है। साधारण लोगों के साथ भी यही करने की आवश्यकता पड़ती है।

समय का मूल्य और महत्त्व स्वय समझना चाहिए और साथ ही सहकर्मियों को भी उसकी गरिमा बतानी चाहिए। समय ही वैभव है, उसका जो पूरा-पूरा सही उपयोग कर पाते है, वे ही दूसरो की तुलना मे अधिकाधिक काम कर दिखाते और तद्नुरूप सम्मान पाते है। जो उसका महत्त्व नही समझते, वे समय, श्रम और मनोयोग का समन्वय नही कर पाते। फलत: उनकी प्रगति भी धीमी रहती है और विनिर्मित कार्य मे भी पिछड़ेपन की झलक-झाँकी मिलती है। ऐसे लोग जागरूक साथियो की तुलना मे पग-पग पिछड़ते रहते है, जिनसे काम लेना है, उन्हे समय न गँवाने और पूरे मन से हाथ मे लिए हुए काम मे तत्परता, तन्मयता बरतते रहने का स्मरण दिलाते रहना चाहिए।

काम को फिर कभी के लिए टालना, उसे बेगार भुगतने की तरह निपटाना, भारभूत समझकर आधे-अधूरे मन से करना न केवल कर्ता को बदनाम करता है वरन उसके द्वारा निपटाये काम में भी इतनी त्रुटियाँ रहती है कि देखने वालो मे से किसी का मन प्रसन्न नही होता। फिर जिनका उस काम से सीधा सम्बन्ध है, वे तो खीजते ही रहेगे। जो लोग अपना स्वभाव ऐसा बना लेते है वे आलसी, निकम्मे, मूढ़मति समझे जाते है और हर दृष्टि मे घटिया समझे जाते और घाटे मे रहते है।

स्फूर्ति का परिचय देना किसी की दक्षता और क्षमता की बहुलता का प्रमाण है। प्रशंसा और प्रतिष्ठा इसी आधार पर बढ़ती है। जिन्हे अधिक योग्य एवं वजनदार समझा जाता है, उन्हे तद्नुरूप उन्नति के अवसर भी मिलते रहते है, अधिक जिम्मेदारी के काम सौंपे जाते है। छोटे से बड़े बनने का सुयोग स्फूर्तिवानो को, सूझबूझ का प्रयोग करने वालो को ही मिलता है। जो मंद गति वाले ही समझे जाते रहे है, ऐसी दशा मे उनकी उपेक्षा-अवज्ञा भी होती रहती है। प्रतिफल की दृष्टि से भी घाटे मे रहते है। इसका दोषारोपण भले ही दूसरो पर किया जा सकता है, पर उससे कुछ बनता नही। भूल अपनी अक्सर होती है, अन्यथा पारखियो और खरीददारो को कदाचित ही किसी से वैमनस्य होता है। उनकी पसंदगी तो बढ़िया माल पर ही रहती है। घटिया पड़ा सड़ता रहता है और कौड़ी मोल बिकता है। इसके लिए खरीददारो को दोष देने की अपेक्षा यही देखना चाहिए कि प्रतिस्पर्द्धा के बाजार मे अपना कर्तृत्व इतना पिछड़ा क्यों रह गया ? दूसरो की तरह अपने को कुशल, स्फूर्तिवान और सूझबूझ से काम लेने वाला क्यों नही बनाया गया ? समय का कसकर उपयोग क्यो नही किया गया ?

सचालक एवं व्यवस्थापक का प्रथम गुण यह होना चाहिए कि वह समय पर उपस्थित होने और ठीक समय पर क्रमबद्ध रूप से काम करने की प्रक्रिया अपनाया करे। इन दिनो बड़प्पन की शान जताने और अनेक कामों मे व्यस्त रहने का बहाना बनाकर बड़प्पन जताने वाले हर काम मे लेट पहुँचते है। सोचते है कि इससे दूसरे लोग उनका गौरव समझेगे और अधिक दायित्वो से लदा होने की विशेषता अनुभव करेगे। पर ऐसा बिल्कुल नही होता। जिम्मेदार व्यक्ति सबसे अधिक महत्त्व अपने दायित्व का अनुभव करते है और जो काम उस समय करना चाहिए उसे ठीक समय करने मे चूक नही करते। इसमे दुहरा लाभ है-एक तो ठीक समय पर काम करने का अभ्यास अपनी प्रतिभा को निखारता है, अधिक मात्रा मे काम करने का सुयोग प्रदान करता है। साथ ही अन्य साथियो मे भी उस अच्छी आदत का अनुकरण करने की आदत

पड़ती है। लेट होने पर वे शर्माते है और आये दिन वैसा करने पर भर्त्सना होने, पिछड़ा समझे जाने के लांछन से भी बचना चाहते है।

जिन कार्यालयो मे काम ठीक समय पर आरम्भ होता है, उनका अधिक प्रगति करना, अधिक लाभ कमाना निश्चित है। लेट होते रहना प्रकारान्तर से प्रगति को पीछे धकेलना है। काम अपेक्षाकृत कम होने की पूर्व सूचना है। कई बार तो इसी बुरी परम्परा को अपनाने वाले समुदाय हर दृष्टि से पिछड़ जाते है और जो प्रतिफल कर्मनिष्ठो को मिलना चाहिए उसकी तुलना मे हेय समझे जाते है और लाभ उठाने की दृष्टि से हाथ मलते रह जाते है। समय गँवाते रहना, अपने भाग्य, भविष्य और समुदाय को बदनाम करने के ही समान है।

न केवल उत्पादन-उपार्जन की दृष्टि से वरन सभ्यता, विशिष्टता की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण चिन्ह है कि किसी के यहाँ जाना है, किसी को बुलाया हो तो वह निर्धारण सही रीति से सम्पन्न हो ताकि किसी को प्रतीक्षा न करनी पड़े। प्रतीक्षा मे दूसरो को भी तो अपना समय बर्बाद करना पड़ता है। समय धन है। अपना या दूसरो का समय बर्बाद करना ठीक ऐसा ही है जैसा कि जान-बूझकर उसे धोखा देना या कुछ चुरा लेना। असभ्य लोग ही समय के साथ खिलवाड़ करते है। इस प्रकार बरती गई जिम्मेदारी औरो को इसके लिए बाध्य करती है कि गैर जिम्मेदारी की आदत के कारण यह भरोसा करने योग्य नही है। यह मान्यता बनने पर घनिष्ठता घटती और उपेक्षा बढ़ती है।

समय पर हर काम करने की आदत हर परिवार मे ही डाली जानी चाहिए। बच्चो तक को इस मूल्यवान नियम का भान होना चाहिए, पर यदि उस वातावरण मे ऐसा नही बन पड़ता है तो दफ्तर, स्कूल, कारखानो आदि के सचालको को तो अपने क्षेत्र मे व्यवस्था बनाये रखने के लिए इस आदत को अपनाने के लिए सभी सहकर्मियो को ऐसा अनुशासित बनाना ही चाहिए कि उस अधिकार क्षेत्र में समय की बर्बादी का अभ्यस्त कोई भी बनने न पाये।

कड़ाई बुरी लगती है, जब उसके साथ दुर्भावना का, कटुता का समावेश भी हो। शिष्टतापूर्वक व्यवस्था के मूलभूत सिद्धान्तो को समझाते हुए यह अनुभव करा ही देना चाहिए कि उन्हे भी यदि कोई सचालक स्तर की जिम्मेदारी उठानी पड़ी तो समय का अनुशासन अपनाये बिना वे भी अपने कार्य मे असफल रहने का लांछन ही सहेगे।

हर काम साफ-सुथरा रहना, अधूरा, अस्त-व्यस्त छोड़कर न चल देना यह भी समझा और समझाया जाना चाहिए। काम को आधा-अधूरा या अस्त-व्यस्त छोड़कर चल देना बुरी बात है। इससे दुबारा फिर उसे सभालना पड़ने पर कई काम की चीजे अस्त-व्यस्त हो सकती है। उनके खोने, खराब होने की जिम्मेदारी मे उसी की भर्त्सना होगी, जिसने काम अधूरा छोड़ा है। जिस प्रकार काम आरम्भ करते समय काम मे आने वाली हर वस्तु को यथास्थान रखे होने की अपेक्षा की जाती है, उसी प्रकार काम समाप्त करते समय भी सब कुछ झाड़-बुहारकर यथास्थान रखकर ही काम बन्द करना चाहिए। जिस प्रकार प्रात: उठते ही घर-आँगन मे बुहारी लगाई जाती है और रात मे सोने से पहले बिखरी वस्तुओ को यथास्थान रखने के बाद ही सोया जाता है, उसी प्रकार स्कूल, दफ्तर, कारखाने का भी आरम्भ और अन्त मे सफाई कराने का पूरा ध्यान रखना जाना चाहिए। जहाँ इस संबंध मे लापरवाही बरती जाती है, वहाँ छोटी उपयोगी वस्तुएँ खराब होती और कचरे मे जाती रहती है।

सुरुचिपूर्ण वातावरण मे, अनुशासन युक्त व्यवस्था मे काम करना आरम्भ मे कुछ लोगो को अखर सकता है, पर जब उन्हे उसके लिए बाधित होना पड़ता है और निर्धारित उपक्रम अभ्यास मे उतर आता है, तब प्रतीत होगा कि इससे काम की और काम करने वालो की प्रतिष्ठा मे अभिवृद्धि हो गयी है।

सामूहिक क्रिया-कलापों का संचालन

किसी काम के लिए उपयुक्त योग्यता, तद्विषयक दायित्व संभालने से पहले ही अर्जित कर लेनी चाहिए। काम करते हुए अनुभव बढ़ाना फिर उसे ठीक तरह सभालने की तैयारी करना महँगा पड़ता है। अयोग्य व्यक्ति अनुभव के अभाव मे कुछ तो करते रहते है, पर वे अधूरे और अस्त-व्यस्त रहते है। फलत: सस्ते दामो के कारण या निजी घनिष्टता के कारण उसके कंधे पर भारी-भरकम काम लाद देना पीछे पश्चाताप का कारण बनता है।

जिनसे जो कराना है, उसे उसके सम्बन्ध मे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो ही प्रकार की समग्र जानकारियाँ प्राप्त करनी चाहिए। देखना चाहिए कि उतार-चढ़ाव की बदलती परिस्थितियो मे वह तदनुरूप तालमेल बिठा सकने की सूझ-बूझ विकसित कर सका या नही। समुचित योग्यता परखे बिना किसी को व्यवस्थापक जैसे सचालन सूत्र सभालने वाले पद पर नियुक्त नही किया जाना चाहिए अन्यथा सूझबूझ और योग्यता की कमी के कारण वह अपना दायित्व ठीक तरह न निभा सकेगा। प्रगति का तारतम्य बिठाने की अपेक्षा अस्तव्यस्तता का वातावरण खड़ा करेगा और असफलता का दोष समूचे तत्र पर लगने देगा। सीखने के लिए छोटे-छोटे कामो के सहारे योग्यता सम्पादन करने का क्रमिक सिलसिला चलने देना चाहिए। व्यक्ति को महत्ता न देते हुए उस कौशल को प्रमुखता देनी चाहिए, जो सामूहिक प्रयत्नो के सहारे चलने वाले तत्र के हर पक्ष पर समुचित ध्यान रख सके और समस्या उठते ही उसका समाधान कर सके। किसी व्यवसाय, कार्यालय आदि की इमारत, पूँजी, महत्ता, सुविधा कितनी ही बड़ी-बड़ी क्यों न हो, सुयोग्य सचालक

के अभाव मे उसके द्वारा सराहनीय प्रगति सम्पादित न की जा सकेगी।

योग्यता का मापदण्ड किसी डिग्री को मान लेना भूल है। पुस्तकीय ज्ञान एक बात है और घाटे को रोकने तथा अभ्युदय का पथ-प्रशस्त करने के लिए ऐसा अनुभव चाहिए, जिसमे सूझबूझ का भी गहरा पुट हो। उपयुक्त प्रबंधक की नियुक्ति किसी तंत्र की आधी सफलता मानी जानी चाहिए। व्यक्ति विशेष के प्रति आग्रह भाव रखकर अयोग्य व्यक्ति के हाथो सचालन सौप देना, खड़ा किया गया ढाँचा लड़खड़ा देने का प्रमुख कारण होता है। कार्यारंभ करते समय ही इस कसौटी पर खरे उतरने वाले व्यक्ति को ही जिम्मेदारी सौपनी चाहिए। यदि इसने कुछ भूल हो गई है तो उसे सुधारते हुए उपयुक्त व्यक्ति की तलाश एव नियुक्ति करनी चाहिए। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस हेर-फेर मे यथासंभव कटुता उत्पन्न न होने पाये।

इन दिनो लोग महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने मे अत्यंत उतावली करते देखे जाते है। अपनी प्रशंसा के ऐसे पुल बाँधते है मानो वे ही योग्य लोगो मे उच्च स्थान प्राप्त कर चुके। जबकि बात ऐसी है कि छोटे काम करने के लिए भी सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो पर अपनी प्रामाणिकता की छाप डालना कोई कम कला-कौशल नही, वरन् विकसित व्यक्तित्व का ऐसा प्रमाण है, जिसे कही भी चरितार्थ होते देखा जा सकता है। जिन्हे बड़े काम बड़ी सफलता के साथ सम्पन्न करने है, उन्हे व्यक्तित्व विकास के हर पक्ष को परिपक्व करना चाहिए। इसमे देर लगती हो तो छोटे-सरल काम हाथ मे लेने भर का साहस करना चाहिए और अधिक योग्य सहायक के रहते हुए अपनी अनुभव सम्पदा मे क्रमिक अभिवृद्धि करनी चाहिए। सस्थापक का भी यह कर्तव्य बनता है कि अपने प्रमुख कर्मचारियो मे से प्रत्येक के अधिक ज्ञान सवर्धन के लिए उपाय करता और व्यवस्था बनाता रहे। इस प्रतिस्पर्द्धा की दौड़ मे प्रत्युत्पन्नमति वाले लोग ही बाजी जीत जाते है। उन्हे खोजना अथवा अपने प्रयास से तैयार करना यही दो उपाय सुसचालक के हाथो कारोबार सौपने के है। अयोग्य व्यक्तियो के घटियापन से किसी तंत्र को जितनी हानि और बदनामी सहनी पड़ती है, उतनी और किसी कारण नही।

सचालक का अपना स्वभाव ऐसे ढाँचे मे ढलना चाहिए कि प्रतिकूलताओ के बीच भी अपना सतुलन बनाये रहे। होठो पर से मन्द मुस्कान को किसी भी दशा मे न जाने दे। भवे तरेरने, आँखे लाल करने की आदत ओछेपन की निशानी है। गभीर लोग अपने ऊपर खीज सवार नही होने देते। गड़बड़ हो रही हो तो भी विश्वास रखना चाहिए कि वह साधारण बात है और उस पर निश्चय ही जल्दी काबू कर लिया जायेगा। आत्मविश्वास एक ऐसा गुण है, जिसे साहस, शौर्य एव पराक्रम का प्रतीक माना जा सकता है। प्रतिकूलता उत्पन्न होते ही हड़बड़ा जाना और आपे से बाहर होने लगना कठिनाइयो को और दूनी बढ़ा लेना है। उत्तेजित मस्तिष्क चढ़े हुए आवेश के कारण समाधान कारक निर्णय कर सकने की स्थिति मे नही रहता। उस पर क्रोध-प्रतिशोध जैसे बुखार चढ़ बैठते है और असमर्थ बनाकर छोड़ते है। असमर्थ को असफल होना ही है। आवेश तुरन्त प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाला दुर्गुण है। किसी को उलटी होने लगे तो निकटवर्ती दर्शको का भी जी मिचलाने लगता है जिस पर क्रोध किया गया है वह दोष स्वीकार करने की अपेक्षा अपमान को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेता है और ऐसे उलटे व्यवहार पर उतर आता है जिससे बात बनने की अपेक्षा और अधिक बिगड़े। पटरी बिठाने के लिए आवश्यक है कि विचार-विनिमय और आदान-प्रदान का रास्ता निकलने वाली मधुरता बनी रहे। जो सौम्य प्रकृति के, सौजन्य भरे स्वभाव के होते है उनके प्रति सहज सहानुभूति उमड़ती है और पराये भी अपनो जैसा समर्थन-सहयोग देने लगते है। खीज कोई समाधान नही ढूँढ पाती, वह जलती आग मे ईंधन डालने का काम देती है। इसलिए दुहरा अनर्थ न होने देने की दृष्टि वाली बुद्धिमत्ता इसी मे है कि गुत्थियाँ उलझ जाने पर भी कम से कम अपना संतुलन तो बनाये ही रहा जाय। प्रबंधक के अन्य गुणो मे यह स्वभाव भी महत्त्व रखता है कि प्रसन्नता और आत्मविश्वास प्रकट करने वाली मुख-मुद्रा बनाये रखी जाय।

मतभेद अक्सर उठते रहते है। स्वार्थ टकराते रहते है। अनुचित माँगे पेश करते रहना अधिकांश लोगो के स्वभाव मे शामिल हो जाता है। उस आदत को इच्छा मात्र से नही हटाया जा सकता। सही उपाय विचार-विनिमय ही है। यदि एक पक्ष उत्तेजनाग्रस्त न हो तो दूसरे उत्तेजित को भी विचार-विनिमय के स्तर पर लाया जा सकता है। तर्क, तथ्य, प्रमाण, उदाहरण प्रस्तुत करते हुए औचित्य को स्वीकार करने की स्थिति तक नरम बनाया जा सकता है। समझौता न भी हो सके तो भी कम से कम ऐसी स्थिति तो बन ही सकती है कि अनुकूल स्थिति आने तक धैर्य बना रहे और तत्काल के लिए विग्रह टल जाय। इस स्थिति तक पहुँच जाना भी आधी बला टल जाने के समान है।

कई बार ऐसा भी होता है कि जड़ मे और कोई कारण होता है और उसके कारण उत्पन्न हुए आक्रोश को व्यक्ति किसी दूसरे रूप मे प्रकट करता है। ऐसी दशा मे पत्तो को पोछने मे समय खराब करने की अपेक्षा यह कही अच्छा है कि मूल कारण को तलाश लिया जाय और समस्या जिस केन्द्र से उत्पन्न होती है वहाँ तक परिवर्तन प्रयासो मे गहराई तक पहुँचा जाय। कभी-कभी जड़ अन्यत्र होती है और उसके अंकुर कही से फूटते हैं। ऐसे घुमाव जहाँ भी अड़ रहे हो, वहाँ किसी विश्वस्त

मध्यवर्ती से ही उन दाँव-पेचो को सुलझाने मे मदद ली जा सकती है।

संक्षेप मे काम की बात कर लेना अच्छा गुण है। इससे दोनो पक्षो का अनावश्यक समय बर्बाद होने से बच जाता है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि इतनी चुप्पी भी बुरी है कि अपनी बात को दूसरे के सामने सही ढंग से प्रस्तुत करते भी न बन पड़े। इससे लोगो को संकोची, झेपू, अबोध कहने का अवसर मिलता है। अतिवाद की सीमा तक चलते रहने वाली वाचालता पर तो अंकुश रखा जाय, पर किसी सामाजिक व्यक्ति मे अपनी कहने और दूसरो की सुनने जैसी उत्सुकता तो होनी ही चाहिए अन्यथा उपेक्षा बरती जाने के सदेह में कोई दूसरे अपने मन की बात ही न कह सकेगे और अपने को कितनी ही महत्वपूर्ण जानकारियो को प्राप्त करने से वंचित रहना पड़ेगा। मध्यवर्ती वार्तालाप कर सकने का गुण तो उस स्तर के लोगो मे होना ही चाहिए, जिनका अनेक लोगो से वास्ता पड़ता है और गलतियो को सुधारने से लेकर अच्छाइयाँ बढ़ाते रहने तक अनेक संदर्भों से वास्ता पड़ता रहता है।

जिन्हे कौशल अर्जित करना है और व्यक्तित्व को अधिक परिष्कृत, प्रभावशाली बनाना अपेक्षित है, उन्हे ऐसे अवसरो की भी प्रतीक्षा करते रहना चाहिए, जिसमे अधिक प्रतिष्ठित और क्रियाकुशल समझे जाने की मान्यता है। यदि उनसे कुछ पाने-सीखने का भाव हो तो उनके अनुकरणीय क्रिया-कलापो को गंभीरतापूर्वक देखते रहना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए कि वैसी ही उत्कृष्टता का अनुकरण करने के लिए अपने मे आवश्यक परिवर्तन बन पड़े।

घटिया लोग जगह-जगह आसानी से मिल जाते है, उनसे वास्ता भी अकारण ही पड़ जाता है, छाप तो भले-बुरे सभी की पड़ती है। यहाँ सावधानी यही बरतने की है कि श्रेष्ठता का अधिग्रहण और दुर्जनो मे पाई जाने वाली दुष्टता से आत्मरक्षा करते रहने की जागरूकता बनी रहे। इस प्रकार हर स्तर का व्यक्ति अपने सम्पर्क मे आने वाले से उसका उपयुक्त प्रभाव ही ग्रहण करने पाये। किसी की चापलूसी या उजड्डता अपने को असाधारण रूप से प्रभावित न करने पाये, यह शालीनता का एक सुरक्षात्मक कवच है।

निजी जीवन की घरेलू समस्याएँ हर किसी के सामने होती है। इनमे कुछ तो प्रसन्नता भी देती है, पर अधिकाश ऐसी होती है जिनके लिए चिन्ता करनी पड़ती है और बेचैनी अनुभव होती है। ऐसे प्रसगो को घर छोड़ते समय ही वापस लौटने पर फिर करने के लिए छोड़ देना चाहिए। दफ्तर की मेज तक उनमे से किसी को भी नही पहुँचने देना चाहिए। स्थान परिवर्तन करने या क्रिया-कलापो मे ही स्थिति के अनुरूप हेर-फेर करना पड़ता है। ऐसा ही परिवर्तन घर के और दफ्तर के वातावरण मे, क्रिया-कलापो मे अन्तर समझते हुए कर लेना चाहिए। दो जगह की या कई प्रकार की समस्याएँ मस्तिष्क मे घूमती रहे तो उसका दुष्परिणाम यह होगा कि हाथ मे लिए काम को पूरे समय मे, पूरी दिलचस्पी के साथ न किया जा सकेगा। ऐसी दशा मे वह वैसी अच्छी तरह न सध सकेगा जैसा कि एकाग्रता के समय वही दिलचस्पी बनाये रहने पर संभव हो सकता है। अन्यत्र की समस्या का हल दफ्तर में बैठकर नहीं हो सकता। उसके लिए अन्यो से परामर्श एव सम्पर्क बनाना पड़ेगा। ये जिम्मेदारी भरे कार्यालय मे बैठकर सम्भव नही हो सकती। ऐसी दशा मे अनेक प्रकार की चिन्ताओ, समस्याओ, इच्छाओं से मस्तिष्क घिरा रखना किसी भी स्थिति में उपयुक्त नही, पर विशेषतया तब तो और भी अधिक जटिल सिद्ध होती है, जब किसी महत्त्वपूर्ण तंत्र की जिम्मेदारियाँ वहन करने को समूचा मनोयोग लगाने की आवश्यकता पड रही हो। अच्छे प्रबंधक अपने को ऐसी व्यर्थ की खीचतान में नही पड़ने देते।

बढ़ी-चढ़ी भावुकता प्राय: अतिवाद की सीमा छूने लगती है। कल्पनाएँ-योजनाएँ ऐसी बनने लगती है, जो व्यवहार मे आसानी से नही उतारी जा सकती। फिर हर महत्वपूर्ण कार्य मे साथियो से, विज्ञजनो से परामर्श करने की भी आवश्यकता होती है। कल्पना तो आकाश-पाताल की भी की जा सकती है, पर वहाँ तक पहुँचने के लिए न तो साधन होते है, न समय, न अनुभव; ऐसी दशा मे असगत स्तर की कल्पनाएँ प्राय: निरर्थक बनकर ही रह जाती है। इतने पर भी जब भावुकता की उड़ाने विवेक की मर्यादाएं तोड़कर हवाई अन्धड़ के साथ उड़ने लगती है, तो फिर रगीन चश्मा पहन लेने जैसी स्थिति हो जाती है। जिस रंग का चश्मा हो, उसी प्रकार की सभी वस्तुएँ दीखने लगती है। कभी-कभी ऐसी भली-बुरी, संभव-असम्भव कल्पनाओ का भी दौर आता है कि अपनी सोची हुई बात उचित एव उपयुक्त लगने लगती है। बात यहाँ तक बढ जाती है कि उतावली मे मनमर्जी के अनुरूप कदम भी उठा लेते है।

ऐसी दुर्घटनाएँ युवक-युवतियो के प्रेम प्रसगो में तो आये दिन होती और पश्चाताप का कारण बनती रहती है, पर आश्चर्य तब होता है जब किसी तत्र के सचालन में भी ऐसी ही घटनाएँ घटित होती देखी जाती है। सीमा से अधिक खर्च कर डालना, उधार बाँट देना, चुगली सुनकर अपनी धारणा तद्नुरूप बना लेना, वेतन सबधी महत्वाकाक्षाओ को चाहे जिस सीमा तक बढने देना चिन्तन के बचकानेपन का कारण है। मित्रता-शत्रुता के सम्बन्ध में भी ऐसे ही व्यतिरेक होते रहते है, जो नही होने चाहिए। सामान्य की सीमा मे बने रहना ही उचित है। संबंधो को अति घनिष्ठता का या अति उपेक्षा का बना लेना कवि-कलाकारो के लिए उपयुक्त हो सकता है किन्तु प्रबन्धक को तो व्यावहारिकता से ही वास्ता पड़ता है। इसलिए संबंधो की साधना मे अतिवाद का समावेश

नहीं होने देना चाहिए। इसमे किसी कुचक्र की गंध भी सूँघी जा सकती है और उस असामान्यता को देखते हुए सामान्य संबंध वालो की ऐसी ईर्ष्या भी उभर सकती है जो आगे चलकर अनुपयुक्त झंझट अकारण खड़े करे।

चिन्तन, समय, श्रम, मनोयोग, सृजन, प्रयोजन मे लगाना चाहिए और उस पक्ष पर अधिक ध्यान देना चाहिए जिससे हाथ मे लिए कारोबार को अधिक समृद्ध, अधिक सफल बनाया जा सके। सहयोगियो और सत्परामर्श दाताओ के साथ अधिक सम्पर्क रखना चाहिए। हमे किससे बदला लेना है, कौन अपनी क्या क्षति पहुँचाने वाला है ? इस विषय पर मोटी दृष्टि भर रखनी चाहिए, पर अधिक ध्यान नही देना चाहिए। हानि की आशंकाएँ कभी-कभी ही सामने आती है, किन्तु सृजन-संवर्धन के संबंध मे किया गया चिन्तन ऐसे द्वार खोलता है जिससे अपना गौरव बढ़े और जो काम हाथ मे लिया गया है उसमे प्रगति होती रहे। चिन्तन की धारा विधेयात्मक होनी चाहिए। निषेधात्मक पक्ष मे सोचते रहने वाले, ओछे व्यक्तियो के साथ सम्बन्ध बढ़ाने वाले पाते तो कुछ नही, हानि होने के सरंजाम जुटाते रहते है।

परिस्थितियाँ तेजी से बदलती रहती है, जिनके साथ ही अपने चिन्तन एवं क्रिया-कलाप को भी बदलना पड़ता है। नई ढंग की, नई सुविधा देने वाली मशीने बाजार मे आ जाने से पुराने ढर्रे को अपनाये रहने वाले पिछड़ जाते हैं। इसलिए समय के साथ चलने मे ही भलाई समझी जाती है। लोगो की रुचि और आवश्यकता भी बदलती रहती है, ऐसी दशा मे पुराने ढर्रे पर अड़े रहने की अपेक्षा इसी मे भलाई है कि समय की माँग के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन करते रहा जाय। ऐसे परिवर्तनो मे तत्काल खर्चीली व्यवस्था करनी पड़ सकती है, पर उस सदर्भ मे किया गया श्रम या खर्च अगले ही दिनो अधिक लाभ देने लगता है। प्रबन्धक मे इतनी व्युत्पन्नमति तो होनी ही चाहिए कि चलने वाली प्रतिस्पर्द्धा मे अपने कार्य को पिछड़ने न दे और जहाँ परिवर्तन आवश्यक है, वहाँ उसे करते रहने के लिए साथियो को सहमत करता रहे।

कोई भी काम विश्वास, वफादारी और सहयोग के आधार पर चलते और बढ़ते है। अपने तत्र के साथ जुड़े हुए लोगो मे यह प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करते रहने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देते रहने का प्रयत्न करना चाहिए। भूलो को समझने और समझाने का गुण तो रहना ही चाहिए। इसके बिना खामियो से बचा नही जा सकता और गलतियो के कारण जो हानियाँ उठानी पड़ती है उससे बचा नही जा सकता। इसलिए सूक्ष्म दृष्टि से हर कार्य की समीक्षा करते रहने की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ यह भी उचित है कि उत्साह बढ़ाने एव उत्साहित रखने का वातावरण बना रहे। दोषो के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए उतना ही यह भी आवश्यक है कि गुणो की, पुरुषार्थ की, सद्भावनाओ की प्रशंसा की जाती रहे और वैसा ही बरतने के लिए दूसरो मे उत्साह पैदा होता रहे। मन का मुरझा जाना लगभग वैसा ही है जैसा कि शरीर का कमजोर या बीमार हो जाना। इसलिए निकटवर्ती, दूरवर्ती लोगो ने अपने प्रबल-पुरुषार्थ के सहारे जो सफलता अर्जित करके दिखाई है, उनकी जानकारी सभी साथियो को मिलती रहे और अधिक कुछ करने की उमंग उठती रहे, ऐसे प्रसंग बनाने मे भी अभिरुचि रखनी चाहिए। उत्साह भरे वातावरण मे जितना अधिक और जितना अच्छा काम बन पड़ता है, उतनी विवशता अनुभव करते हुए अधिक वेतन देने पर भी संभव नही हो पाता।

जो काम सामने है उसे कठिन बताने, कठिनाइयो को उजागर करते रहने की अपेक्षा, इस प्रकार का वातवरण बनाना चाहिए जिसमे जो सरल हो वह सरल प्रतीत होता रहे और समझा जाता रहे कि हम लोग मिल-जुलकर इसे आसानी से सम्पन्न कर सकते है।

तनाव से जूझना भी एक अनिवार्यता

मनुष्य की इच्छाशक्ति एवं संकल्पबल स्वभावत: इतने प्रबल है कि कोई प्रतिकूलता उसे अपने पथ से डिगा नही सकती। मानवी काया एवं मस्तिष्क का गठन इतने सामंजस्यपूर्ण ढंग से हुआ है कि सामान्य परिस्थितियो मे थोड़ा भी व्यतिक्रम आने पर वह गड़बड़ाता नही व अपनी प्रतिरोधी सामर्थ्य, प्रचण्ड संकल्प शक्ति के सहारे जूझते हुए कोई न कोई मार्ग निकाल ही लेता है। एक प्रतिपादन यह भी है कि प्रतिकूलताओ का सामना करते हुए यह सामर्थ्य और भी बढ़ जाती है एवं जीवट, जिजीविषा नाम से जिसे हम जानते है, उसका अवलम्बन लेकर वह कभी-कभी असामान्य पुरुषार्थ कर बैठता है। प्रबन्ध व्यवस्था मे चूँकि अनुकूलताओ के साथ ही प्रतिकूलताओ का भी सामना करना पड़ता है, उसे अपने प्रसुप्त पड़े इस ऊर्जा स्रोत को जगाना व प्रतिरोधी सामर्थ्य को बढ़ाना ही पड़ता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की एक घटना है। चार लेफ्टीनेन्ट एक जीप से जापानी मोर्चे का निरीक्षण करने जा रहे थे कि दुर्भाग्यवश दुश्मनो के बीच फँस गये। ऊपर से एक और संकट आ पड़ा कि उनकी जीप फिसलकर सड़क के किनारे खन्दक मे जा गिरी। चारो ने मनोबल को टूटने नही दिया। दोनो ओर से चल रही गोलाबारी के बीच उन्होने परस्पर निर्णय लिया कि गाड़ी को उलटा जाय व पुन. सड़क पर लाकर वापस लौटा जाय। चारो ने एक-एक पहिया संभाला, पूरी ताकत लगाई एवं कुछ ही क्षणो मे जीप को सीधी कर उस पर बैठकर दनदनाते हुए कैम्प वापस लौट आए। मामूली खरोंच के अतिरिक्त किसी को कुछ नही हुआ था। कैम्प के बड़े अधिकारियो ने सारा घटनाक्रम सुनकर उनसे बाहर आने व चारो से

जीप के एक पहिए पर जोर लगाकर उठाने की बात कही। उठाने की बात तो दूर, वे उस भारी पहिए को हिला भी न सके। फिर घटनास्थल पर उनसे क्यो कर ऐसा पराक्रम बन पड़ा कि पूरी जीप को उलटकर सीधी कर वे लौट आए। सर्वोच्च अधिकारी का मत था कि उस समय वे सकट मे थे व किसी तरह जान बचाना उनका लक्ष्य था, ऐसे मे उनने अपनी सारी ऊर्जा लगा दी जो कि असीम-अनन्त है एव अपराजेय साहस दिखाते हुए वह कर सके जो सामान्य स्थिति मे उनसे नही बन पड़ा।

यही है वह ऊर्जा का जखीरा जिसे यदि स्मरण रखा जा सके, समय आने पर जिसका सदुपयोग किया जा सके तो किसी भी उद्दीपन से, प्रतिकूल परिस्थिति से जूझ पाना सभव है। यह तथ्य प्रबंधको पर पूरी तरह लागू होता है क्योकि सर्वाधिक तनाव, परिस्थितियो की प्रतिकूलताओ का, मन पर वातावरण के दबाव का उन्ही को सामना करना पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार १० मे से ८ प्रबंधक स्तर के व्यक्तियो को तनाव की तीव्रतम स्थिति से गुजरना पड़ता है एव ऐसा करते हुए वे प्राय: मनोबल खो बैठते है, मन:ऊर्जा का भण्डार उनका चुक जाता है एव प्रतिक्रियास्वरूप उनके मनोरोगी, फिर शारीरिक रोगी होने के अवसर बढ़ जाते है। विरले ही होते है, उससे अपनी कार्याक्षमता को दुगुना करते हुए सफलता के शिखर पर जा पहुँचते है।

स्ट्रेस या तनाव के बारे मे इन दिनो प्रबंध व्यवस्था के प्रसगो पर काफी विस्तार से चर्चा होने लगी है क्योकि यह एक ऐसी स्थिति है जो सीधे मानसिक स्वास्थ्य पर एव इस प्रकार प्रबंधको की निर्णय क्षमता पर प्रभाव डालती है। यदि निर्णय ही मन की डाँवाडोल स्थिति से प्रभावित होने लगे तो सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाएगी एव ग्रुपलीडर की अक्षमता सामने आते ही सारे समूह का मनोबल प्रभावित होगा।

"स्ट्रेस" शब्द पदार्थ विज्ञान से लिया गया है। वहाँ इसका प्रयोग तब होता है जब किसी पदार्थ पर बल, दबाव इस सीमा तक पड़े कि वह खिंचाव की चरम सीमा पर पहुँचकर टूटने की स्थिति मे आ जाये। जब यही बात मनुष्य पर लागू की जाती है, तो एक तथ्य स्पष्ट होता है कि मनुष्य लौह धातु, लकड़ी या चट्टान नही है, वह जीता-जागता सामर्थ्य का पुंज है, ऊर्जा का भाण्डागार है। वह एक स्थिति विशेष तक बिना टूटे तनाव झेल सकता है। किन्तु भावनात्मक दबाव, बाह्य तनाव जब एक सीमा विशेष को लाँघ जाता है, तो या तो मनुष्य टूट जाता है, उस पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है अथवा अनुकूल प्रक्रिया द्वारा वह स्वय को बदली परिस्थिति के अनुरूप ढाल लेता है।

जब भी कोई बाह्य उद्दीपन या वातावरण के असतुलन का प्रभाव मानव पर पड़ता है तो तुरन्त शरीर मे तीन क्रियाएँ होती है-पहली अलार्म की स्थिति जिसमे पहले 'शॉक' की स्थिति पैदा होती है, प्रतिरोधी सामर्थ्य कम होती है फिर काउण्टर शॉक जिसमे प्रतिरोधी क्षमता एकदम बढ़ जाती है। शरीर का स्वचालित स्नायु संस्थान सक्रिय हो जाता है। एड्रिनलीन हारमोन का उत्सर्जन बढ़ता है, हृदय की गति भी बढ़ जाती है एवं माँसपेशियाँ कड़ी हो जाती है। इस स्थिति के बाद दूसरी स्थिति "स्टेज ऑफ रेजिस्टेन्स" आती है, जिसमे सर्वाधिक अनुकूलन होता है एवं प्रतिरोधी सामर्थ्य बढ़ी हुई ही रहती है। यदि ऐसी स्थिति मे वातावरण मे विद्यमान स्ट्रेस के लिए उत्तरदायी घटक निष्क्रिय हो जाये तो व्यक्ति का बढ़ा हुआ रेजिस्टेन्स शरीर के लिए लाभदायी व मनोबल बढ़ाने वाला सिद्ध होता है। किन्तु यदि स्ट्रेस बनी रही तो तीसरी स्थिति "स्ट्रेज ऑफ एक्जॉशन" थकान की स्थिति आ जाती है। ऊर्जा समाप्त हो जाती है, आदमी टूटने लगता है, प्रतिरोधी सामर्थ्य गिरती जाती है एवं व्यक्ति के मनोशारीरिक रोगो से ग्रस्त होने के अवसर बढ़ जाते है। मनुष्य की यह प्रक्रिया उसके सांस्कृतिक स्तर, मनोवैज्ञानिक बनावट व कई सामाजिक फिल्टर्स से गुजरकर प्राप्त होती है अत: हर मनुष्य मे यह तीनो प्रतिक्रियाएँ अलग-अलग ढंग से अभिव्यक्त होती है।

हर व्यक्ति के अन्दर एक ऐसा जैविक सतुलन स्थापित है कि जब भी उस पर तनाव को जन्म देने वाले कोई भी घटक प्रभाव डालते है तो तुरंत दो प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती है-फाइट (लड़ो) या फ्लाइट (भाग जाओ)। व्यक्ति की सरचना के अनुरूप एड्रिनलीन हारमोन के उत्सर्जन के कारण ही ये प्रतिक्रियाएँ जन्म लेती है। व्यक्ति बहादुर है यदि वह लड़ता है कायर है यदि वह घबराता है एव बुद्धिमान कहलाता है यदि वह परिस्थितिकीय उद्दीपनो से सामंजस्य बिठा लेता है। यह बात सुनिश्चित है कि स्ट्रेस हर व्यक्ति मे उसकी वैयक्तिक विशेषताओ के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाये उत्पन्न करता है। किसी को सभावित भय ही उद्विग्न बना देता है व किसी मे चुनौती से जूझने का भाव पैदा कर देता है। इस प्रकार स्ट्रेस या तनाव की प्रतिक्रिया इस पर निर्भर करती है कि प्रबधक या व्यक्ति मे जूझने की सामर्थ्य कितनी है व उसकी स्वयं की मन.सरचना किस प्रकार की है ?

किसी भी संस्था के सदस्य होने के नाते भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ तनाव के फलस्वरूप जन्म ले सकती है। इन्हें निम्न प्रकार से समझाया जाता है—

(१) इन्टररोलडिस्टेन्स स्ट्रेस- अपनी व्यक्तिगत, पारिवारिक सस्था के मुखिया के नाते भूमिका व सदस्य की भूमिका मे टकराव।

(२) रोल स्टेगनेशन स्ट्रेस- अपने वर्तमान स्तर पर रुके रहने की भावना जन्य तनाव।

(३) रोल एक्सपेक्टेशन स्ट्रेस- अपने सहयोगियो, वरिष्ठों व कनिष्ठो की आपस मे टकराने वाली माँगो से उत्पन्न तनाव।

(४) रोल इरोजन स्ट्रेस- अपनी भूमिका के गौण हो जाने या किसी और द्वारा श्रेय ले जाने से उत्पन्न तनाव।

(५) पर्सनल इनएडेक्वेसी स्ट्रेस- जो अपेक्षा है उससे अधिक क्रिया-कौशल, योग्यता एवं प्रशिक्षण का अपने अन्दर न होने-से जन्मा तनाव।

(६) रोल आइसोलेशन स्ट्रेस-अपनी भूमिका से दूसरो का न जुड़ा होना व स्वयं को अकेला पाने से उत्पन्न तनाव।

(७) रोल ओवरलोड स्ट्रेस- अपनी क्षमता से अधिक काम सिर पर होने से या उसकी अपेक्षा रखे जाने से उत्पन्न तनाव।

(८) सेल्फ रोल डिस्टेन्स स्ट्रेस- अपने आपके बारे मे अपनी मान्यता व अपने से की जा रही अपेक्षा के बीच उत्पन्न होने-वाली खाई से जन्मा तनाव।

(९) रोल एम्बीग्वीटी स्ट्रेस-अपनी भूमिका का अत्यधिक अस्पष्ट होना व कार्य से अनभिज्ञ होने से जन्मा तनाव।

(१०) रिसोर्स इनएडेक्वेसी स्ट्रेस- जब अपेक्षित संसाधन आवश्यकता के विपरीत कम पड़ने लगे तो इस दबाव से जन्मा तनाव।

जब भी व्यक्ति पर संस्थागत, समाजगत एवं मनोगत दबाव पड़ते है, तो तनाव सहने की क्षमता के बावजूद प्रारभ मे तो व्यक्ति अपनी ओर से पूरा अतिरिक्त प्रयास करता है किन्तु तनाव की तीव्रता उसे क्रमश: तोड़ने लगती है, चिन्ताएँ जन्म लेने लगती है व अचेतन के स्तर-पर पारस्परिक सामंजस्य न बैठ पाने के कारण दवाओ का आश्रय लेने के बावजूद विक्षोभो का सिलसिला बढ़ता ही चला जाता है । धीरे-धीरे मनोयोग मे कमी, निर्णय लेने की क्षमता मे पैनेपन का अभाव, समय-समय पर काम से अनुपस्थिति, समूहगत कामो मे दिलचस्पी का अभाव तथा कभी-कभी उन्माद या उत्तेजना की मन:स्थिति पैदा हो जाती है। शारीरिक लक्षण सिर दर्द, नीद मे-कमी, भूख चले जाना, अपच, छाती मे दर्द व तुनक-मिजाजी स्वभाव जैसे-मनो-शारीरिक विकार जन्म लेते है।

असामंजस्य की स्थिति बढ़ते-बढ़ते एक चरमसीमा यह भी आ सकती है कि व्यक्ति बुरी तरह टूट जाता है। नीद मे चलना, सक्षोभ-विक्षोम जैसे भावनात्मक मनोविकार तथा मल्टीपल पर्सनालिटी जैसे मनोरोग जन्म लेने लगते है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी तनाव से दूर भागने की स्थिति मे व्यक्ति 'एस्केप एक्टीविटीज' या 'एस्केप मेण्टिलिटीज' का सहारा लेता हुआ भी देखा गया है । उनमे या तो वह अत्यधिक आहार लेने लगता है अथवा धूम्रपान करने लगता है। मन पर इनका प्रभाव नीद के अस्त-व्यस्त होने, पेट मे अम्ल का रस स्राव बढ़ने, तनावजन्य सिर दर्द, उच्च रक्त-चाप, स्थायी रूप से पीठ मे दर्द के रूप मे होता पाया गया है। यह एक ऐसी स्थिति है जो स्पष्ट रूप से चिकित्सा की सहायता चाहती है व यदि यह सही समय पर-मिल जाए तो कभी-कभी तनावजन्य शारीरिक रोगो को रोका जा सकता है।

तनाव की एक स्थिति ऐसी वर्णित की गयी है जिसमे व्यक्ति अपनी क्षमता व वातावरण के दबाव के कारण हार मान बैठता है व स्थायी रूप से रोगी हो जाता है। उसे बर्नआउट स्ट्रेस सिण्ड्रोम अथवा 'बॉस' नाम से जाना जाता है। यह तनाव-उद्वेगजन्य एक ऐसी स्थिति है जिसमे कार्य करने से उत्पन्न दबाव इस सीमा तक बढ़ जाता है कि व्यक्ति बुरी तरह कुण्ठित हो टूट जाता है। इसकी चार प्रतिक्रियाये होती है। अपने अन्दर छिपे ऊर्जा स्रोत का क्रमश: समाप्त होते चले जाना, व्याधियो से जूझने हेतु जीवनी-शक्ति का क्षय, बढ़ता हुआ असतोष एवं निराशा का भाव, कार्य मे अक्षमता एव बहाने के रूप मे काम से अनुपस्थिति। इस सिण्ड्रोम की पाँच क्रमिक अवस्थाएँ गिनाई गयी है। हनीमून, फ्यूएल शार्टेज, क्रानिक सिम्पटम्स, क्राइसिस तथा हिटिंग दवाल।

हनीमून की स्थिति मे प्रारभ मे मनुष्य के अन्दर एक नया उत्साह रहता है। वह चुनौती स्वीकार करता तथा ऐसा करते-करते काम मे जुट जाता है। क्रमश: शक्ति भण्डार चुक जाता है। फ्यूएल शार्टेज अवस्था मे वह पाता है कि अपनी ऊर्जा सीमित है व कार्य का दबाव अधिक। सुरक्षित भण्डार भी चुकने लगता है। थकान,मतिभ्रम, नौकरी मे असंतोष, अक्षमता, नीद मे गड़बड़ी जैसी प्रतिक्रियाएँ जन्म लेने लगती है।

क्रानिक सिम्पटम की स्थिति वह है, जिसमे तनाव जन्य शारीरिक लक्षण तेजी से उभर आते है। ये है-स्थायी थकान, हृदय और अपच, आँतो के चिढ़ने से पैदा हुई इरिटेबल बॉविल, अत्यधिक अम्लस्राव से पैदा हुआ पेप्टिक अल्सर, दमा, माँसपेशियो मे ऐंठन, अकारण क्रोध तथा अवसाद।

क्राइसिस की स्थिति तब आती है, जब तनाव को पैदा करने वाले घटक वातावरण मे विद्यमान रहते है। अत्यधिक निराशा भाव, निषेधात्मक चिन्तन व स्वयं पर सदेह की वृत्ति पनपने लगती है। अन्तिम स्थिति है 'हिटिंग द वाल,' जिस तरह एक मेराथन दौड़ लगाने वाला कुछ किलोमीटर रह जाने पर लक्ष्य को सामने मानते हुए पूरी ताकत से दौड़ लगाता व अंतत: थक कर गिर जाता है, प्रबंधक भी एक अंतिम छलाँग लगाता एवं दीवार से टकराकर गिर पड़ता है।

बॉस से विपरीत एक रस्ट आउट स्ट्रेस सिण्ड्रोम (रॉस) भी होती है, जिसमे व्यक्ति को क्षमता के अनुरूप काम न मिलने पर उसे जंग लगने लगती है। व्यक्ति की

गुणात्मक क्षमताये प्रभावित होती है। इससे बचने का एक ही तरीका है कि स्वयं चुनौती स्वीकारी जाय, अपने आपको अकेलेपन से बचाया जाय तथा नई से नई जानकारियो के संपर्क मे रहा जाय।

वस्तुत: प्रबंधक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहना एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। उसे समय-समय पर बताया जाना चाहिए कि भावनात्मक संतुलन, स्थितप्रज्ञ की स्थिति बनाये रखना उसके लिए बहुत जरूरी है। अपने आस-पास उभरने वाली तनावजन्य परिस्थितियो से जूझने के लिए मनोबल बढ़ाने का भी सतत अभ्यास करना चाहिए। छोटी-छोटी चुनौतियाँ लेकर उन्हे साथियो के सहयोग से पूरे करते रहना चाहिए। काम को हल्के-फुल्के ढग से, तनावरहित हो प्रसन्नतापूर्वक निपटाने की आदत डालनी चाहिए। संभावित परिणामो का पूर्वानुमान लगाने की अंत:दृष्टि व दूरदृष्टि विकसित करनी चाहिए। जो ऐसा करते है, वे कभी भी मनोरोगी नही होते।

ध्यान व शिथिलीकरण ऐसी प्रतिक्रियाये है जिनका नियमित अभ्यास व्यक्ति को वैचारिक तनाव से मुक्त करता है। ध्यान एक प्रकार की "मेण्टल फास्टिंग" है, जिसमे मन से फालतू विचारो का कचरा-बुहारा जाता है एवं विधेयात्मक चिन्तन मे तन्मय होने का अभ्यास किया जाता है। मन को विश्राम मिलने से तनाव काफी सीमा तक कम हो जाता है। विधेयात्मक, ग्रन्थिरहित दृष्टिकोण विकसित होता है एवं व्यक्ति मानसिक रूप से तनाव झेलने मे समर्थ हो जाता है। अन्यान्य गुणो के अतिरिक्त यह एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है कि प्रबंधक की मन क्षमता उच्चस्तर की हो ताकि उसके द्वारा लिए गये निर्णय सही हो। यदि चिन्तन की विधि सही व सुनियोजित है तो निश्चित ही प्रबंधक की गरिमा बढ़ेगी ही।

अधिक सतर्कताओं का समुच्चय

एक ही समय मे अनेक विषयो का चिन्तन करना, उन्हे क्रमबद्ध रूप से हाथ मे लेने की योजना बना लेना तो ठीक है, पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मस्तिष्क जैसी संरचना शरीर की नही है। उससे एक समय मे एक ही काम बन पड़ता है। जो लोग हड़बड़ी मे एक ही समय मे कई काम एक साथ करना चाहते है, वे उन सभी को अस्त-व्यस्त कर देते है। समय तालिका बनाना और एक के बाद दूसरा काम करते जाना सुविधाजनक रहता है। यह दूसरी बात है कि कई लोगो से कई काम कराने हो, तो उन सभी का ऐसा मार्गदर्शन करते रहा जाय, जिससे सभी योजनाबद्ध कामो मे लगे रहे और सामयिक आवश्यकताये यथासंभव पूरी होती रहे।

कारखानो मे कर्मचारियो को वेतन जैसी सुविधाओ का स्मरण रखते हुए यथासमय निर्धारित काम कर देने के लिए बाधित किया जा सकता है। अवज्ञा करने पर उनकी नौकरी जाने तथा दूसरे प्रकार की पदोन्नति रुक जाने जैसा भय बना रहता है। इसलिए उस वर्ग के साथियो को मीठे शब्दो मे किन्तु सौपा काम ठीक तरह करने के लिए दबाव डाला जा सकता है। किन्तु जब सार्वजनिक प्रयोजनो के लिए, कर्तव्य पालन के लिए प्रोत्साहित करने की बात सामने आती है तब प्रसंग दूसरा ही बन जाता है। किसी संगठन या पार्टी के सदस्य मूलत: सेवा-भावना साथ लेकर आये होते है। इसका उन्हे गर्व रहता है। पर साथ ही यह व्यवधान भी रहता है कि ऐसी शृखला के अधिकांश घटको मे अहंकार तृप्ति की महत्त्वाकाक्षाओ की भी कमी नही रहती। वे अपने को प्रमुख पद पर देखना चाहते है और साथ ही इतना श्रेय चाहते है जो दूसरो के लिए कार्यो के बदले भी उन्ही को प्रशंसा का पात्र ठहराया जाये। यह पेचीदा स्थिति है। इसे सुलझाने के लिए मनो-वैज्ञानिक और भावनात्मक स्तर का कौशल चाहिए। अन्यथा साथियो का इसी अहमन्यता की चट्टान से टकराकर असहयोग करने लग जाना, विरोधी तक बन जाना संभव है। इन्ही छोटे कारणो से अच्छे-भले संगठन बिखर जाते है और कल तक के सहयोगी दूसरे दिन विरोध करने पर उतारू हो जाते है। अच्छे-भले संगठन इसी छोटे आधार पर बिगड़ते और बिखरते देखे गये है।

बिना घनिष्ठता-निकटता का विचार किये जिनने कुछ प्रशंसनीय कार्य किये है, आदर्शवादी सद्गुणो के परिचय दिये है, उनकी प्रशंसा समय-समय पर करते रहना चाहिए। इससे अधिक प्रयास करने का प्रोत्साहन मिलता है, पर साथ ही यह भी ध्यान रखा जाय कि अवगुणो की, भूलो की चर्चा मात्र एकान्त मे और सुझावपरक मूड मे ही करनी चाहिए अन्यथा लोग उसे निन्दा मानने और शत्रुता करने लगेगे। बड़े परिवार का बिना विग्रह के चलते रहना बड़ा काम है। उससे भी बड़ा किसी टीम, मण्डली, पार्टी मे सौमनस्य बनाये रहना है। इसमे सबंधो, मान्यताओ और भावनाओ का विशेष ध्यान रखना पड़ता है और साथ ही तलवार की धार पर चलने जैसा यह व्यवहार भी निवाहना पड़ता है कि साँप मरे न लाठी टूटे की बात बनती रहे। दोष-दुर्गुणो को अनदेखा करने से लेकर सुधार करने तक का काम इस कुशलता से करना चाहिए कि मनोमालिन्य न उभरने पाये। सौजन्य का निर्वाह और लोगो की आकांक्षाओ का यथासंभव तालमेल बिठाते रहने वाले दूरदर्शी और धैर्यवान ही किसी बडे समुदाय को संगठित रख पाते है।

जिनके बीच घनिष्ठता होती है। पड़ौस मे बसना या आदान-प्रदान का सिलसिला चलता रहता है। उनके स्त्री-बच्चे भी एक-दूसरे के घर आने-जाने लगते है। यह दोनो ही वर्ग समझदारी की अपेक्षा भावुकता के प्रवाह मे अधिक बहते देखे गये है। कोई अप्रसग आते ही तुनक जाते है और लड़ाई-झगड़े के मूड मे आ जाते है। बात बढ़ जाने पर सूचना बड़ो तक पहुँचती है। उनने भी यदि

आवेश का परिचय दिया और अपने निकटवर्ती की हिमायत की तो निश्चय ही उसका अर्थ दूसरे पक्ष के साथ द्वेष का प्रदर्शन माना जायगा और नासमझो की तुलना मे दोनो बड़ो के बीच खाई पैदा कर देगा। ऐसी खाई जो पारिवारिक संबंध भी खराब कर दे और मेलजोल से जो काम चल रहा था, उसमे भारी बाधा खड़ी हो जाय। स्त्री-बच्चे तो कुछ ही समय मे झगड़े को भुलाकर एक हो जाते हैं, पर बड़ो के मनो मे पड़ी हुई खाई मुद्दतो बनी रहती है। यह स्थिति नही आने देनी चाहिए। झगड़े मे भूल प्रायः दोनो पक्षो की होती है। किसी की कम किसी की अधिक। एक हाथ से ताली नही बजती। अतएव यदि कुछ डाटना-डपटना या समझाना हो तो अपने ही निकटवर्ती प्रियजनो को समझाना चाहिए। सामने वाले को धमकाना नही चाहिए। यह कार्य उनके संरक्षको पर ही समयानुसार करने के लिए छोड़ देना चाहिए।

लड़ाई मे अपनो की हिमायत की अक्सर बहुत बुरी प्रतिक्रिया होती है। सामने वाले अनुमान लगाने लगते है कि अपने की हिमायत की गई और विराने पर झूठा दोषारोपण किया गया। वस्तुस्थिति कुछ भी क्यो न हो, पर आमतौर से झगड़े का बीच-बचाव करने की अपेक्षा अपने की हिमायत करने पर पूरा महाभारत मच जाता है। दूसरे पक्ष वाले भी हिमायतियो को खोज लेते है और बात बढ़कर बतंगड़ बन जाती है। साम्प्रदायिक व जातीय दंगे प्रायः इसी आधार पर होते रहते है। ऐसे नाजुक मामलो मे असाधारण समझदारी का परिचय देने की आवश्यकता है। अपने पक्ष वालो को ही यदि डपट दिया जाय, तो सामने वाले के मन मे भी यह सूझ उपजती है कि वह अपने साथियो को समझाये-धमकाये। शान्ति स्थापित करने का यही मार्ग है। झझट भरी घड़ियो को इसी प्रकार टाला जाता है। दूसरे पक्ष की गलती होने पर भी यथासंभव यही प्रयत्न होना चाहिए कि कुसमय को टाल देना, किसी बड़ी हानि से बच जाने की समझ यही है। विग्रह मे दोनो ही पक्ष घाटे मे रहते है भले ही गलती किसी एक पक्ष की ही क्यो न हो ?

समूह संचालन की प्रमुख भूमिका विग्रह होने को बचा लेने और सहयोग के, मुस्तैदी के तत्त्व उभारने की होती है। जो जिस संदर्भ मे अनभिज्ञ है, उसकी कच्चाई, कमजोरी को भी ध्यान मे रखने की, तद्नुरूप काम सौंपने की, अनुभव अभिवर्धन की आवश्यकता पड़ती है। हर किसी मे कुछ दोष पाये जाते है। वे छोटे एवं थोड़े होने पर भी मौके पर उभरने पर अनर्थ खड़े कर देते हैं। ऐसी समस्याओ को दूरदर्शी दृष्टिकोण अपनाकर समझते रहने वाले अपनी उपयुक्तता और प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनाये रखते है। अनौचित्य को अनदेखा तो नही करना चाहिए, पर सौ टच खरा होने की आशा भी किसी से नही करनी चाहिए। चतुरता इस बात मे है कि जैसे कुछ भी साथी-सहयोगी या साधन उपलब्ध है, यदि उन्हे बदला नहीं जा सकता तो किसी प्रकार कामचलाऊ नीति अपनाने से भी गाड़ी आगे धकेले जा सकने की स्थिति बनी रहती है।

कारखानो मे अक्सर टूट-फूट, चोरी-बर्बादी होती रहती है और उसके कारण ऐसी हानि होती है जिनका पूर्व अनुमान लगाया नही गया था। यदि उन सम्भावनाओ की समय से पूर्व आशंका या कल्पना कर ली गई होती, तो वे उपाय सोचे जा सकते थे जिनके आधार पर काम हर्ज होने की नौबत नही आती । आकस्मिक या अप्रत्याशित कहकर विवशता तो प्रकट कर दी जाती है, पर यह ध्यान नही रखा जाता कि काम के हर पहलू पर ध्यान रखना कितना अधिक आवश्यक है। मात्र गाड़ी को किसी प्रकार ढकेलते रहना ही प्रबंधक की जिम्मेदारी नही होती। उसे लाभ की ही तरह हानि का भी ध्यान रखना चाहिए।

जिस पर सेल टैक्स, इनकम टैक्स, सुपर टैक्स, मृत्यु टैक्स आदि लगते हैं, उन्हे तो हिसाब-किताब के बही-खाते रखने ही पड़ते है। न रखने पर उन्हे दण्ड भुगतना पड़ता है। जिनकी आजीविका सीमित है और सरकार को हिसाब दिखाना पड़ता है, उन्हे भी निजी जानकारी के लिए, गति ऊपर की ओर उठ रही है या नीचे गिर रही है, यह जानने के लिए अनुमानित नही प्रामाणिक आकलन रखना पड़ता है, ताकि वस्तुस्थिति का पता चलता रहे। गिरावट का सुधार और प्रगति का अभिवर्धन कर सकना संभव हो सके। हिसाब-किताब के अतिरिक्त और भी सामाजिक, पारिवारिक, क्रियाकलाप चल रहे हो, संगठनात्मक प्रयास बन पड़ रहे हो, स्कूल जैसे शिक्षण संस्थानो की गतिविधियो का नियोजन हो रहा हो, उनकी भी प्रगति-अवगति, स्थिरता अथवा संभावित अवरोधो का पता चल सके। इस जानकारी के अभाव मे काम का ढर्रा तो चलता रहता है और पैसा भी आता जाता दीखता है, पर यह पता नहीं चल पाता कि अगले दिनो किन सुविधाओ की आशा है। वर्तमान योजनाओ मे और कुछ जोड़ा या घटाया जा सकता है। इस जानकारी के अभाव मे चलती दीखने वाली गाड़ी एकत्रित होती रहने वाली अनुपयुक्तताओ के कारण कभी भी चरमरा कर बैठ सकती है और कल तक जो साहूकार बने हुए थे, वे दूसरे दिन दिवालिया हो सकते है।

ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते रहते हैं, जिसमे उधारी देन-लेन का हिसाब नही रखा गया। घाटे और लाभ का अनुमान नहीं लगाया गया। संतोष इतने भर से ही कर लिया गया कि गाड़ी किसी प्रकार भगवान भरोसे चल रही है। इस प्रकार जो अपने को अंधेरे मे रखे रहते है, बार-बार वस्तुस्थिति का आकलन नही करते और उतार-चढ़ावो को ध्यान मे रखते हुए उनमे सामाजिक परिवर्तन नही करते, उन्हे किसी भी दिन अप्रत्याशित समस्याओ का सामना करना पड़ सकता है और ऐसे

दलदल मे फँसना पड़ सकता है, जिससे उबरना कठिन हो जाय और बनी प्रतिष्ठा को हाथ से गँवाना पड़े। अस्तु, जहाँ लेखबद्ध रूप से वस्तुस्थिति का आकलन आवश्यक है वहाँ विचारशीलो के परामर्श से यह निर्धारण करते रहना भी आवश्यक है कि वर्तमान को देखते हुए अधिक अच्छा सुयोग बनने के लिए अगले दिनो किन सुधार-परिवर्तनो की आवश्यकता है और उन योजनाओ को किस क्रम से आगे बढ़ाया जाय, यह निश्चय करने मे विलम्ब नही करना चाहिए।

काम वितरण करते समय यह ध्यान मे रखना चाहिए कि कौन व्यक्ति किस योग्यता का है और उसे किस सीमा तक काम सौपा जा सकता है। इसका निर्धारण न हो पाने पर प्रिय लगने वाले व्यक्तियो मे अति विश्वास के कारण कोई बड़ा काम अति मात्रा मे सौप दिया जाता है। फलत अनुभवहीनता और रुचि से बाहर होने के कारण वह उसे ठीक तरह कर नही पाता और अन्ततः काम सम्पन्न होने के स्थान पर पहले से भी अधिक बिगड़ जाता है। तब परिवर्तन करने मे बहुत देरी हो गई होती है और जिसे विश्वास मे लिया गया था, उससे भी कटुता बढ़ जाती है। ऐसी दशा मे उचित यही है कि कोई अधिक महत्त्वपूर्ण काम सामने आ जाने पर अपने या पराये मे से किसी भी योग्य व्यक्ति को उसे सौपा जाना चाहिए । सम्पर्क क्षेत्र मे ही ऐसे व्यक्ति भी खोजे जा सकते है, जो कि अपनी योग्यता का पैसा तो लेते है, पर काम समय पर और सही करके नही देते है। अयोग्य अपनो की अपेक्षा सुयोग्य परायो को महत्त्व देना कुछ अधिक बुरा नही है।

किसी पुराने व्यक्ति को हटाना हो, तो यह कार्य इतनी सरलता और मधुरता के साथ सम्पन्न किया जाना चाहिए कि कटुता कम से कम बढ़े। पुराने व्यक्तियो को रुष्ट करके उन्हे विरोधी बना लेना बुद्धिमत्ता नही है। इससे तो अच्छा यह है कि जिनके कारण गड़बड़ी बढ़ती है, उनका काम बदल दिया जाय।

झंझटो से यथासंभव बचना ही चाहिए, ताकि उस विग्रह को निपटाने वाली शक्ति को बचाकर किसी ऐसे प्रयोजन मे लगाया जा सके, जो सृजनात्मक प्रयोजन को पूरा कर सके। साधारण नीति यही होनी चाहिए। कोई असाधारण संकट सामने आ खड़ा हो तो ही लड़ने के मूड मे आना चाहिए। अपनी इमेज लड़ाकू के रूप मे बनाने की अपेक्षा समझदार और सज्जन की बना लेना कही अधिक अच्छा है।

प्रबंधक को ऐसा वातावरण नही बनने देना चाहिए जिससे हाथ मे ली हुई योजना कठिन मालूम पड़े और करने वालो की हिम्मत टूटने लगे। यदि ऐसी कुछ अड़चन हो तो अपनी सीमा का ध्यान रखते हुए काम को थोड़ा सरल और सीमित कर लेना चाहिए। योजना को क्रमिक विकास के अन्तर्गत लम्बा कर लेना चाहिए। मनोबल हर हालत मे बना ही रहना चाहिए। प्रबंधक यदि अपनी जिम्मेदारी के काम को सही रीति से निपटा लेने पर विश्वास रखेगा तो यह स्वाभाविक ही है कि साथियो का भी मनोबल बढ़ा रहे और उसके सहारे बढ़े-चढ़े काम भी किसी प्रकार सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाये। जहाँ भी बढ़े-चढ़े कामो मे हाथ डाला जा रहा हो, वहाँ यह भी आवश्यक है कि उसके अनुरूप साथी-सहयोगी एवं साधन, उपकरण, पूँजी आदि की व्यवस्था बनाने मे भी ढील न की जाय।

उधार देन-लेन यो इन दिनो एक साधारण व्यवहार बन गया है। व्यवस्था मे उसे एक साधारण प्रचलन मान लिया गया है। फिर भी उसमे जोखिम अनेको है। कभी-कभी तो मजबूरीवश भी वापिसी कठिन हो जाती है, पर कितनो की नीति ही यही रहती है कि कुछ दिन व्यवहार सही रखकर बाद मे बड़ी रकम का कर्ज चढ़ जाने पर आँखे दिखाना शुरू कर दे और किसी अन्य को उसी अनुदार नीति का अपना व्यवहारी भी बना ले। बाद मे उससे भी मुँह मोड़कर किसी तीसरे के साथ सबध जोड़े। ऐसी दशा मे उधार देकर अधिक बिक्री बढ़ जाने की बात सोचकर जो इस झंझट मे पड़ जाते है, वे आमतौर से घाटे मे ही रहते है। कम लाभ लेकर माल बेचने की नीति ऐसी है जिसमे रकम डूबने और ग्राहक हाथ से निकल जाने की जोखिम नही रहती। जहाँ तक हो सके, कारोबार इसी नीति के अनुसार चलाना चाहिए। यदि उधार की मजबूरी आ पड़े तो उसे मन में यही समझ लेना चाहिए कि वापिस लौटने की सभावना आधी-चौथाई ही रह गई। उतना अपने मे साहस हो तो ही उधारी की बात सोचनी चाहिए। अन्यथा थोड़ा काम करना, थोड़े मे सन्तोष करना अन्ततः बिना जोखिम का और बिना सिर दर्द का सिद्ध होता है।

आमदनी की तुलना मे खर्च बढ़ तो नही रहा है। इस सबध मे सदा सतर्कता रखनी चाहिए। पूँजी घटती रहे और किसी प्रकार पहिया लुढ़कता रहे तो उस असावधानी को अपनाये रहने वाला व्यक्ति कुछ दिन मे अपना व्यवसाय और सम्मान दोनो ही गँवा बैठता है।

प्रबंध क्षमता जितनी महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान है, उतनी ही अधिक सावधानी, तन्मयता, अनुभव सम्पादन, प्रतिस्पर्द्धा, चुनाव मे सावधानी, वहन करते समय समुचित सावधानी एवं मनोबल की दृष्टि से सक्षम होने की आवश्यकता पड़ती है। इसका अभ्यास अपने व्यक्तिगत जीवनयापन और परिवार की सुव्यवस्था बनाने की छोटी-छोटी जिम्मेदारियो को भली प्रकार पूरी करने के साथ आरम्भ करना चाहिए। आगे चलकर यही अनुभव बड़े कामो को बड़े रूप मे सम्पन्न करने मे भी सहायक बन जाता है।

●

आकृति देखकर मनुष्य की पहचान

चेहरा आन्तरिक स्थिति का दर्पण है

अपने रोजमर्रा के जीवन मे जितने लोगो के सम्पर्क मे आता है, उनकी आकृति देखकर वह इसका बहुत कुछ अन्दाज लगा लेता है कि इनमे से कौन किस ढंग का है, उसका स्वभाव, चाल-चलन और चरित्र कैसा है ? यह अन्दाज बहुत अंशो मे सही उतरता है। यद्यपि कभी-कभी बनावट के चकाचौंध मे धोखा भी हो जाता है, पर अधिकाश मे शक्ल-सूरत देखकर यह जान लिया जाता है कि यह आदमी किस मिट्टी से बना है ? मनुष्यो को पहचानने की कला मे जो जितना ही प्रवीण होता है, वह अपने व्यवसाय मे उतना अधिक निश्चिन्त रहता है, जैसे आदमी से तैसी ही आशा रखने का मार्ग मिल जाय तो ठगे जाने का भय कम रहता है और लाभदायक सुविधाएँ सहज ही प्राप्त हो जाती है।

बहुत पूर्वकाल से इस विद्या की ढूँढ़-खोज जारी है, अनेक अन्वेषको ने इस दिशा मे बहुत खोज की है और गोता लगाने पर जो रत्न उन्हे मिले है, उनको सर्व-साधारण के सामने प्रकट किया है। महाभारत एव वेद-पुराण और कादम्बरी आदि ग्रन्थो से यह पता चलता है कि इस विद्या से भारतवासी पुराने समय से परिचित है। वाल्मीक रामायण के युद्धकाण्ड मे कथा है कि जब त्रिजटा राक्षसी ने सीता को राम की मृत्यु हो जाने का झूठा सवाद सुनाया तो सीता ने उत्तर दिया कि—"हे त्रिजटा ! मेरे पाँवो मे पद्मो के चिह्न है, जिनसे पति के साथ राज्याभिषेक होना प्रकट होता है, मेरे केश पतले, समानाकार तथा काले है, भौहे खुली हुई, जंघाएँ रोम रहित तथा गोल, दाँत जुड़े हुए कुन्दकली से, नख गोल चिकने, स्तन मिले हुए, मोटे, रोम कोमल, रंग उज्ज्वल है, इसलिए पडितो ने मुझे शुभ लक्षण वाली सौभाग्यशालिनी कहा है, विधवाओ के से कुलक्षण भी मुझ मे नहीं है फिर क्या श्री रामजी के न होने से यह सब लक्षण मिथ्या हो जायेंगे ?" इस कथन से विदित होता है कि त्रेता मे आकृति विज्ञान की जानकारी स्त्रियो को भी थी।

आर्यो से यह विद्या चीन, तिब्बत, ईरान, मिश्र, यूनान आदि मे फैली। पीछे अन्य देशो मे भी इसका प्रचार हुआ। ईसा के २५० वर्ष पूर्व टालेमी के दरबार मे एक मेलाम्पस नामक विद्वान रहा करता था, उसने इस विषय पर एक अच्छी पुस्तक लिखी थी। वर्तमान समय मे यूरोप अमेरिका के वैज्ञानिक रक्त एवं पसीने की कुछ बूँदो का रासायनिक विश्लेषण करके मनुष्य के स्वभाव तथा चरित्र के बारे मे बहुत कुछ रहस्योद्घाटन करने मे सफल हो रहे है। कीरो (Cheiro) प्रभृति विद्वानो ने तो 'नये' सिरे से इस सम्बन्ध मे गहरा अनुसन्धान करके अपने जो अनुभव प्रकाशित किये है उनसे एक प्रकार की हलचल मच गई है। आकृति देखकर मनुष्य को पहचान करने की विद्या अब इतनी सर्वांगपूर्ण होती जा रही है कि लोगो का भीतरी परिचय कुछ ही क्षण में प्राप्त कर लेना आश्चर्यजनक रीति से सरल एवं सम्भव होने लगा है।

प्रकृति ने थोड़ा-बहुत इस विद्या का ज्ञान हर मनुष्य को दिया है। प्राय. देखा जाता है कि छोटे बच्चे भी लोगो की शक्ल-सूरत देखकर कुछ धारणा बनाते है और उसी के अनुसार बर्ताव करते है। साधारणतया हर मनुष्य किसी दूसरे पर दृष्टि डालकर यह अन्दाज लगाता है कि यह विश्वास करने योग्य है या इससे बचकर दूर रहना चाहिए। भले ही आप न जाने कि यह विद्या हमे आती है पर प्राकृतिक नियमो के अनुसार मनुष्य को जो मानसिक शक्तियाँ प्राप्त हुई है उनमे मनुष्य को पहचानने की विद्या भी एक है। यह सहज ज्ञान (इनस्टिंक्ट) हर एक के हिस्से मे आया है, यह दूसरी बात है कि किसी के पास उसकी मात्रा कम हो, किसी के पास अधिक। जिस प्रकार व्यायाम से बल, पढ़ने से विद्या और प्रयत्न से बुद्धि बढ़ती है, उसी प्रकार अभ्यास से इस ज्ञान की भी उन्नति हो सकती है और उसके आधार पर बहुत कुछ वास्तविकता की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अब हम इस प्रसग पर आते है कि किस प्रकार आकृति देखकर दूसरो की पहिचान की जा सकती है ? आप किसी व्यक्ति के चेहरे की बनावट पर, नेत्रो मे झलकने वाले भावो पर, पहनाव-उढ़ाव पर, चाल-ढाल पर, तौर-तरीके पर बहुत गम्भीरतापूर्वक इस इच्छा के साथ दृष्टि डालिए कि यह व्यक्ति किस स्वभाव का है। यदि मन एकाग्र और स्थिर होगा तो आप देखेंगे कि आपके मन मे एक प्रकार की धारणा जमती है। इसी प्रकार दूसरे व्यक्ति के ऊपर दृष्टिपात कीजिए और उस चित्र मे

धारणा जमने दीजिए। इन दोनो धारणाओ का मुकाबला करिए और देखिए, कि किन-किन लक्षणो के कारण कौन-कौन-से संस्कार जमे है। तुलनात्मक रीति से इसी प्रकार अनेक व्यक्तियो को देखिए उनके लक्षणो पर विचार कीजिए और मन पर जो छाप पड़ती है उसका विश्लेषण कीजिए। यह अन्वेषण और अभ्यास यदि आप कुछ दिन लगातार जारी रखे तो इस विद्या के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जानकारी अपने आप प्राप्त होती जायेगी और अनुभव बढ़ता जायेगा।

इस पुस्तक मे बताया है कोई दो प्राणी एक-सी आकृति के नही होते, सबकी आकृति मे कुछ न कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है, कुदरत ने अपनी कारीगरी हर एक प्राणी पर अलग-अलग दर्शाई है, एक साँचे मे सबको ढालने की बेगार नही भुगती है, वरन् हर एक मूर्ति को निराले तर्ज-तरीके के साथ गढ़ा है। इस विभिन्नता का कारण यह उदाहरण तो नही बताया जा सकता है कि इस प्रकार के अंग-प्रत्यंगो वाले इस प्रकार के होते है, क्योंकि जिस आदमी की आकृति का उदाहरण दिया जायेगा, उसकी जोड़ी का दूसरा आदमी सृष्टि मे मिल सकना कठिन है। फिर भी कुछ मोटी-मोटी रूप-रेखाएँ बताई जा सकती है, कुछ ऐसा श्रेणी विभाजन किया जा सकता है कि अमुक ढाँचे की अमुक आकृति हो तो उसका वह परिणाम होगा।

केवल अंग-प्रत्यगो की बनावट से ही ठीक और अन्तिम निर्णय पर नही पहुँचा जा सकता। किसी व्यक्ति का लाक्षणिक परीक्षण करने के लिए उसकी चाल-ढाल, भाव-भंगी, मुख-मुद्रा, तौर-तरीका, बात करने, उठने-बैठने का ढंग आदि बातो पर भी विचार करना होगा। जिस प्रकार गध सूँघकर आप थैले मे बन्द रखी हुई मिर्च, हीग, कपूर इलायची आदि को बिना देखे भी जान लेते है उसी प्रकार शरीर के बाहरी भागो पर जो लक्षण बिखरे पड़े है, उन्हे देखकर यह भी जान सकते है कि इस मनुष्य के विचार, स्वभाव तथा कार्य किस प्रकार के होगे। यहाँ भ्रम मे पड़ने की कोई बात नही है।

आकृति की बनावट के कारण स्वभाव नही बनता, वरन् स्वभाव के कारण आकृति का निर्माण होता है। स्थूल शरीर की एक धुँधली-सी छाया हर वक्त साथ-साथ फिरा करती है, सूक्ष्म शरीर की भी एक छाया है, जो जरा गहराई के साथ दृष्टि डालने मे लोगो की आकृति पर उड़ती हुई दिखायी देती है। पेट मे जो कुछ भरा है, वह बाह्य लक्षणो से प्रकट हुए बिना नही रहता। प्याज पेट मे भीतर पहुँच जाय, तो भी उसकी गन्ध मुँह मे आती रहती है, इसी प्रकार आन्तरिक विचार और व्यवहारो की छाया चेहरे पर दिखाई देने लगती है। यही कारण है कि आमतौर पर भले-बुरे की पहचान आसानी से हो सकती है, धोखा खाने या भ्रम मे पड़ने के अवसर तो कभी-कभी ही सामने आते है।

मनुष्य के कार्य आमतौर से उसके विचारो के परिणाम होते हैं। यह विचार आन्तरिक विश्वासो का परिणाम होते हैं। दूसरे शब्दो मे इसी बात को यो कहा जा सकता है कि आन्तरिक भावनाओं की प्रेरणा से ही विचार और कार्यो की उत्पत्ति होती है, जिसका हृदय जैसा होगा वह वैसे ही विचार करेगा और वैसे कार्यों मे प्रवृत्त रहेगा। सम्पूर्ण शरीर मे चेहरा ऐसा भाग है, जिस पर आन्तरिक विचारधारा और भावनाओ के चित्र बहुत कुछ झलक आते है, अन्य अंगो की अपेक्षा चेहरे का निर्माण अधिक कोमल तत्वो से हुआ है, मैले पानी की अपेक्षा साफ पानी मे परछाई अधिक साफ दिखाई पड़ती है इसी प्रकार अन्य अंगो की अपेक्षा चेहरे पर आन्तरिक भावनाओ का प्रदर्शन अधिक स्पष्टता के साथ होता है। यह विचार और विश्वास जब तक निर्बल और डगमग होते है तब तक तो बात दूसरी है पर जब मनोगत भावनाएँ दृढ़ हो जाती है, तो उनको प्रकट करने वाले चिह्न चेहरे पर उग आते है।

आपने देखा होगा कि यदि कोई आदमी चिन्ता, शोक, क्लेश या वेदना के विचारो मे डूबा हुआ बैठा होता है, तो उसके चेहरे की पेशियाँ दूसरी स्थिति मे होती है किन्तु जब वह आनन्द से प्रफुल्लित होता है, तो होठ, पलक, गाल, कनपटी, मस्तक की चमड़ी मे दूसरे ही तरह की सलवटे पड़ जाती है। हँसोड़ मनुष्यो की आँखो की बगल मे पतली रेखाएँ पड़ जाती है, इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति की भवो मे बल पड़ने की, माथे पर खिंचाव की लकीरे बन जाती है। इसी प्रकार अन्य प्रकार के विचारो के कारण आकृति के ऊपर जो असर पड़ता है, उसके कारण कुछ खास तरह से चिह्न, दाग, रेखा आदि बन जाते है। जैसे-जैसे वे भले-बुरे विचार मजबूत और पुराने होते जाते है वैसे ही यह चिह्न भी स्पष्ट तथा गहरे बन जाते है।

दार्शनिक अरस्तू के समय के विद्वानो का मत था कि पशुओ के चेहरे से मनुष्य के चेहरे की तुलना करके उसके स्वभाव का पता लगाया जा सकता है। जिस आदमी की शकल-सूरत जिस जानवर से मिलती-जुलती होगी, उसका स्वभाव भी उसके समान होगा। जैसे भेड़ की-सी शक्ल मूर्ख होना प्रकट करती है, इसी प्रकार सियार की चालाकी, शेर की बहादुरी, भेड़िये की क्रूरता, तेंदुए की चपलता, सूअर की मलीनता, कुत्ते की चापलूसी, भैंसे की आलसीपन, गधे की बुद्धिहीनता प्रकट करती है। यह मिलान आज-कल भी ठीक बैठता है पर अब तो इस विद्या ने बहुत तरक्की कर ली है और अन्य बहुत-सी बाते भी मालूम हो गई है।

निस्संदेह चेहरा मनुष्य की आन्तरिक स्थिति को दर्पण के समान दिखा देता है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे देखने और समझने योग्य ज्योति आँखो मे हो। इस पुस्तक मे

चेहरे के हाल, भवे, मस्तक, कान, नाक, दाँत, ठुड्डी, मुँह तथा आँखो के सम्बन्ध मे हम लिखेगे।

किसी हाट बाजार मे बैठी हुई सुस्ताती हुई रूपवती नवयुवती के समीप खड़े हूजिए और देखते रहिए कि उधर से निकलने वाले लोगो की किस प्रकार की दृष्टि उस पर पड़ती है। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, बालक-बालिका की दृष्टि उस युवती पर जायेगी पर उनमे एक-दूसरे की अपेक्षा बहुत अन्तर होगा। किसी की दृष्टि मे वासना, किसी में कामुकता, किसी में स्नेह, किसी मे भूख, किसी में लालच, किसी मे कुढ़न, किसी मे तिरस्कार, किसी मे वैराग्य, किसी मे घृणा भरी हुई भावना आपको दिखाई देगी।

यह विभिन्नतायें बताती है कि उन देखने वालो मे से किस-किस का कैसा स्वभाव है। विगत जीवन मे इस प्रकार की किसी युवती से जिसे जैसा वास्ता पड़ा होगा उसकी वैसी ही अनुभूति जागृति होगी। जिस वृद्धा को अपनी इतनी ही बड़ी ऐसी ही पुत्री का वियोग सहना पड़ा होगा, उसके नेत्रो मे इस अज्ञात युवती के प्रति भी वात्सल्य भाव उमड़ आवेगा। देखने वाला बुढ़िया की आँखो मे आँसू देखकर किसी हद तक उसका भूत और भविष्य जान सकता है। भूत यह कि इस वृद्धा को इस प्रकार की कोई लड़की कभी प्यारी रही है, वर्तमान कि अब उसका वियोग इसे सहना पड़ रहा है। यह तो एक सामयिक घटना हुई, किसी घटना का कोई जोरदार प्रभाव पड़े तो उसके संस्कार गहरे उतर जाते हैं और वे किसी साधारण समय मे भी नेत्र आदि अंगो मे जमे हुए भाव अन्य लक्षणों को देखकर पहचाने जा सकते है। आकृति विज्ञान का यही आधार है।

कहानी तथा उपन्यासो का लेखक अपने पात्र का चरित्र-चित्रण करते समय उसकी बोलचाल, रहन-सहन, मकान, कपड़े, शक्ल-सूरत का भी वर्णन करके अपनी रचना को हृदयग्राही बनाते है। सुयोग्य लेखक जानते है कि भीतरी चरित्र बाहरी रग-ढग मे प्रकट होकर रहता है, इसलिए उसका वर्णन करने से यह सिद्ध होता है कि लेखक ने मानवीय आकृति विज्ञान से किस हद तक जानकारी प्राप्त की है।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि मनुष्य के स्वभाव के अनुसार, उसके सभी अंगो मे लक्षण प्रकट होते है। दुष्ट-दुर्जनो के नेत्रो से दुष्टता टपकती हो सो बात नही उसके हर एक अंग पर बारीक दृष्टि डालिए, वे सभी एक इस प्रकार की विशेषता लिए हुए होगे सो प्रत्यक्ष रूप से उसके दुर्गुणो की साक्षी दे रहे होगे। इसी प्रकार सदाचारी और सज्जनो के चेहरे पर अपने ढंग की एक सज्जनता युक्त विशेषता होती है।

काला, गोरा, सुन्दर, कुरूप कैसा ही व्यक्ति क्यो न हो उसकी बुरी आदतो के कारण सुन्दर अगो मे भी भौंड़ापन आ जायेगा, जो ससुंस्कृत है वे अष्टावक्र या सुकरात की तरह कुरूप क्यो न हो, उनके अंग अपनी बनावट मे खड़े रहते हुए भी प्रामाणिकता की साक्षी देते रहेगे। यह रचना आदतो के कारण बनती या बिगड़ती रहती है। एक सज्जन व्यक्ति जब कुमार्ग की ओर चलता है, तो उसके सज्जनता के चिह्न घटते है और विभिन्न अंगो मे वे लक्षण उदय हो जाते है जिन्हे देखकर दुर्जनता को पहचाना जा सकता है। हाथो की रेखाएँ घटती-बढ़ती है, उसमे से कुछ नई निकलती है, कुछ लुप्त हो जाती है, यह परिवर्तन आचार और विचार मे अन्तर आने के कारण होता है। इसी प्रकार स्वभाव और व्यवहार के कारण सूक्ष्म रूप से मन और शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है, उसके लिए कई प्रकार के विचित्र चिह्न उत्पन्न हो आते है तथा अंगो के ढाँचो मे कुछ विचित्र तरीके से हेर-फेर हो जाता है।

आध्यात्मिक पुरुष इन्हीं लक्षणो को देखकर मनुष्य की भीतरी जानकारी प्राप्त कर लेते है। स्थिति का पता होने से परिणाम की कल्पना सहज ही की जा सकती है, जैसे कोई व्यक्ति विद्वान, वक्ता और सद्गुणी हो तो अनायास ही यह कह सकते है कि "इसे जनता मे आदर मिलेगा"। इसी प्रकार शारीरिक चिह्नो से भीतरी योग्यताओ का पता लगने से उसके भविष्य फल की भी बहुत हद तक ऐसी कल्पना की जा सकती है, जो अन्त में सच निकले। इस प्रकार आकृति देखकर किसी मनुष्य का चरित्र जानना तथा उसका भविष्य बताना दोनो ही सम्भव है।

एक बात स्मरण रखने की है कि आकृति विज्ञान भाग्यवाद का किसी भी प्रकार समर्थक नही है। गुण, कर्म और स्वभाव मे जो अन्तर आते है, उनके अनुसार चेहरे का रंग-ढंग भी बदल जाता है, आकृति विद्या का ज्ञाता एक समय मे एक मनुष्य के जो लक्षण बताता है, यदि उस व्यक्ति का स्वभाव बदल जाय तो उसे उसके लक्षण भी बदले हुए मिलेगे। यह ठीक है कि ढाँचा नही बदलता, ढाँचे का सम्बन्ध पूर्व जन्मो के सचित संस्कारो से होता है, सुन्दर-सुडौल अंगो वाला व्यक्ति पूर्व जन्म का शुभ कर्मकर्त्ता तथा कुरूप और बेडौल अंगो वाला पूर्व जन्म मे अशुभ कर्मकर्त्ता रहा होगा तदनुसार उन संस्कारो की प्रेरणा से इस जन्म मे सुन्दरता या कुरूपता प्राप्त हुई है यह मान्यता ठीक है। यह जन्म-जात ढाँचे और रग-रूप बदले नही जा सकते, उन्हे देखकर जन्म-जन्मान्तरो के कुछ स्वभाव और संस्कारो का परिचय प्राप्त होता है, पर ऐसी बात नही कि वर्तमान जन्म मे उन सस्कारो मे परिवर्तन करना सम्भव न हो। मनुष्य को ईश्वर ने पूर्ण स्वतन्त्र बनाकर भेजा है, वह स्वेच्छानुसार पुराने सब स्वभावो को बदलकर नये ढाँचे में ढल जाता है।

आकृति परिज्ञान विद्या एक वैज्ञानिक क्रिया पद्धति है ऐसा कदापि नहीं कहता कि—"मनुष्य भाग्य का पुतला

है या विधाता ने उसे जैसा बना रखा है वैसा रहना पड़ेगा।" भाग्यवाद को इस विद्या के साथ जोड़ना एक बहुत बड़ी गलती करना है। मानसून हवाओ को देखकर यदि कोई वायु विद्या विशारद शीघ्र वर्षा होने की घोषणा करता है या मच्छरो की वृद्धि को देखकर कोई डाक्टर मलेरिया की चेतावनी देता है या गवाहो के बयान सुनकर कोई कानूनवेत्ता मुकदमा हार जाने की बात कहता है तो यह न समझना चाहिए कि यह सब बाते भाग्य में लिखी हुई थी जिन्हे इन लोगो ने किसी गुप्त ज्ञान से जान लिया है।

वास्तव मे वायु विद्या विशारद, डाक्टर तथा कानूनवेत्ता महानुभावो ने जो भविष्यवाणियाँ की थी वे सामयिक स्थिति को देखते हुए उनके परिणामो के ज्ञान के आधार पर की थी। यदि उनमे कुछ परिवर्तन किया जा सके तो फल भी बदल सकता है, मच्छरो को यदि मार-भगाया जाय तो डाक्टर की चेतावनी पत्थर की लकीर न रहेगी। यही बात आकृति विद्या के सम्बन्ध मे है। किसी मनुष्य का भूत, भविष्य और वर्तमान इसके द्वारा कहा जा सकता है, भूगर्भ विद्या के ज्ञाता जमीन देखकर निकाले हुए एक पत्थर के टुकड़े के आधार पर अनेक ऐतिहासिक तथ्य खोज निकालते है फिर आकृति की बारीकियो का निरीक्षण करके मनुष्य जीवन के आगे-पीछे की बहुत-सी बाते भी कही जा सकती है, किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यह कथन अन्वेषण और अनुभव की बुद्धिसंगत वैज्ञानिक विधि से ही किया जा रहा है। इसमे ऐसी कोई बात नही है कि आदमी को ब्रह्माजी ने एक गोबर गणेश भाग्य का पुतला बनाकर भेजा हो। मनुष्य अपने आप को चाहे जैसा बनाने मे पूर्णतया स्वतन्त्र है।

कभी-कभी आकृति विद्या के आधार पर कही हुई कुछ बाते ठीक नही बैठती, इसके दो कारण है कि एक तो यह कि उस व्यक्ति ने अपना स्वभाव बदल डाला है किन्तु शरीर पर प्रकटित चिह्नो को बदलने मे कुछ अड़चन हुई हो अथवा नये चिह्न अभी प्रकट न हुए हो। दूसरा कारण यह है कि फल कहने वाले से लक्षण पहचानने तथा फल कहने मे कुछ गलती हुई हो, इन कठिनाइयो का ध्यान रखते हुए जब असफलता मिले तो हताश न होकर कारण को ढूँढना चाहिए और एक अन्वेषक की भाँति वास्तविकता का पता लगाते हुए इस विज्ञान को आगे बढ़ाने मे सहायता करनी चाहिये।

बाल

बाल प्रायः हर एक पशु-पक्षी के शरीर पर होते है। प्रकृति ने इन्हे भीतरी शक्ति की रक्षा के लिए बनाया है। अन्दर की गर्मी को सुरक्षित रखने और अपव्यय न होने देने का काम इनके द्वारा पूरा होता रहता है।

बड़ी चीज के लिये सुरक्षा का भी बड़ा ही प्रबन्ध करना पड़ता है। इसलिए अधिक बलशाली जीवो के शरीर पर अधिक बाल और कम बल वाले जीवो के शरीर पर कम बाल पाये जायेगे। साथ ही शरीर में जो भाग अधिक महत्त्वपूर्ण होता है उसमे बाल अधिक होते है। जिस मनुष्य के शरीर पर अधिक बाल हो तो समझना चाहिए कि उसमे जीवनी शक्ति अधिक है।

मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है, इसलिये मस्तिष्क की रक्षा के लिए सिर के ऊपर अधिक बाल पाये जाते है। पौरुष एवं ओज की ग्रन्थियों से दाढ़ी, मूछो के बाल सम्बन्धित है, जिनका मस्तिष्क अच्छा होता है उनके सिर पर बालों की प्रचुरता रहती है, जिनमे ओज, पौरुष एवं दृढ़ता होती है उनकी दाढ़ी-मूछो पर खूब बाल निकलते है। जिनमे कामवासना अधिक होती है, उनके गुप्त अंगो के समीप बालो की अधिकता रहती है। जिनका हृदय और कलेजा मजबूत होता है उनकी छाती पर बाल ज्यादा रहेगे। इनमे से जिस स्थान के बाल कम, हल्के, निर्बल, टूटे-फूटे से रहे समझना चाहिये कि उस स्थान पर रहने वाली शक्ति मे न्यूनता है।

गंजे आदमी अल्प बुद्धि होते है। जिसकी दाढ़ी-मूछो पर कम बाल होगे उसमे बहादुरी, उत्साह तथा पौरुष की कमी रहेगी। छाती पर बाल न हो तो दिल और कलेजा कमजोर होगा। नपुंसको के गुप्तांगो पर बालो की कमी रहती है। पुराने लोग मूँछ और छाती पर बालो से रहित व्यक्ति को अशुभ मानते है, इस मान्यता का यही कारण है। यह प्राचीन विश्वास इसी तथ्य पर निर्भर है कि जो अंग निर्बल होगे उनका उत्पादन और संरक्षण भी थोड़ा-सा ही दिखाई देगा।

कड़े, मोटे तथा बड़े बाल जिद्दीपन तथा खूँख्वार होने के चिह्न है। इसके विपरीत मुलायम और छोटे रोए वाले समझाने से समझ जाने वाले तथा परिश्रमी होते है। जगली भैसे के शरीर पर कड़े, मोटे तथा सघन बाल होते है, वह परले सिरे का खूँख्वार और जिद्दी होता है, इसके विपरीत छोटे और मुलायम रोम वाला शेर जैसा हिंसक पशु भी कुछ नर्म होता है। सिखाने और समझाने से शेर सरकसो मे काम करता है और कहना मानता है पर जगली भैसा किसी सरकस मे काम करते नही देखा गया। ऊँट, बैल, घोड़े, गधे बड़े परिश्रमी और समझ जाने वाले होते है, इनके रोम छोटे तथा मुलायम ही होते है। उपरोक्त तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिस मनुष्य के सिर, शरीर तथा अन्य अंगो पर कड़े, रूखे, टेढ़े, मोटे तथा बड़े बाल होगे वह क्रूर प्रकृति का कठोरकर्मी होगा।

लड़ाकू, लुटेरे, निडर तथा बहादुर आदमियो के बाल ऐसे ही होते है। नैपोलियन, सीजर, सिकन्दर के बाल कड़े और मोटे थे। इसके विपरीत चतुर, राजनीतिज्ञ, कलाकार, धर्मात्मा प्रकृति के व्यक्तियो के बाल मुलायम होते है। एक और भी बात है कि कड़े बालो वाले दरिद्री और मुलायम बालो वाले धनी होगे। कारण स्पष्ट

है कि जिद्दीपन का होना निर्धन रहने की निशानी है तथा नम्रता तथा बुद्धिमता धनी बनने की आधारशिला है।

अफ्रीका के नीओ और योरोप के गोरो की तुलना कीजिए। अफ्रीकन छोटे तथा कड़े बालो के होते है उनमे बुद्धि की न्यूनता पाई जाती है, योरोपीयनो के बाल लम्बे और मुलायम होते है, नीग्रो लोगो के मुकाबले मे गोरो की बुद्धिम्त्ता स्पष्टतः प्रकट है। बेशक शारीरिक बल मे अफ्रीकन बड़े-चढ़े और गोरे उनसे हेटे होते है, पर बुद्धि के मामले मे इसके बिल्कुल ही उल्टी बात है। इन बातो पर विचार करते हुए हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि मुलायम, चिकने और कोमल बाल मानसिक उन्नति, विचारशीलता तथा चतुरता प्रकट करते है और कड़े, मोटे, खुरखुरे, कँटीले बालो से शूरता, अकड़, झगड़ा तथा बौद्धिक निर्बलता प्रकट होती है।

काले रंग का रासायनिक विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ है कि उसमे लोहे का अंश अधिक होता है। स्याह काले बाल उस मनुष्य के होगे जिसके रक्त मे लौह की मात्रा अधिक होगी। डाक्टर लोग बताते है कि रक्त मे लौह की पर्याप्त मात्रा का होना निरोगता तथा बलशालीनता का चिह्न है। तात्पर्य यह है कि जिसके बाल स्याह काले रग के हो उसके बलवान, निरोग और दीर्घजीवी होने की सहज ही कल्पना की जा सकती है। इसी प्रकार कितने ही आधारो से यह बात भी जानी गई है कि पतले बालो वाले कला निपुण तथा मोटे बाल वाले शारीरिक एव मानसिक बल मे बढ़े-चढ़े होते है।

किसी पेड़ को यदि उसकी आवश्यक खुराक न मिले तो वह मुरझाने लगता है। जो लोग ज्यादा मानसिक परिश्रम करते है उनके सिर पर बाल कम रहते है, कम बढ़ते है या उड़ जाते है। कारण यह है कि बालो की जड़ो को जो खुराक प्राप्त होनी चाहिए थी वह उन्हे प्राप्त न होकर दिमागी कार्यों मे खर्च हो जाती है। ऐसी दशा मे खुराक की कमी के कारण सिर के बालो का कमजोर या कम होना स्वाभाविक ही है। इसलिये सिर के अगले भाग मे बालो को कम देखकर यह कहा जा सकता है कि यह व्यक्ति अधिक मानसिक परिश्रम करने वाला है।

यो तो अनेक रंगो के बालो वाले लोग इस पृथ्वी पर पाये जाते है, पर मोटेतौर से सुनहरे, कत्थई, लाल, भूरे, काले और मटमैले रग के अधिक देखे जाते है। ऊपर बताया जा चुका है कि बालो का गहरा काला होना रक्त मे लौह की मात्रा से सम्बन्धित है, इसी प्रकार शरीर मे रहने वाले विभिन्न रासायनिक पदार्थों की न्यूनाधिकता के असर से बालो के दूसरे रग हो जाते है।

किन्ही देशो की आबहवा मे कोई रासायनिक पदार्थ अधिक होते है, इसलिए वहाँ के निवासियो के शरीर मे उन्हीं तत्त्वो की अधिकता हो जाती है। इसलिए वहाँ वालो के बालो की भी एक जाति बन जाती है। इटालियन, अमेरिकन, रूसी, चीनी तथा भारतीय लोगो के बालो की तुलना की जाय तो उनमे बहुत कुछ भिन्नता मिलेगी। यह भिन्नता उस देश की आबहवा का जो प्रभाव वहाँ के निवासियो पर पड़ता है—उसके कारण है। यह तो हुई देश-देश और जाति-जाति के लोगो के बालो मे फर्क की बात। एक देश के निवासियो मे भी हर व्यक्ति मे भिन्नता पाई जाती है। जिस प्रकार दो व्यक्तियो की आकृति एक-सी नही होती, वैसे ही दो व्यक्तियो के शरीर मे रासायनिक पदार्थ भी एक-से नही होते और न मानसिक स्थिति एक-सी होती है। इस असमानता का प्रभाव बालो के रंग पर भी पड़ता है। जैसे रक्त मे लौह की मात्रा के अनुसार बालो का कालापन होता है, वैसे ही अन्य पदार्थो तथा विचारो की स्थिति से अन्य रंग बन जाते है।

काले रंग के अन्तर्गत कुछ किस्मे है, जो मानसिक कारणों से बनती है। पाठको को उन्हे भी जान लेना चाहिए। काला बाल यदि एकदम सीधा और लम्बा हो तो समझना चाहिए कि यह व्यक्ति निराशा, दु:ख, चिन्ता के विचारों से डूबा हुआ उदास रहता है।

जिसके बाल लच्छेदार, घुँघराले, बलखाये हुए हो तो समझना चाहिए कि यह मनमौजी, प्रेमी स्वभाव, उपकारी, नेकी करने वाला, रोगी ˜ „ हँसोड़ तबियत का होगा। उसका क्रोध जल्दी ही शान्त हो जाता है और किसी पर कहर नही बरपा सकता। साधारणतः ऐसे मनुष्य पर भरोसा किया जा सकता है।

जरा हल्के काले रंग के बालो वाला मनुष्य चंचल स्वभाव, बड़े-बड़े मनसूबे बाँधने वाला, भावुक तथा असन्तोषी होता है। अपने को अभागा और दु:खी कल्पना किया करता है यदि वह हल्के काले रंग के बाल किसी गौर बदन व्यक्ति के सिर पर हो तो समझना चाहिए कि इसकी स्थिरता का कुछ भरोसा नही, अभी इस पर जमा हुआ है तो कल किसी के बहकाने मे आकर दूसरी तरफ ढुलक सकता है। इस रग के बाल यदि मुलायम, पतले तथा छोटे हो तो विनोदी प्रकृति तथा खुशमिजाजी के सूचक है। ये स्त्री तथा बच्चो मे बहुत जल्द मिल जाते है, विनम्र परोपकारी, पस्त हिम्मत, खुशामदी स्वभाव के सूचक है, यदि हल्के काले बाल कड़े और मोटे हो तो लापरवाही; अक्खड़पन, दूसरो की अपेक्षा, स्वतन्त्र प्रकृति तथा एकाकीपन पसन्द करने की सूचना देते है।

ब्राउन रंग जिसमे लालिमा की प्रधानता होती है, ज्योतिष के मत से मंगल ग्रह की विशेषता है। यह रंग बहादुरी, हिम्मत, दृढ़ता तथा अहंकार का सूचक है। ब्राउन रंग के बालो वाले अक्सर दूसरो के साथ घमण्ड, अविश्वास और तिरस्कारजनक व्यवहार करते हुए देखे जाते है। सामान्यतः यह रंग पशुवृत्ति का सूचक है, जो भले-बुरे जिस भी भाग पर लग जाय उसी मे मजबूती के साथ बढ़ती चली जाती है। इन बालो मे लच्छेदार, सीधे,

मोटे, पतले, कड़े, मुलायम आदि भेदो का भी वैसा ही फल समझना चाहिए जैसा कि पीछे काले बालो की चर्चा करते हुए बताया जा चुका है।

बिल्कुल सुनहले बाल मृदुलता, विलास और खुश मिजाजी का चिह्न है। ऐसे बालो वाले कोई बड़ा काम नही कर सकते, किसी संघर्ष मे विजय भी कम ही प्राप्त करते है फिर भी उनका विनोदी स्वभाव आकर्षक होता है। यदि सुनहरीपन मे कुछ कालापन तथा लालिमा मिली हो तो यह मनोबल का सूचक है, ऐसे लोगो की बुद्धि तीव्र होती है और मानसिक शक्तियो का विकास विशेष मात्रा मे हुआ देखा जाता है। उसमे लिखने, बोलने, कल्पना करने, निर्माण करने तथा प्रभाव डालने की शक्ति अधिक देखी जाती है।

बिल्कुल लाल रंग के बाल कम ही दीख पड़ते है पर जब दीख पड़े, तो समझना चाहिए कि इस व्यक्ति के शरीर और मस्तिष्क मे गर्मी की मात्रा अधिक है। चंचलता, क्रोध, झगड़ालूपन तथा बदला लेने की व्यग्रता उनमें अधिक पाई जायेगी, जो काम करेंगे बड़े उत्साह, लगन तथा जाँफिसानी से करेंगे। जिसके पीछे पड़ेंगे उसका पीछा आसानी से न छोड़ेंगे। जरा-सी बात मे उत्तेजित हो जाना, कल्पना जगत मे भावुकता के साथ विचरण करते रहना ऐसे लोगो का स्वभाव-सा बन जाता है।

कभी-कभी इस तरह के बाल देखने मे आते है जो किसी खास रग के नही होते, उन्हे न तो काला कहा जा सकता है न लाल और न सुनहरी। वरन् वे कई रंगो के मिश्रण से बने होते है, कालापन, लालिमा तथा सुनहरीपन की मात्राओ का न्यूनाधिक मिश्रण होने से दर्जनो किस्म के रंग बन सकते है, बालो के रग भी इसी आधार पर दर्जनो तरह के होते है और हो सकते है। आकृति विद्या का अभ्यास करने वालो को वह अनुभव प्राप्त करना चाहिये कि बालो का रग देखकर यह अन्दाज लगा सके कि इनमे किस रग का कम और किसका अधिक मिश्रण हुआ है।

जिस रंग का जो गुण है, वह मिश्रण मे भी अपनी मात्रा के अनुसार गुण प्रकट करेगा। जैसे काले रग मे थोड़ा लाल रग मिला हो तो उस व्यक्ति मे काले रग के गुण अधिक होगे साथ ही थोड़ा बहुत लाल रग का भी प्रभाव दिखाई देगा। साथ ही मोटे, पतले, छोटे लम्बे, कड़े-मुलायम तथा लच्छेदार बालो की जो विशेषता होती है, उसका भी समावेश पाया जायेगा। इस तरह इन सभी बालो की विवेचना करते हुए, हर व्यक्ति के सम्बन्ध मे अलग-अलग मत निश्चित करना पड़ेगा। इस विद्या के अभ्यासियो को पुस्तक के आधार पर प्राप्त हुए ज्ञान का उपयोग स्वतन्त्र बुद्धि से करना होता है, जैसे कि डाक्टर लोग हर रोगी की विविध मार्गों से परीक्षा करके उसकी बीमारी का केवल पुस्तक के आधार पर नही, वरन् बुद्धिपूर्वक निर्णय करते है।

बालो के कड़े और मुलायम होने का भेद महत्वपूर्ण है, एक बार फिर उसे दुहरा देना हम अनुचित नही समझते। पाठको को स्मरण रखना चाहिये कि तार से कड़े बाल कठोरता, मर्दानगी, आत्मविश्वास, बल, दृढ़ता तथा अहंकार के सूचक है। ऐसे व्यक्तियो मे कला प्रेम, ममता, सहानुभूति प्रभृति कोमल गुणो की कमी होती है। इसके विपरीत मुलायम बालो वाले भावुक, मृदुल, कल्पना प्रिय, डरपोक, उपकारी, धार्मिक, दयालु शान्तिप्रिय स्वभाव के होते है।

जिनके बालो की जड़ो के खुरंट जमने लगे, सफेद-सफेद भूसा-सी अधिक जमे उन्हे गर्म प्रकृति का, तेज स्वभाव वाला, कठोर प्रकृति का एवं चिन्ताशील समझना चाहिए। शोक, अशान्ति एवं लम्बी बीमारी के कारण बालो की जड़े कमजोर पड़ जाती है और बीच-बीच मे से उखड़ने लगते है। जिनके बाल स्वतः ही छिर-छिरे हो उन्हे इतनी योग्यता अवश्य होती है कि निर्वाह से अधिक धन कमा सके।

शूल की तरह जिनके बाल ऊपर को उठते है वे क्रोधी, चिड़चिड़े और असहिष्णु देखे जाते है। अत्यन्त घने बालो वाले धनी और चतुर तो अवश्य होते हैं, पर उन्हे मानसिक क्लेश सदा बने रहते है। रेशम से मुलायम बालो वाले व्यक्ति बड़े भावुक होते है, उनके मन मे प्रेम का प्रवाह स्वयं उमड़ता रहता है।

माथे पर बहुत आगे तक यदि बाल आ गये हो तो वह सदा ही कठिनाइयो के बीच मे गुजरने वाला होगा। जिसका मस्तिष्क बहुत ऊँचाई तक बालो से रहित हो, वह अधिक समझदार होता है। कानो की जड़ से जिसके बाल बिल्कुल मिले हुए हो, वह अपनी बात का धनी होता है। गरदन पर बहुत दूर तक बाल चले गये हो तो इसे मानसिक विकास का चिन्ह समझना चाहिए।

बहुत बड़ी और काली मूछो वाले मनुष्य लड़ाकू, बहादुर और स्वाभिमानी होते है। छिरछरी, हल्की, मध्यम ऊँचाई की मुलायम मूँछे बुद्धिमत्ता की सूचक है। बहुत ही छोटी और थोड़ी मूँछे होना, पुरुषत्व के कई आवश्यक गुणो की कमी प्रकट करती है। जिनकी मूँछे बड़ी तेजी से बढ़ती हो, उन्हे उतावले स्वभाव का समझना चाहिए।

पूरी भरी हुई दाढ़ी तेजस्वी पुरुषो की होती है। उथले स्वभाव के मनुष्यों की ठोड़ी पर थोड़े से बाल आते है और कान के आस-पास की जगह खाली पड़ी रहती है। जल्दी बढ़ने वाली दाढ़ी भलमनसाहत और विश्वसनीयता प्रकट करती है, जिनकी दाढ़ी बहुत धीरे-धीरे बढ़े उनकी मित्रता अधिक दिन किसी से नही निभती और न उनका कोई सच्चा सहायक होता है।

नेत्र

अँग्रेजी भाषा मे एक कहावत है कि "नेत्र अन्तःकरण के झरोखे है।" तात्पर्य यह है कि आँखो मे झाँककर मनुष्य की

आन्तरिक स्थिति का परिचय आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। निस्सन्देह यह उक्ति बहुत ही तथ्यपूर्ण है। नेत्रो के द्वारा आन्तरिक स्थिति का जितना परिचय प्राप्त किया जा सकता है उतना अन्य किसी अंग से नही किया जा सकता।

पहले यहाँ पुतलियों के रंगो पर विचार कर रहे है। आमतौर से काली, लाल, नीली, पीली और नारंगी रंग की पुतलियाँ देखी जाती है। इन रंगो के मिश्रण तथा हल्के गाढ़े के भेद से अधिक रंग बनते है। उन सब मिश्रणो के बारे में वर्णन करना कठिन है, प्रधान रंगो के बारे मे जानकारी हो जाने पर उनके मिश्रण और मात्रा का विश्लेषण करके पहचान करना, अभ्यासियो की कुशाग्र बुद्धि पर निर्भर है। संक्षेप मे प्रधान रंगो के बारे मे ही कुछ चर्चा करना इन पृष्ठो मे हमारे लिए सम्भव है।

नीली पुतलियो वाले कोमल स्वभाव के होते है। स्याह काली पुतलियाँ कठोरता, फुर्ती और ताकत का चिह्न है। व्यापार कुशलता और बुद्धिमानी भी ऐसे लोगो मे अधिक देखी जाती है। गाढ़ा नीला रंग विश्वसनीय होने की सूचना है पर ऐसे लोगो मे चतुरता प्रायः कम ही होती है। हल्के नीले रंग से प्रकट होता है कि स्थिरता, विचारशीलता, धैर्य और मधुरता की मात्रा अधिक होनी चाहिये। आमतौर से सभी हल्के रग चालाकी और ईमानदारी प्रकट करते है, पर यह बात नीले रंग पर लागू नही होती है, हल्के नीले रंग की पुतलियो वाले व्यक्ति अक्सर अच्छे स्वभाव के पाये जाते है।

बाइबिल में शैतान की आँखो को हरी बताया गया है। ऐसी पुतलियो वाले दुराचार अविश्वास, स्वार्थ और विश्वासघात की आदतो मे लिप्त पाये जाते है, किन्तु यदि साथ ही भूरी फुटकियाँ भी हो तो यह हरापन सुशीलता, सच्चरित्रता, विद्वता और विश्वासनीय का चिह्न है। अगर ऐसी आँखो मे किसी अन्य रंग की फुटकियाँ हो तो प्रतिभा, प्रसन्नता, परोपकार, कुशलता एवं कलाप्रियता की अधिक मात्रा होगी।

पीली या नारंगी पुतलियाँ बहुत कम देखी जाती है, फिर भी इस तरह की आँखे चंचलता, भावुकता, कवित्व, किफायतशाली, स्वार्थपरता तथा असहिष्णुता की निशानी कही जा सकती है। ब्राउन, भूरा थोड़ी लालिमा लिए हुई पुतलियाँ बहुत ही उत्तम है, ऐसे व्यक्ति प्रेमी, बात के धनी, चतुर तथा गम्भीर होते है, ईमानदारी और व्यवहार की सचाई उनकी विशेषता होती है, फिर भी उनमे दो कमजोरियाँ देखी जाती है, एक जरा-सी बात पर नाराज हो जाना, दूसरा लम्पटता की ओर झुक पड़ना।

हल्का काला रग छल, कपट, बनावट, ढोग तथा धूर्तता का चिह्न है किन्तु गाढ़ा काला रग स्थिरता और समझदारी प्रकट करता है। काले रगे के साथ यदि थोड़ी लालिमा मिली हुई हो तो सदाचारी एव सद्गुणी होने की निशानी है। बिल्ली की सी कुंजी आँखो वाले अक्सर बिल्ली के स्वभाव के होते है। बाहर से बहुत सीधे दिखाई देते है पर मौका पड़ने पर करारी चोट करने मे नही चूकते।

अब इस बात पर विचार करना चाहिये कि कौन मनुष्य किस तरीके से देखता-भालता है। साफ, खुलासा और निधड़क दृष्टि से देखने वाले व्यक्तियो का चरित्र ऐसा होता है जिस पर आप विश्वास कर सकते है। जिन लोगो की दृष्टि चंचल होती है, चारो ओर चपलतापूर्वक नजर दौड़ाते है वे अक्सर लोभी, चोर, भिक्षुक या कपटी पाये जाते है।

आँख मिलते ही झेप जाने वालों के मन में कुछ और तथा मुँह पर कुछ और होता है। जिसकी आँखे नीली रहती है वह अपराधी मनोवृत्ति या डरपोक या कमजोर होता है। ढीठतापूर्वक आँखो से आँखे लड़ाने वालो मे उजड्डता, बेवकूफी, ऐठ ज्यादा होगी। तिरछी नजर से देखने वाले निष्ठुर, क्रूर, तोता-चश्म और झगड़ालू होते है।

आँखो के डले यदि कुछ आगे उभरे हुए हो तो इसे विद्या प्रेम और ज्ञान सम्पादन का चिह्न समझना चाहिये। ऐसे लोगो की स्मरण शक्ति अच्छी होती है। साफ और खुलासा आँखो वाले व्यापार कुशल, व्यवहार पटु, परिश्रमी तथा बड़ी लगन वाले होते है।

अधिक बड़ी आँखे तेजस्विता, सत्ता, वैभव, ऐश्वर्य तथा भोगविलास से प्रसन्न व्यक्तियो की होती है। किन्तु पर स्त्री गमन से इस प्रकार के लोग बहुत ही कम बच पाते है। बड़ी आँखो के बीच का फासला थोड़ा हो तो सुस्ती, चालाकी तथा ठगी की बोधक है और यदि उनके बीच का फासला ज्यादा हो तो, सादगी, सिधाई एवं स्पष्टवादिता का लक्षण जानना चाहिये। छोटी आँखे खिलाड़ीपन, लापरवाही और सुस्ती प्रकट करती है। गड्ढे मे धँसी आँखो वाले ऐसे दुर्गुणो से ग्रस्त होते है जिनके कारण जीवन मे कोई कहने लायक उन्नति नही हो पाती। चिमचिमी आँखो वाले न तो दूसरो के ऊपर अहसान कर सकते है और न किसी के अहसान के प्रति कृतज्ञ होते है।

पलक और पलको के बाल-विरौनी से भी व्यक्तित्व का कुछ परिचय प्राप्त होता है। विरौनी के बाल कम हो तो उनसे डरपोकपन प्रकट होता है, घनी विरौनी वाले धनवान, गहरे रंग की कड़ापन लिए हुए विरौनी वाले शूरवीर, कोमल तथा फीके रग वाली विरौनी के आकर्षक स्वभाव के होते है। मोटे पलको वाले विद्वान, विचारवान तथा पतले पलको वाले स्वस्थ एव तेजस्वी देखे जाते है। तेजस्वी और साधुवृत्ति के लोगो के बड़े-बड़े पलक होते है। बहुत छोटे पलको से चटोरपन, लालच, अतृप्तता तथा बेचैनी जानी जाती है।

जिसकी एक आँख एक तरह की और दूसरी दूसरे तरह की हो ऐसा मालूम पड़ता हो कि एक आँख किसी दूसरे की निकालकर फिट की गई है, ऐसे आदमी

प्रायः अधपगले, बेसनकी, औंधी खोपड़ी के होते है। दृष्टि की कमजोरी तथा तीक्ष्णता इस बात पर निर्भर है कि नेत्रो का कैसे उपयोग किया जाता है, फिर भी इतनी बात तो है ही कि नीली आँखे सबसे कमजोर और जरा लाल रंग मिली हुई काली आँखे सबसे बलवान होती है। आँखो मे काले-काले तिल जैसे निशान होना आत्मबल की दृढ़ता का चिह्न है। यह तिल दो चार और छोटे ही हो तो अच्छे है। किन्तु यदि बड़े-बड़े बहुत से तिल हो तो वे ऐसी कमजोरियो के सूचक है जिनके कारण मनुष्य को दरिद्रता का दुःख भोगना पड़ता है। जिनकी पुतलियाँ फिरती है। ऐसे भौड़े आदमी जिद्दी, बेसमझ किन्तु बहादुर होते है।

जिनकी आँखे अधिक गीली रहती हो वे कातर, बेचैन तथा डरपोक पाये जाते है। जल्दी-जल्दी पलक मारने वाले लोग शेखीखोर, झूठे और बेपर की उड़ानो वाले होते है। एक आँख को कुछ मिचका कर बात करने वाले दूसरो पर अविश्वास और सन्देह किया करते है।

नीली झलक जिनकी आँखो के सफेद भाग मे दीखती है, तो यह भोलेपन, गम्भीरता और सदाचार का चिह्न है। पीलापन जिनकी आँखो मे छाया रहता है वे उजड्ड, क्रोधी और झगड़ालू होते है। पीलेपन मे यदि लालिमा मिली हुई हो, तो वह चित्त की अशान्ति की सूचक है। लाल डोरे जिसकी आँखों मे अधिक हो, उसे उष्ण प्रकृति का समझना चाहिए, ऐसे लोगो को फोड़े-फुन्सी या पित्त के रोग अक्सर होते रहते है।

बिल्कुल गोल छोटी-छोटी आँखे बुद्धि की न्यूनता प्रकट करती है। बहुत छोटी आँखो वाले आलसी और लापरवाह होते है। सोते वक्त जिनकी आँखे आधी खुली रहती है वे चिन्तातुर और लालची देखे जाते है। जो व्यक्ति बहुत देर मे पलक मारते है, वे सुस्त किन्तु विचारवान होते है। जो बात करते समय आँखे अधिक फाड़ते है उन्हे दृष्टिमांद्य या अन्य नेत्र रोगो का शिकार होना पड़ता है।

भदमैली आँखो से नेकी और सदाचार प्रकट होता है। सामने की ओर कुछ नीची दृष्टि करके चलने वालो का मन पवित्र होता है। पुण्यात्मा और धर्मवान लोग कुछ ऊँची दृष्टि करके चलते है। क्रोधी मनुष्य तिरछे देखते है। नजर बचाकर चलने वाले चोर, अपराधी या पतित स्वभाव के होते है। अंधे आदमियो की मानसिक शक्तियाँ अमूल्य विकसित होती है।

भौंहें

सिर के बालो की भाँति भौहो के बाल भी मानव स्वभाव की बड़ी खरी कहानी कह देते है। आकृति विद्या के अभ्यासियों को भौहों की परीक्षा करते समय निम्न बातो पर विचार करना चाहिए—(१) गोलाई, (२) लम्बाई, (३) मोटाई, (४) बालो की बनावट, (५) आदि स्थान, (६) अन्त स्थान। आगे इन सब बातो पर संक्षेपतः प्रकाश डाला जायेगा।

ध्यानपूर्वक देखिए कि भौ का आरम्भ किस प्रकार होता है। यदि दोनो भवें आपस मे मिली हुई हो, दोनो का आरम्भ बिल्कुल सटकर होता हो तो ऐसे व्यक्ति से सावधान रहने की जरूरत है। पुराने जमाने के सामुद्रिक शास्त्री कहा करते थे कि ऐसे व्यक्ति का कभी विश्वास न करना चाहिए पर आपको इतना आगे जाने की जरूरत नही है। सटी भौहो को देखकर इतना समझना ही पर्याप्त है कि इस व्यक्ति का दिल व दिमाग साफ नही है। ढिल-मिल यकीन, संशयात्मक प्रकृति, चरित्र की कमजोरी तथा अन्य त्रुटियाँ ऐसे व्यक्तियो मे देखी जाती है। वचन पलट देने तथा कर्त्तव्य की अवहेलना कर देने के दोष से भी मुक्त नही होते। ऐसे लोगो के बारे मे यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि उनके साथ सावधानी से व्यवहार किया जाय। जिन भौहो का आरम्भ एक-दूसरे से हटकर होता है वे सिधाई, सरलता तथा प्रामाणिकता प्रकट करती है।

कवियो ने भौहो की सुन्दरता का वर्णन करते हुये उनकी उपमा तलवार से दी है। दूसरे शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि तलवार की बनावट भी भौहे प्रशसा के योग्य समझी गई है। कमान या तलवार की तरह घुमी हुई, बांकी, तिरछी और पतली भौहे प्रेमी स्वभाव, सरल प्रकृति, मधुरता तथा कलाप्रियता की निशानी है। परन्तु आँख और भौहो के बीच मे अधिक अन्तर न होना चाहिए, यदि अन्तर ज्यादा होगा तो चरित्र की शिथिलता और मानसिक दुर्बलता का कारण होगा। ऐसे लोग अल्प बुद्धि और व्यवहार के अकुशल होते है। यदि भौहे लकीर की तरह सीधी और बहुत नीची, आँखो के बिल्कुल पास हो तो वे कठोरता, मजबूती तथा स्वाभिमान का कारण होती है।

कुछ व्यक्तियो की भौहे गोलाई लिए हुए प्रारम्भ होती है, पर बीच मे झुकाव लेकर एक दम आँखो की बगल से नीचे तक आ जाती है। ऐसे व्यक्ति साफ-सुथरे खूब रहते है, चमक-दमक और फैशन उन्हे पसन्द होती है, पर मानसिक बल की उनमे कमी ही रहती है। जो भौहे प्रारम्भ मे तो सीधी लकीर की तरह चलती है पर अन्त मे एकदम नीचे को झुक जाती है, वे कलाप्रियता प्रकट करती है। विचारवान, विवेकी, दूरदर्शी, ज्ञानवान व्यक्तियो की भौहे मोटी होती है। अधूरी, छिरछिरी और अस्त-व्यस्त भौहो वाले कजूस, लोभी तथा मूम देखे जाते है।

टेढ़ी-मेढ़ी, मोटी, गुच्छेदार भौ वाले मनुष्य चिड़चिड़े, अस्वच्छ, लापरवाह किन्तु चतुर, बुद्धिमान और शासन करने वाले होते है। घनी और मोटी भौंह मजबूती, बुद्धिमता, दृढ़ता का प्रतिनिधित्व करती है किन्तु यदि वे पतली, कमजोर और थोड़े बालो वाली हो तो शारीरिक

और मानसिक निर्बलता की कथा कहती है। बहुत छोटी भवो वाले जल्दबाज, चपल, बहुत बोलने वाले तथा कर्कश स्वभाव के देखे जाते है।

सिर के बालो की अपेक्षा यदि भवो का रंग हल्का हो तो यह दुर्बलता एवं शक्तिहीनता की निशानी है किन्तु यदि उनका रंग सिर के बालो की अपेक्षा गहरा हो तो समझना चाहिये कि बल की बढ़ोत्तरी हो रही है। जिनकी भौहे छोटे-छोटे बालो की होती है, उनमे बहुत शीघ्र गहराई तक पहुँचकर वास्तविकता को समझने की योग्यता होती है किन्तु जिनके बाल अपेक्षाकृत अधिक लम्बे होते हैं, उनने देर से समझ आती है, ऐसे व्यक्तियो को ठोकरे खा-खाकर जीवन मे बहुत से कड़ुए अनुभव इकट्ठे करने पड़ते हैं।

नाक

प्राचीन समय मे ग्रीक तथा भारतीय मूर्तिकारो ने मूर्ति निर्माण के लिए कुछ नियम बना रखे थे। उन नियमो के अनुसार वे नाक को इस प्रकार बनाते थे कि जितना ऊँचा माथा हो उतनी नाक की लम्बाई रहे, आँख जितनी लम्बी हो उतनी ही चौड़ी नाक की नोक रहे, जितना अन्तर दोनो भौहो के बीच मे हो उतनी ही नाक की मोटाई रहे। आकृति विद्या के अनुसार यह नाप-तौल बहुत ही सद्गुणी, शक्तिवान, बुद्धिमान, बलवान तथा भाग्यवान व्यक्ति की है। यदि तीन मे से एक-दो बाते भी मिलती हो तो समझना चाहिये यह व्यक्ति उतने अंशो मे उत्तम गुण धारण किए हुए है।

बीच में कुछ गोलाई लिए हुए तोते की चोंच की तरह नाक कुछ उभरी हुई हो तो यह योग्यता और अधिकार प्राप्ति की सूचक है। ऐसे लोग अपनी जिम्मेदारी को भली प्रकार अनुभव करते है और जिस काम को पकड़ते है उसे अधूरा नही छोड़ते। नाक का मोटा होना पुरुषार्थ का चिह्न है और पतला होना कमजोरी का। मोटी, साथ ही बीच मे उभरी हुई नाक प्रायः बहादुरो, सेनापतियो, अधिकारियो तथा अनुशासन मानने तथा मनवाने की रुचि वालो की होती है।

बड़े चेहरे पर छोटी नाक या छोटे चेहरे पर बड़ी नाक इस तरह का बेडौलपन चरित्र मे किसी प्रकार की कमी बताता है, पतली नाक के बड़े नथुने, मोटी नाक के छोटे नथुने चौड़ाई अधिक और लम्बाई कम, लम्बाई अधिक चौड़ाई कम, इस प्रकार की कोमल बाते भी चरित्र मे किन्ही दोषो और त्रुटियो का होना प्रकट करती है।

सीधी, पतली, लम्बी और समानाकार नाक शुद्ध चरित्र, मान-मर्यादा की रक्षा, कलाप्रियता तथा उत्साह की सूचक है। परन्तु पतली और लम्बी होते हुए भी यदि वह टेढ़ी, गड्ढेदार, माँसरहित तथा बेडौल हो तो खुदगर्जी, निष्ठुरता तथा रूखापन जाहिर करती है।

किसी की नाक की नोक नीचे की ओर इस प्रकार झुकी होती है कि नासिका के छिद्रो का भीतरी भाग बिल्कुल नही दिखाई पड़ता, किसी की नाक की नोक कुछ ऊँची होती है, जिससे नासिका के छिद्रो के भीतर का कुछ भाग दीख पड़ता है, यह दोनो ही अपने अन्दर कुछ विशेष अर्थ छिपाए होती है।

नीचे की ओर झुकी नोक वाली नाक, उदासीन स्वभाव, आचरणहीनता, परनिन्दा मे रुचि होने की सूचना देती है किन्तु ऊँची नाक से चपटापन, विनोदप्रियता, हँसोड़पन, मनमानी करने मे रुचि, चतुरता तथा व्यवहार, कुशलता का होना प्रकट होता है, ऐसे लोग हर किसी को प्रिय लगने वाले होते है।

चिपटी हुई नाक न तो देखने मे कुछ अच्छी मालूम पड़ती है, न ऐसे लोगो का स्वभाव ही कुछ उत्तम होता है। ऐसी नाक की जड़ यदि कुछ दबी हुई हो तब तो उस आदमी को बहुत ही छोटे दर्जे का आदमी होना चाहिये। हाँ, यदि चिपटी नाक बिल्कुल सीधी तथा समानाकार चली आवे तो विशिष्ट कार्यों का संपादनकर्त्ता, कलाकार तथा वाक् पटु होने की आशा की जा सकती है। चिपटी नाक के ऊपर यदि भौहे झुकी हुई हो और माथा आगे निकल रहा हो तो यह अन्वेषक, विचारशील, शोध करने वाला तथा दूरदर्शी होने का चिह्न समझना चाहिये।

औसत दर्जे की नाक के बीच का हिस्सा यदि मोटा हो तो विद्या मे रुचि, अध्ययन, स्वाध्याय और मनन मे दिलचस्पी होना जाहिर होता है। ऐसी नाक वाले पत्र लिखने की कला मे बहुत निपुण होते है। मोटी नाक वाले धनी, गुणवान, कमाऊ, कथा प्रवासी जीवन बिताने वाले होते है।

नाक के ऊपर वाले भाग के साथ-साथ नथुनो की रचना पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। देखा जाता है कि कुछ पिचके हुए से नथुनो वाले डरपोक और कमजोर स्वभाव के होते है। चौड़े और फूले हुए नथुने भावुकता तथा कामुकता की अधिकता प्रगट करते है और बताते है कि ऐसा व्यक्ति छोटी बात को बहुत बड़ी करके मानने वाला होता है।

पैने तथा नुकीले नथुने वाले खुदगर्ज और घमण्डी होते है तथा दूसरो के मामले में अपनी टाँग अड़ाने मे बड़ी दिलचस्पी लेते है। मोटे, भारी और अधिक माँस वाले नथुने समझदारी, ईमानदारी, वफादारी, होशियारी तथा बीमारी की अधिकता प्रकट करते है। ऐसे व्यक्तियो की आमदनी, व्यय-खर्च दोनो ही बढ़े-चढ़े होते है।

सूखी-सी नाक वाले दीर्घायु होते है। जिसकी नाक बीच मे बैठी हुई हो वह पर स्त्री गामी, मधुरभाषी तथा बहुत कमाने वाले होते हैं, जिसकी नाक अपने अंगुल से साढ़े तीन अंगुल लम्बी हो वह अपने ही पुरुषार्थ से धन पैदा करता है, किन्तु सन्तान की ओर से दुःखी होता है।

जिसकी नाक तीन अंगुल लम्बी हो वह दीर्घायु, किन्तु साधारण चित्त वाला होगा। चार अंगुल नाक वाले मूर्ख और लड़ाके होते है। ढाई अंगुल नाक वाले दरिद्र होते है। भाग्यवानो को प्रायः एक साथ दो छीक आती है।

दाँत

आपने देखा होगा कि छोटे शिशुओ के प्रारम्भिक दाँत जिन्हे दूध के दाँत कहते है—प्रायः साफ, स्वच्छ, एकसे, पंक्तिबद्ध और एक सीध मे निकलते है। यह मनुष्य के स्वाभाविक दाँतो का चित्र है। दुनिया मे आकर बालक जिन शारीरिक और मानसिक संस्कारो को ग्रहण करता है वे धीरे-धीरे जड़ जमाने लगते है और आठ-दस वर्ष की अवस्था तक बहुत कुछ पक्के हो जाते है।

मानव शरीर शास्त्र के आचार्यो का कहना है कि छः-सात वर्ष की उम्र तक जितना ज्ञान प्राप्त किया जाता है फिर सारे जीवन मे उससे कम मात्रा मे ही ज्ञान सचित होता है। बचपन मे विभिन्न मार्गों से जो संस्कार बालक के हृदय पटल पर पड़ते है, उनसे शरीर और मस्तिष्क एक अदृश्य ढाँचे मे ढलता है। यह ढलाई दाँतो को देखकर पहचानी जा सकती है। बचपन की आदतो का कुछ परिचय दाँतो को देखकर प्राप्त किया जा सकता है।

साफ, सीधे, एकसे, बराबर के दाँत मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति के द्योतक है, ऐसे दाँत वालो मे एक भले मानस के प्रायः सभी आवश्यक गुण पर्याप्त मात्रा मे पाये जाते है। ऊबड़-खाबड़, टेढ़े-मेढ़े, असमान और कुरूप दाँत बुरे स्वास्थ्य और बुरे स्वभाव की कहानी कहते है। लम्बे दाँत बड़ी आयु वालो के, छोटे दाँत बीमारो के और नुकीले दाँत हिंसक पशुओ जैसे स्वभाव का होना बताते है।

आगे की ओर निकले हुए दाँत कजूसी, लालच, बहुत जमा करने की हविस का होना प्रकट करते है। दाँतो का बढाव जितना ही आगे की ओर होगा, उतनी ही कंजूसी अधिक होगी। खर्चीले आदमियो के दाँत प्रायः कभी भी इस प्रकार के नही पाये जाते। निकले हुए दाँतो वाले यदि कुछ उदारता दिखावेगे भी तो वह यश कमाने, बड़ा बनने, प्रायश्चित करने की भावना से होगी, दया द्रवित होकर, यज्ञ भावना से उनकी उदारता देखने को न मिलेगी। दाँतो का कुछ थोड़ा-सा झुकाव भीतर की ओर हो तो यह दब्बूपन और लज्जाशीलता का चिह्न है यदि वे जरा आगे की ओर झुक रहे हो तो दबंगपन, तेजी, कठोरता और शासक वृत्ति का होना बताते है।

जिनके मसूड़े बहुत बड़े भारी और लटके हुए है समझना चाहिये यह व्यक्ति बहुत जिद्दी, कट्टर, अड़ियल, आक्रमणकारी और छीन-झपट करने वाला होगा हल्के और छोटे मसूड़े वाले उदार, प्रतिज्ञापालक, सीधे और साफ दिल के होते है। नीलापन लिये हुए मसूड़े स्वाभिमानी, मोहग्रस्त और रुग्ण शरीर वालो के होते है। जिन मसूड़ो मे लालिमा अधिक हो उन्हे खुश मिजाजी, कोमलता, बुद्धिमानी और सभ्यता की अधिकता का द्योतक समझना चाहिए।

दाँत और मसूड़ो की बनावट के अनुसार ही ठुड्डी की शक्ल बनती है। जिस ठुड्डी मे गड्ढा पड़ता है, वह आनन्दी और मिलनसार स्वभाव बताती है, मजबूत आदमियो की बड़ी ठुड्डी होती है, जो बड़ी हो, चौड़ी हो, माँस कम और हड्डी ज्यादा हो तो उसे धीरता, वीरता, गम्भीरता और स्थिरता का लक्षण समझना चाहिए। क्रोधी किन्तु धुन के पक्के लोगो की ठुड्डी देखने में चौकोर-सी मालूम पड़ती है। रूखे, उदासीन, शान्त, निराश, स्वल्प संतोषी लोग चिपटी ठोड़ी के देखे जाते है। स्वार्थी अक्सर नुकीली ठुड्डी वाले देखे जाते है।

आगे की ओर बहुत नुकीली हो तो उसे चालाकी और धूर्तता बताने वाली समझना चाहिये। मेहनती आदमी दबी-सी छोटी ठोड़ी वाले होते है। इस प्रकार के व्यक्ति यशस्वी और धार्मिक वृत्ति के भी देखे जाते है। गोल ठोड़ी वालो का ऐश-आराम की कमी नही रहती, ऐसे आदमी बहुत मित्रो वाले, धन उपार्जन करने वाले, नई सूझ वाले तथा दूरदर्शी होते है। गोल महराबदार ठोड़ी वाले उथले मिजाज के और छछोरी तबियत के होते है। लम्बी, आगे को निकली और आगे से एकदम चिपटी ठोड़ी वाले लोग बुद्धिजीवी, पण्डित, वकील, साहित्यकार होते है।

आगे के दाँतो के बीच मे थोड़ा फासला होना सदाचारी, उदार, सेवाभावी निष्कपट होने का चिह्न है। दाँत पर दाँत चढ़ रहे हो तो वह घमण्डी तथा अपनी बात पर अड़े रहने का लक्षण है। बीच के दो दाँतो की बगल के दो दाँत यदि बीच के दाँतो की ओर मुड़ आये हो, तो उन व्यक्तियो को सर्वत्र आदर प्राप्त होता है। ऐसे लोगो मे साहस एवं पुरुषार्थ की मात्रा अधिक रहती है।

लम्बाई-चौड़ाई मे बराबर चौकोर दाँत वाले मनुष्य बड़े तार्किक, तेज बुद्धि वाले होते है। मोती से गोल दाँत धनी और सौभाग्यशाली होना प्रकट करते है। पतले दाँत प्रसन्न जीवन का निर्माण करते है। जिन दाँतो की चौड़ाई अधिक और लम्बाई कम हो वे दरिद्रता की निशानी समझे जाते है।

बिल्कुल सफेद दाँत हृदय की निर्मलता प्रकट करते है। जिन्हे मानसिक चिन्ताएँ अधिक रहती है उनके दाँत हल्का पीलापन ले आते है। जिन दाँतो पर पीले-पीले धब्बे है वे आलस्य, पेट की कमजोरी तथा उष्णता की अधिकता के कारण होते है। नीले झलक वाले दाँत मधुर स्वभाव के प्रतिनिधि है। मटैले रंग के दाँत जिनके हो उनका जीवन बड़े सुख मे कटता है, उन्हे किसी भारी विपत्ति का मुँह नहीं देखना पड़ता।

होठ

शरीर के अन्य अंगो पर व्यक्ति के स्वभाव की छाया कुछ देर मे पड़ती है और देर तक ठहरती है किन्तु होठो मे ऐसी विशेषता है कि उन पर बहुत शीघ्र यहाँ तक कि उसी समय स्वभाव की छाया दृष्टिगोचर हो जाती है। रूठे हुए, संतुष्ट, आनन्दित, विपत्तिग्रस्त, मन-मौजी आदि मनोभावनाएँ होठो पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है। जैसे ही यह भावनाएँ बदलती है और उनके स्थान पर दूसरी परिस्थिति आती है वैसे ही होठो का रंग-ढंग भी बदल जाता है।

मध्यम वृत्ति के होठो वाला मुँह अच्छा समझा जाता है। बहुत बड़े, बहुत छोटे, बहुत मोटे, बहुत पतले यह सभी बुराई प्रदर्शित करते है। जो होठ भली प्रकार बन्द नही होते, कुछ खुले रहते है उनसे मनुष्य की नासमझी, बकवादीपन, अदूरदर्शिता तथा चरित्र की कमजोरी प्रकट होती है। मोटे होठ बताते है कि इन्द्रिय सुखो को भोगने की लालसा इसे प्रबल रूप से सताया करती है। पतले होठ सिधाई और सहानुभूति प्रकट करते है। मोटे होठ वाले का यदि निचला होठ ऊपर से कुछ आगे बढ़ा हुआ हो तो स्वादिष्ट भोजनो की विशेष इच्छा, दयालुता, कोमल हृदय तथा अनिश्चित स्वभाव का द्योतक है।

मोटे होठ यदि किवाड़ो की तरह बिल्कुल भिड़कर बन्द होते हो तो हिम्मत, मौकापरस्ती और चतुरता जाहिर करते है ऐसे लोग मुस्तकिल मिजाज होते है। एक बार जिस बात पर विश्वास कर ले फिर उसे बदलना उनके लिए बहुत मुश्किल है। किसी के समझाने-बुझाने का उन पर कोई अधिक प्रभाव नही पड़ता। पतले होठ यदि खूब भिड़कर बैठते हो तो कजूसी, रूखापन, तोता-चश्म, खुदगर्जी तथा शोषक वृत्ति की सूचना देते है। ऐसे लोगो को प्रसन्न रहते हुए न पाया जायेगा, व्यापार के मामले मे वे दृढ़ होते है तो भी अन्य बातो मे उनका इत्मीनान करना कठिन है।

नीचे के होठ से ऊपर का यदि बड़ा हो तो कुछ आगे लटकता हो तो समझना चाहिये कि वह शुद्ध चरित्र, भला-मानस, परोपकारी, विनम्र, लज्जाशील तथा झेपू होगा। उसके बहुत ही थोड़े मित्र होंगे, जो होगे वह भी आधे मन के। अगर पतले होठो मे ऊपर का बड़ा हो तो चिन्ता, उदासीनता, घबराहट से ग्रसित सदा अपना दुःखड़ा रोने वाला तथा अनिष्टो की कल्पना करके सदा डरता रहने वाला होगा। पतले होठो मे नीचे का होठ यदि बड़ा हो तो विद्वता, परख, हँसोड़पन साथ ही अभिमान तथा दूसरो की निन्दा करने का स्वभाव पाया जायेगा। नीचे के होठ का अन्तिम सिरा यदि जरा-सा मुड़ रहा हो तो उससे फैशन-परस्ती, प्रतिभा, चतुरता, दार्शनिकता झलकती है ऐसे लोगो का यश दूर-दूर तक फैलता है।

मुँह की दोनो बगले यदि भीतर को धँसी हुई हो तो प्रसन्नता, मजाक पसन्दगी, प्रेम तथा मधुर भाषण प्रकट करती है, यदि ऊपर की ओर उभरी हुई हो तो गम्भीरता, आदरभाव, सन्तोष तथा मिलनसारी का होना बताती है। एक होठ के गड्ढे मे दूसरे होठ के फुलाव की झड़ मिलकर दोनो होठ फिट बैठते हो तो ऐसे व्यक्ति सच बोलने वाले, प्रेमी विश्वासपात्र होते है परन्तु ऐसे लोगो के सामने कोई गुप्त बात प्रकट न करनी चाहिए। क्योकि उनके पेट मे गुप्त भेद छिपाये रहने की जगह नही होती।

नीले होठो वाले क्रोध अधिक करते है, फीके होठ परिश्रमी मनुष्यो के होते है, लाल होठ चतुर, विद्वान और धनियो के होते है, जिनका चित्त प्रसन्न रहता है उनके होठ गीले होते है। बीमार और दुःखियो के होठ शुष्क देखे जाते है। उच्च अन्तःकरण के महापुरुषो के होठ अक्सर फटे, चियड़े और खुरखुरे देखे जाते है।

होठ के बीच की चोंच यदि अधिक फूली हुई हो तो वह मस्तिष्क की कमजोरी प्रकट करती है। यदि ऊपर के होठो पर छोटी-छोटी रेखाएँ हो तो अल्प दीर्घ जीवन का चिह्न है, नीचे के होठ पर छोटी-छोटी रेखायें मनुष्य को घर से बाहर अधिक रहने के लिए विवश करती है।

जिनका मुँह बहुत थोड़ा फटा हुआ हो वह गुणी, कलाकार, मोहक स्वभाव का होता है। मध्यम चौड़ाई का जिनका मुँह हो, वे व्यापार कुशल और अपने मतलब मे चौकस होते है। जिनका मुँह कुत्ते के मुँह की तरह गालो तक फटा हुआ हो, बात करने मे मगर का सा मुँह फट जाता हो ऐसे मनुष्य मूर्ख, निर्धन होते है और अक्सर दूसरो द्वारा सताये जाते है।

गर्दन

बहुत मोटी गर्दन वाले हाथी, मेढ़ा, सूअर आदि जानवर अपने चारो ओर नही देख सकते, क्योकि बहुत मोटी गर्दन को मोड़कर इधर-उधर देखना कठिन होता है। इसलिए इस प्रकार के जानवर सिर्फ आगे की ही चीज देखते है, उन्हें पीछे की और अलग-बगल की चीजे दिखाई नही पड़ती। यही स्वभाव मोटी गर्दन वाले मनुष्यो मे पाया जाता है। वे आज की अब की बात पर तो विचार करना जानते है, पर पीछे बातो की उपेक्षा करते रहते है। ऐसे लोगो को मूर्ख भी कह सकते है।

पतली गर्दन वाले अक्सर चतुर, बुद्धिमान और आगा-पीछा सोचकर काम करने वाले होते है। बहुत गम्भीर विषयो पर विचार करने वालो की गर्दन आगे की ओर टेढ़ी हो जाती है जिसमे सिर कुछ झुका हुआ सा रहा करता है। किसी भारी चिन्ता तथा सोच-विचार मे पड़े हुए लोगो की गर्दन एक तरफ को ढुलकी हुई-सी रहती

है। घमण्डियो की गर्दन तनी हुई, बहादुरो की अकड़ी हुई और हँसोड़ो की जरा पीछे की ओर झुकी रहती है।

लम्बी गर्दन वाले पशु-पक्षियो पर दृष्टिपात कीजिए। जिराफ, कंगारू, ऊँट, हिरन, सारस, बतख आदि दब्बू डरपोक, दूसरो के शिकार, भागने वाले, दुबले-पतले होते है, उनमे कुछ बौद्धिक विशेषता भी नहीं पाई जाती, यही बाते लम्बी गर्दन के मनुष्यो मे देखी जाती है। मजबूत, भरी हुई, गोल, मंझोली, गर्दन वाले मनुष्य भारी भरकम, गम्भीर तथा तेजस्वी होते है। जिसकी लम्बाई बहुत छोटी हो, सिर कन्धो के बिल्कुल पास हो ऐसे मनुष्य खोटे, दुर्व्यसनी तथा ओछी तबियत के देखे जाते है। जिसमे नसे और हड्डियाँ चमक रही हैं। ऐसी गर्दन वाले बीमारियो मे ग्रस्त रहते है। आये दिन उनके शरीर मे कुछ व्यथाएँ खड़ी रहती है।

गोल भरी हुई गर्दन उत्तम स्वास्थ्य की चिह्न है। जिस गर्दन मे जहाँ-तहाँ माँस झूल रहा हो, वह बहु संतान होना सूचित करती है। गले की हड्डियाँ यदि गर्दन मे से बाहर दिखाई दे रही हो तो यह जननेन्द्रिय मे दोष होने का कारण होती है। जिसकी गर्दन पर नस अधिक उभर रही हो उस पर बार-बार रोगो का आक्रमण होता रहता है। चपटी गर्दन अनिश्चित स्वभाव के मनुष्य की होती है, उनके विचार और कार्य सदा बदलते रहते है।

कान

आकृति विद्या के आचार्यों का मत है कि मध्यम आकार के, छोटे छेद वाले, सुन्दर सुडौल आकार के कान बहुत शुभ है ऐसे व्यक्ति मे वे गुण होते है जिनके कारण उसका जीवन बहुत आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है।

लम्बे बड़े-बड़े कानो वाला विनम्र स्वभाव, सदाचारी तथा डरपोक होता है। आपने देखा होगा कि खरगोश प्रकृति, डरपोक स्वभाव वालो के कान बड़े-बड़े होते है किन्तु यदि उनकी जड़े मोटी हो तो बड़े कान होना महापुरुष, नेता तथा धर्मात्मा होने के चिह्न है। गौतम बुद्ध तथा महात्मा गाँधी के चित्रो मे हम उनके मोटी जड़ वाले बड़े-बड़े कानों को देख सकते है।

इसी प्रकार चूहे के से बहुत छोटे कानो को छोड़कर साधारणतः छोटे कान प्रेम, प्रीति, स्नेह, सहानुभूति के लक्षण है, हाँ यदि बहुत ही छोटे कान हो तो उन्हे छोटे दिल, छोटे दिमाग तथा छोटे हौसले की निशानी समझा जा सकता है।

पीछे की ओर सिर की बगलो से चिपके हुए कान *लज्जा, शीलता, संशयात्मा तथा दब्बूपन के सूचक है।* इठे हुए से कान कुटिलता तथा टेढ़ेपन का इजहार करते है। हाथी के सीधे खड़े कान हिम्मत, मजबूती, मर्दानगी बताते है। जिनकी जड़े बहुत ही कमजोर हों और कान सीग की तरह शरीर से जुदापन प्रकट करते हुए लग रहे हो तो लालच और क्रूरता की मात्रा बढ़ी-चढ़ी होगी।

मोटे सीधे और ऊँचे कानो वाले बड़े विचित्र स्वभाव के होते है, साधारणतः वे सीधे-सीधे तरीके से रहते है, पर यदि उन्हे उत्तेजित किया जाय, छेड़ा जाय या सताया जाय तो इतने भयकर बन जाते है, जिसका सम्भालना कठिन है। इस आवेश मे वे ऐसे कृत्य कर सकते हैं जिनसे उनका सीधापन देखते हुए कभी आशा नहीं की जाती थी। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के कान ऐसे ही थे, उस महलो में रहने वाली महिला ने अन्त मे कैसा भयंकर रूप धारण किया था इस बात को इतिहासवेत्ता भली प्रकार जानते है।

कानो की जड़ यदि आँखो की सीध से ऊँची हो तो उससे स्वभाव की गर्मी प्रकट होती है, क्रोधी, खूँख्वार, बदला लेने वाले, झगड़ालू व्यक्तियो की कानो की जड़े अक्सर आँखों की सीध से ऊँची होती हैं। सामान्यतः कानो की जड़े आँखो की सीध मे रहनी चाहिए, मध्यम श्रेणी के सद्गृहस्थ इसी प्रकार के होते है, किन्तु यदि कान की जड़ का ऊपरी भाग आँख के ऊपरी भाग से कुछ नीचा हो तो वह उत्तम स्वभाव, स्वस्थ शरीर और अच्छा मस्तिष्क होने का प्रमाण है।

शंख के से कान वाला समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त, अगुआ होता है। जिसके कानो पर बड़े-बड़े बाल हो वह बड़ी उम्र वाला होता है। छोटे माँस रहित, पतले कान वाला मनुष्य हेटे काम करने वाला होता है और दुःख-दरिद्र की जिन्दगी बिताता है।

बहुत नसो की भरमार जिसके कानो मे चमक रही हो वह दुष्ट स्वभाव और क्रूरकर्मी होता है। सिंघाड़े की तरह जिसका कान सिकुड़कर कुकड़ी बन रहा हो ऐसा व्यक्ति प्रायः अविश्वासी और दरिद्री होता है। पहलवानो पर यह बात लागू नही होती क्योकि वे, लोग कुश्ती लड़ने के लिहाज से अपने आप मरोड़-मरोड़कर कानो को इस प्रकार का बना लेते है।

आँखो से दूर फासले पर जिनके कान होते है उनकी योग्यता एवं विचार शक्ति बढ़ी-चढ़ी पाई जाती है, जिनके कान कनपटी के समीप हो वे उदासीन, वैरागी स्वभाव के होते है। कामो मे उनका मन कम लगता है और एकान्त सेवन की इच्छा किया करते है।

कान की परीक्षा करते समय अभ्यासियो को यह मोटी बाते याद रखनी चाहिये कि छोटे, पतले, हल्के कान, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, कोमलता तथा नम्रता के सूचक है। मध्यम श्रेणी के कान स्वस्थता तथा आनन्दप्रियता के चिह्न हैं और बड़े झंझड़, लाल और कठफूला से कान कुछ विशेष अपवादो को छोड़कर मोटे स्थूल और हल्के दर्जे के स्वभाव के लक्षण है।

कानो के छेद पतले होना बहुत शुभ हैं। ऐसे मनुष्य जहाँ रहते है वहाँ सदा आनन्द मंगल बना रहता है। अधिक चौड़े छेद वाले कान ऐसे लोगों के होते है

जो अपने लिए तथा दूसरो के लिए कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा किया करते है। बाहर से देखने पर जो छेद बहुत दूर तक दिखाई पड़ते है अर्थात् जो छेद सीधे होते है, वे बड़े परिश्रमी तथा शारीरिक दृष्टि से मजबूत होते है। जिनके छेद थोड़ी ही दूर से मुड़े होते है, बाहर से देखने पर छेद जरा-सा मालूम होता है, ऐसे लोगो की मित्रता बहुतो से होती है। उनका स्वभाव मिलनसार होता है।

मस्तक

मस्तक की मजबूत हड्डियो के अन्दर अत्यन्त कोमल भूरे रंग का चिकना-चिकना पदार्थ भरा हुआ है, जिसे मस्तिष्क कहते हैं। मस्तिष्क मे असख्य मानसिक शक्तियो का निवास है। इन शक्तियो के पृथक्-पृथक् स्थान है, यहाँ संक्षेपतः सार रूप मे इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि सिर के अगले भाग यानी माथे की तरफ आशा-धर्म दृढ़ता, इज्जत, बुद्धि तथा विवेक आदि आत्मिक शक्तियो का स्थान है। सिर के पिछले भाग मे लालच, लड़ाई, मोह, कामवासना आदि सासारिक भावनाएँ रहती है। सिर की दोनो बगलियो मे गाना, बजाना, नृत्य, चित्रकारी, कवित्व, रचना, विज्ञान तथा कला प्रभृति कोमल वृत्तियों का निवास है। सिर के इन तीनो भागो मे जो मजबूत, पुष्ट, स्वस्थ तथा उन्नत दिखाई पड़ता हो, समझना चाहिए कि उस स्थान मे रहने वाली शक्तियाँ भी बढ़ी-चढ़ी होंगी।

ऊँचे और चौड़े माथे को देखकर विचारशीलता तथा बुद्धिमत्ता का अनुमान किया जा सकता है। छोटा, दबा हुआ, कम चौड़ा माथा अल्पबुद्धि और विवेकहीनता का लक्षण है, उभरे हुए और चमकदार माथे वालो की स्मरण शक्ति तेज होती है तथा विद्याभ्यास का शौक बढ़ा-चढ़ा होता है।

कम ऊँचा माथा यदि लम्बाई मे दूर तक फैला हुआ हो तो हाजिर जवाब, चतुर, गहराई तक पहुँचने तथा कुशाग्र बुद्धि का सूचक होता है। ऊँचे और चौड़े मस्तक वाले व्यक्तियो को यदि अवसर मिले तो वे महापुरुष, नेता और आदर्श व्यक्ति हो सकते है। इनमे परिश्रम, चतुरता, बुद्धिमत्ता और सच्चाई की काफी मात्रा होती है।

जड़ मे अर्थात् भौहो के पास माथा आगे की ओर बढ़ा हुआ हो और ऊपर बालो के पास पीछे को हटा हुआ हो तो समझना चाहिए कि सद्भावना और सच्चरित्रता की कमी है। नीचे-ऊपर धँसा हुआ और बीच में उभरा हुआ माथा सहानुभूति, गम्भीरता और उदारता का लक्षण है। ऊपर का भाग आगे निकला हुआ और नीचे का भाग भीतर धँसा हुआ हो तो यह व्यक्ति शौकीन तबियत का, यात्रा करने वाला तथा नित नई योजनाएँ बनाने वाला होगा।

गोलाई लिये हुए माथा कृपालुता, आदर, अनुराग तथा धार्मिकता प्रकट करता है। महराबदार अर्थात् बीच मे नुकीला और दोनो ओर गोल माथा दार्शनिक, विचारक, विद्वान और नई बाते खोजने वालो का होता है। सीधे सपाट माथे वाले बेफिक्र, मस्तराम, हर हालत मे खुश और चैन की बजाने वाले होते हैं, उन्हे दीन-दुनिया की ज्यादा परवाह नही रहती।

भवो के ठीक ऊपर माथे की हड्डियाँ यदि कुछ आगे बढ़ी हुई हो तो इसे उत्साह, जोश और लगन का चिह्न समझना चाहिए। देश और जाति की महत्वपूर्ण सेवा करने वालो के माथे के बीच मे अक्सर गड्ढे देखे जाते है। अगर दोनो भवो के बीच मे गड्ढा हो तो वाक्पटुता, प्रसन्नता, चतुराई तथा दयालुता का द्योतक समझना चाहिए।

फूला हुआ, भारी-सा, अधिक वजनदार मस्तक ठस्स बुद्धि और अड़ियल स्वभाव वालो का होता है। लम्बाई मे बहुत छोटा किन्तु ऊँचा बहुत हो तो कपटीपन, ढोग और मिथ्या भाषण की भरमार समझनी चाहिए। चौकोर माथा, प्रतिभा, स्थिरता, सच्चाई और दृढ़ता प्रकट करता है। व्यापारी और धनी लोगो के माथे मे एक प्रकार की चमक रहती है। ऊबड़-खाबड़ बेडौल मस्तक अस्थिरता और काहिली का भेद खोलते है।

सिर का पिछला हिस्सा यदि भरा हुआ हो तो प्रेमी होने का और चिपटा हो तो स्वार्थी होने का लक्षण है। यह भाग यदि गड्ढेदार, सूखा हुआ, पोला-पोला हो तो चिड़चिड़ेपन तथा खुदगर्जी की अधिकता बताता है। ठोस, चौड़ा, सीधा हो तो इन्द्रियो पर काबू रखने वाला होना चाहिए। छीपटी-सा पतला और उभरी हुई नसो का हो तो दुनियादारी के धन्धे मे बहुत अधिक व्यस्त समझना चाहिए। साधु और त्यागी वृत्ति के लोगो के सिर के पिछले भाग को टटोलने पर एक छोटा-सा गड्ढा मालूम पड़ा करता है।

छोटी कनपटी वाले नीरस स्वभाव के होते है। बड़ी, चौड़ी या फैली हुई कनपटी रसीली प्रकृति के संगीत, साहित्य तथा कला-कौशल मे रुचि लेने वालो की होती है। कनपटी के नीचे नाक की तरफ जाने वाली जबड़े की हड्डी यदि उभरी हुई हो तो उससे शारीरिक अस्वस्थता प्रकट होती है। कान के पीछे यदि हड्डियो के दो गुटके से उभरे हुए हो तो उस व्यक्ति को कूटनीतिज्ञ, रहस्यमय तथा गहरे स्वभाव का समझना चाहिए।

अब एक दृष्टि मे सिर के तीनो भागो को मिलाकर देखिए। यदि 'दो मूँड' वाला सिर हो ऐसा मालूम पड़े कि एक साथ दो सिर जोड़ दिये गये है तो ऐसे मनुष्यो को दुर्गुणी तथा दरिद्रता से कष्ट पाने वाला समझना चाहिए। जिसके माथे मे कूबड़ से उठे हुए होते है, ऐसे मनुष्य अपनी कम अकली से सदा दुःख पाते रहते हैं।

चपटे सिर वाले व्यभिचारी तथा आदरणीय पुरुषो की अवज्ञा करने वाले होते हैं। बहुत छोटे-सिर वाले चंचल और चालाक तो खूब होते है पर विद्वता तथा गम्भीरता की न्यूनता ही रहती है। मध्यम आकार का सुडौल सिर धनी विद्यावान, सुखी और सदाचारी लोगो का होता है। जिसके माथे पर रामानन्दी

तिलक का सा चिह्न हो वह बड़ा होनहार, धनी, पुरुषार्थी यथा यशस्वी होता है।

गाल

गोल, उचित मात्रा मे माँसयुक्त गाल श्रीमन्तो के होते है। बीच मे जरा-सी लालिमा की झलक हो तो यह भोगी अभिरुचि का चिह्न है। जिनके चेहरे की त्वचा पर चमक होती है वे स्वस्थ, प्रसन्न और समृद्ध होते है। लम्बाई को समतल बनाते हो पर फूले हुए न हो, ऐसे गालो वाले व्यक्ति राजसी आनन्दो से भरे-पूरे रहते है।

अधिक फूले हुए गाल आलसी या बेफिक्र लोगो के होते है। जिनके ऊपर जिम्मेदारी का बोझ अधिक रहता है उनके गालो का माँस झूल जाता है। अधिक परिश्रमी लोगो के गाल पिचक जाते है। जिनकी देह मे कोई भीतरी रोग लगा होता है, उनके गालो का माँस बुरी तरह सूख जाता है। विद्या व्यसनी लोगो की कनपटी की हड्डी जो आँख से लेकर कान तक गई है ऊपर उठ आती है।

अधिक गम्भीर रहने और पेचीदा गुत्थियो को सुलझाते रहने से चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती है। जिनके चेहरे पर मुँहासे अधिक उठते हो, उनके रक्त मे अशुद्धता या पाचनशक्ति की खराबी समझनी चाहिए। गालो का नीचे का भाग ऊपर के भाग की अपेक्षा अधिक भारी हो तो ऐसे लोग अभिमानी और दूसरो से बुरा व्यवहार करने वाले होते है।

हँसते समय जिनके गालो मे गड्ढा पड़ता है वे दीर्घजीवी होते है। मुस्कराने मे जिनके गालो पर ऊपर से नीचे की ओर रेखाएँ पड़ती है, वे सफल व्यापारी होते हैं। हँसी मे जिनके गाल किसी एक स्थान पर अधिक फूल जाते है, वे पर निन्दक, चुगलखोर तथा छिद्रान्वेषी देखे जाते है।

कंधे

भरे हुए माँसल, पुष्ट और भारी कन्धे स्वस्थता, सबलता और तेजस्विता के चिह्न है। कन्धो की चोटी पर मोटे तथा स्याह काले बाल हो तो उसे शत्रुओ पर सदा विजय प्राप्त होती है। पर यही बाल यदि मुलायम, थोड़े और फीके रंग के हो तो चतुरता के चिह्न है, ऐसे लोग बड़ी-बड़ी कठिनाइयो को आसानी से पार कर जाते हैं। कन्धे पर बिल्कुल बाल न होना अशुभ माना जाता है। ऐसे लोग डरपोक और जल्द घबराने वाले होते हैं।

कन्धे सीधे होने चाहिए, सीधे कन्धों वाले हँसमुख और मिलनसार होते है, जिसके कन्धे कमान की तरह आगे को अधिक झुके हुए हो, वे कमजोरी, बीमारी और बेचैनी के शिकार बने रहते है। आगे की ओर उभरा हुआ सीना, लड़ाकू प्रवृति के शूरवीरों का होता है। जिन कन्धों मे जहाँ-तहाँ हड्डियाँ उभर रही हों, गाँठे-सी आ गई हैं। उन्हे दरिद्रता का प्रतीक समझना चाहिये। बीच-बीच मे गड्ढे होना भोलेपन का निशान है। ऐसे लोग चालाको द्वारा अक्सर ठगे जाते रहते हैं।

कन्धे के आगे की हड्डी जिसे हँसली कहते है, बहुत उभरी हुई नहीं होनी चाहिये। यदि वह माँस मे दबी हुई हो, दूर से देखने पर उसका थोड़ा चिह्न मात्र दिखाई पड़ता हो तो उसे पारिवारिक सुख की कमी नही रहती। यदि हँसली की हड्डी आगे अधिक उभर रही हो तो दम्पत्ति जीवन कष्टमय रहता है।

पीठ

चौड़ी, सीधी, चिकनी और गोलाई लिए हुए पीठ सौभाग्यशाली मनुष्यो की होती है। रीढ़ की हड्डी भीतर धँसी हुई हो, माँस से ऊपर चमकती नहीं हो, तो उसे सुखी जीवन का चिह्न कह सकते हैं। रीढ़ की हड्डी ऊपर उभर रही हो, उसकी गाँठे अलग-अलग दिखाई पड़ रही हो तो उसे शारीरिक व्यथाएँ सताया करती है। रीढ़ की हड्डी यदि कन्धो के पास कूबड़ की तरह पीछे की ओर उठी हुई हो तो स्वार्थपरता, अनुदारता और चिड़चिड़ापन प्रकट करती है। जिनकी रीढ़ मध्य भाग से नीचे के हिस्से मे उठी हो तो मूत्र रोगो की व्यथा बनी रहती है।

पीठ के दोनो पार्श्वों पर थोड़े से काले एवं मोटे बाल हो तो साहसी होने का चिह्न है। ऐसे मनुष्य खतरे से नही डरते और भारी विपत्तियो को हँसते-हँसते सह लेते है। पीठ पर मुलायम रोमावली, चपलता और विनोदप्रियता का लक्षण है। ऐसे आदमी गम्भीर नही होते और न नफा-नुकसान का कुछ अधिक विचार करते हैं। मन की मौज को पूरा करना उन्हें सबसे अधिक प्रिय लगता है।

पीठ के पिछले भाग मे यदि पसलियाँ चमकती हो तो ऐसे मनुष्य को घमण्डी, ईर्ष्यालु तथा फिजूलखर्ची समझा जा सकता है। पीठ पर यदि पाँच के भीतर तिल हो तो शुभ है। पाँच से अधिक तिल हो तो सन्तान की ओर से उस व्यक्ति का जी सदा जलता रहता है। साँप जैसी अधिक लम्बी किन्तु बहुत ही कम चौड़ी पीठ जिनकी होगी वे सदा चिन्ता मे डूबे हुए देखे जायेंगे। ऐसे लोग बहुत ही कम हँसते पाये जाते हैं।

छाती

शिला सी चौड़ी और मजबूत छाती बलवीर्य की प्रचुरता का चिह्न है। साहसी लोगों की छाती पर बालो की अधिकता रहती है। पूरी साँस लेने और निकालने में जो काफी फैल और सिकुड़ सकती है, वह दीर्घजीवन की प्रतीक है। स्तन स्थानों पर माँस की अधिक मात्रा होना धनी होने का चिह्न है।

जिस छाती मे माँस की कमी हो, पसलियाँ चमक रही हो, उसे दरिद्रता या अज्ञानता का शिकार कह सकते है। साधारणतः स्वस्थ पुरुषो की छाती कमर की अपेक्षा अधिक चौड़ी होती है, परन्तु यदि वह छाती और चौड़ाई की अपेक्षा लम्बाई मे चली गई हो तो इसे निर्बलता का चिह्न समझना चाहिए। जिनका धड़ सारंगी की तरह लम्बा परन्तु पतला हो वे कमजोर रहते है, पर ऐसे लोगो का मस्तिष्क बड़ा तेज होता है।

दोनो ओर की पसलियो के जोड़ की संधि का भाग यदि भीतर धँसा हुआ हो तो फेफड़ो की कमजोरी प्रकट करता है, ऐसे लोग जुकाम, खाँसी आदि से पीड़ित रहते है। यदि संधि भाग ऊपर उठा हुआ हो तो जिगर या तिल्ली मे दोष होगा। पसलियो की संधि छाती के समतल हो तो सदा निरोगता बनी रहेगी।

पसलियाँ सीधी गोलाई की चली आवे तो स्वास्थ्य की निर्दोषता समझनी चाहिए। यदि वे एक स्थान पर अधिक उठी हुई दिखाई दे, तो वे गवाही देती है कि इसने सामर्थ्य से अधिक काम किया है। पसलियाँ आपस मे चिपटी हुई हो तो एक-दूसरे के बीच मे फासला कम हो तो यह चुस्ती, स्फूर्ति और निरालस्यता का लक्षण है। जिनकी पसलियों मे अधिक फासला होता है, वे अक्सर काम से जी चुराने वाले होते है।

पेट

पेट छाती से कम चौड़ा होना चाहिए पर जिनका पेट छाती से बड़ा हो, तूमी की तरह आगे निकला हो और कड़ा हो उसे अपच का कारण समझना चाहिये। भोजन भट्ट मनुष्यो का पेट बाहर निकल आता है। ऐसे व्यक्ति अक्सर दरिद्री देखे जाते है।

चर्बी या माँस की अधिकता के कारण बढ़ा हुआ पेट धनवान होने का चिह्न है। जिनके पेट पर सलवटे पड़ती है वे सुखी जीवन व्यतीत करते है। एक सलवट वाले ज्ञानवान, दो सलवट वाले धनवान और तीन सलवट वाले भरे-पूरे कुटुम्ब के होते है। अधिक सलवटो का पड़ना शिथिलता और निराशा का कारण होता है।

जिनके पेट पर नसे उभरी होती है, उन्हे दस्त साफ न होने की शिकायत बनी रहती है। यदि पेट की बगले अधिक फूली हो, बाहर की ओर निकली हुई हो तो ऐसे मनुष्य स्वार्थी, कंजूस किन्तु धनवान होते है। नाभि का गड्ढा गहरा हो तो लक्ष्मी उसका साथ नही छोड़ती, जिसकी नाभि ऊपर उठी हुई होती है, उन्हें जीवन के कठोर संघर्षो मे से गुजरना पड़ता है। नाभि का मुख ऊपर को हो तो सदाचारी, सामने हो तो संचयशील स्वभाव समझना चाहिये कामी पुरुषो का पेडू नाभि से नीचे का भाग सख्त तथा फूला हुआ रहता है।

पेट से छाती पर तिल अधिक हो तो वह मनुष्य दूसरे को ऋण देने वाला साहूकार होता है। परन्तु जिसके छाती से अधिक पेट पर तिल हो वह दूसरो का कर्जदार बना रहता है। पेट पर मुलायम रोमावली होना शुभ और कठोर, कड़े तथा काले बाल होना अशुभ समझा जाता है।

बाहें

सीधी, गोल, भरी हुई लम्बी बाहे राज-ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले मनुष्यों की होती है। जिनके भुजदण्ड कठोर हो, नसो और माँस का जमाव हो तो ऐसे व्यक्ति बड़े निर्भीक और स्वतन्त्र प्रकृति के होते है, जिनके भुजदण्डो पर माँस झूलता हो उन्हे काम से जी चुराने वाले तथा अधिक बाते बनाने वाला कहना चाहिए।

कोहनी के नीचे की हड्डी निकली हो तो यह मानसिक अशान्ति का लक्षण है। कोहनी के इधर-उधर की दो गाँठें बाहर को निकल रहीं हो तो शारीरिक कमजोरी का कारण है, ऐसी बाहे कोई महत्वपूर्ण पुरुषार्थ नहीं कर पातीं। बाँह यदि पीछे की ओर जितनी मुड़ेगी उतना ही मनुष्य दुस्साहसी होता जायेगा।

बाँह पर नसे बहुत उभर रही हो तो इसे चिन्ता या कुढ़न का कारण समझना चाहिए। बाँहो पर रोमावली होना कवि या स्वाध्याय प्रिय होने का लक्षण है। जिनकी बाँहो पर अधिक बड़े बाल होते है वे उपकारी और उदार स्वभाव के पाये जाते हैं।

कलाई की हड्डी उभर रही हो, कड़ी नसो से ऊपर दिखाई पड़ती हो तो उसे स्वावलम्बी समझना चाहिए, ऐसे पुरुष अपने बलबूते पर कार्य करते है और बड़ी-बड़ी सफलताएँ प्राप्त करते है। जिनकी कलाई, पतली कोमल, माँस मे दबी हुई हो उन्हे दूसरे के उपार्जित वैभव को भोगने का अवसर मिलता है, लम्बी बाँहो वाले महापुरुष या महात्मा होते है, पर उनकी बाँहे शरीर को देखते हुए छोटी हो, या अन्य अंगो की अपेक्षा अधिक मोटी हो तो समझना चाहिए कि उन्हे धन की चिन्ता सदा ही बुरी तरह परेशान करती रहेगी।

रहन-सहन

जोर-जोर से कदम पटककर सड़क पर खट-पट करता हुआ चलने वाला मनुष्य अभिमानी, चुस्त और फुर्तीला होता है। पैरो को हाथी की तरह गाढ़-गाढ़कर चलने वाले स्वावलम्बी, शान्त स्वभाव, धैर्यवान और न्यायप्रिय होते है। अपने सिद्धान्तो की रक्षा के लिये ऐसे लोग बड़ी-बड़ी आपत्तियो का मुकाबला भी खुशी-खुशी करते है।

रास्ता चलते समय दो आदमियो की जगह घेरने वाले ऐसे लोग जो हाथों को इधर-उधर हिलाते चलते हैं, हिलते और झूमते हुये आगे बढ़ते है, दूसरो के लिए रास्ता नहीं छोड़ते पर अपने सामने आने वाले को हटा देते है, इस प्रकार के लोग बदमिजाज, घमण्डी, अन्यायी,

पर-पीड़क और शैतानी नशे मे मस्त होते है। कमर झुकाकर और कन्धो को आगे लटकाकर चलने वाले कमजोर और निराश देखे जाते है।

साँप की तरह टेढ़ी-मेढ़ी रीढ़ वाले विश्वासघाती, धोखेबाज और बेईमान होते है। उनकी मीठी बातो के पीछे कपट का पुट लगा रहता है।

जो बहुत अकड़कर बाते करता है, जरा-जरा-सी बात मे लाल-पीला हो जाता है, हाथ पटकने और गरजने लगता है, ऐसे मनुष्य को "मिट्टी के शेर" से अधिक और कुछ नही समझना चाहिए। एक लताड़ मे उनकी सारी हेकड़ी काफूर हो जाती है। परले सिरे के कायर और बुजदिल आदमी इस तरह की अकड़बाजी दिखाते है, वे किसी का कुछ बिगाड़ नही सकते। बहादुर और खूँख्वार आदमी देर मे गरम होते है और जब गरम होते है तो कुछ करके दिखाये बिना चुप नही होते।

जिनके पैर छितराये हुए शराबियो की तरह इधर-उधर पड़ते है और चलने मे पैर एक-दूसरे से लड़ते जाते है ऐसे लोग, आलसी, असफल और अन्धविश्वासी होते है।

जिनके कपड़े मैले, फटे, बेतरतीब तथा बिखरे हुए हो उन्हे सुस्त, काहिल, लापरवाह और आत्म-गौरव से रहित समझा सकता है, किन्तु स्वाभिमानी और स्वच्छ तबियत वाले गरीब होने पर भी तरकीब और सफाई के साथ कपड़े पहिनेगे, भले ही वे सस्ते या फट जाने पर मरम्मत किये हुए हो।

बिखरे हुए बाल, मैले हाथ, बढ़े हुए बाल, पीले दाँत टूटे बटन, फटे जूते, बढ़े हुए नाखून, जहाँ-तहाँ लगे हुए दाग प्रकट करते है, इस व्यक्ति की आदते ऐसी है जो दरिद्रता के दुःख मे ढकेलकर छोड़ेगी। लापरवाह लोग धन नहीं कमा सकते और न उसकी रक्षा ही कर सकते है।

हाथी, सिंह, हंस की गम्भीर गति से स्थिरतापूर्वक जिनके पैर पड़ते है, वे विश्वासी, स्थिर मति और मजबूत स्वभाव के होते हैं। उनके विचार और कार्यों मे बहुत कम अन्तर देखा जाता है।

जिनके चेहरे पर अनेक भाव क्षण-क्षण मे नही बदलते, वे प्रतिष्ठित महापुरुष होते है। चेहरे पर एकरस, गम्भीर, स्थिर एवं नियकुल देखकर यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि यह मनुष्य अपने वचन और कर्त्तव्य को पूरा करने की जिम्मेदारी को समझता है। जिनके चेहरे पर क्षण-क्षण मे भाव बदलते है ऐसे लोगो की बात का भरोसा करना अपने को खतरे मे डालना है।

जो बेढंगे तरीके से पैर फैलाकर उकड़ू होकर औधे पड़कर सभ्य समाज मे बैठते है, उन्हे बेवकूफ कहना चाहिए। नाक, कान या दाँत का कुरेदना, उँगलियाँ चटकाना, पैरो को हिलाना, होठ चबाना, मुँह मरोड़ना इस प्रकार के निरर्थक काम जिनकी आदत मे होते है, उन्हे पथ-भ्रष्ट कहते है। उनके मस्तिष्क मे अनेको समस्याये गूँजती है, पर किसी प्रश्न का ठीक निर्णय नही कर पाते। ऐसे किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्तियो को इठलाकर, लड़कपन जैसी बाते करने या चेष्टाएँ करने की आदत पड़ जाती है।

सामुद्रिक शास्त्र साक्षी है कि यदि शरीर और मन की दशा अस्वस्थ होगी तो चेहरे पर ऐसे चिन्ह प्रकट होगे जो देखने मे बुरे लगते है, खटकते है, कुरूप मालूम पड़ते है और अनायास ही एक प्रकार का भय, आतंक तथा सन्देह उत्पन्न करते है। बकरी के बच्चे ने अपने छोटे से जीवन मे पहले कभी भेड़िये का दर्शन भले न किया हो और न किसी ने उसे भेड़िये के स्वभाव के बारे मे कुछ बताया हो, तो भी वह भेड़िये के प्रथम बार दर्शन करते ही क्षणभर में वह जान लेता है कि भेड़िया किस प्रकार के स्वभाव का है और वह मेरे ऊपर क्या कहर बरपा सकता है। प्रकृति ने यह सहज ज्ञान मनुष्यो को भी दे रखा है ताकि किसी के सम्पर्क मे आते ही यह जान लिया करे कि सामने वाले व्यक्ति मे क्या भले-बुरे गुण है और उनसे क्या हानि-लाभ हो सकता है।

यह बात ध्यान मे रखने की है कि किसी के शुभ लक्षणो को तो निःसंकोच प्रकट कर देना चाहिये। परन्तु कुलक्षणो सम्बन्धी धारणा प्रकाशित करने मे बहुत सयम से काम लेना चाहिए। क्योकि कदाचित किसी भूल के कारण वे लक्षण ठीक न निकले तो अकारण ही घृणा, कलह, द्वेष तथा दुर्भाव बढ़ेगा, दूसरे वह व्यक्ति यह विश्वास कर बैठा कि मेरे तो लक्षण ईश्वर ने ही दुर्गुणी होने बनाये है, तो वह निराश होकर अपनी बुराइयाँ छोड़ने का प्रयत्न न करेगा। अतएव जहाँ तक हो सके दूसरो को प्रोत्साहित करने, उनके सद्गुण प्रकाशित करने तथा आत्म-गौरव एवं महानता की भावनाएँ जगाने के लिये ही इस विद्या का उपयोग करना चाहिए। किसी व्यक्ति के बुरे चिह्नो को देखकर स्वयं सावधान रहना तो ठीक है पर उसे बदनाम तथा हतोत्साह करके निराश, निर्लज्ज तथा शत्रु बनाना उचित नही। आकृति विद्या के अभ्यासियो को इन सब आवश्यक बातो की चेतावनी देते है।

हस्तरेखा विज्ञान

आकृति से प्रकृति का अनुमान

पशु विद्या के जानकार लोग घोड़ा, गाय, भैस, बैल, ऊँट आदि के अंगो की बनावट पर बारीकी से नजर डालते हैं और यह बता देते हैं कि पशु इस नस्ल का है। इसके गुण, कर्म, स्वभाव इस प्रकार के होगे। उस पशु को काम मे लाकर परीक्षा करने के लिये बहुत समय चाहिये। इतना समय खरीद-फरोख्त मे नही मिलता, यह कठिनाई बहुत बड़ी मालूम पड़ती, अगर "शारीरिक चिन्हो को देखकर स्वभाव जानने की विद्या" का आविष्कार न हुआ होता। परन्तु अब वैसी कठिनाई नहीं है, एक मामूली किसान मोटेतौर से देख-भाल करके झट बता देता है कि यह बैल कैसा निकलेगा। गाय, भैस के दूध-घी के बारे मे भी वह आसानी से अन्दाजा लगा लेता है। इसी प्रकार ऊँट, घोड़ा, हाथी आदि की खरीद फरोख्त करने वाले लोग भी एक दृष्टि डालकर पशु के भीतर का हाल जान लेते हैं। उनका अन्दाज कुछ अपवादो को छोड़कर आमतौर से ठीक ही निकलता है।

आकृति देखकर पशुओ का स्वभाव जानने की विद्या इतनी सच-साबित हुई कि अब उसमे सन्देह और मतभेद की अधिक गुंजायश नही रही। अनुभव ने उसकी प्रामाणिकता साबित कर दी है। यह सब देखते हुए भी जो लोग आकृति देखकर मनुष्य की पहचान के बारे मे शक करते है, उसे मिथ्या कहते है, उनकी बुद्धि को क्या कहा जाय ? वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार पशु के बाह्य चिन्ह देखकर उसके भीतर के गुण जाने जा सकते है, उसी प्रकार मनुष्य को भी पहचाना जा सकता है। गुणो से आकृति की रचना होती है। जिसका जैसा स्वभाव है, उसकी शारीरिक आकृति भी वैसी ही बनने लगेगी। हम देखते है कि जब कोई आदमी झल्लाया हुआ हो, झुंझला रहा हो तो उसके चेहरे की सिकुड़न-झुर्रियाँ एक खास किस्म से तनी होती है, मस्तिष्क पर झुर्रियाँ पड़ जाती है, भौहो मे ऐठ पड़ जाती है, कनपटी के पास का चमड़ा सिकुड़ जाता है, आँखे चिपटी-सी रहती है, गालो की माँसपेशियाँ तनती है। इसी प्रकार शोक, चिन्ता, दुःख, पश्चाताप, विरह, वेदना, दर्द, हानि, खुशी, लाभ, सन्तोष, अभिमान आदि की अवस्था मे भी अलग-अलग प्रकार की आकृतियाँ-भाव-भंगिमा बनती है। जैसे-जैसे अन्तरंग अवस्था बदलती रहती है, वैसे-वैसे ही चेहरे की भाव भंगी भी बदल जाती है।

जब मन मे कोई भाव स्थाई रूप से आता है तो आकृति भी उसी के अनुसार बदल जाती है, किन्तु यदि कोई मनोभाव स्थाई रूप से अपने ऊपर अधिकार जमा ले, तो उसकी छाया अंग-प्रत्यंगो पर स्थाई रूप से प्रकट होने लगती है। क्रोधी आदमी की आँखो मे लाल रंग के डोरे पड़ने लगते है। स्वार्थी आदमी की आँखो मे तिरछापन आ जाता है। माथे पर अधिक सरबटे देखकर यह अनुमान लगाया जाता है कि इस आदमी को भावनाओ का आवेश अधिक आता है। काम, क्रोध, लोभ, शोक, चिन्ता आदि के कारण सैकड़ो प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती है, कुरूपता आती है और कमजोरी तथा अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार सद्भावो से, सद्गुणों से 'स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य' की प्राप्ति होती है। इन सब प्रमाणो से स्पष्ट है कि मनुष्य का जैसा स्वभाव तथा विचार होता है, वैसी ही उसकी आकृति, शारीरिक दशा बनने लगती है। आकृति और मनोभावो का आपस मे बहुत घना सम्बन्ध है, इतना घना कि एक को देखकर दूसरे को पहचानने मे कुछ विशेष अड़चन न होनी चाहिये।

शरीर शास्त्र के अनुभवी विद्वानो का कथन है कि मस्तिष्क से निकलकर ज्ञानतन्तु शरीर के विभिन्न-अंगो मे फैल गये है। यो तो यह ज्ञानतन्तु शरीर के हर एक हिस्से मे मौजूद है परन्तु सबसे अधिक मात्रा मे यह तन्तु हाथो की ओर गये है। मस्तिष्क मे जो विचारधारा काम कर रही है, चित्त मे जैसे विश्वास जम गये है, हृदय मे जैसी धारणा है, उसका प्रकटीकरण हाथ को देखकर आसानी से हो सकता है। आकृति विज्ञान के विशेषज्ञ और शरीर विज्ञान के आचार्य एक स्वर से इस बात का समर्थन करते है कि शरीर की भीतरी दशा का हाथो को देखकर परिचय प्राप्त किया जा सकता है। वैद्य लोग हाथ की जड़ मे चलने वाली नाड़ी को देखकर रोगो का निदान करते है। कारण यह है कि ज्ञानतन्तुओ का हाथ मे अत्यधिक बाहुल्य होने के कारण शरीर के अन्य अंगो की अपेक्षा हाथ की नाड़ियाँ अधिक स्पष्ट होती है। चिकित्सक लोग नाखून की परीक्षा करने से भी रोगो का

निर्णय करते है, इसका कारण भी हाथो मे अधिक मात्रा मे रहने वाले ज्ञानतन्तु ही है।

जिन्होने डाक्टरी विद्या पढ़ी है, वे जानते है कि लकवा रोग से कुछ समय पूर्व हथेली की रेखाओ मे बड़ा भारी परिवर्तन होने लगता है। अक्सर बहुत सी छोटी-मोटी रेखाऐं बिलकुल गायब हो जाती हैं। इससे प्रतीत होता है कि हाथ के द्वारा न केवल वर्तमान काल की स्थिति जानी जाती है वरन् यह भी जाना जा सकता है कि भविष्य मे कैसी-कैसी घटनाएँ घटित होने वाली है। वर्तमान से भविष्य का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। अमुक व्यक्ति आज यह कह रहा है, यह जान लेने के पश्चात् यह अनुमान लगाना सहज है कि उसका भविष्य कैसा होगा ? मोटी बुद्धि वालो को भविष्य की जानकारी प्राप्त करना कोई चमत्कार जैसी वस्तु दिखाई पड़ती है परन्तु वास्तव मे वह इतनी आश्चर्यजनक नही है, जितनी कि समझी जाती है। जब बुखार आने को होता है तो कुछ समय पहले देह टूटने लगती है। बच्चा पैदा होने से भी नौ मास पहले स्त्री का पेट बढ़ने लगता है। आँखे जब दुखने आती है तो कुछ समय पहले पूर्व लक्षण प्रकट होने लगते है, दाँत गिरने से पहले उनका हिलना शुरू हो जाता है, इसी प्रकार पूर्व लक्षणो के द्वारा मनुष्य का भविष्य भी जाना जा सकता है। जैसी आन्तरिक दशा होती है, बाह्य परिस्थितियाँ उसके अनुसार ही प्राप्त होकर रहती है।

हाथ की रेखाओ पर आप विशेष रूप से ध्यान दे, तो आपको मालूम पड़ेगा कि वे घटती-बढ़ती रहती है। बहुत सी नई रेखाएँ पैदा होती है और बहुत सी गायब हो जाती है। कई की लम्बाई कम होती है, कई बढ़ जाती है, किसी मे शाखा-प्रशाखाएँ फूटती है, कुछ एक तरफ से दूसरी तरफ को झुकती है, कुछ मोटी से पतली और पतली से मोटी हो जाती है। इस प्रकार के परिवर्तन निरर्थक नही होते, वरन् उनमे कुछ खास रहस्य छिपा होता है। मनुष्य की आन्तरिक दशा के हेर-फेरो का प्रभाव हस्त रेखाओ पर पड़ता है, तदनुसार उन रेखाओ मे लौट-फेर शुरू हो जाता है। इस परिवर्तन को देखकर अनुभवी व्यक्ति आसानी से पता लगा सकते है कि अमुक व्यक्ति की सूक्ष्म परिस्थितियाँ किस दशा मे चल रही है और उनके कारण निकट भविष्य मे किस प्रकार की बाह्य परिस्थितियाँ बनना सम्भव है। यह अनुमान कभी-कभी कुछ गलत भी हो सकते है, जिसके कारण अक्सर दो देखे जाते है—(१) परीक्षक का सूक्ष्म बुद्धि तथा अनुभवी न होना (२) स्वभाव का इतना नया परिवर्तन-जिसका अंकन रेखाओ पर ठीक प्रकार से न हो पाया हो। स्वभाव में अचानक जबर्दस्त परिवर्तन हो जाने पर भविष्य की रचना भी तुरन्त बदल जाती है परन्तु हाथ की रेखाएँ इतनी जल्दी नही बदलती, उनके बदलने मे कुछ देर लगती है। इस नये परिवर्तन की पूरी जानकारी प्रकट न हो तो हस्तरेखाएं देखकर जो फल बताया गया है, वह गलत साबित हो सकता है। ऐसे अपवाद कम होते हैं, कभी-कभी होते हैं, तो भी होते अवश्य हैं। इसलिये सामुद्रिक विद्या में प्रवेश करने वाले को, परीक्षार्थी तथा परीक्षक को, यह कठिनाई भली प्रकार ध्यान में रखनी चाहिये और आरम्भ मे यदि थोड़ी सफलता मिले तो उससे निराश न होकर अधिक सूक्ष्म बुद्धि का प्रयोग करके वास्तविकता तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये।

हाथ की रेखाएँ मुट्ठी बाँधने का फल हैं या काम करने से हथेली मे सुकड़न पड़ जाती हैं, ऐसा कहकर सामुद्रिक विद्या के महत्व को अस्वीकार करने वालो का मत अधिक बुद्धिसंगत नहीं जान पड़ता। क्योकि यदि ऐसा ही होता तो धनी लोग जो हाथ से कुछ काम नहीं करते, उनके हाथ मे रेखाएँ न होतीं या कम होती, इसके विपरीत किसान और मजदूर जो सदा कठिन परिश्रम मे लगे रहते है, उनके हाथ मे बहुत अधिक रेखाएँ हुआ करती। परन्तु ऐसा देखा नही जाता। आप देखेगे कि जिन लोगो का जीवन एक निश्चित धारा पर बहता चला जा रहा है और जिनमे कोई सद्‌गुण या दुर्गुण नहीं है, उनके हाथ मे कम रेखाएँ होती है क्योंकि उनके जीवन में विशेष हलचलें पैदा होने की संभावनाएँ नहीं होतीं। जो लोग अस्थिर चित्त के होते है, चढ़ाव-उतार के कारोबार करते है, हलचलों मे भाग लेते है उनके जीवन में सुख दुःखो की, लौट-फेरों की बड़ी जोखिम रहती है तदनुसार उसके हाथो में रेखाएँ भी अधिक होती है। यदि यह बात न होती और गर्भ मे बालक के मुट्ठी बाँधे रहने के कारण ही हाथ मे सरवटे पड़ा करती तो उनकी संख्या सभी बालको मे करीब-करीब समान होनी चाहिये थी, परन्तु देखने से विदित होता है कि नवजात शिशुओ की रेखाओ की सख्या मे भी भारी भिन्नता पायी जाती है।

परीक्षणो के आधार पर हमे इसी नतीजे पर पहुँचने के लिये विवश होना पड़ता है कि हाथ की रेखाएँ अपने अन्दर कुछ रहस्य छिपाये हुए है। वह रहस्य यह है कि मनुष्य की भीतरी परिस्थितियो की और भविष्य मे घटित होने वाली घटनाओ की हस्त रेखाएँ एक प्रकार की सचित्र लिखावट है, जिसे पढ़कर अपने बारे मे और दूसरो के बारे मे बहुत सी अज्ञात बातो को जाना जा सकता है।

सामुद्रिक विद्या का इतिहास बहुत पुराना है। भारतवासी पुरातन काल से इससे लाभ उठाते आ रहे है। यहाँ से इस विद्या का अन्य देशो मे प्रसार हुआ और चीन, तिब्बत, फ्रांस, मिश्र, यूनान आदि देशो मे भी यह विद्या फैली। ईसा से तीस हजार वर्ष पहले चीन में हस्त रेखा जानने वाले विद्वान मौजूद थे, ऐसा पता चलता है। यूनान देश मे पोलीमॅन, अलातूनिया, प्लिनी, हिस, पानस आदि कितने ही विद्वान इस विद्या के धुरंधर ज्ञाता हो चुके है। इतिहास मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि सम्राट

सिकन्दर को हिसपानिक नामक विद्वान ने हस्त रेखा सम्बन्धी एक पुस्तक स्वर्णाक्षरों मे लिखकर भेट की थी। जब छापेखानो का आविष्कार हुआ ही था कि बाइबिल के बाद सामुद्रिक सम्बन्धी एक 'डिक कुन्ट सिरोमन' नामक पुस्तक जर्मनी मे सन् १३७५ मे छपी। इसके बाद वहाँ सन् १४९० ई. मे एक दूसरी पुस्तक 'श्रोमैंटिआ अरिस्टजिज कर्मफिजुर्टस' छपी। यह दोनो पुस्तके आज भी ब्रिटिश म्यूजियम मे सुरक्षित है। इंगलैण्ड मे चौथे जार्ज के शासन काल मे यह विद्या इतनी अधिक बढ़ी कि धूर्त लोग इसके द्वारा अनुचित लाभ उठाने लगे। ऐसे लोगो के विरुद्ध वहाँ की पार्लियामेंट ने एक 'एन्टी पामिस्ट्री बिल' पास किया।

योरोपीय देशो ने हस्त रेखा विद्या के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण खोजे की और विज्ञान द्वारा यह साबित किया कि यह विद्या शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान के आधार पर अवलम्बित है। वैज्ञानिक मेन्सीनर ने अपने परीक्षणो द्वारा यह साबित कर दिखाया कि हाथो मे एक विशेष प्रकार के लाल रंग के परमाणु होते हैं, जो रेखाओ के सहारे-सहारे बढ़ते और पीछे हटते है। डॉ. ओसकर ने इस विषय मे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। मि. शेरो की पामिस्ट्री दुनिया भर मे ख्याति प्राप्त कर चुकी है।

सामुद्रिक विद्या के प्रेमियो को यह बात विशेष रूप से ध्यान रखने की है कि हाथ की विभिन्न रेखाओ पर तथा हाथ की बनावट पर विस्तृत विचार करने के उपरान्त ही किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिये। केवल एक रेखा या अमुक चिन्ह को देखकर ही कोई निश्चित सम्मति प्रकट न कर देनी चाहिये। चतुर वैद्य कई प्रकार की परीक्षाओ द्वारा रोग की जानकारी प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार विभिन्न पहलुओ पर विचार करके हाथ का फल निर्धारित करना चाहिए।

हाथ

प्राय: दो प्रकार के हाथ देखे जाते है। किसी का हाथ मुलायम होता है, दबाने से रूई की तरह मालूम पड़ता है। किसी का हाथ कड़ा होता है, दबाने से कड़ी हड्डियो और कठोर माँसपेशियो का अनुभव होता है। कोमल हाथ वाले धनी, भावुक, आराम पसन्द, मधुरभाषी, मन मे छिपाव रखने वाले, चंचल मन वाले पाये जाते है, थोड़ी-सी खुशी मे वे फूल जाते है और थोड़ी-सी चिन्ता, बीमारी, आपत्ति, आशंका उनको भयभीत एवं व्याकुल बना देती है।

जिनका हाथ कठोर, कड़ा और मजबूत होता है, वे विचारशील, गम्भीर, दूरदर्शी, परिश्रमी, धुन के पक्के होते है। उनका स्वभाव रूखा और कर्कश होता है। उनके मित्र थोड़े होते है पर जो होते हैं, सच्चे और स्थायी होते है। कठिनाइयो से भयभीत होने की अपेक्षा साहसपूर्वक मुकाबला करना उन्हे ज्यादा पसन्द होता है। ऐसे व्यक्ति या तो परीक्षार्थी होते हैं या फिर घोर स्वार्थी पाये जाते हैं। साहसपूर्ण और खतरनाक काम करने मे कठोर हाथ वालो की रुचि अधिक होती है।

हाथ की बनावट—हाथ की बनावट सात प्रकार की मानी गई है—(१) समकोण, (२) चमसाकार, (३) दार्शनिक, (४) कलाकार या व्यावसायिक, (५) निकृष्ट, (६) आदर्शवादी या विषम, (७) मिश्रित।

बनावट को देखकर यह आसानी से जाना जा सकता है कि कौन हाथ किस श्रेणी का है अब इनका प्रथक्-प्रथक् विवेचन किया जाता है।

समकोण हाथ—चौकोर हथेली वाले हाथ समकोण कहे जाते है। जिसकी हथेली की लम्बाई-चौड़ाई बराबर हो तथा चारो उँगलियो को मिलाकर चौड़ाई एवं बीच की उँगली की लम्बाई बराबर हो, वह हाथ समकोण कहा जाता है। ऐसे हाथ सीधे, सपाट, कोमल, मुलायम और भरे हुए होते है। समकोण हाथ सबसे अच्छा समझा जाता है।

ऐसे व्यक्ति मिलनसार, उत्साही, नम्र स्वभाव तथा स्वाभिमानी होते है। असभ्य व्यवहार उन्हे सहन नहीं होता। वे नेता होते हैं पर आज्ञापालन का गुण उनमे विशेष रूप से होता है। यदि उँगलियाँ गठीली हो तो सत्यवादी, शान्त स्वभाव, विचारशील, गम्भीर और दृढ़ निश्चयी होता है। दयालु होते हुए भी अन्धविश्वास से दूर रहता है। किन्तु यदि उँगलियाँ नरम और सुडौल हो तो सजावट, फैशन परस्ती, सौन्दर्य, मित्रता का भाव अधिक रहेगा। गन्दगी उन्हे जरा भी बर्दाश्त नही होती। समकोण हाथ वाले अक्सर सुयोग्य डाक्टर, व्यापारी, वकील, अन्वेषक तथा बुद्धिजीवी होते हैं। वे सच्चरित्र होते है पर विचारों में स्थिरता का बड़ा अभाव रहता है।

चमसाकार हाथ—जिस हाथ की उँगलियाँ कुछ मुड़ी हुई टेढ़ी सी रहती है और कलाई के पास हथेली की चौड़ाई अधिक होती है और उँगलियो के पास चौड़ाई कम होती है अथवा हथेली के पास चौड़ाई कम होती है और उँगलियों के पास अधिक होती है ऐसे हाथ को चमसाकार हाथ कहते है।

जिसकी हथेली कलाई के पास अधिक चौड़ी होती है, उनके कार्य बहुत ऊँचे आदर्शों से भरे होते है फिर भी वे आम लोगों को फायदा नहीं पहुँचा पाते। उन्हें अपने कार्यों में बहुत अधिक सहायता नहीं मिलती है। इसके विपरीत वे लोग जिनकी हथेली उँगलियो के पास अधिक चौड़ी होती है, बहुत बड़े आदर्शवादी नहीं होते। समय की प्रगति को देखते हुए वे काम करते है। कार्य-कुशलता की अधिकता के कारण वे ख्याति प्राप्त करते हैं और अपने कार्यों में बहुत अधिक सफल रहते हैं।

चमसाकार हाथ की कठोर उँगलियाँ उद्योगी और परिश्रमी होने का प्रमाण है। इनका शरीर और मन किसी

से हाथ आविष्कारक,
न किसी कार्य से लगा रहता है, ऐज सुधारको के देखे
इन्जीनियर, मल्लाह-व्यापारी तथा समामन मे छिपाव रखने
जाते है। गाँठदार उँगलियो का होना सपाट और चिकनी
और गम्भीर होने का चिन्ह है। पसन्द लोगो की
उँगलियाँ दस्तकारी और कला-कौशल
होती है। तो झगडालू होना

ऐसे हाथ मे अँगूठा छोटा हे शासक, विलासात्मक
प्रकट करता है। बड़े अँगूठे वाले
काम करने वाले और शूरवीर होते हैला, लम्बा और बीच

दार्शनिक हाथ—यह हाथ गठीली हड्डियाँ तथा जोड़
मे झुका हुआ होता है। उँगलियो व
उभरे हुये और नाखून लम्बे होते है। की दार्शनिकता का

इस प्रकार का हाथ मनुष्य र विचारधारा सामान्य
द्योतक है। उनकी कल्पना, इच्छा औ है। सुख भोगने की
मनुष्यों की अपेक्षा बहुत ऊँची होती उन्हे अधिक पसन्द
अपेक्षा तत्त्व ज्ञान को प्राप्त करना से मिलते है तो भी
होता है। मित्रतापूर्ण ढग से लोगो होती। ऐसे मनुष्यो के
किसी से उनकी घनिष्ठ मित्रता नही उसका खर्च परोपकारी
पास जो थोड़ा बहुत पैसा होता है, अपेक्षा तर्क पर उनका
कार्यों मे हुआ करता है। श्रद्धा की
आधार अधिक रहता है। हो तो वह व्यक्ति

ऐसे हाथ मे गठीली उँगलियाँड़ जाता है। चिकनी
कोई महत्त्वपूर्ण कृति अपने पीछे छोते है कि उनके पेट
उँगलियाँ वाले लोग इतने रहस्यमय ा है। दार्शनिक हाथ
की थाह पाना अत्यन्त कठिन होयी ही बने रहते है,
वाले जीवन भर एक प्रकार से र तथा प्रामाणिकता की
उनके कार्य और वचनो मे सद्भावन
मात्रा ज्यादा पाई जाती है। लम्बाई-चौड़ाई का हाथ

व्यावसायिक हाथ—साधारण और छोरो पर पतली
जिसकी उँगलियाँ जड़ मे मोटी हाथ कहा जाता है।
होती है—व्यावसायिक या कलाकार लोग उतावले, चंचल

इस प्रकार के हाथ वाले और बहकावे मे जल्दी
स्वभाव, बातून, शेखीखोर, भावुक घटना से बहुत अधिक
आ जाने वाले होते है। जरा सी ी के कारण किसी से
प्रभावित हो जाते है। थोड़े से झगड़े बहुत अधिक त्याग
लड़ मरना या थोड़ी सी मित्रता विशेषता होती है।
करने को उद्यत हो जाना इनकी ऐसे लोग चित्रकार,
कलाकार का अर्थ यह नही है कि इनकी इच्छा तो ऐसे
गवैये या मूर्तिकार आदि होते है, परन्तु अपनी मानसिक
कार्यों की ओर अधिक होती है प्राप्त नही कर पाते,
निर्बलता के कारण उतनी सफलता अभिनय, चित्र आदि
अतएव दूसरो के कलापूर्ण कार्य है। काम शुरू करना
देखकर इन्हे संतोष करना पड़ता के पल्ले बँधा होता है।
और अधूरा छोड़ना यह दुर्गुण इनके लिए तैयार हो जाने
बिना सोचे-समझे झट किसी काम उसे कठिनाई पड़ने पर
का फल यही हो सकता है कि
अपने कार्य अधूरे छोड़ने पड़े।

इस प्रकार के हाथ वाले की उँगलियाँ अगर सख्त हो तो कलापूर्ण कार्यों मे उसे सफलता मिलती है, व्यापार में धन कमाता है और चुने हुए आदमियो में गिना जाता है। किन्तु यदि उँगलियाँ पतली, ऐंठी हुई सी हो तो ईर्ष्या, द्वेष, धूर्तता व झूठ, छल, कपट आदि विकारो का होना प्रकट होता है। यदि यह हाथ बहुत अधिक नरम हो तो लापरवाही का प्रतीक है। कर्ज लेकर न देना, विषय-वासना की ओर आकर्षित रहना, मनोरंजन मे अधिक रुचि रखना आदि हल्के दर्जे की बातें भी उनके स्वभाव में शामिल देखी जाती हैं।

निकृष्ट हाथ—जरूरत से ज्यादा छोटा, मोटा, भद्दा, भारी और बेडौल बनावट का यह हाथ होता है। अँगूठे की लम्बाई तो इस छोटेपन के अनुपात से भी कम होती है। हाथ खुरदरा होता है और रेखाएँ बहुत थोड़ी पाई जाती हैं। इस प्रकार के हाथ वाले मन्द बुद्धि होते है, दिमाग कोई ऊँची बात नही सोच सकता और न उनमे ऐसे गुण होते है, जिनके द्वारा मित्रो की संख्या बढ़ा सके या कोई व्यापारिक सफलता प्राप्त कर सके। इसलिए ऐसे आदमी मेहनत-मजूरी से अपना गुजारा करते है। उजड्डता, असभ्यता और बेहूदगी उनमे अधिक रहती है। अपना स्वार्थ-साधन करने के लिए बुरे से बुरे काम करने को वे तैयार हो जाते है। निकृष्ट हाथ वाला कोई व्यक्ति आज तक महापुरुष बनकर नही निकला। वे तो आहार, निद्रा, कलह और मैथुन मे मग्न रहते है और पाशविक इच्छा, आकांक्षाओ के साथ इस दुनिया से कूच कर जाते है।

विषम हाथ—सुन्दर, लम्बा-तंग, मुलायम, चिकना, कोमल यह विषम हाथ के लक्षण है। उँगलियाँ अधिक पतली व नोकदार, जड़ मे कुछ हल्की और ऊपर कुछ भारी होती है। इस हाथ को आदर्शवादी भी कह सकते है।

ऐसे आदमी बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते है, बड़ी-बड़ी ऊँची आशा और कल्पनाएँ करते है, विचारो की दुनिया मे उड़ते-गिरते और डूबते-उतराते रहते हैं। व्यावहारिक ज्ञान दुनियादारी की जानकारी और क्रिया-कुशलता न होने के कारण उनकी इच्छाएँ शेखचिल्ली की खामखयाली बनी रहती हैं। ऐसे आदमी देवी-देवताओ को वश मे करने, सन्त-महन्तो की कृपा प्राप्त करने, जन्त्र-मन्त्रो द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त करके, चुटकियो मे बड़े-बड़े काम कर लेने के मनसूबे बाँधा करते है। ज्योतिष, जन्मपत्री, देवकृपा स्वर्ग आदि के कल्पना जगत में विचरण करते हुए उन्हे बड़ा मजा आता है। तर्क का अभाव और अन्धविश्वास की अधिकता रहती है। थोड़ी-सी आशंका, चिन्ता या शोकजनक स्थिति आने पर वे बहुत व्याकुल और भयभीत होते देखे जाते है।

योजनाएँ आकाश मे और योग्यता पाताल मे होने के कारण यह विषम हाथ कहा जाता है। ऐसी उड़ाने उड़ना जिनको पूरा न किया जा सके कोरा आदर्शवाद है,

इसीलिए इस प्रकार का हाथ आदर्शवादी हाथ भी कहलाता है।

मिश्रित हाथ—पीछे जिन छः प्रकार के हाथों का वर्णन किया गया है, उनमे से किसी का भी पूर्ण रूप से लक्षण न मिलता हो, वरन् थोड़े-थोड़े लक्षण कई हाथो के पाये जायें, तो उसे मिश्रित हाथ समझना चाहिए। जिस-जिस प्रकार के जितने-जितने लक्षण मिलते हो, उन-उन हाथो के उतने-उतने फलो को मिलाकर ही एक मिश्रित परिणाम पर पहुँचना चाहिए। मिश्रित हाथो की संख्या अधिक देखी जाती है, विशुद्ध रूप से इस प्रकार के हाथ कम मात्रा मे देखे जाते है। मिश्रण का ठीक-ठीक अनुसधान करके उन सबका यथोचित भाग लेते हुए कोई फल कहना सूक्ष्मदर्शी आत्मविद् लोगो का काम है। सामुद्रिक विद्या को ठीक-ठीक रूप से समझने के लिये ऐसी ही सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है।

हथेली

नियमित रूप से परिश्रम के साथ काम करने वालो की हथेलियाँ बड़ी होती है। उद्योगी, कर्तव्य-परायण, पराक्रमी और उत्साही पुरुषो की हथेलियाँ बड़ी-बड़ी होती है। छोटे हाथ वाले उतने पराक्रमी, दृढ निश्चयी और लगन के साथ काम करने वाले नही होते। बाते बहुत करते है। बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाते है परन्तु छोटा हाथ उन्हे कहने लायक काम करने नही देता। यह भी देखा गया है कि बड़ी हथेली वाले छोटे अक्षर लिखते है और मोटी हथेली वालो से बड़े-बड़े अक्षर लिखे जाते हैं।

जिनकी हथेली मोटी, मुलायम और भारी होती है ऐसे व्यक्ति व्यसनी, विषयी और इन्द्रिय लोलुप देखे जाते है। चौड़ी हथेली वाले मनुष्य उदार, भले मानस, दूसरो के साथ नेकी करने वाले और अनुभवी होते है। कैसी भी भली-बुरी स्थिति मे वे रहे परन्तु दिल उनका ओछा न होगा। उदारता की मात्रा हर हालत मे उनमे अधिक रहेगी।

लम्बी और नरम हथेली वाले आराम पसन्द और आलसी देखे जाते है। पर जिनकी हथेली सूखी, कड़ी और पतली हो, उनमें निरुत्साह और डरपोकपन भी मिलेगा। देखने में मोटे-तगड़े हो तो भी उनमे शारीरिक और मानसिक जीवनी शक्ति कम पाई जायगी, जरा से परिश्रम में थकान महसूस करने लगेंगे।

जिनकी हथेली में बीचोंबीच गड्ढे की सी गहराई होती है, उन्हे आमतौर से अपने दुर्भाग्य का रोना रोते देखा जाता है। पर गृहस्थ में उन्हें निराशा ही मिलती है। स्त्री, पुत्र तथा अन्य घर वालो से उन्हे सन्तोषजनक सद्व्यवहार नही प्राप्त होता। मनो-मालिन्य और गृह-कलह से सदा ही वे उद्विग्न रहते है। स्वास्थ्य भी ऐसे लोगो का गिरा ही रहता है।

मजबूत किन्तु मुलायम हथेली किसी मनुष्य के मनस्वी, साहसी और शूरवीर होने का लक्षण है। ढीली टूटी सी, बिखरी सी या जकड़ी हुई सी हथेली उन अभागो की होती है जो काम के डर से सदा जी चुराया करते है, अपनी नालायकी को दूसरो के ऊपर थोपकर झूठा आत्म-संतोष किया करते है।

बिलकुल गोल हथेली, जिसकी लम्बाई और चौड़ाई बराबर हो पराधीन, पराश्रित, दूसरो की कृपा पर जीवित रहने वालो की होती है। मनोभावनाओ को दबाना, झिझकना, डरना और झूठ बोलना ऐसे लोगो की विशेषता होती है। पैसा होते हुए भी पैसे से मिलने वाले सुख उन्हे प्राप्त नहीं होते।

जिनकी हथेली इतनी लचकदार हो कि उँगलियो के अग्र भाग से मणिबन्ध (कलाई और हथेली के जोड़ की रेखा) का स्पर्श हो जाय, वे बहुत ही भाग्यवान और धन सम्पन्न होते है। उँगलियो से कुछ बड़ी हथेली होनी चाहिये किन्तु जिनकी हथेली उँगलियो से छोटी हो उन्हे नेत्र रोग घेरे रहेगे। पेट साफ न रहने की शिकायत भी बनी रहेगी।

उँगलियाँ

उँगलियो मे फैले हुए ज्ञानतन्तु मस्तिष्क और नेत्रों के साथ शरीर के अन्य अंगो के तन्तुओ की अपेक्षा विशेष सम्बन्ध रखते है। देखा जाता है कि लोग पंजा लड़ाने के शौक मे व्यस्त होते है, उनकी दृष्टि और मानसिक शक्ति कमजोर पड़ जाती है। जब मस्तिष्क किसी विशेष कार्य मे व्यस्त होता है तो हाथो की उँगलियाँ अपने आप अनायास ही हिलने लगती है। जब काम न होते हुए भी उँगलियाँ काम कर रही हो, मनुष्य जमीन कुरेद रहा हो, उँगलियाँ हिला रहा हो तब समझना चाहिये कि इसका मस्तिष्क इस समय किसी उलझन को सुलझाने मे लगा हुआ है।

उँगलियो के बीच मे दो गाँठे होती है। ऊपर की नाखून की तरफ गाँठ विषयक लक्षणो को प्रकट करती है। दूसरी नीचे की हथेली की तरफ की गाँठ भौतिक वस्तुओ तथा स्वभाव का प्रकटीकरण करती है। जो गाँठ बड़ी हो उसी के अनुसार उसके स्वभाव को जाना जा सकता है। यदि ऊपर की गाँठ बड़ी हो तो उस मनुष्य को विचारशील, दूरदर्शी, गुणवान, कलाकार तथा आध्यात्मिक गुणों से युक्त कहा जा सकता है। यदि नीचे वाली गाँठ बड़ी हो तो धनवान, ऐश्वर्यवान, सासारिक वस्तुओ मे रुचि रखने वाला, भौतिक दृष्टिकोण वाला उसे समझा जा सकता है। यदि दोनो ही गाँठे बड़ी-बड़ी हो तो उसे केवल एक कारागार कह सकते है। जिसकी दोनो गाँठे पतली और छोटी हो तो उसे थोड़े में सन्तोष कर लेने वाला, भाग्यशाली कहा जा सकता है ऐसे लोग

प्राय: कोई बड़ी सफलता अपने जीवन मे प्राप्त नही कर पाते।

मध्यमा उँगली की लम्बाई से पूरी हथेली की लम्बाई १·५ गुनी होनी चाहिये। यदि उँगलियाँ इससे अधिक लम्बी हो तो उस मनुष्य को श्रद्धालु, ईश्वर भक्त, धर्मवीर, कल्पना शील, तथा फूंक-फूंककर पाँव धरने वाला समझना चाहिए। उनकी उँगलियाँ साधारण अनुपात से छोटी होती हैं। वे अहंकारी, नास्तिक, चिड़-चिड़े, जल्दबाज होते है। मोटी-मोटी उँगलियो वालों के स्वभाव मे उजड्डपन देखा जाता है। किन्तु यदि वे कोमल और पतली हो तो हँसमुख, खुशमिजाज तथा हास-परिहास पसन्दगी का लक्षण समझना चाहिए।

अँगूठे की तरफ से गिनने पर पहली उँगली को तर्जनी, दूसरी को मध्यमा, तीसरी को अनामिका, चौथी को कनिष्ठका कहते है। इनके लक्षणो का विवेचन करते समय अग्र बातो पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

तर्जनी—तर्जनी को मध्यमा से एक अंगुल छोटा होना चाहिये। यदि इतनी लम्बाई उसकी हो तो औसत श्रेणी का स्वभाव होगा। यह लम्बाई अधिक हो तो अभिमान, भोगविलास, प्रिय उच्चपद पाने की इच्छा, शासन सत्ता मे रुचि होने का चिन्ह कहा जा सकता है। यदि यह लम्बाई मध्यमा के बराबर हो तो उसे उपद्रवी, निष्ठुर स्वभाव, आत्म-प्रशंसक माना जायगा।

यदि तर्जनी मध्यमा की अपेक्षा एक अंगुल से अधिक छोटी हो तो ऐसे मनुष्य शान्त स्वभाव वाले होते है परन्तु कोई जिम्मेदारी का काम अपने कंधो पर लेने से या कोई साहसपूर्ण काम करने से बहुत डरते हैं। शरीरबल और बुद्धिबल की अपेक्षा मनोबल उनमे कम पाया जाता है। टेढ़ी-मेढ़ी और गाँठ-गठीली उँगलियो वाले प्राय: उद्देश्यहीन एवं अनिश्चित विचार वाले होते है, दूसरो पर अपनी धाक जमाने मे असफल रहते ही देखे जाते है।

मध्यमा—यदि हथेली की लम्बाई मध्यमा से १/८ गुनी हो तो मध्यमा को औसत श्रेणी की ठीक समझ लेनी चाहिए। यदि इस अनुपात से वह कुछ बड़ी हो तो एकान्तवास, उदासी और चित्त भ्रम का कारण बनेगी। अगर वह अधिक लम्बी हो तो निर्बल इच्छा शक्ति, अकर्मण्यता और अस्वस्थता की सूचक मानी जायगी। जिसकी मध्यमा छोटी हो, अनामिका और मध्यमा बराबर हो तो अशिष्ट व्यवहार, ओछे और गन्दे विचारो की अधिकता रहेगी। ऐसे आदमी कभी-कभी जुआरी या सट्टेबाज भी देखे जाते है।

अनामिका—तर्जनी की अपेक्षा अनामिका की लम्बाई जितनी ही अधिक होगी, उतना ही जीवन अधिक सुखमय, भोग-ऐश्वर्यो से युक्त होगा, व्यापारिक कार्यों मे उसे सफलता भी मिलेगी, मिलनसार स्वभाव का होगा। यश प्राप्त करने की इच्छा रहेगी और बहुत हद तक उसे प्राप्त भी करेगा। यदि उँगली तर्जनी के बराबर हो तो ऐसे मनुष्य का जीवन औसत श्रेणी से अधिक ऊँचा न हो सकेगा। आदर्शवादी विचार करते हुए भी कोई महत्वपूर्ण कार्य करने मे उसे सफलता न मिलेगी। अगर अनामिका बहुत छोटी हो, तर्जनी से भी छोटी हो, तो ऐसा स्वभाव होगा, जिसके कारण पग-पग पर विघ्न-बाधाएँ और हानियाँ उठानी पड़ा करेगी।

कनिष्ठका—अपने हाथ से कनिष्ठका की लम्बाई चार अंगुल होनी चाहिए। यदि लम्बाई इससे जरा अधिक हो तो नेतृत्व, व्याख्यान शक्ति, प्रतिभा, विचारशीलता और तेजस्विता की निशानी समझनी चाहिए। यह लम्बाई कुछ और ज्यादा हो तो गम्भीरता और दार्शनिकता की अधिकता रहेगी। किन्तु यह उँगली चार अंगुल से छोटी हो तो कम बोलना, चुप रहना दूसरो द्वारा ठगा जाना, देर मे समझ आना आदि कमजोरियाँ उस मनुष्य मे देखी जावेगी।

हथेली और चारो उँगलियो का जोड़ एक सीध मे हो तो भाग्यवान, धनवान और विद्वान होगा। तर्जनी का जोड़ अन्य उँगलियों की अपेक्षा कुछ नीचा-ऊँचा हो तो दूसरो पर असर डालने की ताकत कम होगी। मध्यमा का जोड़ अव्यवस्थित हो तो स्वभाव झगडालू होगा, शत्रुओ की अधिकता रहेगी। अनामिका का जोड़ ठीक जगह पर न हो तो निन्दा का पात्र बनना पड़ेगा। कनिष्ठका का जोड़ ठीक न होने से आर्थिक संकट का सामना करने के अवसर अधिक आते है।

हर एक उँगली तीन भागो में बटी हुई है। उसका नाखून वाला ऊपर का छोर-आदर्श का ज्ञान, कला कौशल और धार्मिक विचारो का प्रतीक है। बीच का भाग-ज्ञान का निर्णय, विचार शक्ति और बुद्धिमता का प्रतीक है। नीचे का जड़ वाला भाग प्रकृति का, लोक व्यवहार और कार्य-कुशलता का प्रतीक है। जो भाग अधिक पुष्ट, बड़ा, कोमल, चिकना और भरा हुआ होगा उसकी शक्ति मनुष्य मे अधिक पाई जायेगी। जो भाग कमजोर, सूखा, छोटा, कठोर होगा उसकी शक्ति निर्बल एवं विकृत होगी। जितना बेडौल, भद्दा और कुरूप जो भाग होगा, उसी अनुपात से वहाँ की शक्ति भी उलटा फल देने वाली, हानिकारक एवं नष्ट-भ्रष्ट पाई जायेगी।

हाथ को बिलकुल ढीला छोड़ देने पर मालुम होता है कि उँगलियो का किसी विशेष ओर झुकाव है। कनिष्ठका, अनामिका और मध्यमा इन तीनो का झुकाव तर्जनी की तरफ हो और तर्जनी सीधी रहे तो मनुष्य उत्साही, स्वतन्त्र विचार वाला बड़ी-बड़ी योजनाएँ बनाने वाला परिश्रमपूर्वक कार्य मे जुटने वाला और विज्ञानी होगा। अगर अन्य उँगलियो का झुकाव भी कनिष्ठका की तरह हो तो वह दुर्गुणो, दुस्वभावो और अनिष्टो का सूचक समझा जायेगा। तर्जनी यदि अँगूठे की तरफ झुकी हुई हो तो बहुत ही उत्तम अच्छे स्वभाव की द्योतक है।

तर्जनी को छोड़कर अन्य तीनो उँगलियो यदि सीधी हों तो मन्द बुद्धि की सूचक है।

उँगलियों के बीच मे फासला जितना अधिक होगा उतना ही मनुष्य दयालु, अनुभवी और सदाचारी होगा। तर्जनी और मध्यमा के बीच का अन्तर विचारो की स्वतन्त्रता का सूचक है। मध्यमा और अनामिका के बीच का अन्तर स्वभाव की दृढ़ता का चिन्ह है। अनामिका और कनिष्ठका के बीच का अन्तर भोगो, इच्छाओ की अधिकता का प्रतीक है। यदि उँगलियाँ अधिक समीप हो, फासला कम हो, कुछ चिपक भी रही हों तो उसे संशय वृति और कुमार्ग की तरफ-झुकाव का चिन्ह समझना चाहिए।

उँगलियों और हथेलियो की पीठ पर अधिक बाल होना रजोगुणी प्रकृति का चिन्ह है। सतोगुणी लोगों के यह बाल थोड़े और मुलायम होते है, तामसिक वृत्ति के लोगो के हाथ पर घने, कड़े और बहुत पतले बाल पाये जाते हैं। यदि बाल बिलकुल ही न हों, तो उस व्यक्ति मे नपुंसकता और कायरता की प्रवृत्ति होगी।

अँगूठा

हाथ मे अँगूठे का वही स्थान है, जो मुँह पर नाक का है। नाड़ी विशेषज्ञो का मत है कि मनुष्य के मस्तिष्क का अंगुल भाग की कार्य प्रणाली के अनुसार जो विशेष प्रकार के कम्पन उत्पन्न होते है, ये मस्तिष्क से चलकर हाथ के अँगूठे पर ठहरते है और उस स्थान पर अपनी हलचलो का प्रभाव डालते है। जिससे अँगूठे की बनावट मे भी अन्तर आ जाता है। इन बनावटो को देखकर स्वभाव का पता लगाया जा सकता है।

सीधा और सुदृढ अँगूठा मनुष्य के दृढ़ निश्चयी स्वछन्द प्रकृति और निरंकुश स्वभाव का चिन्ह है। कोमल झुके हुए अँगूठे वाले का चित्त चंचल और डाँवाडोल रहता है। दूसरो के बहकावे में ऐसा मनुष्य आसानी से आ जाता है।

अँगूठे मे दो जोड़ है। एक नाखून की जड़ मे, दूसरा अँगूठे की जड़ में। अँगूठा जोड़ो पर से समान झुका हुआ नही होता वरन् किसी एक जोड़ पर ही झुकाव अधिक होता है। यदि अँगूठे की जड़ वाले जोड़ पर ही झुकाव अधिक हो तो समझना चाहिये कि यह मनुष्य विचारवान्, बुद्धिमान, परिस्थिति को समझकर काम करने वाला होगा। कम खर्च, रूखे स्वभाव का और अपने मतलब मे चौकस रहेगा। यदि दूसरे जोड़ पर नाखून के पास वाली गाँठ पर से झुकाव हो तो समझना चाहिए कि अधिक खर्च करने वाला, भावुक, दूसरो के लाभ के लिए स्वयं हानि सहने वाला, सीधा और छल-छिद्र से रहित होगा। अगर थोड़ा झुकाव हो तो समझना चाहिए कि आत्मविश्वास, विपत्ति में धैर्य तथा शत्रु से बदला लेने के भाव अधिक होंगे। अगर झुकाव ज्यादा हो तो समझना चाहिए कि डरपोकपन, चापलूसी एवं घबराहट की मात्रा अधिक होगी।

अँगूठे को ऊपर से लेकर नीचे की तरफ तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। अन्तिम सिरा-पोरुआ-जहाँ मुर्दा नाखून बढ़ा करता है, इच्छाशक्ति का स्थान है। बीच का स्थान वह है, जहाँ बीच की गाँठ या मोड़ होता है, यहाँ से विचार शक्ति का पता लगाया जा सकता है। नीचे वाला अन्तिम हिस्सा जिसे अँगूठे की जड़ या पहली गाँठ कहते है प्रेम शक्ति की जगह है। इन तीनो स्थानो की कोमलता, स्वच्छता और सुदृढता को देखकर उस स्थान मे रहने वाली शक्ति के बलवान होने का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। इनमे से जो जगह फटी हुई, सुकड़ी, सूखी, दुर्बल, बेडौल और भद्दी हो तो समझना चाहिए कि वहाँ रहने वाली शक्ति भी अस्त-व्यस्त, अल्प, निर्बल और विकृत होगी।

ऊपर का पोरुआ वाला इच्छाशक्ति का स्थान, मध्यभाग से बड़ा न होना चाहिए अन्यथा झगड़ालू, बकवादी, क्रोधी, जिद्दी स्वभाव का होगा। यह विचार शक्ति का प्रथम स्थान है, यदि किसी कार्य पर विचार करने के पश्चात् उसके करने का दृढ़ निश्चय किया है तो परिणाम अच्छा होता है, परन्तु यदि बिना विचारे चाहे किसी बात पर अड़ जाने की आदत हो तो वह ठीक नहीं समझी जाती। इसलिये अँगूठे का बीच का भाग मोटा, भारी और मजबूत होना अच्छा माना जाता है, आगे का हिस्सा उससे हल्का होना चाहिए। अँगूठे की जड़ जहाँ प्रेम का स्थान है—सीधी और भरी हुई हो तो समझना चाहिए कि यह स्थायी और मजबूत प्रेम करने वाला होगा। यदि जड़ ऊबड़-खाबड़, टेढ़ी मेढ़ी, हो तो ऐसे मनुष्य 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' स्वभाव के होगे। आज गहरी दोस्ती है तो कल गहरी दुश्मनी करते हुए भी उन्हे देर न लगेगी। जड़ की मोटाई साधारण बीच के भाग की अपेक्षा ड्योढ़ी हो तो प्रेम की मात्रा उतनी ही समझनी चाहिए, जितनी कि औसत दर्जे के आदमी मे होनी चाहिए। यदि इससे न्यून या अधिक हो तो उसी अनुपात से प्रेम भावना की कमीबेशी का अनुमान किया जा सकता है।

संक्षेप में यो कहा जा सकता है कि लम्बे और समान आकार वाला अँगूठा बुद्धिमत्ता और चतुरता का चिन्ह है। छोटा-मोटा और बेडौल अँगूठा मूर्ख और क्रोधी होना प्रकट करता है। अधिक नुकीला हो तो अस्थिरता, चंचलता एवं उथलेपन का सूचक है। इसी प्रकार पोरुआ मोटा हो तो हठी और जिद्दी होना, बीच में पतला हो तो स्वार्थी, रूखा, निष्ठुर प्रकृति का होना प्रकट होता है। जिसके पोरुवे बहुत मोटे, चौड़े, भारी और फटे-फटे से हो तो वह मनुष्य बहुत ही भयंकर होता है, क्रोध में आकर वह पागल हो जाता है तब उसे अर्थ-अनर्थ कुछ नहीं सूझता। अवसर पड़ने पर वह दूसरों को कत्ल तक

कर सकता है और अपनी आत्म-हत्या के लिए भी तैयार हो सकता है।

अँगूठे की बनावट तथा ऊर्ध्व, मध्य और अधोभाग का ढाँचा इन दोनों ही बातो पर विचार करने के पश्चात् किसी परिणाम पर पहुँचना चाहिए।

नाखून

बनावट के अनुसार नाखूनो को चार भागो मे विभक्त , किया जा सकता है—(१) लम्बे (२) छोटे (३) चौड़े (४) पतले।

लम्बे नाखून वालो के फेफड़े कमजोर और सीने पतले पाये जाते है। शारीरिक दृष्टि से वे प्राय. निर्बल होते है। ऐसे नाखूनो मे यदि धारियाँ पड़ी हुई हो तो आँतो की खराबी भी होगी, इस प्रकार के लोगों को निमोनिया, मोतीझरा और मयादी बुखार की संभावना अधिक रहती है।

लम्बे नाखून जिनमे नीलेपन की झलक होती है। रक्त की कमी और हृदय की अशुद्धता प्रकट करते है। नाखूनो की जड़ मे अर्धचन्द्रकार सफेद गोला सा होना स्वस्थता की स्थिरता के लिए आवश्यक है, यदि वह न हो तो नाड़ी संस्थान और मानसिक रोगों की संभावना बनी रहती है। जिन लोगो का ऊपर का धड़ रोगी रहता है। उनके नाखून अपेक्षाकृत लम्बे होते है।

बहुत छोटे नाखून वालो को कमर से नीचे के रोग अधिक देखे जाते है। जंघाओ मे, गुप्तेन्द्रियो मे, पैरो मे अक्सर उन्हे अस्वस्थता के लक्षण दृष्टिगोचर होते है। सीप या कौड़ी की तरह छोटे, आकार के सिरे पर झुके हुए हो चपटे या माँस मे गहरे गड्ढे हो तो पक्षाघात आदि आकस्मिक रोगो की आशका अधिक रहती है। नाखूनो के बीच-बीच मे छोटे-छोटे सफेद दागो का पड़ना स्नायविक दुर्बलता का पूर्व लक्षण कहा जा सकता है।

साधारण से अधिक लम्बे और अधिक छोटे नाखून शारीरिक दृष्टि से अस्वस्थता के चिन्ह है। परन्तु इनके मानसिक फल अलग-अलग है। लम्बे नाखूनो वाले व्यक्ति शिष्ट, विनम्र, कोमल स्वभाव के और समझदार होते है परन्तु उनमे कभी-कभी कोई खास सनक या वहम भी देखा जाता है। लम्बे नाखून यदि नीचे की ओर मुड़ गये हो तो कठोरता एव बेरहमी उनमे पाई जायेगी। साधारणत. नाखूनो का रंग हलका गुलाबी होना चाहिए परन्तु वह रंग पीला हो तो चिड़चिड़ेपन का लक्षण होगा, नीली झलक होना बालको जैसे भोलेपन और श्रद्धा का चिन्ह है।

छोटे नाखूनो वाले लोग बहुत तार्किक और सशयी स्वभाव के होते है। दूसरो की हँसी उड़ाने, चिढ़ाने या निन्दा करने मे उन्हे बड़ा मजा आता है। ऐसे आदमी चटोरे, मतलबी; ढोगी और बढ़-बढ़कर बात करने वाले किन्तु काम के वक्त मुँह छिपाने वाले पाये जाते है।

नाखूनों में दाग

नाखूनो पर सफेद दाग पड़ना स्नायविक दुर्बलता के साथ-साथ चिन्ता और मानसिक परिश्रम का भी लक्षण है। जो लोग मानसिक कार्य अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक करते है, उनके नाखूनो पर भी सफेद तिल पड़ने लगते है। एक ज्योतिषी ने इनका फल इस प्रकार लिखा है। अँगूठे मे सफेद दाग हो तो स्नेह-प्रेम, तर्जनी में हो तो देशाटन, अनामिका मे हो तो सम्मान प्राप्ति और कनिष्ठका मे हो तो आशाजनक भविष्य की प्राप्ति होती है। काला दाग किसी भी नाखून मे होना अच्छा नहीं समझा जा सकता। चोट लगने से जो नीले दाग पड़ जाते है, उससे शुभ-अशुभ का कोई सम्बन्ध नही है।

शंख-चक्र

हाथ की उँगलियो के अन्तिम सिरे मे नाखूनो से नीचे के भाग मे शख और चक्र की आकृतियाँ देखी जाती है। यदि दोनो हाथो मे बीच की उँगली मे शख और अन्य उँगली-अँगूठा मे चक्र हो तो बहुत ही शुभ है, ऐसे लक्षणो वाले राज ऐश्वर्य प्राप्त करते है। इसकी अपेक्षा शख जितने अधिक हो और चक्र जितने कम हो उसी अनुपात से भाग्य निर्बल समझना चाहिए।

उँगलियो के अलावा हथेली के अन्य भागो मे तथा उँगलियां के अन्य पोरुओ मे भी शंख-चक्र पाये जाते है। इनकी संख्या को गिनकर फल का अनुमान किया जा सकता है। एक हाथ मे शंखो की सख्या के फल इस प्रकार है-एक हो तो अध्ययनशील, दो हो तो दरिद्र, तीन स्त्री से दुखी, चार-राजा के समान सुखी, पाँच-विदेश से लाभ, छः-विद्वान्, सात-दरिद्र, आठ-सुखी जीवन, नौ-नपुंसक, दस-राजा या योगी।

चक्रो का फल इस प्रकार है। एक-चतुर, दो-सुन्दर, तीन-विलासी, चार-दरिद्री, पाँच-ज्ञानी, छः—चतुर, सात-वन्य प्रदेश मे विहार करने वाला, आठ-दरिद्र, नौ-शासक, दस-सेवक।

तिल

काले और लाल दो प्रकार के तिल मनुष्यो के शरीर मे देखे जाते है। लाल तिलो का होना बहुत ही शुभ और भाग्यवान होने का चिन्ह समझा जाता है। परन्तु काले मे यह बात नही है। काले तिल स्थान भेद से शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के हो सकते है।

यह भी देखा जाता है कि तिल जोड़ा से होता है। इनकी सख्या ऐसी होती है जिसे दो से विभाजित किया जा सके। एक स्थान पर तिल होगा तो उसके जोड़े का दूसरा तिल भी किसी अंग पर जरूर दीख पड़ेगा। बहुत करके तो जोड़े का स्थान नियत भी होता है। जैसे एक तिल माथे पर दाहिनी ओर हो, तो उसका जोड़ा पेट या

बाहु पर होगा। यह दाम्पत्ति जीवन के आनन्दमय होने का लक्षण है। माथे पर बायी ओर हो तो भी पेट या भुजा पर तिल होगा, यह दाम्पत्ति-जीवन मे मनोमालिन्य का कारण होता है। जिनकी बायी भो पर तिल होगा उनकी छाती पर भी बायी ओर जोड़ा हो जायेगा, ऐसे आदमियो को यात्राये बहुत करनी पड़ती है। दोनो भो के बीच मे तिल हो तो बीच पेट मे उसका जोड़ा मिलेगा, ऐसे आदमी बकवादी और घमण्डी देखे जाते है। नाक के तिल का जोड़ा नाभि के निकट है, यह प्रेम, खुशमिजाजी तथा यार-बास होने का द्योतक है।

कनपटी के तिल का जबाव कुछ पर मिलता है। यह दाहिनी ओर होना शुभ और बायीं ओर होना अशुभ माना जाता है। कान की जड़ के आस-पास के तिल का जोड़ा पेट पर होता है, यह जिगर और आँतो की खराबी प्रकट करता है। नाक की नोक का जोड़ा गुदा पर होगा, यह अल्पायु होने की निशानी है। गाल का जोड़ा कूल्हे पर मिलता है। यह दाये और बाये दोनो तरफ शुभ है। ऊपर के होंट पर के तिल का जोड़ा जघाओ मे देखा जाता है, यह कंजूसी का साइनबोर्ड समझा जा सकता है। नीचे के होंट पर जो तिल होता है, उसका जबाव घुटने पर होगा, ऐसे आदमियो को विवाह-शादी के मामले मे बहुत दिलचस्पी होती है।

तर्जनी ऊँगली का तिल धनवान होने, अधिक शत्रु होने, झगड़ा-फिसाद रहने का कारण होता है। मध्यमा का तिल सुख-शान्ति का देने वाला है, जिनकी अनामिका मे होगा वे यशस्वी, पराक्रमी धनवान और ज्ञानवान मिलेगे। कनिष्ठका का तिल इस बात का प्रमाण है कि धन सम्पत्ति होते हुए भी वह व्यक्ति सुखी न रह सकेगा। अँगूठे का तिल कार्य-कुशलता और लोक व्यवहार मे प्रवीणता प्रकट करता है।

दाहिनी आँख मे तिल होना बुद्धि की प्रखरता का चिन्ह है, यह जितनी ही अधिक सख्या मे हो उतने ही अच्छे है। बायी आँख मे तिल होना यह बताता है कि आदमी को अपना जीवन बड़े संघर्ष और कठिनाइयो के साथ व्यतीत करना पड़ेगा। वस्तुओ की कमी इसे न रहेगी पर आराम की जिन्दगी भी न काट सकेगा।

गरदन का तिल श्रद्धालु, ईश्वर भक्त और विनयी व्यक्तियों के होता है। ठुड्डी का तिल कमजोरी-कायरता और जनानेपन का निशान है। पैरो के तिल मनुष्य को एक जगह बैठने नही देते, उसे यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ भागना पड़ता।

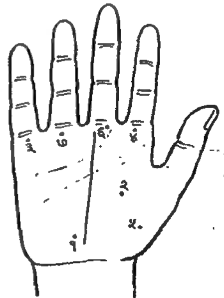
स्त्रियो की नाक पर तिल होना उनके सौभाग्य का चिन्ह है। ऐसी स्त्रियाँ पति की ओर से असन्तुष्ट नहीं रहती, जिनके दाये तरफ तिल ज्यादा हो तो सन्तानो मे पुत्र अधिक होते है, दाहिनी ओर तिल होने से कन्याओ की सख्या अधिक रहती है। गाल पर तिल होने से स्त्री की भावुकता और प्रणय सुख की अभिलाषा विशेष मात्रा मे पाई जाती है।

भुजाओ पर तिल वाले बहादुर, पेट पर तिल वाले चटोरे व छाती पर तिल वाले पराक्रमी, पीठ पर तिल वाले परिश्रमी, उन्नतिशील और चूतड़ पर तिल वाले उत्साहहीन, पराया आसरा तकने वाले होते है। गुप्त स्थानो के तिल कामुकता की मात्रा अधिक होना प्रकट करते है। बारह से कम संख्या मे तिल होना शुभ है, इससे अधिक हो तो शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता के लक्षण समझने चाहिए। आमतौर से दाहिनी ओर के तिल बायी ओर की अपेक्षा शुभ और लाभदायक होते है।

ग्रह—विचार

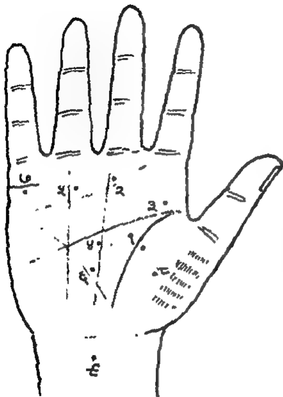
हाथ मे सात ग्रहो के स्थान नियत है, जिनके नाम पर सप्ताह के सात दिनो का नामकरण किया गया है। इनमे से छः ग्रहो का स्थान तो एक एक है परन्तु मंगल के दो स्थान है। इन नियत स्थानो मे से जो स्थान ऊँचा उठा हुआ हो, कुछ बढ़ा हुआ और कड़ाई-सी लिये हुए हो समझना चाहिए कि वह उसी ग्रह की शक्ति प्रधानता है। इस उठे हुए स्थान का फल उस ग्रह के स्वभाव के अनुकूल ही होता है।

हाथ मे ग्रहो का स्थान



१—चन्द्रमा
२—मंगल
३—बुध
४—वृहस्पति
५—शुक्र
६—शनि
७—सूर्य

हाथ की रेखाओं का परिचय



१—जीवन रेखा
२—मस्तक रेखा
३—हृदय रेखा
४—भाग्य रेखा
५—सूर्य रेखा
६—आरोग्य रेखा
७—विवाह रेखा
८—सन्तान रेखा
९—मणिबंध रेखा

पिछली पंक्तियों पर ग्रहों के स्थान बताये गये हैं। नीचे उसका कुछ विवरण दिया जाता है।

सूर्य—अनामिका उँगली की जड़ से नीचे की तरफ का स्थान होता है। इसके ऊँचा होने से निम्न बातें मानी जा सकती हैं—उन्नति की तीव्र इच्छा, कला-प्रेम, चित्रकारी, कविता, साहित्य, सौन्दर्य प्रेम, यश, तीर्थ यात्रा, धर्म रुचि, विद्या, प्रतिष्ठा।

सुन्दरता, शक्ति सम्पत्ति, पितृ सुख, आत्मिक स्थिति का परिचय भी सूर्य स्थान को देखकर किया जाता है।

चन्द्र—मणिबन्ध के पास चन्द्र का स्थान है। इसे देखकर मातृ सुख, मानसिक विचारधारा, स्त्री सुख, धन

धान्य, प्रकृति प्रेम, आदर्श, विचार मग्नता, राजा की प्रसन्नता का विचार किया जाता है।

मंगल—मंगल के दो स्थान चित्र में दिये हुये हैं। इन स्थानों को देखकर बल, पराक्रम, पेट के रोग, रक्त विकार, स्वास्थ्य, मातृ सुख, भूमि, पुत्र, कुटुम्ब की स्थिति को जाना जाता है।

बुध—कनिष्ठका उँगली की जड़ में बुध का स्थान है, इसके द्वारा विद्या, बुद्धि, व्यापार, शिल्प, सौभाग्य, काव्य, देशाटन, विचारों की अस्थिरता व उथलापन, वाक् शक्ति विवेक तथा मित्रों का विचार किया जाता है।

बृहस्पति—तर्जनी की जड़ में बृहस्पति का स्थान है। इसे देखकर मान, प्रतिष्ठा, धर्म, स्वाभिमान, उत्साह, न्याय प्रियता, भोग विलास की इच्छा, बड़ा आदमी बनने की लालसा, बुद्धि, विद्या तथा विवेकशीलता का परिचय प्राप्त होता है।

शुक्र—शुक्र का स्थान अँगूठे की जड़ से लेकर मणिबन्ध तक है। इससे स्त्री सुख, विवाह, स्नेह, सौन्दर्य, प्रतिभा, प्रताप, मनोरंजन, सवारी, आभूषण, काम वासना का आभास मिलता है।

शनि—मध्यमा उँगली की जड़ में शनि का स्थान है। यह क्लेश, दुःख पीड़ा, व्यसन, जुआ, असफलता, मौन, एकान्तवास, उदासी-निराशा तथा दुर्भावों को प्रकट करती है। वैराग्य, संन्यास किंकर्तव्यविमूढ़ता का भी इसी स्थान को देखकर पता लगाया जा सकता है।

यदि नियत स्थान अच्छी तरह उभरे हुए हों तो ग्रह का नियत फल भले रूप में समझना चाहिए। यदि कोई उठाव न हो तो फल का प्रश्न ही नहीं उठता। गड्ढा, बहुत ऊँचा उठाव, टेढ़ा-मेढ़ापन, गाँठ या इसी प्रकार की कोई बेडौल स्थिति नियत स्थान पर हो तो जो बातें ग्रह से जानी जाती हैं, वे सभी बातें विकृत और बुरा परिणाम उपस्थित करने वाली समझनी चाहिए।

हाथ की रेखाएँ

हाथ की प्रमुख रेखायें पिछले पृष्ठों में देखी जा सकती हैं। नम्बरों के परिचय इस प्रकार हैं।

(१) जीवन रेखा—इसे पितृ रेखा, *आयु रेखा*, गोत्र रेखा, कुल रेखा, लाइफ लाइन भी कहते हैं। तर्जनी और अँगूठे के बीच से चलकर शुक्र के स्थान को घेरती है। इससे आयु का विचार किया जाता है।

(२) मस्तक रेखा—इसे धन रेखा, मातृ रेखा हैडलाइन भी कहते हैं। हथेली के मध्य भाग में होती है। बुद्धिबल का इससे पता चलता है।

(३) हृदय रेखा—इसे *अन्तःकरण रेखा और हार्ट* लाइन भी कहते हैं। मस्तक रेखा के ऊपर समानान्तर में होती है। इससे मनुष्य का दृष्टिकोण, उद्देश्य, लक्ष्य और विश्वास का परिचय मिलता है।

(४) भाग्य रेखा—इसे ऊर्ध्व रेखा या फेट लाइन भी कहते हैं। हाथ के मध्य भाग में होकर शनि के स्थान को स्पर्श करती है। इससे प्रारब्ध का ज्ञान होता है।

(५) सूर्य रेखा—इसे विद्या की रेखा या लाइन ऑफ सन भी कहते हैं। हथेली की जड़ मे से चलकर अनामिका उँगली की तरफ जाती है। इससे विद्या, यश और प्रतिभा की जानकारी होती है।

(६) स्वास्थ्य रेखा—इसे आरोग्य रेखा या हैल्थ लाइन भी कहते है। बुध के स्थान से हथेली की जड़ की तरफ तिरछी जाती है। इससे स्वास्थ्य का विचार किया जाता है।

(७) विवाह रेखा—इसे अँग्रेजी मे लाइन ऑफ मेरीएज कहते हैं। यह बुद्ध की उँगली से नीचे हृदय रेखा की बराबर होती है। इससे स्त्री सुख के सम्बन्ध मे ज्ञान होता है।

(८) सन्तान रेखा—अँगूठे की जड़ और कलाई के बीच मे हथेली पर आरम्भिक भाग मे छोटी-छोटी रेखाये हैं। उसको सन्तान रेखा कहते हैं।

(९) मणिक रेखा—इसे ब्रेसलेटिन भी कहते है। यह तीन रेखाये तिहाई मे होती हैं।

इससे अतिरिक्त शुक्र मुद्रिका, चन्द्र रेखा, मंगल रेखा, बान्धव रेखा, प्रवास रेखा आदि अनेक छोटी-छोटी रेखाये पाई जाती हैं। वे इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ऐसी रेखाओ का वर्णन इस छोटी पुस्तक में हो भी नही सकता; इसलिये उनका समावेश यहाँ नहीं किया जा रहा है।

रेखाएँ सीधी और स्पष्ट होनी शुभ है। जजीरदार, लहरदार या बहुत गहरी हो तो उन्हे दोषपूर्ण समझना चाहिये। जिन मनुष्यो के हाथ मे रेखाये बहुत ही थोड़ी हो तो वह दरिद्री और दुखी होगा। छोटी-छोटी रेखायें एक दूसरे को काटती हुई जाली सी बुनें तो शरीर कमजोरी खासकर नाड़ियो की निर्बलता समझनी चाहिये। ऐसे लोग थोड़े परिश्रम से थक जाते है। पल्लवदार रेखाये, क्लेशदायक, टूटी-फूटी रेखाये, अल्प जीवन, कही मोटी, कही पतली रेखाये होना क्लेशकारक है। टेढ़ी रेखाये दरिद्रता की निशानी है। चिन्ता और शोक मे डूबे रहने वालो की रेखाये पीली पड़ जाती हैं। उग्र, कड़ुआ और क्रोधी स्वभाव हो तो रेखायें लाल पड़ जावेगी। पीलापन खून की कमी का और कालिमा कठोर स्वभाव का चिन्ह है। दुहरी या शाखायुक्त रेखाये अधिक फलदायक होती हैं। हृदय रेखा से ऊपर जाने वाली रेखाये शुभ और नीचे जाने वाली अशुभ समझी जाती है।

रेखाओं के फल

जीवन रेखा—साधारणत: यह रेखा वृहस्पति के स्थान से कुछ नीचे ही आरम्भ हो जाती है परन्तु यदि ठीक वृहस्पति के स्थान से आरम्भ हो तो दीर्घजीवन, उच्च अभिलाषा और आशावाद का चिन्ह है। शुक्र के स्थान को घेरती हुई मणिबन्ध की रेखा तक चली गई हो तो १०० वर्ष के करीब आयु कही जा सकती है। बीच-बीच में रुक गई हो या बिगड़ गई हो बार-बार बीमार पड़ने की निशानी है। जितनी बार टूटी हो उतनी ही बार भयानक रोग या जीवन संकट का मुकाबला करना पड़ेगा। जीवन रेखा का लम्बा, साफ और स्पष्ट होना निरोगता और बड़ी आयु का सूचक है, यह छोटी होती है तो मनुष्य अल्प आयु ही भोगने पाता है।

जब दो जीवन रेखाये बराबर चलती है तो भीतर वाली को मंगल रेखा कहते है। जो आपत्तियो से बचाव, धन प्राप्ति, बहादुरी, सच्चरित्रता की निशानी है। जीवन रेखा अँगूठे की जड़ से आरम्भ हो तो सन्तान की ओर से दुख सूचक है।

इस रेखा को तीन हिस्सो मे बाँटकर बालकपन, युवावस्था और वृद्धावस्था के भीतर शरीर सुख के बारे मे जाना जा सकता है। जो तिहाई मजबूत स्पष्ट और साफ हो, आयु की वह तिहाई अच्छी बीतती है। जो टुकड़ा टूटा-फूटा या पतला हो तो समझना चाहिए कि जीवन का वही भाग शारीरिक दृष्टि से कष्ट के साथ बीतेगा। जड़ में बालकपन, बीच मे युवावस्था और अन्त भाग से वृद्धावस्था का विचार करना चाहिए। केवल जीवन रेखा ही नहीं अन्य रेखाओ को भी इसी प्रकार तीन भागो मे बाँटकर उस रेखा का फल किस आयु मे क्या होगा, यह जाना जा सकता है।

गुरु, शनि या मंगल के स्थान ऊँचे उठ रहे हो और उन स्थानो को जीवन-रेखा आच्छादित कर रही हो तो यह अस्वस्थता का चिन्ह है। चन्द्र स्थान की ओर जाती हो तो व्यसन और बेचैनी की अधिकता रहती है। सूर्य स्थान की ओर जा रही हो तो धनी, इज्जत वाला और राजदरबार मे प्रतिष्ठित होता है। जिनकी यह रेखा बुध स्थान की ओर झुकती है, आमतौर से व्यापार मे अपना जीवन लगाते हैं। कोई शाखा फूटकर यदि शुक्र स्थान की ओर चले तो ऐसे मनुष्यो को आज यहाँ कल वहाँ रहना पड़ता है।

जिसके हाथ में जीवन रेखा बिल्कुल न हो उसकी मृत्यु अस्वाभाविक तरीके से होती है। यह रेखा यदि किसी अन्य रेखा से मिली हो तो उस रेखा का फल जीवन मे विशेष रूप से देखा जाता है। यह नियम प्राय. सभी रेखाओ के बारे मे जो-जो रेखाये आपस मे मिली हों, उनका सम्मिलित फल अवश्य दृष्टिगोचर होता है। किस उम्र में वह फल मिलेगा इसका निर्णय तीन भागो मे बाँटकर बालकपन, यौवन और वृद्धावस्था का निर्णय किया जा सकता है।

रेखा के बीच मे गोल चिन्ह को द्वीप कहते है। यह जीवन रेखा में या अन्य रेखाओं मे विघ्न उपस्थित

करते है। जो रेखा जिस रेखा को काट देती है, उसका फल अशुभ होता है। जैसे धन रेखा विवाह रेखा को काटती हो तो दाम्पत्य जीवन मे पैसे का अभाव सदा ही खटकता रहेगा। परन्तु विवाह रेखा धन रेखा मे मिले तो पत्नी के आगमन के साथ-साथ धन का आगमन भी होता है। कोई रेखा जड़ मे ही अधिक पुष्ट हो तो समझना चाहिए कि यह गुण या वस्तु इसे पैतृक रूप से बिना परिश्रम के ही अधिक मात्रा मे मिल जायेगी। जीवन रेखा यदि इसी प्रकार रुके तो 'हार्टफेल' आदि आकस्मिक कारणो से मृत्यु होना प्रकट होता है।

मस्तक रेखा—मस्तक रेखा चन्द्र व मंगल के उठे हुए स्थानो को आच्छादित करती हो तो तीव्र बुद्धि, विवेक, स्पष्ट विचार प्रकट होते है। केवल चन्द्र स्थान को छूती हुई नीचे की ओर झुके तो स्मरण शक्ति की कमी बताती है। बीच-बीच मे टूटती-फूटती पूरी हथेली को पार करे तो चालाकी, कूटनीति, धूर्तता और ठगी की अधिकता होती है। इसका अंतिम सिरा यदि कलाई की ओर झुका हो तो व्यवहार कुशलता, हाजिर जवाबी, मौकापरस्ती और बढ़ी हुई मानसिक शक्ति का ज्ञान कराती है।

जीवन रेखा और मस्तक रेखा मे जितना ही फासला होगा, मनुष्य उतना ही साहसी, उग्रकर्म करने वाला, वैरागी, निर्भीक, जिन्दगी की या हानि-लाभ की परवाह न करने वाला होगा। दुहरी मस्तक रेखा हो तो असाधारण दूनी बुद्धिमत्ता का लक्षण है। यह शाखाये निकल कर सूर्य के स्थान की ओर जायें, तो प्रभावशाली विचारो का होना और बुध के स्थान की ओर जायें तो शास्त्रज्ञ होना प्रकट होता है।

लहरदार मस्तक रेखा वाले आधे पागल होते है। जंजीरदार रेखा वाले घर मे सदा कलह मचाये रहते है। बहुत सी छोटी-छोटी लाइनो से यह कट रही हो तो कई प्रकार के मानसिक रोग देखने मे आते है। यदि बहुत सी छोटी-छोटी शाखाये निकलकर हृदय रेखा की ओर जा रही हो तो ऐसे व्यक्ति धुन के पक्के और स्वभाव के मीठे मिलेगे।

हृदय रेखा—हृदय रेखा से प्रेम, प्रसन्नता और आदर्श का ज्ञान होता है। यह रेखा बीच मे फटी-टूटी हो तो--मतलब--की मुहब्बत, जरा-सी बात मे रंज और जरा-सी बात मे खुशी-मौका पड़ते ही धर्म को भूल जाना। यह तीन दुर्गुण देखे जायेगे। उँगलियो से इस रेखा मे जितना ही फासला होगा उतनी ही सचाई, स्थिरता और वफादारी पाई जायगी। गुरु के स्थान के निकट यदि इसमे से दो शाखाये फूट तो यह साधु, दयालु, परोपकारी और लोक-सेवक मनुष्य होगा। वृद्ध पुरुषो और देवताओ की भक्ति करने वालो के हाथ मे हृदय रेखा गुरु स्थान की सीध मे पहुँचकर कुछ अधिक मोटी हो जाती है। तर्जनी और मध्यमा के बीच भाग मे यह रेखा मिलती हो तो व्यभिचार की ओर झुकाव अधिक रहता है। यदि तर्जनी के नीचे यह रेखा समाप्त होती हो तो अपने मित्र से बार-बार निराशा होती है, प्रेमी और आत्मीय कहलाने वाले लोग समय पर अक्सर उसे धोखा दे जाते है।

भाग्य रेखा—पूर्व संचित शुभ कर्मों के कारण क्या-क्या सुख इस जीवन मे मिलने वाले है, इसका पता भाग्य रेखा के द्वारा बताया जा सकता है। यदि यह रेखा बीच में टूटी हुई फल देने वाली है। ऐसे व्यक्तियो को धन, ज्ञान, स्वास्थ्य, प्रतिभा और प्रेम की कमी नहीं रहती। जिनके हाथ मे यह रेखा बिलकुल न हो वे प्रायः निर्धन और दु:खी, दरिद्री रहते है। मणिबन्ध से चलकर शनि के स्थान तक पहुँचने वाली भाग्य रेखा बुद्धिमत्ता, समृद्धि और सुख-सौभाग्य का होना प्रकट करती है, इसका अन्तिम सिरा ऊपर की ओर झुका हुआ हो तो ऐसा व्यक्ति सदा सुखी रहेगा। किसी अवसर पर इसे मन मार कर बैठना न पड़ेगा। समय पड़ने पर आवश्यक वस्तुएँ अनायास ही उसके पास आ जावेगी। जिसका अन्तिम सिरा नीचे की ओर मुड़ गया हो, वह धनवान होते हुए भी आपत्तियो मे फँसा रहता है। आये दिन कोई न कोई झंझट उसके सामने खड़े रहते है।

अनामिका की जड़ की ओर जा रही हो तो बहुत से लोगो के सहयोग से सुखी हो सकता है। अकेला कुछ बड़ा काम करने मे समर्थ नही हो सकता। कनिष्ठका के मूल की तरफ जा रही हो तो परदेश मे पुजता है और धन लाभ करता है। भाग्य रेखा शुक्र के स्थान से निकलती हो तो दूसरो के ऊपर उसका भाग्य आश्रित रहता है। पैतृक या अनायास धन की प्राप्ति होती है। किन्तु दूसरो के प्रभाव मे उसे रहना पड़ता है।

यदि भाग्य रेखा शनि के स्थान पर पहुँचकर वृहस्पति के स्थान की ओर मुड़ जाये तो वृद्धावस्था में अधिक उन्नति होती है। यदि मूल मे मस्तक रेखा और भाग्य रेखा जुड़ी हुई हो तो समझना चाहिए कि बौद्धिक कार्यों मे सुख मिलेगा। यदि वह नीचे जाकर दो भागो मे बँट गई हो तो देशाटन मे विशेष रुचि प्रकट करती है।

सूर्यरेखा—यह रेखा मूर्ख, अशिक्षित, भाग्यहीन, निर्धन, बदनाम तथा तुच्छ पुरुषो के हाथो मे नही होती है। जिसके हाथ मे होती है, वह निश्चय ही बड़ा भाग्यशाली और प्रतिभाशाली होता है। भाग्य रेखा यदि हाथ मे न हो तो सूर्य रेखा धन रेखा का काम करती है।

यदि सूर्य रेखा की जड़ जीवन रेखा से मिली हुई हो तो वह मनुष्य कोई बड़ा कलाकार होता है। चन्द्र स्थान से निकले तो दूसरो की सहायता से उन्नति करने वाला और यशस्वी होता है। मगल के स्थान से निकले तो अनेक विघ्न-बाधा और संघर्षो से लड़ने के बाद उसे सफलता प्राप्त होती है। हृदय रेखा से निकले तो अनेक गुणो की विशेषता और वृद्धावस्था मे यशस्वी होने का चिन्ह है। दो सूर्य रेखाये हो तो अचानक यश और धन

मे वृद्धि होती है। यदि मस्तक रेखा से निकली हो तो युवावस्था मे दिमागी शक्ति द्वारा कोई बड़ी सफलता मिलती है। मणिबन्ध के पास से निकले तो वह आदमी ऐसा भाग्यशाली होता है कि मिट्टी पकड़े तो सोना बन जाय। यदि जीवन रेखा के भीतर से निकले तो प्रेम के द्वारा धन, यश या पद की प्राप्ति होती है। भाग्य रेखा से निकलती हो तो अपने प्रयत्न से ही उसका उत्थान होता है।

यदि सूर्य रेखा अन्त मे त्रिशूल की तरह तीन रेखाओ वाली हो जाय तो उसकी शक्ति कई तरफ बट जाती है, इसलिए किसी एक कार्य मे अधिक सफलता प्राप्त नहीं होती। सूर्य रेखा जिस ग्रह के स्थान पर जाकर समाप्त होती हो, उसी ग्रह के गुणो को बलवान बनाती है। जैसे बुध के स्थान पर समाप्त हो तो व्यापार, विज्ञान, साहित्य, यश और सार्वजनिक जीवन मे सफलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार गुरु या शनि के स्थान का फल समझना चाहिए।

स्वास्थ्य रेखा—स्वास्थ्य रेखा का जीवन रेखा से न मिलना शरीर की दृढ़ता, दीर्घायु और बलवान होने का चिन्ह है। यदि मिली हुई हो तो आये दिन कुछ न कुछ शारीरिक कष्ट खड़ा रहता है। सामुद्रिक विद्या के पारगत पण्डित शेरो ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि स्वास्थ्य रेखा तन्दुरुस्ती का थर्मामीटर है। जिन दिनो मनुष्य बीमारी मे ग्रस्त होता है या बीमार पड़ने को होता है। उस समय यह रेखा गहरी और भयानक हो जाती है पर जब शरीर स्वस्थ होने लगता है, यह रेखा धुँधली पड़ जाती है। इसमे से जितनी शाखाये फूटती हो उतने ही किस्म के रोगो का अधिक दबाव रहता है।

यह रेखा चन्द्र स्थान तक चली जाय तो मनोविकारो की अधिकता और वीर्य सम्बन्धी रोगो का अस्तित्व प्रकट होता है। स्वास्थ्य रेखा हर किसी के हाथ मे हो यह आवश्यक नही है। सच तो यह है कि इसका न होना ही होने की अपेक्षा ज्यादा अच्छा है। जिसके हाथ मे यह नही होती, वे उतने बीमार नही पड़ते। इसका दुहरा होना चरित्र की पवित्रता और अच्छे स्वास्थ्य का चिन्ह है। पीले रंग की हो तो कलेजे की बीमारी का होना बताती है। स्वास्थ्य रेखा मस्तक रेखा से मिलती हो तो जीवनी शक्ति का अभाव प्रकट होता है, ऐसे आदमी थोड़े परिश्रम से बहुत थक जाते है। यदि यह मस्तक रेखा और हृदय रेखा के बीच मे होकर निकली हो और अधिक लालिमायुक्त हो तो मूर्छा, मृगी, पागलपन, सनक आदि मानसिक रोगो की निशानी है।

विवाह रेखा—कनिष्टका उँगली और हृदय रेखा के बीच मे जो छोटी किन्तु गहरी रेखा बुद्धि के स्थान की तरफ आती है, वह विवाह रेखा कहलाती है। इसी के द्वारा स्थायी विवाह का परिचय प्राप्त होता है, इसमे से जो शाखाये निकलती है उनसे उप-पत्नियो की, अधूरे विवाहो की सूचना मिलती है। विवाह रेखा जितनी गहरी और बिना टूट-फूट की होती है, स्त्री से प्रेम भी उतना ही अच्छा निभता है। बीच मे उथलापन या टूटना प्रेम मार्ग को हल्का, ओछा और विघ्नयुक्त बनाता है। यदि रेखा बीच मे स्पष्ट रूप से बिल्कुल टूट गयी हो तो पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद या मृत्यु की सूचना है। कई जगह यदि टूट गयी हो तो ऐसे ही कटु अवसर कई बार आ सकते है।

यदि यह सूर्य रेखा से मिलती हो तो धनी घर से विवाह होना बताती है किन्तु यदि उसे काटकर आगे बढ़ जाय तो विवाह के बारे मे किये गये बड़े-बड़े मनसूबे धूल मे मिल जाते है। विवाह रेखा मे से कोई रेखा निकलकर हृदय रेखा तक पहुँचे तो रोगी पत्नी के साथ विवाह होता है। मंगल के स्थान से निकलकर कोई छोटी पतली रेखा विवाह रेखा से जा मिले तो विवाह के फलस्वरूप रोज-रोज झगड़े का और क्लेश का सामना करना पड़ता है। ऐसी ही कोई पतली सी रेखा शुक्र के स्थान से निकलकर विवाह रेखा मे आ मिले तो पत्नी परेशानी की जड़ बन जाती है। साँप छछूदर की गति मे उसे सदा उलझा रहना पड़ता है। जीवन रेखा और विवाह रेखा मे फासला अधिक हो तो पति पत्नी मे सदा मतभेद बना रहता है। सूर्य स्थान से चलकर कोई पतली रेखा विवाह रेखा मे मिले तो सब प्रकार सुख-शान्ति और सन्तोष होने का लक्षण है।

विवाह रेखा और हृदय रेखा के बीच के फासले से शादी की उम्र जानी जा सकती है। यदि बहुत समीपता हो तो बालकपन मे ही विवाह हो जाता है। यह फासला जितना ही अधिक होता जाता है, विवाह की आयु मे उतनी ही देरी समझनी चाहिए। साधु-महात्माओ के हाथ मे विवाह रेखा स्त्री की सूचना नहीं देती वरन् भक्त और शिष्यो के सम्बन्ध मे ज्ञान कराती है। यह फाँकदार हो तो स्त्री पुरुषो के मनो मे फाँक रहना प्रकट होता है।

मणिबन्ध—हाथ को नीचे की ओर झुकाने से कलाई पर जहाँ नाड़ी देखी जाती है, उस जगह कुछ सिलवटे सी पड़ती है, इनको मणिबन्ध या कलाई की रेखाये कहते है। अक्सर यह तीन होती है। इनसे पहली से तन्दुरुस्ती दूसरी से धन और तीसरी से सुख-शान्ति जानी जाती है। किन्तु भारतीय सामुद्रिक विद्या के अनुसार इनमे से पहले से धन, दूसरी से विद्या और तीसरी प्रेम भाव और सत् स्वभाव का पता चलता है।

इन रेखाओ से आयु का अनुमान भी लगाया जाता है। हर एक रेखा से ३० वर्ष की आयु का अन्दाज है। अगर तीन रेखाये साफ हो तो ९० वर्ष की आयु भी कम होती है। जैसे किसी के मणिबन्ध मे १५ रेखा हो तो उसकी आयु लगभग ४५ वर्ष होगी।

संतान रेखाएँ—अँगूठे की जड़ें और कलाई के बीच मे हथेली पर आरम्भिक भाग मे जो छोटी-छोटी

रेखाएँ है, उनसे सन्तान के सम्बन्ध मे पता चलता है। यह रेखाएं जितनी हो उतनी संख्या में सन्तान होगी। जो रेखाऐ हथेली की ओर से आरम्भ होकर पृष्ट भाग की ओर बढ रही हो, वे पुत्र की सूचक है। जो पृष्ट भाग की ओर से आरम्भ होकर हथेली की तरफ चल रही हो वे कन्याओ की संख्या बताती है। बीच-बीच मे ही जो बहुत पतली और खण्डित रेखाऐ होती है, वे गर्भपात तथा बालकों की अल्पायु में ही मृत्यु की सूचना देती है, जितनी रेखाऐ गहरी स्पष्ट और लम्बी हों, उतनी ही सन्तानो का निश्चय करना चाहिए। इनमे से जितनी कटी-फटी नही वे सन्तान सुख देती है। जितनी रेखाएँ कटी-टूटी या फाँकदार हो वे सन्तान प्रायः जी को जलाने वाली, विरोधी और कष्टदायी होती है।

कुछ अन्य चिन्ह

कोण	त्रिभुज
गुणक	जाल
दाग	नक्षत्र
द्वीप	समकोण

हाथ मे कई प्रकार के अन्य चिन्ह भी देखे जाते है। इनमे से आठ प्रमुख चिन्ह यह है—(१) दाग (२) नक्षत्र (३) द्वीप (४) समकोण (५) कोण (६) त्रिभुज (७) गुणक (८) जाल। चिन्ह की तसवीरें चित्र मे दी हुई है। उसके आधार पर पाठक इन चिन्हों की आकृति समझ सकते है।

इन चिन्हो मे नक्षत्र, द्वीप, समकोण और त्रिभुज यह पाँच शुभ है। दाग, गुणक और जाल यह तीन अशुभ हैं। जो चिन्ह जिस रेखा के समीप हो या बीच मे हो वह उसी रेखा के फल को भला या बुरा बनावेगा। अशुभ चिन्ह उसी रेखा के फल मे बुराई पैदा करेंगे, जिसके समीप होगे। इसी प्रकार शुभ चिन्ह भी अपना फल दिखावेगे।

यदि उपरोक्त चिन्हो मे से कोई चिन्ह किसी ग्रह के स्थान पर हो तो उस ग्रह के फल पर भी उस चिन्ह का प्रभाव पड़ेगा। बुरा चिन्ह उस ग्रह के फल मे अपनी बुराई को भी देगा, इसी प्रकार शुभ चिन्ह उस ग्रह के अशुभ फल मे सुधार और शुभ फल मे वृद्धि करेगा।

सप्त वर्षीय नियम—इस संसार की हर चीज गोल है और हर वस्तु अपनी धुरी पर घूमती है। फलस्वरूप प्रत्येक बात की पुनरावृत्ति हुआ करती है। सूर्य हर चौबीस घण्टे बाद नित्य उदय होता है और हर चौबीस घण्टे बाद ही नित्य अस्त होता है, ऋतुऐं एक साल बाद फिर वापिस आती हैं, समस्त ग्रह-नक्षत्र अपने नियत क्रम पर घूमते हुए अपनी परिक्रमा पूरी किया करते है। इसी विधान के अनुसार जीवन का एक चक्र सात वर्ष मे पूरा हो जाता है। जो सुख, दुख, हानि, लाभ जीवन के पहले वर्ष मे हुए थे, उसी से मिलते-जुलते १, ७, १४, २१, २८, ३५, ४२, ४९ ५६, ६३, ७०, आदि वर्षों मे होते जायेगे। जो हानि, लाभ, सुख, दुख, जीवन के दूसरे वर्ष मे हुये थे, वैसे ही २, ८,१५, २२, २९, ३६, ४३, ५०, ५७, ६४, ७१, ७९ आदि वर्षों मे होगे। इसी प्रकार सातवाँ वर्ष वैसा ही आ जाता है जो पहला था। किन्हीं ७ वर्षों का वर्ष फल ध्यानपूर्वक तैयार कर लिया जाय, तो जीवन भर का साधारण वर्ष फल बन जाता है। हाँ विशेष कारणवश उसमे विशेष न्यूनाधिकता हो जाना दूसरी बात है।

हाथ मे उपस्थित रेखाओ के शुभाशुभ फल मे भी यह सप्त वर्षीय नियम काम करता है। उसकी रीति यह है कि जिस रेखा के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करनी हो उसकी सम्भावित पूरी लम्बाई नाप लेनी चाहिए। मान लीजिए कि हाथ की बनावट के अनुसार किसी की भाग्य रेखा यदि पूरी बनी होती तो सम्भवतः ४ इंच होने की सभावना थी। अब इसे एक कागज पर नोट कर लीजिए और १०० वर्ष आयु से इसका अनुपात निर्धारित कर लीजिये। जैसे—

४ इंच = १०० वर्ष

अब देखिए कि हाथ मे भाग्य रेखा की लम्बाई कितनी है, यदि वह तीन इंच हो तो उसका हिसाब इस प्रकार लगाना चाहिये कि यदि ४ इंच भाग्य रेखा होती तो १०० वर्ष तक फल देती। किन्तु वह तीन इंच है, तो ७५ वर्ष तक ही फल देगी। इसका अर्थ यह न समझना चाहिए कि ७५ वर्ष की आयु मे मृत्यु हो जायगी, वरन् यह है कि यदि जीवन कायम रहे तो ७५ वर्ष तक फल देगी, इसके बाद निष्फल हो जायगी। इसी प्रकार यदि कोई रेखा पूरी सभावना की अपेक्षा चौथाई ही हो तो इसका फल २५ वर्ष रहेगा, इसके उपरान्त यह रेखा निरर्थक हो जायगी।

जीवन के आदि-मध्य का अन्त से रेखा का फल रहेगा, यह जानने के लिए यह देखना चाहिए कि रेखा किस भाग मे स्पष्ट है, किस भाग मे टूटी है, किस भाग मे धुँधली है और किस भाग मे बिल्कुल नहीं ? रेखा को ४ भागो मे बाँटकर हर एक २५, २५ वर्ष वाले भाग का अनुमान कर सकते है। जैसे कोई रेखा आदि के एक चौथाई भाग मे बिल्कुल न हो और अन्त मे भी न

हो, सिर्फ बीच ही बीच मे हो तो इसका तात्पर्य यह है कि बालकपन और वृद्धावस्था के २५ वर्षों मे वह रेखा फल न देगी वरन् २५ वर्ष की आयु से लेकर ७५ वर्ष तक के बीच के ५० वर्षो मे ही उसका फल रहेगा। बीच मे या आदि, मध्य मे यदि कोई रेखा पतली धुँधली, टूटी हुई हो तो उस समय मे उसका फल भी उसी अनुपात मे कम होता है। जिस स्थान पर कोई रेखा अधिक मोटी या दुहरी हो गई हो इस स्थान की लम्बाई नापकर उपरोक्त प्रकार से हिसाब लगाकर जाना जा सकता है कि जीवन के किस वर्ष मे कौन रेखा कितना या कैसा फल देगी। यदि वह रेखा स्थित और शुभ है, तो रेखा के स्पष्ट मे जाकर बहुत अच्छा फल और अस्पष्ट भाग मे कम अच्छा फल देगी। यदि उस रेखा की स्थिति अशुभ है तो मोटे स्पष्ट भाग मे अधिक बुरा फल, अस्पष्ट भाग मे कम बुरा फल देगी। डोरे से रेखा की लम्बाई नापकर उपरोक्त रीति से यह हिसाब लगाया जा सकता है कि किसी रेखा का जीवन के किस वर्ष मे कैसा फल होगा।

सप्त वर्षीय परिवर्तन नियम के अनुसार रेखाओ का विशेष फल जानने का तरीका यह है कि किसी रेखा के बारे मे उपरोक्त रीति से पहले यह मालूम करना चाहिए कि वह जीवन के किसी भाग मे कितने वर्ष तक फल देगी। जैसे किसी रेखा की स्थिति देखकर यह मालूम हो गया कि वह रेखा २० वर्ष की आयु से लेकर ७० वर्ष की आयु तक ५० वर्ष फल देगी। इस पचास वर्ष को सप्त वर्षीय परिक्रमा मे बाँट दीजिये। सात चक्र पूरे हुए और दो वर्ष बचे। इन चक्रो का हर एक आरम्भिक वर्ष इस रेखा के फल से विशेष रूप से सम्मिलित होगा। जैसे स्थिति के अनुसार उस रेखा का फल धन प्राप्त होगा तो समझ लीजिए कि उपरोक्त रेखा के अनुसार २०, २६, ३३, ४०, ४७, ५४, ६१, ६८, वर्ष की आयु मे विशेष रूप से धन की प्राप्ति होगी। यदि उस रेखा की स्थिति के अनुसार फल धन नाश होता तो यही वर्ष विशेष रूप से धन नाश करने वाले होते।

इस प्रकार हर रेखा का सप्त वर्षीय परिभ्रमण के नियमानुसार शुभाशुभ फल की विशेषता जानी जा सकती है। रेखाये डोरे की सहायता से सही रूप से नापकर ध्यानपूर्वक गणित किया जाय, तो जन्म-पत्री की योगिनी एवं विंशोत्तरी दशा के अनुसार हस्त रेखाओ के अनुसार जन्म-पत्री भी बन सकती है। जन्म समय ठीक मालूम न होने से कभी-कभी इष्ट गलत हो जाने से जन्म-पत्री के फलो मे अन्तर भी पड़ सकता है, पर हस्त रेखाओ के अनुसार निर्धारित किया हुआ फलादेश अपेक्षाकृत अधिक और ठीक निकल सकता है।

आकृतियों के फल—भारतीय सामुद्रिक शास्त्र मे स्त्री का बायाँ हाथ और पुरुष का सीधा हाथ देखने का विधान है। रेखाओ के मिलने से हाथ मे कहीं-कहीं कुछ आकृतियाँ सी बन जाती है। उन आकृतियो को भारतीय सामुद्रिक शास्त्री विशेष महत्त्व देते है और इनके अनुसार फल निश्चय करते है।

भारतीय हस्त रेखा विज्ञान के अनुसार जिस व्यक्ति के हाथ मे मछली के समान रेखा हो तो उसके काम सिद्ध होते है, वह धनाढ्य और सन्तान वाला होता है। जिसके हाथ मे तराजू, मकान या वज्र जैसी आकृति हो उसका व्यापार खूब चलता है। जिसके हाथ मे कमल पुष्प, धनुष, तलवार चक्र या अष्टकोण का चिन्ह हो वह योद्धा, धनवान होता है और स्वस्थ रहता है। त्रिशूल जैसा चिन्ह हो तो वह राजदरबारी, सात्विक प्रकृति का और शुभकार्य करने वाला होता है। अंकुश या कुण्डल के चिन्ह हो तो राजमन्त्री, नेता एवं महापुरुष बनता है। पर्वत, कंकण, मनुष्य का सिर, पंख जैसे चिन्ह हो तो पराक्रम, यश, आदर एवं विजय का सेहरा उसके सिर पर बँधता है। सूर्य, चन्द्र, बेल, नेत्र, त्रिकोण, मन्दिर हाथ घोड़ा की आकृति हाथ के किसी स्थान मे हो तो उसे धनवान, सुखी और समृद्ध होने का चिन्ह समझना चाहिए। अँगूठे के बीच मे जौ का चिन्ह हो तो वह ऐश्वर्य प्राप्ति का लक्षण है। तर्जनी (अँगूठे के पास की) और मध्यमा (बीच की उँगली) की जड़ मे जौ का चिन्ह हो तो उस व्यक्ति को दाम्पत्य सुख की प्राप्ति होती है और पारिवारिक जीवन आनन्दमय रहता है।

जिसके हाथ मे शंख, ध्वजा या नासिका जैसी रेखा हो तो वह असाधारण विद्वान होता है। माला, तार, रथ, कुण्डल, छत्र, जैसे चिन्ह राजाओ के हाथो मे होते है। हाथ मे जितने यव (जौ) के चिन्ह हो तो वे विद्या की अधिकता प्रकट करते है। इसी प्रकार मछली की आकृति से यश का, हथियारो से वीरता का, कोठरी से धन का, त्रिकोणो से स्वास्थ्य का परिचय प्राप्त होता है। हाथ मे जितने कमल हो वे धर्म वृद्धि सूचित करते है।

उँगलियो मे आड़ी रेखाएँ "——" इस प्रकार की जितनी होगी, वे क्रोध एव लोभ की प्रतीक है। सद्गुण और सत्कार्यों के अनुसार उँगलियो मे 'I' इस प्रकार की खड़ी रेखाए उत्पन्न होती है। एक दूसरे को काटती हुई '+' इस प्रकार की रेखाए मानसिक बेचैनी, चिन्ता, शोक एव वेदना का होना प्रकट करती है। दुस्साहसी लोगो की उँगलियो मे बहुत छोटी आड़ी, टेढ़ी रेखाएँ देखी जाती है।

यदि अँगूठे की जड़ मे '४' चार का अक्षर सा बना हो तो वह निष्ठुरता, क्रूरता और लड़ाई-झगड़े की प्रवृत्ति का सूचक है। यदि कलाई मे से कटा हुआ सा त्रिकोण हो तो उसका अधिकांश जीवन परदेश मे व्यतीत होता है। अनामिका उँगली के तीसरे पोरुवे मे पास-पास दो रेखाये हो तो ऐसा व्यक्ति तीव्र बुद्धि वाला, ऊ॰चप और पराक्रमी होता है। कनिष्ठका (सबसे छोटी॰ करोड़ की जड़ मे जितनी छोटी-छोटी, अस्त-व्य॰

उसी अनुपात से स्वास्थ्य की रेखा समझनी चाहिए। मध्यमा (बीच की उँगली) की जड़ मे जिसके दो रेखाऐं होती है, वह परिश्रमी और उत्साही होता है। कलाई पर साँप का चिन्ह जिनके होता है वे चोरी, छल तथा निकृष्ट कर्मों मे रुचि रखने वाले देखे जाते है।

कनिष्ठका के तीसरे पोरुवे मे गुणित 'X' का निशान हो तो मन्द बुद्धि और संशयी होने का चिन्ह समझना चाहिए। भोग विलास मे अधिक रुचि रखने वालो की अनामिका उँगली की जड़ मे टेढ़े-मेढ़े निशान पड़ जाते है। अँगूठे के मध्य भाग मे सर्प की जैसी टेढ़ी रेखा वाले व्यभिचारी होते हैं। उँगलियो के दूसरे और तीसरे पोरुवे की मध्य रेखा को काटती हुई यदि खड़ी रेखा दिखाई पड़े तो उसे बुद्धि, विवेक, उदारता, सहृदयता का चिन्ह समझना चाहिए। पहले दूसरे पोरुवे की मध्य रेखा को काटती हुई खड़ी रेखा चाहे वह किसी भी उँगली मे क्यों न हो धन वैभव, यश और भोग की प्रतीक है।

अँगूठे से स्वास्थ्य, तर्जनी से स्वभाव, मध्यमा से ज्ञान, अनामिका से वैभव और कनिष्ठका से पूर्व संचित शुभ, अशुभ-संस्कारो का पता चलता है। जो उँगली कृश, सुन्दर, कुरूप, आदि जैसी आकृति की हो तो उसी के अनुसार उपरोक्त बातों की सूक्ष्म दृष्टि द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

सामुद्रिक विद्या के अभ्यासियो को चाहिए कि हाथ का ढाँचा, उँगली, अँगूठा, नाखून, हथेली की बनावट, ग्रहो का स्थान, हस्तरेखाऐं, तिल, शंख, चक्र, मणिबन्ध तथा चिन्हो पर भली-भाँति विचार करके फल की विवेचना करें। इस प्रकार गम्भीरता और सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया हुआ विचार प्रायः असत्य नहीं होता, ऐसा हमारा अनुभव है।

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष्य के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी गायत्री तपोभूमि, मथुरा जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा ली सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित कि ज को गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ निश्चय थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व क्षेमक्ष २४० करोड़ ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान**, घीयामण्डी, मथुरा के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं--

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६२ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं, किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है।

□□□

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है। जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३ उपासना-समर्पण योग
४ साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५ साधना से सिद्धि-१
६ साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८ ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओ से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२ (सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८ प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. सकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७ मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनो से अपनी बाते

□□□